अथर्ववेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग-१

[काण्ड १ से १०तक]

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

रण २००५ मूल्य : १२५ रुपये

● **प्रकाशक**

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

● **लेखक**

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

● **मुद्रक**

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्



अपने आराध्य के चरणों में

परम पूज्य गुरुदेव ने जो गुरुतर भार कन्धों पर डाला, उनमें अपने वेदों का आज के परिप्रेक्ष्य में बुद्धिसंगत एवं विज्ञानसम्मत प्रतिपादन सर्वथा दुःसाध्य कार्य था। लोगों के पास योग्यता रहती होगी, जिससे वे बड़े-बड़े कार्य सम्भव कर पाते होगें; पर मुझ अकिंचन के लिए तो यह सौभाग्य ही क्या कुछ कम था कि अपने आराध्य के चरणों पर स्वयं को सर्वतोभावेन समर्पित करने का सन्तोष प्राप्त हुआ। होंठ कौन सा गीत निकालेंगे, भला बाँसुरी को क्या पता? कौन सा राग आलापित होगा - यह पता वादक को हो सकता है, सितार बेचारा उसे क्या समझे?

वेदों के भाष्य जैसे कठिन कार्य में मेरी स्थिति ऐसे ही वाद्य यंत्र की रही। यदि गायन सुन्दर हो, तो श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिए, जिन्होंने इनका भाषानुवाद प्रारम्भ (सन् १९६० ई०) में किया और दुबारा करने का आदेश मुझे दिया। कलम मेरी हो सकती है, पर चलाई उन्होंने ही। अक्षर मेरे हो सकते हैं, पर भावाभिव्यक्ति एक मात्र उन्हीं की है।

आज यह सुरभित पुष्प अपने उन्हीं आराध्य गुरुदेव-आचार्य जी के चरणों में समर्पित कर स्वयं को कृत-कृत्य हुआ अनुभव करती हूँ।

जिन मनीषियों के ग्रन्थ हमने इस अवधि में पढ़े, उनसे कुछ दिशा बोध मिला, उनका तथा जिन्होंने इस गुरुतर कार्य के संकलन से प्रकाशन तक में सहयोग दिया, उनका मैं विशेष रूप से आभार मानती हूँ। आशा करती हूँ कि इस सृजन से अपनी संस्कृति और इस महान् देश की विराट् बौद्धिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा गौरवान्वित होगी।

— भगवती देवी शर्मा

अनुक्रमणिका

संकेत-विवरण

अथर्व०	=	अथर्ववेद	पा० धा०को०	=	पाणिनि धातुकोश
आ० गृह्य०	=	आश्वलायन गृह्यसूत्र	बा०खि०	=	बालखिल्य
ऋ०	=	ऋग्वेद	बृ०सर्वा०	=	बृहत्सर्वानुक्रमणी
ऐत० आ०	=	ऐतरेय आरण्यक	बृह०	=	बृहद्देवता
ऐत० ब्रा०	=	ऐतरेय ब्राह्मण	भा०	=	भागवत पुराण
कपि०क०सं०	=	कपिष्ठल कठ संहिता	भू०परि०	=	भूमिका परिशिष्ट
काठ० सं०	=	काठक संहिता	म०पु०	=	मत्स्य पुराण
कौषी० ब्रा०	=	कौषीतकि ब्राह्मण	महा० प०	=	महाभाष्य पस्पशाह्निक
कौ० सू०	=	कौशिक सूत्र	मुक्ति० उ०	=	मुक्तिकोपनिषद्
गो०ब्रा०	=	गोपथ ब्राह्मण	मैत्रा० सं०	=	मैत्रायिणी संहिता
चौ० प्र०	=	चौखम्बा प्रकाशन	यजु०	=	यजुर्वेद
छा० उ०	=	छान्दोग्य उपनिषद्	वाज० सं०	=	वाजसनेयि संहिता
जैमि० ब्रा०	=	जैमिनीय ब्राह्मण	वाय० सं०	=	वायवीय संहिता
ता० म०	=	ताण्ड्य महाब्राह्मण	वै० को०	=	वैदिक कोश
तैत्ति० ब्रा०	=	तैत्तिरीय ब्राह्मण	शत० ब्रा०	=	शतपथ ब्राह्मण
तैत्ति० सं०	=	तैत्तिरीय संहिता	सर्वा०	=	सर्वानुक्रमणी
दा० भा०	=	दारिल भाष्य	सा०भा०	=	सायण भाष्य
नि०	=	निरुक्त	साम०	=	सामवेद
निघ०	=	निघण्टु	सू०क्र०	=	सूक्त क्रमाङ्क

भूमिका

महत्त्व एवं उपयोगिता

वेद के प्रत्येक विभाग की तरह अथर्ववेद की अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर अनेक वेदज्ञ उसे अतुलनीय मानते हैं। वेद की अन्य शाखाओं में अपनी-अपनी विशिष्ट दिशाएँ हैं, किन्तु अथर्ववेद तो अपने अंक में मानो जीवन की समग्रता को समेटे हुए है। सृष्टि के गूढ़ रहस्यों, दिव्य प्रार्थनाओं, यज्ञीय प्रयोगों, रोगोपचार, विवाह, प्रजनन, परिवार, समाज- व्यवस्था एवं आत्मरक्षा आदि जीवन के सभी पक्षों का इसमें समावेश है। वेद की अन्य धाराओं में गूढ़ ज्ञान के साथ शुद्ध विज्ञान (प्योर साइंस) है; किन्तु अथर्ववेद में ज्ञान - विज्ञान की गूढ़ धाराओं के साथ व्यावहारिक विज्ञान (एप्लाइड साइंस) भी है।

जीवन को सुखमय तथा दु:खविरहित बनाने के उद्देश्य से ऋषियों ने जिन यज्ञीय अनुष्ठानों का विधान बनाया है, उनके पूर्ण निष्पादन के निमित्त जिन चार ऋत्विजों की आवश्यकता बताई है, उनमें से अन्यतम (प्रमुख) ऋत्विज् ब्रह्मा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध इसी वेद से है। **"ब्रह्मा"** का स्थान यज्ञ-संसद के ऋत्विजों में प्रधान (अध्यक्ष) है। **'ब्रह्मा'** का दायित्व यज्ञीय नाना विधियों का निरीक्षण तथा त्रुटियों का परिमार्जन करना है। इसके लिए उसको सर्ववेदविद् होना अनिवार्य होता है तथा उसे मनोबल-सम्पन्न भी होना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि तीनों वेदों के द्वारा यज्ञ के केवल एक पक्ष का संस्कार होता है। **'ब्रह्मा'** मन के द्वारा यज्ञ के दूसरे पक्ष का संस्कार करता है।[१]

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ सम्पादन के दो मार्ग हैं- वाक् तथा मन। वाक् (वचन) के द्वारा वेदत्रयी (ऋक्, यजु, साम) यज्ञ के एक पक्ष को संस्कारित करती है, दूसरे पक्ष का संस्कार **'ब्रह्मा'** ब्रह्मवेद (अथर्ववेद) के द्वारा 'मन' से करता है।[२] इस तथ्य से स्पष्ट है कि यज्ञ के पूर्ण संस्कार के लिए अथर्ववेद की नितान्त आवश्यकता है।

वस्तुत: अथर्ववेद में शान्ति-पुष्टि तथा आभिचारिक- दोनों तरह के अनुष्ठान प्रयोग वर्णित हैं। राजा के लिए इसका विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है। राजा के लिए शान्तिक - पौष्टिक कर्म तथा तुलापुरुषादि महादान की विशेष आवश्यकता पड़ती है। जो अथर्ववेद का मुख्य प्रतिपाद्य है। मत्स्य पुराण का कहना है कि पुरोहित को अथर्वमन्त्र तथा ब्राह्मण में पारंगत होना चाहिए।[३] अथर्वपरिशिष्ट में तो यहाँ तक लिखा है कि अथर्ववेद का ज्ञाता शान्तिकर्म का पारगामी (पुरोहित) जिस राष्ट्र में रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवों से हीन होकर वृद्धि को प्राप्त करता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह अथर्ववेदविद् तथा जितेन्द्रिय पुरोहित का दान-सम्मान, सत्कारपूर्वक नित्यप्रति पूजन- अर्चन करे।[४]

---

१. **स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते। मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति** (गो० ब्रा० १.३.२)।

२. **अयं वै यज्ञो योऽयं पवते, तस्य वाक् च मनश्च वर्तन्यौ वाचा च हि मनसा च यज्ञो वर्तत, इयं वै वागदो मनस्तद्वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति, मनसैव ब्रह्मा संस्करोति** । (ऐत० ब्रा० ५.३३)

३. **पुरोहितं तथा अथर्वमन्त्रब्राह्मणं पारगम्।** (म० पु०)

४. **यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वाशान्तिपारगः।**
निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्॥
तस्माद् राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम्।
दान-सम्मान-सत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत्॥ (अथर्व सा० भा० भू० परि० ४६)

अथर्ववेद की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर सम्भवत: कुछ आचार्यों ने इसे प्रथम वेद के रूप में स्वीकारा है। न्याय मञ्जरी कर्त्ता जयन्त भट्ट ने लिखा है- **तत्र वेदाश्चत्वारः प्रथमोऽथर्ववेदः** (न्याय मंञ्जरी पृ०२३७-२३८ चौ० प्र०) । नागर खण्ड भी इसे आद्यवेद मानते हुए तर्क देता है कि सार्वलौकिक कार्यसिद्धि में अथर्व ही मुख्य रूपेण प्रयुक्त होता है, इसलिए वह **'आद्य'** कहलाता है। ऐहिक जगत् के लिए फलदायक होने से भी इसे 'आद्य' कहते होंगे, जबकि अन्य तीनों वेद पारत्रिक-आमुष्मिक (पारलौकिक) फलदायक होने से दूसरे स्थान पर आते हैं। आचार्य सायण ने तो अपने अथर्ववेद की भूमिका में यहाँ तक लिखा है कि आमुष्मिक (पारलौकिक) फलदायी वेदत्रयी की व्याख्या के बाद, ऐहिक (ऐहलौकिक) और आमुष्मिक दोनों प्रकार के फल प्रदान करने वाले चतुर्थ वेद (अथर्ववेद) की व्याख्या करूँगा।[१]

अथर्ववेद के अनेक अभिधान

अथर्ववेद के अनेक अभिधान (नाम) वैदिक वाङ्मय में प्राप्त हैं, यथा-अथर्ववेद, ब्रह्मवेद, अमृतवेद, आत्मवेद, अंगिरोवेद, अथर्वाङ्गिरस वेद, भृग्वांगिरसवेद आदि। **अथर्व** का निर्वचन प्रस्तुत करते हुए निरुक्त[२] का कथन है - 'थर्व' धातु कुटिलता (थर्व कौटिल्ये), गतिशीलता, हिंसा आदि अर्थों में प्रयुक्त होती है। अतएव 'अथर्व' का अर्थ हुआ अकुटिलता तथा अहिंसावृत्ति से चित्त की स्थिरता प्राप्त करने वाला। 'अथर्वन्' का एक अर्थ अग्नि को उद्बोधित करने वाला 'पुरोहित' भी होता है। सम्भवत: 'अवेस्ता' का 'अथ्रवन्' (अग्निपूजक) शब्द 'अथर्वन्' का प्रतिनिधित्व करता है।

अथर्ववेद को **'ब्रह्मवेद'** भी कहते हैं। वस्तुत: यह वेद 'यज्ञ संसद' के प्रमुख 'ब्रह्मा' के प्रयोगार्थ निर्धारित है। वैसे 'ब्रह्मा' के लिए चारों वेदों का निष्णात होना विहित है; परंतु 'अथर्ववेद' की विशेषज्ञता उनके लिए अनिवार्य है क्योंकि **'ब्रह्मवेद'** में वह सब कुछ है, जो चारों वेदों में पृथक्-पृथक् प्राप्त होते हैं (**ब्रह्मवेद एव सर्वम्** - गो०ब्रा० १.५.१५) ।

अतएव 'ब्रह्मा' के ब्रह्मकर्म' की प्रमुखता के कारण इसे 'ब्रह्मवेद' की अन्वर्थ संज्ञा प्राप्त है। गोपथ ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषदादि ग्रन्थों में भी अथर्ववेद को ब्रह्मवेद की संज्ञा प्रदान की गई है[३] ।

'अथर्व' की प्राचीन संज्ञा **'अथर्वांगिरस वेद'** भी है। इससे इसका सम्बन्ध 'अथर्व' और 'अंगिरा' दो ऋषिकुलों से संयुक्त प्रतीत होता है। वस्तुत: अंगिरावंशीय अथर्वा ऋषि के द्वारा प्रस्तुत रूप प्रदान किये जाने के कारण इस वेद को 'अथर्वांगिरस वेद' कहा जाता है। यहाँ पर एक बात और ध्यातव्य है कि 'अथर्व दृष्ट' मन्त्र शान्ति और पुष्टि कर्मयुक्त हैं और अंगिरस्-दृष्ट मन्त्र आभिचारिक हैं। प्रथमत: शान्ति - पौष्टिक मन्त्र हैं, बाद में आभिचारिक मन्त्रों का समावेश है। इसलिए अथर्वांगिरस (अथर्व + अंगिरस) संज्ञा सार्थक है।

'अथर्ववेद' को **'भृग्वांगिरस वेद'** भी कहते हैं। 'भृगु' अंगिरा के शिष्य थे। अथर्ववेद के प्रचार-प्रसार का प्रमुख श्रेय 'भृगु' को ही प्राप्त है, अत: इसे भृग्वांगिरस वेद की संज्ञा प्राप्त हुई और सर्वश्रेष्ठता भी- **एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः** (गो०ब्रा० १.३.४)

अथर्ववेद की उक्त संज्ञाओं के अतिरिक्त कुछ और भी संज्ञाएँ हैं -यथा, **छन्दोवेद** (छन्दांसि-अथर्व० ११.७.२४), **महीवेद** (ऋचः साम यजुर्मही - अथर्व०

---

१. **कृपालुसायणाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः ॥**
व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम् ।
ऐहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याकरिष्यति ॥ (सा० भा० भू० ९-२०)

२. **अथर्वाणो ऽथर्व (ण) वन्तस्थर्वतिश्चरति कर्मा । तत्प्रतिषेधः** । (नि० ११.२.१८)

३. क. **चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः** (गो० ब्रा० २.१६) ।
ख. **सैव ऋक् तत्साम, तदुक्थं तद् यजुस्तद् ब्रह्म** (छा० उ० १.७.५) ।

१०.७.१४), **क्षत्रवेद** (उवथं..........यजु.................... साम... ....क्षत्रं......... वेद - शत० ब्रा० १४.८.१४. २ - ४) तथा **भैषज्य वेद (ऋचः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूमः**- अथर्व० ११.६.१४)। अथर्ववेद के ये सभी अभिधान उसके व्यापक वर्ण्य विषय को स्पष्ट करते हैं।

तीन संहिताएँ

अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र के दारिल[1] भाष्य में अथर्ववेद की तीन संहिताओं का उल्लेख पाया जाता है, जबकि अन्य तीनों वेदों की एक-एक संहिता ही उपलब्ध होती है, जिसका मुद्रण-प्रकाशन होता रहता है।

दारिल भाष्य में अथर्व की जिन तीन संहिताओं का उल्लेख है, उनके नाम हैं — (i) आर्षी-संहिता (ii) आचार्य संहिता और (iii) विधि-प्रयोग संहिता।

आर्षी संहिता- ऋषियों के द्वारा परम्परागत प्राप्त मंत्रों के संकलन को 'आर्षी संहिता' कहा जाता है। आजकल काण्ड, सूक्त और मंत्रों के विभाजन वाला जो अथववद उपलब्ध है, जिसे शौनकीय संहिता भी कहा जाता है, ऋषि संहिता या आर्षी - संहिता ही है।

आचार्य संहिता - दारिल भाष्य में इस संहिता के संदर्भ में उल्लेख है कि उपनयन संस्कार के बाद आचार्य अपने शिष्य को जिस रूप में अध्ययन कराता है, वह आचार्य संहिता कहलाती है।[2]

विधि प्रयोग संहिता - जब मंत्रों का प्रयोग किसी अनुष्ठेय कर्म के लिए किया जाता है, तो एक ही मंत्र को कई पदों में विभक्त करके अनुष्ठेय मन्त्र का निर्माण कर लिया जाता है, तब ऐसे मन्त्रों के संकलन को विधि-प्रयोग संहिता कहते हैं। '**विधि प्रयोग संहिता**' का यह प्रथम प्रकार है। इसी भाँति इसके चार प्रकार और होते हैं। द्वितीय प्रकार में नये शब्द मन्त्रों में जोड़े जाते हैं। तृतीय प्रकार में किसी विशिष्ट मन्त्र का आवर्त्तन उस सूक्त के प्रतिमंत्र के साथ किया जाता है। इस प्रकार सूक्त के मंत्रों की संख्या द्विगुणित हो जाती है। चतुर्थ प्रकार में किसी सूक्त में आए हुए मंत्रों के क्रम को परिवर्तित कर दिया जाता है। पंचम प्रकार में किसी मंत्र के अर्ध भाग को ही सम्पूर्ण मन्त्र मानकार प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आर्षी-संहिता मूल संहिता है। आचार्य संहिता उसका संक्षिप्तीकरण रूप है और विधि-प्रयोग संहिता उसका विस्तृतीकरण रूप[3]।

अथर्ववेद का शाखा विस्तार

अन्य वेदों की तरह 'अथर्ववेद' की भी एकाधिक शाखाओं का उल्लेख मिलता है। सायण भाष्य के उपोद्घात, प्रपञ्च हृदय, चरण व्यूह (व्यासकृत) तथा महाभाष्य (पतंजलिकृत) आदि ग्रन्थों में अथर्ववेद की शाखाओं का उल्लेख पाया जाता है। महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में अथर्ववेद की 'नौ' शाखाओं का उल्लेख है - **नवधा ऽऽ थर्वाणो वेदः** (म० भा० पस्प० १.१.१)। सर्वानुक्रमणी (महर्षि कात्यायनकृत) ग्रन्थ में इस संबंध में दो मत उद्धृत किये गये हैं। प्रथम मत के अनुसार पन्द्रह शाखाएँ हैं[4]। वेदों की शाखाओं का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ 'चरण व्यूह' में अथर्व संहिता के 'नौ' भेद स्वीकार किये गये हैं, जो इस प्रकार हैं - १. पैप्पल २. दान्त ३. प्रदान्त ४. स्नात ५. सौल ६. ब्रह्मदाबल ७. शौनक ८. देवदर्शत और

---

१. **कौशिकी वत्सशर्मा च तत्प्रपौत्रश्च दारिलः। शास्त्र विज्ञाने येषां हि चतुर्थो नोपपद्यते॥**

(श्री एच० आर० दिवेकर द्वारा उद्धृत केशवी तथा दारिल भाष्य)

२. **येन उपनीय शिष्यं पाठयति सा आचार्य संहिता। (कौ० सू० दा० भा०)**

३. इसके विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन के लिए द्रष्टव्य है- डॉ० एच० आर० दिवेकर कृत अथर्व संहिता एण्ड इट्सफार्म्स पेज १९३-२१२ तथा क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत फेलिसिटेशन वाल्यूम, इलाहाबाद।

४. **नवाध्वा ऽऽ थर्वणो ऽन्ये तु प्राहुः पञ्चदशाध्वकम् (सर्वा० वृ० भू० षड्गुरुशिष्य)** ।

९. चरणविद्य[१] । आचार्य सायण ने भी अपनी अथर्ववेद भाष्यभूमिका में इसकी नौ शाखाएँ ही स्वीकार की हैं; परंतु उनके नाम चरण व्यूह में बताए गये नामों से किंचित् भिन्न हैं, वैसे अधिकांश विद्वानों ने आचार्य सायण द्वारा उल्लिखित नामों को प्रामाणिक माना है। वे इस प्रकार हैं - १. पैप्पलाद २. तौद ३. मौद ४. शौनकीय ५. जाजल ६. जलद ७. ब्रह्मवद ८. देवदर्शी और ९. चारणवैद्य[२] ।

इस प्रकार अथर्ववेद की कुल नौ शाखाएँ प्रसिद्ध हैं; किन्तु वर्तमान में दो शाखाओं से सम्बद्ध संहिता ही उपलब्ध होती है, अन्य सात शाखाओं की संहिताएँ उपलब्ध नहीं होतीं। जो दो शाखाएँ उपलब्ध हैं, उनमें भी एक शौनक संहिता ही आज की प्रचलित संहिता है, दूसरी पैप्पलाद संहिता यदा-कदा किसी पुस्तकालय में ही दर्शनार्थ उपलब्ध होती है, पठन-पाठन हेतु नहीं। इस प्रकार प्रमुख उपलब्ध संहिता शौनकीय ही है, इसके तथा अन्यों के विषय में उपलब्ध संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत है -

१. पिप्पलाद संहिता - 'प्रपञ्चहृदय' नामक ग्रन्थ में इस संहिता की उपलब्ध जानकारी उपनिबद्ध है। उसके अनुसार इस संहिता के आदि मुनि प्रसिद्ध अध्यात्मवेत्ता 'पिप्पलाद' जी हैं। बीस काण्डात्मक इस संहिता की एक मात्र प्रति कश्मीर में उपलब्ध हुई, जो शारदा लिपि में थी, जिसे कश्मीर नरेश ने प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० राथ को १८८५ में उपहार स्वरूप प्रदान की थी। उसी की फोटो कॉपी तीन प्रति में सन् १९०१ ई० में डॉ० राथ महोदय ने छपाई थी। महाभाष्य के अनुसार इस संहिता का प्रथम मन्त्र **'शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः' है।** छान्दोग्य मंत्र भाष्य में भी इसी मंत्र को पिप्पलाद संहिता का प्रथम मंत्र स्वीकार किया गया है - **'शन्नो देवी' .... अथर्ववेदादिमन्त्रोऽयं पिप्पलाददृष्टः ।'** आज कल की प्रचलित संहिता (शौनक) में यह मंत्र प्रथम काण्ड के षष्ठ सूक्त के पहले मंत्र के रूप में उपलब्ध है।

२. शौनक संहिता - गोपथ ब्राह्मण तथा आजकल की प्रचलित अथर्व संहिता इसी शौनक शाखा की ही है। इस संहिता में २० काण्ड हैं, जबकि अनेक विद्वान् इसे अष्टादश काण्डात्मक ही मानते हैं। उनका कहना है कि उन्नीसवाँ और बीसवाँ काण्ड 'खिल काण्ड' हैं, जो पीछे से अथर्ववेद में सम्मिलित कर लिये गए; किन्तु अन्ततः २० काण्डीय संहिता को मान्यता दे दी गयी है।

इसके सूक्तों के विषय में मत - वैभिन्य है। बृहत्सर्वानुक्रमणी के अनुसार इसमें ७५९ सूक्त है, परंतु वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित संहिता में ७३१ सूक्त हैं। कई समीक्षकों ने ७३० सूक्त ही माने हैं। वेदाध्ययन परम्परा को गतिशील बनाने में स्वामी गंगेश्वरानन्द जी का अपूर्व योगदान है। उन्होंने चारों वेदों को एक जिल्द में प्रकाशित कराया है, उनके अथर्ववेद में ७३६ सूक्त उपलब्ध हैं।

इन सभी संहिताओं की विवेकसम्मत समीक्षा ७५९ सूक्त मानने के पक्ष में जाती है। इसका सबसे बड़ा कारण '**बृहत्सर्वानुक्रमणी**' का समर्थन है, साथ ही वेदों तथा वैदिक साहित्य के शोध एवं प्रकाशन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, पंजाब से प्रकाशित सायणाचार्यकृत भाष्य सहित अथर्व संहिता है। इससे पूर्व सन् १९२९ में सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद से प्रकाशित अथर्व संहिता में भी ७५९ सूक्त ही प्राप्त होते हैं। इसी आधार पर प्रस्तुत संहिता में भी सूक्त की संख्या ७५९ रखी गई है। सामान्यतः अथर्ववेद में ६००० मंत्र होने का उल्लेख पाया जाता है। किसी-किसी संहिता में ५९८७ मंत्र मिलते हैं (स्वाध्याय मंडल पारडी, बलसाड़ गुजरात - बड़ा टाइप - बड़ी साइज); किन्तु प्रचलित संहिता में मंत्र संख्या ५९७७ ही उपलब्ध होती है। इस संहिता का दक्षिण भारत में विशेष प्रचलन है। आचार्य सायण का भाष्य भी इसी संहिता पर उपलब्ध है।

---

१. अथर्ववेदस्य नवभेदा भवन्ति पैप्पलाः दान्ताः प्रदान्ताः स्नाताः सौलाः ब्रह्मदाबलाः शौनकी देवदर्शती चरणविद्याश्चेति।

२. तस्य ऐहिकामुष्मिक सकलपुरुषार्थ परिज्ञानोपायभूतस्य अथर्ववेदस्य नवभेदा भवन्ति। तद्यथा। पैप्पलादास्तौदाः मौदाः शौनकीया जाजला जलदा ब्रह्मवदा देवदर्शाश्चारणवैद्याश्चेति (सा० भा० उपोद्घात)।

अथर्ववेद की अन्य संहिताएँ

अथर्ववेद की उक्त दो प्रमुख संहिताओं के अतिरिक्त, जिन अन्य सात संहिताओं (शाखाओं) का उल्लेख मिलता है, वे नाम मात्र के लिए ही हैं। 'मौद' संहिता का उल्लेख महाभाष्य (४.१.८६) तथा शाबर भाष्य(१.१.३०) में मिलता है। अथर्व परिशिष्ट में मौद तथा जलद शाखा वालों को पुरोहित न बनाने के रूप में उल्लेख मिलता है। वहाँ इनसे राष्ट्र के विनाश की आशंका व्यक्त की गई है।[१] अथर्व की अन्तिम शाखा चारण-वैद्या के विषय में कौशिक सूत्र (६.३७) की व्याख्या तथा अथर्व परिशिष्ट(२२.२) से कुछ जानकारी मिलती है। वायु पुराणानुसार इस संहिता में ६०२६ मन्त्र थे; परंतु इस संहिता की कोई प्रति उपलब्ध नहीं। अन्य शाखाएँ तौद, जाजल, ब्रह्मवद तथा देवदर्श केवल नामत: प्रसिद्ध हैं, उनका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।[२]

अथर्ववेद से सम्बद्ध साहित्य

अथर्ववेद के ब्राह्मण, उपनिषद् , प्रातिशाख्य, शिक्षा, कल्पसूत्र आदि सभी उपलब्ध होते हैं, उनका वर्गीकृत विभाजन निम्नांकित है -

क. ब्राह्मण -१.गोपथ २. पैप्पलाद।

ख. उपनिषद् - १. प्रश्न २. मुण्डक ३. माण्डूक्य ४. अथर्वशिरस् ५. अथर्वशिखा ६. बृहज्जाबाल ७. नृसिंह तापनी ८. नारद-परिव्राजक ९. सीता १०. शरभ ११. महानारायण १२. रामरहस्य १३. रामतापनी १४. शांडिल्य १५. परमहंस परिव्राजक १६. अन्नपूर्णा १७. सूर्य १८. आत्मन् १९. पाशुपत २०. परब्रह्म २१. त्रिपुरतापनी २२. दैवी २३. भावना २४. ब्राह्म २५. जाबाल २६. गणपति २७. महावाक्य २८. गोपाल तापनी २९. कृष्ण ३०. हयग्रीव ३१. दत्तात्रेय तथा ३२. गरुड़।[३]

ग. प्रातिशाख्य - अ. अथर्वप्रातिशाख्य या शौनकीय चतुरध्यायिका (सं० डब्लू० डी० ह्विटने) ब. अथर्ववेद प्रातिशाख्य सूत्र (सं० - विश्वबन्धु) स अथर्वप्रातिशाख्य (सं० डॉ० सूर्यकान्त)

घ. शिक्षा - माण्डूकी शिक्षा।

ड.श्रौत सूत्र - वैतान श्रौत सूत्र।

च.गृह्य सूत्र - कौशिक गृह्य सूत्र।

छ.अनुक्रमणी आदि - १. अथर्व परिशिष्ट २. चरणव्यूह ३. पंचपटलिका ४. दन्त्यौष्ठ विधि ५. बृहत्सर्वानुक्रमणी ६. नक्षत्रकल्प ७. आंगिरस कल्प ८. शान्तिकल्प ९. चरणव्यूह सूत्र १०. अथर्वप्रायश्चित्त।

ज.उपवेद - १. सर्पवेद २. पिशाचवेद ३. असुर-वेद ४. इतिहासवेद ५. पुराणवेद[४]।

अथर्ववेद के भाष्यकर

अथर्ववेद के भाष्यकारों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - १. प्राचीन २. अर्वाचीन।

१. सायण - अथर्ववेद के प्राचीन भाष्यकारों में एक मात्र आचार्य सायण (१४वीं शताब्दी) का भाष्य ही उपलब्ध होता है, वह भी लगभग दो तिहाई पर ही, एक तिहाई पर उपलब्ध नहीं है। जिस पर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं, वे काण्ड हैं - ५, ९, १०, १२, १३, १४,

---

१. **पुरोधा जलदो यस्य मौदो वा स्यात् कदाचन। अब्दाद् दशभ्यो मासेभ्यो राष्ट्रभ्रंशं स गच्छति॥** (अथर्व० परि० २.५.२)

२. अथर्ववेद की शाखाओं के विस्तृत विवेचन के लिए देखें --- डॉ० गंगसागर राय कृत शाखाज् ऑफ द अथर्ववेद, पुराणम् xiv.2 PP 58-59

३. **प्रश्नमुंडमांडूक्याथर्वशिरो. . ..दत्तात्रेय गारुडानामथर्ववेदगतामेकत्रिंशत्संख्यकानामुपनिषदां** (मुक्ति० १.५)। इस उद्धरण में ३१ संख्या उल्लिखित है, परंतु गणना से ३२ सिद्ध होती है।

४. ....**पञ्चवेदान् निरमिमीत सर्पवेदं पिशाचवेदं असुरवेदं इतिहासवेदं पुराणवेदमिति** (गो० ब्रा० १.१.१०)।

१५ तथा १६ । इनके अतिरिक्त ८वें तथा २०वें काण्ड पर सायण भाष्य आंशिक रूप से ही उपलब्ध है ।

सायण भाष्य पर आधारित तीन संहिताएँ प्रकाशित हैं - १ .निर्णय सागर प्रेस सं० स्व० शंकर पाण्डुरंग पण्डित १८९५-९८ ई० २. सनातन धर्म यन्त्रालय मुरादाबाद (उ०प्र०) सं० श्री रामचन्द्र शर्मा १९२९ ई० तथा ३. विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर (पंजाब) सं० श्री विश्वबन्धु १९६०-६४ ई० । अर्वाचीन भाष्यकारों में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान् दोनों हैं । उनका संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है—

१. ग्रिफिथ - सम्पूर्ण अथर्ववेद का अँग्रेजी अनुवाद आर० टी० एच० ग्रिफिथ ने दो भागों में बनारस से प्रकाशित किया (१८९५-९६ई०) ।

२. ह्विटनी - सम्पूर्ण अथर्ववेद का अँग्रेजी अनुवाद डब्ल्यू० डी० ह्विटनी ने किया, जिसका संपादन सी० आर० लानमन ने किया (१९०५ ई०) ।

३.ब्लूमफील्ड - अथर्ववेद का अधिकांश भाग अंग्रेजी में एम० ब्लूमफील्ड ने अनुवादित किया ।

४. ल्यूडविश - अथर्ववेद का जर्मन भाषा में अनुवाद ए० ल्यूडविश और जे० ग्रिल ने किया ।

५. सातवलेकर - 'अथर्ववेद का सुबोध भाष्य' नाम से एक विस्तृत भाष्य श्री श्रीपाददामोदर सातवलेकर जी ने बड़े आयासपूर्वक सम्पन्न किया ।

६. जयदेव विद्यालंकार - पं० जयदेव शर्मा ने अथर्ववेद का भाष्य आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर से प्रकाशित किया है ।

अथर्ववेद का विषय - विभागक्रम

अथर्व संहिता का विभाग क्रम दो प्रकार से है - १. काण्ड, सूक्त तथा मन्त्र और २. काण्ड, अनुवाक, प्रपाठक, सूक्त तथा मन्त्र । सम्पूर्ण अथर्ववेद २० काण्डात्मक है । काण्ड, सूक्त और मन्त्र का विभाजन ही सुगम और सर्वमान्य प्रतीत होता है । दूसरा काण्ड, अनुवाक, प्रपाठक, सूक्त और मन्त्रात्मक विभाजन पारायण (पाठ) की सुविधा के लिए किया गया प्रतीत होता है, जो आज उतना लोकप्रिय नहीं है, न सुविधापूर्ण ही । अथर्ववेद को रचनाक्रम की दृष्टि से चार भागों में बाँटा जा सकता है -

(i) प्रथम भाग - (१ से ७ काण्ड) - इस विभाग में छोटे-छोटे सूक्त हैं । प्रथम काण्ड के प्रत्येक सूक्त में ४ मन्त्र, द्वितीय काण्ड में ५ मंत्र, तृतीय काण्ड में ६ मन्त्र, चतुर्थ काण्ड में ७ मन्त्र तथा पंचम काण्ड में ८ मन्त्र हैं । षष्ठ काण्ड के प्रत्येक सूक्त में कम से कम ३ मन्त्र हैं । सप्तम काण्ड में अधिकांशत: सूक्त १ या २ मन्त्र के ही हैं ।

(ii) द्वितीय भाग (८ से १२ काण्ड) - ये सभी काण्ड बड़े-बड़े सूक्तों वाले हैं, परंतु प्रत्येक काण्ड एवं सूक्तों के विषय भिन्न-भिन्न विषयों वाले हैं । १२वें काण्ड के प्रारम्भ में पृथ्वी-सूक्त है, जो ६३ मन्त्रों वाला है, जिसमें भौगोलिक परिदृश्यों एवं राजनैतिक सिद्धांतों का वर्णन है ।

(iii) तृतीय भाग (१३ से १८ काण्ड) - इस भाग के प्रत्येक काण्डों के सूक्तों में विषयों की एकरूपता है । १३वें काण्ड में अध्यात्म विषयक मन्त्र हैं । १४वें काण्ड में विवाह विषयक मन्त्र है । १५वें काण्ड में व्रात्यों के यज्ञ विषयक आध्यात्मिक मन्त्र हैं । १६ वें काण्ड में दुःस्वप्ननाशक मन्त्र हैं । १७ वाँ ३० मन्त्रों वाला एक सूक्तात्मक है, जिसमें सम्मोहन मन्त्र है । १८वें काण्ड में अन्त्येष्टि एवं पितृमेध विषयक मन्त्र है ।

(iv) चतुर्थ भाग (१९ से २० काण्ड) - १९वें काण्ड में भैषज्य, राष्ट्रवृद्धि तथा अध्यात्म विषयक मन्त्र हैं । २०वें कांड में सोमयाग विषयक मन्त्र हैं तथा अधिकांश मन्त्र ऋग्वेद के हैं अथवा ऋग्वेद की ऋचाओं से साम्य रखते हैं ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अथर्ववेद के मन्त्र तीन प्रमुख विषयों का प्रतिपादन करते हैं -

(i). भेषज अर्थात् रोग दूर करने वाली ओषधियों का प्रतिपादन (ii) अमृत अर्थात् मृत्यु को दूर करने के साधन का प्रतिपादन और (iii) ब्रह्म अर्थात्

बृहद्- सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का प्रतिपादन।[१] एक वाक्य में अथर्ववेद के मंत्रों का माहात्म्य अथवा वर्ण्यविषय का प्रतिपादन करते हुए अथर्व परिशिष्टकार ने लिखा है -

अथर्वमंत्रसम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति (अथर्व.परि.२.५) अर्थात् अथर्ववेदमंत्र की सम्प्राप्ति (सम्यक् ज्ञान) से सब पुरुषार्थ सिद्ध होंगे।

वर्ण्य विषय - अथर्ववेद के वर्ण्य विषयों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। सायणाचार्य ने उसको १४ विभागों में विभक्त किया है। बाद में अध्येता विद्वानों की सूची में २९ विषयों का उल्लेख है।

कौशिक सूत्रानुसार अथर्ववेद के १४ वर्ण्य - विषय - १.यज्ञानुष्ठान एवं संस्कार २.पौष्टिक कर्म ३. अनिष्टनिवारण एवं शान्तिकर्म ४. समृद्धि ५. राजव्यवस्था, ६. अभ्युदय एवं अभीष्टसिद्धि ७. शिक्षा ८. सांमनस्य- ऐक्य भाव ९. भैषज्य १०. आभिचारिक प्रयोग ११. स्त्रीकल्याण १२. गृह-सज्जा १३. प्रायश्चित्त विधान १४. भविष्य कथन।कालान्तर में इन वर्ण्य-विषयों की और विशद विवेचना प्रस्तुत की गई। उस आधार पर अथर्व के उक्त १४ विषय बढ़कर २९ हो गये, जो इस प्रकार हैं -

१. पाक यज्ञ २. मेधाजनन प्रयोग ३. ब्रह्मचर्यसिद्धि ४. ग्राम नगर संवर्द्धन ५. पुत्र-कलत्र, प्रजा-पशु आदि की समृद्धि ६. सामंजस्य-ऐक्यभाव ७. राजकर्म ८. शत्रुसादन ९. संग्राम विजय १०. शस्त्र परिहरण ११. सैन्य- स्तम्भन १२. सैन्य-परिरक्षण १३. जय-पराजय विचार १४. सेनापत्यादिक कर्म, १५. सैन्य भेदनीति, १६. राजा की पुनः स्थापना १७. प्रायश्चित्त कर्म १८. कृषि आदि संवर्द्धन १९. गृहस्थ अभ्युदय २०. भैषज्य कर्म २१. संस्कार २२. सभा-जय साधन २३. वृष्टि - प्रयोग २४. अभ्युदय कर्म २५. वाणिज्य-कर्म २६. ऋण विमोचन २७. अभिचार निवारण २८. आयुष्य कर्म २९. यज्ञानुष्ठान।

अथर्ववेद के ये प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं। इनके भी कई अवान्तर भेद-उपभेद हो सकते हैं, जिनकी संख्या बहुत हो सकती है, इन्हें देखकर निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि यह वेद जीवन को समग्रता से जीने, बाधाओं को निरस्त करने एवं सुख-शांतिमय प्रगतिशील जीवन के सूत्रों की कुञ्जियाँ, अपने आप में सँजोये हुए हैं।

ऋषि, देवता, छन्द

वेदार्थों को खोलने में ऋषि, देवता एवं छन्दों की अवधारणा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अथर्ववेद के ऋषि, देवता एवं छंदों की विशिष्टता पर एक दृष्टि डाल लेना उपयुक्त होगा।

ऋषि - अथर्ववेद के अधिकांश सूक्तों के ऋषि 'अथर्वा' (अविचल प्रज्ञायुक्त - स्थिरप्रज्ञ) ऋषि हैं। अन्य अनेक सूक्तों के ऋषियों के साथ भी अथर्वा का नाम संयुक्त है, जैसे अथर्वाचार्य, अथर्वाकृति, अथर्वाङ्गिरा, भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा आदि।अथर्ववेद के ऋषियों में बहुत से ऐसे नाम हैं, जो व्यक्तिवाचक नहीं, भाववाचक - अशरीरी लगते हैं, जैसे नारायण, ब्रह्मा, भुवन, भुवन-साधन, भर्ग, आयु, यक्ष्मानाश, सूर्या, सावित्री आदि।स्पष्ट है कि मन्त्रद्रष्टा (मंत्रों के प्रथम प्राप्तकर्ता) ने जिस चेतन धारा के साथ एकात्मता स्थापित करके मंत्र प्राप्त किए, उसी सचेतन दिव्य धारा को ऋषि माना, स्वयं को नहीं। उन्हें वे चेतन धाराएँ मूर्तिमान् व्यक्तित्वयुक्त प्रतीत होती रही होंगी।

देवता - अथर्ववेद में देवताओं की संख्या अन्य वेदों की अपेक्षा दोगुनी से भी अधिक है। यह इसलिए भी है, कि इसके वर्ण्य विषय बहुत अधिक हैं, जिसे लक्ष्य करके मंत्र कहा जाता है, उसे देवता कहते हैं। अत: उनका भाववाचक होना, तो आम बात है, किंतु अथर्ववेद में देवताओं के संबोधन कुछ विचित्रता लिए हुए हैं, जैसे अज (अजन्मा), मातृनामा, ईर्ष्योपनयन, यक्ष्मनाशन, कृत्यादूषण, कालात्मा, कामात्मा, शतौदनागौ, सप्त ऋषिगण, सभा आदि।

---

१. ये ऽ थर्वाणस्तद्भेषजम्। यदमृतं तद्ब्रह्म॥ (गो० ब्रा० १.३.४)

मन्त्रार्थों के संदर्भ में जहाँ देवताओं की अवधारणा स्पष्ट करने की आवश्यकता अनुभव की गयी है, वहाँ उनको स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ लगा दी गई हैं।

छन्द - अथर्ववेद में छन्दों की विविधता भी अन्य वेदों की अपेक्षा बहुत अधिक है। अनेक छन्द ऐसे हैं, जिनका उल्लेख छन्दः शास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थों में नहीं मिलता। कुछ छन्द ऐसे हैं, जिन्हें कई छन्दों को मिलाकर रचा गया है। संभवतः ऋषि को अपनी अभिव्यक्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक हो गया होगा। **कुन्ताप सूक्त** (काण्ड २० सू० १२९) में तो मन्त्रांश हैं और कहीं पर तो एक-एक शब्द के ही मंत्र हैं। उन्हें छन्दों की किसी स्थापित धारा में प्रायः नहीं लिया जा सकता, उनके अर्थों का बोध भी दुरूह है।

मंत्रार्थ की शैली

अथर्ववेद का सूत्र ग्रंथ 'कौशिक सूत्र' है। उसमें मंत्रों के विशिष्ट प्रयोगों का उल्लेख किया गया है। आचार्य सायण ने मंत्रों के अर्थ बहुधा कौशिक सूत्र में वर्णित उनके प्रयोगों के आधार पर किये हैं। आचार्य सायण की प्रतिभा एवं महत्ता को नमन करते हुए भी यह कहना पड़ता है कि मंत्रार्थ की यह शैली सटीक नहीं है। किसी मन्त्र का अर्थ अलग बात है तथा उसका उपयोग किसी विशिष्ट प्रक्रिया में किया जाना कुछ और ही बात है। जैसे- पुरुष सूक्त के मन्त्रों से षोडशोपचार पूजन करने की परम्परा है। सूक्त में वर्णित परमपुरुष परमात्मा की विराट् सत्ता का चिंतन करते हुए पूजन की क्रियाएँ सम्पन्न करना बिल्कुल ठीक है; किन्तु यदि विभिन्न मन्त्रों के अर्थ उनके साथ की जाने वाली क्रियाओं के अनुसार किया जायेगा, तो पुरुष सूक्त के साथ न्याय नहीं हो सकता। **'नाभ्याऽसीद् अन्तरिक्षं'** मंत्र का अर्थ नैवैद्य चढ़ाने की क्रियापरक कैसे हो सकता है? **'सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः'** मंत्र से परिक्रमापरक अर्थ कैसे निकलेगा ?

सभी लोग जानते हैं कि राष्ट्रीय-ध्वज फहराते ही सभी लोग सलामी देते हुए राष्ट्रगान गाते हैं। इस आधार पर यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रगान का अर्थ झण्डा फहराने तथा सलामी देने की क्रियापरक करने लगे, तो बात कैसे बनेगी ? झण्डे की सलामी की प्रक्रिया के साथ राष्ट्रगान गाने की परम्परा सही होते हुए भी, उसका अर्थ उस प्रक्रिया से अलग ही होगा। अस्तु, अथर्ववेद के मंत्रार्थ में कौशिक सूत्र में वर्णित प्रयोगपरक अर्थों की ओर जबरदस्ती मोड़ना उचित नहीं प्रतीत होता।

इसी प्रकार कुछ अर्वाचीन विद्वानों ने मंत्रों के अर्थ आग्रहपूर्वक आध्यात्मिक संदर्भ में ही किये हैं। कुछ मंत्र जो क्रियापरक हैं, उनके भी आध्यात्मिक अर्थ निकल तो आते हैं, किन्तु मन्त्रार्थों की स्वाभाविकता उससे खंडित होती है। प्रस्तुत भाषानुवाद में मंत्रों की स्वाभाविक धारा को बनाये रखकर, उनके अर्थ करने का प्रयास किया गया है।

वेदमंत्र अनेकार्थक तो होते ही हैं। आलंकारिक ढंग से, किन्हीं स्थूल वस्तुओं या प्रक्रियाओं के हवाले से गूढ़ रहस्यों को समझाना ऋषियों की विशेषता रही है। द्रष्टाओं के उदाहरण को भी ठीक से समझ पाना बड़ा कठिन होता है। उन्हें भाष्य- शैली में स्पष्ट करना भी कठिन होता है, भाषार्थ शैली में तो यह कार्य और भी दुरूह हो जाता है। फिर भी यथास्थान टिप्पणियों द्वारा उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, ताकि अध्येताओं को उन काव्यात्मक अलंकारों के भाव समझने में सुविधा हो इसे वेदभगवान् की कृपा ही कहा जा सकता है॥

मणि- अनेक प्रकार की मणियों का प्रयोग तथा उनकी महत्ता अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में वर्णित है। मणि को तैयार करने, प्राप्त करने तथा धारण करने के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। मणि सम्बोधन वेद में व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वनस्पतियों एवं ओषधियों से निर्मित मणियों का भी उल्लेख है। उन्हें मंत्रशक्ति से अनुप्राणित भी किया जाता है; किन्तु कुछ मणियों को तो दिव्य गुणों-दिव्य शक्तियों के रूप में ही मानना पड़ता है। यह परम्परा भारतीय वाङ्मय में रही भी है। जैसे रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है -

'रामनाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार' तथा **'मंत्र महामणि विषय ब्याल के.... '**

उक्त पदों में रामनाम एवं मंत्रादि को मणि कहा गया है । अथर्ववेद में भी स्राक्त्यमणि (८.५.३) एवं त्रिसंध्या मणि आदि संबोधन ऐसी ही शक्ति बीजरूप मणियों के लिए प्रयुक्त प्रतीत होते हैं । मणि प्रसंगों में संदर्भानुसार उनके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मंत्रार्थ खोलने का प्रयास किया गया है ।

मातृनामा–मातृनामा का उल्लेख सूक्त ४.२० के ऋषि एवं देवता के रूप में किया गया है । कुछ आचार्यों ने इस सम्बोधन को मंत्रों में वर्णित त्रिसन्ध्या एवं सदम्पुष्पा मणियों से जोड़ा है । हितकारिणी ओषधियों को मातृनामा (माता जैसे- प्रभावशाली) कहना उचित है । फिर भी विभिन्न मंत्रों में उनके प्रभाव के विवरण के आधार पर उन्हें मातृसत्तात्मक दिव्य प्रवाह ही मानना युक्तिसंगत लगता है । इस अवधारणा के आधार पर मंत्रार्थ स्वाभाविक रूप में सिद्ध हो जाते हैं ।

कृत्यादूषण – अनेक सूक्तों के देवता के रूप में यह सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है । कृत्यादूषण - 'कृत्या' अथवा उसके प्रभाव को नष्ट करने के प्रयोग अनेक स्थानों पर आये हैं । 'कृत्य' का अर्थ होता है, करने योग्य क्रिया और कृत्या दूषण का अर्थ हुआ किये हुए की प्रतिक्रिया ।इस आशय से 'कृत्या' का प्रयोग भले-बुरे दोनों अर्थों में किया जा सकता है, किन्तु 'कृत्या' शब्द का प्रयोग किसी हानिकारक मारक शक्ति के रूप में ही किया जाता रहा है । शत्रुनाश के लिए 'कृत्या' प्रयोग तो निश्चित रूप से 'मारक' संकल्प के साथ किये गये कार्यों के वाञ्छित प्रतिफलों के साथ कुछ अवाञ्छित फल भी निकल पड़ते हैं, उन्हें भी 'कृत्या' कह सकते हैं । जैसे- समुद्र मन्थन रत्नों की प्राप्ति के संकल्प के साथ किया गया था; किन्तु उससे हलाहल विष भी निकल पड़ा, अच्छे उत्पादन के प्रयास में फैक्ट्रियों से प्रदूषण भी निकल पड़ता है । मनुष्य में कर्म संकल्प एवं कर्मशक्ति के विकास के लिए काया, इन्द्रियाँ तथा कामनाएँ आवश्यक हैं । उनके इष्ट प्रयोगों के साथ अनिष्ट प्रयोग भी होने लगते हैं, उन्हें भी 'कृत्या' कह सकते हैं । प्रजनन द्वारा सृष्टि कार्य आगे बढ़ाने के लिए प्रदत्त कामशक्ति, कामवासना बनकर अनिष्टकारी बन जाती है, उसे भी 'कृत्या' कह सकते हैं । इस प्रकार कृत्या के स्थूल-सूक्ष्म अगणित स्वरूप सिद्ध हो सकते हैं । किसी उपजी 'कृत्या' अथवा 'कृत्यादूषण' का शमन आवश्यक हो जाता है । वेद द्वारा कृत्या निवारण को इसी प्रकार के व्यापक संदर्भ में लेने से वेदमंत्रों के अर्थ भली प्रकार प्रकट हो सकते हैं । किसी एक परम्परा में प्रयुक्त प्रयोगों तक उसे सीमाबद्ध करना उचित नहीं लगता, अस्तु, प्रस्तुत वेदार्थ में परम्परा के साथ व्यापक प्रयोगों को समाहित रखने का प्रयास किया गया है ।

ब्रह्मजाया– अथर्व० ५.१७ में देवता ब्रह्मजाया का वर्णन है । जाया का सीधा अर्थ पत्नी होता है । ब्रह्म की पत्नी अथवा ब्राह्मण की पत्नी के संदर्भ से संगति ठीक-ठीक बैठती नहीं । उसे **'ब्रह्मविद्या'** के संदर्भ में लेने से मंत्रार्थों की गरिमा तथा परम्परागत अर्थ दोनों की संगति ठीक बैठ जाती है ।

ब्रह्मगवी : – सूक्त ५.१८ के देवता रूप में वर्णित ब्रह्मगवी का अर्थ ब्राह्मण की गाय अधिकांश विद्वान् करते हैं । गौ माता के प्रति श्रद्धा तथा उनकी महत्ता बढ़ाने के लिए मंत्रों में वर्णित असामान्य प्रभावों को 'गौ' से जोड़ना उचित भी है; किन्तु मन्त्रों के भाव इस अर्थ के साथ ठीक प्रकार सिद्ध नहीं होते । ब्राह्मण की गाय जो उसको पोषण देती है, वह उसकी निष्ठा- प्रवृत्ति है । इसलिए **'ब्रह्मगवी'** का अर्थ **'ब्रह्म वृत्ति'** लेने से ही बात बनती है ।इसी प्रकार 'शतौदना' गौ, वशा गौ, स्कम्भ आदि के बारे में व्यापक पूर्वाग्रहमुक्त होकर ही अर्थ करने पड़े हैं , अध्येताओं को उनसे तुष्टि के साथ नयी दृष्टि भी मिल सकेगी, ऐसी आशा है ।मंत्रों के बीच-बीच में भी आलंकारिक प्रयोगों को टिप्पणियों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । जैसे अथर्व० ४.७.३ में रोगी को परामर्श दिया गया है कि भूख के अनुसार करंभ (औषधियुक्त खाद्य का मिश्रण) खाने और पीवपाक (चर्बी पकाने) विधि का प्रयोग तुम्हे विष प्रभाव से बचा लेगा ।यहाँ चर्बी पकाने की विधि का यह स्पष्टीकरण आवश्यक है- अन्यथा कोई नासमझ चर्बी पकाकर उसका करंभ (मिश्रण) बनाकर शारीरिक विषों से मुक्ति चाह सकता है । पाद टिप्पणी में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि भरपूर श्रम, जिससे शरीर की चर्बी गलने लगे, ऐसे प्रयोग को 'पीवपाक' कहा जाना युक्तिसंगत है । स्थान-स्थान पर ऐसे स्पष्टीकरण देने वाली टिप्पणियों का संतुलित प्रयोग किया गया है ।

कुछ रहस्यात्मक प्रसंग

वेद यों तो सारे के सारे गूढ़ हैं, उनके मर्म को समझना कठिन है, फिर भी उनकी भाषा के आधार पर उनके भावों को कुछ अंशों तक समझ लिया जाता है; किन्तु अथर्व में ऐसे अनेक रहस्यात्मक प्रकरण हैं, जिनको न समझ पाने के कारण भ्रम उत्पन्न होते हैं।

जादू टोने का भ्रम - अथर्ववेद में बाधाओं से बचने तथा दुष्टों के दमन के क्रम में अनेक रहस्यात्मक प्रयोगों का उल्लेख है। कुछ विदेशी विद्वान् इस आधार पर इसमें जादू - टोना होने का आरोप लगाते हैं, कुछ लोग इसे दूसरों को हानि पहुँचाने की हीन- विधाओं का समर्थक कहते हैं, किन्तु विवेकपूर्ण समीक्षा से ऐसे सब आरोप निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं।

सब जानते हैं, कि संसार में भले-बुरे सभी तरह के लोग भी हैं तथा अच्छे-बुरे सभी तरह के स्थूल-सूक्ष्म प्रवाह भी हैं। स्वयं को सदाचारी बनाकर नीतिनिष्ठ तथा समर्थ बनाना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है, दुष्टवृत्तियों-दुष्प्रयासों से अपने आप को बचाना। इसके लिए आत्मरक्षा के उपायों के साथ-साथ कभी-कभी आक्रामक रुख बनाना पड़ता है। रोग से बचने के साथ-साथ रोग पर मारक आक्रमण भी करने पड़ते हैं। दुरुपयोग से तो बुद्धि भी कुचक्र रचने वाली बन जाती है और सदुपयोग करने से घृणा भी दोषों से बचा लेती है। अस्तु, विकारों तथा विकृत प्रक्रियाओं को नष्ट करने के प्रयासों को हीन प्रक्रिया नहीं कहा जा सकता। उस विद्या का भी विवेकपूर्ण उपयोग समय-समय पर अत्यंत आवश्यक हो जाता है। जादू तो हमारे अज्ञान का परिचायक है। लोग विज्ञान के तथा हाथ की सफाई के तमाम कौशल दिखाते हैं। समझने वालों के लिए वे कौशल, सुनिश्चित प्रक्रियाएँ हैं और न समझ पाने वालों के लिए जादू हैं।

यदि किसी ने **'इलैक्ट्रोस्टेट'** मशीन न देखी हो और कोई जानकार उसे समझाए कि यहाँ से सादा कागज डालो - उधर से छपा हुआ निकाल लो, तो अनजान व्यक्ति यही कहेगा कि जादूगरी करके हमें बहका रहा है; किन्तु सत्य तो सत्य है, जो उसे जानता है, वह तो व्यक्त करने का प्रयास करेगा ही। वेद में ऋषियों ने अपनी सांकेतिक भाषा में (जो उस समय सहज ग्राह्य रही होगी) उपयोगी बातें बतलायी हैं। हमारी बुद्धि जितना समझ पाए, उसका लाभ उठाए; किन्तु जो बातें हम समझ नहीं पाते, उन्हें किन्हीं हीन परिकल्पनाओं से जोड़ना उचित नहीं। दूसरी बात यह है कि जादू शब्द हमेशा बुरे अर्थों में ही प्रयुक्त नहीं होता। यदि कोई बालक या व्यक्ति किसी भी प्रकार कोई उचित बात समझ नहीं रहा है, ऐसे में कोई मनोवैज्ञानिक मेधा- सम्पन्न व्यक्ति उसे सहमत कर ले, तो लोग हर्षित होकर कह उठते हैं वाह ! इसने तो जादू कर दिया। माँ का - संतों का अपनत्व भरा व्यवहार ऐसे जादू करता ही रहता है। उपचार पद्धतियों में आज भी अनेक प्रक्रियाएँ जादू जैसी लगती हैं। होम्योपैथी में रसायन विज्ञान (कैमिस्ट्री) के हिसाब से देखें, तो १००० शक्ति (पौटैन्सी) की दवा में एक घन सेन्टीमीटर द्रव में मुश्किल से ओषधि का एक कण (मालीक्यूल) आता है। उस द्रव की छोटी बूँद में तो दवा कुछ भी नहीं रह जाती, फिर वह असर कैसे करती है ? यह बात समझ में न आने से जादू जैसी लगे भले, किन्तु है तो एक सूक्ष्म विज्ञान के अनुशासन में ही। इसी प्रकार एक्सरे, इंफ्रारैड, अल्ट्रा वायलेट एवं लेसर किरणों से किया जाने वाला उपचार अज्ञानियों को जादू जैसा लगे भले ही, किन्तु है तो वह विज्ञान सम्मत प्रक्रिया ही।

वेदकाल में ऐसी सूक्ष्म चिकित्साओं की श्रेणी में प्राण तथा मन्त्र की सूक्ष्म धाराओं का प्रयोग सहज ही किया जाता रहा है। वे शक्तियाँ पवित्र जीवन जीने वाले, प्रकृति के संसर्ग में रहने वाले तपस्वी स्तर के व्यक्तियों को सहज उपलब्ध रहती थीं। अत: वे ओषधियों, मणियों आदि के साथ उन सूक्ष्म धाराओं को संयुक्त करके उपचार किया करते थे। आज वह प्रक्रिया हमारे लिए दुरूह हो गयी है, तो भी उसे नकारा नहीं जा सकता। अथर्ववेद में ऐसे प्रसंग भी पर्याप्त हैं। मन्त्रार्थों में ऐसे प्रसंगों को चेतना विज्ञान की ऐसी धाराएँ मानकर चला गया है, जो फिलहाल स्पष्ट नहीं हो पायी हैं।

दुर्बोध शब्दावली - अथर्ववेद में अनेक ऐसे मन्त्र हैं, जिनके अर्थ एवं उद्देश्य तो सहज ही स्पष्ट हो जाते हैं, किन्तु उनमें जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनके अर्थ खोजे नहीं मिलते। निरुक्तकार यास्क भी

इन सूक्तों में गेय पद वाले मंत्रों से लेकर एक-एक शब्द वाले मन्त्र तक हैं। जैसे - प्ररित्रय: (१२९.८) पृदाकव: (१२९.९), पाकबलि:, शाकबलि: (१३१.१५-१६) आदि।

भारत की ऋषि-परम्परा में यह कोई अनहोनी बात नहीं है। तत्त्वदर्शी ऋषियों ने तो उच्चारण एवं भावना या संकल्पशक्ति के संयोग से कार्य करने वाले एकाक्षर मंत्र (ह्रीं, श्रीं, क्लीं, हुं आदि) भी रचे हैं, तो एक शाब्दिक मंत्रों को अटपटा क्यों मानें ? एकाक्षर मंत्रों की तरह इनके भी प्रयोग हो सकते हैं; किन्तु शब्द में अर्थात्मक सूत्र भी सन्निहित होते हैं, उन्हें खोलने में कठिनाई होना स्वाभाविक है, फिर भी देशकाल की आवश्यकता के अनुरूप वेद मंत्रों ने अपना जितना स्वरूप खोला है, उतने को भावानुरूप भाषा देने का प्रयास किया गया है। सभी वेदों की तरह अथर्ववेद में भी पदार्थ विज्ञान, मनोविज्ञान एवं चेतना विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को सांकेतिक विधि से व्यक्त किया गया है। आशा है इस प्रयास से जनसामान्य को वेदज्ञान का लाभ उठाने तथा गहन अध्येताओं को शोध के नये आयाम प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। सभी को वेदों की सांस्कृतिक गरिमा तथा उपयोगिता का बोध हो सकेगा।

गायत्री तपोभूमि से वेदों के प्रथम सर्वसुलभ संस्करण प्रकाशित करते समय पू० गुरुदेव ने इच्छा व्यक्त की थी कि समय आने पर विशिष्ट टिप्पणियों सहित वेदों के नये संस्करण छापेंगे। उसके लिए वे ऐसे सूत्र बनाकर दे गये थे, जिनके आधार पर इस कार्य का सम्पन्न होना संभव हुआ। वे शरीर के बंधनों में आबद्ध रहकर भी सहस्रों बुद्धियों तथा हाथों से कार्य लेते रहे, उन बन्धनों से मुक्त होकर तो उनकी वह शक्ति और भी प्रखर हो उठी। उन्होंने मानों हाथ पकड़ कर यह सब करा लिया। 'नेति-नेति' कहे जाने वाले तत्त्व को उन्होंने किस मर्यादा के अनुसार कितना खोला, यह तो वे ही जानें, किन्तु पंचभूतों की यह काया अपनी आयु समाप्त होने के पूर्व उनकी कठपुतली के रूप में अपनी यह भूमिका भी निभा पायी, इसका संतोष अवश्य है।

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

— भगवती देवी शर्मा

उस संदर्भ में मौन हैं।ताबुव एवं तस्तुव के सर्प-विषनाश की बात बहुत स्पष्टता से कही गयी है, किन्तु ये क्या हैं ? अब तक किसी व्याख्याकार की समझ में नहीं आया। इसी प्रकार के कुछ शब्द हैं - खृगल, विशफ, काबव, कर्शफ आदि।ओषधि प्रयोगों में अनेक ऐसी ओषधियों का वर्णन किया गया है, जिनका उल्लेख किसी भैषज्यग्रंथ में नहीं मिलता, जैसे अरंघुष, अरुन्धती, उपजीका, अश्ववार आदि। मणियों के संदर्भ में भी जंगिड़ मणि, प्रतिसरमणि अस्तृतमणि की भावात्मक व्याख्या करके ही चुप रह जाना पड़ता है। आलंकारिक, सांकेतिक शब्दावली जैसे - कोकयातु (चक्रवाक पक्षी जैसी कामवृत्ति), सुर्पायातु (गरुड़ जैसा दर्प), श्वयातु (कुत्ते की तरह जातिद्रोह) आदि को यथा स्थान स्पष्ट किया गया है।

अथर्ववेद २०वें काण्ड के सूक्त क्र० १२७ से क्र० १३६ तक के सूक्तों को **कुन्ताप सूक्त** कहते हैं। कुछ विद्वान् इन्हें 'खिल' (प्रक्षिप्त) मानते हैं; किन्तु कालान्तर में इन्हें संहिता का ही अंग स्वीकार कर लिया गया है। आचार्य सायण के भाष्य में इन सूक्तों पर भाष्य प्राप्त नहीं है, अथर्ववेद के ही कुछ अन्य सूक्तों पर भी उनके भाष्य प्राप्त नहीं हैं। हो सकता है कि उनके भाष्य के कुछ अंश काल- प्रभाव से नष्ट हो गये हों ?जो भी हो, किन्तु अब वे सभी मान्यता प्राप्त संहिताओं में हैं तथा अध्येताओं-विद्वानों के लिए चुनौती भरे आकर्षण बने हुए हैं। सभी ने उन्हें दुरूह-दुर्बोध माना है।गोपथ ब्राह्मण, उत्तरभाग, प्रपाठक ६, कण्डिका १२.४ में कुन्ताप का अर्थ **'कुयान् तप्यन्ते'** कुत्सित- निन्दित (पापों) को तापित (तपाकर भस्म) करने वाला बतलाया गया है। इससे यज्ञानुष्ठान कर्त्ता के पापों को भस्म किया जाता है।वैतान सूत्र (६.२) के अनुसार इसका प्रयोग सोमयागों के छठवें दिन 'पृष्ठ्य' स्तुतियों के रूप में किया गया है। सूत्रकार ने इस सूक्त समुच्चय के सूक्तों को इस प्रकार अलग-अलग विभागों में विभक्त किया है - सू० क्र० १२७-२८ कुन्ताप; सू० क्र० १२९,३०,३१,३२ एतश, सू० क्र० १३३प्रवह्लिका, सू० क्र० १३४ प्रतिराधा, सू० क्र० १३५ अतिवाद तथा सू० क्र० १३६ आहनस्य कहे गये हैं।

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ।।

जो साधक प्राण (गय) से उत्तर (आगे) स्थित

अमृत-प्रवाह को प्राप्त करके गायत्री

महाविद्या में गतिशील होते हैं,

जो साम (आत्मतत्त्व) से, साम (परमात्मतत्त्व)

को जानते हैं, वे ही जानते हैं कि अज

(अजन्मा-परमात्मा का) कहाँ

प्रत्यक्ष (साक्षात्कार)

होता है ।।

(अथर्व० १०. ८. ४१)

ॐ

अथर्ववेद-संहिता

॥अथ प्रथमं काण्डम्॥

[१- मेधाजनन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - वाचस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप् . ४ चतुष्पदा विराट् उरोबृहती ।]

इस सूक्त के देवता वाचस्पति हैं । वाक् - शक्ति से अभिव्यक्ति होती है । परब्रह्म में तो अव्यक्तरूप में सभी कुछ समाहित रहता ही है; किन्तु जब तह अव्यक्त को अभिव्यक्त करता है, तो उसे वाचस्पति कहना युक्तिसंगत है । जिसने इस विश्व को व्यक्त-प्रकट किया, उसी से किसी विशिष्ट उपलब्धि के लिए प्रार्थना किया जाना उचित है-

१. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१ ॥

ये जो त्रिसप्त (तीन एवं सात के संयोग) विश्व के सभी रूपों को धारण करके सब ओर संव्याप्त-गतिशील हैं, हे वाचस्पते ! आप उनके शरीरस्थ बल को आज हमें प्रदान करें ॥१ ॥

['त्रिसप्त' का अर्थ अधिकांश भाष्यकारों ने ३ x ७ = २१ किया है; किन्तु ऋषि का भाव इससे कहीं अधिक व्यापक प्रतीत होता है । गणित के अनुसार त्रिसप्त की अभिव्यक्ति इतने प्रकार से हो सकती है- ३ + ७ = १०, ३ x ७ = २१, $७^३$ = ३४३, $३^७$ ७२९ तथा ३ L ७ = ३ (७ x ६ x ५ x ४ x ३ x २ x १) = १५१२० आदि । फिर ऋषि ने त्रिसप्त को एक ही शब्द के रूप में लिखा है, इसलिए उसका भाव यह बनता है कि जितने भी त्रिसप्त हैं ..... । इस आधार पर 'त्रिधा' सृष्टि में तीन लोक, तीन गुण, तीन आयाम, त्रिदेव आदि सभी आते हैं । इसके साथ सप्त आवरण, सप्तधातु, सप्त व्याहृतियाँ, परमाणु के सात प्रकोष्ठ (आर्बिट) आदि आ जाते हैं । इनमें से सभी के योग-भेद (पर्मुटेशन कॉम्बीनेशन) अनन्त बन जाते हैं । उन्हें केवल प्रकटकर्त्ता वाचस्पति ही भली प्रकार जानते हैं । हमें विश्व में रहते हुए इन सभी के साथ समुचित बर्ताव करना होगा, इसलिए वाचस्पति से प्रार्थना की गई है कि उन सबके व्यक्त स्थूल-सूक्ष्म संयोगों के बल हमें भी प्रदान करें ।]

२. पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२ ॥

हे वाचस्पते ! आप दिव्य (प्रकाशित) ज्ञान से युक्त होकर, बारम्बार हमारे सम्मुख आएँ । हे वसोष्पते ! आप हमें प्रफुल्लित करें । प्राप्त ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥२ ॥

[यहाँ वाचस्पति (अभिव्यक्त करने वाले) से प्राप्ति की तथा वसोष्पति (आवास प्रदान करने वाले) से प्राप्त को धारण-स्थिर करने की प्रार्थना की गई है । योग एवं क्षेम दोनों ही सधें- ऐसी प्रार्थना है ।]

३. इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३ ॥

हे देव ! धनुष की चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा से खिंचे हुए दोनों छोरों के समान दैवी ज्ञान धारण करने में समर्थ, मेधा बुद्धि एवं वांछित साधन-सामग्री आप हमें प्रदान करें । प्राप्त बुद्धि और वैभव हममें पूरी तरह स्थिर रहें ॥३ ॥

[ज्ञान की प्राप्ति और धारण करने की सामर्थ्य- यह दो क्षमताएँ धनुष के दो सिरों की तरह हैं । एक साथ प्रयासपूर्वक बल लगाकर बाण की तरह, ज्ञान का वांछित प्रयोग किया जा सकता है ।]

**४. उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४ ॥**

हे वाक्पते ! आप हमें अपने पास बुलाएँ । इस निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । हमें सदैव आपका सान्निध्य प्राप्त हो । हम कभी भी ज्ञान से विमुख न हों ॥४ ॥

[दिव्य ज्ञान की प्राप्ति केवल अपने पुरुषार्थ से नहीं हो पाती । अपने पुरुषार्थ से हम आवेदन करते हैं, पात्रता प्रकट करते हैं, तो दिव्य सत्ता द्वारा दिव्य ज्ञान प्रदान कर दिया जाता है ।]

[२- रोग-उपशमन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** चन्द्रमा और पर्जन्य । **छन्द -** अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराट् गायत्री ।]

इस सूक्त के देवता पर्जन्य हैं। पर्जन्य का सामान्य अर्थ 'वर्षति-सिञ्चति' के आधार पर वर्षा किया गया है; किन्तु उसे स्थूल वर्षा तक सीमित नहीं रखा जा सकता। 'पृषु-सेचने' (शब्द कल्पद्रुम) के अनुसार वह पोषणकर्त्ता भी है। निरुक्त में पर्जन्य "परः प्रकृष्टो जेता जनयिता वा" (परमशक्ति सम्पन्न जयशील या उत्पन्नकर्त्ता) कहा गया है।अस्तु, अनन्त आकाश के विभिन्न स्रोतों से बरसने वाले पोषक एवं उत्पादक स्थूल एवं सूक्ष्म प्रवाहों को पर्जन्य मानना युक्ति संगत है। वर्तमान विज्ञान भी यह मानता है कि सूक्ष्म कणों (सब पार्टिकल्स) के रूप में कुछ उदासीन (इनर्ट) तथा कुछ उत्पादक प्रकृति (जेनेटिक कैरेक्टर) वाले कण प्रवाहित होते रहते हैं। ऐसे प्रवाहों को पर्जन्य मानकर चलने से वेदार्थ का मर्म समझने में सुविधा रहेगी।

इस सूक्त में ऋषि ने धनुष से छुटने वाले विजयशील शर (बाण) के उदाहरण से जीवनतत्त्व के गूढ़ रहस्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अनेकार्थी पदों-मंत्रों के भाव प्रकट करते हुए मंत्रार्थ एवं टिप्पणी करने का प्रयास किया गया है –

५. विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्। विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१

अनेक प्रकार से (चराचर) धारक एवं पोषक पर्जन्य को हम इस 'शर' के पिता के रूप में जानते हैं । अनेक प्रकार के स्वरूप देने वाली पृथ्वी को भी हम भली प्रकार जानते हैं ॥१ ॥

[यहाँ 'शर' का अर्थ सरकण्डा तदर्थ बाण के रूप में सहज ग्राह्य है; किन्तु पृथ्वी से जो अंकुर निकलता है, उसे भी 'शर' कहते हैं। पृथ्वी पर जीवन के उद्भव का वह प्रथम प्रतीक है, उसी पर प्राणिमात्र का जीवन निर्भर करता है। बाण के रूप में या जीवन तत्त्व के रूप में उसकी उत्पत्ति, पिता पर्जन्य के सेचन से तथा माता पृथ्वी के गर्भ से होती है। यह जीवन तत्त्व ही समस्त बाधाओं एवं रोगादि को जीतने में, जीवन लक्ष्यों को बेधने में समर्थ होता है, इसीलिए उसकी उपमा शर से देना युक्ति संगत है।]

जीवन-संग्राम में विजय के लिए प्रयुक्त 'शर' (जीवन तत्त्व) किस धनुष से छोड़ा जाता है, उसका सुन्दर अलंकरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। उस धनुष की एक कोटि (छोर) माता पृथ्वी है तथा दूसरी (छोर) पिता पर्जन्य हैं। 'ज्या' (प्रत्यञ्चा) उन दोनों को खींचकर उनकी शक्ति संप्रेषित करती है। 'ज्या' का अर्थ जन्मदात्री भी होता है। आकाशस्थ पर्जन्य एवं पृथ्वी की शक्ति के संयोग से जीवन तत्त्व का संचरण करने वाली सृजनशील प्रकृति इस धनुष की प्रत्यञ्चा-'ज्या' है। उसे लक्ष्य करके ऋषि कहते हैं-

६. ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि। वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२ ॥

हे ज्याके (जन्मदात्री) ! आप हमारे शरीरों को चट्टान की तरह सुदृढ़ता एवं शक्ति प्रदान करें । शत्रुओं (दोषों) को शक्तिहीन बनाकर हमसे दूर करें ॥२ ॥

**७. वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्।
शरुमस्मद् यावय दिद्युमिन्द्र ॥३ ॥**

जिस प्रकार वृक्ष (विश्ववृक्ष या पूर्वोक्त धनुष) से संयुक्त गौएँ (ज्या, मंत्रवाणियाँ, इन्द्रियाँ) तेजस्वी 'शर' (जीवनतत्त्व) को स्फूर्ति प्रदान करती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र (इस प्रक्रिया के संगठक) ! आप इस तेजोयुक्त शर को आगे बढ़ाएँ-गतिशील बनाएँ ॥३ ॥

८. यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

द्युलोक एवं पृथ्वी के मध्य स्थित तेज की भाँति यह मुञ्ज (मुक्तिदाता या शोधक जीवन-तत्त्व) सभी स्त्रावों (सृजित, प्रवाहित) रसों एवं रोगों के बीच प्रतिष्ठित रहे ॥४॥

[शरीर या प्रकृति के समस्त स्त्रावों को यह जीवनतत्त्व रोगों की ओर न जाने दे। रोगों के शमन में उसका उपयोग करे।]

[३- मूत्र मोचन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ पर्जन्य, २ मित्र, ३ वरुण, ४ चन्द्र, ५ सूर्य । **छन्द** - अनुष्टुप्, १-५ पथ्यापंक्ति ।]

इस सूक्त में पर्जन्य के अतिरिक्त मित्र, वरुण, चन्द्र एवं सूर्य को भी 'शर' का पिता कहा गया है। पूर्व सूक्तों में किये गये विवेचन के अनुसार पर्जन्य (उत्पादक सूक्ष्म प्रवाह) इन सभी के माध्यम से बरसता है। पूर्व मंत्रों में कहे गये 'शर' के पिता का व्यापक रूप मंत्र १ से ५ तक प्रकट किया गया प्रतीत होता है। इन सभी को शतवृष्ण- सैकड़ों (अनन्त) प्रकार से बरसने वाला अथवा अनन्त बल सम्पन्न कहा गया है-

९. विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥१॥

(ऋषि कहते हैं) इस शरीर के जनक शतवृष्ण पर्जन्य से हम भली-भाँति परिचित हैं। उससे तुम्हारे (शर की) कल्याण की कामना है। उनसे तुम्हारा विशेष सेचन हो और शत्रु (विकार) बाहर निकल जाएँ ॥१॥

१०. विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥२॥

अनन्त बलशाली मित्रदेव (प्राण वायु) को, जो 'शर' का पिता है, हम जानते हैं। उससे तुम्हारे कल्याण का उपक्रम शमन करते हैं। उससे तुम्हारा सेचन हो और विकार बाहर निकल जाएँ ॥२॥

११. विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥३॥

'शर' के पालक सशक्त वरुणदेव को हम जानते हैं। उससे तुम्हारे शरीर का कल्याण हो। तुम्हें विशेष पोषण प्राप्त हो तथा विकार बाहर निकल जाएँ ॥३॥

१२. विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥४॥

हम शर के पिता आह्लादक चन्द्रदेव को जानते हैं, उनसे तुम्हारा कल्याण हो, विशेष पोषण प्राप्त हो और दोष बाहर निकल जाएँ ॥४॥

१३. विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥५॥

हम जानते हैं कि विशेष शक्ति-सम्पन्न पवित्रतादायक सूर्य 'शर' के पालक हैं, वे तुम्हारा कल्याण करें। उनसे तुम्हें विशिष्ट पोषण प्राप्त हो तथा विकार बाहर निकल जाएँ ॥५॥

मंत्र क्र० ६ से ९ में विशिष्ट उपचार द्वारा शरीरस्थ मूत्र- विकारों को बाहर निकालने का कथन है। स्थूल दृष्टि से 'शर' शलाका प्रयोग से मूत्र निकालने की प्रक्रिया पुराने समय से अब तक के उपचार क्रम में मान्य है; किन्तु शर को व्यापक अर्थों में लेने से जीवनी शक्ति के जनक दिव्य प्रवाहों के विशिष्ट प्रयोग से शरीरस्थ विकारों को बलात् बाहर निकाल देने का आशय भी

प्रकट होता है। शरीरस्थ जीवनी-शक्ति (वाइटल फोर्स) ही पोषण देने तथा विकारों से मुक्ति दिलाने में प्रमुख भूमिका निभाती है। इस मत को सभी उपचार पद्धतियाँ स्वीकार करती हैं-

१४. यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम्। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥

मूत्र वाहिनी नाड़ियों,मूत्राशय एवं आँतों में स्थित दूषित जल (मूत्र) इस चिकित्सा से पूरा का पूरा, वेग के साथ शब्द करता हुआ शरीर से बाहर हो जाए ॥६ ॥

१५. प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥

'शर' (शलाका) से मूत्र मार्ग को खोल देते हैं। बन्ध टूट जाने से जिस प्रकार जलाशय का जल शीघ्रता से बाहर निकलता है, उसी प्रकार रोगी के उदरस्थ समस्त विकार वेगपूर्वक बाहर निकलें ॥७ ॥

१६. विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।

तेरे मूत्राशय का बिल (छिद्र) खोलते हैं। विकार युक्त जल (मूत्र) उसी प्रकार शब्द करता हुआ बाहर निकले, जिस प्रकार नदियों का जल उदधि में सहज ही बह जाता है ॥८ ॥

१७. यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥९

धनुष से छोड़े गए, तीव्र गति से बढ़ते हुए बाण की भाँति तेरा सम्पूर्ण मूत्र (विकार) वेगपूर्वक बाहर निकले ॥९ ॥

[४- अपांभेषज (जल चिकित्सा) सूक्त]

[**ऋषि** - सिन्धुद्वीप। **देवता** - अपांनपात्, सोम और आपः देवता। **छन्द** - गायत्री, ४ पुरस्ताद् बृहती।]

इस सूक्त के देवता आपः हैं। आपः का सामान्य अर्थ जल लिया जाता है; किन्तु शोध समीक्षा के आधार पर केवल जल ही मानने से अनेक मंत्रार्थ सिद्ध नहीं होते। जैसे-आपः को मन के समान गतिमान् कहा है, जल तो शब्द और प्रकाश की गति से भी नहीं बह सकता है। 'आपो वै सर्वा देवता' जैसे सूत्रों से भी यही भाव प्रकट होता है। मनुस्मृति १.८ के अनुसार ईश्वर ने अप् तत्त्व को सर्वप्रथम रचा। आपः यदि जल है, तो उसके पूर्व वायु और अग्नि की उत्पत्ति आवश्यक है, अन्यथा जल की संरचना सम्भव नहीं। अस्तु, आपः का अर्थ जल भी है; किन्तु उसे विद्वानों ने सृष्टि के मूलतत्त्व की क्रियाशील अवस्था माना है। अखण्ड ब्रह्म के संकल्प से मूलतत्त्व का क्रियाशील स्वरूप पहले प्रकट होता है, उससे ही पदार्थ रचना प्रारम्भ होती है। ऐसे किसी तत्त्व के सतत प्रवाहित होने की परिकल्पना (हाइपोथेसिस) पदार्थ विज्ञानी भी करते हैं। मंत्रार्थों के क्रम में आपः के इस स्वरूप को ध्यान में रखना उचित है-

१८. अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः॥१ ॥

माताओं-बहिनों की भाँति यज्ञ से उत्पन्न पोषक धाराएँ यज्ञ कर्त्ताओं के लिए पय (दूध या पानी) के साथ मधुर रस मिलाती हैं ॥१ ॥

१९. अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥२ ॥

सूर्य के सम्पर्क में आकर पवित्र हुआ वाष्पीकृत जल, उसकी शक्ति के साथ पर्जन्य-वर्षा के रूप में हमारे सत्कर्मों को बढ़ाए-यज्ञ को सफल बनाए ॥२ ॥

२०. अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥३ ॥

हम उस दिव्य 'आपः' प्रवाह की अभ्यर्थना करते हैं, जो सिन्धु (अन्तरिक्ष) के लिए हवि प्रदान करते हैं तथा जहाँ हमारी गौएँ (इन्द्रियाँ अथवा वाणियाँ) तृप्त होती हैं ॥३ ॥

२१. अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम्।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः॥४ ॥

जीवनी शक्ति, रोगनाशक एवं पुष्टिकारक आदि दैवी गुणों से युक्त आपः तत्त्व हमारे अश्वों व गौओं को वेग एवं बल प्रदान करे । हम बल-वैभव से सम्पन्न हों ॥४ ॥

[५- अपांभेषज (जल चिकित्सा) सूक्त]

[**ऋषि** - सिन्धुद्वीप । **देवता** - अपांनपात्, सोम और आपः देवता । **छन्द** - गायत्री, ४ वर्धमान गायत्री ।]

२२. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१ ॥

हे आपः ! आप प्राणिमात्र को सुख देने वाले हैं । सुखोपभोग एवं संसार में रमण करते हुए, हमें उत्तम दृष्टि की प्राप्ति हेतु पुष्ट करें ॥१ ॥

२३. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२ ॥

जिनका स्नेह उमड़ता ही रहता है, ऐसी माताओं की भाँति आप हमें अपने सबसे अधिक कल्याणप्रद रस में भागीदार बनाएँ ॥२ ॥

[दुर्गति का मुख्य कारण यह है कि हमारी रसानुभूति अहितकारी प्रवृत्तियों की ओर मुड़ जाती है, इसलिए जीवन का रस कल्याणोन्मुख रखने की प्रार्थना की गई है ।]

२४. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३ ॥

अन्नादि उत्पन्न कर प्राणिमात्र को पोषण देने वाले हे दिव्य प्रवाह ! हम आपका सान्निध्य पाना चाहते हैं । हमारी अधिकतम वृद्धि हो ॥३ ॥

२५. ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥४ ॥

व्याधि निवारक दिव्य गुण वाले जल का हम आवाहन करते हैं । वह हमें सुख-समृद्धि प्रदान करे । उस ओषधिरूप जल की हम प्रार्थना करते हैं ॥४ ॥

[६- अपांभेषज (जल चिकित्सा) सूक्त]

[**ऋषि** - सिन्धुद्वीप, कृति अथवा अथर्वा । **देवता** -अपांनपात्, सोम और आपः देवता । **छन्द** -गायत्री , ४ पथ्यापंक्ति ।]

२६. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१ ॥

दैवीगुणों से युक्त आपः (जल) हमारे लिए हर प्रकार से कल्याणकारी एवं प्रसन्नतादायक हो । वह आकांक्षाओं की पूर्ति करके आरोग्य प्रदान करे ॥१ ॥

२७. अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥२ ॥

सोम का हमारे लिए उपदेश है कि दिव्य आपः हर प्रकार से ओषधीय गुणों से युक्त है । उसमें कल्याणकारी अग्नि भी विद्यमान है ॥२ ॥

२८. आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥३ ॥

दीर्घकाल तक मैं सूर्य को देखूँ अर्थात् दीर्घ जीवन प्राप्त करूँ । हे आपः ! शरीर को आरोग्यवर्द्धक दिव्य ओषधियाँ प्रदान करो ॥३ ॥

२९. शं न आपो धन्वन्या३ः शमु सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥४ ॥

सूखे प्रान्त (रेगिस्तान) का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो । जलमय देश का जल हमें सुख प्रदान करे

भूमि से खोदकर निकाला गया कुएँ आदि का जल हमारे लिए सुखप्रद हो । पात्र में स्थित जल हमें शान्ति देने वाला हो । वर्षा से प्राप्त जल हमारे जीवन में सुख-शान्ति की वृष्टि करने वाला सिद्ध हो ॥४ ॥

[७- यातुधाननाशन सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - अग्नि, ३ अग्नीन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।]

३०. स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी वन्दना करते हैं । दुष्टता को बढ़ाने वाले शत्रुओं को, आप अपने प्रभाव से पास बुलाएं । हमारे द्वारा वन्दित आप उनकी बुराइयों को नष्ट कर दें ॥१ ॥

३१. आज्यस्य परमेष्ठिञ्जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२ ॥

उच्च पद पर आसीन, ज्ञान के पुञ्ज, जठराग्नि के रूप में शरीर का सन्तुलन बनाने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा स्रुवापात्र से तौली हुई (प्रदत्त) आज्याहुति को ग्रहण करें । हमारे स्नेह से प्रसन्न होकर आप दुष्ट-दुराचारियों को विलाप कराएँ अर्थात् उनका विनाश करें ॥२ ॥

३२. वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३ ॥

दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले, अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले समाज के शत्रुओं को अपना विनाश देखकर रुदन करने दें । हे अग्निदेव ! आप इन्द्र के साथ हमारे हविष्य को प्राप्त करें । हमें सत्कर्म की ओर प्रेरित करें ॥३ ॥

३३. अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४

पहले अग्निदेव (असुर विनाशन का कृत्य) प्रारम्भ करें, बलशाली इन्द्र प्रेरणा प्रदान करें । इन दोनों के प्रभाव से असुर स्वयं ही अपनी उपस्थिति स्वीकार करें (प्रायश्चित्त के लिए तैयार हो जाएँ) ॥४ ॥

३४. पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५ ॥

हे ज्ञान स्वरूप अग्निदेव ! आपका प्रकाशरूपी पराक्रम हम देखें । आप पथभ्रष्टों के मार्गदर्शक हैं, अपने प्रभाव से दुष्टों को (हमारे शत्रुओं को) सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें । आपकी आज्ञा से तप्त असुरता प्रायश्चित्त के लिए अपना परिचय देते हुए पास आए ॥५ ॥

३५. आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६ ॥

हे जातवेदः ! आप (शुभ यज्ञीय कर्मों का) प्रारम्भ करें । हे अग्निदेव ! आप हमारे प्रतिनिधि बनकर दुष्टजनों को अपने किये गये दुष्कर्मों पर रुलाएँ ॥६ ॥

३६. त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७ ॥

हे मार्गदर्शक अग्निदेव ! आप दुराचारियों को यहाँ आने के लिए बाध्य करें और इन्द्रदेव वज्र से उनके सिरों का उच्छेदन करें ॥७ ॥

[८- यातुधाननाशन सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - बृहस्पति, अग्नीषोम, ३-४ अग्नि ।**छन्द**—अनुष्टुप, ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।]

३७. इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत्।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१ ॥

नदी जिस प्रकार झाग (गन्दगी) को बहा देती है, उसी प्रकार यह 'हवि' पापाचारियों को यहाँ से दूर बहा ले जाए । दुष्कर्मों में निरत स्त्री-पुरुष अपनी रक्षा के लिए तुम्हारी स्तुति करें ॥१ ॥

३८. अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२ ॥

प्रायश्चित्त की भावना से शरण में आए दुष्टों का स्वागत करें । हे मार्गदर्शक, ज्ञान के पुंज ! आप अपने सद्गुणो से उसे वश में करें । अग्नि और सोम (उपचार के लिए) उनका विशेष परीक्षण करें ॥२ ॥

३९. यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥३

ज्ञानामृत का पान कराने वाले हे सोम ! आसुरी वृत्तियों का समूल नाश हो, इसके लिए उसकी सन्तानों तक पहुँचकर आप उन्हें भी सन्मार्गगामी बनाएँ । स्तुति करने वाले के नेत्रों को नीचा (शालीनता से युक्त) कर दें ॥३ ॥

४०. यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥४ ॥

हे प्रकाशपुंज अग्ने ! आप पथभ्रष्ट जनों की सन्तानों तक सुदूर गुफा में पहुँच कर अपने दिव्य प्रकाश से उन्हें सन्मार्ग दिखाएँ, इस प्रकार आप सबके कष्टों को दूर करें ॥४ ॥

[९- विजयप्रार्थना सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - वसुगण, इन्द्र, पूषा, वरुण, मित्र, अग्नि, आदित्यगण, विश्वेदेवा, २ देवगण, सूर्य, अग्नि, हिरण्य, ३-४ अग्नि (जातवेदा) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४१. अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिञ्ज्योतिषि धारयन्तु ॥१ ॥

वैभव की कामना करने वाले इस पुरुष को आठों वसु देवता, इन्द्र, पूषा, वरुण, मित्र, अग्नि आदि देवता धारण कर अपना अनुग्रह प्रदान करें । आदित्य और अन्य सभी देवता इसको तेजस्विता प्रदान करें ॥१ ॥

४२. अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम्।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥२ ॥

हे देवताओ ! सूर्य की तेजस्विता, अग्नि की प्रखरता, चन्द्र की शीतलता एवं स्वर्ण की आभा मनुष्य के जीवन को ऊँचा उठाए । अपने संयम से इन शक्तियों को बढ़ाता हुआ वह (मनुष्य) शत्रुओं (आसुरी वृत्तियों) का विनाश करे । इस प्रकार वह जीवन की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करे ॥२ ॥

४३. येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! जिस श्रेष्ठ ज्ञान के बल पर इन्द्र आदि देवता सम्पूर्ण रसों (सुखों) का उपभोग करते हैं, उसी दिव्य ज्ञान से मनुष्य के जीवन को प्रकाशित करते हुए आप ऊँचा उठाएँ, वह मनुष्य देवतुल्य श्रेष्ठ जीवन जिए ॥३ ॥

४४. ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! मैं इस (साधक) के यज्ञ, तेज, ऐश्वर्य एवं चित्त को स्वीकार करता हूँ । स्पर्धाशील शत्रु हमसे नीचे ही रहें । हे देव ! आप इस साधक को श्रेष्ठ सुख-शान्ति प्रदान करें ॥४ ॥

[१०- पाशविमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ असुर , २-४ वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ ककुम्मती अनुष्टुप् , ४ अनुष्टुप् ।]

४५. अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥१ ॥

देवताओं में बली राजा वरुणदेव प्रकाशित हैं । उनकी इच्छा ही सत्य है; तथापि हम दैवी ज्ञान के बल पर स्तुतियों द्वारा पीड़ित व्यक्तियों को उनके प्रकोप से बचाते हैं ॥१ ॥

४६. नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२ ॥

हे सर्वज्ञ वरुणदेव ! आपके कोप से पीड़ित हम सब शरणागत होकर नमन करते हैं; आप हमारे सभी दोषों को भली-भाँति जानते हैं । जन-मानस को बोध हो रहा है कि देवत्व की शरण में पहुँच कर (सद्गुणों को अपना कर) ही सुखी और दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है ॥२ ॥

४७. यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु । राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥३

हे पीड़ित मानव ! तुमने अपनी वाणी का दुरुपयोग करते हुए असत्य और पाप वचन बोलकर अपनी गरिमा का हनन किया है । सर्व समर्थ वरुणदेव के अनुग्रह से इस दुःखद स्थिति से मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ ॥३ ॥

४८. मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान् महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥४ ॥

हे पतित मानव ! हम तुम्हें नियन्ता वरुणदेव के प्रचण्ड कोप से बचाते हैं । हे उग्रदेव ! आप अपने सजातीय दूतों से कह दें (वे इसे मुक्त करें) और हमारे ज्ञान (स्तोत्रों) पर ध्यान दें ॥४ ॥

[११- नारीसुखप्रसूति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - पूषा, अर्यमा, वेधा, दिक्, देवगण । **छन्द** - पंक्ति, २ अनुष्टुप् , ३ चतुष्पदा उष्णिकगर्भा ककुम्मती अनुष्टुप् , ४-६ पथ्यापंक्ति ।]

४९. वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥१ ॥

हे अखिल विश्व के पोषक, श्रेष्ठ जनों के हितैषी पूषा देवता ! हम अपनी हवि समर्पित करते हैं । आप इस प्रसूता की सहायता करें । यह सावधानीपूर्वक अपने अंगों को प्रसव के लिए तैयार करे-ढीला करे ॥१ ॥

५०. चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥२

द्युलोक एवं भूमि को चारों दिशाएँ घेरे हैं। दिव्य पंच भूतों ने इस गर्भ को घेरा- (धारण किया) हुआ है, वे ही इस आवरण से मुक्त करें-बाहर करें ॥२ ॥

५१. सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि। श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ॥३ ॥

हे प्रसवशील माता अथवा प्रसव सहायक देव ! आप गर्भ को मुक्त करें। गर्भ मार्ग को हम फैलाते हैं, अंगों को ढीला करें और गर्भ को नीचे की ओर प्रेरित करें ॥३ ॥

५२. नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम्।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥४ ॥

गर्भस्थ शिशु को आवेष्टित करने वाले (समेट कर रखने वाली थैली) 'जरायु' प्रसूता के लिये मांस, मज्जा या चर्बी की भाँति उपयोगी नहीं, अपितु अन्दर रह जाने पर गम्भीर दुष्परिणाम प्रस्तुत करने वाली सिद्ध होती है। सेवार (जल की घास) की जैसी नरम 'जेरी' पूर्णरूपेण बाहर आकर कुत्तों का आहार बने ॥४ ॥

५३. वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥५ ॥

हे प्रसूता ! निर्विघ्न प्रसव के लिए गर्भमार्ग, योनि एवं नाड़ियों को विशेष प्रकार से खोलता हूँ। माँ व बालक को नाल से अलग करता हूँ। जेरी से शिशु को अलग करता हूँ। जेरी पूर्णरूपेण पृथ्वी पर गिर जाए ॥५ ॥

५४. यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ॥६ ॥

जिस प्रकार वायु वेगपूर्वक प्रवाहित होती है। पक्षी जिस वेग से आकाश में उड़ते हैं एवं मन जिस तीव्रगति से विषयों में लिप्त होता है, उसी प्रकार दसवें माह गर्भस्थ शिशु जेरी के साथ गर्भ से मुक्त होकर बाहर आए ॥६ ॥

[१२- यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा। **देवता** - यक्ष्मनाशन । **छन्द** - जगती, २-३ त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्।]

५५. जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या।
स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥१ ॥

जरायु से उत्पन्न शिशु की भाँति बलशाली सूर्यदेव वायु के प्रभाव से मेघों के बीच से प्रकट होकर हमारे शरीरों को हर्षित करते हैं। वे सीधे मार्ग से बढ़ते हुए अपने एक ही ओज को तीन प्रकार से प्रसारित करते हैं ॥१ ॥

[सूर्य का ओज-प्रकाश, ताप तथा चेष्टा के रूप में या शरीर में त्रिधातुओं को पुष्ट करने वाले के रूप में सक्रिय होता है।]

५६. अङ्गे अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता ॥२ ॥

अपनी ऊर्जा से अंग-प्रत्यंग में संव्याप्त हे सूर्यदेव ! स्तुतियों एवं हवि द्वारा हम आपको और आपके समीपवर्ती देवों का अर्चन करते हैं। जिसके शरीरस्थ जोड़ों को रोगों ने ग्रसित कर रखा है, उसके निमित्त भी हम आपको पूजते हैं ॥२ ॥

५७. मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥३ ॥

हे आरोग्यदाता सूर्यदेव ! आप हमें सिरदर्द एवं कास (खाँसी) की पीड़ा से मुक्त करें । सन्धियों में घुसे रोगाणुओं को नष्ट करें । वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म ऋतुओं के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले वात, पित्त, कफ जनित रोगों को दूर करें । इसके लिए हम अनुकूल वातावरण के रूप में पर्वतों एवं वनौषधियों का सहारा लेते हैं ॥३ ॥

५८. शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे । शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम ॥

हमारे सिर आदि श्रेष्ठ अंगों का कल्याण हो । हमारे उदर आदि साधारण अंगों का कल्याण हो । हमारे चारों अंगों (दो हाथों एवं दो पैरों) का कल्याण हो । हमारे समस्त शरीर को आरोग्य - लाभ प्राप्त हो ॥४ ॥

[१३- विद्युत् सूक्त]

[**ऋषि**—भृग्वङ्गिरा ।**देवता**— विद्युत् । **छन्द**—अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद् विराट् जगती, ४ त्रिष्टुप् परा बृहतीगर्भा पंक्ति ।]

५९. नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥

विद्युत् को हमारा नमस्कार पहुँचे । गड़गड़ाहट करने वाले शब्द तथा अशनि को हमारा नमस्कार पहुँचे । व्यापने वाले मेघों को हमारा नमस्कार पहुँचे । हे देवि ! कष्ट पहुँचाने वाले दुष्टों पर वज्र फेंक कर आप उन्हें दूर हटाती हैं ॥१ ॥

६०. नमस्ते प्रवतो नपाद् यतस्तपः समूहसि । मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२

हे देव (पर्जन्य) ! आप पानी को अपने अन्दर ग्रहण किये रहते हैं और असमय नीचे नहीं गिरने देते । हम आपको प्रणाम करते हैं; क्योंकि आप हमारे अन्दर तप एकत्रित करते हैं । आप हमारे देह को सुख प्रदान करें तथा हमारी सन्तानों को भी सुख प्रदान करें ॥२ ॥

६१. प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३ ॥

ऊँचाई से न गिराने वाले हे पर्जन्य ! आपको हम प्रणाम करते हैं । आपके आयुध तथा तेजस् को हम प्रणाम करते हैं । आप जिस हृदयरूपी गुहा में निवास करते हैं, वह हमें ज्ञात है । आप उस समुद्र में नाभि के सदृश विद्यमान रहते हैं ॥३ ॥

६२. यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४ ॥

हे अशनि ! रिपुओं पर प्रहार करने के लिए समस्त देवताओं ने बलशाली बाण के रूप में आपकी संरचना की है । अन्तरिक्ष में गर्जना करने वाले हे अशनि ! हम आपको नमस्कार करते हैं । आप हमारे भय को दूर करके हमें हर्ष प्रदान करें ॥४ ॥

[१४- कुलपाकन्या सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - वरुण अथवा यम । **छन्द** - १ ककुम्मती अनुष्टुप्, २, ४ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पात् विराट् अनुष्टप् ।]

सामान्य अर्थों में प्रथम मंत्र में प्रयुक्त 'अस्याः' का अर्थ कन्या किया गया है । इस आधार पर कन्या को योग्य वर के सुपुर्द करने का भावार्थ लिया जाता है; किन्तु इस सूक्त के देवता विद्युत्, वरुण एवं यम हैं । इस आधार पर 'अस्याः' का अर्थ विद्युत् ग्राह्य है । विद्युत् का वरण करने वाले वरुण तथा उसका नियमन करने वाले 'यम' कहे जा सकते हैं । इस संदर्भ में कन्या 'विद्युत्' उसके पिता 'विद्युत्-उत्पादक' तथा वर उसके प्रयोक्ता-विशेषज्ञ कहे जाने योग्य हैं । विज्ञ पाठक इस संदर्भ में भी मंत्रार्थों को समझ सकते हैं-

६३. भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥१ ॥

वृक्षों से जैसे मनुष्य फूल ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार इस कन्या (अथवा विद्युत्) के सौन्दर्य तथा ओज को हम स्वीकार करते हैं । जिस तरह विशाल पर्वत धरती पर स्थिर रहता है, उसी प्रकार यह कन्या भयरहित होकर (अपने अथवा मेरे) माता-पिता के घर पर बहुत समय तक रहे ॥१ ॥

६४. एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम। सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥

हे नियम पालन करने वाले प्रकाशवान् ! यह कन्या आपकी वधू बनकर आचरण करे । यह कन्या आपके घर में रहे, माता-पिता अथवा भाई के घर में सुखपूर्वक रहे ॥२ ॥

६५. एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥३ ॥

हे राजन् ! यह कन्या आपके कुल की रक्षा करने वाली है, उसको हम आपके निमित्त प्रदान करते हैं । यह निरंतर (अपने या तुम्हारे) माता-पिता के बीच रहे । शीर्ष से (श्रेष्ठ स्तर पर रहकर अथवा विचारों से) शान्ति एवं कल्याण के बीज बोए ॥३ ॥

६६. असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च।
अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४ ॥

हे कन्ये ! आपके सौभाग्य को हम 'असित' ऋषि, 'गय' ऋषि तथा 'कश्यप' ऋषि के मंत्र के द्वारा उसी प्रकार बाँधकर सुरक्षित करते हैं, जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने वस्त्रों-आभूषणों आदि को गुप्त रखकर सुरक्षित करती हैं ॥४ ॥

[विद्युत् के संदर्भ में असित का अर्थ बन्धनरहित स्वतंत्र प्रवाह, कश्यप का अर्थ पश्यक का भाव- देखने योग्य प्रकाशोत्पादक तथा गय का अर्थ प्राण- ऊर्जा है । इस प्रकार विद्युत् की उक्त विशेषताओं को ऋषियों ने सूत्रों के माध्यम से प्रकट किया है ।]

[१५- पुष्टिकर्म सूक्त]

[**ऋषि**-अथर्वा । देवता - सिन्धुसमूह (वाता, पतत्रिण पक्षी) । **छन्द**- अनुष्टुप्, १ भुरिक् बृहती, २ पथ्या पंक्ति ।]

६७. सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१ ॥

नदियाँ और वायु भली- भाँति संयुक्त होकर प्रवाहित होती रहें तथा पक्षीगण भली- भाँति संयुक्त होकर उड़ते रहें । देवगण हमारे यज्ञ को ग्रहण करें; क्योंकि हम हविष्यों को संगठित-एकीकृत करके आहुतियाँ दे रहे हैं ॥१ ॥

६८. इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥२ ॥

हे संगठित करने वाले देवताओ ! आप यहाँ हमारे इस यज्ञ में पधारें और इस संगठन का संवर्द्धन करें । प्रार्थनाओं को ग्रहण करने पर आप इस हवि प्रदाता यजमान को प्रजा, पशु आदि सम्पत्ति से सम्पन्न करें ॥२ ॥

६९. ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः। तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥

सरिताओं के जो अक्षय स्रोत संघबद्ध होकर प्रवाहित हो रहे हैं, उन सब स्रोतों द्वारा हम पशु आदि धन-सम्पत्तियाँ प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

७०. ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च। तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि

जो घृत, दुग्ध तथा जल की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं, उन समस्त धाराओं द्वारा हम धन-सम्पत्तियाँ प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

[प्रकृति चक्र द्वारा उपलब्ध वस्तुओं को सुनियोजित करके ही मनुष्य ने सारी सम्पत्तियाँ उपलब्ध की हैं ।]

[१६- शत्रुबाधन सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - अग्नि, इन्द्र, वरुण (३-४ दधत्य सीस) । **छन्द**—अनुष्टुप्, ४ ककुम्मती अनुष्टुप् ।]

७१. ये ऽमावास्यां३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥१ ॥

अमावस्या की अँधेरी रात के समय मनुष्यों पर घात करने वाले तथा उनको क्षति पहुँचाने वाले, जो असुर आदि विचरण करते हैं, उन असुरों के सम्बन्ध में असुर विनाशक चतुर्थ अग्निदेव हमें जानकारी प्रदान करें ॥१ ॥

[यहाँ अग्नि के लिए तुरीय (चतुर्थ) सम्बोधन विचारणीय है । अग्नि के तीन प्रयोग (गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि तथा दक्षिणाग्नि) यज्ञीय होते हैं । चतुर्थ प्रयोग सुरक्षापरक उपकरणों के लिए किये जाने से उसे तुरीय अग्नि कहा गया है । रात्रि में चोरों के आने की सूचना देने के लिए कोई 'थर्मो पायल या इन्फ्रारेड डिडैक्टर' जैसे प्रयोग का संकेत इस मंत्र में मिलता है ।]

७२. सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् ॥२ ॥

वरुणदेव ने सीसे के सम्बन्ध में कहा (प्रेरित किया) है । अग्निदेव उस 'सीसे' को मुनष्यों की सुरक्षा करने वाला बताते हैं । धनवान् इन्द्र ने हमें 'सीसा' प्रदान करते हुए कहा है-हे आत्मीय ! देवों द्वारा प्रदत्त यह 'सीसा' असुरों का निवारण करने वाला है ॥२ ॥

[तीन देवताओं वरुण, अग्नि एवं इन्द्र द्वारा 'सीसे' से आत्मरक्षा तथा शत्रु निवारण के प्रयोग बतलाए गए हैं । इन्द्र संगठन सत्ता 'सीसे' की गोली-छर्रों का रहस्य बतला सकते हैं, वरुण (हाइड्रॉलिक प्रेशर से) तथा अग्नि (विस्फोटक शक्ति से) 'सीसे' के प्रहार की विद्या प्रदान कर सकते हैं । तीसरे एवं चौथे मन्त्रमें सीसे को अवरोध हटाने वाला तथा वेधक कहकर इसी आशय को स्पष्ट किया गया है ।]

७३. इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः । अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः

यह 'सीसा' अवरोध उत्पन्न करने वालों को हटाता है तथा असुरों को पीड़ा पहुँचाता है । इसके द्वारा असुरों की समस्त जातियों को हम दूर करते हैं ॥३ ॥

७४. यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४ ॥

हे रिपो ! यदि तुम हमारी गौओं, अश्वों तथा मनुष्यों का संहार करते हो, तो हम तुमको सीसे के द्वारा वेधते हैं । जिससे तुम हमारे वीरों का संहार न कर सको ॥४ ॥

[१७- रुधिरस्रावनिवर्तनधमनीबन्धन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - योषित्, लोहितवासस, हिरा । **छन्द**—अनुष्टुप्, १ भूरिक् अनुष्टुप्, ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।]

७५.अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः । अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः

शरीर में लाल रंग के रक्त का वहन करने वाली जो योषा (धमनियाँ) हैं, वे स्थिर हो जाएँ । जिस प्रकार भाई रहित निस्तेज बहिनें बाहर नहीं निकलतीं, उसी प्रकार धमनियों का खून बाहर न निकले ॥१ ॥

७६. तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे।

कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद् धमनिर्मही ॥२ ॥

हे नीचे, ऊपर तथा बीच वाली धमनियो ! आप स्थिर हो जाएँ । छोटी तथा बड़ी धमनियाँ भी खून बहाना बन्द करके स्थिर हो जाएँ ॥२ ॥

७७. शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्।

अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥३ ॥

सैकड़ों धमनियों तथा सैकड़ों नाड़ियों के मध्य में मध्यम नाड़ियाँ स्थिर हो गई हैं और इसके साथ-साथ अन्तिम धमनियाँ भी ठीक हो गई हैं, जिसका रक्त स्राव बन्द हो गया है ॥३ ॥

७८. परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत्। तिष्ठतेलयता सु कम् ॥४ ॥

हे नाड़ियो ! आपको रज नाड़ी ने और धनुष की तरह वक्र धनु नाड़ी ने तथा बृहती नाड़ी ने चारों तरफ से संव्याप्त कर लिया है । आप खून बहाना बन्द करें और इस रोगी को सुख प्रदान करें ॥४ ॥

[१८- अलक्ष्मीनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** द्रविणोदा । **देवता -** विनायक । **छन्द -** १ उपरिष्टाद् विराट् बृहती, २ निचृत् जगती, ३ विराट् आस्तारपंक्ति त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।]

७९. निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं१ निररातिं सुवामसि।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥१ ॥

ललाट पर स्थित बुरे लक्षणों को हम पूर्ण रूप से दूर करते हैं तथा जो हितकारक लक्षण हैं , उन्हें हम अपने लिए तथा अपनी सन्तानों के लिए प्राप्त करते हैं । इसके अलावा कृपणता आदि को दूर हटाते हैं ॥१ ॥

८०. निररणिं सविता साविषक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।

निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥२ ॥

मित्रावरुण, सविता तथा अर्यमा देव हमारे हाथों और पैरों के बुरे लक्षणों को दूर करें । सबकी प्रेरक अनुमति भी वांछित फल प्रदान करती हुई शरीर के बुरे लक्षणों को दूर करे । देवों ने भी इसी सौभाग्य को प्रदान करने के निमित्त प्रेरणा दी है ॥२ ॥

८१. यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा।

सर्वं तद् वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥३ ॥

हे बुरे लक्षणों से युक्त मनुष्यो ! आपकी आत्मा, शरीर, बाल तथा आँखों में जो वीभत्सता का कुलक्षण है, उन सबको हम मन्त्रों का उच्चारण करके दूर करते हैं । सविता देवता आपको परिपक्व बनाएँ ॥३ ॥

८२. रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत।

विलीढ्यं ललाम्यं१ ता अस्मन्नाशयामसि ॥४ ॥

ऐसी स्त्री जिसका पैर हिरण की तरह, दाँत बैल की तरह, चाल गाय की तरह तथा आवाज कठोर है, हम उसके मस्तक पर स्थित ऐसे सभी बुरे लक्षणों को मन्त्रों द्वारा दूर करते हैं ॥४ ॥

[१९- शत्रुनिवारण सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - ईश्वर (१ इन्द्र, २ मनुष्यों के बाण, ३ रुद्र, ४ विश्वेदेवा) । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ पुरस्ताद् बृहती, ३ पथ्या पंक्ति ।]

८३. मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय ॥१ ॥

हथियारों द्वारा अत्यधिक घायल करने वाले रिपु हमारे समीप तक न पहुँच पाएँ तथा चारों तरफ से संहार करने वाले रिपु भी हमारे पास न पहुँच पाएँ । हे परमेश्वर इन्द्र ! सब तरफ फैल जाने वाले बाणों को आप हमसे दूर गिराएँ ॥१ ॥

८४. विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ॥२ ॥

चारों तरफ फैले हुए बाण जो चलाए जा चुके हैं तथा जो चलाए जाने वाले हैं, वे सब हमारे स्थान से दूर गिरें । हे मनुष्यों के द्वारा संचालित तथा दैवी बाणो ! आप हमारे रिपुओं को विदीर्ण कर डालें ॥२ ॥

८५. यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्य यैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ॥३ ॥

जो हमारे स्वजन हों या दूसरे अन्य लोग हों अथवा सजातीय हों या दूसरी जाति वाले हीन लोग हों; यदि वे हमारे ऊपर आक्रमण करके हमें दास बनाने का प्रयत्न करें, तो उन रिपुओं को रुद्रदेव अपने बाणों से विदीर्ण करें ॥३ ॥

८६. यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ्छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४ ॥

जो हमारे प्रकट तथा गुप्त रिपु विद्वेष भाव से हमारा संहार करने का प्रयत्न करते हैं या हमें अभिशापित करते हैं, उन रिपुओं को समस्त देवगण विनष्ट करें । ब्रह्मज्ञान रूपी कवच हमारी सुरक्षा करे ॥४ ॥

[२०- शत्रुनिवारण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ सोम, मरुद्गण, २ मित्रावरुण, ३ वरुण, ४ इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् ।]

८७. अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१ ॥

हे सोमदेव ! परस्पर वैमनस्य उत्पन्न करने का कृत्य हमसे न हो । हे मरुतो ! हम जिस युद्ध का अनुष्ठान कर रहे हैं, आप उसमें हमें हर्षित करें । सम्मुख होकर बढ़ता हुआ शत्रु का ओजस् हमारे समीप न आ सके तथा अपकीर्ति भी हमें न प्राप्त हो । जो विद्वेषवर्द्धक कुटिल कृत्य हैं, वे भी हमारे समीप न आ सकें ॥१ ॥

८८. यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावस्मद् यावयतं परि ॥२

हे मित्र और वरुणदेवो ! रिपुओं द्वारा संधान किए गए आयुधों को आप हमसे दूर रखें, जिससे वह हमें स्पर्श न कर सके । आज संग्राम में हिंसा की अभिलाषा से संधान किए गए रिपुओं के अस्त्रों को हमसे दूर रखने का उपाय करें ॥२ ॥

८९. इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय। वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम्॥

हे वरुणदेव ! समीप में खड़े हुए तथा दूर में स्थित रिपुओं के जो अस्त्र, संहार करने के उद्देश्य से हमारे पास आ रहे हैं, उन छोड़े गए अस्त्र-शस्त्रों को आप हमसे पृथक् करें । हे वरुणदेव ! रिपुओं द्वारा अप्राप्त बृहत् सुखों को आप हमें प्रदान करें तथा उनके कठोर आयुधों को हमसे पृथक् करें ॥३ ॥

९०. शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः । न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ।

हे शासक इन्द्रदेव ! आपकी शत्रु हनन की क्षमता महान् और अद्भुत है, आपके मित्र भी कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते और न कभी शत्रुओं से पराभूत होते हैं ॥४ ॥

[२१- शत्रुनिवारण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

९१. स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥१

इन्द्रदेव सबका कल्याण करने वाले, प्रजाजनों का पालन करने वाले, वृत्र असुर का विनाश करने वाले, युद्धकर्त्ता शत्रुओं को वशीभूत करने वाले, साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, सोमपान करने वाले और अभय प्रदान करने वाले हैं । वे हमारे समक्ष पधारें ॥१ ॥

९२. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें । हमारी सेनाओं द्वारा पराजित शत्रुओं को मुँह लटकाये हुए भागने दें । हमें वश में करने के अभीच्छु शत्रुओं को गर्त में डालें ॥२ ॥

९३. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज । वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः

हे इन्द्रदेव ! आप राक्षसों का विनाश करें । हिंसक दुष्टों को नष्ट करें । वृत्रासुर का जबड़ा तोड़ दें । हे शत्रु-नाशक इन्द्रदेव ! आप हमारे संहारक शत्रुओं के क्रोध एवं दर्प को नष्ट करें ॥३ ॥

९४. अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् । वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम्

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं के मनों का दमन करें । हमारा संहार करने के अभिलाषी शत्रुओं को नष्ट करें । शत्रुओं के क्रोध से हमारी रक्षा करते हुए हमें श्रेष्ठ सुख प्रदान करें । शत्रु से प्राप्त मृत्यु का निवारण करें ॥४ ॥

[२२- हृद्रोगकामलानाशन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - सूर्य, हरिमा और हृद्रोग । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

९५. अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥

हे रोगग्रस्त मनुष्य ! हृदय रोग के कारण आपके हृदय की जलन तथा (पीलिया या रक्ताल्पता का विकार) आपके शरीर का पीलापन, सूर्य की ओर चला जाए । रक्तवर्ण की गौओं अथवा सूर्य की रक्तवर्ण की रश्मियों के द्वारा हम आपको हर प्रकार से बलिष्ठ बनाते हैं ॥१ ॥

९६. परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि । यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥२

हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! दीर्घायुष्य प्राप्त करने के लिए हम आपको लोहित वर्ण के द्वारा आवृत करते हैं, जिससे आप रोगरहित होकर पाण्डु रोग से विमुक्त हो सकें ॥२ ॥

९७. या रोहिणीर्देवत्या२ गावो या उत रोहिणीः ।

रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥३ ॥

देवताओं की जो रक्तवर्ण की गौएँ हैं अथवा रक्तवर्ण की रश्मियाँ हैं, उनके विभिन्न स्वरूपों और आयुष्यवर्द्धक गुणों से आपको आच्छादित (उपचारित) करते हैं ॥३ ॥

९८. शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।

अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥४ ॥

हम अपने हरिमाण (पीलिया अथवा शरीर को क्षीण करने वाले रोग) को शुकों (तोतों) रोपणाका (वृक्षों) एवं हरिद्रवों (हरी वनस्पतियों) में स्थापित करते हैं ॥४ ॥

[मनुष्य के रोगाणु जब विशिष्ट पक्षियों या वनस्पतियों में प्रविष्ट होते हैं, तो उनमें उन रोगों के प्रतिरोधक तत्त्व (एन्टीबॉडीज) उत्पन्न होते हैं। उनके संसर्ग से मनुष्यों के रोगों का शमन होता है। मनुष्य के मल विकार-पक्षियों एवं वनस्पतियों के लिए स्वाभाविक आहार बन जाते हैं, इसलिए रोग विकारों को उनमें विस्थापित करना उचित है।]

[२३- श्वेत कुष्ठ नाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - असिक्नी वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

९९. नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥१ ॥

हे रामा-कृष्णा तथा असिक्नी ओषधियो ! आप सब रात्रि में पैदा हुई हैं। रंग प्रदान करने वाली हे ओषधियो ! आप गलित कुष्ठ तथा श्वेतकुष्ठग्रस्त व्यक्ति को रंग प्रदान करें ॥१ ॥

[धन्वन्तरि के अनुसार रामा से रामा तुलसी, आरामशीलता, घृतकुमारी, लक्ष्मणा आदि, कृष्णा से कृष्णा तुलसी, कृष्णामूली, पुनर्नवा, पिप्पली आदि तथा असिक्नी से असिकनी असिशिम्बी आदि का बोध होता है।]

१००. किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।

आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ॥२ ॥

हे ओषधियो ! आप कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ तथा धब्बे आदि को विनष्ट करें, जिससे इस व्याधिग्रस्त मनुष्य के शरीर में पूर्व जैसी लालिमा प्रवेश करे। आप सफेद दाग को दूर करके इस रोगी को अपना रंग प्रदान करें ॥२ ॥

१०१. असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।

असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥३ ॥

हे नील ओषधे ! आपके पैदा होने का स्थान कृष्ण वर्ण है तथा जिस पात्र में आप स्थित रहती हैं, वह भी काला है। हे ओषधे ! आप स्वयं श्याम वर्ण वाली हैं, इसलिए लेपन आदि के द्वारा इस रोगी के कुष्ठ आदि धब्बों को नष्ट कर दें ॥३ ॥

१०२. अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।

दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥४ ॥

शरीर में विद्यमान अस्थि और त्वचा के मध्य के मांस में तथा त्वचा पर जो श्वेत कुष्ठ का निशान है, उसे हमने ब्रह्म (ज्ञान या मन्त्र) प्रयोग के द्वारा विनष्ट कर दिया ॥४ ॥

[२४- श्वेतकुष्ठ नाशन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - आसुरी वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ निचृत् पथ्या पंक्ति ।]

१०३. सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥१ ॥

हें ओषधे !सर्वप्रथम आप सुपर्ण (सूर्य या गरुड़) के पित्तरूप में थीं । आसुरी (शक्तिशाली) सुपर्ण के साथ संग्राम जीतकर उस पित्त को ओषधि का स्वरूप प्रदान किया । वही रूप नील आदि ओषधि में प्रविष्ट किया है ॥१

१०४. आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ॥२ ॥

उस आसुरी माया ने नील आदि ओषधि को कुष्ठ निवारक ओषधि के रूप में विनिर्मित किया था । यह ओषधि कुष्ठ नष्ट करने वाली है । प्रयोग किये जाने पर इसने कुष्ठ रोग को विनष्ट किया । इसने दूषित त्वचा को रोग शून्य त्वचा के समान रंग वाली कर दिया ॥२ ॥

१०५. सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥३ ॥

हे ओषधे ! आपकी माता आपके समान वर्ण वाली है तथा आपके पिता भी आपके समान वर्ण वाले हैं और आप भी समान रूप करने वाली हो । इसलिए हे नील ओषधे ! आप इस कुष्ठ रोग से दूषित रंग को अपने समान रंग - रूप वाला करें ॥३ ॥

१०६. श्यामा सरूपङ्करणी पृथिव्या अध्युद्भृता । इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय

हे काले रंग वाली ओषधे ! आप समान रूप बनाने वाली हो । आसुरी माया ने आपको धरती के ऊपर पैदा किया है । आप इस कुष्ठ रोग ग्रस्त अंग को भली प्रकार रोगमुक्त करके पूर्ववत् रंग-रूप वाला बना दें ॥४ ॥

[२५- ज्वर नाशन सूक्त]

[**ऋषि**-भृग्वङ्गिरा **देवता**-यक्ष्मनाशन अग्नि । **छन्द** -१ त्रिष्टुप्, २-३ विराट्गर्भात्रिष्टुप्, ४ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।]

१०७. यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥१ ॥

जहाँ पर धर्म का आचरण करने वाले सदाचारी मनुष्य नमन करते हैं, जहाँ प्रविष्ट होकर अग्निदेव, प्राण धारण करने वाले जल तत्त्व को जलाते हैं, वहीं पर आपका (ज्वर का) वास्तविक जन्म स्थान है, ऐसा आपके बारे में कहा जाता है । हे कष्टप्रदायक ज्वर ! यह सब जानकर आप हमें रोग मुक्त कर दें ॥१ ॥

१०८. यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥२ ॥

हे जीवन को कष्टमय करने वाले ज्वर ! यदि आप दाहकता के गुण से सम्पन्न हैं तथा शरीर को संताप देने वाले हैं, यदि आपका जन्म लकड़ी के टुकड़ों की कामना करने वाले अग्निदेव से हुआ है, तो आप 'ह्रूडु' नाम वाले हैं । हे पीलापन उत्पन्न करने वाले ज्वर ! आप अपने कारण अग्निदेव को जानते हुए हमें मुक्त कर दें ॥२ ॥

['ह्रूडु' का अर्थ गति (नाड़ी गति) या कम्पन बढ़ाने वाला अथवा चिन्ता उत्पन्न करने वाला माना जाता है ।]

१०९. यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणास्यासि पुत्रः ।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ॥३ ॥

हे जीवन को कष्टमय बनाने वाले ज्वर ! यदि आप शरीर में कष्ट देने वाले हैं अथवा सब जगह पीड़ा उत्पन्न करने वाले हैं अथवा दुराचारियों को दण्डित करने वाले वरुणदेव के पुत्र हैं, तो भी आपका नाम 'हूडु' है । आप अपने कारण अग्निदेव को जानकर हम सबको मुक्त कर दें ॥३ ॥

११०. नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४ ॥

ठंडक को पैदा करने वाले शीत ज्वर के लिए हमारा नमन है और रूखे ताप को उत्पन्न करने वाले ज्वर को हमारा नमन है । एक दिन का अन्तर देकर आने वाले, दूसरे दिन आने वाले तथा तीसरे दिन आने वाले शीत ज्वर को हमारा नमन है ॥४ ॥

[शीत-ठंड लगकर आने वाले एवं ताप से सुलाने वाले मलेरिया जैसे ज्वर का उल्लेख यहाँ है । यह ज्वर नियमित होने के साथ ही अंतर देकर आने वाले इकतरा-तिजारी आदि रूपों में भी होते हैं । नमन का सीधा अर्थ-दूर से नमस्कार करना-बचाव करना (प्रिवेन्शन) लिया जाता है । 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' नामक कोष के अनुसार नमस् के अर्थ नमस्कार, त्याग, वज्र आदि भी हैं । इन ज्वरों के त्याग या उन पर (ओषधि या मंत्र शक्ति से) वज्र प्रहार करने का भाव भी निकलता है ।]

[२६- शर्म (सुख) प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - १ देवा, २ इन्द्र, भग, सविता, ३-४ मरुद्‌गण । **छन्द** - गायत्री, २ एकावसाना त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ४ एकावसाना पादनिचृत् गायत्री ।]

इस सूक्त के देवता रूप में इन्द्राणी वर्णित हैं । इन्द्र शब्द राजा के लिए प्रयुक्त होने से इन्द्राणी का अर्थ रानी अथवा सेना लिया जाता है । इन्द्राणी को शची भी कहा गया है । 'शची ' का अर्थ निघण्टु में वाणी, कर्म एवं प्रज्ञा दिया गया है । इस आधार पर शची को जीवात्मा की वाणी शक्ति, कर्म शक्ति एवं विचार शक्ति भी कहा जा सकता है । ये तीनों अलग-अलग एवं संयुक्त होकर भी शत्रुओं को पराभूत करने में समर्थ होती हैं । अस्तु, इन्द्राणी के अर्थ में रानी, राजा की सैन्य शक्ति तथा जीव-चेतना की उक्त शक्तियों को लिया जा सकता है-

१११. आरे३सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत् । आरे अश्मा यमस्यथ ॥१ ॥

हे देवो ! रिपुओं द्वारा फेंके गये ये अस्त्र हमारे पास न आएँ तथा आपके द्वारा फेंके गये (अभिमंत्रित) पाषाण भी हमारे पास न आएँ ॥१ ॥

११२. सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः ॥२ ॥

दान देने वाले, ऐश्वर्य - सम्पन्न सवितादेव तथा विचित्र धन से सम्पन्न इन्द्रदेव तथा भगदेव हमारे सखा हों ॥२ ॥

११३. यूयं नः प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः । शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥३ ॥

अपने आप की सुरक्षा करने वाले, न गिराने वाले हे सूर्य की तरह तेजयुक्त मरुतो ! आप सब हमारे निमित्त प्रचुर सुख प्रदान करें ॥३ ॥

११४. सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥४ ॥

इन्द्रादि देवता हमें आश्रय प्रदान करें तथा हमें हर्षित करें । वे हमारे शरीरों को आरोग्य प्रदान करें तथा हमारे बच्चों को आनन्दित करें ॥४ ॥

[२७- स्वस्त्ययन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - चन्द्रमा और इन्द्राणी । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ पथ्या पंक्ति ।]

११५. अमूः पारे पृदाक्वस्त्रिषप्ता निर्जरायवः ।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या३वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥१ ॥

जरायु निकलकर पार हुई ये त्रिसप्त (तीन और सात) सर्पिणियाँ (गतिशील सेनाएँ या शक्ति धाराएँ) हैं । उनके जरायु (केंचुल या आवरण) से हम पापियों की आँखें ढँक दें ॥१ ॥

११६. विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती । विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः

रिपुओं का विनाश करने में सक्षम पिनाक (शिव धनु) की तरह शस्त्रों को धारण करके रिपुओं को काटने वाली (हमारी वीर सेनाएँ या शक्तियाँ) चारों तरफ से आगे बढ़ें , जिससे पुनः एकत्रित हुई रिपु सेनाओं के मन तितर-बितर हो जाएँ और उसके शासक हमेशा के लिए निर्धन हो जाएँ ॥२ ॥

११७. न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः । वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः

बृहत् शत्रु भी हमें विजित नहीं कर सकते और कम शत्रु हमारे सामने ठहर नहीं सकते । जिस प्रकार बाँस के अंकुर अकेले तथा कमजोर होते हैं । उसी प्रकार पापी मनुष्य धन विहीन हो जाएँ ॥३ ॥

११८. प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान् । इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥४ ।

हे दोनों पैरो ! आप द्रुतगति से गमन करके आगे बढ़ें तथा वांछित फल देने वाले मनुष्य के घर तक हमें पहुँचाएँ । किसी के द्वारा विजित न की हुई, न लूटी हुई अभिमानी - (इन्द्राणी) सबके आगे-आगे चलें ॥४ ॥

[२८- रक्षोघ्न सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - १-२ अग्नि, ३-४ यातुधानी । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ विराट् पथ्याबृहती, ४ पथ्या पंक्ति ।]

११९. उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१ ॥

रोगों को विनष्ट करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले अग्निदेव शंकालुओं, लुटेरों तथा दोमुहे कपटियों को भस्मीभूत करते हुए इस उद्विग्न मनुष्य के समीप पहुँचते हैं ॥१ ॥

१२०. प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप लुटेरों तथा सदैव शंकालुओं को भस्मसात् करें । हे काले मार्ग वाले अग्निदेव ! जीवों के प्रतिकूल कार्य करने वाली लुटेरी स्त्रियों को भी आप भस्मसात् करें ॥२ ॥

१२१. या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥३ ॥

जो राक्षसियाँ शाप से शापित करती हैं और जो समस्त पापों का मूल हिंसा रूपी पाप करती हैं तथा जो खून रूपी रसपान के लिए जन्मे हुए पुत्र का भक्षण करना प्रारम्भ करती हैं, वे राक्षसियाँ अपने पुत्र का तथा हमारे रिपुओं की सन्तानों का भक्षण करें ॥३ ॥

१२२. पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो३ वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्यः ॥४॥

वे राक्षसियाँ अपने पुत्र, बहिन तथा पौत्र का भक्षण करें। वे बालों को खींचकर झगड़ती हुई मृत्यु को प्राप्त करें तथा दानभाव से विहीन घात करने वाली राक्षसियाँ परस्पर लड़कर मर जाएँ ॥४॥

[२९- राष्ट्र अभिवर्धन, सपत्नक्षयण सूक्त]

[**ऋषि** - वसिष्ठ। **देवता** - अभीवर्तमणि, ब्रह्मणस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्।]

१२३. अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे। तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय

हे ब्रह्मणस्पते ! जिस समृद्धिदायक मणि से इन्द्रदेव की उन्नति हुई, उसी मणि से आप हमें राष्ट्र के लिए (राष्ट्रहित के लिए) विकसित करें ॥१॥

१२४. अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः। अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति

हे राजन् ! हमारे विरोधी हिंसक शत्रु सेनाओं को, जो हमसे युद्ध करने के इच्छुक हैं, जो हमसे द्वेष करते हैं, आप उन्हें घेरकर पराभूत करें ॥२॥

१२५. अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

हे राजन् ! सवितादेव, सोमदेव और समस्त प्राणिसमुदाय आपको शासनाधिरूढ़ करने में सहयोग करें। इन सबकी अनुकूलता से आप भली- भाँति शासन करें ॥३॥

१२६. अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः। राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे

यह मणि रिपुओं को आवृत करके उनको पराजित करने वाली है तथा विरोधियों का विनाश करने वाली है। विरोधियों को पराभूत करने के लिए तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए इस मणि को हमारे शरीर में बाँधें ॥४॥

१२७. उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः। यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥५।

ये सूर्यदेव उदित हो गये, हमारी वाणी (मंत्र शक्ति) भी प्रकट हो गई है। (इनके प्रभाव से) हम शत्रुनाशक, दुष्टों पर आघात करने वाले तथा शत्रुहीन हों ॥५॥

१२८. सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः। यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च।

हे मणे ! हम शत्रुहन्ता, बलवान् एवं विजयी होकर राष्ट्र के अनुकूल वीरों तथा प्रजाजनों के हित सिद्ध करने वाले बनें ॥६॥

[३०- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ३ शाक्वरगर्भा विराट् जगती।]

१२९. विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन्।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥१॥

हे समस्त देवताओ ! हे वसुओ ! इस आयुष्य की अभिलाषा करने वाले मनुष्य की आप सब सुरक्षा करें। हे आदित्यो ! आप सब भी इस सम्बन्ध में सावधान रहें। इसका विनाश करने के लिए इसके बन्धु अथवा दूसरे शत्रु इस व्यक्ति के समीप न आ सकें। इसको मारने में कोई भी सक्षम न हो सकें ॥१॥

१३०. ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्ये नं जरसे वहाथ ॥२ ॥

हे देवताओ ! आपके जो पिता तथा पुत्र हैं, वे सब आयु की कामना करने वाले व्यक्ति के विषय में मेरी इस प्रार्थना को सावधान होकर सुनें । हम इस व्यक्ति को आपके लिए समर्पित करते हैं । आप इसकी संकटों से सुरक्षा करते हुए इसे पूर्ण आयु तक हर्षपूर्वक पहुँचाएँ ॥२ ॥

१३१. ये देवा दिविष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥३ ॥

हे समस्त देवो ! आप जगत् के कल्याण के निमित्त द्युलोक में निवास करते हैं । हे अग्नि आदि देवो ! आप पृथ्वी पर निवास करते हैं । हे वायुदेव ! आप अन्तरिक्ष में निवास करते हैं । हे ओषधियों तथा गौओं में विद्यमान देवताओ ! आप इस आयुष्यकामी व्यक्ति को लम्बी आयु प्रदान करें । आपकी सहायता से यह व्यक्ति मृत्यु के कारणरूप सैकड़ो ज्वरादि रोगों से सुरक्षित रहे ॥३ ॥

१३२. येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥४ ॥

जिन अग्निदेव के लिए पाँच याग किए जाते हैं और जिन इन्द्र आदि देव के लिए तीन याग किए जाते हैं और अग्नि में होमी हुई आहुतियाँ जिनका भाग है, अग्नि से बाहर डाली हुई आहुतियों का सेवन करने वाले बलिहरण आदि देव तथा पाँच दिशाएँ जिनके नियन्त्रण में रहती हैं । उन समस्त देवों को हम आयुष्यकामी व्यक्ति की आयुर्वृद्धि के लिए उत्तरदायी बनाते हैं ॥४ ॥

[३१- पाशमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - आशापालाक वास्तोष्पतिगण । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।]

१३३. आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥१ ॥

समस्त प्राणियों के अधिपति तथा अमरता से सम्पन्न इन्द्र आदि चार दिक्पालों के निमित्त हम सब हवि समर्पित करते हैं ॥१ ॥

१३४. य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसोअंहसः ॥२ ॥

हे देवो ! आप चारों दिशाओं के चार दिशापालक हैं । आप हमें हर प्रकार के पापों से बचाएँ तथा पतनोन्मुख पाशों से मुक्त करें ॥२ ॥

१३५. अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥३ ॥

(हे कुबेर !) हम इच्छित ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अश्रान्त होकर आपके लिए आहुति समर्पित करते हैं। हम श्लोण (लँगड़ापन) नामक रोग से रहित होकर आपके लिए घृत द्वारा आहुति समर्पित करते हैं । पूर्व वर्णित चतुर्थ दिक्पाल हमें स्वर्ण आदि सम्पत्ति प्रदान करें और हमारी आहुतियों से प्रसन्न हों ॥३ । ।

१३६. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥४ ॥

हमारी माता तथा हमारे पिता कुशल से रहें। हमारी गौएँ, हमारे स्वजन तथा सम्पूर्ण संसार कुशल से रहें। हम सब श्रेष्ठ ऐश्वर्य तथा श्रेष्ठ ज्ञान वाले हों और सैकड़ों वर्षों तक सूर्य को देखने वाले हों, (दीर्घजीवी) हों ॥४ ॥

[३२- महद्ब्रह्म सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा। **देवता** - द्यावापृथिवी । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ ककुम्मती अनुष्टुप्।]

१३७. इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१ ॥

हे जिज्ञासुओ ! आप इस विषय में ज्ञान प्राप्त करें कि वह ब्रह्म धरती पर अथवा द्युलोक में ही निवास नहीं करता, जिससे ओषधियाँ 'प्राण' प्राप्त करती हैं ॥१ ॥

१३८. अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ॥२ ॥

इन ओषधियों का निवास स्थान अन्तरिक्ष में है। जिस प्रकार थके हुए मनुष्य विश्राम करते हैं, उसी प्रकार ये ओषधियाँ अन्तरिक्ष में निवास करती हैं। इस बने हुए स्थान को विधाता और मनु आदि जानते हैं अथवा नहीं ?

१३९. यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम्। आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आपने तथा धरती ने जो कुछ भी उत्पन्न किया है। वह सब उसी प्रकार हर समय नया रहता है, जिस प्रकार सरोवर से निकलने वाले जलस्रोत अक्षय रूप में निकलते रहते हैं ॥३ ॥

१४०. विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधिश्रितम्।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४ ॥

यह अन्तरिक्ष इस जगत् का आवरण रूप है। धरती के आश्रय में रहने वाला यह विश्व आकाश से वृष्टि के लिए प्रार्थना करता है। उस द्युलोक तथा समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न पृथ्वी को हम नमन करते हैं ॥४ ॥

[३३- आपः सूक्त]

[**ऋषि** - शन्ताति। **देवता** - चन्द्रमा और आपः। **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१४१. हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१ ॥

जो जल सोने के समान आलोकित होने वाले रंग से सम्पन्न, अत्यधिक मनोहर, शुद्धता प्रदान करने वाला है, जिससे सवितादेव और अग्निदेव उत्पन्न हुए हैं। जो श्रेष्ठ रंग वाला जल अग्निगर्भ है, वह जल हमारी व्याधियों को दूर करके हम सबको सुख और शान्ति प्रदान करे ॥१ ॥

१४२. यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२ ॥

जिस जल में रहकर राजा वरुण सत्य एवं असत्य का निरीक्षण करते चलते हैं। जो सुन्दर वर्ण वाला जल अग्नि को गर्भ में धारण करता है, वह हमारे लिए शान्तिप्रद हो ॥२ ॥

१४३. यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३ ॥

जिस जल के सारभूत तत्त्व का तथा सोमरस का इन्द्रदेव आदि देवता द्युलोक में सेवन करते हैं। जो अन्तरिक्ष में विविध प्रकार से निवास करते हैं। वह अग्निगर्भा जल हम सबको सुख और शान्ति प्रदान करे ॥३ ॥

१४४. शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४ ॥

हे जल के अधिष्ठाता देव ! आप अपने कल्याणकारी नेत्रों द्वारा हमें देखें तथा अपने हितकारी शरीर द्वारा हमारी त्वचा का स्पर्श करें। तेजस्विता प्रदान करने वाला शुद्ध तथा पवित्र जल हमें सुख तथा शान्ति प्रदान करे ॥४

[३४- मधुविद्या सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - मधुवनस्पति। **छन्द** - अनुष्टुप्।]

१४५. इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥१ ॥

सामने स्थित, चढ़ने वाली मधुक नामक लता मधुरता के साथ पैदा हुई है। हम इसे मधुरता के साथ खोदते हैं। हे वीरुत् ! आप स्वभाव से ही मधुरता सम्पन्न हैं। अतः आप हमें भी मधुरता प्रदान करें ॥१ ॥

१४६. जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२ ॥

हमारी जिह्वा के अगले भाग में तथा जिह्वा के मूल भाग में मधुरता रहे। हे मधूलक लते ! आप हमारे शरीर, मन तथा कर्म में विद्यमान रहें ॥२ ॥

१४७. मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥३ ॥

हे मधुक ! आपको ग्रहण करके हमारा निकट का गमन मधुर हो और दूर का जाना मधुर हो। हमारी वाणी भी मधुरता युक्त हो, जिससे हम सबके प्रेमास्पद बन जाएँ ॥३ ॥

१४८. मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥४ ॥

हे मधुक लते ! आपकी समीपता को ग्रहण करके हम शहद से अधिक मीठे हो जाएँ तथा मधुर पदार्थ से भी ज्यादा मधुर हो जाएँ। आप हमारा ही सेवन करें। जिस प्रकार मधुर फलयुक्त शाखा से पक्षीगण प्रेम करते हैं, उसी प्रकार सब लोग हमसे प्रेम करें ॥४ ॥

१४९. परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥५ ॥

सब तरफ से घिरे हुए, मीठे ईख के सदृश, एक-दूसरे के प्रिय तथा मिठास युक्त रहने के निमित्त ही हे पत्नि ! हम तुमको प्राप्त हुए हैं। हमारी कामना करने वाली रहो तथा हमें परित्याग करके तुम न जा सको, इसीलिए हम तुम्हारे समीप आए हैं ॥५ ॥

[३५- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - हिरण्य, इन्द्राग्नी या विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती, ४ अनुष्टुप्‌गर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।]

१५०. यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥१ ॥

हे आयु की कामना करने वाले मनुष्य ! श्रेष्ठ विचार वाले दक्षगोत्रीय महर्षियों ने 'शतानीक राजा' को जो हर्ष प्रदायक सुवर्ण बाँधा था । उसी सुवर्ण को हम, आपके आयु वृद्धि के लिए, तेज और सामर्थ्य की प्राप्ति के लिए तथा सौ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त कराने के लिए आपको बाँधते हैं ॥१ ॥

१५१. नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्ये३तत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥२ ॥

सुवर्ण धारण करने वाले मनुष्य को ज्वर आदि रोग कष्ट नहीं पहुँचाते । मांस का भक्षण करने वाले असुर उसको पीड़ित नहीं कर सकते, क्योंकि यह हिरण्य इन्द्रादि देवों से पूर्व ही उत्पन्न हुआ है । जो व्यक्ति दाक्षायण सुवर्ण धारण करते हैं, वे सभी दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

१५२. अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।
इन्द्रइवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥३ ॥

हम इस मनुष्य में जल का ओजस्, तेजस्, शक्ति, सामर्थ्य तथा वनस्पतियों के समस्त वीर्य स्थापित करते हैं, जिस प्रकार इन्द्र से सम्बन्धित बल इन्द्र के अन्दर विद्यमान रहता है, उसी प्रकार हम उक्त गुणों को इस व्यक्ति में स्थापित करते हैं । अतः बलवृद्धि की कामना करने वाले मनुष्य स्वर्ण धारण करें ॥३ ॥

१५३. समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥४ ॥

हे समस्त धन की कामना करने वाले मनुष्य ! हम आपको समान मास वाली ऋतुओं तथा संवत्सर पर्यन्त रहने वाले गौ दुग्ध से परिपूर्ण करते हैं । इन्द्र, अग्नि तथा अन्य समस्त देव आपकी गलतियों से क्रोधित न होकर स्वर्ण धारण करने से प्राप्त फल की अनुमति प्रदान करें ॥४ ॥

॥ इति प्रथमं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ द्वितीय काण्डम् ॥

[१- परमधाम सूक्त]

[**ऋषि** - वेन । **देवता** - ब्रह्मात्मा । **छन्द** - त्रिष्टुप् , ३ जगती ।]

इस सूक्त के ऋषि वेन (स्वयं प्रकाशवान्-आत्मप्रकाश युक्त साधक) हैं । वे ही ऋतरूप ब्रह्म या परमात्म तत्त्व को जान पाते हैं । प्रथम मंत्र में उस ब्रह्म का स्वरूप तथा दूसरे में उसे जानने का महत्त्व समझाया गया है । तीसरे में जिज्ञासा, चौथे में बोध तथा पाँचवे में तद्रूपता का वर्णन है-

१५४. वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥१ ॥

गुहा (अनुभूति या अन्तःकरण) में जो सत्य, ज्ञान आदि लक्षण वाला ब्रह्म है, जिसमें समस्त जगत् विलीन हो जाता है, उस श्रेष्ठ परमात्मा को वेन (प्रकाशवान्-ज्ञानवान् या सूर्य) ने देखा । उसी ब्रह्म का दोहन करके प्रकृति ने नाम-रूप वाले भौतिक जगत् को उत्पन्न किया । आत्मज्ञानी मनुष्य उस परब्रह्म की स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१५५. प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥२ ॥

गन्धर्व (वाणी या किरणों से युक्त विद्वान् या सूर्य) के बारे में उपदेश दें । इस ब्रह्म के तीन पद हृदय की गुफा में विद्यमान हैं । जो मनुष्य उसे ज्ञात कर लेता है, वह पिता का भी पिता (सर्वज्ञ सबके उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्म का भी ज्ञाता) हो जाता है ॥२ ॥

१५६. स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥३ ॥

वह ब्रह्म हमारा पिता, जन्मदाता तथा भाई है, वही समस्त लोकों तथा स्थानों को जानने वाला है । वह अकेला ही समस्त देवताओं के नामों को धारण करने वाला है । समस्त लोक उसी ब्रह्म के विषय में प्रश्न पूछने के लिए (ज्ञाता के पास) पहुँचते हैं ॥३ ॥

१५७. परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३षो अग्निः ॥४ ॥

(ब्रह्मज्ञानी का कथन) मैं शीघ्र ही द्यावा-पृथिवी को (तत्त्व दृष्टि से) जान गया हूँ,(अस्तु) ऋत(परमसत्य) की उपासना करता हूँ । जिस प्रकार वक्ता के अन्दर वाणी विद्यमान रहती है, उसी प्रकार वह ब्रह्म समस्त लोकों में विद्यमान रहता है और वही समस्त प्राणियों को धारण तथा पोषण करने वाला है । निश्चित रूप से अग्नि भी वही है ॥४ ॥

१५८. परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥५ ॥

जहाँ अमृत सेवन करने वाले, समान आधार वाले देवगण (या अमृत - आनन्दसेवी देवपुरुष) विचरण करते हैं, उस ऋत (परमसत्य) के ताने-बाने को मैंने अनेक बार देखा है ॥५ ॥

[२- भुवनपति सूक्त]

[**ऋषि** - मातृनामा । **देवता** - गन्धर्व, अप्सरा समूह । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ विराट् जगती, ४ विराट् गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता गन्धर्व-अप्सरा हैं। गन्धर्व अर्थात् गांधर्वः - गां से भूमि, किरण, वाणी, इन्द्रिय का बोध होता है तथा धर्वः धारक, पोषक को कहते हैं। अप्सरा अर्थात् अप् सरस् - अप् सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न मूल क्रियाशील तत्त्व है, यह बात ऋग्वेद में भली-भाँति व्यक्त की जा चुकी है। अप् के आधार पर चलने वाली विभिन्न शक्तियाँ-प्राण की अनेक धाराएँ गन्धर्व पत्नियाँ कही गई हैं। इस आधार पर इस सूक्त के मंत्र अन्तरिक्ष-प्रकृति एवं काया में संचालित प्राण-प्रक्रिया पर घटित हो सकते हैं-

१५९. दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१ ॥

जो दिव्य गन्धर्व, पृथ्वी आदि लोकों को धारण करने वाले एक मात्र स्वामी हैं, वे ही इस संसार में नमस्य हैं। हे परमात्मन् ! आपका निवास स्थान द्युलोक में हैं। हम आपको नमन करते हैं तथा उपासना द्वारा आपसे मिलते हैं ॥१ ॥

१६०. दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः ॥२ ॥

समस्त लोकों के एक मात्र अधिपति गंधर्व (पृथ्वी को धारण करने वाले) द्युलोक में विद्यमान रहने वाले, दैवी आपदाओं के निवारक तथा सूर्य के त्वचा (रक्षक-आवरण) रूप हैं। वे सबके द्वारा नमस्कार करने तथा प्रार्थना करने योग्य हैं। सबके सुखदाता वे हमें भी सुख प्रदान करें ॥२ ॥

१६१. अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ॥३ ॥

प्रशंसनीय रूप वाली अप्सराओं (किरणों या प्राण धाराओं) से गन्धर्वदेव संगत (युक्त) हो गए हैं। इन अप्सराओं का निवास स्थान अन्तरिक्ष है। हमें बतलाया गया है कि ये (अप्सराएँ) वहीं से आतीं (प्रकट होतीं) तथा वहीं चली जाती (विलीन हो जाती) हैं ॥३ ॥

१६२. अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ॥४ ॥

हे देवियो ! आप मेघों की विद्युत् अथवा नक्षत्रों के आलोक में संसार का पालन करने वाले गन्धर्वदेव से संयुक्त होती हैं, इसलिए हम आपको नमन करते हैं ॥४ ॥

[विद्युत् के प्रभाव से तथा नक्षत्रों (सूर्यादि) के प्रभाव से किरणें या प्राणधाराएँ-धारक तत्त्वों-प्राणियों के साथ संयुक्त होती हैं-यह तथ्य विज्ञान सम्मत है।]

१६३. याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥५ ॥

प्रेरित करने वाली, ग्लानि को दूर करने वाली, आँखों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली तथा मन को अस्थिर करने वाली, जो गन्धर्व - पत्नी रूप अप्सराएँ हैं, हम उन्हें प्रणाम करते हैं ॥५ ॥

[प्राण की धाराएँ अथवा प्रकाश किरणें ही नेत्रादि को तुष्ट करतीं हैं, मन को तरंगित करने वाली भी वे ही हैं। मंत्र का भाव अप्सराओं के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों संदर्भों से सिद्ध होता है ।]

[३- आस्त्रावभेषज सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरा । **देवता** - भैषज्य, आयु, धन्वन्तरि । **छन्द** -अनुष्टुप्, ६ त्रिपात् स्वराट् उपरिष्टात् महाबृहती ।

१६४. अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात्। तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि ॥१

जो रक्षक-प्रवाह (सोम) मुञ्जवान् पर्वत के ऊपर से नीचे लाया जाता है, उसके अग्रभाग वनस्पति को हम इस प्रकार बनाते हैं, जिससे वह आपके लिए श्रेष्ठ औषधि बन जाए ॥१ ॥

१६५. आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते। तेषामसि त्वमुत्तममनास्त्रावमरोगणम् ॥२

हे दिव्य प्रवाह ! जो आपसे उत्पन्न होने वाली असीम ओषधियाँ हैं, वे अतिसार, बहुमूत्र तथा नाड़ीव्रण आदि रोगों को विनष्ट करने में पूर्णरूप से सक्षम हैं ॥२ ॥

१६६. नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्त्राणमिदं महत्। तदास्त्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥

प्राणों का विनाश करने वाले तथा देह को गिराने वाले असुर रूप रोग, व्रण के मुख को अन्दर से फाड़ते हैं; लेकिन वह मूँज नामक ओषधि घाव की अत्युत्तम ओषधि है । वह अनेकों व्याधियों को नष्ट कर देती है ॥३ ॥

१६७. उपजीका उद्धरन्ति समुद्रादधि भेषजम्। तदास्त्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ॥

धरती के नीचे विद्यमान जलराशि से व्याधि नष्ट करने वाली ओषधि रूप बमई (दीमक की बाँबी) की मिट्टी ऊपर आती है, यह मिट्टी आस्त्राव की ओषधि है । यह अतिसार आदि व्याधियों को शमित (शान्त) करती है ॥४ ॥

१६८. अरुस्त्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम्। तदास्त्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत्

खेत से उठाई हुई ओषधि रूप मिट्टी फोड़े को पकाने वाली तथा अतिसार आदि रोगों को समूल नष्ट करने वाली (रामबाण) ओषधि है ॥५ ॥

१६९. शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥६ ॥

ओषधि के लिए प्रयोग किया हुआ जल हर्ष प्रदायक होकर हमारी व्याधियों को शमित करने वाला हो । रोग को उत्पन्न करने वाले (असुरों) को इन्द्रदेव का वज्र विनष्ट करे । असुरों द्वारा मनुष्यों पर संधान किये गये व्याधिरूप बाण हम सबसे दूर जाकर गिरें ॥६ ॥

[४ - दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - चन्द्रमा अथवा जङ्गिड़ । **छन्द** -अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपंक्ति ।]

इस सूक्त के देवता चन्द्र और जंगिड़ (मणि) हैं । इसी सूक्त (मंत्र क्र.५) में उसे अरण्य-वन से लाया हुआ कहा गया है तथा अथर्व० १९.३४.९ में इसे वनस्पति कहा गया है । आचार्य सायण ने इसे वाराणसी क्षेत्र में पाया जाने वाला वृक्ष विशेष कहा है, आजकल इसके बारे में किसी को पता नहीं है । चन्द्रमा के साथ इसे देवता संज्ञा प्रदान करने से यह सोम प्रजाति की वनस्पति प्रतीत होती है । जंगिड़ मणि से उस ओषधि रस से तैयार मणि (गुटिका-गोली) का बोध होता है । इसी का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

१७०. दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥१ ॥

दीर्घायु प्राप्त करने के लिए तथा आरोग्य का प्रचुर आनन्द अनुभव करने के लिए हम अपने शरीर पर जंगिड़ मणि धारण करते हैं । यह जंगिड़ मणि रोगशामक है तथा दुर्बलता को दूर करके सामर्थ्य को बढ़ाने वाली है ॥१ ॥

१७१. जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात्।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥२ ॥

यह जंगिड़ मणि सहस्रों बलों से सम्पन्न होकर जमुहाई बढ़ाने वाली, दुर्बलता पैदा करने वाली, देह को सुखाने वाली तथा अकारण आँखों में आँसू आने वाले रोग से हमारी सुरक्षा करे ॥२ ॥

१७२. अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्त्रिणः। अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः।

यह जंगिड़ मणि सुखाने वाले रोग से हमारी सुरक्षा करती है और भक्षण करने वाली कृत्या आदि का विनाश करती है। यह हमारे समस्त रोगों का निवारण करने वाली सम्पूर्ण ओषधिरूप है, यह पाप से हमारी सुरक्षा करे ॥३ ॥

१७३. देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा। विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४

देवताओं द्वारा प्रदान किये गये, सुखदायक जंगिड़ मणि के द्वारा, हम सुखाने वाले रोगों तथा समस्त रोग-कीटाणुओं को संघर्ष में दबा सकते हैं ॥४ ॥

१७४. शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम्।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ॥५ ॥

सन (बाँधने के लिए सन से बने धागे अथवा सन का विशिष्ट योग) तथा जंगिड़ मणि विष्कंध रोग से हमारी रक्षा करें। इनमें से एक की आपूर्ति वन से तथा दूसरे की कृषि द्वारा उत्पादित रसों से की गई है ॥५ ॥

१७५. कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६ ॥

यह जंगिड़ मणि कृत्या आदि से सुरक्षा करने वाली है तथा शत्रुरूप व्याधियों को दूर करने वाली है। यह शक्तिशाली जंगिड़मणि हमारे आयुष्य की वृद्धि करे ॥६ ॥

[५- इन्द्रशौर्य सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु आथर्वण। **देवता** -इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ निचृत् उपरिष्टात् बृहती, २ विराट् उपरिष्टात् बृहती, ३ विराट् पथ्या बृहती, ४ पुरोविराट् जगती ।]

१७६. इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम्।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप आनन्दित होकर आगे बढ़ें। आप अपने अश्वों के द्वारा इस यज्ञ में पधारें। परितुष्ट तथा आनन्दित होने के लिए विद्वान् पुरुषों द्वारा अभिषुत किए गए मधुर सोमरस का पान करें ॥१ ॥

१७७. इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्व१र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥२ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप प्रशंसनीय तथा हर्षवर्धक मधुर सोमरस के द्वारा उदरपूर्ति करें। इसके बाद अभिषुत सोमरस तथा स्तुतियों के माध्यम से आपको स्वर्ग की तरह आनन्द प्राप्त हो ॥२ ॥

१७८. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥३ ॥

इन्द्रदेव समस्त प्राणियों के मित्र हैं तथा रिपुओं पर त्वरित गति से आक्रमण करने वाले हैं। उन्होंने वृत्र या

अवरोधक मेघ का संहार किया था। भृगु ऋषि के समान उन्होंने अंगिराओं के यज्ञों की साधनभूत गौओं का अपहरण करने वाले बलासुर का संहार किया था, सोमपान से हर्षित होकर रिपुओं को पराजित किया था ॥३ ॥

१७९. आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः ।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ॥४ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आपको अभिषुत सोमरस प्राप्त हो और आप उससे अपनी दोनों कुक्षियों को पूर्ण करें । हे इन्द्रदेव ! आप हमारे आवाहन को सुनकर, विवेकपूर्वक हमारे समीप पधारें तथा हमारे स्तुति - वचनों को स्वीकार करें और विराट् संग्राम के लिए अपने रक्षण साधनों के साथ हर्षपूर्वक तैयार रहें ॥४ ॥

१८०. इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥५ ॥

वज्रधारी इन्द्रदेव के पराक्रमपूर्ण कृत्यों का हम बखान करते हैं । उन्होंने वृत्र तथा मेघ का संहार किया था । उसके बाद उन्होंने वृत्र के द्वारा अवरुद्ध किये हुए जल को प्रवाहित किया तथा पर्वतों को तोड़कर नदियों के लिए रास्ता बनाया ॥५ ॥

१८१. अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥६ ॥

उन इन्द्रदेव ने वृत्र का संहार किया तथा मेघ को विदीर्ण किया । वृत्र के पिता त्वष्टा ने इन्द्रदेव के निमित्त अपने वज्र को तेज किया । उसके बाद गौओं के सदृश अधोमुख होकर वेग से बहने वाली नदियाँ समुद्र तक पहुँचीं ॥६ ॥

१८२. वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥७ ॥

वृष के सदृश व्यवहार करने वाले इन्द्रदेव ने सोमरूप अन्न को प्रजापति से ग्रहण किया तथा तीन उच्च स्थानों में अभिषुत सोमरस का पान किया । उसके बल से बलिष्ठ होकर उन्होंने बाणरूप वज्र धारण किया तथा हिंसा करने वाले रिपुओं में प्रथम उत्पन्न हुए इस वीर (वृत्र) को विनष्ट किया ॥७ । ।

[६- सपत्नहाग्नि सूक्त]

[**ऋषि** - शौनक । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४ चतुष्पदार्षी पङ्क्ति, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्ति ।]

१८३. समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपको माह, ऋतु, वर्ष, ऋषि तथा सत्य-आचरण समृद्ध करें । आप दैवी तेजस् से सम्पन्न होकर समस्त दिशाओं को आलोकित करें ॥१ ॥

१८४. सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप भलीप्रकार प्रदीप्त होकर इस याजक की वृद्धि करें तथा इसे प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए उत्साहित रहें । हे अग्निदेव ! आपके साधक कभी विनष्ट न हों । आपके समीप रहने वाले विप्र कीर्ति-सम्पन्न हों तथा दूसरे अन्य लोग (जो यज्ञादि नहीं करते, वे) कीर्तिवान् न हों ॥२ ॥

१८५. त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।

सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! ये ब्राह्मण याजक आपकी साधना करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमारी भूलों से भी क्रोधित न हों । हे अग्निदेव ! आप हमारे रिपुओं तथा पापों को पराजित करके अपने घर में सावधान होकर जाग्रत् रहें ॥३ ॥

१८६. क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व ।

सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप क्षत्रिय बल से भली प्रकार संगत (युक्त) हों । हे अग्निदेव ! आप अपने मित्रों के साथ मित्रभाव से आचरण करें । हे अग्निदेव ! आप समान जन्म वाले विप्रों के बीच में आसीन होकर तथा राजाओं के मध्य में विशेष रूप से आवाहनीय होकर, इस यज्ञ में आलोकित हों ॥४ ॥

१८७. अति निहो अति सृधोऽत्यचित्तीरति द्विषः ।

विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे विषय-विकारों को दूर करें, (जो हमें सूअर, कुत्ते आदि की घिनौनी योनि में डालने वाले हैं ।) आप हमारे शरीर को सुखाने वाली व्याधियो तथा पाप में प्रेरित करने वाली दुर्बुद्धियों को दूर करें । आप हमारे रिपुओं का विनाश करें और हमें पराक्रमी सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

[७- शापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** -अथर्वा । **देवता** -भैषज्य, आयु, वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप् , १ भुरिगनुष्टुप्, ४ विराडुपरिष्टाद् बृहती ।]

१८८. अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी ।

आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि ॥१ ॥

पिशाचों द्वारा किये हुए पाप को दूर करने वाली, ब्राह्मणों के शाप को विनष्ट करने वाली तथा देवताओं द्वारा उत्पन्न होने वाली वीरुध् (दूर्वा ओषधि) हमारे समस्त शापों को उसी प्रकार धो डालती है, जिस प्रकार जल समस्त मलों को धो डालता है ॥१ ॥

१८९. यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः ।

ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् ॥२ ॥

रिपुओं के शाप, स्त्रियों के शाप तथा ब्राह्मण के द्वारा क्रोध में दिये गये शाप हमारे पैर के नीचे हो जाएँ (अर्थात् नष्ट हो जाएँ) ॥२ ॥

१९०. दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम् । तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ॥

द्युलोक से मूल भाग के रूप में आने वाली तथा धरती के ऊपर फैली हुई उस हजार गाँठों वाली वनस्पति (दूब) से हे मणे ! आप हमारी सब प्रकार से सुरक्षा करें ॥३ ॥

१९१. परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद् धनम् ।

अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ॥४ ॥

हे मणे ! आप हमारी, हमारे पुत्र-पौत्रों तथा हमारे ऐश्वर्य की सुरक्षा करें । अदानी रिपु हमसे आगे न बढ़ें तथा हिंसक मनुष्य हमारा विनाश करने में सक्षम न हों ॥४ ॥

१९२. शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त्तेन नः सह । चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ॥

शाप देने वाले व्यक्ति के पास ही शाप लौट जाए ।जो श्रेष्ठ अन्तःकरण वाले मनुष्य हैं, उनके साथ हमारी मित्रता स्थापित हो ।हे मणे !अपनी आँखों से बुरे इशारे करने वाले मनुष्य की पसलियों को छिन्न-भिन्न कर डालें ॥

[८- क्षेत्रियरोगनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - वनस्पति, यक्ष्मनाशन । **छन्द** -अनुष्टुप् , ३ पथ्यापङ्क्ति, ४ विराट् अनुष्टुप्, ५ निचृत् पथ्यापंक्ति ।]

इस सूक्त में क्षेत्रिय (वंशानुगत) रोग-निवारण के सूत्र कहे गये हैं । प्रथम मंत्र में उसके लिए उपयुक्त नक्षत्र योग का तथा तीसरे में वनौषधियों का उल्लेख है । मंत्र २, ४ एवं ५ सहयोगी तंत्र, उपचार, पथ्यादि के संकेत प्रतीत होते हैं । तथ्यों तक पहुँचने के लिए शोध कार्य अपेक्षित है-

१९३. उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके । वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥

विचृत नामक प्रभावपूर्ण दोनों तारिकाएँ (अथवा उपयुक्त ओषधि एवं तारिकाएँ) उगी हैं । वे वंशानुगत रोग के अधम एवं उत्तम पाश को खोल दें ॥१ ॥

[कुछ आचार्यों ने भगवती को तारकों का विशेषण माना है, कुछ उसका अर्थ दिव्य ओषधि के रूप में करते हैं ।]

१९४. अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥२

यह रात्रि चली जाए, हिंसक (रोगाणु) भी चले जाएँ ।वंशानुगत रोग की ओषधि उस रोग से मुक्ति प्रदान करे

[इस मंत्र से रोगमुक्ति का प्रयोग रात्रि के समापन काल अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त में करने का आभास मिलता है ।]

१९५. बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥३ ॥

भूरे और सफेद रंग वाले अर्जुन की लकड़ी, जौ की बाल तथा तिल सहित तिल की मञ्जरी व्याधि को विनष्ट करे । आनुवंशिक रोग को विनष्ट करने वाली यह वनस्पति इस रोग से विमुक्त करे ॥३ ॥

[अर्जुन की छाल, जौ, तिल आदि का प्रयोग ओषधि अनुपान या पथ्यादि के रूप में करने का संकेत प्रतीत होता है ।]

१९६. नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥४ ॥

रोग के शमन के लिए (ओषधि उत्पादन में उपयोगी) वृषभ युक्त हल तथा उसके काष्ठ युक्त अवयवों को नमन है । आनुवंशिक रोग को विनष्ट करने वाली ओषधि आपके क्षेत्रिय रोग को विनष्ट करे ॥४ ॥

१९७. नमः सनिस्त्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यो नमः क्षेत्रस्य पतये ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ॥५ ॥

(ओषधि उत्पादन में सहयोगी) जल प्रवाहक अक्ष को नमन, संदेश पहुँचाने वाले को नमन, (उत्पादक) क्षेत्र के स्वामी को नमन । क्षेत्रिय रोग निवारक ओषधि इस रोग का निवारण करे ॥५ ॥

[९- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - यक्ष्मनाशन, वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपांक्ति ।]

१९८. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥१ ॥

हे दशवृक्ष ! राक्षसी की तरह इसको (रोगी को) जकड़ने वाले गठिया रोग से आप मुक्त करें । हे वनौषधे !

व्याधि के कारण (निष्क्रिय) इस व्यक्ति को पुनः जनसमाज में जाने योग्य बनाएँ ॥१ ॥

१९९. आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात्। अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥

(हे वनस्पते !) आपकी कृपा से यह व्यक्ति जीवन पाकर जीवित मनुष्यों के समूह में पुनः आ जाए और अपने पुत्रों का पिता हो जाए तथा मनुष्यों के बीच में अत्यधिक सौभाग्यवान् बन जाए ॥२ ॥

२००. अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन्। शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ॥३

व्याधि से मुक्त हुए व्यक्ति को विद्याओं का स्मरण हो जाए तथा मनुष्यों के निवास स्थान को फिर से जान जाए, क्योंकि इस रोग के सैकड़ों वैद्य हैं तथा हजारों ओषधियाँ हैं ॥३ ॥

२०१. देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः। चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि

हे ओषधे ! व्याधि की पीड़ा से रोगी को मुक्त करने तथा रोग का प्रतिरोध करने आदि आपके बल को समस्त देव जानते हैं। इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर आपके गुण - धर्म को देव, ब्राह्मण तथा चिकित्सक जानते हैं ॥४ ॥

२०२. यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ॥५ ॥

जो वैद्य अनवरत चिकित्सा का कार्य करते हैं, वही कुशलता प्राप्त करते हैं और वही श्रेष्ठ वैद्य बनते हैं। वही चिकित्सक अन्य चिकित्सकों से परामर्श करके आपके रोगों की चिकित्सा कर सकते हैं ॥५ ॥

[१०- पाशमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा। **देवता** - १-८ द्यावापृथिवी, १ ब्रह्म, निर्ऋति, २ आपोदेव, अग्नि (पूर्वपाद), सोम, ओषधि समूह (उत्तर पाद), ३ पूर्वपाद का वात, उत्तर पाद का चारों दिशाएँ, ४-८ वातपत्नी, सूर्य, यक्ष्म, निर्ऋति। **छन्द** -सप्तपदा धृति, १ त्रिष्टुप्, २ सप्तपादष्टि, ६ सप्तपदा अत्यष्टि।]

२०३. क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१ ॥

(हे रोगिन् !) हम तुम्हें पैतृक रोग से, कष्टों से, द्रोह से, सम्बन्धियों के क्रोध से तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करते हैं। हम तुम्हें ब्रह्मज्ञान से दोषरहित करते हैं और यह द्यावा-पृथिवी भी तुम्हारे लिए हितकारी हो ॥१ ॥

२०४. शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥२ ॥

(हे रोगिन् !) समस्त जल के साथ अग्निदेव आपके लिए हितकारी हों तथा काम्पील (कबीला) आदि ओषधियों के साथ सोमरस भी आपके लिए हर्षकारी हो। हम आपको क्षेत्रिय रोग से, पीड़ा से, द्रोह से, बन्धुओं के क्रोध से तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं। यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥२ ॥

२०५. शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः। एवाहं त्वां
क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥३ ॥

(हे रोगिन् !) अन्तरिक्ष में संचरण करने वाले वायुदेव आपके लिए सामर्थ्य एवं कल्याण प्रदान करें तथा चारों दिशाएँ आपके लिए हितकारी हों । हम आपको आनुवंशिक रोग, द्रोह, पीड़ा, बन्धुओं के क्रोध तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं । यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥

२०६. इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥४ ॥

प्रकाशमयी चारों उपदिशाएँ वायुदेव की पत्नियाँ हैं, उनको आदित्यदेव चारों तरफ से देखते हैं । वे आपका कल्याण करें । हे रोगिन् ! हम भी आपको आनुवंशिक रोगों, द्रोह, बन्धुओं के क्रोध तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं । यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥४ ॥

२०७. तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥५ ॥

(हे रोगिन् !) हम आपको व्याधिरहित करके वृद्धावस्था तक जीवित रहने के लिए उन (पूर्व आदि चारों) दिशाओं में स्थापित करते हैं । आपके समीप से क्षय रोग तथा सम्पूर्ण कष्ट अधोमुखी होकर दूर चले जाएँ । हे रोगिन् ! हम आपको आनुवंशिक रोग, पीड़ा, द्रोह, बन्धुओं के क्रोध तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं । यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥५ ॥

२०८. अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥६ ॥

(हे रोगिन् !) क्षय रोग, रोग के पाप, निन्दा योग्य कर्म, विद्रोह के बन्धन तथा जकड़ने वाले वात रोग से आप छुटकारा पा रहे हैं, अर्थात् निश्चित रूप से मुक्त हो रहे हैं । हम भी आपको पैतृक रोग की पीड़ा, द्रोह, बन्धुओं के क्रोध तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं । यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥६ ॥

२०९. अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥७ ॥

हे व्याधिग्रस्त मानव ! आप रिपु समान बाधक रोग से मुक्त हों और अब आप हर्ष को प्राप्त करें । आप अपने पुण्य के परिणाम स्वरूप इस कल्याणमय लोक में पधारे हैं । हम भी आपको आनुवंशिक रोग की पीड़ा, द्रोह, बन्धुओं के आक्रोश तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं । यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥७ ॥

२१०. सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः । एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥८ ॥

जिस प्रकार देवताओं ने सत्य रूप सूर्य को राहु नामक ग्रह से मुक्त किया था, उसी प्रकार हम आपको पैतृक रोग की पीड़ा, द्रोह के पाप, बन्धुओं के आक्रोश तथा वरुणदेव के पाश से मुक्त करके, ब्रह्मज्ञान के द्वारा दोषरहित करते हैं। यह द्यावा-पृथिवी भी आपके लिए कल्याणकारी हो ॥८ ॥

[११- श्रेय : प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - कृत्यादूषण । **छन्द** - त्रिपदा परोष्णिक्, १ चतुष्पदा विराट् गायत्री, ४ पिपीलिक मध्या निचृत् गायत्री ।]

इस सूक्त के देवता 'कृत्या दूषण' हैं। अनिष्टकारी कृत्या शक्ति के निवारणार्थ किसी समर्थ शक्ति की वन्दना इसमें की गयी है। कौशिक सूत्र में इस सूक्त के साथ 'तिलकमणि' को सिद्ध करके बाँधने का विधान दिया गया है। सायण आदि आचार्यों ने इसी आधार पर इस सूक्त को 'तिलकमणि' के प्रति कहा गया मानकर इसके अर्थ किए हैं। ऐसे अर्थ ठीक होते हुए भी एकांगी ही कहे जा सकते हैं। जीवन में प्रकट होने वाले विभिन्न कृत्या दोषों के निवारण के भाव से इसे ईश्वर अंश के रूप में स्थित जीव चेतना के प्रति कहा गया भी माना जा सकता है। प्रस्तुत भाषार्थ दोनों प्रयोजनों को समाहित करते हुए किया गया है। सुधी पाठक इसी भाव से इसे पढ़ने-समझने का प्रयास करें, ऐसी अपेक्षा है-

२११. दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥

(हे तिलकमणे अथवा जीवसत्ता !) आप दोषों को भी दूषित (नष्ट) करने में समर्थ हैं। अनिष्टकारी हथियारों के लिए, आप विनाशक हथियार हैं आप वज्र के भी वज्र हैं, इसलिए आप श्रेयस्कर बनें, दोषों (शत्रुओं) की समानता से आगे (अधिक समर्थ) सिद्ध हों ॥१ ॥

२१२. स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।२

आप स्रक्त्य (तिलकवृक्ष से उत्पन्न या गतिशील) हैं, प्रतिसर (आघात को उलट देने में समर्थ) हैं, प्रत्याक्रमण करने में समर्थ हैं।अस्तु, आप श्रेयस्कर बनें और दोषों (शत्रुओं) की समानता से आगे (अधिक समर्थ) सिद्ध हों।

२१३. प्रति तमभि चर यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥३

जो (शत्रु) हमसे द्वेष करते (हमारे विकास में बाधक बनते) हैं तथा जिनसे हम द्वेष करते (उनका निवारण चाहते) हैं, उनपर आप प्रत्याक्रमण करें। इस प्रकार आप श्रेयस्कर बनें, दोषों (शत्रुओं) से अधिक समर्थ बनें ॥३ ॥

२१४. सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥४ ॥

आप (आवश्यकता के अनुरूप) ज्ञान-सम्पन्न हैं, तेजस्विता को धारण करने में समर्थ हैं तथा शरीर के रक्षक हैं, अस्तु, आप श्रेयस्कर सिद्ध हों, दोषों (शत्रुओं) की समानता से आगे बढ़ें ॥४ । ।

२१५. शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥५ ॥

आप शुक्र (उज्ज्वल अथवा वीर्यवान्) हैं, तेजस्वी हैं, आत्मसत्ता सम्पन्न हैं तथा ज्योति रूप (स्व प्रकाशित) हैं। आप श्रेयस्कर बनें तथा समान स्तर वालों से आगे बढ़ें ॥५ ॥

[१२- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - भरद्वाज । **देवता** - १ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष, २ देवगण, ३ इन्द्र, ४ आदित्यगण, वसुगण, पितर अङ्गिरस, ५ पितर सौम्य, ६ मरुद्गण, ब्रह्मद्विट्, ७ यमसादन (यमस्थान), ब्रह्म, ८ अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २ जगती, ७-८ अनुष्टुप् ।]

२१६. द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१ ॥

द्यावा-पृथिवी, विस्तृत अन्तरिक्ष, समस्त क्षेत्र की पत्नी (प्रकृति). अद्‌भुत सूर्यदेव, वायु को स्थान देने वाला विशाल अन्तरिक्ष आदि, हमारे तप्त (संतप्त) होने पर ये सब भी संतप्त (अनिष्ट निवारण के लिए उद्यत) हों ॥१ ॥

२१७. इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२ ॥

हे यजनीय देवो ! आप हमारा निवेदन सुनें कि ऋषि भरद्वाज हमें उक्थ (मंत्रादि) प्रदान कर रहे हैं । सत्कर्मों में निमग्न हमारे मन को जो रिपु दु:खी करते हैं, उन पापों को पाश में बाँधकर उचित स्थान पर नियोजित करें ॥२ ॥

२१८. इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमरस पान द्वारा आनन्दित मन से हमारे कथन को सुनें । रिपुओं द्वारा किये गये दुष्कर्मों के कारण हम आपको बारम्बार पुकारते हैं । जो शत्रु हमारे मन को पीड़ा पहुँचाते हैं, हम उनको फरसे के द्वारा वृक्ष की तरह काटते हैं ॥३ ॥

२१९. अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥४ ॥

तीन (विद्याओं या छन्दों) एवं अस्सी मंत्रों सहित सामगान करने वालों के साथ, वसु , अंगिरा (रुद्र) एवं आदित्यों (दिव्य पितरों) सहित हमारे पितरों द्वारा किये गए इष्ट (यज्ञ -उपासनादि) तथा पूर्त (सेवा-सहयोगपरक) कर्म (उनके पुण्य) हमारी रक्षा करें । हम दिव्य सामर्थ्य एवं आक्रोशपूर्वक अमुक (दोष या शत्रु) को अपने अधिकार में लेते हैं ॥४ ॥

[वसु , रुद्र तथा आदित्यों की गणना दिव्य पितरों में की जाती है, तर्पण में पितरों को क्रमशः वसु, रुद्र और आदित्य स्वरूप कहकर जलप्रदान किया जाता है । इससे पितरों की लौकिक सम्पदा के अतिरिक्त उनके द्वारा अर्जित पुण्य-सम्पदा का 'विशेष लाभ हमें प्राप्त होता है ।]

२२०. द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥५ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! हमारे अनुकूल होकर आप तेजस्-सम्पन्न बनें । हे समस्त देवताओ ! हमारे अनुकूल होकर आप कार्यारंभ करें । हे अङ्गिराओ तथा सोमवान् पितरो ! हमारा अहित चाहने वाले पाप के भागीदार हों ॥५ ॥

२२१. अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥६ ॥

हे मरुद्‌गणो ! जो अतिवादी ब्रह्म-ज्ञान की तथा तदनुरूप किये जाने वाले (कार्यों) की निन्दा करते हैं, उनके सब प्रयास उन्हें संताप देने वाले हों । द्युलोक उन ब्रह्मद्वेषियों को पीड़ित करे ॥६ ॥

२२२. सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरङ्कृतः ॥७ ॥

हे रोग या शत्रु ! तुम्हारे सात प्राणों तथा आठ मुख्य नाड़ियों आदि को हम ब्रह्म शक्ति से बींधते हैं । तुम अग्नि को दूत बनाकर यमराज के घर में सुशोभित हो जाओ ॥७ ॥

२२३. आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि । अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ॥८

हम तुम्हारे पदों को प्रज्वलित अग्नि में डालते हैं । यह अग्नि आपके शरीर में प्रवेश कर जाए तथा आपकी वाणी और प्राण में संव्याप्त हो जाए ॥८ ॥

[१३- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ अग्नि, २-३ बृहस्पति, ४-५ आयु, विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ५ विराट् जगती ।]

इस सूक्त को प्रथम वस्त्र परिधान सूक्त के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इस प्रक्रिया को ३-४ वर्ष की अवस्था में करने का विधान है; किन्तु सूक्त को इसी उपचारपरक अर्थ तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए । मंत्रों में 'वास' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ वस्त्र के साथ आवास भी हो सकता है । फिर सूक्त के देवता अग्नि हैं, उनसे रक्षा एवं वास प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है । ऐश्वर्य एवं पोषण के ताने-बाने से उसे तैयार करने की बात कही गयी है । अस्तु, स्थूल वस्त्रों की अपेक्षा सूक्त कबीर की जीवन रूपी चादर के साथ अधिक युक्तिसंगत बैठता है । अध्ययन के समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए-

२२४. आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥१ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप जीवन प्रदान करने वाले तथा स्तुति ग्रहण करने वाले हैं । आप घृत के समान ओजस्वी तथा घृत का सेवन करने वाले हैं । आप मधुर गव्य (गौ या प्रकृति जन्य) पदार्थों का सेवन करके इस (बालक या प्राणी) की सब प्रकार से उसी प्रकार रक्षा करें, जैसे पिता, पुत्र की रक्षा करता है ॥१ ॥

२२५. परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥२ ॥

हे देवो ! आप इस (बालक या जीव) को वास (वस्त्र या काया रूप आच्छादन) प्रदान करें तथा तेजस्विता धारण कराएँ । आप दीर्घ आयु प्रदान करें, वृद्धावस्था के उपरान्त मरने वाला बनाएँ । बृहस्पतिदेव ने यह आच्छादन राजा सोम को कृपापूर्वक प्रदान किया ॥२ ॥

२२६. परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥३ ॥

(हे बालक या जीव !) इस वस्त्र को तुम अपने कल्याण के लिए धारण करो । तुम गौओं (इन्द्रियों) को विनाश से बचाने के लिए ही हो । तुम सौ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करो और ऐश्वर्य तथा पोषण का ताना-बाना बुनते रहो ॥३ ॥

[यहाँ साधक को स्वयं अपने लिए वस्त्र बुनने का परामर्श दिया गया है । स्थूल दैवी शक्तियाँ ताने-बाने के सूत्र प्रदान करती हैं, उनका सुनियोजन साधक को स्वयं करना होता है ।]

२२७. एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥४ ॥

(हे बालक या साधक !) आओ इस पत्थर (साधनापरक दृढ़ आधार) पर स्थित हो जाओ; ताकि तुम्हारी काया पत्थर के समान दृढ़ बने । देव शक्तियाँ तुम्हारी आयु को सौ वर्ष की करें ॥४ ॥

[दृढ़ अनुशासनों पर स्थिर होकर ही मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है ।]

२२८. यस्य ते वासः प्रथमवास्यं१ हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ॥५ ॥

(हे बालक या जीव !) तुम्हारे जिस अस्तित्व के लिए यह प्रथम आच्छादन प्रदान किया गया है, उसकी रक्षा सभी देवता करें । इसी प्रकार श्रेष्ठ जन्म वाले, सुवर्धित तथा विकासमान और भी भाई तुम्हारे पीछे हों ॥५ ॥

[स्थूल अर्थों में प्रथम वस्त्र (तीसरे-चौथे वर्ष में) प्रदान करने के बाद ही अन्य भाइयों के लिए आशीर्वचन दिया जाता है । इस आधार पर संतानों के बीच ३-४ वर्ष का अंतर सहज ही होना चाहिए । सूक्ष्म अर्थों में कामना की गयी है कि जीवन का तेजस्वी ताना-बाना बुनने वालों के और भी अनुगामी हों, यह प्रक्रिया सतत चलती रहे ।]

[१४- दस्युनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - शालाग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ भुरिक् अनुष्टुप्, ४ उपरिष्टाद् विराट् बृहती ।]

इस सूक्त के देवता शालाग्नि हैं । यज्ञशाला में स्थापित अग्नि को 'शालाग्नि' कहा जाता है । उनके माध्यम से राक्षसियों (राक्षसी प्रवृत्तियों) के निवारण-विनाश के भाव व्यक्त किये गये हैं । कई भाष्यकारों ने उनके लिए प्रयुक्त विशेषणों को उस नाम विशेष वाली राक्षसी कहा है । उस नाम विशेष के साथ उस गुण विशेष वाली राक्षसी (प्रवृत्तियों) का अर्थ अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है-

२२९. निः सालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥१ ॥

निःसाला (निष्कासित करने वाली) , धृष्णु (भयानक) , धिषण (अभिभूत करने वाली) , एकवाद्या (भयानक, हठपूर्ण एक ही स्वर से बोलने वाली) संबोधन वाली, खा जाने वाली तथा सदा चीखने वाली, चण्ड (क्रोध या कठोरता) की संतानों को हम नष्ट कर दें ॥१ ॥

[क्रोध या कठोरता से ही विभिन्न प्रकार की दुष्ट प्रवृत्तियाँ पनपती हैं, अतः उन्हें चण्ड की संतानें कहा जाना उचित है ।]

२३०. निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥२ ॥

हे मगुन्दी (पाप उत्पन्न करने वाली) राक्षसी की पुत्रियो ! हम तुम्हें अपने गौओं की गोशालाओं से निकालते हैं । हम तुम्हें अन्नादि से पूर्ण भवनों, गाड़ियों से बाहर निकालकर नष्ट करते हैं ॥२ ।।

२३१. असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः । तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ॥३ ।

(निकाली जाने के बाद) अरायि (दरिद्रता या विपत्ति जन्य) तथा सेदि (क्लेश-महामारी उत्पादक) संबोधन वाली (आसुरी शक्तियाँ) जो नीचे वाले गृह (अधोलोक या भू-गर्भ) हैं, वहीं जाएँ, वहीं रहें ॥३ ॥

२३२. भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४ ॥

प्राणियों के पालक तथा सोमपायी इन्द्रदेव, हमेशा क्रोध करने वाली इन पिशाचियों को हमारे घर से बाहर करें तथा अपने वज्र से इन्हें दबाएँ (नष्ट करें) ॥४ ॥

२३३. यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥५ ॥

हे राक्षसियो ! तुम कुष्ठ, संग्रहणी आदि आनुवंशिक रोगों की मूल कारण हो । तुम रिपुओं द्वारा प्रेरित हो और क्षति पहुँचाने वाले चोरों के समीप पैदा हुई हो । अस्तु , तुम हमारे घर से बाहर होकर विनष्ट हो जाओ ॥५ ॥

२३४. परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन् वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥६ ॥

जिस प्रकार द्रुतगामी घोड़े अपने लक्ष्य पर आक्रमण करके खड़े हो (पहुँच) जाते हैं, उसी प्रकार इन राक्षसियों के घरों पर हम आक्रमण कर चुके हैं । हे पिशाचियो ! तुम सब युद्ध में परास्त हो गईं और हमने तुम्हारे निवास स्थान पर नियन्त्रण कर लिया है । अत: तुम सब निराश्रित होकर विनष्ट हो जाओ ॥६ ॥

[१५- अभयप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** -प्राण, अपान, आयु । **छन्द** -त्रिपाद् गायत्री ।]

२३५. यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥१ ॥

जिस प्रकार द्युलोक एवं पृथ्वी लोक न भयभीत होते हैं और न नष्ट होते हैं, उसी प्रकार हे हमारे प्राण ! तुम भी (नष्ट होने का) भय मत करो ॥१ ॥

२३६. यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥२ ॥

रात्रि और दिन न डरते हैं, न ही विनष्ट होते हैं । हे मेरे प्राण ! तुम भी (नष्ट होने का) भय मत करो ॥२ ॥

२३७. यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥३ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं, न ही विनष्ट होते हैं, उसी प्रकार हे प्राण ! तुम भी विनाश से मत डरो ॥३ ॥

२३८. यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥४ ॥

जिस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय न डरते हैं, न ही विनष्ट होते हैं, उसी प्रकार हे हमारे प्राण ! तुम भी विनाश का भय मत करो ॥४ ॥

२३९. यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥५ ॥

जिस प्रकार सत्य और असत्य न किसी से भयभीत होते हैं, न ही विनष्ट होते हैं, उसी प्रकार हे हमारे प्राण ! तुम भी मृत्यु भय से मुक्त होकर रहो ॥५ ॥

२४०. यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥६ ॥

जिस प्रकार भूत और भविष्य न किसी से भयभीत होते हैं, न ही विनष्ट होते हैं, उसी प्रकार हे हमारे प्राण ! तुम भी मृत्यु भय से मुक्त होकर रहो ॥६ ॥

[१६- सुरक्षा सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - प्राण, अपान, आयु । **छन्द** -१,३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी उष्णिक्, ४-५ द्विपदासुरी गायत्री ।]

२४१. प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१ ॥

हे प्राण और अपान ! आप दोनों मृत्यु से हमारी सुरक्षा करें और हमारी आहुति स्वीकार करें ॥१ ॥

२४२. द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥२ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों सुनने की शक्ति प्रदान करके हमारी सुरक्षा करें तथा आहुति ग्रहण करें ॥२ ।

२४३. सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३ ॥

हे सूर्यदेव ! आप हमें देखने की शक्ति प्रदान करके हमारी सुरक्षा करें और हमारी आहुति ग्रहण करें ॥३ ॥

२४४. अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! आप समस्त देवताओं के साथ हमारी सरक्षा करें और हमारी आहति ग्रहण करें ॥४ ॥

२४५. विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५ ॥

हे समस्त प्राणियों का पोषण करने वाले विश्वम्भरदेव ! आप अपनी समस्त पोषण-शक्ति से हमारी सुरक्षा करें तथा हमारी आहुति ग्रहण करें ॥५ ॥

[१७- बलप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - प्राण, अपान, आयु । **छन्द** - एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी उष्णिक् ।]

२४६. ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप ओजस्वी हैं । अत: हमें ओज प्रदान करें; हम आपको आहुति प्रदान करते हैं ॥१ ॥

२४७. सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप शौर्यवान् हैं, इसलिए हमें शौर्य प्रदान करें, हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥२ ॥

२४८. बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप बल से सम्पन्न हैं, अत: हमें बल प्रदान करें, हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥३ ॥

२४९. आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥४ ॥

हे अग्ने !आप जीवनशक्ति-सम्पन्न हैं ।अत:हमें वह शक्ति प्रदान करें; हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥४ ॥

२५०. श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥५ ॥

हे अग्ने !आप श्रवणशक्तिसम्पन्न हैं ।अत: हमें वह शक्ति प्रदान करें; हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥५ ॥

२५१. चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ॥६ ॥

हे अग्ने !आप दर्शनशक्ति-सम्पन्न हैं ।अत: हमें वह शक्ति प्रदान करें, हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥६ ॥

२५२. परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप परिपालन की शक्ति से सम्पन्न हैं । अत: आप हमें पालन करने की शक्ति प्रदान करें, हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥७ ॥

[१८- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - द्विपदा साम्नी बृहती ।]

२५३. भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप रिपु विनाशक शक्ति से सम्पन्न हैं । अत: आप हमें रिपु नाशक शक्ति प्रदान करें, हम आपको आहुति प्रदान करते हैं ॥१ ॥

२५४. सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रत्यक्ष प्रतिद्वंद्वियों को विनष्ट करने वाली शक्ति से सम्पन्न हैं । अत: आप हमें वह शक्ति प्रदान करें, हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥२ ॥

२५५. अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप निर्धनता को विनष्ट करने वाले हैं । आप हमें दरिद्रता विनाशक शक्ति प्रदान करें; हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥३ ॥

२५६. पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप पिशाचों को विनष्ट करने वाले हैं । अतः आप हमें पिशाचनाशक शक्ति प्रदान करें; हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥४ ॥

२५७. सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप आसुरी वृत्तियों को दूर करने की शक्ति से सम्पन्न हैं । अतः आप हमें वह शक्ति प्रदान करें; हम आपको हवि प्रदान करते हैं ॥५ ॥

[१९- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - अग्नि । **छन्द** -एकावसाना निचृत् विषमा त्रिपदा गायत्री, ५ एकावसाना भुरिक् विषमा त्रिपदा गायत्री ।]

२५८. अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपके अन्दर जो ताप है, उस शक्ति के द्वारा आप रिपुओं को तप्त करें । जो शत्रु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिससे हम विद्वेष करते हैं, उन रिपुओं को आप संतप्त करें ॥१ ॥

२५९. अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपके अन्दर जो हरने की शक्ति विद्यमान है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं की शक्ति का हरण करें, जो हम से विद्वेष करते हैं तथा हम जिससे द्वेष करते हैं ॥२ ॥

२६०. अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपके अन्दर जो दीप्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को जला दें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते है ॥३ ॥

२६१. अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपके अन्दर जो शोकाकुल करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन व्यक्तियों को शोकाकुल करें, जो हमसे शत्रुता करते हैं तथा जिनसे हम शत्रुता करते हैं ॥४ ॥

२६२. अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपके अन्दर जो पराभिभूत करने की शक्ति विद्यमान है, उस अभिभूत करने की तेजस्विता के द्वारा आप उन मनुष्यों को निस्तेज करें, जो हमसे शत्रुता करते हैं तथा जिनसे हम शत्रुता करते हैं ॥५ ॥

[२०- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि**-अथर्वा । **देवता**- वायु । **छन्द**-एकावसाना निचृत् विषमा त्रिपदागायत्री,।५ भुरिक् विषमा त्रिपदागायत्री].

२६३. वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आपके अन्दर जो ताप (प्रताप) है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को तप्त करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥१ ॥

२६४. वायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२ ॥

हे वायुदेव ! आपके अन्दर जो हरने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं की शक्ति का हरण करें, जो हमसे शत्रुता करते हैं तथा जिनसे हम शत्रुता करते हैं ॥२ ॥

२६५. वायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।३ ।।

हे वायुदेव ! आपके अन्दर जो प्रज्वलन शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को जला दें, जो हमसे शत्रुता करते हैं तथा जिनसे हम शत्रुता करते हैं ।।३ ।।

२६६. वायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।४ ।।

हे वायुदेव ! आपके अन्दर जो शोकाकुल करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन मनुष्यों को शोकाभिभूत करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।।४ ।।

२६७. वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।५ ।।

हे वायुदेव ! आपके अन्दर जो पराभिभूत करने की शक्ति विद्यमान है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को तेजहीन करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।।५ ।।

[२१- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-सूर्य । **छन्द**-एकावसाना निचृत् विषमा त्रिपदागायत्री, ५ भुरिक् विषमा त्रिपदागायत्री]

२६८. सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।१ ।।

हे सूर्यदेव ! आपके अन्दर जो संतप्त करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को संतप्त करें, जो हमसे शत्रुता करते हैं तथा जिनसे हम शत्रुता करते हैं ।।१ ।।

२६९. सूर्य यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।२ ।।

हे सूर्यदेव ! आपके अन्दर जो हरण करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं की शक्ति का हरण करें, जो हमसे द्वेष करते हैं तथा जिनसे हम द्वेष करते हैं ।।२ ।।

२७०. सूर्य यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।३ ।।

हे सूर्यदेव ! आपके अन्दर जो प्रज्वलन शक्ति है , उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को जला दें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।।३ ।।

२७१. सूर्य यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।४ ।।

हे सूर्यदेव ! आपके अन्दर जो शोकाभिभूत करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन मनुष्यों को शोकाभिभूत करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।।४ ।।

२७२. सूर्य यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।५ ।।

हे सूर्यदेव ! आपके अन्दर जो पराभिभूत करने की शक्ति विद्यमान है, उसके द्वारा आप उन मनुष्यों को तेजविहीन करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।।५ ।।

[२२- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - चन्द्र । **छन्द** -एकावसाना निचृत् विषमा त्रिपदा गायत्री, ५ एकावसाना भुरिक् विषमा त्रिपदा गायत्री ।]

२७३. चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।।१ ।।

हे चन्द्रदेव ! आपके अन्दर जो तपाने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को संतप्त करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ।।१ ।।

२७४. चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२ ॥

हे चन्द्रदेव ! आपके अन्दर जो हरण करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं की शक्ति का हरण करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥२ ॥

२७५. चन्द्र यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३ ॥

हे चन्द्रदेव ! आपके अन्दर जो प्रज्वलन शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को जला दें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥३ ॥

२७६. चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४ ॥

हे चन्द्रदेव ! आपके अन्दर जो शोकाकुल करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को शोकाभिभूत करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥४ ।।

२७७. चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५ ॥

हे चन्द्रदेव ! आपके अन्दर जो पराभिभूत करने की शक्ति विद्यमान है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को तेजविहीन करें, जो हमसे शत्रुता करते हैं तथा जिनसे हम शत्रुता करते हैं । ।५ ॥

[२३- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि**-अथर्वा । **देवता**-आपः । **छन्द**-एकावसाना समविषमा त्रिपदागायत्री, ५ स्वराट् विषमा त्रिपदागायत्री]

२७८. आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१ ॥

हे जलदेव ! आपके अन्दर जो ताप (प्रताप) है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को संतप्त करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥१ ॥

२७९. आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२ ॥

हे ज लदेव ! आपके अन्दर जो हरण करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं की शक्ति का हरण करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥२ ॥

२८०. आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३ ॥

हे जलदेव ! आपके अन्दर जो प्रज्वलन शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन रिपुओं को जला दें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥३ ॥

२८१. आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४ ॥

हे जलदेव ! आपके अन्दर जो शोकाकुल करने की शक्ति है, उस शक्ति के द्वारा आप उन मनुष्यों को शोकाकुल करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥४ ॥

२८२. आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५ ॥

हे जलदेव ! आपके अन्दर जो पराभिभूत करने की शक्ति विद्यमान है, उसके द्वारा आप उन रिपुओं को तेजविहीन करें, जो हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं ॥५ ॥

[२४- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - आयु । **छन्द** - १-४ वैराजपरा पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, (१-२ भुरिक् पुर उष्णिक्, ३-४ निचृत् पुरोदेवत्यापंक्ति), ५ चतुष्पदा बृहती, ६-८ चतुष्पदा भुरिक् बृहती ।]

२८३. शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥१ ॥

हे वधिको और लुटेरो ! हमारी ओर प्रेरित तुम्हारे प्रहार और यातनाएँ हमारे समीप से पुनः-पुनः वापस लौट जाएँ ।तुम अपने साथियों का ही भक्षण करो, जिन्होंने तुम्हें भेजा है, उनका भक्षण करो, अपने ही मांस को खाओ ॥१

२८४. शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥२ ॥

हे घात करने वाले शेवृधक (अपने आश्रितों को सुख देने वाले और उनके अनुचर लुटेरो) ! हमारी तरफ प्रेरित तुम्हारे प्रहार एवं यातनाएँ, असुर तथा हथियार हमारे समीप से बार-बार वापस लौट जाएँ । तुम अपने साथियों का ही भक्षण करो, भेजने वालों का भक्षण करो, अपने ही मांस का भक्षण करो ॥२ ॥

२८५. म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥३ ॥

हे चोर तथा चोर के अनुचर लुटेरो ! हमारी तरफ प्रेरित की हुई तुम्हारी यातनाएँ, असुर तथा हथियार हमारे पास से पुनः-पुनः वापस चले जाएँ । तुम्हें जिस व्यक्ति ने हमारे समीप भेजा है या जो तुम्हारे साथ हैं, तुम उन्हीं का भक्षण करो, स्वयं अपने मांस का भक्षण करो ॥३ ॥

२८६. सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥४ ॥

हे सर्प तथा सर्प के अनुचर लुटेरो ! तुम्हारे द्वारा भेजी हुई यातनाएँ, असुर तथा हथियार हमारे समीप से बार-बार वापस चले जाएँ तथा आपके चोर आदि अनुचर भी वापस जाएँ ।आपको जिस व्यक्ति ने हमारे समीप भेजा है या आप अपने दल-बल के साथ हमारे जिस शत्रु के समीप रहते हैं, आप उसके ही मांस को खा जाएँ ॥४ ॥

२८७. जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥५ ॥

हे जूर्णि (शरीर को जीर्ण बनाने वाली) राक्षसी और उनकी अनुचरी लुटेरियो ! तुम्हारे द्वारा भेजी हुई यातनाएँ, असुर तथा हथियार हमारे समीप से पुनः-पुनः वापस चले जाएँ । तुम्हें जिस व्यक्ति ने हमारे समीप भेजा है या जो तुम्हारे साथ हैं, तुम उसके ही मांस का भक्षण करो, स्वयं अपने मांस को खाओ ॥५ ॥

२८८. उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥६ ॥

हे उपाब्द (चिंघाड़ने वाली) लुटेरी राक्षसियो ! हमारी तरफ भेजी हुई तुम्हारी यातनाएँ, असुर तथा हथियार हमारे पास से पुनः-पुनः वापस चले जाएँ । तुम्हें जिस व्यक्ति ने हमारे समीप भेजा है या जो तुम्हारे साथ हैं, तुम उन्हीं का भक्षण करो, स्वयं अपने मांस का भक्षण करो ॥६ ॥

२८९. अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥७ ॥

हे अर्जुनि लुटेरी राक्षसियो !तुम्हारे द्वारा भेजी हुई यातनाएँ, असुर तथा अस्त्र हमारे पास से लौटजाएँ । तुम्हें जिस व्यक्ति ने हमारे पास भेजा है या जो तुम्हारे साथ हैं, तुम उन्हीं का भक्षण करो, स्वयं अपना मांस खाओ ॥७ ॥

२९०. भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ॥८ ॥

हे भरूजी (नीच प्रकृति वाली) लुटेरी राक्षसियो! हमारी तरफ प्रेरित की हुई तुम्हारी यातनाएँ, असुर तथा अस्थियाँ हमारे पास से पुनः-पुनः वापस चले जाएँ। तुम्हें जिस व्यक्ति ने हमारे समीप भेजा है या जो तुम्हारे साथ है, तुम उन्हीं दुष्टों का भक्षण करो, स्वयं अपने मांस का भक्षण करो ॥८ ॥

[२५- पृश्निपर्णी सूक्त]

[ऋषि - चातन । देवता - वनस्पति पृश्निपर्णी । छन्द - अनुष्टुप्, ४ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में पृश्निपर्णी (वनौषधि) के प्रभाव का उल्लेख है। उस सन्दर्भ में सूक्त के मंत्रार्थ सहज ग्राह्य हैं, किन्तु 'पृश्नि' का अर्थ पृथ्वी भी होता है, तदनुसार पृश्निपर्णी का भाव बनता है- पृथ्वी का पालन करने वाली दिव्य शक्ति।' सूक्त के देवता के रूप में वनस्पति का उल्लेख है। वास्तव में पृथ्वी से उत्पन्न वनस्पतियों (हरियाली) से ही पृथ्वी के प्राणियों का पालन होता है। इस भाव से 'पृश्निपर्णी' किसी एक ओषधि के स्थान पर 'पालनकर्त्री वनस्पतियों' को भी कह सकते हैं। इस प्रकार मंत्रों का अध्ययन विभिन्न दृष्टियों से किया जा सकता है-

२९१. शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।

उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥१ ॥

यह दमन करने वाली पृश्निपर्णी ओषधि हमें सुख प्रदान करे और हमारे रोगों को दूर करे। यह विकराल रोगों को समूल नष्ट करने वाली है। इसलिए हम उस शक्तिशाली ओषधि का सेवन करते हैं ॥१ ॥

२९२. सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत ।

तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥२ ॥

रोगों पर विजय पाने वाली ओषधियों में यह पृश्निपर्णी सबसे पहले उत्पन्न हुई। इसके द्वारा बुरे नामों वाले रोगों के सिर को हम उसी प्रकार कुचलते हैं, जिस प्रकार शकुनि (दुष्ट राक्षस) का सिर कुचलते हैं ॥२ ॥

२९३. अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।

गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥३ ॥

हे पृश्निपर्णि ! आप शरीर की वृद्धि का अवरुद्ध करने वाले रोगों को विनष्ट करें। हे पृश्निपर्णि ! आप रक्त पान वाले तथा गर्भ का भक्षण करने वाले रोग रूप रिपु को विनष्ट करें ॥३ ॥

२९४. गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वाञ्जीवितयोपनान् ।

तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥४ ॥

हे देवी पृश्निपर्णि ! जीवनी-शक्ति को विनष्ट करने वाले दोषों तथा रोगों को आप पर्वत पर ले जाएँ और उनको दावाग्नि के समान भस्मसात् कर दें ॥४ ॥

२९५. पराच एनान् प्र णुद कण्वाञ्जीवितयोपनान् ।

तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ॥५ ॥

हे पृश्निपर्णि ! जीवनी-शक्ति को विनष्ट करने वाले रोगों को आप उलटा मुख करके ढकेल दें। सूर्योदय होने पर भी जिस स्थान पर अन्धकार रहता है, उस स्थान पर शरीर की धातुओं का भक्षण करने वाले दुष्ट रोगों को (आपके माध्यम से) हम भेजते हैं ॥५ ॥

[२६- पशुसंवर्धन सूक्त]

[**ऋषि** - सविता । **देवता** - पशु समूह । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ उपरिष्टात् विराट् बृहती, ४ भुरिक् अनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में पशुओं के सुनियोजन के मंत्र हैं। यहाँ 'पशु' का अर्थ 'प्राणि - मात्र' लिया जाने योग्य है, जैसा कि मंत्र क्र० ३ से स्पष्ट होता है। प्राण-जीव चेतना को भी पशु कहते हैं, इसी आधार पर ईश्वर को पशुपति कहा गया है। इस आशय से 'गोष्ठ' पशुओं के बाड़े के साथ प्राणियों की देह को भी कह सकते हैं। व्यसनों में भटके हुए प्राण-प्रवाहों को यथास्थान लाने का भाव भी यहाँ लिया जा सकता है-

२९६. एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१ ॥

जो पशु इस स्थान से परे चले (भटक) गये हैं, वे पुन: इस गोष्ठ (पशु-आवास) में चले आएँ। जिन पशुओं की सुरक्षा के लिए वायुदेव सहयोग करते हैं और जिनके नाम-रूप को त्वष्टादेव जानते हैं; हे सवितादेव ! आप उन पशुओं को गोष्ठ में स्थित करें ॥१ ॥

२९७. इमं गोष्ठं पशव: सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ ॥२ ॥

गौ आदि पशु हमारे गोष्ठ में आ जाएँ।बृहस्पतिदेव उन्हें लाने की विधि को जानते हैं, अत: वे उनको ले आएँ। सिनीवाली इन पशुओं को सामने के स्थान में ले आएँ। हे अनुमते ! आप आने वाले पशुओं को नियम में रखें ॥२ ॥

२९८. सं सं स्रवन्तु पशव: समश्वा: समु पूरुषा:।
सं धान्यस्य या स्फाति: संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३ ॥

गौ आदि पशु, अश्व तथा मनुष्य भी मिल-जुल कर चलें। हमारे यहाँ धान्य आदि की वृद्धि भली प्रकार हो। हम उसको प्राप्त करने के लिए घृत की आहुति प्रदान करते हैं ॥३ ॥

२९९. सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥४ ॥

हम गौओं के दूध को सिंचित करते हैं तथा शक्तिवर्द्धक रस को घृत के साथ मिलाते हैं। हमारे वीर पुत्र घृत आदि से सिंचित हों तथा मुझ गोपति के पास गौएँ स्थिर रहें ॥४ ॥

३००. आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं१ रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥५ ॥

हम अपने घर में गो-दुग्ध, धान्य तथा रस लाते हैं। हम अपने वीरपुत्रों तथा पत्नियों को भी घर में लाते हैं ॥

[२७- शत्रुपराजय सूक्त]

[**ऋषि** - कपिञ्जल । **देवता** - १-५ ओषधि, ६ रुद्र, ७ इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में ओषधि को लक्ष्य किया गया है। चौथे मंत्र में उसे पाटा (पाठा) सम्बोधन भी दिया गया है। जिससे उस नाम वाली ओषधि विशेष का बोध होता है। मंत्रों में 'प्राशं-प्रति प्राशो' शब्द प्रयुक्त हुआ है, अधिकांश आचार्यों ने इसका अर्थ प्रश्न-प्रति प्रश्न किया है, किन्तु ओषधि के संदर्भ में प्राश का अर्थ-ग्रहण करना तथा प्रतिप्राश का अर्थ-ग्रहण न करना भी होता है। इन दोनों ही संदर्भों में मंत्रार्थ सिद्ध होते हैं-

३०१. नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥

हे ओषधे ! आपका सेवन करने वाले हम मनुष्यों को प्रतिवादी रिपु कभी विजित न कर सकें, क्योंकि आप रिपुओं से टक्कर लेकर उन्हें वशीभूत करने वाली हैं । आप हमारे द्वारा प्रश्न (प्राशन-ग्रहण) करने पर प्रतिपक्षियों (प्रतिप्राश-ग्रहण न करने वाले) को परास्त करें । हे ओषधे ! आप प्रतिवादियों के कण्ठ को शोषित करें अर्थात् उन्हें बोलने में असमर्थ करें ॥१ ॥

३०२. सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥२ ॥

हे ओषधे ! गरुड़ ने आपको विष नष्ट करने के लिए प्राप्त किया है तथा सूअर ने अपनी नाक के द्वारा आपको खोदा है । आप हमारे द्वारा प्रश्न (प्राशन-ग्रहण) करने पर प्रतिपक्षियों (प्रतिप्राश-ग्रहण न करने वाले) को परास्त करें । हे ओषधे ! आप प्रतिवादियों के कण्ठ को नीरस करके उन्हें बोलने में असमर्थ कर दें ॥२ ॥

३०३. इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥३ ॥

हे ओषधे ! राक्षसों से अपनी सुरक्षा करने के लिए इन्द्रदेव ने आपको अपनी बाहु पर धारण किया था । आप हमारे द्वारा प्रश्न (प्राशन-ग्रहण) करने पर प्रतिपक्षियों (प्रतिप्राश-ग्रहण न करने वाले) को परास्त करें । हे ओषधे ! आप प्रतिवादियों के कण्ठ को नीरस करके उन्हें बोलने में असमर्थ कर दें ॥३ ॥

३०४. पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ॥४

हे पाठा ओषधे ! राक्षसों से अपनी सुरक्षा करने के लिए इन्द्रदेव ने आपका सेवन किया था । आप हमारे द्वारा प्रश्न (प्राशन-ग्रहण) करने पर प्रतिपक्षियों (प्रतिप्राश-ग्रहण न करने वाले) को परास्त करें । हे ओषधे ! आप प्रतिवादियों के कण्ठ को नीरस करके उन्हें बोलने में असमर्थ कर दें ॥४ ॥

३०५. तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे । ।

जिस प्रकार इन्द्रदेव ने जंगली कुत्तों को निरुत्तर कर दिया था, उसी प्रकार हे ओषधे ! आपका सेवन करके हम प्रतिवादी रिपुओं को निरुत्तर करते हैं। आप हमारे द्वारा प्रश्न (प्राशन-ग्रहण) करने पर प्रतिवादियों (प्रतिप्राश-ग्रहण न करने वाले) को परास्त करें । हे ओषधे ! आप प्रतिवादियों के कण्ठ को नीरस करके उन्हें बोलने में असमर्थ कर दें ॥५ ॥

३०६. रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् । प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे

हे रुद्र ! आप जल द्वारा चिकित्सा करने वाले तथा नील वर्ण की शिखा वाले हैं । आप सृष्टि आदि (सृष्टि, स्थिति, संहार, प्रलय तथा अनुग्रह) पंच कृत्यों को सम्पन्न करने वाले हैं । आप हमारे द्वारा सेवन की जाने वाली इस ओषधि को, प्रतिपक्षियों को परास्त करने में समर्थ करें । हे ओषधे ! आप हमारे द्वारा प्रश्न (प्राशन-ग्रहण) करने पर प्रतिवादियों (प्रतिप्राश-ग्रहण न करने वाले) को परास्त करें तथा उनके कण्ठ को नीरस करके उन्हें बोलने में असमर्थ करें ॥६ ॥

३०७. तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो प्रतिवादी अपनी युक्तियों के द्वारा हमें कमजोर करना चाहते हैं, उनके प्रश्नों को आप निरस्त करें और अपनी सामर्थ्य के द्वारा हमें सर्वश्रेष्ठ बनाएँ ॥७ ॥

[२८- दीर्घायु प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - शम्भु । **देवता** - १ जरिमा, आयु, २ मित्रावरुण, ३ जरिमा, ४-५ द्यावापृथिवी, आयु । **छन्द** - १ जगती, २-४ त्रिष्टुप्, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

३०८. तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः ॥१ ॥

हे वृद्धावस्थे ! आपके लिए ही यह बालक वृद्धि को प्राप्त हो और जो सैकड़ों रोग आदि रूप वाले मृत्यु योग हैं, वे इसको हिंसित न करें । हर्षित मन वाले हे मित्र देवता ! जिस प्रकार माता अपने पुत्र को गोद में लेती है, उसी प्रकार आप इस बालक को मित्र - द्रोह सम्बन्धी पाप से मुक्त करें ॥१ ॥

[व्यसन आदि मारक दोष मित्र बनकर ही या कथित मित्रों के माध्यम से ही जीवन में प्रवेश पाते हैं । प्रिय लगने वाले व्यसनादि या व्यसन सिखाने वाले मित्रों से बचना आवश्यक होता है ।]

३०९. मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥२ ॥

मित्र तथा रिपु विनाशक वरुणदेव दोनों संयुक्त होकर इस बालक को वृद्धावस्था तक पहुँच कर मरने वाला बनाएँ ।दान दाता तथा समस्त कर्मों को विधिवत् जानने वाले अग्निदेव उसके लिए दीर्घायु की प्रार्थना करें ॥२ ॥

३१०. त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ॥३ ॥

हे अग्ने ! धरती पर पैदा हुए तथा पैदा होने वाले समस्त प्राणियों के आप स्वामी हैं । आपकी अनुकम्पा से इस बालक का, प्राण और अपान परित्याग न करें । इसको न मित्र मारें और न शत्रु ॥३ ॥

३११. द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥४ ॥

हे बालक ! तुम धरती की गोद में प्राण और अपान से संरक्षित होकर सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहो । पिता रूप द्युलोक तथा माता रूप पृथ्वी दोनों मिलकर आपको वृद्धावस्था के बाद मरने वाला बनाएँ ॥४ ॥

३१२. इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप इस बालक को शतायु तथा तेजस् प्रदान करें । हे मित्रावरुण ! आप इस बालक को सन्तानोत्पादन में समर्थ बनाएँ । हे अदिति देवि ! आप इस बालक को माता के समान हर्ष प्रदान करें । हे विश्वेदेवो ! आप सब इस बालक को सभी गुणों से सम्पन्न बनाएँ तथा दीर्घ आयुष्य प्रदान करें ॥५ ॥

[२९- दीर्घायुष्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ वैश्वदेवी (अग्नि, सूर्य, बृहस्पति) , २ आयु, जातवेदस् , प्रजा, त्वष्टा, सविता, धन, शतायु, ३ इन्द्र, सौप्रजा, ४-५ द्यावापृथिवी, विश्वेदेवा, मरुद्‌गण, आपोदेव, ६ अश्विनीकुमार, ७ इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती निचृत् प्रस्तारपंक्ति ।]

३१३. पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले ।

आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः ॥१ ॥

पार्थिव रस (पृथ्वी से उत्पन्न अथवा पार्थिव शरीर से उत्पन्न पोषक रसों) का पान करने वाले व्यक्ति को समस्तदेव 'भग' के समान बलशाली बनाएँ । अग्निदेव इसको सौ वर्ष की आयु प्रदान करें और आदित्य इसे तेजस् प्रदान करें तथा बृहस्पतिदेव इसे वेदाध्ययनजन्य कान्ति (ब्रह्मवर्चस) प्रदान करें ॥१ ॥

३१४. आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप इसे शतायु प्रदान करें । हे त्वष्टादेव ! आप इसे पुत्र-पौत्र आदि प्रदान करें । हे सवितादेव ! आप इसे ऐश्वर्य तथा पुष्टि प्रदान करें । आपकी अनुकम्पा प्राप्त करके यह मनुष्य सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहे ॥२ ॥

३१५. आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥३ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमें आशीर्वाद प्रदान करें । आप हमें श्रेष्ठ सन्तान, सामर्थ्य, कुशलता तथा ऐश्वर्य प्रदान करें । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से यह व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के द्वारा रिपुओं को विजित करे और उनके स्थानों को अपने नियंत्रण में ले ले ॥३ ॥

३१६. इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ॥४ ॥

इन्द्रदेव द्वारा आयुष्य पाकर, वरुण द्वारा शासित होकर तथा मरुतों द्वारा प्रेरणा पाकर यह व्यक्ति हमारे पास आया है । हे द्यावा-पृथिवि ! आपकी गोद में रहकर यह व्यक्ति क्षुधा और तृषा से पीड़ित न हो ॥४ ॥

३१७. ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५ ॥

हे बलशाली द्यावा-पृथिवि ! आप इस व्यक्ति को अन्न तथा जल प्रदान करें । हे द्यावा-पृथिवि ! आपने इस व्यक्ति को अन्न-बल प्रदान किया है और विश्वेदेवा, मरुद्‌गण तथा जलदेव ने भी इसको शक्ति प्रदान की है ॥५ ॥

३१८. शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥६ ॥

हे तृषार्त मनुष्य ! हम आपके शुष्क हृदय को कल्याणकारी जल से तृप्त करते हैं । आप नीरोग तथा श्रेष्ठ तेज से युक्त होकर हर्षित हों । एक वस्त्र धारण करने वाले ये रोगी, अश्विनीकुमारों के माया (कौशल) को ग्रहण करके इस रस का पान करें ॥६ ॥

३१९. इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ॥७ ॥

इन्द्रदेव ने इस (रस) को तृषा से निवृत्त होने के लिए विनिर्मित किया था । हे रोगिन् ! जो रस आपको प्रदान किया है, उसके द्वारा आप शक्ति-तेजस् से सम्पन्न होकर सौ वर्ष तक जीवित रहें । यह आपके शरीर से अलग न हो । आपके लिए वैद्यों ने श्रेष्ठ औषधि बनाई है ॥७ ॥

[३०- कामिनीमनोऽभिमुखीकरण सूक्त]

[**ऋषि** - प्रजापति । **देवता** - १ मन, २ अश्विनीकुमार , ३-४ ओषधि, ५ दम्पती । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्ति, ३ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

३२०. यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति ।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१ ॥

हे स्त्री ! जिस प्रकार भूमि पर विद्यमान तृण को वायु चक्कर कटाता है, उसी प्रकार हम आपके हृदय को मथते हैं । जिससे आप हमारी कामना करने वाली हों और हमें छोड़कर दूसरी जगह न जाएँ ॥१ ॥

३२१. सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम जिस वस्तु की कामना करते हैं, आप उसको हमारे पास पहुँचाएँ । आप दोनों के भाग्य, चित्त तथा व्रत हमसे संयुक्त हो जाएँ ॥२ ॥

३२२. यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ॥३ ॥

मनोहर पक्षी की आकर्षक बोली और नीरोग मनुष्य के प्रभावशाली वचन के समान हमारी पुकार बाण के सदृश अपने लक्ष्य पर पहुँचे ॥३ ॥

३२३. यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् । कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे । ।४

जो अन्दर और बाहर से एक विचार वाली हैं-ऐसे दोषरहित अंगों वाली कन्याओं के पवित्र मन को हे ओषधे ! आप ग्रहण करें ॥४ ॥

३२४. एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ॥५ ॥

यह स्त्री पति की कामना करती हुई मेरे पास आई है और मैं उस स्त्री की अभिलाषा करते हुए उसके समीप पहुँचा हूँ । हिनहिनाते हुए अश्व के समान मैं ऐश्वर्य के साथ उसके समीप आया हूँ ॥५ ॥

[३१- कृमिजम्भन सूक्त]

[**ऋषि** - काण्व । **देवता** - मही अथवा चन्द्रमा । **छन्द** - १ अनुष्टुप्, २,४ उपरिष्टात् विराट् बृहती, ३,५ आर्षी त्रिष्टुप् ।]

३२५. इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ॥१ ॥

इन्द्रदेव की जो विशाल शिला है, वह समस्त कीटाणुओं को विनष्ट करने वाली है । उसके द्वारा हम कीटाणुओं को उसी प्रकार पीसते हैं, जिस प्रकार पत्थर के द्वारा चना पीसा जाता है ॥१ ॥

३२६. दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् ।
अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥२ ॥

आँखों से दिखाई देने वाले तथा न दिखाई देने वाले कीटों को हम विनष्ट करते हैं । जमीन पर चलने वाले, बिस्तर आदि में निवास करने वाले तथा द्रुतगति से इधर-उधर घूमने वाले समस्त कीटों को हम 'वाचा' (वाणी-मन्त्रशक्ति अथवा वच से बनी औषधि) के द्वारा विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

३२७. अल्गाण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ॥३ ॥

अनेक स्थानों में रहने वाले कीटाणुओं को हम बृहत् साधन रूप मंत्र के द्वारा विनष्ट करते हैं । चलने वाले तथा न चलने वाले समस्त कीटाणु सूखकर विनष्ट हो गये हैं । बचे हुए तथा न बचे हुए कीटाणुओं को हम वाचा (वाणी-मंत्रशक्ति अथवा वच से बनी औषधि) के द्वारा विनष्ट करते हैं ॥३ ॥

३२८. अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥४ ॥

आँतों में, सिर में और पसलियों में रहने वाले कीटाणुओं को हम विनष्ट करते हैं । रेंगने वाले और विविध मार्ग बनाकर चलने वाले कीटाणुओं को भी हम 'वाचा' से विनष्ट करते हैं ॥४ ॥

३२९. ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥५ ॥

वनों, पहाड़ों, ओषधियों तथा पशुओं में रहने वाले कीटाणुओं और हमारे शरीर में प्रविष्ट होने वाले कीटाणुओं की समस्त उत्पत्ति को हम विनष्ट करते हैं ॥५ ॥

[३२- कृमिनाशन सूक्त]

[**ऋषि-** काण्व । **देवता-** आदित्यगण । **छन्द** अनुष्टुप् , १ त्रिपात् भुरिक् गायत्री, ६ चतुष्पाद् निचृत् उष्णिक् ।]

३३०. उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१ ॥

उदित होते हुए तथा अस्त होते हुए सूर्यदेव अपनी किरणों के द्वारा जो कीटाणु पृथ्वी पर रहते हैं, उन समस्त कीटाणुओं को विनष्ट करें ॥१ ॥

[सूर्य किरणों की रोगनाशक क्षमता का यहाँ संकेत किया गया है ।]

३३१. विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ।।२

विविध रूप वाले, चार अश्वों वाले, रेंगने वाले तथा सफेद रंग वाले कीटाणुओं की हड्डियों तथा सिर को हम तोड़ते हैं ॥२ ॥

३३२. अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥३ ॥

हे कृमियो ! हम अत्रि, कण्व और जमदग्नि ऋषि के सदृश, मंत्र शक्ति से तुम्हें मारते हैं तथा अगस्त्य ऋषि की मंत्र शक्ति से तुम्हें पीस डालते हैं ॥३ ॥

३३३. हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥४

हमारे द्वारा ओषधि प्रयोग करने पर कीटाणुओं का राजा तथा उसका मंत्री मारा गया । वह अपने माता-पिता, भाई-बहिन सहित स्वयं भी मारा गया ॥४ ॥

३३४. हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५ ॥

इन कीटाणुओं के बैठने वाले स्थान तथा पास के घर विनष्ट हो गये और बीजरूप में विद्यमान दुर्लक्षित (कठिनाई से दिखाई पड़ने वाले) छोटे-छोटे कीटाणु भी नष्ट हो गये ॥५ ॥

३३५. प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि । भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ॥६ ॥

हे कीटाणुओ ! हम तुम्हारे उन सींगों को तोड़ते हैं, जिनके द्वारा तुम पीड़ा पहुँचाते हो । हम तुम्हारे कुषुम्भ (विष ग्रन्थि) को तोड़ते हैं, जिसमें तुम्हारा विष रहता है ॥६ ॥

[३३- यक्ष्मविबर्हण सूक्त]

[**ऋषि**—ब्रह्मा ।**देवता**— यक्षविबर्हण (पृथक्करण) चन्द्रमा, आयुष्य । **छन्द**—अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती अनुष्टुप् । चतुष्पाद् भुरिक् उष्णिक् , ५ उपरिष्टात् बृहती, ६ उष्णिक् गर्भानिचृत्अनुष्टुप्, ७ पथ्यापंक्ति ।]

३३६. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१ ॥

हे रोगिन् ! आपके दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दोनों नासिका रन्ध्रों, ठोढ़ी, सिर, मस्तिष्क और जिह्वा से हम यक्ष्मारोग को दूर करते हैं ॥१ ॥

३३७. ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२ ॥

हे रोग से ग्रस्त मनुष्य ! आपकी गर्दन की नाड़ियों, ऊपरी स्नायुओं, अस्थियों के संधि भागों, कन्धों, भुजाओं और अन्तर्भाग से हम यक्ष्मारोग का विनाश करते हैं ॥२ ॥

३३८. हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥३ ॥

हे व्याधिग्रस्त मानव ! हम आपके हृदय, फेफड़ों, पित्ताशय, दोनों पसलियों, गुर्दों, तिल्ली तथा जिगर से यक्ष्मारोग को दूर करते हैं ॥३ ॥

३३९.आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥४ ॥

आपकी आँतों, गुदा, नाड़ियों, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत और अन्यान्य पाचनतंत्र के अवयवों से हम यक्ष्मारोग का निवारण करते हैं ॥४ ॥

३४०. ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥५ ॥

हे रोगिन् ! आपकी दोनों जंघाओं, जानुओं, एड़ियों, पंजों, नितम्बभागों, कटिभागों और गुदा द्वार से हम यक्ष्मारोग को दूर करते हैं ॥५ ॥

३४१. अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥६ ॥

हम अस्थि, मज्जा, स्नायुओं, धमनियों, पुट्ठों, हाथों, अँगुलियों तथा नाखूनों से यक्ष्मारोग को दूर करते हैं ।

३४२. अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ।।७ ।।

प्रत्येक अंग, प्रत्येक लोम और शरीर के प्रत्येक संधि भाग में, जहाँ कहीं भी यक्ष्मा रोग का निवास है, वहाँ से हम उसे दूर करते हैं ।।७ ।।

[३४- पशुगण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ पशुपति, २ देवगण, ३ अग्नि, विश्वकर्मा, ४ वायु, प्रजापति, ५ आशीर्वचन । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३४३. य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ।।१ ।।

जो पशुपति (शिव) दो पैर वाले मनुष्यों तथा चार पैर वाले पशुओं के स्वामी हैं, वे सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किये हुए यज्ञीय भाग को प्राप्त करें और मुझ यजमान को ऐश्वर्य तथा पुष्टि प्रदान करें ।।१ ।।

३४४. प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ।।२ ।।

हे देवो ! आप इस यजमान को विश्व का रेतस् (उत्पादक रस) प्रदान करके इसे सन्मार्ग पर चलाएँ और देवों का प्रिय तथा सुसंस्कृत सोम रूप अन्न हमें प्रदान करें ।।२ ।।

३४५. ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ।।३ ।।

जो आलोकमान जीव इस बद्ध जीव का मन तथा चक्षु से अवलोकन करते हैं, उन्हें वे विश्वकर्मा देव सबसे पहले विमुक्त करें ।।३ ।।

३४६. ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ।।४ ।।

ग्राम के जो अनेकों रूप-रंग वाले पशु बहुरूपता होने पर भी एक जैसे दिखलाई पड़ते हैं, उनको भी प्रजा के साथ निवास करने वाले प्रजापालक प्राणदेव सबसे पहले मुक्त करें ।।४ ।।

३४७. प्रजानन्तः प्रति गृहणन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ।।५ ।।

विशेषज्ञ विद्वान् , चारों ओर विचरण करने वाले प्राण को समस्त अंगों से इकट्ठा करके स्वस्थ जीवनयापन करते हैं । उसके बाद देवताओं के गमन पथ से स्वर्ग को जाते हैं तथा आलोकमान स्थानों को प्राप्त होते हैं ।।५ ।।

[३५-विश्वकर्मा सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरा । **देवता** - विश्वकर्मा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, ४-५ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

३४८. ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।

या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा ॥१ ॥

यज्ञ कार्य में धन खर्च न करके, भक्षण कार्य में धन खर्च करने के कारण हम समृद्ध नहीं हुए ।इस प्रकार हम यज्ञ न करने वाले,और दुर्यज्ञ करने वाले हैं । अत: हमारी श्रेष्ठ यज्ञ करने की अभिलाषा को विश्वकर्मादेव पूर्ण करें

३४९. यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ॥२ ॥

प्रजाओं के विषय में अनुताप करने वाले यज्ञपति को ऋषि पाप से अलग बताते हैं । जिन विश्वकर्मा ने सोमरस की बूँदों को आत्मसात् किया है, वे विश्वकर्मादिव उन बूँदों से हमारे यज्ञ को संयुक्त करें ॥२ ॥

३५०. अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ॥३ ॥

जो व्यक्ति दान न करके मनमाने ढंग से सोमपान करता है, वह न नो यज्ञ को जानता है और न धैर्यवान् होता है । ऐसा व्यक्ति बद्ध होकर पाप करता है । हे विश्वकर्मादेव ! आप उसे कल्याण के लिए पाप-बन्धनों से मुक्त करें

३५१. घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् ।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्य१स्मान् ॥४ ॥

ऋषिगण अत्यन्त तेजस्वी होते हैं; क्योंकि उनके आँखों तथा मनों में सत्य प्रकाशित होता है । ऐसे ऋषियों को हम प्रणाम करते हैं तथा देवताओं के पालन करने वाले बृहस्पतिदेव को भी प्रणाम करते हैं । हे महान् विश्वकर्मा देव ! हम आपको प्रणाम करते हैं; आष हमारी सुरक्षा करें ॥४ ॥

३५२. यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५ ॥

जो अग्निदेव यज्ञ के नेत्र स्वरूप पोषणकर्त्ता तथा मुख के समान हैं, उन (अग्निदेव) के प्रति हम मन, श्रोत्र तथा वचनों सहित हव्य समर्पित करते हैं । विश्वकर्मा देव के द्वारा किये गये इस यज्ञ के लिए श्रेष्ठ मन वाले देव पधारें ॥५ ॥

[३६- पतिवेदन सूक्त]

[**ऋषि** - पतिवेदन । **देवता** - १ अग्नि, २ सोम, अर्यमा, धाता,३ अग्नीषोम, ४ इन्द्र, ५ सूर्य, ६ धनपति, ७ हिरण्य, भग, ८ ओषधि । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ भुरिक् अनुष्टुप्, ३-४ त्रिष्टुप् , ८ निचृत् पुर उष्णिक् ।]

३५३. आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै ॥१ ॥

हे अग्ने ! हमारी इस बुद्धिमती कुमारी कन्या को ऐश्वर्य के साथ सर्वगुण सम्पन्न वर प्राप्त हो । हमारी कन्या बड़ों के बीच में प्रिय तथा समान विचार वालों में मनोरम है । इसे पति के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हो ॥१ ॥

३५४. सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥२ ॥

सोमदेव और गन्धर्वदेव द्वारा सेवित तथा अर्यमा नामक अग्नि द्वारा स्वीकृत कन्या रूप धन को हम सत्य वचन से पति द्वारा प्राप्त करने के योग्य बनाते हैं ॥२ ॥

३५५. इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! यह कन्या अपने पति को प्राप्त करे और राजा सोम इसे सौभाग्यवती बनाएँ । यह कन्या अपने पति को प्राप्त करके सुशोभित हो और (वीर) पुत्रों को जन्म देती हुई घर की रानी बने ॥३ ॥

३५६. यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी सम्प्रिया पत्याविराधयन्ती ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार गुफा का स्थान मृगों के लिए प्रिय तथा बैठने योग्य होता है, उसी प्रकार यह स्त्री अपने पति से विरोध न करती हुई तथा समस्त भोग्य वस्तुओं का सेवन करती हुई अपने पति के लिए प्रीतियुक्त हो ॥४ ॥

३५७. भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ॥५ ॥

हे कन्ये ! आप इच्छित तथा अविनाशी ऐश्वर्य से परिपूर्ण हुई नौका पर चढ़कर, उसके द्वारा अपने अभिलषित पति के पास पहुँचें ॥५ ॥

३५८. आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ॥६ ॥

हे धनपते वरुणदेव ! आप इस वर के द्वारा उद्घोष कराएँ कि यह कन्या हमारी पत्नी हो । आप इस वर को कन्या के सामने बुलाकर उसके मन को कन्या की ओर प्रेरित करें तथा उसे अनुरूप व्यवहार वाला बनाएँ ।६ ॥

३६९. इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥७ ॥

हे कन्ये ! ये स्वर्णिम आभूषण, गूगल की धूप तथा लेपन करने वाले औक्ष (उपलेपन द्रव्य) को अलंकार के स्वामी भग देवता आपकी पति-कामना की पूर्ति तथा आपके लाभ के लिए आपके पति को प्रदान करते हैं ॥७ ॥

३६०. आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः । त्वमस्यै धेह्योषधे ॥८ ॥

हे ओषधे ! आप इस कन्या को पति प्रदान करें । हे कन्ये ! सवितादेव इस वर को आपके समीप लाएँ । आपका इच्छित पति आपके साथ विवाह करके आपको अपने घर ले जाए ॥८ ॥

॥ इति द्वितीयं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ तृताय काण्डम् ॥

[१- शत्रुसेनासंमोहन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - सेनामोहन (१ अग्नि , २ मरुद्‌गण , ३-६ इन्द्र) । **छन्द** - १,४ त्रिष्टुप्, २ विराट्‌गर्भाभुरिक्‌त्रिष्टुप्, ३,६ अनुष्टुप्, ५ विराट् पुरउष्णिक् ।]

३६१. अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१ ॥

ज्ञानी अग्निदेव (अथवा अग्रणी वीर) विनाश के लिए उद्यत रिपु सेनाओं के चित्त को भ्रमित करके, उनके हाथों को शस्त्र रहित कर दें । वे रिपुओं के अंगों को जलाते (नष्ट करते) हुए आगे बढ़ें ॥१ ॥

३६२. यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् ॥२ ॥

हे मरुतो !आँप ऐसे (संग्राम) में उग्र होकर (हमारे पास) स्थित रहें । आप आगे बढ़ें, प्रहार (शत्रुओं) को जीत लें । ये वसुगण भी शत्रु विनाशक हैं । इनके संदेशग्राहक विद्वान् अग्निदेव भी रिपुओं की ओर ही अग्रगामी हों ॥

३६३. अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥३ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप वृत्र का संहार करने वाले हैं । आप और अग्निदेव दोनों मिलकर हमसे शत्रुता करने वाली रिपु सेनाओं को परास्त करके उन्हें भस्मसात् कर दें ॥३ ॥

३६४. प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हरि नामक अश्वों से गतिमान् आपका रथ ढालू मार्ग से वेगपूर्वक शत्रु सेना की ओर बढ़े । आप अपने प्रचण्ड वज्र से शत्रुओं पर प्रहार करें । आप सामने से आते हुए तथा मुख मोड़कर जाते हुए सभी शत्रुओं पर प्रहार करें । युद्ध में संलग्न शत्रुओं के चित्त को आप विचलित कर दें ॥४ ॥

३६५. इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रिपुओं की सेनाओं को भ्रमित करें । उसके बाद अग्नि और वायु के प्रचण्ड वेग से उन (रिपु सेनाओं) को चारों ओर से भगाकर विनष्ट कर दें ॥५ ॥

३६६. इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रिपु सेनाओं को सम्मोहित करें और मरुद्‌गण बलपूर्वक उनका विनाश करें । अग्निदेव उनकी आँखों (नेत्र ज्योति) को हर लें । इस प्रकार परास्त होकर रिपु सेना वापस लौट जाए ॥६ ॥

[२ - शत्रुसेनासंमोहन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** सेनामोहन (१-२ अग्नि, ३-४ इन्द्र , ५ द्यौ, ६ मरुद्‌गण) । **छन्द -** त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप् ।]

३६७. अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः ॥१ ॥

देवदूत के सदृश अग्रणी तथा विद्वान् अग्निदेव हमारे रिपुओं को जलाते हुए उनकी ओर बढ़ें । वे रिपुओं के चित्त को भ्रमित करें तथा उनके हाथों को आयुधों से रहित करें ॥१ ॥

३६८. अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः ॥२ ॥

हे शत्रुओ ! तुम्हारे हृदय में जो विचार-समूह हैं, उनको अग्निदेव सम्मोहित कर दें तथा तुम्हें तुम्हारे निवास स्थानों से दूर हटा दें ॥२ ॥

३६९. इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रिपुओं के मनों को सम्मोहित करते हुए शुभ संकल्पों के साथ हमारे समीप पधारें । उसके बाद अग्निदेव एवं वायुदेव के प्रचण्ड वेग से उन रिपुओं की सेनाओं को चारों ओर से विनष्ट कर दें ॥३ ॥

३७०. व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत। अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि

हे विरुद्ध संकल्पो ! आप रिपुओं के मन में गमन करें । हे रिपुओं के मन ! आप मोहग्रस्त हों । हे इन्द्रदेव ! युद्ध के लिए उद्यत रिपुओं के संकल्पों को आप पूर्णतया विनष्ट कर दें ॥४ ॥

३७१. अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ॥५ ॥

हे अप्वे (पापवृत्ति या व्याधि) !तुम शत्रुओं को सम्मोहित करते हुए उनके शरीरों में व्याप्त हो जाओ । हे अप्वे !तुम आगे बढ़ो और उनके हृदयों को शोक से दग्ध करो, उन्हें जकड़कर पीड़ित करते हुए विनष्ट कर डालो ॥५ ॥

३७२. असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥६ ॥

हे मरुतो !जो रिपु सेनाएँ अपनी सामर्थ्य के मद में स्पर्धापूर्वक हमारी ओर आ रही हैं, उन सेनाओं को आप अपने कर्महीन करने वाले अन्धकार से सम्मोहित करें, जिससे इनमें से कोई भी शत्रु एक-दूसरे को पहचान न सकें ॥६ ॥

[३ - स्वराजपुनः स्थापन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** १ अग्नि, २, ६ इन्द्र, ३ वरुण, सोम, इन्द्र, ४ श्येन, अश्विनीकुमार , ५ इन्द्राग्नी, विश्वेदेवा । **छन्द -** त्रिष्टुप् , ३ चतुष्पदा भुरिक् पंक्ति, ५-६ अनुष्टुप् ।]

कौशिक सूत्र में इस सूक्त का विनियोग राजा को उसके खोये हुए राज्य पर पुनः स्थापित करने के रूप में दिया गया है । इस विशिष्ट संदर्भ में भी इसका प्रयोग होता रहा होगा; किन्तु मंत्रार्थ इस क्रिया तक सीमित किये जाने योग्य नहीं हैं । किसी भी प्राणवान् द्वारा अपने खोए वर्चस्व की प्राप्ति, जीवन- चेतना या तेजस्वी प्राण-प्रवाहों को उपयुक्त स्थलों (काया, प्रकृति के विभिन्न घटकों) में प्रतिष्ठित करने का भाव इसमें स्पष्ट भासित होता है-

३७३. अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! यह (जीव या पदेच्छु व्यक्ति या राजा) स्वयं का पालन-रक्षण करने वाला हो-ऐसी घोषणा की गई है। आप सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी में व्याप्त हों। मरुद्गण और विश्वेदेवा आपके साथ संयुक्त हों। आप नम्रतापूर्वक हविदाता को यहाँ लाएँ, स्थापित करें ॥१ ॥

३७४. दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम्।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥२ ॥

हे तेजस्विन् ! आप इस तेजस्वी की मित्रता के लिए दूरस्थ ज्ञानी इन्द्रदेव को यहाँ लाएँ। समस्त देवताओं ने गायत्री छन्द, बृहती छन्द तथा सौत्रामणी यज्ञ के माध्यम से इसे धारण किया है ॥२ ॥

३७५. अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥३ ॥

हे तेजस्विन् ! वरुणदेव जल के लिए, सोमदेव पर्वतों के लिए तथा इन्द्रदेव प्रजाओं (आश्रितों को प्राणवान् बनाने) के लिए आपको बुलाएँ। आप श्येन की गति से इन विशिष्ट स्थानों पर आएँ ॥३ ॥

३७६. श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम्।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४ ॥

स्वर्ग में निवास करने वाले देवता, अन्य क्षेत्रों में विचरने वाले हव्य (बुलाने योग्य या हवनीय) को श्येन के समान द्रुतगति से अपने देश में ले आएँ। हे तेजस्विन् ! आपके मार्ग को दोनों अश्विनीकुमार सुख से आने योग्य बनाएँ। सजातीय (व्यक्ति या तत्त्व) इसे उपयुक्त स्थल में प्रविष्ट कराएँ ॥४ ॥

३७७. ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ॥५ ॥

हे तेजस्विन् ! प्रतिकूल चलने वाले भी (आपका महत्त्व समझकर) आपको बुलाएँ। मित्रजन आपको संवर्द्धित करें। इन्द्राग्नि तथा विश्वेदेवा आपके अन्दर क्षेम (पालन-संरक्षण) की क्षमता धारण कराएँ ॥५ ॥

३७८. यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी विजातीय और सजातीय जन आपके आह्वनीय पक्ष की समीक्षा करें। उस (अवांछनीय) को बहिष्कृत करके, इस (वांछनीय) को यहाँ ले आएँ ॥६ ॥

[४ - राजासंवरण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** -त्रिष्टुप्, १ जगती, ४, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्।]

३७९. आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१ ॥

हे राजन् ! (तेजस्वी) यह राष्ट्र (प्रकाशवान् अधिकार क्षेत्र) आपको पुनः प्राप्त हो गया है। आप वर्चस्वपूर्वक अभ्युदय को प्राप्त करें। आप प्रजाओं के स्वामी तथा उनके एक मात्र अधिपति बनकर सुशोभित हों। समस्त

दिशाएँ तथा उपदिशाएँ आपको पुकारें। आप यहाँ (अपने क्षेत्र में) सबके लिए वन्दनीय बनें ॥१ ॥

३८०. त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२ ॥

हे तेजस्विन् !ये प्रजाएँ आपको शासन का संचालन करने के लिए स्वीकार करें तथा पाँचों दिव्य दिशाएँ आपकी सेवा करें ।आप राष्ट्र के श्रेष्ठ पद पर आसीन हों और उग्रवीर होकर हमें योग्यतानुसार ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२

३८१. अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३ ॥

हे तेजस्विन् ! हवन करने वाले या बुलाने वाले सजातीय जन आपके अनुकूल रहें। दूतरूप में अग्निदेव तीव्रता से संचरित हों। स्त्री-बच्चे श्रेष्ठ मन वाले हों ।आप उग्रवीर होकर विभिन्न उपहारों को देखें (प्राप्त करें) ॥३ ॥

३८२. अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४ ॥

हे तेजस्विन् ! मित्रावरुण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेवा तथा मरुद्गण आपको बुलाएँ। आप अपने मन को धनदान में लगाएँ और प्रचण्डवीर होकर हमको भी यथायोग्य ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

३८३. आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ॥५ ॥

हे तेजस्विन् ! आप दूर देश से भी द्रुतगति से यहाँ पधारें। द्यावा-पृथिवी आपके लिए कल्याणकारी हों। राजा वरुण भी आपका आवाहन करते हैं, इसलिए आप आएँ और इसे प्राप्त करें ॥५ ॥

३८४. इन्द्रेन्द्र मनुष्या३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६ ॥

हे शासकों के शासक (इन्द्रदेव) ! आप मनुष्यों के समीप पधारें। वरुणदेव से संयुक्त होकर आप जाने गए हैं। अतः इन प्रत्येक धारणकर्त्ताओं ने आपको अपने स्थान पर बुलाया है। ऐसे आप, देवताओं का यजन करते हुए प्रजाओं को अपने-अपने कर्त्तव्य में नियोजित करें ॥६ ॥

३८५. पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः सङ्गत्य वरीयस्ते अक्रन्।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ॥७ ॥

हे तेजस्विन् ! विभूति-सम्पन्न, मार्ग पर (लक्ष्य की ओर) चलने वाली, विविधरूप वाली प्रजाओं ने संयुक्तरूप से आपके लिए यह वरणीय (पद) बनाया है। वे सब आपको एक मत होकर बुलाएँ। आप उग्रवीर एवं श्रेष्ठ मन वाले होकर दसमी (चरमावस्था) को अपने अधीन करें ॥७ ॥

[५ - राजा और राजकृत सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - सोम या पर्णमणि । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ८ विराट्उरोबृहती।]

इस सूक्त में पर्णमणि का विवरण है। कोशों में पर्ण का अर्थ 'पलाश' दिया गया है, इस आधार पर कई आचार्यों ने पर्णमणि को पलाशमणि माना है। इधर शत०ब्रा० (६.५.१.१) के अनुसार 'सोमो वै पर्णः' (सोम ही पर्ण है) तथा तै०ब्रा० (१.२.१.६) में यह 'पर्ण' सोमपर्ण से ही बना हुआ कहा गया है। इस आधार पर पर्णमणि को सोममणि कह सकते हैं। वेद के

अनुसार 'सोम' दिव्यपोषक रस के रूप में प्रसिद्ध है। इस आधार पर यह किन्हीं दिव्य ओषधियों के संयोग से निर्मित हो सकता है। प्रथम मंत्र में इसे 'देवानाम् ओजः' तथा 'ओषधीनां पयः' (देवों का ओज तथा ओषधियों का सार) कहा गया है। इस कथन के आधार पर भी इसे सोम या अनेक ओषधियों के संयोग से निर्मित माना जा सकता है-

३८६. आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् ॥१॥

यह बलशाली पर्णमणि अपने बल के द्वारा रिपुओं को विनष्ट करने वाली है। यह देवों का ओजस् तथा ओषधियों का साररूप है। यह हमें अपने वर्चस् से पूर्ण कर दे ॥१॥

३८७. मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम्।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः ॥२॥

हे पर्णमणे ! आप हमारे अन्दर शक्ति तथा ऐश्वर्य स्थापित करें, जिससे हम राष्ट्र के विशिष्ट वर्ग में उत्तम आत्मीय बन कर रहें ॥२॥

३८८. यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्। तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥

जिस गुप्त तथा प्रिय मणि को देवताओं ने वनस्पतियों में स्थापित किया है, उस मणि को देवगण पोषण तथा आयु-संवर्द्धन के लिए हमें प्रदान करें ॥३॥

३८९. सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥

इन्द्रदेव के द्वारा प्रदत्त तथा वरुणदेव के द्वारा सुसंस्कारित यह सोमपर्णमणि प्रचण्ड बल से सम्पन्न होकर हमें प्राप्त हो। उस तेजस्वी मणि को हम दीर्घायु तथा शतायु की प्राप्ति के लिए प्रिय मानते हैं ॥४॥

३९०. आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५॥

यह पर्णमणि चिरकाल तक हमारे समीप रहती हुई हमारे लिए कल्याणकारी हो। हम अर्यमादेव की कृपा से इसे धारण करके समान बल वालों से भी महान् बन सकें ॥५॥

३९१. ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥६॥

हे पर्णमणे ! धीवर, रथ बनाने वाले, लौह कर्म करने वाले, जो मनीषी हैं, उन सबको हमारे चारों तरफ परिचर्या के लिए आप उपस्थित करें ॥६॥

३९२. ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ॥७॥

हे मणे ! जो विभिन्न देशों के राजा और राजाओं का अभिषेक करने वाले हैं तथा जो सूत और ग्राम के नायक हैं, उन सभी को आप हमारे चारों ओर उपस्थित करें ॥७॥

३९३. पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ॥८॥

सोमपर्ण से उद्‌भूत हे मणे ! आप शरीर-रक्षक हैं । आप वीर हैं, हमारे समान -जन्मा हैं । आप सविता के तेज से परिपूर्ण हैं, इसलिए आपका तेज ग्रहण करने के लिए हम आपको धारण करते हैं ॥८ ॥

[६- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - जगद्‌बीज पुरुष । **देवता** - अश्वत्थ (वनस्पति) । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के प्रथम मंत्र में 'अश्वत्थः खदिरे अधि' वाक्य आता है । इस सूक्त के द्वारा खदिर (खैर) के वृक्ष में से उगे अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष से बनी मणि का प्रयोग कौशिक सूत्र में दिया गया है । सायणादि आचार्यों ने उसी संदर्भ में सूक्त के अर्थ किये हैं । व्यापक संदर्भ में 'अश्वत्थः खदिरे अधि' वाक्य गीता के कथन 'ऊर्ध्वमूलमधः शाखम्' वाले अश्वत्थ के भाव को स्पष्ट करने वाला है । वाचस्पत्यम् कोष में आकाश से इष्टापूर्त करने वाले को खदिर कहा है (खे आकाशे दीर्य्यते इष्टापूर्त्त कारिभिर्यतः- वा० पृ० २४६४) । गीतोक्त अश्वत्थ अनश्वर विश्व वृक्ष- या जीवन चक्र है, जिसकी जड़ें ऊपर 'आकाश' में हैं, इसलिये इस अश्वत्थ को 'खदिरे अधि' (आकाश से इष्टापूर्त्त के क्रम में स्थित) कह सकते हैं । इस सूक्त के ऋषि 'जगद्‌बीज पुरुष' (विश्व के मूल कारण पुरुष) हैं । इस आधार पर अश्वत्थ की संगति विश्ववृक्ष के साथ सटीक बैठती है-

३९४. पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१ ॥

वीर्यवान् (पराक्रमी) से वीर्यवान् की उत्पत्ति होती है । उसी प्रकार खदिर (खैर वृक्ष या आकाश से आपूर्ति करने वाले चक्र) के अन्दर स्थापित अश्वत्थ (पीपल अथवा विश्ववृक्ष) उत्पन्न हुआ है । वह अश्वत्थ (तेजस्वी) उन शत्रुओं (विकारों) को नष्ट करे, जो हमसे द्वेष करते हैं तथा हम जिनसे द्वेष करते हैं ॥१ ॥

[आयुर्वेद में खदिर और पीपल दोनों वृक्ष रोग निवारक हैं । खदिर में उत्पन्न पीपल के विशेष गुणों के उपयोग की बात कहा जाना उचित है । जीवन वृक्ष- जीवन तत्त्व की आपूर्ति का आधार आकाश में उपलब्ध इष्ट सूक्ष्म प्रवाह है । यह अविनाशी जीवनतत्त्व हमारे विकारों को नष्ट करने वाला है । यह कामना ऋषि द्वारा की गई है ।]

३९५. तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥२ ॥

हे अश्वत्थ ! (अश्व के समान स्थित दिव्य जीवन तत्त्व) आप विविध बाधाएँ उत्पन्न करने वाले उन द्रोहियों को नष्ट करें । (इस प्रयोजन के लिए आप) वृत्रहन्ता इन्द्र , मित्र तथा वरुणदेवों के स्नेही बनकर रहें ॥२ ॥

३९६. यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्‌ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥३ ॥

हे अश्वत्थ ! जिस प्रकार आप अर्णव (अन्तरिक्ष) को भेदकर उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार आप हमारे उन रिपुओं को पूर्णरूप से विनष्ट करें, जिनसे हम विद्वेष करते हैं तथा जो हमसे विद्वेष करते हैं ॥३ ॥

३९७. यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥४ ॥

हे अश्वत्थ ! जिस प्रकार आप शत्रु को रौंदने वाले वृष के सदृश बढ़ते हैं, उसी प्रकार आपके सहयोग से हम मनुष्य अपने रिपुओं को विनष्ट करने में समर्थ हों ॥४ ॥

३९८. सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ॥५ ॥

हे अश्वत्थ ! निर्ऋति (विपत्ति) देव हमारे उन रिपुओं को न टूटने वाले मृत्यु पाश से बाँधें, जिनसे हम विद्वेष करते हैं तथा जो हमसे विद्वेष करते हैं ॥५ ॥

३९९. यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान्।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ॥६ ॥

हे अश्वत्थ ! जिस प्रकार आप ऊपर स्थित होकर वनस्पतियों को नीचे स्थापित करते हैं, उसी प्रकार आप हमारे रिपुओं के सिर को सब तरफ से विदीर्ण करके, उन्हें विनष्ट कर डालें ॥६ ॥

४००. तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥७ ॥

जिस प्रकार नौका-बन्धन छूट जाने पर नदी की धारा में नीचे की ओर प्रवाहित होती है, उसी प्रकार हमारे रिपु नदी की धारा में ही बह जाएँ। विविध बाधाएँ उत्पन्न करने वालों के लिए पुनः लौटना सम्भव न हो ॥७ ॥

४०१. प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥८ ॥

हम इन शत्रुओं (विकारों) को ब्रह्मज्ञान के द्वारा मन और चित्त से दूर हटाते हैं। उन्हें हम अश्वत्थ (जीवन-वृक्ष) की शाखाओं (प्राणधाराओं) द्वारा दूर करते हैं ॥८ ॥

[७- यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** भृग्वङ्गिरा। **देवता -** यक्ष्मनाशन (१-३ हरिण, ४ तारागण, ५ आपः, ६-७ यक्ष्मनाशन)। **छन्द -** अनुष्टुप्, १ भुरिक् अनुष्टुप्।]

इस सूक्त में 'क्षेत्रिय' रोगों के उपचार का वर्णन है। क्षेत्रिय रोगों का अर्थ सामान्य रूप से आनुवंशिक रोग लिया जाता है। गीता में 'क्षेत्र' शरीर को कहा गया है। शरीर में बाहरी विषाणुओं से कुछ रोग पनपते हैं। कुछ रोगों की उत्पत्ति (आनुवंशिक अथवा अन्य कारणों से) शरीर के अन्दर से ही होती है, इसलिए क्षेत्र (शरीर) से उत्पन्न होने के कारण उन्हें क्षेत्रिय रोग कहा गया है। इन रोगों की ओषधि 'हरिणस्य शीर्ष' आदि में कही गयी है, जिसका अर्थ हिरण के सिर के अतिरिक्त हरणशील किरणों का सर्वोच्च भाग 'सूर्य' भी होता है। विषाण का अर्थ सींग तो होता ही है- हिरण के सींग (मृगशृंग) का उपयोग वैद्यक में होता है। विषाण का अर्थ कोषों में कुष्ठादि की ओषधि तथा 'विशेष मदकारी' भी है। सूर्य के सन्दर्भ में ये अर्थ लिए जा सकते हैं। उपचारों (मंत्र ४ से ७) में आकाशीय नक्षत्रों तथा जल-रस आदि का भी उल्लेख है। इन सबके समुचित संयोग से उत्पन्न प्रभावों पर शोध अपेक्षित है-

४०२. हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१ ॥

द्रुतगति से दौड़ने वाले हरिण (हिरण या सूर्य) के शीर्ष (सर्वोच्च भाग) में रोगों को नष्ट करने वाली ओषधि है। वह अपने विषाण (सींग अथवा विशेष प्रभाव) से क्षेत्रिय रोगों को विनष्ट कर देता है ॥१ ॥

४०३. अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२ ॥

यह बलशाली हरिण (हिरण या सूर्य) अपने चारों पदों (चरणों) से तुम्हारे अनुकूल होकर आक्रमण करता है। हे विषाण ! आप इसके (पीड़ित व्यक्ति के) हृदय में स्थित गुप्त क्षेत्रिय रोगों को विनष्ट करें ॥२ ॥

४०४. अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिवच्छदिः।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३ ॥

यह जो चार पक्ष (कोनों या विशेषताओं) से युक्त छत की भाँति (हिरण का चर्म अथवा आकाश) सुशोभित हो रहा है, उसके द्वारा हम आपके अंगों से समस्त क्षेत्रिय रोगों को विनष्ट करते हैं ॥३ ॥

४०५. अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित विचृत ('मूल' नक्षत्र या प्रकाशित) नामक जो सौभाग्यशाली तारे हैं, वे समस्त क्षेत्रिय रोगों को शरीर के ऊपर तथा नीचे के अंगों से पृथक् करें ॥४ ॥

४०६. आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५ ॥

जल समस्त रोगों की ओषधि है । स्नान-पान आदि के द्वारा यह जल ही ओषधि रूप में सभी रोगों को दूर करता है । जो अन्य ओषधियों की भाँति किसी एक रोग की नहीं, वरन् समस्त रोगों की ओषधि है, हे रोगिन् ! ऐसे जल से तुम्हारे सभी रोग दूर हों ॥५ ॥

[ओषधि अथवा मंत्र युक्त जल के प्रयोग का संकेत प्रतीत होता है ।]

४०७. यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥६ ॥

हे रोगिन् ! बिगड़े हुए स्रवित रस से आपके अन्दर जो क्षेत्रिय रोग संव्याप्त हो गया है, उसकी ओषधि को हम जानते हैं । उसके द्वारा हम आपके क्षेत्रिय रोग को विनष्ट करते हैं ॥६ ॥

[शरीर में विविध प्रकार के रस स्रवित होते हैं । जब वे रस, कायिक तंत्र बिगड़ जाने से दोषपूर्ण हो जाते हैं, तो क्षेत्रिय रोग उत्पन्न होते हैं । रोगों के मूल कारण के निवारण का संकल्प इस मंत्र में व्यक्त हुआ है ।]

४०८. अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७ ॥

नक्षत्रों के दूर होने पर उषाकाल में तथा उषा के चले जाने पर दिन में समस्त अनिष्ट हमसे दूर हों । क्षेत्रिय रोगादि भी इसी क्रम में दूर हो जाएँ ॥७ ॥

[८ - राष्ट्रधारण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** -मित्र (१ पृथिवी, वरुण, वायु, अग्नि, २ धाता, सविता, इन्द्र, त्वष्टा, अदिति, ३ सोम, सविता, आदित्य, अग्नि, ४ विश्वेदेवा, ५-६ मन) । **छन्द** - त्रिष्टुप् , २,६ जगती, ४ वतुष्पदा विराट् बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् , ५ अनुष्टुप् ।]

४०९. आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु ॥१ ॥

मित्रदेव अपनी रश्मियों के द्वारा पृथ्वी को संव्याप्त करते हुए ऋतुओं के द्वारा हमें दीर्घजीवी बनाने में सक्षम होकर पधारें। इसके बाद वरुणदेव, वायुदेव तथा अग्निदेव हमारे लिए शान्तिदायक बृहत् राष्ट्र को सुस्थिर करें ॥१ ॥

४१०. धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ॥२ ॥

सबके धारणकर्त्ता धातादेव, दानशील अर्यमादेव तथा सर्वप्रेरक सवितादेव हमारी आहुतियों को स्वीकार करें । इन्द्रदेव तथा त्वष्टादेव हमारी स्तुतियों को सुनें । शूरपुत्रों की माता देवी अदिति का हम आवाहन करते हैं, जिससे सजातियों के बीच में हम सम्माननीय बन सकें ॥२ ॥

४११. हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ॥३ ॥

प्रयोग करने वाले याजक को अत्यधिक श्रेष्ठता दिलाने के लिए हम सोमदेव, सवितादेव तथा समस्त आदित्यों को नमनपूर्वक आहूत करते हैं । हवियों के आधारभूत अग्निदेव प्रज्वलित हों, जिससे सजातियों के द्वारा हम चिरकाल तक वृद्धि को प्राप्त करते रहें ॥३ ॥

४१२. इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ॥४ ॥

हे शरीर या राष्ट्र में रहने वाली प्रजाओ-शक्तियो ! आप यहीं रहें, दूर न जाएँ । अन्न या विद्याओं से युक्त गौ (गाय, पृथ्वी अथवा इन्द्रियों) के रक्षक, पुष्टि प्रदाता आपको लाएँ । कामनायुक्त आप प्रजाओं को इस कामना की पूर्ति के लिए विश्वेदेव, एक साथ संयुक्त करें ॥४ ॥

४१३. सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥५ ॥

(हे मनुष्यो !) हम आपके विचारों, कर्मों तथा संकल्पों को एक भाव से संयुक्त करते हैं । पहले आप जो विपरीत कर्म करते थे, उन सबको हम श्रेष्ठ विचारों के माध्यम से अनुकूल करते हैं ॥५ ॥

४१४. अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥६ ॥

हम अपने मन में आपके मन को धारण (एक रूप) करते हैं । आप भी हमारे चित्त के अनुकूल अपने चित्त को बनाकर पधारें । आपके हृदयों को हम अपने वश में करते हैं । आप हमारे अनुकूल चलने वाले होकर पधारें ॥६

[९- दुःखनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** वामदेव । **देवता -** द्यावापृथिवी, विश्वेदेवा । **छन्द -** अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा निचृत् बृहती, ६ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

कौशिक सूत्र में इस सूक्त के साथ 'अरलु' वृक्ष की मणि बाँधकर विष्कंध रोग के निवारण का प्रयोग सुझाया गया है । सायणादि आचार्यों ने मंत्रार्थ उक्त क्रिया को लक्ष्य करके ही किये हैं; किन्तु मूल मंत्रों में 'अरलु मणि' का कोई उल्लेख नहीं है । मंत्रों में रोग निरोधक प्राण शक्ति धारण करने का भाव परिलक्षित होता है । उसे धारण करने के सूत्र भी दिए गए हैं । अरलु मणि से भी उसमें सहायता मिलती होगी, इसलिए उसे इन मंत्रों के साथ बाँधने का विधान बनाया गया होगा । मंत्रार्थों के व्यापक अर्थ करना ही युक्ति संगत लगता है-

४१५. कर्शफस्य विशफस्य द्यौष्पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ॥१ ॥

कृशफ (निर्बल अथवा कृश खुरों-नाखूनों वाले) प्राणी, विशफ (बिना खुर वाले, रेंगने वाले, अथवा विशेष खुरों वाले) प्राणियों का पालन-पोषण करने वाले माता- पिता पृथ्वी तथा द्यौ हैं । हे देवताओ ! जिस प्रकार आपने इन विघ्न-बाधाओं के कारणों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है, उसी प्रकार इन बाधाओं को हमसे दूर करें ॥१ ॥

[प्रकृति ने हर प्राणी को किसी प्रयोजन से बनाया है तथा उनके पालन की व्यवस्था की है। उनमें से अनेक प्राणी मनुष्यों के लिए बाधक भी बनते हैं। उनकी उपयोगिता बनाये रखकर बाधाओं के शमन की प्रार्थना देवशक्तियों से की गई है।]

४१६. अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम्।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥२॥

न थकने वाले ही इस (मणि या रोग निरोधक शक्ति) को धारण करते हैं। मनु ने भी ऐसा ही किया था। हम विष्कंध आदि रोगों को उसी प्रकार निर्बल करते हैं, जैसे बैलों को बधिया बनाने वाले उन्हें काबू में करते हैं ॥२॥

४१७. पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥३॥

पिंगल (रंग वाले अथवा दृढ़) सूत्र से उस खृगल (मणि अथवा दुर्धर्ष) को हम बाँधते हैं। इस प्रकार बाँधने वाले लोग प्रबल, शोषक रोग को निर्बल बनाएँ ॥३॥

४१८. येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥४॥

हे यशस्वियो ! आप जिस प्रबल माया के द्वारा देवों की तरह आचरण करते हैं, उसी प्रकार बन्धन वाले (मणि बाँधने वाले अथवा अनुशासनबद्ध) व्यक्ति दूषणों (दोषों) और रोगों से मुक्त रहते हैं, जैसे बन्दर कुत्तों से मुक्त रहते हैं ॥४॥

[कुत्ते अन्य भूचरों के लिए बड़े घातक तथा भय के कारण सिद्ध होते हैं; किन्तु बन्दर अपनी फुर्ती के आधार पर उनसे सहज ही अप्रभावित रहते हैं, उसी प्रकार रोग शामक क्षमतायुक्त व्यक्ति रोगों से अप्रभावित-निर्भय रह लेते हैं।]

४१९. दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम्।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ॥५॥

हे मणि या रोगनाशक शक्ति ! दूसरों के द्वारा उपस्थित किए गए विघ्नों को असफल करने के लिए हम आपको धारण करते हैं। आपके द्वारा हम विघ्नों का निवारण करते हैं। (हे मनुष्यो !) द्रुतगामी रथों के समान आप विघ्नों से दूर होकर अपने कार्य में जुट जाएँ ॥५॥

४२०. एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ॥६॥

धरती पर एक सौ एक प्रकार के विघ्न विद्यमान हैं। हे मणे ! उन विघ्नों के शमन के लिए देवताओं ने आपको ऊँचा उठाया (विशिष्ट पद दिया) है ॥६॥

[१० - रायस्पोषप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - अष्टका (१ धेनु, २-४ रात्रि, धेनु, ५ एकाष्टका, ६ जातवेदा, पशुसमूह, ७ रात्रि, यज्ञ, ८ संवत्सर, ९ ऋतुएँ, १० धाता- विधाता, ऋतुएँ, ११ देवगण, १२ इन्द्र, देवगण, १३ प्रजापति)। **छन्द**-अनुष्टुप्, ४-६, १२ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् गर्भातिजगती।]

इस सूक्त के देवता एकाष्टका तथा और भी अनेक देवता हैं। सूत्र ग्रन्थों के अनुसार इस सूक्त का उपयोग हवन विशेष में भी किया जाता है। वह प्रयोग माघ कृष्ण अष्टमी (जिसे अष्टका भी कहते हैं) पर किया जाता है। सूक्त में वर्णित एकाष्टका को इस अष्टका से जोड़कर अनेक आचार्यों ने मंत्रार्थ किये हैं। सूक्त के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 'अष्टका' का अर्थ व्यापक होना चाहिए। इसकी संगति आठ प्रहर वाले अहोरात्र (दिन-रात) से बैठती है। इस सूक्त में काल (समय) के यजन का भाव

आया है । उसकी मूल इकाई अहोरात्र (पृथ्वी का अपनी धुरी पर एक चक्र घूमने का समय) ही है । मंत्र क्रमांक ८ में एकाष्टका को संवत्सर की पत्नी कहकर सम्बोधित किया गया है, अतः एकाष्टका का व्यापक अर्थ प्रहरों का एक अष्टक, अहोरात्र अधिक सटीक बैठता है-

४२१. प्रथमा हव्यु वास सा धेनुरभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१ ॥

जो (एकाष्टका) प्रथम ही उदित हुई, वह नियमित स्वभाव वाली धेनु (गाय के समान धारण-पोषण करने वाली) सिद्ध हुई । वह पथ-प्रवाहित करने वाली (दिव्य धेनु) हमारे निमित्त उत्तरोत्तर पथ-प्रदायक बनी रहे ॥१ ॥

४२२. यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२ ॥

आने वाली (एकाष्टका से सम्बन्धित) जिस रात्रि रूपी गौ को देखकर देवतागण आनन्दित होते हैं तथा जो संवत्सर रूप काल (समय) की पत्नी है, वह हमारे लिए श्रेष्ठ मंगलकारी हो ॥२ ॥

४२३. संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ॥३ ॥

हे रात्रे ! हम आपको संवत्सर की प्रतिमा मानकर आपकी उपासना करते हैं । आप हमारी सन्तानों को दीर्घायु प्रदान करें तथा हमें गवादि धन से संयुक्त करें ॥३ ॥

४२४. इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥४ ॥

यह (एकाष्टका) वही है, जो सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुई और (समय के) अन्य घटकों में समाहित होकर चलती है ।इसके अन्दर अनेक महानताएँ हैं ।वह नववधू की तरह प्रजननशील तथा जयशील होकर चलती है ॥४ ।

[मास, ऋतु, संवत्सर आदि में एकाष्टका (अहोरात्र) समाहित रहती है । इसी से काल के अन्य घटक जन्म लेते हैं तथा यह सभी काल घटकों को अपने वश में रखती है ।]

४२५. वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५ ॥

संवत्सर में चलने वाले यज्ञ के लिए हवि तैयार करने के क्रम में वनस्पतियाँ तथा ग्रावा (पत्थर) ध्वनि कर रहे हैं । हे एकाष्टके !आपके अनुग्रह से हम श्रेष्ठ सन्तानों तथा वीरों से संयुक्त होकर प्रचुर धन के स्वामी हों ॥५ ॥

४२६. इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ॥६ ॥

भूमि पर गतिशील हे जातवेदा अग्निदेव ! आप हमारी गौ-घृतयुक्त आहुतियों को ग्रहण करके हर्षित हों । जो ग्राम (समूह) में रहने वाले नाना रूप वाले पशु हैं, उन (गौ, अश्व, भेड़, बकरी, पुरुष, गधा, ऊँट आदि) सातों प्रकार के प्राणियों का हमारे प्रति स्नेह बना रहे ॥६ ॥

४२७. आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम । पूर्णा दर्वे परा पत
सुपूर्णा पुनरा पत । सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ॥७ ॥

हे रात्रे ! आप हमें ऐश्वर्य तथा पुत्र-पौत्र आदि से परिपूर्ण करें । आपकी अनुकम्पा से हमारे प्रति देवताओं

की सुमति (कल्याणकारी बुद्धि) बनी रहे । यज्ञ के साधनरूप हे दर्वि ! आप आहुतियों से सम्पन्न होकर देवों को प्राप्त हों । आप हमें इच्छित फल प्रदान करती हुई हमारे समीप पधारें । उसके बाद आहुतियों से तृप्ति को प्राप्त करके हमें अन्न और बल प्रदान करें ॥७ ॥

४२८. आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज

हे एकाष्टके ! यह संवत्सर आपका पति बनकर यहाँ आया है । आप हमारी आयुष्मती सन्तानों को ऐश्वर्य से सम्पन्न करें ॥८ ॥

४२९. ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ॥९ ॥

हम ऋतुओं और उनके अधिष्ठाता देवताओं का हवि द्वारा पूजन करते हैं । संवत्सर के अंग रूप दिन-रात्रि का हम हवि द्वारा यजन करते हैं । ऋतु के अवयव-कला, काष्ठा, चौबीस पक्षों, संवत्सर के बारह महीनों तथा प्राणियों के स्वामी काल का हवि द्वारा यजन करते हैं ॥९ ॥

४३०. ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥१० ॥

हे एकाष्टके ! माह, ऋतु, ऋतु से सम्बन्धित रात-दिन और वर्ष धाता, विधाता तथा समृद्ध-देवता और जगत् के स्वामी की प्रसन्नता के लिए हम आपका यजन करते हैं ॥१० ॥

[यहाँ समय के यजन का भाव महत्त्वपूर्ण है । समय जीवन की मूल सम्पदा है । उसे यज्ञीय कार्यों के लिए समर्पित करना श्रेष्ठ यजन कर्म है । इसे यज्ञीय सत्कार्यों के लिए समयदान कह सकते हैं ।]

४३१. इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे । गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥

हम गो-घृत से युक्त हवियों के द्वारा समस्त देवताओं का यजन करते हैं । उन देवताओं की अनुकम्पा से हम असीम गौओं से युक्त घरों को ग्रहण करते हुए समस्त कामनाओं की पूर्ति का लाभ प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

४३२. एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः ॥१२ ॥

इस एकाष्टका ने तप के द्वारा स्वयं को तपाकर महिमावान् इन्द्रदेव को प्रकट किया । उन इन्द्रदेव की सामर्थ्य से देवों ने असुरों को जीता; क्योंकि वे शचीपति इन्द्रदेव रिपुओं को विनष्ट करने वाले हैं ॥१२ ॥

[इन्द्र संगठकदेव हैं । काल का गठन अहोरात्र रूप अष्टका ही करती है । यह इन्द्र की जन्मदात्री कही जा सकती है ।]

४३३. इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥१३ ॥

हे एकाष्टके ! हे इन्द्र जैसे पुत्र वाली ! हे सोम जैसे पुत्र वाली ! आप प्रजापति की पुत्री हैं । आप हमारी आहुतियों को ग्रहण करके हमारी अभिलाषाओं को पूर्ण करें ॥१३ ॥

[११ - दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा, भृग्वङ्गिरा । **देवता** - इन्द्राग्नी, आयु, यक्ष्मनाशन । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४ शक्वरीगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिक् बृहतीगर्भा पथ्यापंक्ति, ८ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती ।]

इस सूक्त में यज्ञीय प्रयोगों द्वारा रोग-निवारण तथा जीवनीशक्ति के संवर्द्धन का स्पष्ट उल्लेख किया गया है-

४३४. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१ ॥

हे रोगिन् ! तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट यक्ष्मा (रोग), राजयक्ष्मा (राज रोग) से मैं हवियों के द्वारा तुम्हें मुक्त करता हूँ। हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! पीड़ा से जकड़ लेने वाली इस व्याधि से रोगी को मुक्त कराएँ ॥१ ॥

४३५. यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥२ ॥

यह रोगग्रस्त पुरुष यदि मृत्यु को प्राप्त होने वाला हो या उसकी आयु क्षीण हो गई हो, तो भी मैं विनाश के समीप से वापस लाता हूँ। इसे सौ वर्ष की पूर्ण आयु तक के लिए सुरक्षित करता हूँ ॥२ ॥

४३६. सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३ ॥

सहस्र नेत्र तथा शतवीर्य एवं शतायुयुक्त हविष्य से मैंने इसे (आरोग्य को) उभारा है, ताकि यह संसार के सभी दुरितों (पापों-दुष्कर्मों) से पार हो सके। इन्द्रदेव इसे सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्रदान करें ॥३ ॥

[यज्ञीय सूक्ष्म विज्ञान से नेत्रशक्ति, वीर्य, आयुष्य सभी बढ़ते हैं। मनुष्य कष्टों को पार करके शतायु हो सकता है]

४३७. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥४ ॥

(हे प्राणी !) दीर्घायुष्य प्रदान करने वाली इस हवि के प्रभाव से मैं तुम्हें (नीरोग स्थिति में) वापस लाया हूँ। अब तुम निरन्तर वृद्धि करते हुए सौ वसन्त ऋतुओं, सौ हेमन्त ऋतुओं तथा सौ शरद ऋतुओं तक जीवित रहो। सर्वप्रेरक सवितादेव, इन्द्रदेव, अग्निदेव और बृहस्पतिदेव तुम्हें शतायु प्रदान करें। ।४ ॥

४३८. प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥५ ॥

हे प्राण और अपान ! जैसे भार वहन करने वाले बैल अपने गोष्ठ में प्रवेश करते हैं, वैसे आप क्षयग्रस्त रोगी के शरीर में प्रवेश करें। मनुष्यगण मृत्यु के कारणरूप जिन सैकड़ों रोगों का वर्णन करते हैं, वे सभी दूर हो जाएँ ॥५

४३९. इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्। शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः। ।६।

हे प्राण और अपान ! आप दोनों इस शरीर में विद्यमान रहें। आप अकाल में भी इस शरीर का त्याग न करें। इस रोगी के शरीर तथा उसके अवयवों को वृद्धावस्था तक धारण करें ॥६ ॥

४४०. जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ॥७ ॥

(हे मनुष्य !) हम आपको वृद्धावस्था तक जीवित रहने योग्य बनाते हैं और वृद्धावस्था तक रोगों से आपकी सुरक्षा करते हैं। वृद्धावस्था आपके लिए कल्याणकारी हो। ज्ञानी मनुष्य मृत्यु के कारण रूप जिन रोगों के विषय में कहते हैं, वे समस्त रोग आप से दूर हो जाएँ ॥७ ॥

४४१. अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा। यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त
जायमानं सुपाशया। तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८ ॥

जैसे गौ या बैल को रस्सी द्वारा बाँधा जाता है, वैसे वृद्धावस्था ने आपको बाँध लिया है ।जिस मृत्यु ने आपको पैदा होते ही अपने पाश द्वारा बाँध रखा है, उस पाश को बृहस्पतिदेव ब्रह्मा के अनुग्रह से मुक्त कराएँ ॥८

[१२ - शालानिर्माण सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - शाला, वास्तोष्पति । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २ विराट् जगती, ३ बृहती, ६ शक्वरीगर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, ९ अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि 'ब्रह्मा' (रचयिता) हैं तथा देवता 'शाला' एवं 'वास्तोष्पति' हैं। शाला (भवन) के निर्माण, निर्वाह साधनों तथा उपयोग आदि का उल्लेख इस सूक्त में है । शाला का अर्थ व्यापक प्रतीत होता है-रहने का भवन, यज्ञशाला, 'जीव आवासं देहं', विश्व आवास आदि के संदर्भ में मंत्रार्थों को समझा जा सकता है । मंत्रार्थ सामान्य शाला या यज्ञशाला के संदर्भ में ही किये गये हैं । कुछ मंत्र व्यापक अर्थों में ही अधिक सटीक बैठते हैं । विशिष्ट संदर्भों में संक्षिप्त टिप्पणियाँ आवश्यकतानुसार प्रस्तुत कर दी गई हैं-

४४२. इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥१ ॥

हम इसी स्थान पर सुदृढ़ शाला को बनाते हैं । वह शाला घृतादि (सार तत्त्वों) का चिन्तन करती हुई, हमारे कल्याण के लिए स्थित रहे । हे शाले ! हम सब वीर आपके चारों ओर अनिष्टों से मुक्त होकर तथा श्रेष्ठ सन्तानों से सम्पन्न होकर विद्यमान रहें ॥१ ॥

४४३. इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२ ॥

आप यहाँ अश्ववती (घोड़ों या शक्ति से युक्त) , गोमती (गौओं अथवा पोषण-सामर्थ्यों से युक्त) तथा श्रेष्ठ वाणी (अभिव्यक्ति) से युक्त होकर दृढ़तापूर्वक रहें । ऊर्जा या अन्नयुक्त, घृतयुक्त तथा पयोयुक्त (सभी पोषक तत्त्वों से युक्त) होकर महान् सौभाग्य प्रदान करने के लिए उन्नत स्थान पर स्थिर रहें ॥२ ॥

४४४. धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥३ ॥

हे शाले !आप भोग-साधनों से सम्पन्न तथा विशाल छत वाली हैं ।आप पवित्र धान्यों के अक्षय भण्डार वाली हैं । आपके अन्दर बच्चे तथा बछड़े आएँ और दूध देने वाली गौएँ भी सायंकाल कूदती हुई पधारें ॥३ ॥

४४५. इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥४ ॥

निर्माण करने की विधि को जानने वाले सवितादेव, वायुदेव, इन्द्रदेव तथा बृहस्पतिदेव इस शाला को विनिर्मित करें । मरुद्गण भी जल तथा घृत के द्वारा इसका सिंचन करें । इसके बाद भगदेवता इसे कृषि आदि क्रियाओं द्वारा सुव्यवस्थित बनाएँ ॥४ ॥

४४६. मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥५ ॥

सम्माननीय (वास्तुपति) की पत्नी रूप हे शाले ! आप धान्यों का पालन करने वाली हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में प्राणियों को हर्ष प्रदान करने, उनकी सुरक्षा करने तथा उनके उपभोग के लिए देवताओं ने आपका सृजन किया है । आप तृणों के वस्त्रवाली, श्रेष्ठ मनवाली हैं । आप हमें पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

[शाला के वस्त्र तृणों के हैं तथा मन श्रेष्ठ है । सामान्यतः तृण वस्त्र सादगी के प्रतीक व श्रेष्ठ मन शुभ-संकल्पों का द्योतक है । व्यापक अर्थों में पृथ्वी रूप शाला श्रेष्ठ मन वाली है, इसीलिए तृण उत्पन्न करती रहती है; ताकि प्राणियों का निर्वाह हो सके ।]

४४७. ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥६ ॥

हे वंश (बाँस) ! आप अबाध्य रूप से शाला के बीच स्तम्भ रूप में स्थिर रहें और उग्र बनकर प्रकाशित होते हुए (विकारों) रिपुओं को दूर करें । हे शाले ! आपके अन्दर निवास करने वाले हिंसित न हों और इच्छित सन्तानों से सम्पन्न होकर शतायु को प्राप्त करें ॥६ ॥

[सामान्यतः वंश का अर्थ बाँस है, व्यापक अर्थ में वह उत्तम आनुवंशिक विशेषताओं वाला लिया जाने योग्य है ।]

४४८. एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥७ ॥

इस शाला में तरुण बालक और गमनशील गौओं के साथ उनके बछड़े आएँ । इसमें मधुर रस से परिपूर्ण घड़े और दधि से भरे हुए कलश भी आएँ ॥७ ॥

४४९. पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥८ ॥

हे स्त्री (नारी अथवा प्रकृति) !आप इस घट को अमृतोपम मधुर रस तथा घृत धारा से भली प्रकार भरें । पीने वालों को अमृत से तृप्त करें ।इष्टापूर्त (इष्ट आवश्यकताओं की आपूर्ति) इस शाला को सुरक्षित रखती है ॥८

४५०. इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥९

हम स्वयं रोगरहित तथा रोगविनाशक जल को अनश्वर अग्निदेव के साथ घर में स्थित करते हैं ॥९ ॥

[घर में रोगनाशक जल तथा अग्नि का निवास आवश्यक है । शाला के व्यापक अर्थों में जीवन रस तथा अनश्वर ऊर्जा के सतत प्रवाह का भाव बनता है ।]

[१३ - आपो देवता सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु । **देवता** - वरुण, सिन्धु, आप :, २, ३ इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ निचृत् अनुष्टुप्, ५ विराट् जगती, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ।]

४५१. यददः संप्रयतीरहावनदता हते । तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ।

हे सरिताओ ! आप भली प्रकार से सदैव गतिशील रहने वाली हैं । मेघों के ताड़ित होने (बरसने) के बाद आप जो (कल-कल ध्वनि) नाद कर रही हैं; इसलिए आपका नाम 'नदी' पड़ा ।वह नाम आपके अनुरूप ही है ॥१ ॥

४५२.यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत । तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन

जब आप वरुणदेव द्वारा प्रेरित होकर शीघ्र ही मिलकर नाचती हुई सी चलने लगीं, तब इन्द्रदेव ने आपको प्राप्त किया । इसी 'आप्नोत्' क्रिया के कारण आप का नाम 'आपः' पड़ा ॥२ ॥

४५३. अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ॥३ ॥

आप बिना इच्छा के सदैव प्रवाहित होने वाले हैं । इन्द्रदेव ने अपने बल के द्वारा आप का वरण किया । इसीलिए हे देवनशील जल ! आपका नाम 'वारि' पड़ा ॥३ ॥

४५४. एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥४ ॥

हे यथेच्छ (आवश्यकतानुसार) बहने वाले (जल तत्त्व) ! एक(श्रेष्ठ)देवता आपके अधिष्ठाता हुए। (देव संयोग से) महान् ऊर्ध्वश्वास (ऊर्ध्वगति) के कारण आपका नाम 'उदक' हुआ ॥४ ॥

४५५. आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५ ॥

(निश्चित रूप से) जल कल्याणकारी है, घृत (तेज प्रदायक) है। उसे अग्नि और सोम पुष्ट करते हैं। वह जल, मधुरता से पूर्ण तथा तृप्तिदायक तीव्र रस हमें प्राण तथा वर्चस् के साथ प्राप्त हो ॥५ ॥

४५६. आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥६ ॥

निश्चित रूप से मैं अनुभव करता हूँ कि उनके द्वारा उच्चरित शब्द हमारे कानों के समीप आ रहे हैं। चमकीले रंग वाले हे जल ! आप का सेवन करने के बाद, अमृतोपम भोजन के समान हमें तृप्ति का अनुभव हुआ ॥६ ॥

४५७. इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ॥७ ॥

हे जलप्रवाहो ! यह (तुष्टिदायक प्रभाव) आपका हृदय है। हे ऋत प्रवाही धाराओ ! यह (ऋत) आपका पुत्र है। हे शक्ति- प्रदायक धाराओ ! यहाँ इस प्रकार आओ, जहाँ तुम्हारे अन्दर इन (विशेषताओं) को प्रविष्ट करूँ ॥७ ॥

[१४- गोष्ठ सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा। **देवता** - गोष्ठ, अह ,(२ अर्यमा, पूषा, बृहस्पति, इन्द्र, १-६ **गौ**, ५ **गोष्ठ**)। **छन्द** - अनुष्टुप् , ६ आर्षी त्रिष्टुप्।]

इस सूक्त में गोष्ठ का वर्णन है। गो, गौओं को भी कहते हैं तथा इन्द्रियों को भी। इसी प्रकार गोष्ठ से गौशाला के साथ शरीर का भी भाव बनता है। मन्त्रार्थों को दोनों संदर्भों में लिया जा सकता है-

४५८. सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१ ॥

हे गौओ ! हम आपको सुखपूर्वक बैठने योग्य गोशाला प्रदान करते हैं। हम आपको जल, समृद्धि तथा सन्तानों से सम्पन्न करते हैं ॥१ ॥

४५९. सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः।
समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत यद् वसु ॥२ ॥

हे गौओ !अर्यमा, पूषा और बृहस्पतिदेव आपको उत्पन्न करें तथा रिपुओं का धन जीतने वाले इन्द्रदेव भी आपको उत्पन्न करें।आपके पास क्षीर, घृत आदि के रूप में जो ऐश्वर्य है, उससे हम साधकों को पुष्टि प्रदान करें ॥२ ।

४६०.संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः। बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन

हे गौओ ! आप हमारी इस गोशाला में निर्भय होकर तथा पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न होकर चिरकाल तक जीवित रहें। आप गोबर पैदा करती हुई तथा नीरोग रहकर मधुर और सौम्य दुग्ध धारण करती हुई हमारे पास पधारें ॥३ ॥

४६१. इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४ ॥

हे गौओ ! आप हमारे ही गोष्ठ में आएँ । जिस प्रकार मक्खी कम समय में ही अनेक गुना विस्तार कर लेती है, उसी प्रकार आप भी वंश वृद्धि को प्राप्त हों । आप इस गोशाला में बछड़ों से सम्पन्न होकर हम साधकों से प्रेम करें । हमें छोड़कर कभी न जाएँ ॥४ ॥

४६२. शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥५ ॥

हे गौओ !आपकी गोशाला आपके लिए कल्याणकारी हो, 'शारिशाक' (प्राणि- विशेष) के सदृश परिवार का असीमित विस्तार करके समृद्ध हों तथा यहाँ पर रहकर पुत्र-पौत्रादि उत्पन्न करें ।हम आपका सृजन करते हैं ॥५

४६३. मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥६ ॥

हे गौओ ! आप मुझ गोपति के साथ एकत्रित रहें । यह गोशाला आपका पोषण करे । बहुत (संख्या वाली) होती हुई आप चिरकाल तक जीवित रहें । आपके साथ हम भी दीर्घ आयु को प्राप्त करें ॥६ ॥

[१५- वाणिज्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** -विश्वेदेवा, इन्द्राग्नी (इन्द्र, पथ, अग्नि, प्रपण, विक्रय, देवगण, धन, प्रजापति, सविता, सोम, धनरुचि, वैश्वानर, जातवेदा) । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा विराट्अत्यष्टि, ५ विराट् जगती, ७ अनुष्टुप्, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि पण्यकाम(व्यवहार की कामना वाले) अथर्वा हैं । इसमें परमेश्वर अथवा इन्द्राग्नि को वणिज(व्यवसायी) कहा गया है । गीता की उक्ति 'यो यथा मां प्रपद्यन्ते' (जो मुझसे जिस प्रकार का व्यवहार करता है, मैं उससे उसी प्रकार का व्यवहार करता हूँ) तथा संत कबीर के अनुभव 'साईं मेरा बानियाँ, सहज करे व्यापार' आदि भी इसी आशय के हैं । हर व्यवसाय के कुछ आदर्श-अनुशासन होते हैं, उनको समझने और उनका परिपालन करने वाला लाभान्वित होता है । इस सूक्त में जीवन-व्यवसाय में ईश्वर की साझेदारी के सूत्र दिए गए हैं-

४६४. इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१ ॥

हम व्यवसाय में कुशल इन्द्रदेव को प्रेरित करते हैं, वे हमारे पास पधारें, हमारे अग्रणी बनें । वे हमारे जीवन-पथ के अवरोध को,. सताने वाले व्यक्तियों-भूचरों को विनष्ट करते हुए हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥१ ॥

४६५. ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥२ ॥

द्यावा-पृथिवी के बीच जो देवों के अनुरूप मार्ग हैं, वे सभी हमें घृत और दुग्ध से तृप्त करें । जिन्हें खरीदकर हम (जीवन व्यवसाय के द्वारा) प्रचुर धन-ऐश्वर्य प्राप्त कर सकें ॥२ ॥

४६६. इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३ ॥

हे इन्द्राग्ने ! संकट से बचने तथा बल प्राप्ति की कामना से हम ईंधन एवं घृत सहित आपको हव्य प्रदान करते हैं । (यह आहुतियाँ तब तक देंगे) जब तक कि ब्रह्म द्वारा प्रदत्त दिव्य बुद्धि की वन्दना करते हुए हम सैकड़ों सिद्धियों पर अधिकार प्राप्त न कर लें ॥३ ॥

[मनुष्य जीवन-व्यवसाय में लाभान्वित हो सके, इसके लिए परमात्मा ने उसे दिव्य मेधा दी है । उसे साधना, यज्ञादि प्रयोगों द्वारा जाग्रत् - प्रयुक्त करके सैकड़ों सिद्धियों को प्राप्त करना संभव है ।]

४६७. इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ।।४ ।।

हे अग्निदेव ! हमसे हुई त्रुटियों के लिए आप हमें क्षमा करें । हम जिस मार्ग- सुदूर पथ पर आ गये हैं, वहाँ वस्तुओं का क्रय-विक्रय हमारे लिए शुभ हो । हमारा हर व्यवहार हमें लाभ देने वाला हो । आप हमारे द्वारा समर्पित हवियों को स्वीकार करें । आपकी कृपा से हमारा आचरण उन्नति और सुख देने वाला हो ।।४ ।।

४६८. येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ।।५ ।।

हे देवगणो ! आप लाभ के अवरोधक देवों को इस आहुति से संतुष्ट करके लौटा दें । हे देवताओ ! लाभ की कामना करते हुए हम जिस धन से व्यापार करते हैं, आपकी कृपा से हमारा वह धन कम न हो, बढ़ता ही रहे ।।५

४६९. येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ।।६ ।।

धन से धन प्राप्त करने की कामना करते हुए, हम जिस धन से व्यापार करना चाहते हैं, उसमें इन्द्रदेव, सवितादेव, प्रजापतिदेव, सोमदेव तथा अग्निदेव हमारी रुचि पैदा करें ।।६ ।।

४७०. उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः । स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ।।

हे होता-वैश्वानर अग्निदेव ! हम हवि समर्पित करते हुए आपकी प्रार्थना करते हैं । आप हमारी आत्मा, प्राण, तथा गौओं की सुरक्षा के लिए जागरूक रहें ।।७ ।।

४७१. विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ।।८ ।।

हे जातवेदा अग्ने ! जैसे अपने स्थान पर बँधे हुए घोड़े को अन्न प्रदान करते हैं, वैसे हम आपको प्रतिदिन हवि प्रदान करते हैं ।आपके सम्पर्क में रहते हुए तथा सेवा करते हुए हम धन-धान्य से समृद्ध रहें, कभी नष्ट न हों ।।

[१६- कल्याणार्थप्रार्थना सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा ।**देवता** -१ अग्नि, इन्द्र, मित्रावरुण, अश्विनीकुमार , भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम, रुद्र, २-३,५ भग, आदित्य, ४ इन्द्र , ६ दधिक्रावा, अश्वसमूह, ७ उषा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ आर्षी जगती, ४ भुरिक् पंक्ति ।]

४७२. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ।।१ ।।

प्रभातकाल (यज्ञार्थ) हम अग्निदेव का आवाहन करते हैं । प्रभात में ही यज्ञ की सफलता के निमित्त इन्द्रदेव, मित्रावरुण, अश्विनीकुमारों, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रदेव का भी आवाहन करते हैं ।।१ ।।

४७३. प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ।।२ ।।

हम उन भग देवता का आवाहन करते हैं, जो जगत् को धारण करने वाले, उग्रवीर एवं विजयशील हैं । वे अदिति पुत्र हैं, जिनकी स्तुति करने से दरिद्र भी धनवान् हो जाता है । राजा भी उनसे धन की याचना करते हैं ॥२ ॥

४७४. भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३ ॥

हे भगदेव ! आप वास्तविक धन हैं । शाश्वत-सत्य ही धन है । हे भगदेव ! आप हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर इच्छित धन प्रदान करें । हे देव ! हमें गौएँ, घोड़े, पुत्रादि प्रदान कर श्रेष्ठ मानवों के समाज वाला बनाएँ ॥३ ॥

४७५. उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४ ॥

हे देव ! आपकी कृपा से हम भाग्यवान् बनें । दिन के प्रारम्भ और मध्य में भी हम भाग्यवान् रहें । हे धनवान् भग देवता ! हम सूर्योदय के समय समस्त देवताओं का अनुग्रह प्राप्त करें ॥४ ॥

४७६. भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ॥५ ॥

भगदेव ही समृद्ध हों, उनके द्वारा हम ऐश्वर्ययुक्त बनें । हे भगदेव ! ऐसे आपको हम सब प्रकार बार-बार भजते हैं, आप हमारे अग्रणी बनें ॥५ ॥

४७७. समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६ ॥

उषाएँ यज्ञार्थ भली प्रकार उन्मुख हों । जैसे अश्व रथ को लाते हैं, उसी प्रकार वे हमें पवित्र पद प्रदान करने के लिए दधिक्रा (धारण करके चलने वाले) की तरह नवीन शक्तिशाली, धनज्ञ भग को हमारे लिए ले आएँ ॥६ ॥

४७८. अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ॥

समस्त गुणों से युक्त अश्वों, गौओं, वीरों से युक्त एवं घृत का सिंचन करने वाली कल्याणकारी उषाएँ हमारे घरों को प्रकाशित करें । आप सदैव हमारा पालन करते हुए कल्याण करें ॥७ ॥

[१७- कृषि सूक्त]

[**ऋषि** - विश्वामित्र । **देवता** -सीता । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ आर्षी गायत्री, ३ पथ्यापंक्ति, ४, ६ अनुष्टुप्, ७ विराट् पुर उष्णिक्, ८ निचृत् अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में कृषि कर्मों का उल्लेख है । लौकिक कृषि के साथ-साथ आध्यात्मिक संदर्भ में भी मंत्रार्थ फलित होते हैं । दृश्य भूमि के साथ मनोभूमि की कृषि का भाव भी सिद्ध होता है । इस संदर्भ में हल-ध्यान, उसका फाल- प्राण, उपज- दिव्य वृत्तियों के अर्थ में लेने योग्य हैं-

४७९. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१ ॥

कवि (दूरदर्शी), धीर पुरुष (कृषि के लिए) देवों की प्रसन्नता के लिए हलों को जोतते (नियोजित करते) हैं तथा युगों (जुओं या जोड़ों) को विशेष रूप से विस्तारित करते हैं ॥१ ॥

[स्थूल कृषि में हल से भूमि की कठोरता को तोड़ते हैं, सूक्ष्म कृषि में मन की कठोरता का उपचार करते हैं । मन से जुड़े पूर्वाग्रहों को अलग-अलग करते हैं ।]

४८०. युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् ॥२ ॥

(हे कृषको !) हलों को प्रयुक्त करो, युगों को फैलाओ । इस प्रकार तैयार उत्पादक क्षेत्र में बीजों का वपन करो । हमारे लिए भरपूर उपज हो । वे परिपक्व होकर काटने वाले उपकरणों के माध्यम से हमारे निकट आएँ ॥२ ।

[जैसे कृषि की उपज पकने पर ही प्रयुक्त करने योग्य होती है, उसी प्रकार साधनाएँ भी परिपक्व होने पर ही प्रयुक्त की जाने योग्य होती हैं ।]

४८१. लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम् ॥३ ॥

श्रेष्ठ फाल से युक्त (अथवा वज्र की तरह कठोर) , सुगमता से चलने वाला, सोम (अन्न या दिव्य सोम) की प्रक्रिया को गुप्त रीति से सम्पादित करने वाला हल (हमें) पुष्ट 'गौ' (गाय, भूमि या इन्द्रियाँ) , 'अवि' (भेड़ या रक्षण सामर्थ्य) , शीघ्र चलने वाले रथवाहन तथा नारी (अथवा चेतन शक्ति) प्रदान करे ॥३ ॥

४८२. इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥४ ॥

इन्द्रदेव कृषि योग्य भूमि को सँभालें । पूषादेव उसकी देख-भाल करें, तब वह (धरित्री) श्रेष्ठ धान्य तथा जल से परिपूर्ण होकर हमारे लिए धान्य आदि का दोहन करे ॥४ ॥

४८३. शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥५ ॥

हल के नीचे लगी हुई, लोहे से विनिर्मित श्रेष्ठ 'फालें ' खेत को भली-प्रकार से जोतें और किसान लोग बैलों के पीछे-पीछे आराम से जाएँ । हे वायु और सूर्य देवो ! आप दोनों हविष्य से प्रसन्न होकर, पृथ्वी को जल से सींचकर इन ओषधियों को श्रेष्ठ फलों से युक्त करें ॥५ ॥

४८४. शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥

कृषक हर्षित होकर खेत को जोतें, बैल उन्हें सुख प्रदान करें और हल सुखपूर्वक कृषि कार्य सम्पन्न करें । रस्सियाँ सुखपूर्वक बाँधें । हे शुनः देवता ! आप चाबुक को सुख के लिए ही चलाएँ ॥६ ॥

४८५. शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् । यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥७ । ।

हे वायु और सूर्यदेव ! आप हमारी हवि का सेवन करें । आकाश में निवास करने वाले जल देवता वर्षा के द्वारा इस भूमि को सिंचित करें ॥७ ॥

४८६. सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव । यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः

हे सीते (जुती हुई भूमि) ! हम आपको प्रणाम करते हैं । हे ऐश्वर्यशालिनी भूमि ! आप हमारे लिए श्रेष्ठ मन वाली तथा श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाली होकर हमारे अनुकूल रहें ॥८ ॥

४८७. घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥९ ॥

घृत (जल) और शहद द्वारा भली प्रकार अभिषिंचित हे सीते (जुती भूमि) !आप देवगणों तथा मरुतों द्वारा स्वीकृत होकर घृत से सिंचित होकर (घृतयुक्त) पोषक रस (जल- दुग्धादि) के साथ हमारी ओर उन्मुख हों ॥९ ॥

[१८- वनस्पति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - वनस्पति (वाणपर्णी ओषधि) । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप्गर्भाचतुष्पाद् उष्णिक्, ६ उष्णिक्गर्भापथ्यापंक्ति ।]

इस सूक्त में प्रत्यक्ष रूप से सपत्नी (सौत) का पराभव करके पति को अपने प्रियपात्र के रूप में स्थापित करने का भाव है । कौशिक सूत्र में 'बाणापर्णी' नामक ओषधि का इसके लिए प्रयोग कहा गया है । किसी समय सपत्नी जन्य पारिवारिक विग्रह को दूर करने के लिए इस सूक्त का ऐसा भी प्रयोग किया जाता रहा होगा; किन्तु सूक्त के ऋषि अथर्वा (पुरुष) हैं । पुरुष किसी को 'मेरी सपत्नी' नहीं कह सकता । मंत्र ४ में 'अहं उत्तरा' मैं उत्तरा (श्रेष्ठ) हूँ, यह भी स्त्रीवाचक प्रयोग है । 'अस्तु' सूक्तार्थ को केवल सपत्नी निवारण तक सीमित नहीं किया जा सकता । आलंकारिक रूप से 'परमात्मा या जीवात्मा' को पति तथा सद्बुद्धि-दुर्बुद्धि अथवा विद्या एवं अविद्या को पत्नियाँ कहा गया है । सद्बुद्धि या विद्या यह कामना करे कि दुर्बुद्धि या अविद्या दूर हटे तथा 'जीवात्मा' का स्नेह मेरे प्रति ही रहे- ऐसा अर्थ करने से इस सूक्त का भाव भी सिद्ध होता है एवं ऋषि तथा वेद की गरिमा का निर्वाह भी होता है-

४८८.इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् । यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम्

हम इस बलवती ओषधि को खोदकर निकालते हैं । इससे सपत्नी (दुर्बुद्धि) को बाधित किया जाता है और स्वामी की असाधारण प्रीति उपलब्ध की जाती है ॥१ ॥

[वनस्पति (ओषधि) भूमि से खोदकर निकाली जाती है तथा सद्- असद् विवेकयुक्त दिव्य प्रज्ञा को साधना द्वारा अंत:करण की गहराई से प्रकट किया जाता है ।]

४८९. उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति । सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि ॥२

हे उत्तानपर्णी (इस नाम की या ऊर्ध्वमुखी पत्तों वाली) , हितकारिणी, देवों द्वारा सेवित, बलवती (ओषधे) ! आप मेरी सौत (अविद्या) को दूर करें । मेरे स्वामी को मात्र मेरे लिए प्रीतियुक्त करें ॥२ ॥

[विद्या का पक्ष लेने वाली प्रज्ञा को ऊर्ध्वपर्णी तथा देवों द्वारा सेवित कहना युक्ति संगत है ।]

४९०. नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ । परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥

हे सपत्नी, मैं तेरा (सपत्नी- दुर्बुद्धि का) नाम नहीं लेती । तू भी पति (परमेश्वर या जीवात्मा) के साथ सुख अनुभव नहीं करती । मैं अपनी सपत्नी को बहुत दूर भेज देना चाहती हूँ ॥३ ॥

४९१. उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः । अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥४ ॥

हे अत्युत्तम ओषधे ! मैं श्रेष्ठ हूँ, श्रेष्ठों में भी अति श्रेष्ठ बनूँ । हमारी सपत्नी (अविद्या) अधम है, वह अधम से अधम गति पाये ॥४ ॥

४९२. अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः । उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ॥

हे ओषधे ! मैं आपके सहयोग से सपत्नी को पराजित करने वाली हूँ । आप भी इस कार्य में समर्थ हैं । हम दोनों शक्ति-सम्पन्न बनकर सपत्नी को शक्तिहीन करें ॥५ ॥

४९३. अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६ ॥

(हे पतिदेव !) मैं आपके समीप, आपके चारों ओर इस विजयदायिनी ओषधि को स्थापित करती हूँ । इस ओषधि के प्रभाव से आपका मन हमारी ओर उसी प्रकार आकर्षित हो, जैसे गौएँ बछड़े की ओर दौड़ती हैं तथा जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है ॥६ ॥

[१९- अजरक्षत्र सूक्त]

[**ऋषि** - वसिष्ठ । **देवता** - विश्वेदेवा, चन्द्रमा अथवा इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ पथ्याबृहती, ३ भुरिक् बृहती, ५ त्रिष्टुप्, ६ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप् ककुम्मतीगर्भातिजगती, ७ विराट् आस्तार पंक्ति, ८ पथ्यापंक्ति ।]

४९४. संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥१ ॥

(पुरोहित की कामना है) हमारा ब्राह्मणत्व तीक्ष्ण हो और तब (उच्चारित) यह मंत्र तेजस्वी हो । (मंत्र के प्रभाव से) हमारे बल एवं वीर्य में तेजस्विता आएँ । जिनके हम विजयी पुरोहित हैं, उनका क्षात्रत्व अजर बने ॥१ ॥

४९५. समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं१ बलम् । वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम्

हम आहुतियों द्वारा इस राष्ट्र को तेजस्वी तथा समृद्ध बनाते हैं । हम उनके बल, वीर्य तथा सैन्य शक्ति को भी तेजस्वी बनाते हैं; उसके रिपुओं की भुजाओं (सामर्थ्य) का उच्छेदन करते हैं ॥२ ॥

४९६. नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३ ॥

जो हमारे धन-सम्पन्नों तथा विद्वानों पर सैन्य सहित आक्रमण करें, वे रिपु पतित हो जाएँ- अधोगति पाएँ । हम (मंत्र शक्ति के प्रभाव से) रिपुओं की सेना को क्षीण करके अपने लोगों को उन्नत बनाते हैं ॥३ ॥

४९७. तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥४ ॥

हम जिनके पुरोहित हैं, वे फरसे से भी अधिक तीक्ष्ण हो जाएँ, अग्नि से भी अधिक तेजस्वी हों । उनके हथियार इन्द्रदेव के वज्र से भी अधिक तीक्ष्ण हों ॥४ ॥

४९८. एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वे३षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५ ॥

हम अपने राष्ट्र को श्रेष्ठ वीरों से सम्पन्न करके समृद्ध करते हैं । इनके शस्त्रों को तेजस्वी बनाते हैं । इनका क्षात्र तेज क्षयरहित तथा विजयशील हो । समस्त देवता इनके चित्त को उत्साहित करें ॥५ ॥

४९९. उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः । पृथग् घोषा उलुलयः
घोषा केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥६ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र !हमारे बलशाली दल का उत्साह बढ़े व विजयी वीरों का सिंहनाद हो ।झंडा लेकर आक्रमण करने वाले वीरों का जयघोष चारों ओर फैले । इन्द्रदेव की प्रमुखता में मरुद्‌गण हमारी सेना के साथ चलें ॥६ ॥

५००. प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥७ ॥

हे वीरो ! युद्ध भूमि की ओर बढ़ो । तुम्हारी बलिष्ठ भुजाएँ तीक्ष्ण आयुधों से शत्रु सेना पर प्रहार करें । शक्तिशाली आयुधों को धारण करने से बलशाली भुजाओं के द्वारा आप बलहीन आयुधों वाले कमजोर शत्रुओं को नष्ट करें । युद्ध में मरुद्‌गण आपकी सहायता के लिए साथ रहें । देवों की कृपा से आप युद्ध में विजयी बनें ॥७ ॥

५०१. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥८ ॥

हे बाण ! मंत्रों के प्रयोग से तीक्ष्ण किये हुए आप हमारे धनुष से छोड़े जाने पर शत्रु सेना का विनाश करें । शत्रु सेना में प्रवेश कर उनमें जो श्रेष्ठतम वीर, हाथी, घोड़े आदि हों, उन्हें नष्ट करें । दूर होते हुए भी शत्रुओं का कोई भी वीर शेष न बचे ॥८ ॥

[२०- रयिसंवर्धन सूक्त]

[**ऋषि** - वसिष्ठ । **देवता** - १-२,५ अग्नि , ३ अर्यमा, भग, बृहस्पति, देवी, ४ सोम, अग्नि, आदित्य, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति, ६ इन्द्रवायू, ७ अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र , वात, विष्णु, सरस्वती, सविता, वाजी, ८ विश्वाभुवनानि (समस्त भुवन), ९ पञ्च प्रदिश, १० वायु, त्वष्टा । **छन्द** - अनुष्टुप्, ६ पथ्यापंक्ति, ८ विराट् जगती ।]

५०२. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! यह अरणि या यज्ञ वेदी आपकी उत्पत्ति का हेतु है, जिसके द्वारा आप प्रकट होकर शोभायमान होते हैं । अपने उस मूल को जानते हुए आप उस पर प्रतिष्ठित हों और हमारे धन-वैभव को बढ़ाएँ ॥१ ॥

५०३. अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे प्रति श्रेष्ठ भावों को रखकर इस यज्ञ में उपस्थित हों तथा हमारे लिए हितकारी उपदेश करें । हे प्रजापालक अग्निदेव ! आप ऐश्वर्य दाता हैं, इसलिए हमें भी धन-धान्य से परिपूर्ण करें ॥२ ॥

५०४. प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः । प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ।

अर्यमा, भग और बृहस्पतिदेव हमें ऐश्वर्य से परिपूर्ण करें । समस्त देवगण तथा वाणी की अधिष्ठात्री, सत्यप्रिय देवी सरस्वती हमें भरपूर सम्पदाएँ प्रदान करें ॥३ ॥

५०५. सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे । आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्

हम अपने संरक्षण एवं पालन के लिए राजा सोम, अग्निदेव, आदित्यगण, विष्णुदेव, सूर्यदेव, प्रजापति ब्रह्मा और बृहस्पतिदेव को स्तोत्रों द्वारा आमन्त्रित करते हैं ॥४ ॥

५०६. त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ॥

हे अग्निदेव ! आप अन्य सभी अग्नियों के साथ पधार कर हमारे स्तोत्रों एवं यज्ञ की अभिवृद्धि करें । आप धन-वैभव प्रदान करने के निमित्त यजमानों एवं दाताओं को भी प्रेरित करें ॥५ । ।

५०७. इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ॥६ ॥

प्रशंसनीय इन्द्रदेव एवं वायुदेव ! दोनों को हम इस यज्ञीय कर्म में आदरपूर्वक आमंत्रित करते हैं । सभी देवगण हमारे प्रति अनुकूल विचार रखते हुए हर्षित हों । सभी मनुष्य दान की भावना से अभिप्रेरित हों । अतः हम आपका आवाहन करते हैं ॥६ ॥

५०८. अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम्

हे स्तोताओ ! आप सब अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, सरस्वती, अन्न तथा बलप्रदायक सवितादेव का आवाहन करें । सभी देव हमें ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पधारें ॥७ ॥

५०९. वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ॥८ ॥

अन्न की उत्पत्ति के कारणभूत कर्म को हम शीघ्र ही प्राप्त करें । वृष्टि के द्वारा अन्न पैदा करने वाले 'वाज प्रसव देवता' के मध्य में ये समस्त दृश्य-जीव निवास करते हैं । ये कृपण व्यक्ति को दान देने के लिए प्रेरित करें तथा हमें वीर पुत्रों से युक्त महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८ ॥

५१०. दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् । प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ।

यह उर्वी (विस्तृत पृथ्वी) तथा पाँचों महा दिशाएँ हमें इच्छित फल प्रदान करें । इनके अनुग्रह से हम अपने मन और अन्तःकरण के समस्त संकल्पों को पूर्ण कर सकें ॥९ ॥

५११. गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥१० ॥

गौ आदि समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली वाणी को हम उच्चरित करते हैं । हे वाग्देवता ! आप अपने तेज के द्वारा हमें प्रकाशित करें, वायुदेव सभी ओर से आकर हमें आवृत करें तथा त्वष्टा देव हमारे शरीर को पुष्ट करें ॥१० ॥

[२१- शान्ति सूक्त]

[**ऋषि** - वसिष्ठ । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - भुरिक् त्रिष्टुप्, १ पुरोऽनुष्टुप् , ४ त्रिष्टुप्, ५ जगती, ६ उपरिष्टात् विराट् बृहती, ७ विराट्गर्भात्रिष्टुप्, ९ निचृत् अनुष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।]

५१२. ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥१ ॥

जो अग्नियाँ मेघों, मनुष्यों, मणियों (सूर्यकान्त आदि), ओषधियों, वृक्ष-वनस्पतियों तथा जल में विद्यमान हैं, उन समस्त अग्नियों को यह हवि प्राप्त हो ॥१ ॥

५१३. यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥२ ॥

जो अग्नियाँ सोमलताओं, गौओं, पक्षियों, हरिणों, दो पैर वाले मनुष्यों तथा चार पैर वाले पशुओं के अन्दर विद्यमान हैं, उन समस्त अग्नियों के लिए यह हवि प्राप्त हो ॥२ ॥

५१४. य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥३ ॥

जो अग्निदेव इन्द्र के साथ एक रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हैं; जो सबको जलाने वाले दावाग्नि रूप हैं; जो सबके हितकारी हैं तथा युद्ध में विजय प्रदान करने वाले हैं; उन अग्निदेव को ये आहुतियाँ प्राप्त हों ॥३ ॥

५१५. यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥४ ॥

जो अग्निदेव समस्त विश्व के भक्षक हैं, जो इच्छित फलदाता के रूप में पुकारे जाते हैं, जिनको देने वाला और ग्रहण करने वाला भी कहा जाता है, जो विवेकवान् , बलवान्, रिपुओं को दबाने वाले और स्वयं किसी से न दबने वाले कहलाते हैं, उन अग्निदेव को यह आहुति प्राप्त हो ॥४ ॥

५१६. यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥५ ॥

हे अग्ने ! तेरह भौवन (संवत्सर के १३ माह) और पाँच ऋतुएँ (अथवा भुवन ऋषि के विश्वकर्मा आदि १३ पुत्र और पाँचों वर्णों के मनुष्य) आपको मन से यज्ञ-सम्पादक के रूप में जानते हैं । हे वर्चस्वी, सत्यभाषी तथा कीर्तिवान् ! आपको यह हवि प्राप्त हो ॥५ ॥

५१७. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥६ ॥

जो गौओं और बैलों के लिए अन्न प्रदान करते हैं और जो अपने ऊपर सोम आदि ओषधियों को धारण करते हैं, उन विद्वान् तथा समस्त मनुष्यों के लिए कल्याणकारी महान् अग्निदेव के लिए यह हवि प्राप्त हो ॥६ ॥

५१८. दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥७ ॥

जो अग्नियाँ द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोक में व्याप्त हैं; जो विद्युत् के रूप में सर्वत्र विचरण करती हैं; जो सभी दिशाओं और वायु के अन्दर प्रविष्ट होकर विचरण करती हैं, उन अग्नियों को यह हवि प्राप्त हो ॥७ ॥

५१९. हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ॥८ ॥

स्तोताओं के ऊपर अनुदानों की वर्षा करने वाले, (हिरण्यपाणि) स्वर्णिम किरणों वाले, सर्व प्रेरक सवितादेव, इन्द्रदेव, मित्रावरुणदेव, अग्निदेव तथा विश्वेदेवों का हम अंङ्गिरावंशी ऋषि आवाहन करते हैं, वे समस्त देवगण इस 'क्रव्याद अग्नि' (मांस भक्षी अग्नि अथवा क्षीण करने वाली दुष्प्रवृत्ति) को शान्त करें ॥८ ॥

५२०. शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥९ ॥

देवताओं की कृपा से मांस का भक्षण करने वाले क्रव्याद अग्निदेव शान्त हो गये हैं । मनुष्यों की हिंसा करने वाले अग्निदेव भी शान्त हों । सबको जलाने वाले, मांस भोजी अग्निदेव को भी हमने शान्त कर दिया है ॥९ ॥

५२१. ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् ॥१० ॥

जो योग आदि को धारण करने वाले पर्वत हैं, जो ऊपर की ओर गमन करने वाला जल (ऊर्ध्वगामी रस) है; वायु और मेघ हैं, उन सभी ने इन मांस-भक्षक अग्निदेव को शान्त कर दिया है ॥१० ॥

[२२- वर्चः प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - वसिष्ठ । **देवता** - बृहस्पति, विश्वेदेवा , वर्चस् । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ विराट् त्रिष्टुप्, ३ पञ्चपदा परानुष्टुप् विराट् अति जगती, ४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

५२२. हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥१ ॥

हमें हाथी के समान महान् तेजस् (अजेय शक्ति) प्राप्त हो । जो तेजस् देवमाता अदिति के शरीर से उत्पन्न हुआ है, उस तेजस् को समस्त देवगण तथा देवमाता अदिति प्रसन्नतापूर्वक हमें प्रदान करें ॥१ ॥

५२३. मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु । देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२ ॥

मित्रावरुण, इन्द्र तथा रुद्रदेव हमें उत्साह प्रदान करें । विश्व को धारण करने वाले सूर्य (इन्द्र) आदि देव अपने तेजस् से हमें सुसमृद्ध करें ॥२ ॥

५२४. येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्व१न्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥३ ॥

जिस तेजस् से हाथी बलवान् होता है । राजा मनुष्यों में तेजस्वी होता है, जलचर प्राणी शक्ति-सम्पन्न होते हैं और जिसके द्वारा देवताओं ने सर्वप्रथम देवत्व प्राप्त किया था, उसी तेजस् के द्वारा आप हमें वर्चस्वी बनाएँ ॥३ ॥

५२५. यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः । यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च
हस्तिनः । तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥४ ॥

उत्पन्न प्राणियों को जानने वाले तथा हवियों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे अग्निदेव ! आपके अन्दर तथा सूर्य के अन्दर जो प्रखर तेजस् है, उस तेजस् को कमल पुष्प की माला धारण करने वाले अश्विनीकुमार, हममें स्थापित करें ॥४ ॥

५२६. यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते । तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम्

जितने स्थान को चारों दिशाएँ घेरती हैं और नेत्र नक्षत्र मण्डल के जितने स्थान को देख सकते हैं, परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव का उतना बड़ा चिह्न हमें प्राप्त हो और हाथी के समान वह वर्चस् भी हमें प्राप्त हो ॥५ ॥

५२७. हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाऽभि षिञ्चामि मामहम् ॥६ ॥

जैसे वन में विचरण करने वाले मृग आदि पशुओं में हाथी प्रतिष्ठित होता है, उसी प्रकार श्रेष्ठतम तेजस् और ऐश्वर्य के द्वारा हम अपने आपको अभिषिक्त करते हैं ॥६ ॥

[२३- वीरप्रसूति सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - चन्द्रमा या योनि । **छन्द** - अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टात् भुरिक् बृहती, ६ स्कन्धोग्रीवी बृहती ।]

५२८. येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् । इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ॥१

हे स्त्री ! जिस पाप या पापजन्य रोग के कारण आप वन्ध्या हुई हैं, उस रोग को हम आपसे दूर करते हैं । यह रोग पुनः उत्पन्न न हो, इसलिए इसको हम आपसे दूर फेंकते हैं ॥१ ॥

५२९. आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥२ ॥

हे स्त्री ! जिस प्रकार बाण तूणीर में सहज ही प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार पुसत्व से युक्त गर्भ आपके गर्भाशय

में स्थापित करते हैं । आपका वह गर्भ दस महीने तक गर्भाशय में रहकर वीर पुत्र के रूप में उत्पन्न हो ॥२ ॥

५३०. पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥३ ॥

हे स्त्री ! आप पुरुष लक्षणों से युक्त पुत्र पैदा करें और उसके पीछे भी पुत्र ही पैदा हो । जिन पुत्रों को आपने उत्पन्न किया है तथा जिनको इसके बाद उत्पन्न करेंगी, उन सभी पुत्रों की आप माता हों ॥३ ॥

५३१. यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च। तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव।

हे स्त्री!जिन अमोघ वीर्यों के द्वारा वृषभ गौओं में गर्भ की स्थापना कर बछड़े उत्पन्न करते हैं, वैसे ही अमोघ वीर्यों के द्वारा आप पुत्र प्राप्त करें ।इस प्रकार आप गौ के सदृश पुत्रों को उत्पन्न करती हुई, अभिवृद्धि को प्राप्त हों।

५३२. कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ॥५ ॥

हे स्त्री ! हम आपके निमित्त प्रजापति द्वारा निर्धारित संस्कार करते हैं । इसके द्वारा आपके गर्भाशय में गर्भ की स्थापना हो । आप ऐसा पुत्र प्राप्त करें, जो आपको सुख प्रदान करे तथा जिसको आप सुख प्रदान करें ॥५ ॥

५३३. यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥६ ॥

जिन ओषधियों के पिता द्युलोक हैं और माता पृथ्वी है तथा जिनकी वृद्धि का मूल कारण समुद्र (जल) है, वे दिव्य ओषधियाँ पुत्र लाभ के लिए आपकी विशेष रूप से रक्षा करें ॥६ ॥

[२४- समृद्धिप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु । **देवता** - वनस्पति अथवा प्रजापति । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ निचृत् पथ्यापंक्ति ।]

५३४. पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः ॥१ ॥

समस्त ओषधियाँ (धान्य) रस (सारतत्त्व) से परिपूर्ण हों । मेरे वचन (मंत्रादि) भी (मधुर) रस से समन्वित तथा सभी के लिए ग्रहणीय हों । उन सारयुक्त ओषधियों (धान्यों) को मैं हजारों प्रकार से प्राप्त करूँ ॥१ ॥

५३५. वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु।
सम्भृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे यो यो अयज्वनो गृहे ॥२ ॥

ओषधियों में रस (जीवन सत्व) की स्थापना करने वाले उन देवताओं को हम भली-भाँति जानते हैं, वे धान्यादि को बढ़ाने वाले हैं । जो अयाज्ञिक (कृपण) मनुष्यों के गृहों में हैं, उन 'संभृत्वा, (इस नाम वाले अथवा बिखरे धन का संचय करने वाले) देवों को हम आवाहित करते हैं ॥२ ॥

५३६. इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥३ ॥

पूर्व आदि पाँचों दिशाएँ तथा मन से उत्पन्न होने वाले पाँच प्रकार के (वर्णों के) मनुष्य इस स्थान को उसी प्रकार समृद्ध करें, जिस प्रकार वर्षा के जल से उफनती हुई नदियाँ जल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचा देती हैं ॥३ ॥

५३७. उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् । एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥४ ॥

जिस प्रकार सैकड़ों-हजारों धाराओं से प्रवाहित होने के बाद भी जल का आदि स्रोत अक्षय बना रहता है, उसी प्रकार हमारा धन-धान्य भी अनेक धाराओं (रूपों) से खर्च होने के बाद भी अक्षय बना रहे ॥४ ॥

५३८. शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर । कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! आप सैकड़ों हाथों वाले होकर धन एकत्रित करें तथा हजारों हाथों वाले होकर उसका दान कर दें । इस तरह आप अपने किये हुए तथा किये जाने वाले कर्मों की वृद्धि करें ॥५ ॥

५३९. तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ॥६ ॥

गन्धर्वों की सुख-समृद्धि का मूल आधार जो तीन कलाएँ हैं तथा गन्धर्व-पत्नियों की समृद्धि का आधार जो चार कलाएँ हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ परम समृद्धि प्रदान करने वाली कला से हम धान्य को भली-भाँति सुनियोजित करते हैं । हे धान्य ! कला के प्रभाव से आप वृद्धि को प्राप्त करें ॥६ ॥

५४०. उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते । ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ॥

हे प्रजापते ! धान्य को समीप लाने वाले 'उपोह' नामक देव तथा प्राप्त धन की अभिवृद्धि करने वाले 'समूह' नामक देव आपके सारथि हैं । आप उन दोनों देवताओं को अक्षय धन की प्राप्ति के लिए यहाँ बुलाएँ ॥७ ॥

[२५- कामबाण सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु । **देवता** - मित्रावरुण, काम-बाण । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

इस मंत्र में कामबाण का उल्लेख है । इस सूक्त में कामबाण के जो भीषण दुष्प्रभाव प्रकट किये गये हैं, उन्हें समझकर उससे बचने का भाव सहज ही उत्पन्न होता है । पति-पत्नी के बीच कर्त्तव्य भावना प्रधान सम्बन्ध होने चाहिए । काम प्रवृत्ति भी सहज उभरती है, उसे एक सीमा तक ही छूट दी जा सकती है । इसीलिए यहाँ विरोधाभास अलंकार का प्रयोग करते हुए कामबाण के प्रयोग की बात करते हुए उसके भीषण प्राण लेवा स्वरूप को उभारा गया है । अगर कहीं धूम्रपान द्वारा अतिथि सत्कार का आग्रह किया जाय, तो समझदार व्यक्ति यह कह सकता है कि "खाँसी,दमा तथा कैंसर उत्पन्न करने वाले धूम्रपान के लिए आपका स्वागत है ।" इस कथन से धूम्रपान करने वाले के मन में उसके प्रति विरक्ति का भाव ही बढ़ेगा । ऐसा ही मनोवैज्ञानिक प्रयोग इस सूक्त में कामबाण को लेकर किया गया प्रतीत होता है-

५४१. उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१ ॥

हे स्त्री ! उत्कृष्ट होकर भी पीड़ा पहुँचाने वाले 'उत्तुद' (इस नाम वाले अथवा विचलित करने वाले) देव आपको व्यथित करें । तीक्ष्ण कामबाण से हम आपका हृदय बींधते हैं, उससे व्यथित होकर आप अपनी शय्या पर सुख की नींद न प्राप्त कर सकें ॥१ ॥

५४२. आधीपर्णां कामशल्यामिषुं सङ्कल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसन्नतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥२ ॥

जिस बाण में मानसिक पीड़ारूपी पंख लगे हैं, रमण करने की इच्छा ही जिसका अगला भाग (शल्य) है तथा जिसमें भोग-विषयक संकल्प रूपी दण्ड लगे हैं, उसको धनुष पर चढ़ाकर, कामदेव आपके हृदय का वेधन करें ॥२॥

५४३. या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥३ ॥

हे स्त्री ! कामदेव द्वारा भली प्रकार संधान किया हुआ बाण सरलगामी है । अत्यधिक दाहक, हृदय में प्रवेश करके तिल्ली (प्लीहा) को सुखा देने वाले, उस बाण के द्वारा हम आपके हृदय को विदीर्ण करते हैं ॥३ ॥

५४४.शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा । मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता।

हे स्त्री ! इस दाहक, शोकवर्धक बाण के प्रभाव से म्लान मुख होकर हमारे समीप आएँ । काम जन्य क्रोध को छोड़कर आप मृदु बोलने वाली होकर हमारे अनुकूल कर्म करती हुई हमें प्राप्त हों ॥४ ॥

५४५. आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥

हे स्त्री ! काम से प्रताड़ित आपको, हम आपके माता-पिता के समीप से लाते हैं, जिससे आप कर्मों और विचारों से हमारे अनुकूल होकर हमें प्राप्त हों ॥५ ॥

५४६. व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥६।

हे मित्र और वरुण देव ! आप इस स्त्री के हृदय और चित्त को विशेष रूप से प्रभावित करें और (पूर्व अभ्यास वाले) कर्मों को भुलाकर इसे मेरे अनुकूल आचरण वाली बनाएँ ॥६ ॥

[२६- दिक्षु आत्मरक्षा सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - रुद्र, १ प्राचीदिशा साग्नि, २ दक्षिणदिशा सकामाअविष्यव, ३ प्रतीचीदिशा वैराज, ४ उदीची दिशा सवाताप्रविध्य, ५ सौषधिकानिलिम्पा, ६ बृहस्पति युक्त अवस्वान् । **छन्द** - जगती, १ त्रिष्टुप्, ३-४ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

५४७. येऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥१ ॥

हे देवो ! आप पूर्व दिशा की ओर 'वज्र' (शत्रुनाशक) नाम से निवास करते हैं । आपके बाण अग्नि के समान तेजस्वी हैं । आप हमारी सुरक्षा करने में समर्थ होकर हमें सुख प्रदान करें । हमारे लिए अपनत्व सूचक शब्दों का उच्चारण करें । हम आपको नमन करते हुए हवि समर्पित करते हैं ॥१ ॥

५४८. येऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥२ ॥

हे देवो ! आप दक्षिण दिशा में 'अवस्यव' (रक्षक) नाम से निवास करते हैं । वांछित विषय की इच्छा ही आपके बाण हैं । आप हमें सुख प्रदान करें तथा हमारे लिए अपनत्व सूचक शब्द कहें । आपके लिए हम नमन करते हुए हवि प्रदान करते हैं ॥२ ॥

५४९. येऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥३ ॥

हे देवो ! आप पश्चिम दिशा में 'वैराज' (विशेष क्षमतावान्) नाम से निवास करते हैं । वृष्टि का जल ही आपके बाण हैं । आप हमें सुखी करें तथा हमारे लिए अपनत्व सूचक शब्द कहें । हम आपके लिए नमनपूर्वक हवि प्रदान करते हैं ॥३ ॥

५५०. येऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥४ ॥

हे देवो ! आप उत्तर दिशा में 'प्रविध्यन्त' (वेध करने वाले) नाम से निवास करते हैं । आपके बाण वायु के

सदृश द्रुतगामी हैं । आप हमें सुख प्रदान करें तथा हमारे लिए अपनत्व सूचक शब्द कहें । हम आपको नमन करते हुए हवि प्रदान करते हैं ॥४ ॥

५५१. ये३स्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥५ ॥

हे देवो ! आप नीचे की दिशा में निरन्तर निवास करने वाले 'निलिम्पा' (लेप लगाने वाले) नामक देवता हैं । ओषधियाँ ही आपके बाण हैं । आप हमें सुख प्रदान करें तथा अपनत्व सूचक उपदेश करें । हम आपके लिए नमन करते हुए हवि प्रदान करते हैं ॥५ ॥

५५२. ये३स्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥६ ॥

हे देवो ! आप ऊपर की दिशा में सुरक्षा करने वाले 'अवस्वन्त' (रक्षाधिकारी) नाम से निवास करते हैं । बृहस्पतिदेव ही आपके बाण हैं । आप हमें सुख प्रदान करें तथा हमारे लिए अपनत्व सूचक उपदेश करें । हम आपके लिए नमन करते हुए हवि प्रदान करते हैं ॥६ ॥

[२७- शत्रुनिवारण सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** रुद्र १ प्राची दिशा, अग्नि, असित, आदित्यगण, २दक्षिण दिशा, इन्द्र, तिरश्चिराजी, पितरगण, ३ प्रतीची दिशा, वरुण, पृदाकु, अन्न, ४ उदीची दिशा, सोम, स्वज, अशनि, ५ ध्रुव दिशा, विष्णु, कल्माषग्रीव, वीरुध, ६ ऊर्ध्व दिशा, बृहस्पति, श्वित्र (श्वेतरोग) वर्षा (वृष्टिजल) । **छन्द** - पञ्चपदा ककुम्मती गर्भाष्टि, २ पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भा अत्यष्टि, ५ पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भा भुरिक् अष्टि ।]

५५३. प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१ ॥

पूर्व दिशा हमारे ऊपर अनुग्रह करने वाली हो । पूर्व दिशा के अधिपति अग्निदेव हैं, रक्षक 'असित' (बन्धनरहित) हैं, 'बाण' प्रहारक आदित्य हैं । इन (दिशाओं के) अधिपतियों, रक्षकों तथा बाणों को हमारा नमन है । ऐसे सभी (हितैषियों) को हमारा नमन है । जो रिपु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं, उन रिपुओं को हम आपके जबड़े (या दण्ड व्यवस्था) में डालते हैं ॥१ ॥

५५४. दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२ ॥

दक्षिण दिशा के अधिपति इन्द्रदेव उसके रक्षक 'तिरश्चिराजी' (मर्यादा में रहने वाले) तथा 'बाण' पितृदेव हैं । उन अधिपतियों, रक्षकों तथा बाणों को हमारा नमन है । ऐसे सभी हितैषियों को हमारा नमन है । जो रिपु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं, उन रिपुओं को आपके नियन्त्रण में डालते हैं ॥२ ॥

५५५. प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३ ॥

पश्चिम दिशा के स्वामी वरुणदेव हैं, उनके रक्षक 'पृदाकु' (सर्पादि) हैं तथा अन्न उसके बाण हैं । इन सबको हमारा नमन है । जो रिपु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं, उन रिपुओं को हम आपके जबड़े में डालते हैं ॥३ ॥

५५६. उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४ ॥

उत्तर दिशा के अधिपति सोम हैं और उनके रक्षक 'स्वज' (स्वयं जन्मने वाले) हैं तथा अशनि ही बाण हैं । इन सबको हमारा नमन है । जो रिपु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं, उन रिपुओं को हम आपके नियन्त्रण में डालते हैं ॥४ ॥

५५७. ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५ ॥

अधो दिशा (ध्रुव) के स्वामी 'विष्णु' हैं और उनके रक्षक 'कल्माषग्रीव' (चितकबरे रंग वाले) हैं तथा रिपु विनाशक ओषधियाँ ही बाण हैं । इन सबको हमारा नमन है । यह नमन इन सबको हर्षित करे । जो रिपु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं, इन रिपुओं को हम आपके दण्ड विधान में डालते हैं ॥५ ॥

५५८. ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६ ॥

ऊर्ध्व दिशा के स्वामी बृहस्पतिदेव हैं, उनके रक्षक 'श्वित्र' (पवित्र) हैं तथा वृष्टि जल ही रिपु विनाशक बाण है । उन सबको हमारा नमन है । यह नमन उन सबको हर्षित करे । जो रिपु हमसे विद्वेष करते हैं तथा जिनसे हम विद्वेष करते हैं, उन रिपुओं को हम आपके नियन्त्रण में डालते हैं ॥६ ॥

[२८- पशुपोषण सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - यमिनी । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ अतिशक्वरीगर्भा चतुष्पदा अतिजगती, ४ यवमध्या विराट् ककुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ विराट् गर्भा प्रस्तारपंक्ति ।]

इस सूक्त के ऋषि 'ब्रह्मा' तथा देवता 'यमिनी' है । कौशिक सूत्र में इस सूक्त से युगल-जुड़वाँ सन्तानों के दोष निवारण का विधान दिया है इसी आधार पर परम्परागत भाष्यकारों ने इस सूक्त को जुड़वाँ बच्चे देने वाली गाय पर घटित करके अर्थ किये हैं; किन्तु वे अर्थ मूल सूक्त के व्यापक संदर्भों के साथ युक्तिसंगति नहीं प्रतीत होते । जैसे मंत्र क्र. २ में उसे मांसभक्षी होकर पशुओं को क्षीण करने वाली कहा है । जुड़वाँ बच्चे देने से गाय मांस भक्षी नहीं हो जाती । फिर मंत्र कं. ३ में उसे पुरुषों, गौओं एवं अश्वों तथा सभी क्षेत्रों के लिए कल्याण प्रदायिनी होने को कहा गया है । मंत्र क्र. ४-५ में उस 'यमिनी' से प्रार्थना की गयी है कि उत्तम भाव, विचार और कर्म वाले व्यक्तियों के बीच पुरुषों एवं पशुओं के लिए हिंसक न हो । यमिनी का अर्थ जुड़वाँ बच्चे पैदा करने वाली गाय, करने से यह सब भाव सिद्ध नहीं होते । यमिनी नियामक शक्ति, अंतः बाह्य की प्रकृति करना अधिक युक्ति संगत है । वह द्वंद्वात्मक होने से यमिनी कही जा सकती है । यह प्रकृति जब 'अप-ऋतु' (ऋतु चक्र या सहज प्रवाह के विपरीत) हो जाती है, तब वह मनुष्यों-पशुओं के लिए विनाशक हो जाती है । इस यमिनी प्रकृति से सबके लिए कल्याणकारी होने की प्रार्थना की जानी उचित है । 'अस्तु' इसी संदर्भ में मंत्रार्थ किये गये हैं-

५५९. एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।

यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥१ ॥

जहाँ एक-एक करके सृष्टि बनी, (वहाँ) पदार्थों के सृजेता ने विश्वरूपा (विविध रूपों वाली अथवा विश्वरूपिणी) गौ (पृथ्वी) का सृजन किया । (इस भूतल पर) जहाँ यमिनी (नियामक प्रकृति) ऋतुकाल से भिन्न परिणाम उत्पन्न करने लगती है, तो वह पीड़ा उत्पन्न करती, कष्ट देती तथा पशुओं को नष्ट करती है ॥१ ॥

५६०. एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् ॥२ ॥

ऐसी (यमिनी) मांस भक्षी (क्रूर) होकर पशुओं (प्राणियों) को नष्ट करने लगती है । उसे ब्रह्म या ब्राह्मण को सौंप देना चाहिए, ताकि वह सुख तथा कल्याण देने वाली हो जाए ॥२ ॥

[क्रूर कर्मियों के संसर्ग से मनुष्यों की आन्तरिक या विश्वगत प्रकृति विनाशक हो जाती है । उसे ब्राह्मी अनुशासन में स्थापित करने से वह कल्याणकारी हो जाती है ।]

५६१. शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥३ ॥

हे यमिनि ! आप मनुष्यों के लिए सुखदायी हों तथा गौओं और अश्वों के लिए कल्याणकारिणी हों । आप समस्त भूमि के लिए कल्याणकारिणी होकर हमारे लिए भी सुखदायी हों ॥३ ॥

५६२. इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव ।
पशून् यमिनि पोषय ॥४ ॥

यहाँ (इस क्षेत्र में) पुष्टि और रसों की वृद्धि हो । हे यमिनि ! आप इस क्षेत्र के पशुओं का पोषण करें तथा इसे हजारों प्रकार का धन प्रदान करें ॥४ ॥

५६३. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व१: स्वायाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥५ ॥

जिस देश में श्रेष्ठ हृदयवाले तथा श्रेष्ठ कर्म वाले मनुष्य अपने शरीर के रोगों का परित्याग करके आनन्दित होते हैं, उस देश में यमिनी पुरुषों और पशुओं की हिंसा न करे ॥५ ॥

५६४. यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥६ ॥

जिस देश में श्रेष्ठ हृदय वाले तथा श्रेष्ठ कर्म वाले मनुष्य अग्निहोत्र, हवन आदि में हवि प्रदान करने के लिए निरत रहते हैं । उस देश में यमिनी मनुष्यों और पशुओं की हिंसा न करें ॥६ ॥

[२९ - अवि सूक्त]

[**ऋषि** - उद्दालक । **देवता** - शितिपात् अवि, ७ काम, ८ भूमि । **छन्द** - अनुष्टुप्, १,३ पथ्यापंक्ति, ७ त्र्यवसाना षट्पदा उपरिष्टात् दैवी बृहती ककुम्मतीगर्भा विराट् जगती, ८ उपरिष्टात् बृहती ।]

इस सूक्त के १ से ६ तक मंत्रों के देवता 'शितिपाद् अवि' हैं । 'शिति' का अर्थ अँधेरा-उजाला (काला-सफेद) होता है । 'शितिपाद् अवि' का अर्थ सफेद या काले पैर वाली भेड़ करने से मंत्रों के दिव्य भावों की सिद्धि नहीं होती । प्रथम मंत्र में 'इष्टापूर्त्तस्य षोडशं' वाक्य से शितिपाद् अवि का भाव खुलता है । मनुष्य, जीवन में विविध कर्म करता रहता है । उससे जाने-अनजाने पापादि कर्म भी हो जाते हैं । वे पाप कर्म मनुष्य के लिए अनिष्टकारक होते हैं । उनसे बचने के लिए ऋषियों ने 'इष्टापूर्त्त यज्ञ' का विधान बनाया है । उसके अन्तर्गत अर्जित साधनों का सोलहवाँ भाग इष्टापूर्त्त के रूप में जनहितार्थ-यज्ञार्थ लगा देना चाहिए । अनजाने में

हुए पापों की विनाशक प्रतिक्रिया से बचाने वाले इस 'दान' को 'अवि' (रक्षक) कहना उचित है। यह पाप-पुण्य के बीच चलने वाला क्रम है, इसलिए इसे 'शितिपाद्' कहना युक्ति संगत है। 'शितिपाद्' का एक अर्थ अनिष्ट करने वाले का पतन करने वाला भी होता है। इस भाव से भी इष्टापूर्त को शितिपाद् कह सकते हैं। वेद मंत्रों ने शितिपाद् अवि के दान का बहुत महत्व कहा है, उसकी गरिमा का निर्वाह शितिपाद् को इष्टापूर्ति यज्ञ मानने से हो जाता है-

५६५. यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः।
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥१॥

जब राजा यम के नियम पालक सभासद (मनुष्यकृत पाप-पुण्यों का) विभाजन करते हैं, तब (अर्जन के) सोलहवें अंश के रूप में दिया गया इष्टापूर्त रूप शितिपाद् अवि (काले-उजले चरणों वाला रक्षक) भय से मुक्त करता है तथा तुष्टि प्रदान करता है ॥१॥

५६६. सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन्।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥२॥

(इष्टापूर्त का यह) दिया हुआ 'शितिपाद् अवि' (अनिष्ट करने वाली शक्तियों का पतन करने वाला रक्षक) संकल्पों की पूर्ति करने वाला, सत्कर्मों को प्रभावशाली बनाने वाला, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा नष्ट न होने वाला होता है ॥२॥

५६७. यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ॥३॥

जो (व्यक्ति) इस लोक-सम्मत शितिपाद् अवि (इष्टापूर्त भाग) का दान करता है। वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। जहाँ निर्बल से बलपूर्वक शुल्क वसूल नहीं किया जाता ॥३॥

[श्रेष्ठ समाज में बल-सम्पन्नों द्वारा निर्बल व्यक्तियों का शोषण नहीं किया जाता, उनके रक्षण एवं पोषण की व्यवस्था की जाती है]

५६८. पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्। प्रदातोप जीवति पितॄणां लोकेऽक्षितम्।

पाँच (तत्त्वों या प्राणों) को सड़न (विकृतियों) से बचाने वाले लोक-सम्मत इस शितिपाद् अवि (इष्टापूर्त भाग) का दान करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ पितृलोकों में अक्षय जीवन प्राप्त करता है ॥४॥

५६९. पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ॥५॥

पाँचों (तत्त्वों या प्राणों) को सड़न (विकृतियों) से बचाने वाले लोक-सम्मत इस शितिपाद् अवि का दान करने वाला (साधक) सूर्य और चन्द्र के समान अक्षय जीवन प्राप्त करता है ॥५॥

५७०. इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत्।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ॥६॥

यह शितिपाद् अवि (अनिष्ट-निवारक,संरक्षक-दान) महान् पृथ्वी और समुद्र के जल के समान तथा साथ रहने वाले देवों (अश्विनीकुमारों) की भाँति कभी क्षीण नहीं होता ॥६॥

५७१. क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥७॥

यह (दान) किसने दिया ? किसको दिया ? (उत्तर है) कामनाओं ने कामनाओं को दिया । मनोरथ ही दाता है तथा मनोरथ ही प्राप्त करने वाला हैं । कामनाओं से ही तुम्हें (दान को) स्वीकार करता हूँ । हे कामनाओ ! यह सब तुम्हारा है ॥७ ॥

५७२. भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ॥८ ॥

(हे श्रेष्ठदान !) यह भूमि और महान् अन्तरिक्ष तुम्हें प्राप्त करें । मैं इसे प्राप्त करके (प्राप्ति के मद से) प्राणों (प्राणशक्ति), आत्मा (आत्मबल) तथा समाज से दूर न हो जाऊँ ॥८ ॥

[३०- सांमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** -अथर्वा ।**देवता** - चन्द्रमा, सांमनस्य ।**छन्द** -अनुष्टुप्, ५ विराट् जगती, ६ प्रस्तारपंक्ति, ७ त्रिष्टुप् ।]

५७३. सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! हम आपके लिए हृदय को प्रेमपूर्ण बनाने वाले तथा सौमनस्य बढ़ाने वाले कर्म करते हैं । आप लोग परस्पर उसी प्रकार व्यवहार करें, जिस प्रकार उत्पन्न हुए बछड़े से गाय स्नेह करती है ॥१ ॥

५७४. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२ ॥

पुत्र अपने पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और अपनी माता के साथ समान विचार से रहने वाला हो । पत्नी अपने पति से मधुरता तथा सुख से युक्त वाणी बोले ॥२ ॥

५७५. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३ ॥

भाई अपने भाई से विद्वेष न करे और बहिन अपनी बहिन से विद्वेष न करे । वे सब एक विचार तथा एक कर्म वाले होकर परस्पर कल्याणकारी वार्तालाप करें ॥३ ॥

५७६. येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४ ॥

जिसकी शक्ति से देवगण विपरीत विचार वाले नहीं होते हैं और परस्पर विद्वेष भी नहीं करते हैं, उस समान विचार को सम्पादित करने वाले ज्ञान को हम आपके घर के मनुष्यों के लिए (जाग्रत् या प्रयुक्त) करते हैं ॥४ ॥

५७७. ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥५ ॥

आप छोटों-बड़ों का ध्यान रखकर व्यवहार करते हुए, समान विचार रखते हुए तथा समान कार्य करते हुए पृथक् न हों । आप एक दूसरे से प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए पधारें । हे मनुष्यो ! हम भी आपके समान कार्यों में प्रवृत्त होते हैं ॥५ ॥

५७८. समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥६ ॥

हे समानता की कामना करने वाले मनुष्यो ! आपके जल पीने के स्थान एक हों तथा अन्न का भाग साथ-साथ हो । हम आपको एक ही प्रेमपाश में साथ-साथ बाँधते हैं । जिस प्रकार पहियों के अरे नाभि के आश्रित होकर रहते हैं, उसी प्रकार आप सब भी एक ही फल की कामना करते हुए अग्निदेव की उपासना करें ॥६ ॥

५७९. सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७ ॥

हम आपके मन को समान बनाकर एक जैसे कार्य में प्रवृत्त करते हैं और आपको एक जैसा अन्न ग्रहण करने वाला बनाते हैं । इसी कर्म के द्वारा हम आपको वशीभूत करते हैं । अमृत की सुरक्षा करने वाले देवताओं के समान आपके मन प्रातः और सायं हर्षित रहें ॥७ ॥

[३१- यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - पाप्महा, १ अग्नि, २ शक्र, ३ पशु समूह, ४ द्यावापृथिवी, ५ त्वष्टा, ६ अग्नि, इन्द्र, ७ देवगण, सूर्य, ८-१० आयु , ११ पर्जन्य । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४ भुरिक् अनुष्टुप्, ५ विराट् प्रस्तारपंक्ति ।]

५८०. वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१ ॥

देवगण वृद्धावस्था से अप्रभावित रहते हैं । हे अग्निदेव ! आप इसे कृपणता तथा शत्रुता से दूर रखें । हम कष्टदायक पाप से और यक्ष्मा (रोगों) से विमुक्त रहें और दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥१ ॥

५८१. व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२ ॥

पवमान (पवित्र बने रहने वाले) वायुदेव इसे पीड़ा से मुक्त रखें । समर्थ इन्द्रदेव इसे पापकर्म से पृथक् रखें । हम कष्टदायक पाप से और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त रहें और दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥२ ॥

५८२. वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्यापस्तृष्णयासरन् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३ ॥

ग्रामीण पशु जंगली पशुओं से अलग रहते हैं और प्यासे मनुष्य से जल अलग रहता है, उसी प्रकार हम समस्त पापों से तथा यक्ष्मादि (रोगों) से मुक्त रहें और दीर्घायु पाएँ ॥३ ॥

५८३. वी३मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४ ॥

जिस प्रकार द्यावा-पृथिवी पृथक्-पृथक् रहते हैं और प्रत्येक दिशा में जाने वाले मार्ग पृथक्-पृथक् होते हैं । हम भी समस्त पापों से तथा यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त रहें तथा दीर्घजीवन पाएँ ॥४ ॥

५८४. त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५ ॥

जिस प्रकार त्वष्टा (देवता या पिता) पुत्री को (विवाह के समय) पर्याप्त द्रव्य देकर विदा करते हैं और सारे लोक अलग-अलग हैं, उसी प्रकार हम पापों और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त रहें- दीर्घायु प्राप्त करें ॥५ ॥

५८५. अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥६ ॥

अग्निदेव प्राणों को जाग्रत् करते हैं, चन्द्रदेव भी प्राणों के साथ सम्बद्ध हैं । हम पापों से और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त रहकर दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥६ ॥

५८६. प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७ ॥

देवताओं ने समस्त सामर्थ्य से युक्त सूर्यदेव को जगत् के प्राणरूप से सम्बन्धित किया । हम समस्त पापों और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त रहकर दीर्घजीवन पाएँ ॥७ ॥

५८७. आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८ ॥

(हे बालक !) आयुष्यवानों की दीर्घायु के साथ प्राणवान् होकर जियो, मरो मत । हम तुम्हें समस्त पापों और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त करके दीर्घायु से संयुक्त करते हैं ॥८ ॥

५८८. प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९ ॥

श्वास लेने वाले समस्त जीवधारियों के प्राणों के साथ जीवित रहो और अपने प्राणों को मत त्यागो । हम तुम्हें समस्त पापों और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त करके , दीर्घ आयु से सम्पन्न करते हैं ॥९ ॥

५८९. उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१० ॥

आयुष्य से युक्त बनो, आयुष्य से उन्नत बनो, ओषधि रसों से उत्कर्ष पाओ । हम तुम्हें समस्त पापों और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त करके दीर्घ आयु से संयुक्त करते हैं ॥१० ॥

५९०. आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११ ॥

हम पर्जन्यदेव के पर्जन्यवर्षण से अमरत्व और उन्नति प्राप्त करते हैं । हम समस्त पापों और यक्ष्मा (रोगों) से मुक्त होकर दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥११ ॥

॥ इति तृतीयं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्थं काण्डम् ॥

[१- ब्रह्मविद्या सूक्त]

[**ऋषि** - वेन । **देवता** - बृहस्पति अथवा आदित्य । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

५९१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१ ॥

ब्रह्म की उत्पत्ति पूर्वकाल में सर्वप्रथम हुई । वेन (उस तेजस्वी ब्रह्म या सूर्य) ने बीच में स्थित होकर सुप्रकाशित (विभिन्न पिण्डों) को फैलाया । उसने आकाश में वर्तमान विशिष्ट स्थानों पर स्थित पदार्थों तथा सत् एवं असत् की उत्पत्ति के स्रोत को खोला ॥१ ॥

५९२. इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥२ ॥

पिता (परमपिता परमात्मा) से प्राप्त, विश्व में स्थित राष्ट्री (प्रकाशमान नियामक शक्ति) सर्वप्रथम उत्पत्ति-सृजन के लिए आगे आए । उस सर्वप्रथम (सर्वोच्च सत्ता) को अर्पित करने के लिए इस सुप्रकाशित, अनिष्टनिवारक तथा प्राप्त करने योग्य यज्ञ को परिपक्व करें ॥२ ॥

५९३. प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३ ॥

जो ज्ञानी इस (दिव्य सत्ता) का बन्धु (सम्बन्धी) होता है, वह समस्त देवशक्तियों के जन्म का रहस्य कहता है । ब्रह्म से ब्रह्म (वेदज्ञान अथवा यज्ञ) की उत्पत्ति हुई है । उसके नीचे वाले, मध्यवर्ती तथा उच्चभाग से (प्राणियों को) तृप्त करने वाली शक्तियों का विस्तार हुआ ॥३ ॥

५९४. स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४ ॥

वे (परमात्मा) ही द्युलोक और पृथ्वीलोक को संव्याप्त करके शाश्वत सत्य नियमों के द्वारा उन बृहद् द्यावा-पृथिवी को अपने अन्दर स्थापित करते हैं । वे उनके बीच में सूर्यरूप से उत्पन्न होकर द्यावा-पृथिवी रूपी घर को अपने तेज से संव्याप्त करते हैं ॥४ ॥

५९५. स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५ ॥

बृहस्पतिदेव इस लोक के अधिपति हैं । जब आलोकवान् सूर्य से दिन प्रकट हो, तब उससे प्रकाशित होने वाले ज्ञानी ऋत्विक् अपने-अपने कार्य में संलग्न हों और आहुतियों के द्वारा देवताओं की सेवा करें ॥५ ॥

५९६. नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६ ॥

ऋत्विज् सम्बन्धी यज्ञ देवताओं में सर्वप्रथम उत्पन्न सूर्यदेव के महान् धाम को उदयाचल पर भेजता है । वे सूर्यदेव पूर्व दिशा सम्बन्धी प्रदेश में हविरन्न को लक्ष्य करके शीघ्र ही उदित होते हैं ॥६ ॥

५९७. योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ॥७ ॥

देवों के भ्राता बृहस्पतिदेव और प्रजापति अथर्वा के प्रति नमन है । जिस प्रकार आप समस्त जीवों को उत्पन्न करने वाले हैं, उसी प्रकार आप अन्न से सम्पन्न हों । वे क्रांतदर्शी बृहस्पतिदेव हविरन्न से युक्त होकर हिंसा न करते हुए सभी पर कृपा ही करते हैं ॥७ ॥

[२- आत्मविद्या सूक्त]

[**ऋषि** - वेन । **देवता** - आत्मा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ६ पुरोऽनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, ८ उपरिष्टात् ज्योति त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ८ मंत्रों में स्थायी पद है "कस्मै देवाय हविषा विधेम" । इसी स्थायी पद के साथ ऋ० १०.१२१ में ९ मंत्र हैं । इस सूक्त के क्र० १ से ८ तक के मंत्र ऋग्वेद के मन्त्रों से पूर्ण या आंशिकरूप से मिलते हैं, क्रमसंख्या भिन्न है । ऋग्वेद के सूक्त के ऋषि 'हिरण्यगर्भ' हैं तथा देवता 'कः' हैं । इस सूक्त के ऋषि 'वेन' तथा देवता 'आत्मा' है । अर्थ की दृष्टि से 'वेन' और 'हिरण्यगर्भ' दोनों का अर्थ दिव्य तेजोयुक्त होता है । देवता के रूप में 'कः' सम्बोधन अव्यक्त के लिए है । वह परमात्मा एवं आत्मा दोनों के लिए उपयुक्त है; किन्तु अथर्ववेद के ऋषि ने आग्रहपूर्वक 'आत्मा' को लक्ष्य करके यह सूक्त कहा है । अस्तु, उसी भाव को लक्ष्य करके मंत्रार्थ किये गये हैं । ऋषि स्वयं ही प्रश्न उठा रहे हैं तथा स्वयं ही समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं -

५९८. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽ३स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१ ॥

(प्रश्न है, हम किस देवता की अर्चना हवि- समर्पण सहित करें ? उत्तर है) जो स्वयं का बोध कराने तथा बल प्रदान करने में समर्थ है, जिसके अनुशासन का पालन सभी देवशक्तियाँ करती हैं; जो दोपायों (मनुष्यादि) तथा चौपायों (पशु आदि) सभी का शासक है, उस 'क' संज्ञक आत्मतत्त्व का पूजन करें ॥१ ॥

५९९. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२ ॥

(किस देवता की अर्चना करें ?) जो प्राणधारियों तथा आँखें झपकने वालों (देखने वालों अथवा परिवर्तनशीलों) का एकमात्र अधिपति है, जिसकी छाया में अमरत्व तथा मृत्यु दोनों स्थित हैं, उसी की अर्चना हम करें ॥२ ॥

६००. यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३ ॥

(किस देवता का पूजन करें ?) जिसके कारण द्यावा-पृथिवी (लोक) सुख-दुःख सहित सबको संरक्षण देने के लिए स्थित हैं तथा वे भयभीत होकर जिसे पुकारते हैं; जिसका प्रकाशयुक्त पथ विशिष्ट सम्मान बढ़ाने वाला है, उसी का पूजन-वन्दन करें ॥३ ॥

६०१. यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्व१न्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४ ॥

(किस देवता का भजन करें ?) जिसकी महत्ता से व्यापक द्युलोक, विशाल पृथिवी, फैला हुआ अन्तरिक्ष तथा सूर्य आदि का विस्तार हुआ है, उसी का हम यजन करें ॥४ ॥

६०२. यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५ ॥

(किस देवता को पूजें ?) जिसकी महिमा की घोषणा करने वाले विश्व के हिमाच्छादित क्षेत्र, समुद्र तथा पृथिवी हैं, यह दिशाएँ जिसकी बाहुएँ हैं, उसी की हम पूजा करें ॥५ ॥

६०३. आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६ ॥

(किस देवता की अर्चना करें ?) जिस अमृतरूप, ऋत को समझने वाले ने आपः (सृष्टि के मूल-क्रियाशील प्रवाह) के रूप में गर्भ धारण करके विश्व को गतिशील किया; जिसकी दिव्यशक्ति के अधीन देवता रहते हैं; उसी की अर्चना हम करें ॥६ ॥

६०४. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७ ॥

(किस देव की अभ्यर्थना करें ?) पहले (सृष्टि के आदिकाल में) हिरण्यगर्भ (तेज को गर्भ में धारण करने वाला) सम्यक्‌रूप से विद्यमान था । वही सभी उत्पन्न (पदार्थों एवं प्राणियों) का एकमात्र अधिष्ठाता है । वही पृथ्वी एवं द्युलोक आदि का आधार है । (उसके अतिरिक्त) हम और किस देव की अभ्यर्थना करें ?

६०५. आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८ ॥

(हम किस देवता की उपासना करें ?) प्रारम्भ में वत्स (बालक या सृष्टि) को जन्म देने वाली आपः (सृष्टि के मूल तत्त्व) की धाराएँ गर्भ को प्रकट करने वाली हैं । उस जन्म लेने वाले (शिशु या विश्व) की रक्षक झिल्ली (आवरण) के रूप में जो तेज अवस्थित रहता है, हम उसी दिव्य तेज की उपासना करें ॥८ ॥

[३- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - रुद्र, व्याघ्र । **छन्द** - अनुष्टुप् , १ पथ्यापङ्क्ति, ३ गायत्री,७ ककुम्मती गर्भा उपरिष्टात् बृहती ।]

इस सूक्त में व्याघ्र , भेड़िया, सर्प आदि घातक प्राणियों तथा चोर-लुटेरों आदि दुष्ट पुरुषों से बचाव का उल्लेख है । प्रकारान्तर से यह उक्त पशुओं एवं दुष्ट पुरुषों के स्वभाव वाली हीन प्रकृतियों पर भी घटित होता है-

६०६. उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१ ॥

जैसे अन्तर्हित होकर नदियाँ प्रवाहित होती हैं और अन्तर्हित होकर वनौषधियाँ रोगों को भगा देती हैं, वैसे व्याघ्र आदि भी अन्तर्हित होकर भाग जाएँ । व्याघ्र, चोर और भेड़िया भी अपने स्थान से भागकर चले जाएँ ॥१ ॥

६०७. परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥२ ॥

भेड़िये दूर के मार्ग से गमन करें और चोर उससे भी दूर के मार्ग से चले जाएँ । दाँतों वाली रस्सी (साँपिन) अन्य मार्ग से गमन करे और पापी शत्रु दूर से भाग जाएँ ॥२ ॥

[दाँत वाली रस्सी कष्टकारी बन्धन की प्रतीक है । सामान्य रस्सी के बन्धन को शक्ति प्रयोग से तोड़ा जा सकता है; किन्तु दाँत वाली-काँटों वाली रस्सी के बन्धन तोड़ने के लिए तो ताकत भी नहीं लगायी जा सकती । मंत्र में ऐसे दुष्ट बन्धन से बचने का भाव भी है ।]

६०८. अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि। आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३ ॥

हे व्याघ्र !हम आपके आँख और मुख को विनष्ट करके(पैरों के) बीसों नाखूनों को भी विनष्ट करते हैं ॥३ ॥

६०९. व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि। आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्।

दन्त वाले हिंसक प्राणियों में से हम सबसे पहले व्याघ्र को विनष्ट करते हैं। उसके बाद चोर को, फिर लुटेरे को, फिर सर्प और भेड़िये को विनष्ट करते हैं ॥४ ॥

६१०. यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति। पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम्

आज जो चोर आ रहे हैं, वे हमसे पिटकर चूर-चूर होते हुए भाग जाएँ। वे कष्टदायी मार्ग से भागें और इन्द्रदेव उन्हें अपने वज्र से मार डालें ॥५ ॥

६११. मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६ ॥

हिंसक पशुओं के दाँत कमजोर हो जाएँ,सिर के सींग और पसलियों की हड्डियाँ क्षीण हो जाएँ।हे यात्रिन् !गोह नामक जीव आपकी दृष्टि में न पड़े और लेटने के स्वभाव वाले दुष्ट मृग भी निचले मार्ग से चले जाएँ ॥६ ॥

६१२. यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७ ॥

व्याघ्रादि (हिंसक प्राणियों अथवा प्रवृत्तियों) को क़ाबू करने के लिए अथर्वा द्वारा प्रयुक्त इन्द्र और सोम से प्रकट (सूत्र) नियम यह है कि जहाँ संयम सफल न हो, वहाँ वि-यम (दमन प्रक्रिया) का प्रयोग किया जाए तथा जहाँ वि-यम उपयुक्त न हो, वहाँ संयम का प्रयोग किया जाए ॥७ ॥

[यह बहुत महत्त्वपूर्ण एवं व्यावहारिक सूत्र है। संयम (सम्यक् विधि से नियम में लाना) यह सोमज (सोम से उत्पन्न) सूत्र है। पालतू पशुओं तथा उपयोगी, किन्तु बहकने वाली मनोवृत्तियों पर यह ढंग लागू किया जाता है। वि-यम (विशेष दबाव) द्वारा वश में करने या उससे मुक्ति पाने का ढंग इन्द्रज (इन्द्र से उत्पन्न) है। घातक पशुओं तथा क्रूर प्रवृत्तियों पर इसी का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है।]

[४- वाजीकरण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - वनस्पति। **छन्द** -अनुष्टुप्, ४ पुर उष्णिक्, ६-७ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में बल-वीर्यवर्द्धक ओषधि का उल्लेख है। आचार्य सायण ने इसे कपित्थ से जोड़ा है। खोदकर निकालने के कारण इसे कपित्थ (कैथ) की जड़ भी माना जाता है। ओषधि शास्त्रियों के लिए यह शोध का विषय है-

६१३. यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥१ ॥

हे ओषधे ! वरुण (वरुणदेव अथवा वरणीय मनुष्य) के लिए आपको गन्धर्व ने खोदा था। हम भी इन्द्रिय-शक्ति बढ़ाने वाली,आपको खोदते हैं ॥१ ॥

६१४. उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः। उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥२ ॥

(ओषधि को) उषा देवी शक्ति सम्पन्न वीर्य से समृद्ध करें। हमारा यह मन्त्रात्मक वचन भी इसे बढ़ाए। वर्षणकारी प्रजापतिदेव भी इसे बल-वीर्य से युक्त करके उन्नत करें ॥२ ॥

६१५. यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति। ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥३

(हे पुरुष !) विशेष सन्दर्भ में कर्मारूढ़ होने पर जब शरीर के अंग तप्त होकर गतिशील होते हैं, तब यह ओषधि आपको असीम बल-वीर्य से युक्त करे ॥३ ॥

६१६. उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् । सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥४॥

अन्य वीर्यवर्द्धक ओषधियों में यह ओषधि अत्यधिक श्रेष्ठ सिद्ध हो । काया को वश में करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप पौरुषयुक्त शक्ति इस (ओषधि) में स्थापित करें ॥४ ॥

६१७. अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् । उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥

हे ओषधे ! जल मंथन के समय आप पहले उत्पन्न हुई अमृतोपम रस हैं और वनस्पतियों में साररूप हैं । आप सोमरस की सहोदरा हैं और अङ्गिरा आदि ऋषियों के मंत्र-बल से प्रकट वीर्यरूप हैं ॥५ ॥

६१८.अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति । अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः।

हे अग्निदेव ! हे सवितादेव ! हे सरस्वतीदेवि ! हे ब्रह्मणस्पते ! आप इस मनुष्य की इन्द्रियों को बल-वीर्य प्रदान करके उसे धनुष के समान (प्रहारक) बनाएँ ॥६ ॥

६१९. आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥७ ॥

(हे मनुष्य !) हम आपकी इन्द्रियों को धनुष पर प्रत्यञ्चा तानने के समान बल-सम्पन्न बनाते हैं । अस्तु, आप बलशाली के समान अपने कर्म पर आरूढ़ हों ॥७ ॥

६२०. अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥८ ॥

हे ओषधे ! घोड़ा, बैल, मेढ़ा (नर-भेड़) आदि में शरीर को वश में करने वाला जो ओजस् है, उसे (इस व्यक्ति के शरीर में) स्थापित करें ॥८ ॥

[५- स्वापन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - वृषभ, स्वापन । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ भुरिक् अनुष्टुप्, ७ पुरस्तात् ज्योति त्रिष्टुप् ।]

६२१. सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् । तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि।

सहस्र शृंगों (रश्मियों) वाला वृषभ (वर्षा करने वाला सूर्य) समुद्र से ऊपर आ गया है । शत्रु का पराभव करने वाले उन (सूर्य) के बल से हम (स्तोतागण) सबको सुख से शयन करा देते हैं ॥१ ॥

६२२. न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् ॥२ ॥

इस समय धरती पर अत्यधिक वायु न चले और न ही कोई मनुष्य ऊपर से देखे । हे वायुदेव ! आप इन्द्रदेव के मित्र हैं । अतः आप समस्त स्त्रियों और कुत्तों को सुला दें ॥२ ॥

६२३. प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥३ ॥

जो नारियाँ घर के आँगन में सोती हैं ।जो चलते वाहन पर सोने वाली हैं, जो बिछौने पर सोती हैं, जो उत्तम

गंध से सुवासित श्रेष्ठ शय्याओं पर सोती हैं । हम उन्हीं की तरह से सभी स्त्रियों को सुखपूर्वक सुला देते हैं ॥३ ॥

६२४. एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् । अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ॥४ ।

समस्त जंगम प्राणियों को हमने सुला दिया है और उनके आँखों की दर्शनशक्ति को हमने ग्रहण कर लिया है तथा प्राण- संचार स्थान में विद्यमान घ्राणेन्द्रिय को भी ग्रहण कर लिया है । रात्रि के अँधेरे में हमने उनके समस्त अंगों को निद्रा के वशीभूत कर लिया है ॥४ ॥

६२५.य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति । तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ।

जो यहाँ ठहरता एवं आता-जाता रहता है और हमारी ओर देखता है, उनकी दृष्टि को हम राज- प्रासाद की तरह निश्चल बनाएँ ॥५ ॥

६२६. स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥६ ॥

(श्वान के प्रति) तुम्हारी माँ शयन करे । तुम्हारे पिता सोएँ । स्वयं (श्वान) तुम भी सो जाओ । गृहस्वामी, सभी बान्धव एवं परिकर के सब लोग सो जाएँ ॥६ ॥

६२७. स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् ।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ॥७ ॥

हे स्वप्न के अधिष्ठाता देव ! स्वप्न के साधनों द्वारा आप समस्त लोगों को सुला दें तथा अन्य लोगों को सूर्योदय तक निद्रित रखें । इस प्रकार सबके सो जाने पर हम इन्द्र के समान अहिंसित तथा क्षयरहित होकर प्रातःकाल तक जागते रहें ॥७ ॥

[६- विषघ्न सूक्त]

[**ऋषि -** गरुत्मान् । **देवता -** तक्षक, १ ब्राह्मण, २ द्यावा- पृथिवी, सप्तसिन्धु , ३ सुपर्ण ४-८ विष ।
छन्द-अनुष्टुप् ।]

६२८. ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥१ ॥

पहले दस शीर्ष तथा दस मुख वाला ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, उसने पहले सोमपान किया । उस (सोमपान) से विष को असार-प्रभावहीन बना दिया ॥१ ॥

[यह आलंकारिक वर्णन है । सृष्टि उत्पत्ति के समय उपयोगी पदार्थों के साथ विष का भी उद्भव हुआ था । ब्रह्म से उत्पन्न या ब्रह्मनिष्ठ को ब्राह्मण कहते हैं । उस प्रथम जन्मे ब्राह्मण (ब्रह्म के अनुशासन को फलित करने वाला दिव्य प्रवाह) के सिर (विचार तंत्र) तथा मुख (ग्रहण करने या प्रकट करने वाले तंत्र) दसों दिशाओं में थे, इसलिए उसे दस सिर एवं दस मुख वाला कहा गया । विष को प्रभावहीन बनाने वाला सोम- प्रवाह भी प्रकृति में उपलब्ध है, जिसे ब्रह्मनिष्ठ ही पान कर पाते हैं ।]

६२९. यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२ ॥

जितने विस्तार से द्यावा-पृथिवी फैली है और सप्त सिन्धु जितने परिमाण में फैले हैं, उतने स्थान तक के विष को दूर करने के लिए हम मन्त्रात्मिका वाणी का प्रयोग करते हैं ॥२ ॥

६३०.सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् । नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ।

हे विष ! वेगवान् गरुड़ पक्षी ने आपको पहले खा लिया था । वे न उन्मत्त हुए और न बेहोश हुए । आप उनके लिए अन्न के समान बन गये ॥३ ॥

[भाव यह है कि गरुड़ के पाचन तंत्र के लिए विष घातक नहीं-सामान्य अन्न जैसा बन जाता है । विष को निष्प्रभावी बनाने वाली ऐसी कोई प्रक्रिया ऋषि जानते थे ।]

६३१. यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ॥४ ॥

पाँच अँगुलियों वाले जिस हाथ ने आपको मुख रूप डोरी चढ़े हुए धनुष से मनुष्य के शरीर में डाल दिया है, उस विष को तथा विष वाले हाथ को हम अभिमंत्रित ओषधि द्वारा प्रभावहीन बनाते हैं ॥४ ॥

६३२. शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ॥५ ॥

शल्य क्रिया द्वारा, लेप लगाकर, पत्तों या पंख वाले उपकरण से हमने विष दूर किया । नुकीले उपकरण से-शृंग प्रयोग से कुलाल (ओषधि विशेष) द्वारा हमने विष को हटाया है ॥५ ॥

[विष हटाने की यह सब क्रियाएँ पूर्वकाल में प्रचलित थीं । शृंग प्रयोग में पोले सींग को विष के स्थान पर रखकर शोषण (वैक्यूम बनाकर विष खींचने) की प्रक्रिया अभी भी प्रचलित है ।]

६३३. अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् । उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ।

हे बाण ! आपका विष-सम्पन्न फलक विषरहित हो जाए और आपका विष भी वीर्यरहित हो जाए । उसके बाद रसहीन वृक्ष से बना आपका धनुष भी वीर्यरहित हो जाए ॥६ ॥

६३४ ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ॥७ ॥

विषयुक्त ओषधि प्रदान करने वाले, लेपन विष को प्रयुक्त करने वाले, दूर से विष को फेंकने वाले तथा समीप में खड़े होकर अन्न, जल आदि में विष मिलाने वाले जो मनुष्य हैं, हमने उन मनुष्यों को मंत्र बल के द्वारा प्रभावहीन कर दिया । हमने उन पर्वतों को भी प्रभावहीन कर दिया, जिन पर विष उत्पन्न होते हैं ॥७ ॥

६३५.वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ।

हे विषयुक्त ओषधे ! आपको खोदने वाले मनुष्य प्रभावहीन हो जाएँ और आप स्वयं भी प्रभावहीन हो जाएँ, तथा जिन पर्वतों और पहाड़ों पर आप उत्पन्न होती हैं, वे भी प्रभावहीन हो जाएँ ॥८ ॥

[७- विषनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - गरुत्मान् । **देवता** - वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४ स्वराट् अनुष्टुप् ।]

६३६. वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि । तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् ॥१ ।।

वरणावती ओषधि में स्थित रस हमारे विष को दूर करे । इसमें अमृत का स्रोत है । उस अमृतोपम जल के द्वारा हम आपके विष को दूर करते हैं ॥१ ॥

६३७. अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् । अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥२ ॥

पूर्व दिशा, उत्तर दिशा तथा दक्षिण दिशा में होने वाले विष निर्वीर्य हो जाएँ । इस प्रकार समस्त दिशाओं में होने वाले विष मंत्र- बल द्वारा निर्वीर्य हो जाएँ ॥२ ॥

६३८. करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम्।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥३ ॥

हे दोषपूर्ण शरीर वाले ! पीव (मेद,चर्बी) को पकाने वाले (श्रम) तथा भूख के अनुसार खाया गया (ओषधि मिलाकर बनाया गया) करंभ (मिश्रण) रोगनाशक है ।यहतुम्हें (विष के प्रभाव से) बेहोश नहीं होने देगा ॥३ ॥

[शरीर में संव्याप्त विष को निरस्त करने के लिए यह चिकित्सा विज्ञान सम्मत सूत्र है । श्रम इतना कि उसके ताप से चर्बी गलने लगे । भूख के अनुरूप ओषधि मिश्रित सात्विक भोजन करने से विष का प्रभाव घटता ही है, वह बढ़ नहीं पाता ।]

६३९. वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ॥४ ॥

हे ओषधे ! आपके विष को हम धनुष से छूटने वाले बाण के समान शरीर से दूर फेंकते हैं । हे विष ! गुप्तरूप से घूमने वाले दूत के समान शरीर के अङ्गों में संव्याप्त होते हुए आपको हम मंत्र-बल के द्वारा दूर फेंकते हैं ॥४ ॥

६४०. परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ॥५ ॥

जनसमूह के समान इकट्ठे हुए विष को हम मंत्र बल के द्वारा बाहर निकालते हैं । हे कुदाल से खोदी हुई ओषधे ! आप अपने स्थान पर ही वृक्ष के समान रहें । इस व्यक्ति को मूर्छित न करें ॥५ ॥

६४१. पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत। प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ॥

हे विषयुक्त ओषधे ! महर्षियों ने आपको पवित्र (शोधित) करने के निमित्त फैलाए हुए दर्भ के तृणों से क्रय कर लिया है । आप दुष्ट हिरणों के चर्म से क्रय की हुई हैं, इसलिए आप इस स्थान से भाग जाएँ । हे कुदाल से खोदी हुई ओषधे ! आप इस व्यक्ति को मूर्छित न करें ॥६ ॥

[यहाँ क्रय कर लेना, खरीद लेना शब्द- अपने अधिकार में लेने का प्रतीक है । उक्त साधनों से शोधित करके अपने अनुकूल बनाया गया विष मारक नहीं रह जाता, औषधि की तरह प्रयुक्त होता है ।]

६४२. अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! आपके प्रतिकूल चलने वाले जिन रिपुओं ने योग आदि प्रमुख कर्मों को किया है, उन कर्मों के द्वारा वे हमारे वीर पुत्रों को इस देश में न मारें । इस चिकित्सारूप कर्म को हम आपकी सुरक्षा के लिए आपके सामने प्रस्तुत करते हैं ॥७ ॥

[८- राज्याभिषेक सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वाङ्गिरा । **देवता -** चन्द्रमा, आपः, राज्याभिषेक , १ राजा, २ देवगण, ३ विश्वरूप, ४-५ आपः ।
छन्द - अनुष्टुप्, १,७ भुरिक् त्रिष्टुप् , ३ त्रिष्टुप् ५ विराट् प्रस्तार पंक्ति ।]

प्राचीनकाल की परिस्थितियों के अनुसार अधिकांश आचार्यों ने इस सूक्त का अर्थ राजा परक किया है । व्यापक भाव से यह इन्द्र या सूर्य पर भी घटित होता है । 'राजन्' (प्रकाशमान) , 'वेन' (तेजस्वी) जैसे संबोधन सूर्य के लिए प्रयुक्त होते ही हैं । वैसे परिवार या समाज के संरक्षक-शासक पर भी मंत्रार्थ घटित किये जा सकते हैं-

६४३. भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् ॥१ ॥

स्वयं उत्पन्न होकर, जो उत्पन्न हुए (जड़-चेतन) को पय: (पोषक रस) प्रदान करता है, वह सर्वभूतों का अधिपति हुआ । उसके राजसूय (राज्य को प्रेरणा देने वाले) प्रयोग के अनुरूप मृत्यु भी चलती है । वह राजा राज्य को मान्यता देकर आचरण करता है ॥१ ॥

६४४.अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा । आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रवन् ।

हे उग्र, चेतना संचारक 'वेन' (तेजस्वी) ! आप शत्रु विनाशक होकर आगे बढ़ें, पीछे न हटें । देवों ने आपको मित्रों का संवर्द्धन करने वाला कहा है, आप भली प्रकार स्थापित (प्रतिष्ठित) हों ॥२ ॥

६४५. आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३ ॥

स्थापित होने पर, विश्व से विभूषित होकर, श्री (वैभव) रूप वस्त्रों से आच्छादित होकर तथा स्वप्रकाशित होकर वे विचरण करते हैं । उस विश्वरूप, प्राणयुक्त, वर्षणशील का बड़ा नाम है । वह अमृत तत्त्वों पर स्थित (आधारित) रहता है ॥३ ॥

६४६. व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥४ ॥

हे व्याघ्र ! आप बाघ (विशिष्ट घ्राण शक्ति सम्पन्न) के समान दुर्धर्ष होते हुए विशाल दिशाओं को विजित करें । समस्त प्रजाएँ आपको अपना स्वामी स्वीकार करें और बरसने वाले दिव्य जल भी आपकी कामना करें ॥४ ॥

६४७. या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ॥५ ॥

अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर जो दिव्यजल अपने साररूप रस से प्राणियों को तृप्त करते हैं, उन समस्त जल के तेजस् से हम आपका अभिषेक करते हैं ॥५ ॥

६४८. अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥६ ॥

हे तेजस्विन् ! दिव्य रसयुक्त जल अपने तेजस् से आपको अभिषिक्त करे । आप जिस प्रकार मित्रों को समृद्ध करते हैं, उसी प्रकार सवितादेव आपको भी समृद्ध करें ॥६ ॥

६४९. एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्व१न्तः ॥७ ॥

समुद्र में द्वीप की तरह अप् (सृष्टि के मूलतत्त्व) में व्याघ्र एवं सिंह जैसे पराक्रमी को यह दिव्य धाराएँ महान् सौभाग्य के लिए प्रेरित और विभूषित करती हैं ॥७ ॥

[९- आञ्जन सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु । **देवता** - त्रैककुदाञ्जन । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ ककुम्मती अनुष्टुप्, ३ पथ्यापंक्ति ।]

६५०. एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् । विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥१ ।

हे अञ्जन मणे ! आप प्राणधारियों की सुरक्षा करने वाले पर्वत की नेत्ररूप हैं । आप देवताओं द्वारा प्रदत्त जीवन-रक्षक परिधि रूप में यहाँ पधारें ॥१ ॥

६५१. परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि। अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥२॥

हे अञ्जन मणे ! आप मनुष्यों तथा गौओं की सुरक्षा करने वाले हैं। आप घोड़ों तथा घोड़ियों की सुरक्षा के लिए भी स्थित रहते हैं ॥२॥

६५२. उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥३॥

जिससे आँखों को निर्मल किया जाता है, ऐसे हे अञ्जन मणे ! आप राक्षसों द्वारा दी हुई यातनाओं को नष्ट करने वाले हैं और जीवों की सुरक्षा करने वाले हैं। आप स्वर्ग में स्थित अमृत को जानने वाले और प्राणियों के अनिष्ट को दूर करके उनकी सुरक्षा करने वाले हैं। आप पाण्डु- रोग की ओषधि हैं ॥३॥

६५३. यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः। ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ॥४॥

हे अञ्जन मणे ! आप जिस मनुष्य के अंगों और जोड़ों में संव्याप्त हो जाते हैं, उस मनुष्य के शरीर से क्षय आदि रोगों को मेघ उड़ाने वाली वायु के समान शीघ्र ही दूर कर देते हैं ॥४॥

६५४. नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ॥५॥

हे अञ्जन मणे ! जो मनुष्य आपको धारण करते हैं, उनको दूसरों के द्वारा प्रेरित शाप नहीं प्राप्त होते और दूसरों के द्वारा प्रेरित अभिचार रूप कृत्या तथा कृत्या से होने वाले शोक नहीं प्राप्त होते। उनको गति-अवरोधक बाधाएँ भी नहीं प्राप्त होतीं ॥५॥

६५५.असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत। दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन।

हे अञ्जन मणे ! अभिचारात्मक बुरे मंत्रों से उनके द्वारा प्राप्त होने वाले कष्टों से, बुरे स्वप्नों से, पापों से उत्पन्न होने वाले दुःखों से, बुरे मन तथा दूसरों की क्रूर आँखों से आप हमारी सुरक्षा करें ॥६॥

६५६. इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्। सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥७॥

हे अञ्जन मणे ! हम आपकी महिमा को जानते हैं, इसलिए हमने यह बात सत्य ही कही है, झूठ नहीं। अत: हम आपके द्वारा गौओं, घोड़ों और जीवों की सेवा करें ॥७॥

६५७. त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ॥८॥

कठिनाई से जीवन निर्वाह कराने वाले ज्वर, शरीर बल को कमजोर बनाने वाले सन्निपात तथा सर्प के विष-विकार आदि तीन रोग दास के समान 'आञ्जन-द्रव्य' के वशीभूत रहते हैं। हे अञ्जन मणे ! पर्वतों में श्रेष्ठ 'त्रिककुद' नामक पर्वत आपका पिता है ॥८॥

६५८. यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि। यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः।

हिम से घिरे हुए 'त्रिककुद' नामक पहाड़ पर उत्पन्न होने वाले अञ्जन समस्त यातुधानों तथा यातुधानियों को विनष्ट करते रहते हैं। इसलिए वे हमारे रोगों को भी नष्ट करें ॥९॥

६५९. यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे। उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन।

हे अञ्जन मणे ! यदि आप 'त्रिककुद' हैं अथवा 'यामुन' कहलाते हैं, तो आपके ये दोनों नाम भी कल्याण करने वाले हैं। अत: आप अपने इन दोनों नामों से हमारी सुरक्षा करें ॥१०॥

[१० - शङ्खमणि सूक्त]

[ऋषि -अथर्वा । देवता - शङ्खमणि, कृशन । छन्द - अनुष्टुप्, ६ पथ्यापंक्ति, ७ पञ्चपदा परानुष्टुप् शक्वरी ।]

६६०. वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥१ ॥

वायु , अन्तरिक्ष, विद्युत् और सूर्य आदि ज्योतियों से उत्पन्न तथा स्वर्ण से विनिर्मित तेजस्वी शंख, पाप से हमारी सुरक्षा करे ॥१ ॥

६६१. यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे । शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे।

हे शंख ! आप प्रकाशमान नक्षत्रों के सामने विद्यमान समुद्र में पैदा होते हैं, ऐसे ज्योतिर्मय आप से असुरों को विनष्ट करके हम पिशाचों को पराभूत करते हैं ॥२ ॥

६६२. शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥३ ॥

शंख के द्वारा हम समस्त रोगों तथा विवेकहीनता को दूर करते हैं । इसके द्वारा हम सदैव पीड़ा देने वाली अलक्ष्मी को भी तिरस्कृत करते हैं ।विघ्नों को दूर करने वाला यह तेजस्वी शंख, पापों से हमारी सुरक्षा करे ॥३ ॥

६६३. दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख-आयुष्प्रतरणो मणिः ॥४ ॥

पहले द्युलोक में उत्पन्न हुआ, समुद्र में उत्पन्न हुआ, नदियों से एकत्रित किया हुआ हिरण्य (दिव्य तेज) से निर्मित यह शंख मणि, हमारे आयुष्य की वृद्धि करने वाली हो ॥४ ॥

६६४. समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥५ ॥

समुद्र से पैदा हुआ यह (शंख) मणि तथा मेघों से उत्पन्न सूर्य सदृश यह देवताओं एवं असुरों के अस्त्रों से हमारी रक्षा करे ॥५ ॥

६६५. हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६ ॥

(हे शंख मणे !) आप तेजस्वियों में से एक हैं । आप सोम से उत्पन्न हुए हैं । रथों में आप देखने योग्य होते हैं और बाणों के आश्रय स्थान तूणीर में चमकते हुए प्रतीत होते हैं, ऐसे आप हमारे आयुष्य की वृद्धि करें ॥६ ॥

६६६. देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे
बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ॥७ ॥

देवों की अस्थिरूप यह मोती बना है । यह आत्मतत्त्व की तरह जल के बीच विचरण करता है । (हे व्यक्ति विशेष !) ऐसे उस (शंखमणि) को तेजस्विता, बल तथा सौ वर्ष वाले आयुष्य के लिए (तुम्हें) बाँधता हूँ । यह सभी प्रकार तुम्हारी रक्षा करें ॥७ ॥

[हड्डियाँ चूने के योग (कैल्शियम कम्पाउण्ड्स) से बनती हैं । शंख एवं सीप भी उसीप्रकार के योगों से बनते हैं, इसी तथ्य को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर ऋषि उसे देवों की अस्थि कहते हैं ।]

[११- अनड्वान् सूक्त]

[**ऋषि -** भृग्वङ्गिरा । **देवता -** इन्द्र , अनड्वान । **छन्द -** त्रिष्टुप्, १,४ जगती , २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना षट्पदा अनुष्टुप्गर्भा उपरिष्टात्जागतानिचृत्शक्वरी, ८-१२ अनुष्टुप् ।]

अनड्वान् प्राणों को भी कहा गया है(अथर्व०११.६.१०) । यह भाव इस सूक्त के संदर्भ में भी सटीक बैठता है-

६६७. अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥१ ॥

विश्वरूपी शकट को ढोने वाले वृषभरूप ईश्वर ने पृथ्वी को धारण किया है । उसने स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पूर्व आदि छः महादिशाओं और उर्वियों को भी धारण किया है । इस प्रकार वह अनड्वान् (शकटवाही) ईश्वर समस्त लोकों में प्रविष्ट हुआ है ॥१ ॥

६६८. अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥२ ॥

इस अनड्वान् को इन्द्र कहते हैं । वे शक्र (इन्द्रदेव) तीनों (लोकों) को नापते हैं तथा प्राणियों का निरीक्षण करते हैं, ये भविष्यत् और वर्तमानकाल में पदार्थों को उत्पन्न करते हुए देवताओं के सभी व्रतों को चलाते हैं ॥२ ॥

६६९. इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥३ ॥

इन्द्रदेव ही (जीवात्मारूप में) मनुष्यों के अन्दर प्रकट होते हैं । वे तपस्वी सूर्य की तरह प्रकाशित होते हुए विचरण करते हैं । वे भोजन नहीं करते और संचालक को जानते हुए (उसी के अनुशासन में) श्रेष्ठ प्रज्ञायुक्त होकर रहते हैं तथा देहपात के बाद भी भटकते नहीं ॥३ ॥

६७०. अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥४ ॥

सत्कर्म के पश्चात् प्राप्त होने वाले पुण्यलोक में यह ईश्वररूप अनड्वान्, इच्छित फल प्रदान करता है । पहले से पवित्र सोमरस इसको रस से परिपूर्ण करता हैं । पर्जन्य इसकी धाराएँ हैं, मरुद्गण इसके स्तन हैं और यज्ञ ही इसका पय (दुग्धं या जल) है । यज्ञ में प्रदान की जाने वाली दक्षिणा इस अनड्वान् की दोहन क्रिया है ॥४ ॥

६७१. यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥५ ॥

याजकगण इस देवस्वरूप अनड्वान् के स्वामी नहीं हैं । यज्ञक्रिया, दाता तथा प्रतिग्रहीता भी इसके स्वामी नहीं हैं । यह समस्त जगत् को विजित करने वाला तथा वायुरूप में सबका पालन-पोषण करने वाला है । जगत् के समस्त कर्म इसके ही हैं । यह चार चरण वाला हमें आलोकवान् सूर्य के विषय में उपदेश देता है ॥५ ॥

६७२. येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥६ ॥

जिस देवस्वरूप अनड्वान् के द्वारा देवगण शरीर का त्याग करके अमृत के केन्द्ररूप प्रकाश स्थान पर आरूढ़ हुए थे, उसी के द्वारा हम प्रदीप्त आदित्यदेव का व्रत करते हुए मोक्ष सुख की कामना करके पुण्य के फलरूप श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

६७३. इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट्।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत। सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥७॥

इन्द्रदेव ही अपने स्वरूप से अग्नि हैं। वही सृष्टिकर्त्ता तथा प्रजापति समस्त विश्व को वहन करने के कारण 'विराट्' हुए। वही समस्त मनुष्यों, अग्नियों तथा रथ खींचने वालों में संव्याप्त हैं। वही सबको बल प्रदान करते हैं तथा सबको धारण करते हैं ॥७॥

६७४. मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः। एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥

यह (यज्ञ) उस विश्व संवाहक का मध्य (भार उठाने वाला) भाग है। इस अनड्वान् वृषभ का अगला भाग उतने ही परिमाण वाला है, जितने परिमाण वाला पिछला भाग है ॥८॥

६७५. यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥९॥

जो प्रजापति रूप अनड्वान् के लोक, समुद्र आदि सात प्रकार के दोहन स्रोतों को जानते हैं, वे श्रेष्ठ प्रजाओं तथा पुण्य लोकों को प्राप्त करते हैं। ऐसा (जो कहा गया), उसे सप्तऋषि ही जानते हैं ॥९॥

६७६. पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥१०॥

यह प्रजापति सम्बन्धी अनड्वान् अपने चारों पैरों से दुःख लाने वाली अलक्ष्मी को अधोमुख करके उस पर आरूढ़ होता हुआ धरती को अपनी जंघाओं (पैरों) से कुरेदता हुआ तथा अपने श्रम के द्वारा अपने अनुकूल चलने वाले किसान को अन्न प्रदान करता है ॥१०॥

६७७. द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ॥११॥

ये बारह रात्रियाँ यज्ञात्मक प्रजापति के व्रत के योग्य हैं, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। उतने समय में पधारे हुए वृषभरूप प्रजापति सम्बन्धी ब्रह्म को जो जानते हैं, वही इस अनडुहव्रत के अधिकारी हैं। यह ज्ञान अनडुह (विश्व संचालक) का अनुष्ठान है ॥११॥

६७८. दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि। दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः॥

पूर्वोक्त लक्षण वाले वृषभ का, हम प्रातःकाल, सायंकाल तथा मध्याह्नकाल में दोहन करते हैं। यज्ञानुष्ठान करने वाले के फलों का भी हम दोहन करते हैं। इस प्रकार जो इस अनड्वान् के दोहन फल से संयुक्त होते हैं- ऐसे अविनाशी दोहन कर्म को हम जानते हैं ॥१२॥

[१२ - रोहिणी वनस्पति सूक्त]

[**ऋषि** - ऋभु । **देवता** - वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री, ६ त्रिपदा यवमध्या भुरिक् गायत्री, ७ बृहती ।]

इस सूक्त में टूटे अंगों को जोड़ने एवं जले-कटे घावों को भरने के लिए 'रोहिणी' नामक ओषधि का उल्लेख है। वैद्यक ग्रन्थों में इसके वीरवती (वीरों वाली) चर्मकषा, मांसरोही (चर्म तथा मांस को स्थापित करने वाली) प्रहारवल्ली (प्रहार के उपचार में प्रयुक्त) आदि नाम दिये गए हैं। मंत्रों में इसकी ऐसी उपचारपरक विशेषताओं का वर्णन है। पूर्वकाल के युद्धों के समय वैद्यगण रातभर में योद्धाओं के घावों का उपचार करके, उन्हें प्रातः फिर से युद्ध के योग्य बना देते थे। उसमें दिव्य ओषधि प्रयोगों के साथ मन्त्र शक्ति एवं प्राण शक्ति का प्रयोग भी किया जाता रहा होगा। मन्त्रों में दिये गए वर्णन से स्पष्ट होता है कि कटे

हुए अंगों को हड्डी से हड्डी, मांस से मांस , चमड़ी से चमड़ी जोड़ने की क्षमता उन्हें प्राप्त थी। रुधिर, मांस, हड्डियों को आवश्यकतानुसार बढ़ाने की कला भी उन्हें ज्ञात थी-

६७९. रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी। रोहयेदमरुन्धति ॥१ ॥

हे लाल वर्ण वाली रोहिणि ! आप टूटी अस्थियों को पूर्णता प्रदान करने वाली हैं । हे अरुन्धति ! (उपचार के मार्ग में बाधा न आने देने वाली) आप इस (घाव आदि) को भर दें ॥१ ॥

६८०. यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः ॥२ ॥

(हे घायल व्यक्ति !) आपके जो अंग चोट खाये हुए या जले हुए हैं, प्रहार से जो अंग टूट या पिस गये हैं; उन समस्त अंगों को देवगण इस भद्रा (हितकारी ओषधि या शक्ति) के माध्यम से जोड़ दें- ठीक कर दें ॥२ ॥

६८१. सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥३ ॥

(हे घायल मनुष्य !) आपके शरीर में स्थित छिन्न मज्जा पुन: बढ़कर सुखकारी हो जाए, पोरु से पोरु जुड़ जाएँ । मांस का छिन्न-भिन्न हुआ भाग तथा हड्डी भी जुड़कर ठीक हो जाए ॥३ ॥

६८२. मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥४ ॥

छिन्न-भिन्न मज्जा-मज्जा से, मांस- मांस से तथा चर्म-चर्म से मिल जाए । रुधिर एवं हड्डियाँ भी बढ़ जाएँ ॥४ ।

६८३. लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ॥५ ॥

हे ओषधे ! (शस्त्र प्रहार से अलग हुए) आप रोम को रोम से, त्वचा को त्वचा से मिलाकर ठीक कर दें तथा आपके द्वारा हड्डियों का रक्त दौड़ने लगे । टूटे हुए अन्य अंगों को भी आप जोड़ दें ॥५ ॥

६८४. स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः । प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥६ ॥

(हे छिन्न-भिन्न अंग वाले मनुष्य !) आप (मन्त्र और ओषधि के बल से) स्वस्थ होकर अपने शयन स्थान से उठ करके वेगपूर्वक गमन करें । जिस प्रकार श्रेष्ठ चक्रों वाले, सुदृढ़ नेमि वाले तथा सुदृढ़ नाभि वाले रथ दौड़ते हुए प्रतिष्ठित होते हैं, उसी प्रकार आप भी सुदृढ़ अंग वाले होकर दौड़ते हुए प्रतिष्ठित हों ॥६ ॥

६८५. यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ॥७ ॥

घाव, धारवाले शस्त्र के प्रहार से हुआ हो या पत्थर की चोट से हुआ हो, जिस प्रकार ऋभुदेव (या कुशल शिल्पी) रथों के अंग-अवयव जोड़ देते हैं; वैसे ही पोरु से पोरु जुड़ जाएँ ॥७ ॥

[१३ - रोग निवारण सूक्त]

[**ऋषि** - शन्ताति । **देवता** - चन्द्रमा, विश्वेदेवा, (१ देवगण, २-३ वात, ४ मरुद्‌गण, ६-७ हस्त ।) **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

६८६. उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१ ॥

हे देवगण ! हम पतितों को बार-बार ऊपर उठाएँ । हे देवो ! हम अपराधियों के अपराध- कर्मों का निवारण करें । हे देवो ! हमारा संरक्षण करते हुए आप हमें दीर्घायु बनाएँ ॥१ ॥

६८७. द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद् रपः ॥२ ॥

ये दो वायु , एक समुद्र पर्यन्त और दूसरे समुद्र से सुदूर प्रवाहित होते हैं । उन दोनों में से एक तो आपको (स्तोता को) बल प्रदान करें और दूसरे आपके पापों को विनष्ट करें ॥२ ॥

६८८. आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः । त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे।

हे वायुदेव ! आप व्याधियों का निवारण करने वाली कल्याणकारी ओषधि को लेकर आएँ । जो अहितकर पाप (मल) हैं, उन्हें यहाँ से बहाकर ले जाएँ । आप संसार के लिए ओषधिरूप, कल्याणकारी, देवदूत बनकर सर्वत्र संचार करते हैं ॥३ ॥

६८९.त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः । त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्।

इस लोक में समस्त देवगण हमें संरक्षण प्रदान करें । मरुद्गण और समस्त प्राणी हमारी रक्षा करें । वे हमारे शरीर के रोगों और पापों का निवारण करें ॥४ ॥

६९०. आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! आपके लिए सुख-शान्ति प्रदायक और अहिंसक संरक्षण साधनों के साथ हमारा आगमन हुआ है । आपके लिए मंगलमय शक्तियों को भी हमने धारण किया है । अस्तु , इस समय तुम्हारे सम्पूर्ण रोगों का निवारण करता हूँ ॥५ ॥

६९१. अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः । अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६।

यह हमारा हाथ सौभाग्ययुक्त है, अति सौभाग्यशाली यह हाथ सबके लिए सभी रोगों का निवारण-कर्त्ता है । यह हाथ शुभ और कल्याणकारी है ॥६ ॥

६९२. हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७ ॥

मन्त्रोच्चारण करते समय जैसे वाणी के साथ जिह्वा गति करती है । वैसे ही दस अँगुलियों वाले दोनों हाथों से आपका स्पर्श करते हुए आपको रोगों से मुक्त करते हैं ॥७ ॥

[१४ - स्वर्ज्योति प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु । **देवता** - आज्य, अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् , २,४ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपंक्ति, ७,९ जगती, ८ पञ्चपदा अतिशक्वरी ।]

६९३. अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः ॥१ ॥

अग्नि ही 'अज' है । यह दिव्य तेज से उत्पन्न है । इस अज (जन्मरहित यज्ञाग्नि अथवा काया में जीव रूप स्थित प्राणाग्नि) ने पहले अपने उत्पन्नकर्त्ता को देखा (उसकी ओर सहज उन्मुख हुआ) । इस अज की सहायता से देवों ने-देवत्व प्राप्त किया, दूसरे मेधावी (ऋषिगण) उच्च लोकों तक पहुँचे ॥१ ॥

६९४. क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! आप लोग अन्न को हाथ में लेकर अग्नि की सहायता से (यज्ञ करते हुए) स्वर्गलोक को प्राप्त करें , उसके बाद द्युलोक के पृष्ठ भाग उन्नत स्वर्ग में जाकर आत्मिक ज्योति को प्राप्त करते हुए देवताओं के साथ मिलकर बैठें ॥२ ॥

६९५. पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्व१र्ज्योतिरगामहम् ॥३ ॥

हम भूलोक के पृष्ठ भाग से अन्तरिक्षलोक में चढ़ते हैं और अन्तरिक्षलोक से द्युलोक में चढ़ते हैं । हमने सुखमय द्युलोक से ऊपर, स्वज्योति (आत्म-ज्योति) को प्राप्त किया ॥३ ॥

६९६. स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४ ॥

जो श्रेष्ठ ज्ञानी जन विश्व को धारण करने वाले यज्ञ का विस्तार करते हैं । वे आत्मज्योति-सम्पन्न द्युलोक की अभिलाषा नहीं करते । वे पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक से ऊपर उठ जाते हैं । ।४ ॥

६९७. अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों में प्रमुख हैं, इसलिए आप बुलाने योग्य स्थान में पधारें । आप देवताओं एवं मनुष्यों के लिए नेत्र रूप हैं । आपकी संगति चाहने वाले याजकगण भृगुओं (तपस्वियों) के साथ प्रीतिरत होकर स्वः (आत्म-तत्त्व या स्वर्ग) तथा स्वस्ति (कल्याण) को प्राप्त करें ॥५ ॥

६९८. अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥६ ॥

इस दिव्य गतिशील, वर्द्धमान, सुवर्ण (तेजस्वी) 'अज' का हम पय (दुग्ध या रस) तथा घृत (घी या सार अंश) से यजन करते हैं । उस (अज) के माध्यम से आत्म-चेतना को पुण्य लोकों की ओर उन्मुख करके उत्तम स्वर्ग की प्राप्ति करेंगे ॥६ ॥

६९९. पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ॥७ ॥

पाँच प्रकार से बँटने वाले अन्न को पाँचों अँगुलियों के द्वारा पाँच भागों में विभक्त करें । इस 'अज' के सिर को पूर्व दिशा में रखें तथा इसके दाहिने भाग को दक्षिण दिशा में रखें ॥७ ॥

७००. प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् । ऊर्ध्वायां
दिश्य१जस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥

इस 'अज' के कटिभाग को पश्चिम दिशा में स्थापित करें, उत्तर पार्श्व भाग को उत्तर दिशा में स्थापित करें । पीठ को ऊर्ध्व दिशा में स्थापित करें और पेट को ध्रुव (नीचे) दिशा में स्थापित करें तथा इसके मध्य भाग को मध्य अन्तरिक्ष में स्थापित करें ॥८ ॥

७०१. शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः सम्भृतं विश्वरूपम्।
स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥९॥

अपने समस्त अंगों से सम्यक्‌रूप से विश्वरूप बने, परिपूर्ण 'अज' को ईश्वर के आच्छादन से ढकें। हे अज! आप इस लोक से स्वर्गलोक की तरह चारों पैरों से चढ़ते हुए चारों दिशाओं में संव्याप्त हों ॥९॥

[मंत्र ७-८ में अज (यज्ञाग्नि या प्राणाग्नि) को विराट्‌रूप देकर विभिन्न दिशाओं में स्थापित करने का भाव है। दिशाओं के बोध कराने का भी उचित ढंग वर्णित है। अज को यज्ञ एवं जीवन को पूरी तरह विराट् में समर्पित कर देने का भाव ९ में है।]

[१५ - वृष्टि सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ दिशा, २-३ वीरुध, ४ मरुद्‌गण, पर्जन्य, ५-९ मरुद्‌गण, १० अग्नि, ११ स्तनयित्नु, प्रजापति, १२ वरुण, १३-१५ मण्डूकसमूह, पितरगण, १६ वात । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १-२,५ विराट् जगती, ४ विराट् पुरस्ताद् बृहती, ७-८, १३-१४ अनुष्टुप्, ९ पथ्यापंक्ति, १० भुरिक् त्रिष्टुप्, १२ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् त्रिष्टुप्, १५ शंकुमती अनुष्टुप् ।]

७०२. समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१॥

वायु से युक्त दिशाएँ बादलों के साथ उदित हों और वृष्टि के निमित्त जल वहन करने वाले बादल, वायु द्वारा प्रेरित होकर एकत्र हों। महा वृषभ के समान गर्जना करने वाले बादल जल के द्वारा पृथ्वी को तृप्त करें ॥१॥

७०३. समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥२॥

श्रेष्ठ दानी मरुद्‌गण हमारे लिए जलवृष्टि कराएं। जल के रस ओषधियों से संयुक्त हों। वृष्टि की जल धाराएँ पृथ्वी को समृद्ध करें और उनके द्वारा विविधरूप वाली ओषधियाँ उत्पन्न हों ॥२॥

७०४. समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ॥३॥

हे मरुद्‌गण! हम आपकी प्रार्थना करते हैं, इसलिए आप हमें जलयुक्त मेघों का दर्शन कराएँ। जल के प्रवाह अलग-अलग होकर गमन करें और वृष्टि की धाराएँ पृथ्वी को समृद्ध करें। विविधरूप वाली ओषधियाँ पृथ्वी पर उत्पन्न हों ॥३॥

७०५. गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥४॥

हे पर्जन्यदेव! गर्जना करने वाले मरुद्‌गण आपका अलग-अलग गुणगान करें। बरसते हुए मेघ की धाराओं से आप पृथ्वी को गीला करें ॥४॥

७०६. उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥५॥

हे मरुद्देवो! सूर्य की गर्मी के द्वारा आप बादलों को समुद्र से ऊपर की ओर ले जाएँ, उड़ाएँ और महा वृषभ (ऋषभ) के समान गर्जना करने वाले जल-प्रवाह से आप भूमि को तृप्त करें ॥५॥

७०७. अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि।

त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥६ ॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट की गर्जना से युक्त होकर ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करें । उदक-धारक रथ से गमन करें । उदक पूर्ण (जल पूर्ण) मेघों के मुख को नीचे करें और इसे खाली करें, ताकि उच्च और निम्न प्रदेश समतल हो सकें ॥६ ॥

[जब मेघ गरजते हैं, तब विद्युत् के प्रभाव से नाइट्रोजन के उर्वर यौगिक (कम्पाउण्ड) बनते हैं । उनसे वनस्पतियों को शक्ति मिलती है ।]

७०८. सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत । मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ।

हे मनुष्यो ! श्रेष्ठ दानी मरुद्गण आपको तृप्त करें । अजगर की तरह मोटे जल-प्रवाह प्रकट हों और वायु के द्वारा प्रेरित बादल पृथ्वी पर वर्षा करें ॥७ ॥

७०९. आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥८ ॥

दिशाओं-दिशाओं में विद्युत् चमके और सभी दिशाओं में वायु प्रवाहित हो । इसके बाद वायु द्वारा प्रेरित बादल धरती की ओर अनुकूलता से आगमन करें ॥८ ॥

७१०. आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९ ॥

हे श्रेष्ठ दानी मरुतो ! जल, विद्युत्, मेघ, वृष्टि तथा अजगर के समान आकार वाले आपके जल-प्रवाह संसार को तृप्त करें और आपके द्वारा प्रेरित बादल धरती की रक्षा करें ॥९ ॥

७११. अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१० ॥

मेघों के शरीररूप जल से एकरूप हुए विद्युताग्नि, उत्पन्न होने वाली वनौषधियों के पालक हैं । वे जातवेदा अग्निदेव हमें प्राणियों में जीवन- संचार करने वाली तथा स्वर्ग के अमृत को उपलब्ध कराने वाली वृष्टि प्रदान करें।

७१२. प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११ ॥

प्रजापालक सूर्यदेव जलमय समुद्र से जल को प्रेरित करते हुए समुद्र को गति प्रदान करें । उनके द्वारा अश्व के समान गतिवाले तथा वृष्टि करने वाले बादलों से जल की वृद्धि हो । हे पर्जन्यदेव ! इन गर्जनकारी मेघों के साथ आप हमारे सम्मुख पधारें ॥११ ॥

७१३. अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२ ॥

प्राणों को वृष्टि का जल प्रदान करने वाले हमारे पालक सूर्यदेव, वृष्टि के जल को तिरछे भाव से बरसाएँ । उस समय जल के गड़-गड़ शब्द करने वाले प्रवाह चलें । हे वरुणदेव ! आप भी पृथ्वी पर आगमन करने वाले जल को बादलों से पृथक् करें । उसके बाद सफेद भुजा वाले मेढक पृथ्वी पर आकर शब्द करें ॥१२ ॥

७१४. संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३ ॥

वर्ष भर गुप्त स्थिति में बने रहने वाले, व्रतपालक ब्राह्मणों (तपस्वियों) की भाँति रहने वाले मण्डूकगण, पर्जन्य को प्रसन्न (जीवन्त) करने वाली वाणी बोलने लगे हैं ॥१३ ॥

[मेढक सर्दियों में सुप्तावस्था (हाइबरेशन) की स्थिति में रहते हैं । ग्रीष्मकाल में तपन सहन करते हुए शान्त रहते हैं । तपस्वी ब्राह्मण भी अपनी तपःशक्ति बढ़ाते हुए वर्ष भर साधनारत रहते थे । उस तप के आधार पर ही प्रकृति से वाञ्छित अनुदान पाने के लिए वे प्राणवान् मंत्रों का प्रभावी प्रयोग कर पाते थे । उसी तथ्य का यहाँ आलंकारिक वर्णन है ।]

७१५.उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि । मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४॥

हे मण्डूकि ! आप हर्षित होकर वेगपूर्वक ध्वनि करें । हे तादुरि ! आप वर्षा के जल को बुलाएँ और तालाब में अपने चारों पैरों को फैलाकर तैरें ॥१४ ॥

७१६. खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि । वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५॥

हे खण्वखे (बिलवासी) ! हे षैमखे (शान्त रहने वाली) ! हे तदुरि (छोटी मेढकी) ! तुम वर्षा के बीच आनन्दित होओ ? हे पितरो ! आप मरुद्गणों के मन को अनुकूल इच्छा युक्त बनाओ ॥१५ ॥

७१७. महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६ ॥

हे पर्जन्यदेव ! आप अपने जलरूपी महान् कोश को विमुक्त करें और उसे नीचे बहाएँ, जिससे ये जल से परिपूर्ण नदियाँ अबाधित होकर पूर्व की ओर प्रवाहित हों । आप जल-राशि से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करें, ताकि हमारी गौओं को उत्तम पेय जल प्राप्त हो ॥१६ ॥

[१६- सत्यानृतसमीक्षक सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ५ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७ जगती, ८ त्रिपात् महाबृहती ९ त्रिपदा विराट् गायत्री ।]

७१८. बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति । य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः॥

महान् अधिष्ठाता (वरुणदेव) सभी वस्तुओं के जानने वाले हैं । वे समस्त कर्मों को निकटता से देखते हैं तथा सबके वृत्तान्तों को जानते हैं ॥१ ॥

७१९. यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥२ ॥

जो स्थित रहता है, जो चलता है, जो गुप्त (बल भरा) अथवा खुला व्यवहार करता है तथा जब दो मनुष्य एक साथ बैठकर गुप्त विचार- विमर्श करते हैं, तब उनमें तीसरे (उनसे भिन्न) होकर राजा वरुणदेव उन सबको जानते हैं ॥२ ॥

७२०. उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३ ॥

यह पृथ्वी और दूर अन्तर पर मिलने वाला विशाल द्युलोक राजा वरुण के वश में है । पूर्व-पश्चिम के दोनों समुद्र भी वरुणदेव की दोनों कोखें हैं । इस प्रकार वे (जगत् को व्याप्त करते हुए) थोड़े जल में भी विद्यमान हैं ॥३ ।

७२१. उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४ ॥

जो (अनुशासनहीन) द्युलोक से परे चले जाते हैं, वे भी राजा वरुण के पाशों से मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि उनके दिव्य दूत पृथ्वी पर विचरण करते हैं और अपनी हजारों आँखों से भूमि का निरीक्षण करते रहते हैं ॥४ ॥

७२२. सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५ ॥

द्यावा-पृथिवी के बीच में निवास करने वाले तथा अपने सामने निवास करने वाले प्राणियों को राजा वरुणदेव विशेष रूप से देखते हैं । वे मनुष्यों की पलकों के झपकों को उसी प्रकार गिनते तथा नापते हैं, जिस प्रकार जुआरी अपने पासों को नापता रहता है ॥५ ॥

७२३. ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६ ॥

हे वरुणदेव ! पापी मनुष्यों को बाँधने के लिए आपके जो उत्तम, मध्यम और अधम सात-सात पाश हैं, वे असत्य बोलने वाले रिपुओं को छिन्न-भिन्न करें और सत्यभाषी पुण्यात्माओं को मुक्त करें ॥६ ॥

७२४. शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! आप अपने सैकड़ों पाशों द्वारा इस (रिपु) को बाँधें । हे मनुष्यों को देखने वाले वरुणदेव ! मिथ्याभाषी मनुष्य आपसे बचने न पाएँ । दुष्ट मनुष्य अपने उदर को पतित (नष्ट) करके, बिना बँधे (व्यक्त) कोश की तरह उपेक्षित पड़ा रहे ॥७ ॥

७२५. यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३ यः संदेश्यो३ वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८ ॥

जो सम है-जो विषम है, जो देश (क्षेत्र) में रहने वाला अथवा विदेश (विशिष्ट क्षेत्र) में रहने वाला है, जो देवों से सम्बन्धित है या मनुष्यों से सम्बन्धित है, वह सब वरुण का (पाश या प्रभाव) ही है ॥८ ॥

७२६. तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥९ ॥

हे अमुक माता-पिता के पुत्रो ! हम आपको पूर्व ऋचा में वर्णित वरुणदेव के समस्त पाशों (प्रभावों) से बाँधते हैं । आपके लिए उन सबको प्रेरित करते हैं ॥९ ॥

[१७ - अपामार्ग सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - अपामार्ग वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

७२७. ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे । चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा । ।

हे ओषधे ! रोग निवारण के लिए ओषधिरूप में प्रयुक्त होने वाली अन्य ओषधियों की आप स्वामिनी हैं । हम आपका आश्रय ग्रहण करते हैं । हे ओषधे ! समस्त रोगों के निवारण के लिए हम आपको सहस्र - वीर्यों से सम्पन्न करते हैं ॥१ ॥

७२८. सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम्।
सर्वाः समह्व्योषधीरितो नः पारयादिति ॥२ ॥

दोषों को दूर करने वाली 'सत्यजित', क्रोध को विनष्ट करने वाली 'शपथ यावनी', अभिचारों को सहने वाली 'सहमाना' तथा बार-बार रोगों को नष्ट करने वाली (अथवा विरेचक) 'पुन:सरा' आदि ओषधियों को हम प्राप्त करते हैं। वे इन रोगों से हमें तार दें ॥२ ॥

७२९. या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे। या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥

जो पिशाचिनियाँ क्रोधित होकर शाप देती हैं और मूर्छित करने वाला पाप कर्म करती हैं तथा जो शरीर के रक्त को हरने के लिए नवजात शिशु को भी पकड़ लेती हैं, वे सब पिशाचिनियाँ अभिचार करने वाले शत्रु के ही पुत्र को खाएँ ॥३ ॥

७३०. यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ॥४ ॥

हे कृत्ये ! अभिचारकों ने जिस आभिचारिक प्रयोग को आपके लिए कच्चे मिट्टी के बर्तन में किया है, धुएँ से नीली और ज्वाला से लाल अग्नि स्थान में किया है तथा कच्चे मांस में किया है, उससे आप उन अभिचारकों का ही नाश करें ॥४ ॥

७३१. दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्य:।
दुर्णाम्नी: सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥५ ॥

अरिष्ट दर्शनरूपी बुरे स्वप्न को, दु:खदायी जीवन बिताने की स्थिति को, राक्षस जाति को, अभिचार क्रिया से उत्पन्न भारी भय को, निर्धनता बढ़ाने वाली अलक्ष्मियों को तथा बुरे नाम वाली समस्त पिशाचियों को हम इस पुरुष से दूर करते हैं ॥५ ॥

७३२. क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्। अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ।।६।

हे अपामार्ग ओषधे ! अत्यधिक भूख से मरना, अत्यधिक प्यास से मरना अथवा भूख-प्यास से मरना, वाणी अथवा इन्द्रियों के दोष तथा सन्तानहीनता आदि दोषों को हम आपके द्वारा दूर करते हैं ॥६ ॥

७३३. तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्। अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥

प्यास से मरना, भूख से मरना तथा इन्द्रिय का नष्ट होना आदि समस्त दोषों को हे अपामार्ग ओषधे ! आपकी सहायता से हम दूर करते हैं ॥७ ॥

७३४. अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी। तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर।

हे अपामार्ग ओषधे ! आप समस्त ओषधियों को वशीभूत करने वाली अकेली ओषधि हैं। हे रोगिन् ! आपके रोगों को हम अपामार्ग ओषधि से दूर करते हैं ॥८ ॥

[१८ - अपामार्ग सूक्त]

[**ऋषि -** शुक्र । **देवता -** अपामार्ग वनस्पति । **छन्द -** अनुष्टुप्, ६ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् ।]

७३५. समं ज्योति: सूर्येणाह्ना रात्री समावती। कृणोमि सत्यमूतयेऽरसा: सन्तु कृत्वरी: ॥

जिस प्रकार प्रभा और सूर्य का तथा दिन और रात्रि का समानत्व सत्य है, उसी प्रकार हम भी सत्य की रक्षा के लिए यत्न करते हैं। जिससे हिंसा करने वाली कृत्याएँ निष्क्रिय हो जाएँ ॥१ ।।

७३६. यो देवा: कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम्।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् ॥२ ॥

हे देवो ! जो (दुष्ट व्यक्ति) अनजान व्यक्ति के घर कृत्या को प्रेरित करे, वह कृत्या वापस लौटकर उस अभिचारी पुरुष से इस प्रकार लिपटे, जिस प्रकार दूध पीने वाला बच्चा अपनी माता से लिपटता है ॥२ ॥

७३७. अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ॥३ ॥

जो पापात्मा, गुप्त स्थान में कृत्या प्रयोग करके उससे दूसरों की हिंसा करते हैं, उस दग्ध क्रिया (अग्नि संयोग) वाली विधि में बहुत से पत्थर 'फट' शब्द पुनः-पुनः करते हैं ॥३ ॥

[इस अग्नि संयोग से किये जाने वाले कृत्या प्रयोग में 'फट' करने वाले, विस्फोटक पदार्थों (गंधक, सोरा, मेनशिल, पोटाश जैसे ठोस पदार्थों) का प्रयोग किये जाने का यहाँ आभास मिलता है ।]

७३८. सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवाञ्छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४ ॥

हे हजारों स्थानों में उत्पन्न होने वाली सहदेवी ओषधे ! आप हमारे रिपुओं को कटे हुए बालों वाले तथा कटे हुए ग्रीवा वाले करके, विनष्ट कर डालें । उनकी प्रिय कृत्या शक्ति को उन्हीं के पास पहुँचा दें ॥४ ॥

७३९. अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥

जिस कृत्या को बीज बोने योग्य स्थान में गाड़ा गया है, जिस कृत्या को गौओं के बीच में गाड़ा गया है, जिसको वायु- प्रवाह के स्थान में रखा गया है तथा जिसको मनुष्यों के गमन स्थान में गाड़ा गया है, उन सब कृत्याओं को हम सहदेवी ओषधि से दूषित (प्रभावहीन) करते हैं ॥५ ॥

७४०. यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः।

जो (शत्रुगण) कृत्या प्रयोग करते हैं, किन्तु कर नहीं पाते, पैर की अँगुली आदि ही तोड़ने का प्रयास करते हैं, उनके लिए वह (कृत्या) पीड़ा उत्पन्न करे तथा हमारा भला करे ॥६ ॥

७४१. अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः । अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥७ ॥

अपामार्ग नामक ओषधि हमारे आनुवंशिक रोगों तथा शत्रुओं के आक्रोशों को हमसे दूर करे । वह पिशाचियों तथा समस्त अलक्ष्मियों को भी बन्धनग्रस्त करके हमसे दूर करे ॥७ ॥

७४२. अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥८॥

हे अपामार्ग ओषधे ! आप यातना देने वाले समस्त यक्ष-राक्षसों तथा निर्धन बनाने वाले समस्त पाप-देवताओं को हमसे दूर करें । आपके साधनों के द्वारा हम अपने समस्त दुःखों को दूर करते हैं ॥८ ॥

[१९ - अपामार्ग सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - अपामार्ग वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ पथ्यापंक्ति ।]

७४३. उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् ॥१ ॥

हे अपामार्ग ओषधे ! आप रिपुओं का विनाश करने वाली हैं । आप कृत्या का प्रयोग करने वाले रिपुओं की सन्तानों को वर्षा में पैदा होने वाली 'नड़ (नरकुल) नामक' घास के समान काटकर विनष्ट कर डालें ॥१ ॥

७४४. ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥२ ॥

हे सहदेवि ! 'नृषद' के पुत्र कण्व नामक ब्राह्मण ने आपका वर्णन किया है । आप याजक की सुरक्षा के लिए तेजस्वी सेना के समान जाती हैं, अत: आप जहाँ गमन करती हैं, वहाँ अभिचारजन्य भय नहीं होता ॥२ ॥

७४५. अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्। उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ।

प्रकाश के द्वारा संसार को आलोकित करते हुए सूर्यदेव जिस प्रकार ज्योतियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार हे सहदेवि ! आप भी समस्त ओषधियों में श्रेष्ठ हैं । हे अपामार्ग ओषधे ! आप अपने बल के द्वारा कृत्या के दोषों को नष्ट करती हुई दुर्बलों की सुरक्षा करती हैं और राक्षसों का विनाश करती हैं ॥३ ॥

७४६. यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत । ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥४॥

हे ओषधे ! पूर्वकाल में इन्द्रादि देवों ने आपके द्वारा 'राक्षसों' को तिरस्कृत किया था । आप अन्य ओषधियों के ऊपर विद्यमान रहकर अपामार्ग रूप से पैदा होती हैं ॥४ ॥

७४७. विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥५ ॥

हे अपामार्ग ओषधे ! आप सैकड़ों शाखाओं वाली होकर 'विभिन्दती' नाम प्राप्त करती हैं । आपके पिता का नाम 'विभिन्दन्' है । अत: जो हमारे विनाश की कामना करते हैं, उन रिपुओं के सामने जाकर आप उनका विनाश करें ॥५ ॥

७४८. असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥६ ॥

हे ओषधे ! आप असत् भूमि से उत्पन्न हैं, फिर भी आपकी महत्ता द्युलोक तक संव्याप्त होती है । आप (कृत्या अभिचार) करने वाले के पास ही उसे निश्चित रूप से पहुँचा दें ॥६ ॥

७४९. प्रत्यङ् हि सम्बभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ॥७ ॥

हे अपामार्ग ओषधे ! आप प्रत्यक्ष फल वाली उत्पन्न हुई हैं । आप रिपुओं के आक्रोशों तथा उनके विस्तृत मारक-अस्त्रों को हमसे दूर करके उनके पास लौटा दें ॥७ ॥

७५०. शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ॥८ ॥

हे सहदेवी ओषधे ! रक्षा के सैकड़ों उपायों द्वारा आप हमारी सुरक्षा करें और हजारों उपायों द्वारा कृत्या के दोष से हमें बचाएँ । हे लतापति ओषधे ! प्रचण्ड बलशाली इन्द्रदेव हममें ओजस्विता स्थापित करें ॥८ ॥

[२० - पिशाचक्षयण सूक्त]

[**ऋषि** - मातृनामा । **देवता** - मातृनामौषधि । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ स्वराट् अनुष्टुप्, ९ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि एवं देवता दोनों ही 'मातृनामा' हैं। मातृनामा का एक अर्थ होता है 'माता है नाम जिनका' । इस आधार पर सूक्त मंत्रों में देवी सम्बोधन सर्वव्यापी मातृसत्ता को लक्ष्य करके कहा गया प्रतीत होता है । कौशिक सूत्र के विनियोग के आधार पर सायण आदि आचार्यों ने इसे 'त्रिसन्ध्या-मणि' अथवा 'सदम्पुष्पा' के साथ जोड़ा है । हितकारिणी मणि या ओषधि के लिए 'माता-देवि' जैसे सम्बोधन उचित भी हैं । मातृनाम-मातृसत्ता को किसी ओषधि में संव्याप्त देखना तो उचित है, किन्तु उसे वहीं तक सीमित मानना उचित नहीं प्रतीत होता । मंत्रों में उस देवी के जो व्यापक प्रभाव कहे गये हैं, वे किसी भौतिक पदार्थ के लिए अतिरंजित लगते हैं । किसी दिव्य सत्ता के लिए ही वे स्वाभाविक हो सकते हैं-

७५१. आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति ॥१ ॥

वह देवी (मातृनामा-दिव्यदृष्टि) देखती है, दूर तक देखती है, विशेष कोण से देखती है, समग्र रूप से देखती है । द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी सभी को वह देवी देखती है ॥१ ॥

७५२. तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे ॥२ ॥

हे देवि ! आपके प्रभाव से हम तीनों द्युलोक, तीनों पृथ्वीलोक, इन छहों दिशाओं तथा (उसमें निवास करने वाले) समस्त प्राणियों को प्रत्यक्ष देखते हैं ॥२ ॥

[यह सृष्टि तीन आयामों वाली (थ्री डायमेंशनल) कही गई है, द्युलोक तथा पृथ्वी के तीनों आयामों में देखने की क्षमता अथवा द्यावा-पृथिवी की त्रिगुणात्मकता को समझने का भाव यहाँ परिलक्षित होता है । दिशाएँ चारों ओर की चार तथा ऊपर नीचे मिलाकर छः होना तो मान्य है ही ।]

७५३. दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ॥३ ॥

हे देवि ! स्वर्ग में स्थित उस सुपर्ण (गरुड़ या सूर्य) के नेत्रों की आप कनीनिका हैं । जिस प्रकार थकी हुई स्त्री पालकी पर आरूढ़ होती है, उसी प्रकार पृथ्वी पर आपका आरोहण (अवतरण) हुआ है ॥३ ॥

७५४. तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४ ॥

हजारों नेत्रों वाले (इन्द्रदेव या सूर्य) ने इसे हमारे दाहिने हाथ में रखा है । हे ओषधे ! उसके माध्यम से हम शूद्रों और आर्यों सभी को देखते हैं ॥४ ॥

७५५. आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥५ ॥

हे देवि ! आप राक्षसों आदि को दूर करने वाले अपने स्वरूप को प्रकट करें, अपने को छिपाएँ नहीं । हे हजारों आँखों से देखने वाली देवि ! गुप्तरूप से विचरण करने वाले पिशाचों से हमारी सुरक्षा करने के लिए आप उन्हें देखें ॥५ ॥

७५६. दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६ ॥

हे देवि ! आप असुरों को हमें दिखाएँ, जिससे वे गुप्तरूप में रहकर हमें कष्ट न दे सकें । आप यातुधानियों तथा समस्त प्रकार की पिशाचियों को भी हमें दिखाएँ, इसीलिए हम आपको धारण करते हैं ॥६ ॥

७५७. कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७ ॥

हे ओषधे ! आप कश्यप (ऋषि अथवा सर्वद्रष्टा) की आँख हैं और चार आँखों वाली देवशुनि की भी आँख हैं । ग्रह-नक्षत्रों आदि से सम्पन्न आकाश में सूर्य के सदृश विचरण करने वाले पिशाचों को आप न छिपने दें ॥७ ॥

७५८. उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् । तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥

रक्षण-साधनों के द्वारा हमने राक्षसों को वशीभूत कर लिया है। उसके द्वारा हम शूद्रों अथवा आर्यों से युक्त समस्त ग्रहों को देखते हैं ॥८ ॥

७५९. यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥९ ॥

जो अन्तरिक्ष से नीचे आता है तथा द्युलोक को भी लाँघ जाता है, उस पिशाच को भी हमारी दृष्टि में ले आएँ।

[२१ - गोसमूह सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा। **देवता** - गो-समूह । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २-४ जगती ।]

७६०. आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१ ॥

गौएँ हमारे घर आकर हमारा कल्याण करें। वे (गौएँ) गोशाला में रहकर हमें आनन्दित करें। इन गौओं में अनेक रंग-रूप वाली गौएँ बछड़ों से युक्त होकर, उषाकाल में इन्द्रदेव के निमित्त दुग्ध प्रदान करें ॥१ ॥

७६१. इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप याजक एवं स्तोताओं के लिए अभिलषित अन्न-धन प्रदान करते हैं। उनके धन का कभी हरण नहीं करते, वरन् उसे निरन्तर बढ़ाते हैं। देवत्व को प्राप्त करने की इच्छा वालों को अखण्डित एवं सुरक्षित निवास देते हैं ॥२ ॥

[आगे की कुछ ऋचाएँ गौओं को लक्ष्य करके कही गयी हैं। इनके अर्थ लौकिक गौओं के साथ ही इन्द्र या यज्ञ के पोषक प्रवाहों के ऊपर भी घटित होते हैं। ऋचा क्र० ५ में तो स्पष्ट गौओं को इन्द्ररूप कहा गया है; शक्ति प्रवाहों (किरणों) को ही यह संज्ञा दी जा सकती है।]

७६२. न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३ ॥

वे गौएँ नष्ट नहीं होतीं, तस्कर उन्हें हानि नहीं पहुँचा पाते। शत्रु के अस्त्र उन गौओं को क्षति नहीं पहुँचा पाते। गौओं के पालक जिन गौओं से देवों का यजन करते हैं, उन्हीं गौओं के साथ चिरकाल तक सुखी रहें ॥३ ॥

७६३. न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४ ॥

रेणुका (धूल) उड़ाने वाले द्रुतगामी अश्व भी उन गौओं को नहीं पा सकेंगे। इन गौओं पर, वध करने के लिए आघात न करें। याजक की ये गौएँ विस्तृत क्षेत्र में निर्भय होकर विचरण करें। ॥४ ॥

७६४. गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५ ॥

गौएँ हमें धन देने वाली हों। हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौएँ प्रदान करें। गो-दुग्ध प्रथम सोमरस में मिलाया जाता है। हे मनुष्यो ! ये गौएँ ही इन्द्ररूप हैं। उन्हीं इन्द्रदेव को हम श्रद्धा के साथ पाना चाहते हैं ॥५ ॥

['ये गौएँ ही इन्द्र हैं'- रहस्यात्मक है। इन्द्र संगठक शक्ति के देवता हैं। परमाणुओं में घूमने वाले इलेक्ट्रॉन्स को न्युक्लियस से बाँधे रहना उन्हीं का कार्य है। यह बन्धन शक्ति किरणों का ही है। ये गौएँ-शक्ति किरणें ही इन्द्र का वास्तविक रूप है।]

७६५. यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥६ ॥

हे गौओ !आप हमें बलवान् बनाएँ । आप हमारे रुग्ण एवं कृश शरीरों को सुन्दर-स्वस्थ बनाएँ । आप अपनी कल्याणकारी ध्वनि से हमारे घरों को पवित्र करें । यज्ञ मण्डप में आपके द्वारा प्राप्त अन्न का ही यशोगान होता है ।

७६६. प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥७ ॥

हे गौओ ! आप बछड़ों से युक्त हों । उत्तम घास एवं सुखकारक स्वच्छ जल का पान करें । आपका पालक चोरी करने वाला न हो । हिंसक पशु आपको कष्ट न दें । परमेश्वर का कालरूप अस्त्र आपके पास ही न आए ॥७ ॥

[२२ - अमित्रक्षयण सूक्त]

[**ऋषि** - वसिष्ट अथवा अथर्वा । **देवता** - इन्द्र और क्षत्रिय राजा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

७६७. इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस क्षत्रिय (शौर्यवान् रक्षक) को पुत्र-पौत्रों तथा सम्पत्ति आदि से समृद्ध करें और पराक्रमी मनुष्यों में इसे अद्वितीय बनाएँ । इसके समस्त रिपुओं को प्रभावहीन बनाकर आप इसके अधीन करें । 'मैं श्रेष्ठ हूँ ' इसके प्रति ऐसा कहने वालों को (इसके) वश में करें ॥१ ॥

७६८. एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस क्षत्रिय को जनसमूह, गौओं तथा अश्वों की सुविधाएँ पाने वाला बनाएँ और इसके रिपुओं को गौओं, अश्वों तथा मनुष्यों से पृथक् रखें । यह क्षत्रिय गुणों की मूर्ति हो । इसके समस्त रिपुओं तथा राष्ट्रों को आप इसके अधीन करें ॥२ ॥

७६९. अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥३ ॥

यह राजा सोने, चाँदी आदि धन तथा प्रजाओं का स्वामी हो । हे इन्द्रदेव ! आप इस राजा में रिपुओं को पराजित करने वाला तेजस् स्थापित करें ॥३ ॥

७७०. अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ॥४ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! धारोष्ण दूध देने वाली गौओं की तरह आप इसे प्रचुर धन प्रदान करें । यह इन्द्र का स्नेह पात्र हो । (इन्द्र का प्रिय पात्र होने से वर्षा होने पर) यह गौओं, ओषधियों तथा पशुओं का भी प्रिय हो जाए ॥४ ॥

७७१. युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ॥५ ॥

हे नर श्रेष्ठ ! श्रेष्ठ गुणों वाले इन्द्रदेव को हम आपका मित्र बनाते हैं । उनके द्वारा प्रेरित आपके सहयोगी, रिपु सेना को विजित करें, वे कभी पराजित न हों । जो इन्द्रदेव वीरों तथा राजाओं में

आपको वृषभ के समान प्रमुख बनाते हैं. ऐसे इन्द्रदेव से हम आपकी मैत्री कराते है ॥५ ॥

७७२. उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥६ ॥

(हे वीर !) आप सर्वश्रेष्ठ हों और आपके रिपु निम्नकोटि के हों । जो शत्रु आपसे प्रतिकूल व्यवहार करते हैं, वे भी नीचे गिरें । इन्द्रदेव की मित्रता से आप अद्वितीय बलवान् बनकर शत्रुवत् आचरण करने वाले मनुष्यों के भोग-साधन, ऐश्वर्य आदि छीन लाएँ ॥६ ॥

७७३. सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ॥७ ॥

(हे राजन् !) सिंह के समान पराक्रमी बनकर, आप अपनी प्रजाओं से भोग-साधन आदि प्राप्त करें और देव व्याघ्र के समान बलशाली बनकर अपने रिपुओं को संतप्त करें । आप इन्द्रदेव की मित्रता से अद्वितीय बलवान् बनकर, शत्रुवत् व्यवहार करने वालों के धन को विनष्ट करने में सक्षम हों ॥७ ॥

[२३ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार । देवता - प्रचेता अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ पुरस्ताद् ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ६ प्रस्तारपंक्ति ।]

७७४. अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१ ॥

बहुधा जिन्हें ईंधन द्वारा प्रदीप्त किया जाता है, प्रखर चेतना सम्पन्न, प्रथम (श्रेष्ठतम) स्तर वाले, पाँचों द्वारा उपासनीय अग्निदेव को हम नमन करते हैं । समस्त विश्व (के घटकों) में जो प्रविष्ट हैं, उनसे हम याचना करते हैं कि वे हमें पापों से मुक्त कराएँ ॥१ ॥

[अग्निदेव की आराधना पाँच यज्ञों (देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ) द्वारा की जाती है । पाँच जन (चारों वर्ण तथा निषाद) उनकी उपासना करते हैं । पाँच प्राणों, पाँच इन्द्रियों आदि के भी वे उपासनीय हैं ।]

७७५. यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! जिस प्रकार आप पूजनीय देवों के पास हवि पहुँचाते हैं तथा यज्ञ के भेदों को जानते हुए उनको रचते हैं, उसी प्रकार देवों के पास से हमें श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त कराएँ और समस्त पापों से मुक्त कराएँ ॥२ ॥

[यज्ञ से- अग्निदेव से सुमति की याचना की गई है, सुमति ही पाप - कर्मों से बचा सकती है ।]

७७६. यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३ ॥

प्रत्येक यज्ञ के आधाररूप, हवि पहुँचाने वाले और प्रत्येक कर्म में सेवन करने योग्य अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । वे अग्निदेव राक्षसों के संहारक तथा यज्ञों को बढ़ाने वाले हैं । घृताहुतियों से जिनको प्रदीप्त करते हैं, ऐसे अग्निदेव हमें पाप से मुक्त कराएँ ॥३ ॥

७७७. सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् । हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४॥

श्रेष्ठ जन्मवाले, उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले तथा समस्त उत्पन्न प्राणी जिनको जानते हैं, ऐसे मनुष्य हितैषी,

हव्यवाहक-वैश्वानर अग्निदेव का हम आवाहन करते हैं, वे अग्निदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४ ॥

७७८. येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५ ॥

जिन ऋषियों ने अग्निदेव के साथ मैत्री स्थापित करके आत्मशक्ति को जाग्रत् किया है तथा जिन अग्निदेव की सहायता से देवताओं ने राक्षसों की कपटयुक्तियों को दूर किया है और जिनके द्वारा इन्द्रदेव ने 'पणि' नामक असुरों को विजित किया है, वे अग्निदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥५ ॥

७७९. येन देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येन देवाः स्व१राभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६ ॥

जिन अग्निदेव की सहायता से देवताओं ने अमरत्व को प्राप्त किया, जिनकी सहायता से देवताओं ने ओषधियों को मधुर रस से सम्पन्न किया और जिनकी कृपा से देवत्व के अभिलाषी यजमान स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, वे अग्निदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥६ ॥

७८०. यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७ ॥

जिन अग्निदेव के शासन में समस्त संसार विद्यमान है, जिनके तेज से ग्रह-नक्षत्र आदि आलोकित होते हैं तथा पृथ्वी पर उत्पन्न समस्त प्राणी जिनके अधीन हैं, उन अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हुए बारम्बार उनका आवाहन करते हैं ॥७ ॥

[२४ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ शक्वरीगर्भा पुरः शक्वरी त्रिष्टुप् ।]

७८१. इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः ॥१ ॥

परम ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव के माहात्म्य को हम जानते हैं । वृत्रहन्ता इन्द्रदेव के महत्त्व को हम सदा से जानते हैं । उनके समक्ष बोले जाने वाले स्तोत्र हमारे पास आ गए हैं । जो दानी इन्द्रदेव सत्कर्म करने वाले यजमान की पुकार को सुनकर समीप आते हैं, वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥१ ॥

७८२. य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥२ ॥

जो उग्रबाहु वाले इन्द्रदेव प्रचण्ड रिपु सेनाओं में फूट डालने वाले हैं, जिन्होंने दानवों की शक्ति को विनष्ट किया है, जिन्होंने मेघों को फाड़कर उन्हें विजित किया है, जिन्होंने वृत्र को नष्ट करके नदियों और समुद्रों को जीता है, जिन्होंने असुरों को विनष्ट करके उनकी गौओं को जीत लिया है; वे इन्द्रदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥२ ॥

७८३. यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥३ ॥

जो इन्द्रदेव मनुष्यों को इच्छित फल देकर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, जो वृषभ के समान स्वर्ग प्राप्त कराने में सक्षम हैं, जिनके लिए अभिषवकारी पत्थर कूटने की ध्वनि द्वारा सोमरसरूपी धन (इन्द्र-इन्द्र) कहते हैं, जिनका सोमयाग सात होताओं द्वारा सम्पन्न होकर आनन्ददायी होता है; वे इन्द्र हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥३ ॥

७८४. यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥४ ॥

जिन इन्द्रदेव के नियन्त्रण में सेचन (तेज स्थापन) में समर्थ ऋषभादि (बैल या वर्षणशील श्रेष्ठ देव) रहते हैं, जिनके लिए आत्म तत्त्व के ज्ञाता यज्ञादि की स्थापना करते हैं, जिनके लिए ब्रह्म (या वेदवाणी) द्वारा शोधित सोम प्रवाहित होता है; वे हमें पापों से बचाएँ ॥४ ॥

७८५. यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव की प्रीति को सोम-याजक चाहते हैं, जिन शस्त्रधारी इन्द्रदेव को गौओं (इन्द्रियों या किरणों) की रक्षार्थ बुलाया जाता है, जिनमें मंत्र आश्रय पाते हैं तथा जिनमें अद्वितीय ओज रहता है; वे इन्द्रदेव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥५ ॥

७८६. यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥६ ॥

जो इन्द्रदेव प्रथम कर्म करने के लिए प्रकट हुए, जिनका वृत्रहनन आदि अद्वितीय पराक्रम सर्वत्र जाना जाता है। इनके द्वारा उठाए गए वज्र ने वृत्रासुर को सब ओर से विनष्ट कर डाला, वे इन्द्र हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥६॥

७८७. यः सङ्ग्रामान् नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥७ ॥

जो इन्द्रदेव स्वतन्त्र प्रहार करने वाले युद्ध में, योद्धाओं को युद्ध करने के लिए पहुँचाते हैं, जो दोनों पुष्ट जोड़ों को परस्पर संसृष्ट करते हैं, उन इन्द्रदेव की हम स्तोतागण स्तुति करते हुए उन्हें बारम्बार पुकारते हैं। वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥७ ॥

[२५ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार। **देवता** - वायु, सविता। **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ अतिशक्वरीगर्भा जगती, ७ पथ्याबृहती।]

७८८. वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१ ॥

वायु और सूर्य के श्रुतिविहित कर्मों को हम जानते हैं। हे वायुदेव ! हे सवितादेव ! आप आत्मा वाले स्थावर तथा जंगम प्राणियों में विद्यमान रहकर संसार की सुरक्षा करते हैं तथा उसे धारण करते हैं। अतः आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥१ ॥

७८९. ययोः सङ्ख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२ ॥

जिन दोनों (वायु तथा सविता) के पार्थिव कर्म मनुष्यों में विख्यात हैं। जिनके द्वारा अन्तरिक्ष में मेघ-मण्डल धारण किया जाता है तथा जिनकी गति को कोई भी देवता नहीं प्राप्त कर सकता, वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें।

७९०. तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३ ॥

हे चित्रभानु (विचित्र प्रकाश वाले- सूर्यदेव) ! आपकी सेवा करने के लिए मनुष्य नियमपूर्वक व्यवहार करते हैं और आपके उदित होने पर समस्त लोग अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं । हे वायुदेव तथा सवितादेव ! आप दोनों समस्त प्राणियों की सुरक्षा करते हैं । अत: समस्त पापों से हमें मुक्त कराएँ । ।३ ।।

७९१. अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।४ ।।

हे वायु एवं सूर्यदेव ! आप हमारे दुष्कृत्यों को हमसे पृथक् करें और उपद्रव करने वाले राक्षसों तथा प्रदीप्त (प्रखर) कृत्या को हमसे दूर करें । आप अन्न-रस से उत्पन्न बल से हमें युक्त करें तथा समस्त पापों से छुड़ाएँ ।।४ ।।

७९२. रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।५ ।।

वायुदेव तथा सूर्यदेव हमें ऐश्वर्य प्रदान करें और हमारे देह में सुख-सामर्थ्य का संचार करें । हे वायुदेव तथा सवितादेव ! आप हममें आरोग्यता धारण करें तथा समस्त पापों से मुक्त करें ।।५ ।।

७९३. प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।६ ।।

हे सूर्यदेव ! हे वायुदेव ! आप सुरक्षा के निमित्त हमें श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करें और हर्षकारी सोमरस पीकर आनन्दित हों । आप हमें सेवन करने योग्य प्रचुर धन प्रदान करें तथा समस्त पापों से मुक्त करें ।।६ ।।

७९४. उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ।।७ ।।

वायुदेव और सूर्यदेव के सम्मुख हमारी श्रेष्ठ आकांक्षाएँ उपस्थित हैं । हम उन दोनों देवों की प्रार्थना करते हैं, वे समस्त पापों से हमें मुक्त करें ।।७ ।।

[२६ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार । **देवता** - द्यावा-पृथिवी । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ पुरोऽष्टि जगती, ७ शाक्वरगर्भातिमध्येज्योति त्रिष्टुप् ।]

७९५. मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ।।१ ।।

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों मनोहर भोग वाले तथा समान विचार वाली हैं, हम आपकी महिमा जानते हुए, आपकी प्रार्थना करते हैं । आप दोनों असीमित योजनों की दूरी तक फैले हैं और देवों तथा मनुष्यों के धन-वैभव के मूल कारण हैं । आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ।।१ ।।

७९६. प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।२ ।।

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों समस्त ऐश्वर्यों की प्रतिष्ठा करने वाली हैं तथा समस्त प्राणियों के आश्रय-स्थल हैं । आप दान आदि गुणों तथा समस्त सौभाग्यों से सम्पन्न हैं । आप हमारे लिए सुखदायी बनकर हमें समस्त पापों से मुक्त करें ।।२ ।।

७९७. असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥३ ॥

समस्त प्राणियों के कष्टों को दूर करने वाली, क्रान्तदर्शी ऋषियों द्वारा नमनीय, अत्यधिक विस्तृत तथा अत्यधिक गम्भीर द्यावा-पृथिवी का हम आवाहन करते हैं। वे द्यावा-पृथिवी हमारे लिए सुखदायी हों और हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥३ ॥

७९८. ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान्।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों जो समस्त प्राणियों के अमरत्वरूप जल तथा हविष्यान्न धारण करती हैं, जो प्रवहमान नदियों तथा मनुष्यों को धारण करती हैं, ऐसे आप हमारे लिए सुखदायी हों और समस्त पापों से हमें मुक्त करें ॥४ ॥

७९९. ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥५ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप जिन समस्त गौओं तथा वनस्पतियों का पोषण करती हैं, आप दोनों के बीच में जो समस्त विश्व निवास करता है, ऐसे आप दोनों हमारे लिए सुखदायी हों और हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥५ ॥

८००. ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥६ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! जो आप अन्न और जल द्वारा समस्त विश्व का पालन करती हैं। आपके बिना मनुष्य कोई भी कार्य करने में सक्षम नहीं है, ऐसे आप हमारे लिए सुखदायी हों और हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥६ ॥

८०१. यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥७ ॥

जिस किसी कारण से मनुष्यकृत अथवा देवकृत कर्म हमें झुलसा रहा है और जिन-जिन कारणों से हमने दूसरे पाप किए हैं, उन सभी के निवारण के लिए हम द्यावा-पृथिवी की प्रार्थना करते हैं और उन्हें पुकारते हैं। वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥७ ॥

[२७ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार। **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८०२. मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१ ॥

हम मरुतों के माहात्म्य को जानते हैं, वे हमें अपना कहें और हमारे अन्न की सुरक्षा करते हुए हमारे बल को भी रणक्षेत्र में सुरक्षित रखें। चलने वाले श्रेष्ठ घोड़ों के समान हम उन मरुतों को अपनी सुरक्षा के लिए बुलाते हैं। वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥१ ॥

८०३. उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२ ॥

जो मरुद्गण मेघों को आकाश में फैलाते हैं और ब्रीहि जौ, तरुगुल्म आदि ओषधियों को वृष्टि जल से सींचते हैं, उन 'पृश्नि' माता वाले मरुतों की हम प्रार्थना करते हैं, वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥२ ॥

८०४. पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३ ॥

हे मरुद्देवो ! आप जो क्रान्तदर्शी होकर गौओं के दुग्ध तथा ओषधियों के रस को समस्त शरीर में संव्याप्त करते हैं तथा अश्वों में वेग को संव्याप्त करते हैं, ऐसे आप सब हमें सामर्थ्य तथा सुख प्रदान करने वाले हों और हमें समस्त पापों से छुड़ाएँ ॥३ ॥

८०५. अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४ ॥

जो मरुद्गण जल को समुद्र से अन्तरिक्ष तक पहुँचाते हैं और अन्तरिक्ष से पृथ्वी को लक्ष्य करके पुनः छोड़ते हैं, वे जल के साथ विचरण करने वाले जल के स्वामी मरुद्गण हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४ ॥

८०६. ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५ ॥

जो मरुद्गण अन्न और जल द्वारा समस्त मनुष्यों को तृप्त करते हैं, जो अन्न को पुष्टिकारक पदार्थों के साथ पैदा करते हैं तथा जो मेघ स्थित जल के अधिपति बनकर सब जगह वृष्टि करते हैं, वे मरुद्गण हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥५ ॥

८०७. यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६ ॥

सबको आवास देने वाले हे दिव्य मरुतो ! देवताओं से सम्बन्धित अपराध के कारण हम जो दुःख पा रहे हैं, उस दुःख अथवा पाप को दूर करने में आप ही सक्षम हैं । आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥६ ॥

८०८. तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन् मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७ ॥

सेना के सदृश मरुतों का तीक्ष्ण तथा प्रचण्ड बल रणक्षेत्र में दुःसह होता है । हम ऐसे मरुतों की प्रार्थना करते हुए, उन्हें आहूत करते हैं । वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥७ ॥

[२८ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार अथवा अथर्वा । **देवता** - भव-शर्व अथवा रुद्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ अति जागतगर्भा भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

८०९. भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१ ॥

हे भव एवं शर्व (जगत् को उत्पन्न और उसका विनाश करने वाले) देवो ! हम आपकी महिमा को जानते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् आपकी सामर्थ्य से आलोकित होता है । आप समस्त मनुष्यों तथा पशुओं के स्वामी हैं । आप दोनों हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥१ ॥

८१०. ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२ ॥

पास तथा दूर के क्षेत्र में जो कुछ भी है, वह उन्हीं दोनों के नियन्त्रण में है । वे धनुष पर बाणों का संधान करने तथा चलाने में विख्यात हैं । वे मनुष्यों तथा पशुओं के ईश्वर हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥२ ॥

८११. सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३ ॥

हजार आँखों वाले, रिपुओं का संहार करने वाले तथा दूर तक विचरण करने वाले प्रचण्ड भव और शर्व देवों की हम प्रार्थना करते हुए उनका आवाहन करते हैं । वे मनुष्यों और पशुओं को समस्त पापों से मुक्त करें ॥३ ॥

८१२. यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४ ॥

आप दोनों ने सृष्टि के प्रारम्भ में अनेकों कार्य साथ-साथ किये । आपने ही मनुष्यों में प्रतिभा उत्पन्न की । हे समस्त मनुष्यों तथा पशुओं के ईश्वर ! आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४ ॥

८१३. ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५ ॥

जिन भव और शर्व के संहारक हथियारों से देवों तथा मनुष्यों में से कोई भी बच नहीं सकता तथा जो मनुष्यों और पशुओं के स्वामी हैं, वे देव हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥५ ॥

८१४. यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६ ॥

जो शत्रु , कृत्या प्रयोग से विनिर्मित पिशाचों के द्वारा अनिष्ट करते हैं तथा जो राक्षस, वंशवृद्धि की मूल, हमारी सन्तानों को विनष्ट करते हैं, हे प्रचण्ड वीर ! आप उन पर अपने वज्र से प्रहार करें । समस्त मनुष्यों तथा पशुओं के स्वामी आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥६ ॥

८१५. अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७ ॥

हे उग्रवीर भव-शर्व देवो ! आप हमारे हित में उपदेश करें तथा जो स्वार्थी हैं, उन पर प्रहार करें । हम आपको स्वामी मानकर पुकारते हैं, आपकी स्तुति करते हैं, आप हमें पापों से बचाएँ ॥७ ॥

[२९ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - मृगार । **देवता** - मित्रावरुण (द्रुह्वण) । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ७ शक्वरीगर्भा जगती ।]

८१६. मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! समान चित्त वाले आप यज्ञ और जल का संवर्द्धन करने वाले हैं । आप विद्रोहियों को उनके स्थान से हटा देते हैं तथा सत्यनिष्ठों की रणक्षेत्र में सुरक्षा करते हैं । हम आपके माहात्म्य का गान कराते हैं, आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥१ ॥

८१७. सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२ ॥

हे समान विचार वाले मित्रावरुण ! आप विद्रोहियों को उनके स्थान से च्युत करते हैं तथा सत्यनिष्ठों की रणक्षेत्र में सुरक्षा करते हैं । आप दिन और रात के अधिपति होने के कारण मनुष्यों के समस्त कर्मों का निरीक्षण और सोमरस का पान करते हैं । आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥२ ॥

८१८. यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३ ॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'अंगिरा', 'अगस्त्य', 'अत्रि' और 'जमदग्नि' ऋषि की सुरक्षा करते हैं तथा 'कश्यप' और 'वसिष्ठ' ऋषि की भी सुरक्षा करते हैं । आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥३ ॥

८१९. यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥४ ॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'श्यावाश्व', 'वध्रय्श्व', 'विमद', 'पुरुमीढ' तथा 'अत्रि' नामक ऋषियों की सुरक्षा करते हैं । आप दोनों सप्त ऋषियों की भी सुरक्षा करते हैं । आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥४ ॥

८२०. यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥५ ॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'भरद्वाज', 'विश्वामित्र', 'कुत्स', 'गविष्ठिर', 'कक्षीवान्' तथा 'कण्व' नामक ऋषियों की सुरक्षा करते हैं । अतः आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥५ ॥

८२१. यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६ ॥

हे मित्रावरुण ! आप दोनों 'मेधातिथि', 'त्रिशोक', 'काव्य', 'उशना' तथा 'गोतम' नामक ऋषियों की सुरक्षा करते हैं । अतः आप हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥६ ॥

८२२. ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७ ॥

जिन मित्रावरुण का सत्यमार्ग तथा सरल किरणों वाला रथ मिथ्याचारी पुरुषों को बाधा पहुँचाने के लिए उनके सम्मुख आता है, उन मित्रावरुण की प्रार्थना करते हुए , हम उन्हें बारम्बार आहूत करते हैं । वे हमें समस्त पापों से मुक्त करें ॥७ ॥

[३० - राष्ट्रदेवी सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ६ जगती ।]

८२३. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१ ॥

(वाग्देवी का कथन) मैं रुद्रगण एवं वसुगणों के साथ भ्रमण करती हूँ । मैं ही आदित्यगणों और समस्त देवों के साथ रहती हूँ । मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि तथा दोनों अश्विनीकुमार सभी को मैं ही धारण करती हूँ ॥१ ॥

८२४. अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥२ ॥

मैं वाग्देवी जगदीश्वरी और धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञानवती एवं यज्ञोपयोगी देवों (वस्तुओं) में सर्वोत्तम हूँ। मेरा स्वरूप विभिन्न रूपों में विद्यमान है तथा मेरा आश्रय स्थान विस्तृत है। सभी देव विभिन्न प्रकार से मेरा ही प्रतिपादन करते हैं ॥२ ॥

८२५. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥३ ॥

देवगण और मनुष्यगण श्रद्धापूर्वक जिसका मनन करते हैं, वे सभी विचार सन्देश मेरे द्वारा ही प्रसारित किये जाते हैं। जिसके ऊपर मेरी कृपा-दृष्टि होती है, वे बलशाली, स्तोता, ऋषि तथा श्रेष्ठ- बुद्धिमान् होते हैं ॥३ ॥

८२६. मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४ ॥

प्राणियों में जो जीवनीशक्ति (प्राण) है, दर्शन क्षमता है, ज्ञान-श्रवण सामर्थ्य है, अन्न - भोग करने की सामर्थ्य है, वह सभी मुझ वाग्देवी के सहयोग से ही प्राप्त होती है। जो मेरी सामर्थ्य को नहीं जानते, वे विनष्ट हो जाते हैं। हे बुद्धिमान् मित्रो ! आप ध्यान दें, जो भी मेरे द्वारा कहा जा रहा है, वह श्रद्धा का विषय है ॥४ ॥

८२७. अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥५ ॥

जिस समय रुद्रदेव ब्रह्मद्रोही शत्रुओं का विध्वंस करने के लिए सचेष्ट होते हैं, उस समय दुष्टों को पीड़ित करने वाले रुद्र के धनुष - बाण का सन्धान मैं ही करती हूँ। मनुष्यों के हित के लिए मैं ही संग्राम करती हूँ। मैं ही द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों को संव्याप्त करती हूँ ॥५ ॥

८२८. अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३ यजमानाय सुन्वते ॥६ ॥

सोम, त्वष्टा, पूषा और भग सभी देव मेरा ही आश्रय ग्रहण करते हैं। मेरे द्वारा ही, हविष्यान्नादि उत्तम हवियों से देवों को परितृप्त किया जाता है और सोमरस के अभिषवणकर्त्ता यजमानों को यज्ञ का अभीष्ट फलरूप धन प्रदान किया जाता है ॥६ ॥

८२९. अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७ ॥

जगत् के सर्वोच्च स्थान पर स्थित दिव्यलोक को मैंने ही प्रकट किया है। मेरा उत्पत्ति स्थल विराट् आकाश में अप् (मूल सृष्टि तत्त्व) में है, उसी स्थान से सम्पूर्ण विश्व को संव्याप्त करती हूँ। महान् अन्तरिक्ष को मैं अपनी उन्नत देह से स्पर्श करती हूँ ॥७ ॥

८३०. अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥८ ॥

समस्त लोकों को विनिर्मित करती हुई मैं वायु के समान सभी भुवनों में संचरित होती हूँ। मेरी महिमा स्वर्गलोक और पृथ्वी से भी महान् है ॥८ ॥

[३१- सेनानिरीक्षण सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मास्कन्द । **देवता** - मन्यु । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २,४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५-७ जगती ।]

८३१. त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१ ॥

हे मन्यो !आपके सहयोग से रथारूढ़ तथा प्रसन्नचित्त होकर अपने आयुधों को तीक्ष्ण करके, अग्नि के सदृश तीक्ष्ण दाह उत्पन्न करने वाले मरुद्‌गण आदि युद्धनायक हमारी सहायतार्थ युद्ध क्षेत्र में गमन करें ॥१ ॥

८३२. अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२ ॥

हे मन्यो ! आप अग्नि सदृश प्रदीप्त होकर शत्रुओं को पराभूत करें । हे सहनशक्तियुक्त मन्यो ! आपका आवाहन किया गया है । आप हमारे संग्राम में नायक बनें । शत्रुओं का संहार करके उनकी सम्पदा हमें दें । हमें बल प्रदान करके हमारे शत्रुओं को दूर भगाएँ ॥२ ॥

८३३. सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥३ ॥

हे मन्यो ! हमारे विरुद्ध सक्रिय शत्रुओं को आप पराभूत करें । आप शत्रुओं को तोड़ते हुए और कुचलते हुए उन पर आक्रमण करें । आपकी प्रभावपूर्ण क्षमताओं को रोकने में कौन सक्षम हो सकता है ? हे अद्वितीय मन्यो ! आप स्वयं संयमशील होकर शत्रुओं को नियन्त्रण में करते हैं ॥३ ॥

[क्रोधी स्वयं अस्थिर हो जाता है । मन्युशील व्यक्ति स्वयं संतुलित मनः स्थिति में रहते हुए दुष्टता का प्रतिकार करता है ।]

८३४. एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ॥४ ॥

हे मन्यो !आप अकेले ही अनेकों द्वारा सत्कार योग्य हैं । आप युद्ध के निमित्त मनुष्य को तीक्ष्ण बनाएँ । हे अक्षय प्रकाशयुक्त !आपकी मित्रता के सहयोग से हम हर्षित होकर विजय-प्राप्ति के लिए सिंहनाद करते हैं ॥४ ॥

८३५. विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३स्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५ ॥

हे मन्यो !इन्द्र के सदृश विजेता, असन्तुलित न बोलने वाले आप हमारे अधिपति हों । हे सहिष्णु मन्यो ! आपके निमित्त हम प्रिय स्तोत्र का उच्चारण करते हैं । हम उस स्रोत के ज्ञाता हैं, जिससे आप प्रकट होते हैं ॥५ ॥

८३६. आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६ ॥

हे वज्र सदृश शत्रुसंहारक मन्यो ! शत्रुओं को विनष्ट करना आपके सहज स्वभाव में है । हे रिपु पराभवकर्त्ता मन्यो ! आप श्रेष्ठ तेजस्विता को ग्रहण करते हैं । कर्मशक्ति के साथ युद्ध क्षेत्र में आप हमारे लिए सहायक हों । आपका आवाहन असंख्य वीरों द्वारा किया जाता है ॥६ ॥

८३७. संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७ ॥

हे वरुण और मन्यो (अथवा वरणीय मन्यो) ! आप उत्पादित और संगृहीत ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । भयभीत हृदय वाले शत्रु हमसे पराभूत होकर दूर चले जाएँ ॥७ ॥

[३२ - सेनासंयोजन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मास्कन्द । **देवता** - मन्यु । **छन्द** - २-७ त्रिष्टुप्, १ जगती ।]

८३८. यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१ ॥

हे वज्रवत् तीक्ष्ण बाणतुल्य और क्रोधाभिमानी देव मन्यो ! जो साधक आपको ग्रहण करते हैं, वे सभी प्रकार की शक्ति और सामर्थ्य को निरन्तर परिपुष्ट करते हैं । बलवर्द्धक और विजयदाता आपके सहयोग से हम (विरोधी) दासों और आर्यों को अपने आधिपत्य में करते हैं ॥१ ॥

८३९. मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२ ॥

मन्यु ही इन्द्रदेव हैं, यज्ञ संचालक वरुण और जातवेदा अग्नि हैं । (यह सभी देवता मन्युयुक्त हैं) सम्पूर्ण मानवी प्रजाएँ मन्यु की प्रशंसा करती हैं । हे मन्यो ! स्नेहयुक्त होकर आप तप से हमारा संरक्षण करें ॥२ ॥

८४०. अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३ ॥

हे मन्यो ! आप महान् सामर्थ्यशाली हैं, आप यहाँ पधारें । अपनी तपः सामर्थ्य से युक्त होकर शत्रुओं का विध्वंस करें ।आप शत्रुविनाशक, वृत्रहन्ता और दस्युओं के दलनकर्त्ता हैं । हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

८४१. त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४ ॥

हे मन्यो । आप विजयी शक्ति से सम्पन्न, स्वसामर्थ्य से बढ़ने वाले, तेजोयुक्त, शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, सबके निरीक्षण में सक्षम तथा बलशाली हैं । संग्राम-क्षेत्र में आप हमारे अन्दर ओज की स्थापना करें ॥४ ॥

८४२. अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ॥५ ॥

हे श्रेठ ज्ञान सम्पन्न मन्यो ! आपके साथ भागीदार न हो पाने के कारण हम विलग होकर दूर चले गए हैं । महिमामय आपसे विमुख होकर हम कर्महीन हो गए हैं, संकल्पहीन होकर (लज्जित स्थिति में) आपके पास आए हैं । हमारे शरीरों में बल का संचार करते हुए आप पधारें ॥५ ॥

८४३. अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् ।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूंरुत बोध्यापेः ॥६ ॥

हे मन्यो !हम आपके समीप उपस्थित हैं । आप कृपापूर्वक हमारे आघातों को सहने तथा सबको धारण करने में समर्थ हैं । हे वज्रधारी !आप हमारे पास आएँ , हमें मित्र समझें, ताकि हम दुष्टों को मार सकें ॥६ ॥

८४४. अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥७ ॥

हे मन्यो ! आप हमारे समीप आएँ । हमारे दाहिने (हमारे अनुकूल) होकर रहें । हम दोनों मिलकर शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होंगे । हम आपके लिए मधुर और श्रेष्ठ धारक (सोम) का हवन करते हैं । हम दोनों एकान्त में सर्वप्रथम इस रस का पान करें ॥७ ॥

[३३ - पापनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

८४५. अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥१ ॥

हे अग्ने ! आप हमारे पापों को भस्म करें । हमारे चारों ओर ऐश्वर्य प्रकाशित करें तथा पापों को विनष्ट करें ॥१

८४६. सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! उत्तम क्षेत्र, उत्तम मार्ग और उत्तम धन की इच्छा से हम आपका यजन करते हैं । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥२ ॥

८४७. प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हम सभी साधक वीरता और बुद्धिपूर्वक आपकी विशिष्ट प्रकार से भक्ति करते हैं । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥३ ॥

८४८. प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हम सभी और ये विद्वद्गण आपकी उपासना से आपके सदृश प्रकाशवान् हुए हैं, अतः आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४ ॥

८४९. प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥५ ॥

इन बल-सम्पन्न अग्निदेव की देदीप्यमान किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, ऐसे वे हमारे पापों को विनष्ट करें ॥५ ॥

८५०. त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥६ ॥

हे बल-सम्पन्न अग्निदेव ! आप निश्चय ही सभी ओर व्याप्त होने वाले हैं, आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥६ ॥

८५१. द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७ ॥

हे सर्वतोमुखी अग्ने !आप नौका के सदृश शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥७ ॥

८५२. स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! नौका द्वारा नदी के पार ले जाने के समान आप हिंसक शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥८ ॥

[३४- ब्रह्मौदन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - ब्रह्मौदन । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४ उत्तमा भुरिक् त्रिष्टुप्, ५ त्र्यवसाना सप्तपदा कृति, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७ भुरिक् अतिशक्वरी, ८ जगती ।]

इस सूक्त के देवता 'ब्रह्मौदन' हैं । लौकिक संदर्भ में यज्ञीय क्रम में संस्कारयुक्त जो अन्न दान किया जाता है, उसे ब्रह्मौदन कहते हैं । पके हुए भोज्य पदार्थ, बिना पकाये भोज्य (दही, शहद, घृतादि) पदार्थ तथा सूखे अन्न भी यज्ञीय ऊर्जा से संस्कारित करके दिये जाने की परम्परा रही है । यज्ञीय-ब्राह्मी संस्कार युक्त इस सेवन के भी महत्त्वपूर्ण लाभ कहे गये हैं; किन्तु सूक्ष्म सन्दर्भ में 'रेतो वा ओदनः '(श०ब्रा० १३.१.१४.४) जैसे सूत्रों के अनुसार वह बहुत व्यापक तत्त्व है । ब्रह्मौदन का अर्थ ब्रह्म का उत्पादक

तेजस् होता है। ब्रह्म ने सृष्टि सृजन यज्ञ के लिए अपने तेजस् का एक अंश परिपक्व किया। जिस तरह अन्नमयकोश के पोषण एवं विकास के लिए अन्न आवश्यक है, उसी तरह सृष्टि के मूल घटकों के लिये ब्रह्मौदन सृष्टिकारक तेजस् की भूमिका मानी जा सकती है। ब्रह्मवर्चस इसी के धारण-सेवन करने से विकसित होता है। इस सूक्त तथा अगले सूक्त के मंत्रों में ब्रह्मौदन की जो महत्ता बतलायी गयी है, वह स्थूल अन्न की अपेक्षा ऐसी ही व्यापक अवधारणा का पोषण करती है-

८५३. ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥१॥

इस ओदन (ब्रह्मौदन) का शीर्ष भाग ब्रह्म है, पृष्ठभाग बृहत् (विशाल) है, वामदेव (ऋषि अथवा उत्पादक सामर्थ्य) से सम्बन्धित इसका उदर है, विविध छन्द इसके पार्श्वभाग हैं तथा सत्य इसका मुख है। विस्तार पाने वाला यह यज्ञ तप से उत्पन्न हुआ है ॥१॥

८५४. अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥

यह (ब्रह्मौदन) अस्थिरहित (कोई भी इच्छित आकार लेने में सक्षम) और पवित्र है। वायु से (शरीर में प्राणायाम आदि के द्वारा) शुद्ध और पवित्र होकर यह पवित्र लोकों को ही प्राप्त होता है। अग्नि इसके शिश्न (उत्पादक अंग) को नष्ट नहीं करता। स्वर्ग में (इसका तेजस् धारण करने वाली) इसकी बहुत सी स्त्रियाँ (उत्पादक शक्तियाँ।) हैं ॥२॥

[लौकिक संदर्भ में यज्ञ से संस्कारित अन्न के दिव्य संस्कार अग्नि पर पकाने से नष्ट नहीं होते। हव्य बनकर यह ऊर्ध्व लोकों में जाकर अनेक उर्वर शक्तियों को अपना तेजस् प्रदान करता है। सूक्ष्म संदर्भ में यह कोई भी रूप लेने में समर्थ तेजस्, पवित्र होता है तथा पवित्र माध्यमों द्वारा ही ग्रहणीय है। इसका प्रभाव अग्नि आदि के सम्पर्क से कम नहीं होता।]

८५५. विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥३॥

जो (साधक) इस विस्तारित होने वाले ओदन (स्थूल या सूक्ष्म अन्न) को पकाते (प्रयोग में लाने योग्य परिपक्व बनाते) हैं, उन्हें कभी दरिद्रता नहीं व्यापती। वे यम (जीवन के दिव्य अनुशासनों) में स्थित रहते हैं, देवों की निकटता प्राप्त करते हैं तथा सोम-पान योग्य गंधर्वादि के साथ आनन्दित होते हैं ॥३॥

[ब्रह्मौदन-सृष्टि को आकार देने वाला तेजस् का संचरण विश्व में सतत होता रहता है। जिस क्षेत्र या काया में ब्रह्मकर्म यज्ञादि साधनाओं की ऊष्मा होती है, वहाँ उसके संसर्ग से वह पके अन्न की तरह उपयोगी होकर लाभ पहुँचाता है। ब्रह्मतेजस् पकता है, तो साधक इन्द्रियादि को अपने नियंत्रण में (यम में) रखने में समर्थ होता है और उसे देव अनुग्रह प्राप्त होता है। यज्ञादि अनुष्ठानों से उत्पन्न दिव्य ऊर्जा को अन्न के माध्यम से वितरित करने का प्रयास करने वाले स्थूल ब्रह्मौदन पकाने वालों को भी देव अनुग्रह प्राप्त होता है।]

८५६. विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥४॥

जो याजक इस अन्न को पकाते हैं, यमदेवता उनको वीर्यहीन नहीं करते। वे अपने जीवनपर्यन्त रथ पर आरूढ़ होकर पृथ्वी पर विचरण करते हैं और पक्षी के सदृश बनकर द्युलोक को अतिक्रमण करके ऊपर गमन करते हैं ॥४॥

[याजक को यज्ञ से लौकिक एवं पारलौकिक दोनों सद्गतियाँ प्राप्त होती हैं।]

८५७. एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश। आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली। एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥५॥

यह यज्ञ समस्त यज्ञों में श्रेष्ठ है । इस अन्न को पकाकर याजकगण स्वर्गलोक में प्रविष्ट होते हैं । (यह यज्ञ) अण्ड में स्थित मूलशक्ति को, शान्तचित्त से, कमलनाल की तरह (तीव्र गति से) विस्तारित करता है । (हे साधक !) ये सब धाराएँ (इसके माध्यम से) तुम्हें प्राप्त हों । स्वर्ग की मधुर रसवाहिनी दिव्य नदियाँ तुम्हारे पास आएँ ॥५ ॥

८५८. घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥

हे सव (सोमयज्ञ) के अनुष्ठानकर्त्ता ! घृत के प्रवाह वाली, शहद से पूर्ण किनारों वाली, निर्मल जल वाली, दुग्ध, जल और दही से पूर्ण समस्त धाराएँ मधुरतायुक्त पदार्थों को पुष्ट करती हुईं, द्युलोक में आपको प्राप्त हों ॥६ ॥

८५९. चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना । एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥७ ॥

दूध, दही और जल से पूर्ण चार घड़ों को हम चार दिशाओं में स्थापित करते हैं । स्वर्गलोक में दुग्ध आदि की धाराएँ मधुरता को पुष्ट करती हुई, आपको प्राप्त हों और जल से पूर्ण सरिताएँ भी आपको प्राप्त हों ॥७ ॥

**८६०. इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ॥८ ॥**

यह विस्तारित होने वाला स्वर्गीय 'ओदन' हम ब्राह्मणों (ब्रह्मनिष्ठ साधकों) में स्थापित करते हैं, यह ओदन स्वधा से दुग्ध आदि के द्वारा वर्द्धित होने के कारण नष्ट न हो और अभिलषित फल प्रदान करने वाली कामधेनु के रूप में परिणत हो जाए ॥८ ॥

[३५ - मृत्युसंतरण सूक्त]

[**ऋषि -** प्रजापति । **देवता -** अतिमृत्यु । **छन्द -** त्रिष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४ जगती ।]

**८६१. यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥१ ॥**

जिस ओदन को सर्वप्रथम उत्पन्न प्रजापति ने तपस्या के द्वारा अपने कारण ब्रह्म के लिए बनाया था, जिस प्रकार नाभि समस्त जीवों को विशेष रूप से धारण करने वाली है; उसी प्रकार वह ओदन पृथ्वी आदि को धारण करने वाला है । उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु को लाँघते हैं ॥१ ॥

**८६२. येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥२ ॥**

जिस अन्न को तपश्चर्या द्वारा भूतों के सृष्टिकर्त्ता देवताओं ने प्राप्त किया है, जिसके द्वारा वे मृत्यु का अतिक्रमण कर गये तथा जिसको पहले उत्पन्न 'ब्रह्म' ने अपने 'कारण ब्रह्म' के लिए पकाया; उस अन्न के द्वारा हम मृत्यु को लाँघते हैं ॥२ ॥

**८६३. यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥३ ॥**

जो ओदन समस्त प्राणियों को भोजन प्रदान करने वाली पृथ्वी को धारण करता है, जो ओदन अपने रस के द्वारा अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करता है तथा जो ओदन अपने माहात्म्य के द्वारा द्युलोक को ऊपर ही धारण किये रहता है, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं ॥३ ॥

८६४. यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४ ॥

जिस ब्रह्म सम्बन्धी ओदन से बारह महीने उत्पन्न हुए हैं, जिससे रथचक्र के 'अरे' रूप तीस दिन उत्पन्न हुए हैं, जिससे बारह महीने वाले संवत्सर उत्पन्न हुए हैं तथा जिस ओदन को व्यतीत होते हुए दिन और रात प्राप्त नहीं कर सकते, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का उल्लंघन करते हैं ॥४ ॥

८६५. यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥५ ॥

जो ओदन मरणासन्नों को प्राण प्रदान करने वाला होता है, जिसके लिए समस्त जगत् घृत-धाराओं को प्रवाहित करता है तथा जिसके ओजस् से समस्त दिशाएँ ओजस्वी बनती हैं, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं ॥५ ॥

८६६. यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६ ॥

जिस पके हुए ओदन से द्युलोक में स्थित अमृत उत्पन्न हुआ, जो गायत्री छन्द का देवता हुआ तथा जिसमें समस्त प्रकार के ऋक्, यजु, साम आदि वेद निहित हैं, उस ओदन के द्वारा हम मृत्यु का उल्लंघन करते हैं ॥६ ॥

८६७. अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥७ ॥

विद्वेष करने वाले रिपुओं तथा देवत्व-हिंसकों के कार्य में हम बाधा डालते हैं । हमारे शत्रु विनष्ट हो जाएँ, इसीलिए सबको विजित करने वाले ब्रह्मरूप ओदन पकाते हैं । अतः समस्त देवता हमारी पुकार को सुनें ॥७ ॥

[३६- सत्यौजा अग्नि सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - सत्यौजा अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, ९ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

८६८. तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् ॥१ ॥

जो शत्रु हम पर झूठा दोषारोपण करते हैं । जो हमें मारने की इच्छा करते हैं तथा जो हमसे शत्रुता का व्यवहार करते हैं, उन रिपुओं को सत्य बल वाले वैश्वानर अग्निदेव प्रबलता से भस्मसात् करें ॥१ ॥

८६९. यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ॥२ ॥

जो शत्रु हम निरपराधों को मारना चाहते हैं, जो केवल सताने की इच्छा से हमें मारना चाहते हैं, उन रिपुओं को हम वैश्वानर अग्निदेव के दोनों दाढ़ों में डालते हैं ॥२ ॥

८७०. य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशे ऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ॥३ ॥

जो घरों में अमावास्या की अँधेरी रात में भी (अपने शिकार को) खोजते-फिरते हैं, ऐसे परमांसभोजी और घातक पिशाचों (कृमियों) को हम मंत्र बल से पराभूत करते हैं ॥३ ॥

८७१. सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ॥४ ॥

रक्त पीने वाले पिशाचों को मंत्र बल द्वारा हम पराभूत करते हैं और उनके वैभव का हरण करते हैं । दुष्टता का बर्ताव करने वालों को हम नष्ट करते हैं । हमारा वांछित संकल्प हर्षदायक तथा सफल हो ॥४ ॥

८७२. ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ॥५ ॥

जो देवता या दिव्य पुरुष सूर्य की गति का माप कर सकते हैं और उन (पिशाचों) के साथ विनोद कर सकते हैं, उनके तथा नदियों एवं पर्वतों पर रहने वाले पशुओं के माध्यम से हम उन्हें भ… प्रकार जानें ॥५ ॥

[विज्ञानवेत्ता देवपुरुष उन विषाणुओं के साथ तरह-तरह के प्रयोग करते हैं । वे उनसे भयभीत नहीं होते, उन्हें एक खेल की तरह लेते हैं । ऐसे पुरुषों तथा उन कृमियों से अप्रभावित रहने वाले पशुओं के माध्यम से उनका अध्ययन करना उचित है ।]

८७३. तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥६ ॥

जिस प्रकार गौओं के स्वामी को व्याघ्र पीड़ित करते रहते हैं, उसी प्रकार मंत्र बल द्वारा हम राक्षसों को पीड़ित करने वाले बनें । जिस प्रकार सिंह को देखकर भय के कारण कुत्ते छिप जाते हैं, उसी प्रकार ये पिशाच हमारे मंत्र बल को देखकर पतित हो जाएँ ॥६ ॥

८७४. न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥७ ॥

पिशाच हममें प्रविष्ट नहीं हो सकते । हम चोरों और डाकुओं से नहीं मिलते । जिस गाँव में हम प्रविष्ट होते हैं, उस गाँव के पिशाच विनष्ट हो जाते हैं ॥७ ॥

८७५. यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ।।८।।

हमारा यह मंत्र बल जिस गाँव में प्रविष्ट होकर स्थित रहता है, उस गाँव के राक्षस विनष्ट हो जाते हैं । इसलिए हिंसायुक्त कार्यों को वहाँ के निवासी जानते ही नहीं ॥८ ॥

८७६. ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हिताञ्जने अल्पशयूनिव ॥९ ॥

जैसे छोटे कीट, जनसमूह के चलने से पिसकर मर जाते हैं, जैसे हाथी के शरीर पर बैठे हुए मच्छर हाथी को क्रोधित करने के कारण मारे जाते हैं, वैसे समस्त राक्षसों को हम मंत्र बल से विनष्ट हुआ ही समझते हैं ॥९ ॥

८७७. अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१० ॥

जिस प्रकार अश्व बाँधने वाली रस्सी से अश्वों को बाँधते हैं, उसी प्रकार उस शत्रु को पापदेव निर्ऋति अपने पाशों से बाँधें । जो शत्रु हम पर क्रोधित होते हैं, वे निर्ऋति के पाशों से मुक्त न हों ॥१० ॥

[३७- कृमिनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - बादरायणि । **देवता** - अजशृङ्गी ओषधि, ३-५ अप्सरासमूह, ७-१२ गन्धर्व- अप्सरासमूह । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तार पंक्ति, ७ परोष्णिक्, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत् अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में ओषधि एवं मंत्र प्रयोग के संयोग से कृमियों के नाश का वर्णन है । मंत्रों में रोगोत्पादक विषाणुओं के लिए

रक्ष, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरस्, पिशाच आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है। वैद्यक ग्रन्थ (माधव निदान) में गन्धर्वग्रह, पिशाचग्रह; रक्ष आदि से पीड़ित रोगियों के लक्षण दिए हैं। उनके उपचार की ओषधियों का भी वर्णन है। वैद्यक ग्रन्थों में वेद में वर्णित ओषधियों के नाम मिलते हैं। उनके जो गुण कहे गए हैं, वेद में वर्णित गुणों से उनकी संगति कहीं बैठती है, कहीं नहीं बैठती। यह शोध का विषय है कि किस प्रकार उनके वेद वर्णित प्रभाव प्राप्त किए जा सकते हैं-

८७८. त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥

हे ओषधे ! सर्वप्रथम 'अथर्वा' ऋषि ने आपके द्वारा राक्षसों (रोगकृमियों) को विनष्ट किया था। 'कश्यप' 'कण्व' तथा 'अगस्त्य' आदि ऋषियों ने भी आपके द्वारा रोगाणुओं को विनष्ट किया था, ऐसा हम भी करते हैं ॥१॥

८७९. त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे। अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥

हे अजशृंगी ओषधे ! आपके द्वारा हम उपद्रव करने वाले गन्धर्वों तथा अप्सराओं (दुर्गंध तथा पानी से उत्पन्न कृमियों) को विनष्ट करते हैं। आपकी तीव्र गंध से हम समस्त रोगरूप राक्षसों को दूर करते हैं ॥२॥

[गन्धर्व वायु को भी कहते हैं। वायु से फैलने वाले (गन्धर्व) तथा जल से फैलने वाले (अप्सरस्) रोगाणुओं के उपचार के लिए अजशृंगी (काकड़ासिंगी) ओषधि के प्रयोग की बात कही गई है। मलेरिया (शीत ज्वर) के कृमि पानी में ही पनपते हैं, ऐसे कृमियों को अप्सरस् कह सकते हैं।]

८८०. नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम्। गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥३॥

जिस प्रकार नदी के पार उतरने की इच्छा वाले मनुष्य कुशल नाविक के पास जाते हैं, उसी प्रकार गुग्गुल, पीलु, नलदी, औक्षगंधी और प्रमोदिनी आदि ओषधियों के हवन से भयभीत होकर अप्सराएँ (जल से उत्पन्न कृमि) वापस लौटकर अपने निवास स्थान पर चली जाएँ और गतिहीन होकर पड़ी रहें ॥३॥

[ओषधियों में गुग्गुल (गूगल) को सब जानते हैं। पीला = पीलु को हिन्दी में 'झल्' कहते हैं। नलद = नलदी को माँसी या जटामाँसी कहते हैं। औक्षगंधी- जटामाँसी का ही एक भेद है, जिसे गंधमाँसी कहते हैं। प्रमोदिनी को धात की वृक्ष या 'धावई' कहा जाता है।]

८८१. यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः। तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥

हे अप्सराओ (जल में फैलने वाले कृमियो) ! जहाँ पर पीपल, वट और पिलखन आदि महान् वृक्ष होते हैं, वहाँ से आप अपने स्थान में लौट जाएँ और गतिहीन होकर पड़ी रहें ॥४॥

[पीपल को संस्कृत में 'शुचिद्रुम' (शुद्ध करने वाला) भी कहते हैं। यह रोगाणु निवारक होने के साथ ही दिन-रात आक्सीजन छोड़कर वायु को शुद्ध करने वाला है।]

८८२. यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥

हे अप्सराओ (जल में उत्पन्न कृमियो) ! जहाँ पर आपके प्रमोद के लिए हिलने वाले हरे-भरे अर्जुन तथा श्यामल वृक्ष हैं और जहाँ पर आपके नृत्य के लिए कर-कर शब्द करने वाले कर्करी वृक्ष हैं, उस स्थान में आप वापस चली जाएँ और गतिहीन होकर पड़ी रहें ॥५॥

८८३. एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती। अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ॥६॥

विशेष प्रकार से उगने वाली लताओं में यह अत्यन्त बलशाली अजशृंगी कंजूसों और हिंसकों को उच्चाटन (उद्विग्न) करने वाली है। तीव्र गंधवाली और शृंगाकार फलवाली अजशृंगी पिशाचरूपी रोगों को नष्ट करे ॥६॥

८८४. आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः । भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥७ ॥

मोर के सदृश नृत्य करने वाले, गीतमय वाणियों वाले और हमें मारने की इच्छा वाले अप्सरापति गंधर्वों के अण्डकोशों को हम चूर्ण करते हैं और उनके प्रजनन अंगों को विनष्ट करते हैं ॥७ ॥

८८५. भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः । ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥

इन्द्र के लौह निर्मित हथियारों, जिनसे प्राणी भयभीत होते हैं और जिसमें सैकड़ों धारें हैं, उसके द्वारा 'अवका' (सिवार) खाने वाले गन्धर्वों (कृमियों) को इन्द्रदेव नष्ट करें ॥८ ॥

८८६. भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः । ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ॥

इन्द्र के स्वर्ण विनिर्मित हथियारों से, जिनसे प्राणी भयभीत होते हैं और जिनमें सैकड़ों धारें हैं, उसके द्वारा अवका (सिवार, शैवाल) खाने वाले गन्धर्वों को वे विनष्ट करें ॥९ ॥

८८७. अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च ॥१० ॥

हे अजशृंगी ओषधे ! शैवाल (काई-फंगस) खाने वाले, चारों तरफ से चमकने वाले और दुःख देने वाले गन्धर्वों को जलाशयों में आप प्रकट करें ।आप उपद्रव करने वाले पिशाचों को विनष्ट करें और उन्हें दबाएँ ॥१० ॥

८८८. श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥

(इनमें से) एक (एक प्रकार के रोगाणु) कुत्ते के समान, एक बन्दर के समान और एक बालयुक्त बालक के समान होते हैं । ये गन्धर्व प्रिय दिखने वाले होकर स्त्रियों को प्राप्त (स्त्री रोगों के कारण) होते हैं । हम मंत्र बल द्वारा उन गन्धर्वों को इन स्त्रियों के पास से दूर करते हैं ॥११ ॥

८८९. जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् ॥१२ ॥

हे गन्धर्वो (वायु में फैलने वाले) ! आप की अप्सराएँ (जल में विकसित) आपकी पत्नियाँ हैं और आप ही उनके पति हैं, इसलिए आप सब यहाँ से दूर हट जाएँ । आप अमरत्व धर्मी होकर मरणधर्मी मनुष्यों से न मिलें ॥१२॥

[३८ - वाजिनीवान् ऋषभ सूक्त]

[**ऋषि** - बादरायणि । **देवता** - १-४ अप्सरा, ५-७ वाजिनीवान् ऋषभ । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ५ भुरिक् अत्यष्टि, ६ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भापुरउपरिष्टात् ज्योतिष्मती जगती ।]

८९०. उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ॥१ ॥

उद्‌भेदन (शत्रु उच्छेदन अथवा ग्रन्थियों का निवारण करने वाली), उत्तम विजय दिलाने वाली, स्पर्धाओं में उतम (विजयी बनाने वाले) कर्मों की अधिष्ठात्री देवी अप्सराओं को हम आहूत करते हैं ॥१ ॥

८९१. विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥२ ॥

चयन करने में कुशल, श्रेष्ठ व्यवहार वाली अप्सरा तथा स्पर्धा में श्रेष्ठ (विजयी बनाने वाले) कर्म कराने वाली स्पर्धा की अधिष्ठात्री देवी का हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

८९२. यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात्। सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया। सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ॥३ ॥

स्पर्धाओं में गतिशील, उत्तम प्रयासों को अंगीकार करने वाली वह (देवी) हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्यों को अनुशासित करे। वह अपनी कुशलता से उन्नति प्राप्त करे तथा पयस्वती (पोषण देने वाली) होकर हमारे पास आए। हमारा यह श्रेष्ठ धन (दूसरों द्वारा) जीत न लिया जाए ॥३ ॥

**८९३. या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ॥४ ॥**

जो देवी (स्पर्धा के समय पिछड़ जाने पर होने वाले) शोक एवं क्रोध को भी अपने अक्षों (निर्धारित पक्ष या प्रयास) द्वारा आनन्द प्रदान करती हैं। ऐसी आनन्द और प्रमोद देने वाली अप्सराओं को हम आहूत करते हैं ॥४ ॥

**८९४. सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वाँल्लोकान् पर्यैति रक्षन्।
स न ऐतु होममिमं जुषाणो३न्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ॥५ ॥**

जो देवियाँ आदित्य रश्मियों अथवा प्रभा के विचरने के स्थान में विचरण करती हैं, जिनके सेचन समर्थ पति (सूर्यदेव) समस्त लोकों की सुरक्षा करते हुए, दूर अन्तरिक्ष तथा समस्त दिशाओं में विचरते हैं; वे सूर्यदेव अप्सराओं सहित हमारी हवियों को ग्रहण करते हुए, हमारे समीप पधारें ॥५ ॥

**८९५. अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ॥६ ॥**

हे बलवान् (सूर्यदेव) !आप कर्मठ बछड़ों या बच्चों की यहाँ पर सुरक्षा करें। यह आपके अनुग्रह (पर आश्रित) हैं, यह आपकी कर्म शक्ति है, आपका मन यहाँ रमे। आप हमारा नमन स्वीकार करें और हमारे निकट पधारें ॥६ ॥

**८९६. अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः। यथानाम व ईश्महे स्वाहा ॥७ ॥**

हे शक्तिवान् ! आप कर्मठ बछड़ों की यहाँ पर सुरक्षा करें और उनका पालन करें। यह गोशाला है। यह उनके लिए घास है, यहाँ हम बछड़ों को बाँधते हैं। हमारा जैसा नाम है, उसी के अनुसार हम ऐश्वर्य पाएँ। हम आपके प्रति समर्पित हैं ॥७ ॥

[३९- सन्नति सूक्त]

[**ऋषि -** अङ्गिरा। **देवता -** सन्नति (१-२ पृथिवी, अग्नि, ३-४ वायु, अन्तरिक्ष, ५-६ दिव, आदित्य, ७-८ दिशाएँ, चन्द्रमा, ९-१० ब्रह्मा, जातवेदा (अग्नि) । **छन्द -** त्रिपदा महाबृहती, २,४,६,८ संस्तार पंक्ति, ९-१० त्रिष्टुप्।]

**८९७. पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥१ ॥**

धरती पर अग्निदेव के सम्मुख समस्त प्राणी नमन करते हैं । वे अग्निदेव भी विनम्र हुए भूतों से समृद्ध होते हैं । जिस प्रकार धरती पर अग्निदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए हमारे सामने उपस्थित हुए लोग विनम्र हों ॥१ ॥

८९८. पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः । सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥२ ॥

पृथ्वी गौ है और अग्नि उसका बछड़ा है । वह धरती अग्निरूपी बछड़े से (हमें) अन्न, बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और सम्पत्ति प्रदान करे । हम उसे हवि समर्पित करते हैं ॥२ ॥

८९९. अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥३ ॥

अन्तरिक्ष में अधिष्ठाता देवता रूप में स्थित वायुदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं और वे वायुदेव भी उनसे वृद्धि को प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार अन्तरिक्ष में वायुदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए हमारे सम्मुख उपस्थित हुए लोग भी विनम्र हों ॥३ ॥

९००. अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः । सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥४ ॥

अभिलषित फल प्रदान करने के कारण अन्तरिक्ष गौ के समान है और वायुदेव उसके बछड़े के समान हैं । वह अन्तरिक्ष वायुरूपी अपने बछड़े से (हमें) अन्न, बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और धन प्रदान करे । हम उसे हवि समर्पित करते हैं ॥४ ॥

९०१ . दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥५ ॥

द्युलोक में अधिपति रूप में स्थित सूर्यदेव के सम्मुख समस्त द्युलोक निवासी विनम्र होते हैं और वे सूर्यदेव भी उनके द्वारा वृद्धि को प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार द्युलोक में सूर्यदेव के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए हमारे सम्मुख उपस्थित लोग विनम्र हों ॥५ ॥

९०२. द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥६ ॥

इच्छित फल प्रदान करने के कारण द्युलोक गौ के समान है और सूर्यदेव उसके बछड़े के समान हैं । वह द्युलोक सूर्यरूपी अपने बछड़े के द्वारा (हमें) अन्न- बल, अपरिमित आयु, सन्तान, पुष्टि और धन प्रदान करे, हम उसे हवि समर्पित करते हैं ॥६ ॥

९०३. दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ॥७ ॥

पूर्व आदि दिशाओं में अधिष्ठाता देवता रूप में स्थित चन्द्रमा के सम्मुख समस्त प्रजाएँ विनम्र होती हैं और चन्द्रलोक भी उनके द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार दिशाओं में चन्द्रमा के सम्मुख सब विनम्र होते हैं, उसी प्रकार हमें सम्मान देने के लिए , हमारे सम्मुख उपस्थित लोग विनम्र हों ॥७ ॥

**९०४. दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥८ ॥**

दिशाएँ गौ हैं और चन्द्रमा उनका बछड़ा है । वे दिशाएँ चन्द्रमारूपी बछड़े के द्वारा (हमें) अन्न, बल, अपरिमित आयु , सन्तान, पुष्टि और धन प्रदान करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥८ ॥

**९०५. अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ॥९ ॥**

लौकिक अंगिरा सम्बन्धी अग्नि में मन्त्र बल द्वारा देवरूप अग्नि, प्रविष्ट होकर निवास करते हैं । वे 'चक्षु' और 'अंगिरा' आदि ऋषियों के पुत्र हैं । वे मिथ्यापवाद से बचाने वाले हैं । हम उन्हें नमनपूर्वक हवि प्रदान करते हैं, देवों के हविर्भाग को मिथ्या नहीं करते ॥९ ॥

**९०६. हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥१० ॥**

हे समस्त उत्पन्न प्राणियों को जानने वाले अग्निदेव ! आप समस्त कर्मों के ज्ञाता हैं । हे जातवेदा अग्ने ! आपके जो सात मुख हैं, उनके लिए हम मन और अन्तःकरण द्वारा पवित्र हुए हवि को समर्पित करते हैं, आप उस हवि को ग्रहण करें ॥१० ॥

[४० - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - ब्रह्म (१ अग्नि, २ यम, ३ वरुण, ४ सोम, ५ भूमि, ६ वायु, ७ सूर्य, ८ दिशाएँ) । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २ जगती, ८ पुरोऽतिशक्वरीपादयुग्जगती ।]

**९०७. ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१ ॥**

हे जातवेदा अग्निदेव ! जो शत्रु पूर्व दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु आपके पास जाकर पराङ्मुख होते हुए कष्ट भोगें । आभिचारिक कर्म करने वाले इन रिपुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥१ ॥

**९०८. ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥२ ॥**

हे जातवेदा अग्निदेव ! जो शत्रु दक्षिण दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा दक्षिण दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे शत्रु यमदेव के समीप जाकर पराङ्मुख होते हुए कष्ट भोगें । उन अभिचारी रिपुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

**९०९. ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥३ ॥**

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु पश्चिम दिशा में आहुति देकर पश्चिम दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु वरुणदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें । उन अभिचारी रिपुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥३ ॥

९१०. य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥४॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु उत्तर दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा उत्तर दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु सोमदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें। उन अभिचारी रिपुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥४॥

९११. येऽ३ऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥५॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु नीचे की ध्रुव दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा नीचे की ध्रुव दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु भूमि के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें। उन अभिचारी रिपुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥५॥

९१२. येऽ३ऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥६॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु द्यावा-पृथिवी के बीच अन्तरिक्ष में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा अन्तरिक्ष दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु वायुदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें। उन रिपुओं को हम इस प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥६॥

९१३. य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥७॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु ऊपर की दिशा में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा ऊर्ध्व दिशा से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु सूर्यदेव के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें। उन रिपुओं को हम प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥७॥

९१४. ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान्।
ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥८॥

हे जातवेदा अग्ने ! जो शत्रु उप दिशाओं में आहुति देकर अभिचार कर्म द्वारा दिक्कोणों से हमें विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शत्रु परब्रह्म के समीप जाकर पराभूत होते हुए कष्ट भोगें। उन रिपुओं को हम प्रतिसर कर्म द्वारा विनष्ट करते हैं ॥८॥

॥ इति चतुर्थं काण्डं समाप्तम्॥

॥ अथ पञ्चमं काण्डम् ॥

[१ - अमृता सूक्त]

[**ऋषि** - बृहद्दिवोऽथर्वा । **देवता** - वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ पराबृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट् जगती, ९ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टि ।]

९१५. ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥१ ॥

जो दिन के सदृश आलोकित रहने वाला है, तीनों लोकों का पालन तथा संरक्षण करने वाला है और जिसने तीनों भुवनों को धारण किया है, वह हिंसारहित और अनश्वर प्राणवाला, श्रेष्ठ जन्म लेकर(शरीर रूप में) वर्द्धित होने वाला , समृद्धि वाला तथा मननशील (आत्मा) अपने उत्पत्ति स्थान से प्रकट हुआ ॥१ ॥

९१६. आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥२ ॥

जो प्रथम जीवात्मा धर्मपूर्ण कर्म को करता है, वह अनेकों श्रेष्ठ शरीरों को धारण करता है । जो अस्पष्ट वाणी को जानते हुए अन्न की कामना करता है, वह प्रथम उत्पन्न (जीवात्मा) अपने उत्पत्ति स्थान से प्रकट हुआ ॥२ ॥

९१७. यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ॥३ ॥

जो आत्मा धर्माचरण द्वारा कष्ट सहते हुए , स्वर्ण सदृश अपनी कान्ति को बिखेरने के लिए आपके शरीर में प्रविष्ट हुआ ।उस धर्माचारी आत्मा को द्यावा-पृथिवी अमर नाम प्रदान करते हैं और प्रजाएँ वस्त्र प्रदान करती हैं ॥३॥

९१८. प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥४ ॥

जो स्थान-स्थान पर बैठकर जरारहित, प्राचीन तथा सर्वप्रथम ईश्वर का चिन्तन करके ईश्वर को प्राप्त कर चुके हैं । उनके समान ही ईश्वर का चिन्तन करके प्रजारूप बहिन का भार ढोने वाले, इस विवेकवान् तथा बलवान् राजा को ईश्वर की प्राप्ति कराएँ ॥४ ॥

९१९. तदू षु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥५ ॥

हे विस्तृत पृथ्वी के अधिष्ठातादेव ! हम अथर्व विद्या के ज्ञाता पुरुष अपनी शास्त्र कुशलता के द्वारा आपको विशाल अन्न की हवि समर्पित करते हैं; क्योंकि धरती को स्थिर रखने वाले 'दो' (तत्त्व) चक्र के सदृश गतिशील इस धरती पर बढ़ रहे हैं ॥५ ॥

[पृथ्वी का सन्तुलन बनाने वाले 'दो' इस पृथ्वी पर बढ़ रहे हैं । यह दो जड़ एवं चेतन पदार्थ भी हो सकते हैं । पृथ्वी का सन्तुलन बनाए रखकर गतिशील बढ़ने वाले दो ध्रुव भी हो सकते हैं ।]

९२०. सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यं हुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६ ॥

ऋषियों ने मनुष्यों के लिए निषेधरूप, जो सात मर्यादाएँ निर्धारित की हैं, उनमें से एक का भी उल्लंघन करने पर वे पापी होते हैं । मर्यादाओं का पालन करने पर ध्रुव (श्रेष्ठ) स्थानों में स्थित होते हैं ॥६ ॥

९२१. उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्व१स्तत् सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ॥७ ॥

हम व्रतधारी बनकर कर्मों को करते हुए , अविनाशी प्राणशक्ति से युक्त होकर आ रहे हैं । इसलिए हमारी आत्मा, प्राण और शरीर गुणवान् बन रहे हैं । जो समर्थ बनकर हवि समर्पित करते हैं, उनको इन्द्रदेव रत्न आदि धन प्रदान करते हैं ॥७ ॥

९२२. उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि ॥८ ॥

पुत्र अपने क्षत्रिय (रक्षक) पिता की वन्दना करे और कल्याण प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ मर्यादापूर्ण धर्म का आवाहन करे । हे वरुणदेव ! आपके जो विशेष स्थान हैं, उनको दिखाते हुए आप बारम्बार घूमने वाले प्राणियों के शरीरों का सृजन करते हैं ॥८ ॥

९२३. अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ॥९ ॥

अदिति पुत्र मित्रावरुण को हम समृद्ध करते हैं । हे बलशाली वरुणदेव ! आप किसी से आवृत नहीं हैं । आप आधे पय (पोषक रस) से इस (जगत्) को समृद्ध करते हैं और आधे से स्वयं समृद्ध होते हैं । हे द्यावा-पृथिवी के अधिष्ठाता देव ! विद्वान् ऋषियों द्वारा प्रशंसित शरीरों का हम (वरुणदेव से) वर्णन करते हैं ॥९ ॥

[२ - भुवनज्येष्ठ सूक्त]

[**ऋषि** - बृहद्दिवोऽथर्वा । **देवता** - वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ९ भुरिक् परातिजागता त्रिष्टुप् ।]

९२४. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥१ ॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाशरूप में संव्याप्त हुआ, जिससे प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त सूर्य का प्राकट्य हुआ । जिसके उदय होने मात्र से (अज्ञान-अन्धकाररूपी) शत्रु नष्ट हो जाते हैं । उसे देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥१ ॥

९२५. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२ ॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए अनन्त शक्तियुक्त (यह देव) शत्रुओं के अन्तःकरण में भय उत्पन्न करते हैं । वे सभी चर-अचर प्राणियों को संचालित करते हैं । ऐसे देव की हम (याजकगण) सम्मिलित रूप से एक साथ स्तुति करके, उन्हें तथा स्वयं को आनन्दित करते हैं ॥२ ॥

९२६. त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३ ॥

हे देव ! सब यजमान आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं । जब यजमान विवाहोपरान्त दो या एक सन्तान के बाद तीन होते हैं, तो प्रिय लगने वाले (सन्तान) को प्रिय (धन या गुणों) से युक्त करें । बाद में इस प्रिय सन्तान को पौत्रादि की मधुरता से युक्त करें ॥३ ॥

९२७. यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥४ ॥

हे देव ! आप जिस समय सोमपान से आनन्दित होकर धन-सम्पदा पर विजय प्राप्त करते हैं । उस समय ज्ञानी स्तोतागण आपकी ही स्तुति करते हैं । हे देव ! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें, दुस्साहसी असुर कभी आपको पराभूत न कर सकें ॥४ ॥

९२८. त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५ ॥

हे देव ! आपके सहयोग से हम रणभूमि में दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । युद्ध की इच्छा से प्रेरित होकर अनेक शत्रुओं से हम भेंट करते हैं । आपके वज्रादि आयुधों को हम स्तोत्रों द्वारा प्रोत्साहित करते हैं । स्तुति मंत्रों से हम आपकी तेजस्विता को और भी तीक्ष्ण करते हैं ॥५ ॥

९२९. नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥६ ॥

हे देव ! आप जिस यजमान के घर में हविरूप अन्न से परितृप्त होते हैं, उसे दिव्य और भौतिक सम्पदा प्रदान करते हैं । सम्पूर्ण प्राणियों के निर्माता, गतिशील द्युलोक और पृथ्वीलोक को आप ही सुस्थिर करते हैं । उस समय आपको अनेक कार्यों का निर्वाह करना पड़ता है ॥६ ॥

९३०. स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥७ ॥

स्तुत्य, विभिन्न स्वरूपों वाले, दीप्तिमान् , सर्वेश्वर और सर्वश्रेष्ठ आत्मीय (देव) की हम स्तुति करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से वृत्र, नमुचि, कुयव आदि सात राक्षसों के विनाशकर्त्ता तथा अनेक असुरों के पराभवकर्त्ता हैं ॥

९३१. इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥८ ॥

ऋषियों में श्रेष्ठ और स्वर्गलोक के आकांक्षी बृहद्दिव ऋषि इन (देवों) को सुख प्रदान करने के लिए ही इन वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हैं । वे तेजस्वी, दीप्तिमान् इन्द्रदेव विशाल पर्वत (अवरोध) को हटाते हैं तथा शत्रु-पुरियों के सभी द्वारों के उद्घाटक हैं ॥८ ॥

९३२. एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥९ ॥

अथर्वा के पुत्र महाप्राज्ञ बृहद्दिव ने देवों के लिए स्तुतियाँ कीं । माता सदृश भूमि पर उत्पन्न पवित्र नदियाँ, पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल प्रवाहित करती हैं तथा अन्न-बल से लोगों का कल्याण करती हैं ॥९ ॥

[३ - विजयप्रार्थना सूक्त]

[**ऋषि** - बृहद्दिवोऽथर्वा । **देवता** - १-२ अग्नि, ३-४ देवगण, ५ द्रविणोदा, ६ वैश्वदेवी, ७ सोम, ८, ११ इन्द्र, ९ धाता, विधाता, सविता, आदित्यगण, रुद्रगण, अश्विनीकुमार, १० आदित्यगण, रुद्रगण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, १० विराट् जगती ।]

९३३. ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! संग्रामों या यज्ञों के समय हममें तेजस्विता जाग्रत् हो । आपको समिधाओं से प्रज्वलित करते हुए हम अपनी देह को परिपुष्ट करते हैं । हमारे लिए चारों दिशाएँ अवनत हों । आपको स्वामिरूप में प्राप्त करके हम शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें ॥१ ॥

९३४. अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे शत्रुओं के क्रोध का दमन करते हुए दुर्धर्ष होकर हमारी सभी प्रकार से सुरक्षा करें । वे भयभीत होकर निरर्थक बातें करने वाले शत्रु पराङ्मुख होकर लौट जाएँ । इन शत्रुओं के मन-मस्तिष्क भ्रमित हो जाएँ ॥२ ॥

९३५. मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ॥३ ॥

अग्निदेव के साथ मरुद्गण, विष्णु और इन्द्र आदि सभी देवगण युद्धकाल में हमारा सहयोग करें । अन्तरिक्ष के समान विस्तृत लोक हमारे लिए प्रकाशमान हों । हमारे इन अभिलषित कार्यों में वायुदेव अनुकूल होकर प्रवाहित हों ॥३ ॥

९३६. मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥४ ॥

ऋत्विग्गण हमारी चरु, पुरोडाशादि यज्ञ सामग्री को आहुतियों के रूप में देवताओं को समर्पित करें । हमारे मन के संकल्प पूर्ण हों । हम किसी भी पाप में संलिप्त न हों । हे विश्वेदेवो ! आप हमें आशीर्वचन प्रदान करें ॥४ ॥

९३७. मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैवा होतारः सनिषन् न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥५ ॥

श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों से प्रसन्न होकर सभी देवगण हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । हम देवशक्तियों का आवाहन करें । प्राचीनकाल में जिन्होंने देवों को आहुति समर्पित की है, वे होतागण अनुकूल होकर देवों की अर्चना करें । हम शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ होकर वीर सुसन्ततियों से युक्त हों ॥५ ॥

९३८. दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥६ ॥

हे छह बड़ी दिव्य दिशाओ ! आप हमारे लिए विस्तृत स्थान प्रदान करें । हे सर्वदेवो ! आप हमें हर्षित करें । निस्तेजता, अपकीर्ति तथा द्वेष आदि पाप हमारे निकट न आने पाएँ ॥६ ॥

९३९. तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम्।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन्॥७॥

हे तीनों (भारती, पृथ्वी और सरस्वती) देवियो ! आप हमारा बृहत् कल्याण करें और जो पोषक वस्तुएँ हैं, उसे हमारे शरीर और प्रजा के लिए प्रदान करें। हम सन्तानों और पशुओं से हीन न हों। हे राजन् सोम ! हम रिपुओं के कारण दुःखी न हों॥७॥

९४०. उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः॥८॥

सर्वव्यापक, पूजनीय, अनेक यजमानों के द्वारा बुलाये जाने वाले, विभिन्न स्थानों में वास करने वाले इन्द्रदेव इस यज्ञ में पधारकर हमें सुख प्रदान करें। हे हरित अश्वों के स्वामिन ! आप हमारी सन्ततियों को सुखी करें। हमारे प्रतिकूल न होकर हमें अनिष्टों से बचाएँ॥८॥

९४१. धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात्॥९॥

सृष्टि के निर्माता एवं धारणकर्त्ता, जो सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं, उन सर्वप्रेरक, पालनकर्त्ता और अहंकारी शत्रुओं के विजेता सवितादेवता, आदित्य, रुद्र, अश्विनीकुमार आदि सभी प्रमुख देव इस यज्ञ का संरक्षण करें तथा यजमान को पापों से बचाएँ॥९॥

९४२. ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान्।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत॥१०॥

जो हमारे शत्रु हैं, वे पराभूत हों। हम उन्हें इन्द्राग्नि की सामर्थ्य से विनष्ट करते हैं। वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण ये सभी हमें ऊँचे पदों पर आसीन करके पराक्रमी, ज्ञानसम्पन्न तथा सबके अधिपति बनाएँ॥१०॥

९४३. अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी॥११॥

जो पृथ्वी, धन तथा अश्वों को जीतने वाले और रिपुओं का सामना करने वाले हैं, उन इन्द्रदेव को हम द्युलोक से बुलाते हैं, वे संग्राम में हमारे इस स्तोत्र को सुनें। हे हर्यश्व इन्द्रदेव ! आप हमारे स्नेही बनें॥११॥

[४ - कुष्ठतक्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा। **देवता** - कुष्ठ, यक्ष्मनाशन। **छन्द** - अनुष्टुप्, ५ भुरिक् अनुष्टुप्, ६ गायत्री, १० उष्णिक् गर्भा निचृत् अनुष्टुप्।]

इस सूक्त में कुष्ठ नामक ओषधि का वर्णन है। वैद्यक ग्रन्थ 'भावप्रकाश' में इसके गुण- धर्मों का वर्णन है। इसे उष्ण, कटु स्वाद वाली, शुक्र उत्पादक, वात, विसर्प, कुष्ठ, कफ आदि रोगों को दूर करने वाली कहा गया है-

९४४. यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः॥१॥

हे व्याधिनिवारक कुष्ठ ओषधे ! आप पर्वतों में उत्पन्न होने वाली तथा समस्त ओषधियों में अत्यधिक शक्तिदायी हैं। आप कष्टदायी रोगों को विनष्ट करती हुई यहाँ पधारें॥१॥

९४५. सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि । धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ।

गरुड़ के उत्पत्ति स्थान हिमालय शिखर पर, उत्पन्न इस ओषधि को, आरोग्य धनरूप सुनकर लोग वहाँ जाते हैं और व्याधि निवारक इस ओषधि को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

९४६. अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥३ ॥

यहाँ से तीसरे द्युलोक में जहाँ देवों के बैठने का स्थान ' अश्वत्थ' है, वहाँ पर देवों ने अमृत का बखान करने वाले इस 'कुष्ठ'ओषधि को प्राप्त किया ॥३ ॥

९४७. हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥४ ॥

स्वर्गलोक में सोने के बन्धन वाली स्वर्णिम नौका चलती है । वहाँ पर देवों ने अमृत के पुष्प 'कुष्ठ'ओषधि को प्राप्त किया था ॥४ ॥

९४८. हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५ ॥

जिससे (जिस माध्यम से) 'कुष्ठ' ओषधि लायी गयी थी, उसके मार्ग, उसकी बल्लियाँ तथा उसकी नौकाएँ सोने की थीं ॥५ ॥

९४९. इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ॥६ ॥

हे कुष्ठ ओषधे ! आप हमारे इस पुरुष को उठाकर पूर्णतया रोगरहित करें और इसे आरोग्य प्रदान करें ॥६ ॥

९५०. देवेभ्यो अधि जातो ऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥७ ॥

हे कुष्ठ ओषधे ! आप देवताओं के द्वारा उत्पन्न हुई हैं । आप सोम ओषधि की हितकारी सखा हैं । इसलिए आप हमारे इस पुरुष के व्यान, प्राण और आँखों को सुख प्रदान करें ॥७ ॥

९५१. उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥८ ॥

वह 'कुष्ठ' नाम वाली ओषधि हिमालय के उत्तर में उत्पन्न हुई तथा पूर्व दिशा में मनुष्यों के समीप लायी गई । वहाँ पर उसके श्रेष्ठ नामों का लोगों ने विभाजन किया ॥८ ॥

९५२. उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥९ ॥

हे कुष्ठ ओषधे ! आपका और आपके पिता (उत्पादक हिमालय) दोनों का ही नाम उत्तम है । आप समस्त प्रकार के क्षय रोगों को दूर करें और कष्टदायी ज्वर को निर्वीर्य करें ॥९ ॥

९५३. शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥१० ॥

सिर की व्याधि, आँखों की दुर्बलता और शारीरिक दोष, इन सब रोगों को 'कुष्ठ' ओषधि ने दिव्य बल को प्राप्त करके दूर कर दिया ॥१० ॥

[५- लाक्षा सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा । देवता - लाक्षा । छन्द - अनुष्टुप् ।]

वैद्यक ग्रन्थों में 'लाख' का पर्याप्त वर्णन है । इसे कृमिहा (कृमि नाशक) , रक्षा, राक्षा, लाक्षा (रक्षक) , क्षतघ्नी (घाव भरने वाली) , दीप्ति, द्रवासा आदि नाम दिये गये हैं । वेद वर्णित इसके कुछ प्रयोग प्रचलित हैं; कुछ शोध के विषय हैं-

९५४. रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१ ॥

हे लाक्षा (लाख) ! चन्द्रमा की रश्मियों के द्वारा पोषित होने के कारण रात्रि आपकी माता हैं और वृष्टि द्वारा उत्पन्न होने के कारण आकाश आपके पिता हैं तथा आकाश में बादलों को लाने के कारण अर्यमा (सूर्य) आपके पितामह हैं । आपका नाम 'सिलाची' है और आप देवों की बहिन हैं ॥१ ॥

९५५. यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२ ॥

जो आपका पान करते हैं, वे जीवित रहते हैं । आप मनुष्यों की सुरक्षा करने वाली हैं । आप समस्त लोगों का भरण करने वाली तथा आरोग्य प्रदान करने वाली हैं ॥२ ॥

९५६. वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३ ॥

पुरुष की कामना करने वाली कन्या के समान आप प्रत्येक वृक्ष पर चढ़ती हैं । आप विजित होने वाली तथा खड़ी होने वाली हैं, इसलिए आपका नाम 'स्परणी' है ॥३ ॥

९५७. यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४ ॥

दण्ड से, बाण से अथवा रगड़ से जो घाव हो जाते हैं; उन सबकी, हे लाख ओषधे ! आप उपायरूप हैं । अतः आप इस पुरुष को रोगरहित करें ॥४ ॥

९५८. भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद् धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५ ॥

हे घावों को भरने वाली ओषधे ! आप कदम्ब, पाकड़, पीपल, धव, खैर, भद्र, न्यग्रोध तथा पर्ण से पैदा होती हैं, आप हमारे पास पधारें ॥५ ॥

९५९. हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे । रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि॥

हे स्वर्ण तथा सूर्य सदृश वर्णवाली सुभगे ! हे शरीर के लिए कल्याणकारी तथा रोगों को दूर करने वाली ओषधे ! आप रोगों के पास (उसे दूर करने के लिए) पहुँचती हैं; इसलिए आपका नाम 'निष्कृति' है ॥६ ॥

९६०. हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ॥७ ॥

हे स्वर्ण सदृश रंग वाली भाग्यशालिनि ! हे बलकारिणी तथा रोमों वाली लाक्षा ओषधे ! आप जल की बहिन हैं और वायु आपकी आत्मा है ॥७ ॥

९६१. सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।

अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥८ ॥

आपका नाम 'सिलाची' तथा 'कानीन' है और बकरियों के पालक वृक्षादि आपके पिता हैं । यम के जो पीले-काले रंग के घोड़े हैं, उनके रक्त से आपको सिंचित किया गया था ॥८ ॥

९६२. अश्वस्यास्नः सम्पतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।

सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९ ॥

हे घाव को भरने वाली ओषधे ! आप अश्व-रक्त के समान हैं । आप वृक्षों को सिंचित करने वाली तथा सरकने वाली हैं । आप टपकने वाली या प्रवहमान होकर हमारे पास पधारें ॥९ ॥

[६ - ब्रह्मविद्या सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** सोमारुद्र (१ ब्रह्म, २ कर्म, ३-४ रुद्रगण, ५-८ सोमारुद्र, ९ होता, १० अग्नि, ११-१४ सर्वात्मा रुद्र) । **छन्द -** पङ्क्ति, १ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती, ४ पञ्चपदा अनुष्टुप् उष्णिक् त्रिष्टुब्गर्भा जगती, ५-७ त्रिपदा विराट् गायत्री, ८ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, १० प्रस्तार पंक्ति, १४ स्वराट् पंक्ति ।]

९६३. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१ ॥

सत्-चित्- सुखात्मक तथा जगत् का कारणभूत ब्रह्म, सृष्टि के पूर्व में ही उत्पन्न हुआ । पूर्व दिशा में उदित होने वाला जो सूर्यात्मक तेज 'वेन' है, वही सत् और असत् के उद्‌गम स्थान के ज्ञान को व्यक्त करने वाला है ॥१ ॥

९६४. अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।

वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! आपने अज्ञान की अवस्था में जिन कर्मों को सम्पन्न किया था, वे हमारी सन्तानों को यहाँ पर विनष्ट न करें, अत: उन सबको हम आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं ॥२ ॥

९६५. सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।

तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥३ ॥

सामर्थ्ययुक्त पवित्र सोम की स्तुति की जाती है । आदिपिता ये सोमदेव अपने व्रतों का निर्वाह करते हुए महान् अन्तरिक्ष को अपने तेजस् से आवृत कर देते हैं । ज्ञानी याजक उन्हें धारणशील जल में मिश्रित करते हैं ॥३ ॥

९६६. पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥४ ॥

(हे सूर्यदेव !) अन्न या बलवर्द्धन के लिए आप शत्रुनिवारक होकर वृत्रों (अवरोधक आवरणों) को दूर करें । आप समुद्र (सागर या अन्तरिक्ष) से शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं, अत: आपका नाम 'सनिस्रस' (पराक्रमी) है । तेरहवाँ माह (पुरुषोत्तम मास) इन इन्द्र (सूर्य) का आवास होता है ॥४ ॥

९६७.न्वे३तेनारात्सीरसौ स्वाहा । तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः॥

निश्चितरूप से इस (पूर्वोक्त) क्रम के द्वारा ही इसने सिद्धि प्राप्त की है । आपके लिए यह हवि समर्पित है । हे तीक्ष्ण आयुध तथा तीक्ष्ण अस्त्र वाले सोम और रुद्र देवो ! इस युद्ध में आप हमें सुख प्रदान करें ॥५ ॥

९६८.अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः॥

इस विद्या के द्वारा ही इसने सिद्धि उपलब्ध की थी । आपके लिए यह हवि समर्पित है । हे तीक्ष्ण आयुध तथा अस्त्र वाले सोम और रुद्र देवो ! इस युद्ध में आप हमें सुख प्रदान करें ॥६ ॥

९६९.अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः॥

इस प्रक्रिया के द्वारा ही इसने सिद्धि प्राप्त की थी । आपके लिए यह हवि समर्पित है । हे तीक्ष्ण आयुध तथा अस्त्र वाले सोम और रुद्र देवो ! इस युद्ध में आप हमें सुख प्रदान करें ॥७ ॥

९७०. मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥८ ॥

हे सोम और रुद्र देवो ! आप हमें पाप से छुड़ाएँ और यज्ञ को ग्रहण करते हुए हमें अमरत्व प्रदान करें ॥८ ॥

९७१. चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये३स्माँ अभ्यघायन्ति ॥९ ॥

हे आँख, मन तथा मन्त्र सम्बन्धी आयुध ! आप हथियारों के भी हथियार हैं । जो हमको विनष्ट करने की कामना करते हैं, वे शस्त्ररहित हो जाएँ ॥९ ॥

९७२. यो३स्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१० ॥

हिंसक पाप कर्मों की कामना वाले जो पापी लोग आँख, मन, चित्त तथा संकल्प से हमें क्षीण करना चाहते हैं, उनको हे अग्निदेव ! आप अपने शस्त्र से शस्त्रहीन करें । यह हवि आपके लिए समर्पित है ॥१० ॥

९७३. इन्द्रस्य गृहोऽसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्र के घर हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्व शरीर तथा सर्वपुरुष हैं । अपने समस्त साथियों सहित हम आपकी शरण में हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥११ ॥

९७४. इन्द्रस्य शर्मासि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्रदेव के सुख-स्थल हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्वशरीर तथा सर्वपुरुषरूप हैं । अपने समस्त साथियों सहित हम आपकी शरण में हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥१२ ॥

९७५. इन्द्रस्य वर्मासि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्रदेव के कवच हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्वशरीर तथा सर्वपुरुष हैं । अपने समस्त साथियों सहित, हम आपकी शरण में आते हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥१३ ॥

९७६. इन्द्रस्य वरूथमसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४ ॥

हे अग्ने ! आप इन्द्रदेव के ढाल स्वरूप हैं । आप सर्वगामी, सर्व आत्मा, सर्वशरीर तथा सर्वपुरुष हैं । अपने समस्त साथियों सहित हम आपकी शरण में आते हैं और आप में प्रविष्ट होते हैं ॥१४ ॥

[७ - अरातिनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - १-३,६-१० अरातिसमूह, ४-५ सरस्वती। **छन्द** - अनुष्टुप्, १ विराट् गर्भा प्रस्तारपंक्ति, ४ पथ्याबृहती, ६ प्रस्तारपंक्ति ।]

इस सूक्त में 'अराति' तथा 'सरस्वती' का उल्लेख है। 'अराति' को अदानशीलता अथवा असमृद्धि की देवी या वृत्ति कहा गया है। इन्हें लक्ष्मी (दानशील-समृद्धिमूलक) देवी के विपरीत गुण वाली माना जाता है। लक्ष्मी एवं अराति दोनों शक्तियों के सदुपयोग भी होते हैं तथा दुरुपयोग भी। लक्ष्मी-समृद्धि का सदुपयोग निर्वाह, यजन एवं दानादि में है तथा दुरुपयोग अहंकार तथा व्यसनों में होता है। इसी प्रकार 'अराति' का दुरुपयोग दीनता, कंजूसी, संकीर्णता आदि में होता है तथा सदुपयोग मितव्ययिता, सादगी, निस्पृहता आदि दिव्य वृत्तियों के विकास में होता है। सरस्वती के उपासक समृद्धि की तरह अराति (गरीबी) का भी सदुपयोग जानते हैं तथा उस वृत्ति या देवी से भी निकट आकर दिव्य प्रवृत्तियाँ जाग्रत् करने की प्रार्थना करते हैं। इस सूक्त में ऋषि इसी प्रकार के भाव व्यक्त कर रहे हैं-

९७७. आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥१ ॥

हे अराते ! आप दिव्य सम्पदा से हमें पूर्ण करें और हमें घेरकर न बैठें। हमारे द्वारा लाई हुई दक्षिणा को आप रोककर न रखें। ईर्ष्यायुक्त असमृद्धि तथा अदान की अधिष्ठात्री देवी के लिए हमारा नमन है ॥१ ॥

९७८. यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम्। नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥

हे अराते ! आप जिस बकवादी (अभावों का बखान करने वाले) मनुष्य को अपने सम्मुख रखती हैं, उसको हम दूर से ही नमन करते हैं; परन्तु आप हमारी इस भावना को पीड़ित न करना ॥२ ॥

[ऋषि गरीबी का सम्मान रखना चाहते हैं; किन्तु उसके आधार पर अपनी उदारभावना को कुण्ठित नहीं होने देना चाहते ।]

९७९. प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम्। अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥

देवों (सद्‌गुणों की दैवी सम्पदा) के प्रति की हुई हमारी भक्ति दिन-रात बढ़ती रहे। हम 'अराति' के आश्रय में जाते (सादा जीवन स्वीकार करते) हैं और उन्हें नमस्कार करते हैं ॥३ ॥

९८०. सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे। वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥

देव- आवाहित यज्ञों में, देवों को हर्षित करने वाली मधुर वाणी का हम उच्चारण करते हैं और 'अनुमति', 'सरस्वती' तथा 'भग' देवों के शरणागत होकर हम उनका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

९८१. यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा। श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥

मन से जुड़ी सरस्वती (वाणी) से हम जिस वस्तु (दिव्य सम्पदा) की याचना करते हैं, सोमदेव द्वारा प्रदान की गयी श्रद्धा उसे प्राप्त करे ॥५॥

[मन से निकली वाणी से याचना करने पर दिव्यसम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा उन्हें श्रद्धा- भावना में धारण किया जाता है ।]

९८२. मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥६ ॥

हे अराते ! आप हमारी वाणी तथा भक्ति को अवरुद्ध न करें। दोनों -इन्द्र और अग्नि देव हमें चारों ओर से ऐश्वर्य प्राप्त कराएँ। समस्त देव हमें देने की अभिलाषा करें और हमारे रिपुओं के विपरीत चलें ॥६ ॥

९८३. परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥७ ॥

हे असमृद्धे (दरिद्रता) ! हम आपको क्लेश तथा पीड़ा देने वाली के रूप में जानते हैं, आप हमसे परे चली जाएँ। हे अराते ! हम आपकी विघटनकारी शक्ति को दूर करते हैं ॥७॥

९८४. उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम्।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥८॥

हे अराते ! आप मनुष्यों को आलस्य से संयुक्त करके नग्न (लज्जास्पद) स्थिति प्रदान करती हैं और उनके संकल्पों को धनरहित करके असफल करती हैं ॥८॥

९८५. या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥९॥

जो अत्यन्त विशाल होकर समस्त दिशाओं में व्याप्त हो गई है, उस स्वर्णिम रोमों वाली (लाभप्रद दिखने वाली) असमृद्धि को हम नमस्कार करते हैं ॥९॥

९८६. हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही।
तस्यै हिरण्यद्रा पयेऽरात्या अकरं नमः ॥१०॥

जो स्वर्णिम रंग वाली 'हिरण्यकशिपु' (राक्षस के वशीभूत या स्वर्णिम आवरण वाली) मही (पृथ्वी के समान या महान्) रमणीयता को नष्ट करने वाली है, उस अदानशीलता को हम नमस्कार करते हैं ॥१०॥

[८ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १-२ अग्नि, ३ विश्वेदेवा, ४-९ इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३-४ भुरिक् पथ्यापंक्ति, ६ आस्तारपंक्ति, ७ द्व्युष्णिग्गर्भा पथ्यापंक्ति, ९ त्र्यवसाना षट्पदा द्व्युष्णिग्गर्भा जगती ।]

'९८७. वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह। अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप बलशाली ओषधि गुणयुक्त वृक्ष के ईंधन से देवों के लिए घृत पहुँचाएँ और उन्हें हर्षित करें। हमारे आवाहन पर वे सब हमारे यज्ञ में पधारें ॥१॥

९८८. इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु। इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे। तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में पधारें और हमारे द्वारा की हुई स्तुति को सुनें। आपकी तरफ अग्रगामी याजक हमारे संकल्प के अनुकूल रहें। हे उत्पन्न हुए लोगों को जानने वाले तथा शरीर को वश में रखने वाले इन्द्रदेव ! उन याजकों के द्वारा हम वीर्य प्राप्त कर सकें ॥२॥

९८९. यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥३॥

हे देवो ! आपकी भक्ति न करने वाले जो मनुष्य घात करना चाहते हैं, उनकी हवि को अग्निदेव न पहुँचाएँ और देवगण उनके यज्ञ में न जाकर हमारे ही यज्ञ में पधारें ॥३॥

९९०. अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥४॥

हे योद्धाओ ! आप इन्द्रदेव के (अभय) वचनों से बढ़ें और रिपुओं का संहार करें । जिस प्रकार भेड़िया, भेड़ों को मारता है, उसी प्रकार आप रिपुओं को मथ डालें । आप से वह जीवित न बचे, आप उसके प्राण को भी बींध डालें ॥४ ॥

९९१. यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये । इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥५ ।

हे इन्द्रदेव ! हमारी अवनति के लिए इन रिपुओं ने जिस ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाया है, वह आपके पैरों के नीचे हो । हम उसे मृत्यु की ओर फेंकते हैं ॥५ ॥

९९२. यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥६ ॥

हे देव ! 'तनूनपान' और 'परिपाण' क्रिया करते समय यदि रिपुओं ने पहले ही मन्त्रमय कवच बना लिए हों, तो उस समय उनके द्वारा कहे हुए वचनों को आप असफल करें ॥६ ॥

९९३. यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ॥७ ॥

हे वृत्र-संहारक इन्द्रदेव ! हमारे रिपुओं ने जिन योद्धाओं को अग्रगामी बनाया था और अभी जिनको बना रहे हैं, उनको आप पुन: पीछे करें । जिससे हम रिपुओं के सैन्य दल को विनष्ट कर सकें ॥७ ॥

९९४. यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वे३हमधरांस्तथामूञ्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८ ॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव ने उत्तम स्तुति वचनों को प्राप्त करके, रिपुओं को अपने पैरों तले रौंद डाला था, उसी प्रकार हम भी रिपुओं को सदा के लिए तिरस्कृत करते हैं ॥८ ॥

९९५. अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥९ ॥

हे वृत्र संहारक इन्द्रदेव ! आप इस संग्राम में प्रचण्ड बनकर रिपुओं के मर्म स्थल में घाव करें । हे देव ! हम आपसे प्रेम करने वाले हैं, अत: आप इन रिपुओं पर चढ़ाई करें । हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुकूल रहकर अपना कार्य प्रारम्भ करते हैं, इसलिए आप हमारे ऊपर अनुग्रह बुद्धि रखें ॥९ ॥

[९ - आत्मा सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** -वास्तोष्पति । **छन्द** - १,५ दैवी बृहती, २,६ दैवी त्रिष्टुप्, ३-४ दैवी जगती, ७ पञ्चपदा विराट् उष्णिक् बृहतीगर्भा जगती, ८ त्र्यवसाना चतुष्पदा पुरस्कृति त्रिष्टुप् बृहतीगर्भातिजगती ।]

९९६. दिवे स्वाहा ॥१ ॥

द्युलोक के अधिष्ठाता देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥१ ॥

९९७. पृथिव्यै स्वाहा ॥२ ॥

पृथ्वी के अधिष्ठाता देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥२ ॥

९९८. अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥३ ॥

अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥३ ॥

९९९. अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४ ॥

(हृदय के) अन्तरिक्ष में विद्यमान देवता के लिए यह हवि समर्पित है ॥४ ॥

१०००. दिवे स्वाहा ॥५ ॥

स्वर्गलोक (गमन) के लिए यह हवि समर्पित है ॥५ ॥

१००१. पृथिव्यै स्वाहा ॥६ ॥

पृथ्वी (पर हर्षपूर्वक निवास करने) के लिए यह हवि समर्पित है ॥६ ॥

१००२. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो३न्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ॥७ ॥

सूर्यदेव हमारे नेत्र हैं, वायुदेव प्राण हैं, अन्तरिक्षदेव आत्मा और पृथ्वी शरीर है । यह हम अमर नाम वाले हैं, द्यावापृथिवी द्वारा संरक्षित होने के लिए हम अपनी आत्मा को उनके आश्रित करते हैं ॥७ ॥

१००३. उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम्। आयुष्कृदायुष्पत्नी
स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा। आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम्॥८ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमारे आयु, बल, कर्म, कृत्या, बुद्धि तथा इन्द्रिय को उत्कृष्ट बनाएँ । हे आयुष्य बढ़ाने वाले तथा आयु की रक्षा करने वाले स्वधावान् द्यावा-पृथिवी आप दोनों हमारे संरक्षक हैं । आप हममें विद्यमान रहकर हमारी सुरक्षा करें, हमें विनष्ट न होने दें ॥८ ॥

[१० - आत्मरक्षा सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - वास्तोष्पति । **छन्द** - यवमध्यात्रिपदागायत्री, ७ यवमध्याककुप्, ८ पुरोधृति द्व्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिस्त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती ।]

पहले वाले सूक्त (क्र० ९) में साधक ने दिव्य शक्तियों के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए स्वयं को उनके प्रति समर्पित किया है । इस आस्था से साधक को दिव्य संरक्षण प्राप्त होता है, जिसे अश्म - वर्म (पत्थर का अर्थात् अत्यन्त दृढ़ कवच) कहा गया है । उसी से रक्षा की प्रार्थना (मंत्र क्र० १ से ७ तक) की गयी है । आठवें मंत्र में, अपने व्यक्तित्व में विराट् सृष्टि के तेजस्वी अंशों के समावेश का भाव है । वृक्ष से बीज तथा बीज से वृक्ष के चक्र की तरह दिव्यता से मनुष्य तथा मनुष्य से दिव्यता का चक्र गतिशील रहता है । इस दिव्य भाव रूपी कवच के भीतर ही मनुष्यता सुरक्षित रहती है-

१००४. अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशो ऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात्॥१ ।

हे अश्मवर्म (पत्थर का कवच) ! आप हमारे हैं । हमें मारने की इच्छा वाले जो मनुष्य पूर्व दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥१ ॥

१००५. अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशो ऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात्।

हे अश्मवर्म !आप हमारे हैं । जो मनुष्य दक्षिण दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥२ ।

१००६. अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशो ऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात्॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं । जो मनुष्य पश्चिम दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥३ ।

१००७. अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशो ऽघायुरभिदासात्।
एतत् स ऋच्छात्॥४ ॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं । जो मनुष्य उत्तर दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥४ ॥

१००८. अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशो ऽघायुरभिदासात्।
एतत् स ऋच्छात् ॥५ ॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। जो पापी ध्रुव दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥५ ॥

१००९. अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशो ऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥६ ॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। जो मनुष्य ऊर्ध्व दिशा से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं नष्ट हो जाएँ ॥६ ॥

१०१०. अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्।
एतत् स ऋच्छात् ॥७ ॥

हे अश्मवर्म ! आप हमारे हैं। हमें मारने की इच्छा वाले जो पापी अन्तर्दिशाओं से हमें विनष्ट करना चाहते हैं, वे स्वयं ही नष्ट हो जाएँ ॥७ ॥

१०११. बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ। सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः
शरीरम्। सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ॥८ ॥

बृहत् चन्द्रदेव से हम मन का आवाहन करते हैं, वायुदेव से प्राण-अपान, सूर्यदेव से चक्षु, अन्तरिक्ष से श्रोत्र, धरती से शरीर तथा मनोयोगपूर्वक (प्रदान करने वाली) सरस्वती से हम वाणी की याचना करते हैं ॥८ ॥

[११ - संपत्कर्म सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा। **देवता** - वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १- भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति, ६ पञ्चपदा अतिशक्वरी, ११ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टि।]

१०१२. कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥१ ॥

हे अत्यधिक बलवान् तथा ऐश्वर्यवान् वरुणदेव ! पालनकर्त्ता तथा प्राणदाता सूर्यदेव से आपने क्या-क्या कहा था ? हे बारम्बार धन प्रदान करने वाले देव ! आप सूर्यदेव को (जलरूप) दक्षिणा प्रदान करते हैं और मन से हमारी चिकित्सा करते हैं ॥१ ॥

१०१३. न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥२ ॥

हम इच्छा मात्र से ही पुनः - पुनः ऐश्वर्यवान् नहीं बनते हैं; लेकिन सुख के लिए सूर्यदेव से स्तुति करने पर इस सुखपूर्ण अवस्था को प्राप्त करते हैं। हे अथर्ववेदीय ऋत्विज् ! आप किस कुशलता द्वारा जातवेदा अग्निदेव (के समान ओजस्वी) हो गये हैं ॥२ ॥

१०१४. सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥३ ॥

यह सही है कि मैं गम्भीर हूँ और वैदिक (उपचारों) के माध्यम से 'काव्य' कहलाता हूँ। जिस व्रत को मैं धारण करता हूँ, उस व्रत को मेरी महिमा के कारण कोई आर्य और दास तोड़ नहीं सकता ॥३ ॥

१०१५. न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥४ ॥

हे स्वधावान् वरुणदेव ! आपके सिवा दूसरा कोई कवि नहीं है और बुद्धि के कारण दूसरा कोई धैर्यवान् नहीं है । आप समस्त प्राणियों के ज्ञाता हैं, इसीलिए वे कपटी मनुष्य आपसे भयभीत होते हैं ॥४ ॥

१०१६. त्वं ह्य१ङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥५ ॥

हे स्वधावान् तथा नीतिवान् वरुणदेव ! आप प्राणियों के सम्पूर्ण जन्मों के ज्ञाता हैं । हे ज्ञानी वरुणदेव ! इस तेजस्वी प्रकृति से परे (ऊपर) क्या है और इस श्रेष्ठ से अवर (नीचे) क्या है ? ॥५ ॥

१०१७. एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् । तत् ते विद्वान्
वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६ ॥

इस रजोगुण युक्त (प्रकृति) से परे दूसरा एक (सतोगुण) है और उस सतोगुण से भी परे एक 'दुर्णश' अविनश्वर ब्रह्म' है । हे वरुणदेव ! आपकी महिमा को जानने वाले, हम आपसे कहते हैं कि हमारे सम्मुख कुत्सित व्यवहार करने वाले लोग अधोमुखी हों और हीनभाव वाले लोग भूमि पर नीचे होकर चलें ॥६ ॥

१०१८. त्वं ह्य१ङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पर्णीँ रभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥७ ॥

हे स्नेही वरुणदेव ! प्राप्त होने वाले धन के अवसरों के प्रति आप बार-बार निन्दनीय वचन कहते हैं । इन प्रार्थना (आग्रह) करने वालों के साथ आप इतने उदासीन न हों, ताकि उनकी हानि भी न हो और वे आपको धनहीन भी मानने लगें ॥७ ॥

१०१९. मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८ ॥

हे स्तोताओ ! लोग हमें ऐश्वर्यहीन न कहें, हम आपको अनुदानस्वरूप गौएँ (वाणी-इन्द्रियादि) पुनः प्रदान करते हैं । मनुष्य की समस्त अन्तर्दिशाओं में विद्यमान वाक् शक्ति से आप हमारे सम्पूर्ण स्तोत्र को पढ़ें ॥८ ॥

१०२०. आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९ ॥

हे वरुणदेव ! मनुष्यों से युक्त समस्त दिशाओं में आपके स्तोत्र संव्याप्त हों । आप जो कुछ हमें देने में सक्षम हैं, उसको हमें प्रदान करें । आप हमारे अनुरूप 'सप्तपदा' मित्र हैं ॥९ ॥

१०२१. समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि ॥१० ॥

हे वरुणदेव ! हम दोनों समान बन्धु हैं और हमारा जन्म भी समान है; इस बात को हम जानते हैं । जो आपको नहीं प्रदान किया गया है, उन सबको हम प्रदान करते हैं । हम आपके योग्य सप्तपदा मित्र हैं ॥१० ॥

[जीव और ईश्वर, इष्ट और साधक सप्तपदा साथ-साथ सात कदम चलने वाले मित्र कहे गये हैं । उनका साथ सातों लोकों में बना रहता है । लौकिक सन्दर्भ में 'सप्तपदी' द्वारा मित्रता स्थापित करने की परिपाटी रही है ।]

१०२२. देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥११ ॥

(हे देव !) आप स्तुति करने पर देवों के लिए अन्न या आयुष्य प्रदाता देव हैं तथा विप्रों के लिए श्रेष्ठ मेधा-सम्पन्न विप्र (विज्ञान) हैं । हे स्वधावान् वरुणदेव ! देवों के बन्धु और हमारे पितारूप अथर्ववेत्ताओं को आपने उत्पन्न किया है । अत: आप हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें । आप हमारे श्रेष्ठ बन्धु तथा मित्र हैं ॥११ ॥

[१२ - ऋतयज्ञ सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरा । **देवता** - जातवेदा अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति ।]

१०२३. समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१ ॥

प्राणिमात्र के हितैषी हे मित्र अग्ने ! आप महान् गुण सम्पन्न होकर प्रज्वलित हों, कुशल याजकों द्वारा निर्धारित यज्ञ-मण्डप में देवगणों को आहूत करें तथा यजन करें । आप श्रेष्ठ चेतनायुक्त, विद्वान् तथा देवगणों के दूत हैं ॥१ ॥

१०२४. तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२ ॥

शरीर के रक्षक और श्रेष्ठ वाणी वाले हे अग्निदेव ! आप सत्यरूप यज्ञ के मार्गों को वाक् माधुर्य से सुसंगत करते हुए हवियों को ग्रहण करें । विचारपूर्वक ज्ञान और यज्ञ देवगणों के लिए ग्रहण कर उन तक पहुँचाएँ ॥२ ॥

१०२५. आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥३ ॥

देवताओं को आहूत करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रार्थना करने योग्य वन्दनीय तथा वसुओं के समान प्रेम करने वाले हैं । आप देवताओं के होतारूप में यहाँ पधार कर उनके लिए यज्ञ करें ॥३ ॥

१०२६. प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४ ॥

दिन के प्रारम्भकाल में भूमि या यज्ञभूमि को ढकने वाली ये कुशाएँ बहुत ही उत्तम हैं । ये देवताओं तथा अदिति के निमित्त सुखपूर्वक आसीन होने के योग्य हैं । यह यज्ञवेदी को ढकने के लिए फैलाईं जाती हैं ॥४ ॥

१०२७. व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५ ॥

जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति का विकास करने वाली होती हैं, वैसे ही देवत्व सम्पन्न महती 'द्वार' देवियाँ रिक्त स्थान वाली, सबको आने-जाने के लिए मार्ग देने वाली तथा देवगणों को सुगमता से प्राप्त होने वाली हों ॥५ ॥

१०२८. आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६ ॥

उषा और रात्रि देवियाँ मनुष्यों के लिए विभिन्न प्रकार के सुख प्रकट करें । वे यज्ञस्थल पर आकर प्रतिष्ठित हों; क्योंकि वे यज्ञ भाग की अधिकारिणी (स्वामिनी) हैं । वे दोनों दिव्यलोकवासिनी, अतिगुणवती, श्रेष्ठ आभूषणादि से शोभायुक्त, उज्ज्वल, तेजस्वीस्वरूप वाली तथा सौन्दर्य को धारण करने वाली हैं ॥६ ॥

१०२९. दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७ ॥

दिव्य गुणों से युक्त 'होता', अग्निदेव और आदित्यगण सर्वश्रेष्ठ वेदमन्त्रों के ज्ञाता तथा मनुष्यों के लिए यज्ञ की रचना करने वाले हैं । वे देवपूजन के निमित्त यज्ञीय अनुष्ठानों के प्रेरक, कर्मकुशल, स्तुतिकर्त्ता तथा पूर्व दिशा के प्रकाश को भली प्रकार प्रकट करने वाले हैं ॥७ ॥

१०३०. आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥८ ॥

देवी भारती का हमारे यज्ञ में शीघ्रता से आगमन हो । इस यज्ञ की वार्ता को स्मरण करके देवी 'इला' मनुष्यों के समान यहाँ पदार्पण करें तथा देवी सरस्वती भी शीघ्र ही यहाँ पधारें । सत्कर्मशीला ये तीनों देवियाँ इस यज्ञ में आकर सुखकारी आसन पर प्रतिष्ठित हों ॥८ ॥

१०३१. य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९ ॥

हे होताओ ! द्यावा-पृथिवी (प्राणियों को) जन्म देने वाली हैं । उन्हें त्वष्टादेव ने सुशोभित किया है । आप ज्ञानवान्, श्रेष्ठ कामनायुक्त तथा यज्ञशील हैं, अतएव आज इस यज्ञ में उन त्वष्टादेव की यथोचित अर्चना करें ॥९ ॥

१०३२. उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१० ॥

हे यूप (यज्ञ के स्तम्भ) ! आप स्वयं ही अपनी सामर्थ्य से देवों के निमित्त अन्नादि और अन्य यजनीय सामग्री श्रेष्ठ रीति से लाकर यथासमय प्रस्तुत करें । वनस्पतिदेव, शमितादेव और अग्निदेव मधुर घृतादि के साथ यजनीय हविष्यान्न का सेवन करें ॥१० ॥

१०३३. सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११ ॥

प्रदीप्त होते ही अग्निदेव ने यज्ञीय भावना को प्रकट किया और देवताओं के अग्रणी दूत बने । इस यज्ञ के प्रमुख स्थानों में होता की भावना के अनुरूप वेदमन्त्रों का उच्चारण हो । स्वाहा के साथ यज्ञाग्नि में समर्पित किये गये हविष्यान्न को देवगण ग्रहण करें ॥११॥

[१३ - सर्पविषनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - गरुत्मान् । देवता - तक्षक । **छन्द** - अनुष्टुप्, १,३ जगती, २ आस्तार पंक्ति, ५ त्रिष्टुप्, ६ पथ्यापंक्ति, ९ भुरिक् जगती, १०-११ निचृत् गायत्री ।]

१०३४. ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥१ ॥

द्युलोक के देवता वरुणदेव ने हमें उपदेश दिया है, उनके प्रचण्ड वचनों (मंत्रों) से हम आपके (विषधर) विष को दूर करते हैं । जो विष मांस में घुस गया है, जो नहीं घुसा है अथवा जो ऊपर ही चिपका हुआ है, उस सब विष को हम ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार रेत में जल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आपके विष को पूर्णतः नष्ट करते हैं ॥१ ॥

१०३५. यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥२ ॥

आपके जल शोषक विष को हमने इन (नाड़ियों) के अन्दर ही पकड़ लिया है । आपके उत्तम, मध्यम और अधम विष - रस को हम ग्रहण करते हैं, वह हमारे (उपचार) भय से विनष्ट हो जाएँ ॥२ ॥

१०३६. वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥३ ॥

हमारे शब्द (मन्त्र) वर्षणशील बादल के सदृश शब्द एवं शक्ति वाले हैं । ऐसे प्रचण्ड वचनों के द्वारा हम आप (विषधर) को बाँधते हैं । मनुष्यों के द्वारा हमने आपके विष को रोक लिया है । जिस प्रकार ज्योति देने वाला सूर्य अंधकार के बीच उदित होता है, उसी प्रकार यह पुरुष उदय को प्राप्त हो ॥३ ॥

१०३७. चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥४ ॥

हे सर्प ! हम अपने नेत्रबल से तेरे नेत्रबल को नष्ट करते हैं और विष से विष को नष्ट करते हैं । हे सर्प ! तुम मर जाओ, जीवित न रहो ।तुम्हारा विष तुम्हारे अन्दर ही लौट जाए ॥४ ॥

१०३८. कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५ ॥

हे जंगल में घूमने वाले, धब्बों वाले, घास में निवास करने वाले, भूरे रंग वाले , कृष्ण तथा निन्दनीय सर्पो ! तुम हमारा कथन सुनो । तुम हमारे मित्र के घर के पास निवास न करो । हमारी इस बात को दूसरे सर्पों को सुनाते हुए अपने ही विष में रमते रहो ॥५ ॥

१०३९. असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥६ ॥

गीले स्थान में निवास करने वाले, काले और भूरे रंगवाले, जल से दूर रहने वाले तथा सबको परास्त करने वाले क्रोधी सर्पो के विष को हम वैसे ही उतारते हैं, जैसे धनुष से डोरी और रथों के बन्धन को उतारते हैं ॥६ ॥

१०४०. आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥७ ॥

हे सर्पो !तुम्हारे माता और पिता चिपकने वाले तथा न चिपकने वाले हैं । हम तुम्हारे भाइयों को सब प्रकार से जानते हैं ।तुम निर्वीर्य होकर क्या कर सकते हो ? ॥७ ॥

१०४१. उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८ ॥

विशालकाय 'गूला' वृक्ष से पैदा हुई, उसकी पुत्री सर्पिणी, काली सर्पिणी की दासी है । दाँतों से क्रोध प्रकट करने वाली इन सर्पिणियों का दुःखदायक विष प्रभावहीन हो जाए ॥८ ॥

१०४२. कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥९ ॥

पर्वतों के समीप विचरने वाली और कान वाली 'साही' ने कहा कि जो धरती को खोदकर निवास करने वाली सर्पिणियाँ हैं, उनका विष प्रभावहीन हो जाए ॥९ ॥

['साही' विषधर जीवों के विष के उपचार में किस प्रकार सहायक हो सकती है, यह शोध का विषय है ।]

१०४३. ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् । ताबुवेनारसं विषम् ॥१० ॥

आप 'ताबुव' नहीं हैं । नि:सन्देह आप 'ताबुव' नहीं हैं; क्योंकि 'ताबुव' के द्वारा विष प्रभावहीन हो जाता है ।

१०४४. तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् । तस्तुवेनारसं विषम् ॥११ ॥

आप 'तस्तुव' नहीं हैं । नि:संदेह आप 'तस्तुव' नहीं हैं; क्योंकि 'तस्तुव' के द्वारा विष प्रभावहीन हो जाता है।

[ताबुव और तस्तुव क्या हैं ? इस सन्दर्भ में शोध अपेक्षित है । कौशिक सूत्र में सर्प विष चिकित्सा के क्रम में कड़वी तुम्बी में जल भरकर मं०क्र० १० के साथ पीड़ित व्यक्ति को पिलाने का प्रयोग लिखा है । कुछ विद्वान् इन्हें कड़वी तोरई के साथ जोड़ते हैं, तो कुछ इन्हें ओषधि विशेष कहते हैं ।]

[१४- कृत्यापरिहरण सूक्त]

[**ऋषि -** शुक्र । **देवता -** १-२ ओषधि, ३-१३ कृत्या परिहरण । **छन्द -** अनुष्टुप्, ३,५,१२ भुरिक् अनुष्टुप्, ८ त्रिपदा विराट् अनुष्टुप्, १० निचृत् बृहती, ११ त्रिपदासाम्नी त्रिष्टुप्, १३ स्वराट् अनुष्टुप् ।]

१०४५. सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१ ॥

(हे ओषधे !) सुपर्ण (गरुड़ या सूर्य) ने आपको प्राप्त किया था और सूकर (आदिबाराह) ने अपनी नाक से आपको खोदा था । हे ओषधे ! कृत्या प्रयोग द्वारा हमें मारने वालों को आप विनष्ट करें ॥१ ॥

१०४६. अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥२ ॥

हे ओषधे ! आप दु:ख देने वाले यातुधानों को विनष्ट करें और कृत्याकारियों को मारें । जो हमें मारने की कामना करते हैं, उनको भी आप विनष्ट करें ॥२ ॥

१०४७. रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३ ॥

हे देवो ! हिंसा करने वालों के अस्त्र को उसकी त्वचा के ऊपर घाव करके पृथक् करें । जिस प्रकार मनुष्य सोने को प्रेमपूर्वक ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह कृत्याकारी उस कृत्या को मोहग्रस्त होकर ग्रहण करे ॥३ ॥

१०४८. पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥४ ॥

हे ओषधे ! आप कृत्या को कृत्याकारियों के पास हाथ पकड़कर पुन: ले जाएँ और उन कृत्याकारियों को कृत्या के सम्मुख रख दें, जिससे वह कृत्याकारियों को विनष्ट कर डाले ॥४ ॥

१०४९. कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५ ॥

कृत्याकारी को ही कृत्या प्राप्त हो और अभिशाप देने वाले को अभिशाप प्राप्त हो । सुखदायी रथ की गति से वह कृत्या कृत्याकारी के पास पुन: पहुँच जाए ॥५ ॥

१०५०. यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६ ॥

चाहे स्त्री अथवा पुरुष ने आपको पापपूर्ण कृत्य करने के लिए प्रेरित किया हो, हम अश्व पर रस्सी पटकने (कशाघात) के समान कृत्या को कृत्याकारी पर ही पटकते हैं ॥६ ॥

१०५१. यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७ ॥

हे कृत्ये ! यदि आप देवों द्वारा अथवा मनुष्यों द्वारा प्रेरित की गयी हैं, तो भी हम इन्द्र के सखा आपको पुनः लौटाते हैं ॥७ ॥

१०५२. अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८ ॥

हे युद्ध जीतने वाले अग्ने ! आप कृत्या की सेनाओं को परास्त करें । इस प्रतिहरण कर्म के द्वारा हम कृत्या को कृत्या करने वालों के पास पुनः लौटाते हैं ॥८ ॥

१०५३. कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९ ॥

हे संहारक साधनों से युक्त कृत्ये ! आप उस कृत्याकारी को बेधकर विनष्ट कर डालें । जिसने आपको प्रेरित नहीं किया है, उसको मारने के लिए हम आपको उत्तेजित नहीं करते हैं ॥९ ॥

१०५४. पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१० ॥

हे कृत्ये ! पिता के पास पुत्र की तरह आप प्रयोगकर्त्ता के समीप जाएँ । जिस प्रकार लिपटने वाला सर्प दबने पर काट लेता है, उसी प्रकार आप उसे डसें । जिस प्रकार (बीच से टूटने पर) बन्धन पुनः अपने ही अंग में लगता है, उसी प्रकार हे कृत्ये ! आप उस कृत्याकारी के पास पुनः जाएँ ॥१० ॥

१०५५. उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ॥११ ॥

जिस प्रकार हथिनी, मृगी तथा एणी (कृष्ण) मृगी (आक्रमणकारी पर) झपटती है, उसी प्रकार वह कृत्या कृत्याकारी पर झपटे ॥११ ॥

१०५६. इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१२ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! वह कृत्या, कृत्याकारी पर बाण के समान सीधी गिरे और मृग के समान उस कृत्याकारी को पुनः पकड़ ले ॥१२ ॥

१०५७. अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥१३ ॥

वह कृत्या अग्नि के सदृश कृत्याकारी से प्रतिकूल आचरण करती हुई उसके पास पहुँचे और जिस प्रकार पानी किनारों को काटता हुआ बढ़ता है; उसी प्रकार वह कृत्या, कृत्याकारी के अनुकूल होकर उसके पास पहुँचे । वह कृत्या सुखकारी रथ के समान कृत्याकारी पर पुनः चली जाए ॥१३ ॥

[१५ - रोगोपशमन सूक्त]

[**ऋषि** - विश्वामित्र। **देवता** - मधुलौषधि। **छन्द** - अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद् बृहती, ५,७-९ भुरिक् अनुष्टुप्।]

१०५८. एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे ऋत (यज्ञ) से उत्पन्न एवं ऋतयुक्त ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले एक हों अथवा दस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥१ ॥

१०५९. द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे ऋत (यज्ञ या सत्य) से उत्पन्न एवं ऋतमयी ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले दो हों अथवा बीस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥२ ॥

१०६०. तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋत (सत्य या जल) युक्त ओषधे ! हमारी बुराई करने वाले तीन हों अथवा तीस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥३ ॥

१०६१. चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥४ ॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले चार हों अथवा चालीस हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥४ ॥

१०६२. पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥५ ॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी बुराई करने वाले पाँच हों अथवा पचास हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥५ ॥

१०६३. षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे यज्ञ के लिए उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी बुराई करने वाले छह हों अथवा साठ हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥६ ॥

१०६४. सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥७ ॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले सात हों अथवा सत्तर हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥७ ॥

१०६५. अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले आठ हों अथवा अस्सी हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥८ ॥

१०६६. नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले नौ हों अथवा नब्बे हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥९ ॥

१०६७. दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी निन्दा करने वाले दस हों या सौ हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥१० ॥

१०६८. शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥

हे यज्ञार्थ उत्पन्न ऋतमयी ओषधे ! हमारी बुराई करने वाले सौ हों अथवा हजार हों, आप मधुरता उत्पन्न करने वाली होकर हमारी वाणी को मधुर करें ॥११ ॥

[१६ - वृषरोगशमन सूक्त]

[**ऋषि** - विश्वामित्र। **देवता** - एकवृष। **छन्द** - साम्नी उष्णिक्, २,३,६ आसुरी अनुष्टुप्, ११ आसुरी।]

मंत्र क्र०१ से १० तक एक वृषः द्विवृषः ....दशवृषः सम्बोधन के साथ मनुष्य को 'सृज अरसोऽसि' कहा गया है। वृष शब्द बल का भी पर्याय है तथा वृष का अर्थ सृजन सामर्थ्ययुक्त बैल भी होता है। मनुष्य की दसों इन्द्रियाँ अथवा शक्ति की इकाइयाँ सृजनशील होनी चाहिए, अन्यथा वे निरर्थक कही जायेंगी। ग्यारहवें मन्त्र में उसे केवल एकादशः (ग्यारहवाँ) कहा गया है, वृष विशेषण उसके साथ नहीं जोड़ा गया है, इसका अर्थ है कि यह ग्यारहवाँ तत्त्व पूर्व दसों से भिन्न है।

ग्यारहवाँ 'मन' इन्द्रियों से भिन्न होता है। उसे 'अप उदक' कहा है। पानी का 'उदक' नाम इसलिए है कि वह वाष्पीभूत होकर ऊपर उठता है। 'अप उदक' का अर्थ हुआ ऊपर उठने की प्रवृत्ति से युक्त। मन का स्वभाव इन्द्रियों की ओर बहने का होता है- यह अप उदक वृत्ति है। अप उदक का अर्थ उदक से परे भी हो सकता है। इस भाव से मन को इन्द्रिय रसों से परे होना माना गया है। सूक्त में इन्द्रिय-सामर्थ्यों को सृजनशील होने तथा मन को इन्द्रिय-रसों से परे होने का बोध कराया गया प्रतीत होता है-

१०६९. यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप एक वृष (शक्ति की एक इकाई) से सम्पन्न हैं, तो आप और सृजन करें, अन्यथा आप रसरहित (सामर्थ्यहीन) माने जायेंगे ॥१ ॥

१०७०. यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥२ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप दो वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो आप सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य समझे जायेंगे ॥

१०७१. यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥३ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप तीन वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप सामर्थ्यहीन माने जायेंगे ॥

१०७२. यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥४ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप चार वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप रसहीन समझे जायेंगे ॥४ ॥

१०७३. यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥५ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप पाँच वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥५ ॥

१०७४. यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥६ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप छह वृष (शक्ति) से युक्त हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥६ ॥

१०७५. यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥७ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप सात वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो आप सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे॥

१०७६. यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥८ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप आठ वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥८ ॥

१०७७. यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥९ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप नौ वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥९ ॥

१०७८. यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१० ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप दस वृष (शक्ति) से सम्पन्न हैं, तो सृजन करें, अन्यथा आप अयोग्य माने जायेंगे ॥१० ॥

१०७९. यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११ ॥

(हे मनुष्य !) यदि आप (उपर्युक्त दस वृष शक्तियों से रहित) ग्यारहवें हैं, तो उदकरहित या उससे परे हैं ॥११ ॥

[१७ - ब्रह्मजाया सूक्त]

[**ऋषि** - मयोभू । **देवता** - ब्रह्मजाया । **छन्द** - अनुष्टुप्, १-६ त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता 'ब्रह्मजाया' हैं । 'जाया' का सामान्य अर्थ पत्नी लिया जाता है, इस आधार पर अनेक आचार्यों ने इस सूक्त का अर्थ ब्राह्मण की एकनिष्ठ पत्नी के संदर्भ में किया है । यह ठीक भी है; किन्तु मन्त्रोक्त गूढ़ताओं का समाधान इतने मात्र से होता नहीं दिखता । मनुस्मृति ९.८ के अनुसार जाया का अर्थ है-"जिसके माध्यम से पुनः जन्म होता हैं ।" ब्रह्म या ब्राह्मण का जन्म 'ब्रह्मविद्या' से ही होता है । ब्रह्म या ब्राह्मण ब्रह्मविद्या के माध्यम से ही नव सृजन की प्रक्रिया आगे बढ़ाते हैं । अस्तु, ब्रह्मजाया का अर्थ- ब्रह्मविद्या करने से स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के भाव सिद्ध होते हैं । उसी सन्दर्भ में मंत्रार्थों को लिया जाना अधिक युक्तिसंगत है-

१०८०. तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥१ ॥

उन्होंने पहले ब्रह्मकिल्बिष (ब्रह्म विकार- प्रकृति अथवा रचना) को कहा- व्यक्त किया । उग्र तप से पहले दिव्य आपः (मूल सक्रिय तत्त्व) तथा सोम प्रकट हुए । दूर स्थित (सूर्य) जल तथा वायु तेजस् से युक्त हुए ॥१ ॥

१०८१. सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२ ॥

संकोच का परित्याग करके राजा सोम ने पावन चरित्रवती वह ब्रह्मजाया, बृहस्पति (ज्ञानी या ब्रह्मनिष्ठ पुरुष) को प्रदान की । मित्रावरुण देवों ने इस कार्य का अनुमोदन किया । तत्पश्चात् यज्ञ-सम्पादक अग्निदेव हाथ से पकड़कर उसे आगे लेकर आये ॥२ ॥

१०८२. हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! इसे हाथ से स्पर्श करना उचित ही है; क्योंकि यह 'ब्रह्मजाया' है, ऐसा सभी देवों ने कहा । इन्हें तलाशने के लिए जो दूत भेजे गये थे, उनके प्रति इनका अनासक्ति भाव रहा (जुहू ब्रह्मनिष्ठों के अलावा अन्यों का साथ नहीं देती), जैसे शक्तिशाली नरेश का राज्य सुरक्षित रहता है, वैसे ही इनकी चरित्रनिष्ठा अडिग रही ॥३ ॥

१०८३. यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥४ ॥

ग्राम (समूह विशेष) पर गिरती हुई इस विपत्ति, अविद्या को (जानकार लोग) विरुद्ध प्रभाववाली 'तारका' कहते हैं । जहाँ यह उल्काओं की तरह (विनाशक शक्तियुक्त) गतिशील 'तारका' गिरी हो (अविद्या फैल गई हो), यह ब्रह्मजाया (ब्रह्मविद्या) उस राष्ट्र में विशेष ढंग से उलट-पुलट करके (अविद्याजनित परिपाटियों को पुनः उलटकर सीधा करके) रख देती है ॥४ ॥

१०८४. ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं१ न देवाः ॥५ ॥

हे देवगण ! सर्वव्यापी बृहस्पतिदेव विरक्त होकर ब्रह्मचर्य नियम का निर्वाह करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं। वे देवताओं के साथ एकात्म होकर उनके अंग-अवयव रूप हैं। जिस प्रकार उन्होंने सर्वप्रथम सोम के हाथों 'जुहू' को प्राप्त किया, वैसे ही इस समय भी बृहस्पतिदेव ने इसे प्राप्त किया ॥५ ॥

[ब्रह्मलीन स्थिति में बृहस्पतिदेव दिव्यवाणी या यज्ञीय प्रक्रिया छोड़कर देवों के साथ एक रूप हो जाते हैं। देवता उन्हें पुनः ज्ञान-विस्तार एवं यज्ञ प्रक्रिया संचालन के लिए जुहू से युक्त करते हैं।]

१०८५. देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥६ ॥

जो सप्तर्षिगण तपश्चर्या में संलग्न थे, उनके द्वारा तथा चिरप्राचीन देवों ने इसके विषय में घोषणा की है कि यह ब्राह्मण द्वारा ग्रहण की गई कन्या अति सामर्थ्यवती है। परम व्योम में यह दुर्लभ शक्ति धारण करती है ॥६ ॥

१०८६. ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७ ॥

जो गर्भपात होते हैं (अवाञ्छनीय का विकास क्रम क्षीण होता है)। जगत् में जो उथल-पुथल होती है तथा (लोग प्रायः) परस्पर लड़ते-भिड़ते हैं, उन सबको यह ब्रह्मजाया (ब्रह्मविद्या) नष्ट कर देती है ॥७ ॥

१०८७. उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥८ ॥

इस स्त्री (ब्राह्मी शक्ति) के पहले दस अब्राह्मण पति (ब्राह्मण -संस्कारहीन रक्षक अथवा दस प्राण-दस दिक्पाल आदि) होते हैं; किन्तु जब ब्रह्मचेतना-सम्पन्न व्यक्ति (अथवा साधक) उसको ग्रहण करता है, तो वही उसका एक मात्र स्वामी होता है ॥८ ॥

१०८८. ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः। तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः॥

मनुष्यों के पाँचों वर्गों (समाज के सभी विभागों अथवा पाँचों तत्त्वों) से सूर्यदेव यह कहते हुए विचरण करते हैं कि ब्राह्मण ही इस स्त्री का पति है। राजा (क्षत्रिय) तथा वैश्य (व्यापारी) इसके पति नहीं हो सकते ॥९ ॥

[ब्राह्मी शक्ति केवल ब्रह्मनिष्ठों के प्रति आकर्षित होती है। उसका सामान्य प्रयोग भले ही अन्य लोग भी करते रहते हों।]

१०८९. पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः। राजानः सत्यं गृहणाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः।

देवताओं और मनुष्यों ने बार-बार यह ब्रह्मजाया (ब्रह्मनिष्ठों को) प्रदान की है। सत्य स्वरूप राजाओं ने भी दुबारा शपथपूर्वक (संकल्पपूर्वक) इस सत्य निष्ठा को उन्हें प्रदान किया ॥१० ॥

[अन्य वर्ग उस ब्राह्मी चेतना को धारण करके उसको सुनियोजित करने में असफल हो जाते हैं। अतः वे उसे पुनः ब्रह्मनिष्ठों को सौंप देते हैं, तभी उसका समुचित लाभ मिलता है, जो अगले मंत्र में वर्णित है।]

१०९०. पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम्। ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते॥

ब्राह्मी विद्या को पुनः लाकर देवों ने बृहस्पतिदेव को दोष मुक्त किया। तत्पश्चात् पृथ्वी के सर्वोत्तम अन्न (उत्पादों) का विभाजन करके सभी सुखपूर्वक यज्ञीय उपासना करने लगे ॥११ ॥

[दिव्य वाणी एवं यज्ञीय प्रक्रिया से भूमि पर पदार्थों के वर्गीकरण तथा सदुपयोग का क्रम चल पड़ा। यह प्रक्रिया बार-बार दुहराई जाती है।]

१०९१. नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१२ ॥

जिस राष्ट्र में इस ब्रह्मजाया (ब्रह्म विद्या) को जड़तापूर्वक प्रतिबन्ध में डाला जाता है, उस राष्ट्र में सैकड़ों कल्याणों को धारण करने वाली 'जाया' (विद्या) भी सुख की शय्या प्राप्त नहीं कर पाती (फलित होने से वंचित रह जाती) है ॥१२ ॥

१०९२. न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१३ ॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मविद्या को जड़तापूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र के घरों में बड़े कान वाले (बहुश्रुत) तथा विशाल सिरवाले (मेधावी) पुत्र उत्पन्न नहीं होते ॥१३ ॥

१०९३. नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१४ ॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मविद्या को अज्ञानपूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र के वीर गले में स्वर्णाभूषण धारण करके (गौरवपूर्वक) लड़कियों अथवा सत्परम्पराओं के सामने नहीं आते ॥१४ ॥

१०९४. नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१५ ॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मजाया को दुराग्रहपूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र के श्यामकर्ण (श्रेष्ठ) सफेद घोड़े धुरे में नियोजित होकर भी प्रशंसित नहीं होते ॥१५ ॥

['अश्व' शक्ति के प्रतीक हैं । ब्रह्म- विद्याविहीन समाज में उन्हें श्रेष्ठ प्रयोजन में नियोजित करने पर भी प्रगति नहीं होती ।]

१०९५. नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१६ ॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मजाया को जड़तापूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस क्षेत्र में कमल के तालाब नहीं होते और न ही कमल के बीज उत्पन्न होते हैं ॥१६ ॥

[संस्कृतिनिष्ठ व्यक्तित्वों के लिए 'कमल' श्रेष्ठ प्रतीक हैं । ब्रह्मविद्याविहीन समाज में आदर्श व्यक्तित्वों का विकास नहीं होता ।]

१०९६. नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥१७ ॥

जिस राष्ट्र में ब्रह्मजाया को जड़तापूर्वक प्रतिबन्धित किया जाता है, उस राष्ट्र में दूध दुहने के लिए बैठने वाले मनुष्य इस गौ (गाय या पृथ्वी) से थोड़ा भी (निर्वाह योग्य) दूध (पोषण) नहीं निकाल पाते ॥१७ ॥

१०९७. नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥१८ ॥

जिस राष्ट्र में ब्राह्मण विशिष्ट ज्ञानरहित (या स्त्रीरहित) होकर रात्रि (अज्ञान) में पाप बुद्धि से निवास करते हैं, उस राष्ट्र में न तो कल्याण करने वाली धेनु (गौएँ या धारक क्षमताएँ) होती हैं और न भार वहन करने में समर्थ (राष्ट्र की गाड़ी खींचने वाले) वृषभ उत्पन्न होते हैं ॥१८ ॥

[१८ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि** - मयोभू । **देवता** - ब्रह्मगवी । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५, ८-९, १३ त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त तथा अगले सूक्त के देवता 'ब्रह्मगवी' हैं । इसका सामान्य अर्थ 'ब्राह्मण की गाय' होता है । मन्त्रों में भी बार-बार 'ब्राह्मण की गाय' संबोधन आया है; किन्तु मंत्रार्थों के गूढ़भावों का निर्वाह तभी होता है, जब इसे उपलक्षण मानकर चला जाए । भावार्थ के अनुसार गौ के अर्थ-गाय, भूमि, इन्द्रियाँ, किरणें आदि होते हैं । इस आधार पर ब्राह्मण की गाय का अर्थ ब्राह्मण की सम्पदा भी ग्राह्य है; परन्तु मंत्रार्थों के भाव अधिक स्पष्ट तब होते हैं, जब इसे ब्राह्मण की वृत्ति, निष्ठा या वाणी के सन्दर्भ में लिया जाए । लोकमंगल या उच्चतम आदर्शों के प्रति समर्पित प्रतिभाओं को ब्राह्मण कहा जाता रहा है । उनकी गौ या सम्पत्ति, 'ब्रह्मवृत्ति' या ब्रह्मनिष्ठा ही होती है । उसे सुरक्षित रखे बिना किसी क्षेत्र या राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता । यह सर्वमान्य तथ्य इस सूक्त से स्पष्ट होता है-

१०९८. नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥१ ॥

हे राजन् ! देवों ने इस गौ का भक्षण करने के लिए आपको नहीं प्रदान किया है । हे राजन्य ! आप ब्राह्मण की नष्ट न करने योग्य गौ को नष्ट न करें ॥१ ॥

१०९९. अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥२ ॥

इन्द्रिय-विद्रोही, आत्म-पराजित तथा पापी राजा यदि ब्राह्मण की गौओं का भक्षण करे, तो वह आज ही जीवित रहे, कल नहीं ॥२ ॥

[बहादुर कहलाने वाले बाहरी क्षेत्र में तो विजयी हो जाते हैं; परन्तु अपनी दुष्प्रवृत्तियों, अहंकार आदि से पराजित हो जाते हैं । ऐसे आत्म - पराजित व्यक्ति ही पापकर्मों में प्रवृत्त होते हैं ।]

११००. आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा । सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥

हे राजन्य ! यह ब्राह्मण की गाय (निष्ठा) तिरस्कार करने के योग्य नहीं होती; क्योंकि वह चमड़े से आवृत फुफकारने वाली साँपिन के सदृश भयंकर विषैली होती है ॥३ ॥

११०१. निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥४ ॥

जो क्षत्रिय, ब्राह्मण को अन्न की तरह समझते हैं, वे साँप के विष का पान करते हैं और अपनी 'क्षात्र-वृत्ति' का पतन करते हैं तथा वर्चस् को क्षीण करते हैं ।वे क्रोधित अग्नि के समान अपना सब कुछ नष्ट कर डालते हैं ॥४ ।

[अन्न का अस्तित्व समाप्त करके अपने आपको पुष्ट किया जाता है । उसी तरह जो शासक ब्राह्मण प्रकृति के व्यक्तियों को हानि पहुँचाते हुए अपने प्रभाव को बढ़ाने का प्रयास करते हैं, वे एक प्रकार से आत्मघात ही करते हैं ।]

११०२. य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥५ ॥

धन- अभिलाषी जो मनुष्य ब्राह्मण को कोमल समझकर बिना विचारे उसको विनष्ट करना चाहते हैं, वे देवों की ही हिंसा करने वाले होते हैं । ऐसे पापी के हृदय में इन्द्रदेव अग्नि प्रज्वलित करते हैं, ऐसे विचरते हुए मनुष्य से द्यावा-पृथिवी विद्वेष करती हैं ॥५ ॥

११०३. न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥६ ॥

जिस प्रकार अपने प्रिय शरीर को कोई विनष्ट नहीं करना चाहता, उसी प्रकार अग्नि स्वरूप ब्राह्मण को विनष्ट नहीं करना चाहिए । सोम देवता इसके सम्बन्धी हैं और इन्द्रदेव इसके शाप के पालक अर्थात् पूर्ण करने वाले हैं ॥

११०४. शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन्।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्व१द्मीति मन्यते ॥७ ॥

जो मलीन पुरुष ऐसा समझते है कि हम ब्राह्मण के अन्न को स्वादपूर्वक खा सकते हैं (उनके स्वत्व का अपहरण कर सकते हैं), वे सैकड़ों विपत्तियों को प्राप्त होते हैं । वे उसको मिटाना चाहकर भी नहीं मिटा सकते ॥७ ।

११०५. जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥८ ॥

ब्राह्मण की जिह्वा ही धनुष की डोरी होती है, उसकी वाणी ही कुल्मल (धनुष का दण्ड) होती है । तप से क्षीण हुए उसके दाँत ही बाण होते है । देवों द्वारा प्रेरित आत्मबल के धनुषों से वह देव रिपुओं को बींधता है ॥८ ॥

११०६. तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां३ न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥९ ॥

तप और क्रोध के साथ पीछा करके, तीक्ष्ण बाणों तथा अस्त्रों से युक्त ब्राह्मण, जिन बाणों को छोड़ते हैं, वे निरर्थक नहीं जाते । वे बाण शत्रु को दूर से ही बींध डालते हैं ॥९ ॥

११०७. ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥१० ॥

'वीतहव्य' वंश के (अथवा देवताओं का अंश-हव्य हड़पने वाले) जो हजारों राजा पृथ्वी पर शासन करते थे, वे ब्राह्मण की गाय (उनके शाप) को खाकर नष्ट हो गए थे ॥१० ॥

११०८.गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् । ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन्॥

जो बालों की रस्सी से बँधी हुई अन्तिम अजा को भी हड़प कर जाते हैं, उन 'वैतहव्यों' को पीटती हुई गौओं ने तहस-नहस कर दिया ॥११ ॥

[ब्राह्मणगण देववृत्तियों की पुष्टि के लिए हव्य का अंश निकालते हैं । यज्ञादि प्रक्रिया द्वारा वह हव्य नई पोषक शक्ति को उत्पन्न करते हैं । दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति उस हव्यरूप अज-अजन्मी शक्ति को भी हड़पने का प्रयास करते हैं, ऐसी स्थिति में ब्राह्मण की निष्ठा कष्ट पाती है, तब उस उत्पीड़न से उत्पन्न गौ (वाणी-शाप) द्वारा उन दुष्टों को तहस-नहस कर दिया जाता है ।]

११०९. एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्॥

सैकड़ों ऐसे 'जन' जिन्होंने (अपने शौर्य से) पृथ्वी को हिला दिया था, वे ब्राह्मण की सन्तानों को मारने के कारण बिना सम्भावना के ही पराभूत हुए ॥१२ ॥

१११०. देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥१३ ॥

वह ब्राह्मण देवहिंसक 'विष' से जीर्ण होकर (अस्थिमात्र) काया में विद्यमान रहकर, मनुष्यों के बीच में विचरण करता है । जो मनुष्य देवों के बन्धुरूप ब्राह्मण की हत्या करता है, वह पितृयान द्वारा प्राप्त होने वाले लोक को नहीं प्राप्त होता ॥१३ ॥

११११.अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते । हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ।

अग्निदेव ही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, सोमदेव हमारे सम्बन्धी हैं तथा इन्द्रदेव शापित मनुष्य के विनाशकर्त्ता हैं। इस बात को ज्ञानी लोग जानते हैं ॥१४ ॥

१११२. इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥१५ ॥

हे राजन् ! हे पृथ्वीपते ! ब्राह्मण के बाण (शाप आदि) फुफकारती सर्पिणी के सदृश भयंकर होते हैं। वह उन बाणों से हिंसको को बींधता है ॥१५ ॥

[१९ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि -** मयोभू। **देवता -** ब्रह्मगवी । **छन्द -** अनुष्टुप्, २ विराट् पुरस्ताद् बृहती, ७ उपरिष्टाद्बृहती ।]

१११३. अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥१ ॥

सृञ्जय (इस नाम वाले या जयशील) अत्यधिक बढ़ गये थे, लेकिन उन्होंने भृगुवंशियों को विनष्ट कर डाला और वे वीतहव्य (हव्य हड़पने वाले) हो गये ।अतः उनका पराभव हुआ और वे स्वर्गलोक का स्पर्श न कर सके ॥१

१११४. ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥२ ॥

जो लोग बृहत्साम वाले (वेदाभ्यासी) आंगिरस (तेजस्वी) ब्राह्मणों को सताते रहे, उनकी सन्तानों को हिंसा करने वालों (पशुओं या काल) ने दोनों जबड़ों में पीस डाला ॥२ ॥

१११५. ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥३ ॥

जो लोग ब्राह्मणों को अपमानित करते हैं अथवा जो उनसे बलपूर्वक कर वसूल करते हैं, वे खून की नदियों में बालों को खाते हुए पड़े रहते हैं ॥३ ॥

[ब्राह्मण केवल निर्वाह के लिए ही साधन स्वीकार करते रहे हैं, अधिक प्राप्त होने पर उसे स्वतः जन कल्याण के कार्यों में लगा देते थे। ऐसे त्यागी लोकसेवियों से, सामान्य नागरिकों की तरह कर वसूल करना अनुचित माना गया है। ऐसी अनीति करने वालों को नारकीय पीड़ा सहनी पड़ती है।]

१११६. ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥४ ॥

जिस कारण (अनीति से) राष्ट्र में ब्राह्मण की संतप्त की गयी "गौ" तड़फड़ाती रहती हैं, उसी (अनीति के) कारण राष्ट्र का तेज मर जाता है और उस राष्ट्र में शौर्यवान् वीर भी नहीं उत्पन्न होते ॥४ ॥

१११७. क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम् ॥५ ॥

इसको पीड़ित करना क्रूरता का कार्य है। इस (अपहत गौ) का मांस तृषा उत्पन्न करने के कारण फेंकने योग्य होता है और उसका दूध पिये जाने पर पितरों में पाप उत्पन्न करने वाला होता है। ।५ ॥

[अपहत वस्तु के उपयोग से तृष्णारूप तृषा और भड़क उठती है तथा अनीतिपूर्वक साधन प्राप्त करने के प्रयासों से पापकर्म करने पड़ते हैं, जो कर्त्ता के साथ उनके पितरों के भी पुण्य का क्षय करते हैं।]

११९८. उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥६ ॥

जो राजा अपने आप को उग्र मानकर ब्राह्मण को पीड़ित करता है और जिस राष्ट्र में ब्राह्मण दु:खी होता है, वह राष्ट्र अत्यन्त पतित हो जाता है ॥६ ॥

११९९. अष्टापदी चतुरक्षी चतु:श्रोत्रा चतुर्हनु: ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥७ ॥

ब्राह्मण पर डाली गयी विपत्ति, उसे पीड़ित करने वाले राजा के राज्य को, आठ पैरवाली, चार आँख वाली, चार कान वाली, चार ठोड़ी वाली, दो मुख वाली तथा दो जिह्वा वाली (कई गुनी घातक) होकर, हिला देती है ॥७ ॥

११२०. तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥८ ॥

जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की हिंसा होती है, उस राष्ट्र को आपत्ति विनष्ट कर देती है । जिस प्रकार जल टूटी हुई नौका को डुबा देता है, उसी प्रकार पाप उस राष्ट्र को डुबा देता है ॥८ ॥

११२१. तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥९ ॥

हे नारद ! जो लोग ब्राह्मण की सम्पत्ति हरण करके अपना मानते हैं, उनको वृक्ष भी अपने से दूर कर देना चाहते हैं ॥९ ॥

११२२. विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥१० ॥

राजा वरुण कहते हैं कि ब्राह्मण की सम्पत्ति हरण करना देवों द्वारा निर्मित विष के समान है । ब्राह्मण का धन हड़प करके राष्ट्र में कोई जागता (जीवित) नहीं रहता ॥१० ॥

११२३. नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥११ ॥

ऐसे निन्यानबे (बहु संख्यक) उदाहरण हैं, जिन्हें भूमि ही नष्ट कर देती है । वे ब्राह्मणों की प्रजा (उनके आश्रितों) की हिंसा करके पराजित हो जाते हैं ॥११ ॥

११२४. यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥१२ ॥

हे ब्राह्मणों को पीड़ित करने वालो ! देवों ने कहा है, पैरों के चिह्नों को हटाने वाली जिस काँटों की झाड़ू को मृतक के साथ बाँधते हैं, उसको देवों ने आपके लिए बिछौना के रूप में कहा है ॥१२ ॥

११२५. अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतु: ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥१३ ॥

हे ब्राह्मणों को पीड़ित करने वालो ! दुर्बल तथा जीते गये ब्राह्मणों के जो आँसू बहते हैं, देवों ने आपके लिए वही जल का भाग निश्चित किया है ॥१३ ॥

११२६. येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्॥

हे ब्राह्मणों को पीड़ित करने वालो ! जिस जल से मृत व्यक्ति को स्नान कराते हैं तथा जिससे मूँछ के बाल गीला करते हैं, देवों ने आपके लिए उतने जल का भाग ही निश्चित किया है ॥१४ ॥

११२७.न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति । नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्॥

सूर्य और वरुण द्वारा प्रेरित वृष्टि ब्राह्मण-पीड़क के ऊपर नहीं गिरती और उसको सभा सहमति नहीं प्रदान करती, वह अपने मित्रों को अपने वशीभूत भी नहीं कर सकता ॥१५ ॥

[२० - शत्रुसेनात्रासन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - वनस्पति, दुन्दुभि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ जगती ।]

११२८. उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥१ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप बलिष्ठ प्राणियों के समान व्यवहार करके ऊँचा स्वर करने वाले हैं । आप वनस्पतियों से विनिर्मित तथा गो- चर्मों से आवृत हैं । आप उद्घोष करते हुए रिपुओं का दमन करें तथा सिंह के सदृश विजय की अभिलाषा करते हुए गर्जना करें ॥१ ॥

११२९. सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥२ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आपकी अवस्था वृक्ष के समान है । आप विशेष प्रकार से बँधकर सिंह के समान तथा गौ को चाहने वाले साँड़ के समान गर्जना करने वाले हैं । आप शक्तिशाली हैं, इसलिए आपके शत्रु निर्वीर्य हो जाते हैं । आपका बल इन्द्र के समान होकर रिपुओं का विनाश करने वाला है ॥२ ॥

११३०. वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥३ ॥

जिस प्रकार गौओं के समूह में गो-अभिलाषी वृषभ सहसा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार ऐश्वर्य को विजित करने की इच्छा वाले आप गर्जना करें । आप रिपुओं के हृदय को पीड़ा से बींध डालें, जिससे वे अपने गाँवों को छोड़कर गिरते हुए भाग जाएँ ॥३ ॥

११३१. संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥४ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप ऊँची ध्वनि करते हुए युद्ध को जीतें । उनकी ग्रहणीय वस्तुओं को ग्रहण करते हुए, उनका निरीक्षण करें । आप दिव्य वाणी का उद्घोष करें और विधाता बनकर रिपुओं के ऐश्वर्यों को लाकर हमें प्रदान करें ॥४ ॥

११३२. दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५ ॥

दुन्दुभि वाद्य की स्पष्ट निकली हुई ध्वनि को सुनकर, उसकी गर्जना से जागी हुई रिपु - स्त्रियाँ संग्राम में वीरों (पति) के मरने के कारण भयभीत होकर, अपने पुत्रों का हाथ पकड़कर भाग जाएँ ॥५ ॥

११३३. पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप सबसे पहले ध्वनि करते हैं । इसलिए आप रिपु- सेनाओं को विनष्ट करते हुए पृथ्वी की पीठ पर प्रकाशित होते हुए मधुर ध्वनि करें ॥६ ॥

११३४. अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥७ ॥

इस द्यावा-पृथिवी के बीच में आपका उद्घोष हो । आपकी ध्वनियाँ शीघ्र ही चारों दिशाओं में फैलें । आप प्रशंसक शब्दों से समृद्ध होकर, ऊपर चढ़ते हुए, मित्रों में वेग उत्पन्न करने के लिए ध्वनि करें तथा गर्जना करें ॥७ ॥

११३५. धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥८ ॥

बुद्धिपूर्वक विनिर्मित नगाड़ा (दुन्दुभि) ध्वनि करता है, हे दुन्दुभि वाद्य ! आप पराक्रमी मनुष्यों के हथियारों को ऊँचा उठाकर उन्हें हर्षित करें । इन्द्रदेव आपके साथ प्रेम करते हैं । आप वीरों को बुलाएँ और हमारे मित्रों द्वारा रिपुओं का वध कराएँ ॥८ ॥

११३६. संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥९ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप कड़ककर ध्वनि करते हैं और सेनाओं को विजयी तथा साहसी बनाते हैं । आप गाँवों को गुञ्जरित करने वाले, उनका कल्याण करने वाले तथा विद्वान् मनुष्यों को जानने वाले हैं । आप दो राजाओं के युद्धों में अनेक योद्धाओं को कीर्ति प्रदान करें ॥९ ॥

११३७. श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥१० ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप कल्याण प्रदान करने वाले, ऐश्वर्य जीतने वाले, बल वाले तथा युद्ध को विजित करने वाले हैं । आप ब्राह्मणों द्वारा समर्थित हैं । जिस प्रकार सोमरस अभिषुत करते समय, पत्थर सोम वल्ली के ऊपर नृत्य करते हैं, उसी प्रकार भूमि अभिलाषी आप रिपुओं के धन पर नृत्य करें ॥१० ॥

११३८. शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥११ ॥

आप रिपुओं को विजित करने वाले, सदैव विजय प्राप्त करने वाले, वैरियों को वशीभूत करने वाले तथा खोज करने वाले हैं । आप अपनी वाणी का विस्फोट करते हुए (शत्रु को) उखाड़ने वाले हैं । आप कुशल वक्ता के समान ध्वनि को भर कर, युद्ध को विजित करने के लिए भली प्रकार गड़गड़ाहट करें ॥११ ॥

११३९. अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥१२ ॥

हे दुन्दुभिवाद्य !आप न गिरने वाले रिपुओं को गिरा देते हैं ।आप आनन्दित होने वाले, वीरों को चलाने वाले, युद्धों को विजित करने वाले तथा आगे बढ़ने वाले हैं । आप इन्द्र के द्वारा रक्षित हैं, अतः आपसे कोई युद्ध नहीं कर सकता ।आप युद्ध कर्मों को जानते हुए तथा रिपुओं के हृदय को जलाते हुए शीघ्र ही रिपुओं की ओर बढ़ें ॥१२॥

[२१ - शत्रुसेनात्रासन सूक्त]

[ऋषि - ब्रह्मा । देवता - वनस्पति, दुन्दुभि, १०-१२ आदित्यगण । छन्द - अनुष्टुप्, १,४-५ पथ्यापंक्ति, ६ जगती, ११ बृहती गर्भा त्रिष्टुप्, १२ त्रिपदा यवमध्या गायत्री ।]

११४०. विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥१ ॥

हे दुन्दुभिवाद्य ! आप रिपुओं में वैमनस्य तथा हृदय की व्याकुलता का संचार करें । हम रिपुओं में द्वेष, भय तथा द्विविधापूर्ण मन:स्थिति स्थापित करने की कामना करते हैं, इसलिए आप उन्हें तिरस्कृत करके मार डालें ॥१ ॥

११४१. उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च । धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ।

घृत की हवि प्रदान करने पर हमारे शत्रु प्रकम्पित हों और मन, आँख तथा हृदय से भयभीत होकर भाग जाएँ।।

११४२. वानस्पत्यः संभृत उस्त्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः । प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ।

हे दुन्दुभि वाद्य ! आप वनस्पतियों (लकड़ियों) से निर्मित हुए हैं और चमड़े की रस्सियों से बँधे हैं । आप मेघों के समान ध्वनि करने वाले हैं । हे घृत से सिंचित दुन्दुभि वाद्य !आप रिपुओं के लिए दु:खों की घोषणा करें ॥

११४३. यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥४ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! जिस प्रकार वन के हिरण मनुष्यों से भयभीत होकर भागते हैं, उसी प्रकार आप गर्जना करके रिपुओं को भयभीत कर दें तथा उनके मन को मोहित (स्तम्भित) कर लें ॥४ ॥

११४४. यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५ ॥

हे दुन्दुभि वाद्य ! जिस प्रकार भेड़िये से भयभीत होकर भेड़-बकरियाँ भागती हैं, उसी प्रकार आप गर्जना करके, रिपुओं को भयभीत करें और उनके चित्तों को मोहित करें ॥५ ॥

११४५. यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥६ ॥

जिस प्रकार पक्षी 'बाज़' से भयभीत होकर भागते हैं और जिस प्रकार सिंह की दहाड़ से प्राणी दिन-रात भयभीत हुआ करते हैं, उसी प्रकार हे दुन्दुभि वाद्य ! आप गर्जना करके रिपुओं को भयभीत करें और उनके मन को मोहित करें ॥६ ॥

११४६. परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥७ ॥

जो संग्राम के अधिपति हैं, वे सब देवगण हिरण के चमड़े से बनाये हुए नगाड़े के द्वारा रिपुओं को अत्यन्त भयभीत कर देते हैं ॥७ ॥

११४७. यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह । तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥

इन्द्रदेव जिन पद - चापों से तथा छायारूप सेना के साथ क्रीड़ा करते हैं, उनके द्वारा सैन्यबद्ध होकर चलने वाले हमारे शत्रु त्रस्त हो जाएँ ॥८ ॥

११४८. ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ॥९ ॥

रिपुओं की संघबद्ध सेनाएँ परास्त होकर जिस दिशा की ओर गमन कर रही हैं, उस तरफ हमारे नगाड़े तथा प्रत्यञ्चाओं के उद्घोष साथ-साथ मिलकर जाएँ ॥९ ॥

११४९. आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत । पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये॥

हे सूर्यदेव ! आप रिपुओं की दृष्टि (शक्ति) का हरण कर लें । हे किरणो ! आप सब रिपुओं के पीछे दौड़ें । उनका बाहुबल कम होने पर उनके पैरों में बाँधी जाने वाली रस्सियाँ उलझ जाएँ ॥१० ॥

११५०. यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ॥११ ॥

हे भूमि को माता मानने वाले शूरवीर मरुतो ! आप राजा सोम, राजा वरुण, महादेव, मृत्यु तथा इन्द्रदेव के साथ संयुक्त होकर रिपुओं को मसल डालें ॥११ ॥

११५१. एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥१२ ॥

ये देव सेनाएँ सूर्य की पताका लेकर और समान विचारों से युक्त होकर , हमारे रिपुओं को विजित करें, हम यह हवि समर्पित करते हैं ॥१२ ॥

[२२ - तक्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** -भृग्वङ्गिरा । **देवता** - तक्मनाशन । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ५ विराट् पथ्या बृहती ।]

११५२. अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥१ ॥

अग्निदेव, सोमदेव, ग्रावा, मेघ के देवता इन्द्रदेव, पवित्र बल-सम्पन्न वरुणदेव, वेदी, कुशा तथा प्रज्वलित समिधाएँ ज्वर आदि रोगों को दूर करें और हमारे शत्रु यहाँ से दूर चले जाएँ ॥ १ ॥

११५३. अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्य ङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२ ॥

हे जीवन को दु:खमय बनाने वाले ज्वर !आप जो समस्त मनुष्यों को निस्तेज बनाते हैं और अग्नि के समान संतप्त करते हुए उन्हें कष्ट प्रदान करते हैं, अत: आप नीरस (निर्बल) हो जाएँ और नीचे के स्थान से दूर चले जाएँ ॥

[ज्वर को नीचे के भागों से जाने को कहा है । ज्वर के विकार, मल निष्कासक मार्गों से निकलें यह भाव युक्तिसंगत है]

११५४. यः परुषः पारुषेयो ऽवध्वंस इवारुणः । तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥

जो अत्यन्त कठोर है और कठोरता के कारण अवध्वंस के समान लाल (खूनी) रंग वाला है, हे सब प्रकार की सामर्थ्य वाले ! ऐसे ज्वर को आप अधोमुखी करके दूर करें ॥३ ॥

११५५.अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने । शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान्॥

हम ज्वर को नमस्कार करके नीचे उतार देते हैं । शाक खाने वाले मनुष्यों के मुक्के से विनष्ट होने वाला यह रोग, अत्यधिक वर्षा वाले देशों में बारम्बार आ जाता है ॥४ ॥

[यह ज्वर वर्तमान मलेरिया की प्रकृति का लगता है, जो अधिक वर्षा वाले इलाकों में विशेषरूप से होता है । अन्न छोड़कर शाकाहार पर रहने से यह शीघ्र दूर होता है, इसलिए इसे शाकाहारी के मुक्के से नष्ट होने वाला कहा गया है ।]

११५६. ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५ ॥

इस ज्वर का निवास 'मूँज' नामक घास वाला स्थान है और इसका घर महावृष्टि वाला स्थान है । हे ज्वर ! जब से आप उत्पन्न हुए हैं, तब से आप 'बाल्हीकों' में दृष्टिगोचर होते हैं ॥५ ॥

११५७. तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥६ ॥

हे सर्प के सदृश जीवन को दु:खमय बनाने वाले तथा विरूप अंग करने वाले ज्वर ! आप विशिष्ट रोग हैं । अत: आप हम से अत्यन्त दूर चले जाएँ और निकृष्टता (मलीनता) में निवास करने वालों पर अपना वज्र चलाएँ ॥६॥

[**इस ज्वर को विषैला तथा विद्रूप करने वाला कहा गया है । ऐसे ज्वरों को वैद्यक में व्याल और व्यंग कहा जाता है । यह मलीनता में रहने वालों को ही सताता है ।**]

११५८. तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं१ तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७ ॥

हे जीवन को कष्टमय बनाने वाले ज्वर ! आप 'मूँज' वाले स्थान अथवा उससे भी दूर के 'बाल्हीक' देशों में जाने की अभिलाषा करें । हे तक्मन् ! आप पहली अवस्था वाली शूद्रा (अवसादग्रस्त) की कामना करें और उसे विशेष रूप से कँपा दें ॥७ ॥

११५९. महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य । प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा॥

आप मूँज वाले तथा महावृष्टि वाले प्रदेशों में गमन करें और वहाँ पर बाँधने वालों (अवरोध उत्पन्नकर्त्ताओं) का भक्षण करें । इन सब (अवांछनीय व्यक्तियों) अथवा अन्य क्षेत्रों को हम ज्वर के लिए कहते (प्रेरित करते) हैं ॥८॥

११६०. अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः ।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥९ ॥

आप अन्य क्षेत्रों में नहीं रमते हैं । आप हमारे वशीभूत रहकर हमें सुख प्रदान करते हैं । यह ज्वर प्रबल हो गया है, अब वह 'बाल्हीकों' (हिंसकों) के पास जाएगा ॥९ ॥

११६१. यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः ॥१० ॥

आप जो शीत के साथ आने वाले हैं अथवा सर्दी के बाद आने वाले हैं अथवा खाँसी के साथ कँपाने वाले हैं । हे ज्वर ! यही आपके भयंकर हथियार हैं; उनसे आप हमें मुक्त करें ॥१० ॥

११६२. मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ॥११ ॥

हे ज्वर ! आप कफ, खाँसी तथा क्षय आदि रोगों को अपना मित्र न बनाएँ और उस स्थान से हमारे समीप न आएँ । हे ज्वर ! इस बात को हम आपसे पुन: कहते हैं ॥११ ॥

११६३. तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥१२ ॥

हे ज्वर ! आप अपने भाई कफ, बहिन खाँसी तथा भतीजे पाप (दुष्कर्म) के साथ मलीन मनुष्यों के समीप गमन करें ॥१२ ॥

११६४. तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥१३ ॥

(हे देव !) आप तीसरे दिन आने वाले (तिजारी), तीन दिन छोड़कर आने वाले (चौथिया), सदैव रहने वाले, पीड़ा देने वाले तथा शरद् ऋतु , वर्षा ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में होने वाले ज्वरों तथा ठण्डी लाने वाले ज्वरों को विनष्ट करें ॥१३ ॥

११६५. गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥१४ ॥

जिस प्रकार भेजे जाने वाले खजाने की सुरक्षा करने वाले मनुष्य गांधार, मूँजवान् , अंग तथा मगध देशों में भेजे जाते हैं, उसी प्रकार इस कष्टदायक रोग को हम (दूर) भेजते हैं ॥१४ ॥

[२३ - कृमिघ्न सूक्त]

[**ऋषि** - कण्व । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, १३ विराट् अनुष्टुप् ।]

११६६. ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥१ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक, देवी सरस्वती, इन्द्रदेव तथा अग्निदेव परस्पर एक साथ होकर हमारे लिए कृमियों का विनाश करें ॥१ ॥

११६७. अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ।

हे धनपते इन्द्रदेव ! आप इस कुमार के शत्रुरूप कृमियों का निवारण करें । हमारे उग्र वचनों (मन्त्रों) द्वारा समस्त कष्टदायी कृमियों का विनाश करें ॥२ ॥

११६८. यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३ ॥

जो कीड़े नेत्रों में भ्रमण करते हैं, जो नाकों में भ्रमण करते हैं तथा जो दाँतों के बीच में चलते हैं, उन कीड़ों को हम विनष्ट करते हैं ॥३ ॥

११६९. सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥४ ॥

दो कीड़े समानरूप वाले होते हैं, दो विपरीतरूप वाले, दो काले रंग वाले, दो लाल रंग वाले, एक भूरे रंग वाले, एक भूरे कान वाले, एक गिद्ध तथा एक भेड़िया, ये सब मन्त्र बल द्वारा विनष्ट हो गए ॥४ ॥

११७०. ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५ ॥

जो कीड़े तीखी कोख वाले हैं, जो कीड़े काली और तीखी भुजा वाले हैं तथा जो विविधरूप वाले हैं, उन समस्त कीड़ों को हम मन्त्र - बल से विनष्ट करते हैं ॥५ ॥

११७१. उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६ ॥

विश्वद्रष्टा सूर्यदेव दिखने वाले तथा न दिखने वाले (कृमियों) के विनाशक हैं । वे दृश्य-अदृश्य सभी प्रकार के कृमियों को रौंद डालते हैं ॥६ ॥

११७२. येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७ ॥

जो शीघ्र गमन करने वाले, अत्यधिक पीड़ा देने वाले तथा कँपाने वाले तेजस्वी कीड़े हैं, वे सब दिखाई देने वाले तथा न दिखाई देने वाले कृमि विनष्ट हो जाएँ ॥७ ॥

११७३. हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥८ ॥

कीटाणुओं में से तीक्ष्ण गमन करने वाले कीड़े मन्त्र बल से विनष्ट हो गए और 'नदनिमा' नामक कीड़े भी मारे गये । जिस प्रकार पत्थर से चना मसला जाता है, उसी प्रकार हमने इन सबको मसल कर नष्ट कर दिया ॥८ ॥

११७४. त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥९ ॥

तीन सिर, तीन ककुद, विचित्र रंग तथा सफेद रंगवाले कीटाणुओं को हम विनष्ट करते हैं । उनकी पसलियों को तोड़ते हुए , हम उनके सिरों को भी कुचलते हैं ॥९ ॥

११७५. अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१० ॥

हे कृमियो ! जिस प्रकार 'अत्रि' , 'कण्व' तथा 'जमदग्नि' ऋषियों ने आपको विनष्ट किया था, उसी प्रकार हम भी करते हैं और 'अगस्त्य' ऋषि के मन्त्र बल से आपको कुचल देते हैं ॥१० ॥

११७६. हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११ ॥

हमारे मंत्र तथा ओषधि के बल से कृमियों का राजा और उसका मंत्री मारा गया । उसकी माता, भाई तथा बहिन के विनष्ट होने से कृमियों का परिवार पूरी तरह से नष्ट हो गया ॥११ ॥

११७७. हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२ ॥

इस कृमि के परिवार वाले मारे गए और इसके समीप के घर वाले भी मारे गए तथा जो छोटे-छोटे कृमि बीज रूप में थे, वे भी मारे गए ॥१२ ॥

११७८. सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥१३ ॥

समस्त पुरुष कृमियों तथा समस्त मादा कृमियों के सिर को हम पत्थर से तोड़ते हैं और अग्नि के द्वारा उनके मुँह को जला देते हैं ॥१३ ॥

[२४- ब्रह्मकर्म सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा । देवता - ब्रह्मकर्मात्मा (१ सविता, २ अग्नि, ३ द्यावापृथिवी, ४ वरुण, ५ मित्रावरुण, ६ मरुद्‌गण, ७ सोम, ८ वायु , ९ सूर्य, १० चन्द्रमा, ११ इन्द्र, १२ मरुत्पिता, १३ मृत्यु , १४ यम, १५ पितरगण, १६ तता पितरगण, १७ ततामहा पितरगण) । छन्द - अति शक्वरी, ११ शक्वरी, १५-१६ त्रिपदा भुरिक् जगती, १७ त्रिपदा विराट् शक्वरी ।]

११७९. सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१ ॥

भगवान् सवितादेव समस्त उत्पन्न पदार्थों के अधिपति हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति (अग्निशाला-यज्ञकुण्ड) में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१ ॥

११८०. अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यांपुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥२ ॥

अग्निदेव वनस्पतियों के अधिपति हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥२ ॥

११८१. द्यावापृथिवी दातॄणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥३ ॥

द्यावा-पृथिवी दाताओं की स्वामिनी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥३ ॥

११८२. वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥४ ॥

वरुणदेव जल के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥४ ॥

११८३. मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥५ ॥

मित्र और वरुणदेव वृष्टि के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥५ ॥

११८४. मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥६ ॥

मरुद्गण पर्वतों के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥६ ॥

११८५. सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥७ ॥

सोमदेव ओषधियों के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥७ ॥

११८६. वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥८ ॥

वायुदेव अन्तरिक्ष के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥८ ॥

११८७. सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥९ ॥

सूर्यदेव आँखों के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥९ ॥

११८८. चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१० ॥

चन्द्रदेव नक्षत्रों के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१० ॥

११८९. इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥११ ॥

स्वर्गलोक के स्वामी इन्द्रदेव हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥११ ॥

११९०. मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१२ ॥

मरुतों के पिता पशुओं के स्वामी हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१२ ॥

११९१. मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१३ ॥

प्रजाओं की स्वामिनी 'मृत्यु' हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं । ।१३ ॥

११९२. यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१४ ॥

पितरों के स्वामी यमदेव हैं । वे इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१४ ॥

११९३. पितरः परे ते मावन्तु ।अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१५ ॥

सात पीढ़ियों से ऊपर के पितरगण इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद सम्बन्धी कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१५ ॥

११९४. तता अवरे ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१६ ॥

वे सपिण्ड पितर (पिछले पितामह) इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में, संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वादात्मक कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१६ ॥

११९५. ततस्ततामहास्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥१७ ॥

वे बड़े प्रपितामह इस पौरोहित्य कर्म में, प्रतिष्ठा में, चिति में , संकल्प में, देव आवाहन में तथा आशीर्वाद कर्म में हमारी सुरक्षा करें, हम उन्हें हवि समर्पित करते हैं ॥१७ ॥

[२५- गर्भाधान सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - योनिगर्भ । **छन्द** - अनुष्टुप्, १३ विराट् पुरस्ताद् बृहती ।]

११९६. पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ॥१ ॥

पर्वत की (ओषधियों) से स्वर्गलोक के (पुण्यों या सूक्ष्म प्रवाहों) से तथा अंग-प्रत्यंग से एकत्रित एवं पुष्ट वीर्य धारण करने वाले पुरुष, जल प्रवाह में पत्ते रखने के समान गर्भ स्थान में गर्भ को स्थापित करते हैं ॥१ ॥

[खाद्यों, ओषधियों, अन्तरिक्षीय सूक्ष्मप्रवाहों, शारीरिकक्षमताओं के संयोग से पुरुष में गर्भाधान की क्षमता आती है ।]

११९७.यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ।

जिस प्रकार यह विस्तृत पृथ्वी समस्त भूतों के गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार मैं आपका गर्भ धारण करती हूँ और उसकी सुरक्षा के लिए आपका आवाहन करती हूँ ॥२ ॥

११९८.गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्त्रजा ॥

हे सिनीवाली ! आप गर्भ को संरक्षण प्रदान करें । हे सरस्वती देवि ! आप गर्भधारण में सहायक हों । हे स्त्री ! स्वर्णिम कमल के आभूषणों के धारणकर्त्ता अश्विनीकुमार आप में गर्भ को स्थिरता प्रदान करें ॥३ ॥

११९९.गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः । गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते॥

मित्र और वरुणदेव आपके गर्भ को परिपुष्ट करें । बृहस्पतिदेव, इन्द्रदेव, अग्निदेव तथा धातादेव आपके गर्भ को धारण करें ॥४ ॥

१२००. विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥५ ॥

विष्णुदेव (नारी या प्रकृति को) गर्भाधान की क्षमता से युक्त करें । त्वष्टादेव उसके विभिन्न अवयवों का निर्माण करें । प्रजापति सेचन प्रक्रिया में सहायक हों और धाता गर्भधारण में सहयोग करें ॥५ ॥

१२०१. यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥६ ॥

जिस गर्भकरण-क्रिया को राजा वरुणदेव जानते हैं, जिसको देवी सरस्वती जानती हैं तथा जिसको वृत्रहन्ता इन्द्रदेव जानते हैं, उस गर्भ स्थिर रखने वाले रस का आप पान करें ॥६ ॥

१२०२. गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप ओषधियों तथा वनस्पतियों के गर्भ हैं और आप समस्त भूतों के भी गर्भ हैं, इसलिए आप हमारे इस गर्भ को धारण करें ॥७ ॥

१२०३. अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८ ॥

हे वीर्यवान् ! आप बलवान् हैं । आप उठकर खड़े हों और पराक्रम करते हुए गर्भाशय में गर्भ की स्थापना करें । हम आपको केवल सन्तान के निमित्त ही ले जाते हैं ॥८ ॥

१२०४. वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥९ ॥

हे अत्यन्त सान्त्वना वाली (अथवा सामगान करने वाली) साध्वी ! आप विशेषरूप से सजग रहें, हम आपके गर्भाशय में गर्भ की स्थापना करते हैं । सोमपायी देवों ने आप दोनों की सुरक्षा करने वाला पुत्र प्रदान किया है ।

१२०५. धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१० ॥

हे धातादेव ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥१० ॥

१२०६. त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥११ ॥

हे त्वष्टादेव ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥११ ॥

१२०७. सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१२ ॥

हे सवितादेव ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥१२ ॥

१२०८. प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१३ ॥

हे प्रजापते ! इस स्त्री की दोनों गर्भ धारण करने वाली नाड़ियों के बीच में, मनोहर रूप वाले पुरुष संतान की स्थापना करें और उसे दसवें महीने में उत्पन्न होने के लिए योग्य बनाएँ ॥१३ ॥

[सूक्त के भावों से स्पष्ट होता है कि गर्भ की स्थापना तथा उसके संरक्षण में स्थूल क्रिया-कलापों के साथ मानसिक संकल्पों की भी विशेष भूमिका रहती है ।]

[२६ - नवशाला सूक्त]

[**ऋषि -** ब्रह्मा । **देवता -** वास्तोष्पति, १ अग्नि, २ सविता, ३,११ इन्द्र, ४ निविद, ५ मरुद्गण, ६ अदिति, ७ विष्णु, ८ त्वष्टा, ९ भग, १० सोम, १२ अश्विनीकुमार, बृहस्पति । **छन्द -** द्विपदा प्राजापत्या बृहती, १,५ द्विपदार्ची उष्णिक्, ३ त्रिपदा विराट् गायत्री, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् (एकावसाना), १२ परातिशक्वरी चतुष्पदा जगती ।]

१२०९. यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥१ ॥

हे यजुर्वेदीय मन्त्र तथा समिधाओ ! विशेष ज्ञानी अग्निदेव इस यज्ञ में आपसे मिलें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥१ ॥

१२१०. युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥२ ॥

परम ज्ञानी सवितादेव इस यज्ञ में सम्मिलित हों, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥२ ॥

१२११. इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥३ ॥

हे उक्थ (स्तोत्र) ! ज्ञानी इन्द्रदेव इस यज्ञ में आपसे मिलें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥३ ॥

१२१२. प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥४ ॥

हे शिष्ट मनुष्यो ! आप अपनी पत्नियों से मिलकर उनके साथ इस यज्ञ में आज्ञारूप वचनों को धारण करें । आपके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥४ ॥

१२१३. छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥५ ॥

जिस प्रकार माता पुत्र का पोषण करती है, उसी प्रकार मरुद्‌गण इस यज्ञ में सम्मिलित होकर छन्दों का पोषण करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥५ ॥

१२१४. एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥६ ॥

यह देवी अदिति कुशाओं तथा प्रोक्षणियों के सहित इस यज्ञ को समृद्ध करती हुई पधारीं हैं, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥६ ॥

१२१५. विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥७ ॥

भगवान् विष्णु अपनी तप: शक्ति को इस यज्ञ में सम्मिलित करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥७ ॥

१२१६. त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥८ ॥

ज्ञानी त्वष्टादेव विधिवत् ठीक किये गये अनेक रूपों को इस यज्ञ में संयुक्त करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥८ ॥

१२१७. भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥९ ॥

ज्ञानी भगदेव अपने श्रेष्ठ आशीर्वादों को इस यज्ञ में सम्मिलित करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥

१२१८. सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥१० ॥

ज्ञानी सोम इस यज्ञ में अपने जल (रसों) को अनेक प्रकार से संयुक्त करें, उनके लिए हवि समर्पित करते हैं।

१२१९. इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥११ ॥

ज्ञानी इन्द्र अपने पराक्रम को इस यज्ञ में अनेक प्रकार से संयुक्त करें, उनके लिए हम हवि समर्पित करते हैं ।

१२२०. अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमार ! आप दोनों मंत्र तथा दान द्वारा यज्ञ को समृद्ध करते हुए हमारे पास पधारें । हे बृहस्पते ! आप मंत्रों के साथ हमारे समीप पधारें । यह यज्ञ, याजक को स्वर्ग प्रदान करने वाला हो, अश्विनीकुमारों तथा बृहस्पतिदेव के लिए हम हवि समर्पित करते हैं ॥१२ ॥

[२७ - अग्नि सूक्त]

[**ऋषि -** ब्रह्मा । **देवता -** अग्नि, तीन देवियाँ (इळा, सरस्वती, भारती) । **छन्द -** १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् २ द्विपदा साम्नी भुरिक् अनुष्टुप्, ३ द्विपदार्ची बृहती, ४ द्विपदा साम्नी भुरिक् बृहती, ५ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ६ द्विपदा विराट् गायत्री, ७ द्विपदा साम्नी बृहती, ८ संस्तार पंक्ति, ९ षट्पदा अनुष्टुप् गर्भा परातिजगती, १०-१२ पुरउष्णिक् ।]

१२२१. ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१ ॥

इस अग्नि की समिधाएँ तथा इसकी पवित्र ज्वालाएँ ऊर्ध्वमुखी होती हैं । ये अग्निदेव अत्यन्त, प्रकाश वाले तथा मनोहर रूप वाले हैं। वे सूर्य के सदृश प्राण प्रदान करने वाले तथा यज्ञ में अनेक हाथों (ज्वालाओं) वाले हैं ॥१ ॥

१२२२. देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥२ ॥

समस्त देवताओं में ये प्रमुख देव हैं । ये मधु तथा घृत से मार्गों को पवित्र करते हैं ॥२ ॥

१२२३. मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः ॥३ ॥

मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय और सत्कर्म करने वाले सवितादेव तथा सबके द्वारा वरणीय अग्निदेव मधुरता से यज्ञ को संयुक्त करते हुए संव्याप्त हो रहे हैं ॥३ ॥

१२२४. अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥४ ॥

ये अग्निदेव घृत, बल तथा हविष्यान्न से स्तुत होकर सम्मुख पधारते हैं ॥४ ॥

१२२५. अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥५ ॥

देवों की अत्यधिक संगति वाले यज्ञों में अग्निदेव उसकी महिमा तथा स्रुचाओं को स्वयं से संयुक्त करें ॥५॥

१२२६. तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥६ ॥

तारक अग्निदेव तथा ऐश्वर्य- पोषक वसुदेव आनन्द प्रदान करने वाले और देवों की संगति करने वाले यज्ञों में विद्यमान रहते हैं ॥६ ॥

१२२७. द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥७ ॥

दिव्य द्वार तथा विश्वेदेव, इस याजक के संकल्प की विविध प्रकार से सुरक्षा करते हैं ॥७ ॥

१२२८. उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥८ ॥

अग्नि के विस्तृत धामों से अवतरित होने वाली, गतिशील, साथ रहने वाली उषा और नक्ता (सन्ध्या-रात्रि) हमारे इस हिंसारहित यज्ञीय प्रयोग की सुरक्षा करें ॥८ ॥

१२२९. दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९ ॥

हे दिव्य होताओ ! आप अपनी जिह्वा से हमारे कल्याण के लिए उच्चस्तरीय यज्ञाग्नि की प्रशंसा करें । इडा (पृथिवी) भारती तथा सरस्वती यह तीनों देवियाँ गुणगान करती हुई इस कुशा पर विराजें ॥९ ॥

१२३०. तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥१० ॥

हे त्वष्टा !आप हमें प्रचुर अन्न, जल तथा ऐश्वर्य की पुष्टि प्रदान करें और इस (थैली) की मध्य ग्रन्थि को खोलें।

१२३१. वनस्पतेऽव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥११ ॥

हे वनस्पते !आप ध्वनि करते हुए स्वयं को छोड़ें और शमन करने वाले अग्निदेव हवनीय पदार्थों को देवों के लिए स्वादिष्ट बनाएँ ॥११ ॥

१२३२. अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।

इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप इन्द्रदेव के लिए स्वाहाकार यज्ञ सम्पादित करें और समस्त देवता इस हव्य का सेवन करें ॥१२ ॥

[२८- दीर्घायु सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा । देवता - त्रिवृत् (अग्नि अदि) । छन्द - त्रिष्टुप्, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७, ९-१०,१२ ककुम्मती अनुष्टुप्, १३ पुर उष्णिक् ।]

इस सूक्त के देवता 'त्रिवृत्' हैं। यह सम्बोधन मंत्रों में बार-बार आया भी है। 'त्रिवृत्' का अर्थ तीन वृतों से युक्त अथवा तीन लपेटों से युक्त भी होता है। यज्ञोपवीत को तीन लपेटों वाला होने के कारण 'त्रिवृत्' कहते हैं। यज्ञोपवीत का नाम व्रतबन्ध भी है। वह भावों, विचारों एवं क्रियाओं को कल्याणकारी व्रतों से युक्त करने का प्रतीक होने से भी 'त्रिवृत्' कहा जा सकता है। तीन गुणों सत्, रज, तम से भी इसकी संगति बैठती है। तीन अवस्थाओं (बाल, तरुण, एवं वृद्धावस्था) के तीन व्रत (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ) भी इस व्याख्या में आ सकते हैं-

१२३३. नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥१ ॥

सौ वर्ष की (पूर्ण) आयु के लिए नौ प्राणों को नौ (शरीरस्थ नौ चक्रों अथवा अगले मंत्र में वर्णित नौ दिव्य धाराओं) के साथ संयुक्त करते हैं। इनमें से तीन हरित (सत् तत्त्वयुक्त, स्वर्णयुक्त अथवा लुभावने) हैं, तीन रजत के (रज तत्त्व, चाँदी या प्रकाशयुक्त अथवा सुखकर) हैं तथा तीन अयस् (तामसिक, लोहे के अथवा शुभकारक) हैं। वे तप: (स्थूल ताप या साधना से उत्पन्न ऊर्जा) के द्वारा भली प्रकार स्थित होते हैं ॥१ ॥

[मनुष्य में नौ चक्र समाहित हैं। तीन- मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपूरक कर्म प्रेरक अयस् युक्त हैं। तीन- अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञाचक्र प्रकाशक - राजस् हैं। तीन - तालुचक्र, सहस्रार तथा ब्रह्मरन्ध्र (व्योम चक्र) सत् या हिरण्ययुक्त अथवा हरण- आकर्षण करने वाले हैं। यज्ञोपवीत के सन्दर्भ में यह शोध का विषय है कि एक लड़ के तीन तार सोने के, दूसरी के चाँदी के तथा तीसरी के लोहे या अन्य धातु के बनाकर, उसे धारण करने से शरीर की तीन- ऊपरी, बीच के तथा नीचे वाले भागों या चक्रों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?]

१२३४. अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥२ ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशा- उपदिशा तथा ऋतु- ऋतु विभाग (यह नौ) इस त्रिवृत् के संयोग से हमें पार लगा दें, लक्ष्य तक पहुँचा दें ॥२ ॥

[इनमें से द्यु, सूर्य एवं ऋतुओं को हरित; अन्तरिक्ष, चन्द्रमा और दिशाओं को रजस् तथा पृथ्वी, अग्नि एवं जल को अयस् कहा जा सकता है।]

१२३५. त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥३ ॥

इस त्रिवत् में तीन पुष्टियाँ आश्रित हों। पूषा (पुष्टियों के) देवता तुम्हारे आश्रय में दुग्ध- घृतादि की वृद्धि, अन्न की प्रचुरता, पुरुषों तथा पशुओं की अधिकता प्रदान करें ॥३ ॥

१२३६. इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ॥४ ॥

हे आदित्यदेव ! आप इस साधक को ऐश्वर्य से पूर्ण करें। हे अग्निदेव ! आप स्वयं बढ़ते हुए इसको भी बढ़ाएँ। हे इन्द्रदेव ! आप इसको बल से युक्त करें। पालन करने वाले त्रिवृत् इसमें आश्रय ग्रहण करें ॥४ ॥

१२३७. भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥५ ॥

हरित (स्वर्ण या हरियाली) के द्वारा भूमि आपकी सुरक्षा करे । विश्व - पोषक तथा प्रेमपूर्ण अग्निदेव अयस् (लोहे या कर्म शक्ति) से आपका पालन करें और ओषधियुक्त अर्जुन (श्वेत, रजस्-चन्द्रमा) आपके मन में शुभ संकल्पमय सामर्थ्य स्थापित करें ॥५ ॥

१२३८. त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥६ ॥

यह हिरण्य (स्वर्ण अथवा हिरण्यगर्भ- मूल उत्पादक तेज) जन्म से ही तीन तरह से पैदा हुआ । इसका पहला जन्म अग्निदेव को परम प्रिय हुआ, दूसरा कूटे गये सोम से बाहर निकला और तीसरे को सारभूत जल का वीर्यरूप कहते हैं । (हे धारणकर्त्ता) यह हिरण्यमय त्रिवृत् आपके लिए आयुष्य देने वाला हो ॥६ ॥

**१२३९. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥७ ॥**

जमदग्नि (ऋषि अथवा प्रज्वलित अग्नि) के तीन आयुष्य, कश्यप (ऋषि अथवा तत्त्वदर्शी) के तीन आयुष्य तथा अमृत तत्त्व को तीन प्रकार से धारण करने वाले दर्शन , इन तीनों के द्वारा तुम्हारे आयुष्य को (संस्कारित या पुष्ट) करते हैं ॥७ ॥

[जमदग्नि के तीन आयुष्य (मंत्र क्र० १ में वर्णित) अयस् के, कश्यप (देखने वाले) के तीन आयुष्य रजत तथा अमृत तत्त्व दर्शन के तीन आयुष्य हरित (सत्त्व या हिरण्य) के कहे जा सकते हैं ।]

**१२४०. त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥८ ॥**

जब एक अक्षर (ॐ या अविनाशी) के साथ तीन सुपर्ण (श्रेष्ठ किरणों से युक्त) त्रिवृत् बनाकर समर्थ बनते हैं, तब वे अमृत से युक्त होकर समस्त विकारों का निवारण करते हुए मृत्यु को दूर हटा देते हैं ॥८ ॥

[ॐ के साथ अ, उ, म्, यह तीन शब्द एक होकर अथवा अनश्वर जीवात्मा के साथ भाव, विचार तथा कर्म प्रवाह एक होकर शक्तिशाली बनते हैं, तो वे उक्त प्रभाव दिखाते हैं ।]

**१२४१. दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥९ ॥**

हरित (हिरण्य या सत्) आपकी द्युलोक से सुरक्षा करें, सफेद (चाँदी या-रजस्) मध्यलोक से सुरक्षा करें तथा अयस् (लोहा या कर्मशक्ति) भूलोक से सुरक्षा करें । यह (ज्ञान) देवों की पुरियों में प्राप्त हुआ है ॥९ ॥

**१२४२. इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव ॥१० ॥**

ये देवों की तीन पुरियाँ चारों तरफ से आपकी सुरक्षा करें । उनको धारण करके, आपके तेजस्वी होते हुए रिपुओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हों ॥१० ॥

**१२४३. पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ॥११ ॥**

देवताओं की स्वर्णिम नगरी अमृत स्वरूप है । जिस प्रमुख देव ने सबसे पहले इनको (त्रितों को) बाँधा (धारण किया) था, उनको हम अपनी दस अँगुलियाँ जोड़कर नमस्कार करते हैं । वे देवगण इस त्रिवृत् को बाँधने में हमें भी अनुमति प्रदान करें ॥११ ॥

१२४४. आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि ॥१२ ॥

अर्यमादेव, पूषादेव तथा बृहस्पतिदेव आपको भली प्रकार बाँधें । प्रतिदिन पैदा होने वाले (सूर्य या प्रकाश) के नाम के साथ (साक्षी में) हम भी आपको बाँधते (धारण करते) हैं ॥१२ ॥

१२४५. ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥१३ ।

हम आपको आयुष्य तथा वर्चस् की प्राप्ति के लिए ऋतुओं, ऋतुओं के विभागों तथा संवत्सरों के उस (समर्थ) तेजस् से युक्त करते हैं ॥१३ ॥

१२४६. घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥१४ ॥

आप घृत सारतत्त्व से पूर्ण, मधु (मधुरता) से सिंचित, पृथ्वी के सदृश स्थिर तथा पार लगाने वाले हैं । आप रिपुओं को छिन्न-भिन्न करके उन्हें नीचा दिखाते हुए, हमें बृहत् सौभाग्य प्राप्त कराने के लिए हमारे ऊपर स्थिर हों ॥१४ ॥

[२९- रक्षोघ्न सूक्त]

[**ऋषि** - चातन । **देवता** - जातवेदा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदा विराट् गायत्री, ५ पुरोतिजगती विराट् जगती, १२ भुरिक् अनुष्टुप्, १३, १५ अनुष्टुप्, १४ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में जातवेदा अग्नि से रोगों और उनके उत्पादक पिशाचों (दुष्ट कृमियों) के विनाश की प्रार्थना है । अनेक प्रकार के कृमियों के स्वरूप और उनसे मुक्ति के संकेत दिये गये हैं-

१२४७. पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥१ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप ओषधि जानने वाले वैद्य हैं । आप पहले वाले कार्यों का भार वहन करें तथा वर्तमान में होने वाले कार्यों को जानें । आपकी सहायता से हम गौ, घोड़े तथा मनुष्यों को रोगरहित अवस्था में पाएँ ॥१ ॥

१२४८. तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप समस्त देवताओं के साथ मिलकर ऐसा उपाय करें कि जिससे उस रोग की परिधि गिर जाए, जो हमें पीड़ा देते हैं तथा जो हमें खा जाना चाहते हैं ॥२ ॥

१२४९. यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप देवों के साथ मिलकर ऐसा उपाय करें कि जिससे उस रोग की घेराबन्दी टूट जाए ॥३ ॥

१२५०. अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जो पिशाच इसको खाने की इच्छा कर चुके हैं, उनकी आँखों तथा उनके हृदयों को आप बींध डालें । उनकी जीभ को काट डालें । हे बलवान् अग्निदेव ! आप उन्हें विनष्ट कर डालें ॥४ ॥

१२५१. यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥५ ॥

पिशाचों ने इसके शरीर का जो भाग हर लिया है, छीन लिया है, लूट लिया है तथा जो भाग खा लिया है, हे ज्ञानी अग्ने ! उस भाग को आप पुनः भर दें । इसके शरीर में मांस तथा प्राणों को हम विधिवत् प्रयोगों से पुनः स्थापित करते हैं ॥५ ॥

१२५२. आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥६ ॥

जो पिशाच (कृमि) कच्चे-पक्के, आधे पके तथा विशेष पके भोजन में प्रवेश करके हमें हानि पहुँचाते हैं, ऐसे पिशाच स्वयं तथा अपनी सन्तानों के साथ कष्ट भोगें और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥६ ॥

१२५३. क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥७ ॥

जो पिशाच (कृमि) दुग्ध मंथ (मठा) तथा बिना खेती उत्पन्न होने वाले अन्न (खाद्यों) में प्रवेश करके हमें हानि पहुँचाते हैं, वे पिशाच स्वयं तथा अपनी संतानों के साथ कष्ट भोगें और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥७ ॥

१२५४. अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥८ ॥

जो पिशाच (कृमि) जलपान करते समय तथा बिछौने पर शयन करते समय हमें पीड़ित करते हैं, वे पिशाच अपनी प्रजाओं के साथ दूर हट जाएँ और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥८ ॥

१२५५. दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥९ ॥

जो पिशाच (कृमि) रात अथवा दिन में बिस्तर पर सोते समय हमें पीड़ित करते हैं, वे पिशाच अपनी प्रजाओं सहित दूर हट जाएँ और यह रोगी नीरोग हो जाए ॥९ ॥

१२५६. क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥१० ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप मांसभक्षक, रक्तभक्षक तथा मन मारने वाले पिशाचों को विनष्ट करें । शक्तिशाली इन्द्रदेव उन्हें वज्र से मारें और निर्भीक सोमदेव उनके सिर को काटें ॥१० ॥

१२५७. सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! कष्ट देने वाले यातुधानियों को आप सदैव विनष्ट करते हैं और संग्राम में असुरगण आपको पराजित नहीं कर पाते । आप मांस भक्षण करने वालों को समूल भस्म करें, आपके दिव्य हथियारों से कोई छूटने न पाए ॥११ ॥

१२५८. समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥१२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! इस व्यक्ति का जो भाग हर लिया गया है तथा विनष्ट कर दिया गया है, उस भाग को आप पुनः भर दें, जिससे इसके अंग-प्रत्यंग पुष्ट होकर चन्द्रमा की भाँति वृद्धि को प्राप्त हों ॥१२ ॥

१२५९. सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु ॥१३ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! यह पुरुष चन्द्रमा की कलाओं के सदृश वृद्धि को प्राप्त हो । हे अग्ने ! आप इस निर्दोष व्यक्ति को पवित्र एवं नीरोग करें, जिससे यह जीवित रहे ॥१३ ॥

[**विभिन्न समिधाओं की रोगनाशक शक्ति का संकेत इस मंत्र में है ।**]

१२६०. एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥१४ ॥

हे अग्ने ! आपकी ये समिधाएँ पिशाचों (कृमियों) को विनष्ट करने वाली हैं । हे जातवेदा अग्ने ! आप इनको स्वीकार करें तथा इन्हें ग्रहण करें ॥१४ ॥

१२६१. तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति ।१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी लपटों द्वारा तृषा शमन करने वाली समिधाओं को स्वीकार करें । जो मांसभक्षी पिशाच इसके मांस को हरना चाहते हैं, वे अपने रूप को छोड़ दें ।१५ ॥

[३०- दीर्घायुष्य सूक्त]

[**ऋषि** - उन्मोचन । **देवता** - आयुष्य । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्ति, ९ भुरिक् अनुष्टुप्, १२ चतुष्पदा विराट् जगती, १४ विराट् प्रस्तारपंक्ति, १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

इस सूक्त में प्रियजनों के अन्दर प्राणशक्ति की क्षीणता से, अभिचार क्रियाओं से अथवा पूर्वकृत पापकर्मों के प्रभाव से होने वाले आयुक्षयणकारी रोगों को नष्ट करने के लिए मंत्र बल, साधना शक्ति तथा अन्य उपचारों द्वारा प्राण शक्ति संवर्द्धन के भाव- सूत्र व्यक्त किये गयें हैं-

१२६२. आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥१ ॥

आपके अत्यन्त समीप तथा अत्यन्त दूर के स्थान से हम आपके प्राणों को दृढ़ता से बाँधते हैं । आप पूर्व पितरों का अनुसरण न करें (शरीर न छोड़ें), यहीं रहें ॥१ ॥

१२६३. यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते॥

यदि आपके अपने लोग अथवा कोई हीन लोग आपके ऊपर अभिचार करते हैं, तो उससे छूटने तथा दूसरे होने की बात (विद्या, विधि) हम कहते हैं ॥२ ॥

१२६४. यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते॥

यदि आपने स्त्री अथवा पुरुष के प्रति द्रोह किया अथवा शाप दिया है, तो उससे छूटने तथा दूर होने की दोनों बातें (विधियाँ) हम आपसे कहते हैं ॥३ ॥

१२६५. यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४ ॥

यदि आप माता अथवा पिता के द्वारा किये गये पापों के कारण शयन कर रहे हैं, तो उस (पाप निमित्तक) रोग से छूटने तथा दूर होने की दोनों बातें (विधाएँ) हम बतलाते हैं ॥४ ॥

१२६६. यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः ।
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥५ ॥

जिस ओषधि को आपके माता, पिता, भाई तथा बहिन ने तैयार किया है, उस ओषधि को आप भलीप्रकार सेवन करें । हम आपको वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनाते हैं ॥५ ॥

१२६७. इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! आप अपने सम्पूर्ण मन के साथ पहले यहाँ निवास करते हुए जीवित रहें, यमदूतों का अनुसरण न करें ॥६ ॥

१२६८. अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ॥७ ॥

आप उदित होने के मार्ग को जानने वाले हैं । आप इस कर्म के बाद आवाहित होते हुए पुन: पधारें । उत्तरायण तथा दक्षिणायण आपकी जीवित अवस्था में ही व्यतीत हों ॥७ ॥

१२६९. मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८ ॥

हे रोगी मनुष्य ! आप भयभीत न हों । हम आपको इस लोक में वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनाते हैं । हम आपके अंगों से यक्ष्मा तथा अंग - ज्वर बाहर निकाल देते हैं ॥८ ॥

१२७०. अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥९ ॥

आपके अंगों की पीड़ा, अंगों का ज्वर, हृदय का रोग तथा यक्ष्मा रोग हमारी वाणी (मंत्र शक्ति) से पराजित होकर बाज़ पक्षी के समान दूर भाग जाएँ ॥९ ॥

१२७१. ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥१० ॥

निद्रारहित तथा जाग्रत् अवस्था के बोध और प्रतिबोध यह दो ऋषि हैं । वे दोनों आपके प्राण की सुरक्षा करने वाले हैं । वे आपके अन्दर दिन-रात जागते हैं ॥१० ॥

१२७२. अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११ ॥

ये अग्निदेव समीप में रखने योग्य हैं । यहाँ आपके लिए सूर्यदेव उदित हों । आप घोर अन्धकार रूपी मृत्यु से निकलकर उदय को प्राप्त हों ॥११ ॥

१२७३. नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये ॥१२ ॥

जो हमें ले जाते हैं, उन यमदेव के लिए नमन है, उन पितरों के लिए नमन है तथा मृत्यु के लिए नमन है । जो अग्निदेव पार करना जानते हैं, उनको हम कल्याण वृद्धि के लिए सामने प्रस्तुत करते हैं ॥१२ ॥

१२७४. ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु ॥१३ ॥

प्राण, मन, आँख तथा बल इसके समीप आएँ । इसका शरीर बुद्धि के अनुसार गमन करे और यह अपने पैरों पर खड़ा हो जाए ॥१३ ॥

१२७५. प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥१४ ॥

हे अग्ने ! आप इस व्यक्ति को प्राण तथा चक्षु से संयुक्त करें और शरीर बल से भलीप्रकार संयुक्त करके प्रेरित करें । हे अग्निदेव ! आप अमृत को जानने वाले हैं । यह व्यक्ति इस लोक से न जाए और (मिट्टी में मिलकर - मरकर) पृथ्वी को अपना घर न बनाए ॥१४ ॥

१२७६. मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥१५ ॥

हे व्याधिग्रस्त मनुष्य ! आपका प्राण विनष्ट न हो और आपका अपान आच्छादित न हो । अधिष्ठाता सूर्यदेव अपनी किरणों के द्वारा आपको मृत्यु से ऊपर उठाएँ ॥१५ ॥

१२७७. इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा ।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ॥१६ ॥

यह अन्दर बँधी हुई, बोलने वाली जिह्वा कहती है कि आपके साथ रहने वाले क्षय-रोग तथा ज्वर- रोग की सैकड़ों पीड़ाओं को हम दूर करते हैं ॥१६ ॥

१२७८. अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥१७ ॥

जिस मृत्यु को निश्चितरूप से प्राप्त करने के लिए आप उत्पन्न हुए हैं, ऐसा यह अपराजित मृत्यु का लोक देवों को अत्यधिक प्रिय है; किन्तु हे मनुष्य ! हम आपका आवाहन करते हैं, आप वृद्धावस्था से पूर्व न मरें ॥१७ ॥

[३१- कृत्यापरिहरण सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - कृत्यादूषण । **छन्द** - ११ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, १२ पथ्याबृहती, १-१० अनुष्टुप् ।]

जो हीन मनोवृत्तियों के व्यक्ति अपनी प्राणशक्ति के स्थूल-सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा दूसरों का अनिष्ट करना चाहते हैं, उनके प्रयासों को हितकारी संकल्पों-प्राण प्रयोगों द्वारा उन्हीं दुष्टों की ओर पलट देने के भाव-प्रयोग इस सूक्त में वर्णित हैं-

१२७९. यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१ ॥

अभिचारकों ने जिसको कच्ची मिट्टी के बर्तन में किया है, जिसको धान, जौ, गेहूँ, उपवाक् (इन्द्र जौ या कुटज),तिल, कंगनी आदि मिश्र धान्यों में किया है, जिसको कुक्कुट आदि के कच्चे मांस में किया है, ऐसी कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥१ ॥

१२८०. यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने मुर्गे पर किया है अथवा जिसको प्रचुर बाल वाले बकरे पर किया है अथवा जिसको भेड़ पर किया है, ऐसी कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥२ ॥

१२८१. यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने एक खुर वाले पशुओं पर किया है, जिसको दोनों ओर दाँत वाले गधे पर किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥३ ॥

१२८२. यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने मनुष्यों द्वारा पूजित भक्षणीय पदार्थों में ढककर खेतों में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥४ ॥

१२८३. यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५ ॥

जिस कृत्या को बुरे चित्त वाले अभिचारकों ने गार्हपत्य की पूर्व अग्नि में किया है, जिसको यज्ञशाला में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥५ ॥

१२८४. यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने सभा में किया है, जिसको जुए के पाशों में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥६ ॥

१२८५. यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥७ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने सेनाओं में किया है, जिसको बाणरूप हथियारों पर किया तथा जिसको दुन्दुभियों में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं । ।७ ॥

१२८६. यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥८ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने कुएँ में डालकर किया है, जिसको श्मशान में गाड़ दिया है तथा जिसको घर में किया है, उस कृत्या को हम अभिचारकों के ऊपर पुन: लौटाते हैं ॥८ ॥

१२८७. यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ॥९ ॥

जिस कृत्या को अभिचारकों ने मनुष्य की हड्डी में किया है, जिसको प्रज्वलित अग्नि में किया है, उस कृत्या को हम चोरी से अग्नि प्रज्वलित करने वाले मांसभक्षी अभिचारकों के ऊपर पुनः लौटाते हैं ॥९ ॥

१२८८. अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥१० ॥

जो मनुष्य अज्ञानतावश, कुमार्ग से हम मर्यादापालकों पर कृत्या को भेजता है, हम उसको उसी मार्ग से उसके ऊपर भेजते हैं ॥१० ॥

१२८९. यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥११ ॥

जो मनुष्य हमारे ऊपर कृत्या प्रयोग करके हमारी अँगुलियों तथा पैरों को विन करना चाहते हैं, वे वैसा करने में सक्षम न हों; वे अभागे हम भाग्यशालियों के लिए कल्याण ही करें ॥ ११ ॥

१२९०. कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥१२ ॥

गुप्त रूप से काम करने वालों, गालियाँ देने वालों और अन्ततः दुःख देने वालों को इन्द्रदेव अपने विशाल हथियारों से नष्ट कर डालें और अग्निदेव अपनी ज्वालाओं से बींध डालें ॥१२ ॥

॥इति पञ्चमं काण्डं समाप्तम्॥

॥ अथ षष्ठ काण्डम् ॥

[१- अमृतप्रदाता सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** सविता । **छन्द-** १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २-३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।]

१२९१. दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥१ ॥

हे आथर्वण ! (ऋषि अथर्वा के अनुयायी अथवा अविचल ब्रह्म के ज्ञाता) आप बृहत्साम का गायन करें, रात में भी गाएँ । देव सविता (सबके उत्पन्न कर्त्ता) की स्तुति करें ॥१ ॥

१२९२. तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः । सत्यस्य युवानम द्रोघवाचं सुशेवम् ॥२ ॥

जो (जीव मात्र को) भव सागर में सत्य की प्रेरणा देने वाले हैं, सदैव युवा रहने वाले, सुख देने वाले तथा द्रोहरहित (सबके लिए हितकारी) वचन बोलने वाले हैं, उन (सविता देव) की स्तुति करें ॥२ ॥

१२९३. स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगातवे ॥३ ॥

वे सवितादेव (उक्त) दोनों प्रकार के श्रेष्ठ गायन (मंत्र पाठ) के आधार पर पर्याप्त मात्रा में हमें अमृत अनुदान देते रहें ॥३ ॥

[२- जेताइन्द्र सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-**सोम, वनस्पति । **छन्द-**परोष्णिक् ।]

१२९४. इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत । स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥१ ॥

हे याजको ! आप हमारी प्रार्थना को आदरपूर्वक सुनने वाले देवराज इन्द्र के लिए सोमरस निचोड़ें और अच्छी तरह परिशोधित-परिमार्जित करें ॥१ ॥

१२९५. आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः । विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥

जिनके पास अभिषुत सोम उसी प्रकार पहुँच जाता है, जैसे वृक्ष के पास पक्षी; ऐसे हे विज्ञानी वीर (इन्द्रदेव) ! आप आसुरी प्रवृत्ति वालों को विनष्ट करें ॥२ ॥

१२९६. सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे । युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥३ ॥

हे अध्वर्यो ! सोमपान करने वाले, शत्रुहन्ता, वज्रधारी इन्द्रदेव के लिए सोम अभिषुत करें । चिरयुवा, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, यजमानों की कामना की सिद्धि करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥३ ॥

[३- आत्मगोपन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-**इन्द्रापूषन्, अदिति, मरुद्गण, अपांनपात्, सिन्धुसमूह, विष्णु, द्यौ, २- द्यावापृथिवी, ग्रावा, सोम, सरस्वती, अग्नि, ३-अश्विनीकुमार, उषासानक्ता, अपांनपात्, त्वष्टा । **छन्द-**जगती, १ पथ्याबृहती ।]

१२९७. पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥१ ॥

हे इन्द्र और पूषन् देवता ! आप हमारी रक्षा करें। देव जननी अदिति और उनचास मरुद्‌गण हमारी रक्षा करें। "अपांनपात्" (जल को अपने स्थान से विचलित न होने देने वाले अन्तरिक्षीय विद्युत्‌रूप अग्निदेव) एवं सातों समुद्र हमारी रक्षा करें। द्युलोक एवं प्रजापालक विष्णुदेव भी हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

१२९८. पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥२ ॥

अभीष्ट कामना की पूर्ति के लिए द्युलोक और पृथ्वीलोक हमारी रक्षा करें। सोमाभिषव करने का पत्थर, निष्पन्न सोम और श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाली सरस्वती (विद्या की अधिष्ठात्री देवी) हमें पाप से बचाएँ। अग्निदेव अपने रक्षक प्रवाहों से हमारी सुरक्षा करें ॥२ ॥

१२९९. पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम्।

अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥३ ॥

पालक अश्विदेव हमारी रक्षा करें। दिन और रात्रि के देवता उषासानक्ता हमें सुरक्षित रखें। मेघ जल को स्थिर रखने वाले (अग्निदेव) हिंसकों से हमें बचाएँ। हे त्वष्टादेवता ! आप सब तरह के विकास के लिए हमारी वृद्धि करें ॥३ ॥

[४-आत्मगोपन सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा। **देवता**-१ त्वष्टा, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति, अदिति; २ अंश, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा, अदिति, मरुद्‌गण; ३ अश्विनीकुमार, द्यौष्पिता। **छन्द**-१ पथ्या बृहती, २ संस्तार पंक्ति, ३ त्रिपदा विराट् गायत्री।]

१३००. त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥१ ॥

सबका निर्माण करने वाले देव त्वष्टा, सुखवर्षक पर्जन्य, सत्यज्ञान - सम्पन्न ब्रह्मणस्पति और अपने पुत्र एवं भाइयों (देवताओं) के साथ अदिति हमारी देवोचित स्तुति को सुनें और हम सबके दुर्धर्ष तथा पोषक बल की रक्षा करें ॥१ ॥

१३०१. अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः।

अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥२ ॥

अंश, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा तथा अदिति एवं समस्त मरुद्‌गण हमारी रक्षा करें। देवगण हमारी रक्षा उस शत्रु से करें, जो हमारा अनिष्ट करना चाहता हो। हमसे दूर हुआ वह हिंसक द्वैष, शत्रु को दूर भगा दे ॥२ ॥

१३०२. धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन्।

द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥३ ॥

हे अश्विदेवो ! आप हमारी सद्‌बुद्धि एवं यज्ञादि पवित्र कर्म का भली प्रकार रक्षण करें। हे विस्तीर्ण गमनशील वायुदेवता ! आप प्रमादरहित होकर हमें सुरक्षा प्रदान करें। हे प्राणिपालक द्यौः ! दुःशुना (दुर्गति रूप कुत्ते की दुष्प्रवृत्ति) को हमसे दूर भगा दें ॥३ ॥

[कुत्ते में स्वामिभक्ति, सूँघने की शक्ति, जागरूकता जैसे सद्‌गुण भी होते हैं और अपनी जाति पर ही गुर्राना, कहीं भी मुँह डालना जैसे दोष भी होते हैं, इसलिए केवल दोषों, दुर्गतियों से बचाव चाहा गया है।]

[५-वर्चः प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-१,३ अग्नि, २ इन्द्र । **छन्द**-१,३ अनुष्टुप्, २ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

१३०३. उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत । समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप घृत द्वारा आवाहनीय हैं । आप अपने याजक को उत्तम स्थान प्रदान करके श्रेष्ठ बनाएं और शरीर को तेजस् - सम्पन्न बनाएँ एवं पुत्र-पौत्रादि सन्तानों की वृद्धि करें ॥१ ॥

१३०४. इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी ।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥२ ॥

हे इन्द्र ! इस (मानव या याजक) को ऊर्ध्वगामी बनाएँ । यह आपके प्रसाद से स्वजातियों में सर्वश्रेष्ठ, स्वतन्त्र और सबको वश में करने वाला हो । इसे प्रचुर धन से पुष्ट करके, सुखपूर्वक जीकर, शतायु वाला बनाएँ ॥२ ॥

१३०५. यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३ ॥

हे अग्ने ! जिसके घर में हम यज्ञादि अनुष्ठान करें, आप उसे श्री-समृद्धि से सम्पन्न करें । सोम और ब्रह्मणस्पति देवता उसे आशीर्वचन प्रदान करें ॥३ ॥

[६-शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-१ ब्रह्मणस्पति, २-३ सोम । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१३०६.यो३स्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते॥

हे ब्रह्मणस्पते ! जो शत्रु देव - विमुख होकर हमें समाप्त करने की इच्छा करता है, आप उसे हमारे सोमाभिषव करने वाले याजक के वश में कर दें ॥१ ॥

१३०७. यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥२ ॥

हे सोम ! श्रेष्ठ विचार वाले हम पर, जो कटुभाषी शत्रु शासन करें, आप उनके मुँह पर वज्र से आघात करें, जिससे वह विचूर्ण होकर दूर हो जाएँ ॥२ ॥

१३०८. यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥३ ॥

हे सोम ! जो स्वजातीय अथवा विजातीय (निकृष्ट) शत्रु हमारा विनाश करें, अन्तरिक्ष से गिरने वाली बिजली की तरह आप उनके बल और सैन्य दल का संहार कर दें ॥३ ॥

[७ - असुरक्षयण सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता-१-२ सोम, ३ विश्वेदेवा । छन्द-१ निचृत् गायत्री, २-३ गायत्री ।]

१३०९. येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः । तेना नोऽवसा गहि ॥१ ॥

हे सोम ! आपके जिस सुनियम के कारण देवयान नामक मार्ग पर मित्र आदि द्वादश आदित्य और उनकी माता अदिति बिना एक दूसरे से टकराए चलते हैं । आप वैसी ही भावना लेकर हमारी रक्षा करने को आएँ ॥१ ॥

१३१०. येन सोय साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः । तेना नो अधि वोचत ॥२ ॥

हे अजेय शक्तियुक्त सोम ! जिस शक्ति से आप हमारे शत्रुओं को परास्त करते हैं, उसी शक्ति के साथ हमें आशीर्वाद प्रदान करें ॥२ ॥

१३११. येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् । तेना नः शर्म यच्छत ॥३ ॥

हे देवो ! आपने अपनी जिस शक्ति से देव विरोधी असुरों के बल और आयुध प्रहारक शत्रुओं के बल को समाप्त करके जीत लिया था, उसी बल से हमें सुख प्रदान करें ॥३ ॥

[८ - कामात्मा सूक्त]

[**ऋषि**- जमदग्नि । **देवता**-कामात्मा, २सुपर्ण, ३ द्यावापृथिवी, सूर्य । **छन्द**-पथ्यापंक्ति ।]

इस सूक्त के देवता 'कामात्मा' हैं। सामान्यरूप से अपनी कामना करने वाली नारी-पत्नी का सन्दर्भ इससे जोड़ा गया है; किन्तु किसी भी व्यक्तित्व, कला या शक्ति के सन्दर्भ में भी इस सूक्त के भाव सटीक बैठते हैं-

१३१२. यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥१ ॥

(हे देवि !) जिस प्रकार 'वेल' वृक्ष के सहारे ऊपर उठती है, उसी प्रकार तुम मेरी कामना वाली होकर, मेरे साथ सघनता से जुड़ी रहो और मुझसे दूर न जाओ ॥१ ॥

१३१३. यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥२ ॥

ऊपर उड़ता हुआ गरुड़ जैसे अपने पंखों को नीचे दबाता है, उसी प्रकार तुझे ऊर्ध्वगामी (तेरी प्रगति) बनाने के लिए तेरे मन को अपनी ओर लाता हूँ , जिससे तुम मेरे प्रति कामना वाली होकर हमारे पास रहो ॥२ ॥

१३१४. यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥३ ॥

सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी आदि लोकों को प्रकाश से संव्याप्त कर लेता है, उसी प्रकार हम अपने प्रभाव से तुम्हारे मन को आकर्षित करते हैं । जिससे तुम हमारे प्रति कामना वाली होकर हमारे पास रहो, दूर न जाओ ॥३ ॥

[९ - कामात्मा सूक्त]

[**ऋषि**- जमदग्नि । **देवता**-कामात्मा ३, गोसमूह । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

सूक्त ८ की तरह इस सूक्त का अर्थ भी पत्नी के सन्दर्भ में किया जाता है; किन्तु तीसरे मंत्र का भाव 'घृत उत्पादक गौएँ मेरी ओर भेजें' यह संकेत करता है कि मंत्र का लक्ष्य ओजस्विता जैसी कोई सूक्ष्मशक्ति भी है-

१३१५. वाञ्छ मे तन्वं१ पादौ वाञ्छाक्ष्यौ३ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥१ ॥

तुम मेरे शरीर और दोनों पैरों की इच्छा वाली हो । मेरे दोनों नेत्र और दोनों जंघाओं की कामना वाली हो । मेरे अंग-प्रत्यंग को स्नेह भरी दृष्टि से देखो । सेचन की कामनायुक्त तुम्हारी आँखें और केश मेरे चित्त को सुखाते (प्रेरित करते) हैं ॥१ ॥

१३१६. मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥२ ॥

मैं तुम्हें अपनी बाहुओं और हृदय में आश्रय लेने वाली बनाता हूँ, जिससे तुम मेरे कार्य में कुशल तथा मेरे चित्त के अनुरूप चलने वाली बनो ॥२ ॥

१३१७. यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम्।
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥३ ॥

जिसकी नाभि हर्षदायक तथा हृदय स्नेहयुक्त है, उस (स्त्री आदि) को घृत उत्पादक गौएँ (या किरणें) हमारे साथ संयुक्त करें ॥३ ॥

[१० - संप्रोक्षण सूक्त]

[ऋषि- शन्ताति । देवता- १ अग्नि, २ वायु, ३सूर्य । छन्द-१साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या बृहती, ३ साम्नी बृहती ।]

१३१८. पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा ॥१ ॥

विशाल पृथ्वी, शब्द ग्रहण करने वाली इन्द्रिय (श्रोत्र) या पृथ्वी के श्रोत्ररूप दिशाओं, वृक्ष - वनस्पतियों के अधिष्ठातादेव और पृथ्वी के स्वामी अग्निदेव के लिए यह उत्तम हवि समर्पित है ॥१ ॥

१३१९. प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ॥२ ॥

जीव मात्र में संचरित होने वाले, जीव मात्र को चैतन्य करने वाले प्राण के लिए तथा उसके विचरण - स्थान अंतरिक्ष के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं । अंतरिक्ष में विचरने वाले पक्षी और उसके अधिष्ठातादेव तथा वायु के लिए यह हवि अर्पित है ॥२ ॥

१३२०. दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥३ ॥

प्रकाशरूप द्युलोक के लिए, उसको ग्रहण करने वाली इन्द्रिय चक्षु के लिए, उसके प्रकाश से प्रकाशित नक्षत्र के लिए और उसके स्वामी प्राणियों के प्रेरक सूर्य के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥३ ॥

[११ - पुंसवन सूक्त]

[**ऋषि**- प्रजापति । **देवता**-रेतस्, ३ प्रजापति अनुमति, सिनीवाली । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

जब पुत्र की कामना से गर्भिणी का संस्कार होता है, तो उसे 'पुंसवन' कहते हैं और जब कन्या के लिए वह किया जाता है, तो उसे 'स्त्रैषूय' कहते हैं । इस सूक्त में दोनों के लिए उपचारों के संकेत किए गए हैं । मन्त्रों के गठन रहस्यात्मक हैं तथा उन पर शोध कार्य अपेक्षित है-

१३२१.शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥१ ॥

शमी पर जब अश्वत्थ आरूढ़ होता है, तो पुंसवन किया जाता है । इससे पुत्र प्राप्ति का योग बनता है । उस प्रभाव को हम स्त्रियों में भर देते हैं ॥१ ॥

[शमी के वृक्ष पर पीपल जमे, तो उससे ओषधि-योग बनाकर, स्त्री को देने से पुत्रोत्पत्ति का योग बनने का यहाँ संकेत मिलता है, जिस पर शोध अपेक्षित है । दूसरा अर्थ यह निकलता है कि अश्वरूप (सशक्त) नर-शुक्र, जब सौम्य नारी-रज से संयुक्त होता है, तब पुत्र का योग बनता है । इस अनुकूलता को ओषधियों तथा मन्त्रोपचार द्वारा नारी में स्थापित करने का भाव भी यहाँ ग्राह्य है ।]

१३२२. पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥२ ॥

पुरुषत्व ही रेतस् (उत्पादक शुक्र) बनता है । उसका आधान स्त्री में किया जाता है, तब पुत्र-उत्पत्ति का योग बनता है । यह प्रजापति (प्रजा उत्पन्न करने वाले देव या विशेषज्ञ) का कथन है ॥२ ॥

१३२३. प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चीक्लृपत् । स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥

अन्यत्र (उक्त'अनुशासन से भिन्न स्थिति में) प्रजापति तथा अनुमति एवं सिनीवाली देवियाँ गर्भधारण कराती हैं, तो 'स्त्रैषूय' (कन्या उत्पत्ति) का योग बनता है; किन्तु उस (पूर्वोक्त) मर्यादा से पुत्र की ही उत्पत्ति होती है ॥३ ॥

[यहाँ भाव यह है कि जब प्रजापति (प्रजा उत्पन्नकर्त्ता) की अनुमति से नारी गर्भ धारण करती हैं, तो कन्या उत्पत्ति का योग बनता है तथा पूर्वोक्त विधि से पुत्र योग बनता है । मन्त्र क्रमांक २ में पुरुष शुक्र के स्त्री रज में आधान तथा मंत्र क्र० ३ में पुरुष शुक्र में स्त्री रज के आधान का भाव भी बनता है, जिससे पुत्र या पुत्री प्राप्ति का योग बनने की बात कही गई है ।]

[१२ - सर्पविषनिवारण सूक्त]

[**ऋषि**- गरुत्मान् । **देवता**-तक्षक । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१३२४. परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् ।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥१ ॥

जिस प्रकार सूर्य द्युलोक को जानते हैं, उसी प्रकार हम सभी सर्पों के जन्म के ज्ञाता हैं । जिस प्रकार से रात्रि संसार को सूर्य से परे कर देती है, वैसे ही हम विष का निवारण करते हैं ॥१ ॥

१३२५. यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा ।
यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥२ ॥

ब्राह्मणों, ऋषियों तथा देवों ने जिस उपचार को पहले जान लिया था, जो भूत और भविष्यत् (दोनों कालों) में रहने वाला है, उससे हम तेरा (सर्प का) विष दूर करते हैं ॥२ ॥

१३२६. मध्वा पृञ्चे नद्य१: पर्वता गिरयो मधु ।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥३ ॥

(सर्प विष से ग्रसित रोगी को) मधु से सिंचित करता हूँ । नदी, पर्वत, छोटे-छोटे टीले यह सभी मधु (ओषधि प्रभाव) युक्त स्थान हैं । शीपाला (शैवाल वाली शान्त) , परुष्णी (घुमावदार जल धाराएँ) अथवा उक्त नामवाली नदियाँ मधुयुक्त हैं । विषनाशक मधु हृदय एवं मुख के लिए शान्ति देने वाला हो ॥३ ॥

[१३ - मृत्युञ्जय सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-मृत्यु । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१३२७. नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते ॥१ ॥

देव (विद्वान्) ब्राह्मणों के मारक आयुधों को नमन है । राजाओं के संहारकारक अस्त्र-शस्त्रों को नमस्कार है । वैश्यों, धनवानों के द्वारा होने वाली मृत्यु से बचाने के लिए आप को नमस्कार है ॥१ ॥

१३२८.नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः । सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः॥

हे मृत्यो ! आपकी पक्षपातपूर्ण बात की सूचना देने वाले दूत को नमस्कार हो, आपके पराभव की सूचना देने वाले दूत को नमस्कार हो । हे मृत्यो ! आपकी कृपालु बुद्धि को नमस्कार है एवं आपकी दण्ड प्रदान करने वाली (कठोर) बुद्धि को भी हम नमस्कार करते हैं ॥२ ॥

१३२९. नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३ ॥

हे मृत्यो ! मेरे लिए आपको बुलाने वाले यातुधान (रोगादि शत्रु , शस्त्रादि) को नमन है और आपसे रक्षा करने वाली ओषधियों व शक्तियों को नमस्कार है । आपको प्राप्त कराने वाले मूल कारणों को नमस्कार है । ऐसे आपको तथा आशीर्वाद देने में समर्थ ब्राह्मणों को नमस्कार हो ॥३ ॥

[१४ - बलासनाशन सूक्त]

[ऋषि- बभ्रुपिङ्गल । देवता-बलास । छन्द-अनुष्टुप् ।]

१३३०. अस्थिस्त्रंसं परुस्त्रंसमास्थितं हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥

शरीर की हड्डियों और जोड़ों में दर्द पैदा करने वाला, शरीर का बलनाशक श्वास, खाँसी आदि रोग हृदय एवं पूरे शरीर में व्याप्त हो रहा है । हे मन्त्र शक्ते ! आप उसे हमसे दूर कर दें ॥१ ॥

१३३१. निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा । छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव॥

जिस प्रकार कमल नाल को सहज ही उखाड़ दिया जाता है, उसी प्रकार बल-विनाशक कफ के रोगी के क्षय रोग को जड़ से उखाड़ता हूँ । जैसे- पकी हुई ककड़ी का फल पौधे से अपने आप छूट जाता है, उसी प्रकार रोग होने के (बन्धन) कारण को शरीर से अनायास ही दूर करता हूँ ॥२ ॥

१३३२. निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा । अथो इट इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ॥

हे बलविनाशक बलास रोग ! जिस प्रकार शीघ्रगामी शुशुक नामक मृग दूर भागता है, उसी प्रकार हे वीर नाशक ! तू हमारे शरीर से निकल कर भाग । जैसे- बीता हुआ वर्ष पुनः वापस नहीं आता, उसी प्रकार हमारे पुत्रादि को नष्ट न करते हुए तू भाग जा (पुनः न आना) ॥३ ॥

[१५ - शत्रुनिवारण सूक्त]

[ऋषि- उद्दालक । देवता-वनस्पति । छन्द-अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के प्रथम मंत्र में 'ओषधीनां उत्तमः असि'- (तू ओषधियों में उत्तम है) , वाक्य आया है । आचार्य सायण ने इस भाव को पलाश पर आरोपित किया है; किन्तु इस सूक्त के देवता वनस्पति हैं, इसलिए उक्त भाव किसी एक वृक्ष विशेष से जोड़ने की अपेक्षा वनस्पतियों में ओषधीय गुण उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म प्रवाह के प्रति अधिक सटीक बैठता है । खनिजों, रसायनों (कैमिकल्स) से बनायी गयी ओषधियों की अपेक्षा वनस्पतिजन्य ओषधियाँ शरीर में अधिक स्वाभाविकता और सहजता से स्थापित (जज्ब) हो जाती हैं, इसलिए इन्हें ओषधियों में उत्तम कहना उचित है-

१३३३. उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१ ॥

(हे वनस्पते !) आप ओषधियों में श्रेष्ठ हैं, अन्य वृक्ष तेरे अनुगामी हैं । जो रोग हम पर आधिपत्य जमाना चाहते हैं, वे हमारे अधीन हो जाएँ ॥१ ॥

१३३४. सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥२ ॥

जिस प्रकार वृक्षों में ओषधि - प्रवाह (वृक्ष के अन्य गुणों में) श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बन्धुओं के साथ या अकेले ही जो हमारा अहित करना चाहते हैं, हम उनसे श्रेष्ठ हो जाएँ ॥२ ॥

[दुष्टों के विध्वंसक प्रयासों पर हमारे दोष- निवारक प्रयास विजयी हों-यहाँ यह भाव समाहित है ।]

१३३५. यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः ।तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ॥

जिस प्रकार वृक्षों में 'तलाश' नामक वृक्ष है अथवा वृक्षों में आश्रय पाने वाले तत्त्वों में ओषधि (रोग नाशक) तथा सोम (पोषक प्रवाह) श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार हम भी उत्तम बनें ॥३ ॥

['तलाश' नामक ओषधि गुणयुक्त वृक्ष आजकल ज्ञात नहीं है । उसे पलाश कहना युक्तिसंगत नहीं लगता । तलाश का अर्थ स्वामी दयानन्द के भाष्य में 'आश्रय प्रदायक श्री' कहा गया है । इस अर्थ के साथ भी मंत्र की संगति बैठ जाती है ।]

[१६ - अक्षिरोगभेषज सूक्त]

[**ऋषि**- शौनक । **देवता**-चन्द्रमा । **छन्द**-निचृत् त्रिपदा गायत्री, २ अनुष्टुप्, ३ बृहतीगर्भा ककुम्मती अनुष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री ।]

इस सूक्त के पहले एवं दूसरे मंत्र में 'आबय' नामक ओषधि का उल्लेख है । आचार्य सायण ने उसे 'सरसों' कहा है ; क्योंकि उसके रस को 'उग्र' कहा गया है । इन मन्त्रों के देवता चन्द्रमा हैं । चन्द्रमा को 'ओषधिपति' भी कहते हैं । 'आबय' का अर्थ खाद्य भी है और गतिशील भी है । इस आधार पर चन्द्रमा को 'आबय' कह सकते हैं । मन्त्रार्थ दोनों सन्दर्भों में सिद्ध होते हैं-

१३३६. आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो । आ ते करम्भमद्मसि ॥१ ॥

हे आबय (ओषधि विशेष अथवा चन्द्रमा) ! आपके खाने योग्य तथा न खाने योग्य रस उग्र (रोगनाशक) हैं । यह (आपका स्वरूप) दोनों का करंभ (मिश्रण) है ॥१ ॥

१३३७. विहह्लो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।
स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥२ ॥

विहह्ल (चमत्कारी) तथा मदावती (मस्ती पैदा करने वाली) नाम से प्रसिद्ध तेरे पिता और माता हैं । तू, जिसने अपने आपको खाद्य बनाया है, उन (माता-पिता) से भिन्न है ॥२ ॥

[विहह्ल एवं मदावती यदि ओषधियाँ हैं, तो उनके संयोग (कलम लगाकर विकसित की गई संकर प्रजाति) से बनी ओषधि, उन दोनों से भिन्न है । यदि यह सम्बोधन चन्द्रमा के ओषधियुक्त प्रवाहों के लिए है, तो उनके संयोग से बनी खाने योग्य ओषधि उनसे भिन्न होती ही है ।]

१३३८. तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् । बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥३ ॥

हे तौविलिके (इस नाम की अथवा उत्पन्न होने वाली ओषधि) ! आप हमें शक्ति देकर रोगों का विनाश करें । 'एलब' नाम का यह आँखों का रोग पलायन कर जाए । रोग के कारणसहित बभ्रु और बभ्रुकर्ण नामक रोग शरीर से भाग जाएँ तथा 'निराल' नामक रोग भी निकल जाए ॥३ ॥

१३३९. अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ॥४ ॥

हे आलस्य विनाशिनी अलसाला (सस्य मञ्जरी) ! तू प्रथम ग्रहणीय होने से पूर्वा है । हे शलाञ्जला (सस्य मञ्जरी) ! तू अणुओं तक पहुँचने वाली और अन्त में ग्रहण करने के कारण 'उत्तरा' है । हे नीलागलसाला (सस्य मञ्जरी) ! तुझे मध्य में ग्रहण किया जाता है ॥४ ॥

[१७ - गर्भदृंहण सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-गर्भदृंहण, पृथिवी । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१३४०.यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।

हे स्त्री ! जिस प्रकार यह विशाल पृथ्वी प्राणिमात्र के बीजरूप गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार तेरा गर्भ भी प्रसवकाल तक गर्भ में (दस मास तक) स्थिर हो ॥१ ॥

१३४१. यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥२ ॥

जिस प्रकार इस विशाल पृथ्वी ने पहाड़- उपत्यिकाओं सहित वृक्ष-वनस्पतियों को दृढ़तापूर्वक धारण कर रखा है, उसी तरह गर्भाशय में स्थित तेरा यह गर्भ प्रसव के लिए यथासमय (प्रसवकाल) तक स्थित रहे ॥२ ॥

१३४२. यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥३ ॥

विशाल पृथ्वी ने जैसे नाना प्रकार से विभक्त, व्यवस्थित, चराचर जगत् को स्वयं में धारण कर रखा है, उसी प्रकार तुम्हारा यह गर्भ यथासमय (प्रसवकाल) तक स्थित रहे ॥३ ॥

१३४३. यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥४ ॥

जिस प्रकार यह विशाल धरित्री विविध स्वरूपों वाले जगत् को धारण किये हुए है, उसी प्रकार तुम्हारा यह गर्भ प्रसवकाल तक स्थित रहे ॥४ ॥

[१८ - ईर्ष्याविनाशन सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-ईर्ष्याविनाशन । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१३४४. ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।
अग्निं हृदय्यं१ शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥१ ॥

हे ईर्ष्यालु मनुज ! हम तेरी ईर्ष्या (डाह) से होने वाली प्रथम गति एवं उसके बाद की गति को तथा उससे उत्पन्न हृदय को संतप्त करने वाली अग्नि और शोक को सर्वदा के लिए दूर कर देते हैं ॥१ ॥

१३४५. यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा। यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥२ ॥

जैसे भूमि मरे मन वाली (संवेदनाहीन) है, मृत व्यक्ति से भी अधिक मृत मन वाली है, उसी प्रकार ईर्ष्यालु का मन मर जाता (संवेदना शून्य, क्रूर हो जाता)है ॥२ ॥

१३४६. अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम्।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ॥३ ॥

हे ईर्ष्याग्रसित पुरुष ! व्यक्ति को पतन के मार्ग पर ले जाने वाले, हृदय में स्थित ईर्ष्याग्रस्त विचारों को, उसी प्रकार बाहर निकालता हूँ, जिस प्रकार शिल्पकार वायु को धौंकनी से बाहर निकालता है ॥३ ॥

[१९ - पावमान सूक्त]

[**ऋषि**- शन्ताति । **देवता**-चन्द्रमा, १ देवजन, मनुवंशी, विश्वाभूतानि (समस्त प्राणी), पवमान; २ पवमान, ३ सविता । **छन्द**-गायत्री, १ अनुष्टुप् ।]

१३४७. पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥१ ॥

देवता मुझे पवित्र करें, विद्वान् मनुष्य हमारी बुद्धि और कर्म को पवित्र करें । सभी प्राणि-समुदाय हमें पवित्र करें । पवित्र करने वाले देव वायु या सोम भी हमें पवित्र करें ॥१ ॥

१३४८. पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे। अथो अरिष्टतातये ॥२ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप हमें पापमुक्त करके पवित्र करें । कर्म करने के लिए, शक्ति प्राप्त करने के लिए तथा दीर्घजीवन के लिए एवं हर प्रकार से कल्याण के लिए, पवित्र करने वाले देव हमें पवित्र करें ॥२ ॥

१३४९. उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च। अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥३ ॥

हे सबके प्रेरणास्रोत सवितादेव ! आप इस लोक और परलोक के सभी सुखों की प्राप्ति के लिए, अपने पवित्र करने के साधन तेजस् से तथा अपनी प्रेरणा एवं यज्ञ से हमें पवित्र करें ॥३ ॥

[२० - यक्ष्मनाशन सूक्त]

ऋषि- भृग्वङ्गिरा । **देवता**-यक्ष्मनाशन । **छन्द**-१ अतिजगती, २ ककुम्मती प्रस्तारपंक्ति, ३ सतः पंक्ति ।

१३५०. अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥१ ॥

दाहक अग्नि की भाँति यह ज्वर शरीर में व्याप्त हो जाता है । उन्मत्त के समान प्रलाप करता हुआ, परलोक गमन कर जाता है । ऐसा प्रबल ज्वर किसी अनियमित व्यक्ति के पास चला जाए । तापरूपी अस्त्र से मारने वाले तथा जीवन दुःखित करने वाले ज्वर को हमारा नमस्कार है ॥१ ॥

१३५१. नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥२ ॥

रुद्रदेव को नमस्कार, पीड़ा देने वाले ज्वर को नमस्कार, तेजस्वी राजा वरुण, द्युलोक, पृथिवी तथा ओषधियों आदि सभी को हमारा नमस्कार है ॥२ ॥

१३५२. अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥३ ॥

दुःखी करने वाले, सभी स्वरूपों को पीला (तेजहीन) बना देने वाले, उस लाख और भूरे रंग वाले तथा वनों में फैलने वाले ज्वर को नमस्कार है ॥३ ॥

[२१ - केशवर्धनी ओषधि सूक्त]

[**ऋषि**- शन्ताति । **देवता**-चन्द्रमा । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१३५३. इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥१ ॥

तीनों लोकों में श्रेष्ठ, लौकिक और पारलौकिक कर्मों का सम्यक् फल प्रदान करने वाली, त्वचा के समान भूमि से उत्पन्न व्याधि निवारक इस ओषधि को मैं ग्रहण करता हूँ ॥१ ॥

१३५४. श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् ।
सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥२ ॥

हे हरिद्रा ओषधे ! तुम सभी ओषधियों में श्रेष्ठ और अन्य बूटियों में सबसे अधिक उत्तम रस, गुण तथा वीर्य से युक्त हो । जिस प्रकार दिन-रात के बीच सोम (शांतिदायक चन्द्रमा) एवं तेजस्वी सूर्य हैं । सभी देवताओं में जिस प्रकार वरुण सर्वश्रेष्ठ राजा हैं, उसी प्रकार तुम भी श्रेष्ठ हो ॥२ ॥

१३५५. रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ। उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥३॥

हे सामर्थ्य वाली ओषधियो ! आप, सबको आरोग्य प्रदान करती हैं एवं बलदात्री होने के कारण कभी हिंसित नहीं करती हैं, इसलिए आप आरोग्य प्रदान करने की इच्छा करें, केशों को बढ़ाने वाली सिद्ध हों ॥३ ॥

[२२ - भैषज्य सूक्त]

[**ऋषि-** शन्ताति। **देवता-**आदित्य रश्मि, २-३ मरुद्गण। **छन्द-**१, ३ त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा भुरिक् जगती।]

१३५६. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू दुः ॥१ ॥

श्रेष्ठ गतिमान् सूर्य-किरणें अपने साथ जल को उठाती हुई सबके आकर्षण के केन्द्र यानरूप सूर्य मण्डल के समीप पहुँचती हैं। वहाँ अन्तरिक्ष के मेघों में स्थित जल को बरसाते हुए पृथ्वी को सिक्त कर देती हैं ॥१ ॥

१३५७. पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥२ ॥

हे मरुतो ! स्वर्णाभूषणों को हृदय में धारण कर आपके गतिमान् होने से रसमय जल और अन्नादि ओषधियों को सुख प्राप्त होता है। हे देवो ! जहाँ जल वृष्टि हो, वहाँ शक्तिदाता अन्न एवं उत्तम बुद्धि स्थापित हो ॥२ ॥

१३५८. उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥३ ॥

हे जल को बरसाने वाले मरुतो ! जो वृष्टि, अन्न आदि सभी धान्यों और नीचे के स्थानों को जल से भर देती है, आप उसे प्रेरित करें। वृष्टि के लिए मेघ-गर्जना सबको कम्पायमान करती रहे, जैसे दुखी कन्या (माता-पिता को) कम्पायमान करती है और पत्नी, पति को प्रेरित करती है ॥३ ॥

[२३ - अपांभैषज्य सूक्त]

[**ऋषि-**शन्ताति। **देवता-**आपः। **छन्द-**१ अनुष्टुप्,२ त्रिपदा गायत्री, ३ परोष्णिक्।]

१३५९. सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः। वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥१ ॥

हम श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोग निरन्तर गतिमान् जल धाराओं में प्रवाहित दिव्य आपः (सृष्टि के मूल सक्रिय तत्त्व) का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

१३६०. ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये। सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥२ ॥

सर्वत्र व्याप्त, निरन्तर गतिमान् जल धाराएँ क्रियाशक्ति उत्पन्न करके हमें इन (हीनताओं) से मुक्त करें, हम शीघ्र प्रगति करें ॥२ ॥

[(क) मनुष्य हीन स्तर के रस पाने के लिए पाप करते हैं। श्रेष्ठ रस की धाराएँ सतत प्रवाहित हैं, उनको पाकर मनुष्य पाप से मुक्त हो सकते हैं। (ख) गतिशील जल धाराओं से विद्युत् शक्ति प्राप्त करके प्रगति के मार्ग खोले जा सकते हैं।]

१३६१. देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः। शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥

सबके प्रेरक - उत्पादक सविता देवता की प्रेरणा से सब मनुष्य अपने-अपने नियत लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के काम करें। कल्याणकारी ओषधियों की वृद्धि एवं हमारे लिए जल कल्याणकारी एवं पाप-क्षयकारी सिद्ध हो ॥३॥

[२४ - अपांभैषज्य सूक्त]

[ऋषि- शन्ताति । देवता-आप: । छन्द-अनुष्टुप् ।]

१३६२ हिमवतः प्रस्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।

आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥१ ॥

हिमाच्छादित पर्वतों की जल धाराएँ बहती हुई समुद्र में मिलती हैं, ऐसी पापनाशक जल धाराएँ हमारे हृदय के दाह को शान्ति देने वाली ओषधियाँ प्रदान करें ॥१ ॥

१३६३. यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।

आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥२ ॥

जो-जो रोग हमारी आँखों , एड़ियों और पैरों के आगे के भागों को व्यथित कर रहे हैं, उन सब दुःखों को वैद्यों का भी उत्तम वैद्य जल हमारे शरीर से निकाल कर बाहर करे ॥२ ॥

१३६४. सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य१ स्थन ।

दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥३ ॥

आप समुद्र की पत्नियाँ हैं, समुद्र आपका सम्राट् है । हे निरन्तर बहती हुई जल धाराओ ! आप हमें पीड़ा से मुक्त होने वाले रोग का निदान दें, उपचार दें, जिससे हम आपके स्वजन नीरोग होकर अन्नादि बल देने वाली वस्तुओं का उपभोग कर सकें ॥३ ॥

[२५ - मन्याविनाशन सूक्त]

[ऋषि - शुनः शेप । देवता - मन्याविनाशन । छन्द - अनुष्टुप् ।]

१३६५. पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१ ॥

गले के ऊपरी हिस्से की नसों में जो पचपन प्रकार के गण्डमाला की फुंसियाँ व्याप्त हैं, वे इस प्रयोग से इस प्रकार नष्ट हों, जैसे पतिव्रता स्त्री के सामने दोषपूर्ण वचन नष्ट हो जाते हैं ॥१ ॥

१३६६. सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२ ॥

जो सतहत्तर प्रकार की पीड़ाएँ गले में होती हैं, वे भी इस प्रयोग से इस प्रकार नष्ट हो जाएँ , जैसे पतिव्रता स्त्री के सामने पापमय वचन नष्ट हो जाते हैं ॥२ ॥

१३६७. नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।

इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३ ॥

कन्धे के चारों तरफ जो निन्यान्नबे प्रकार की गण्डमालाएँ हैं, वे इस प्रयोग से उसी प्रकार नष्ट हो जाएँ , जैसे पतिव्रता स्त्री के सामने दोषपूर्ण वचन नष्ट हो जाते हैं ॥३ ॥

[२६ - पाप्मनाशन सूक्त]

[ऋषि - ब्रह्मा । देवता - पाप्मा । छन्द - अनुष्टुप् ।]

१३६८. अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् ॥१ ॥

हे पापाभिमानी देव ! हे पाप्मन् ! तुम मुझे वश में करके दुःख देते हो, इसलिए सुखी करो । हे पाप्मन् ! तुम मुझे सरल-निष्कपट रूप में स्थापित करो ॥१ ॥

१३६९. यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥२ ॥

हे पाप्मन् ! यदि तुम मुझे नहीं छोड़ते हो, तो हम तुमको व्यावर्तन (चौराहे) पर इस अनुष्ठान से बलपूर्वक छोड़ते हैं । जिससे तुम असद्गामी लोगों के पास चले जाओ ॥२ ॥

१३७०. अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥३ ॥

इन्द्र सदृश सहस्रों विचार वाले हे अमरण-धर्मा पाप ! तुम हमसे दूर हो जाओ । जो असद् विचार वाले हमसे द्वेष रखते हों, उन्हें ही नष्ट करो ॥३ ॥

[२७ - अरिष्टक्षयण सूक्त]

[ऋषि - भृगु । देवता - यम, निर्ऋति । छन्द - जगती, २ त्रिष्टुप् ।]

प्रशिक्षित कपोत (कबूतर) के द्वारा लोग पहले पत्र आदि भेजा करते थे । लगता है उनके माध्यम से कुछ अनिष्टकारी कीट या अभिमंत्रित शक्ति भी भेजी जाती थी, जिसके निवारण करने के संकेत इस सूक्त तथा अगले सूक्त में हैं-

१३७१. देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१ ॥

हे देवो ! पाप देवता द्वारा प्रेरित दूत (कपोत पक्षी) , जिस अशुभ सूचक संदेश के द्वारा हमें कष्ट पहुँचाने आया है, हम उस (अशुभ) के निवारण के लिए हव्यादि कर्मों से आपकी पूजा करते हैं । हमारे द्विपद पुत्र-पौत्रादि एवं चतुष्पद गौ, अश्वादिकों के अनिष्ट- निवारण के लिए , कपोत के आने के दोषों की शान्ति हो ॥१ ॥

१३७२. शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२ ॥

हे देवताओ ! हमारे घर आया हुआ यह कपोत कल्याणकारी और निष्कलुष सूचक हो, जिससे हमारे घर में कोई अशुभ कार्य न हो । हे विद्वान् अग्निदेव ! हमारे द्वारा समर्पित हव्य को ग्रहण करके, इस कपोत के यहाँ आने से होने वाले अनिष्ट या आयुध का निवारण करें ॥२ ॥

१३७३. हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥३ ॥

पंखों वाला आयुध हमारा विनाश न करे । वह अग्निशाला में अग्नि के पास अपना पैर रखे और हमारी गौओं और मनुष्यों के लिए कल्याणकारी हो । हे देवताओ ! यह कपोत पक्षी हमारा विनाश न करे ॥३ ॥

[२८ - अरिष्टक्षयण सूक्त]

[**ऋषि -** भृगु । **देवता -** यम, निर्ऋति । **छन्द -** त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती ।]

१३७४. ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥१ ॥

हे देवताओ ! आप मन्त्र के द्वारा, दूर भेजने योग्य कपोत को, दूर भेजें । यह कपोत हमारी अन्नशाला को छोड़कर उड़ जाए । हम कपोत के अशुभ पद- चिह्नों का मार्जन करते हैं एवं अन्न से तृप्त होकर गौओं (या शोधक किरणों) को घुमाते हैं ॥१ ॥

१३७५. परीमे३ग्निमर्षत परीमे गामनेषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥२ ॥

इन (शमन प्रयोग करने वालों) ने अग्नि को सब ओर स्थापित किया है, इन्होंने गौओं (या किरणों को) चारों ओर पहुँचाया है, देव शक्तियों ने यश अर्जित किया है, इस प्रकार इन्हें कौन भयभीत कर सकता है ? ॥२ ॥

[अग्नि के हवनीय प्रयोगों गौओं के या सूक्ष्म शोधक किरणों के प्रयोग से दुष्प्रभाव समाप्त होने का भाव है । देव अनुग्रह से निर्भय होने की बात कही गयी है ।]

१३७६. यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
यो३स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३ ॥

यमदेव अन्य देवों में प्रमुख हैं । ये प्राणियों की मृत्यु के समय की अनुक्रम से गणना करते हुए फल देने वाले हैं, दो पैर वाले मनुष्यों तथा चार पैर वाले पशुओं की मृत्यु के प्रेरक देव यम को नमस्कार है ॥३ ॥

[२९ - अरिष्टक्षयण सूक्त]

[**ऋषि -** भृगु । **देवता -** यम, निर्ऋति । **छन्द -** विराट् गायत्री, ३. त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टि ।]

१३७७. अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥१ ॥

दूर दिखने वाले शत्रुओं तक , पक्ष (पंख) वाला आयुध पहुँचे । अशुभ बोलने वाला उल्लू और पैरों को पचनाग्नि के समीप रखने वाला यह अशुभ सूचक कपोत निर्वीर्य हो जाए ॥१ ॥

१३७८. यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥२ ॥

हे पाप देवता निर्ऋते ! दूतरूप ये कपोत और उलूक, आपके द्वारा भेजे हुए हों अथवा बिना आपके भेजे हुएहों, हमारे घर में आकर आश्रय प्राप्त न कर सकें ॥२ ॥

१३७९.अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात् ।
पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान्॥ ३॥

हमारे वीरों के लिए , उलूक एवं कपोत के अशुभ चिह्न अहिंसक हों । हमारे वीरों की असफल होकर लौटने की स्थिति न बने । हे यम के दूतरूप कपोत ! जिस प्रकार तेरे स्वामी यमदेव के घर के प्राणी तुझे निर्वीर्य देखते हैं, उसी प्रकार हम भी देखें ॥३ ॥

[३० - पापशमन सूक्त]

[**ऋषि** - उपरिबभ्रव । **देवता** - शमी । **छन्द** - जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा शंकुत्यनुष्टुप्]

१३८०. देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥१ ॥

सरस्वती नदी के तट के समीप मनुष्यों को देवताओं ने रसयुक्त मधुर 'यव' दिया; तब भूमि में धान्य उपजाने के लिए सुदानी मरुद्‌गण किसान बने और इन्द्रदेव हल के अधिष्ठाता बने ॥१ ॥

१३८१. यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात्त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥२ ॥

हे शमी ! आपका आनन्ददायक रस केश उत्पादक एवं वर्द्धक होता है । जिससे आप पुरुष को हर्षयुक्त करते हैं । आप सैकड़ों शाखायुक्त होकर बढ़ें । हम आपको छोड़कर अन्य वृक्षों को काटते हैं ॥२ ॥

१३८२. बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि । मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥३ ॥

सौभाग्यकारिणी, बड़े पत्तों वाली, वर्षा के जल से वर्द्धित हे शमी ओषधे ! माता जिस प्रकार पुत्रों को सुख देती है , उसी प्रकार आप केशों के लिए सुखकारी हों ॥३ ॥

[३१ - गौ सूक्त]

[**ऋषि** - उपरिब्रभव । **देवता** - गौ । **छन्द** - गायत्री ।]

१३८३. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१ ॥

यह गो (वृषभ- निरन्तर पोषण देने वाला सूर्य) प्राणियों की माता पृथ्वी को आगे करता (बढ़ाता) है । यह पिता द्युलोक को भी प्रकाश से भर देता है ॥१ ॥

१३८४. अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥२ ॥

जो प्राण और अपान का व्यापार करने वाले प्राणी हैं, उनकी देह में सूर्यदेव की प्रभा विचरती है । ये महान् सूर्यदेव स्वर्ग और समस्त ऊपर के लोकों में भी प्रकाश फैलाते हैं ॥२ ॥

१३८५. त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥३ ॥

दिन और रात्रि के अवयवरूप (विभाग) तीस मुहूर्त (२४घण्टे), इन सूर्यदेव की आभा से ही प्रतिक्षण देदीप्यमान रहते हैं । वाणी भी तीव्र गमनशील सूर्यदेव का आश्रय लेकर रहती है । ।३ ॥

[३२ - यातुधानक्षयण सूक्त]

[**ऋषि** - चातन, ३ अथर्वा । **देवता** - १ अग्नि, २ रुद्र, ३ मित्रावरुण । **छन्द** -त्रिष्टुप्, २ प्रस्तार पंक्ति ।]

१३८६. अन्तर्दावे जुहुता स्वे३तद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! यातुधानों (स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रोगाणु) को नष्ट करने हेतु प्रज्वलित अग्नि में घृतसहित हवि की आहुतियाँ प्रदान करो । हे अग्निदेव ! आप इन उपद्रवी राक्षसों (रोगाणु आदि) को भस्म करके हमारे गृहों को संतप्त होने से बचाएँ ॥१ ॥

१३८७. रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥२ ॥

हे पिशाचो ! रुद्रदेव ने तुम्हारी गर्दनें तोड़ दी हैं, वे तुम्हारी पसलियाँ भी तोड़ डालें । हे यातुधानो ! अनन्त वीर्यमयी ओषधि ने तुम्हें यमलोक पहुँचा दिया ॥२ ॥

१३८८. अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥३ ॥

हे मित्रावरुण ! हम निर्भयतापूर्वक इस देश में निवास करें । आप अपने तेज से मांस - भक्षक राक्षसों को हम से दूर भगाएँ । इन्हें कोई भूमि तथा आश्रय देने वाला न मिले और वे परस्पर लड़कर नष्ट हो जाएँ ॥३ ॥

[३३ - इन्द्रस्तव सूक्त]

[**ऋषि -** जाटिकायन । **देवता -** इन्द्र । **छन्द -** गायत्री, २ अनुष्टुप् ।]

१३८९. यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! शत्रुओं के विनाश की प्रेरणा देने वाली, जिन इन्द्रदेव की रञ्जक ज्योति है, उन्हीं इन्द्रदेव के परम सुखदाता सेवनीय तेज का सेवन करो ॥१ ॥

१३९०. नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥२ ॥

वे दूसरों से सम्माननीय इन्द्रदेव तुम्हारे शत्रुओं का दमन कर देते हैं । जिस वृत्रासुर वध के समय उनका बल अदमनीय था, उसी प्रकार वे आज भी अदमनीय हैं ॥२ ॥

१३९१. स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम् । इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव, देवताओं और मनुष्यों आदि के स्वामी हैं तथा सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं । वे हम सबको पीत वर्ण की आभावाला धन (स्वर्ण) प्रदान करें ॥३ ॥

[३४ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** चातन । **देवता -** अग्नि । **छन्द -** गायत्री ।]

१३९२. प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! उन अग्निदेव की स्तुति करने वाली वाणी उच्चारित करो, जो (अग्निदेव) यातुधानों का विनाश करते हैं और इच्छाओं की पूर्ति करते हैं । वे अग्निदेव हमें राक्षस-पिशाचादि द्वेष करने वालों से बचाएँ ॥१॥

१३९३. यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः ॥२ ॥

जो अग्निदेव, यातुधानों को अपने तीक्ष्ण तेज से विनष्ट कर देते हैं । वे अग्निदेव हमको शत्रुओं से बचाएँ ॥२॥

१३९४. यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः ॥३ ॥

जो अग्निदेव, जलरहित मरुस्थल की रेत को अतितप्त करते हुए दमकते हैं । वे (अग्निदेव) राक्षस, पिशाच और शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१३९५. यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः ॥४ ॥

जो अग्निदेव समस्त भुवनों में, विभिन्न रूपों में, अनेक प्रकार से देखते हैं एवं सूर्यरूप से प्रकाश देते हैं, वे अग्निदेव राक्षस - पिशाचादि शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

१३९६. यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत। स नः पर्षदति द्विषः ॥५ ॥

जो अग्निदेव (विद्युत् या सूर्यरूप में) इस पृथ्वी से परे अन्तरिक्ष में प्रकट हुए हैं। वे देव, राक्षस, पिशाचादि शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥५ ॥

[३५ - वैश्वानर सूक्त]

[**ऋषि** - कौशिक । **देवता** - वैश्वानर । **छन्द** - गायत्री ।]

१३९७. वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥१ ॥

समस्त मनुष्यों के हितैषी अग्निदेव हमारी रक्षा करने के लिए दूर देश से आएँ एवं सुन्दर स्तुतियों को सुनें ॥

१३९८. वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥२ ॥

वे समस्त मनुष्यों के हितैषी, वैश्वानर अग्निदेव हमारे स्तुतिरूप उक्थों (स्तोत्रों) से प्रसन्न होकर हमारे इस यज्ञ में पधारें ॥२ ॥

१३९९. वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्। ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥३ ॥

वैश्वानर अग्निदेव ने, उक्थों (मंत्रों) को समर्थ बनाया तथा यश एवं अन्न प्राप्ति की रीति बताते हुए स्वर्ग-सुख की प्राप्ति करा दी ॥३ ॥

[३६ - वैश्वानर सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

१४००. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे ॥१ ॥

यज्ञात्मक ज्योति के अधिपति और यज्ञ स्वरूप, सदैव देदीप्यमान रहने वाले वैश्वानर अग्निदेव की हम उपासना करते हुए उनसे श्रेष्ठफल की याचना करते हैं ॥१ ॥

१४०१. स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत् सृजते वशी। यज्ञस्य वय उत्तिरन् ॥२ ॥

ये वैश्वानर अग्निदेव समस्त प्रजाओं के फल प्रदाता हैं। ये देवगणों को हविष्यान्न प्राप्त कराने वाले एवं सूर्य रूप से वसन्त आदि ऋतुओं का नियमन करने वाले हैं ॥२ ॥

१४०२. अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको वि राजति ॥३ ॥

उत्तम धामों के स्वामी अग्निदेव हैं। भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् काल की कामनाओं की पूर्ति करने वाले ये अग्निदेव और अधिक दीप्तिमान् हो रहे हैं ॥३ ॥

[३७ - शापनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - चन्द्रमा । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१४०३. उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम्।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥१ ॥

सहस्राक्ष इन्द्रदेव रथारूढ़ होकर हमारे समीप आएँ एवं हमें शाप देने वाले को उसी प्रकार नष्ट करें, जैसे भेड़िया भेड़ को नष्ट करता है ॥१ ॥

१४०४. परि णो वृङ्ग्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन्।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ॥२ ॥

हे शपथ ! तू बाधक मत बन, हमको छोड़ दे और जो शत्रु हमें शाप दे रहे हैं, उन्हें उसी तरह भस्म कर दे, जिस प्रकार तड़ित् वृक्ष को भस्म कर देती है ॥२ ॥

१४०५. यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥३ ॥

हम शाप नहीं देते हैं; लेकिन यदि कोई हमें शाप दे, कठोर भाषा बोले, तो ऐसे शत्रु को हम वैसे ही मृत्यु के समक्ष फेंकते हैं, जैसे कुत्ते के आगे भक्षण हेतु रोटी डालते हैं ॥३ ॥

[३८ - वर्चस्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - बृहस्पति अथवा त्विषि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१४०६. सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥१ ॥

मृगेन्द्र में, व्याघ्र में तथा सर्प में जो तेजस् है; अग्निदेव में, ब्राह्मण और सूर्यदेव में जो तेजस् है तथा जिस तेजस् से इन्द्रदेव प्रकट हुए हैं; वही वर्धमान इच्छित तेजस् हमको भी प्राप्त हो ॥१ ॥

१४०७. या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥२ ॥

जो तेजस् हाथी और बाघ में है तथा जो स्वर्ण में, जल में, गौओं और मनुष्यों में रहता है, जिसने इन्द्रदेव को उत्पन्न किया है, वह दिव्य तेजस् हमारे इच्छित रूप में हमें प्राप्त हो ॥२ ॥

१४०८. रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥३ ॥

आवागमन के साधन रथ के अक्षों में, सेचन-शक्तियुक्त वृषभ में, तीव्रगामी वायु में, वर्षाकारक मेघ में और उसके अधिपति वरुण में जो तेजस् है, जिसने इन्द्रदेव को उत्पन्न किया है ।वह 'त्विषि' दिव्य तेजस् हमें प्राप्त हो ॥

१४०९. राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥४ ॥

राज्याभिषेक के समय बजने वाली दुन्दुभि में, घोड़ों के तीव्र गमन में, पुरुष के उच्चस्वर में, जो 'त्विषि' (तेजस्) है एवं जिसने इन्द्र को उत्पन्न किया है, वह त्विषि (तेजस्) दिव्यता के साथ हमें प्राप्त हो ॥४ ॥

[३९ - वर्चस्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - बृहस्पति अथवा त्विषि । **छन्द** - जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।]

१४१०. यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम्।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये ॥१ ॥

अपरमित शक्ति वाली, पराभवकारक, बल देने में समर्थ, प्रसारित होने वाली यशोदायिनी हवि बढ़े । हे इन्द्रदेव ! इस बढ़ने वाली हवि से प्रसन्न होकर, आप-हम हविदाता यजमानों की श्रेष्ठ प्रगति करें ॥१ ॥

१४११. अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥२ ॥

समक्ष उपस्थित यशस्वी इन्द्रदेव की हम नमस्कारादि से पूजा एवं सेवा करते हैं। हे इन्द्रदेव ! आप हमें राज्य और यश प्रदान करें ॥२ ॥

१४१२. यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३ ॥

इन्द्रदेव एवं अग्निदेव यश की कामना करते हैं। सोमदेव भी यश की कामनासहित उत्पन्न हुए। जैसे ये सब यशस्वी बने, वैसे ही हम भी समस्त मनुष्यादि जीवों में यशस्वी बनें ॥३ ॥

[४० - अभय सूक्त]

[**ऋषि** – अथर्वा। **देवता** – १ द्यावापृथिवी, सोम, सविता, अन्तरिक्ष, सप्तर्षिगण; २ सविता, इन्द्र; ३ इन्द्र। **छन्द** – जगती, ३ अनुष्टुप्।]

१४१३. अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तूर्व१न्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥१ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! हम आपकी कृपा से भयभीत न रहें। अन्तरिक्ष, चन्द्रदेव एवं सूर्यदेव हमें निर्भय बनाएँ। सप्तर्षियों को प्रदत्त हवि हमें अभय प्रदान करे ॥१ ॥

१४१४. अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्रुरिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे हम ग्राम में पर्याप्त अन्न प्राप्त करके कुशलपूर्वक रहें। इन्द्रदेव की कृपा से राजा हमसे प्रसन्न रहें। उन्हीं इन्द्रदेव की कृपा से हमें शत्रुओं का भय व्याप्त न हो ॥२ ॥

१४१५. अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रसन्न होकर ऐसी कृपा करें, जिससे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम दिशाओं में हमारा कोई शत्रु न हो। हमसे कोई द्वेष न करे ॥३ ॥

[४१ - दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** – ब्रह्मा। **देवता** - चन्द्रमा, २ सरस्वती, ३ दिव्य ऋषिगण। **छन्द** – भुरिक् अनुष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्।]

१४१६. मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥१ ॥

मन, चित्त, बुद्धि, मति (स्मृति), श्रुति (श्रवण शक्ति) एवं चक्षुओं की वृद्धि के निमित्त हम आहुतियों द्वारा इन्द्रदेव को प्रसन्न करते हैं ॥१ ॥

१४१७. अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥२ ॥

अपान, व्यान और बहुत प्रकार से धारण करने वाले प्राण की वृद्धि के लिए हम विस्तृत प्रभावशाली सरस्वती देवी की हवि द्वारा सेवा करते हैं ॥२ ॥

१४१८. मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्याँअभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥३ ॥

दिव्य सप्तर्षि हमारे शरीर की रक्षा करें । जो हमारे शरीर में उत्पन्न हुए हैं, वे हमें न त्यागें । वे अमरदेव हम मरणधर्मियों के अनुकूल रहकर हमें श्रेष्ठ और दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥३ ॥

[४२- परस्परचित्तैकीकरण सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - मन्यु । **छन्द** - भुरिक् अनुष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।]

१४१९. अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥१ ॥

धनुर्धारी पुरुष जिस प्रकार धनुष पर चढ़ी प्रत्यञ्चा को उतारता है, उसी तरह हम आपके हृदय से क्रोध को उतारते हैं; ताकि हम परस्पर मित्रवत् रह सकें ॥१ ॥

१४२०. सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥२ ॥

हम एक दूसरे से मन मिलाते हुए , एक मन होकर कार्य करें । इसीलिए हम आपके क्रोध को भारी पत्थर के नीचे फेंकते हैं ॥२ ॥

१४२१. अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३ ॥

हे क्रुद्ध (देव) ! हम आपके क्रोध को पैर के अग्रभाग एवं एड़ी से दबाते हैं । जिससे आप शान्त होकर हमारे चित्त के अनुकूल बनें और अनियंत्रित रहने की बात न करें ॥३ ॥

[४३ - मन्युशमन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - मन्युशमन । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१४२२. अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥१ ॥

यह जो सामने दर्भ (कुश) खड़ा है, यह स्वयं के एवं अन्य दूसरे के क्रोध को नष्ट करने की शक्तिवाला है । यह स्वभावतः क्रोधी पुरुष एवं कारणवश क्रोध करने वाले के क्रोध को शान्त करने में समर्थ है ॥१ ॥

१४२३. अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥२ ॥

बहुत जड़ों वाला, समुद्र (जल की अधिकता) के समीप उत्पन्न होने वाला, पृथ्वी से उगा हुआ यह दर्भ क्रोध को शान्त करने वाला बतलाया गया है ॥२ ॥

१४२४. वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥३ ॥

हे क्रुद्ध (देव) ! आपके हनु पर क्रोध से उत्पन्न नस की फड़कन को हम शान्त करते हैं एवं मुख-मण्डल पर क्रोध के कारण उत्पन्न चिह्नों को हम शान्त करते हैं। आप क्रोधवश विवश होकर कुछ (अनर्गल) न कहें तथा हमारे चित्त के अनुकूल रहें ॥३ ॥

[४४ - रोगनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - विश्वामित्र। **देवता** - वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा महाबृहती।]

१४२५. अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥१ ॥

जिस प्रकार यह ग्रह-नक्षत्रों वाला द्युलोक स्थिर है, यह पृथ्वी सभी प्राणियों की आधार है, यह भी स्थिर है, खड़े-खड़े सोने वाले ये वृक्ष भी ठहरे हैं, उसी तरह यह रोग (रक्तस्राव) ठहर जाए ॥१ ॥

१४२६. शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥२ ॥

हे रोगिन् ! आपके पास जो सैकड़ों ओषधियाँ हैं एवं उनके जो हजारों प्रकार के योग हैं, उन सबसे अधिक लाभप्रद यह ओषधि है, जो रोग का शमन करने में विशिष्ट (प्रभावशाली) है ॥२ ॥

१४२७. रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः।
विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥३ ॥

रुद्र का मूत्र अमृतरूप रस है एवं यह विषाणका नामक ओषधि है। इनके विशेष यौगिक प्रयोग से आनुवंशिक 'वात रोग' भी अपने मूल कारण सहित नष्ट हो जाते हैं ॥३ ॥

[१- रुद्राक्ष से उत्सर्जित द्रव (तेल), यह विशेष विधियों से निकाला जाता है। २- मेघ का उत्सर्जी द्रव अर्थात् वृष्टि जल। यहाँ जल चिकित्सा और शिवाम्बु-चिकित्सा अर्थात् मूत्र-चिकित्सा की ओर संकेत मिलता है।]

[४५ - दुःष्वप्ननाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरस् (अङ्गिरा), प्रचेता, यम। **देवता** - दुष्वप्ननाशन । **छन्द** - पथ्यापंक्ति, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।]

१४२८. परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥१ ॥

हे पापासक्त मन ! तू अशोभन विचार वाला है, इसलिए हम तुझे नहीं चाहते। तू हमसे दूर हट जा और वृक्ष वाले वनों में विचरण कर। मेरा मन घर-परिवार एवं गौओं में उचित भाव से लगा रहे ॥१ ॥

१४२९. अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥२ ॥

निर्दयतापूर्वक निकट या दूर से की गई हिंसा के पाप एवं जागते अथवा सोते में किये गये जो पाप हैं, उन सब दुःस्वप्नों एवं दुष्कर्मों को अग्निदेव हमसे दूर करें ॥२ ॥

१४३०. यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि। प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ।।

हे ब्रह्मणस्पते इन्द्रदेव ! पापों के कारण हम जिन दुःस्वप्नों से पीड़ित हैं। उन पापों से, आंगिरस मंत्रों से सम्बन्धित ज्ञानी वरुणदेव, हमें बचाएँ ॥३ ॥

[४६ - दुष्वप्ननाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरस्, प्रचेता, यम । **देवता** - दुष्वप्ननाशन । **छन्द** - ककुम्मती विष्टारपंक्ति, २ त्र्यवसाना पञ्चपाद शक्वरीगर्भा जगती, ३ अनुष्टुप् ।]

१४३१. यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भो ऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारुरुर्नामासि ॥१ ॥

हे स्वप्न ! तू न जीवित है और न मृत है । जाग्रत् अवस्था में हुए अनुभवों से पैदा हुई वासनाओं के गर्भ में तू सदा रहता है । वरुणानी तेरी माता एवं यम तेरा पिता है । तू 'अररु' नाम वाला है ॥१ ॥

१४३२. विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रो ऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि
मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥२ ॥

हे स्वप्न के अभिमानीदेव ! आपकी उत्पत्ति का हमें ज्ञान है । आप वरुणानी के पुत्र एवं यम के कार्यो के साधक हैं । हम आपको ठीक से जानते हैं । आप दु:स्वप्नों के भय से हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

१४३३. यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥

जैसे गाय के दूषित खुर आदि अंगों को छेदित कर दूषणमुक्त करते हैं, जैसे ऋणग्रस्त व्यक्ति धन देकर ऋण मुक्त हो जाता है, वैसे दुःस्वप्नों से होने वाले भय को हम अपने से दूर करते हैं एवं शत्रुओं की ओर भेजते हैं ॥३॥

[४७ - दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरस्, प्रचेता, यम । **देवता** - १ अग्नि, २ विश्वेदेवा, ३ सौधन्वन् । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१४३४. अग्निः प्रातः सवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१ ॥

जो विश्व कर्त्ता, हितैषी एवं शान्तिदाता हैं, ऐसे हे अग्निदेव ! आप प्रातः सवन के यज्ञ में हमारी रक्षा करें । वे हमें यज्ञ के फल रूप-धन प्रदान करें एवं उनकी कृपा से हम अन्न एवं पुत्र, पौत्रादि सहित दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥१ ।

१४३५. विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥२ ॥

इन्द्रदेव अपने सहयोगी मरुद्गणों सहित द्वितीय सवन में हमें न त्यागें । वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर शतायु प्रदान करने की कृपा करें ॥२ ॥

१४३६. इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्व रानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥३ ॥

जिन्होंने सोमपान के लिए चमस नामक पात्र का निर्माण किया था, वे आंगिरस पुत्र ऋभु सुधन्वा रथ एवं चमस निर्माण कर देवत्व प्राप्त करने में सफल हुए थे । यह तृतीय सवन ऋभुओं का है, वे उत्तम फल हेतु हमें सुमति या सिद्धि प्रदान करें ॥३ ॥

[४८ - स्वस्तिवाचन सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरस्, प्रचेता, यम । **देवता** - १ श्येन, २ ऋभु, ३ वृषा । **छन्द** - उष्णिक् ।]

१४३७.श्येनो ऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे । स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा॥

हे यज्ञदेव ! आप बाज़ पक्षी के समान तीव्र गति वाले तथा गायत्रीच्छन्दा हैं । हम आपको धारण करते हैं । आप हमें यज्ञ के अन्तिम चरण तक पहुँचा दें । हम आपके निमित्त 'स्वाहा' प्रयोग करते हैं ॥१ ॥

१४३८. ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे । स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥२॥

हे यज्ञदेव ! आप जगती छन्द प्रधान होने से ऋभु कहलाते हैं । आपको हम (सहारे के लिए) दण्ड स्वरूप ग्रहण करते हैं । आप हमें यज्ञ की श्रेष्ठ समापन ऋचा तक पहुँचाएँ । आपके निमित्त यह स्वाहाकार है ॥२ ॥

१४३९. वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे । स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥३॥

हे यज्ञदेव ! आप त्रिष्टुप् छन्द वाले वर्षणशील-इन्द्ररूप हैं । हम आपको प्रारम्भ करते हैं । आप हमें यज्ञ की अन्तिम उत्तम ऋचा तक पहुँचाएँ । यह स्वाहाकार आपके निमित्त है ॥३ ॥

[४९ - अग्निस्तवन सूक्त]

[**ऋषि** - गार्ग्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - १ अनुष्टुप्, २ जगती, ३ विराट् जगती ।]

१४४०. नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥१॥

हे अग्निदेव ! आपकी काया की क्रूरता को कोई सहन नहीं कर सकता । जैसे गौएँ अपने ही उत्पन्न किये जरायु की झिल्ली (जेर) को उदरस्थ कर लेती हैं, वैसे ही अग्निदेव अपने द्वारा उत्पन्न पदार्थों को खा जाते हैं ॥१ ॥

१४४१. मेषइव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप मेष (मेढ़ा) की तरह एकत्रित होते और फैलते हैं और वनों में (दावाग्निरूप में) तृणों का भक्षण करते हैं । (शवाग्निरूप में) अपने शीर्ष (ज्वाला) से सिरों तथा रूप (तेजस्) से रूपों को दबाते हुए बभ्रुवर्ण वाले मुख से सोमलता आदि का भक्षण करते हैं ॥२ ॥

१४४२. सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥३ ॥

हे अग्ने !आपकी श्येनपक्षी के समान शीघ्रगामी ज्वालाएँ ध्वनि करती हैं एवं कृष्णमृग के समान गति करती हुई नृत्य करती हैं ।ये ज्वालाएँ धूम्र निर्माण करके मेघ बनाती हैं और जल को संसार के निमित्त धारण करती हैं ॥

[५० - अभययाचना सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - विराट् जगती, २-३ पथ्यापंक्ति ।]

१४४३. हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हिंसक चूहों का नाश कर दें । आप इनके सिर को काट दें, हड्डी -पसली चूर्ण कर दें । आप इन चूहों के मुख बन्द करके हमारी फसलों, धान्य आदि की सुरक्षा करें ॥१ ॥

१४४४. तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥२ ॥

हे हिंसा करने वाले चूहे और पतङ्गे ! ब्रह्म जैसी भयंकर, अश्विनीकुमारों के निमित्त दी जा रही यह आहुति, तुम्हें नष्ट करने के हेतु ही है ।अत: आहुति अर्पित करने के पूर्व ही तुम हमारे यवान्न आदि को छोड़कर भाग जाओ ॥

१४४५. तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वाञ्जम्भयामसि ॥३ ॥

हे चूहों एवं पतङ्गों (कीटों) आदि के स्वामिन् ! आप हमारा कथन सुनें । विभिन्न ढंग से खाने वाले, जंगल या ग्राम में रहने वाले, (सब उपद्रवियों) को इस प्रयोग के द्वारा हम नष्ट करते हैं ॥३ ॥

[५१ - एनोनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - शन्ताति । **देवता** - १-२ आप; ३ वरुण । **छन्द** - २ त्रिष्टुप्, १ गायत्री, ३ जगती ।]

१४४६. वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१ ॥

वायु द्वारा पवित्र हुआ सोमरस मुख द्वारा सेवन करने पर अति तीव्रगति से प्रत्येक शरीर में, नाभि तक पहुँच जाता है । वह सोम इन्द्र का मित्र है ॥१ ॥

१४४७. आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥२ ॥

मातृवत् पोषक जल हमें पावन बनाए । घृतरूपी जल हमारी अशुद्धता का निवारण करे । जल की दिव्यता अपने दिव्य स्रोत से सभी पापों का शोधन करे । जल से शुद्ध और पवित्र बनकर हम ऊर्ध्वगामी हों ॥२ ॥

१४४८. यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥३ ॥

हे उषे !आप स्तोताओं को धन के लिए एवं हमें सत्यभाषण के लिए प्रेरित करती हैं । आप अन्धकार का नाश करती हैं । हमें धन प्रदान करने के लिए आप स्थिरमति हों । कल्याणकारी साधनों द्वारा हमारा पालन करें ॥३ ।

[५२ - भैषज्य सूक्त]

[**ऋषि** - भागलि । **देवता** - १ सूर्य, २ गौएँ, ३ भेषज । **छन्द** - अनुष्टुप् ।].

१४४९. उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥१ ॥

पिशाचादि; रात्रि के समय अँधेरे में उपद्रव करते हैं, उन्हें समाप्त कर देने के लिए सूर्यदेव उदयाचल-शिखर पर सबके समक्ष अन्तरिक्ष में प्रकट हो रहे हैं । हमें न दिखने वाले यातुधानों को भी वे देव अपनी सामर्थ्य से विनष्ट कर दें ॥१ ॥

१४५०. नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्यू३र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥२ ॥

सूर्यदेव के प्रकट होने से अन्धकार में छिपी नदियों की लहरें एवं प्रवाह अब स्पष्ट दिखने लगे हैं । जंगली हिंसक पशु भी जंगलों में बैठ गए तथा हमारी गौएँ अब निर्भय होकर गोशाला में बैठ गई हैं ॥२ ॥

१४५१. आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ॥३ ॥

दीर्घ आयु प्रदान करने वाली एवं रोग नष्ट करने में समर्थ महर्षि कण्व द्वारा निर्दिष्ट (चित्ति-प्रायश्चित्ति) ओषधि हमने प्राप्त कर ली है । यह ओषधि अदृश्य जीवाणुओं को कारण सहित नष्ट करके रोग से हमें पूर्णतः मुक्त करे ॥३॥

[५३ - सर्वतोरक्षण सूक्त]

[**ऋषि** - बृहच्छुक्र । **देवता** - द्यौ, पृथिवी, शुक्र, सोम, अग्नि, वायु, सविता, २ वैश्वानर, ३ त्वष्टा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ जगती ।]

१४५२. द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च ॥१ ॥

द्यावा-पृथिवी हमें मनोवांछित फल प्रदान करें । सूर्यदेव धन, वस्त्रादि प्रदान करते हुए दक्षिण दिशा से हमारी रक्षा करें । पितर सम्बन्धी स्वधा के अभिमानी देवता कृपा करके हमें अन्नादि प्रदान करें । अग्निदेव, सवितादेव, वायुदेव, भगदेव एवं सोमदेव आदि भी हमारे अनुकूल रहें ॥१ ॥

१४५३. पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥२ ॥

जीवन का आधार 'प्राण' हमें पुनः प्राप्त हो, जीवन हमें पुनः प्राप्त हो, आँख और प्राण हमें फिर से प्राप्त हों । हे सर्वहितैषी, अदम्य, नेतृत्वक्षमता युक्त अग्निदेव !आप हमारे शरीर में स्थित रहकर रोगादि पापों को नष्ट करें ॥२॥

१४५४. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद् विरिष्टम् ॥३ ॥

तेजस् तथा पयस् से हमारे शरीर के अंग-अवयव कान्तियुक्त हों एवं मन कल्याणकारी हो । त्वष्टादेव अपने ही हाथों से रोगपीड़ित काया को शोधित करके और अधिक श्रेष्ठ, स्वस्थ एवं कान्तियुक्त बनाएँ ॥३ ॥

[५४ - अमित्रदम्भन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - अग्नीषोम । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१४५५. इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये ।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥१ ॥

हम इस (व्यक्ति) को आपके साथ संयुक्त करते हैं । हे देव ! आप प्रसन्न होकर इसके बल, धन एवं अन्य महत्त्वपूर्ण सम्पदा की उसी प्रकार वृद्धि करें, जिस प्रकार वर्षा का जल घास को बढ़ाता है ॥१ ॥

१४५६.अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम्॥

हे अग्निदेव ! यजमान को श्रेष्ठ फल प्राप्त हो, इस निमित्त हम यह उत्तम कर्म (यज्ञादि) करते हैं । हे सोमदेव ! इस यजमान को पुनः बल एवं धन प्रदान करें ॥२ ॥

१४५७.सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते॥

हे इन्द्रदेव ! आप उन शत्रुओं का संहार करें, जो हिंसक हैं । हे इन्द्रदेव ! आप स्वगोत्र या अन्य गोत्र वाले उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को सोम का अभिषव करने वाले इस यजमान के वश में करें ॥३ ॥

[५५ - सौमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - १ विश्वेदेवा, २-३ रुद्र । **छन्द** - १,३ जगती, २ त्रिष्टुप् ।]

१४५८. ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।

तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥१ ॥

हे देवताओ ! आप हमें वह (देवयान) मार्ग दिखाएँ, जिस मार्ग से देवता गण जाते हैं और जो द्यावा-पृथिवी के मध्य स्थित है ॥१ ॥

१४५९. ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥२ ॥

ग्रीष्मादि ऋतुओं के अधिष्ठाता देवगण हमें उत्तम रीति से प्राप्त होने वाले धन से सम्पन्न करें । जिस प्रकार हम गृह के आश्रय में निर्भय होकर सुखपूर्वक रहते हैं, उसी प्रकार आपके आश्रित रहकर गौ, पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर सुखपूर्वक रहें ॥२ ॥

१४६०. इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! इदावत्सर, परिवत्सर और सम्वत्सर के प्रति अनेकों प्रकार से नमस्कारों द्वारा उन्हें प्रसन्न करो । इदावत्सरादि की कृपा-अनुग्रह से यज्ञादि करने की सद्बुद्धि मिले एवं उसके सुफलों को भी हम प्राप्त करें ॥३ ॥

[५६ - सर्परक्षण सूक्त]

[**ऋषि-** शन्ताति । **देवता** - १ विश्वेदेवा, २-३ रुद्र । **छन्द** - उष्णिग्गर्भा पथ्यापंक्ति, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत् अनुष्टुप्]

१४६१. मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान्।
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥१ ॥

सर्प हमारी एवं हमारे पुत्र-पौत्रादि की हिंसा न कर सकें । सर्प का बन्द मुख बन्द रहे एवं खुला मुख खुला ही रह जाए, (उस उद्देश्यपूर्ति में सहायक) ऐसे देवताओं को नमस्कार है ॥१ ॥

१४६२. नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये। स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥२ ॥

काले वर्ण वाले सर्पराज को नमस्कार, तिरछी लकीरों वाले और बभ्रु वर्ण वाले 'स्वज' नामक सर्पों को नमस्कार एवं इनके नियामक देवों को नमस्कार है ॥२ ॥

१४६३. सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू। सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम्

हे सर्प ! तेरी ऊपर एवं नीचे की दन्त-पंक्तियों को आपस में मिलाता हूँ । तेरी ठोढ़ी के ऊपर तथा नीचे के भागों को सीता हूँ । दोनों जीभों को सटाता हूँ । अनेक फन एक साथ बाँधता हूँ ॥३ ॥

[५७ - जलचिकित्सा सूक्त]

[**ऋषि** - शन्ताति । **देवता** - रुद्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ पथ्याबृहती ।]

१४६४. इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम्। येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥

निश्चितरूप से यह ओषधि है, यह रुद्रदेव की ओषधि है । इसका प्रयोग, एक दण्ड (डण्डे) के माध्यम से अनेक शल्य वाले बाण के व्रण को दूर करने (ठीक करने) में किया जाता है ॥१ ॥

१४६५. जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥२ ॥

(हे परिचारको !) आप (ओषधियुक्त या मंत्र सिद्ध या शुद्ध) जल से (रोगी या रोगयुक्त अंगों को) पूरी तरह

से या आंशिकरूप से सिंचित करें (धोएँ या प्रभावित करें) । यह रोग नष्ट करने वाली उग्र ओषधि है । हे रुद्रदेव ! आपकी इस ओषधि से हमें सुख प्राप्त हो ॥२ ॥

१४६६. शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥३ ॥

हे देव ! हमसे रोगजनित दुःखादि दूर रहें । हमारे पशु एवं प्रजा रोग - मुक्त रहें । रोग के मूलभूत कारण 'पापों ' का नाश हो । समस्त जगत् के स्थावर- जंगम प्राणियों एवं कर्मों की रोगनाशक शक्ति का हमें ज्ञान हो ॥३॥

[५८ - यशःप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - बृहस्पति (१-२ इन्द्र, द्यावापृथिवी, सविता, ३ अग्नि, इन्द्र, सोम) । **छन्द** - जगती, २ प्रस्तार पंक्ति, ३ अनुष्टुप् ।]

१४६७. यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥१ ॥

धनवान् इन्द्रदेव, द्यावा-पृथिवी एवं सवितादेव हमें यश प्रदान करें । हम दक्षिणा प्रदान करने वालों के प्रिय हो जाएँ ॥१ ॥

१४६८. यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥२ ॥

जैसे आकाश से पृथ्वी पर जल-वर्षा करने से इन्द्रदेव यशस्वी हैं, जल ओषधियों में यशस्वी है । उसी प्रकार सब देवताओं एवं मनुष्यों में हम यश को प्राप्त करें ॥२ ॥

१४६९. यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥३ ॥

इन्द्रदेव, अग्निदेव एवं सोमदेव आदि जैसे यशस्वी हुए हैं, उसी प्रकार बल चाहने वाले हम सब प्राणियों में यशस्वी बनें ॥३ ॥

[५९ - ओषधि सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - रुद्र, अरुन्धती, ओषधि । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१४७०. अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥१॥

हे अरुन्धती - दिव्य ओषधे ! आप बैलों को, गौओं को, अन्य चार पाँव वाले पशुओं को एवं पक्षियों को सुख प्रदान करें ॥१ ॥

१४७१.शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती । करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥

यह (सहदेवी) ओषधि हमें सुख प्रदान कर हमारे गोत्र को दुग्ध - सम्पन्न बनाए एवं हमारे पुत्र-पौत्रादि को रोग मुक्त करे ॥२ ॥

१४७२.विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥

हे (सहदेवी) ओषधे ! अनेक रूपों वाली, सौभाग्यशालिनी एवं जीवनदायिनी आप रुद्र द्वारा फेंके गये शस्त्र अर्थात् रोगों से हमारे पशुओं को कृपा करके बचाएँ ॥३ ॥

[६० - पतिलाभ सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - अर्यमा । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१४७३.अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये॥

प्रशंसनीय सूर्यदेव पूर्व दिशा से उदित हो रहे हैं । वे स्त्रीरहित पुरुष को स्त्री एवं कन्या को पति प्राप्त कराने की इच्छा से उदीयमान हो रहे हैं ॥१ ॥

१४७४. अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती । अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति ॥

हे अर्यमन् (सूर्यदेव) ! ये पति की कामना वाली कन्याएँ अब तक पति न मिलने के कारण खिन्न हो रही हैं । हे अर्यमन् ! अन्य कन्याएँ भी इनके प्रति शान्ति कर्म करने में संलग्न हैं ॥२ ॥

१४७५. धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥३ ॥

समस्त विश्व के धारणकर्त्ता ने पृथ्वी, द्युलोक और सविता को अपने-अपने स्थान में धारण किया । वे धातादेव ही इन पति- अभिलाषिणी कन्याओं को इच्छित पति प्रदान करने की कृपा करें ॥३ ॥

[६१ - विश्वस्त्रष्टा सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - रुद्र । **छन्द** - १ त्रिष्टुप्, २-३ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१४७६. मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥१ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव ने सुखदायक तेजस् सब ओर भर दिया है । जल के अधिष्ठातादेव मधुर जल प्रदान करें । तप: से उत्पन्न देवता हमें इष्ट फल प्रदान करें तथा सवितादेव हमारे लिए विस्तृत हों ॥१ ॥

१४७७. अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥२ ॥

(सूर्य या रुद्रदेव की ओर से कथन) मैंने द्युलोक एवं पृथ्वी को अलग किया है । वसन्त आदि छह ऋतुओं और (संसर्पांहस्पति नामक अधिमास रूप) सातवीं ऋतु को मैंने ही बनाया है । मानवी (सत्यासत्य) एवं दैवी वाणी का वक्ता मैं ही हूँ ॥२ ॥

१४७८. अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥३ ॥

पृथ्वी, स्वर्ग , गंगादि सात नदियों एवं सात समुद्रों का उत्पादक मैं हूँ । मैं ही सत्यासत्य का वक्ता तथा मित्र, अग्नि और सोम को एक साथ संयुक्त करता हूँ ॥३ ॥

[६२ - पावमान सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - रुद्र (वैश्वानर, वात, द्यावापृथिवी) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१४७९. वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥१ ॥

समस्त मनुष्यों में व्याप्त अग्निदेव अपनी किरणों द्वारा, वायुदेव प्राण द्वारा, जल अपने रसों से तथा रस एवं जलतत्त्व धारण करने वाली द्यावा-पृथिवी अपने पोषक रस से हमें पवित्र बनाएँ । ।१ ॥

१४८०. वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! वैश्वानर सम्बन्धी सत्य स्तुति प्रारम्भ करो । जिस वाणी के शरीर के पृष्ठ भाग विस्तृत हैं, उस वाणी से (स्तुति से) वैश्वानर अग्निदेव प्रसन्न होकर धन प्रदान करें ॥२ ॥

१४८१. वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥३ ॥

शुद्ध पवित्र होकर तथा दूसरों को पवित्र करते हुए वैश्वानर अग्निदेव की स्तुति करें । अन्न से हृष्ट-पुष्ट रहते हुए चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करें अर्थात् स्वस्थ रहते हुए दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥३ ॥

[६३ - वर्चोबलप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - द्रुह्वण । **देवता** - १-३ निर्ऋति, यम, मृत्यु; ४ अग्नि । **छन्द** - १ जगती, २ अतिजगतीगर्भा जगती, ४ अनुष्टुप् ।]

१४८२. यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥१ ॥

(हे पुरुष !) देवी निर्ऋति (अविद्या) ने आकर्षक रूप से मोहित कर तेरे गले में, जो बन्धन बाँध रखा है, मैं आयु , बल एवं तेजस्विता के लिए उस पाप रूप रस्सी से तुझे मुक्त करता हूँ । तुम हर्षदायी अन्न ग्रहण करो ॥१ ॥

१४८३. नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥२ ॥

हे निर्ऋते ! आपको नमस्कार है, आप लौह- बन्धन से हमें मुक्त करें । यम ने तुम्हें पुनः मेरे अधीन कर दिया है । उन यमदेव के निमित्त नमस्कार है ॥२ ॥

१४८४. अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥३ ॥

हे निर्ऋते !जब आप पुरुष को लौह- बन्धन से बाँधती हैं, तब मृत्यु के ज्वर आदि रूप दुःखों के सहस्रों पाशों से वह बँध जाता है ।अपने अधिष्ठाता देव यम एवं पितरों की सहमति से इसे आनन्दमय स्वर्ग में पहुँचा दें ॥३ ॥

१४८५. संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥

हे इच्छित कामनाओं के पूरक अग्निदेव ! आप यज्ञ वेदी पर देदीप्यमान हों । आप सब प्रकार के धन के स्वामी हैं, अतः प्रसन्न होकर हमें धन प्रदान करें ॥४ ॥

[६४ - सांमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - विश्वेदेवा, मन । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।]

१४८६. सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पर्वे संजानाना उपासते ॥१ ॥

(हे साधको !) जिस प्रकार पूर्व समय से ही देवगण संयुक्त होकर अपने भागों (सौंपे गये हव्य-दायित्वों) को ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तुम समान रूप से (सहयोगपूर्वक) ज्ञान प्राप्त करो, परस्पर मिलकर (संगठित होकर) रहो तथा तुम्हारे मन संयुक्त होकर अपना प्रभाव प्रकट करें ॥१ ॥

१४८७. समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! आप सभी के विचार तन्त्र (मन, बुद्धि, चित्त) तथा व्रत- सिद्धान्त समान हों । मैं आपके जीवन को एक ही मन्त्र से अभिमंत्रित (सुसंस्कृत) करता हूँ और एक समान आहुति प्रदान करके यज्ञमय बनाता हूँ ॥२ ॥

१४८८. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

हे स्तोताओ (मनुष्यो) ! तुम्हारे हृदय (भावनाएँ) एक समान हों, तुम्हारे मन (विचार) एक जैसे हों, संकल्प (कार्य) एक जैसे हों; ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य पूर्ण कर सको ॥३ ॥

[६५ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** चन्द्र, इन्द्र अथवा पराशर । **छन्द -** १ पथ्यापंक्ति, २-३ अनुष्टुप् ।]

१४८९. अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा ।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि ॥१ ॥

(शत्रु के) क्रोध एवं शस्त्रास्त्र दूर हों । शत्रुओं की भुजाएँ अशक्त एवं मन साहसहीन हों । हे दूर से ही शर-संधान में निपुण देव ! आप उन शत्रुओं के बल को पराङ्मुख करके नष्ट करें तथा उनके धन हमें प्रदान करें ॥१ ॥

१४९०. निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ । वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२

हे देवताओ ! आप असुरों की भुजाओं की सामर्थ्य को क्षीण करने के लिए जिन बाणों का प्रयोग करते हैं । उसी से आहुति के द्वारा हम शत्रुओं की भुजाओं को काटते हैं ॥२ ॥

१४९१. इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः । जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥३

प्राचीनकाल में जिन इन्द्रदेव ने असुरों को बाहुबल से हीन कर दिया था, उन्हीं की कृपा - सहायता से हमारे पराक्रमी वीर योद्धा शत्रुओं को जीतें ॥३ ॥

[६६ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** चन्द्र अथवा इन्द्र । **छन्द -** १ त्रिष्टुप्, २-३ अनुष्टुप् ।]

१४९२. निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम पर आक्रमण करने वाले शत्रुओं का भुजबल क्षीण हो । जो शत्रु सैन्य सहित हमसे संग्राम करने के लिए आते हैं, आप उन्हें अपने घोर संहारक (वज्र) से नष्ट करें और जो विशेष घात करने वाले हों, वे वीर भी विद्ध होकर भाग जाएँ ॥१ ॥

१४९३. आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२ ॥

हे शत्रुओ ! धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाए हुए हम पर बाण बरसाने वाले एवं दौड़कर आने वाले तुम्हें इन्द्रदेव पराजित करके मार डालें ॥२ ॥

१४९४. निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥३ ॥

हमारे शत्रुओं का भुजबल समाप्त हो जाए । उनके अङ्ग शक्तिहीन हो जाएँ । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से शत्रुओं की सम्पत्ति हम प्राप्त करें ॥३ ॥

[६७ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - चन्द्र अथवा इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१४९५. परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१ ॥

हे इन्द्र और पूषा देवो ! शत्रुसेना अतिमोहवश उचित निर्णय न ले सके । आप उन शत्रुओं के मार्गों को अवरुद्ध कर दें ॥१ ॥

१४९६. मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः । तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।

हे शत्रुओ ! इन्द्रदेव तुम्हारे प्रधान वीरों का संहार कर दें और तुम फन कटे सर्प की तरह, तेजहीन, ज्ञान-शून्य हुए व्यर्थ ही संग्राम स्थान में भटकते रहो ॥२ ॥

१४९७. ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि । पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ॥३॥

हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ! आप हमारे इन वीरों को काले मृगचर्म (कवचरूप में) पहना दें और शत्रुओं में भय उत्पन्न करें, जिससे पराजित होकर भागे हुए उन शत्रुओं के धन, गौएँ आदि हमें प्राप्त हो जाएँ ॥

[६८ - वपन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १ सविता, आदित्यगण, रुद्रगण, वसुगण; २ अदिति, आपः, प्रजापति; ३ सविता, सोम, वरुण ।**छन्द** - १ चतुष्पदा पुरोविराट् अतिशाक्वरगर्भा जगती, २ अनुष्टुप्, ३ अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप् ।]

१४९८. आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१ ॥

सर्वप्रेरक सवितादेव मुण्डन करने वाले छुरे सहित आए हैं । हे वायुदेव ! आप भी सिर को गीला करने के निमित्त उष्ण जल सहित आएँ । रुद्र एवं आदित्यगण एकचित्त होकर बालक के सिर को गीला करें । हे ज्ञानवानो ! आप सोम के केशों का मुण्डन करें ॥१ ॥

१४९९. अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥२ ॥

अदिति माता इसके बालों का वपन करें, जलदेव अपने तेजस् से बालों को गीला करे । दीर्घायु और दर्शन शक्ति के लिए प्रजापति इसकी चिकित्सा करें ॥२ ॥

१५००. येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥३ ॥

ज्ञानी सवितादेव ने राजा सोम का जिस उस्तरे से मुण्डन किया था । हे ब्राह्मणो ! ऐसे छुरे (उस्तरे) से आप इसके बालों का मुण्डन करें । इस श्रेष्ठ संस्कार के द्वारा ये गौएँ, घोड़े, पुत्र- पौत्रादि से समृद्ध हों ॥३ ॥

[यहाँ मुण्डन की क्रिया स्थूल-सूक्ष्म विकारों के निवारण की क्रिया है । मुण्डन के उपलक्षण से प्रकृति एवं प्राणियों में होने वाली व्यापक प्रक्रिया का उल्लेख है । बालों को जड़ से काटने के लिए उन्हें जल से गीला - मुलायम करके तेजधार के उपकरण (छुरे) से हटाया जाता है । सूक्ष्म विकारों के निवारण में भी इसी प्रकार स्नेह रूप जल से मुलायम करके तेजस्विता की धार से काटना उचित होता है । सवितादेव तेजस्वी किरणों से सोम (पोषक- प्रवाहों) के विकारों को उच्छेदित करते रहते हैं ।]

[६९ - वर्चस् प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - बृहस्पति, अश्विनीकुमार । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५०१. गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥१ ॥

हिमवान् पर्वत में, रथारूढ़ वीरों के जयघोषों में, स्वर्ण तथा गौओं के दुग्ध प्रदान करने में जो यश है तथा पर्जन्य धारा और अन्न के मधुर रस में जो मधुरता है, वह हमें भी प्राप्त हो ॥१ ॥

१५०२. अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥२ ॥

हे कल्याण करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप हमें मधु के मधुर तत्त्व से युक्त करें, जिससे हमारी वाणी मधुर हो । लोगों के प्रति हम मधुर एवं भर्गः शक्तिसम्पन्न वाणी बोलें ॥२ ॥

१५०३.मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः । तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु॥

अन्न एवं यज्ञ के फलरूप सार में जो यश है तथा मुझ में जो तेजस्विता है, उसे प्रजापतिदेव, उसी प्रकार सुदृढ़ करें, जिस प्रकार द्युलोक में दीप्ति को स्थिर किया है ॥३ ॥

[७० - अघ्न्या सूक्त]

[**ऋषि** - काङ्कायन । **देवता** - अघ्न्या । **छन्द** - जगती ।]

१५०४. यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते
मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥१ ॥

जैसे मांसाहारी को मांस, शराबी को शराब, जुआरी को पासे एवं कामी पुरुष को स्त्री प्रिय होते हैं । वैसे ही हे अवध्य (गौ या प्रकृति) माता ! आप अपने बछड़े (बच्चों) से प्रेम करें ॥१ ॥

१५०५. यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते
मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥२ ॥

जैसे हाथी, हथिनी के पैर के साथ पैर मिलाने पर प्रसन्न होता है एवं कामी पुरुष का मन स्त्रियों में रमा रहता है, वैसे ही हे अबध्य (माँ) ! आपका मन बछड़े से जुड़ा रहे ॥२ ॥

१५०६. यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि । यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते
मनः । एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥३ ॥

जैसे रथ में चक्र को धुरी दृढ़ता से जोड़े रखती है और जैसे कामी पुरुष का मन स्त्री में रमा रहता है, वैसे ही (हे मातः !) आप अपने बछड़े से जुड़ी रहें ॥३ ॥

[७१ - अन्न सूक्त]

[ऋषि - ब्रह्मा । देवता - १-२ अग्नि, ३ विश्वेदेवा । छन्द - जगती, ३ त्रिष्टुप् ।]

१५०७. यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम्।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥१ ॥

हमने जो विविध प्रकार के अन्न तथा जो सुवर्ण, घोड़ा, गौ, बकरी, भेड़ आदि का संग्रह कर लिया है; अग्निदेव उस सम्पदा को प्रतिग्रह - दोष से मुक्त कर सुहुत (यज्ञीय संस्कार युक्त) बनाएँ ॥१ ॥

१५०८. यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२ ॥

यज्ञ से संस्कारित एवं असंस्कारित दोनों प्रकार के जो द्रव्य; पितरों, देवताओं और मनुष्यों द्वारा हमें प्राप्त हुए हैं, जिससे हमारे मन में हर्षातिरेक हो रहा है; उन सभी को अग्निदेव सुहुत (यजनीय) बनाएँ ॥२ ॥

१५०९. यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥३ ॥

हे देवताओ ! असत्य व्यवहार से खाये गये अन्न एवं लिये गये ऋण को बिना चुकता किये, हम जो संग्रह करते हैं, वह अन्न वैश्वानर- अग्निदेव की कृपा से हमारे लिए मधुर और कल्याणकारी बने ॥३ ॥

[७२ - वाजीकरण सूक्त]

[ऋषि - अथर्वाङ्गिरा । देवता - शेपोऽर्क । छन्द - जगती, २ अनुष्टुप्, ३ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

१५१०. यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥१ ॥

जिस प्रकार बन्धनरहित पुरुष आसुरी माया द्वारा विविध रूपों का सृजन करता है । उसी प्रकार (हे देव !) आप प्रजननाङ्ग को संतानोत्पत्ति हेतु समर्थ बनाएँ ॥१ ॥

१५११. यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥२ ॥

सन्तति उत्पादन हेतु समर्थ जैसा शरीराङ्ग होता है, वैसा पूर्णपुरुष जैसा तुम्हारा भी अंग सन्तानोत्पादक हो ॥२॥

१५१२. यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३ ॥

जिस प्रकार वन्य पशु, हाथी, घोड़ा आदि अपने शरीराङ्ग को पुष्ट तथा वीर्यवान् बनाए रखते हैं, उसी प्रकार इस पुरुष के अंग सुदृढ़ तथा पूर्णपुरुष के समान परिपुष्ट हों ॥३ ॥

[७३ - सांमनस्य सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा । देवता - सांमनस्य, वरुण, सोम अग्नि, बृहस्पति, वसुगण; ३ वास्तोष्पति । छन्द - भुरिक् अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।]

१५१३. एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।

अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः ॥१ ॥

अग्निदेव, सोमदेव, वरुणदेव यहाँ आएँ । समस्त देवों के स्वामी बृहस्पतिदेव आठों वसुओं के साथ आएँ । हे समान जन्म वाले ! आप समान मन वाले होकर इस उग्र चेतना सम्पन्न को श्री - सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

१५१४. यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥२ ॥

हे बान्धवो ! जो बल आपके हृदय में है एवं जो संकल्प आपके मन में है, उनको हविष्यान्न एवं घृत के द्वारा परस्पर सम्बद्ध करते हैं । श्रेष्ठ कुलोत्पन्न आपकी रुचि हमारी ओर बनी रहे ॥२ ॥

१५१५. इहैव स्त माप याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥३ ॥

हे बान्धवो ! आप हमसे अलग न जाएँ , हमसे स्नेहपूरित व्यवहार करें । मार्ग रक्षक पूषा देवता आपको हमारे प्रतिकूल चलने पर रोकें । वास्तोष्पति देवता हमारे लिए आपको अनुकूलतापूर्वक बुलाएँ ॥३ ॥

[७४ - सांमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - सांमनस्य, नाना देवता, त्रिणामा । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।]

१५१६. सं वः पृच्यन्तां तन्व१ः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥१ ॥

हे सांमनस्य चाहने वालो ! आपके तन और मन परस्पर स्नेह से मिले रहें । कर्म भी परस्पर मिल-जुलकर श्रेष्ठ ढंग से सम्पन्न हों । भगदेव और ब्रह्मणस्पतिदेव तुमको हमारे लिए बारम्बार बुलाएँ ॥१ ॥

१५१७. संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥२ ॥

हे मन की समानता के इच्छुक ! भगदेवता के श्रमपूर्वक किये गये तप जैसे श्रेष्ठ कर्म के द्वारा हम आपको समान ज्ञान वाला बनाते हैं, जिससे आपके मन और हृदय समान ज्ञान से सम्पन्न बनें ॥२ ॥

१५१८. यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमाञ्जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥३ ॥

अदिति के पुत्र मित्रावरुण जिस प्रकार आठ वसुओं के साथ एवं उग्र रुद्र अपनी उग्रता को त्यागकर मरुद्‌गणों के साथ समान ज्ञान सम्पन्न हुए, उसी प्रकार हे तीन नामों वाले अग्निदेव ! आप क्रोध को त्याग कर इन सांमनस्य के इच्छुक मनुष्यों को परस्पर मिलाएँ ॥३ ॥

[७५ - सपत्नक्षयण सूक्त]

[**ऋषि** - कबन्ध । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ षट्पदा जगती ।]

१५१९.निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति । नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ॥१ ।

शत्रुओं की जो सेना हमको पीड़ा पहुँचाने के लिए एकत्रित हो रही है, वह अपने स्थान से पतित हो जाए । शत्रु नाश के लिए अर्पित आहुतियों से इन्द्रदेव प्रसन्न होकर शत्रुओं का नाश करें ॥१ ॥

१५२०.परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा । यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥२ ।

वृत्रासुर के संहारकर्त्ता इन्द्रदेव उस शत्रु को दूरस्थ स्थान तक खदेड़ दें, जहाँ से वह सैकड़ों वर्षों में भी लौटकर न आ सके ॥२ ॥

१५२१. एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति। एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥३ ॥

वह शत्रु तीनों भूमि तथा पाँचों प्रकार के जनों से दूर चला जाए। वह ऐसे स्थान में पहुँचे, जहाँ सूर्य और अग्नि का प्रकाश भी न हो। द्युलोक में जब तक सूर्यदेव हैं, तब तक वह लौट न सके ॥३ ॥

[७६ - आयुष्य सूक्त]

[**ऋषि** - कबन्ध । **देवता** - सान्तपनाग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती अनुष्टुप् ।]

१५२२. य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे। संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥

जो जन इस अग्नि (यज्ञ) के चारों ओर उपासना करने के लिए बैठते हैं तथा दिव्य दृष्टि के लिए इसका आधान करते हैं, उनके हृदयों में ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो ॥१ ॥

१५२३. अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे। अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥२ ॥

उस तपने वाले ज्ञानाग्नि को हम आयुष्य वृद्धि के लिए प्राप्त करते हैं। जिससे प्रकट धूम्र को अद्धाति (ऋषि या ज्ञानीजन) मुख से निकलता हुआ देखते हैं ॥२ ॥

[निकलने वाले धूम्र से अग्नि के होने का पता चलता है। जब अन्तःकरण में दिव्य ज्ञानाग्नि जाग्रत् होती है, तो उसका प्रमाण मुख से निकलने वाली वाणी से प्रकट होता है। दिव्य अग्नि के दिव्य धूम्र को ज्ञानी जन ही पहचान पाते हैं।]

१५२४. यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम्। नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥३ ॥

जो क्षत्रिय पुरुष विधिवत् स्थित अग्नि की (सन्दीपनी) आहुति का ज्ञाता है, वह कुटिल (छलपूर्ण) क्षेत्रों में (भ्रमित होकर) मृत्यु की दिशा में पैर आगे नहीं बढ़ाता ॥३ ॥

१५२५. नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति। अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृहणात्यायुषे ॥४ ॥

ऐसा ज्ञाता क्षत्रिय दीर्घजीवन की कामना से अग्निदेव का स्तोत्र पाठ करता है, उसे घेरने वाले शत्रु भी नहीं मार सकते ॥४ ॥

[७७ - प्रतिष्ठापन सूक्त]

[**ऋषि** - कबन्ध । **देवता** - जातवेदा (अग्नि)। **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५२६. अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत्। आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥१ ॥

द्युलोक, भूलोक एवं दोनों के मध्य सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने स्थान एवं मर्यादा में स्थिर हैं, पर्वत भी अपने-अपने स्थान में स्थिर हैं, वैसे ही हम स्थाम्नि(अपनी गमनशील शक्तियों को आत्मशक्ति) द्वारा मर्यादा में स्थिर करते हैं ॥१ ॥

१५२७. य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम् ।आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥

जो गो (इन्द्रियादि शक्तियों) के पालनकर्त्ता (प्राण, मन आदि) परम स्थान पाकर भी निम्न स्थानों की ओर (प्राणियों में) आते हैं तथा जिनमें सर्वत्र आने-जाने की सामर्थ्य है, हम उनका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

१५२८. जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः । सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप इन शक्तियों को (निम्न गमन से) लौटाएँ । आने के लिए आपके पास सहस्रों मार्ग हैं । उनसे हमें आप समर्थ बनाएँ ॥३ ॥

[७८ - धनप्राप्तिप्रार्थना सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - १-२ चन्द्रमा, रयि (धन) ३ त्वष्टा (दीर्घायु) । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५२९. तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥१ ॥

प्रदत्त हवि इस (पुरुष) को एवं जो स्त्री इसे प्रदान की गयी है, उसे भी बारम्बार पुष्ट करे । पुष्टिकारक रसों से इन दोनों की वृद्धि हो ॥१ ॥

१५३०.अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्। रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥

पति-पत्नी दोनों दुग्धादि से पुष्ट हों, राष्ट्र के साथ विकसित हों तथा अनेक प्रकार के तेजस्वी ऐश्वर्य से ये दोनों परिपूर्ण रहें ॥२ ॥

१५३१. त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥३ ॥

त्वष्टादेव ने इस स्त्री को उत्पन्न किया है, हे पति ! आपको भी त्वष्टादेव ने इस स्त्री के लिए उत्पन्न किया है । वे त्वष्टादेव ही आप दोनों को दीर्घायुष्य प्रदान कर, सहस्रों वर्षों तक जीवनयापन करने वाला बनाएँ ॥३ ॥

[७९ – ऊर्जाप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - संस्फान । **छन्द** - गायत्री, ३ त्रिपदा प्राजापत्या जगती ।]

१५३२. अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु । असमातिं गृहेषु नः ॥१ ॥

अग्निदेव आहुतियों को द्युलोक तक पहुँचाते हैं, इसलिए पालक कहलाते हैं । वे अग्निदेव हमारे घरों को धन-धान्य आदि सामग्री से भरपूर रखें ॥१ ॥

१५३३. त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय । आ पुष्टमेत्वा वसु ॥२ ॥

हे अन्तरिक्ष के स्वामी वायुदेव ! आप हमारे घरों को बलवर्द्धक रसमय अन्न से भरें । प्रजा, पशु तथा अन्य पुष्टिकारक धन-धान्य भी हमें प्राप्त हो ॥२ ॥

१५३४. देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे ।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ॥३ ॥

हे आदित्यदेव ! आप हजारों पोषक सम्पदाओं के ईश्वर हैं । आप अपनी उन सम्पदाओं को हमें प्रदान करें । आपकी कृपा-अनुग्रह से हम ऐश्वर्य के भागीदार बनें ॥३ ॥

[८० - अरिष्टक्षयण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - चन्द्रमा । **छन्द** - भुरिक् अनुष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तार पंक्ति ।]

इस सूक्त में 'कालकाञ्जो' तथा 'देवस्य शुनः' - देवलोक के श्वानों का उल्लेख है। इनके गूढ़ार्थ विचारणीय हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा काठक संहिता में 'कालकाञ्जों ' का उपाख्यान है। वे तीन असुर (शक्तिशाली) थे; जिन्होंने स्वर्ग प्राप्ति हेतु इष्टकाओं (यज्ञाग्नि) का चयन किया। इन्द्र ने इष्टकाओं को अपने अधिकार में ले लिया, तब उन असुरों ने स्वर्ग पर आक्रमण किया। उसे अपने अधिकार में लिया, तो इन्द्र ने 'इष्टका' का प्रहार किया। उससे वे बिचक गये तथा बिखर गये। उस बिखराव से दो बड़े अंश दिव्य श्वान बने।

ऐसी कथाएँ आलंकारिक होती हैं। 'काल' का अर्थ होता है- 'समय' तथा 'कञ्ज' का अर्थ है 'कमल'। इस आधार पर 'कालकाञ्ज' समयरूपी कमल का बोध कराने वाला होता है। विज्ञान के मतानुसार समय का बोध पदार्थ की गति के सापेक्ष है। जब पदार्थ के तीन शक्तिशाली घटक (असुर) धन विभव (+ चार्ज) युक्त, ऋण विभव (-चार्ज) युक्त तथा उदासीन (न्यूट्रल) कण उत्पन्न होकर गतिशील हुए, तभी प्रथम बार समय का बोध हुआ। अतः वे कालकाञ्ज कहलाए। उन्होने इष्टकाओं (उर्जा की सूक्ष्म इकाईयों) को एकत्रित किया । इन्द्र (नियामक शक्ति) ने उन पर इष्टका (ऊर्जाकणों) का प्रहार किया, तो वे पदार्थ समूहों में बिखर गये। उस प्रक्रिया में दो बड़े गतिशील पिण्ड (सूर्य एवं चन्द्र) उत्पन्न हुए ; जो द्युलोक के शुनः (फूले हुए) कहलाये। इन्द्र शक्ति के दबाव से सूक्ष्म असुर कणों के घनीभूत होने से ठोस पिण्ड (पृथ्वी जैसे) बन गये तथा जो भाग शुनः फूले हुए रह गये, वे सूर्य जैसे तारे बन गये। अधिकांश आचार्यो ने देवस्य शुनः को सूर्य के सन्दर्भ में लिया भी है। काल का बोध सूर्य एवं चन्द्र की सापेक्ष गति से होता है। इसलिए उन्हें 'कालकञ्ज' कहना भी उचित है। उक्त दृष्टि से मन्त्रों के अर्थो की ठीक-ठीक सिद्धि भी होती है-

१५३५. अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत्।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥१ ॥

विश्व के भूतों (पदार्थो - प्राणियों) को प्रकाशित करता हुआ, जो अन्तरिक्ष से अवतरित होता है। उस दिव्यलोक के शुनः (फूले हुए पिण्ड-सूर्य) की जो महत्ता है, उससे प्राप्त हविष्य हम, आपको अर्पित करते हैं ॥१ ॥

[सूर्य के प्रभाव से उत्पन्न वनस्पतियों से ही हव्य बनता है। उसी से यजन किया जाता है।]

१५३६.ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः।तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये॥

ये जो तीन कालकाञ्ज (असुर या पदार्थ कण) द्युलोक में देवों की तरह रहते हैं, उन्हें हम अपनी रक्षा के लिए तथा कल्याण के लिए आवाहित करते हैं ॥२ ॥

१५३७. अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम्।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी जल में विद्युत्रूप उत्पत्ति है, द्युलोक में आपका आदित्यात्मक भाव से स्थान है। समुद्र के बीच में तथा पृथ्वी पर आपकी महिमा स्पष्ट है। हे अग्निदेव ! दिव्य श्वान (सूर्य) के तेजरूप हवि से हम आपका पूजन करते हैं ॥३ ॥

[८१- गर्भाधान सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - आदित्य, ३ त्वष्टा । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में किसी दिव्य परिहस्त (हाथ में धारण करने का कंकण) का उल्लेख है। प्रजा एवं धन देने वाला (मंत्र१) तथा देवमाता अदिति द्वारा धारण किया जाने वाला यह कंकण पदार्थ-निर्मित नहीं हो सकता, यह तो तेजोवलय का रक्षण आवरण ही हो सकता है। इस सूक्त के देवता अदितिपुत्र आदित्य हैं। सूर्यमण्डल के चारों ओर एक कंकण-तेजोवलय होता है, जो सूर्य के गर्भ में चल रही उत्पादक प्रक्रिया को सुरक्षित तथा सुसंचालित रखता है। इस तेजोवलय के अंशों को ही प्रकृति अथवा नारी के गर्भ में चल रहे उत्पादन चक्र की सुरक्षा के लिए आवाहित किया गया प्रतीत होता है-

१५३८. यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥१ ॥

हे अग्ने ! आसुरी वृत्तियों एवं शक्तियों को आप अपने वश में रखने में समर्थ हैं एवं दोनों हाथों से उन्हें नष्ट करते हैं, ऐसे देव्र पुत्र-पौत्रादिरूप प्रजा एवं धन की सुरक्षा करने वाले कंकण (तेजोवलय) सिद्ध हुए हैं ॥१ ॥

१५३९. परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे । मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ।

हे तेजोवलय ! आप गर्भ और योनि (उत्पादन क्षेत्र) की सुरक्षा करें । हे मर्यादे ! आप पुत्र धारण करें एवं समय पूर्ण होने पर उसे बाहर आने की प्रेरणा दें ॥२ ॥

१५४०. यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥३ ॥

जिस कंकण को पुत्र की कामना वाली अदिति देवी ने धारण किया था, उसे त्वष्टा (रचना कुशल) देव उस नारी (या प्रकृति) को धारण कराएँ, ताकि वह पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हो ॥३ ॥

[८२ - जायाकामना सूक्त]

[**ऋषि** - भग । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५४१. आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ॥१ ॥

वृत्रासुर-संहारक, वसुओं से उपासित शतक्रतु इन्द्रदेव का नाम लेकर (उनकी साक्षी में) आने वाले जो अति समीप आ गये हैं, मैं उन (शक्ति प्रवाहों या वरों) का वरण (अपनी इन्द्रियों या पुत्रियों के लिए) करता हूँ ।

१५४२. येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥२ ॥

भग देवता ने मुझसे कहा - "अश्विनीकुमारों ने जिस मार्ग द्वारा सूर्या - सावित्री को प्राप्त किया था, उसी उत्तम मार्ग से तुम भी स्त्री प्राप्त करो" ॥२ ॥

१५४३. यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका जो धन देने में समर्थ , स्वर्ण का बड़ा अंकुश (नियन्त्रण सामर्थ्य) है, उसी से मुझ पुत्राभिलाषी को आप स्त्री प्रदान करें ॥३ ॥

[८३ - भैषज्य सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरा । **देवता** - सूर्य, चन्द्र, (२ रोहिणी, ३ रामायणी) । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा निचृदार्ची अनुष्टुप् ।]

१५४४. अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव । सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ।

हे गण्डमाला रोग ! तुम (शरीर को छोड़कर) घोंसले से निकलने वाले गरुड़ की तरह (तीव्र गति से) निकलते जाओ । सूर्यदेव रोग की ओषधि बनाएँ और चन्द्रमा रोग को दूर करें ॥१ ॥

१५४५. एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे । सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन । ।२ ॥

हे गण्डमालाओ !तुम (वात, पित्त, कफ भेद से) चितकबरी, श्वेत, काली तथा रक्तवर्ण वाली हो, इस तरह सब नाम हमने लिया । हे अपचितो !(इससे प्रसन्न होकर) तुम वीरपुरुष की हिंसा न करो और यहाँ से चली जाओ।।

१५४६.असूतिका रामायण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ।।३ ।।

गलने वाली, सड़ने वाली गण्डमाला की जड़ नाड़ियों में छिपी रहती है । यह (गण्डमाला) मूल कारण सहित नष्ट हो जाए ।।३ ।।

१५४७. वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ।।४ ।।

हम मन से हवन करते हैं, यह हवन उत्तम हो । तुम अपनी आहुति ग्रहण कर यहाँ से भाग जाओ ।।४ ।।

[८४ - निर्ऋतिमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - अङ्गिरा । **देवता** - निर्ऋति ।**छन्द** - भुरिक् जगती, २ त्रिपदार्षी बृहती, ३ जगती, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्]

१५४८. यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ।।१ ।।

हे निर्ऋते (दुर्गति के बन्धनो) ! पीड़ितों को मुक्त करने के लिए हम तुम्हारे क्रूर मुख में आहुति देते हैं । तुम मन से उसे ग्रहण करके रोगी को रोग-मुक्त करो । ओषधियों से तैयार हुआ यह जल रोगी को रोग-मुक्त करे । साधारणतया तुम्हें लोग ब्रह्मरूप से जानते हैं ; परन्तु हम तुम्हारे कारणरूप पाप को भी जानते हैं ।।१ ।।

१५४९. भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु । मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ।।२ ।।

हे सर्वत्र विद्यमान निर्ऋते ! तुम हमारे द्वारा दी गई आहुति से हवियुक्त हो, अपना शमन करो । इन गो (गाय या इन्द्रियाँ) आदि को रोग के कारणरूप पापों से मुक्त करो ।।२ ।।

१५५०. एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।३ ।।

हे निर्ऋते ! तुम रोग-बन्धन से मुक्त करके हमें सुख प्रदान करो । हे रोगिन् ! तुमको मृत्यु के देवता यम ने फिर हमारे निमित्त लौटा दिया है । अतः उन प्राणापहारी यमदेव को नमस्कार है ।।३ ।।

१५५१. अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ।।४ ।।

हे निर्ऋते ! जब तुम लौह और काष्ठयुक्त अपने बन्धनों से जकड़ती हो, तब वह हजारों मारक दु:खों से बँध जाता है । पितरों और यम से मिलकर तुम इसे श्रेष्ठ दु:खरहित स्वर्ग के समान स्थिति तक पहुँचाओ ।।४ ।।

[८५ - यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - वनस्पति । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५५२. वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ।।१ ।

यह दानादि गुण-सम्पन्न वरण वृक्ष की मणि राजयक्ष्मा आदि रोगों को नष्ट करे । इस रोग- पीड़ित को देवगण रोग से मुक्त करें ।।१ ।।

१५५३. इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२ ॥

हे रोगिन् ! मणि-बन्धनकर्त्ता हम, इन्द्रदेव, मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं के वचनों के द्वारा तुम्हारे यक्ष्मा रोग को हटाते हैं ॥२ ॥

१५५४. यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३ ॥

जिस प्रकार वृत्रासुर ने जगत्-पोषक, मेघ स्थित जल- प्रवाह को रोका था, उसी प्रकार हे रोगिन् ! हम वैश्वानर अग्निदेव के द्वारा तुम्हारे रोग को रोकते हैं ॥३ ॥

[८६ - वृषकामना सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - एकवृष । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५५५. वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥१ ॥

यह श्रेष्ठता की इच्छा वाला पुरुष, इन्द्रदेव की कृपा से तृप्त करने वाला हो । यह द्युलोक को तृप्त करके पर्जन्य की वर्षा द्वारा समस्त प्राणियों को तृप्त करने वाला हो । (हे श्रेष्ठता की इच्छा वाले पुरुष !) तुम सर्वश्रेष्ठ हो ॥१ ॥

१५५६. समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥२ ॥

जैसे जल के स्वामी समुद्र, पृथ्वी के स्वामी अग्नि, नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हैं, वैसे ही हे श्रेष्ठता के चाहने वाले पुरुष ! तुम भी सर्वश्रेष्ठ बनो ॥२ ॥

१५५७. सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् । देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप असुरों के सम्राट् और तुलना की दृष्टि से देवताओं के अर्धभाग (सर्वश्रेष्ठ) हो । हे श्रेष्ठता की कामना वाले पुरुष ! ऐसे श्रेष्ठ इन्द्रदेव की कृपा से तुम भी श्रेष्ठ हो जाओ ॥३ ॥

[८७ - राज्ञः संवरण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - ध्रुव । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५५८. आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१ ॥

हे राजन् ! आपको इस (राष्ट्र या क्षेत्र) का अधिपति नियुक्त किया गया है । आप इसके स्वामी हैं, आप नित्य अविचल और स्थिर होकर रहें । प्रजाजन आपकी अभिलाषा करें । आपके माध्यम से राष्ट्र का गौरव क्षीण न हो ॥

१५५९.इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलत् । इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥

आप इसमें ही अविचल होकर रहें । कभी पद से वंचित न हों । पर्वत के समान आप निश्चल होकर रहें । जैसे स्वर्ग में इन्द्रदेव हैं, वैसे ही आप पृथ्वी पर स्थिर होकर शासन करें और राष्ट्र का नेतृत्व करें ॥२ ॥

१५६०. इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा। तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः॥

इन्द्रदेव इस (अधिपति) को अक्षय यजनीय सामग्री उपलब्ध करके स्थिरता प्रदान करें। सोम उन्हें अपना आत्मीय मानें। ब्रह्मणस्पति भी उन्हें आत्मीय ही समझें ॥३॥

[८८ - ध्रुवोराजा सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - ध्रुव । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।]

१५६१. ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम्॥१॥

जिस प्रकार आकाश, पृथ्वी, सम्पूर्ण पर्वत और समस्त विश्व अविचल हैं, उसी प्रकार ये प्रजाजनों के स्वामी 'राजा' भी स्थिर रहें ॥१॥

१५६२. ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्॥२॥

हे राजन्! आपके राष्ट्र को वरुणदेव स्थायित्व प्रदान करें। दिव्य गुणों से युक्त बृहस्पतिदेव स्थिरता प्रदान करें। इन्द्रदेव और अग्निदेव भी आपके राष्ट्र को स्थिर रूप से धारण करें ॥२॥

१५६३. ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥३॥

हे राजन्! अपने को सुदृढ़- स्थिर रखकर शत्रुओं को मसल डालो। जिनका आचरण शत्रुओं के समान है, ऐसों को भी गिरा दो। शत्रु नाश होने पर समस्त दिशाओं की प्रजा समान बुद्धि एवं समान मन वाली हो और उनकी समिति आपकी सुदृढ़ता के लिए योजना बनाने में समर्थ हो ॥३॥

[८९ - प्रीतिसंजनन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - (रुद्र) १ सोम, २ वात, ३ मित्रावरुण । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५६४. इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम्।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि॥१॥

सोम-प्रदत्त, प्रेम करने वाला यह बलवान् सिर है, इससे उत्पन्न हुए बल से अर्थात् प्रेम से हम आपके हृदय के भावों को उद्दीप्त करते हैं ॥१॥

१५६५. शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः।
वातं धूम इव सध्र्य१ङ् मामेवान्वेतु ते मनः॥२॥

हम तुम्हारे हृदय के भावों को उद्दीप्त करते हैं। तुम्हारे मन को प्रेम भाव से प्रभावित करते हैं, जिससे तुम हमारे प्रति उसी प्रकार अनुकूल हो जाओ, जिस प्रकार धूम्र, वायु के अनुकूल एक ही दिशा में प्रवाहित होता है ॥२॥

१५६६. मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम्॥३॥

मित्रावरुणदेव, देवी सरस्वती, पृथ्वी के दोनों अन्तिमभाग एवं मध्यभाग (निवासी- प्राणी) तुम्हें हमारे प्रति जोड़ें अर्थात् इन सब दिव्य-शक्तियों की कृपा से तुम्हारा स्नेह हमारे प्रति बढ़े ॥३॥

[९० - इषुनिष्कासन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - रुद्र । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ आर्षी भुरिक् उष्णिक् ।]

१५६७. यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥१ ॥

हे पीड़ित ! शूल रोग के अधिष्ठाता देव, रुलाने वाले रुद्रदेव ने तुम्हारे अङ्गों एवं हृदय को बींधने के लिए, बाणों को फेंका है । हम आज उन्हें उखाड़ते हैं ॥१ ॥

१५६८. यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥२ ॥

हे शूल रोगी पुरुष ! तुम्हारे शरीर के अङ्गों एवं धमनियों आदि की विषाक्तता को इन ओषधियों के द्वारा समाप्त कर उन्हें विषरहित करते हैं ॥२ ॥

१५६९. नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै । नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥३ ॥

हे रुद्र ! आपको नमस्कार है । आपके धनुष पर चढ़े हुए बाण एवं छोड़े गये बाण को भी नमस्कार है ॥३ ॥

[९१ - यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - १-२ यक्ष्मनाशन, ३ आपः । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१५७०. इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः । तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये ॥

इस जौ को आठ बैलों वाले तथा छह बैलों वाले हल से जोतकर, ओषधि के निमित्त उत्पन्न किया है । हे रोगिन् ! हम इस जौ के द्वारा रोग-बीज को निम्नगामी करके निकालते हैं ॥१ ॥

१५७१. न्य१ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः । नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥२ ।

वायुदेव, दिव्यलोक से नीचे के लोक में प्रवाहित होते हैं, सूर्यदेव ऊपर से नीचे की ओर ताप देते हैं, गौ नीचे की ओर दुही जाती है, उसी प्रकार से आपके अमंगल भी अधोगामी हों ॥२ ॥

१५७२. आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥३ ॥

जल सम्पूर्ण रोगों का निवारक है । जल ही रोगों के (मूल) कारण का नाश करने वाला है । जल ही सबके लिए हितकारी ओषधिरूप है, वह आपके निमित्त रोगनाशक हो ॥३ ॥

[इस सूक्त में प्राणशक्ति तथा मन्त्रशक्ति के प्रभाव से अनुप्राणित अन्न एवं जल से रोगोपचार का उल्लेख किया गया है]

[९२ - वाजी सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - वाजी । छन्द - १ जगती, २-३ त्रिष्टुप् ।]

१५७३. वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥१ ॥

हे अश्व ! तुम रथ में युक्त होने पर वायु-वेग वाले हो । तुम अपने लक्ष्य तक इन्द्रदेव की प्रेरणा से, मन जैसी तीव्र गति से पहुँचो । सबके ज्ञाता मरुद्गण तुमसे जुड़ें तथा त्वष्टादेव तुम्हारे पैरों को वेगवान् बनाएँ ॥१ ॥

१५७४. जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥२ ॥

हे अश्व ! श्येन पक्षी के समान एवं वायु के समान वेग तुम्हारे अन्दर छिपा है, उसे प्रकट कर बलवान् बनकर, तीव्र गति से संग्राम में पार करने वाले होकर युद्ध को जीतो ॥२ ॥

१५७५. तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥३ ॥

हे वेगवान् अश्व ! तुम्हारे शरीर पर सवार हमारे शरीर गन्तव्य पर शीघ्र पहुँचें । तुम्हें घाव आदि से बचाकर सुख प्रदान करते हैं । तुम द्युलोक के सूर्य के समान बनकर सहज ज्ञान से चलकर अपने निवास तक पहुँचो ॥३ ॥

[९३ - स्वस्त्ययन सूक्त]

[**ऋषि** - शन्ताति । **देवता** - रुद्र (१ यम, मृत्यु, शर्व, २ भव शर्व, ३ विश्वेदेवा, मरुद्‌गण, अग्नीषोम, वरुण, वातपर्जन्य) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१५७६. यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१ ॥

नियामक मृत्युदेव, पापियों को मारने वाले, उत्पीड़क, पोषक, हिंसक, शस्त्र फेंकने वाले, नील शिखा वाले, पापियों की हिंसा करने के लिए अपनी सेना के साथ चढ़ाई करने वाले ये देवता हमारे पुत्र-पौत्रादि को सुरक्षित रखकर सुख प्रदान करें ॥१ ॥

१५७७. मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु ॥२ ॥

संकल्प द्वारा, घृतादि की आहुति द्वारा हम शर्व (फेंके जाने वाले) अस्त्र के स्वामी रुद्रदेव और अन्य नमस्कार योग्यों को नमस्कार करते हैं । (जिसके परिणाम स्वरूप) पापरूपी विष हमसे दूर चले जाएँ ॥२ ॥

१५७८. त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥३ ॥

हे मरुद्‌गण और विश्वेदेवो ! आप अघविषा वाली कृत्याओं और उनके संहारक साधनों से बचाएँ । मित्र, वरुण, अग्नि और सोमदेव हमें बचाएँ एवं वायु तथा पर्जन्य देवता हम पर अनुग्रह करें ॥३ ॥

[९४ - सांमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वाङ्गिरा । **देवता** - सरस्वती । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ विराट् जगती ।]

१५७९. सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥१ ॥

हे विरुद्ध मन वाले मनुष्यो ! हम तुम्हारे मनों, विचारों एवं संकल्पों को एक भाव से युक्त कर, परस्पर विरोधी कार्यों को अनुकूलता में परिवर्तित करते हैं ॥१ ॥

१५८०. अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥२ ॥

हे विरुद्ध मन वाले मनुष्यो ! तुम्हारे मनों को हम अपने अनुकूल करते हैं। तुम अनुकूल चित्त वाले यहाँ आओ। तुम्हारे हृदयों को हम अपने वश में करते हैं। तुम हमारा अनुसरण करते हुए कर्म करो ॥२ ॥

१५८१. ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥३ ॥

द्यावा-पृथिवी परस्पर अभिमुख होकर हमसे संबद्ध हैं, वाक् देवी सरस्वती भी संबद्ध हैं, इन्द्रदेव और अग्निदेव भी हमसे संबद्ध हैं, अत: हम सब इनकी कृपा से समृद्ध हों ॥३ ॥

[९५ - कुष्ठौषधि सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता**– वनस्पति । **छन्द**–अनुष्टुप्]

१५८२.अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत॥

यहाँ से तीसरे द्युलोक में देवताओं के बैठने का अश्वत्थ है, वहाँ अमृत का वर्णन करने वाले 'कुष्ठ'(ओषधि) का ज्ञान देवताओं ने प्राप्त किया ॥१ ॥

१५८३.हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥

हिरण्य (तेजोमय पदार्थ) से बनी नौका हिरण्य (तेजस्) के बन्धनों से बँधी हुई स्वर्ग में चलती है। वहाँ अमृत- पुष्प, 'कुष्ठ'(ओषधि) को देवताओं ने प्राप्त किया ॥२ ॥

१५८४. गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत। गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥

हे अग्ने ! ओषधियों के गर्भ में आप हैं। हिमवालों के गर्भ में भी आप हैं। आप ही समस्त भूत-प्राणियों में गर्भरूप में रहते हैं, ऐसे हे अग्निदेव ! आप हमारे रोगी को रोग-मुक्त करें ॥३ ॥

[९६ - चिकित्सा सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - १-२ वनस्पति, ३ सोम । **छन्द** - अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराट् गायत्री]

१५८५. या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१ ॥

जो सैकड़ों प्रकार की ओषधियाँ हैं, उनमें सोम का निवास है। जो बृहस्पतिदेव के द्वारा अनेक रोगों में प्रयोग की गई हैं, वे ओषधियाँ हमें रोगमूलक पाप से छुड़ाएँ ॥१ ॥

१५८६. मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्या दुत।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२ ॥

जल अथवा ओषधियाँ हमें शापजनित रोग या पाप से बचाएँ। मिथ्या-भाषण से लगने वाले वरुणदेव के अधिकार वाले पापों से बचाएँ। यमराज के पाप 'बन्धन-पाश' से बचाएँ और समस्त देव- सम्बन्धी पापों से हमें मुक्त रखें ॥२ ॥

१५८७. यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥३ ॥

हमने जागते हुए या सोते हुए जो पाप कर्म इन्द्रियों द्वारा, वाणी द्वारा अथवा मन द्वारा किए हों, हमारे उन समस्त पापों से सोम देवता अपनी पवित्र शक्ति द्वारा, हमें मुक्त करें ॥३ ॥

१६०१. येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥२ ॥

जिस रस के द्वारा कृश पुरुष को वीर्यवान् बनाते हैं और जिसके द्वारा रुग्ण पुरुष को पुष्ट किया जाता है । हे ब्रह्मणस्पते ! उसके द्वारा आप इस पुरुष के शरीराङ्ग को, प्रत्यञ्चा चढ़े धनुष के समान सामर्थ्य वाला बनाएँ ॥२ ॥

१६०२. आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥३ ॥

हे वीर्यकामी पुरुष ! अब हम लक्ष्य-वेधन में समर्थ धनुष पर चढ़ी प्रत्यञ्चा के समान तुम्हारे शरीराङ्ग को पुष्ट करते हैं । तुम प्रसन्न मन एवं हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले होने पर, जीवनसंगिनी के साथ रहो ॥३ ॥

[१०२-अभिसांमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** - जमदग्नि । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६०३. यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार रथ में जुते हुए घोड़े वाहक की इच्छानुसार बर्ताव करते हैं, उसी प्रकार आपका मन हमारी ओर आकर्षित रहे और आप सदैव हमारे अनुकूल व्यवहार करें ॥१ ॥

१६०४. आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२ ॥

आपके मन को मैं उसी प्रकार अपनी ओर आकर्षित करता हूँ, जिस प्रकार अश्वराज खूँटे में बँधी रज्जु को क्रीड़ा में सहज ही उखाड़ कर अपनी ओर खींच लेता है तथा वायु द्वारा उखाड़ा गया तृण जिस प्रकार वायु में ही घूमता रहता है, उसी प्रकार आपका मन हमारे साथ ही रमण करे ॥२ ॥

१६०५. आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्धरे ॥३ ॥

आपके ऐश्वर्य प्रदायक अञ्जन के समान हर्षदायक, 'कुष्ठ' तथा 'नल' के हाथों द्वारा हम आपकी अनुकूलता प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

[१०३ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - उच्छोचन । **देवता** - इन्द्राग्नी, (१ बृहस्पति, सविता, मित्र, अर्यमा, भग, अश्विनीकुमार; २ इन्द्र, अग्नि; ३ इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६०६. संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥१ ॥

हे शत्रुओ ! बृहस्पतिदेव तुम्हें पाश में बाँधें । सर्वप्रेरक सवितादेव तुम्हें बाँधें । अर्यमा देवता भी तुम्हें बन्धन में डालें ।भगदेव और अश्विनीकुमार भी तुम्हें बाँधें ॥१ ॥

१६०७. सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान्।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥२ ॥

शत्रुओं को हम पाश द्वारा बाँधते हैं । दूर स्थित, मध्य में स्थित एवं समीपस्थ सेनाओं को हम नष्ट करते हैं । इन्द्रदेव सेनापतियों को अलग करें और हे अग्निदेव ! आप उनको पाश के द्वारा बाँधकर अपने अधीन करें ॥

१६०८. अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥३ ॥

फहराते हुए ध्वजाओं वाले शत्रु- संघ रणक्षेत्र में संग्राम के लिए उतावले होकर आ रहे हैं । हे इन्द्रदेव ! आप इन्हें अलग-अलग कर दें और हे अग्निदेव ! आप इन्हें पाश में बाँधकर अपने अधीन कर लें ॥३ ॥

[१०४ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि**—प्रशोचन । **देवता**—इन्द्राग्नी अथवा मन्त्रोक्त । **छन्द**—अनुष्टुप्]

१६०९.आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि ।अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ॥

आदान और संदान नामक पाशों में हम शत्रुओं को बाँधते हैं । उन शत्रुओं के जो अपान और प्राण हैं, उन्हें हम जीवनी-शक्ति के साथ छिन्न-भिन्न करते हैं ॥१ ॥

१६१०.इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् । अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ॥

हमने इस आदान नामक पाश यन्त्र को तप के द्वारा सिद्ध कर लिया है, जो इन्द्रदेव द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ है । हे अग्निदेव ! आप संग्राम में हमारे शत्रुओं को पाश से बाँधें ॥२ ॥

१६११. ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।
इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ॥३ ॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव प्रसन्न होकर इन शत्रुओं को बन्धन युक्त करें । राजा सोम एवं इन्द्रदेव मरुद्गणों के सहयोग से हमारे शत्रुओं को बाँधें ॥३ ॥

[१०५ - कासशमन सूक्त]

[**ऋषि** - उन्मोचन । **देवता** - कासा । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६१२. यथा मनोमनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥१ ॥

जिस प्रकार शीघ्रगामी मन जानने योग्य दूर स्थित पदार्थों तक शीघ्रता से पहुँचता है, उसी प्रकार हे कासे (खाँसी रोग) ! तुम मन के वेग से इस रोगी को छोड़कर दूर भाग जाओ ॥१ ॥

१६१३. यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२ ॥

तीक्ष्ण बाण जिस प्रकार दूर जाकर भूमि पर गिरता है, उसी प्रकार हे कासे ! तुम भी अति वेग से भूमि के अन्य स्थल पर जाकर गिरो ॥२ ॥

१६१४. यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३ ॥

जिस प्रकार सूर्य किरणें शीघ्रता से दूर तक पहुँचती हैं, वैसे ही हे कासे ! तुम इस रोगी को छोड़ कर समुद्र के विविध प्रवाहों वाले प्रदेश में प्रस्थान करो ॥३ ॥

[१०६ - दूर्वाशाला सूक्त]

[**ऋषि** - प्रमोचन । **देवता** - दूर्वाशाला । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६१५. आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणीः ।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप अभिमुख होकर अथवा पराङ्मुख होकर गमन करते हैं, तो हमारे देश में फूलसहित दूर्वा उगती है । हमारे गृहादि स्थानों में सरोवर हो, जिनमें कमल खिलें ॥१ ॥

१६१६. अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥२ ॥

हमारा घर जलपूर्ण रहे ।वह बड़ी जलराशियों के निकट हो । हे अग्ने ! आप अपनी ज्वालाओं को पीछे करें ॥२ ॥

१६१७. हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥३ ॥

हे शाले ! हम तुम्हें शीतल वातावरण से युक्त करते हैं । तुम हमें शीतलता प्रदान करो । अग्निदेव हमारे लिए शीत निवारण के निमित्त ओषधि स्वरूप बनें ॥३ ॥

[१०७ - विश्वजित् सूक्त]

[**ऋषि** - शन्ताति । **देवता** - विश्वजित् । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६१८. विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि ।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥१ ॥

हे विश्वजित् देव ! आप जिस त्रायमाणा (रक्षक) शक्ति के सहयोग से जगत् का पालन करते हैं, उनके आश्रय में हमें रखें । आप हमारे चौपायों (गौओं, घोड़ों आदि) एवं दो- पैर वालों (पुत्र-पौत्र, सेवक आदि) की रक्षा करें ॥१ ॥

१६१९. त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥२ ॥

हे त्रायमाण देव ! आप हमें विश्वजित् देव को प्रदान करें । हे विश्वजित् ! आप हमारे चौपायों एवं दो पैर वालों की रक्षा करें ॥२ ॥

१६२०. विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि ।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥३ ॥

हे विश्वजित् देव ! आप हमें कल्याणी शक्ति के अधीन करें । हे कल्याणि ! आप हमारे दो पैर वालों एवं चार पैर वालों की रक्षा करें ॥३ ॥

१६२१. कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥४ ॥

हे कल्याणी देवि ! आप हमें समस्त कार्यों के ज्ञाता सर्वविद् देव को प्रदान करें । हे सर्वविद् देव ! आप हमारे दो पैर वालों एवं चार पैर वालों की रक्षा करें ॥४ ॥

[१०८- मेधावर्धन सूक्त]

[**ऋषि** - शौनक । **देवता** - १-३,५ मेधा, ४ अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, २ उरोबृहती, ३ पथ्याबृहती ।]

१६२२. त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥१ ॥

हे देवत्व को धारण करने में समर्थ मेधे ! आप हम सबके द्वारा सर्व प्रथम पूज्य हैं । आप गौओं, अश्वों सहित हमें प्राप्त हों । सूर्य किरणों के समान सर्वव्यापक शक्तिसहित आप हमारे पास आएँ ॥१ ॥

१६२३. मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥२ ॥

वेदों से युक्त ब्रह्मण्वती, ब्राह्मणों से सेवित ब्रह्मजूता, अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषियों द्वारा प्रशंसित, ब्रह्मचारियों द्वारा प्रवर्धित या स्वीकार की गई श्रेष्ठ मेधा बुद्धि का, हम देवताओं या देवत्व की रक्षा के लिए आवाहन करते हैं ॥२ ॥

१६२४. यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥३ ॥

ऋभुदेव जिस बुद्धि को जानते हैं । दानवों में जो बुद्धि है । ऋषियों में जो कल्याणकारी बुद्धि है । उस मेधा को हम साधक में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

१६२५.यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ।

मंत्र द्रष्टा ऋषिगण एवं पृथ्वी आदि भूतों की रक्षा करने वाले कश्यप, कौशिक आदि बुद्धिमान् , जिस मेधा के ज्ञाता हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें उस मेधा से युक्त कर मेधावी बनाएँ ॥४ ॥

१६२६.मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे॥

हम प्रात:काल, मध्याह्नकाल एवं सायंकाल में मेधा देवी की सेवा करते हैं । सूर्य रश्मियों के साथ स्तुतियों द्वारा हम मेधाशक्ति को धारण करते हैं ॥५ ॥

[प्रातः, मध्याह्न तथा सायं त्रिकाल संध्या द्वारा मेधा का जागरण होता है । सवितादेव की सूक्ष्मशक्ति मेधावर्द्धक है ।]

[१०९ - पिप्पलीभैषज्य सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - पिप्पली, भैषज्य, आयु । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६२७. पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३तातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥१ ॥

पिप्पली नामक ओषधि क्षिप्त (वातविकार, उन्माद) रोग की ओषधि है और महाव्याधि की ओषधि भी है, जिसकी कल्पना (रचना) देवताओं ने की थी । यह एक ओषधि ही जीवन को नीरोग और दीर्घायु प्रदान करने में समर्थ है ॥१ ॥

१६२८. पिप्पल्य१: समवदन्तायतीर्जननादधि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ।

अपने जन्म से पूर्व, आते समय पिप्पलियों ने बताया था कि जीवित प्राणी (मनुष्यादि) जिस किसी को भी हमें ओषधि रूप खिलाया जाए , वह नष्ट नहीं होता ॥२ ॥

[ऋषिगण ओषधियों को उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म प्रवाहों को प्रत्यक्ष देखने-समझने थे ।]

१६२९. असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥३ ॥

हे पिप्पली ओषधे ! तुम वात विकार से पीड़ित एवं हाथ- पैर फेकने वाले उन्माद रोग की ओषधि हो । तुमको प्रथम असुरों ने गढ़ा था, फिर जगत् के हित के लिए देवगणों ने तुम्हारा उद्धार किया है ॥३ ॥

[असुरों का तात्पर्य स्थूल पदार्थ कणों से है । पहले ओषधि का स्थूल रूप बनता है, तब दिव्य धाराएँ उसमें गुण स्थापित करती हैं । परिपक्व होने पर ही वे प्रभावकारी सिद्ध होती हैं ।]

[११० - दीर्घायु सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ पंक्ति ।]

१६३०. प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१ ॥

पुरातनकाल से आप (यज्ञों में) देवों का आवाहन करने वाले और यजन करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! आप अभिनव होतारूप से वेदी पर प्रतिष्ठित होकर हमें पूर्ण सुख, सौभाग्य और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

१६३१. ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप इस (जातक)-को ज्येष्ठानक्षत्र के हानिकारक तथा मूलनक्षत्र के घातक प्रभावों से बचाएँ । इस (इन नक्षत्रों में जन्मे बालक) को यम के संहारक दोषों से मुक्त करें और शतायु बनाएँ ॥२ ॥

१६३२. व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥३ ॥

क्रूर नक्षत्र वाले दिन में उत्पन्न यह बालक दूसरों को सुख देने वाला, वीर-पराक्रमी बने । बड़ा होने पर यह अपनी जन्म देने वाली माता एवं पालक पिता को हर प्रकार से सुख प्रदान करे ॥३ ॥

[१११- उन्मत्ततामोचन सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।]

१६३३. इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! यह पुरुष पापों से उत्पन्न रोगरूप बन्धनों से बँधा हुआ उन्माद रोग के कारण प्रलाप कर रहा है, कृपा कर आप इसे रोग और कारणरूप पापों से मुक्त करें । यह आपका भाग (हवि) और अधिक देने वाला हो ॥१ ॥

१६३४. अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि ॥२ ॥

हे गन्धर्वग्रह से जकड़े हुए पुरुष ! तुम्हें अग्निदेव उन्माद मुक्त करें । तुम्हारे उद्‌भ्रान्त मन को शान्त एवं स्थिर करने के लिए हम उन ओषधियों का प्रयोग करते हैं, जिनका हमें ज्ञान है ॥२ ॥

१६३५. देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३ ॥

किये गये दैवी अथवा राक्षसी पापों के फलस्वरूप उत्पन्न उन्माद को शान्त करने की ओषधि को हम जानते हैं । हम उन्हीं ओषधियों का प्रयोग करते हैं, जिससे तुम्हारा चित्त भ्रमरहित अर्थात् स्थिर हो जाए ॥३ ॥

[उन्माद - रोग - पागलपन आसुरी तथा दैवी प्रकृति के होते हैं । आसुरी प्रकृति के उन्माद में व्यक्ति तोड़-फोड़ हिंसादि कार्य करता है । दैवी उन्माद में अपने को दिव्य गुण सम्पन्न समझता हुआ आशीर्वाद आदि देने जैसे हावभाव प्रकट करता है ।]

१६३६. पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ॥४ ॥

हे पुरुष ! अप्सराओं ने तुम्हें रोगमुक्त कर दिया है । भग एवं इन्द्रदेव सहित समस्त देवों ने तुम्हें रोगमुक्त कर लौटा दिया है ॥४ ॥

[११२- पाशमोचन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** अग्नि । **छन्द -** त्रिष्टुप् ।]

१६३७. मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! यह अपने से बड़ों का संहारक न बने, असत्य इसे मूलोच्छेदन दोष से मुक्त करे । हे देव ! आप दोष से मुक्त करने के उपाय जानते हैं । आप इसे जकड़ने वाली शक्ति के बन्धनों से मुक्त करें । इस निमित्त समस्त देवता आपको विमुक्त करने की अनुज्ञा दें ॥१ ॥

१६३८. उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन पाशों से मुक्त करें, जिन तीन पाशों के द्वारा इस दूषित पुरुष के तीनों अपने (माता-पिता और पुत्र) बँधे हैं; क्योंकि आप पाशों से मुक्त करने के उपायों को जानते हैं ॥२ ॥

१६३९. येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥३ ॥

जिन पाशों के द्वारा ज्येष्ठ भाई से पूर्व विवाह करने वाला बाँधा गया है । उसका प्रत्येक अङ्ग जिन बन्धनों से जकड़ा है । पाशों को खोलने वाले हे अग्निदेव ! आप इसके पाशों को खोलें एवं पाशों के मूल कारण 'पाप' को भ्रूण (अथवा श्रोत्रिय) की हत्या करने वाले में आरोपित करें ॥३ ॥

[११३ - पापनाशन सूक्त]

[**ऋषि -** अथर्वा । **देवता -** पूषा । **छन्द -** त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति ।]

१६४०. त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥१ ॥

इस परिवित्त पाप को देवताओं (अथवा इन्द्रियों) ने पहले त्रित (मन-बुद्धि एवं चित्त) में रखा । त्रित (मन) ने इसको मनुष्यों (की काया) में आरोपित किया । उस पाप से उत्पन्न रोग (गठिया) आदि ने तुम्हें जकड़ लिया है, तो देवतागण मन्त्रों के द्वारा तुम्हारी उस पीड़ा को दूर करें ॥१ ॥

[ऋषि यह तथ्य प्रकट करते है कि गठिया जैसे शारीरिक रोग भी मनो-कायिक (साइको सोमेटिक) होते हैं। पहले वे अंत:करण में पकते हैं, तब काया में प्रकट होते हैं।]

१६४१. मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान्।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥२ ॥

हे पाप्मन् ! तुम सूर्य किरणों में, धुएँ में, वाष्परूप मेघों में, कुहरा अथवा नदी के फेन में प्रविष्ट होकर छिप जाओ। हे पूषा देव ! आप इस पाप को भ्रूण (अथवा श्रोत्रिय) की हत्या करने वाले में आरोपित करें ॥२ ॥

१६४२. द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥३ ॥

त्रित का वह पाप तीन स्थानों से बारह स्थानों (दस इन्द्रियों तथा चिन्तन एवं स्वभाव आदि) में आरोपित हुआ है। वही पाप मनुष्य में प्रविष्ट हो जाता है। हे पुरुष ! तुम्हें यदि पापजनित रोग आदि ने जकड़ रखा है, तो देवगण उस रोग आदि को मन्त्रों (ज्ञानालोक) द्वारा विनष्ट करें ॥३ ॥

[११४ - उन्मोचन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - विश्वेदेवा। **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६४३. यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥१ ॥

जिस पाप को हम जाने या अनजाने में कर चुके हैं, जिसके कारण देवता क्रोधित हैं, हे देवताओ ! आप हमें यज्ञ सम्बन्धी सत्य के द्वारा उस पाप से बचाएँ ॥१ ॥

१६४४. ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥२ ॥

हे देवताओ ! जिस पाप के कारण हम यज्ञ करने की इच्छा होने पर भी यज्ञ करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। आप यज्ञ के सत्य और परम सत्यरूप ब्रह्म के द्वारा हमें उस पाप से मुक्त करें ॥२ ॥

१६४५. मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥३ ॥

हे विश्वेदेवो ! हम घृताहुति द्वारा जो यज्ञकर्म करना चाहते हुए भी पापवश उसे नहीं कर पा रहे हैं, हे देवगणो ! आप हमें उस पाप से मुक्त करें ॥३ ॥

[११५ - पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६४६. यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥१ ॥

हे विश्वेदेवो !जाने-अनजाने हुए पापों से आप हमें बचाएँ। कृपा करके आप हमारे सब प्रियजनों को बचाएँ ॥

१६४७. यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम्।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥२ ॥

जाग्रत् अथवा स्वप्नावस्था में हमने अज्ञानवश जिन पापों को किया है, उनसे हमें उसी प्रकार मुक्त कर दें, जिस प्रकार काष्ठ के खूँटे से बँधे पशु के पैर को मुक्त करते हैं ॥२ ॥

१६४८. द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥३ ।

जिस प्रकार पशु बन्धनमुक्त होता है या स्नान के बाद मनुष्य मलादि से मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है या पवित्र करने के साधन छाननी आदि के द्वारा घृत पवित्र होता है, उसी प्रकार समस्त देवगण हमें पाप से मुक्त करें ॥३ ॥

[११६ - मधुमदन्न सूक्त]

[**ऋषि** - जाटिकायन । **देवता** - विवस्वान् । **छन्द** - जगती, २ त्रिष्टुप् ।]

१६४९. यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥१ ॥

कृषि कार्य करने वाले लोग भूमि जोतने सम्बन्धी जिन नियमों को क्रियान्वित करते रहे, उसी कृषि विद्या के द्वारा अन्नवान् हों । उस अन्न को हम वैवस्वत् के निमित्त हविरूप में अर्पित करते हैं । अब हमारा अन्न यज्ञ के योग्य एवं मधुर हो ॥१ ॥

१६५०. वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥२ ॥

वैवस्वत्देव अपने निमित्तप्रदान किये गये हविर्भाग को ग्रहण करें । हवि के मधुर भाग से प्रसन्न होकर वे हमें मधुर अन्न प्रदान करें ।माता-पिता का द्रोह करने से जो पाप हम अपराधियों को मिला है, वह शान्त हो जाए ॥२ ।

१६५१. यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥३ ॥

माता-पिता अथवा भाई के प्रति किये गये अपराध से प्राप्त यह दण्डरूप पाप शान्त हो एवं जिन पितरों से इसका सम्बन्ध है, उनका मन्यु (सुधारात्मक रोष) हमारे लिए हितप्रद सिद्ध हो ॥३ ॥

[११७ - आनृण्य सूक्त]

[**ऋषि** - कौशिक । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१६५२. अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥१ ॥

जिस ऋण को वापस करना चाहिए, उसे वापस न करने के कारण मैं ऋणी हुआ हूँ । इस बलवान् ऋण के कारण यमराज के वश में भ्रमण करूँगा । हे अग्निदेव ! आप ऋण के कारण होने वाले पारलौकिक पाशों से मुक्त करने के ज्ञाता हैं । अतएव आपकी कृपा से मैं ऋणरहित हो जाऊँ ॥१ ॥

१६५३. इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं१ यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि ॥२ ॥

इस लोक में रहते हुए मृत्यु के पूर्व ही मैं उस ऋण का भुगतान करता हूँ । हे अग्निदेव ! मैंने जो धान्य ऋण लेकर खाया है, वह यह है । मैं आपकी कृपा से उस ऋण से मुक्त होता हूँ ॥२ ॥

[मनुष्य पर कर्मफल का अनुशासन है। जो व्यक्ति स्वार्थवश अपने निजी सुख के लिए दूसरों का या समाज का अहित करते हैं, वे नियन्ता की दृष्टि में दण्ड के भागीदार बन जाते हैं। उस ऋण से मुक्त होने के लिए यज्ञादि परमार्थपरक कार्य करने होते हैं। इसी जन्म में उनकी पूर्ति कर देने से परलोक या अगले जन्म में दण्ड नहीं भोगना पड़ता है।]

१६५४. अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से हम इस लोक में ऋणमुक्त हों, परलोक में ऋणमुक्त हों तथा तृतीय लोक में ऋणमुक्त हों। देवयान और पितृयान मार्गों में एवं समस्त लोकों में हम उऋण होकर रहें ॥३ ॥

[११८ - आनृण्य सूक्त]

[**ऋषि** - कौशिक । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१६५५. यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः ॥१ ॥

हस्त-पादादि इन्द्रियों के द्वारा जो पाप हो गया है तथा इन्द्रिय-लिप्सा की पूर्ति के लिए जो ऋण लिया है, उसे तीक्ष्ण दृष्टि वाली 'उग्रंपश्या' तथा 'उग्रजिता' नामक दोनों अप्सराएँ ऋणदाता को भुगतान कर दें ॥१ ॥

[अप्सरा सम्बोधन यहाँ सत्प्रवृत्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। उग्रपश्या अर्थात् कठोर दृष्टि से आत्म समीक्षा की क्षमता तथा उग्रजिता अर्थात् उग्रतापूर्वक दोषों-अवरोधों को जीत लेने की सामर्थ्य हमें ऋण मुक्त बनाती है।]

१६५६. उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत्।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥२ ॥

हे उग्रपश्या और राष्ट्रभृत् (राष्ट्र का भरण-पोषण करने वाली) अप्सराओ ! जो पाप हमसे हो चुके हैं। जो पाप इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्त होने से हुए हैं। उनका आप इस प्रकार निवारण करें, जिससे वे हमें पीड़ित न करें। आप हमें ऋणमुक्त करें। जिससे यमलोक में ऋणदाता हमें पाश से कष्ट न दें ॥२ ॥

१६५७. यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥३ ॥

जिससे वस्त्र, सुवर्णादि के लिए ऋण ले रहा हूँ और जिसकी भार्या के पास याचना करने के लिए जाता हूँ; हे देवो ! वे हमसे (अनुचित) वचन न बोलें। हे देवपत्नियो ! हे अप्सराओ ! आप मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥

[११९ - पाशमोचन सूक्त]

[**ऋषि** - कौशिक । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१६५८. यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१ ॥

ऋण देने की इच्छा रहने पर एवं चुकता करने का वचन देने पर भी ऋण देने में असमर्थ रहा। समस्त प्राणियों के हितैषी एवं सबको बसाने वाले अधिपति हे अग्निदेव ! आप हमें इस दोष से बचाएँ एवं पुण्यलोक में हमें श्रेष्ठ गति प्रदान करें ॥१ ॥

१६५९. वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥२ ॥

लौकिक (समाज) ऋण एवं देवऋण से उऋण होने का संकल्प मैं वैश्वानर अग्निदेव को समर्पित करता हूँ, वे अग्निदेव सम्पूर्ण ऋणात्मक पाशों (बन्धनों) को खोलना जानते हैं । वे हमें बन्धनमुक्त करके परिपक्व (सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप) स्वर्ग प्राप्त कराएँ ॥२ ॥

१६६०. वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥३ ॥

सबको पवित्र करने वाले वैश्वानर अग्निदेव हमें पवित्र करें । मैं ऋण चुकाने की केवल प्रतिज्ञा बार-बार करता रहा हूँ । अज्ञानवश ऐहिक सुख की आशाएँ करता रहा हूँ और मन से उन्हीं की याचना करता रहा हूँ । ऐसे असत्य व्यवहार से जो पाप उत्पन्न हुए हों, वे सब दूर हों ॥३ ॥

[१२० - सुकृतलोक सूक्त]

[**ऋषि** - कौशिक । **देवता** - अन्तरिक्ष, पृथिवी, द्यौ, अग्नि । **छन्द** - जगती, २ पंक्ति, ३ त्रिष्टुप् ।]

१६६१. यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥१ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के प्राणियों के प्रति और माता-पिता के प्रति कष्टकारक व्यवहार के कारण हमसे जो पाप हो गये हैं, इन पापों से ये गार्हपत्य अग्निदेव हमारी रक्षा करें और हमें पुण्यलोक में श्रेष्ठ गति प्रदान करें ॥१ ॥

१६६२. भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥२ ॥

पृथ्वी माता हमारी जन्मदात्री है । यह देवमाता अदिति के समान पूज्य है । अन्तरिक्ष हमारे भाई और द्युलोक हमारे पिता के समान हैं । ये सब हमें पापों से बचाएँ एवं हमारा कल्याण करने वाले सिद्ध हों । हम निषिद्ध स्त्री के साथ पापयुक्त व्यवहार करके लोकभ्रष्ट न हों ॥२ ॥

१६६३. यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व१ः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥३ ॥

श्रेष्ठ हृदय वाले, यज्ञादि पुण्यकर्म करने वाले, अपने शारीरिक रोगों से मुक्त होकर उत्तम गति को प्राप्त करें । अंगों के विकार से मुक्त होकर सहज, सरल जीवनयापन करते हुए स्वर्गादिक श्रेष्ठ लोकों में रहते हुए अपने आत्मीय पितरों एवं पुत्रों को देखें ॥३ ॥

[१२१ - सुकृतलोकप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - कौशिक । **देवता** - अग्नि, ३ तारके । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३-४ अनुष्टुप् ।]

१६६४. विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥१ ॥

बन्धनों की अधिष्ठात्री हे निर्ऋति देवि ! आप वरुणदेव के उत्तम, मध्यम एवं अधम पाशों को तोड़ते हुए हमें मुक्त करें । दु:स्वप्न और पापों को दूर करके हमें स्वर्गलोक तक पहुँचाएँ ॥१ ॥

१६६५. यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥२ ॥

हे पुरुष ! जो तुम काष्ठस्तम्भ और रस्सी से बाँधे जाते हो । जो भूमि में बाँधे जाते हो और जो वाणी (वचनों) द्वारा बाँधे जाते हो, ऐसे समस्त बन्धनों से ये गार्हपत्य अग्निदेव मुक्त करके स्वर्गलोक तक पहुँचाएँ ॥२ ॥

१६६६. उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३ ॥

भगवती (ऐश्वर्ययुक्त) तथा विचृत (अंधकार नाशक) दो तारिकाएँ अथवा शक्तियाँ हमें मृत्यु से मुक्त करें, जिससे यह बद्ध पुरुष (जीव) बन्धन से मोक्ष को प्राप्त करे ॥३ ॥

१६६७. वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वाँ अनु क्षिय ॥४ ॥

(हे देव !) आप विविध प्रकार से प्रगति करके बन्धन में जकड़े आर्त पुरुष को बन्धनमुक्त करें । हे पुरुष ! तुम बन्धन से मुक्त होकर गर्भाशय से बाहर आए शिशु के समान स्वतन्त्र होकर सर्वत्र विचरण करो ॥४ ॥

[१२२ - तृतीयनाक सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु । **देवता** - विश्वकर्मा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।]

१६६८. एतं भागं परि ददामि विद्वन् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम ॥१ ॥

हे समस्त जगत् के रचयितादेव ! आप सर्वप्रथम प्रकट हुए हैं । हम आपकी महिमा को जानते हुए , इस पक्व हवि को अपनी रक्षा के लिए आपको अर्पित करते हैं । यज्ञीय प्रक्रिया के इस अविच्छिन्न सूत्र का अनुसरण करके हम वृद्धावस्था के पश्चात् भी पार हो जाएँगे-सद्गति पा जाएँगे ॥१ ॥

१६६९. ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥२ ॥

कई लोग इस फैले हुए (जीवन में स्थान पाने वाले) यज्ञीय सूत्रों का अनुसरण करके तर जाते हैं । जिनके आने (धारण किए जाने) से पितृ-ऋण चुक जाता है । बन्धुरहित व्यक्ति भी पैत्रिक धनादि का दान कर ऋण-मुक्त होते हैं और स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

१६७०. अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥३ ॥

हे दम्पति ! परलोक के हित को लक्ष्य में रखकर सत्कर्म प्रारम्भ करो, उसमें सतत लगे रहो । सत्कर्म के श्रेष्ठ फल को श्रद्धायुक्त आस्तिक जन ही प्राप्त करते हैं । तुम भी ब्राह्मण को देने वाला पक्वान्न और अग्निदेव को अर्पित किया जाने वाला हविरूप अन्न दान करके श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करो । ।३ ॥

१६७१. यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥४ ॥

हम यज्ञ को तप और मनोयोगपूर्वक करते हुए, देवों की ओर प्रगति करते हैं । हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से बुढ़ापे तक श्रेष्ठ कर्म करते हुए हम दुःख - शोकरहित स्वर्गधाम में पहुँचें एवं पुत्र-पौत्रादि को देखकर हर्ष युक्त हों ॥४ ॥

१६७२. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥५ ॥

शुद्ध-पवित्र यज्ञीय योषाओं (आहुतियों या विधियों) को मैं ब्राह्मण-ऋत्विजों के हाथों में पृथक्-पृथक् सौंपता हूँ। जिस कामना से मैं आप लोगों को अभिषिक्त (नियुक्त) करता हूँ, वह फल मुझे मरुद्गणों सहित इन्द्रदेव की कृपा से प्राप्त हो ॥५ ॥

[१२३ - सौमनस्य सूक्त]

[**ऋषि** - भृगु। **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा साम्नी अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा प्राजापत्या भुरिक् अनुष्टुप्।]

१६७३. एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥१ ॥

हे साथ रहने वाले देवताओ ! हम आपको निधि (हवि) का भाग अर्पित करते हैं, जिसे जातवेदा अग्निदेव आप तक पहुँचाते हैं। यह यजमान हवि अर्पण करने के बाद ही स्वर्गलोक में आएगा, आप उसे भूलना नहीं ॥१ ॥

१६७४. जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥२ ॥

हे साथ-साथ रहने वाले देवताओ ! परम व्योम-स्वर्गलोक में इस यजमान का श्रेष्ठ कर्मानुसार-स्थान सुनिश्चित कर दें। यह यजमान हवि अर्पित करके कुशलतापूर्वक वहाँ पहुँचेगा, तब इसे भूले बिना इष्टापूर्त का फल प्रदान करें ॥२ ॥

१६७५. देवाः पितरः पितरो देवाः। यो अस्मि सो अस्मि ॥३ ॥

जो पालन करते हैं, वे देव हैं । दैवी गुण एवं भावयुक्त पूजनीय ही हमारे पालनकर्त्ता हैं। मैं जो हूँ, वही हूँ ॥

[मैं देवों का, दिव्यात्माओं का अंश या वंशज हूँ, वही मेरा सहज स्वभाव है, मैं इस आस्था पर दृढ़ हूँ, ऐसा बोध होने पर ही साधक उच्चस्तरीय गति पाता है।]

१६७६. स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ॥४ ॥

मैं यज्ञ के लिए अन्न पकाता हूँ, हवि का दान एवं यज्ञ करता हूँ, ऐसे यज्ञों के फल से मैं पृथक् न होऊँ ॥४ ॥

१६७७. नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥५ ॥

हे राजा सोम ! हमारे अपराधों को क्षमा करके आप स्वर्गलोक में हमें सुख प्रदान करें। हे स्वामिन् ! आप हमारे कर्म फलों को जानकर प्रसन्न मन से हमें सुख प्रदान करें ॥५ ॥

[१२४ - निर्ऋत्यपस्तरण सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - दिव्य आपः। **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१६७८. दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥१ ॥

विशाल द्युलोक से दिव्य अप् (जल या तेज) युक्त रस की बूँदें हमारे शरीर पर गिरी हैं। हम इन्द्रियों सहित, दुग्ध के समान सारभूत अमृत से एवं छन्दों (मन्त्रों) से सम्पन्न होने वाले यज्ञों के पुण्यफल से युक्त हों ॥१ ॥

१६७९. यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो३ यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥२ ॥

वृक्ष के अग्रभाग से गिरी वर्षा की जल बूँद, वृक्ष के फल के समान ही है। अन्तरिक्ष से गिरा जल बिन्दु निर्दोष वायु फल के समान है। शरीर अथवा पहिने वस्त्रों पर उसका स्पर्श हुआ है, वह प्रक्षालनार्थ प्रयुक्त जल के समान निर्ऋति देव (पापों को) को हम से दूर करें ॥२ ॥

१६८०. अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥३ ॥

(यह अमृत वर्षा) उबटन, सुगंधित द्रव्य, चन्दन, आदि सुवर्ण धारण तथा वर्चस् की तरह समृद्धि रूप है। यह पवित्र करने वाला है। इस प्रकार पवित्रता का आच्छादन होने के कारण पापदेवता और शत्रु हमसे दूर रहें ॥३ ॥

[१२५ - वीर-रथ सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - वनस्पति । **छन्द** - त्रिष्टुप्, २ जगती ।]

१६८१. वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥१ ॥

वनस्पति (काष्ठ) निर्मित हे रथ ! आप हमारे मित्र होकर मजबूत अंग तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से सम्पन्न होकर संकटों से हमें पार लगाएँ। आप श्रेष्ठ कर्म द्वारा बँधे हुए हैं, इसलिए वीरतापूर्वक कार्य करें। हे रथ ! आपका सवार जीतने योग्य समस्त वैभव को जीतने में समर्थ हो ॥१ ॥

१६८२. दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२ ॥

हे अध्वर्यो ! पृथ्वी और सूर्यलोक से ग्रहण किये गये तेज, वनस्पतियों से प्राप्त बल तथा जल से प्राप्त ओज युक्त रस को नियोजित करें। सूर्य किरणों से आलोकित वज्र के समान सुदृढ़ रथ को यजन कार्य में समर्पित करें ॥

१६८३. इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥३ ॥

हे दिव्य रथ ! आप इन्द्रदेव के वज्र तथा मरुतों की सैन्यशक्ति के समान सुदृढ़ एवं मित्रदेव के गर्भरूप आत्मा तथा वरुणदेव की नाभि के समान हैं। हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को प्राप्त कर तृप्त हों ॥३ ॥

[१२६ - दुन्दुभि सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - दुन्दुभि । **छन्द** -भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ पुरोबृहती विराड्गर्भा त्रिष्टुप् ।]

१६८४. उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१ ॥

हे दुंदुभे ! आप अपनी ध्वनि से भू तथा द्युलोक को गुंजायमान करें, जिससे जंगम तथा स्थावर जगत् के प्राणी आपको जानें। आप इन्द्र तथा दूसरे देवगणों से प्रेम करने वाले हैं, अत: हमारे रिपुओं को हमसे दूर हटाएँ ॥१

१६८५. आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥२ ॥

हे दुंदुभे ! आपकी आवाज को सुनकर शत्रु-सैनिक रोने लगें । आप हमें तेजस् प्रदान करके हमारे पापों को नष्ट करें । आप इन्द्रदेव की मुष्टि के समान सुदृढ़ होकर हमें मजबूत करें तथा हमारी सेना के समीप स्थित दुष्ट शत्रुओं का पूर्णरूपेण विनाश करें ॥२ ॥

१६८६. प्रामूं जयाभी३मे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! उद्घोष करके आप दुष्टों की सेनाओं को भली प्रकार दूर भगाएँ । हमारी सेना विजय उद्घोष करती हुई लौटे । हमारे द्रुतगामी अश्वों के साथ वीर रथारोही घूमते हैं, वे सब विजयश्री का वरण करें ॥३ ॥

[१२७ - यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - भृग्वङ्गिरा । **देवता** - वनस्पति, यक्ष्मनाशन । **छन्द** - अनुष्टुप् , ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

१६८७.विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन॥

हे ओषधे ! तुम कफ, क्षय, फोड़े-फुंसी, श्वास-खाँसी में रक्त गिरना आदि रोगों को नष्ट करो । तुम त्वचा के विकारों एवं मांस में उत्पन्न विकारों को नष्ट करो ॥१ ॥

१६८८. यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥२ ॥

हे कास श्वासयुक्त बलास रोग ! काँख में उत्पन्न दो गिल्टियाँ तुम्हारे कारण हैं । मैं उसकी ओषधि को जानता हूँ । चीपुद्र (ओषधि विशेष जो आजकल ज्ञात नहीं) उसे समूल नष्ट करती है ॥२ ॥

१६८९. यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥३ ॥

नाड़ियों के मुख से अनेक प्रकार से फैलकर जो विसर्पक रोग हाथ, पैर, आँख, कान आदि तक पहुँच जाता है, उसे तथा विद्रध नामक व्रण को, हृदय रोग को, गुप्त यक्ष्मा रोग को तथा निम्नगामी रोग को मैं ओषधियों द्वारा वापस लौटा (प्रभावहीन कर) देता हूँ ॥३ ॥

[१२८ - राजा सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वाङ्गिरा । **देवता** - सोम, शकधूम । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६९०. शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत ।
भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥१ ॥

नक्षत्रों ने शकधूम (अग्नि विशेष) को राजा बनाया ; क्योंकि वे चाहते थे कि यह नक्षत्र मण्डल का राज्य उन्हें शुभ दिवस में प्राप्त हो ॥१ ॥

१६९१. भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥२ ॥

प्रात:काल, मध्याह्नकाल एवं सायंकाल हमारे लिए पुण्यदायक हो तथा रात्रि का समय भी हमारे लिए शुभ हो ॥२ ॥

१६९२. अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ॥३ ॥

हे नक्षत्र मण्डल के राजा शकधूम ! आप दिन और रात्रि, नक्षत्रों, सूर्य एवं चन्द्र को हमारे लिए शुभप्रद करें ॥३ ॥

१६९३. यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥४ ॥

हे शकधूम ! आपने सायंकाल, रात्रि एवं दिन आदि 'काल' हमारे लिए पुण्यप्रद किये हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥४ ॥

[१२९ - भगप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - भग । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१६९४. भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः ॥

शांशप वृक्ष के (अथवा शान्तिपूर्ण) ऐश्वर्य के समान आनन्ददायी इन्द्रदेव के द्वारा मैं अपने आपको भाग्यशाली बनाता हूँ । हमारे शत्रु हमसे दूर रहें ॥१ ॥

१६९५. येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ॥२॥

हे ओषधे ! तुम भग देवता के तेज के साथ हमें संयुक्त करके सौभाग्यशाली बनाओ । हमारे शत्रु हमसे दूर रहें ॥२ ॥

१६९६. यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः । तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ।

(हे देव !) जो अन्न और जो गतिशील ऐश्वर्य वृक्षों (ओषधि) में स्थित हैं, उसके प्रभाव से आप हमें सौभाग्यशाली बनाएँ । हमारे शत्रु हमसे विमुख होकर दूर चले जाएँ ॥३ ॥

[१३० - स्मर सूक्त]

[**ऋषि** - अथर्वा । **देवता** - स्मर । **छन्द** - अनुष्टुप्, १ विराट् पुरस्ताद् बृहती ।]

१६९७. रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१ ॥

यह काम (कामासक्त स्वभाव) रथ (मनोरथ) से जीतने वाली अप्सराओं एवं रथ द्वारा जीती गई अप्सराओं का है । हे देवताओ ! आप इस 'काम' को हमसे दूर करें । हमें पीड़ित न कर सकने के कारण वह शोक करे ॥१ ॥

१६९८. असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२ ॥

यह मुझे स्मरण करे । हमारा प्रिय हमें स्मरण करे । हे देवताओ ! आप इस 'काम' को हमसे दूर करें, जिससे यह हमें पीड़ित न कर पाने से शोक करे ॥२ ॥

१६९९. यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥३ ॥

यह हमारा स्मरण करे, परन्तु हमें इसका कभी ध्यान भी न आए। हे देवताओ ! आप इस 'काम' को हमसे दूर करें। यह हमारे लिए शोक करे ॥३ ॥

१७००. उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय। अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥४ ॥

हे मरुतो ! उन्मत्त करो। हे अन्तरिक्ष ! उन्मत्त करो। हे अग्निदेव ! आप उन्मत्त करें। वह काम (हमें उन्मत्त न कर पाने के कारण) शोक करे ॥३ ॥

[१३१ - स्मर सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा। देवता - स्मर। छन्द - अनुष्टुप्।]

१७०१. नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३ नि तिरामि ते।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥१ ॥

जो तेरी व्यथाएँ सिर से एवं पैर से आई हैं, उन्हें मैं दूर करता हूँ। हे देवताओ ! आप काम को हमसे दूर करें। वह मुझे प्रभावित न कर सके ॥१ ॥

१७०२. अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥२ ॥

हे अनुमते ! आप इस (प्रार्थना) को अनुकूल मानें। हे आकूते ! आप मेरी इन विनम्रता से प्रसन्न हों। हे देवताओ ! आप कामविकार को हमसे दूर करें। वह मुझे प्रभावित न कर सके ॥२ ॥

१७०३. यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम्।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥३ ॥

जो बारह कोस अथवा बीस कोस (१कोस = २मील) अथवा इससे भी आगे घोड़े की सवारी से पहुँच सकने योग्य दूरी से यहाँ वापस आते हैं। हे देव ! ऐसे आप हमारे पुत्रों के पिता हैं ॥३ ॥

[१३२ - स्मर सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा। देवता - स्मर। छन्द - १ त्रिपदा अनुष्टुप्, २,४ त्रिपदा विराट् महाबृहती, ३ भुरिक् अनुष्टुप्, ५ त्रिपदा महाबृहती।]

१७०४. यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥१ ॥

समस्त देवताओं ने जगत् के प्राणियों को काम - पीड़ित करने के लिए जल से सींचा था। मैं वरुणदेव की धारणा शक्ति के द्वारा कामविकार को संतप्त करता हूँ ॥१ ॥

१७०५. यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥२ ॥

विश्वेदेवा ने जिस काम को जल में अभिषिक्त किया, मैं वरुण की शक्ति के द्वारा काम को संतप्त करता हूँ ॥२॥

१७०६. यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥३ ॥

इन्द्राणी ने काम को मानसिक पीड़ा देने के लिए जल में अभिषिक्त किया । हे योषित् ! आपके कल्याण के लिए वरुणदेव की शक्ति से मैं उसे शान्त करता हूँ ॥३ ॥

१७०७. यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥४ ॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव द्वारा जल में अभिषिक्त काम को हम वरुणदेव की धारणा शक्ति से संतप्त करते हैं ॥

१७०८. यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥५ ॥

मित्रावरुणदेव ने मनोवेग रूप काम को जल से अभिषिक्त किया था, उस काम को मैं संतप्त करता हूँ ॥५ ॥

[१३३ - मेखलाबन्धन सूक्त]

[**ऋषि -** अगस्त्य । **देवता -** मेखला । **छन्द -** १ भुरिक् त्रिष्टुप्, २,५ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।]

१७०९. य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो वि मुञ्चात् ॥१ ॥

देवताओं ने इस मेखला को बाँधा है, जो हमें सदैव कर्म करने के लिए तत्पर रखती है तथा कर्म में लगाती है । हम जिन देवताओं के अनुशासन में रहते हुए कार्य-व्यवहार कर रहे हैं । वे हमें सफल होने का आशीर्वाद प्रदान करें और बन्धनों से मुक्त करें ॥१ ॥

१७१०. आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम्।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥२ ॥

हे आहुतियों से संस्कारित मेखले ! तुम ऋषियों की आयुध हो । तुम किसी व्रत के पूर्व बाँधी जाती हो । तुम शत्रुओं के योद्धा को मारने वाली हो ॥२ ॥

१७११. मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥३ ॥

मैं वैवस्वत् यम का कर्म करने वाला बनता हूँ ; क्योंकि मैं ब्रह्मचर्य व्रत (तप,दम,शम) एवं विशेष दीक्षा नियमों का पालन करने वाला हूँ । व्रत-भंग करने वाले शत्रुओं को मैं अपने अभिचार कर्म द्वारा नष्ट करूँगा । इस मेखला बन्धन से मैं शत्रुओं की आक्रामक गति को रोकता हूँ ॥३ ॥

१७१२. श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥४ ॥

यह मेखला (मर्यादा) श्रद्धा की पुत्री एवं तप: शक्ति से उत्पन्न है । यह पदार्थों के निर्माता ऋषियों की बहिन है । हे मेखले ! तुम हमें उत्तम भविष्य निर्माण के लिए सुमति एवं धारण-शक्तिसम्पन्न सद्बुद्धि प्रदान करो तथा तप: शक्ति एवं आत्मबल सम्पन्न बनाओ ॥४ ॥

१७१३. यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥५ ॥

हे मेखले ! तुम्हें भूतों के निर्माता आदि ऋषियों ने बाँधा था । अतः तुम अभिचार दोष का नाश कर दीर्घायु के लिए मुझसे बँधो ॥५ ॥

[१३४ - शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - वज्र । **छन्द** - परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिपदा गायत्री, ३ अनुष्टुप् ।]

१७१४. अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१ ॥

इन्द्रदेव के वज्र के समान यह दण्ड भी शत्रुओं को रोकने एवं उनके राज्य को नष्ट करने में समर्थ हो । जिस प्रकार इन्द्रदेव ने वृत्रासुर के गले को एवं भुजाओं को काटा था, वैसे ही यह दण्ड शत्रु को नष्ट करे ॥१ ॥

१७१५. अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् ।
वज्रेणावहतः शयाम् ॥२ ॥

(वह शत्रु) उत्कृष्टों से नीचे तथा और भी नीचे होकर पृथ्वी में छिपकर रहे या गड़ जाए, पुनः ऊपर न उठे ॥२ ॥

१७१६. यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥३ ॥

हे वज्र ! तुम शत्रुओं को खोजकर मारो एवं उन्हें सीमान्त स्थान पर गिराकर नष्ट कर डालो ॥३ ॥

[१३५ - बलप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि** - शुक्र । **देवता** - वज्र । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

१७१७. यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे ।
स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥१ ॥

मैं पौष्टिक अन्न को खाता हूँ, ताकि मेरा बल बढ़े । मैं वज्र धारण करता हूँ और शत्रु के कंधों को उसी प्रकार काटता हूँ, जिस प्रकार इन्द्रदेव वृत्रासुर के कंधों को काटकर अलग करते हैं ॥१ ॥

१७१८. यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥२ ॥

जिस प्रकार समुद्र, नदी को पीकर अपने में समा लेता है । उसी प्रकार मैं भी जो पीता हूँ, सो ठीक ही पीता हूँ । मैं पहले शत्रु के प्राण, अपान आदि के रस को पीकर शत्रु को ही पी जाता हूँ ॥२ ॥

१७१९. यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥३ ॥

जो मैं निगलता हूँ, उसे ठीक ही निगलता हूँ । शत्रु के प्राण, अपान, चक्षुरूप आदि रस को निगलता हूँ, फिर बाद में शत्रु को ही निगल जाता हूँ ॥३ ॥

[१३६ - केशदृंहण सूक्त]

[ऋषि- वीतहव्य । देवता-नितत्नी वनस्पति । छन्द-अनुष्टुप्, २ एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।]

१७२०. देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥१ ॥

हे ओषधे ! तुम पृथ्वी पर उत्पन्न हुई हो । तिरछी होकर फैलती हुई हे ओषधि देवि ! हम आपको अपने केशों को सुदृढ़ करने केलिए , खोदकर संगृहीत करते हैं ॥१ ॥

१७२१. दृंह प्रत्नाञ्जनयाजाताञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥२ ॥

हे दिव्यौषधे !तुम केशों को लम्बे, सुदृढ़ करो एवं जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उन केशों को उत्पन्न करो ॥

१७२२.यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते । इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा॥

तुम्हारे जो केश गिर जाते हैं, जो मूल से टूट जाते हैं, उस दोष को ओषधि रस से भिगोकर दूर करते हैं ॥३ ॥

[१३७ - केशवर्धन सूक्त]

[ऋषि- वीतहव्य । देवता-नितत्नी वनस्पति । छन्द-अनुष्टुप् ।]

१७२३. यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ।

जिन महर्षि जमदग्नि ने अपनी कन्या के केशों की वृद्धि के लिए , जिस ओषधि को खोदा, उसे वीतहव्य नाम वाले महर्षि, कृष्ण केश नामक मुनि के घर से लाए थे ॥१ ॥

१७२४. अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥२ ॥

हे केश बढ़ाने की इच्छा वाले ! तुम्हारे केश पहले तो अँगुलियों द्वारा नापे जा सकते थे, वे अब 'व्याम' (दोनों हाथ फैलाने पर जो लम्बाई होती है) जितने लम्बे हो गये हैं । सिर के चारों ओर के काले बाल 'नड' नाम वाले तृणों के समान शीघ्रता से बढ़ें ॥२ ॥

१७२५. दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडा इव वर्धन्ता शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥३ ॥

हे ओषधे ! तुम केशों के अग्रभाग को लम्बा, मध्य भाग को स्थिर एवं मूल भाग को सुदृढ़ करो । 'नड' (नरकट) जैसे नदी के किनारे पर शीघ्रता से बढ़ते हैं, वैसे ही सिर के चारों ओर काले केश बढ़ें ॥३ ॥

[१३८ - क्लीबत्व सूक्त]

[ऋषि - अथर्वा । देवता- नितत्नी वनस्पति । छन्द-अनुष्टुप्, ३ पथ्यापंक्ति ।]

१७२६. त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे । इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥

हे ओषधे ! आप ओषधियों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इस समय आप हमारे द्वेष - पुरुष को क्लीब स्त्री के समान बनाएँ ॥१ ॥

१७२७. क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥२ ॥

हे ओषधे ! आप हमारे शत्रुओं को क्लीब और स्त्री के समान करें। उनके पुरुषत्व के प्रतीक अंग विशेष को इन्द्रदेव वज्र से चूर्ण कर दें एवं सिर पर लम्बे केश वाला बनाएँ ॥२ ॥

१७२८. क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम्।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥३ ॥

हे शत्रु हमने तुम्हें इस कर्म से क्लीब एवं नपुंसक कर दिया है। हम ऐसे नपुंसक एवं वीर्य शून्य शत्रु के लम्बे केशों में कुरीर एवं कुम्ब (जाल और आभूषण) धारण कराते हैं ॥३ ॥

१७२९. ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम्।
ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ॥४ ॥

देवताओं द्वारा बनाई गई अण्डकोषों के अधीन जो दोनों वीर्य-वाहिका नलिकाएँ हैं, उनको दण्ड के द्वारा हम भंग करते हैं ॥४ ॥

१७३०. यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना।
एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ॥५ ॥

जिस प्रकार स्त्रियाँ नरकट आदि को पत्थरों से कूटती हैं, वैसे ही हम तेरे अण्डकोषों के प्रभाव को भंग करते हैं ॥५ ॥

[१३९ - सौभाग्यवर्धन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा। **देवता-**वनस्पति। **छन्द-**त्र्यवसाना षट्पदा विराड् जगती, २-५ अनुष्टुप्।]

१७३१. न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम। शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥१ ॥

हे ओषधे ! सौभाग्य को बढ़ाने वाली होकर आप प्रकट होकर हमें सौभाग्यशाली बनाएँ। आपकी सौ शाखाएँ तथा तैंतीस उप शाखाएँ हैं। उस सहस्रपर्णी के द्वारा हम तुम्हारे हृदय को संतप्त करते हैं ॥१ ॥

१७३२. शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम्।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथा शुष्कास्या चर ॥२ ॥

(हे कामिनी !) तुम्हारा हृदय हमारे विषय में चिन्तन करके सूख जाए। हमें काम में शुष्क करके तुम्हारा मुख शुष्क हो तथा तुम सूखे मुख वाली होकर चलो ॥२ ॥

१७३३. संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ॥३ ॥

हे ओषधे ! आप सौभाग्यदायिनी एवं पीतवर्णी हैं। आप सेवनीय और उत्साहवर्द्धक हैं। आप हम दोनों को आकर्षित करके एक दूसरे के अनुकूल करके हमारे हृदयों को अभिन्न कर दें ॥३ ॥

१७३४. यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम्।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥४ ॥

(हे कामिनी !) जिस प्रकार तृषा से पीड़ित व्यक्ति का मुख सूखता है, उसी प्रकार मुझे प्राप्त करने की कामना से, वियोग ताप से तप्त हुई, सूखे मुँह वाली होकर चलो ॥४ ॥

१७३५. यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥५ ॥

जिस प्रकार नेवला साँप को टुकड़े-टुकड़े काटकर पुन: जोड़ देता है । उसी प्रकार हे वीर्यवती ओषधे ! आप वियोगी स्त्री-पुरुष को परस्पर पुन: मिला दें ॥५ ॥

[१४०- सुमङ्गलदन्त सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**-ब्रह्मणस्पति या दन्त समूह । **छन्द**-उरोबृहती, २ उपरिष्टात् ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ३ आस्तारपंक्ति ।]

१७३६. यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥१ ॥

व्याघ्र के समान हिंसक, बढ़े हुए दो दाँत माता और पिता को कष्ट देने वाले हैं । हे मन्त्राधिपति देव ! हे अग्निदेव ! आप उन्हें माता-पिता के लिए सुख प्रदान करने वाला बनाएँ ॥१ ॥

१७३७. व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥२ ॥

हे दाँतो ! तुम चावल , जौ, उड़द एवं तिल खाओ । यह तुम्हारा भाग तुम्हारी तृप्ति के निमित्त प्रस्तुत है । तुम तृप्त होकर माता-पिता को कष्ट देने वाले न रहो ॥२ ॥

१७३८. उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्व१ः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥३ ॥

ये दोनों दाँत मित्ररूप हों, सुख देने वाले हों । इस बालक के शारीरिक कष्ट को देखकर माता-पिता को जो कष्ट होता है, उस कष्ट से माता-पिता मुक्त हों ॥३ ॥

[१४१ - गोकर्णलक्ष्यकरण सूक्त]

[**ऋषि**- विश्वामित्र । **देवता**-अश्विनीकुमार । **छन्द**-अनुष्टुप् ।]

१७३९. वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१ ॥

वायुदेव इन गौओं को एकत्रित करें । त्वष्टादेव इन्हें पुष्ट करें । इन्द्रदेव इन्हें स्नेहयुक्त वचन कहें । रुद्रदेव इनकी चिकित्सा करें और इन्हें बढ़ाएँ ॥१ ॥

१७४०. लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२ ॥

हे गौओं के पालक ! लाल वर्ण वाले ताँबे के शस्त्र द्वारा जोड़ी (मिथुन) का चिह्न अंकित करो । अश्विनीकुमार वैसा ही चिह्न बनाएँ , जो सन्तति के साथ अति हितकारी हो ॥२ ॥

१७४१. यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३ ॥

जिस प्रकार देवताओं, असुरों एवं मानवों द्वारा शुभ चिह्न अंकित किए जाते हैं। हे अश्विनीकुमारो ! आप भी अनेक प्रकार के पुष्टिकारक शुभ चिह्न अंकित करें ॥३ ॥

[१४२ - अन्नसमृद्धि सूक्त]

[ऋषि- विश्वामित्र। देवता-वायु। छन्द-अनुष्टुप्।]

१७४२. उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव।
मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् ॥१ ॥

हे यव ! आप उगकर ऊँचे हों। अनेक प्रकार से बढ़ें। अपने रसवीर्य रूप-तेजस् से हमारे भण्डारण पात्रों को भर दें। आकाश से उपलात्मक वज्र तुम्हें नष्ट न करे ॥१ ॥

१७४३. आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥२ ॥

हमारे वचनों को सुनने वाले 'यवदेव' आकाश के समान ऊँचे तथा समुद्र के समान अक्षय हों। हम इस भूमि में (वृद्धि पाने के लिए) आपसे प्रार्थना करते हैं ॥२ ॥

१७४४. अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥३ ॥

हे यव ! आपके पास बैठने वाले कर्मकर्त्ता क्षयरहित हों। धान्य-राशियाँ अक्षय रहें। इन्हें घर लाने वाले एवं उपयोग करने वाले अक्षय सौभाग्य वाले हों ॥३ ॥

॥इति षष्ठं काण्डं समाप्तम्॥

।। अथ सप्तम काण्डम् ।।

[१ - आत्मा सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** आत्मा । **छन्द-** त्रिष्टुप्, २ विराट् जगती ।]

इस सूक्त के ऋषि "अथर्वा ब्रह्मवर्चस कामः" अर्थात् अविचल भाव से ब्रह्मवर्चस की कामना करने वाले हैं । देवता है 'आत्मा' । इस आधार पर इस सूक्त में ब्रह्मवर्चस की साधना करते हुए आत्मतत्त्व का बोध करने के सूत्र उद्घाटित किये गये प्रतीत होते हैं-

१७४५. धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ।।१ ।।

जो (साधक) अपने मन एवं धी (बुद्धि) की सामर्थ्य से वाणी के मूल उत्पत्ति स्थान तक पहुँचते हैं और ऋत-सत्य वचन ही बोलते हैं, जो तीसरे (चित्त) के द्वारा ब्रह्म से संयुक्त होकर वृद्धि पाते हैं और चतुर्थ (अहंकार) द्वारा (परमात्मसत्ता के) धेनु (धारक सामर्थ्य वाले) विशेषता पर आस्था रखते हैं (वे ही परम लक्ष्य पाते हैं ।) ।।१ ।।

[अन्तःकरण चतुष्टय के चार विभाग हैं- मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार । साधक पहले दो- मन एवं बुद्धि के संयोग से वाणी के मूल उत्पत्ति स्थान तक पहुँचकर ऋत भाषण करें । पाणिनीय शिक्षा में वाणी की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि आत्मा बुद्धि के संयोग से अर्थ विशेष का अनुसंधान करती है और उसे व्यक्त करने के लिए मन को प्रेरित करती है । मन शरीरस्थ अग्नि को और अग्नि वायु को गति देती है, तब वायु के संघात से स्वर की उत्पत्ति होती है । इस आधार पर वाणी के मूल तक पहुँचने से साधक आत्मतत्त्व का बोध कर लेता है । तृतीय करण चित्त है, जिसमें संस्कार रहते हैं । चित्त को ब्रह्म के साथ संयुक्त करके बढ़ाएँ । चौथे अहंकार 'स्व' के बोध से आत्मा तथा ब्रह्म की 'धेनु' कामधेनु- सामर्थ्य की अवधारणा करें; ऐसा ऋषि-निर्देश है । ऐसा करने वाले को क्या लाभ होते हैं ? इसे अगले मन्त्र में स्पष्ट किया गया है ।]

१७४६. स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्व१ः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् ।।२ ।।

वह (प्रथम मन्त्र के अनुसार साधना करने वाला साधक) ही (वास्तव में) उत्पन्न हुआ कहा जाता है । वह पुत्र (जीव) अपने माता-पिता (ब्रह्म एवं प्रकृति) को जान लेता है । वह पुनः- पुनः दान देने वाला (अक्षय दिव्य सम्पदा का अधिकारी) हो जाता है । वह अन्तरिक्ष एवं द्युलोक को अपने अधीन कर लेता है; वह विश्वरूप हो जाता है और सर्वत्र संव्याप्त हो जाता है ।।२ ।।

[२ - आत्मा सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा ।**देवता-** आत्मा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१७४७. अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ।।१ ।।

जो (साधक) अविचल पिता (परमात्मा) देवों से सम्बन्ध रखने वाले माता के गर्भ तथा चिर युवा पिता के उत्पादक तेज को तथा इनके संयोग से चलने वाले इस (विश्वचक्र रूप) यज्ञ को मनः शक्ति से देखता (जानता) है; वह यहाँ बोले और हमें उसके बारे में उपदेश दे ।।१ ।।

[३ - आत्मा सूक्त]

[ऋषि-अथर्वा । देवता-आत्मा । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१७४८. अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥१ ॥

वह परमात्मा इस (विश्व व्यवस्था के अनुसार) विविध श्रेष्ठ कर्मों को उत्पन्न करता है । वह तेजस्वी मधुरता को धारण करने वाला, वरणीय (प्रभु) विस्तृत मार्ग पर आगे बढ़ाता हुआ अपने (सूक्ष्म) शरीर से (प्राणी) साधक के शरीर को प्रेरित करता है ॥१ ॥

[४ - विश्वप्राण सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- वायु । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१७४९. एकया च दशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥१ ॥

उत्तम प्रकार से जिनका आवाहन किया जाता है । वे सर्वप्रेरक प्रजापति तथा वायुदेव एक और दस से, दो और बीस से तथा तीन और तीस शक्तियों से विशेष प्रकार से युक्त होकर यज्ञ में पधारें और मनोकामना पूर्ण करें तथा उन शक्तियों को हमारे कल्याण के लिए मुक्त करें ॥१ ॥

[५ - आत्मा सूक्त]

[ऋषि अथर्वा । देवता- आत्मा । छन्द-त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति, ४ अनुष्टुप् ।]

१७५०. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१ ॥

जो पूर्व में यज्ञ द्वारा यज्ञपुरुष का यजन (पूजन) करके देवत्व को प्राप्त हुए हैं; वे इस महत्त्वपूर्ण श्रेष्ठ कर्म को सम्पन्न करके, उस सुखपूर्ण स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं , जहाँ पहले से ही साधन- सम्पन्न देवता रहते हैं ॥१ ॥

१७५१. यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥२ ॥

जो यज्ञ विश्वात्मारूप से प्रकट होकर सर्वत्र कारणरूप से व्याप्त हुआ, वह विशिष्ट ज्ञान का साधन बना । फिर वही वृद्धि को प्राप्त होकर , देवगणों के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हुआ है, ऐसा यज्ञ हमें धन प्राप्त कराए ॥२ ॥

१७५२. यद् देवा देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥३ ॥

श्रेष्ठ कर्म से प्राप्त देवत्वधारी याजक , हविरूप अमर मन से अमर देवों का यजन करते हैं । इस प्रकार परमाकाश में उदित परमात्मारूप सूर्य के सतत प्रकाश को प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

१७५३.यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे।

देवताओं ने पुरुष (आत्मा) रूपी हवि से जो यज्ञ किया है । अन्य विशिष्ट हवि द्वारा किया गया यज्ञ क्या इस यज्ञ से महान् हो सकता है ? ॥४ ॥

१७५४. मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥५ ॥

विवेकरहित यजमान, श्वान और गौ आदि पशुओं के अवयवों के द्वारा यजन करता है, तो यह अकर्म मूर्खतापूर्ण और निन्दनीय है । जो मन के द्वारा यज्ञ की महान् प्रक्रिया को जानते हैं, ऐसे आत्म-यज्ञ को जानने वाले परमज्ञानी महापुरुष ही परमात्मा के स्वरूप को बतलाएँ ॥५ ॥

[६ - अदिति सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता**-अदिति । **छन्द**-त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१७५५. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१ ॥

यह अदिति ही स्वर्ग और अन्तरिक्ष है । यही माता- पिता है और यही पुत्र है । समस्त देव एवं पंचजन भी यही अदिति है; जो उत्पन्न हुए हैं और उत्पन्न होने वाले हैं, वे भी अदिति ही हैं ॥१ ॥

[अदिति का अर्थ है- अखण्डित । ब्रह्माण्डगत अखण्ड शक्ति प्रवाह ही अदिति है । उसी से सब भूतों की उत्पत्ति होती रहती है ।]

१७५६. महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥२ ॥

उत्तम कर्म करने वालों का हित करने वाली, सत्य की रक्षक, अनेकानेक क्षात्र तेज दिखाने वाली, अजर, विशाल, शुभकारी, सुख देने वाली, योग-क्षेम चलाने वाली तथा अन्न देने वाली माता अदिति का हम रक्षा के लिए आवाहन करते हैं ॥२ ॥

[७ - आदित्यगण सूक्त (६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता**-अदिति । **छन्द**-विराट् जगती ।]

१७५७. सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१ ॥

उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाली , अहिंसक, प्रकाशयुक्त, उत्तम सुख देने वाली, उत्तम मार्ग पर कुशलतापूर्वक चलाने वाली, पृथिवीमाता की शरण में हम जाते हैं । ये सुदृढ़ पतवार एवं अछिद्र नौका के समान तारने वाली हैं ।

१७५८. वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्व१न्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥२ ॥

अन्न की उत्पत्ति करने के लिए अन्न देने वाली महान् माता अदिति या मातृभूमि का हम यशोगान करते हैं । जिसके ऊपर यह विशाल अन्तरिक्ष है, वह पृथिवी माता हमको त्रिगुणित सुख प्रदान करे ॥२ ॥

[८ - आदित्यगण सूक्त (७)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता**-अदिति । **छन्द**-आर्षी जगती ।]

१७५९. दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन ॥१ ॥

जो असुर समुद्र के मध्य में अति गहरे स्थान में रहते हैं, उन्हें वहाँ से हटाकर, मातृभूमि की स्वाधीनता चाहने वाले देवगणों को उनके स्थान पर स्थापित करते हैं। ये देवगण योग्य हैं एवं इनकी वहाँ आवश्यकता है ॥१ ॥

[९ - शत्रुनाशन सूक्त (८)]

[**ऋषि**- उपरिबभ्रव । **देवता**-बृहस्पति । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१७६०. भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥१ ॥

हे मनुष्य ! तुम सुख को गौण एवं परम कल्याण को प्रधान मानने वाले मार्ग का अवलम्बन करो। इस देवमार्ग के मार्गदर्शक बृहस्पति (देवगुरु) के समान ज्ञानी हों। इस पृथ्वी पर श्रेष्ठ वीर पुरुष उत्पन्न हों, जिससे शत्रु दूर रहें अर्थात् यहाँ शान्ति रहे ॥१ ॥

[१० - स्वस्तिदा पूषा सूक्त (९)]

[**ऋषि**- उपरिबभ्रव । **देवता**- पूषा । **छन्द**-त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदार्षी गायत्री, ४ अनुष्टुप् ।]

१७६१. प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥१ ॥

पूषा देवता, द्युलोक के मार्ग में अन्तरिक्ष के मार्ग में तथा पृथिवी के मार्ग में प्रकट होते हैं। ये देव दोनों प्रिय स्थानों में प्राणियों के कर्म के साक्षीरूप होकर विचरते हैं ॥१ ॥

१७६२. पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥२ ॥

ये पोषणकर्त्ता देव, सब दिशाओं को यथावत् जानते हैं। वे देव हम सबको उत्तम निर्भयता के मार्ग से ले जाते हैं। कल्याण करने वाले, तेजस्वी, बलवान्, वीर, कभी प्रमाद न करने वाले देव हमारा मार्गदर्शन करते हुए हम सबको उन्नति के मार्ग पर ले चलें ॥२ ॥

१७६३. पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥३ ॥

हे देव पूषन् ! हम आपके व्रतानुष्ठान में रहने से कभी नष्ट न हों। हम आपका व्रत धारण कर आपकी स्तुति करते हुए सदैव धन, पुत्र, मित्र आदि से सम्पन्न रहें ॥३ ॥

१७६४. परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥४ ॥

हे पोषणकर्त्ता पूषादेव ! आप अपना दाहिना हाथ (उसका सहारा या अभयदान) हमें प्रदान करें। हमारे जो साधनादि नष्ट हो गये हैं, हम उन्हें पुनः प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। आपकी कृपा से वे हमें प्राप्त हों ॥४ ॥

[११ - सरस्वती सूक्त (१०)]

[**ऋषि**- शौनक । **देवता**- सरस्वती । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१७६५. यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥१ ॥

हे सरस्वती देवि ! आपका दिव्य ज्ञानरूपी पय शान्ति देने वाला, सुख देने वाला, मन को पवित्र करने वाला, पुष्टिदाता एवं प्रार्थनीय है। उस दिव्य पय को हमें भी प्रदान करें ॥१ ॥

[१२ - राष्ट्रसभा सूक्त (११)]

[ऋषि- १- शौनक । देवता- सरस्वती । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१७६६. यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम्।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥१ ॥

आपकी विशाल, गर्जना वाले, समस्त विश्व में व्याप्त मार्गदर्शक ध्वजा के समान इस जगत् को भूषित करने वाली विद्युत् से हम सबकी धान्यादि की क्षति न हो। सूर्यदेव की किरणों के द्वारा हमारी फसलें पुष्ट हों ॥१ ॥

[१३ - शत्रुनाशन सूक्त (१२)]

[ऋषि- शौनक । देवता- १सभा - समिति अथवा पितरगण, २ सभा, ३ इन्द्र, ४ मन । छन्द- २-४ अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१७६७. सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः सङ्गतेषु ॥१ ॥

समिति और सभा प्रजापति के द्वारा पुत्रियों के समान पालन करने योग्य हैं । वे (समिति एवं सभा) प्रजापति (राजा) की रक्षा करें । हे पितरो ! जिनसे परामर्श माँगूँ, वह सभासद मुझे उचित सलाह प्रदान करे । आप हमें सभा में विवेकसम्मत एवं नम्रतापूर्वक बोल सकने की सद्बुद्धि प्रदान करें ॥१ ॥

१७६८.विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥२ ॥

हे सभे ! हम आपके नाम को जानते हैं । आपका 'नरिष्टा' (अरिष्टरहित) नाम उचित ही है । सभा के जो कोई भी सदस्य हों, वे हमारे साथ समान विचार एवं वाणी वाले होकर रहें ॥२ ॥

१७६९. एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥३ ॥

सभा में विराजमान इन समस्त सभासदों के विशेष ज्ञान एवं वर्चस् को ग्रहण कर मैं लाभान्वित होता हूँ । इन्द्रदेव हमें समस्त सभा के सामने ऐश्वर्यवान् बनाएँ ॥३ ॥

१७७०. यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥४ ॥

हे सभासदो ! हमसे विमुख हुए, आपके मनों को, हम अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अतः आप-सब सावधान होकर मेरी बात सुनें और उस पर विचार करें ॥४ ॥

[१४ - सविता सूक्त (१३)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- सूर्य । छन्द-अनुष्टुप् ।]

१७७१. यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे ।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥१ ॥

सूर्य उदित होकर, जिस प्रकार तारों के प्रकाश को अपने प्रकाश से अभिभूत करके क्षीण कर देता है, उसी प्रकार हम द्वेष करने वाले स्त्री एवं पुरुषों के वर्चस् (प्रभाव) को नष्ट करते हैं ॥१ ॥

[दूसरों का प्रभाव कम करने का यही श्रेष्ठ ढंग है कि अपना प्रभाव अत्यधिक प्रखर बनाया जाए ।]

१७७२. यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥२ ॥

सूर्य उदित होकर सोते हुए पुरुषों के तेज को जिस प्रकार हर लेता है, उसी प्रकार मैं उन विद्वेषियों का तेज हरण कर लूँ, जो मुझे आता (प्रगति करता) देखकर कुढ़ते हैं ॥२ ॥

[१५ - सविता सूक्त (१४)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- सविता । **छन्द**-अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।]

१७७३. अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥१ ॥

द्यौ और पृथ्वी लोक के रक्षक, समस्त जगत् के उत्पादक, सत्यप्रेरक, ज्ञानी, जगत्कर्त्ता रमणीय पदार्थों के धारक, सबके प्यारे एवं ध्यान करने योग्य सविता देव की हम उपासना करते हैं ॥१ ॥

१७७४. ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि ।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥२ ॥

जिनका अपरिमित तेज, स्वेच्छा से ऊपर फैलता हुआ सब जगह प्रकाशित होता है; श्रेष्ठ कर्मकर्त्ता देव, जिनकी प्रेरणा से, स्वर्णिम किरणों (हाथों) से स्वर्ग (दायक सोम) उत्पन्न करते हैं, ऐसे सवितादेव की हम प्रार्थना करते हैं ॥२ ॥

१७७५. सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥३ ॥

हे सवितादेव ! जिस प्रकार आपने आरम्भ में जन्मे मनुष्यों को समस्त आवश्यक पदार्थ प्रदान किए हैं । उसी प्रकार इस पालक यजमान को देह (पुत्र-पौत्रादि), श्रेष्ठता एवं अन्य पशु आदि प्रदान करें ॥३ ॥

१७७६. दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥४ ॥

हे देव ! आप सबके प्रेरक, सर्वश्रेष्ठ और सबको अभिलषित पदार्थ प्रदान करते हैं । पूर्व पुरुषों को धन, बल एवं आयु प्रदान करने वाले हे देव ! आप इस अभिषुत आनन्दप्रद सोम को ग्रहण करें । वे गतिमान् देव सर्वत्र अप्रतिहत गति से संचार करते हैं ॥४ ॥

[१६- सविता सूक्त (१५)]

[ऋषि- भृगु । देवता- सविता । छन्द- त्रिष्टुप्]

१७७७. तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥१ ॥

हे सवितादेव ! हम सत्यप्रेरक, विलक्षण, सबकी रक्षा करने वाली, शोभनीय, उत्तम तथा अनेक धारा वाली, उस बुद्धि की याचना करते हैं, जिसे कण्व ऋषि ने प्राप्त किया है ॥१ ॥

[१७ - सविताप्रार्थना सूक्त (१६)]

[**ऋषि**- भृगु । **देवता**- सविता । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१७७८. बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् सन्तरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१ ॥

हे बृहस्पतिदेव एवं सवितादेव ! व्रतपालक यजमान के दोषों को दूर करके, उसे प्रगति की प्रेरणा दें । इस यजमान को अन्य श्रेष्ठ व्रतों के पालन द्वारा सौभाग्यशाली बनाने के लिए आप उद्बोधित करें । समस्त देवगण इसका अनुमोदन करें ॥१ ॥

[१८ - द्रविणार्थप्रार्थना सूक्त (१७)]

[**ऋषि**- भृगु । **देवता**- सविता (पृथिवी, पर्जन्य) **छन्द**- १त्रिपदार्षी गायत्री, २ अनुष्टुप्, ३-४ त्रिष्टुप् ।]

१७७९. धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु ॥१ ॥

विश्व को धारण करने वाले 'धाता देव' जगत् के ईश हैं । समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने में समर्थ देव 'धाता' हमें प्रचुर धन आदि प्रदान करें ॥१ ॥

१७८०.धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥२ ॥

समस्त धन के स्वामी देव 'धाता' का हम श्रेष्ठ बुद्धि से ध्यान करते हैं एवं उनसे याचना करते हैं, प्रसन्न होकर वे हमें अक्षय जीवनीशक्ति प्रदान करें ॥२ ॥

१७८१. धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥३ ॥

प्रजा की कामना करने वाले 'धाता देवता' यजमान को श्रेष्ठ पदार्थ प्रदान करें । अदितिदेवी और अन्य देवताओं सहित समस्त देव उसे अमृत प्रदान करें ॥३ ॥

१७८२. धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥४ ॥

धारक, प्रेरक, कल्याणकर्ता सवितादेव, प्रजारक्षक, पुरुषार्थयुक्त, प्रकाशरूप अग्निदेव, त्वष्टादेव, विश्व में व्याप्त विष्णुभगवान् हमारी आहुति ग्रहण करें, प्रजा के साथ आनन्द में रहने वाले देव यजमान को धन प्रदान करें ।

[१९ - वृष्टि सूक्त (१८)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- पर्जन्य अथवा पृथिवी । **छन्द**- चतुष्पदा भुरिक् उष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।]

१७८३. प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् ॥१ ॥

हे पृथिवीमाता ! आप हल द्वारा अच्छी प्रकार जोतने पर वर्षा के जल को अच्छी प्रकार धारण करने योग्य हो जाएँ । हे पर्जन्य ! आप दिव्य मेघों के द्वारा श्रेष्ठ जल वृष्टि करें ॥१ ॥

१७८४. न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥२ ॥

जहाँ सोम आदि ओषधियाँ होती हैं एवं सोम की पूजा होती है, वहाँ सब प्रकार कल्याण होता है । वहाँ 'हिम' पीड़ित नहीं करता, ग्रीष्म असह्य ताप नहीं देता एवं वर्षा समय से होती है, जिससे भूमि समृद्धि को प्राप्त होती है ।

[२० - प्रजा सूक्त (१९)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- धाता, प्रजापति, पुष्टपति । **छन्द**- जगती ।]

१७८५. प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥१ ॥

प्रजापतिदेव पुत्र - पौत्र आदि प्रजाओं को उत्पन्न करें । पोषक धातादेव, उत्तम मन वाला बनाएँ । इससे प्रजाएँ एक मत, एक विचार युक्त एवं विवेकवान् होकर एक उद्देश्य के लिए कार्य करें । पुष्टि के देवता हमें पुष्टि प्रदान करें ॥१ ॥

[२१ - अनुमति सूक्त (२०)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- अनुमति । **छन्द**- अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् अनुष्टुप्, ५ जगती, ६ अति शाक्वरगर्भा जगती ।]

१७८६. अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥

(कर्मों की) अनुमति (के अभिमानी) देवी (चन्द्रमा) आज हमारे अनुकूल होकर, हमारे यज्ञ की जानकारी समस्त देवताओं तक पहुँचाएँ । अग्निदेव भी हमारे द्वारा अर्पित हवि को समस्त देवगणों तक पहुँचाएँ ॥१ ॥

१७८७. अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ।

हे अनुमति नामक देवि ! आप हमें कल्याण करने वाले कार्य करने की सुबुद्धि प्रदान करें । आप अग्नि में अर्पित हवि को ग्रहण करके हमें श्रेष्ठ प्रजाएँ प्रदान करें ॥२ ॥

१७८८. अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥३ ॥

हे अनुमन्ता पुंदेव ! आप हम पर क्रोधित न हों, बल्कि सुखदायक बुद्धि से हमें पुत्रादि एवं अक्षय धन प्रदान करने का अनुग्रह करें ॥३ ॥

१७८९. यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥४ ॥

हे धनदात्री अनुमति देवि !उत्तम नीति वाली,आवाहन करने योग्य, अभिमत फलदायिनी आप हमारे यज्ञ को पूर्णता तक पहुँचाएँ ।हे वरणीय सौभाग्यशाली देवि ! आप हमें उत्तम वीरों सहित श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥४ ॥

१७९०. एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ॥५ ॥

हे अनुमति देवि ! आप, हमारे इस विधिवत् सम्पन्न होने वाले यज्ञ की रक्षा करते हुए, सुक्षेत्र पुत्रादि फल देने के लिए पधारें । हे देवि ! आपकी कृपा से ही श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती है ॥५ ॥

१७९१. अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ॥६ ॥

हे अनुमति देवि ! इस चराचर जगत् में, अबुद्धिपूर्वक कार्य करने वालों एवं सुबुद्धिपूर्वक कार्य करने वालों में अनुमति रूप से संव्याप्त आप हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें ॥६ ॥

[२२ - एको विभुः सूक्त (२१)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आत्मा । **छन्द-** पराशक्वरी विराट् गर्भा जगती ।]

१७९२. समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम्।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥१ ॥

हे बन्धुओ ! आप सब द्युलोक के स्वामी सूर्यदेव की स्तुति करें । ये देव नवजात प्राणियों के प्रधान स्वामी हैं एवं अतिथि के समान ही पूजनीय हैं । ये सनातन सूर्यदेव इस पितृभूत नवजात प्राणी को अपना समझ कर इस पर कृपा करें । ये देव अनेक सन्मार्गों के संचालक हैं ॥१ ॥

[२३ - ज्योति सूक्त (२२)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** ब्रध्न, उषा । **छन्द-** द्विपदा एकावसाना विराड् गायत्री, २ त्रिपदा अनुष्टुप् ।]

१७९३. अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि ॥१ ॥

ये देव सब में आत्मारूप से व्याप्त हैं । ये सवितादेवता हमें सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वस्थ जीवनयापन की शक्ति प्रदान करें । ज्ञानियों में मान्य, अनेक सन्मार्गों के संचालक, उत्तम बुद्धि एवं ज्योति रूप स्थित देव हमें सत्कर्म में प्रेरित कर आयु प्रदान करें ॥ १ ॥

१७९४. ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्। अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ।।

ज्ञानदायिनी, पापनाशनी, तेजस्वी उषाएँ, हमें महान् सवितादेव की ओर प्रेरित करें ॥२ ॥

[२४ - दुष्वप्ननाशन सूक्त (२३)]

[**ऋषि-** यम । **देवता-** दुष्वप्ननाशन । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१७९५. दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥१ ॥

दुःस्वप्न आना, दुखीजीवन, हिंसकों के उपद्रव, दरिद्रता, विपत्ति का भय, बुरे नामों का उच्चारण और समस्त प्रकार के दुष्टभाषण आदि दोषों का हम निष्कासन करते हैं ॥१ ॥

[२५ - सविता सूक्त (२४)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** सविता । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१७९६. यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः।
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥१ ॥

जो फल हमें, इन्द्रदेव, अग्निदेव, विश्वेदेवा एवं मरुद्गण आदि देते हैं, वह फल हमें, सत्यधर्मा-प्रजापति, अनुमति देवी एवं सूर्यदेव प्रदान करें ॥१ ॥

[२६ - विष्णु सूक्त (२५)]

[ऋषि- मेधातिथि । देवता-विष्णु । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१७९७. ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥१ ॥

जिनके बल से लोक-लोकान्तर स्थिर हैं, जो अत्यन्त वीर और शूर हैं, जो अपनी बलपूर्ण चेष्टाओं के द्वारा आगे बढ़ते रहते हैं, उन दोनों विष्णु और वरुणदेव को यह होता हवि प्रदान करता है ॥१ ॥

१७९८. यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥२ ॥

जिनकी आज्ञा से समस्त जगत् (चौदह भुवन) प्रकाशित हो रहे हैं, उत्तम रीति से प्राण धारण किये हैं एवं अपने धर्मकर्त्तव्य, बल एवं शक्तियों से देखते हैं, उन विष्णु एवं वरुणदेव को सर्वप्रथम आहूत करके हम हवि अर्पित करते हैं ॥२ ॥

[२७ - विष्णु सूक्त (२६)]

[ऋषि- मेधातिथि । देवता-विष्णु । छन्द- त्रिष्टुप्, २ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् शक्वरी, ४-७ गायत्री ।]

१७९९. विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१ ॥

हम सर्वव्यापक विष्णु के सुखवर्द्धक पुरुषार्थ का वर्णन करते हैं। इन्होंने बहुत प्रकार से प्रशंसित, तीन पदों द्वारा पृथ्वीलोक; स्वर्गलोक एवं अंतरिक्षलोक की शोभनीय रचना की एवं सर्वश्रेष्ठ स्वर्गलोक में स्वयं को स्थित किया है ॥१ ॥

१८००. प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥२ ॥

महान् विष्णु के गुणगान करने से उनके दिव्य पराक्रमों का दर्शन होता है । जिस प्रकार विशालकाय सिंह गिरि गुहा आदि सभी स्थानों में संचार करता हुआ अतिशीघ्र कहीं से कहीं पहुँचने में समर्थ होता है, उसी प्रकार स्मरण मात्र से दूर से दूर रहने वाले विष्णुदेव समीप आ जाते हैं ॥२ ॥

१८०१. यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ।

हे भगवन् ! आप तीनों लोकों में विचरण करते हैं । समस्त भुवनों में आपका निवास है । हे देव ! आप हमें भी साधनों सहित निवास दें । हे अग्निरूप विष्णुदेव ! इस यज्ञ में अर्पित घृत को ग्रहण करके प्रसन्न होकर आप यजमान को समृद्धि प्रदान करें ॥३ ॥

१८०२. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ॥४ ॥

सर्वव्यापक विष्णुदेव इस जगत् में विचक्रमण (पदन्यास) कर रहे हैं । उन्होंने अपने पाँव को तीन प्रकार से रखा । इनके पाँव में तीनों लोक समा गये ॥४ ॥

१८०३. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणि धारयन् ॥५ ॥

दूसरों के प्रभाव में न आने वाले, रक्षक, व्यापक विष्णु भगवान् ने तीन पाँवों को इस जगत् में रखा है एवं तीनों लोकों को धर्मसहित धारण किया है ॥५ ॥

१८०४. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥६ ॥

हे लोगो ! आप सब सर्वव्यापक विष्णु भगवान् के कार्य (स्थान) को देखें । जहाँ से ये सब गुण- धर्मों का अवलोकन करते हैं । ये इन्द्रदेव के अच्छे मित्र हैं ॥६ ॥

१८०५. तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥७ ॥

बुद्धिमान् , ज्ञानीजन, भगवान् विष्णु के परमधाम का प्रत्यक्ष दर्शन उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक में स्थित चक्षुरूप-सूर्यदेव को सब जन देखते हैं ॥७ ॥

१८०६. दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥८ ॥

हे विष्णुदेव ! द्युलोक, भूलोक एवं विस्तृत अन्तरिक्ष से प्रचुर साधन आप अपने दोनों हाथों में भरकर हम सबको प्रदान करें ॥८ ॥

[२८ - इडा सूक्त (२७)]

[**ऋषि-** मेधातिथि । **देवता-**इडा । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१८०७. इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥१ ॥

जिस धेनु के चरणों में, देवताओं के समान आचरण करने वाले यजमान पवित्र होते हैं, वे सोमपृष्ठा, फलदायी सामर्थ्यवाली घृतपदी, समस्त देवताओं से सम्बन्धित इडा (वाणी) हमारे यज्ञ को सर्वत्र प्रकाशित करे । यह धेनु वैसा ही करे, जिससे हमारे कर्म श्रेष्ठ फलदायक हों ॥१ ॥

[२९ - स्वस्ति सूक्त (२८)]

[**ऋषि-** मेधातिथि । **देवता-** वेद । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१८०८.वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥१ ॥

वेद (अथवा दर्भ समूह) हमारा कल्याण करने वाले हों । सुथार के हथियार, लकड़ी काटने वाला कुल्हाड़ा, घास काटने वाली दराँती, गँड़ासा (फरसा) आदि हमारे लिए कल्याणकारी हों । यह सब हवि बनाने वाले, यजन करने वाले, यजमान का सहयोग करें ॥१ ॥

[३० - अग्नाविष्णू सूक्त (२९)]

[**ऋषि-** मेधातिथि । **देवता-** अग्नाविष्णू । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१८०९. अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥१ ॥

हे अग्निदेव और विष्णुभगवान् ! एक स्थान में निवास करने वाले आप दोनों देवों की बड़ी महिमा है । आप दोनों देव गुह्य घृत का पान करते हैं । आप यजमानों के घर में सात रत्नों को धारण करते हैं । आप दोनों की दिव्य जिह्वा होमे हुए घृत का रसास्वादन करे ॥१ ॥

१८१०. अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥२ ॥

हे अग्निदेव एवं विष्णुभगवान् ! आप दोनों का स्थान अति प्रिय है । आप दोनों गुह्य रस का सेवन करते हैं । आप प्रत्येक घर में स्तुति द्वारा बढ़ते हैं । आप जिह्वा द्वारा गुह्य घृत का रसास्वादन करें ॥२ ॥

[३१ - अञ्जन सूक्त (३०)]

[**ऋषि**—भृग्वङ्गिरा ।**देवता**— द्यावापृथिवी, मित्र, ब्रह्मणस्पति । **छन्द**—बृहती]

१८११. स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥१ ॥

द्यावा-पृथिवी, सूर्यदेव, ब्रह्मणस्पति, सविता देवता; ये सभी हमारी आँखों की स्वस्थता के लिए कृपा करके अञ्जन प्रदान करें ॥१ ॥

[दिव्य शक्तियों का सुअञ्जन दिव्य दृष्टि प्रदायक होता है; जिससे विश्व के रहस्य स्पष्ट होने लगते हैं ।]

[३२ - शत्रुनाशन सूक्त (३१)]

[**ऋषि**- भृग्वङ्गिरा । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**-भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१८१२. इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अनेक रक्षा साधनों के द्वारा हमारी रक्षा करें । हे धनवान्, पराक्रमी वीर ! हमसे द्वेष करने वाले का पतन हो और हमारे शत्रु का नाश हो ॥१ ॥

[३३ - दीर्घायु सूक्त (३२)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- आयु । **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

१८१३. उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ।

हम उन अग्निदेव के पास हवि-अन्न लेकर जाते हैं, जो सर्वप्रिय, स्तुति करने योग्य युवा हैं । वे नम्रतापूर्वक अर्पित की गई हमारी आहुतियों से प्रसन्न होकर हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥१ ॥

[३४ - दीर्घायु सूक्त (३३)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- मरुद्गण, पूषा, बृहस्पति । **छन्द**-पथ्यापंक्ति ।]

१८१४. सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१ ॥

मरुत् देवता हमें धनसहित प्रजा प्रदान करें । ब्रह्मणस्पति, अग्निदेव एवं पूषादेव हमको श्रेष्ठ सन्तान और धनादिसहित दीर्घायु प्रदान करें ॥१ ॥

[३५ - शत्रुनाशन सूक्त (३४)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** जातवेदा । **छन्द-** जगती ।]

१८१५. अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें । हे जातवेदा अग्ने ! आप भविष्य में होने वाले शत्रुओं का नाश करें । हमसे युद्ध के लिए तत्पर जनों का पतन हो । आपकी कृपा से हम आक्रोश शून्य; निष्पाप रहकर कभी दीनता को प्राप्त न हों ॥१ ॥

[३६ - सपत्नीनाशन सूक्त (३५)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** जातवेदा । **छन्द-** अनुष्टुप् ३ त्रिष्टुप् ।]

१८१६. प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥१ ॥

हे जातवेद अग्निदेव ! आप हमसे विपरीत आचरण करने वाले शत्रुओं को नष्ट करें । अप्रकट अथवा भविष्य में उत्पन्न होने वाले शत्रुओं का विनाश करें । इस राष्ट्र को समृद्धिशाली एवं सौभाग्यशाली बनाएँ । समस्त देवगण इसका अनुमोदन करें ॥१ ॥

१८१७. इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥२ ॥

हे स्त्री ! हम तुम्हारी सौ नाड़ियों और सहस्र धमनियों के मुख पत्थर से बन्द करते हैं ॥२ ॥

१८१८. परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः ।
अस्वं१ त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥३ ॥

तुम्हारे गर्भस्थान से परे जो हैं, उन्हें समीप करते हैं । इससे तुम्हें प्राणवान् सन्तान प्राप्त हो । पत्थर को आवरण रूप से स्थित करता हूँ ॥३ ॥

[३७ - अञ्जन सूक्त (३६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अक्षि । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१८१९. अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥१ ॥

हे पत्नी ! हम दोनों के नेत्रों में परस्पर मधुर (स्नेह) भाव हो । नेत्रों में पवित्रता का अञ्जन रहे । हमारे हृदय और मन एक समान धारणा वाले हों ॥१ ॥

[३८ - वास सूक्त (३७)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** वास । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१८२०.अभित्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥१ ॥

हे स्वामिन् ! आप सदैव मेरे ही होकर रहें। मैंने मनोयोगपूर्वक जो वस्त्र तैयार किया है, उसे आपको अर्पित करके, स्नेह से वशीभूत कर अन्यत्र जाने से रोकती हूँ ॥१ ॥

[३९ - केवलपति सूक्त (३८)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- आसुरीवनस्पति । छन्द- अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक् ।]

१८२१. इदं खनामि भेषजं मां पश्यमभिरोरुदम्।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥१ ॥

मैं इस ओषधि को खोदती हूँ। यह ओषधि पति को अनुकूल बनाने में समर्थ है। यह पति को अन्यत्र भटकने से रोकती है। इससे दाम्पत्य-जीवन आनन्दमय व्यतीत होता है ॥१ ॥

१८२२. येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२ ॥

इस आसुरी नामक ओषधि अथवा पदार्थ शक्ति के द्वारा इन्द्रदेव समस्त देवताओं से अधिक प्रभावशाली बने। इसके द्वारा मैं अपने पति को अधिक प्रभावशाली बनाकर, उनकी सहधर्मिणी बनकर प्रगति करूँगी ॥२ ॥

१८२३. प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम्।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥३ ॥

हे शंखपुष्पी ओषधे ! सोम, सूर्य एवं समस्त देवताओं को सम्मुख करने के लिए आपके सहयोग की अपेक्षा करती हूँ ॥३ ॥

१८२४. अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥४ ॥

हे स्वामिन् ! सभा में भले ही केवल आप बोलें, पर घर में मैं भी बोलूँगी, उसे सुनकर आप अनुमोदन करें। आप सदैव मेरे ही रहें, अन्य का नाम भी न लें ॥४ ॥

[समाज में पुरुष केवल अपने मतानुसार चल सकता है; किन्तु पारिवारिक संदर्भ में पत्नी के परामर्श का महत्त्व स्वीकार करना आवश्यक है।]

१८२५. यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥५ ॥

हे स्वामिन् ! यदि आपको कहीं वन आदि में जाना पड़े अथवा नदी के पार जाएँ, तब भी यह ओषधि आपको आबद्ध करके मेरे सम्मुख करे ॥५ ॥

[४० - आपः सूक्त (३९)]

[ऋषि- प्रस्कण्व । देवता- सुपर्ण, वृषभ । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१८२६. दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥१ ॥

ओषधियों को बढ़ाने वाले, जल के मध्य विश्व को तृप्त करने वाले, शोभन मन वाले, वर्षा के द्वारा प्राणियों को तृप्त करने वाले सरस्वान्देव को इन्द्रदेव हमारे गोष्ठ में स्थापित करें ॥१ ॥

[४१ - सरस्वान् सूक्त (४०)]

[ऋषि- प्रस्कण्व । देवता- सरस्वान् । छन्द- त्रिष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१८२७. यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥१ ॥

जिन सरस्वान् देवता के कर्मों का समस्त पशु अनुगमन करते हैं एवं सभी जल परस्पर मिलते हैं, वृष्टि एवं पुष्टि जिनके अधीन हैं, जिनके कर्मों में समस्त वस्तुओं के पोषणपति निविष्ट हैं, रक्षा एवं तृप्ति के लिए हम उन सरस्वान् देव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

१८२८. आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥२ ॥

पुष्टि के स्वामी, धन स्थान में स्थित धन के स्वामी, यजमानों को अन्न देने की इच्छा वाले हविदाता से प्रसन्न हों ।उनके अभिमुख होकर कामनाओं की पूर्ति करने वाले सरस्वान् की, हम हवि द्वारा सेवा करते हुए बुलाते हैं ॥२॥

[४२ - सुपर्ण सूक्त (४१)]

[ऋषि- प्रस्कण्व । देवता- श्येन । छन्द-जगती, २ त्रिष्टुप् ।]

१८२९. अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥१ ॥

समस्त प्राणियों के कर्मों के साक्षी, प्रशंसनीय गति वाले, अनन्त द्युलोक में दीखने वाले, मरुस्थलों में कृपा करके वर्षा करने वाले सूर्यदेव अपने मित्र इन्द्रदेव को द्युलोक से नीचे के लोकों का अतिक्रमण कर, हमारे नवीन घर बनाने के स्थल में लाएँ ॥१ ॥

१८३०. श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥२ ॥

अनन्त किरणों वाले, अपरिमित कर्मफलों वाले, सुन्दर गति वाले, अन्न को धारण करने वाले सूर्यदेव हमें चिरस्थायी करें । हमारे द्वारा अर्पित धन अथवा हवि पितरों के लिए स्वधारूप (तृप्तिदायक) हो ॥२ ॥

[४३ - पापमोचन सूक्त (४२)]

[ऋषि- प्रस्कण्व । देवता- सोमारुद्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१८३१. सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥१ ॥

हे सोम और रुद्रदेव ! आप विषूचिका रोग एवं अमीवा रोग को हमारे घर से नष्ट करें । हमारे कृत पापों एवं रोग की कारणभूत पिशाचिनी को दूर ले जाकर नष्ट करें ॥१ ॥

[अमीबा रोग आँव-अमीबाइसिस को कहते हैं, विसूचिका हैजे को कहते हैं । यह दोनों पेट में अन्न के ठीक से न पचने के कारण पैदा होते हैं ।]

१८३२. सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥२ ॥

हे सोम एवं रुद्रगण ! आप हमारे शरीरों में रोगनाशक ओषधियों को स्थापित करें , एवं शरीरों में व्याप्त पापों को हमसे अलग करके उन्हें नष्ट करें ॥२ ॥

[४४ - वाक् सूक्त (४३)]

[**ऋषि-** प्रस्कण्व । **देवता-** वाक् । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१८३३. शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् ॥१ ॥

हे वाक्देव ! आपके कुछ शब्द कल्याणकारी-शुभ और कुछ अकल्याणकारी-अशुभ होते हैं, श्रेष्ठ मन वाले आप दोनों प्रकार की वाणियों को धारण करें । उच्चारण करने वाले के अन्दर, वाणी के तीन प्रकार या भाग (परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा) रहते हैं, जबकि श्रोता के पास चौथाई भाग (बैखरी) व्यक्त होकर पहुँचता है ॥१ ॥

[४५ - इन्द्राविष्णू सूक्त (४४)]

[**ऋषि-** प्रस्कण्व । **देवता-** इन्द्र, विष्णु । **छन्द-** भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१८३४. उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों सदैव अजेय हैं । आपमें से एक भी कभी पराजित नहीं हुए । हे देव ! जब आप दोनों स्पर्धा से युद्ध करते हैं, तब हजारों शत्रुओं को तीन प्रकार से हरा देते हैं और इच्छित वस्तु (लोक, वेद या वाणी) को अपने वश में कर लेते हैं ॥१ ॥

[४६ - ईर्ष्यानिवारण सूक्त (४५)]

[**ऋषि-** प्रस्कण्व । **देवता-** भेषज । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१८३५. जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् ।
दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥१ ॥

सम्पूर्ण मानवों के लिए हितकारी जनपद से तथा समुद्र से अथवा दूर से लाई गई ओषधि ईर्ष्या तथा क्रोध हटाने में समर्थ है ॥१ ॥

[४७ - ईर्ष्यानिवारण सूक्त (४५)]

[**ऋषि-** प्रस्कण्व । **देवता-** ईर्ष्यापनयन । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१८३६. अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय ॥

हे ईर्ष्या निवारण करने वाले देव ! आप अग्निदेव के समान हमारे सब कार्यों को भस्म करें एवं ईर्ष्यालु पुरुष की ईर्ष्या को उसी प्रकार शान्त करें, जिस प्रकार जल के द्वारा अग्नि को शान्त करते हैं ॥१ ॥

[४८ - सिनीवाली सूक्त (४६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** सिनीवाली । **छन्द-** अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।]

१८३७. सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१ ॥

हे सिनीवालि ! आप अनेकों द्वारा स्तुत्य हैं । आप देवताओं की भगिनीरूप ही हैं, ऐसे महान् गुणों वाली हे देवि ! आप हमारे द्वारा अर्पित हवि को ग्रहण करें एवं प्रसन्न होकर पुत्रादि प्रजा प्रदान करें ॥१ ॥

१८३८. या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥

हे ऋत्विज् और यजमानो ! जो सिनीवाली देवी सुन्दर बाहु, सुन्दर अँगुलियों एवं अंग- सौष्ठव से सुशोभित होने वाली हैं, आप उन उत्तम सन्तान देने वाली देवी को हवि अर्पित करें ॥२ ॥

१८३९. या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषिपतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥३ ॥

हे प्रजापालिका सिनीवाली देवि ! आप परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव के सामने जाती हैं, उनकी पूजा करती हैं । हजारों लोगों से स्तुत्य.हे व्यापनशील देव की पत्नी ! हम आपके लिए हवि अर्पित करते हैं, आप प्रसन्न होकर अपने पति इन्द्रदेव द्वारा धन प्रदान कराएँ ॥३ ॥

[४९ - कुहू सूक्त (४७)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** कुहू । **छन्द-** जगती, २ त्रिष्टुप् ।]

१८४०. कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१ ॥

कुहू देवी उत्तमकर्म वाली, ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाली तथा स्तुति करने योग्य हैं । ऐसी दिव्य शक्ति सम्पन्न देवी का हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं । वे प्रसन्न होकर हमें श्रेष्ठ धन एवं सैकड़ों प्रकार से दान करने वाले वीर पुत्र प्रदान करें ॥१ ॥

१८४१. कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥२ ॥

देवताओं में जो अमृतरूप हैं, कुहू देवी उनकी पत्नी (पालन करने वाली) हैं । आवाहन करने योग्य देवी हमारे इस यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करें । हमें धनादि से पुष्ट करें ॥२ ॥

[५० - राका सूक्त (४८)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** राका । **छन्द-** जगती ।]

१८४२. राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥१ ॥

उन पूर्ण चन्द्रमा के सामन आह्लाददायिनी, स्तुति करने योग्य देवी का हम उत्तम ढंग से आवाहन करते हैं । वे सौभाग्यशालिनी देवी अपनी सुई एवं सीने की विशेष क्रिया के दिव्य प्रभाव से हमें सैकड़ों प्रकार के दान देने में समर्थ यशस्वी वीर पुत्र प्रदान करें ॥१ ॥

१८४३. यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा ॥२ ॥

हे राका देवि ! आप उत्तम सुन्दर सुमतियों के द्वारा हवि दाता यजमान को कल्याणकारी धन देती हैं । आज उन्हीं सुमतियों सहित, प्रसन्न मन होकर आएँ और हमें श्रेष्ठ धन से पुष्ट करें ॥२ ॥

[५१ - देवपत्नी सूक्त (४९)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** देवपत्नी । **छन्द-** आर्षीजगती, २ चतुष्पदा पंक्ति ।]

१८४४. देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥१ ॥

देवपत्नियाँ हमारी रक्षा के लिए कृपा करके हमारे निकट आएँ एवं लाभ प्राप्त कराने की इच्छा से अन्न प्रदान करें । जो देवियाँ पृथ्वी पर, जो जलवृष्टि के लिए अन्तरिक्ष में निवास करती हैं, वे सब हमको सुख प्रदान करें ॥१

१८४५. उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥२ ॥

देवताओं की पत्नियाँ ये देवियाँ हमारा कल्याण करें । इन्द्राणी, वरुणानी, रोदसी (द्यावा-पृथिवी) तथा अश्विनीकुमारों की पत्नी 'राट्' हमारी प्रार्थना सुनें । स्त्रियों के ऋतुकाल में ये देवियाँ हमारा हित करें ॥२ ॥

[५२ - विजय सूक्त (५०)]

[**ऋषि-** अङ्गिरा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अनुष्टुप्, ३, ७ त्रिष्टुप्, ४ जगती, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१८४६. यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति । एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति ॥१ ॥

जिस प्रकार विद्युत् अग्नि नित्य प्रति वृक्षों को भस्म करती है, उसी प्रकार हम सभी जुआरियों को पाँसों के द्वारा अतुलनीय रीति से मारते हैं ॥१ ॥

१८४७. तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् । समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥२

द्यूतकर्म (जुए) में शीघ्रता वाले तथा देर करने वालों में मैं प्रधान हूँ । द्यूतकर्म न छोड़ने वालों का ऐश्वर्य, धन आदि मुझ पाँसों को प्राप्त हो ॥२ ॥

१८४८. ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥३ ॥

हम उन स्वावसु अग्निदेव की स्तुति करते हैं, जो स्तुतिकर्त्ताओं को अपना धन प्रदान करते हैं । वे देव प्रसन्न होकर हमें कृत नामक पाँसे (श्रेष्ठ संकल्प या कर्म) प्रदान करें । जिस प्रकार रथ में अन्न लाते हैं, उसी प्रकार सत्कर्म द्वारा शत्रुओं के धन को भी प्राप्त करें ॥३ ॥

१८४९. वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपकी सहायता से घेरने वाले शत्रुओं को जीतें । प्रत्येक युद्ध में आप हमारे प्रयत्नों को सुरक्षित रखें । हमारे प्रगति मार्ग में बाधक शत्रुओं के बलों को नष्ट करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप हमें वरिष्ठ स्थान तक पहुँचाकर धन प्रदान करें ॥४ ॥

१८५०. अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।
अविं वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ॥५ ॥

हे हर प्रकार से पीड़ा देने वाले शत्रु ! हम तुझे जीत लेंगें । जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को मथ कर मार देता है, उसी प्रकार हम तम्हारे कृत (पाँसों) को मथकर नष्ट कर देंगे ॥५ ॥

१८५१. उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥६ ॥

विजयाभिलाषी वीर अपने घातक शत्रुओं को जीत लेता है । स्वयं के धन आदि का हनन करने वाला मूढ़ वास्तव में अपने कृत कर्मों का फल ही भोगता है । जो व्यक्ति संग्रह न करके देव कार्यों में धन नियोजित करता है, उस व्यक्ति को ही विशिष्ट धन की प्राप्ति होती है ॥६ ॥

१८५२. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम दुर्गति वाली दरिद्रता से उत्पन्न दुर्मति को गौ आदि पशुधन द्वारा दूर करें, यव आदि के द्वारा क्षुधा को शान्त करें ।हम प्रकाशवानों (प्रतिभावानों) में श्रेष्ठ रहें एवं अपनी शक्तियों के द्वारा धन प्राप्त करें ॥७ ॥

१८५३. कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥८ ॥

हमारे दाहिने हाथ में कृत (कर्म) एवं बायें हाथ में विजय है । इन दोनों से हम गौ, अश्व, धन, भूमि एवं स्वर्ण आदि प्राप्त करने में सफल हों ॥८ ॥

१८५४. अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ॥९ ॥

हमें दुग्ध देने वाली गौ जैसी फलदायी विजय हेतु अक्ष (पाँसे या पुरुषार्थ) प्राप्त हों । जिस प्रकार धनुष प्रत्यञ्चा (डोरी) से युक्त होने पर विजय दिलाने वाला होता है, उसी प्रकार आप हमें पुरुषार्थ से संयुक्त कर श्रेष्ठ फल प्रदान करें ॥९ ॥

[५३ - परिपाण सूक्त (५१)]

[**ऋषि-** अङ्गिरा । **देवता-** इन्द्राबृहस्पती । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१८५५. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥१ ॥

बृहस्पतिदेव, ऊपर-नीचे एवं पिछले भाग से हमारी रक्षा करें, इन्द्रदेव पूर्व और मध्य भाग से हमारी रक्षा करें एवं सखारूप इन्द्रदेव अपने स्तोताओं को मित्र भाव से धन आदि प्रदान कर श्रेष्ठ बनाएँ ॥१ ॥

[५४ - सांमनस्य सूक्त (५२)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-**सांमनस्य और अश्विनीकुमार । **छन्द-** ककुम्मती अनुष्टुप्, २ जगती ।]

१८५६. संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम स्वजनों सहित समान ज्ञान वाले हों । हमसे प्रतिकूल बात करने वाले भी हमारे साथ अनुकूल बुद्धि वाले हों । हे अश्विनीकुमार देवो ! आप कृपा कर हम सब में, इस विषय में सुमति स्थापित करें ॥१ ॥

१८५७. सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥२ ॥

हम मन से श्रेष्ठज्ञान प्राप्त करें । ज्ञानवान् होकर, एक मत से; बिना परस्पर विरोध किए, हम कार्य करें । देवताओं से प्रेम करने वाले हम कभी अलग न हों । परस्पर हमारी वाणी विषादकारक न हो । भविष्य में इन्द्रदेव का वज्र हम पर न गिरे ॥२ ॥

[५५ - दीर्घायु सूक्त (५३)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आयु, बृहस्पति, अश्विनीकुमार । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिष्टुप् ४ उष्णिक् गर्भार्षी पंक्ति, ५-७ अनुष्टुप् ।]

१८५८. अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥१ ॥

हे अग्निदेव एवं बृहस्पतिदेव ! आप दोनों परलोक में मिलने वाली यातनाओं से इसे मुक्त करें एवं आपकी कृपा से दोनों अश्विनीकुमारदेव इसे मृत्युकारक रोगों से बचाएँ ॥१ ॥

१८५९. सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥२ ॥

हे प्राण एवं अपान ! आप दोनों इस मनुष्य को छोड़ें नहीं; बल्कि (इसमें) भली प्रकार संचरित हों । हे पुरुष ! प्राण-अपान तुम्हारी देह में संचार करते रहें, जिससे वर्धमान होकर तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो । तेजस्वी अग्निदेव तुम्हारी रक्षा करें ॥२ ॥

१८६०. आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३ ॥

हे आयु की कामना वाले पुरुष ! स्वास्थ्य विरोधी आचरणों के कारण, जो तेरी आयु क्षीण हो गई है, उसे प्राण-अपान फिर से बढ़ाएँ । यज्ञ द्वारा प्रसन्न अग्निदेव तुम्हें सुरक्षित रखें एवं दीर्घायु प्रदान करें ॥३ ॥

१८६१. मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ॥४ ॥

इस मनुष्य को प्राण-अपान छोड़कर न जाएँ । हम इस आयु की कामना वाले पुरुष को सप्त ऋषियों की शरण में पहुँचाते हैं, वे इसे वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक रखें ॥४ ॥

[ऋषियों द्वारा प्रदर्शित जीवन पद्धति के अनुसरण से सुखी-दीर्घजीवन का लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।]

१८६२. प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥५ ॥

हे प्राण-अपान !आप दोनों इस आयु की कामना वाले पुरुष के शरीर में वैसे ही भ्रमण करते रहें, जैसे गोशाला में बैल प्रविष्ट होकर घूमते रहते हैं । यह बिना किसी बाधा के वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक जीवनयापन करे ॥५ ॥

[जिस प्रकार वृषभों के संसर्ग में गौएँ उत्पादक बनती हैं, उसी प्रकार प्राणों के संसर्ग से इन्द्रियाँ उत्पादक शक्ति से सम्पन्न बनती हैं ।]

१८६३.आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते ।आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः।

हे आयु की कामना वाले पुरुष ! हम तुम्हारे क्षयरोग को दूर हटाते हुए , तुम्हें दीर्घजीवी बनाने के लिए अग्निदेव से प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

१८६४. उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

तमस् क्षेत्र को पार करके, श्रेष्ठ-स्वर्ग में चढ़ते हुए हम, सबके उत्पादक-तेजस्वी सूर्यदेव को प्राप्त करें ॥७

[५६ - विघ्नशमन सूक्त (५४)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** ऋक्साम । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१८६५. ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते ।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥१ ॥

हम पढ़े हुए ऋक् और यजु का हवि द्वारा पूजन करते हैं। हम ऋत्विज् -यजमान ऋचाओं और सामों के द्वारा यजन करते हैं । ये दोनों यज्ञशाला में दमकते हुए सुशोभित होते हैं ।यही देवताओं तक यज्ञ को पहुँचाते हैं ।

[५७ - मार्गस्वस्त्य अयन सूक्त (५४-५५)]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अनुष्टुप्, २ विराट् परोष्णिक् ।]

१८६६. ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम्।
एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥१ ॥

जिस प्रकार हमने ऋग्वेद के द्वारा हवि, सामवेद से ओज और यजुर्वेद से बल को जाना है । (हे इन्द्रदेव !) यह पूछकर जाना हुआ वेदज्ञान हमें पीड़ा न पहुँचाए, प्रत्युत इच्छित फल प्रदान करे ॥१ ॥

१८६७. ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः । तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने द्युलोक के अधोभाग वाले मार्गों के द्वारा जगत् को (प्राणियों को) अपने-अपने कर्म में नियोजित करते हैं । आप उन्हीं मार्गों से हमें सुखरहित पुष्टि प्रदान करें ॥२ ॥

[५८ - विषभेषज्य सूक्त (५६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** १, ३,५-८ वृश्चिकादि, २ वनस्पति, ब्रह्मणस्पति । **छन्द-** अनुष्टुप्, ४ विराट् प्रस्तारपंक्ति ।]

१८६८. तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम्।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥१ ॥

तिरछी रेखाओं वाले, काले, फुफकारने वाले सर्प के विष को तथा कंकपर्वा नामक प्राणी-विष को यह 'मधुक' नामक ओषधि नष्ट करती है ॥१ ॥

१८६९. इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः । सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी ।

यह प्रयुक्त ओषधि मधु से निष्पन्न हुई है । यह मधुर रस बढ़ाने वाली है । यह काटने वाले प्राणियों एवं उनके विष को नष्ट करने में समर्थ है ॥२ ॥

१८७०. यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि ।अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम्।

जहाँ काटा है और रक्त पिया है, उस स्थान से तीव्रदंशन करने वाले मच्छर के विष को हम नष्ट करते हैं ॥३ ॥

१८७१. अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥४ ॥

विष के प्रभाव से रोगी अंग सिकोड़ रहा है, ढीली संधियों वाला हो गया है, मुख को टेढ़ा-मेढ़ा कर रहा है, ऐसे रोगी को इस ओषधि द्वारा स्वस्थ करते हैं ॥४ ॥

[रोगी के लक्षण टिटनेस रोग जैसे हैं । टिटनेस उत्पादक विष के उपचार का संकेत इस मन्त्र में प्रतीत होता है ।]

१८७२. अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः । विषं ह्य१स्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥

निर्बल दिखने वाले, रेंगकर चलने वाले इस शर्कोटक (इस नाम वाले या विष से टेढ़ा कर देने वाले) जन्तु के विष को हमने नष्ट कर दिया है ॥५ ॥

१८७३. न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥६ ॥

हे बिच्छू ! तेरी बाहुओं में, सिर में और मध्य भाग में कष्ट देने की सामर्थ्य नहीं है । केवल पूँछ में थोड़ा विष है, फिर तू दुर्बुद्धि के वशीभूत होकर दूसरों को कष्ट देने की इच्छा से क्यों फिरता है ? ॥६ ॥

१८७४.अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटम रसंविषम् ॥

हे सर्प ! तुझे चीटियाँ खा लेती हैं और मोरनी भी तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालती है । हे विषनाशक ओषधे ! तुम शर्कोटक को विष विहीन कर दो ॥७ ॥

१८७५.य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च ।आस्ये३ न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत्

हे वृश्चिक ! तुम्हारी पूँछ में ही थोड़ा सा विष है, फिर भी तू पूँछ और मुँख इन दोनों से ही आघात करता है ॥

[५९ - सरस्वती सूक्त (५७)]

[**ऋषि-** वामदेव । **देवता-** सरस्वती । **छन्द-** जगती ।]

१८७६. यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥१ ॥

मेरे जिन अंगों को याचित वस्तु के न प्राप्त होने से कष्ट हुआ है और इससे मुझमें जो आत्म-ग्लानि या हीनता के भाव आए, उन सबको देवी सरस्वती स्नेहपूर्वक दूर करें ॥१ ॥

१८७७. सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः ॥२ ॥

मरुत्वान् (प्राणवान्) शिशु के लिए सात दिव्य प्रवाह रस प्रदान करते हैं । जिस प्रकार पुत्र अपने पिता की सत्कर्मों से सेवा करता है, उसी प्रकार ये शिशु की सेवा करते हैं । इसके पास दो शक्तियाँ हैं, जो इसके तेज को बढ़ाती, कार्य कराती और पोषण करती हैं ॥२ ॥

[यह मंत्र अनेकार्थक प्रतीत होता है । शिशु वरुण है, तो सप्तधाराएँ इसके लिए प्रवाहित हैं, जीवात्मा है, तो उसके लिए सप्त प्राण प्रवाहित होते हैं । सूर्य या अग्नि हैं , तो उसकी सप्त रश्मियाँ हैं । दो शक्तियाँ स्वाहा-स्वधा, पुष्टि-तुष्टि, द्यावा-पृथिवी आदि को कह सकते हैं, जो प्रकाशित होती तथा पोषण प्रदान करती हैं ।]

[६०- अन्न सूक्त (५८)]

[**ऋषि-** कौरुपथि । **देवता-** इन्द्रावरुण । **छन्द-** जगती, २ त्रिष्टुप् ।]

१८७८. इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥१ ॥

हे सोमपान करने वाले कर्मधारी इन्द्र और वरुणदेव ! आप दोनों इस निचोड़े गये हर्षवर्द्धक सोम का पान करें ।इस हेतु आपका अपराजेय रथ, आप दोनों को देवत्व की कामना वाले यजमान के घर के निकट लाए ॥१ ॥

१८७९. इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥२ ॥

हे वरुण और इन्द्रदेव ! आप दोनों अभिलषित फलों की वर्षा करने वाले हैं । आपके लिए परम-मधुर सोमभाग अन्न रूप 'चमस' आदि पात्रों में रखा हुआ है ।आप इस बिछाए गए कुश के आसन पर बैठकर तृप्त हों॥

[६१ - शापमोचन सूक्त (५९)]

[**ऋषि**- बादरायणि । **देवता**- अरिनाशन । **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

१८८०. यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्षइव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥१ ॥

जो उलाहना न देने वाले मुझको शापित करे एवं कठोर वाक्यों द्वारा हमारी निन्दा करे, वह उसी प्रकार नष्ट हो जाए , जिस प्रकार बिजली से आहत हुआ वृक्ष मूल सहित सूख जाता है ॥१ ॥

[६२ - रम्यगृह सूक्त (६०)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- वास्तोष्पति, गृह समूह । **छन्द**- अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।]

१८८१. ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् ॥१ ॥

अन्न धारण करने वाला, धन का दान करने वाला, श्रेष्ठबुद्धि वाला, शान्त मन वाला होकर सबके प्रति मित्र भाव रखता हुआ, समस्त वन्दनीय जनों आदि का वन्दन करता हुआ, मैं अपने घर के पास पहुँच रहा हूँ (या घर में प्रवेश कर रहा हूँ), यहाँ सब लोग मुझसे निर्भय होकर आनन्द से रहें ॥१ ॥

१८८२. इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥२ ॥

ये हमारे घर हमें सुख देने वाले, बलदायक अन्न एवं दुग्ध आदि से युक्त रहें । प्रवास से लौटने पर ये हम स्वामियों को भूलें नहीं ॥२ ॥

१८८३. येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥

इन घरों में रहते हुए हमें सुखानुभूति हो ।घरों में हम अपने इष्ट-मित्रों को बुलाते हैं, हम सब आनन्द से रहें ॥३॥

१८८४. उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः ।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥४ ॥

हे गृहो ! आप धन- सम्पन्न रहें । आप मधुर पदार्थों से युक्त रहते हुए, हमारे मित्र बने रहें । आप में निवास करने वाले व्यक्ति भूख और प्यास से पीड़ित न रहें । हे गृहो ! परदेश से लौटते हुए हमसे तुम डरो नहीं ॥४ ॥

१८८५. उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥५ ॥

हमारे घरों में गौएँ, भेड़-बकरियाँ और सब प्रकार सत्ववाला अन्न रहे, कोई कमी न रहे ॥५ ॥

१८८६.सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ।।६ ।।

हे गृहो ! तुम सत्ययुक्त और उत्तम भाग्यवाले, अन्नवान् बनो, तुम्हारे अन्दर हास्य-विनोदमय वातावरण रहे, भूखे-प्यासे लोग न रहें । हे गृहो ! तुम हमसे डरो नहीं ।।६ ।।

१८८७. इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।
ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ।।७ ।।

हे गृहो ! तुम इसी क्षेत्र में रहो, मुझ प्रवासी के पीछे अस्त-व्यस्त न हो; विभिन्न रूप वालों का पोषण करो । मैं कल्याण करने वाला साधनों सहित वापस जाऊँगा । हमारी हर प्रकार से उन्नति हो । ।।७ ।।

[६३ - तपः सूक्त (६१)]

[**ऋषि-** अथर्वा । देवता- अग्नि । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१८८८. यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ।।१।।

तप की प्रक्रिया के आधार पर जो तप किया जाता है, वह हम करते हैं, उससे हम ज्ञान प्रिय तथा दीर्घायु बनें

१८८९. अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः । श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ।।

हे अग्निदेव ! हम आपके समीप नियमों का पालन करते हुए, शारीरिक-मानसिक संयम रूप तप करते हैं । इससे श्रुतियों को सुनकर धारण करने की शक्ति बढ़े एवं दीर्घायु प्राप्त हो । ।।२ ।।

[६४ - शत्रुनाशन सूक्त (६२)]

[**ऋषि-** कश्यप । देवता- अग्नि । **छन्द-** जगती ।]

१८९०. अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ।।१ ।।

जो अग्निदेव महान् देवों को हवि पहुँचाते हैं । जो पुरोहित, प्रवृद्ध, बलवान् तथा महारथी के समान प्रजा को अपने अधीन करने वाले हैं, वे पृथ्वी की नाभि-वेदिका में स्थापित होकर, हमारे शत्रुओं को पद दलित करें ।।१ ।।

[६५ - दुरितनाशन सूक्त (६३)]

[**ऋषि-** कश्यप । देवता- अग्नि । **छन्द-** जगती ।]

१८९१. पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः ।।१ ।।

युद्ध में शत्रुसेना को पराजित करने वाले, हवि के भार को सहन करने वाले अग्निदेव को उत्कृष्ट लोक से स्तोत्रों द्वारा बुलाते हैं । वे अग्निदेव हमें समस्त प्रकार के कष्ट से बचाएँ एवं दुर्गति करने वाले पापों का नाश करें ।

[६६ - पापमोचन सूक्त (६४)]

[**ऋषि-** यम ।.देवता- आपः,अग्नि । **छन्द-** भुरिक् अनुष्टुप्, २ न्यङ्कुसारिणी बृहती ।]

१८९२. इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ।।१ ।।

काले रंग के पक्षी (अथवा दुर्भाग्य) ने आकाश मार्ग से इन मेरे अंगों पर अभिघात किया है । इस कारण दुर्गति प्रदान करने वाले पाप से अभिमन्त्रित जल रक्षा करे ॥१ ॥

१८९३. इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥२ ॥

हे मृत्युदेव ! इस काले (दुर्भाग्य सूचक) ने तुम्हारे मुख के द्वारा मेरा स्पर्श किया है । उससे लगे पाप को गार्हपत्य अग्निदेव नष्ट करें ॥२ ॥

[६७ - दुरितनाशन सूक्त (६५)]

[**ऋषि**- शुक्र । **देवता**- अपामार्गवीरुत् । **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

१८९४. प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१ ॥

हे अपामार्ग ओषधे ! आप प्रतीची फल (उलटे मुड़े फल) वाली होकर विकसित होती हैं । मेरे समस्त पापों (रोगों) को नष्ट करें ॥१ ॥

१८९५. यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥२ ॥

हे सर्वतोमुख अपामार्ग ओषधे ! हम से जो दुःखदायी पापकर्म हो गए हैं और दुर्बुद्धि के कारण जो मलिन पाप हम कर चुके हैं , उन्हें आप सब प्रकार से नष्ट करें ॥२ ॥

१८९६.श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत्सहासिम । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥

हे अपामार्ग ओषधे ! आप हमारे उन पापों (दोषों) को दूर करें, जो काले-पीले से गन्दे दाँतों वाले, कुत्सित नख वाले एवं व्याधिग्रस्त निस्तेज व्यक्ति के साथ बैठने से मुझ में आए हो ॥३ ॥

[६८ - ब्रह्म सूक्त (६६)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- ब्राह्मणम् (ब्रह्म) । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१८९७. यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥१ ॥

जो इस आकाश में, वायु में, वृक्षों में, घास आदि वनस्पतियों में एवं पशुओं (प्राणियों) में सदा स्रवित होता है, प्रकट होने वाला ब्रह्मतेज हमें पुनः प्राप्त हो ॥१ ॥

[६९ - आत्मा सूक्त (६७)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- आत्मा । **छन्द**- पुरः परोष्णिक् बृहती ।]

१८९८. पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥१ ॥

हमें इन्द्रिय शक्ति, आत्मचेतना एवं ब्रह्म फिर से प्राप्त हों । यज्ञादि स्थानों में रहने वाली अग्नियाँ हमें प्राप्त हों । हम फिर से धन प्राप्त करके समृद्ध बनें ॥१ ॥

[७० - सरस्वती सूक्त (६८)]

[ऋषि- शन्ताति । देवता- सरस्वती । छन्द- अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।]

१८९९. सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ।

हे सरस्वतीदेवि ! आपके दिव्य व्रतों और धामों के लिए अर्पित आहुतियों को आप ग्रहण करें । आप हमें पुत्र - पौत्रादि रूप प्रजा प्रदान करें ॥१ ॥

१९००. इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं१ यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥२ ॥

हे सरस्वतीदेवि ! आपके लिए हमने घृतयुक्त हवि अर्पित की है, उसे आप पितरों तक पहुँचने के लिए प्रेरित करें । जो हवि हम आपके लिए अर्पित करते हैं, उसके प्रभाव से हम मधुरता युक्त अन्न से सम्पन्न हों ॥२ ॥

[७१- सरस्वती सूक्त (६८)]

[ऋषि- शन्ताति । देवता- सरस्वती । छन्द- गायत्री ।]

१९०१. शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति । मा ते युयोम संदृशः ॥१ ॥

हे वाग्देवी सरस्वति ! आप समस्त सुख देने वाली हैं । आप हमें रोगों से पूर्णरूपेण मुक्त करके हमारा कल्याण करें । हे देवि ! हम आपके वास्तविक स्वरूप का दर्शन करते रहें ॥१ ॥

[७२ - सुख सूक्त (६९)]

[ऋषि- शन्ताति । देवता- सुख । छन्द- पथ्या पङ्क्ति ।]

१९०२. शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आप हमारे लिए सुखदायकरूप से प्रवाहित हों एवं सुखपूर्वक प्रेरित करने वाले सूर्यदेवता सुख- स्वास्थ्यवर्द्धक ताप ही प्रदान करें । हमारा उषाकाल, दिन एवं रात्रि में सब प्रकार कल्याण हो ॥१ ॥

[७३ - शत्रुदमन सूक्त (७०)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- श्येन । छन्द- त्रिष्टुप्, २ अतिजगतीगर्भा जगती, ३ पुरः ककुम्मती अनुष्टुप्, ४-५ अनुष्टुप् ।]

१९०३. यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥१ ॥

जो शत्रु हमें नष्ट करने के संकल्पसहित हवि और मन्त्रों से अभिचार कर्म कर रहा हो, उसके मन वाणी और देह से किये गये कर्म के फलित होने के पहले ही, हे निर्ऋतिदेव ! आप मृत्यु के सहयोग से उसे नष्ट करें ॥१ ॥

१९०४. यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ॥२ ॥

यातुधान, राक्षस और निर्ऋतिदेव, हमारे शत्रु द्वारा किये जा रहे अभिचार कर्म को विपरीत क्रिया द्वारा नष्ट कर दें । इन्द्रदेव द्वारा प्रेरित देवता शत्रु द्वारा हवन में प्रयुक्त किये जाने वाले घृत को नष्ट कर दें ॥२ ॥

१९०५. अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव ।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥३ ॥

हमारे अनिष्ट करने वाले शत्रु के घृत द्वारा होने वाले हवन को अधिराज और अजिर नामक मृत्यु-दूत श्येनबाज के समान झपट कर नष्ट कर दें ॥३ ॥

१९०६.अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥४ ॥

हे अभिचारी शत्रु ! हम तुम्हारी दोनों भुजाएँ एवं मुँख बाँधते हैं और अग्नि के भयानक कोप के द्वारा तुम्हारी हवि, घृत आदि का नाश करते हैं ॥४ ॥

१९०७. अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ॥५ ॥

हे शत्रु ! अभिचार कर्म में प्रवृत्त हाथों को हम बाँधते हैं । मन्त्र बोलने वाले मुख को बाँधते हैं । हवि द्वारा सिद्ध होने वाले तेरे कार्य को भी हम अग्नि के विकराल कोप से नष्ट करते हैं ॥५ ॥

[७४ - अग्नि सूक्त (७१)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

१९०८. परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥

हे अरणिमंथन से प्रकट अग्निदेव ! आप उन राक्षसों का नाश करें , जो यज्ञादि कर्म में बिघ्न उपस्थित करते हैं । हे अग्निदेव ! इन मारने वालों को नष्ट करने के लिए ही हम आपको सब ओर से धारण करते हैं ॥१ ॥

[७५ - इन्द्र सूक्त (७२)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।]

१९०९. उत् तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् । यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन ।

हे ऋत्विजो ! आप वसन्त ऋतु आदि में होने वाले यज्ञ में इन्द्रदेव के निमित्त पक रहे यज्ञीय भाग का निरीक्षण, आसन से उठकर करते रहें । परिपक्व होने तक इन्द्रदेव की स्तुति करते रहें । पके भाग से इन्द्रदेव के लिए अग्नि में आहुति दें ॥१ ॥

१९१०. श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव !आपके निमित्त पकाया जा रहा हविर्भाग पक चुका है तथा आपके याग का समय हो रहा है, अत: आप शीघ्रता से आएँ ।ऋत्विग्गण आपके निमित्त सोमपूरित पात्र लिए हुए हैं । हम सब आपकी उपासना उसी प्रकार कर रहे हैं, जिस प्रकार कुल के रक्षक पुत्रगण विचरण करते हुए संघपति पिता की उपासना करते हैं ॥२ ॥

[७६ - इन्द्र सूक्त (७२)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१९११. श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ॥१ ॥

यह दुग्ध गौ के थनों (स्तन) में पका, फिर अग्नि पर पकाया गया है, इसके पश्चात् इससे दधि बनाया गया, अतएव यह हविरूप सत्य और नवीन है । हे अनेक कर्मों के कर्त्ता वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप मध्य दिन के समय निचोड़े दधि मिश्रित सोम का पान करें ॥१ ॥

[७७ - घर्म सूक्त (७३)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता** - घर्म, अश्विनीकुमार । **छन्द**- त्रिष्टुप्,१, ४, ६ जगती, २ पथ्याबृहती ।]

१९१२. समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥१ ॥

हे दोनों बलवान् अश्विनीकुमारो ! आप द्युलोक के देवताओं में अग्रणी हैं । प्रदीप्त अग्नि के ताप द्वारा भली प्रकार तपाया गया घृत पात्र में है । आप दोनों के निमित्त (गौ दुग्ध) मधुर रस का दोहन कर लिया है । हम हवि पूरित घर वाले स्तोता, आपको यज्ञ में बुलाते हैं ॥१ ॥

१९१३. समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥२ ॥

हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले दोनों अश्विनीकुमार ! अग्नि प्रदीप्त हो गई है, घृत तपाया जा चुका है । गोदुग्ध का दोहन कर लिया गया है । शत्रुसंहारक अश्विनीकुमारों की स्तुति द्वारा सेवा करके होता गण आनन्दित हो रहे हैं ॥२ ॥

१९१४. स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥३ ॥

प्रदीप्त प्रवर्ग्य नाम का यह यज्ञ दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त ही है । जिस विशेष पात्र चमस के द्वारा अश्विनीकुमार रस पान करते हैं और जिससे देवों को हव्य अर्पित किया गया है, वह पात्र पवित्र है । उसी पात्र के द्वारा समस्त देवता अग्निरूपी मुख से अपना भाग ग्रहण करते हैं ॥३ ॥

१९१५. यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥४ ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! वह घृतयुक्त गोदुग्ध पात्रों में भर दिया है । यह आपका भाग है, अतः आप दोनों आएँ । हे माधुर्ययुक्त, यज्ञस्वरूप, पालनकर्त्ता देवो ! आप आकर इस तपे हुए घर्म (परिपक्व रस) का पान करें ॥४ ॥

१९१६. तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥५ ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! यह तपाया गया तेजरूपी दुग्ध आप दोनों को प्राप्त हो । हवन करने वाले अध्वर्युगण दुग्धसहित आपकी सेवा करें । आप दोनों स्वस्थ गौ के इस मधुर घृतयुक्त दुग्ध को ग्रहण करें ॥५ ॥

१९१७. उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥६ ॥

हे अध्वर्यो ! आप गोदुग्ध का दोहन कर, उसे यज्ञशाला में लाएँ । उस दुग्ध को तपाने के लिए पात्र में डालें । श्रेष्ठ सविता देवता उषाकाल के पश्चात् सुशोभित होते हुए सम्पूर्ण स्वर्गलोक को प्रकाशित कर रहे हैं ॥६ ॥

१९१८. उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥७ ॥

सुखपूर्वक दुहने योग्य गौ का हम आवाहन करते हैं ।इस गाय का दुग्ध स्वच्छ हाथों से दुहें ।इस 'सव' उपनाम वाले दुग्ध को सर्वप्रेरक सवितादेव हम सबके लिए प्रेरित करें ।प्रदीप्त तेजस्वी घर्म (यज्ञ) हमें उपदेश दें ।

१९१९. हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥८ ॥

हिंकार शब्द करती हुई, मन से बछड़े को चाहने वाली गौ (दिव्यवाणी) आ गई है । यह अबध्य (न मारने योग्य) गौ दोनों अश्विनीकुमारों सहित अन्य देवों के लिए दुग्ध प्रदान करे ।यह सौभाग्य को बढ़ाने वाली हो ॥८ ॥

१९२०. जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥९ ॥

हे सबके द्वारा सेवित दानेच्छु अग्निदेव ! आप हमारी भक्ति से प्रसन्न होकर, हमारे यज्ञ में पधारें और हमारे शत्रुओं को सेनासहित नष्टकरके , उनके द्वारा भोगे जाने वाला धन हमें प्रदान करें ॥९ ॥

१९२१. अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥१० ॥

हे देव अग्ने ! आपका प्रदीप्त तेज ऊर्ध्वगामी एवं सौभाग्यशाली हो । आप उदार हृदय से हमें धन प्रदान करें । आपकी कृपा से हम दोनों पति-पत्नी समान मन वाले होकर, आपकी सेवा करते रहें । आप हमारे शत्रुओं का नाश करें ॥१० ॥

१९२२. सूयवसाद् भगवती हि भूया अधावयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥११ ॥

हे घर्मदुधे ! आप उत्तम घास को खाएँ एवं सौभाग्यशाली बनें । हम भी भाग्यशाली हों । आप घास भक्षण करती हुई, शुद्ध जल का पान करें ॥११ ॥

[७८ - गण्डमालाचिकित्सा सूक्त (७४)]

[**ऋषि-** अथर्वाङ्गिरा । देवता- जातवेदा । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१९२३. अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥१ ॥

काले रंग की पिशाचिनी गण्डमाला रोग की माता है, ऐसा सुना जाता है; उन सब प्रकार की गण्डमालाओं को 'मुनि' नाम वाली दिव्य ओषधि के द्वारा मैं नष्ट करता हूँ ॥१ ॥

[मुनि नाम से अनेक ओषधियाँ जानी जाती हैं, यथा मदन, दमनक, बक, पलाश आदि ।]

१९२४. विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् ।
इदं जघन्या मासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव ॥२ ॥

गण्डमाला रोग चाहे प्रारम्भिक अवस्था, मध्यम अवस्था एवं अन्तिम अवस्था का (जो भी) हो, हम इन तीनों अवस्था वाली गण्डमाला का नाश करते हैं ॥२ ॥

१९२५.त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम् ।अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि॥

हे क्रोधी और ईर्ष्यालु पुरुष ! हम तुम्हारी ईर्ष्यालु अथवा क्रोधी प्रवृत्ति को सूक्ष्म विवेचनात्मक वाणी द्वारा शान्त करते हैं ॥३ ॥

१९२६. व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥४ ॥

हे व्रतशील, जातवेदा अग्निदेव ! आप व्रतयुक्त होकर हर्षित मन से हमारे घर में प्रदीप्त रहें । हम सब पुत्र-पौत्रों सहित आपकी उपासना करें ॥४ ॥

[७९ - अघ्न्या सूक्त (७५)]

[**ऋषि-** उपरिबभ्रव । **देवता-** अघ्न्या । **छन्द-** १त्रिष्टुप्, २ त्र्यवसाना भुरिक् पथ्यापंक्ति ।]

१९२७. प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥१ ॥

हे गौ माता ! रुद्रदेव आपको कष्ट न दें । व्याघ्र आदि हिंसक पशु आपसे दूर रहें, चोर आपका अपहरण न कर सकें । आप उत्तम प्रकार के बछड़ों सहित, तृण और निर्मल जल वाले क्षेत्र में विचरती हुई, उन्हें ग्रहण करें ॥१ ॥

१९२८. पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः ।
उप मा देवीर्देवेभिरेत । इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥२ ॥

हे आनन्द देने वाली गौओ ! आप अपने निवास को भली प्रकार जानने वाली हैं । अनेक दिव्य नाम एवं बछड़ों वाली, आप हमारे निकट आएँ । आप हमारी गोशाला एवं घर को दुग्ध, घृत आदि गव्य पदार्थों से समृद्धशाली बनाएँ ॥२ ॥

[८०- गण्डमालाचिकित्सा सूक्त (७६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अपचिद् भैषज्य । **छन्द-** १ विराट् अनुष्टुप्, २ परोष्णिक्, ३-४ अनुष्टुप् ।]

१९२९.आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः । सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः॥

गण्डमाला रोग (बहने वाला) तथा बुरी से भी बुरी पीड़ा देने वाला होता है । यह मंत्र और ओषधि द्वारा नष्ट हो । गण्डमाला रोग से ग्रसित जन, 'सेहु' से अधिक निर्वीर्य होते हैं । यह गण्डमाला नमक की अपेक्षा अधिक स्रवणशील है ॥१ ॥

१९३०. या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः । विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ॥२॥

गले में होने वाली गण्डमाला बगल में (काँख में) होने वाली गण्डमाला एवं गुह्य स्थानों में होने वाली गण्डमाला स्वयं स्रवणशील होती है ॥२ ॥

१९३१. यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति ।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः ॥३ ॥

जो क्षय रोग अस्थियों में व्याप्त होता है, जो मांस का क्षय कर देता है, जो रोग ककुदि (गर्दन के नीचे पृष्ठ भाग) में जम जाता है, यह रोग अधिक स्त्री के साथ अधिक असंयमित जीवनयापन करने से होता है । ओषधि एवं अग्निदेव उसे नष्ट करें ॥३ ॥

१९३२. पक्षी जायान्यः पतति स आविशति पूरुषम्।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥४॥

इस क्षय रोग के उत्पन्न करने वाले विषाणु हवा में उड़ते हुए पुरुष देह तक पहुँचकर, उसे प्रभावित कर लेते हैं। कम या पुराने समय से पीड़ित क्षय रोगी को मंत्राभिमंत्रित वीणा तंत्री खण्ड आदि ओषधि स्वस्थ करती है ॥४॥

[८१ - गण्डमालाचिकित्सा सूक्त (७६)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- जायान्य और इन्द्र । **छन्द**- भुरिक् अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।]

१९३३. विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे।
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥१॥

असंयमित जीवन जीने से उत्पन्न हे क्षयरोग ! हम तेरी उत्पत्ति को जानते हैं। जिस घर में हवन होता है, उस घर में तू कैसे पहुँच सकता है ?

[ओषधियुक्त यज्ञ- धूम्र का प्रभाव क्षय रोग को ठीक करने में प्रभावी है, यह अनेक बार अनुभव किया जा चुका है। यज्ञ उससे बचाव करता है।]

१९३४. धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥२॥

हे शत्रुओं को दबाने वाले शूर इन्द्रदेव ! आप पात्र में रखे सोमरस का पान करें। आप वृत्रासुर का संहार करने वाले हैं। मध्य दिन के समय आप सोम का पान कर प्रसन्न होकर हमें धन से युक्त करें ॥२॥

[८२ - शत्रुनाशन सूक्त (७७)]

[**ऋषि**- अङ्गिरा । **देवता**- मरुद्गण । **छन्द**- त्रिपदा गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।]

१९३५. सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। अस्माकोती रिशादसः ॥१॥

हे सूर्य से सम्बन्धित मरुद् देवगणो ! आपके निमित्त तैयार की गई इस हवि का आप सेवन करें और शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥१॥

१९३६. यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥२॥

हे धन देने वाले मरुद्गणो ! यदि कोई मनुष्य परोक्षरूप से हमारे चित्त को क्षुब्ध करना चाहे, उसे वरुणदेव के पाश बाँध लें और आप उस प्रहार की इच्छा वाले पुरुष का संहार करें ॥२॥

१९३७. संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥३॥

प्रत्येक संवत्सर में प्रकाशित होने वाले, उत्तम मन्त्रों द्वारा स्तुत्य, विशाल अन्तरिक्ष में निवास करने वाले, वर्षा करने वाले, मानवों का कल्याण करने वाले, शत्रुओं को पीड़ित करने वाले मरुद्देव हमें पाप- बन्धनों से मुक्त करें ॥

[८३- बन्धमोचन सूक्त (७८)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।]

१९३८. वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्। इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥१॥

मैं (प्रयोक्ता) तुम्हारी रोग बन्धनरूप रस्सियों को खोलता हूँ । कण्ठ प्रदेश, बगल की, मध्यदेश की एवं निम्नदेशीय (रोगजनित) गाठों से तुम्हें मुक्त करता हूँ । हे अग्निदेव ! आप इस रोगार्त के अनुकूल होकर बढ़ें ॥१ ॥

१९३९. अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपको इस यजमान का बल बढ़ाने एवं हवि वहन करने के लिए बुलाते हैं । आप कृपा करके इस रोगी के स्वास्थ्य लाभ हेतु इन्द्रादि देवों से प्रार्थना करें । हमें पुत्र, धन आदि से समृद्ध करें ॥२ ॥

[८४ - अमावास्या सूक्त (७९)]

[**ऋषि**--अथर्वा ।**देवता**-- अमावास्या । **छन्द**--१ जगती, २-४ त्रिष्टुप्]

अमावास्या का अर्थ होता है- "एकत्र वास करने वाली" । इस समय सूर्य (उग्रदेव) तथा चन्द्र (शान्तदेव) एक साथ रहते हैं । दिव्यशक्तियाँ या श्रेष्ठ संकल्प युक्त मानव जब एक साथ होकर पुरुषार्थ करते हैं, तब ऐसा योग बनता है -

१९४०. यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१ ॥

हे अमावास्ये ! आपके महत्त्व को स्वीकार करके देवगणों ने आपको हवि का जो भाग अर्पित किया है, उसे ग्रहण कर हमारे इस यज्ञ को पूर्ण करें । आप हमें कार्यकुशल, सुन्दर पुत्रादि सहित धन प्रदान करें ॥१ ॥

१९४१. अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥२ ॥

मैं अमावास्या का अधिष्ठाता देव हूँ । श्रेष्ठ कर्म करने वाले देवता मेरे में वास करते हैं और साध्यसहित इन्द्रादि दोनों प्रकार के देवता मुझ में आकर समभाव से रहते हैं ॥२ ॥

१९४२. आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥३ ॥

समस्त वसुओं को मिलाने वाली पुष्टिकारक और बल-वर्द्धक धन देने वाली प्रतिक्षिन अमावास्या वाली रात्रि आ गई है ।इसके निमित्त हम हवि अर्पित करते हैं । वे हमें अन्न, दुग्ध, अन्य रस एवं धन आदि से पुष्ट करें ॥३॥

१९४३. अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४ ॥

हे अमावास्ये ! आपके अतिरिक्त कोई अन्य देवता समस्त जगत् की रचना करने में समर्थ नहीं है । हम आपको हवि अर्पित करते हुए मनोकामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना करते हैं । हवि ग्रहण करके आप हमारी मनोकामनाओं को पूर्ण करते हुए हमें धन प्रदान करें ॥४ ॥

[८५- पूर्णिमा सूक्त (८०)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- १-२,४ पौर्णमासी, ३ प्रजापति । **छन्द**- त्रिष्टुप, २ अनुष्टुप ।]

१९४४. पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥१ ॥

पूर्ण चन्द्र वाली तिथि को पूर्णमासी कहते हैं । पूर्व में, पश्चिम में एवं मध्य में यह दमकती है ।

उसमें देवताओं के साथ रहते हुए हम स्वर्ग से ऊपर अन्नरस प्राप्त कर आनन्दित हों ॥१ ॥

१९४५. वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे । स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥

अभिलषित फल के देने वाले हविरूप, अन्नरूप अन्न वाले पूर्णमास का हम यजन करते हैं । वे पूजित पूर्णमास प्रसन्न होकर अक्षय एवं अविनाशी धन प्रदान करें ॥२ ॥

१९४६. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥३ ॥

हे प्रजापतिदेव ! आप सर्वत्र व्याप्त होकर समस्त रूपों के सृजेता हैं, अन्य कोई ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं । जिन कामनाओं से हम आहुति अर्पित करते हैं, उन्हें आप पूर्ण करें एवं हमें धन प्रदान करें ॥३ ॥

१९४७. पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥४ ॥

पूर्णिमा तिथि, दिन तथा रात्रि दोनों में प्रथम यज्ञ करने योग्य है । हे पूजनीय पूर्णिमा ! जो यज्ञों द्वारा आपकी पूजा करते हैं; उन श्रेष्ठ कर्म करने वालों को स्वर्गधाम में प्रवेश मिलता है ॥४ ॥

[८६-सूर्य-चन्द्र सूक्त (८१)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- सावित्री, सूर्य और चन्द्रमा । **छन्द**- त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपंक्ति, ५ संम्राडास्तारपंक्ति ।]

१९४८. पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥१ ॥

माया (कौशल) के द्वारा आगे-पीछे चलते हुए दो बालक (सूर्य और चन्द्र) क्रीडा करते हुए से एक दूसरे का पीछा करते हुए समुद्र तक पहुँचते हैं । उनमें से एक (सूर्य) समस्त भुवनों को प्रकाशित करता है और दूसरा (चन्द्र) ऋतुओं को बनाता हुआ स्वयं नवीन-नवीन (नई कलाओं वाले) रूपों में उत्पन्न होता है ॥१ ॥

१९४९. नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२ ॥

हे चन्द्रदेव ! आप कला बदलते रहने के कारण नित्य नवीन हैं । आप उसी तरह तिथियों के ज्ञापक हैं, जिस तरह केतु (ध्वजा) किसी स्थान विशेष का ज्ञापन करता है । हे सूर्यदेव ! आप दिनों का ज्ञापन करते हुए, उषाकाल के अन्तिम समय में प्रकट होते हैं । आप समस्त देवताओं को उनका उचित हविर्भाग अर्पित करते हैं और चन्द्रदेव दीर्घ आयु प्रदान करते हैं ॥२ ॥

१९५०.सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ॥३ ॥

हे सोम के अंश ! हे युद्धों के स्वामी ! आपका यश कभी क्षीण नहीं होता । हे दर्शनीयदेव ! आप प्रसन्न होकर हमें प्रजा एवं श्रेष्ठ धनादि से परिपूर्ण करें ॥३ ॥

१९५१. दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥४ ॥

हे दर्शनीय सोम !आप दर्शन करने योग्य हैं ।आप अनेक कलाओं द्वारा विकसित होकर (पूर्णिमा पर) समग्र हो जाते हैं । आप स्वयं पूर्ण हैं, अतएव हमको भी अश्व, गौ, सन्तान, घर एवं धनादि से अन्त तक परिपूर्ण रखें ॥४ ॥

१९५२. योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥५ ॥

हे सोमदेव ! जो शत्रु हमसे द्वेष करते हैं, उनसे हम भी द्वेष करते हैं । आप उन शत्रुओं के प्राणों (को खींचकर उन) से आगे बढ़ें । हमें भी अश्व, गौ आदि पशु एवं घर, धनादि द्वारा सम्पन्न करें ॥५ । ।

१९५३. यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥६ ॥

जिन एक कलात्मक सोमदेव को देवता शुक्लपक्ष में प्रतिदिन एक-एक कला से बढ़ाते हैं । जिस क्षयरहित सोम का अविनाशीदेव भक्षण करते हैं । देवाधिपति इन्द्रदेव, वरुणदेव एवं बृहस्पतिदेव उस सोम के द्वारा हमारा कल्याण करते हुए हमें आगे बढ़ाएँ ॥६ ॥

[८७ - अग्नि सूक्त (८२)]

[**ऋषि**- शौनक । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप्, २ ककुम्मती बृहती, ३ जगती ।]

१९५४. अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥१ ॥

हे गौ (वाणी) ! सुन्दर स्तुतियों द्वारा आप अग्नि की अर्चना करें एवं हमें कल्याणकारी धन प्रदान करें । हम इस यज्ञ में देवताओं को लाएँ और आपकी कृपा से यज्ञ में घृत की धाराएँ मधुर भाव से देवताओं की ओर चलें ॥१॥

१९५५. मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥२ ॥

हम सर्वप्रथम आहुतियों के आधार अग्नि को धारण करते हैं, क्षात्र-शौर्य एवं ज्ञान के तेज के साथ अग्नि को धारण करते हैं । हमें प्रजा एवं आयुष्य प्राप्त हो, इस निमित्त हम अग्निदेव को समिधादि समर्पित करते हैं ॥२ ॥

१९५६. इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हमसे वैर भाव रखने वालों पर आप प्रसन्न न हों । हम आपकी सेवा करते हैं, आप हम पर प्रसन्न होकर हमें ऐश्वर्यशाली बनाएँ । आप अपने रूप में बल सहित स्थिर हों । आपकी सेवा करने वाले का प्रभाव बढ़े और वह सब प्रकार समृद्ध हो ॥३ ॥

१९५७. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥४ ॥

उषाकाल के साथ ही अग्निदेव प्रकाशित होते हैं । यह जातवेदा अग्नि प्रथम उषाकाल में सूर्यरूप में प्रकट होते हैं, पुन: दिन को प्रकाशित करते हुए अपनी प्रकाशित-किरणों द्वारा सम्पूर्ण द्यावापृथिवी में प्रकाश फैलाते हैं ॥

१९५८. प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥५ ॥

प्रत्येक उषाकाल में अग्निदेव प्रकाशित होते हैं । यह प्रतिदिन के साथ भी प्रकाशित होते हैं । जातवेदा सूर्यरूप अग्निदेव, सूर्य किरणों में भी स्वयं प्रकाशित होते हैं एवं समस्त द्यावा-पृथिवी में प्रकाश फैलाते हैं ॥५ ॥

१९५९. घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य१ आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥६ ॥

हे अग्ने !आपका घृत देवताओं के सह- निवास स्थान में है ।आज भी मनुदेव आपको घृत द्वारा प्रदीप्त करते हैं । आपके नप्ता (नाती) जल-घृत को अभिमुख लाएँ और गौएँ आपके लिए घृतयुक्त दुग्ध प्रदान करें ॥६ ॥

[यज्ञ से बादल, बादल से जलवृष्टि , वृष्टि से उत्पन्न तृण खाकर गौएँ अधिक दुग्ध प्रदान करती हैं ।]

[८८ - पाशमोचन सूक्त (८३)]

[**ऋषि-** शुन: शेप । **देवता-** वरुण । **छन्द-** अनुष्टुप्, २ पथ्यापंक्ति, ३ त्रिष्टुप्, ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।]

१९६०. अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१ ॥

हे राजन् वरुणदेव ! आपका स्वर्णमय घर जल में है । वे व्रत धारणकर्त्ता वरुणदेव समस्त धामों को बन्धन मुक्त करें ॥१ ॥

१९६१. धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥२ ॥

हे राजन् वरुणदेव ! आप हमारे शरीर में स्थित सभी रोगों से हमको मुक्त करें । आप रोग एवं पाप से हमारी रक्षा करें । हम वाणी के दुरुपयोगजनित पाप से मुक्त हों ॥२ ॥

१९६२. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥३ ॥

हे वरुणदेव ! आप हमारे शरीर के ऊर्ध्वभाग वाले पाश को ऊपर की ओर खींचकर नष्ट करें, मध्य पाश को खींचकर अलग करें एवं नीचे के भाग में स्थित पाश को निकालकर नष्ट करें, फिर हम समस्त पाशों से मुक्त होकर अखण्डित स्थिति में रहें ॥३ ॥

१९६३. प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४ ॥

हे वरुणदेव ! आप हमें अपने उत्तम एवं अधम दोनों प्रकार के पाशों से मुक्त करें । दु:स्वप्न देखने से होने वाले पापों को दूर करें । पाश और पापों से मुक्त होकर हम पुण्यलोक प्राप्त करें ॥४ ॥

[८९ - क्षत्रभृदग्नि सूक्त (८४)]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-** १अग्नि, २-३ इन्द्र । **छन्द-**१ जगती, २-३ त्रिष्टुप् ।]

१९६४. अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप अमर, बलशाली एवं समस्त उत्पन्न हुए प्राणियों को जानने वाले हैं । आप हमारे इस कार्य में प्रदीप्त होकर समस्त रोगों का शमन करें एवं हमें कल्याणकारी साधनों से सुरक्षित रखें ॥१ ॥

१९६५. इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव !आप श्रेष्ठ क्षात्रबल वाले हैं। हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले अग्निदेव ! आप हमसे दुर्व्यवहार करने वाले हमारे शत्रुओं को विनष्ट करें एवं देवगण जहाँ निवास करते हैं, उस स्वर्गलोक को प्राप्त कराएँ ॥२ ॥

१९६६. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥३ ॥

पर्वत निवासी, खतरनाक पंजे वाले, भयंकर सिंह के समान बलशाली इन्द्रदेव दूर के लोक से आएँ। हे इन्द्रदेव ! आप अपने तीक्ष्ण किये गये वज्र के द्वारा संग्राम में शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए उनका नाश करें ॥३ ॥

[९० - अरिष्टनेमि सूक्त (८५)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** तार्क्ष्य । **छन्द-** त्रिष्टुप्।

१९६७. त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१ ॥

जो सुपर्ण बलवान् हैं, देवगणों ने सोम आहरण के लिए जिन्हें प्रेरित किया था, जो मुझ अरिष्टनेमि के पिता एवं शत्रुओं को पराजित करने वाले तथा शीघ्र गमन करने वाले हैं, ऐसे प्रसिद्ध तृक्षपुत्र सुपर्ण (गरुड़) का हम आवाहन करते हैं ॥१ ॥

[९१ - त्राता इन्द्र सूक्त (८६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्।

१९६८. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु ॥१ ॥

भय से रक्षा करने वाले, समस्त प्रकार के संघर्षों में बुलाने योग्य इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं। हम शक्र पुरुहूत इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे धनवान् इन्द्रदेव हमारा सब प्रकार कल्याण करें ॥१ ॥

[९२- व्यापकदेव सूक्त (८७)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** रुद्र । **छन्द-** जगती ।]

१९६९. यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥१ ॥

उन अग्नि के समान तेजस्वी रुद्रदेव को हम नमस्कार करते हैं, जो अग्नि में, जल में. ओषधियों में समा गये हैं एवं जो समस्त सृष्टि के प्राणियों की रचना करने वाले हैं ॥१ ॥

[९३ - सर्पविषनाशन सूक्त (८८)]

[**ऋषि-** गरुत्मान् । **देवता-** तक्षक । **छन्द-** त्र्यवसाना बृहती ।]

१९७०. अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था विषमिद्
वा अपृक्थाः। अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥१ ॥

हे विष ! तुम सबके शत्रु हो । तुम इस (दंशित) व्यक्ति से निकलकर उस सर्प में प्रवेश करो एवं उस सर्प के भी शत्रुरूप होकर उसे मार डालो ॥१ ॥

[९४ - दिव्यआपः सूक्त (८९)]

[ऋषि- सिन्धुद्वीप । देवता- अग्नि । छन्द- अनुष्टुप्, २ त्रिपदा निचृत् परोष्णिक् ।]

१९७१. अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।

पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१ ॥

मैं दिव्य जल के रस से युक्त हो जाऊँ । हे अग्निदेव ! मैं आपके पास दुग्ध लेकर आया हूँ, कृपा कर आप मुझे तेजस्वी बनाएँ ॥१ ॥

१९७२. सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें पवित्र बल से युक्त करें । आपकी इस कृपा से, हमें ऋषि एवं देवताओं सहित इन्द्रदेव भी पवित्र मानें । आप सब हमें पुत्र-पौत्र और दीर्घ आयु प्रदान करें ॥२ ॥

१९७३. इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम्

हे जल समूह ! हमने जो निन्दा, असत्य भाषण, ऋण न चुकाना, पिता से द्रोह करना जैसे पापकर्म किये हैं; आप इन पापों के समूह को हमसे दूर करें एवं हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१९७४. एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार आप बल द्वारा तेजस्वी होकर शत्रुओं का नाश करते हैं, उसी प्रकार हमें तेजस्वी बनाएँ ॥४ ॥

[९५ - शत्रुबलनाशन सूक्त (९०)]

[ऋषि- अङ्गिरा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- १ गायत्री, २ विराट् पुरस्ताद् बृहती,
३ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिक् जगती ।]

१९७५. अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम् । ओजो दासस्य दम्भय ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप इस हिंसक शत्रु के बल एवं ओज को उसी तरह नष्ट करें, जिस प्रकार पुराने शत्रुओं के बल- वीर्य को नष्ट किया है ॥१ ॥

१९७६. वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै ।

म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥२ ॥

हम शत्रु के एकत्रित किये गये धन को इन्द्रदेव की सहायता से प्राप्त करते हैं तथा वरुणदेव की सहायता से शत्रु के तेजस्वी घमंड को नष्ट करते हैं ॥२ ॥

१९७७. यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः ।अवस्थस्य क्नदीवतः

शाङ्कुरस्य नितोदिनः । यदाततमव तत्तनु यदुत्ततं नि तत्तनु ॥३ ॥

नीच स्तर की वाणी द्वारा, काँटे (शूल) के समान पीड़ा देने वाले मनुष्य का फैला हुआ आतंक नष्ट हो । इनकी शारीरिक सामर्थ्य का पतन हो जाए । ये शरीर के अवयव स्त्रियों को पीड़ित न कर सकें ॥३ ॥

[९६ - सुत्रामा इन्द्र सूक्त (९१)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- चन्द्रमा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९७८. इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१ ॥

श्रेष्ठ रक्षक इन्द्रदेव अपने सुखकारी रक्षा साधनों से हमारी रक्षा करें । समस्त धन से सम्पन्न इन्द्रदेव हमें धन प्रदान करें एवं शत्रुओं का संहार करके हमें निर्भयता प्रदान करें ॥१ ॥

[९७ - सुत्रामाइन्द्र सूक्त (९२)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- चन्द्रमा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९७९. स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव श्रेष्ठ रक्षक हैं, अतएव अपनी शक्ति से शत्रुओं को हमारे पास से कहीं दूर भगा देते हैं । ऐसे इन्द्रदेव की कल्याण करने वाली सद्बुद्धि का अनुग्रह हमें प्राप्त होता रहे, जिससे हमारा कल्याण हो ॥१ ॥

[९८ - शत्रुनाशन सूक्त (९३)]

[ऋषि- भृग्वङ्गिरा । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

१९८०. इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥१ ॥

हमसे युद्ध करने की जिनकी इच्छा है, ऐसे शत्रुओं को हम इन्द्रदेव के सहयोग से पराजित करें । वे इन्द्रदेव पराजित शत्रुओं को समूल नष्ट करें ॥१ ॥

[९९ - सांमनस्य सूक्त (९४)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- सोम । छन्द- अनुष्टुप् ।]

१९८१. ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि । यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥

हम पुरोडाश आदि हवि सहित सुस्थिर सोम को सोम-शकट या पालकी आदि साधनों से इन्द्रदेव के निमित्त लाते हैं । इससे प्रसन्न होकर इन्द्रदेव हमारी सन्तानों को सुस्थिर मति प्रदान करें ॥१ ॥

[१०० - शत्रुनाशन सूक्त (९५)]

[ऋषि- कपिञ्जल । देवता- गृध्रद्वय । छन्द- १ अनुष्टुप्, २-३ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

१९८२.उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः । उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥

शत्रु के ओष्ठ चिर जाएँ या उसके प्राण और अपान शरीर से निकलकर आकाश में उसी तरह से उड़ जाएँ, जिस प्रकार गिद्ध उड़ते हैं ॥१ ॥

१९८३. अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव ।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥२ ॥

जिस प्रकार थके हुए बैलों को, भौंकते हुए कुत्तों एवं भेड़ियों को लोग बलपूर्वक भगा देते हैं, उसी प्रकार शत्रु के प्राणों को हम बलपूर्वक अलग करते हैं ॥२ ॥

१९८४. आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत।
अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमाञ्जभार ॥३ ॥

हम उस शत्रुरूप स्त्री अथवा पुरुष के मर्म स्थानों को पीड़ित करते हैं, जिनने हमारे धन का हरण कर लिया है, वे स्त्री या पुरुष इस पीड़ा से व्यथित हो, प्राण त्याग दें ॥३ ॥

[१०१ - शत्रुनाशन सूक्त (९६)]

[**ऋषि-** कपिञ्जल । **देवता-** वय । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१९८५. असदन् गावः सदनेऽपप्तद् वसतिं वयः।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥१ ॥

जिस प्रकार गौएँ गोशाला में, पक्षी अपने घोंसले में सुखपूर्वक रहते हैं और पर्वत अपने सुनिश्चित स्थान में स्थित रहते हैं, उसी प्रकार शरीर में दोनों वृक्कों (गुर्दों) को हम स्थापित करते हैं ॥१ ॥

[यहाँ शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वृक्क (रक्त की सफाई करने वाले अंग) के महत्त्व को स्पष्ट किया है ।]

[१०२ - यज्ञ सूक्त (९७)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** इन्द्राग्नी । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ५ त्रिपदार्ची भुरिक् गायत्री, ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ त्रिपदा साम्नी भुरिक् जगती, ८ उपरिष्टाद् बृहती ।]

१९८६. यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥१ ॥

हे ज्ञानी होता अग्निदेव ! हम आपका वरण करते हैं। हे बलशाली ! आप शान्तिपूर्वक पधारें एवं सोम रूप हवि को ग्रहण करें ॥१ ॥

१९८७. समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥२ ॥

हे हरित वर्ण के अश्वों वाले इन्द्रदेव ! आप हमें श्रेष्ठ मन, उत्तम वाणी एवं कल्याणकारी विद्वानों से युक्त करें। हमें देवों का हित करने वाले ज्ञान तथा देवों की शुभ मति की ओर ले चलें ॥२ ॥

१९८८. यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥३ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! हवि की कामना वाले जिन देवताओं का आपने आवाहन किया है, कृपा करके उन्हें सुनिश्चित उत्तम स्थान में भेजें। हवि आदि का सेवन मधुर रसों (घृत, सोम आदि) का पान करने वाले हे वसुगणो ! आप याजक को धन- धान्यादि प्रदान करें ॥३ ॥

१९८९. सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥४ ॥

हे देवताओ !हमने आप सब के लिए उत्तम आवासों का निर्माण किया है ।इस यज्ञ में अर्पित हवि को आपने ग्रहण किया है ।अब आप प्रसन्न होकर अपने श्रेष्ठ धन हमें प्रदान करके स्वयं प्रकाशित द्युलोक पर आरोहण करें ।

[यज्ञीय प्रक्रिया से देव-शक्तियों के लिए सूक्ष्म जगत् में रुचिकर वातावरण बनता है, उससे हर्षित होकर देव शक्तियाँ दिव्य अनुदान देती हैं ।]

१९९०. यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥५ ॥

हे यज्ञदेव !आप हमारे यज्ञ, यज्ञपति तथा अपने आश्रयस्थान को जाएँ, यह आहुति आपके लिए अर्पित है ।

१९९१. एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥६ ॥

(हे याजक) ! यह सूक्त एवं मंत्रों द्वारा विधिपूर्वक होने वाला यज्ञ आपको कल्याणकारी सामर्थ्य से युक्त करे । (इस भाव से) यह आहुति समर्पित है ॥६ ॥

१९९२. वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥७ ॥

जिन देवगणों का यजन किया गया एवं जिनका यजन नहीं किया गया, उन समस्त देवताओं के लिए यह आहुति अर्पित है । हे मार्गों को जानने वाले देवताओ ! जिस मार्ग से आप आये थे, इस सत्कर्म के समापन के पश्चात् आप उसी मार्ग से अपने-अपने स्थानों को वापस जाएँ ॥७ ॥

१९९३. मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥८ ॥

हे मन के स्वामी ! आप हमारे इस यज्ञ को द्युलोक में देवताओं तक पहुँचाएँ एवं पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक एवं समस्त वायु मण्डल में इसे स्थापित करें । यह आहुति स्वाहुत (भली प्रकार समर्पित) हो ॥८ ॥

[मनः शक्ति के द्वारा यज्ञ से उत्पन्न सत्प्रभावों को विश्वमण्डल में स्थापित किया जा सकता है ।]

[१०३ - हवि सूक्त (९८)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- इन्द्र, विश्वेदेवा । **छन्द**- विराट् त्रिष्टुप् ।]

१९९४. सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥१ ॥

घृत एवं हवन सामग्री से आहुतियाँ भरपूर (पर्याप्त) मात्रा में प्रदान की गई हैं । इनसे इन्द्र, वसु, मरुत् सहित समस्त देवतागण तृप्त हों । यह उत्तम आहुति देवताओं में प्रमुख देव इन्द्र को प्राप्त हो ॥१ ॥

[१०४ - वेदी सूक्त (९९)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- वेदी । **छन्द**- भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

१९९५. परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ॥१ ॥

(हे यज्ञदेव !) चारों ओर फैलकर वेदी को आच्छादित कर लें । याजक की बहिन (भावना-गति) को बाधित न करें । याजकों का घर हरीतिमायुक्त हो तथा यजमान को इस लोक में स्वर्ण-मुद्राएँ अथवा अलंकार प्राप्त हों ॥१ ।

[१०५ - दुःस्वप्ननाशन सूक्त (१००)]

[**ऋषि**- यम । **देवता**- दुःष्वप्न नाशन । **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

१९९६. पर्यावर्तेदुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१ ॥

हम दुःस्वप्न से होने वाले पाप से मुक्त होते हैं । हम ज्ञान की मध्यस्थता द्वारा स्वप्नों को एवं शोक आदि से उत्पन्न पाप को दूर करते हैं, इनसे मुक्त होते हैं ॥१ ॥

[१०६ - दुःस्वप्ननाशन सूक्त (१०१)]

[ऋषि- यम । देवता- दुःष्वप्ननाशन । छन्द-अनुष्टुप् ।]

१९९७. यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।

सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥१ ॥

हमने स्वप्न में जो अन्न खाया है, उसका प्रात: जागने पर कोई बोध नहीं होता और वे दिन में दिखाई नहीं देते फिर भी वे सब हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥१ ॥

[स्वप्नों में मिले स्थूल पदार्थ निरर्थक होते हैं; क्योंकि उनका यथार्थ जीवन में कोई उपयोग नहीं होता, फिर भी स्वप्नों में प्राप्त सूक्ष्म प्रेरणाएँ एवं संस्कार आदि कल्याणप्रद हो सकते हैं ।]

[१०७ - आत्मन -अहिंसन सूक्त (१०२)]

[ऋषि- प्रजापति । देवता- द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष, मृत्यु । छन्द- विराट् पुरस्तात् बृहती ।]

१९९८. नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।

मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वराः ॥१ ॥

हम द्यावा-पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं मृत्यु को नमस्कार करते हैं । इनके स्वामी अग्नि, वायु और सूर्यदेव सहित मृत्यु हमारा वध न करे, हम दीर्घकाल तक इसी लोक में रहें ॥१ ॥

[१०८ - क्षत्रिय सूक्त (१०३)]

[ऋषि- प्रजापति । देवता- ब्रह्मात्मा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९९९. को अस्या नो द्रुहो ऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।

को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ॥१ ॥

परस्पर द्रोह वृत्ति रूपी, इस निंदनीय दुर्गति रूपी पिशाचिनी से हमें कौन बचाएगा ? इस यज्ञ-अनुष्ठान की पूर्णता की कामना करने वाला कौन है ? हमें धन-ऐश्वर्य कौन देगा ? हमें दीर्घायुष्य कौन देवता प्रदान करता है ? ॥१ ॥

[जीवन के सहज क्रम में सामने आने वाले विकारों-अवरोधों के निवारण की प्रबल इच्छा होनी चाहिए । उसी आधार पर उपजी इच्छाशक्ति उनके निवारण के स्रोत खोज लेती है ।]

[१०९ - गौ सूक्त (१०४)]

[ऋषि- प्रजापति । देवता- ब्रह्मात्मा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२०००. कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।

बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥१ ॥

अथर्वा ने वरुणदेव को, विविध वर्णों की, सुखपूर्वक दुग्ध देने वाली, बछड़ेसहित गौएँ प्रदान कीं । बृहस्पति देव के मित्र प्रजापतिदेव इन गौओं को सब प्रकार से स्वस्थ रखें ॥१ ॥

[११० - दिव्यवचन सूक्त (१०५)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुप् ।]

२००१. अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।

प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥१ ॥

(हे साधक !) आप अपने समस्त सहपाठियों के साथ दिव्य वचनों को सुनकर उसे धारण करें एवं सामान्य मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले कार्यों से हटकर उच्च आचरण करते हुए देवत्व की ओर अग्रसर हों ॥१ ॥

[१११ - अमृतत्व सूक्त (१०६)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** जातवेदा, वरुण । **छन्द-** बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।]

२००२. यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥१ ॥

हे अग्ने ! स्मरण के अभाव में हमसे आचरण सम्बन्धी जो भूलें हो गई हैं, आप उन अपराधों को क्षमा करें । हे जातवेदा अग्निदेव ! आप इस प्रकार की भूलों से बचाएँ एवं हमारे मित्रों सहित हमें अमरता प्रदान करें ॥१ ॥

[११२ - संतरण सूक्त (१०७)]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-**सूर्य अथवा आपः । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

२००३. अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् ॥१ ॥

सूर्यदेव अपनी सात-किरणों से समुद्र की जल-धाराओं को पहले द्युलोक तक ले जाते हैं, फिर वहाँ से वृष्टि करते हैं । हे व्याधिग्रस्त पुरुष ! वे तुम्हारे शल्य के समान पीड़ादायक "कास" आदि रोग को नष्ट करें ॥१ ॥

[११३ - शत्रुनाशन सूक्त (१०८)]

[**ऋषि-** भृगुं । **देवता-**अग्नि । **छन्द-** बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।]

२००४. यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से जो हमें सताता है, वह चाहे हमारा अपना सम्बन्धी हो अथवा पराया, वह विद्वान् ही क्यों न हो, उसका निवास नष्ट हो जाए और वह सन्तानहीन हो जाए । उसे पीछे से दाँतों वाली रस्सी (चाबुक) पीड़ा पहुँचाए ॥१ ॥

२००५.यो नः सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! जो दुष्ट मुझ सोते या जागते हुए को अथवा चलते या बैठे हुए को, मारने की इच्छा करें, उसे आप वैश्वानर अग्निदेव के सहयोग से नष्ट कर दें ॥२ ॥

[११४ - राष्ट्रभृत सूक्त (१०९)]

[**ऋषि-** बादरायणि । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप्, १ विराट् पुरस्ताद् बृहती; ४, ७ अनुष्टुप् ।]

२००६.इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे॥

उग्रवीर बभ्रुदेव को हम नमस्कार करते हैं एवं अभिमन्त्रित घृत द्वारा पाँसों को ताड़ित करते हैं । पाँसों को वश में रखने वाले ये देव हमें इस जीत-हार वाले (जीवन रूपी) खेल में जीत प्रदान कर सुखी करें ॥१ ॥

२००७. घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप अन्तरिक्ष में निवास करने वाली अप्सराओं के लिए हमारे द्वारा अर्पित घृत पहुँचाएँ । जीत-हार के इस खेल में जो हमारे प्रतिद्वन्द्वी हैं, उन्हें जल और धूल से त्रस्त करें । इन्द्रदेव सहित अन्य देवता अपना हविर्भाग ग्रहण कर तृप्त हों ॥२ ॥

२००८. अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥३ ॥

सूर्यलोक में, भूलोक एवं दोनों के मध्य अन्तरिक्ष में अर्पित हवि से जो अप्सराएँ हर्षित हो रही हैं, वे प्रसन्न होकर, मेरे प्रतिद्वन्द्वी को मेरे वशीभूत करें । जैसे घृत सार है, वैसे ही खेल का सार विजय है, यह विजय रूपी घृत हमें हस्तगत कराएँ ॥३ ॥

२००९. आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥४ ॥

प्रतिद्वन्द्वियों के साथ इस खेल में हमें विजयरूप घृत से युक्त करें । हमारे प्रतिद्वन्द्वी को आप उसी तरह नष्ट करें, जिस प्रकार बिजली वृक्ष का नाश कर देती है ॥४ ॥

२०१०. यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।
स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥५ ॥

जिन देवताओं ने कृपा करके हमें इस खेल में विजयी बनाया है; जिन्होंने हमारे प्रतिपक्षी के अक्षों को कमजोर किया एवं हमें उसका धन दिलाया; वे देव हमारे द्वारा अर्पित हवि को ग्रहण करें । हम आनंदित गन्धर्वों के साथ आनंद पाएँ ॥५ ॥

२०११. संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्य१क्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६ ॥

हे गन्धर्वो !आप उग्र दृष्टि वाले, राष्ट्र के भरण-पोषण करने वाले एवं "संवसव" (भली प्रकार आवास देने) नाम वाले हैं । हम आपका यजन करते हैं, आप अर्पित हवि से प्रसन्न होकर हमें सम्पदाओं का स्वामी बनाएँ ॥६ ॥

२०१२. देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम ।
अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ॥७ ॥

हम धन प्राप्ति की इच्छा से अग्नि आदि देवताओं का आवाहन करते हैं । हम ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक बभ्रुदेव के पाँसों को स्पर्श करने का साहस करते हैं, वे देव हमें विजय-सुख प्रदान करें ॥७ ॥

[११५ - शत्रुनाशन सूक्त (११०)]

[**ऋषि-** भृगु । देवता- इन्द्राग्नी । छन्द- गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।]

२०१३. अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥१ ॥

हे अग्निदेव एवं इन्द्रदेव ! आप दोनों देव वृत्र का संहार करने वाले हैं । आप कृपा कर हम हविदाताओं को घेरने वाले पापों का भी क्षय करें । हम सब पाप-मुक्त हों ॥१ ॥

२०१४. याभ्यामजयन्त्स्व१रग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥२ ॥

जिन अग्निदेव और इन्द्रदेव ने देवताओं का सहयोग करके, उन्हें स्वर्ग प्राप्त कराया और समस्त भूतों में व्याप्त हो गये हैं। जो देवकर्मों के साक्षी एवं कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, ऐसे अग्निदेव एवं वज्रधारी इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

२०१५. उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! देवताओं के हितैषी बृहस्पतिदेव चमस पात्र से (यज्ञाहुति द्वारा) आपको (आपका समर्थन) प्राप्त किया है। उसी प्रकार सोम तैयार करने वाले इन यजमानों से प्रसन्न होकर, आप इनकी स्तुति स्वीकार करें एवं इन्हें धन प्रदान करें ॥३ ॥

[११६ - आत्मा सूक्त (१११)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । देवता- वृषभ । छन्द- पराबृहती त्रिष्टुप् ।]

२०१६. इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम्।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् ॥१ ॥

हे वृषभ ! आप सोमधारण करने वाले हैं। आप मानवों एवं देवताओं के आत्मारूप हैं। आप यहाँ प्रजा को उत्पन्न करें। यहाँ अथवा अन्यत्र जहाँ भी प्रजाएँ हों, वे सुखपूर्वक रहें ॥१ ॥

[११७ - पापनाशन सूक्त (११२)]

[**ऋषि**- वरुण । देवता- आपः, वरुण । छन्द- भुरिक् अनुष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।]

२०१७. शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१ ॥

द्यावा-पृथिवी महान् व्रत धारण करते हैं। ये हमें समीप से सुख देने वाले हैं। यहाँ सात दिव्य धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं, ये हमें पाप से बचाएँ ॥१ ॥

२०१८. मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्या दुत।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२ ॥

वरुणदेव हमें शाप, क्रोध एवं यम के बन्धनों से बचाएँ। देवगणों के प्रति हुए अनुचित कर्मजनित दोषों से भी वरुणदेव हमें मुक्त करें ॥२ ॥

[११८ - शत्रुनाशन सूक्त (११३)]

[**ऋषि**- भार्गव । **देवता** - तृष्टिका । **छन्द**- विराट् अनुष्टुप्, २ शंकुमती चतुष्पदा भुरिक् उष्णिक् ।]

२०१९. तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके। यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते ॥१ ॥

हे काम तृष्णा ! हे धन तृष्णा ! तुम अपने कुप्रभाव से स्त्री-पुरुष में द्वेष पैदा कर देती हो, उनके स्नेह सम्बन्धों को काट देती हो ॥१ ॥

२०२०. तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि। परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥२ ॥

हे तृष्णा ! तुम लोभमय हो । तुम विष लता जैसे विषैले प्रभाव वाली हो । जिस प्रकार वृषभ द्वारा त्याग देने से गाय बिना बछड़े वाली रहती है, उसी प्रकार तुम त्यागने योग्य हो ॥२ ॥

[तृष्णा आदि मनोविकार मन में आएँ, तो उन्हें अपने चिन्तन से पोषण नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से वृषभहीन गाय की तरह उनका तेज विकसित नहीं हो पाता ।]

[११९ - शत्रुनाशन सूक्त (११४)]

[**ऋषि-** भार्गव । देवता-अग्नीषोमा । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

२०२१. आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे ॥१ ॥

(हे द्वेषकारिणी अधम स्त्री !) हम तेरे मुख, वक्षस्थल आदि आकर्षक अंगों के तेज को नष्ट करते हैं । हृदय की कुत्सित भावनाओं को नष्ट करते हैं ॥१ ॥

[अपने सौन्दर्य से दूसरों को हीनता की ओर प्रेरित करने वाली नारी की तेजस्विता का हरण कर लेना लोकहित की दृष्टि से लाभप्रद माना गया है ।]

२०२२. प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः ।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥२ ॥

हे विकारों से बचने वाले स्त्री या पुरुष ! तुम्हारी शारीरिक व्याधियाँ एवं मानसिक दुःख दूर हों । तुम लोक-निन्दा से मुक्त हो । अग्निदेव राक्षसियों का नाश करें तथा सोमदेव अनिष्ट चिन्तन की प्रेरणा देने वाली पिशाचिनियों का संहार करें ॥२ ॥

[१२० - पापलक्षणनाशन सूक्त (११५)]

[**ऋषि-** अथर्वाङ्गिरा । **देवता-** सविता, जातवेदा । **छन्द-** अनुष्टुप्, २-३ त्रिष्टुप् ।]

२०२३. प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ॥१ ॥

हे पापलक्ष्मी ! तुम यहाँ से कहीं दूर चली जाओ । यहाँ-वहाँ से हटकर हमारे शत्रु के पास स्थिर हो जाओ । लौह शूल के द्वारा हम आपको अपने द्वेषी की ओर प्रेरित करते हैं ॥१ ॥

[पाप कर्मों से अर्जित सम्पदा आकर्षक तो लगती है, किन्तु वह व्यक्ति परिवार एवं समाज के पतन का कारण बनती है । ऐसी पापयुक्त लक्ष्मी का त्याग ही समझदारी है ।]

२०२४. या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥२ ॥

वन्दना नामक लता जिस प्रकार वृक्ष पर चढ़कर उसे सुखाती है, उसी प्रकार यह अलक्ष्मी हमारे ऊपर आरोपित होकर हमें सुखा रही है । हे सूर्यदेव ! आप इस अलक्ष्मी को हमसे दूर करें तथा हमें सुवर्ण प्रदान करें ॥

२०२५. एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः ।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥३ ॥

मानव के जन्म के साथ एक सौ एक लक्ष्मियों ने जन्म लिया है । इनमें जो पापमयी अलक्ष्मियाँ हैं, उन्हें हम सदा-सदा के लिए दूर हटाते हैं । हे जातवेदा अग्निदेव ! इनमें जो कल्याणकारी लक्ष्मियाँ हैं, उन्हें आप हमारे पास लाएँ ॥३ ॥

२०२६. एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥४ ॥

जैसे गोशाला में रहने वाली गौओं को (गुण-अवगुण के आधार पर) दो भागों में बाँट लेते हैं, वैसे ही समस्त लक्ष्मियों में से पुण्यकारक लक्ष्मियाँ हमारे पास आनन्द से रहें तथा पापमयी अलक्ष्मियाँ हम से दूर हो जाएँ ॥४ ॥

[१२१ - ज्वरनाशन सूक्त (११६)]

[**ऋषि**- अथर्वाङ्गिरा । **देवता**- चन्द्रमा । **छन्द**- परोष्णिक्, २ एकावसाना द्विपदा आर्ची अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में मलेरिया जैसे ज्वर के निवारण की प्रार्थना की गई है। इस ज्वर के अनेक रूप कहे गये हैं, जो वैद्यक शास्त्र के अनुरूप है-

२०२७. नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे । नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥१ ॥

तपाने वाले, हिलाने वाले, भड़काने वाले, डराने वाले, शीत लगकर आने वाले एवं शरीर को तोड़ने (कृश करने) वाले ज्वर को नमस्कार है ॥१ ॥

२०२८. यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्ये त्वव्रतः ॥२ ॥

जो ज्वर एक दिन छोड़कर आते हैं, जो दो दिन छोड़कर आते हैं तथा जो बिना किसी निश्चित समय के आते हैं, वे इस मेढक (संकीर्ण या आलसी व्यक्ति) के पास जाएँ ॥२ ॥

[१२२ - शत्रुनिवारण सूक्त (११७)]

[**ऋषि**- अथर्वाङ्गिरा । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- पथ्याबृहती ।]

२०२९. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिद् वि यमन् विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने मोरपंखी वर्ण वाले अश्वों (सतरंगी किरणों) के साथ यहाँ आएँ । बहेलिया जैसे पक्षी को जाल में फँसा लेता है, वैसे आपको कोई (वाग् जाल में) न फँसा सके । ऐसे (कुटिलों) को आप रेतीले क्षेत्र की तरह लाँघकर यहाँ पधारें ॥१ ॥

[१२३ - वर्मधारण सूक्त (११८)]

[**ऋषि**—अथर्वाङ्गिरा । **देवता**— चन्द्रमा, वरुण, देवगण । **छन्द**— त्रिष्टुप्]

२०३०. मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१ ॥

हे वीर ! आप जैसे विजयाभिलाषी के मर्म स्थानों को हम कवच से सुरक्षित करते हैं । सोमदेव के अमृतमयी आच्छादन के द्वारा आप सुरक्षित रहें । वरुणदेव आपको महान् सुख दें । विजय प्राप्त कराने के लिए इन्द्रादि सभी देवता आपको प्रोत्साहित करते रहें ॥१ ॥

॥इति सप्तमं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथाष्टम काण्डम् ॥

[१- दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आयु । **छन्द-** १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्, २-३, १७-२१ अनुष्टुप्, ४, ९, १५-१६ प्रस्तार पंक्ति, ५-६, १०-११ त्रिष्टुप्, ७ त्रिपदा विराट् गायत्री, ८ विराट् पथ्याबृहती, १२ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती, १३ त्रिपदा भुरिक् महाबृहती, १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिक् बृहती ।]

२०३१. अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुष सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥१ ॥

मृत्यु के द्वारा सबका अन्त करने वाले अन्तकदेव को नमस्कार है । इन देव की कृपा से इस मनुष्य के शरीर में 'प्राण' एवं 'अपान' सुखपूर्वक संचरित हों । यह पुरुष दीर्घ जीवनयापन करता हुआ, सूर्य के इस भाग(पृथ्वी) में आनन्दपूर्वक रहे ॥१ ॥

२०३२. उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् । उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।

'भग' देवता ने इस मनुष्य की जीवनी-शक्ति को उठाया, तेजस्वी सोमदेव ने इसे उठाया एवं इन्द्रदेव तथा अग्निदेव ने भी इसे ऊँचा उठाया ॥२ ॥

२०३३. इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥३ ॥

(हे आयु की इच्छा करने वाले पुरुष !) इसी (शरीर) में तेरे प्राण, आयु, मन तथा जीवन स्थिर रहे । जिन रोगरूपी पाशों (बन्धनों) से तुम्हारी अधोगति हो रही थी , हम मंत्रों द्वारा उनसे तुम्हें मुक्त करते हैं ॥३ ॥

२०३४. उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥४ ॥

हे पुरुष ! तुम रोगरूप बन्धनों को काटकर मृत्यु के पाशजाल से मुक्त हो । अग्निदेव एवं सूर्यदेव के दर्शन करते हुए, इस पृथ्वी का त्याग न करो ॥४ ॥

२०३५. तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५ ॥

हे पुरुष ! अन्तरिक्ष में रहने वाली वायु तुम्हारे लिए सुखदायक हो, जल अमृत के समान हो, सूर्यदेव सुखदायक ताप प्रदान करें एवं मृत्युदेव की दया से दीर्घ जीवनयापन करो ॥५ ॥

२०३६. उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६ ॥

हे पुरुष !तुम्हारी ऊर्ध्वगति हो, अधोगति न हों ।मैं तुम्हें जीवनीशक्ति एवं बलवर्द्धक ओषधियाँ देता हूँ, इससे तुम इस रथरूप शरीर पर आरूढ़ होकर , जरारहित रहते हुए, इस (जीवन की) विधा को बतलाना ॥६ ॥

२०३७. मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७ ॥

तुम्हारा मन मृत्यु की ओर न जाए और वहाँ विलीन न हो जाए । तुम पितरों के पास न जाओ,वरन् जीने की इच्छा करो । समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥७ ॥

२०३८. मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८ ॥

जो (पितरगण) चले गये हैं, उनका ध्यान न करो । वे तुम्हें भी परलोक (पितरलोक) ले जा सकते हैं । हम तुम्हारा हाथ पकड़ते हैं । तुम इस अज्ञान अन्धकार से निकलकर ज्ञान के आलोक की ओर बढ़ो ॥८ ॥

२०३९. श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९ ॥

हे मनुष्य !प्राणियों के प्राणों के हरण कर्ता यमदेवता के दो मार्गरक्षक कुत्ते श्वेत (दिन) और काले (रात) हैं । तुम इन कुत्तों का ग्रास न बनो, मेरी ओर ध्यान लगाओ एवं अपने मन को सांसारिकता से विमुख न करो ॥९॥

२०४०. मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१० ॥

तुम उस भयानक मार्ग का अनुसरण न करो, मृत्यु के पूर्व मन को उस मार्ग पर न ले जाओ । मैं जो कह रहा हूँ, उस पर ध्यान दो । तुम उस मार्ग पर न जाओ, वहाँ तुम्हारे लिए भय है, यहाँ तुम अभय हो ॥१० ॥

२०४१. रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥११ ॥

हे रक्षा की कामना करने वाले पुरुष ! आवाहन करने योग्य अग्निदेव , वैश्वानर अग्निदेव, विद्युत्‌रूप अग्निदेव एवं जल में निवास करने वाले अग्निदेव तुम्हारी रक्षा करें ॥११ ॥

२०४२. मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर । रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी
सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥१२ ॥

शारीरिक मांसपेशियों को आहार बनाने वाली क्रव्याद अग्नि तुम्हें आहार न माने । शव को भस्म करने वाले संकुसुक नामक अग्निदेव आपके निकट न आएँ । सूर्य, चन्द्रमा, द्यावा-पृथिवी एवं अन्तरिक्ष भी अपनी दिव्य शक्तियों से तुम्हारी रक्षा करें ॥१२ ॥

२०४३. बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३ ॥

हे रक्षाभिलाषी पुरुष ! बोध (विद्या, ज्ञान) तथा प्रतिबोध (अविद्या, अज्ञान) तुम्हारी रक्षा करें । 'गोपायन' एवं 'जागृवि' ऋषि तुम्हारी रक्षा करें ॥१३ ॥

२०४४. ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४ ॥

वे सब तुम्हारी रक्षा करें एवं पालन करें । उन समस्त दिव्य शक्तियों को नमस्कारपूर्वक यह उत्तम आहुति अर्पित है । वे इस समर्पण से प्रसन्न हों ॥१४ ॥

२०४५. जीवेभ्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५ ॥

रक्षक - पोषक सवितादेव एवं वायुदेव तथा इन्द्रदेव तुम्हारे प्राणों की रक्षा करें । तुम अपने पुत्र-पौत्रादि एवं भार्या के साथ रहो, इसलिए हम तुम्हें मृत्यु से ऊपर उठाते हैं । हम तुम्हारे प्राणों को तुम्हारे अनुकूल करते हैं, वे प्राण तथा बल तुम्हारा त्याग न करें ॥१५ ॥

२०४६. मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥१६ ॥

जम्भ राक्षस तुम तक न पहुँचे, अज्ञानान्धकार तुम्हारे निकट न रहे । राक्षस की जीभ भी तुम तक न पहुँचे । तुम यज्ञ करने वाले हो, इसलिए आदित्य, वसु, इन्द्र एवं अग्नि आदि देवता तुम्हारा कल्याणकारी उत्थान करें ॥१६॥

२०४७. उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥१७ ॥

द्यावा-पृथिवी एवं प्रजापति तुम्हें मृत्यु से बचाएँ । सोम जिनके राजा हैं, ऐसी ओषधियाँ मृत्यु से रक्षा करें ॥१७॥

२०४८. अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥

हे देवताओ ! यह पुरुष (हमारे उपचार के प्रभाव से) मृत्यु के मुख से बचा रहे । हम हजारों उपायों से इसकी रक्षा करते हैं ॥१८ ॥

२०४९. उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् ॥१९ ॥

हे प्राण रक्षा की कामना करने वाले पुरुष ! हम मृत्यु से तुम्हें पार करते हैं । आयु के अधिष्ठाता देव तुम्हें न मरने दें । स्त्रियाँ बाल खोलकर तुम्हारे लिए विलाप न करें ॥१९ ॥

२०५०. आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥

हे पुरुष ! यह तुम्हारा पुनः नया जन्म- सा हुआ है; क्योंकि हम तुम्हें मृत्यु के मुख से खींचकर लाए हैं । अब तुम्हारे समस्त अंग आदि पूर्ण स्वस्थ रहें एवं तुम्हें पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥२० ॥

२०५१. व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥२१ ॥

हे पुरुष ! तुम्हारे पास जो अन्धकार था, उसे हटा दिया है एवं तुम्हें नई जीवन-ज्योति मिल गई है । पाप देवता निर्ऋति एवं मृत्यु को तुमसे दूर हटा दिया है । अब तुम्हारे क्षयकारी रोग को हमने नष्ट कर दिया । तुम्हें दीर्घ आयु एवं नीरोगता प्राप्त हो ॥२१ ॥

[२-दीर्घायुप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आयु । **छन्द-**१-२, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३, २६ आस्तार पंक्ति, ४ प्रस्तार पंक्ति, ५, १०, १६, १८, २०, २३-२५, २७ अनुष्टुप्, ६, १५ पथ्यापंक्ति, ८ पुरस्ताद् ज्योतिष्मती जगती, ९ पञ्चपदा जगती, ११ विष्टार पंक्ति, १२, २२, २८ पुरस्तात् बृहती, १३ त्रिष्टुप्, १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, १७ त्रिपदा अनुष्टुप्, १९ उपरिष्टाद् बृहती, २१ सतः पंक्ति ।]

२०५२. आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥१ ॥

हे रोगी !इस अमृत का पान प्रारम्भ करो ।तुम वृद्धावस्था तक निर्विघ्न जीवनयापन करो ।हमने तुम्हारे प्राणों एवं आयु की रक्षा हेतु व्यवस्था बना दी है ।तुम भोगमय जीवन एवं अज्ञान से दूर रहो, अभी मृत्यु को प्राप्त न हो।।

२०५३. जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।

अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥२ ॥

हे पुरुष ! तुम जीवित मनुष्य के समान सचेतन हो । हम तुम्हारे अपयश का नाश करते हुए तुम्हें मृत्यु-पाश (रोगों) से बचाते हैं । तुम्हें दीर्घ आयु प्राप्त हो ॥२ ॥

२०५४. वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।

यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥३ ॥

हे पुरुष ! हमने वायुदेवता से तुम्हारे प्राणों को, सूर्य देवता से नेत्र-ज्योति को प्राप्त करके, तुम्हारे मन को तुम्हारे अन्दर धारण कराया है । अब तुम अपने समस्त अंग-अवयव प्राप्त कर लिए हो । अत: सचेष्ट होकर जिह्वा से स्पष्ट उच्चारण करो ॥३ ॥

२०५५. प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।

नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥४ ॥

जिस प्रकार अभी उत्पन्न अग्नि को, प्राणी अपने प्राण वायु द्वारा प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे क्षीण-प्राणों को अनेक उपायों द्वारा तेजस्वी बनाते हैं । हे मृत्यो ! तेरे प्राण-बल एवं क्रूर नेत्रों को हम नमस्कार करते हैं ॥४ ॥

२०५६. अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि । कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥

यह पुरुष अभी न मरे, बहुत समय तक जीवित रहे । ओषधि प्रयोग द्वारा हम इसको सचेतन करते हैं । हे मृत्यो ! तुम इस पुरुष को न मारो ॥५ ॥

२०५७. जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।

त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६ ॥

सदैव हरी रहने वाली, जीवनदायनी, रक्षा करने वाली, रोग दूर करने वाली इस "पाठा" नामक ओषधि का, इस पुरुष को मृत्यु से बचाने के लिए हम आवाहन करते हैं अर्थात् प्रयोग करते हैं ॥६ ॥

२०५८. अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।

भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७ ॥

हे मृत्यो ! यह पुरुष आपका ही है, ऐसा जानते हुए इसे मत मारो । यह इस पृथ्वी पर अपनी पूर्ण आयु तक सब प्रकार से सक्रिय रहे । हे भव और शर्व !आप इसके रोगों का नाश करके, इसे सुखमय दीर्घायुष्य प्रदान करें ।

२०५९. अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३यमेतु ।

अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८ ॥

हे मृत्यो ! आप इस मनुष्य को समझाएँ, इस पर दया करें । यह पुरुष नेत्र-कान आदि अंगों से स्वस्थ रहे एवं सौ वर्ष तक सुखपूर्वक रहे । अन्य किसी की सेवा के आश्रय के बिना अपने कार्य स्वयं करने में समर्थ रहे ॥८ ।

२०६०. देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।

आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥९ ॥

हे पुरुष ! दैविक आपत्तियों से तुम्हारी रक्षा हो । हम रजस् (भोगवृत्ति) से पार ले जाते हैं । मांसभक्षक (क्रव्याद) अग्नि को तुमसे दूर करते हैं एवं तुम्हारे दीर्घजीवन के लिए देव यजन-अग्नि की स्थापना करते हैं ॥९ ॥

२०६१. यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१० ॥

हे मृत्यो ! तेरे रजोमय मार्ग का कोई नाश नहीं कर सकता । इस पुरुष को इस मार्ग से बचे रहने का, मन्त्रणारूप कवच धारण कराते हैं ॥१० ॥

[रजोमय -भोगमय जीवन, मृत्यु का उपकरण है । ज्ञान- बोध द्वारा संयमित जीवन की प्रेरणा देना, व्यक्ति को मृत्यु के प्रहार से बचाने के लिए कवच धारण कराने जैसा है ।]

२०६२. कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११ ॥

हे जीवनाभिलाषी पुरुष ! हम तुम्हारे प्राण, अपान को सुव्यवस्थित कर दीर्घआयु प्रदान करते हैं । वृद्धावस्था एवं मृत्यु- ये सब तुम्हारा कल्याण करने वाले हों । विवस्वान् सूर्य से उत्पन्न-काल के दूतों से हम तुम्हें बचाते हैं ॥

२०६३. आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥१२ ॥

आतंकित करने वाले निर्ऋति की दुर्गति करते हैं, मारते हैं । मांस-भक्षी पिशाचों (क्षयकारक विषाणुओं) को नष्ट करते हैं, अन्य भी जो अहित करने वाले हैं, उन सब तमस् गुण वालों का हम नाश करते हैं ॥१२ ॥

२०६४. अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३ ॥

हे पुरुष ! हम अमरता और आयु को धारण करने वाले जातवेदा अग्निदेव से तुम्हारे प्राणों को सतेज करने की याचना करते हैं । हमारे द्वारा किये गये शान्तिकर्म तुम्हें समृद्धिशाली बनाएँ । उनके प्रभाव से तुम पीड़ारहित, अमर और सुखी जीवनयापन करो ॥१३ ॥

२०६५. शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥१४ ॥

द्यावा-पृथिवी तुम्हें सन्ताप देने वाली न हों । वे तुम्हें धन-ऐश्वर्य देने वाली एवं कल्याण करने वाली हों । सूर्यदेव की कृपा से तुम्हें सुखद ताप मिले । हृदय को वायुदेवता सुख दें । द्युलोक में रहने वाला जल (सूक्ष्म रस) एवं बहने वाला जल तुम्हें दिव्य सुख प्रदान करे ॥१४ ॥

२०६६. शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५ ॥

ओषधियाँ तुम्हारे लिए कल्याणकारी गुणों से युक्त हों । हम तुम्हें पृथ्वी के निचले भूभाग से उच्च भूभाग पर लाए हैं । यहाँ अदितिमाता के दोनों पुत्र सूर्यदेवता एवं चन्द्रमादेवता तुम्हारी रक्षा करें ॥१५ ॥

२०६७. यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे३ तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥१६ ॥

हे बालक ! तुम्हारी नाभि पर बँधने वाला अधोवस्त्र एवं ऊपर ओढ़ने वाला परिधान-वस्त्र तुम्हें सुख पहुँचाने वाला हो । वह खुरदुरा न होकर सुखद, स्पर्शकारक एवं सुकोमल हो ॥१६ ॥

२०६८. यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥१७ ॥

हे क्षौरकर्म करने वाले भद्र पुरुष !आप जिस छुरे के द्वारा सिर एवं मुख-मण्डल के बालों का मुण्डन करना चाहते हैं, वह स्वच्छ और तीक्ष्णधारयुक्त हो ।क्षौरकर्म द्वारा मुख की शोभा बढ़ाओ, हमारी आयु क्षीण मत करो ॥

२०६९. शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८ ॥

हे अन्नप्राशन संस्कार से संस्कारित होने वाले बालक ! ये धान और जौ तुम्हारे लिए कल्याणकारी एवं बलवर्धक हों । ये दोनों रोगनाश करने वाले तुम्हें पापों से मुक्त करें ॥१८ ॥

२०७०. यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥१९ ॥

हे बालक ! हम तुम्हारे लिए कृषि द्वारा उत्पन्न धान्य एवं दुग्ध, जो तुम खीर रूप में भी पीते हो, खाने में कष्ट देने वाले जिन पदार्थों को तुम खाते हो , उन सब को हम तुम्हारे लिए विषरहित करते हैं अर्थात् वे तुम्हें हानि न पहुँचाएँ ॥१९ ॥

२०७१. अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥२० ॥

हे कुमार ! हम तुम्हें दिन और रात्रि के अभिमानी देवताओं को सौंपते हैं । वे तुम्हारी, दिन के समय और रात्रि के समय धन के लुटेरों से एवं भक्षण- कामना वालों से रक्षा करें ॥२० ॥

२०७२. शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥२१ ॥

हे बालक ! इन्द्र, अग्निसहित समस्त देवताओं की कृपा-अनुग्रह से तुम्हें सौ वर्ष की आयु प्राप्त हो ।इस सौ वर्ष की आयु के दोनों सन्धिकाल (किशोर व प्रौढ़) सहित तीनों अवस्थाएँ (बाल्य, युवा व वृद्धावस्था) एवं चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास) में कोई व्यवधान न आए ।तुम्हारा सब प्रकार कल्याण हो ॥२१ ॥

२०७३. शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥२२ ॥

हे बालक ! हम तुमको शरद् , हेमन्त, वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतुओं के लिए अर्पित करते हैं । ये सभी तुम्हारा कल्याण करें । जिस ऋतु में ओषधि बढ़ती है, वह वर्षा ऋतु भी तुम्हें सुख प्रदान करे ॥२२ ॥

२०७४. मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः ॥२३ ॥

मृत्यु दो पैर वालों की स्वामिनी है एवं चार पैर वालों की भी स्वामिनी है । हम तुम्हें अमर-आत्मज्ञान द्वारा मृत्यु से ऊपर उठाते हैं, जिससे तुम मृत्यु-भय से मुक्त हो जाओ ॥२३ ॥

२०७५. सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः । न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥

तुम मृत्यु-भय से मुक्त हो जाओ । तुम नहीं मरोगे, नहीं मरोगे, क्योंकि तुम अधम-अज्ञानरूपी अन्धकार की ओर न जाकर ज्ञान के आलोक में (आत्म-ज्ञान में) निवास करते हो । तुम वहाँ नहीं मरोगे ॥२४ ॥

२०७६.सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥

जहाँ इस ज्ञान और विद्या के आधार पर जीवन को सुखमय बनाने के लिए चारों ओर कार्य किए जाते हैं । वहाँ गौ, घोड़ा एवं अन्य पशुओं सहित मनुष्य आदि सभी प्राणी दीर्घ जीवन पाते हैं ॥२५ ॥

२०७७. परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥२६ ॥

इन श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा तुम्हारी रक्षा हो । अपने समान अन्य पुरुषों या समान बन्धुओं द्वारा तुम पर किये गये अभिचार कर्मों से तुम्हारी रक्षा हो । तुम अजर- अमर-दीर्घजीवन प्राप्त करो एवं तुम्हारे प्राण शरीर न छोड़ें ॥२६ ॥

२०७८. ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥२७ ॥

जो मृत्युकारक सैकड़ों मुख्य रोग हैं एवं जो नाशकारक ऐसी शक्तियाँ हैं कि जिनमें फँस जाने पर पार होना मुश्किल है, उन समस्त मृत्यु एवं नाशक शक्तियों से इन्द्र और अग्निदेव सहित समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥२७

२०७९. अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥२८ ॥

हे पूतद्रु (पवित्रता देने वाली) ओषधे ! आप अग्नि ऊर्जा के पार करने वाले शरीर हैं । आप राक्षसों और शत्रुओं का संहार करने वाले तथा रोगों को हटाने वाले हैं । ऐसे आप हमारी अभिलाषा को पूर्ण करें ॥२८ ॥

[३- शत्रुनाशन सूक्त]

[**ऋषि-** चातन । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ७, १२, १४-१५, १७, २१ भुरिक् त्रिष्टुप्, २२-२३ अनुष्टुप्, २५ पञ्चपदा बृहतीगर्भा जगती, २६ गायत्री ।]

२०८०. रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१ ॥

राक्षस-विध्वंसक, बलवान् , याजकों के मित्र और प्रतिष्ठित अग्निदेव को घृत से प्रज्वलित करते हुए हम अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं । ये अग्निदेव अपनी ज्वालाओं को तेज करते हुए यज्ञकर्म-सम्पादक यजमानों द्वारा प्रदीप्त होते हैं । हिंसक राक्षसों से ये अग्निदेव हमारी अहोरात्र रक्षा करें ॥१ ॥

२०८१. अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥२ ॥

हे ज्ञानस्वरूप अग्निदेव !आप अतितेजस्वी और लौहदन्त (बेधक सामर्थ्य वाले) होकर अपनी जिह्वा (ज्वालाओं) से हिंसक राक्षसों को नष्ट करें । मांसभक्षी राक्षसों को काटकर अपने ज्वालामुखी मुख में धारण करें ।

२०८२. उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने दोनों दाँतों (बेधक ज्वालाओं) को तीक्ष्ण करें, उन्हें असुरों में प्रविष्ट करा दें । दोनों प्रकार से आप उनका संहार करें तथा निकट एवं दूर की प्रजाओं की रक्षा करें । हे दीप्तिमान् बलशाली अग्निदेव !आप अन्तरिक्षस्थ असुरों के समीप जाएँ और उन दुष्ट-असुरों को अपनी दाढ़ों (शक्ति) से पीस डालें ॥

२०८३. अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥४ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप असुरों की त्वचा को छिन्न-भिन्न कर डालें । इन्हें आपका हिंसक वज्रास्त्र अपनी तेजस्विता से नष्ट करे, असुरों के अङ्गों को भग्न करे । खण्ड-खण्ड पड़े असुरों के अंग-अवयवों को मांसभक्षी 'वृक' आदि हिंसक पशु भक्षण करें ॥४ ॥

२०८४. यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥५ ॥

हे ज्ञानवान् बलशाली अग्निदेव ! आप राक्षसों को स्थिर स्थिति में, इधर-उधर विचरण की स्थिति में, आकाश में अथवा मार्ग में जहाँ भी उन्हें देखें, वहीं शर-संधान करके - तेज बाण फेंककर, उनका संहार करें ॥५ ॥

२०८५. यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप शक्तिवर्द्धक यज्ञों और हमारी प्रार्थना से संतुष्ट होकर अपने बाणों का संधान करते हुए, उनके अग्रभागों को वज्र से युक्त करते हुए, असुरों के हृदयों को भेद डालें । इसके पश्चात् युद्ध के लिए प्रेरित उनके सहयोगियों की भुजाओं को तोड़ डालें ॥६ ॥

२०८६. उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७ ॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप आक्रान्ता असुर के हाथों से आक्रान्त यजमान व्यक्ति को ऋष्टि (दो धारों वाले खड्ग) से सुरक्षित करें । आप प्रदीप्त होकर, कच्चे मांस का भक्षण करने वाले असुरों का संहार करें । शब्द करते हुए वेग से उड़ने वाले पक्षी इस राक्षस को खाएँ ॥७ ॥

२०८७. इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८ ॥

हे युवा अग्निदेव ! कौन राक्षस इस यज्ञ के विध्वंसक हैं, यह हमें बताएँ ? समिधाओं द्वारा प्रज्वलित होकर आप उन असुरों का संहार करें । मनुष्यों के ऊपर आपकी कृपामयी दृष्टि रहती है, उसी कल्याणकारी दृष्टि के अन्तर्गत अपने तेज से असुरों का विनाश करें ॥८ ॥

२०८८. तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तीक्ष्ण तेज से हमारे यज्ञ का संरक्षण करें । हमें श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न बनाएँ । हे मनुष्यों के द्रष्टा अग्निदेव !आप असुरों के संहारक हैं ।आपके प्रज्वलित स्वरूप का दमन राक्षसगण न कर सकें ॥

२०८९. नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१० ॥

हे मनुष्य के निरीक्षक अग्निदेव ! आप मनुष्यों के घातक असुरों को भी देखें । उस राक्षस के आगे के तीन मस्तकों का उच्छेदन करें । उसके समीपस्थ राक्षसों को भी शीघ्रता से समाप्त करें । इस प्रकार तीनों ओर से राक्षस के मूल को काट डालें ॥१० ॥

२०९०. त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ॥११ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव ! आपकी ज्वालाओं की चपेट में राक्षस तीन बार आएँ । जो राक्षस सत्य को असत्य वाणी से विनष्ट करते हैं, उन्हें अपनी तेजस्विता से भस्मीभूत कर डालें । स्तोता के समक्ष ही इन्हें विनष्ट कर दें ॥११॥

२०९१. यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आज जो जोड़े (स्त्री-पुरुष) आपसी झगड़ा करते हैं तथा जो व्यक्ति परस्पर कटु-वाणी का प्रयोग करते हैं, मन्युयुक्त मन: शक्ति से छोड़े गये बाणों के द्वारा (सूक्ष्म प्रहार द्वारा) आप उन राक्षसों (झगड़े एवं कटु वाणी के प्रेरक) के हृदय को वेध डालें ॥१२ ॥

२०९२. परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आप असुरों को अपनी तेजस्विता से भस्म करें, उन्हें अपनी तप:शक्ति से विनष्ट करें । हिंसक असुरों को अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से विनष्ट करें । मनुष्यों के प्राणों का हरण करने वाले असुरों को अपनी ज्वालाओं से भस्मीभूत कर दें ॥१३ ॥

२०९३. पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१४ ॥

अग्नि आदि देवगण, प्राणघाती असुरों का संहार करें, उनके समीप हमारे शापयुक्त वचन जाएँ ।असत्यवादी असुरों के मर्मस्थल के पास बाण जाएँ । सर्वव्यापक अग्निदेव के बन्धन में असुरों का पतन हो ॥१४ ॥

२०९४. यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! जो राक्षस मनुष्य के मांस से (मनुष्य को मारकर) स्वयं को संतुष्ट करते हैं, जो अश्वादि पशुओं से मांस को एकत्र करते हैं तथा जो हिंसारहित गौ के दूध को चुराते हैं, ऐसे दुष्टों के मस्तकों को आप अपनी सामर्थ्य से छिन्न-भिन्न कर डालें ॥१५ ॥

२०९५. विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१६ ॥

राक्षसी शक्तियाँ गौओं के जिस दूध का पान करें, वह उनके निमित्त विष के समान हो जाए । देवमाता अदिति की संतुष्टि के लिए इन राक्षसों को आप अपने ज्वालारूपी शस्त्रों से काट डालें । सवितादेव इन राक्षसों को, हिंसक पशुओं को प्रदान करें । ओषधियों के सेवन योग्य अंश इन्हें प्राप्त न हों ॥१६ ॥

२०९६. संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥१७ ॥

हे मनुष्यों के निरीक्षक अग्निदेव ! वर्ष भर में संगृहीत होने वाले गाय के दूध को दुष्ट राक्षस पान न करने पाएँ । जो राक्षस इस अमृतवत् दूध को पीने की अभिलाषा करते हैं, आपके समक्ष आने पर आप इन्हें ज्वालारूपी तेजस् से छिन्न-भिन्न करें ॥१७ ॥

२०९७. सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१८ ॥

हे ज्ञानवान् , बलशाली अग्निदेव ! आपने सदा से राक्षसों का दलन किया है, उन्हें युद्ध में पराभूत किया है । आप क्रूर प्रकृति वाले, अभक्ष्य आहार करने वाले दुष्टों को नष्ट करें ।वे आपकी तेजस्विता से बच न सकें ॥१८ ।

२०९८. त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥१९ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर से संरक्षित करें । आपकी अति उज्ज्वल, अविनाशी और अति तापयुक्त ज्वालाएँ दुष्कर्मी राक्षसों को शीघ्र भस्म करें ॥१९ ॥

२०९९. पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्तौं अमर्त्यस्त्वं नः ॥२० ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप कवि (क्रान्तदर्शी) हैं, अपने कौशल से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से हमारी भली प्रकार रक्षा करें । हे मित्र और अग्निदेव ! आप जीर्णतारहित हैं, हम आपके मित्र आपकी कृपा दृष्टि से दीर्घजीवी हों । आप अविनाशी हैं, हम मरणधर्मा मनुष्यों को चिरंजीवी बनाएँ ॥२० ॥

२१००. तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥२१ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न, बलशाली अग्निदेव ! गर्जना करने वाले अहंकारी असुरों पर वही दृष्टि रखें , जिससे आप ऋषियों के उत्पीड़क नाखूनों या खुरों वाले असुरों को देखते हैं । सत्य को असत्य से विनष्ट करने वाले अज्ञानी असुर को आप अपनी दिव्य तेजस्विता से अथर्वा ऋषि के सम्मान में भस्मीभूत कर डालें ॥२१ ॥

२१०१. परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ।

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! आप पूर्णता प्रदान करने वाले विज्ञ, संघर्षशील असुरों का नित्यप्रति संहार करने वाले हैं । हम आपका ध्यान करते हैं ॥२२ ॥

२१०२. विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥२३ ॥

हे अग्निदेव ! आप विध्वंसक कर्मों में संलग्न राक्षसों को अपनी विस्तृत, तीक्ष्ण तेजस्विता से जलाएँ तथा तपते हुए ऋष्टि (दुधारे) अस्त्रों से भी उन्हें नष्ट करें ॥२३ ॥

२१०३. वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥२४ ॥

अपनी अत्यन्त तेजस्वी ज्वालाओं के साथ अग्निदेव प्रकाशित होकर स्व-सामर्थ्य से सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों को प्रकाशित करते हैं । असुरता द्वारा फैलाये गये कपटपूर्ण छल-छद्मों के संहार में सक्षम होने के कारण अग्निदेव उनके संहार हेतु अपने ज्वालारूपी सींगों को तीक्ष्ण करते हैं ॥२४ ॥

२१०४. ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व ॥२५ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपके प्रख्यात ज्वालारूपी सींग जीर्णतारहित और तीक्ष्ण होने से हथियाररूप हैं। हमारे द्वारा प्रयुक्त मन्त्र-सामर्थ्य से तीक्ष्णतायुक्त सींगों से दुष्ट प्रकृति के राक्षसों का सभी ओर से विनाश करें। "यह क्या हो रहा है ?" ऐसा कहते हुए छिद्रान्वेषी राक्षसों का पूर्ण संहार करें ॥२५ ॥

२१०५. अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः ॥२६ ॥

धवल, आभायुक्त, अमर, पावन और शुद्ध करने वाले अग्निदेव असुरों का नाश करते हैं, वे देव स्तुति करने योग्य हैं ॥२६ ॥

[४- शत्रुदमन सूक्त]

[**ऋषि**- चातन । **देवता**- इन्द्रासोम, अर्यमा। **छन्द**-जगती, ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४त्रिष्टुप्, २०, २३ भुरिक् त्रिष्टुप्, २५ अनुष्टुप् ।]

२१०६. इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥१ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप राक्षसों को जलाकर मारें। हे अभीष्टवर्षक ! आप अज्ञान-रूपी अंधकार में विकसित हुए राक्षसों का विनाश करें। ज्ञानहीन राक्षसों को तप्त करके, मारकर फेंक दें, हमसे दूर कर दें। दूसरों का भक्षण करने वालों को जर्जरित करें ॥१ ॥

२१०७. इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप महापापी, प्रसिद्ध दुष्टों को नष्ट करें। वे आपके तेज से आग में डाले गये चरु के समान जलकर विनष्ट हो जाएँ। ज्ञान से द्वेष रखने वाले, कच्चा मांस भक्षण करने वाले, भयानक रूपधारी, सर्वभक्षी (दुष्टों) के लिए निरन्तर द्वेष (वैर) भाव रखें ॥२ ॥

२१०८. इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! दुष्कर्मा राक्षसों को गहन अन्धकार में दबा दें, जिससे वे पुनः निकल न सकें। आप दोनों का शत्रु-भंजक बल, शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो ॥३ ॥

२१०९. इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।
उत् तक्षतं स्वर्य१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप अन्तरिक्ष से मारक हथियार उत्पन्न करें। राक्षसों के विनाश के लिए पृथ्वी से आयुध प्रकट करें। मेघ से राक्षसों का विध्वंसक वज्र उत्पन्न करके, बढ़ने वाले राक्षसों को मारें ॥४ ॥

२११०. इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥५ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप अन्तरिक्ष से चारों ओर आयुध फेंकें । आप दोनों अग्नि की तरह तप्त करने वाले, पत्थरों जैसे मारक, तापक प्रहार वाले, अजर आयुधों से लूट-लूटकर खाने वाले राक्षसों को फाड़ डालें, जिससे वे चुप-चाप पलायन कर जाएँ ॥५ ॥

२१११. इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥६ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! रस्सी जिस प्रकार से बगल में होकर घोड़े को चारों तरफ से बाँधती है, उसी तरह यह स्तुति आपको परिव्याप्त करे । आप बली हैं, अपनी मेधाशक्ति के बल से यह प्रार्थना हम आपके पास प्रेषित करते हैं । राजाओं की भाँति आप इन स्तुतियों को फलीभूत करें ॥६ ॥

२११२. प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥७ ॥

हे इन्द्र और सोमदेव ! आप शीघ्रगामी अश्वों शत्रुओं पर आक्रमण करें, द्रोह करने वाले, विनाशकारी राक्षसों का विनाश करें । उस दुष्कर्मी को (अपने कुकृत्य करने की) सुगमता न मिले , ज़ो कभी भी हमें कष्ट देना चाहें ॥७ ॥

२११३. यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८ ॥

पवित्र मन से आचरण करने वाले मुझको, जो राक्षस असत्य वचनों द्वारा दोषी सिद्ध करता है, हे इन्द्रदेव ! वह असत्य भाषी (राक्षस) मुट्ठी में बँधे हुए जल के सदृश पूर्णरूपेण नष्ट हो जाए ॥८ ॥

२११४. ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९ ॥

जो मुझ (वसिष्ठ) विशुद्ध मन से रहने वाले को, अपने स्वार्थ के लिए कष्ट देते हैं या अपने धन-साधनों से मुझ जैसे कल्याणवृत्ति वाले को दोषपूर्ण बनाते हैं, हे सोम ! आप उन्हें सर्प (विषैले जीव) के ऊपर फेंक दें ॥

२११५. यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! जो हमारे अन्न के सार तत्त्व को नष्ट करने की इच्छा करता है, जो गौओं, अश्वों और सन्ततियों का विनाश करता है; वह चोर- समाज का शत्रु विनष्ट हो । वह अपने शरीर और संततियों के साथ समाप्त हो जाए ॥

२११६. परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११ ॥

वह दुष्ट-पातकी शरीर और सन्तानों के साथ विनष्ट हो ।पृथ्वी आदि तीनों लोकों से उसका पतन हो जाए । हे देवो !उसकी कीर्ति शुष्क होकर विनष्ट हो जाए ।जो दुष्टराक्षस हमें दिन-रात सताता है, उसका विनाश हो जाए ॥

२११७. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२ ॥

विद्वान् मनुष्य यह जानता है कि सत्य और असत्य वचन परस्पर स्पर्धा करते हैं । उसमें जो सत्य और सरल होता है, सोमदेव उसकी सुरक्षा करते हैं तथा जो असत् होता है, उसका हनन करते हैं ॥१२ ॥

२११८. न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३ ॥

सोमदेवता पाप करने वाले, मिथ्याचारी और बलवान् को भी मारते हैं । वे राक्षसों का हनन करते और असत्य बोलने वाले को भी मारते हैं । वे (राक्षस) मारे जाकर इन्द्रदेव के द्वारा बाँधे जाते हैं ॥१३ ॥

२११९. यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४ ॥

यदि हम (भूलवश) अनृतदेव के उपासक हैं, (अथवा) यदि हम बेकार में ही देवताओं के पास जाते हैं, तो भी हे अग्निदेव ! आप हम पर क्रोध न करें । द्रोही, मिथ्याभाषी ही आपके द्वारा हिंसित हो ॥१४ ॥

२१२०. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५ ॥

यदि हम (वसिष्ठ) राक्षस हैं, यदि हम किसी सज्जन पुरुष को हिंसित करें, तो आज ही मर जाएँ, (अन्यथा) हमें जो व्यर्थ ही राक्षस कहकर सम्बोधित करते हैं, वे अपने दस वीरों (परिजनों या इन्द्रियों) के सहित नष्ट हो जाएँ ॥

२१२१. यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६ ॥

जो राक्षस मुझ दैवी स्वभाव वाले (वसिष्ठ) को राक्षस कहता है तथा जो राक्षस अपने को "शुद्ध" कहता है, उसे इन्द्रदेव महान् आयुधों से नष्ट करें । वह सभी से पतित होकर गिरे ॥१६ ॥

२१२२. प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७ ॥

जो राक्षसी निशाकाल में अपने शरीर को उल्लू की तरह छिपाकर चलती है, वह अधोमुखी होकर अनन्तगर्त में गिरे । पाषाण-खण्ड घोर शब्द करते हुए उन राक्षसों को विनष्ट करें ॥१७ ॥

२१२३. वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी३च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८ ॥

हे मरुद् वीरो ! आप प्रजाओं के बीच रहकर राक्षसों को ढूँढ़ने की इच्छा करें । जो राक्षस रात्रि समय में पक्षी बनकर आते हैं, जो यज्ञ में हिंसा करते हैं, उन्हें पकड़कर विनष्ट करें ॥१८ ॥

२१२४. प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो३भि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अन्तरिक्ष मार्ग से वज्र प्रहार करें ।हे धनवान् इन्द्रदेव !आप अपने यजमान को सोम द्वारा संस्कारित करें ।आप पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों ओर से पर्ववान् शस्त्र (वज्र) द्वारा राक्षसों का विनाश करें ॥१९॥

२१२५. एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२० ॥

जो राक्षस कुत्तों की तरह काटने दौड़ते हैं, जो राक्षस अहिंसनीय इन्द्रदेव की हिंसा करना चाहते हैं; इन्द्रदेव कपटियों को मारने के लिए वज्र को तेज करते हैं । इन्द्रदेव दुष्ट राक्षसों का वज्र से शीघ्र विनाश करें ॥२० ॥

२१२६. इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ॥२१ ॥

इन्द्रदेव राक्षसों का दमन करने वाले हैं । हविष्य के विनाशकों का इन्द्रदेव पराभव करते हैं । परशु जैसे वन काटता है, मुग्दर जैसे मिट्टी के बर्तन तोड़ता है, उसी तरह इन्द्रदेव सामने आये हुए राक्षसों का संहार करते हैं ।।

२१२७. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप उल्लू के समान (मोहवाले) को मारें । भेड़िये के समान (हिंसक), कुत्ते की भाँति (मत्सरग्रस्त) चक्रवाक पक्षी की तरह (कामी), बाज-गृध्र की तरह (मांस भक्षी) राक्षसों को प्रस्तर (वज्र) से मारें तथा इन सबसे हमारी रक्षा करें ॥२२ ॥

२१२८. मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥२३ ॥

राक्षस हमारे लिए घातक न हों, कष्ट देने वाले स्त्री-पुरुष के युग्मों से (देवगण) हमें बचाएँ । आपस में विघटन कराने वाले घातक राक्षसों से भी हमें बचाएँ । पृथ्वी हमें भूलोक के पापों से बचाए , अन्तरिक्ष हमें आकाश के पापों से बचाए ॥२३ ॥

२१२९. इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४ ॥

इन्द्रदेव पुरुष राक्षस को विनष्ट करें और कपटी हिंसक स्त्री का भी विनाश करें । हिंसा करना जिनका खेल है, उन्हें छिन्न-मस्तक करें । वे सूर्योदय से पहले ही समाप्त हो जाएँ ॥२४ ॥

२१३०. प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५ ॥

हे सोमदेव ! आप और इन्द्रदेव जाग्रत् रहकर सभी राक्षसों को देखते हैं । राक्षसों को मारने वाले अस्त्र उन पर फेंकें और कष्ट देने वालों का वज्र से संहार करें ॥२५ ॥

[५- प्रतिसरमणि सूक्त]

[ऋषि- शुक्र ।**देवता-**कृत्यादूषण अथवा मन्त्रोक्त देवता ।**छन्द-**१,६ उपरिष्टाद्बृहती, २ त्रिपदा विराट् गायत्री, ३ चतुष्पदा भुरिक् जगती, ४, १२-१३, १६-१८ अनुष्टुप्, ५ भुरिक् संस्तार पंक्ति, ७-८ ककुम्मती अनुष्टुप्, ९ चतुष्पदा पुरस्कृति जगती, १० त्रिष्टुप्, ११ पथ्या पंक्ति, १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, १५ पुरस्ताद् बृहती, १९ जगती गर्भा त्रिष्टुप्, २० विराट् गर्भास्तारपंक्ति, २१ पराविराट् त्रिष्टुप्, २२ त्र्यवसाना सप्तपदाविराट् गर्भा भुरिक् शक्वरी ।**]**

२१३१. अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥१ ॥

यह विद्या अथवा मणि दुष्कृत्य करने वाले (शत्रु) का प्रतिकार करने वाली है । वीरोचित गुण से सम्पन्न यह ओषधि पराक्रमी पुरुष के ही बाँधी जाती है । वीर्ययुक्त यह मणि शत्रुओं की घातक, वीरों में वीरता लाने वाली, सभी प्रकार के रोगों की संरक्षक और सुन्दर तथा मंगलप्रद है ॥१ ॥

२१३२. अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ॥२ ॥

यह मणि शत्रुनाशक, वीरतायुक्त, सहनशील, बलवती, अन्नप्रदाता, शत्रुओं को पराजित करने वाली तथा प्रचण्ड पराक्रमी है । यह प्रयोग कर्त्ता के दुष्कृत्य को पुनः उसी ओर प्रेरित करती हुई आ रही है ॥२ ॥

२१३३. अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥३ ॥

इस 'प्रतिसर' मणि की सामर्थ्य से इन्द्रदेव ने वृत्रासुर का संहार किया । इस मणि की ज्ञान-क्षमता के प्रभाव से मनीषी इन्द्रदेव ने असुरों को पराजित किया तथा द्युलोक और पृथ्वी पर स्वामित्व ग्रहण करने के साथ चतुर्दिक् विजय पताका भी फहराई ॥३ ॥

२१३४. अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥४ ॥

यह 'स्राक्त्य' (प्रगतिशील) मणि (दुष्प्रयोगों को) उलट देने तथा प्रतिकार करने की क्षमता से युक्त है । यह ओजस्वी है, आक्रामक है तथा वशीकरण की सामर्थ्य से युक्त है । यह मणि हमें सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करे ॥४ ॥

२१३५. तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥५ ॥

इस मणि के प्रभाव के सम्बन्ध में अग्निदेव, सोमदेव, बृहस्पतिदेव, सर्वप्रेरक सवितादेव तथा इन्द्रादि देवों ने भी कहा है । ये सभी अग्रगामी देवगण हमारे निमित्त भेजी गई कृत्या को अभिचारकर्त्ता के पास ही अपने प्रभाव से वापस लौटा दें ॥५ ॥

२१३६. अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥६ ॥

हम अपने और पाप देवी के बीच द्यावा-पृथिवी, दिन तथा सूर्यदेव को अवरोधक के रूप में स्थापित करते हैं । अभीष्ट फल साधक, सामने प्रतिष्ठित किये गये, ये देव प्रतिसर मंत्रों की सामर्थ्य से घातक प्रयोग को प्रयोक्ता की ओर ही पुनः भेज दें ॥६ ॥

२१३७. ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७ ॥

इस स्राक्त्य (प्रगतिशील) मणि को जो मनुष्य रक्षा कवच के रूप में धारण करते हैं, वे सूर्य की तरह द्युलोक में आरोहण करके कृत्या (अभिचारों) को बाधित कर लेते हैं- वश में कर लेते हैं ॥७ ॥

२१३८. स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८ ॥

अतीन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न महामनीषी अथर्वा के समान, इस स्राक्त्य मणि की सामर्थ्य से हम सम्पूर्ण शत्रु सेनाओं को जीत पाने में समर्थ हुए हैं और घातक राक्षसों को इसके द्वारा विनष्ट कर रहे हैं ॥८ ॥

२१३९. याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या
उचान्येभिराभृताः । उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥९ ॥

आंगिरसी घातक प्रयोग, असुरों द्वारा अपनाये गये घातक प्रयोग, स्वयं द्वारा किये गये घातक प्रयोग, अपने लिए संहारक सिद्ध होने वाले तथा अन्य शत्रुओं द्वारा किये गये घातक प्रयोग, ये दोनों प्रकार के प्रयोग नब्बे नदियों से दूर (अर्थात् अत्यन्त दूर) चले जाएँ ॥९ ॥

२१४०. अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥१० ॥

इस घातक प्रयोग के निवारक फल के आकांक्षी यजमान के निमित्त इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराट् और वैश्वानर, ये सभी देवगण तथा समस्त ऋषिगण दूसरों के द्वारा प्रेषित घातक प्रयोग के निवारणार्थ मणिरूप कवच को बाँधें ॥१० ॥

२१४१. उत्तमो अस्योषधीनामनड्वाञ्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥११ ॥

हे मणि के उत्पादक ओषधे ! जिस प्रकार वन्यपशुओं में बाघ और भारवाहक पशुओं में बैल उत्तम है, उसी प्रकार आप ओषधियों में श्रेष्ठ हैं । हम जिस (शत्रु या विकार) के बारे में इच्छा करें, उसे नष्ट हुआ ही पाएँ ॥११ ॥

२१४२. स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१२ ॥

जो इस स्राक्त्य महिमायुक्त मणि को धारण करते हैं, वे निश्चित रूप से बाघ और शेर के समान दूसरों का पराभव करने वाले तथा गौओं में स्वच्छन्द विचरने वाले वृषभ के समान शत्रुओं को दबाने में सक्षम होते हैं ॥१२ ॥

२१४३. नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥१३ ॥

इस स्राक्त्य मणि के धारण-कर्त्ताओं पर न तो अप्सराएँ ; न गन्धर्व और न ही कोई अन्य मनुष्य प्रहार करने में सक्षम हैं, वे सभी दिशाओं में विशिष्टतापूर्वक शोभायमान होते हैं ॥१३ ॥

२१४४. कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् । अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे
बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् । मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४ ॥

(हे मणे !) प्रजापति कश्यप ने आपको बनाया और प्रेरित किया । देवराज इन्द्रदेव ने मानवी संग्राम में आपको धारण किया और विजय पाई । असीम सामर्थ्ययुक्त स्राक्त्य मणि को ही पहले देवों ने कवचरूप में प्रयुक्त किया ॥

२१४५. यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५ ॥

जो पुरुष आपको मारक प्रयोगों, दीक्षाजनित घातक कृत्यों तथा घातक यज्ञों से मारने के इच्छुक हैं, हे इन्द्रदेव ! आप उन्हें सैकड़ों पर्वों से युक्त वज्रास्त्र से अपने सम्मुख मार डालें ॥१५ ॥

२१४६. अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान्त्संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६ ॥

यह मणि घातक प्रयोग के निवारण में सुनिश्चित रूप से सहायिका, परम बलप्रदा, विजयात्मक गुणों से युक्त है । यह हमारी सन्तान और वैभव का संरक्षण करे । यह मणि हमारे लिए सभी ओर से संरक्षक रूप और उत्तम-मंगलकारी कृत्यों की साधनभूत है ॥१६ ॥

२१४७. असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात्।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! हमारे उत्तर, दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर शत्रुओं की संहारक ज्योति विद्यमान रहे तथा हमारे समक्ष अर्थात् पूर्व दिशा की ओर भी आप इस ज्योति को स्थापित करें ॥१७ ॥

२१४८. वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥

द्यावापृथिवी, सूर्य, इन्द्र, अग्नि और धाता, ये देवगण हमारे संरक्षण कवच को धारण करने में सहायक हों ॥

२१४९. ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासानि ॥१९ ॥

इन्द्राग्नि देवों का जो विस्तृत और प्रचण्ड मणिरूप कवच है, जिसे भेदने में कोई देव समर्थ नहीं । वही कवच हमारे शरीर का सभी ओर से संरक्षण करे ।जिससे हम दीर्घायु के लाभ से युक्त और वृद्धावस्था तक स्वस्थ रहें ॥

२१५०. आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२० ॥

इन्द्राग्नि देवों द्वारा धारण करने के लिए प्रेरित की गई यह देवमणि (हमारे अंगों पर) आरूढ़ हो । हे मनुष्यो ! आप शत्रुनाशक, शरीर रक्षक और तीन आवरणों से युक्त इस मणि को बल-सामर्थ्य के लिए धारण करें ॥२० ॥

२१५१. अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥२१ ॥

इन्द्रदेव इस स्राक्त्य मणि में हमारे अभिलषित सुखों को प्रतिष्ठित करें । हे देवगण ! आप इस मणि में संव्याप्त हों । इसकी कल्याण-क्षमता को ऐसा बढ़ाएँ , जिसके प्रभाव से धारणकर्त्ता सौ वर्ष की आयु पाने वाले और बुढ़ापे तक आरोग्य लाभ से लाभान्वित रहें ॥२१ ॥

२१५२. स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ
अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा । स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः

कल्याणकारी, प्रजाओं के पालक, वृत्रासुर के नाशक, विभिन्न युद्धों के संचालक सभी शत्रुओं के नियन्त्रणकर्त्ता, विजयी, अपराजेय, सोमपान कर्त्ता, भयरहित और अभीष्ट फल वर्षक इन्द्रदेव आपके शरीर पर मणि को बाँधें । वह (मणि) सभी ओर से रात- दिन संरक्षण करे ॥२२ ॥

[६- गर्भदोषनिवारण सूक्त]

[**ऋषि-** मातृनामा । **देवता-** मातृनामा अथवा मन्त्रोक्त, १५ ब्रह्मणस्पति । **छन्द-** अनुष्टुप्, २ पुरस्ताद् बृहती, १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ११-१२, १४,१६ पथ्या पंक्ति, १५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १७ त्र्यवसाना सप्तपदा जगती ।]

सूक्त के ऋषि 'मातृनामा' हैं (मातृ नाम वाली या मातृ गुणवाली नारी) । इस सूक्त में गर्भ की सुरक्षा एवं पोषण के सूत्र दिये गये हैं । अनेक प्रकार के रोग कृमियों-विषाणुओं एवं उनके निवारक ओषधिप्रयोगों का वर्णन इस सूक्त में किया गया है-

२१५३. यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ । दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥

तुम्हारी माता ने तुम्हारे उत्पन्न होते ही पति को सौंपे जाने वाले जिन अंगों को स्वच्छ किया था, उनमें 'दुर्णामा' (दुष्ट नाम वाले), 'आलिंश' (शक्ति क्षय करने वाले) तथा 'वत्सप' (बच्चे को हानि पहुँचाने वाले) न पहुँचें ॥१ ॥

२१५४. पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥२ ॥

(गर्भिणी पीड़क) "पलाल" (अति सूक्ष्म रूप) और अनुपलाल (मांस से सम्बन्धित) रोगों को हम दूर करते हैं । (शरशर शब्दायमान), 'शर्कु', कोक (कामुक), मलिम्लुच (अति मलिनरूपयुक्त), पलीजक (झुर्रियाँ पैदा करने वाले), आश्रेष (चिपककर पीड़ित करने वाले), वव्रिवास (रूप हीन करने वाले), ऋक्ष ग्रीवा (रीछ के समान गर्दन बनाने वाले), प्रमीलिन (आँखों में आलस्य पैदा करने वाले) -इन सभी गर्भनाशक राक्षसों को हम दूर हटाते हैं ॥२ ॥

२१५५. मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥३ ॥

(हे रोगों के कारण !) तुम इस गर्भिणी के जंघाओं के बीच तथा अन्दर की ओर प्रवेश न करो तथा न नीचे सरको । हम इसके लिए 'दुर्नाम' नामक रोग की निवारक 'पिंगवज' ओषधि को प्रयुक्त कर रहे हैं ॥३ ॥

[पिंगवज नाम की ओषधि वैद्यक ग्रंथों में मिलती नहीं है । आचार्य सायण ने इसे सफेद सरसों कहा है । इसके ओषधि-परक गुण वैद्यक ग्रंथों में मिलते हैं । विशिष्ट सन्दर्भ में इसका प्रयोग शोध का विषय है ।]

२१५६.दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः । अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम्

दुर्नाम और सुनाम ये दोनों एक साथ रहने के इच्छुक हैं । इनमें निकृष्ट दुर्नाम को हम विनष्ट करते हैं तथा सुनाम स्त्रीजाति में विद्यमान रहे ॥४ ॥

[सूक्ष्म जीवाणुओं में हानिकारक 'दुर्नाम' तथा लाभप्रद 'सुनाम' दोनों प्रकार के जीव होते हैं । हानिकारक हटें तथा लाभप्रद रहें- यह वाञ्छनीय है । प्रजनन विज्ञान (जेनेटिक साइन्स) के अनुसार भी 'स्पर्म्स' (शुक्राणुओं-डिम्बाणुओं) में विकारग्रस्त इकाइयों के कारण वंशानुगत रोग होते हैं । विकारग्रस्त स्पर्म्स का निवारण हो तथा केवल स्वस्थ ही फलित (फर्टाइल) हों, ऐसा भाव भी मन्त्र से प्रकट होता है । इस भाव की पुष्टि आगे के मन्त्रों से और भी स्पष्टता से हो जाती है ।]

२१५७. यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥५ ॥

जो काले रंग का केशी नामक राक्षस रोग, स्तम्ब भाग में 'स्तम्बज' नामक रोग और खराब मुखवाले 'तुण्डिक' नामक रोग हैं, ये सभी दुर्भाग्यशाली हैं । इन्हें हम गर्भिणी स्त्री के दोनों मुठकों (डिम्ब ग्रंथियों) और कटिभाग से दूर करते हैं ॥५ ॥

२१५८. अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायाञ्छ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६ ॥

गंध द्वारा नाश करने वाले 'अनुजिघ्र' , स्पर्श द्वारा हनन करने वाले 'प्रमृश', मांस-भक्षक क्रव्याद, चाटकर हनन करने वाले 'रेरिह', किष्-किष् करने वाले किष्किण, नित्य हिंसक तथा धनरहित करने वाले राक्षस रोग-बीजों को 'पिंगवज' ओषधि विनष्ट करे ॥६ ॥

२१५९. यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७ ॥

(हे नारी !) सुप्तावस्था में तुम्हारे पास जो (जीवाणु) भाई या पिता बनकर आते हैं, उन क्लीबों (नपुंसकों) को यह 'बज' ओषधि हटा दे ॥७ ॥

[प्रजनन विज्ञान (जेनेटिक साइंस) के अन्तर्गत हुई शोधों के अनुसार स्त्री के भाई या पिता के अनुरूप पुरुष बीज (स्पर्म्स), स्त्री बीजों के साथ मिलकर फलित (फर्टाइल) नहीं होते । ओषधि या मंत्र शक्ति से उस कोटि के नपुंसक (न फलने वाले) स्पर्म्स का निवारण करना वाञ्छनीय है ।]

२१६०. यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥८ ॥

हे गर्भिणी स्त्री ! स्वप्नावस्था में जो आपको बोधरहित जानकर और जाग्रत् अवस्था में आपके समीप आकर कष्ट पहुँचाते हैं, आप उन सभी रोग-बीजों को उसी प्रकार विनष्ट कर दें, जिस प्रकार अन्तरिक्ष में विचरण करता हुआ सूर्य अन्धकार को विनष्ट करता है ॥८ ॥

२१६१. यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥९ ॥

हे ओषधे ! जो इस स्त्री को मृत बच्चे वाली अथवा गर्भपात होने वाली करता है, ऐसे रोग-बीज को आप विनष्ट करें तथा गर्भ द्वार रूपी कमल को रोगरहित करें ॥९ ॥

२१६२. ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः । कुसूला ये च कुक्षिलाः
ककुभाः करुमाः स्रिमाः । तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥१० ॥

गर्दभ की तरह स्वर वाले, कुठिया की आकृति युक्त या सुई के अगले भाग वाले कुसूल नामक बड़ी कोख वाले-कुक्षिल नामक रोग, भयानक आकृतियुक्त-ककुभ, बुरी ध्वनि करने वाले 'करुम' आदि रोगाणु जो सायंकाल घरों के चारों ओर नाचते हैं, हे ओषधे !आप अपनी गंध द्वारा उन फैले हुए घातक जीवों को विनष्ट कर डालें ॥१० ॥

[सायंकाल के समय घरों के आस-पास नाचने वाले, गधे जैसी या बुरी ध्वनि करने वाले कीट, मच्छर आदि की तरह के कीट प्रतीत होते हैं । मच्छर आदि सरसों के तेल की गंध से भाग भी जाते हैं ।]

२१६३. ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥११ ॥

जो कुकुध नामक राक्षस रोग, कुत्ते की तरह कुकू शब्द करते हुए हिंसक कृत्यों से दुष्कर्मों को ग्रहण करते हैं और जो पागलों की तरह हाथ-पैर मारते हुए जंगल में शब्द करते घूमते हैं, उन दोनों प्रकार के रोग-उत्पादक कृमियों को हम गर्भिणी से दूर हटाते हैं ॥११ ॥

२१६४. ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥१२ ॥

जो आकाश में चमकने वाले सूर्य को सहन करने में असमर्थ हैं, ऐसे अलक्ष्मीक (अशुभ), बकरी के चर्म की तरह दुर्गन्धयुक्त, रक्तयुक्त मुख वाले, टेढ़ी गति वाले, ऐसे सभी प्रकार के रोगाणुओं को हम विनष्ट करते हैं ॥१२ ॥

२१६५. य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥१३ ॥

जो (सूर्य या इन्द्र) आत्मतत्त्व को कंधे पर धारण करके विचरते हैं, वे स्त्रियों के कटिभाग को पीड़ित करने वाले रोग-कृमियों को विनष्ट कर डालें ॥१३ ॥

२१६६. ये पूर्वे वध्वो३ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेस्थाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥१४ ॥

जो पैशाचिक कृमि आगे-आगे हाथ में सींग (डंकों) को लेकर विचरते हैं और जो भोजनालयों में रहते हुए हँसी-विनोद करते हैं, जो गृह, स्तम्भ आदि में प्रकाश उत्पन्न करते हैं, ऐसे सभी रोग कृमियों को हम गर्भिणी के आवास स्थल से दूर हटाते हैं ॥१४ ॥

२१६७. येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा । खलजाः शकधूमजा उरुण्डा
ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः । तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥

जिनके पैर पीछे, एड़ियाँ और मुख आगे हैं, ऐसे राक्षस रोगों, धान्य शोधन स्थल (खल) में उत्पन्न कृमियों, गौ के गोबर और घोड़े की लीद आदि में उत्पन्न होने वाले, बड़े मुख वाले अथवा मुखरहित, मुट्-मुट् कष्टमय शब्द करने वाले, बड़े अण्डकोशों वाले और वायु के समान गतिमान् रहते हैं, ऐसे सभी प्रकार के राक्षसरूप रोगाणुओं को, हे ज्ञान के स्वामी ब्रह्मणस्पते ! आप अपने ज्ञान से नष्ट कर दें ॥१५ ॥

२१६८. पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् ॥१६ ॥

विस्फारित नेत्रों से युक्त और पतले जंघा भाग वाले जो राक्षस हैं, वे स्त्रियों के पीड़क होने से, उनके विरोध स्वरूप वे स्त्रियों से विहीन अथवा सर्प हो जाएँ । जो असंयमी (कामासक्त) राक्षस प्रवृत्ति के मनुष्य स्वप्न अवस्था में इस स्त्री को पाने की कामना करते हैं, हे ओषधे ! आप उन्हें विनष्ट करें ॥६ । ।

२१६९. उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् । उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत
शालुडम् । पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥१७ ॥

प्रखररूप में दबाने वाले, मुनि के समान जटाधारी 'मुनिकेश', हिंसक प्रवृत्ति के 'मरीमृश' गर्भिणी स्त्री को ढूँढ़ते फिरने वाले 'उदुम्बल' और भयानक तुण्ड (तौंद) वाले 'शालड', ऐसे सभी दुष्ट राक्षसों को हे ओषधे ! आप उसी प्रकार एड़ी और पैर से रौंद डालें, जिस प्रकार दूध दुहाने के पश्चात् कूदने वाली अथवा दुष्ट प्रकृति की गौ दूध के बर्तन में लात मार देती है ॥१७ ॥

२१७०. यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥१८ ॥

हे गर्भिणी !आपके गर्भ को खण्डित करने या जन्मे हुए शिशु को मारने के इच्छुक राक्षस को यह ओषधि पैर से कुचल डाले । हे श्वेत ओषधे ! आप प्रचण्ड गतिमान् होकर गर्भ घातक राक्षस के हृदय को पीड़ित करें ॥१८

२१७१. ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥१९ ॥

जो राक्षस (रोग) आधे उत्पन्न हुए गर्भों को विनष्ट करते हैं और जो नारी का छद्मरूप बनाकर सूतिका गृह में सोते हैं, उन गर्भधारिणी स्त्रियों को अपना हिस्सा समझने वाले गन्धर्व राक्षसों को 'पिंग बज' ओषधि (श्वेत सर्षप) उसी प्रकार दूर करे, जैसे जलविहीन मेघ को वायु हटाते हैं ॥१९ ॥

२१७२. परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥२० ॥

विकसित तथा स्थिर गर्भ को गिरने न दें । वस्त्र या नियम में रखने वाली उग्र ओषधि गर्भ की रक्षा करे ॥२० ॥

२१७३. पवीनसात् तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥२१ ॥

वज्र के समान नाक वाले, बड़े गाल वाले तङ्गल्व, सायक (काले) और नग्नक (नंगे), इन राक्षस रोग कृमियों से सन्तान और पति सुख के निमित्त, यह पिंग ओषधि तुम्हारी रक्षा करे ॥२१ ॥

२१७४. द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः । वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥

हे ओषधे ! आप दो मुख वाले, चार आँख वाले, पाँच पैर वाले, अंगुलिरहित, लतापुञ्ज के समान पैर वाले, मुख को नीचे की ओर करके चलने वाले और सभी अंगों में व्यापनशील रोग कृमियों से रक्षा करें ॥२२ ॥

२१७५. य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥२३ ॥

जो राक्षस (रोग कृमि) कच्चे मांस को खाते हैं, जो पुरुषों के भी मांस को खाते हैं, जो बड़े-बड़े केश वाले राक्षस छद्मरूप में प्रविष्ट होकर गर्भों का भक्षण करते हैं, ऐसे तीनों प्रकार के राक्षस-रोगों को हम गार्भिणी स्त्री के समीप से दूर करते हैं ॥२३ ॥

२१७६. ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४ ॥

श्वसुर को देखकर जैसे बहू हट जाती है, उसी प्रकार जो सूर्य को देखकर पलायन कर जाते हैं, उन (कृमियों) के हृदयों को यह पिंग बज वेध डाले ॥२४ ॥

२१७७. पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥२५ ॥

हे पिंग ओषधे ! आप उत्पन्न हुई सन्तान का संरक्षण करें, उत्पन्न हुए पुरुष गर्भ अथवा स्त्री गर्भ को भूतबाधा से संरक्षित करें । अण्ड प्रदेश को खाने वाले कृमि, गर्भ को विनष्ट न कर सकें । हे ओषधे ! आप इन कृमियों को गर्भिणी के समीप से दूर भगाएँ ॥२५ ॥

२१७८. अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६ ॥

(हे ओषधे अथवा देव शक्तियो !) आप संतानहीनता, बाल मृत्यु, हृदय के रुदन और पापों के भोगादि को शत्रुओं के ऊपर इस प्रकार डालें, जिस प्रकार वृक्ष से उत्पन्न फूलों की माला किसी को पहना दी जाती है ॥२६ ॥

[७- ओषधि समूह सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** भैषज्य, आयुष्य, ओषधि समूह । **छन्द-** अनुष्टुप्, २ उपरिष्टाद् भुरिक् बृहती, ३ पुरउष्णिक्, ४ पञ्चपदा परानुष्टुप् अतिजगती, ५-६, १०, २५ पथ्यापंक्ति, ९ द्विपदार्ची भुरिक् अनुष्टुप्, १२ पञ्चपदा विराट् अतिशक्वरी, १४ उपरिष्टात् निचृत् बृहती, २६ निचृत् अनुष्टुप्, २८ भुरिक् अनुष्टुप् ।]

२१७९. या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥१ ॥

भूरे, सफेद, लाल, नीले और काले, ऐसे विभिन्न वर्णों तथा छोटे शरीर वाली ओषधियों के सम्मुख जाकर, रोग निवारण के लिए हम उन्हें पुकारते हैं ॥१ ॥

[वैद्यक शास्त्र में विशिष्ट प्रयोगों के लिए ओषधियों को पहले मंत्रादि उपचारपूर्वक आमंत्रित करने का विधान है। ओषधियों को विचार तरंगें भी प्रभावित करती हैं, यह प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुका है।]

२१८०. त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२ ॥

जिनकी माता पृथ्वी, पिता द्युलोक तथा मूल समुद्र (जल) है, ऐसी ओषधियाँ दैवी प्रकोप से अभिप्रेरित रोग के प्रभाव से इस मनुष्य को बचाएँ ॥२ ॥

२१८१. आपो अग्रं दिव्या ओषधयः। तास्ते यक्ष्ममेनस्य१मङ्गादङ्गादनीनशन् ॥३ ॥

हे रोगी पुरुष ! सामने उपस्थित जल और दिव्य ओषधियाँ, आपके दुष्कर्मों के पाप से उत्पन्न यक्ष्मा (रोग) को अंग-प्रत्यंगों से निष्कासित करें ॥३ ॥

२१८२. प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥

विशेष विस्तारवाली, गुच्छकवाली, एक कोपल वाली और अति प्रशाखाओं वाली ओषधियों को हम आवाहित करते हैं। अंशुमती (अनेक अंशों से युक्त) काण्डों (गाँठों) वाली, अनेक प्रकार की शाखाओं से युक्त, सभी देवशक्तियों से सम्बन्धित, प्रभावमयी, जीवनदायिनी ओषधियों को आप (रोगी) के निमित्त हम आवाहित करते हैं ॥४ ॥

२१८३. यद् वः सहः सहमाना वीर्य१ यच्च वो बलम्।
तनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥५ ॥

हे रोगनिवारक ओषधियो ! आपमें रोग को दूर करने की जो सामर्थ्य और बलिष्ठता है, उससे आप इस रोगी को यक्ष्मा रोग से बचाएँ, इसी उद्देश्य से हम ओषधि को तैयार कर रहे हैं ॥५ ॥

२१८४. जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६ ॥

हम जीवनदायिनी, हानिरहित, रोपणवाली अथवा रुकावटरहित, उठाने वाली (ऊपर की ओर जाने वाली) मीठी और फूलों वाली ओषधियों को यहाँ लोकहित के उद्देश्य से आरोग्यलाभ हेतु आवाहित करते हैं ॥६ ॥

२१८५. इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥७ ॥

विशिष्ट ज्ञानयुक्त वैद्य के मन्त्ररूप वचनों से पुष्टिकारक ओषधियाँ यहाँ आगमन करें। जिससे हम इस रोगी मनुष्य को रोगरूप पापों से पार उतार सकें ॥७ ॥

२१८६. अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥८ ॥

जो ओषधियाँ जल की गर्भरूप और अग्नि का खाद्य होने पर बार-बार नवीन जैसी उत्पन्न होती हैं, वे सहस्र नाम वाली, स्थिरता सम्पन्न ओषधियाँ यहाँ लाई जाएँ ॥८ ॥

२१८७. अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः । व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥९ ॥

जल ही जिनकी प्राण चेतना है, ऐसी शैवाल में पैदा होने वाली तीक्ष्ण गन्धयुक्त, तीखे सींगों के आकार वाली जो ओषधियाँ हैं, वे पापरूपी रोग को विनष्ट करें ॥९ ॥

[यहाँ ऋषि रोगों की उत्पत्ति का कारण पापों को मानते हैं । प्रकृति के नियमों का उल्लंघन ऐसे पाप हैं, जो अनेक प्रत्यक्ष रोगों को पैदा करते हैं । मानवीय चेतना के प्रतिकूल स्वार्थपूर्ण कर्मों से मानसिक ग्रन्थियाँ बनती हैं तथा मनोकायिक (साइको सोमेटिक) रोग उत्पन्न होने लगते हैं । अतः आरोग्य के लिए पापों से निवृत्ति आवश्यक है ।]

२१८८. उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥१० ॥

रोग निवारण करने वाली, जलोदर आदि रोगों की निवारक, रोग निवारण की प्रचण्ड क्षमता से सम्पन्न विषनाशक, कफनाशक और मारक प्रयोगों की नाशक, ऐसी जो भी ओषधियाँ हैं, वे यहाँ आगमन करें ॥१० ॥

२१८९. अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥११ ॥

क्रय से रहित बल्कि स्वयं जाकर प्राप्त की गई, रोगों को अपनी प्रभाव क्षमता द्वारा दूर करने वाली जो मन्त्रों से प्रशंसित (अभिमन्त्रित) ओषधियाँ हैं, वे इस ग्राम में गाय, अश्वादि पशुओं और मनुष्यों का संरक्षण करें ॥११ ॥

२१९०. मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव । मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥१२ ॥

इन ओषधियों के मूल, मध्य, अग्रभाग , उनके पत्ते और फूल सभी मीठे होते हैं ।ये ओषधियाँ मधुर रस से सिञ्चित तथा अमृत का सेवन करने वाली हैं । ये गौओं को प्रधान स्थान तथा घृतादि अन्न देने वाली बनाएँ ॥१२ ॥

२१९१. यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३ ॥

पृथ्वी में पैदा हुई असंख्य पत्तों वाली जो ओषधियाँ हैं, वे हमें पापरूपी मृत्यु से बचाएँ ॥१३ ॥

२१९२. वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् ॥१४ ॥

ओषधियों द्वारा बनायी गई, व्याघ्र जैसी पराक्रमी 'मणि' रोगरूप पापों से संरक्षण करने वाली है, वह मणि सभी रोगों और रोग कृमियों को अन्यत्र ले जाकर विनष्ट करे ॥१४ ॥

२१९३. सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥१५ ॥

जिस प्रकार सिंह की गर्जना और अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से प्राणी घबरा जाते हैं, उसी प्रकार इन प्राप्त की गई ओषधियों से भगाए गए गौ आदि पशुओं और मनुष्यों के रोग, नौकाओं से गमन करने योग्य नदियों को लाँघकर सुदूर प्रस्थान करें ॥१५ ॥

२१९४. मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि । भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥

जिन ओषधियों के अधिपति वनस्पति देव हैं, जो भूमि को आच्छादित कर लेती हैं, ऐसे रोगों की निवारक ओषधियाँ वैश्वानर अग्नि पर आधारित होती हैं ॥१६ ॥

२१९५. या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च।
ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥१७॥

महर्षि अंगिरा द्वारा विवेचित जो मंगलकारिणी ओषधियाँ पर्वतीय क्षेत्रों और समतल स्थानों में पैदा होती हैं, वे दूध की तरह सारयुक्त होकर हमारे हृदय स्थल को सुख-शान्ति देने वाली हों ॥१७॥

२१९६. याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा।
अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥१८॥

जिन ओषधियों के सम्बन्ध में हम जानते हैं और जिन्हें आँखों से देखते हैं। जिन अज्ञात ओषधियों को हम जानें, उन सबमें रोगों को दूर करने के तत्त्व विद्यमान हैं, इस तथ्य को हम जानते हैं ॥१८॥

२१९७. सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम। यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि॥

वे समस्त परिचित-अपरिचित ओषधियाँ हमारे अभिप्राय को समझें; ताकि इस रोगी को हम पापरूपी रोग से मुक्त करने में सफल हों ॥१९॥

२१९८.अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः। व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ॥

पीपल, कुशा, ओषधियों का राजा सोम, अमृत हवियाँ, धान और जौ आदि यह सब अमर ओषधियाँ हैं। ये सब द्युलोक की संतानें हैं ॥२०॥

[हवि नष्ट नहीं होती, वह अमर ओषधि बन जाती हैं। ओषधियाँ द्युलोक की सन्तानें हैं, द्युलोक से उत्पन्न दिव्य प्रवाह तथा वर्षा से उनमें दिव्य गुण आते हैं।]

२१९९. उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः। यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति।

पृथ्वी जिनकी माता है, ऐसी हे ओषधियो! जब पर्जन्य गर्जनयुक्त शब्द करता है, तब ऊपर उठो (बढ़ो), इस प्रक्रिया द्वारा पर्जन्य अपने रेतस् (उर्वर रस-जल) द्वारा तुम्हारा संरक्षण करता है ॥२१॥

[जब बिजली कड़कती है, मेघ गर्जन होता है, तो नाइट्रोजन के उर्वरक संयोग बनते हैं। इस वैज्ञानिक तथ्य के साथ यज्ञादि एवं मंत्रों के सूक्ष्म प्रवाह भी उनके साथ संयुक्त होते हैं, जिससे वनस्पतियों के गुण बढ़ते हैं।]

२२००. तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि। अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः॥

उस ओषधि समूह की अमृतरूप सामर्थ्य को हम इस पुरुष को पिलाते हैं, इस प्रकार हम इसे ओषधि सेवन कराते हैं, जिससे यह शतायु लाभ प्राप्त करे ॥२२॥

२२०१. वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम्।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२३॥

जिन ओषधियों को सुअर, नेवला, सर्प और गन्धर्व जानते हैं, उन्हें हम इस रोगी मनुष्य के संरक्षण हेतु आवाहित करते हैं ॥२३॥

[सुअर पुष्टिकारक ओषधियों को अपने थूथन से खोद-खोद कर खाता है। नेवला सर्प-विष की तथा सर्प - नेवले द्वारा किये गये क्षतों-घावों को ठीक करने की ओषधियाँ जानते हैं।]

२२०२. याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः। वयांसि हंसा या
विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः। मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥२४॥

अंगिरा ने जिन सुन्दर पत्तों वाली ओषधियों का प्रयोग किया, जिन दिव्य ओषधियों की ज्ञाता पशु-पक्षी और हंस हैं, उन सभी प्रकार की ओषधियों को हम इस रोगी पुरुष के संरक्षण हेतु बुलाते हैं ॥२४॥

२२०३. यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥२५ ॥

जिन ओषधियों को अहिंसति गौएँ रोग-निवारण के लिए भक्षण करती हैं और जिन्हें भेड़-बकरियाँ खाती हैं, वे सभी लाई गई ओषधियाँ आपके निमित्त कल्याणकारी हों ॥२५ ॥

२२०४. यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः । तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥

ओषधि-विशेषज्ञ चिकित्सक जितनी ओषधियों (ओषधि प्रयोग) के ज्ञाता हैं, उन सभी ओषधियों को हम आपके कल्याण के निमित्त यहाँ लेकर आ चुके हैं ॥२६ ॥

२२०५. पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत । संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥

पुष्पवती, पल्लवों वाली, फलोंवाली और फलरहित ये सभी ओषधियाँ इस पुरुष के सुख-शान्ति के विस्तार हेतु श्रेष्ठ माताओं के समान दुही जाएँ ॥२७ ॥

२२०६. उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥२८ ॥

पाँच प्रकार के (पाँच कर्मेन्द्रियों) तथा दस प्रकार के (दसों इन्द्रियों के) कष्टों से, यम के बन्धनों से तथा सभी देवों के प्रति किये गये पापों से, तुम (आरोग्य की इच्छा वाले) को ऊपर उठाया गया (मुक्त किया गया) है ॥२८ ॥

[८- शत्रुपराजय सूक्त]

[**ऋषि**- भृग्वङ्गिरा । **देवता**- परसेनाहनन, इन्द्र वनस्पति । **छन्द**- अनुष्टुप्, २,८-१०, २३ उपरिष्टाद् बृहती, ३ विराट् बृहती, ४ बृहती पुरस्तात् प्रस्तार पंक्ति, ६ आस्तार पंक्ति, ७ विपरीत पादलक्ष्मा चतुष्पदा अतिजगती, ११ पथ्या बृहती, १२ भुरिक् अनुष्टुप्, १९ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २० निचृत् पुरस्ताद् बृहती, २१ त्रिष्टुप्, २२ चतुष्पदा शक्वरी, २४ त्र्यवसाना त्रिष्टुप् उष्णिक् गर्भा पराशक्वरी पञ्चपदा जगती ।]

२२०७. इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥१ ॥

शत्रुओं की नगरियों को ध्वस्त करने वाले इन्द्रदेव शूरवीर और समर्थ हैं तथा शत्रु के सैन्य दल को मथने वाले हैं । वे मंथन प्रारम्भ करें, जिससे हम शत्रु सेना को विभिन्न ढंग से मार सकें ॥१ ॥

२२०८. पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।
धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥२ ॥

शत्रु सेना पर प्रहार हेतु जलाई गई दुर्गन्धयुक्त रस्सी, इस शत्रु सेना में दुर्गन्धित धुआँ पैदा करे । धुएँ और अग्नि को देखकर हमारे अमित्रों के हृदय में भय स्थापित हो ॥२ ॥

२२०९. अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥३ ॥

हे अश्वत्थ (पीपल अथवा अश्वारोही) ! आप इन शत्रुओं का संहार करें । हे खदिर ! (खैर वृक्ष अथवा शत्रु भक्षक) आप इन शत्रुओं का भक्षण करें । ये एरण्ड की तरह टूट जाएँ , वध करने वाले उपकरणों से इनका हनन करें ॥३ ॥

२२१०. परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥४ ॥

परुष (कठोर) आवाहन उक्तियाँ इन्हें (सैनिकों को) उत्तेजित करें और वध करने वाले शस्त्र हिंसक विधियों से इनका वध करें ।बड़े जाल (व्यूह) से बँधे हुए, ये शत्रुगण शर (सरकण्डे) की तरह सहज ही टूट जाएँ ॥४ ॥

२२११. अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥५ ॥

अन्तरिक्ष जालरूप है और विस्तृत दिशाएँ जाल के दण्ड (सीमा) रूप में प्रयुक्त हुई हैं । उस जाल ने दस्युओं की सेना को बाँधकर, उन्हें छिन्न-भिन्न कर दिया है । ॥५ ॥

२२१२. बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥६ ॥

सैन्यदल के साथ रहने वाले महिमामय इन्द्रदेव का जाल बड़े आकार का है । हे इन्द्रदेव ! उससे आप सभी शत्रुओं को, सभी ओर से अपने अधीन करें, जिससे इनमें से कोई भी छूटने न पाएँ ॥६ ॥

२२१३. बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! यज्ञों में असंख्य धन-सम्पदा (अर्घ) प्राप्त करने वाले अथवा हजारों द्वारा पूजनीय और सैकड़ों पराक्रमी कार्य करने वाले महिमामय आपका जाल विशाल है । इन्द्रदेव ने सैन्य-शक्ति से, इसी जाल से, शत्रुओं को पकड़कर सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों दस्युओं का संहार किया था ॥७ ॥

२२१४. अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥८ ॥

यह लोक ही महान् इन्द्रदेव का महिमामय बड़ा जाल है, उस इन्द्रजाल से सभी शत्रुओं को हम अन्धकार से घेरते हैं ॥८ ॥

[ऊपर के मन्त्रों में इन्द्र के जाल का वर्णन है । इन्द्र संगठक, संरक्षक देव है । उनकी आकर्षण-विकर्षण शक्तियों का विशाल जाल अन्तरिक्ष में फैला हुआ है । देव शक्तियों के सहयोग से वे अनियंत्रित कणों एवं शक्ति-प्रवाहों को अपने सूक्ष्म जाल में फँसाकर व्यवस्था बनाए रखते हैं ।]

२२१५. सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना । श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान्

बड़ी थकान (पाप देवी पिशाचिनी) , भयंकर निर्धनता, अकथनीय व्यथा, कष्टमय परिश्रम, तन्द्रा (आलस्य) और मोहादि से, इन सभी शत्रुओं को हम विनष्ट करते हैं ॥९ ॥

२२१६. मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१० ॥

हम इन शत्रुओं को मृत्यु की भेंट करते हैं । ये शत्रु मृत्युपाश से बँध चुके हैं, इन्हें बाँधकर हम मृत्यु दूतों की ओर ले जाते हैं ॥१० ॥

२२१७. नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परः सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥११ ॥

हे मृत्यु दूतो ! इन शत्रुओं को ले जाओ । हे यमदूतो ! इनसे नरक को पूर्ण करते हुए, हजारों सैनिकों को मृत्यु की भेंट करो । रुद्रदेव का आयुध इनका संहार करे ॥११ ॥

२२१८.साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा । रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः॥

साध्यदेव एक 'जाल-दण्ड' को उठाकर बलपूर्वक शत्रुओं की ओर जाते हैं, इसके साथ एक 'जाल-दण्ड' को रुद्रदेव, एक को वसुदेव और आदित्य देवों ने एक-एक जाल-दण्ड को उठाया है ॥१२ ॥

२२१९. विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा । मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम्॥

विश्वेदेवा (समस्त देवगण) ऊपरी भाग से दुष्ट शत्रुओं को दबाते हुए बलपूर्वक गमन करें और आंगिरस बीच में सेना का संहार करके भूमि पर फेंक दें ॥१३ ॥

२२२०. वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१४ ॥

हम वनस्पतियों, वनस्पतियों द्वारा बनी हुई ओषधियों, लताओं और दो पैर वाले मनुष्यादि तथा चार पैर वाले हिंसक पशुओं को मंत्र-सामर्थ्य से प्रेरित करते हैं, जिससे वे शत्रु की सैन्य शक्ति के संहार में सक्षम हों ॥१४ ॥

२२२१. गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥१५ ॥

गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, देवगण, पुण्यजनों , देखे गए तथा न देखे गए पितरजनों को हम इस ढंग से प्रेरित करते हैं, जिससे वे शत्रु सेना के विनाश में सक्षम हों ॥१५ ॥

२२२२. इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥१६ ॥

हे शत्रुओ ! ऐसे हजारों मृत्यु के पाश रख दिये गये हैं, जिनको पार करते समय तुम्हारा सुरक्षित रहना कठिन है । यह कूट इस शत्रु सेना का हजारों विधियों से संहार करे ॥१६ ॥

२२२३. घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः । भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ।

यह प्रज्वलित हवि अग्नि द्वारा अच्छे ढंग से प्रज्वलित हुई है । यह होम हजारों शत्रुओं की संहारक क्षमता से युक्त है । हे सफेद बाहुवाले भव और शर्व देवो ! आप इस सेना का विनाश करें ॥१७ ॥

२२२४. मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् ॥१८ ॥

ये शत्रु मृत्यु भूख, निर्धनता और भय को प्राप्त हों । हे इन्द्र और शर्व !आप दोनों शत्रुसेना का संहार करें ॥१८॥

२२२५. पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥१९ ॥

हे दुष्ट शत्रुओ ! तुम मन्त्र सामर्थ्य से पराजित होकर और संत्रस्त होकर मन्त्र प्रयोग द्वारा खदेड़े जाने पर भाग जाओ । मन्त्रों के अधिष्ठाता बृहस्पतिदेव द्वारा भगाए गए शत्रुओं में से कोई भी सुरक्षित न बच सकें ॥१९ ॥

२२२६. अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥२० ॥

इन शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्र नीचे गिर जाएँ, पुन: ये बाण को धनुष पर चढ़ाने में सफल न होने पाएँ। भयभीत स्थिति में इनके मर्म स्थल बाणों से बींधे जाएँ ॥२०॥

२२२७. सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥२१॥

द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और देवगण इन्हें शाप दें, इससे ये शत्रु प्रतिष्ठारहित होकर अथर्ववेदीय ज्ञान-विज्ञान से वञ्चित रहें तथा आपस में ही वैर-विरोध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हों ॥२१॥

२२२८. दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥२२॥

चार दिशाएँ ही देवरथ की घोड़ियाँ, पुरोडाश ही खुर, अन्तरिक्ष ऊपर का भाग, द्युलोक और पृथ्वी ये दोनों पक्ष हैं, ऋतुएँ ही लगामें, अन्तर्देश (उप दिशाएँ) संरक्षकरूप और वाणी रथ की परिधि है ॥२२॥

२२२९. संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥२३॥

'संवत्सर' ही रथरूप, 'परिवत्सर' रथ में बैठने का स्थल, 'विराट्' जोतने का दण्ड, 'अग्नि' इस रथ के मुख्य रूप, इन्द्रदेव बाईं तरफ विराजने वाले और चन्द्रमा सारथि रूप हैं ॥२३॥

२२३०. इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा। इमे जयन्तु परामी जयन्तां
स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः। नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥२४॥

इधर से 'जय' और उधर से 'विजय' प्राप्त हो। हम भली प्रकार जय प्राप्त करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित हो। हमारे ये मित्र वीर विजयशील हों, शत्रु सैनिक पराजित हो जाएँ, इसके लिए आहुति समर्पित हो। नील एवं लोहित (ज्वालाओं) से हम सभी शत्रुओं को दमित करते हैं ॥२४॥

[९- विराट् सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- कश्यप, समस्त आर्ष छन्द, समस्त ऋषिगण । **छन्द**- त्रिष्टुप्, २ पंक्ति, ३ आस्तार पंक्ति, ४-५, २३, २५, २६ अनुष्टुप्, ८, ११-१२, २२ जगती, ९ भुरिक् त्रिष्टुप्, १४ चतुष्पदा अतिजगती ।]

इस सूक्त के ऋषि अथर्वा, कश्यप आदि अनेक ऋषि हैं तथा देवता 'विराट्' हैं। इस सूक्त में सृष्टि के उद्भव आदि रहस्यों पर चर्चा की गई है। आलंकारिक उदाहरणों, उपाख्यानों के माध्यम से गूढ़ सिद्धान्तों को प्रकट किया गया है। विषय गंभीर है। विस्तृत व्याख्याएँ न करके, मन्त्रार्थों के साथ सांकेतिक सूत्र शैली का प्रयोग किया गया है-

२२३१. कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥१॥

वे दोनों (चेतन और जड़ तत्त्व) कहाँ से पैदा हुए? वह कौन सा अर्धभाग है (जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई)? किस लोक से तथा भूमि के किस भाग के सलिल (जल या मूल द्रव्य) से 'विराट्' के दोनों बच्चे उत्पन्न हुए? मैं उन दोनों के बारे में आपसे पूछता हूँ कि उनमें से यह (प्रकृतिरूप गाय) किसके द्वारा दुही जाती है? ॥१॥

[परम व्योम में अभी भी अविभक्त विराट् है, उसके एक अंश के उद्वेलित होने से ही सृष्टि बनी है। चेतन तत्त्व और जड़ पदार्थ, 'विराट्' के इन दो पुत्रों में से गाय (प्रकृति) किसके द्वारा दुही गई। स्पष्ट है कि चेतन तो स्वतः पूर्ण है, जड़ पदार्थयुक्त काया के पोषण के लिए ही प्रकृति का दोहन किया जाता है ।]

२२३२. यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥२ ॥

जो त्रिभुज (त्रि-आयाम) उत्पत्ति स्थल में शयन करने वाला है, जो अपनी महत्ता से महत् सलिल (मूल प्रवाह) को उत्तेजित करता है, वह (आत्मतत्त्व) दूरस्थ गुहाओं में अपने लिए शरीरों की रचना करता है ॥२ ॥

[चेतन आत्मतत्त्व जब सृष्टि बनाना चाहता है, तो अपने तपः से बृहत् अप् या सलिल (क्रियाशील कणों) में हलचल उत्पन्न करता है, ऐसा भाव वेद ने अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है । वह चेतन दूरस्थ गर्भों में अपने लिए शरीरों की रचना करता है ।]

२२३३. यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥३ ॥

जो तीन बड़े महिमायुक्त (ब्रह्म, प्रकृति एवं जीव) हैं, इनमें (इनके संयोग से उत्पन्न) चौथा (शरीर) ही वाणी को प्रकट करता है । ज्ञानीजन तपश्चर्या द्वारा इस 'ब्रह्म' (परमात्मतत्त्व) को समझें । इनमें से एक (जीव), एक (परब्रह्म) से जुड़ता है ॥३ ॥

२२३४. बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥४ ॥

बृहत् तत्त्व से उत्तम पाँच सामों (पंच प्राणों) की रचना हुई है, उनसे छठे (शरीर) का निर्माण हुआ है । उस बृहत्तत्त्व से बृहत्सृष्टि की उत्पत्ति हुई है,(जानने योग्य यही है कि) इस बृहत् तत्त्व की उत्पत्ति कहाँ से हुई है ? ॥४ ॥

२२३५. बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५ ॥

बृहती (प्रकृति) की मात्रा से, माता की मात्रा (तन्मात्राएँ) निर्मित हुई हैं । माया (माता) से निश्चितरूप से प्रकृति रूप माया उत्पन्न हुई और माया के ऊपर माया (प्रकृति) का मातली (निरीक्षक) नियुक्त है ॥५ ॥

२२३६. वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥६ ॥

वैश्वानर (अग्निदेव) की प्रतिमा (आभा - ऊर्जा) के ऊपर ही स्वर्गलोक स्थित है । जहाँ तक अग्निदेव, द्युलोक और भूलोक को बाध्य करते हैं (प्रेरित करते हैं) , तब वह छठवाँ (मं०क्र० ४ में वर्णित शरीर) स्तोमों (वाणी से मंत्रों) को प्रकट करता है ।दिन के उदय होने पर वही छठे (पंचाग्नियों से भिन्न यज्ञाग्नि) की ओर उन्मुख होता है॥

२२३७. षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥७ ॥

हे कश्यप ! आप युक्त और योग्य का श्रेष्ठ विधि से योग करने में कुशल हैं, इसलिए हम छह तत्त्वज्ञ ऋषि आपसे प्रश्न पूछते हैं कि विराट् (पुरुष) को सृष्टि निर्माता ब्रह्मा का पिता कहते हैं, इस सम्बन्ध में हम ऋषि मित्रों को जितनी रीतियों से सम्भव हो, उतने ढंग से समझाएँ ।

[इस गूढ़ तत्त्व की जिज्ञासा भी ऋषि स्तर के साधक कर रहे हैं और पूछ रहे हैं, कश्यप-पश्यक अर्थात् द्रष्टा से । जिसने चेतना स्तर पर सृष्टि रहस्यों का अनुभव किया है, वे ही जिज्ञासा का समाधान कर सकते हैं ।]

२२३८. यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥८ ॥

हे ऋषिगण ! जिस विराट् पुरुष के गतिमान् होने पर यज्ञीय प्रक्रियाएँ गतिशील होती हैं तथा विराट् के स्थिर होने (प्रलयकाल) पर, सृष्टि की धुरी यज्ञ प्रक्रिया भी स्थिर हो जाती है । जिसके (स्तुति रूप से) कर्म में प्रकट होने पर यजन करने योग्य दैवी भावनाएँ हिलोरें लेने लगती हैं, ऐसे विराट् पुरुष परम (श्रेष्ठ) व्योम में विद्यमान हैं ॥८ ॥

२२३९. अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥९ ॥

हे ऋषियो ! प्राणरहित विराट् , प्राणधारी प्रजाओं के प्राणरूप में आगमन करते हैं, तत्पश्चात् विराट् स्वयं प्रकाशमान के समीप जाते हैं । सबको स्पर्श करते हुए इस विराट् को कुछ सूक्ष्मदर्शी देखने में समर्थ हैं; परन्तु मोह-माया से भ्रमित (अज्ञानग्रस्त) इसे देख नहीं पाते ॥९ ॥

२२४०. को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥१० ॥

इस विराट् के प्रकृति और पुरुष के जोड़े को कौन जानते हैं ? कौन ऋतुओं और कौन इसके कल्पों को जानते हैं ? इसके क्रमों को कौन जानते हैं ? कितनी बार इसका दोहन किया गया, इस सम्बन्ध में कौन जानते हैं ? इसके धाम के ज्ञाता कौन हैं और इसके प्रभातकाल कितने प्रकार के होते हैं, इन सबके ज्ञाता कौन हैं ? ॥१० ॥

२२४१. इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥११ ॥

यह (उषा) वही है, जो पहली बार (सृष्टिकाल में) प्रकाशित हुई । यही इस (प्रकृति) और अन्य (भूतों) में प्रविष्ट होकर चलती है ।इस उषा में बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं ।यह नूतन जन्मदात्री वधू के समान सबको जीत लेती है ॥११ ॥

२२४२. छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥१२ ॥

छन्दों (वेद मन्त्रों) के विभिन्न पक्ष भी उषा से ही सुन्दर बनते हैं (दिव्यज्ञानप्रकाश के उषाकाल- दिव्यबोध के समय ही वेद मन्त्र प्रकट होते हैं) । और एक ही लक्ष्य की ओर गमन करते है । सूर्यपत्नी, प्रकाशयुक्त उषा अपने ज्योतिरूप अत्यन्त महान् रेतस् (उत्पादक तेज) के द्वारा संचरित होती है ॥१२ । ।

२२४३. ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥१३ ॥

सत्यमार्ग में अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा, ये तीनों अपने तेजस्वितायुक्त वीर्य के साथ जाते हैं । इनमें प्रथम की सामर्थ्य ऋत्विजों की संतुष्टि, दूसरे की शक्ति-बल के पोषण और तीसरे की शक्ति देवत्व के उपासक ऋत्विजों के राष्ट्र (प्रकाशमान क्षेत्र या यज्ञ) का संरक्षण करती है ॥१३ ॥

२२४४. अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥१४ ॥

अग्नि और सोम, यह दो यज्ञ के पक्ष हैं, ऐसा ऋषियों ने माना है । चौथा (मन्त्र क्र. २ के अनुसार शरीर वाणी द्वारा) गायत्री, त्रिष्टुभ्, जगती, अनुष्टुभ् आदि छन्दों के द्वारा यजमान में स्व को प्रकाशित करने वाली बृहत् (ज्ञान एवं यज्ञ की) उपासना पद्धति को धारण कराता है ॥१४ ॥

[प्रकट अर्थों में अग्नि एवं सोम रूप आहुतियों के संयोग से ही यज्ञ होता है। गूढ़ अर्थों में एक यज्ञ अग्नि द्वारा संचालित है, जिसमें पदार्थ से ऊर्जा उत्पन्न होती है। दूसरा यज्ञ सोम प्रवाह के द्वारा चलता रहता है, जिसके अन्तर्गत ऊर्जा की स्थापना पदार्थ में होती है।]

२२४५. पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥१५॥

पाँच उषा शक्तियों के अनुकूल पाँच दोहन समय हैं, पाँच नामवाली गाय के अनुकूल पाँच ऋतुएँ हैं। पाँच दिशाएँ, पन्द्रहवें (चौदह भुवनों से परे पन्द्रहवें महत् तत्त्व) से समर्थ होकर, किसी योगी के लिए एक लोक जैसी हो जाती हैं ॥१५॥

[जहाँ तक सृष्टि है, वहाँ तक पदार्थ है। जहाँ तक पदार्थ है, वहीं तक दिशाएँ हैं। उसके परे दिशाएँ नहीं है।]

२२४६. षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥१६॥

प्रारम्भ में ऋत से छह भूत (पाँच तत्त्व और छठवाँ मन), छह साम (उनकी तन्मात्राएँ) तथा उनके संयोग से छह प्रकार के 'अहं' उत्पन्न हुए। यह छह युग्मों से जुड़े बन्धनों के साथ छह साम (प्रवृत्तियाँ) जुड़ी हैं। द्युलोक से पृथ्वी तक छह लोक है। भूमि भी छह (अन्दर छह पर्तवाली) हैं ॥१६॥

[सात लोक हैं, पृथ्वी या द्यु के अतिरिक्त छह हैं। भूवैज्ञानिकों के अनुसार भूमि की ऊपरी सतह के अतिरिक्त अन्दर छह पर्तें और हैं।]

२२४७. षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥१७॥

छह मास शीत ऋतु और छह मास ग्रीष्म ऋतु के कहे गये हैं, इनके अतिरिक्त शेष जो हैं, उनके सम्बन्ध में हमें बताएँ। ज्ञानीजन सात सुपर्ण, सात छन्द और सात दीक्षाओं से सम्बन्धित ज्ञान रखते हैं ॥१७॥

२२४८. सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥१८॥

सात यज्ञ, सात समिधाएँ, सात ऋतुएँ और सात प्रकार के मधु हैं। सात प्रकार के घृत (तेजस्) इस जगत् में मनुष्य को उपलब्ध होते हैं। इनके साथ सात गृध्र (गीध) भी हैं, ऐसा हम सुनते हैं ॥१८॥

[विद्वानों का मत है कि सात प्रकार के तेजस् जब उपयुक्त दिशा में प्रयुक्त होते हैं, तो ऋषि कहलाते हैं, वही जब अनुपयुक्त-विकृत प्रयोगों में लग जाते हैं, तो 'गीध' कहलाते हैं।]

२२४९. सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥१९॥

सात छन्द और चार श्रेष्ठ (वेद विभाग) हैं, ये सभी परस्पर एक-दूसरे में समाहित हैं। उनमें स्तोम कैसे विराजमान हैं और वे स्तोमों में कैसे समर्पित हैं? ॥१९॥

२२५०. कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥२०॥

गायत्री त्रिवृत् को कैसे संव्याप्त करती है, त्रिष्टुप् पन्द्रह से किस प्रकार निर्मित है, तैंतीस से जगती और इक्कीस से अनुष्टुप् कैसे सम्बन्ध रखते हैं? ॥२०॥

२२५१. अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये।

अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥२१ ॥

सत्य से सर्वप्रथम आठ प्राणियों की उत्पत्ति हुई। हे इन्द्रदेव ! जो दिव्य ऋत्विज् हैं, वे भी आठ हैं। आठ पुत्रों को उत्पन्न करने वाली अदिति अष्टमी की रात्रि में हविष्यान्न को ग्रहण करती है ॥२१ ॥

[वैज्ञानिकों के अनुसार आठवें क्रम पर प्रकृति चक्र पूरा होता है। 'पीरियाडिक टेबिल', तत्त्व तालिका में, संगीत के स्वरों में, सूर्य के स्पैक्ट्रम में आठवें से नयाचक्र प्रारम्भ हो जाता है। यह प्रकृति का अदिति का अंक माना जाता है।]

२२५२. इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा।

समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥२२ ॥

इसप्रकार कल्याणकारी भावना को स्वीकार करते हुए आपके समान जन्म लेने वाले, आपके सख्यभाव में हम सुखी हैं।यज्ञ आपका मंगल करने वाला है।वह आप सबकी जानकारी रखता हुआ आपमें संचरित रहता है

२२५३. अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा।

अपो मनुष्या३नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे ॥२३ ॥

इन्द्रदेव की आठ, यमराज की छह और ऋषियों की सात प्रकार की, सात ओषधियाँ हैं। उन ओषधियों और मनुष्यों को पाँच प्रकार के अप् (जल या तेजस्) अनुकूल रीति से सींचते हैं ॥२३ ॥

२२५४. केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना।

अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥२४ ॥

प्रथम दोहन कराती हुई, विलक्षण, प्रथम प्रसूता गौ (प्रकृति) ने अमृतमय दूध को इन्द्र के लिए अनुकूल रीति से दिया। तत्पश्चात् देव, मनुष्य, असुर और ऋषि इन चारों को चार प्रकार से संतुष्ट करती है ॥२४ ॥

२२५५. को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः।

यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥२५ ॥

वह गौ कौन सी है ? वह एक ऋषि कौन से हैं ? धाम और आशीर्वाद कौन से हैं ? पृथ्वी में एक ही सर्वव्यापक देव पूजनीय हैं और वह एक प्रमुख ऋतु कौन सी है ? ॥२५ ॥

२२५६.एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते

वह गौ अकेली (एक मात्र) है, वह एक (प्रमुख) ही ऋषि है; एक ही स्थान और एक ही प्रकार का आशीर्वाद है। पृथ्वी में एक ही पूजनीय देव हैं तथा एक ही ऋतु भी है, जिससे बढ़कर अन्य कोई नहीं है ॥२६ ॥

[१०- विराट् सूक्त (१०-क)]

[**ऋषि**- अथर्वाचार्य । **देवता**- विराट् । **छन्द**- १ त्रिपदा आर्ची पंक्ति, २, ४, ६, ८, १०, १२ याजुषी जगती, ३, ९ साम्नी अनुष्टुप्, ५ आर्ची अनुष्टुप्, ७, १३ विराट् गायत्री, ११ साम्नी बृहती ।]

इस सूक्त के देवता भी विराट् हैं। इसमें प्रथम उत्पन्न विराट् शक्ति की लीला-प्रक्रिया का वर्णन है कि किस प्रकार वही विभिन्न कल्याणप्रद प्रक्रियाओं में अवतरित हुई-

२२५७. विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥

वह शक्ति पहले से ही विराट् थी।उस शक्ति से सभी भयभीत हो गए कि यही वह सृष्टिरूप हो जाएगी ॥१ ॥

२२५८. सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥२ ॥

उस विराट् शक्ति ने ऊपर की ओर गमन किया और वह गार्हपत्य के रूप में अवतरित हुई ॥२ ॥

२२५९. गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥३ ॥

गृह यज्ञ करने वाले जो इस तथ्य को जानते हैं, वे गृह- पालक होते हैं ॥३ ॥

२२६०. सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥४ ॥

पुन: वह (विराट् शक्ति) ऊपर की ओर उठकर आहवनीय अग्नि संस्था में प्रविष्ट हो गई ॥४ ॥

२२६१. यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥५ ॥

जो इस प्रकार जानते हैं, वे देवों के स्नेहपात्र बनते हैं, सभी देवशक्तियाँ उनके आवाहन-स्थल पर जाती हैं ॥

२२६२. सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥६ ॥

पुन: उस विराट् ने ऊपर की ओर उत्थान किया और दक्षिणाग्नि संस्था में प्रवेश किया ॥६ ॥

२२६३. यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥७ ॥

जो इस प्रकार जानते हैं, वे यज्ञ करने में पारंगत और दूसरों को निवास स्थल प्रदान करने वाले होते हैं ॥७ ॥

२२६४. सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥८ ॥

इसके बाद वह विराट् शक्ति ऊपर की ओर उठकर सभा में प्रविष्ट हो गई ॥८ ॥

२२६५. यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥९ ॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वे सभा के योग्य हैं और जनसाधारण उनकी सभा में जाते हैं ॥९ ॥

२२६६. सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥१० ॥

तत्पश्चात् वह विराट् शक्ति ऊपर उत्थान करके समिति में परिणत हो गई ॥१० ॥

२२६७. यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥११ ॥

जो इसके ज्ञाता हैं, वे समित्य (समिति या सम्मानयोग्य) होते हैं और उसकी समिति में सैनिक आते हैं ॥११ ॥

२२६८. सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥१२ ॥

पुन: विराट् शक्ति उत्थान करके आमन्त्रण (मन्त्रिमण्डल) में प्रविष्ट हो गई ॥१२ ॥

२२६९. यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥१३ ॥

जो इसके ज्ञाता हैं, वे आमन्त्रणीय हो जाते हैं और जन-साधारण उनकी मन्त्रणा में भाग लेते हैं ॥१३ ॥

[११- विराट् सूक्त (१०-ख)]

[**ऋषि**- अथर्वाचार्य । **देवता**-विराट् । **छन्द** -१ त्रिपदा साम्नी अनुष्टुप्, २ उष्णिक् गर्भा चतुष्पदा उपरिष्टात् विराट् बृहती, ३ एकपदा याजुषी गायत्री, ४ एकपदा साम्नी पंक्ति, ५ विराट् गायत्री, ६ आर्ची अनुष्टुप्, ७ साम्नी पंक्ति, ८ आसुरी गायत्री, ९ साम्नी अनुष्टुप्, १० साम्नी बृहती ।]

इस सूक्त में उस विराट् शक्ति द्वारा सर्व-पोषक कामधेनु रूप विराट् प्रकृति के रूप में प्रकट होने का उल्लेख है । वह दिव्य शक्ति किस प्रकार पात्र भेद से विभिन्न गुणवाली हो जाती है, यह उल्लेख क्र. ११ से क्र. १४ तक के सूक्तों में है । वह तो कामधेनु है, उसका आवाहन जिस प्रकार की कामना से किया जाए, वह उसी रूप में प्रकट होती है । गाय को दुहने के लिए वत्स (बछड़ा) तथा दोग्धा-दुहने वाले की आवश्यकता होती है । बछड़े के स्नेह से प्रेरित होकर, उसके थनों में दूध भर आता है, तब दोग्धा उसे स्नेहपूर्वक दुहता है । प्रकृतिरूपी कामधेनु को विभिन्न प्रकार के 'पय-दोहन' क्रम में भी यही अनुशासन बरता जाता है-

२२७०. सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥१ ॥

उस विराट् शक्ति ने पुन: उत्थान किया और वह अन्तरिक्ष में चार प्रकार से विभाजित होकर स्थित हुई ॥१ ॥

२२७१. तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥

देवों और मनुष्यों ने उसके सम्बन्ध में कहा कि वे इसे जानते हैं, जिससे हम दोनों जीवन- निर्वाह को प्राप्त करते हैं, अतएव हम इसे बुलाते हैं ॥२ ॥

२२७२. तामुपाह्वयन्त ॥३ ॥

तब उन्होंने उसे आवाहित किया ॥३ ॥

२२७३. ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥४ ॥

हे ऊर्जा देवि ! हे पितरजनों की तृप्तिप्रदा स्वधे ! हे प्रिय वाणीरूप ! हे अन्नवाली ! आप यहाँ आएँ ॥४ ॥

२२७४. तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥५ ॥

इन्द्रदेव उसके वत्स बने, गायत्री रस्सी थी और मेघ दुग्ध स्थल रूप हुए ॥५ ॥

२२७५. बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥६ ॥

बृहत्साम और रथन्तरसाम दोनों स्तनरूप हुए तथा यज्ञायज्ञिय और वामदेव्यसाम भी दोनों स्तनरूप ही हुए ।

२२७६. ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ॥७ ॥

देव शक्तियों ने रथन्तरसाम से ओषधियों का और बृहत्साम से व्यापक आकाश के रस का दोहन किया ॥७ ॥

२२७७. अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥८ ॥

वामदेव्य साम से जल और यज्ञायज्ञिय साम से यज्ञ विज्ञान को निकाला ॥८ ॥

२२७८. ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत् ॥९ ॥

जो इसके ज्ञाता हैं, रथन्तरसाम उनके लिए ओषधियाँ देते हैं औरबृहत्साम अन्तरिक्ष का दोहन करते हैं ॥९ ॥

२२७९. अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥१० ॥

जो इस के ज्ञाता हैं, उनके लिए वामदेव्यसाम जल और यज्ञायज्ञियसाम यज्ञ-विज्ञान को दुहते हैं ॥१० ॥

[१२-विराट् सूक्त (१०-ग)]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-**विराट् । **छन्द** -१-चतुष्पदा विराट् अनुष्टुप्, २ आर्ची त्रिष्टुप्, ३, ५, ७ चतुष्पदा प्राजापत्या पंक्ति, ४, ६, ८ आर्ची बृहती ।]

२२८०. सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत् ॥

विराट् शक्ति पुन: उत्थान करके वनस्पतियों के समीप पहुँची, उसे वनस्पतियों ने भोगा । वह संवत्सर में उनके साथ एक रूप हुई ॥१ ॥

२२८१. तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति
वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥२ ॥

अतएव वनस्पतियों के कटे हुए भाग भी एक संवत्सर में पुन: उग आते हैं । जो इसके ज्ञाता हैं, उनके दुष्ट (अप्रिय) शत्रु विनष्ट हो जाते हैं ॥२ ॥

२२८२. सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत् ॥३ ॥

पुन: विराट् शक्ति पितरजनों के समीप पहुँची ।उसे पितरों ने भोगा ।उनसे वहमास में आत्मसात् हो गई ॥३ ।

२२८३. तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥४ ॥

अतएव मनुष्य पितरों के निमित्त प्रत्येक माह मुख की समीपस्थ वस्तु (भोजन) दान-स्वरूप देते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे पितृयान मार्ग के ज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

२२८४. सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ॥५ ॥

विराट् शक्ति पुन: देवों के समीप पहुँची ।देवों ने भोग किया ।वहआधे मास तक उनके साथ एकरूप हो गई ॥

२२८५. तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥६ ॥

इसलिए देव शक्तियों के निमित्त अर्धमास में वषट्कर्म करने का विधान है । जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे देवयान मार्ग को जानने में सक्षम होते हैं ॥६ ॥

२२८६. सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् ॥७ ॥

विराट् शक्ति ने फिर उत्थान किया और वह मनुष्यों के समीप पहुँची । मनुष्यों ने उसका भोग किया । वह तत्काल उनके साथ संयुक्त हो गई ॥७ ॥

२२८७. तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥८ ॥

अतएव मनुष्यों के निमित्त हर दिन अन्नादि देते हैं; जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, देवगण उनके घर में प्रतिदिन (अन्न) लेकर आते हैं ॥८ ॥

[१३ - विराट् सूक्त (१०-घ)]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** विराट् । **छन्द** -१, ५ चतुष्पदा साम्नी जगती, २, ६, १० साम्नी बृहती, ३, १४ साम्नी उष्णिक् ४, ८ आर्ची अनुष्टुप्, ७ आसुरी गायत्री, ९, १३ चतुष्पदा उष्णिक् , ११ प्राजापत्या अनुष्टुप्, १२, १६ आर्ची त्रिष्टुप्, १५ विराट् गायत्री ।]

२२८८. सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥१ ॥

पुन: विराट् शक्ति के उत्क्रमण करने पर उसका असुरों के समीप पहुँचना हुआ, उसे असुर शक्तियों ने समीप बुलाया कि हे माया स्वरूपे ! आप यहाँ आएँ ॥१ ॥

२२८९. तस्या विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥२ ॥

प्रह्लाद के पुत्र विरोचन उनके वत्स थे और उनका लोहे का पात्र था ॥२ ॥

२२९०. तां द्विमूर्धार्त्व्यो ऽधोक् तां मायामेवाधोक् ॥३ ॥

उसका ऋतुपुत्र द्विमूर्धा ने दोहन किया और उससे माया का भी दोहन किया गया ॥३ ॥

२२९१. तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४ ॥

उस माया से असुर शक्तियाँ जीवनयापन करती हैं, जो इसके ज्ञाता हैं, वे जीविकानिर्वाह करने वाले होते हैं ।

२२९२. सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥५ ॥

उसके बाद विराट् शक्ति ने पुन: उत्क्रमण किया और पितरों के समीप पहुँची । पितरों ने हे स्वधे ! आगमन करें, ऐसा कहते हुए उसका आह्वान किया ॥५ ॥

२२९३. तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रम् पात्रम् ॥६ ॥

उसके वत्स राजा यम हुए और चाँदी का उसका पात्र था ॥६ ॥

२२९४. तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥७ ॥

उसका मृत्यु के अधिष्ठाता देव अन्तक ने दोहन किया तथा उससे स्वधा का भी दोहन किया ॥७ ॥

२२९५. तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८ ॥

स्वधा से पितरगण जीवनयापन करते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे जीविकानिर्वाह करने वाले होते हैं ॥८ ।

२२९६. सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां
मनुष्या३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥९ ॥

उस विराट् शक्ति ने पुन: उत्थान किया, तो मनुष्यों के समीप गयी । मनुष्यों ने "हे इरावती !(हे अन्नवाली !) पधारें," ऐसा कहते हुए उसे समीप बुलाया ॥९ ॥

२२९७. तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥१० ॥

विवस्वान् के पुत्र मनु उसके वत्सरूप हुए और पृथ्वी पात्ररूप हुई ॥१० ॥

२२९८. तां पृथी वैन्यो ऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥११ ॥

उसे राजावेन के पुत्र पृथु ने दुहा, उससे कृषि और धान्य दोहन में प्राप्त हुए ॥११ ॥

२२९९. ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति
कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२ ॥

उस कृषि और धान्य से ही मनुष्य जीवन यापन करते हैं । जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे कृषि कार्यों में सिद्धहस्त होकर दूसरे प्राणियों की आजीविका के निर्वाहक होते हैं ॥१२ ॥

२३००. सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां
सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥

विराट् शक्ति ने पुन: उत्क्रमण किया और वह सप्तर्षियों के समीप पहुँची । हे ब्रह्मज्ञानवाली ! आप पदार्पण करें, उसे सप्तर्षियों ने इस प्रकार कहते हुए निकट बुलाया ॥१३ ॥

२३०१. तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥१४ ॥

राजा सोम उस समय उसके वत्सरूप हुए और छन्द पात्ररूप बने ॥१४ ॥

२३०२. तां बृहस्पतिराङ्गिरसो ऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥१५ ॥

उसका अंगिरस् कुल में उत्पन्न बृहस्पति ने दोहन किया, उससे ब्रह्म (ज्ञान) और तप: की प्राप्ति हुई ॥१५ ॥

२३०३. तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति
ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६ ॥

तप: और ज्ञान (वेद) से सप्तर्षि जीवनयापन करते हैं, जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे ब्रह्मवर्चस सम्पन्न होकर दूसरे प्राणियों की आजीविका का भी निर्वाह करते हैं ॥१७ ॥

[१४-विराट् सूक्त (१०-ङ)]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- विराट् । छन्द- १, १३ चतुष्पदा साम्नी जगती, २, ३ साम्नी उष्णिक्, ४, १६ आर्ची अनुष्टुप्, ५ चतुष्पदा प्राजापत्या जगती, ६ साम्नी त्रिष्टुप्, ७, ११ विराट् गायत्री, ८ आर्ची त्रिष्टुप्, ९ चतुष्पदा उष्णिक्, १०, १४ साम्नी बृहती, १२ त्रिपदा ब्राह्मी भुरिक् गायत्री, १५ साम्नी अनुष्टुप् ।]

२३०४. सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥१ ॥

वह शक्ति पुन: देवताओं के समीप पहुँची । हे ऊर्जे !आप पधारें, ऐसा कहते हुए देवों ने उसे समीप बुलाया ॥

२३०५. तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥२ ॥

तब इन्द्रदेव उनके वत्सरूप और चमस-पात्ररूप बने ॥२ ॥

२३०६. तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥३ ॥

सर्वप्रेरक सवितादेव उनके दोहनकर्त्ता बने और उससे बल की प्राप्ति हुई ॥३ ॥

२३०७. तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४ ॥

उसी बल से देवगण अपना जीवनयापन करते हैं, जो इस के ज्ञाता हैं, वे आजीविका निर्वाह वाले बनते हैं ॥४॥

२३०८. सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥५ ॥

उस विराट् शक्ति द्वारा पुन: उत्थान किये जाने पर वह गन्धर्व तथा अप्सराओं के समीप पहुँची । गन्धर्व और अप्सराओं ने ऐसा कहते हुए उन्हें समीप आमन्त्रित किया कि "हे उत्तम सुगन्धवाली !(पुण्यगन्धे) आप पधारें" ॥५॥

२३०९. तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥६ ॥

सूर्यवर्चस के पुत्र चित्ररथ उसके वत्सरूप हुए और पुष्कर पर्ण (कमल पत्र) पात्र रूप बने ॥६ ॥

२३१०. तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसो ऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥७ ॥

उसका सूर्यवर्चस के पुत्र वसुरुचि ने दोहन किया और उससे पवित्र सुगन्ध की प्राप्ति हुई ॥७ ॥

२३११. तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥८ ॥

उस पवित्र सुगन्ध से अप्सरा और गन्धर्व जीवन- निर्वाह करते हैं । जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे पवित्र सुगन्धिमय होकर दूसरे प्राणियों के आजीविका के निर्वाहक होते हैं ॥८ ॥

२३१२. सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ॥९ ॥

विराट् शक्ति पुन: उत्थान के साथ इतरजनों के समीप पहुँची । इतरजनों ने उन्हें समीप बुलाया कि "हे तिरोधे ! (अन्तर्धान शक्ति) आप यहाँ पदार्पण करें" ॥९ ॥

२३१३. तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥१० ॥

विश्रवा के पुत्र कुबेर वत्सरूप बने और पात्ररूप में आमपात्र प्रयुक्त हुआ ॥१० ॥

२३१४. तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ॥११ ॥

काबेरक के पुत्र रजतनाभि ने दोहन किया और उससे तिरोधा (अन्तर्धान) शक्ति की प्राप्ति की ॥११ ॥

२३१५. तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१२ ॥

अन्तर्धान शक्ति (तिरोधा) से अन्य मनुष्य जीवन- निर्वाह चलाते हैं । जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे अपने सभी पापों को दूर करते हैं और मनुष्य उससे जीविकोपार्जन (जीवन-निर्वाह) करते हैं ॥१२ ॥

२३१६. सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥१३ ॥

वह विराट् शक्ति पुन: ऊपर की ओर जाकर सर्पों के समीप पहुँची । सर्पों द्वारा उनका अपने समीप आह्वान किया गया कि 'हे विषवती ! आप यहाँ पधारें' ॥१३ ॥

२३१७. तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥१४ ॥

विशाला के पुत्र तक्षक उसके वत्सरूप थे और अलाबु उसके पात्ररूप बने ॥१४ ॥

२३१८. तां धृतराष्ट्र ऐरावतो ऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥१५ ॥

उसका ऐलावतवंशी धृतराष्ट्र ने दोहन किया और उससे विष की प्राप्ति हुई ॥१५ । ।

२३१९. तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१६ ॥

उस विष द्वारा सर्प अपना जीवनयापन करते हैं । जो इस रहस्य के वास्तविक विशेषज्ञ हैं, उनसे सभी प्राणी आजीविका का निर्वाह करते हैं ॥१६ ॥

[१५-विराट् सूक्त (१०-च)]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-**विराट् । **छन्द-** १ द्विपदा विराट् गायत्री, २ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा प्राजापत्या अनुष्टुप्, ४ द्विपदा आर्ची उष्णिक् ।]

पिछले सूक्त के अन्तिम मंत्र में दिव्य कामधेनु से विष दोहन का वर्णन है । आजीविका के लिए जो विष का प्रयोग करते हैं, उन्हें विष से बचाने के लिए विष के प्रीतकारार्थ यह सूक्त है-

२३२०. तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥१ ॥

अतएव ऐसे (विष विद्या को) जानने वाले को यदि अलाबु (राम तोरई) से अभिषिञ्चित किया जाए , तो वह उसे (विष के दुष्प्रभाव को) विनष्ट करता है ॥१ ॥

२३२१. न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥२ ॥

यदि (वह ओषधि) विनष्ट न करे तो "तेरा हनन करता हूँ", ऐसी मन: संकल्पशक्ति से उसका प्रतिकार करे ॥

२३२२. यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥३ ॥

ऐसे प्रतिकारपरक प्रयोग किये जाते हैं, तो वे विष की प्रभावशीलता को ही विनष्ट करते हैं ॥३ ॥

२३२३. विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥४ ॥

जो इस विद्या के ज्ञाता हैं, विष उनके दुष्ट शत्रु पर जाकर गिरता है अर्थात् शत्रु ही उससे प्रभावित होते हैं ॥४ ।

॥ इति अष्टमं काण्डम् समाप्तम् ॥

॥अथ नवम काण्डम्॥

[१ - मधुविद्या सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-**मधु, अश्विनीकुमार । **छन्द-** १, ४-५ त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति, ३ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, ६ अतिशाक्वरगर्भा यवमध्या महाबृहती, ७ अतिजागतगर्भा यवमध्या महाबृहती, ८ बृहतीगर्भा संस्तार पंक्ति, ९ पराबृहती प्रस्तार पंक्ति, १० परोष्णिक् पंक्ति, ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप्, १४ पुर उष्णिक्, १७ उपरिष्टात् विराट् बृहती, २० भुरिक् विष्टार पंक्ति, २१ एकावसाना द्विपदार्ची अनुष्टुप्, २२ त्रिपदा ब्राह्मी पुर उष्णिक्, २३ द्विपदार्ची पंक्ति, २४ त्र्यवसाना षट्पदाष्टि ।]

इस सूक्त में मधुकशा का वर्णन है । अनेक आचार्यों ने इस सम्बोधन को 'गौ' के निमित्त माना है । इसमें कही गयी बातें गौ की महिमा के अनुरूप होते हुए भी इस सम्बोधन को गौ तक ही सीमित करना उचित प्रतीत नहीं होता । विश्वरूप गर्भ जो उत्पन्न होते ही सभी भुवनों को प्रकाशित कर दे, ऐसा वत्स किसी लौकिक 'गाय' का तो हो नहीं सकता । इसलिए उसे पयस्विनी मधु विद्या ही कहना उचित प्रतीत होता है । 'कशा' का अर्थ रस्सी या चाबुक होता है, चाबुक शब्द करता हुआ प्रहार करके प्रेरित करता है । इस दृष्टि से भी सृजन-पोषण की मधुर प्रेरणा देने वाली मधुविद्या को मधुकशा कहना उचित लगता है-

२३२४. दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥१ ॥

मधुकशा (मधुरप्रवाह पैदा करने वाली मधुविद्या या गौ), स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, समुद्र और अग्नि से उत्पन्न हुई है ।उस अमृतरूपी रस देने वाली मधुकशा की अर्चना करने से सम्पूर्ण प्रजाएँ हृदय में आनन्दित होती हैं ॥१ ॥

[मधुविद्या प्रकृति के तमाम घटकों में मधुर रसों का संचार करती है तथा मधुर प्रवाहों को पैदा करती है, इस आधार पर उसकी उपमा गौ से दी जा सकती है ।]

२३२५. महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥२ ॥

मधुकशा का पय (दूध या रस) विश्वरूप (अनेक रूपों वाला) है । वही समुद्र का रेतस् भी है । यह मधुविद्या शब्द करती हुई जहाँ से जाती है, वही प्राण है (प्राणों से उसकी उत्पत्ति होती है) । वह सर्वत्र संचरित अमृत- प्रवाह की तरह है ॥२ ॥

२३२६. पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥३ ॥

विभिन्न प्रकार से अलग-अलग विचार करने वाले मीमांसक, इस मधुकशा के चरित्र को पृथ्वी पर अनेक प्रकार से देखते हैं । मरुद्गणों की प्रचण्ड तेजस्विनी पुत्री, इस मधुकशा को अग्नि और वायुदेव के संयोग से उत्पन्न हुई बताया गया है ॥३॥

[पदार्थ विज्ञान के अनुसार भी वायु के विभिन्न घटकों आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि कणों के यौगिक (कम्पाउन्ड) अग्नि (ऊर्जा) के संयोग से बनते हैं, जो दूध, ओषधियों, वनस्पतियों आदि के रसों में मधुरता उत्पन्न करते हैं ।]

२३२७. मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥४ ॥

यह मधुकशा आदित्यों की जननी, वसुगणों की कन्या, प्रजाजनों की प्राण और अमृत की नाभिक कही गयी है। हिरण्य (सृष्टिउत्पादक मूल तत्त्व) के वर्ण (स्वभाव या प्रकृति) वाली घृत (सार तत्त्व) की सिंचनकर्त्री, यह मधुकशा सभी मनुष्यों में महान् तेजस्विता के साथ विचरण करती है ॥४ ॥

२३२८. मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥५ ॥

इस मधुकशा को देवशक्तियों ने निर्मित किया है, उसका गर्भ विश्वरूप होता है (यह विश्व में कोई भी रूप गढ़ सकती है)। उत्पन्न हुए उस तरुण (नये मधुरतायुक्त पदार्थ) को वही माता पालती है। उस (मधुर- प्रवाह) ने पैदा हुए भुवनों (लोकों) को आलोकित (प्रभावित) किया है ॥५ ॥

२३२९. कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥६ ॥

इस (मधुकशा) के हृदय के समीप सोमरस से भरपूर कलश अक्षयरूप से विद्यमान है। इस कलश को कौन जानते हैं और कौन वास्तविक रूप में इसका विचार करते हैं ? उसी (मधुर रस) से ब्रह्मा (सृजनकर्त्ता) देव (अपना कार्य सम्पन्न करते हुए) आनन्दित हों ॥६ ॥

२३३०. स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥७ ॥

जो इस (मधुकशा) के हजारों धाराओं से युक्त अक्षय स्तन हैं, वे बिना रुके निरन्तर बलप्रद रस को देते रहते हैं। वे (ब्रह्मा) उसके ज्ञाता और (प्रयोगों के) चिन्तनकर्त्ता हैं ॥७ ॥

२३३१. हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥८ ॥

हिंकार करती हुई, हवि की धारणकर्त्री, उच्च स्वर का उद्घोष करने वाली, जो शक्ति यज्ञभूमि में विचरती है, वह इन तीनों तेजों को नियंत्रित करती हुई काल का मापन करती है और (उनके लिए) दूध की धाराओं को स्रवित करती है ॥८ ॥

२३३२. यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥९ ॥

जो वर्षणशील, स्वप्रकाशित अप् (उत्पादक-प्रवाह), उस पान करने योग्य शक्तिमती (मधुकशा) के पास पहुँचते हैं, वे इस विद्या की जानकारी के लिए अभीष्ट बलदायी अन्न की वर्षा करते हैं, वे ही (सार्थक) बरसते हैं ॥९॥

[उत्पादक सूक्ष्म प्रवाह हो या वर्षलमेघ, वे जब मधुरता उत्पन्न करने वाले, सूक्ष्म पर्जन्य प्रवाहों से संयुक्त होते हैं, तभी सार्थक वर्षा होती है। इस विद्या के जानकार इस प्रक्रिया का लाभ (यज्ञादि द्वारा) उठाते हैं।]

२३३३. स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥१० ॥

हे प्रजापते ! मेघ गर्जना आपकी वाणी है। हे जलवर्षक ! आप ही भूमि पर अपने बल को फेंकते हैं। अग्नि और वायु से मरुद्गणों की प्रचण्ड पुत्री मधुकशा पैदा हुई है ॥१० ॥

[मेघों में विद्युत् रूप अग्नि तथा वायु के संघात से पोषक-उर्वर सूक्ष्म कण बनते हैं। वे वर्षा के साथ भूमि पर बरसते हैं। यह प्रक्रिया मधुविद्या के अन्तर्गत सम्पन्न होती है।]

२३३४. यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥११ ॥

प्रातः सवन (यज्ञ) में सोमरस, जिस प्रकार अश्विनीदेवों को प्रिय होता है । उसी प्रकार हे देवो ! आप हमारे अन्दर तेजस्विता स्थापित करें ॥११ ॥

२३३५. यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१२ ॥

द्वितीय सवन (यज्ञ) में सोमरस, जिस प्रकार इन्द्राग्नि देवों को प्रिय होता है, उसी प्रकार हे देवो ! आप हमारे अन्दर तेजस्विता की स्थापना करें ॥१२ ॥

२३३६. यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१३ ॥

तृतीय सवन में जिस प्रकार सोमरस ऋभु देवों को प्रिय होता है, उसी प्रकार हे देवो ! आप हमारे अन्दर वर्चस् की स्थापना करें ॥१३ ॥

२३३७. मधु जनिषीय मधु वंशिषीय । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥१४ ॥

हम मधुरता को उत्पन्न करें और मधुरता का सम्पादन करें । हे अग्निदेव ! हम पयोरसों को समर्पित करने के निमित्त आ गए हैं । अतएव आप हमें तेजस्विता सम्पन्न बनाएँ ॥१४ ॥

२३३८. सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें तेजस्, प्रजा और आयु से सम्पन्न करें । देवगण और ऋषि ये सभी हमें इस रूप में जानें कि हम अग्नि के सेवक हैं ॥१५ ॥

२३३९. यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१६ ॥

जिस प्रकार मधु संचयनकर्त्ता (या मधुमक्खियाँ) मधुकणों का अधिग्रहण करके मधु को एकत्र करती हैं, उसी प्रकार अश्विनीकुमार मुझ में तेजस्विता स्थापित करें ॥१६ ॥

२३४०. यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥१७ ॥

जिस प्रकार मधुमक्खियाँ नये शहद को पूर्व संचित शहद में संगृहीत करती हैं, उसी प्रकार वे दोनों अश्विनीकुमार हमारे अन्दर वर्चस्, तेजस्, बल और ओजस् को स्थापित करें ॥१७ ॥

२३४१. यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥१८ ॥

गिरि-पर्वतों और गौ, अश्वादि पशुओं में जो मधुरता है तथा जो सिंचित होने वाले तीक्ष्ण ओषधि रस में मधुरता है, वही मधुरता हमारे अन्दर भी स्थापित हो ॥१८ ॥

२३४२. अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥१९ ॥

हे शुभ के पालक अश्विनीदेवो ! आप हमें सार- संग्रह करने वालों के संगृहीत मधु से सम्पन्न करें, जिससे हम तेजस्विनी मधुर वाणी जन साधारण के बीच कह पाएँ ॥१९ ॥

२३४३. स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥२० ॥

हे प्रजापालक देव ! आप अभीष्टवर्षक हैं और मेघ गर्जना ही आपकी वाणी है । आप ही द्युलोक से भूमि तक बल की वृष्टि करते हैं । सभी जीव-जन्तु उसी पर जीवनयापन करते हैं । उसी के द्वारा वे (पृथ्वी या मधुकशा) अन्न और बलवर्द्धक रस को परिपुष्ट करते हैं ॥२० ॥

२३४४. पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥२१ ॥

(उन प्रजापति के लिए) भूमि दण्डरूपा, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्युलोक कशारूप, विद्युत् प्रकाशस्वरूप और हिरण्य (तेज) बिन्दु (लक्ष्य) रूप है ॥२१ ॥

२३४५. यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥२२ ॥

ब्राह्मण, राजा, धेनु, वृषभ, चावल, जौ और मधु, ये सात मधुरतायुक्त हैं । जो मधुकशा गौ के इन सात प्रकार के मधुर रसों के ज्ञाता हैं, वे माधुर्ययुक्त होते हैं ॥२२ ॥

[मधुविद्या विभिन्न रूपों में अपना प्रभाव दिखाती है । उसकी प्रतीकात्मक सात धाराएँ हैं, जो समाज व्यवस्था को सन्तुलित रखती हैं । ब्राह्मण- यह सद्भाव- सद्विवेक, सत्प्रवृत्तियों की मधुर धारा है । राजा- सुरक्षा- सुव्यवस्था की धारा के प्रतीक हैं । धेनु- धारण करके स्नेहपूर्वक पोषण प्रदान करने की प्रवृत्ति, बैल- अपने श्रम से जन कार्यों को सिद्ध करने वाले, चावल और जौ खाद्यान्नों की पोषक-सामर्थ्य तथा मधु स्वाद की मधुरता की परिचायक है । मधुरता की (प्रिय लगने वाली) , इन धाराओं के मर्मज्ञ लोग उसका लाभ उठाते हैं ।]

२३४६. मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥२३ ॥

जो इस रहस्य के ज्ञाता हैं, वे माधुर्य - सम्पन्न हो जाते हैं । वे मधुमय भोजन करते हुए , मधुरतायुक्त लोकों पर विजय- श्री प्राप्त करते हैं ॥२३ ॥

२३४७. यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥२४ ॥

अन्तरिक्ष में जो गर्जना होती है, मानो प्रजापति ही प्रजाओं के निमित्त प्रकट होते हैं, इसलिए पूर्व में (पहले) ही उपवीत (यज्ञोपवीत अथवा यज्ञीय श्रेष्ठ सूत्रों) से युक्त होकर तैयार रहें । जो ऐसा करते हैं, उन्हें प्रजापालक देव स्नेहपूर्वक स्मरण रखते हैं तथा प्रजाएँ उनके अनुकूल रहती हैं ॥२४ ॥

[प्रकृति के यज्ञीय अनुशासन के सूत्रों को धारण करने तथा क्रियान्वित करने वालों को पहले से ही तत्पर रहना चाहिए, तभी वे प्रकृतिगत (वर्षा आदि) अनुदानों का पूरा लाभ उठा पाते हैं । ऐसे व्यक्तियों को प्रजा की अनुकूलता (लोकसम्मान) तथा प्रजापति की अनुकूलता (दैवी अनुग्रह) दोनों की प्राप्ति होती है ।]

[२ - काम सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता**-काम । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ५ अतिजगती, ७, १४-१५, १७-१८, २१-२२ जगती, ८ त्रिपदार्ची पंक्ति, ११, २०, २३ भुरिक् त्रिष्टुप्, १२ अनुष्टुप्, १३ द्विपदार्ची अनुष्टुप्, १६ चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगती ।]

२३४८. सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१ ॥

शत्रुनाश की बलशाली कामनाओं को हम घृतादि की हवियों से शिक्षित (संस्कारित एवं प्रेरित) करते हैं। हे ऋषभ ! आप हमारी प्रार्थनाओं से हर्षित होकर बड़े पराक्रम से हमारे अनिष्टकारी शत्रुओं को पतित करें ॥१ ॥

२३४९. यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् ॥२ ॥

जो दु:स्वप्न हमारे मन:क्षेत्र और नेत्र (दर्शनेन्द्रिय) के लिए श्रेयस्कर नहीं तथा न ही हमें प्रफुल्लित करने वाले हैं, अपितु जो हमें तिरस्कृत करने वाले हैं, उन्हें हम अनिष्टकारी शत्रुओं की ओर भेजते हैं । इच्छाशक्ति द्वारा हम उनका भेदन करते हैं ॥२ ॥

२३५०. दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥३ ॥

हे सबके स्वामी, पराक्रमी कामदेव ! आप अनिष्टकर स्वप्न, पापकर्म, नि:सन्तानरूप दुर्भाग्य, दारिद्र्य, आपदा आदि सभी अनिष्टों को उसकी ओर भेजें, जो शत्रु अपनी कुटिलताओं द्वारा पापमूलक विपत्ति में धकेलने की, हमारे प्रति दुर्भावनाएँ रखते हैं ॥३ ॥

२३५१. नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥४ ॥

हे काम ! आप हमारी अभावजन्य दरिद्रता को हटाकर हमारे शत्रुओं के प्रति उस अभावग्रस्तता को भिजवाएँ। भली प्रकार इसे प्रेषित करें । हे अग्निदेव ! आप इन दुष्ट शत्रुओं को अन्धकार में भेजते हुए इनके घर की वस्तुओं को भस्मसात् करें ॥४ ॥

२३५२. सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥५ ॥

हे काम ! वह धेनुरूपा वाणी आपकी पुत्री कही जाती है, जिसे कविजन विशेष तेजस्वी (वचन) कहते हैं । इस वाणी द्वारा आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करें । प्राण, पशु और आयु इन शत्रुओं का परित्याग करें ॥५ ॥

२३५३. कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥६ ॥

जिस प्रकार धैर्यवान् धीवर जल में नाव को चलाते हैं, हम उसी प्रकार काम, इन्द्र, वरुण राजा के साथ विष्णुदेव के बल, सवितादेव की प्रेरणा तथा अग्निहोत्र से शत्रुओं को दूर करते हैं ॥६ ॥

२३५४. अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥७ ॥

प्रचण्ड पराक्रमी 'काम' (संकल्प) हमारे अधिष्ठाता देव हैं । सत्कर्म प्रधान याज्ञिक कर्म हमें शत्रुओं से विहीन करें । समस्त देवगण हमारे स्वामी के रूप में यज्ञ मण्डप में पधारें ॥७ ॥

२३५५. इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ॥८ ॥

हे काम को ज्येष्ठ मानने वाले देवो ! आप घृतयुक्त आज्याहुति का सेवन करते हुए आनन्दित हों और हमें शत्रुओं से रहित करें ॥८ ॥

२३५६. इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥९ ॥

हे इन्द्राग्नि और कामदेव ! आप सभी एक साथ रथ पर सवार होकर हमारे वैरियों को नीचे गिराएँ । हे अग्निदेव ! इनके गिरने पर इन्हें गहन अन्धकार से आवृत करके आप इनके घर की वस्तुओं को भस्म कर डालें ॥९ ॥

२३५७. जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥१० ॥

हे काम ! आप हमारे शत्रुओं का संहार करके गहन अन्धकाररूप मृत्यु को सौंप दें । वे सभी इन्द्रिय सामर्थ्य से रहित और निर्वीर्य होकर एक दिन भी जीवित रहने की स्थिति में न रहें ॥१० ॥

२३५८. अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ॥११ ॥

काम शक्ति ने हमारे अनिष्टकारक शत्रुओं (अथवा आन्तरिक दुर्बलताओं) को विनष्ट कर दिया है, हमारे विकास के लिए विस्तृत लोक (स्थान) प्रदान किए हैं । चारों दिशाएँ हमारे लिए नम्र (अनुकूल) हों तथा छह भूभाग हमारे लिए घृत (सार वस्तुएँ) प्रदान करें ॥११ ॥

२३५९. तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥१२ ॥

बन्धन से रहित नौका जिस प्रकार (प्रवाह में) नीचे की ओर स्वतः बहती है, उसी प्रकार हमारे अनिष्टकारक शत्रु अधोगति में गिरें । बाणों से भगाये गये शत्रुओं का पुनः लौटना सम्भव न हो ॥१२ ॥

२३६०. अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥१३ ॥

अग्नि, इन्द्र और सोम - ये सभी देवगण, शत्रुओं को भगाते हुए हमारा संरक्षण करें । ये सभी देव, शत्रुओं को दूर करें ॥१३ ॥

२३६१. असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्य१ःस्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥१४ ॥

हमारे द्वारा भगाए गए शत्रु सभी शूरवीर सैनिकों से विहीन होकर और अपने हितैषी मित्रों से परित्यक्त होकर विचरें । विद्युत् तरंगें पृथ्वी पर इनके खण्ड-खण्ड कर दें और हे काम !आपके पराक्रमी देव शत्रुओं का मर्दन करें ।

२३६२. च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान्।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥१५ ॥

सभी मेघ गर्जनों की धारणकर्त्री विद्युत् गिरकर अथवा न गिरते हुए स्थायीरूप से और उदय को प्राप्त होने वाले शक्तिमान् सूर्य अपनी तेजस्वितारूप ऐश्वर्य से हमारे अनिष्टकर शत्रुओं को पतित करें ॥१५ ॥

२३६३. यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥१६ ॥

हे कामशक्ति ! आपके जो सुखदायक तीनों ओर से संरक्षक, श्रेष्ठ-सामर्थ्ययुक्त और शस्त्रों से भेदनरहित विस्तृत (फैले हुए) ज्ञानमय कवच बने हुए हैं, उनसे आप हमारे अकल्याणकारी (अनिष्टकर) शत्रुओं को दूर करें । प्राण, पशु और आयु ये तीनों हमारे शत्रुओं का परित्याग करें ॥१६ ॥

२३६४. येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१७ ॥

जिससे इन्द्रदेव ने दस्युओं को गहन अन्धकार (अथवा मृत्युरूप अधम अन्धकार) में फेंक दिया था और जिससे देवगण आसुरी तत्त्वों को खदेड़ते रहे, हे सत्संकल्परूप काम ! उसी सामर्थ्य से आप हमारे अवरोधक, तत्त्वों को इस लोक से दूर करें ॥१७ ॥

२३६५. यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥१८ ॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव ने अवरोधक तत्त्वों को हीन अन्धकार में धकेला और जिस विधि से देवशक्तियों ने असुरता का पराभव किया, उसी प्रकार हे काम ! आप हमारी प्रगति में बाधक अवांछनीय तत्त्वों को हटा दें ॥१८ ॥

२३६६. कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥१९ ॥

सृष्टि- उत्पत्ति काल में पहले काम (संकल्प) का उद्‌भव हुआ। देवगणों, पितरों और मनुष्यों ने इसे नहीं पाया (वे इससे पीछे ही रह गए), अत: हे काम ! आप श्रेष्ठ और महान् हैं, ऐसे आपके निमित्त हम नमन करते हैं ॥१९ ॥

२३६७. यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२० ॥

जितने विस्तृत द्युलोक और पृथ्वी हैं, जहाँ तक जल का विस्तार और जितने क्षेत्र में अग्नि का विस्तार है, हे सत्संकल्प के प्रेरक काम ! आप सभी प्राणियों में संव्याप्त होने वाले विस्तार में उनसे भी श्रेष्ठ और महान् हैं, अतएव हम आपके प्रति प्रणाम करते हैं ॥२० ॥

२३६८. यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२१ ॥

जहाँ तक दिशाएँ और उप दिशाएँ संव्याप्त हैं तथा जहाँ तक स्वर्गीय प्रकाश की विस्तारकर्त्ता (फैलाने वाली) दिशाएँ हैं, हे काम ! आप उनसे भी श्रेष्ठ और महान् हैं, ऐसे आपके प्रति हम नमन करते हैं ॥२१ ॥

२३६९. यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२२ ॥

जहाँ तक भृङ्ग, मक्खियाँ (कीट), नीलगायें (पृथ्वीचर), काटने वाले डेमू और पेड़ पर चढ़ने वाले पशु तथा रेंगने वाले जीव होते हैं, हे काम ! आप उनसे भी कहीं महान् और श्रेष्ठ हैं, अतएव आपके प्रति हमारा नमन है ॥२२

२३७०. ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२३ ॥

हे संकल्प शक्तिरूप काम और मन्यु ! आप आँख झपकने वालों, स्थित पदार्थों और जल के अथाह भण्डार रूप समुद्र से भी बढ़कर महान् और उत्कृष्ट हैं, आपके प्रति हमारा नमन है ॥२३ ॥

२३७१. न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥२४ ॥

वायु, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा इनमें से कोई सत्संकल्परूप काम की तुलना के योग्य नहीं । हे काम ! आप उनसे भी महान् और उत्कृष्ट हैं, ऐसे आपके प्रति हमारा प्रणाम है ॥२४ ॥

२३७२. यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।

ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥२५ ॥

हे संकल्प बल के प्रतीक काम ! आपके जो कल्याणकारी और हितकारक शरीर हैं, जिनके द्वारा आप जिनको स्वीकार (वरण) करते हैं, वे सत्यरूप होते हैं । उन उत्कृष्टताओं के साथ आप हम सभी में प्रवेश करें और अपनी दुर्भावग्रस्त विचारणाओं को हमसे भिन्न अवांछनीय तत्त्वों की ओर प्रेरित करें ॥२५ ॥

[३ - शाला सूक्त]

[**ऋषि-** भृग्वङ्गिरा । **देवता-**शाला । **छन्द-** अनुष्टुप्, ६ पथ्यापंक्ति, ७ परोष्णिक्, १५ त्र्यवसाना पञ्चपदातिशक्वरी, १७ प्रस्तार पंक्ति, २१ आस्तार पंक्ति, २५, ३१ एकावसाना त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, २६ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्, २७-३० एकावसाना त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री ।]

२३७३. उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।

शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥१ ॥

सुरचित, प्रत्येक ओर से नापे गए, उपयुक्त अनुपात वाले गृह के चारों ओर बँधे बन्धनों को हम खोलते हैं ॥१

२३७४. यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशोग्रन्थिश्च यः कृतः ।

बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२ ॥

सम्पूर्ण श्रेष्ठता से युक्त हे शाले ! जो आपमें बन्धन लगा हुआ है और आपके दरवाजे पर जो पाश बँधा है, उसे हम (उपयोग के लिए) खोलते हैं, जैसे बृहस्पतिदेव वाणी की शक्ति को खोल देते हैं ॥२ ॥

२३७५. आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।

परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥३ ॥

जानकार शिल्पी ने आपको ठीक करके ऊँचा बनाया और आपमें गाँठों (जोड़ों) को सुदृढ़ बनाया है । ज्ञानी शिल्पी द्वारा जोड़ों (गाँठों) को काटने के समान हम इन्द्रदेव की सामर्थ्य से उन गाँठों को खोलते हैं ॥३ ॥

२३७६. वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४॥

समस्त वरणीय ऐश्वर्यों से सम्पन्न हे शाले ! (यज्ञशाला) आपके ऊपर बाँसों, बन्धन स्थानों और ऊपर से बँधे घास-फूस के पक्षों या पाँसों पर लगे बन्धनों को हम खोलते हैं ॥४॥

२३७७. संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ॥५॥

इस मान पत्नी (माप का पालन करने वाली) शाला में लगी कैंची के आकार से जुड़ी (संयुक्त) लकड़ियों और चटाइयों के चारों ओर सटे हुए बन्धनों को हम भली प्रकार खोलते हैं ॥५॥

[शाला को यहाँ 'मानपत्नी' कहा गया है। वास्तुशिल्प के जानकार जो परिमाप (नाप-जोख) के आधार पर भवन का आकार निर्धारित करते हैं, उन्हें 'मानपति' कहा जाता था। उस मान-माप के अनुरूप बनी शाला को मान का अनुपालन करने वाली होने से 'मानस्य पत्नी' (मान की पत्नी) कहा गया है।]

२३७८. यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम्।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ॥६॥

हे मान की पत्नी ! आपके भीतर जो छींकें, मनोहर सजावट हेतु बाँधे गए हैं, उन मच्चानों को हम भली प्रकार खोलते हैं। आप कल्याणकारिणी शाला हमारे शरीरों के लिए सुखदायिनी हों ॥६॥

२३७९. हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले ॥७॥

हे दिव्यता-सम्पन्न शाले ! (यज्ञशाला) आप हविष्यान्न के स्थान (स्टोर), यज्ञशाला (अग्निहोत्र स्थल), स्त्रियों के रहने के स्थान, सामान्य स्थान (कमरों) और देवशक्तियों के बैठने के उपासना-स्थल के आसनों से युक्त हों ॥७॥

[भारतीय शैली के भवनों में यह सभी स्थान रखने की परिपाटी रही है।]

२३८०. अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति। अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥

आकाशीय रेखा में (ऊपर की ओर) हजारों अक्षों वाले फैले जाल को हम ब्राह्मीशक्ति द्वारा (अभिमंत्रित करके) खोलते हैं ॥८॥

२३८१. यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम्।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९॥

हे मानपत्नी शाले ! जो तुम्हें ग्रहण कर रहे हैं और जिसने तुम्हें बनाया है, वे दोनों ही वृद्धावस्था (पूर्ण आयु) तक जीवित रहें ॥९॥

२३८२.अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता। यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः।

हम जिस गृह के प्रत्येक अंग और प्रत्येक जोड़ को गाँठों से मुक्त कर रहे हैं, ऐसी हे शाले ! जिसके द्वारा आप मजबूत, बन्धनयुक्त और परिष्कृतरूप में बनाई गई हों, आप उसकी स्वर्ग-प्राप्ति में सहायक बनें ॥१०॥

२३८३. यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥११॥

हे शाले ! जिसने आपका निर्माण किया है और जिसने वृक्षों को काटकर (यथाक्रम गढ़कर) स्थापित किया, (उनके माध्यम से) परमेष्ठी प्रजापति ने प्रजा के कल्याण के निमित्त आपको बनाया है ॥११॥

२३८४.नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥१२ ॥

वृक्षों को शाला के निमित्त काटने वालों, घर के संरक्षकों, अग्नि को अन्दर रखने वालों और आपके भीतर रहने वालों के लिए हमारा नमस्कार है ॥१२ ॥

२३८५. गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१३ ॥

शाला में विद्यमान रहने वाले गौ, अश्वादि पशुओं के निमित्त यह अन्न है । हे नाना प्रकार के प्राणियों की उत्पादनकर्त्री और सन्तान आदि से सम्पन्न शाले ! हम विभिन्न ढंग से आपके पाशों को खोलते हैं ॥१३ ॥

२३८६. अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥१४ ॥

हे विविध प्राणियों की उत्पादक और प्रजा- सम्पन्न शाले ! आप अपने अन्दर पशुओं के साथ मनुष्यों और अग्नि को विश्राम देती हैं, हम आपकी गाँठों को खोलते हैं ॥१४ ॥

२३८७. अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥१५ ॥

पृथ्वी और द्युलोक के बीच जो विस्तृत आकाश अथवा यज्ञाग्नि ज्वालाएँ हैं, उनके द्वारा हम आपकी इस शाला को स्वीकार (ग्रहण) करते हैं । जो अन्तरिक्ष और पृथ्वी की निर्माणशक्ति है, उन्हें हम खजाने के लिए मध्यभाग (उदर) में रखते हैं, इसलिए स्वर्ग प्राप्ति के लिए हम इस शाला को ग्रहण करते हैं ॥१५ ॥

२३८८. ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥१६ ॥

बल-प्रदात्री, दुग्धवती पृथ्वी में नये और निर्मित सभी अन्न को धारण करने में समर्थ हे शाले ! आप प्रतिग्रह (उपहार) लेने वाले को विनष्ट न करें ॥१६ ॥

२३८९. तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥१७ ॥

घास से आच्छादित, फूस की बनी चटाइयों से ढकी हुई, रात्रि के समान सभी प्राणियों को अपने भीतर आश्रय देने वाली हे शाले ! आप पृथ्वी पर मापकर बनाई गई, उत्तम पैरों वाली हथिनी के समान (सुदृढ़) स्तम्भों से युक्त होकर खड़ी हैं ॥१७ ॥

२३९०. इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् । वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ॥

पिछली बार की तरह आपके ऊपर बाँधे हुए पुलों को अलग करते हुए हम खोलते हैं,. वरुणदेव द्वारा खोली गई हे शाले !आपको प्रातःकालीन सूर्यदेव पुनः उद्घाटित करें ॥१८ ॥

२३९१. ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥१९ ॥

मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित और क्रान्तदर्शियों द्वारा प्रमाण से रची गई शाला को सोमपान के स्थल पर बैठने वाले अमरदेव, इन्द्राग्नि संरक्षित करें ॥१९ ॥

२३९२. कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥२० ॥

घोंसले में घोंसला (घर में कमरे अथवा देह में गर्भाशय) है, कोशों से कोश (कमरे से कमरा अथवा जीव कोशों से जीवकोश) भली प्रकार सम्बद्ध है । वहाँ प्राणधारी जीवों के मरणधर्मा शरीर विभिन्न प्रकार से उत्पन्न होते हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व प्रजायुक्त होता जाता है ॥२० ॥

२३९३. या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥२१ ॥

दो पक्षों (पहलुओं या खण्डों) वाली, चार पक्षों, छह पक्षों, आठ पक्षों तथा दस पक्षों वाली शाला (यज्ञशाला) निर्मित की जाती है । उस मानपत्नी (शाला) में हम उसी प्रकार आश्रय लेते हैं, जिस प्रकार गर्भ गृह में अग्नि स्थित रहती है ॥२१ ॥

[वास्तुकला के अनेक प्रकारों का वर्णन इस मंत्र में किया गया है । उस काल में भी आवश्यकतानुसार अनेक आकार-प्रकार के गृह विनिर्मित होते थे ।]

२३९४. प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अग्निर्ह्य१न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥

हे शाले ! पश्चिम की ओर मुख करने वाले हम पश्चिमाभिमुख स्थित और हिंसाभाव से रहित शाला में प्रविष्ट होते हैं । ऋत (सत्य या यज्ञ) के प्रथम द्वार में हम अग्नि एवं जल के साथ प्रवेश करते हैं ॥२२ ॥

२३९५. इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥

इन रोगरहित यक्ष्मारोग के नाशक जल को हम शाला में भरते हैं और अमृतमय अग्नि के साथ घरों के समीप ही हम बैठते हैं ॥२३ ॥

२३९६.मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ॥

हे शाले ! नव-विवाहित कन्या (वधू) के समान हम तुझे सुसज्जित करते हैं, आप अपने पाशों को हमारी ओर मत फेंकना । आपका भारी बोझ हलका हो जाए ॥२४ ॥

२३९७. प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२५ ॥

शाला की पूर्वदिशा की महिमा के लिएनमन है, श्रेष्ठ प्रशंसनीय देवों के निमित्त यह आहुति समर्पित हो ॥२५॥

२३९८. दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२६ ॥

शाला की दक्षिण दिशा की महिमा के लिए हमारा नमन है, श्रेष्ठ देवों के निमित्त यह आहुति समर्पित हो ॥२६॥

२३९९. प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२७ ॥

शाला की पश्चिम दिशा की महत्ता के निमित्त हमारा वन्दन है, श्रेष्ठ प्रशंसनीय देवों के लिए यह श्रेष्ठ उक्ति समर्पित हो ॥२७ ॥

२४००. उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२८ ॥

शाला की उत्तर दिशा की महिमा के निमित्त हमारा वन्दन है, श्रेष्ठ पूजनीय देवों के लिए यह श्रेष्ठ कथन समर्पित हो ॥२८ ॥

२४०१. ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥२९ ॥

शाला की ध्रुव दिशा की महत्ता के लिए नमन है, श्रेष्ठ वन्दनीय देवों के लिए यह आहुति समर्पित हो ॥२९ ॥

२४०२. ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥३० ॥

शाला की ऊर्ध्व दिशा की महिमा के निमित्त हमारा वन्दन है, श्रेष्ठ प्रशंसनीय देवों के लिए यह आहुति समर्पित हो ॥३०॥

२४०३. दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥३१ ॥

शाला की प्रत्येक दिशा और उपदिशा की महिमा के लिए हमारा नमस्कार है, उत्तम वर्णन योग्य देवों के लिए यह श्रेष्ठ उक्ति समर्पित है ॥३१ ॥

[४ - ऋषभ सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता**-ऋषभ । **छन्द**- त्रिष्टुप्, ६, १०, २४ जगती, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, ११-१७, १९-२०, २३ अनुष्टुप्, १८ उपरिष्टात् बृहती, २१ आस्तारपंक्ति ।]

इस सूक्त के ऋषि ब्रह्मा-सृजेता हैं तथा देवता ऋषभ हैं। ऋषभ का सीधा अर्थ बैल या साँड़ लिया जाता है। मन्त्रों के अर्थ अच्छी नस्ल के बैल द्वारा गोधन तथा दुग्ध, घृतादि के संवर्धन के संदर्भ में भी फलित होते हैं तथा वृषभ की दिव्य महत्ता का भी प्रतिपादन करते हैं; किन्तु सूक्त में ऋषभ के उपलक्षण से प्रकृति में उपलब्ध, सेचन सामर्थ्ययुक्त उस दिव्य प्रवाह का बोध कराया गया है, जो प्रकृति के अनेक इकाइयों का सेचन क्रिया द्वारा उत्पादक बना देता है। सूक्तोक्त यह ऋषभ केवल बैल नहीं है; क्योंकि (मन्त्र ५ में) यह जल, ओषधियों एवं घी का रस है तथा इसका शरीर ही मेघ बनता है। (मन्त्र ६ में) यही रूपों को गढ़ने वाला एवं पशुओं का उत्पादक है। (मन्त्र ७ में) उस हजारों के पोषणकर्त्ता को यज्ञ कहा है तथा वही ऋषभ इन्द्र का रूप धारण करता है। अस्तु, सूक्त में वर्णित ऋषभ के गोवंशपरक अर्थ के साथ उसके व्यापक संदर्भ भी ग्राह्य हैं-

२४०४. साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान्॥१ ॥

हजारों सामर्थ्यों से युक्त यह तेजस्वी ऋषभ पयस्वान् (दूध या रस उत्पादक) है। यह वहन करने वाली (गौओं या प्रकृति की) इकाइयों में विभिन्न रूपों को धारण करता है। बृहस्पतिदेव से सम्बद्ध यह दिव्य ऋषभ दाता यजमानों को श्रेष्ठ शिक्षण देता हुआ (उत्पादन के) ताने- बाने फैलाता है ॥१ ॥

२४०५. अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु॥२ ॥

जो पहले जल (मेघों) की प्रतिमा होता है, जो पृथ्वी के समान ही सबके ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने वाला, बछड़ों का पिता और अबध्य (गौओं या प्रकृति) का स्वामी ऋषभ हमें हजारों प्रकार की पुष्टियों से सम्पन्न करें ॥२ ॥

२४०६. पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥३ ॥

अपने अन्दर पौरुष को धारण करने वाला विशाल शरीर वाला पयस्वान् ऋषभ वसुओं (वास प्रदायकों) के उदर को भर देता है। उस 'हुत' (दिए हुए) ऋषभ को जातवेदा अग्नि, इन्द्र के लिए देवयान मार्गों से ले जाएँ ॥३ ॥

[बैल के सन्दर्भ से 'हुत' का अर्थ दिया हुआ होता है तथा सूक्ष्म सेचन समर्थ प्रवाह के रूप में वह यज्ञ का ही रूप है।]

२४०७. पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम्।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद् वस्य रेतः ॥४ ॥

वृषभ, बछड़ों का पिता, अबध्य (गौओं या प्रकृति) गर्गर शब्द करने वाले मेघों या प्रवाहों का पालक है। वत्सरूप में, उसके रक्षक जरायुरूप में, प्रतिदिन दुहे गए अमृतरूप में, दही और घीरूप में तथा अप्रत्यक्षरूप में उस ऋषभ का उत्पादक तेज ही विद्यमान रहता है ॥४ ॥

२४०८. देवानां भाग उपनाह एषो३पां रस ओषधीनां घृतस्य।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥५ ॥

यह देवों के समीप स्थित (उपनाह) भाग है। ओषधियों, जल और घृत का यह रस है, इसी सोमरस को इन्द्रदेव ने ग्रहण किया, इसका शरीर ही पर्वताकार (मेघ) हुआ है ॥५ ॥

२४०९. सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥६ ॥

हे ऋषभ ! आप सोमरस से भरे हुए कलश को धारण करते हैं। आप पशुओं के उत्पादक, विविधरूपों (शरीरों) को बनाने वाले हैं। आपकी जो सन्तानें हैं, वे हमारे लिए कल्याणकारी हों। हे स्वधिते (स्वयं सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाले) ! आपके पास जो (उत्पादक शक्तियाँ) हैं, उन्हें हमारे लिए प्रदान करें ॥६ ॥

२४१०. आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥७ ॥

यह बैल घृत को धारण करने वाला रेतस् (उत्पादक तेज) का सेचनकर्त्ता है। हजारों प्रकार की पुष्टियों के प्रदाता होने से इसे यज्ञ कहा गया। यही ऋषभ इन्द्र के स्वरूप को धारण कर रहा है। हे देवगण ! वह ऋषभ हमारे लिए कल्याणप्रद हो ॥७ ॥

२४११. इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत्।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥८ ॥

धीर, मनीषी, कवि, विद्वान् आदि बृहस्पतिदेव को ही इस ऋषभ रूप में अवतरित हुआ बतलाते हैं। इसकी भुजाएँ इन्द्रदेव की, कन्धे अश्विनीदेवों के तथा कोहनी भाग मरुद्‌गणों के कहे गए हैं ॥८ ॥

२४१२. दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥९ ॥

हे पयस्वान् ऋषभ ! आप दिव्यगुण सम्पन्न प्रजा को रूप देते हैं। आपको ही इन्द्र और सरस्वान् कहा जाता है। जो ब्राह्मण इस ऋषभ का यजन (दान) करता है, वह एक ही मुख (माध्यम) से हजारों का दान करता है ॥९ ॥

२४१३. बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१० ॥

हे वृषभ !बृहस्पति और सविता देवों ने आपकी आयु को धारण किया तथा आपकी आत्मा त्वष्टा और वायु से पूर्ण है। मन से आपको अन्तरिक्ष में समर्पित करते हैं । दोनों द्युलोक और भूलोक ही आपके आसनरूप हों ॥

२४१४. य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत्।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥११ ॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव, देवों में आगमन करते हैं; उसी प्रकार जो गौओं (वाणियों या इन्द्रियों) के बीच शब्द करते हुए आता है, ऐसे ऋषभ के अंगों की स्तुति ब्रह्मा मंगलमयी वाणी से करें ॥११ ॥

२४१५. पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥१२ ॥

उसके पार्श्वभाग अनुमतिदेव के और पसलियों के दोनों भाग भगदेव के हैं । मित्रदेवता का कथन था कि दोनों घुटने केवल हमारे ही हैं ॥१२ ॥

२४१६. भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥१३ ॥

इसके कटि प्रदेश आदित्यदेवों के, कूल्हे बृहस्पति के और पूँछ वायुदेव की है । उसी से वे ओषधियों को प्रकम्पित करते हैं ॥१३ ॥

२४१७. गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥१४ ॥

सिनीवाली, सूर्य प्रभा, उत्थाता, इन देवों के लिए क्रमशः गुदा, त्वचा और पैर ये अवयव माने गये हैं । इस प्रकार विद्वान् पुरुषों ने बैल के विषय में कल्पना की है ॥१४ ॥

२४१८. क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥१५ ॥

जामिशंस की गोद (उदर भाग) और कलशरूप ककुद भाग को सोमदेव ने धारण किया है । इस प्रकार समस्त देवों ने इस बैल के सम्बन्ध में कल्पना की थी ॥१५ ॥

२४१९. ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥१६ ॥

बैल के कुष्ठिका भाग को सरमा और खुरों को कछुओं के निमित्त निश्चित किया गया, इसके अपक्व अन्न भाग को श्वानों और कीड़ों के लिए रखा गया ॥१६ ॥

२४२०. शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥१७ ॥

अहिंसित (गौओं या प्रकृति) के स्वामी ऋषभ अपने कानों से कल्याणकारी शब्द सुनते हैं, सींगों से राक्षसी वृत्तियों का संहार करते हैं तथा नेत्रों से अकालरूप दारिद्रय को दूर करते हैं ॥१७ ॥

२४२१. शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥१८ ॥

इस ऋषभ का यजन (समर्पण) करने वाले ब्राह्मण शतयाज-यज्ञ के पुण्य को अर्जित करते हैं । समस्त देव उन्हें तृप्ति प्रदान करते हैं और अग्नि की ज्वालाएँ इन्हें सन्तापित नहीं करतीं ॥१८ ॥

२४२२. ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥१९ ॥

सत्पात्र ब्राह्मणों को ऋषभ सौंपकर जो अपने मन की उदार भावना का परिचय देते हैं, वे अपनी गोशाला में गौओं की पुष्टि का शीघ्र दर्शन करते हैं ॥१९ ॥

२४२३. गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम्।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥२० ॥

ऋषभ का दान करने वाले को देवगण अपने निर्देश से गौएँ, सुसन्तति और शारीरिक शक्ति प्रदान करें ॥२०॥

२४२४. अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम्।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥२१ ॥

सोमरूपी हवि का पान करते हुए इन्द्रदेव ज्ञानस्वरूप सम्पत्ति को प्रदान करें। इन्द्रदेव स्वर्गलोक से परे ज्ञानयुक्त ऐसी धेनु (धारण क्षमता) लेकर आएँ, जो सुदुधा (श्रेष्ठ दूध वाली) नित्यवत्सा (सदा वत्स के-साधक के साथ रहने वाली) तथा वश में रहकर दुही जाने वाली हो ॥२१ ॥

२४२५. पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन्।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥२२ ॥

अन्तरिक्षीय अन्न को धारण करने वाला, भूरे रंग वाला (पिशङ्ग रूप) और अनेक आकृतिरूपों से युक्त देवराज इन्द्र का सामर्थ्य- बल निकट आ रहा है। वह बल आयुष्य, सुसन्तति और वैभव प्रदान करते हुए हमें पोषक तत्त्वों से सम्पन्न करे ॥२२ ॥

२४२६.उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः। उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम्।

हे ऋषभ (साँड़) ! आप इस गोष्ठ में रहें, हमारे सहायक हों। हे इन्द्रदेव ! आपका वीर्य रस वृषभ के रेतस् (उत्पादक तेज) के रूप में हमारे पास आ जाए ॥२३ ॥

२४२७. एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥२४ ॥

(हे प्रकृति के घटको या गौओ) ! इस युवा बैल (ऋषभ) को हम आपके निमित्त यहाँ रखते हैं, आप इस गोष्ठ (गोशाला) के इच्छित स्थानों में भ्रमण करें। हे सौभाग्यशालिनि ! आप हमारा परित्याग न करें और वैभव की पुष्टियों से हमें सम्पन्न करें ॥२४ ॥

[५ - पञ्चौदन - अज सूक्त]

[**ऋषि**- भृगु। **देवता**-पञ्चौदन अज। **छन्द**- त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा पुरोऽतिशक्वरी जगती, ४, १० जगती, १४, १७, २७-२९ अनुष्टुप्, १६ त्रिपदा अनुष्टुप्, १८, ३७ त्रिपदा विराट् गायत्री, २०-२२, २६ पञ्चपदा अनुष्टुप् उष्णिक् गर्भोपरिष्टात् बार्हता भुरिक् त्रिष्टुप्, २३ पुर उष्णिक्, २४ पञ्चपदा अनुष्टुप् उष्णिक् गर्भोपरिष्टाद् बार्हता विराट् जगती, ३० ककुम्मती अनुष्टुप्, ३१ सप्तपदाष्टि, ३२-३५ दशपदा प्रकृति, ३६ दशपदाकृति, ३८ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता 'पञ्चौदन अज' हैं। ओदन पके हुए चावल (भात) को कहते हैं, व्यापक अर्थों में पके हुए अन्न को भी ओदन कहते हैं। अनेक आचार्यों ने इस सम्बोधन का भाव पंचभूतों या पंच तन्मात्राओं का भोक्ता जन्म-मरण से मुक्त जीवात्मा के साथ जोड़ा है। इस भाव से भी मंत्रों के अर्थ सिद्ध होते हैं; किन्तु उसे अजन्मा परिपक्व अन्न कहना बहुत युक्ति संगत नहीं लगता। जगह-जगह मंत्रों में उसकी आहुतियाँ देने एवं दान किए जाने का उल्लेख भी है। अस्तु, उसे पदार्थ जगत् के परमाणु बनने से पूर्व की स्थिति वाले उपकणों (सब एटामिक पार्टिकल्स) के रूप में समझा जा सकता है। वह पदार्थ के जन्म से पूर्व की स्थिति है, इसलिए उसे अजन्मा कहना उचित है, साथ ही वह पदार्थ (पंचभूत) बनने के लिए परिपक्व स्थिति में होने से पका हुआ अन्न 'ओदन' भी कहला सकता है। पाँचों भूतों के लिए आधार-आहार रूप होने से 'पञ्चौदन' संज्ञा देना भी उचित है। सुधी पाठक मंत्रार्थों को उक्त दोनों ही भावों से ग्रहण कर सकते हैं-

२४२८. आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥१ ॥

इस अज (अजन्मा) को यहाँ लाकर, ऐसे सत्कर्म प्रधान यज्ञ को प्रारम्भ करें, जिससे यह अज पुण्यात्माओं के लोकों को जानता हुआ घने अन्धकारों को नाना प्रकार से पार करते हुए तृतीय स्वर्ग धाम को उपलब्ध करे ॥१ ॥

२४२९. इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम्।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥२ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न अज ! हम आपको इस सत्कर्मरूप यज्ञ में इन्द्रदेव (परमात्मा) के लिए यजमान (साधक) के समीप लेकर आते हैं। जो हमारे प्रति दुर्भावनाएँ रखते हैं, उन्हें पैर से कुचल डालें और यजमान की वीर सन्तानें पापों से रहित हों ॥२ ॥

२४३०. प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥३ ॥

हे अज (अजन्मा जीवात्मा) ! पूर्वकाल में आपसे जो दुष्कृत्य बन पड़े हों, उसके लिए आप अपने पैरों को पवित्र करें। तत्पश्चात् पवित्र कदमों से मार्ग को जानते हुए स्वर्गारोहण करें। यह अज अन्धकारों को लाँघते हुए, विभिन्न लोकों को देखते हुए, तृतीय स्वर्ग धाम (परम उच्च स्थिति) को प्राप्त करे ॥३ ॥

[अज स्थिति वाले सूक्ष्म कणों से विषैले अपवित्र पदार्थ भी बन जाते हैं। उनको पुनः सूक्ष्म कणों में विखण्डित करके वाञ्छित पदार्थ बनाने की प्रक्रिया अन्तरिक्ष से भी ऊपर आकाश के उच्च क्षेत्र में होती है। भूः (पृथ्वी), भुवः (अन्तरिक्ष) के बाद स्वः, महः, जनः ये तीन आकाश हैं। जनः का अर्थ जनन करने वाला भी होता है, उस अज की उस तीसरे स्वर्ग 'जनः' तक गति होती है।]

२४३१. अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्व१सिना माभि मंस्थाः।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥४ ॥

हे विशस्तः (विशेष शासक) ! इस काले शस्त्र (श्याम) से इसकी त्वचा को आप इस प्रकार से काटें, जिससे जोड़ों को वेदना की अनुभूति न हो। द्वेष भावना से रहित होकर जोड़ों से इसे इस प्रकार समर्थ बनाएँ, जिससे यह परम उच्च स्थान (स्वर्ग धाम) को उपलब्ध करे ॥४ ॥

[जीवात्मा अथवा अज कणों का लगाव यदि किन्हीं हीन भावों से हो जाए, तो उन लगावों-सन्धियों को ज्ञान से काटकर श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के साथ, उसे भली प्रकार जोड़ा जाए।]

२४३२. ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम्।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥५ ॥

अभिमंत्रित करके कुम्भी पात्र को हम आग पर रखते हैं। जल से अभिषिंचित पात्र को हे शमिताओ ! आप इस प्रकार रखें, जिससे आग (साधना) द्वारा परिपक्व होकर वह अज वहाँ जाए, जहाँ सत्कर्मियों (पुण्यात्माओं) के श्रेष्ठ लोक हैं ॥५ ॥

२४३३. उत्क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम्।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥६ ॥

चारों ओर से संतप्त न होते हुए भी आप संतप्त चरु द्वारा तृतीय स्वर्गधाम में जाने के लिए आरोहण करें। अग्नि के संताप से आप उसके समान तेजस्वी हो गये हैं।अतः इस तेजोमय लोक को अपने सत्कर्मों से प्राप्त करें

[यज्ञीय प्रयोगों से भी हव्य विखण्डित होकर अज कणों में बदल जाता है । वह अग्नि के संयोग से उच्च लोकों में जाकर वाञ्छित कणों के रूप में पुनः पृथ्वी पर बरसता है ।]

२४३४. अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥७ ॥

अज (अजन्मा) ही अग्नि और ज्योति है । जीवित देहधारियों के अन्दर जो अज है, उसे ब्राह्मी या देव प्रक्रिया के लिए समर्पित करना चाहिए , ऐसा ज्ञानियों का कथन है । इस लोक में श्रद्धासहित समर्पित किया गया, यह अज दूरस्थ स्वर्गधाम में अन्धकारों को विनष्ट करता है ॥७ ॥

२४३५. पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥८ ॥

सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन तीन तेजों को प्राप्त करने वाला, यह अज (जीवात्मा) पाँच प्रकार के भोज्य पदार्थों (पाँच प्राणों या पाँच तन्मात्राओं) से युक्त पाँच कार्यक्षेत्रों (पाँचभूतों या इन्द्रियों) में पराक्रम करे । हे पञ्चौदन ! आप याज्ञिक सत्कर्मियों के मध्य पहुँचकर तृतीय स्वर्गधाम को प्राप्त हों ॥८ ॥

२४३६. अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥९ ॥

हे अज ! उन्नति करो । हिंसक बाघ (घातक वृत्तियों या कणों) की पहुँच से परे पहुँचो । पंचभूतों का आधार, यह अज परब्रह्म के लिए समर्पित होकर, समर्पणदाता को तृप्ति देकर सन्तुष्ट करता है ॥९ ॥

२४३७. अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥१० ॥

यह अज समर्पणदाता को तीनों प्रकार के सुखों के प्रदाता, तीनों प्रकाशों से युक्त और तीन पृष्ठ (आधारों) से युक्त स्वर्गधाम के स्थल पर धारण करता है । हे अज ! परब्रह्म के लिए समर्पित पञ्चौदन दाता के तप में आप विश्वरूप कामधेनु के समान होते हैं ॥१० ॥

[अजकण संकल्पित - वाञ्छित पदार्थों के रूप में प्रकट हो सकते हैं, इसलिए उन्हें इच्छित विविध रूप वाली कामधेनु के समान कहा गया है ।]

२४३८. एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ॥११ ॥

हे पितरगण ! वह आपकी तृतीय ज्योति है, जो पञ्चौदनरूप अज को ब्रह्मा (परमात्मा) के लिए समर्पित की जाती है । इस लोक में श्रद्धापूर्वक दिया गया पञ्चौदन अज दूरस्थ लोक के अन्धकार को विनष्ट कर देता है ॥११ ॥

२४३९. ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवो३स्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥१२ ॥

सुकृत (यज्ञादि) करने वालों को प्राप्त होने वाले लोकों की कामना करने वाले जो लोग, जिस पञ्चौदन अज को (यज्ञद्वारा) ब्राह्मी अनुशासन के लिए प्राप्त करते हैं । ऐसे हे अज ! आप व्यापक बनकर इस लोक को जीत लें । (देवों द्वारा) स्वीकृत होकर आप हमारा कल्याण करें ॥१२ ॥

२४४०. अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित्।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥१३ ॥

ब्रह्मबल (ज्ञानशक्ति) और पराक्रम-बल (क्षात्रशक्ति) के विशेषज्ञ ये अज अग्नि की प्रखर ज्वालाओं से उद्भूत (प्रकट) होते हैं । इनके द्वारा इष्टापूर्त (अभीष्ट पूर्ति) और यज्ञीय कृत्यों को सभी देवशक्तियाँ ऋतुओं के अनुकूल कल्पित करें ॥१३ ॥

२४४१. अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम्।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥१४ ॥

ज्ञानपूर्वक तैयार किया गया स्वर्णिम आवास जो उस अज के लिए अर्पित करते हैं, वे दानी द्युलोक और पृथ्वी दोनों में ही ऊँची उपलब्धियों को अर्जित करते हैं ॥१४ ॥

[पृथ्वी पर वह स्वर्णिम आवास 'यज्ञ क्षेत्र' है तथा द्युलोक में स्वर्णिम प्रकाशमय सूक्ष्म कणों का उत्पादक क्षेत्र है ।]

२४४२. एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ ॥१५ ॥

हे अज ! ये घृत और शहद से युक्त सोम सम्बन्धी दिव्य रस धाराएँ आपके समीप पहुँचें । हे अज ! आप सात किरणों वाले सूर्य के ऊपर स्वर्ग के पृष्ठभाग से द्युलोक और पृथ्वी को कम्पायमान करें ॥१५ ॥

२४४३. अजो३स्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन्।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥१६ ॥

हे अज ! आप अजन्मा और स्वर्गरूप हैं, आपके द्वारा अंगिरा वंशजों ने स्वर्गलोक के विषय में जानकारी प्राप्त की थी । उस पुण्यमय लोक को हमने भली प्रकार समझ लिया है ॥१६ ॥

२४४४. येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥१७ ॥

हे अग्ने ! जिस सामर्थ्य द्वारा आप सभी प्रकार की सम्पदाओं को देने वाली आहुतियों को हजारों विधियों से देवों तक ले जाते हैं, उसी सामर्थ्य से आप हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग प्राप्ति के लिए, देवों के पास पहुँचाएँ ॥१७ ॥

२४४५. अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥१८ ॥

पञ्चौदन अज परिपक्व होकर स्वर्गलोक में स्थापित होते हैं और पापदेवता को दूर हटाते हैं । इस अज द्वारा सूर्य से युक्त लोकों को हम प्राप्त करें ॥१८ ॥

२४४६. यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥१९ ॥

हम जिसे ब्रह्मनिष्ठों और जनसाधारण में प्रतिष्ठित करते हैं, वही सम्पदा अज के भोगों की पूर्ति करती है । हे अग्निदेव ! ये सभी सम्पदाएँ पुण्यात्माओं के लोक में पहुँचाने वाले मार्गों में हमारी सहायक हों, ऐसा जानें ॥१९॥

२४४७. अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम्।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥२० ॥

इस जगत् में जो पूर्वकाल से सतत प्रयत्नरत है, वह अज ही है । इस अज की छाती यह भूमि, पीठ-द्युलोक, मध्यभाग- अन्तरिक्षलोक, पसलियाँ-दिशाएँ और कोख समुद्र हैं ॥२० ॥

२४४८. सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥२१ ॥

उसके नेत्र सत्य और ऋतरूप, सम्पूर्ण विश्व अस्तित्वरूप, श्रद्धा प्राणरूप और विराट् शीर्षरूप हुए हैं । यह पञ्चौदन अज असीमित फल को प्रदान करने वाला है ॥२१ ॥

[ऊपर के दो मंत्रों में उस अज तत्त्व द्वारा सृष्टि निर्माण काल में पृथ्वी , अन्तरिक्ष, समुद्र आदि के उद्‌भूत होने का वर्णन किया गया है ।]

२४४९. अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२२ ॥

जो मनुष्य दक्षिणा की तेजस्विता वाले (भाव से) पञ्चौदन अज को समर्पित करते हैं । वे असंख्य यज्ञफलों के पुण्य के अधिकारी होते हैं और अपरिमित ऐश्वर्यमय लोक के मार्ग को अपने लिए उद्‌घाटित करते हैं ॥२२॥

[मनुष्य यज्ञ - प्रक्रिया द्वारा ही अज कणों का प्रवाह उत्पन्न कर सकते हैं । इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से असाधारण पुण्य फल प्राप्त होते हैं ।]

२४५०. नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् । सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥२३॥

इस यज्ञ के निमित्त इसकी अस्थियों को न तोड़ें और मज्जाओं को भी न निचोड़ें; वरन् सभी 'यह है,' यह है , ऐसा कहते हुए इसे विशाल में प्रविष्ट करें ॥२३ ॥

[पदार्थ सृजन की स्थिति तक तैयार किये जा चुके अज कणों को और विभाजित न करें । उन्हें वाञ्छित पदार्थों को निर्माण की दिशा में प्रेरित करें , यही उचित है ।]

२४५१. इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२४ ॥

यही इस यज्ञ का रूप है, इसे (जीवात्मा अथवा यज्ञ) उस (परमात्मा या उच्च लोकों) से संयुक्त करते हैं । जो मनुष्य दक्षिणा से देदीप्यमान पञ्चौदन अज के समर्पणकर्त्ता हैं, उन्हें यह यज्ञ, अन्न, महानता और सामर्थ्य देता है ॥२४ ॥

२४५२. पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२५ ॥

जो दक्षिणा से देदीप्यमान पञ्चौदन अज के समर्पणदाता हैं, उन्हें पाँच सुवर्ण (प्राण) , पाँच नवीन-वस्त्र, पंच कोश और पाँच कामधेनुएँ (इन्द्रियाँ) उपलब्ध होती हैं ॥२५ ॥

२४५३. पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२६ ॥

दक्षिणा से दीप्तिमान् पंचभोजी अज को जो समर्पित करते हैं, उन्हें (उन्हें) पंचरुक्मा ज्योति (पाँच प्रकार की आभायुक्त ज्योति) और स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है ।इनके शरीर के लिए कवचरूपी वस्त्र प्राप्त होते हैं ॥२६ ॥

२४५४. या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥२७ ॥

जो स्त्रियाँ (सूक्ष्म इकाइयाँ) पहले पति (पदार्थ) के साथ रहती हैं अथवा जो अन्य पति (पदार्थों) का वरण कर लेती हैं, ऐसी दोनों प्रकार की नारियाँ (इकाइयाँ) पञ्चौदन (अजन्मे तत्त्वों) के रूप में स्वयं को समर्पित करके भी (अपनी विशेषताओं से) वियुक्त नहीं होतीं ॥२७ ॥

२४५५. समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥२८ ॥

जो व्यक्ति पञ्चौदन अज को दक्षिणा के तेज से युक्त समर्पित करते हैं, ऐसे दूसरे पति भी पुनर्विवाहित स्त्री के साथ समान स्थान वाले होते हैं ॥२८ ॥

[पदार्थ भी स्वयं को अजरूप में समर्पित करके नयी विशेषताओं के साथ पुनः अस्तित्व में आ जाते हैं ।]

२४५६. अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥२९ ॥

क्रम से प्रतिवर्ष वत्स देने वाली (अनुपूर्ववत्सा) धेनु, वृषभ ओढ़नी (उपबर्हण) और सुवर्णयुक्त वस्त्रों के दानदाता श्रेष्ठ स्वर्गलोक को जाते हैं ॥२९ ॥

२४५७. आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥

अपनी आत्मचेतना, पिता, पुत्र, पौत्र, पितामह, सहधर्मिणी, जन्म देने वाली माता और जो हमारे प्रिय इष्ट मित्र हैं, उन सबको हम अपने समीप बुलाएँ ॥३० ॥

[यह अज जिन ऋतुओं (अनुशासनों) में फलित होते हैं , उन्हें ग्रीष्म (ऊर्जा) क्रिया, संयम, पोषण, उद्यम एवं विजय कहा गया है । आगे के पाँच मंत्र उन्हीं ऋतुओं के सम्बन्ध में हैं ।]

२४५८. यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद । एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥

यह पञ्चौदन अज ही ग्रीष्म ऋतु है, जो इस ग्रीष्म ऋतु के ज्ञाता और दक्षिणा के तेजस् से सम्पन्न पञ्चौदन अज के समर्पणकर्त्ता हैं, वे अपनी शक्ति से अप्रिय शत्रु (कणों) की श्री- सम्पदा को भस्मीभूत कर देते हैं ॥३१ ॥

२४५९. यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद । कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति
भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३२ ॥

जो कर्म (कुर्वन्त) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वे अप्रिय शत्रु की प्रयत्नमयी श्री- सम्पदा को हर लेते हैं । पञ्चौदन अज ही निश्चय से कुर्वन्त नामक ऋतु हैं, जो दक्षिणा के तेज से सम्पन्न पञ्चौदन अज के दाता हैं, वे अपने दान के प्रभाव से अप्रिय शत्रु (कणों) के ऐश्वर्य को विनष्ट कर देते हैं ॥३२ ॥

२४६०. यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद । संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः । निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति
भवत्यात्मना । योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३३ ॥

जो संयन्त नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वे अप्रिय शत्रु की संयम द्वारा उपलब्ध सम्पदा को ग्रहण करते हैं । पञ्चौदन अज ही संयन्त नामक ऋतु हैं । जो दक्षिणा से दीप्तिमान् पञ्चौदन अज के दाता हैं, वे अपनी आत्मशक्ति से अप्रिय (दुष्ट) शत्रु की श्री- समृद्धि का विनाश कर देते हैं ॥३३ ॥

२४६१. यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद। पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३४॥

जो पिन्वन्त (पोषण) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वे अप्रिय शत्रु की पोषण द्वारा उपलब्ध की गई (पोषिका) श्री-सम्पदा का हरण करते हैं। पञ्चौदन अज ही पिन्वन्त (पोषण) नामक ऋतु हैं। जो दक्षिणा द्वारा देदीप्यमान पञ्चौदन अज (पञ्चभोज्य पदार्थों की सेवनकर्त्ता अजन्मा आत्मा) के समर्पणकर्त्ता हैं, वे अपने प्रभाव से दुष्ट शत्रु की श्री-समृद्धि को विनष्ट कर देते हैं ॥३४॥

२४६२. यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद। उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३५॥

जो उद्यन्त (उद्यम) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वे दुष्ट शत्रु की उद्यम द्वारा प्राप्त की गई लक्ष्मी को ग्रहण करते हैं। पञ्चौदन अज ही उद्यन्त नामक ऋतु हैं। दक्षिणा से दीप्तिमान् पञ्चौदन अज के जो समर्पणकर्त्ता हैं, वे अपने सुकृत्यों से शत्रु के श्रीवर्चस्व को भस्मीभूत कर डालते हैं ॥३५॥

२४६३. यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद। अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते। एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥३६॥

जो अभिभू (विजय) नामक ऋतु के ज्ञाता हैं, वे दुष्ट शत्रु की परास्त करने वाली लक्ष्मी (शोभा) का हरण कर लेते हैं। पञ्चौदन अज ही अभिभू (विजय) नामक ऋतु हैं। दक्षिणा से दीप्तिमान् पञ्चौदन अज के जो समर्पणकर्त्ता हैं, वे दुष्ट शत्रु के श्री- वर्चस्व को पूरी तरह से जला डालते हैं ॥३६॥

**२४६४. अजं च पचत पञ्च चौदनान्।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥३७॥**

अज और पञ्चौदन (उसके पाँच प्रकार के भागों) को परिपक्व बनाएँ। सभी दिशाएँ और अन्तर्दिशाएँ एक मन होकर सहमति भाव से इसे स्वीकार करें ॥३७॥

२४६५. तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥३८॥

आपके इस यज्ञ की सभी दिशाएँ सुरक्षा करें, हम उनके निमित्त घृत और हवन सामग्री की आहुति देते हैं ॥

[६ - अतिथि सत्कार (१)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा। देवता- अतिथि अथवा विद्या। **छन्द**-१ नागी त्रिपदा गायत्री, २ त्रिपदार्षी गायत्री, ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप्, ४, ९ आर्ची अनुष्टुप्, ५ आसुरी गायत्री, ६ त्रिपदा साम्नी जगती, ८ याजुषी त्रिष्टुप्, १० साम्नी भुरिक् बृहती, ११, १४-१६ साम्नी अनुष्टुप्, १२ विराट् गायत्री, १३ साम्नी निचृत् पंक्ति, १७ त्रिपदा विराट् भुरिक् गायत्री।]

इस सूक्त से ११वें सूक्त तक अतिथि सत्कार का महत्त्व प्रकट किया गया है। यह उस समय की मान्यता है, जब लोग केवल परमार्थ या तीर्थाटन के लिए यात्रा पर निकलते थे। गृहस्थ साधक सभी में विराट् प्रभु की झलक देखते हुए अतिथि सेवा को विराट् की आराधना मानते थे। सूक्तोक्त फल उसी मर्यादा के अन्दर फलित होते हैं-

२४६६. यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥१ ॥

जो विद्यारूप प्रत्यक्ष ब्रह्म को जानते हैं, जिनके अवयव ही यज्ञ-सामग्री तथा कन्धे और मध्यदेश की रीढ़ (सन्धि) ही ऋचाएँ हैं ॥१ ॥

२४६७. सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥२ ॥

उसके बाल ही साम, हृदय ही यजुरूप और आच्छादन वस्त्र ही हवि हैं ॥२ ॥

२४६८. यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३ ॥

जो गृहस्थ अतिथियों की ओर देखते हैं, मानो वे देवत्व- संवर्द्धक यज्ञ को ही देखते हैं ॥३ ॥

२४६९. यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥४ ॥

अतिथि से चर्चा करना यज्ञीय कार्य में दीक्षित होने के समान है, उसके द्वारा जलकी कामना प्रणयनरूप है ॥

२४७०. या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥५ ॥

जिस जल को यज्ञ में ले जाते हैं, यह वही जल है अथवा अतिथि के लिए समर्पित जल वही है, जो यज्ञ में प्रयुक्त होता है ॥५ ॥

२४७१. यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥६ ॥

जिन पदार्थों को अतिथि के लिए ले जाते हैं, वही मानो अग्नि और सोम के लिए पशु को बाँधा जाना है ॥६ ॥

२४७२. यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥७ ॥

जो अतिथि के लिए आश्रय- स्थल का प्रबन्ध किया जाना है, मानो वही यज्ञ में 'सद' और हविर्धान का निर्माण करना है ॥७ ॥

२४७३. यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥८ ॥

(सत्कार में) जो वस्त्र बिछाए जाते हैं, मानो वही यज्ञ की कुशाएँ हैं ॥८ ॥

२४७४. यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥९ ॥

जो बिछौना लाते हैं, वे मानो स्वर्गलोक के द्वार को ही खोलते हैं ॥९ ॥

२४७५. यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥१० ॥

अतिथि के लिए जो चादर और तकिया लेकर आते हैं, वही मानो यज्ञ की सीमा है ॥१० ॥

२४७६. यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥११ ॥

जो आँखों के लिए अञ्जन और शरीर की मालिश के लिए तेल लाते हैं, वे मानो यज्ञ घृत ही है ॥११॥

२४७७. यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥१२ ॥

परोसने से पूर्व जो अतिथि के लिए खाद्य सामग्री लाते हैं, वे मानो पुरोडाश ही हैं ॥१२ ॥

२४७८. यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥१३ ॥

भोजन के लिए अतिथि को बुलाना ही मानो हविष्यान्न स्वीकार करने का आह्वान है ॥१३ ॥

२४७९. ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंऽशव एव ते ॥१४ ॥

जो चावल और जौ देखे जाते हैं, वे मानो सोम ही हैं ॥१४ ॥

२४८०. यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥१५ ॥

जो ओखली-मूसल अतिथि के लिएधान कूटने के काम आते हैं, वे मानों सोमरस निकालने के पत्थर हैं ॥

२४८१. शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥१६ ॥

अतिथि के लिए जो छाज उपयोग में लाया जाता है, वह यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पवित्रा के समान, धान की भूसी सोमरस अभिषवण के बाद अवशिष्ट रहने वाले सोम तन्तुओं के समान तथा भोजन के लिए प्रयुक्त होने वाला जल, यज्ञीय जल के समान है ॥१६ ॥

२४८२. स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि
पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥१७ ॥

कलछी (भात निकालने का साधन) स्रुवा के समान, पकते समय अन्न को हिलाया जाना यज्ञ की ईक्षण क्रिया के समान, पकाने आदि के पात्र द्रोणकलश के समान, अन्य पात्र, वायव्य पात्र तथा स्वागत में बिछायी गयी मृग चर्म कृष्णाजिन तुल्य होते हैं ॥१७ ॥

[७ - अतिथि सत्कार (२)]

[**ऋषि** - ब्रह्मा । **देवता**-अतिथि अथवा विद्या । **छन्द**- विराट् पुरस्ताद् बृहती, २, १२ साम्नी त्रिष्टुप्, ३ आसुरी अनुष्टुप्, ४ साम्नी उष्णिक्, ५ साम्नी बृहती, ६ आर्ची अनुष्टुप्, ७ पञ्चपदा विराट् पुरस्ताद् बृहती, ८ आसुरी गायत्री, ९ साम्नी अनुष्टुप्, १० त्रिपदार्ची त्रिष्टुप्, ११ भुरिक् साम्नी बृहती, १३ त्रिपदार्ची पंक्ति ।]

२४८३. यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते
यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति ॥१ ॥

अतिथि के सत्कार में यह अधिक है या पर्याप्त है, इस प्रकार जो देने योग्य पदार्थों का निरीक्षण करते हैं, यह प्रक्रिया यज्ञ में यजमान द्वारा ब्राह्मण के प्रति किये गये व्यवहार के समान मान्य है ॥१ ॥

२४८४.यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥२ ॥

जो इस प्रकार कहते हैं कि अधिक परोसकर अतिथि को दें, तो इससे वे अपने प्राण को चिरस्थाई बनाते हैं ।

२४८५. उप हरति हवींष्या सादयति ॥३ ॥

जो उनके पास ले जाते हैं, वे मानों हीन पदार्थ ही ले जाते हैं ॥३ ॥

२४८६. तेषामासन्नानामतिथिरात्मञ्जुहोति ॥४ ॥

उन परोसे गए पदार्थों में से कुछ पदार्थों का अतिथि अपने अन्दर हवन ही करते हैं ॥४ ॥

२४८७. स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥५ ॥

हाथरूपी स्रुवा से, प्राणरूपी यूप से और भोजन ग्रहण करते समय 'स्रुक् - स्रुक्' ऐसे शब्दरूपी वषट्कार से अपने में आहुति ही डालते हैं ॥५ ॥

२४८८. एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥६ ॥

जो ये अतिथि प्रिय अथवा अप्रिय हैं, वे आतिथ्य यज्ञ के ऋत्विज् यजमान को स्वर्गलोक ले जाते हैं ॥६ ॥

२४८९. स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न
मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥७ ॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वे अतिथि किसी के प्रति द्वेष रखते हुए भोजन न करें, द्वेष करने वाले का भोजन न करें, सन्देहास्पद आचरण करने वाले का भोजन न करें और न सन्देह रखने वाले के यहाँ का अन्न ग्रहण करें ॥७ ॥

२४९०. सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥८ ॥

जिसके यहाँ अतिथि लोग अन्न ग्रहण करते हैं, उनके सभी कषाय-कल्मषरूपी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥८ ॥

२४९१. सर्वो वा एषो ऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥९ ॥

जिनके यहाँ अतिथिजन भोजन नहीं करते, उनके सभी पाप वैसे के वैसे ही रहते हैं ॥९ ॥

२४९२. सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो वितताध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥१० ॥

जो गृहस्थ अतिथिसेवा में आवश्यक सामग्री उनके पास ले जाते हैं, वे सर्वदा सोमरस निकालने के पत्थरों से युक्त रस की आर्द्रता से पवित्र सोमयज्ञ को करने वाले और उसको पूर्णता प्रदान करने वाले के समान होते हैं ॥

२४९३. प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ॥११ ॥

जो अतिथि के प्रति समर्पण करते हैं, वे मानो उनके प्राजापत्य यज्ञ के विस्तारक होते हैं ॥११ ॥

२४९४. प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति ॥१२ ॥

जो अतिथिसत्कार करते हैं, वे प्रजापति के पदचिह्नों का अनुगमन करते हैं ॥१२ ॥

२४९५. योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो
यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥१३ ॥

अतिथियों का आवाहन ही आहवनीय-अग्नि और घर में स्थित अग्नि ही गार्हपत्यअग्नि है और अन्न पकाने की अग्नि ही दक्षिणाग्नि है ॥१३ ॥

[८ - अतिथि सत्कार (३)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-**अतिथि अथवा विद्या । **छन्द-** त्रिपदा पिपीलिक मध्या गायत्री, ७ साम्नी बृहती, ८ पिपीलिक मध्या उष्णिक् ।]

२४९६. इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥१ ॥

जो अतिथि से पहले भोजन करते हैं, वे गृहस्थ के सभी इष्टकर्मों और पूर्तफलों का ही भक्षण करते हैं ॥१ ॥

२४९७. पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥२ ॥

जो अतिथि से पहले भोजन करते हैं, वे घर के दूध और रस को ही विनष्ट करते हैं ॥२ ॥

२४९८. ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥३ ॥

वे गृहस्थ घर की समृद्धि और अन्न-बल को विनष्ट कर डालते हैं, जो अतिथि से पूर्व भोजन ग्रहण करते हैं ॥

२४९९. प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥४ ॥

वे गृहस्थ घर के कुटुम्बियों और गौ आदि पशुओं को ही विनष्ट कर डालते हैं, जो अतिथि से पहले भोजन ग्रहण करते हैं ॥४ ॥

२५००. कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥५ ॥

वे गृहस्थ जो अतिथि से पूर्व भोजन लेते हैं, वे घर की कीर्ति और यशस्विता का ही नाश करते हैं ॥५ ॥

२५०१. श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥६ ॥

जो अतिथि से पूर्व भोजन करने वाले गृहस्थ हैं, वे घर की श्री और सहमति भावना को ही विनष्ट करते हैं ॥६ ॥

२५०२. एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥७ ॥

वे निश्चितरूप से अतिथि हैं, जो श्रोत्रिय हैं, अतएव उनसे पहले भोजन करना उचित नहीं ॥७ ॥

२५०३. अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥८॥

अतिथि द्वारा भोजन ग्रहण करने के बाद गृहस्थ स्वयं भोजन करें। यज्ञ की पूर्णता और निर्विघ्न-समाप्ति के लिए गृहस्थियों द्वारा ऐसे व्रतों के निर्वाह आवश्यक हैं ॥८ ॥

२५०४. एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥९ ॥

गाय के दूध से उपलब्ध होने वाले और अन्य मांसादि, उन्हें भी अतिथि के भोजन से पूर्व गृहस्थ न खाएँ ॥९ ॥

[पूर्वकाल में क्षत्रियों-सैनिकों के लिए मांसाहार क्षम्य था। समुद्र के किनारे रहने वालों के लिए मछली आदि स्वाभाविक आहार रहे हैं। अतिथि जो पदार्थ नहीं खाते, वे पदार्थ भी अतिथि को भोजन कराने के पूर्व न खाने का निर्देश दिया गया है।]

[९- अतिथि सत्कार (४)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा। **देवता**-अतिथि अथवा विद्या **छन्द**-प्राजापत्या अनुष्टुप्, २, ४, ६, ८ त्रिपदा गायत्री, ९ भुरिक् अनुष्टुप्, १० चतुष्पदा प्रस्तार पंक्ति।]

२५०५. स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥१ ॥

२५०६. यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥२ ॥

जो इस बात को जानते हुए अतिथि के लिए दूध अच्छे पात्र में रखकर लाते हैं, वे श्रेष्ठ समृद्ध अग्निष्टोम यज्ञ के यजन का जितना फल प्राप्त करते हैं, उतना आतिथ्य सत्कार से उन्हें प्राप्त होता है ॥१-२ ॥

२५०७. स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥३ ॥

२५०८. यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥४ ॥

जो इस सम्बन्ध में जानते हुए अतिथि के लिए घृत, बर्तन में ले जाते हैं, उन्हें आतिथ्य-सत्कार से उतना फल मिलता है, जितना किसी को श्रेष्ठ-समृद्ध अतिरात्रयज्ञ करने से प्राप्त होता है ॥३-४ ॥

२५०९. स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥५ ॥

२५१०. यावत् सत्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥६ ॥

जो इस विषय को जानते हुए अतिथि के निमित्त शहद उत्तम पात्र में लेकर जाते हैं, उन्हें आतिथ्य-सेवा से उतना प्रतिफल मिलता है, जितना किसी को श्रेष्ठ-समृद्ध 'सत्रसद्य' यज्ञ करने से प्राप्त होता है ॥५-६ ॥

२५११. स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥७ ॥

२५१२. यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥८ ॥

जो इस विषय को जानते हुए (यदि वह मांसाहारी है तो) अतिथि के समीप मांस के पात्र को ले जाते हैं, उन्हें उतना प्रतिफल इस आतिथ्य से मिलता है, जितना श्रेष्ठ-समृद्ध द्वादशाह यज्ञ करने से किसी को प्राप्त होता है ॥७-८ ॥

२५१३. स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥९ ॥

२५१४. प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं
विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥१० ॥

जो इस बात को जानते हुए अतिथि के लिए जल को पात्र में रखकर ले जाते हैं, वे प्रजाओं के प्रजनन अर्थात् उत्पत्ति के लिए स्थायित्व प्राप्त करते हैं और प्रजाजनों के प्रिय होते हैं ॥९-१० ॥

[१० - अतिथि सत्कार (५)]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**-अतिथि अथवा विद्या । **छन्द**-१ साम्नी उष्णिक्, २ पुरउष्णिक्, ३, ५, ७, १० साम्नी भुरिक् बृहती, ४, ६, ९ साम्नी अनुष्टुप्, ५ त्रिपदा निचृत् विषमा गायत्री, ७ त्रिपदा विराट् विषमा गायत्री, ८ त्रिपदा विराट् अनुष्टुप् ।]

२५१५. तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥१ ॥

जो इस आतिथ्य- सत्कार को जानते हैं, उन मनुष्यों के लिए उषा आनन्द-सन्देश देती है और सवितादेव उनकी प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

२५१६. बृहस्पतिरूर्जयोद् गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥२ ॥

बृहस्पतिदेव अन्न-रस से उत्पन्न बल से उनका गान करते हैं, त्वष्टादेव पुष्टि प्रदान करते हैं तथा अन्य सभी देव सोम परिसमाप्ति के वाक्य द्वारा उनकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

२५१७. निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥३ ॥

ऐसा जो जानते हैं, वे सम्पत्ति, प्रजा और पशुओं का आश्रयस्थल होते हैं ॥३ ॥

२५१८. तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति ॥४ ॥

उदय होते हुए सूर्यदेव उनके लिए आनन्द-सन्देश देते हैं औररश्मियों से युक्त सूर्य उनकी प्रशंसा करते हैं॥

२५१९. मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥५ ॥

सूर्यदेव उसकी मृत्यु को विनष्ट करते हुए मध्याह्न के समय उसका गान करते हैं और अपराह्न के समय पुष्टि प्रदान करते हैं । जो इस प्रकार से ज्ञाता हैं, वे सम्पत्ति, प्रजा और पशुओं को उपलब्ध करने वाले होते हैं ॥५ ॥

२५२०. तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ॥६ ॥

जो आतिथ्य-सत्कार के व्रत के ज्ञाता हैं, उनके लिए उत्पन्न होने वाले मेघ, आनन्द-सन्देश देते हैं और गर्जन करते हुए स्तुतिगान करते हैं ॥६ ॥

२५२१. विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥७ ॥

प्रकाशमान मेघ पुष्टि देते हैं, बरसते हुए गुणगान करते हैं तथा उद्ग्रहण करते हुए पालन करते हैं, इस प्रकार वे सम्पत्ति, राजा और पशुओं के आश्रयदाता होते हैं ॥७ ॥

२५२२. अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद् गायति ॥

आतिथ्य-सत्कार के ज्ञाता, अतिथि दर्शन करते हुए अभिवादन, स्तुति और आनन्द प्रकट करते हैं । जब वे जल माँगते हैं, तो मानों गान करते हैं ॥८ ॥

२५२३. उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥९ ॥

जब पदार्थ अतिथि के पास लाते हैं, तो यज्ञ के प्रतिहर्त्ता का कार्य करते हैं । जो अतिथि के भोजन के पश्चात् अवशिष्ट रहता है, उसें यज्ञीय प्रसाद मानें ॥९ ॥

२५२४. निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥१० ॥

जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, वे सम्पत्ति, प्रजा और पशुओं के पालनकर्त्ता होते हैं ॥१० ॥

[११ - अतिथि सत्कार (६)]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-**अतिथि अथवा विद्या । **छन्द-**१ आसुरी गायत्री, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३, ५ त्रिपदार्ची पंक्ति, ४ एकपदा प्राजापत्या गायत्री, ६, ११ आर्ची बृहती, १२ एकपदासुरी जगती, १३ याजुषी त्रिष्टुप्, १४ एकपदासुरी उष्णिक् ।]

२५२५. यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥१ ॥

जो अभीष्ट कार्य को करने वाले द्वारपाल को बुलाते हैं, वे वेद वचन को कहने के सामान हैं ॥१ ॥

२५२६. यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥२ ॥

जब वह सुनता है, मानो वह प्रतिश्राव करता है ॥२ ॥

२५२७. यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥३ ॥

जब अतिथि के लिए प्रारम्भ और पश्चात् में परोसने वाले हाथों में पात्र लेकर जाते हैं, मानो वे यज्ञ के चमस और अध्वर्यु हैं ॥३ ॥

२५२८. तेषां न कश्चनाहोता ॥४ ॥

इन अतिथियों में यज्ञरहित कोई भी नहीं होते ॥४ ॥

२५२९. यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥५ ॥

जो गृहस्थ अतिथियों को भोजन परोसकर अपने घर लौटते हैं, वे मानो अवभृथ स्नान करके घर लौटते हैं ॥

२५३०. यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥६ ॥

जो भोज्य पदार्थों को पृथक्-पृथक् कर देते हैं, वे मानो दक्षिणा प्रदान करते हैं । जो उनके लिए अनुकूल होकर उपस्थित रहते हैं, वे मानो उदवसान (यज्ञ का अन्तिम चरण पूरा) करते हैं ॥६ । ।

२५३१. स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥७ ॥

पृथ्वी में जितने प्रकार के विभिन्न रंग-रूप वाले अन्न हैं, उनके द्वारा (लिए) आदरपूर्वक आमन्त्रित किए जाने पर, वे अतिथि भोजन ग्रहण करते हैं ॥७ ॥

२५३२. स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥८ ॥

अन्तरिक्ष में जितने प्रकार के अन्न हैं, उनके द्वारा सम्मान किये जाने पर, वे अतिथि भोजन ग्रहण करते हैं ॥८ ॥

२५३३. स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ॥९ ॥

स्वर्ग में जितने प्रकार के विभिन्न अन्न हैं, उनके द्वारा सम्मानित होकर अतिथिगण भोजन ग्रहण करते हैं ॥९ ॥

२५३४. स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ॥१० ॥

देवों में जितने प्रकार की विभिन्न गुणों से युक्त जो अनेक शक्तियाँ हैं, उनके द्वारा सादर आमन्त्रित किये जाने पर, वे अतिथिगण भोजन ग्रहण करते हैं ॥१० ॥

२५३५. स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥११ ॥

सभी लोकों में जितने प्रकार के विभिन्न रंग-रूप वाले पदार्थ हैं, उनके लिए सादर आमन्त्रित किये जाने पर, वे भक्षण करते हैं ॥११ ॥

२५३६. स उपहूत उपहूतः ॥१२ ॥

जो इस भूलोक में सादर आमन्त्रित किये जाते हैं, वे उसी भावना से परलोक में भी आमन्त्रित किये जाते हैं।

२५३७. आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥१३ ॥

अतिथि को सादर आमन्त्रित करने वाले सद्गृहस्थ इस लोक में सुख-सौभाग्य को प्राप्त करते हुए, परलोक में भी वही प्राप्त करते हैं ॥१३ ॥

२५३८. ज्योतिष्मतो लोकाञ्जयति य एवं वेद ॥१४ ॥

जो आतिथ्य- सत्कार के व्रतों के ज्ञाता हैं, वे तेजस्वी (ज्योतिर्मय) लोकों को प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

[१२ - गौ सूक्त]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**-गौ । **छन्द**-१ आर्ची बृहती, २ आर्ची उष्णिक्, ३, ५ आर्ची अनुष्टुप्, ४, १४-१६ साम्नी बृहती, ६, ८ आसुरी गायत्री, ७ त्रिपदा पिपीलिक मध्या निचृत् गायत्री, ९, १३ साम्नी गायत्री, १० पुर उष्णिक्, ११-१२, १७, २५ साम्नी उष्णिक्, १८, २२ एकपदासुरी जगती, १९ एकपदासुरी पंक्ति, २० याजुषी जगती, २१ आसुरी अनुष्टुप्, २३ एकपदासुरी बृहती, २४ साम्नी भुरिक् बृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप् ।]

२५३९. प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥१ ॥

इस विश्वरूप गौ अथवा वृषभ के प्रजापति और परमेष्ठी दो सींग, इन्द्रदेव सिर, अग्नि ललाट और यम गले की घेंटी (कृकाट) हैं ॥१ ॥

२५४०. सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥२ ॥

राजा सोम मस्तिष्क, द्युलोक ऊपर का जबड़ा और पृथ्वी नीचे के जबड़े के रूप में है ॥२ ॥

२५४१. विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥३ ॥

विद्युत् जीभ, मरुद्गण दाँत, रेवती गर्दन, कृत्तिका कन्धे और उष्णता देने वाले सूर्य या ग्रीष्म 'ककुद' के समीपस्थ के भाग हैं ॥३ ॥

२५४२. विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४ ॥

समस्त संसार वायु अर्थात् प्राणरूप, स्वर्गलोक कृष्णद्र और विधरणी (धारक शक्ति) पृष्ठभाग है ॥४ ॥

२५४३. श्येनः क्रोडो३न्तरिक्षं पाजस्यं१ बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५ ॥

श्येन उसकी गोद, अन्तरिक्ष उदरभाग, बृहस्पति ककुद् और बृहती कीकस भाग (कोहनी के भाग) हैं ॥५ ॥

२५४४. देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥६ ॥

देवशक्तियाँ पीठ के भाग और उपसद् इष्टियाँ पसलियाँ हैं ॥६ ॥

२५४५. मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥७॥

मित्र और वरुणदेव दोनों कन्धे, त्वष्टा और अर्यमादेव बाहुभाग (दोनों भुजाओं के ऊपरी भाग) और महादेव भुजाएँ हैं ॥७॥

२५४६. इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥८॥

इन्द्रपत्नी (इन्द्रदेव की शक्ति) कटिभाग (गुह्य), वायु पूँछ और पवमान वायु बाल हैं ॥८॥

२५४७. ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥९॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय नितम्ब भाग, बल (सामर्थ्य शक्ति) उस विश्वरूप गौ के जंघाभाग हैं ॥९॥

२५४८. धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥

धाता (धारकशक्ति) और सर्वप्रेरक सवितादेव, ये दोनों विश्वरूप गौ के टखने (जानु), गंधर्व जंघाएँ, अप्सराएँ, खुरभाग (कुण्डिकाएँ) और अदिति (देवमाता) खुर हैं ॥१०॥

२५४९. चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥११॥

चेतना उस विश्वरूप गौ का हृदय क्षेत्र, मेधा- बुद्धि कलेजा (यकृत्) और व्रत पुरीतत् (आँतें) हैं ॥११॥

२५५०. क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१२॥

क्षुधा (भूख) के अधिष्ठाता देव उसकी कोख, इरा (अन्न या जल) उसकी बड़ी आँतें और पहाड़ उसकी छोटी आँतें हैं ॥१२॥

२५५१. क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥१३॥

क्रोध उसके गुर्दे, स्वस्थ (संतुलित) क्रोध अण्डकोश और प्रजा, प्रजनन अङ्ग के प्रतीक हैं ॥१३॥

२५५२. नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४॥

नदियाँ जन्म देने वाली सूत्र नाड़ी, वर्षापति मेघ स्तनरूप और गरजने वाले मेघ उसके दूध से भरे थनरूप हैं

२५५३. विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥१५॥

सर्वव्यापक आकाश चर्मभाग, ओषधियाँ उसके बाल और नक्षत्र उसके विभिन्न रूप हैं ॥१५॥

२५५४. देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥

देवशक्तियाँ गुदाभाग, साधारण मनुष्य आँतें और अन्य भोजन करने वाले प्राणी उदर भाग हैं ॥१६॥

२५५५. रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥१७॥

असुर उसके रक्त भाग (लोहित) और इतरजन (तिर्यग् योनियाँ) उसका अनपचा अन्न भाग हैं ॥१७॥

२५५६. अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥१८॥

मेघ मेद के समान (पुष्टता) और समस्त धन-सम्पदा मज्जाभाग है ॥१८॥

२५५७. अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥१९॥

अग्निदेव उसके आसनस्थल और दोनों अश्विनीकुमार खड़े होने के रूप हैं ॥१९॥

२५५८. इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥२०॥

पूर्व दिशा की ओर विराजमान वे इन्द्ररूप और दक्षिण की ओर वे यमरूप हैं ॥२०॥

२५५९. प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥२१ ॥

पश्चिम की ओर विराजमान वे धाता और उत्तर की ओर सविता स्वरूप हैं ॥२१ ॥

२५६०. तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥२२ ॥

तृणों को प्राप्त हुए वे विश्वरूप वृषभ राजा सोमरूप हैं ॥२२ ॥

२५६१. मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२३ ॥

सभी प्राणियों पर कृपादृष्टि से देखते हुए वे मित्ररूप और परावृत्त होने पर वही आनन्दरूप हैं ॥२३ ॥

२५६२. युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥२४ ॥

जोतने के समय समस्त देवों के समष्टिरूप, जोतने पर प्रजापति और बन्धनमुक्त होने पर सर्वरूप हैं ॥२४ ॥

२५६३. एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥२५ ॥

यही विश्वरूप परमात्मा के विराट्रूप, यही सर्वरूप और गौ या वृषभ के रूप हैं ॥२५ ।।

२५६४. उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥२६ ॥

जो इस प्रकार प्रजापति के विराट्रूप को वृषभ या गौ के वास्तविक रूप में जान लेते हैं, उन्हें विश्वरूप और सर्वरूप पशु उपलब्ध होते हैं ॥२६ ॥

[१३- यक्ष्मनिवारण सूक्त]

[**ऋषि**- भृग्वंगिरा। **देवता**-सर्वशीर्षामयाद्य (शिरः रोग दूरीकरण) । **छन्द**- अनुष्टुप्, १२, अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक् १५ विराट् अनुष्टुप्, २१ विराट् पथ्या बृहती, २२ पथ्यापंक्ति ।]

२५६५. शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥१ ॥

मस्तकशूल , कर्णशूल और विलोहित (पाण्डुरोग) - इन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ॥१ ॥

२५६६. कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥२ ॥

आपके कानों और कानों के भीतरी भाग से कर्णशूल और विसल्पक (विशेष कष्ट देने वाले) रोग को हम दूर करते हैं तथा सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ॥२ ॥

२५६७. यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३ ॥

जिसके कारण यक्ष्मारोग कान और मुख से बहता है, उन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे बाहर करते हैं ॥३ ॥

२५६८. यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥४ ॥

जो रोग मनुष्य को बहरा और अन्धा कर देते हैं, उन सभी शीर्ष रोगों को हम आपसे दूर हटाते हैं ॥४ ॥

२५६९.अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥

अंगभंजक अंगज्वर, अंगपीड़क विश्वांग्य रोग तथा सभी सिर के रोगों को हम आपसे दूर करते हैं ॥५ ॥

२५७०. यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम्। तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे।

जिसका भयंकर उद्वेग (प्रतीकाश) मनुष्य को कम्पायमान कर देता है, उस शरत्कालीन ज्वर को हम आपसे बाहर करते हैं ॥६ ॥

२५७१. य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके। यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥

जो रोग जंघाओं की ओर बढ़ता है और गवीनिका नाड़ियों में पहुँच जाता है, उस यक्ष्मारोग को आपके भीतरी अंगों से हम बाहर निकालते हैं ॥७ ॥

२५७२.यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि। हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे।

जो इच्छाकृत कार्यों अथवा बिना कामना से हृदय के समीप उत्पन्न होता है, उस कफ को हृदय और शेष अंगों से हम बाहर निकालते हैं ॥८ ॥

२५७३. हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात्। यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥

हम आपके अंगों से हरिमा (रक्तहीनता) रोग को, पेट के भीतर से जलोदर रोग को और शरीर के भीतर से यक्ष्मारोग को धारण करने वाली स्थिति को बाहर करते हैं ॥९ ॥

२५७४. आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥१० ॥

कफ शरीर से बाहर आए, आमदोष मूत्ररूप में बाहर आए। सभी यक्ष्मारोगों के विष को मन्त्र-सामर्थ्य द्वारा हम बाहर निकालते हैं ॥१० ॥

२५७५. बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात्।
यक्ष्माणां सर्वेषां विष निरवोचमहं त्वत्॥११ ॥

'काहाबाह' अर्थात् फड़फड़ाने वाले रोग आपके पेट से द्रवीभूत होकर बाहर जाएँ, सभी यक्ष्मारोगों के विष-विकारों को हम मन्त्र-सामर्थ्य से, आपके शरीर से बाहर करते हैं ॥११ ॥

२५७६. उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्॥१२ ॥

हम आपके पेट, "क्लोम" (फेफड़ों), नाभि और हृदय से सभी रोगों के विषरूप विकारों को शरीर से बाहर निकालते हैं ॥१२ ॥

२५७७. याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्॥१३ ॥

जो सीमाभाग को पीड़ित करते हैं और सिर तक बढ़ते जाते हैं, वे रोग दूर होकर रोगी के लिए कष्टकारक न होते हुए शरीर के रन्ध्रों से द्रवरूप होकर बाहर निकलें ॥१३ ॥

[मंत्र क्र० १४ से १८ तक अमर्यादित रूप से बढ़ी हुई हड्डियों के पीड़ादायक हिस्सों को द्रवीभूत करके बाहर निकालने का उल्लेख है। यह विद्या बहुत उपयोगी हो सकती है; किन्तु वर्तमान समय में यह शोध का विषय है।]

२५७८. या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः। अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्॥

जो हृदय और हँसुली (ग्रीवास्थि) की 'कीकस' नामक हड्डियाँ हृदय क्षेत्र में फैलती हैं, वे सभी वेदनाएँ दोषरहित और कष्टरहित (हिंसारहित) होती हुई शारीरिक रन्ध्रों से द्रवरूप होकर बाहर निकलें ॥१४ ॥

२५७९. याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१५ ॥

जो अस्थियाँ पार्श्व (पसलियों) में जाती और पीठ भाग तक फैलती हैं, वे रोगरहित और मारक न बनती हुई शारीरिक छिद्रों (रन्ध्रों) से द्रवीभूत होकर बाहर निकलें ॥१५ ॥

२५८०. यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६ ॥

जो अस्थियाँ तिरछी जाती हुई आपकी पसलियों में प्रवेश करती हैं, वे भी रोगरहित और अमारक होकर द्रवीभूत होकर बाहर निकल जाएँ ॥१६ ॥

२५८१. या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७ ॥

गुदा भाग तक फैली हुई जो अस्थियाँ आँतों को अवरुद्ध करती हैं, वे भी बिना कष्ट दिए रोगविहीन होकर शारीरिक छिद्रों से बाहर निकल जाएँ ॥१७ ॥

२५८२. या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८ ॥

वे अस्थियाँ जो मज्जाभाग को रक्तहीन करती हैं और जोड़ों में वेदना पैदा करती हैं, वे बिना कष्ट दिए रोगरहित होकर शारीरिक रन्ध्रों से बाहर निकलें ॥१८ ॥

२५८३. ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१९ ॥

यक्ष्मारोग को दूर करने वाली और अंगों पर मांस की वृद्धि करने वाली जो ओषधियाँ आपके अंगों को आनन्दित करती हैं, उनसे सभी यक्ष्मारोगों के विष-विकारों को हम आपसे दूर करते हैं ॥१९ ॥

२५८४. विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥२० ॥

विसल्प (पीड़ा), विद्रध (सूजन) , वातीकार (वातरोग) और अलजि इन सभी रोगों के विष को हम आपके शरीर से, मन्त्र प्रयोग से दूर हटाते हैं ॥२० ॥

२५८५. पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥२१ ॥

आपके पैरों, घुटनों, कूल्हों, कटि (गुप्तभाग) रीढ़, गर्दन की नाड़ियों और सिर से फैलने वाली आपकी पीड़ाओं को हमारे द्वारा विनष्ट कर दिया गया है ॥२१ ॥

२५८६. सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२ ॥

आपके सिर पर उदय होते सूर्यदेव ने अपनी किरणों से रोग को विनष्ट किया और चन्द्रदेव आपके कपाल भाग तथा हृदय के अंग भेद को शान्त कर देते हैं ॥२२ ॥

[१४-आत्मा सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- वाम, आदित्य, अध्यात्म । छन्द- त्रिष्टुप्, १२, १४, १६, १८ जगती ।]

२५८७. अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१ ॥

इस सुन्दर एवं जगपालक होता (सूर्यदेव) को हमने सात पुत्रों (सप्तवर्णी किरणों) सहित देखा है । इन (सूर्यदेव) के मध्यम (मध्य-अन्तरिक्ष में रहने वाला) भाई सर्वव्यापी वायुदेव हैं । इनके तीसरे भाई तेजस्वी पीठ वाले (अग्निदेव) हैं ॥१ ॥

२५८८. सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२ ॥

एक चक्र (सविता के पोषण चक्र) वाले रथ से ये सातों जुड़े हैं । सात नामों (रंगों) वाला एक (किरणरूपी) अश्व इस चक्र को चलाता है । तीन (द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) नाभियों (केन्द्रक) अथवा धुरियों वाला यह काल चक्र सतत गतिशील अविनाशी और शिथिलता रहित है । इसी चक्र के अन्दर समस्त लोक विद्यमान हैं ॥२ ॥

२५८९. इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नामा ॥३ ॥

इस (सूर्यदेव के पोषण चक्र) से जुड़े यह जो सात (सप्त वर्ण अथवा सातकाल वर्ग- अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्त) हैं, यही सात चक्र अथवा सात अश्वों के रूप में इस रथ को चलाते हैं । जहाँ गौ (वाणी) में सात नाम (सात स्वर) छिपे हैं, ऐसी सात बहनें (स्तुतियाँ) इनकी वन्दना करती हैं ॥३ ॥

२५९०. को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥४ ॥

जो अस्थि (शरीर) रहित होते हुए भी अस्थियुक्त (शरीरधारी प्राणियों) का पालन-पोषण करते हैं; उन स्वयं-भू को किसने देखा ? भूमि में प्राण, रक्त एवं आत्मा कहाँ से आए ? इस सम्बन्ध में पूछने (जानने) के लिए कौन किसके पास जाता है ? ॥४ ॥

२५९१. इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥५ ॥

जो इस सुन्दर और गतिमान् सूर्य के उत्पत्ति स्थान को (उत्पत्ति के रहस्य को) जानते हैं, वे इस गुप्त रहस्य का यहाँ आकर स्पष्टीकरण करें कि इस सर्वोत्तम सूर्य की गौएँ (किरणें) पानी का दोहन करती हैं (बरसाती हैं) । वे ही (ग्रीष्मकाल में) तेजस्वी होकर पैरों (निचले भागों) से जल को सोखती हैं ॥५ ॥

२५९२. पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥६ ॥

अपरिपक्व बुद्धिवाले हम, देवताओं के इन गुप्त पदों (चरणों) के सम्बन्ध में जानने के लिए मनोयोग पूर्वक पूछते हैं, सुन्दर युवा गोवत्स (बछड़े या सूर्य) के लिए ये विज्ञ (देव आदि) सप्त तन्तुओं (किरणों) को कैसे फैलाते हैं ? ॥६ ॥

२५९३. अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥७ ॥

जिसके द्वारा इन छहों लोकों को स्थिर किया गया है, वह अजन्मा प्रजापतिरूपी तत्त्व कैसा है ? उसका क्या स्वरूप है ? इस तत्त्वज्ञान से अपरिचित हम तत्त्ववेत्ताओं से निश्चित स्वरूप की जानकारी के लिए यह पूछते हैं ॥७॥

२५९४. माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८ ॥

माता (पृथ्वी) ने ऋत (यज्ञ अथवा ऋतु के अनुरूप उपलब्धि) के लिए पिता (द्युलोक अथवा सूर्य) का सेवन किया। क्रिया के पूर्व मन से उनका सम्पर्क हुआ। माता गर्भ (उर्वरता धारण करने योग्य) रस से निबद्ध हुई, तब (गर्भ के विकास के लिए) उनमें नमनपूर्वक (एक दूसरे का आदर करते हुए) वचनों का आदान-प्रदान हुआ ॥८ ॥

२५९५. युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९ ॥

समर्थ सूर्यदेव की धारण क्षमता पर माता (पृथ्वी) आधारित हैं। गर्भ (उर्वरशक्ति प्राणपर्जन्य) गमनशील (वायु अथवा बादलों) के बीच रहता है। बछड़ा (बादल) गौओं (किरणों) को देखकर शब्द करते हुए अनुमान करता है, तब तीनों का संयोग विश्व को रूपवान् बनाता है ॥९ ॥

२५९६. तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥१० ॥

यह स्रष्टा प्रजापति अकेले ही (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी) तीन माताओं तथा (अग्नि, वायु और सूर्य रूपी) तीन पिताओं का भरण- पोषण करते हुए सबसे परे स्थित है। इन्हें थकावट नहीं आती। विश्व के रहस्य को जानते हुए भी अखिल विश्व से परे (बाहर) रहने वाले प्रजापति की वाणी (शक्ति) के सम्बन्ध में (सभी देवगण) द्युलोक के पृष्ठ-भाग पर विचार करते हैं ॥१० ॥

२५९७. पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः ॥११ ॥

अयन, मासादि पाँच अरों वाले इस कालचक्र (रथ) में समस्तलोक विद्यमान हैं। इतने लोकों का भार वहन करते हुए भी इस चक्र का अक्ष (धुरा) न गरम होता है और न टूटता है ॥११ ॥

२५९८. पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥१२ ॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रातरूपी पाँच पैरों वाला, मासरूपी बारह आकृतियों से युक्त तथा जल को बरसाने वाले पितारूप सूर्य दिव्यलोक के आधे हिस्से में रहते हैं, ऐसी मान्यता है। अन्य विद्वानों के मतानुसार ये सूर्य ऋतुरूप छः अरों तथा अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्तरूपी सात चक्रों वाले रथ पर आरूढ़ हैं ॥

२५९९. द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥१३ ॥

ऋत (सूर्य या सृष्टि संचालक यज्ञ) का बारह अरों (राशियों) वाला चक्र द्युलोक में चारों ओर घूमता रहता है। यहचक्र कभी अवरुद्ध या जीर्ण नहीं होता। हे अग्ने! संयुक्तरूप से रहने वाले सात सौ बीस पुत्र यहाँ रहते हैं।

२६००. सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१४ ॥

नेमि (धुरा या नियन्त्रण) से युक्त कभी क्षय न होने वाला सृष्टि चक्र सदैव चलता रहता है । अतिव्यापक प्रकृति के उत्पन्न होने पर इसे दस घोड़े (पाँच प्राण एवं पाँच उपप्राण, पाँच प्राण एवं पाँच अग्नियाँ आदि) चलाते हैं । सूर्यरूपी नेत्र का प्रकाश जल से आच्छादित होकर गतिमान् होता है, उसमें ही सम्पूर्ण लोक विद्यमान हैं ॥१४ ॥

२६०१. स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१५ ॥

ये (किरणें) स्त्रियाँ हैं, फिर भी पुरुष की तरह (गर्भ धारण कराने में समर्थ) हैं, यह तथ्य (सूक्ष्म) दृष्टि सम्पन्न ही देख सकते हैं । दूरदर्शी पुत्र (साधक-शिष्य) ही इसे अनुभव कर सकता है । जो यह जान लेता है, वह पिता का भी पिता (सर्वसृजेता को भी जानने वाला) हो जाता है ॥१५ ॥

[यह मंत्र प्रजनन विज्ञान (जैनेटिक साइंस) पर भी घटित होता है । गुण सूत्रों (क्रोमोजोम्स) में भी एक्स एवं वाई, नारी एवं नर दोनों की क्षमताएँ पायी जाती हैं ।]

२६०२. साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१६ ॥

एक साथ जन्मे, जोड़े से रहने वाले छः और सातवाँ यह सभी एक (काल अथवा परमात्म चेतना) से उत्पन्न हैं । यह देवत्व से उपजे ऋषि हैं । वे सभी अपने बदले हुए रूपों में अपने-अपने इष्ट प्रयोजनों में रत, अपने-अपने धामों (क्षेत्रों) में स्थित रहकर गतिशील (सक्रिय) हैं ॥१६ ॥

२६०३. अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥१७ ॥

गौएँ (पोषक किरणें) द्युलोक से नीचे की ओर तथा इस (पृथ्वी) से ऊपर की ओर (सतत) गतिमान् हैं । ये बछड़े (जीवन तत्त्व) को धारण किये हुए किस लक्ष्य की ओर जाती हैं ? यह किस आधे भाग से परे निकल कर जन्म देती हैं ? यहाँ समूह के मध्य तो नहीं देतीं ॥१७ ॥

[पदार्थ विज्ञान की नवीनतम शोधों के अनुसार सूक्ष्म किरणों के प्रवाह पृथ्वी से आकाश की ओर तथा आकाश से पृथ्वी की ओर सतत गतिशील हैं । ये प्रवाह पृथ्वी के किसी भी अर्द्ध भाग (हैमिस्फियर) को छूते हुए निकल जाते हैं । यह प्रवाह कब-कहाँ जीवन तत्त्व को प्रकट कर देते हैं ? किसी को पता नहीं है ।]

२६०४. अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८ ॥

जो द्युलोक से नीचे इस (पृथ्वी) के पिता (सूर्यदेव) तथा पृथिवी के ऊपर स्थित अग्निदेव को जानते हैं, वे निश्चित ही विद्वान् हैं । यह दिव्यता से युक्त आचरण वाला मन कहाँ से उत्पन्न हुआ ? इस रहस्य की जानकारी देने वाला ज्ञानी कौन है ? वह हमें यहाँ आकर बताए ॥१८ ॥

२६०५. ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९ ॥

(इस गतिशील विश्व में) पास आते हुए को दूर जाता हुआ भी कहा जाता (अनुभव किया जाता) है और

दूर जाते को पास आता हुआ भी कहा जाता है। हे सोमदेव ! आपने और इन्द्रदेव ने जो चक्र चला रखा है, वह धुरे से जुड़ा रहकर लोकों को वहन करता है ॥१९ ॥

[घूमते विश्व में नक्षत्रादि पास आते हुए, दूर जाते हुए भी दिखते हैं। इन्द्रदेव, सूर्यदेव अथवा संगठक शक्ति तथा सोम, चन्द्रमादेव अथवा पोषकशक्ति के संयोग से इस विश्व का चक्र चल रहा है।]

२६०६. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२० ॥

साथ रहने वाले मित्रों की तरह दो पक्षी (गतिशील जीवात्मा एवं परमात्मा) एक ही वृक्ष (प्रकृति अथवा शरीर) पर स्थित हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादिष्ट पीपल (विश्व वृक्ष) के फल खाता है, दूसरा (परमात्मा) उन्हें न खाता हुआ केवल देखता (द्रष्टारूप) रहता है ॥२० ॥

२६०७. यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२१ ॥

इस (संसाररूपी) वृक्ष पर प्राण रस का पान करने वाली जीवात्माएँ रहती हैं, जो प्रज्ञा वृद्धि में समर्थ हैं, वृक्ष में ऊपर मधुर फल भी लगे हुए हैं, जो पिता (परमात्मा) को नहीं जानते, वे इन मधुर (सत्कर्मरूपी) फलों के आनन्द से वञ्चित रहते हैं ॥२१ ॥

२६०८. यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२२ ॥

इस (प्रकृति-रूपी) वृक्ष पर बैठी हुई संसार में लिप्त मरणधर्मा जीवात्माएँ सुख-दु:खरूपी फलों को भोगती हुई अपने शब्दों में परमात्मा की स्तुति करती हैं कि इन लोकों के स्वामी और संरक्षक परमात्मा अज्ञान से युक्त मुझ जीवात्मा में भी विद्यमान हैं ॥२२ ॥

[१५ - आत्मा सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा। **देवता-**गौ, विराट्, अध्यात्म, २३ मित्रावरुण। **छन्द-** त्रिष्टुप्, १, ७, १४, १७-१८ जगती, २, २६-२७ भुरिक् त्रिष्टुप्, २१ पञ्चपदातिशक्वरी, २४ चतुष्पदा पुरस्कृति भुरिक् अतिजगती ।]

२६०९. यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥१ ॥

पृथ्वी पर गायत्री छन्द को, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द को तथा आकाश में जगती छन्द को स्थापित करने वाले को जो जान लेता है, वह देवत्व (अमरत्व) को प्राप्त कर लेता है ॥१ ॥

२६१०. गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२ ॥

(परमात्मा ने) गायत्री छन्द से प्राण की रचना की, ऋचाओं के समूह से सामवेद को बनाया, त्रिष्टुप् छन्द से यजुर्वाक्यों की रचना की तथा दो पदों एवं चार पदों वाले अक्षरों से सातों छन्दमय वाणियों को प्रादुर्भूत (प्रकट) किया ॥२ ॥

२६११. जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥३ ॥

गतिमान् सूर्यदेव द्वारा प्रजापति ने द्युलोक में जल स्थापित किया। वृष्टि के माध्यम से जल, सूर्यदेव और पृथ्वी संयुक्त होते हैं, तब सूर्य और द्युलोक में सन्निहित प्राण, जल वृष्टि के द्वारा इस पृथ्वी पर प्रकट होता है। गायत्री के तीन पाद अग्नि, विद्युत् और सूर्य (पृथ्वी, द्यु और अन्तरिक्ष) हैं। उस प्रजापति की तेजस्विता से ही ये तीनों पाद बलशाली होते हैं, ऐसा कहा गया है ॥३॥

२६१२. उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥४॥

दुग्ध (सुख) प्रदान करने वाली गौ (प्रकृति प्रवाहों) का हम आवाहन करते हैं। इस गौ का दुग्ध (श्रेष्ठ प्राण) हमें प्रदान करें। तपस्वी एवं तेजस्वी (जीवन्त साधक) ही इसको ग्रहण कर सकता है; ऐसा कथन है ॥४॥

२६१३. हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥५॥

कभी भी वध न करने योग्य गौ, मनुष्यों के लिए अन्न, दुग्ध, घृत आदि ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना से अपने बछड़े को- मन को प्यार करती हुई, रँभाती हुई बछड़े के पास आ जाती है। वह गौ मानव समुदाय के महान् सौभाग्य को बढ़ाती हुई, प्रचुर मात्रा में दुग्ध प्रदान करती है ॥५॥

२६१४. गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥६॥

गौ (स्नेह से) आँखें बन्द किए हुए (बछड़े के) समीप जाकर रँभाती है। बछड़ेके सिर को चाटने (सहलाने) के लिए वात्सल्यपूर्ण शब्द करती है। उसके मुँह के पास अपने दूध से भरे थनों को ले जाती हुई शब्द करती है। वह दूध पिलाते हुए (प्यार से) शब्द करते हुए बछड़े को संतुष्ट भी करती है ॥६॥

२६१५. अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥७॥

वत्स गौ के चारों ओर बिना शब्द के अभिव्यक्ति करता है। गौ रँभाती हुई अपनी (भावभरी) चेष्टाओं से मनुष्यों को लज्जित करती है। उज्ज्वल दूध उत्पन्न कर अपने भावों को प्रकाशित करती है ॥७॥

२६१६. अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥८॥

श्वसन प्रक्रिया द्वारा अस्तित्व में रहने वाला जीव (चंचल जीव) जब शरीर से चला जाता है, तब यह शरीर घर में निश्चल पड़ा रहता है। मरणशील (मरणधर्मा) शरीरों के साथ रहने वाली आत्मा अविनाशी है, अतएव अविनाशी आत्मा अपनी धारण करने की शक्तियों से सम्पन्न होकर सर्वत्र निर्बाध विचरण करती है ॥८॥

२६१७. विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥९॥

युद्ध में शौर्य प्रदर्शित करके शत्रुसेना को खदेड़ देने वाले बलशाली इन्द्रदेव के प्रभाव से श्वेतकेश (शक्तिहीन) वृद्ध भी स्फूर्तिवान् हो जाता है। हे स्तोताओ ! महान् इन्द्रदेव के पराक्रम का विवेचन करने वाले विचित्र काव्य को देखो, जो आज (उच्चारण के बाद) समाप्त हो जाने पर भी (भविष्य में नवीन मंत्रों के रूप में) पुनः प्रकट होता है ॥९॥

२६१८. य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥१० ॥

जिसने इसे (जीव को) बनाया, वह भी इसे नहीं जानता; जिसने इसे देखा है, उससे भी यह लुप्त रहता है। यह माँ के प्रजनन अंग में घिरा हुआ स्थित है। यह प्रजाओं की उत्पत्ति करता हुआ स्वयं अस्तित्व खो देता है ॥१०

२६१९. अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥११ ॥

समीपस्थ तथा दूरस्थ मार्गों में गतिमान् सूर्यदेव निरन्तर गतिशील रहकर भी कभी नहीं गिरते। वे सम्पूर्ण विश्व का संरक्षण करते हैं। चारों ओर फैलने वाली तेजस्विता को धारण करते हुए समस्त लोकों में विराजमान् सूर्यदेव को हम देखते हैं ॥११ ॥

२६२०. द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥१२ ॥

द्युलोक स्थित (सूर्यदेव) हमारे पिता और बन्धु स्वरूप हैं। वही संसार के नाभिरूप भी हैं। यह विशाल पृथिवी हमारी माता है। दो पात्रों (आकाश के दो गोलार्द्धों) के मध्य स्थित सूर्यदेव अपने द्वारा उत्पन्न पृथ्वी में गर्भ (जीवन) स्थापित करते हैं ॥१२ ॥

२६२१. पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥१३ ॥

इस धरती का अन्तिम छोर कौन सा है ? सभी भुवनों का केन्द्र कहाँ है ? अश्व की शक्ति कहाँ है ? और वाणी का उद्‌गम कहाँ है ? यह हम आपसे पूछते हैं ॥१३ ॥

२६२२. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥१४ ॥

(यज्ञ की) यह वेदिका पृथ्वी का अन्तिम छोर है, यह यज्ञ ही संसार- चक्र की धुरी है। यह सोम ही अश्व (बलशाली) की शक्ति (वीर्य) है। यह 'ब्रह्मा' वाणी का उत्पत्ति स्थान है ॥१४ ॥

२६२३. न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥१५ ॥

मैं नहीं जानता कि मैं कैसा हूँ ? मैं मूर्ख की भाँति मन से बँधकर चलता रहता हूँ। जब पहले ही प्रकट हुआ सत्य मेरे पास आया, तभी मुझे यह वाणी प्राप्त हुई ॥१५ ॥

[वेद वाणी किस प्रकार प्रकट हुई ? इस तथ्य को ऋषि निश्छल भाव से व्यक्त कर रहे हैं।]

२६२४. अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥१६ ॥

यह आत्मा अविनाशी होने पर भी मरणधर्मा शरीर के साथ आबद्ध होने से विविध योनियों में जाती है। यह अपनी धारण- क्षमता से ही उन शरीरों में आती और शरीरों से पृथक् होती रहती है। ये दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत एवं गतिशील होते हुए विपरीत गतियों से युक्त हैं। लोग इनमें से एक (शरीर) को तो जानते हैं, पर दूसरे (आत्मा) को नहीं समझते ॥१६ ॥

२६२५. सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥१७॥

सम्पूर्ण विश्व का निर्माण अपरा प्रकृति के मन, प्राण और पंचभूत रूपी सात पुत्रों से होता है। यह सभी तत्त्व सर्वव्यापक प्रजापति के निर्देशानुसार ही कर्त्तव्य निर्वाह करते हैं। वे अपनी ज्ञानशीलता, व्यापकता से तथा अपनी संकल्पशक्ति द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं ॥१७॥

२६२६. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥१८॥

ऋचाएँ अविनाशी परमव्योम में भरी हुई हैं। जहाँ सम्पूर्ण देव शक्तियों का वास है। जो इस तथ्य को नहीं जानता (उसके लिए) ऋचा क्या करेगी ? जो इस तथ्य को जानते हैं, वे इस (ऋचा) का सदुपयोग कर लेते हैं ॥१८॥

२६२७. ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत्।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१९॥

ॐकार के पद को मात्रा द्वारा कल्पित करते हुए उसके अर्धभाग से इस चैतन्यजगत् को समर्थ करते हैं। तीन पादों से युक्त ज्ञान अनेकरूपों में स्थिर रहता है। उसकी एकमात्र मात्रा से चारों दिशाएँ जीवन प्राप्त करती हैं।

२६२८. सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥२०॥

अवध्य गौ माता ! आप श्रेष्ठ पौष्टिक घास (आहार) ग्रहण करती हुई सौभाग्यशालिनी हों। आपके साथ हम सभी सौभाग्यशाली हों। आप शुद्ध घास खाकर और शुद्ध जल पीकर सर्वत्र विचरण करें ॥२०॥

२६२९. गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी
बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥२१॥

गौ (वाणी) निश्चित ही शब्द करती हुई जल (रसों) को हिलाती (तरंगित करती) है। वह गौ (काव्यमयी वाणी) एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदों वाले छन्दों में विभाजित होती हुई सहस्र अक्षरों से युक्त होती है। उसके रस समुद्र में क्षरित प्रवाहित होते हैं ॥२१॥

[इस ऋचा में गौ का अर्थ सूर्य रश्मियाँ भी लिया जा सकता है। वे सहस्र चरणवाली बनकर आकाश में संव्याप्त होती हैं और दिव्य पोषक रसों को प्रकृतिरूपी सिन्धु में संचरित करती हैं।]

२६३०. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥२२॥

श्रेष्ठ गतिमान् सूर्य-किरणें अपने साथ जल को उठाती हुई, सबके आकर्षण के केन्द्र यानरूप सूर्यमण्डल के समीप पहुँचती हैं। वहाँ अन्तरिक्ष के मेघों में स्थित जल को बरसाते हुए पृथ्वी को सिक्त कर देती हैं।

२६३१. अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥२३॥

हे मित्र और वरुणदेव ! (दिन और रात्रिरूप आप दोनों की सामर्थ्य से) बिना पैर वाली उषा, पैर वाले प्राणियों से पहले पहुँच जाती हैं। (आप दोनों के) गर्भ से उत्पन्न होकर शिशु, सूर्य, संसार के पालन-पोषणरूपी दायित्व का निर्वाह करते हैं। यही सूर्यदेव असत्यरूप अन्धकार को दूर करके सत्यरूप आलोक को फैलाते हैं ॥२३॥

२६३२. विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥२४

विराट् (ब्रह्म) ही वाणी, भू, अन्तरिक्ष, प्रजापति (निर्माता) एवं मृत्युरूप हैं। वे ही सभी साध्यों के अधिकारी शासक हैं। भूत, भविष्य भी उन्हीं के अधीन हैं, वे भूत और भविष्य को हमारे वश में करें ॥२४ ॥

२६३३. शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥२५ ॥

दूर से हमने धूम्र को देखा। चतुर्दिक् व्याप्त धूम्र के मध्य अग्नि को देखा, जिसमें प्रत्येक उत्तम कार्यों के पूर्व ऋत्विग्गण शक्तिदायी सोमरस को पकाते हैं ॥२५ ॥

२६३४. त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥२६ ॥

तीन किरणों वाले पदार्थ (सूर्य, अग्नि और वायु) ऋतुओं के अनुसार दिखाई देते हैं। इनमें से एक (सूर्य) संस्कार का वपन करता है। एक (अग्नि) अपनी शक्तियों से विश्व को प्रकाशित करता है। तीसरे (वायु) का रूप प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता है ॥२६ ॥

२६३५. चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ते मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥२७ ॥

मनीषियों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि वाणी के चार रूप हैं, इनमें से तीन वाणियाँ (परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा) प्रकट नहीं होतीं। सभी मनुष्य वाणी के चौथे रूप (वैखरी) को ही बोलते हैं ॥२७ ॥

२६३६. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥२८ ॥

एक ही सत् रूप परमेश्वर का विद्वज्जन (विभिन्न गुणों एवं स्वरूपों के आधार पर) विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। उसी (परमात्मा) को (ऐश्वर्य सम्पन्न होने पर) इन्द्र, (हितकारी होने से) मित्र, (श्रेष्ठ होने से) वरुण तथा (प्रकाशक होने से) अग्नि कहा गया है। वह (परमात्मा) भली प्रकार पालनकर्ता होने से सुपर्ण तथा (शक्तिसम्पन्न होने से) गरुत्मान् है ॥२८ ॥

॥इति नवमं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ दशम काण्डम् ॥

[१ - कृत्यादूषण सूक्त]

[**ऋषि-** प्रत्यङ्गिरस । **देवता-** कृत्यादूषण । **छन्द-** अनुष्टुप्, १ महाबृहती, २ विराट् गायत्री, ९ पथ्यापंक्ति,१२ पंक्ति, १३ उरो बृहती, १५ चतुष्पदा विराट् जगती, १६, १८ त्रिष्टुप्, १७, २४ प्रस्तार पंक्ति, १९ चतुष्पदा जगती, २० विराट् प्रस्तार पंक्ति, २२ एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक्, २३ त्रिपदा भुरिक् विषमा गायत्री, २८ त्रिपदा गायत्री, २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती, ३२ द्व्यनुष्टुप् गर्भा पञ्चपदातिजगती]

२६३७. यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥१ ॥

जिस कृत्या (घातक प्रयोग) को निर्माताजन अपने हाथों से उसी प्रकार अनेक ढंग का बनाते हैं, जिस प्रकार विवाहकाल में वधू को सजाते हैं । वह कृत्या हमारे समीप से दूर चली जाए, हम उसे दूर करते हैं ॥१ ॥

२६३८. शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥२ ॥

अनेक रूपों वाली, शीर्षभाग वाली, नाक वाली तथा कान वाली बनाई गई जो कृत्याएँ (घातक अभिचार प्रयोग) हैं, वे हमें हानि पहुँचाए बिना दूर चली जाएँ, इन्हें निवारण - विधि द्वारा हम दूर खदेड़ते हैं ॥२ ॥

२६३९. शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥३ ॥

शूद्र, राजा, स्त्री अथवा ब्राह्मणों द्वारा किये गये अभिचार मारकप्रयोग, उन प्रयोक्ताओं के समीप उसी प्रकार लौट जाएँ, जिस प्रकार पति द्वारा परित्यक्ता स्त्री अपने पिता अथवा भाइयों के पास ही जाती है ॥३ ॥

२६४०.अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ।

खेत में, गौओं में अथवा पुरुषों पर किये गये कृत्या-प्रयोगों को हम (अपामार्ग) ओषधि से पहले ही शक्तिहीन कर चुके हैं ॥४ ॥

२६४१. अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥५ ॥

हिंसक-पाप (कृत्या) प्रयोगकर्त्ता के पास और शपथरूप (शाप आदि) शाप प्रयोता के पास पहुँचें । हम अभिचार कर्म को इस प्रकार भेजते हैं, जिससे वे प्रयोक्ताओं को ही विनष्ट करें ॥५ ॥

२६४२. प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥६ ॥

अभिचार कर्म को लौटाने में समर्थ आंगिरसी विद्या का ज्ञाता अध्यक्ष ही हमारा अग्रणी नेता (पुरोहित) है । हे पुरोहित ! आप समक्ष आती हुई कृत्याओं को छिन्न-भिन्न करते हुए अभिचारकों को ही विनष्ट करें ॥६ ॥

२६४३. यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।

तं कृत्येऽभिनिवर्तस्वमास्मानिच्छो अनागसः ॥७॥

हे कृत्ये ! जिस प्रयोक्ता पुरुष ने तुझे "आगे बढ़ो" ऐसा कहा है, उस विरोधी शत्रु के पास तुम दुबारा लौट जाओ। हम निरपराधियों की आप इच्छा न करें ॥७॥

२६४४. यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया। तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥८॥

जिस प्रकार शिल्पकार विचारपूर्वक रथ के अवयवों को संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार जिसने घातक प्रयोग के अवयवों को मन्त्रशक्ति से जोड़ा है, हे कृत्ये ! आप उसी के समीप लौट जाएँ, वही आपका अनुकूल स्थान है। यह मनुष्य तो आपसे परिचय रहित ही है ॥८॥

२६४५. ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः।

शम्भ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥

हे कृत्ये ! जिन धूर्त अभिचारकों ने आपको बनाकर धारण किया है, उन घातक प्रयोगों के प्रतिकारक कल्याण साधन दुबारा घातक प्रयोक्ता को लौटाने में समर्थ हैं, इसलिए इससे तुम्हें नहलाते हैं, जिससे सभी दोषों का निवारण हो ॥९॥

२६४६. यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम।

अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

हम जिस मृत पुत्र वाली, दुर्भाग्य और शोक में स्नान कराने वाली कृत्या को प्राप्त हो गए हैं, वे सभी पाप हमसे दूर हों तथा हमारे पास प्रचुर धन स्थित रहे ॥१०॥

२६४७. यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।

संदेश्या३त् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११॥

हे मनुष्यो ! पितर जनों के निमित्त श्रद्धाञ्जलि देते समय (उनके प्राणान्त के दोषारोपण के साथ) यदि आपका नाम लिया जाए (ऐसा कोई पाप आपसे हुआ हो), तो उन सभी पापों से ये ओषधियाँ आपको संरक्षित करें ॥११॥

२६४८. देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्या दभिनिष्कृतात्।

मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥१२॥

हे मनुष्यो ! देवों से सम्बन्धित (उनकी अवज्ञा से हुए) पाप, पितरों से सम्बन्धित पाप, अपमानित करने के पाप तथा अपशब्दकथन रूप पाप; इन सभी से ये ओषधियाँ, मन्त्रशक्ति, ज्ञान-सामर्थ्य और ऋषियों के पयः (आशीर्वाद) सहित हमारा संरक्षण करें ॥१२॥

२६४९. यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।

एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३॥

जिस प्रकार वायुदेव भूमि से धूलिकणों और अन्तरिक्ष से बादलों को उड़ा देते हैं, उसी प्रकार सभी दुष्प्रभाव मन्त्रशक्ति द्वारा निष्प्रभावी होकर दूर हों ॥१३॥

२६५०. अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव।

कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४॥

हे कृत्ये ! आप शक्तिशाली मन्त्र से निष्प्रभावी होकर अपने प्रयोक्ताओं को दौड़ते हुए उसी प्रकार विनष्ट करें, जिस प्रकार बन्धन से छूटी हुई गर्दभी ताड़ना दिये जाने पर चिल्लाती हुई दुलत्तियाँ मारती है ॥१४ ॥

२६५१. अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५ ॥

हे कृत्ये ! यही आपका मार्ग है, शत्रुओं द्वारा भेजी गई आपको दुबारा उन्हीं की ओर भेजते हैं । इस अभिचारक क्रिया द्वारा गाड़ी से युक्त और अनेक सामर्थ्यों से युक्त होकर पृथ्वी पर शब्द (ध्वनि) करती हुई, आप सेना के समान हमारे शत्रुओं पर प्रत्याक्रमण करें ॥१५ ॥

२६५२. पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६ ॥

हे कृत्ये ! वापस लौटने के लिए आपको प्रकाश दिखे, लेकिन इस तरफ आने के लिए कोई मार्ग दिखाई न दे । आप हमें त्यागकर दूसरी ओर कहीं जाएँ । नौका द्वारा जाने योग्य दुर्गम, नब्बे नदियों को पार करके दूर चली जाएँ । हमें हिंसित न करके दूर चली जाएँ ॥१६ ॥

२६५३. वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७ ॥

जिस प्रकार वायु वृक्षों को तोड़ता है, उसी प्रकार हे कृत्ये ! आप हिंसक शत्रुओं का नाश करते हुए उन्हें उखाड़ फेंकें । उनके गाय, घोड़े और पुरुषों को भी शेष न रखें । अपने निर्माताओं को यहाँ से हटाकर 'आप सन्ततिहीन हो गये हो', ऐसा आभास कराएँ ॥१७ ॥

२६५४. यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥१८ ॥

जो अभिचार कृत्य आपके धान्य (अनाज) , श्मशान और खेत में गाड़कर किये गये हैं, आपके निरपराध और पवित्र होने पर भी जिन अभिचारकों द्वारा घातक प्रयोग किये गये हैं , उन्हें हम निष्प्रभावी करते हैं ॥१८ ॥

२६५५. उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥१९ ॥

लाये गये, जानें गये, गाड़े गये और छलपूर्वक प्रयुक्त वैररूप घातक अभिचार को हम प्रयोक्ता की ओर ही छोड़ते हैं । जिस स्थान से वह आया है, वहीं घोड़े के समान वापस लौट जाए और अभिचारक की सन्तानों का विनाश करे ॥१९ ॥

२६५६. स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२० ॥

हे कृत्ये ! हमारे घर में उत्तम लोहे की तलवारें हैं, हम आपके अस्थि-जोड़ों को भी भली प्रकार जानते हैं, कि वे कैसी स्थिति में और कितने प्रकार के हैं, अत: आप यहाँ से उठकर दूर शत्रुओं की ओर भाग जाएँ । हमारे द्वारा न जाने गए हे अज्ञात मारणप्रयोग ! तुम यहाँ क्या (स्वयं लौट जाना या काटे जाना) चाहते हो ? ॥२० ॥

२६५७. ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥२१ ॥

हे अभिचार कृत्य ! हम तुम्हारे दोनों पैरों और गर्दन को भी काट देते हैं, अत: आप यहाँ से दूर चले जाएँ। प्रजाजनों के संरक्षक इन्द्र और अग्निदेव हमारा संरक्षण करें ॥२१ ॥

२६५८. सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२ ॥

राजा सोम संसार के समस्त प्राणियों के सुखदाता हैं, हम सबके पालक वे सोमदेव हमारे लिए भी सुख देने वाले हैं ॥२२ ॥

२६५९. भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते। दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३ ॥

भव और शर्व ये दोनों देव, देवों के विद्युत् रूपी आयुध को घातक दुराचारी पापी के ऊपर फेंकें ॥२३ ॥

[भव और शर्व यह भगवान् शिव के ही विशेषण हैं। उनकी दिव्य शिव शक्तियों से अशिव शक्तियों के निवारण की प्रार्थना की गई है।]

२६६०. यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतो३ष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४ ॥

यदि मारण (कृत्या) प्रयोक्ता द्वारा प्रेरित होकर अनेक रूप धारण करके दो अथवा चार पैर वाली बनकर हमारे पास आ रही हो, तो हे दु:ख देने वाली कृत्ये ! आप यहाँ से आठ पैर वाली होकर (दूनी गति से) पुन: लौट जाएँ ॥२४ ॥

२६६१. अभ्य१क्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५ ॥

घृत से सिक्त, अच्छी तरह से अलंकृत और सभी दुर्दशाओं को धारण करने वाली हे कृत्ये ! आप यहाँ से दूर चली जाएँ। जिस प्रकार पुत्री अपने पिता को पहचानती है, उसी प्रकार आप अपने उत्पादनकर्त्ता को पहचानें ॥२५ ॥

२६६२. परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥२६ ॥

हे कृत्ये ! आप यहाँ न रुककर दूर चली जाएँ। शिकारी जिस प्रकार घायल हुए शिकार के स्थान पर जाता है, वैसे ही आप भी शत्रु के स्थान पर लौट जाएँ। आप शिकारी रूपा और आपका प्रयोक्ता शिकार के समान है, वह आपका नाश करने में सक्षम नहीं है, अतएव आप लौट जाएँ ॥२६ ॥

२६६३. उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७ ॥

पहले से बैठे हुए को दूसरा व्यक्ति बाण द्वारा मार देता है और पहले मारने वाले घातकी को दूसरा व्यक्ति विनष्ट करता है (इस प्रकार दोनों ही हानि उठाते हैं) ॥२७ ॥

२६६४. एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ। यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८ ॥

हमारे कथन के अभिप्राय को जानकर जहाँ से आपका आना हुआ था, वहीं पुन: चली जाएँ। हे कृत्ये ! जिसने आपका प्रयोग किया है, उसकी ओर ही आप जाएँ ॥२८ ॥

२६६५. अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९ ॥

हे कृत्ये ! निरपराध प्राणियों की हिंसा भयंकर कर्म है, इसलिए आप हमारी गौओं, घोड़ों और मनुष्यों का हनन न करें । जहाँ-जहाँ आप स्थापित की गई हैं, वहाँ से हम आपको हटाते हैं, आप पत्ते से भी सूक्ष्म हो जाएँ ॥२९ ॥

२६६६. यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।

सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३० ॥

हे कृत्या अभिचारो ! यदि आप अन्धकार से जाल के समान आच्छादित हुए हों, तो उन सभी घातक प्रयोगों को यहाँ से लुप्त करके, हम आपको प्रयोक्ता के पास वापस भेजते हैं ॥३० ॥

२६६७. कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।

मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१ ॥

हे कृत्ये ! कपटी घातक प्रयोक्ता जो सन्तानों को विनष्ट करते हैं, आप उनका भी नाश करें । उन अभिचारकों में कोई शेष न रहे, उन सबको मार डालें ॥३१ ॥

२६६८. यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।

एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥३२ ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव अन्धकार से निवृत्त होते हैं तथा रात्रि और उषा के ध्वजों का परित्याग करते हैं, उसी प्रकार हम अभिचारी द्वारा किये गये दुष्कृत्यों का परित्याग करते हैं । हाथी द्वारा धूल झाड़ने के समान सहजभाव से शत्रु के अभिचार प्रयोग को हम दूर करते हैं ॥३२ ॥

[२ - ब्रह्मप्रकाशन सूक्त]

[ऋषि- नारायण । देवता- ब्रह्मप्रकाशन, पुरुष (३१-३२ साक्षात्परब्रह्म प्रकाशन) ।
छन्द- अनुष्टुप्, १-४, ७-८ त्रिष्टुप्, ६, ११ जगती, २८ भुरिक् बृहती ।]

इस सूक्त को 'केन-सूक्त' कहा गया है । 'केन उपनिषद' की तरह इस सूक्त का प्रारम्भ भी 'केन' (यह सब किसके द्वारा हुआ) की जिज्ञासा से हुआ है । 'केन' से प्रकट होने वाला मनुष्य का जिज्ञासा भाव ही उसकी अध्यात्म, ज्ञान - विज्ञान, कला परक शोधों का आधार रहा है । इस सूक्त में मनुष्य शरीर, उसके गुणों, प्रवृत्तियों, सद्गति-दुर्गति के सूत्रों, विश्व-ब्रह्माण्ड की संरचना एवं संचालन को लक्ष्य करके जो प्रश्न किए गए हैं, वे ऋषियों की सूक्ष्म अन्वेषक दृष्टि की गहराई का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । उस अद्भुतकर्त्ता और उसकी विचित्र कृति के बारे में भी यथास्थान संकेत किये गये हैं-

२६६९. केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।

केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥१ ॥

मनुष्य की एड़ियों और घुटनों का किसके द्वारा भरा गया है ? सुन्दर अँगुलियों, इन्द्रियों के छिद्रों और तलवों को पोषण किसने दिया ? तथा बीच में आश्रय देने वाले कौन हैं ? ॥१ ॥

२६७०. कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।

जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत ॥२ ॥

मनुष्य के नीचे के टखनों और ऊपर के घुटनों को किसने विनिर्मित किया है ? जंघाएँ अलग-अलग बनाकर किसने इस स्थान पर स्थापित की ? जानुओं के जोड़ कहाँ हैं ? इसे कौन जानने में समर्थ है ? ॥२ ॥

२६७१. चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।

श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥३ ॥

चार तरह से अन्त में संयुक्त किया गया शिथिल धड़, पेट और घुटनों के ऊपर जोड़ा गया है। कूल्हे और जंघाओं को किसके द्वारा बनाया गया है? जिनसे धड़ भाग अधिक सुदृढ़ हुआ है ॥३॥

२६७२. कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥४॥

जो मनुष्य की छाती और कण्ठ के ज्ञाता हैं, वे कितने और कौन से देव हैं? कितने तरह के देवों ने स्तनभाग और कोहनियों को विनिर्मित किया है? कितने प्रकार से (जोड़ों से) कन्धों को तथा पसलियों को संयुक्त करते हैं? ॥४॥

२६७३. को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥५॥

किस देव ने मनुष्य के वीर्य और भुजाओं को परिपुष्ट किया है, किस देव ने कन्धों को दृढ़ किया और किसने कुसिंध (धड़) पर शारीरिक अंगों को स्थापित किया है? ॥५॥

२६७४. कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥

मनुष्य के सिर में दो कान, दो नाक, दो नेत्र और एक मुख, इस प्रकार इन सात छिद्रों को किस देव के द्वारा विनिर्मित किया गया है? किन देवों की विजयी महिमा में द्विपाद और चतुष्पाद प्राणी विभिन्न मार्गों से होते हुए यमराज के स्थान में गमन करते हैं? ॥६॥

२६७५. हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम्।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥७॥

विभिन्न स्थानों में जाने वाली जीभ को जबड़ों के बीच में किसने रखा है और उसमें प्रभावपूर्ण वाणी को किसने आश्रित किया है? जल के धारणकर्त्ता वे देव प्राणियों के अन्दर विचरण करते हैं, इसे कौन जानने में समर्थ है? ॥७॥

२६७६. मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम्।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥८॥

इस मनुष्य के मस्तिष्क के ललाट भाग, सिर के कपालभाग, कपाल और जबड़ों के संचय भाग का चयन करके जो देव सर्वप्रथम द्युलोक पर आरूढ़ हुए, वे कौन से देव हैं? ॥८॥

[मस्तिष्क का पिछला भाग विज्ञान के इतने विकास के बाद भी रहस्यमय बना हुआ है। ऋषि के संकेत हैं कि मस्तिष्क के माध्यम से द्युलोक पर आरूढ़ हुआ जा सकता है, यह उनके विलक्षण अन्वेषण क्षमता का प्रमाण है]

२६७७. प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥९॥

यह प्रचण्ड पुरुष बहुत-सी प्रिय और अप्रिय वाणी को स्वप्न (निद्रा), पीड़ा, थकावट, आनन्द और हर्ष को किस देव के प्रभाव से धारण करते हैं? ॥९॥

२६७८. आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥१०॥

मनुष्य में पीड़ा, दरिद्रता, पाप और दुर्बुद्धि ये दुष्प्रवृत्तियाँ कहाँ से प्रवेश करती हैं तथा पूर्णता, समृद्धि, विशिष्ट ऋद्धि, सद्बुद्धि और अभ्युत्थान की ये सहज प्रवृत्तियाँ कहाँ से आती हैं ? ॥१० ॥

[उक्त दो सूक्तों में मनुष्य की स्थूल रचना से भिन्न उसकी सूक्ष्म संरचना प्रवृत्तियों आदि का विवेचन किया गया है । यह पक्ष वर्तमान विज्ञान की पकड़ से अभी बाहर है ।]

२६७९. को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥११ ॥

इस मनुष्य शरीर में विशेष प्रकार से विचारशील, सर्वत्र भ्रमणशील, नदी के समान प्रवाहित होने के लिए विनिर्मित, लालवर्ण वाले, लोहित वर्ण वाले, ताँबे और धुएँ के समान वर्ण वाले ऊपर, नीचे और तिरछे वेग से गमनशील जल-प्रवाह किसके द्वारा स्थापित किये गये हैं ? ॥११ ॥

[अगले तीन मंत्रों में मनुष्य जीवन में उन अति महत्त्वपूर्ण सूक्ष्मप्रवाहों और प्रवृत्तियों का उल्लेख किया गया है, जो वर्तमान विज्ञान के लिए अगम्य हैं ।]

२६८०. को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्यानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥१२ ॥

इस मनुष्य देव में रूप-सौन्दर्य, महिमा, नाम-कीर्ति, गतिशीलता, ज्ञान-पिपासा और आचरण सम्बन्धी गुण किन देवों द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं ? ॥१२ ॥

२६८१. को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥१३ ॥

इस मानव देह में प्राण, अपान, व्यान और समान वायु किन देवों द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं ? ॥१३ ॥

२६८२. को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥१४ ॥

इस मनुष्य देह में परस्पर सहकार सहयोग की यज्ञीय भावनाओं और सत्यनिष्ठा को कौन प्रमुखदेव स्थापित करते हैं ? कौन असत्य, मृत्यु और अमरत्व को इसमें प्रतिष्ठित करते हैं ? ॥१४ ॥

२६८३. को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥१५ ॥

जिससे इस मनुष्य का शरीर आच्छादित है, उस आवरण (चर्म) को किसने पहनाया है ? आयु की कल्पना किसके द्वारा की गई ? इसे बल-सामर्थ्य किसने दी तथा इसमें गतिशीलता किसने स्थापित की है ? ॥१५ ॥

२६८४. केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥१६ ॥

जल का विस्तार किसके द्वारा हुआ ? इसके प्रकाश के लिए दिन किसने बनाया ? उषा को किसके द्वारा प्रकाशित किया गया ? तथा सायंकाल को किस देव द्वारा प्रदान किया गया ? ॥१६ ॥

२६८५. को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥१७ ॥

सन्तति विस्तार के लिए प्रजनन सामर्थ्य किसने स्थापित की ?इसमें विचारशक्ति किसने प्रतिष्ठित की ? वाक् शक्ति और नृत्य भावों (हाथ, पैर की संचालन क्रिया) को किन देवों द्वारा मनुष्यों में प्रतिष्ठित किया गया ? ॥

[इन सभी विषयों में आज का विज्ञान केवल इतना जान पाया है कि क्या-क्या होता है; किन्तु इन प्रक्रियाओं के पीछे कौन-सी निर्णायक सामर्थ्य काम कर रही है, विज्ञान को इसका पता नहीं है ।]

२६८६. केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१८ ॥

किस सामर्थ्य द्वारा इस भूमि को और द्युलोक (स्वर्ग) को आच्छादित किया गया है ? किस महत्ता के द्वारा पर्वतों को आच्छादित किया गया और यह मनुष्य किसकी प्रेरणा से कर्मों में प्रवृत्त होता है ? ॥१८ ॥

[ऋषि पृथ्वी के रक्षक आवरण (आयनोस्फीयर) तथा द्युलोक के निर्धारक आवरण (चेतनावलय) को भी देखते हैं ।]

२६८७. केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥१९ ॥

यह मनुष्य किस देव की सामर्थ्य से पर्जन्य, ज्ञानवान् सोम, यज्ञ (सत्कर्म) और श्रद्धा आदि को प्राप्त करता है ? किसके द्वारा इसका मन सत्कर्म की ओर प्रवृत्त किया गया है ? ॥१९ ॥

[आज का विज्ञान पर्जन्य को तो थोड़ा बहुत जानने-मानने लगा है ; किन्तु सृष्टि के सूक्ष्म पोषक प्रवाहों सोम, यज्ञ और श्रद्धा से वह अपरिचित है । मन को सन्मार्गगामी बनाने के सूत्रों की आवश्यकता अनुभव होते हुए भी वे वर्तमान विज्ञान के लिए अगम्य हैं ।]

२६८८. केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् । केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ।

किस देव की सामर्थ्य से यह पुरुष श्रोत्रिय, परमात्मज्ञान और अग्नि को जानने तथा संवत्सर-काल का मापन करने में समर्थ होता है ? ॥२० ॥

२६८९. ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् । ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ।

ब्रह्म ही श्रोत्रिय, परमेष्ठी प्रजापति और अग्नि को संव्याप्त कर रहे हैं, ब्रह्म (ज्ञान) ही संवत्सरं काल का मापन कर रहे हैं ॥२१ ॥

२६९०.केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः । केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते।

किस सामर्थ्य से देवों की अनुकूलता में मनुष्य रहने में समर्थ है ? दिव्यतायुक्त प्रजाओं के अनुकूल कैसे रहा जा सकता है ? किससे वह क्षत्रहीन (शौर्यहीन) और किससे उत्तम क्षत्र (शौर्य-सम्पन्न) कहलाता है ॥२२ ॥

२६९१.ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः । ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते।

ब्रह्म ही देवों के अनुशासन में उसे (मनुष्य को) जीना सिखाता है । ब्रह्म ही दिव्यता सम्पन्न प्रजाओं को अनुकूल आवास प्रदान करता है । ब्रह्म ही उत्तम क्षात्रबल और वही क्षात्र से भिन्न अन्य बल है ॥२३ ॥

२६९२. केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२४ ॥

इस भूमि को विशिष्टतापूर्वक किसने स्थापित किया ? द्युलोक को उत्तर (अधिक ऊपर) तथा अन्तरिक्ष को ऊपर तिरछा और फैला हुआ किसने स्थापित किया है ? ॥२४ ॥

[भूमि की गोलाई के तिरछेपन के अनुरूप अन्तरिक्ष भी स्थित है । वह तिरछापन कहीं असन्तुलन पैदा नहीं करता , यह क्या रहस्य है ? ऋषि इस ओर ध्यानाकर्षण करते हैं ।]

२६९३. ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५ ॥

ब्रह्म ही इस भूमि के उच्च (भाग में) द्युलोक, ऊपर तिरछे तथा फैले हुए अन्तरिक्ष के निर्माता हैं ॥२५ ॥

२६९४. मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६ ॥

प्रजापति ने उसके सिर और हृदय को आपस में जोड़ा, तत्पश्चात् ऊर्ध्व पवमान वायु ने इसके मस्तिष्क और शीर्षभाग को प्रेरित किया ॥२६ ॥

२६९५. तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७ ॥

अथर्वा (प्रजापति) द्वारा प्रदत्त सिर (शीर्ष भाग) सरलता से विद्यमान है और यह देवों का सुरक्षित खजाना है। उस सिर का संरक्षण प्राण, अन्न और मन करते हैं ॥२७ ॥

[सिर-मस्तिष्क की असाधारण सामर्थ्य ऋषि जानते-समझते रहे हैं। उसे वे दिव्य सम्पदाओं का अक्षय-भण्डार मानते रहे हैं। अन्न, प्राण और मन उसके क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तन्त्र के संरक्षक हैं।]

आगे के मन्त्रों में दिव्य नगरी के उपलक्षण से ब्रह्माण्ड एवं शरीररूपी आवास की विलक्षण विशेषताओं तथा उसके निवासी दिव्यपुरुष का वर्णन है-

२६९६. ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥२८ ॥

जो पुरुष ब्रह्म की नगरी के ज्ञाता हैं, जिसके कारण ही उसे पुरुष कहा गया है, पुरुष ऊपरी दिशा, तिरछी दिशा तथा सभी दिशाओं में उत्पन्न होकर अपने प्रभाव का परिचय देते हैं ॥२८ ॥

[ऋषियों को वह नियंत्रण एवं सृजनशील चेतन तत्त्व, सभी प्रभागों- सभी दिशाओं में सक्रिय दिखाई देता है।]

२६९७. यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९ ॥

जो निश्चितरूप से अमृत से परिपूर्ण ब्रह्म की नगरी के ज्ञाता हैं, उन्हें ब्रह्म और अन्य देव नेत्र, प्राण और सन्तति देते आये हैं ॥२९ ॥

[नेत्रों को देखने - समझने की क्षमता का, प्राणों को निर्वाह क्षमता का तथा संतति को विकास की क्षमता का प्रतीक समझा जाना चाहिए।]

२६९८. न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३० ॥

जिसके कारण उसे पुरुष कहा गया है, उस ब्रह्म की नगरी का जो ज्ञाता है, बुढ़ापे से पहले उस पुरुष का साथ नेत्र और प्राण नहीं छोड़ते ॥३० ॥

२६९९. अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१ ॥

जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार हैं, देवशक्तियों की पुरी (नगरी) यह अयोध्या है, उसमें जो तेजस्वी कोश हैं, वही तेजस्विता से युक्त होकर स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण हैं ॥३१ ॥

[यह पुरी अयोध्या अजेय है। इसकी विशेषताओं का उपयोग किया जा सके, तो कोई भी विकार या अवरोध इसको पराजित नहीं कर सकते। इसके चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, लोलक (तालू मूल) तथा सहस्रार है। नौ द्वार-दोनों आँखों के, दोनों नासिका के, दोनों कानों के, एक मुख का तथा दो मल-मूत्र द्वारों के छिद्र हैं।]

२७००. तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥३२ ॥

तीन अरों से युक्त, तीन केन्द्रों में स्थित, तेजस्वी कोश में जो आत्मवान् यक्षा (पूजनीय आत्मा) का स्थान है, उसे निश्चित ही ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥३२ ॥

२७०१. प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥३३ ॥

देदीप्यमान, दुःखनाशक, यश से सम्पन्न और पराजय रहित, ऐसी प्रकाशमय पुरी में ब्रह्म प्रवेश करता है ॥३३ ॥

[३ - सपत्नक्षयणवरणमणि सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा। **देवता-** वरणमणि, वनस्पति, चन्द्रमा। **छन्द-** अनुष्टुप्, २-३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८, १३-१४ पथ्यापंक्ति, ११, १६ भुरिक् अनुष्टुप्, १५, १७-२५ षट्पदा जगती।]

२७०२. अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥१ ॥

वरण नामक यह मणि शत्रुजनित अनिष्टों का निवारण करने में सक्षम है और अभीष्टफलों की वर्षक है। उसके सहयोग से आप प्रयत्नशील हों और दुर्भावनाओं से ग्रस्त शत्रुओं का विनाश करें ॥१ ॥

२७०३. प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥२ ॥

यह वरणमणि आपके उद्देश्य में आगे-आगे चले, आप इन शत्रुओं को मसल डालें तथा अपने वशीभूत करें। इसके सहयोग से देवगणों ने प्रतिदिन राक्षसों के अभिचार कृत्यों का निवारण किया ॥२ ॥

२७०४. अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥३ ॥

वरणमणि विश्व भेषज (सभी रोगों की दवा) है। यह मणि सहस्राक्ष के समान पराक्रमशाली, दुःखों का हरण करने वाली, हिरण्य (स्वर्ण या सार) रूप है। जो शत्रु आपसे द्वेष करते हैं, यह उनका पतन करने में सक्षम हैं। आप उनका दमन करें ॥३ ॥

२७०५. अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥४ ॥

वरणमणि चारों ओर से फैलाये गये अभिचार कृत्यों को आपसे दूर करेगी। मनुष्यकृत भय को दूर करके यह वरणमणि आपको समस्त पापकर्मों से पृथक् करेगी ॥४ ॥

२७०६. वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥५ ॥

यह वरणमणि हमारे रोगरूप शत्रुओं का निवारण करे । रोगी मनुष्य में जो यक्ष्मारोग प्रवेश कर चुके हैं, देव शक्तियाँ उनका निवारण करें ॥५ ॥

२७०७. स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६ ॥

हे पुरुष !यदि आप स्वप्न में सोते समय पाप के दृश्यों को देखते हों, अनुपयुक्त दिशा की ओर पशु भागता हो; इन अपशकुनों, शकुनि पक्षी के कठोर शब्दों और नाक फुरफुराने के दोषों से यह मणि आपको संरक्षित करेगी ।

२७०८. अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥७ ॥

हे पुरुष ! यह वरणमणि आपको शत्रुओं, पापदेवता , अभिचार प्रयोग, मृत्यु के भयानक संहार और अन्य भय से सुरक्षित करेगी ॥७ ॥

२७०९. यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥८ ॥

हमारे माता-पिता, बान्धवजनों और आत्मीय- परिजनों द्वारा प्रमादवश जो भी पापकर्म बन पड़े हों, उनसे ये वनस्पतिदेव हमारा संरक्षण करेंगे ।८ ॥

२७१०. वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥९ ॥

इस वरणमणि और हमारे बान्धवों से शत्रु समुदाय पीड़ित हों । वे अन्धकारपूर्ण विस्तृत धूलयुक्त स्थान को प्राप्त करें तथा भयानक अन्धकार से आच्छादित हों ॥९ ॥

२७११. अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१० ॥

हम अनिष्टरहित होकर शान्ति लाभ प्राप्त कर रहे हैं । समस्त परिवारीजनों से युक्त होकर हम दीर्घायु प्राप्त करें, यह वरणमणि समस्त दिशाओं और उपदिशाओं में हमारी संरक्षक हो ॥१० ॥

२७१२. अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥११ ॥

यह दिव्यतायुक्त, वनस्पति विनिर्मित वरणमणि दीप्तिमान् होते हुए हमारे हृदयक्षेत्र में प्रतिष्ठित है । जिस प्रकार इन्द्रदेव असुरों को संताप देते हैं, उसी प्रकार ग्रह वरणमणि हमारे लिए कष्टप्रद शत्रुओं को पीड़ित करे ॥११ ॥

२७१३. इमं बिभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२ ॥

इस वरणमणि द्वारा हमारे अन्दर राष्ट्रीय प्रेम, रक्षण-सामर्थ्य, गौ आदि पशुओं की प्राप्ति तथा शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल की स्थापना हो । शतायु होने के लिए हम इस मणि को धारण करते हैं ॥१२ ॥

२७१४. यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वाञ्जातौँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१३ ॥

जिस प्रकार वायुदेव अपने तीव्र वेगरूपी बल से वृक्षों और वनस्पतियों को तोड़ देते हैं। उसी प्रकार यह वरणमणि पहले से बने हुए और बाद में उत्पन्न अन्य शत्रुओं को विनष्ट करे। हे यजमान ! यह वरणमणि आपका संरक्षण करे ॥१३॥

२७१५. यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन्।
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१४॥

जिस प्रकार अग्नि और वायु मिलकर वृक्ष-वनस्पतियों को विनष्ट कर डालते हैं, उसी प्रकार हे वरणमणे ! आप पहले से उत्पन्न हुए और पीछे से उत्पन्न शत्रुओं का हनन करें। हे यजमान ! यह वरणमणि आपका संरक्षण करे ॥१४॥

२७१६. यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः। एवा सपत्नांस्त्वं मम
प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वाञ्जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१५॥

वायु से कमजोर हुए वृक्ष जिस प्रकार पृथ्वी पर गिरकर लेट जाते हैं, उसी प्रकार हे वरणमणे ! आप हमारे पूर्व उत्पन्न और बाद में उत्पन्न शत्रुओं को कमजोर (दुर्बल) करके धराशायी करें। हे यजमान ! यह वरणमणि आपकी संरक्षक हो ॥१५॥

२७१७. तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥१६॥

हे वरणमणे ! जो इस यजमान के गवादि पशुओं और राष्ट्रीय स्वाभिमान के विघातक राष्ट्रद्रोही शत्रु हैं, आप उन्हें आयु क्षीण होने और निश्चित प्रारब्ध भोगने से पहले ही विनष्ट कर डालें ॥१६॥

२७१८. यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम्। एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१७॥

जिस प्रकार सूर्यदेव अत्यन्त प्रकाशमान और तेजस्वितायुक्त हैं, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करे तथा हमें तेजस्वी और यशस्वी बनाए ॥१७॥

२७१९. यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि। एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१८॥

जिस प्रकार सभी के लिए (दर्शनीय) चन्द्रमा और आदित्य यशोभागी हैं, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करे तथा हमें तेजस्वी और यशस्वी बनाए ॥१८॥

२७२०. यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि। एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥१९॥

जिस प्रकार पृथ्वी और जातवेदा अग्नि में यश विद्यमान है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करे तथा तेजस्वी और यशस्वी बनाए ॥१९॥

२७२१. यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे। एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२०॥

जिस प्रकार कन्याओं और युद्ध के लिए तैयार रथों में यशस्विता है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करती हुई, तेजस्विता और यश-सम्मान से हमें सुशोभित करे ॥२०॥

२७२२. यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः । एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२१ ॥

जिस प्रकार सोमपीथ (सोमपेय) और मधुपर्क में यशस्विता विद्यमान है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करती हुई , तेज़स्विता और यश से सम्पन्न करे ॥२१ ॥

२७२३. यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः । एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२२ ॥

अग्निहोत्र और वषट्कार में जिस प्रकार यशस्विता विद्यमान है, उसी प्रकार वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करे तथा तेजस्विता और यशस्विता से हमें संयुक्त करे ॥२२ ॥

२७२४. यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् । एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२३ ॥

जिस प्रकार यजमान और यज्ञ में यशस्विता विद्यमान है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और वैभव प्रदान करते हुए तेजस्विता एवं यश से संयुक्त करे ॥२३ ॥

२७२५. यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि । एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२४ ॥

जिस प्रकार प्रजापति और परमेष्ठी में यश प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करते हुए तेजस्वितायुक्त सम्मान से सम्पन्न करे ॥२४ ॥

२७२६. यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् । एवा मे वरणो मणिः
कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥२५ ॥

जिस प्रकार देवशक्तियों में अमृत और सत्य प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार यह वरणमणि हमें कीर्ति और ऐश्वर्य प्रदान करते हुए तेजस्विता एवं यशस्विता से संयुक्त करे ॥२५ ॥

[४ - सर्पविषदूरीकरण सूक्त]

[**ऋषि-** गरुत्मान् । **देवता-** तक्षक । **छन्द-** अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्ति, २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री, ३-४ पथ्या बृहती, ८ उष्णिक् गर्भा परात्रिष्टुप्, १२ भुरिक् गायत्री, १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री, २१ ककुम्मती अनुष्टुप्, २३ त्रिष्टुप्, २६ त्र्यवसाना षट्पदा बृहती गर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

२७२७. इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥१ ॥

सर्वप्रथम रथ (रस या बल) इन्द्रदेव के, द्वितीय स्तर के रथ देवताओं के, तृतीय स्तर के रथ वरुणदेव के हैं । सर्पों के रथ (बल) 'अपमा' (निम्न गतिशील), इस नाम से जाने जाते हैं, जो स्तम्भ (सूखी लकड़ी) रूप में भी चले जाते हैं तथा पुन: भाग जाने में कुशल हैं ॥१ ॥

२७२८. दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः । रथस्य बन्धुरम् ॥२ ॥

यह कुशा सामान्य सर्पों के लिए शोकप्रद, अश्वनामक ओषधि सर्प की विषनाशक और पुरुष नामक ओषधि विषनिवारक है ।रथ बन्धूर और तरूणक (तृण विशेष), ये सभी साँपों के विष को दूर करने में सहायक हैं ॥२ ॥

२७२९. अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च। उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्॥

हे श्वेत सर्षप ओषधे !आप दायें और बाँयें दोनों पद प्रक्षेप द्वारा सर्पों के विष को विनष्ट करें। नदी प्रवाह में काष्ठ गिर जाने के समान मंत्र शक्ति से सर्प-विष का प्रभाव सारहीन हो ।आप भयानक विष का भी निवारण करें ॥

२७३०. अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत्। उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्॥

अलंघुष ओषधि ने (विषनिवारण हेतु) प्रविष्ट होकर तथा बाहर आकर बताया कि नदी प्रवाह में काष्ठ गिरने के समान सर्प-विष सारहीन हो गया है। हे ओषधे ! आप विष का निवारण करें ॥४॥

२७३१. पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम्।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥५॥

'पैद्व' नामक ओषधि कसर्णील, श्वित्र और असित (काले) साँपों के विष प्रभाव को समाप्त करने वाली है। इसी ने रथर्व्या और पृदाकु (बड़े साँप) के शीर्ष भाग को छिन्न-भिन्न कर दिया था ॥५॥

२७३२. पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥६॥

हे पैद्व नामक ओषधे ! आप प्रमुख हैं, अतएव आप यहाँ आएँ, हम आपकी स्तुति करते हैं। जिन मार्गों से हम जाने के इच्छुक हैं, उन मार्गों से सर्पों को दूर करें ॥६॥

२७३३. इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम्। इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥७॥

सर्प विष के निवारक पैद्व (फुर्तीला) ओषधि प्रकट हो चुकी है, यही इसका प्रिय स्थल है ।यह उसी सर्पनाशक गतिशील के पद- चिह्न हैं ॥७॥

२७३४. संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत्।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥८॥

सर्प का बन्द मुख (हमें डसने के लिए) खुले ही नहीं और खुला हुआ बन्द न होने पाए। इस क्षेत्र में जो नर और मादा दो साँप हैं, वे दोनों मन्त्र प्रभाव से सारहीन हो जाएँ ॥८॥

२७३५. अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके। घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्॥

जो साँप हमारे आस-पास रहने वाले हैं तथा जो दूर जंगल या निर्जन स्थानों में रहने वाले हैं, वे सभी विषहीन हो जाएँ। हम साँप को लाठी प्रहार और बिच्छू को हथौड़े से मारते हैं ॥९॥

२७३६.अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च। इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत्॥

अघाश्व और बिना किसी विशेष उद्देश्य से उत्पन्न होने वाले स्वज, इन दोनों की ओषधि हमारे पास है। इन्द्रदेव ने प्राणघातक पापकर्मी पैद्व ओषधि को हमारे अधीन कर दिया है ॥१०॥

२७३७. पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः। इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते॥

हमारी मान्यता है कि अचल प्रभावयुक्त, स्थिर पैद्व के पृष्ठभाग में, ये साँप शोकग्रस्त होकर खड़े रहते हैं ॥११

२७३८. नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा। जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम्॥१२॥

वज्रधारी इन्द्रदेव ने इन साँपों की प्राणशक्ति और विषप्रभाव को विनष्ट कर दिया था। देवराज इन्द्र द्वारा संहारित सर्पों को हम भी मारते हैं ॥१२॥

२७३९. हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः । दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥

तिरछी धारियों वाले तिरश्चिराजी नामक साँप मंत्रप्रभाव से विनष्ट हुए तथा कुत्सित फुंकार करने वाले पृदाकु नामक सर्प पीस डाले गये हैं । हे यजमान ! करैत नामक काले साँप, श्वित्र नामक चितकबरे साँप और कृष्णकाय, इन सभी साँपों को कुशा के बीच मार डालें ॥१३ ॥

२७४०. कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥१४ ॥

भील जाति की यह कुमारी कन्या हिरण्यी (चमकदार तेज) कुदाल से पर्वतीय शिखरों पर ओषधियों का खनन करती है ॥१४ ॥

२७४१. आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥१५ ॥

यह सर्व-विष निवारक अपराजित (नायक अथवा पराजित न होने वाला) युवा वैद्य (उपचार) आ गया है, वह (वैद्य) स्वज नामक साँप और बिच्छू , इन दोनों के विष को नष्ट करने में सक्षम है ॥१५ ॥

२७४२. इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योऽभा ॥१६ ॥

इन्द्र, सूर्य, वरुण, वायु तथा पर्जन्य ये सभी देव हमारे समीप आये हुए साँपों का संहार करते हैं ॥१६ ॥

२७४३. इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥१७ ॥

इन्द्रदेव ने पृदाकु, पृदाक्व, स्वज, तिरश्चिराजी, कसर्णील और दशोनसि, इन साँपों को हमारे कल्याण के निमित्त नियन्त्रित कर लिया है ॥१७ ॥

२७४४. इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥१८ ॥

हे सर्प ! आपके जन्मदाता को इन्द्रदेव ने पहले ही समाप्त कर दिया था । उन सर्पों के संहारकाल में कौन सर्प सामर्थ्यवान् रह सका था ? ॥१८ ॥

२७४५. सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् । सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥

साँपों को नियन्त्रित करने में निष्णात, हम साँपों को गर्दन से पकड़ लें, जिस प्रकार केवट (अपनी कुशलता से) नदी के गहरे मध्यभाग में पहुँच कर (सकुशल) लौट आता है । हम भी उसी प्रकार साँपों के विष को विशेष रीति से शोधित कर डालें ॥१९ ॥

२७४६.अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः । हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥

सभी प्रकार के सर्पों के विष को नदियाँ बहाकर ले जाएँ । तिरश्चिराजी नामक सर्प और पृदाकु आदि महासर्प नष्ट हो गए हैं ॥२० ॥

२७४७. ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ।२१ ।

हम अपनी कल्याणकारिणी प्रेरणा से ओषधियों को उपजाऊ भूमि पर धान्य उगाये जाने के समान ही प्राप्त करते हैं । हे सर्प ! तेरे विष का निवारण हो ॥२१ ॥

२७४८. यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्। कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम्

जो विष, अग्नि, सूर्य, भूमि, कन्दों तथा वनस्पतियों में विद्यमान है, वह सम्पूर्ण विष आप में (वनस्पति विशेष) में आ जाए और आपके (उस) विष का पूर्ण निवारण हो ॥२२ ॥

२७४९. ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥२३ ॥

अग्नि, ओषधि, जल और सर्पों में उत्पन्न हुए, जो मनुष्य को प्रकम्पित करने वाले विद्युद्धर्मी विष हैं, जिनके द्वारा विशाल कर्म किये गये हैं, उन साँपों को हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥२३ ॥

२७५०. तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥२४ ॥

तौदी और घृताची इन नामों की एक कमनीय ओषधि है। हे ओषधे ! नीचे की ओर पैर करके आपके विषनाशक भाग को हम प्राप्त करते हैं ॥२४ ॥

२७५१. अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय।
अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥२५ ॥

हे रोगी मनुष्य ! हम आपके हृदय क्षेत्र को संरक्षित करते हुए प्रत्येक अङ्ग - अवयव से विष को निकालें, तत्पश्चात् उस विष का प्रभाव नीचे की ओर जाता हुआ दूर हो जाए ॥२५ ॥

२७५२. आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत्। दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत। ।२६ ॥

विष का निवारण हुआ, विष को बाँध दिया गया, ओषधि में मिलकर विष पूर्ववत् प्रभावहीन हो गया है। अग्नि द्वारा जलाकर सर्प के विष का निवारण हुआ। सोम ओषधि सर्प विष को दूर करती है। डसने वाले सर्प का विष पहुँच गया है, उससे सर्प की मृत्यु हो गई ॥२६ ॥

[५- विजयप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि-** सिन्धु द्वीप, २५-३६ कौशिक, ३७-४१ ब्रह्मा, ४२-५० विहव्य। । **देवता-** १-२४ आपः, चन्द्रमा, २५-३५ विष्णुक्रम, ३६ मृत्यु, ३७-४१ मन्त्रोक्त, ४२-५० प्रजापति। **छन्द-** त्रिपदा पुरोऽभिकृति ककुम्मती-गर्भापंक्ति, ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती, ७-१०, १२-१३ त्र्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती, ११, १४ पथ्यापंक्ति, १५-१८, २१ चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुभगर्भाअतिधृति, १९-२० चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुभगर्भा कृति, २२-२३, ४२-४३, ४५-४९ अनुष्टुप्, २४ त्रिपदा विराट् गायत्री। २५-३५ त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वरी और अतिशक्वरी, ३६ पंचपदा अतिशाक्वर अतिजागतगर्भा अष्टि, ३७ विराट् पुरस्ताद् बृहती, ३८ पुर उष्णिक्, ३९, ४१ आर्षीगायत्री, ४० विराट् विषमा गायत्री, ४४ त्रिपदा गायत्री गर्भा अनुष्टुप्, ५० त्रिष्टुप्।]

२७५३. इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१ ॥

हे दिव्य प्रवाह ! आप इन्द्रदेव के ओज - बल, शत्रु- पराभव के पराक्रम और ऐश्वर्य हैं। ऐसे गुण- सम्पन्न आपको विजय-प्राप्ति के निमित्त हम ब्रह्म योगों (ज्ञानादि) के साथ संयुक्त करते हैं ॥१ ॥

२७५४. इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२ ॥

आप इन्द्रदेव के ओज, बल, संघर्ष- शक्ति और ऐश्वर्य हैं। विजय प्राप्ति हेतु हम आपको क्षात्रबल से संयुक्त करते हैं ॥२ ॥

२७५५. इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३ ॥

आप इन्द्रदेव के ओज, संघर्षकशक्ति, पराक्रम और ऐश्वर्य हैं, ऐसे आपको हम विजय प्राप्ति के निमित्त इन्द्रयोग (संगठन) के साथ संयुक्त करते हैं ॥३ ॥

२७५६. इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥४ ॥

आप इन्द्रदेव के ओज, संघर्षकशक्ति, पराक्रम और वैभव हैं, विजय-प्राप्ति हेतु हम आपको सोमादि योगों के साथ संयुक्त करते हैं ॥४ ॥

२७५७. इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥५ ॥

आप इन्द्रदेव की ओजस्विता, संघर्ष-क्षमता और ऐश्वर्य हैं, विजय-प्राप्ति के लिए हम आपको जल योगों से संयुक्त करते हैं ॥५ ॥

२७५८. इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं१ स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥६ ॥

आप इन्द्रदेव की ओजस्विता, संघर्ष-शक्ति और वैभव हैं। विजय-प्राप्ति के निमित्त सभी प्राणी आपके समीप रहें तथा यह अप् (दिव्य-प्रवाह) भी हमारे साथ रहे ॥६ ॥

२७५९. अग्नेर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥७ ॥

हे दिव्य अप् प्रवाहो ! आप अग्नि के अंश हैं। जल के शुक्र (उत्पादक अंश) रूप आप हममें तेजस् की स्थापना करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥७ ॥

२७६०. इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥८ ॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप इन्द्र के अंश हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥८ ॥

२७६१. सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥९ ॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप सोम के अंश हैं। जल के शुक्र (उत्पादक अंश) रूप आप हममें तेजस् की स्थापना करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥९ ॥

२७६२. वरुणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१०॥

हे दिव्य प्रवाहो ! आप वरुण के अंश हैं। जल के शुक्ररूप तेजस् को आप हममें स्थापित करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान प्रदान करते हैं ॥१०॥

२७६३. मित्रावरुणयोर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥११॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप मित्रावरुण के भाग हैं। जल के शुक्र (उत्पादक अंश) रूप आप हममें तेजस् की स्थापना करें। प्रजापति के धाम से पधारे आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान प्रदान करते हैं ॥११॥

२७६४. यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१२॥

हे दिव्यप्रवाहो ! आप यमदेव के भाग हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें। प्रजापति के धाम से आए, आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१२॥

२७६५. पितृणां भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१३॥

हे दिव्य अप् प्रवाहो ! आप पितर गणों के अंश हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें। प्रजापति के धाम से आए, आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान देते हैं ॥१३॥

२७६६. देवस्य सवितुर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१४॥

हे दिव्य अप् प्रवाहो ! आप सर्वप्रेरक सवितादेव के अंश हैं। जल के शुक्ररूप आप हममें तेजस् स्थापित करें। प्रजापति के धाम से आए, आपको हम इस लोक में सुनिश्चित स्थान प्रदान करते हैं ॥१४॥

२७६७. यो व आपोऽपां भागो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं
माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१५॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो जलीय भाग है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय अंश है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१५॥

२७६८. यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः। इदं तमति सृजामि तं
माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१६॥

हे अप् प्रवाहो ! आपकी जो गतिशील लहरें हैं, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं। वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१६॥

२७६९. यो व आपोऽपां वत्सो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१७ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो वत्स (विकासमान अंश) है । जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं । वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१७ ॥

२७७०. यो व आपोऽपां वृषभो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१८ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो वृषभ (बलशाली या वर्षणशील अंश) है । जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं । वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१८ ॥

२७७१. यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१९ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो हिरण्यगर्भ रूप है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं । वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥१९ ॥

२७७२. यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्यो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि । तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२० ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो अश्म (पत्थर जैसा सुदृढ़), सूर्य जैसा दिव्य अंश है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छोड़ते हैं । वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥२० ॥

२७७३. ये वं आपोऽपामग्नयोऽप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः । इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि । तैस्तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२१ ॥

हे अप् प्रवाहो ! आपका जो अग्नि जैसा उष्ण भाग है, जो रसों के बीच यज्ञादि में देवों के लिए यजनीय है, उसे हम उस (शत्रु) की ओर छाड़ते हैं । वह हमें पुष्टि दे तथा जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं; इस ज्ञान-प्रयोग से, इस अभिचार से तथा इस इच्छाशक्ति से उनका वध करें, उन्हें नष्ट करें ॥२१ ॥

२७७४. यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥२२ ॥

तीन वर्ष के अन्तराल में हमसे जो भी मिथ्या वचन कहे गये हों, उन सभी दुर्गति देने वाले पापकृत्यों से जल हमें संरक्षित करें ॥२२ ॥

२७७५. समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३ ॥

हे अप् प्रवाहो ! हम आपको समुद्र (अन्तरिक्ष) की ओर भेजते हैं, आप अपने उद्‌गम स्थल में विलीन हो जाएँ । आपकी गति सभी जगह है । आप हिंसा के निवारक हैं, अत: कोई शत्रु हमारा संहार न करने पाए ॥२३ ॥

२७७६. अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४ ॥

ये अप् प्रवाह निर्दोष हैं । वे हम सबसे पाप-दोषों को हटाएँ । उत्तमरूप वाले ये प्रवाह हमसे दुर्गतियुक्त पापों, दुष्ट स्वप्नों से उत्पन्न पापकर्मों और मल-विक्षेपों को बहाकर दूर ले जाएँ ॥२४ ॥

२७७७. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः । पृथिवीमनु
वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५ ॥

विष्णुदेव (पोषणकर्त्ता) के समान ही आपका पराक्रम है । शत्रुओं के नाशक आप पृथ्वी पर प्रशंसित और अग्नि की तेजस्विता से युक्त हैं । आप पृथ्वी पर विशेष पराक्रम करें । हम पृथ्वी से उन्हें हटाते हैं, जो हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं । वे जीवित न रहें , प्राणतत्त्व उनका परित्याग करें ॥२५ ॥

२७७८. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः । अन्तरिक्षमनु वि
क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२६ ॥

विष्णुदेव के समान ही आपके पराक्रमीशौर्य शत्रुओं के विनाशक हैं । अन्तरिक्ष ने आपको कर्म-प्रवृत्त, तीक्ष्ण और वायु के तेजस् से सम्पन्न किया है । आप अन्तरिक्ष में विशेष पराक्रम करें । हम अन्तरिक्षीय अनिष्टों को वहाँ से हटाते हैं । जो शत्रु हमसे द्वेष रखते हैं और हमें जिनसे द्वेष है, वे जीवित न रहें, प्राण उनका परित्याग करें ॥२६ ॥

२७७९. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः । दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं
निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२७ ॥

आप शत्रुओं के संहार में विष्णु के पराक्रम तुल्य हैं, द्युलोक ने आपको कर्म प्रवृत्त करने के लिए तीक्ष्ण और सूर्य की तेजस्विता से सम्पन्न किया है । आप विशेष पराक्रम करें ।द्युलोक के अनिष्टों को हम वहाँ से हटाते हैं । जो हमारे प्रति द्वेषयुक्त हैं और हम जिनके प्रति द्वेषयुक्त हैं, वे जीवन त्यागकर मृत्यु को प्राप्त हों, प्राण उन्हें छोड़ दें॥

२७८०. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः । दिशोऽनु
वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८ ॥

आप शत्रुनाशक विष्णु के पराक्रम तुल्य हैं। दिशाओं ने आपको कर्म प्रवृत्त, तेजस्वी, धारयुक्त और मन के तेज से परिपूर्ण किया है। आप दिशाओं में विशिष्ट पराक्रम करें। हम दिशाओं के अनिष्टों को हटाते हैं। विद्रोही, दुष्ट शत्रु जीवित न रह सकें और प्राणशक्ति उनका साथ छोड़ दे ॥२८ ॥

२७८१. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः। आशा अनु वि
क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२९ ॥

आप विष्णु के पराक्रमतुल्य और शत्रुसंहारक हैं। उप दिशाओं ने आपको तेजस्वी, कर्म प्रवृत्त, धारयुक्त (तीक्ष्ण) और वायु के तेज से परिपूर्ण किया है। आप अवान्तर दिशाओं में विशेष पराक्रम करें। अवान्तर के अनिष्टों को हम वहाँ से हटाते हैं। हमारे दुष्ट-विद्वेषी शत्रु जीवित न रह पाएँ, प्राणशक्ति उनका परित्याग करे ॥२९ ॥

२७८२. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः। ऋचोऽनु वि
क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३० ॥

आप विष्णु के पराक्रमतुल्य और शत्रुनाशक हैं। आप ऋग्वेद के ज्ञान से तेजस्वी और साम के तेजस् से युक्त हैं। आप ऋक्विज्ञान में विशेष पराक्रम करें और ऋचाओं (मन्त्रों) से हम उन (अनिष्टों) को हटाते हैं। जो हमसे द्वेष करने वाले और हमें जिनसे द्वेष है, ऐसे शत्रु जीवित न रहें प्राणतत्त्व उनका परित्याग करे ॥३० ॥

२७८३. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः। यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं
निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३१ ॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुनाशक और पराक्रमयुक्त हैं। आप यज्ञ से तेजस्वी और ज्ञानतेज से युक्त हैं। आप यज्ञक्षेत्र पर विक्रमण करें। हम उन्हें (विकारों को) यज्ञ से हटाते हैं। जो हमसे द्वेष रखने वाले और हम जिनके प्रति विद्वेष रखने वाले हैं, ऐसे शत्रु जीवित न रहकर प्राणों का परित्याग करें ॥३१ ॥

२७८४. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः। ओषधीरनु वि
क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३२ ॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुसंहारक और पराक्रमयुक्त हैं। आप ओषधियों द्वारा तीक्ष्ण और सोम से तेजस्वी बने हैं। ओषधियों पर आप विक्रमण करें। हम ओषधियों से उन (दोषों) को पृथक् करते हैं, जो हमारे प्रति द्वेषी हैं और हम जिनसे द्वेष रखते हैं, ऐसे शत्रुओं का प्राणान्त हो, वे जीवित न रह सकें ॥३२ ॥

२७८५. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः। अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं
निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३३ ॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुसंहारक और पराक्रमयुक्त हैं। आप जल से तीक्ष्ण और वरुण के तेजस् से युक्त हैं। आप जलप्रवाहों पर विशेष पराक्रम करें, जिससे जल से उन्हें (विकारों का) खदेड़ने में हम सक्षम हों, वे सभी शत्रु जीवित न बचें, उनका प्राणान्त हो, जो हमसे द्वेष रखते हैं अथवा हम जिनसे दुर्भाव रखते हैं ॥३३ ॥

२७८६. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः। कृषिमनु वि क्रमेऽहं
कृष्यास्तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुविनाशक और पराक्रमी हैं । आप कृषि से तेजस्वी और अन्न के तेजस् से युक्त हैं । आप कृषि पर विक्रमण करें, जिससे वहाँ से हम उन विकारों को हटाने में सक्षम हों । वे शत्रु प्राणों का परित्याग करें, जो हमसे द्वेष रखते हों अथवा हम जिनसे विद्वेष रखते हैं ॥३४ ॥

२७८७. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः । प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३५ ॥

आप विष्णुदेव के समान शत्रुसंहारक पराक्रमयुक्त हैं । आप प्राण से तेजस्वी और पुरुष के तेज से सम्पन्न हैं । आप प्राणों पर विशिष्ट पराक्रम करें, जिससे प्राणों से उन्हें दूर करने में हम सफल हों । वे जीवित न रहें, प्राण उन्हें छोड़ दें, जो हमसे द्वेष रखने वाले अथवा हम जिनके प्रति द्वेष रखने वाले हैं ॥३५ ॥

२७८८. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः । इदमहमामुष्यायण-स्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥

विजित पदार्थ समूह और विदीर्ण करके लाये गये पदार्थ समूह हमारे हैं । हम सम्पूर्ण शत्रु सेना को वशीभूत कर रहे हैं । अमुक गोत्र के , अमुकी माता के पुत्र, जो हमारे शत्रु हैं, उनके वर्चस्व, तेजस्, प्राण और आयु को हम भली प्रकार घेरते हैं, इस प्रकार इन्हें नीचे की ओर धकेलते हैं ॥३६ ॥

२७८९. सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् । सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७ ॥

दक्षिण दिशा की ओर विस्तारयुक्त सूर्य द्वारा तय किये गये मार्ग का हम अनुगमन करते हैं । दक्षिण दिशा हमें ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज से युक्त करे ॥३७ ॥

२७९०. दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते । ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८ ॥

हम देदीप्यमान दिशाओं में गमन करते हुए प्रार्थना करते हैं कि हमें ऐश्वर्य और ब्रह्मवर्चस प्रदान करें ॥३८ ॥

२७९१. सप्तऋषीनभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९ ॥

हम सप्तर्षियों के सम्मुख उपस्थित होकर उनसे ऐश्वर्य और ब्रह्मवर्चस की कामना करते हैं ॥३९ ॥

२७९२. ब्रह्माभ्यावर्ते । तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४० ॥

हम मंत्रशक्ति के सम्मुख प्रस्तुत होकर उनसे ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज की प्रार्थना करते हैं ॥४० ॥

२७९३. ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१ ॥

हम ज्ञाननिष्ठों के अनुगामी होकर चलते हैं, वे हमें ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज से युक्त करें ॥४१ ॥

२७९४. यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै । व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥४२ ॥

हम जिन (दुष्टों को) खोजते हैं, उन्हें प्राण घातक हथियारों से ढँकते हैं और परमेश्वर के खुले अग्निरूप मुख में मंत्र के प्रभाव से उन्हें धकेलते हैं ॥४२ ॥

२७९५. वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि । इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥४३ ॥

समिधारूप यह हथियार शत्रुओं को वैश्वानर अग्नि की दाढ़ों में समर्पित करे । ज्योतिष्मती, शत्रु-पराभव करने वाली, ये आहुतियाँ शत्रुओं का भक्षण कर डालें ॥४३ ॥

२७९६. राज्ञो वरुणस्य बन्धो ऽसि । सो३मुमामुष्यायणममुष्याः
पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥४४ ॥

हे राजा वरुण के बन्धनरूप मंत्र ! आप अमुक गोत्र के, अमुकी माता के पुत्र के लिए अन्न और प्राण के अवरोधक बनें ॥४४ ॥

२७९७. यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥४५ ॥

हे पृथ्वी के अधिष्ठाता प्रजापतिदेव ! आपका जो अन्न पृथ्वी के आश्रित है, उनके सारतत्त्व को हमारे लिए प्रदान करें ॥४५ ॥

२७९८. अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥४६ ॥

दिव्य जल-प्रवाहों को हमने संगृहीत किया है, उनसे हम स्वयं को सुसंगत करते हैं । हे अग्निदेव ! जल सहित आपके समीप उपस्थित हो रहे हैं, अतएव आप हमें तेजस्विता से युक्त करें । ।४६ ॥

२७९९. सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥४७ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें तेजस्विता, सुसन्तति और आयुष्य से सम्पन्न करें । देव शक्तियाँ हमारे इस अभिप्राय को समझें, इन्द्रदेव ऋषियों के साथ हमारे अभीष्ट भावों को जानें ॥४७ ॥

२८००. यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥४८ ॥

हे अग्निदेव ! जो वक्ता वाणी का दुरुपयोग करते हैं, जो मिलकर शापादि देते हैं, ऐसे राक्षसों के हृदयों को उन बाणों से बींध डालें, जो मन्यु के कारण मन से प्रकट होते हैं ॥४८ ॥

२८०१. परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥४९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तप से राक्षसों को दूर भगा दें, उन्हें बलपूर्वक दूर कर दें । अपनी ज्वाला से उन मूढ़ों को दूर फेक दें । दूसरों के प्राणों का शोषण करके तृप्त होने वालों को शोकातुर करके भगा दें ॥४९ ॥

२८०२. अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥५० ॥

हम मन्त्रशक्ति के प्रयोक्ता इन शत्रुओं के सिर को फोड़ने के लिए 'चतुर्भृष्टि' जलवज्र का प्रहार करते हैं । यह वज्रास्त्र इनके सभी अङ्ग- अवयवों को काट डालें । सभी देवगण भी इस सम्बन्ध में हमें अनुकूल (उचित) परामर्श प्रदान करें ॥५० ॥

[६- मणिबन्धन सूक्त]

[**ऋषि-** बृहस्पति । **देवता-**फालमणि, वनस्पति, ३ आपः । **छन्द-** अनुष्टुप्, १, ४, २१ गायत्री, ५ षट्पदा जगती, ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी, ७-९ त्र्यवसानाष्टपदाष्टि, १० त्र्यवसाना नवपदाधृति, ११, २०, २३-२७ पथ्यापंक्ति, १२-१७ त्र्यवसाना षट्पदा शक्वरी, ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३५ पञ्चपदा त्र्यनुष्टुप् गर्भा जगती ।]

इस सूक्त में फालमणि नामक किसी द्रव्य मणि का उल्लेख है । इसे ज्ञान के देव बृहस्पति ने देवों के लिए तैयार किया है । मंत्रों में प्राप्त वर्णन से यह कोई 'दिव्य-विद्या' प्रतीत होती है-

२८०३. अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा ॥१ ॥

हृदय में दुर्भाव रखने वाले शत्रुओं का सिर (या उनके विचारों को) हम अपने ओज से छिन्न-भिन्न करते हैं ॥१ ॥

२८०४. वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२ ॥

मंथन द्वारा रस से परिपूर्ण होकर, यह मणि तेज के साथ हमारे निकट आ गई है । फाल से उत्पन्न होने वाली, यह मणि कवच के समान हमारी संरक्षक होगी ॥२ ॥

२८०५. यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥३ ॥

आपको कुशल कारीगर (शिक्व) ने काटा है और तक्षक (बढ़ई) हाथ में शस्त्र लेकर आपको गढ़ते हैं । आप स्वच्छ (उपकरण) को जीवनदायी शुद्ध जल से पवित्र बनाती हैं ॥३ ॥

२८०६. हिरण्यस्त्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥४ ॥

यह हिरण्यस्रक् (सुवर्ण मालायुक्त) मणि श्रद्धा-भक्ति और यज्ञ से प्रभावशाली बनती हुई अतिथि के समान हमारे भवन में वास करे ॥४ ॥

२८०७. तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥

हम इस मणि के लिए घी, तीक्ष्ण ओषधिरस, शहद और अन्न समर्पित करते हैं । पिता द्वारा पुत्रों के हित साधन की तरह, यह मणि हमारे लिए परम कल्याणकारी हो । देवताओं के पास से बार-बार आकर यह मणि हमारे लिए कल्याणकारी योजनाएँ बनाए ॥५ ॥

२८०८. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥

जिस घृत के समान पौष्टिक तत्त्वों को देने वाली और प्रचण्ड-प्रभावयुक्त खदिर फाल से उत्पन्न मणि को बृहस्पतिदेव ने बल- वृद्धि हेतु धारण किया, उसे अग्निदेव ने अपने शरीर पर बँधवाया था । अग्नि के लिए इस मणि ने नित्य प्रति बार-बार घृत (सार, अंश, तेज) का दोहन किया । उस मणि सामर्थ्य से आप शत्रुओं का हनन करें ॥६ ॥

२८०९. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम्।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७ ॥

जिस घृततुल्य पौष्टिक पदार्थों को देने वाली और प्रचण्ड फालमणि को बृहस्पति देव ने बल प्राप्ति हेतु धारण किया, इन्द्रदेव ने उसी को ओज और वीर्य प्राप्ति हेतु प्राप्त किया। इन्द्रदेव के लिए यह मणि नित्यप्रति बार-बार बलवर्द्धक तत्त्वों को प्रस्तुत करे। उस मणि की सामर्थ्य से आप शत्रुओं का संहार करें ॥७ ॥

२८१०. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सोमः प्रत्यमुञ्चत
महे श्रोत्राय चक्षसे। सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।

जिस घृत से परिपूर्ण और उग्रपराक्रमी फालमणि को बृहस्पतिदेव ने ओजस् वृद्धि हेतु धारण किया था। सोमदेव ने उसी को महिमायुक्त श्रवणशक्ति और दृष्टि-सामर्थ्य प्राप्ति हेतु धारण करवाया था। यह मणि सोमदेव के लिए नित्य नवीन वर्चस् (तेज) प्रदान करती है। उस मणि द्वारा हे मणि धारणकर्त्ता ! आप शत्रुओं का संहार करें ॥८ ॥

२८११. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत
तेनेमा अजयद् दिशः। सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।

घृत से परिपूर्ण और प्रचण्ड पराक्रमशाली, जिस फालमणि को बृहस्पतिदेव ने ओजस् प्राप्ति के लिए धारण किया था। सूर्यदेव ने उसे बँधवाकर समस्त दिशाओं पर विजय प्राप्त की थी। वह मणि सूर्यदेव को नित्य-नवीन ऐश्वर्य प्रदान करती रहे। ऐसी मणि द्वारा हे मणिधारणकर्त्ता ! आप अनिष्टकारक शत्रुओं का विनाश करें ॥९ ॥

२८१२. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१० ॥

बृहस्पतिदेव ने जिस घृत से परिपूर्ण शत्रुओं की उग्ररूपा फालमणि को बलवृद्धि के लिए धारण किया था, उसी मणि को बाँधकर चन्द्रदेव ने असुरों और दानवों के स्वर्णिम नगरों को अपने अधिकार क्षेत्र में किया था। यह मणि चन्द्रदेव को नित्य-नवीन श्री-सम्पदा प्रदान करती रहती है। उसी मणि द्वारा आप भी विध्वंसक तत्त्वों का नाश करें ॥१० ॥

२८१३. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥११ ॥

बृहस्पतिदेव ने जिस फालमणि को वायु की गतिशीलता के लिए धारण किया था, वह मणि नित्यप्रति बार-बार वायुदेव को गतिशील बनाती रहती है। उस मणि द्वारा आप शत्रुओं का विनाश करें ॥११ ॥

२८१४. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि
रक्षतः। स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१२ ॥

बृहस्पतिदेव ने जिस मणि को वायु की गतिशीलता हेतु धारण किया था, उस मणि से अश्वनीकुमार कृषि की सुरक्षा करते हैं। वह अश्विनीकुमारों को नित्यप्रति बार-बार जल प्रदान करती है। हे मणि धारणकर्त्ता ! आप इससे विध्वंसक तत्त्वों का संहार करें ॥१२ ॥

२८१५. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः। सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१३॥

बृहस्पतिदेव ने जिस मणि को वायु की गतिशीलता हेतु बाँधा था, सवितादेव ने उस मणि को बाँधकर स्वर्ग पर विजय प्राप्त.की। सवितादेव के लिए यह मणि प्रतिदिन बार-बार शुभ सत्य-वाणी उच्चारण करती है। हे मणिधारणकर्त्ता ! आप इससे विध्वंसक तत्त्वों का संहार करें ॥१३॥

२८१६. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः। सो आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।

जिस मणि को बृहस्पतिदेव ने वायु की गतिशीलता हेतु बाँधा था, उस मणि को धारण करके जल सदैव अक्षयरूप से दौड़ता रहता है। इन जल-प्रवाहों के निमित्त यह मणि नित्यप्रति अत्यधिक मात्रा में अमृत ही देती रहती है। हे मणिधारणकर्त्ता ! आप इस मणि द्वारा अनिष्टकारक तत्त्वों का संहार करें।।१४॥

२८१७. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्। सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१५॥

जिस मणि को बृहस्पतिदेव ने वायु की तीव्रता हेतु बाँधा था, उस सुखदायी मणि को राजा वरुण ने बँधवाया था। वरुणदेव के निमित्त यह मणि नित्यप्रति अधिक से अधिक सत्य ही प्रदान करती है। हे मणि धारणकर्त्ता ! आप इस मणि द्वारा शत्रुओं को विनष्ट करें ॥१५॥

२८१८. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वांल्लोकान् युधाजयन्। स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१६॥

जिस मणि को वायु की तीव्रता हेतु बृहस्पतिदेव ने धारण किया, इसी मणि को धारण करके देवों ने युद्ध द्वारा सम्पूर्ण लोकों को अपने आधिपत्य में किया था। देवों के लिए यह मणि नित्य बार-बार विजय प्राप्त करती है। उस मणि द्वारा आप शत्रुओं का संहार करें ॥१६॥

२८१९. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्। स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि।।१७॥

जिस मणि.को बृहस्पतिदेव ने वायु की तीव्रता हेतु धारण किया था; उस सुखदायी मणि को देवों ने भी धारण किया था। देवों के लिए यह मणि प्रतिदिन बार-बार विश्वसुख प्रदान करती रहती है। ऐसी मणि के द्वारा आप शत्रुओं का विनाश करें ॥१७॥

२८२०. ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत। संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥१८॥

ऋतुओं और ऋतु-अवयव (महीनों) ने इस मणि को धारण किया था, इसको धारण करके संवत्सर सभी प्राणियों का संरक्षण करते हैं ॥१८॥

२८२१. अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत। प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधरॉं अकः।

अन्तर्दिशाओं और प्रदिशाओं ने इस मणि को धारण किया था; प्रजापालक परमेश्वर द्वारा निर्मित यह मणि हमारे शत्रुओं को दुर्गति में धकेले ॥१९॥

२८२२. अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत। तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२०॥

अथर्ववेत्ताओं और आथर्वणिकों (अथर्व के मन्त्र समूह) ने इस मणि को धारण किया था, उससे शक्तिशाली हुए अंगिराओं ने शत्रु-नगरों को तोड़ डाला । ऐसी मणि द्वारा आप शत्रुओं का संहार करें ॥२० ॥

२८२३. तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत्। तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२१ ॥

उस मणि को धारण करके धाता (विधाता) प्राणियों की रचना करने में समर्थ हुए , उस मणि द्वारा आप विध्वंसक तत्त्वों को विनष्ट करें ॥२१ ॥

२८२४.यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्। स मायं मणिरागमद् रसेन सहवर्चसा ॥

असुर विनाशक जिस मणि को बृहस्पतिदेव ने देवशक्तियों के लिए धारण किया था, वह मणि रस और तेज के साथ हमारे समीप पहुँच चुकी है ॥२२ ॥

२८२५. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥२३ ॥

जिस असुर संहारक मणि को देवों के निमित्त बृहस्पतिदेव ने धारण किया । वह मणि गौ (गौओं या किरणों), अजाओं (अजन्मी शक्तियों), पोषक अन्न तथा प्रजा के साथ हमारे समीप पहुँच गई है ॥२३ ॥

२८२६. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥२४ ॥

बृहस्पतिदेव ने असुर संहारक जिस मणि को देवों के निमित्त बाँधा था , वह मणि जौ, चावल और ऐश्वर्य के साथ हमारे समीप पहुँच रही है ॥२४ ॥

२८२७. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥२५ ॥

देवों के निमित्त जिस असुर संहारक मणि को बृहस्पतिदेव ने धारण किया था, वह मणि घी की धाराओं, शहद, अन्न के साथ हमारे पास पहुँच रही है ॥२५ ॥

२८२८. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥२६ ॥

देवों के निमित्त बृहस्पतिदेव ने जिस राक्षस नाशक मणि को धारण किया था, ऐसी मणि अन्न, बल, धन और सम्पत्ति के साथ हमारे समीप पहुँच गई है ॥२६ ॥

२८२९. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ॥२७ ॥

देवों के लिए बृहस्पतिदेव ने जिस असुर नाशक मणि को धारण किया था । तेज, दीप्ति, यश और कीर्ति के साथ यह मणि हमारे समीप आ गई है ॥२७ ॥

२८३०. यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥२८ ॥

देवों के लिए बृहस्पतिदेव ने असुर विनाशक जिस मणि को धारण किया था, यह मणि सभी ऐश्वर्यों के साथ हमारे समीप पहुँच गई है ॥२८ ॥

२८३१. तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये । अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥

यह मणि शत्रुनाशक, क्षात्रतेज को बढ़ाने वाली और शत्रुओं को पराभूत करने वाली है । इसे देवगण पोषण-क्षमता के लिए हमें प्रदान करें ॥२९ ॥

२८३२. ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ॥३० ॥

हम इस कल्याणकारी मणि को ज्ञान और तेज के साथ धारण करते हैं । यह मणि शत्रुरहित और शत्रुसंहारक है । हे मणे ! आप हमारे वैरियों को दुर्दशाग्रस्त करें ॥३० ॥

२८३३. उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः । यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते । स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३१ ॥

देवों द्वारा उत्पादित यह मणि हमें शत्रुओं से उत्तम स्थिति में रखे । जिस मणि के दूध और जल को तीनों लोक उपभोग करते हैं, इस प्रकार की यह मणि श्रेष्ठता प्राप्ति के लिए हमारे द्वारा धारण की जाए ॥३१ ॥

२८३४. यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥३२ ॥

देव, मनुष्य और पितर जिस मणि पर सदैव निर्भर रहते हैं, वह हमें उत्तम स्थान की ओर अग्रसर करे ॥३२ ॥

२८३५. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु

फाल द्वारा कुरेदे जाने पर जिस प्रकार पृथ्वी में बोया गया बीज उगता है, उसी प्रकार यह मणि हमारे लिए सन्तान, पशु और खाद्यान्न पैदा करे ॥३३ ॥

२८३६. यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥३४ ॥

हे यज्ञवर्द्धक मणे ! आप मंगलकारिणी को जिसके निमित्त हम धारण कर रहे हैं, सैकड़ों तरह के अनुदान देने वाली हे मणे ! आप उस प्रयोजन को श्रेष्ठता की ओर बढ़ाएँ ॥३४ ॥

२८३७. एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥३५

हे अग्ने ! आप भली प्रकार स्थापित किये गये ईंधन का सेवन करते हुए , आहुतियों से प्रदीप्त हों । ज्ञान (मन्त्र सामर्थ्य) से प्रदीप्त उन सर्वज्ञ अग्निदेव से हम सद्बुद्धि, कल्याण, सन्तान, दर्शनशक्ति और पशु प्राप्त करें ॥

[७ - सर्वाधारवर्णन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा क्षुद्र । **देवता-** स्कन्भ, आत्मा (अध्यात्म) । **छन्द-**अनुष्टुप्, १ विराट् जगती, २, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, ७, १३ परोष्णिक्, १०, १४, १६, १८-१९ उपरिष्टात् बृहती, ११, १२, १५, २०, २२, ३९ उपरिष्टात् ज्योति जगती, १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, २१ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, ३१ मध्येज्योति जगती, ३२, ३४, ३६ उपरिष्टात् विराट् बृहती, ३३ पराविराट् अनुष्टुप्, ३५ चतुष्पदा जगती, ३-६, ९, ३८, ४२-४३ त्रिष्टुप्, ४१ आर्षी त्रिपदा गायत्री, ४४ एकावसाना पञ्चपदा निचृत् पदपंक्ति द्विपदार्ची अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता स्कम्भ हैं, जिसका अर्थ होता है आधार, भार सँभालने वाला स्तम्भ । प्रश्न किया गया है कि वह आधार कौन सा है, जिस पर यह सारी सृष्टि व्यवस्था टिकी हुई है । मन्त्रों के भाव से स्पष्ट होता है कि ऋषि की दृष्टि में कोई ऐसी चेतन

सत्ता है, जिस पर पदार्थपरक तथा गुणपरक सृष्टि के विभिन्न घटक टिके हुए हैं। स्वयं परमात्मा या प्रकृति की चेतन सत्ता अथवा चेतन के सागर परम व्योम के साथ ही मन्त्रों के भावों की संगति बैठती है-

२८३८. कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम्।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१ ॥

इस (स्कम्भ-जीवन धारक देह) के किस अंग में तप:शक्ति रहती है ? किस अंग में ऋत (यज्ञ) रहता है ? इसकी श्रद्धा कहाँ टिकती और व्रत कहाँ स्थित होते हैं ? इसके किस अंग में सत्य का निवास है ? ॥१ ॥

[भाव यह है कि इसके हर अंग में हर गुण स्थित हैं, कोई भी विशेषता एक अंग या क्षेत्र में सीमित नहीं रहती है।]

२८३९. कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२ ॥

इसके किस अंग में अग्नि प्रदीप्त होती है ? किस अंग से वायु प्रवाहित होती है ? उस महान् स्कम्भ के किस अंग का परिमाप करता हुआ चन्द्रमा प्रकाशित होता है ? ॥२ ॥

२८४०. कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३ ॥

इसके किस अङ्ग में भूमि का निवास है ? किस अंग में अन्तरिक्ष रहता है ? किस अंग में सुरक्षित द्युलोक रहता है तथा किस अंग में उच्चतर द्युलोक का उत्तर भाग रहता है ? ॥३ ॥

२८४१. क्व१ प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व१ प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४ ॥

ऊपर को उठती हुई अग्नि कहाँ जाने की इच्छा करती है ? वायु कहाँ जाने की इच्छा करती हुई बहती है ? उस स्कम्भ को बताओ, वह कौन सा है, जहाँ जाने की इच्छा करते हुए प्राणी आवर्तन के चक्कर में पड़े हैं ? ॥४ ॥

२८४२. क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५ ॥

संवत्सर के साथ मिलते हुए पक्ष और मास कहाँ जाते हैं ? जहाँ ये ऋतुएँ और उनमें उत्पन्न पदार्थ जाते हैं, उस स्कम्भ को बताओ कि वह कौन सा है ? ॥५ ॥

२८४३. क्व१ प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥६ ॥

विरुद्ध रूप वाली युवतियाँ अर्थात् दिनप्रभा एवं रात्रि मिलकर दौड़ती सी कहाँ जाती हैं ? बताओ वह कौन सा स्कम्भ है, जहाँ पाने की इच्छा वाला यह जल जा रहा है ? ॥६ ॥

२८४४. यस्मिन्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥७ ॥

प्रजापति ने जिस पर आधारित होकर समस्त लोकों को धारण किया है, बताओ वह स्कम्भ कौन सा है ? ॥

२८४५. यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥८ ॥

प्रजापति ने जो श्रेष्ठ (परम), निकृष्ट (अवर) तथा मध्यम विश्वरूप की रचना की है, उसमें स्कम्भ कितने अंश प्रवेश किया है तथा वह अंश कितना है, जो प्रविष्ट नहीं हुआ ? ॥८ ॥

[इसका उत्तर पूर्णमदः पूर्णमिदम् के रूप में ही मिल सकता है ।]

२८४६. कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥९ ॥

यह सर्वाधार (स्कम्भ) भूतकाल में कितने अंश में प्रविष्ट हुआ था, भविष्यत् में कितने अंश से शयन कर रहा है तथा जो अपने एक अंग को हजारों-प्रकारों में प्रकट कर लेता है, वह वर्तमान में कितने अंश से प्रविष्ट है ? ॥९ ॥

२८४७. यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१० ॥

जिसमें सब लोक, कोश, ब्राह्मी अप् (मूल सक्रिय तत्त्व) निवास करते हैं, ऐसा लोग जानते हैं । सत् और असत् जिसके अन्दर हैं, उस स्कम्भ को बताएँ ॥१० ॥

२८४८. यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥११॥

उस स्कम्भ को बताएँ, जहाँ तप तथा व्रत करके श्रेष्ठ पुरुष प्रतिष्ठित होते हैं और जहाँ ऋत, श्रद्धा तथा अप् ब्रह्म समाहित हैं ? ॥११ ॥

२८४९. यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

जिसमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक स्थित हैं तथा अग्नि, सूर्य, चन्द्र एवं वायु जिसके आश्रय में रहते हैं, उस स्कम्भ को बताएँ ? ॥१२ ॥

२८५०. यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः । स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

जिस स्कम्भ के अंग में समस्त तैंतीस देव स्थिर हैं, उसे बताएँ ? ॥१३ ॥

२८५१. यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१४ ॥

जिसमें प्रथम ऋषि तथा ऋक्, साम, यजु तथा मही (महती विद्या) विद्यमान हैं, जिसमें मुख्यरूप से एक ही ऋषि (अथर्वा) समर्पित हैं (अर्थात् अथर्ववेद प्रकट हुआ) , उस स्कम्भ के बारे में हमें बतलाएँ ॥१४ ॥

२८५२. यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्य१ः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

वह स्कम्भ कौन सा है ? जहाँ पुरुष, अमृत और मृत्यु भली प्रकार समाहित हैं, समुद्र जिसकी नाड़ियाँ हैं ॥१५ ॥

२८५३. यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्य१स्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१६ ॥

उस स्कम्भ को बताएँ , जिसकी नाड़ियाँ पहली चारों दिशाएँ हैं तथा यज्ञ जहाँ तक पहुँचता है ॥१६ ॥

२८५४. ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्। यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्। ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥१७ ॥

जो पुरुष में ब्रह्म को जानते हैं, वे परमेष्ठी को जानते हैं। जो परमेष्ठी, प्रजापति तथा ज्येष्ठ ब्राह्मण को जानते हैं, वे स्कम्भ को जानते हैं ॥१७ ॥

२८५५. यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१८ ॥

जिसका सिर वैश्वानर है और नेत्र अंगिरा वंशी हुए थे। 'यातु' जिसके अंग हैं, उस स्कम्भ को बताएँ ॥१८ ॥

२८५६. यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१९ ॥

वह कौन सा स्कम्भ है, बताएँ ? जिसके मुख को ब्रह्म , जिह्वा को मधुकशा तथा 'ऐन' (दुग्धाशय) स्तन को विराट् कहते हैं ? ॥१९ ॥

२८५७. यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२०॥

उस स्कम्भ के बारे में बताएँ ? जिससे ऋचाएँ प्रकट हुईं, यजुर्वेद के मन्त्र प्रकट हुए, जिसके लोम साम हैं और अथर्व जिसका मुख है ॥२० ॥

२८५८. असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥२१ ॥

असत् से उत्पन्न हुई एक प्रतिष्ठित शाखा को मनुष्यगण परमश्रेष्ठ मानते हैं तथा जो दूसरे लोग हैं, वे सत्‌रूप से उसे ही स्वीकार करके उसकी उपासना करते हैं ॥२१ ॥

२८५९. यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः। भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२२ ॥

उस स्कम्भ के बारे में बताएँ ? जिसमें सूर्य, रुद्र तथा वसु निवास करते हैं और जिसमें भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् सहित समस्त लोक समाहित हैं ॥२२ ॥

२८६०. यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥२३ ॥

तैंतीस देव जिसकी एवं जिसके निधि की रक्षा करते हैं, उसको एवं उसकी उस निधि को कौन जानता है ? ॥२३ ॥

२८६१. यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥२४ ॥

ब्रह्मवेत्ता जहाँ ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना करते हैं तथा जो उनको निश्चयपूर्वक प्रत्यक्ष जानता है, वह जानने वाला ब्रह्मा हो सकता है ॥२४ ॥

[ज्येष्ठ ब्रह्म के सम्बन्ध में अगले सूक्त क्र. ८ में विवेचना की गई है।]

२८६२. बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे । एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः

जो असत् (अर्थात् प्रकृति) से उत्पन्न हुए हैं, वे बृहत् नाम के देव हैं, वे स्कम्भ के अंग हैं । लोग उन्हें असत् परन्तु श्रेष्ठ कहते हैं ॥२५ ॥

२८६३.यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् । एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ।

जहाँ स्कम्भ (सर्वाधार-आत्मा) ने निर्माण के क्रम में पुराण (तत्त्व) को ही विवर्तित किया, स्कम्भ के उस अंग को पुराण करके ही जानते हैं ॥२६ ॥

२८६४. यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥२७ ॥

तैंतीस देवता जिसके शरीर के अंग रूप में शोभा पाते हैं, उन तैंतीस देवताओं को केवल ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं ॥२७ ॥

२८६५. हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥२८ ॥

(जिस) परम हिरण्यगर्भ को लोग अवर्णनीय जानते हैं, उस हिरण्यगर्भ को पहले स्कम्भ ने ही इस लोक में प्रसिञ्चित किया ॥२८ ॥

[परम व्योम में से ही हिरण्यगर्भ (सृष्टि का मूल उत्पादक प्रवाह) उत्पन्न हुआ था । पदार्थ विज्ञानी इस तत्त्व हिरण्यगर्भ को नहीं पा सके हैं, वे अभी सृष्टि रचना के आधार-भूत मुख्य तत्त्व (बेसिक मोर्टर आफ द यूनिवर्स) खोज रहे हैं ।]

२८६६. स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥२९ ॥

स्कम्भ में लोक, तप तथा ऋत समाहित हैं । हे स्कम्भ ! जो तुम्हें प्रत्यक्ष जानता है, वह जानता है कि इन्द्र (आत्मा) में ही सब समाया है ॥२९ ॥

२८६७. इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३० ॥

इन्द्र में सब लोक, तप एवं ऋत समाहित हैं । हे इन्द्रदेव ! मैं आपको प्रत्यक्ष जानता हूँ । स्कम्भ में ही सब समाया है ॥३० ॥

२८६८. नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः । यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्
स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥३१ ॥

सूर्योदय से पहले, उषाकाल से भी पूर्व ब्राह्ममुहूर्त में जो नाम रूप ईश्वर को, इस (सर्वाधार) नाम से पुकारता है (अर्थात् जप करता है), वह आत्मा उस स्वराज्य को प्राप्त कर लेती है, जिससे श्रेष्ठ कोई भूत (जगत् का पदार्थ) नहीं है तथा जो पहले (अज) अजन्मा था ॥३१ ॥

२८६९. यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः

भूमि जिसकी प्रमा (पाद मूल के समान) है, अन्तरिक्ष उदर है तथा द्युलोक जिसका सिर है, उस ब्रह्म को नमस्कार है ॥३२ ॥

२८७०. यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं१ तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३३ ॥

सूर्य तथा पुनः-पुनः नया होने वाला (कलाओं के आधार पर) चन्द्रमा जिसके नेत्र हैं । अग्नि को जिसने अपना मुख बनाया, उस श्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ॥३३ ॥

२८७१. यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३४ ॥

प्राण और अपान जिसके वायु हैं, अंगिरस् जिसकी आँखें हैं । जिसकी उत्कृष्ट ज्ञापक दिशाएँ हैं, उस ज्येष्ठ (सर्वश्रेष्ठ) ब्रह्म को नमस्कार है ॥३४ ॥

२८७२. स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥३५ ॥

द्यावा-पृथिवी एवं विशाल अन्तरिक्ष को स्कम्भ ने धारण कर रखा है । छह उर्वियों और प्रदिशाओं को स्कम्भ ने ही धारण कर रखा है और स्कम्भ ही इस विश्व में प्रविष्ट है ॥३५ ॥

[उस चेतन या परम व्योम में ही सब समाए हुए हैं तथा सबके अन्दर भी वही समाया हुआ है ।]

२८७३. यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३६ ॥

जो श्रमपूर्वक किये गये तप द्वारा प्रकट होता है तथा समस्त लोकों को व्याप्त किये हुए है, जिसने केवल सोम को ही प्रवाहित किया है, उस श्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ॥३६ ॥

२८७४. कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥३७ ॥

वायु क्यों स्थिर नहीं रहती, मन क्यों नहीं रमता तथा जल किस सत्य को पाने की इच्छा से प्रवाहित है ? ॥

२८७५. महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥३८ ॥

इस विश्व में एक परम पूज्य है, जो सलिल पृष्ठ पर कान्तिवान् होता है, जिसे तपः द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । जैसे वृक्ष के तने पर शाखाएँ आधारित रहती हैं, वैसे ही समस्त देव उनका आश्रय लेते हैं ॥३८ ॥

२८७६. यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा । यस्मै देवाः सदा बलिं
प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥३९ ॥

देवता जिनके लिए हाथ, पैर, वाणी, कान एवं नेत्रों से सतत बलि (आहुति) प्रदान करते रहते हैं । देव जिनके विमित शरीर में अमित उपहार प्रदान करते रहते हैं । उस स्कम्भ को बताएँ , वह कौन सा स्कम्भ है ? ॥३९ ॥

२८७७. अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिञ्ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥४० ॥

(जो स्कम्भ को जान लेता है) उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है । वह पाप से निवृत्त हो जाता है । जो तीन ज्योतियाँ प्रजापति में होती हैं, वह उसे प्राप्त हो जाती हैं ॥४० ॥

२८७८. यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद। स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥४१ ॥

जो सलिल (अन्तरिक्ष) में स्थित तेजोमय वेतस् (संसार) को जानता है, वही गुह्य प्रजापति है ॥४१ ॥

२८७९. तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम्॥४२ ॥

दो विरुद्ध रूपवाली युवतियाँ (उषा और रात्रि) हैं। वे छह खूटियों (छह ऋतुओं) वाले विश्वरूपा जाल को बुन रही हैं। एक, तन्तुओं (किरणों) को फैलाती है तथा अन्य दूसरी उन्हें अपने में धारणकर (समेट) लेती है। ये दोनों न तो विश्राम करती हैं और न इनका कार्य अन्त तक पहुँचता है ॥४२ ॥

२८८०. तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात्।
पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥४३ ॥

नृत्य के समान श्रम करती हुई, उन दोनों युवतियों में कौन सी पहली है, हम यह नहीं जानते। इसको एक पुरुष बुनता है तथा दूसरा पुरुष उकेलता (तन्तुओं को उधेड़ता) है। इसको वह स्वर्ग में धारण करता है ॥४३ ॥

२८८१. इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥४४ ॥

वे मयूखें (किरणें) ही द्युलोक को थामकर रखती हैं। साम (तालमेल के साथ चलने) वाले दिव्य प्रवाह उस तन्तुजाल को बनाए हुए हैं ॥४४ ॥

[८- ज्येष्ठब्रह्मवर्णन सूक्त]

[**ऋषि-** कुत्स। **देवता-** आत्मा (अध्यात्म)। **छन्द-** त्रिष्टुप्, १ उपरिष्टात् विराट् बृहती, २ बृहती गर्भा अनुष्टुप्, ५ भुरिक् अनुष्टुप्, ६, १४, १९- २१, २३, २५, २९, ३१-३४, ३७-३८, ४१, ४३ अनुष्टुप्, ७ पराबृहती त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् गर्भा त्रिष्टुप्, ११ जगती, १२ पुरोबृहती त्रिष्टुप् गर्भार्षी पंक्ति, १५, २७ भुरिक् बृहती, २२ पुरउष्णिक्, २६ द्व्युष्णिक् गर्भा अनुष्टुप्, ३० भुरिक् त्रिष्टुप्, ३९ बृहती गर्भा त्रिष्टुप्, ४२ विराट् गायत्री।]

इस सूक्त में ज्येष्ठ ब्रह्म का उल्लेख है। ज्येष्ठ का प्रचलित अर्थ 'वय ज्येष्ठ' उम्र में बड़ा माना जाता है; किन्तु इसका अर्थ गुण श्रेष्ठ भी होता है। ज्येष्ठ ब्रह्म के बारे में विचारकों की दो अवधारणाएँ मिलती हैं। एक मान्यता यह है कि ज्येष्ठों में सबसे ज्येष्ठ ब्रह्म ही है, अन्य उससे कनिष्ठ छोटे हैं। दूसरी मान्यता वेदान्त के 'अपर ब्रह्म' और 'परब्रह्म' जैसी है। ब्रह्म सम्बोधन बहुतों के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे- अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, अपो वै ब्रह्म, ब्रह्मकर्म (यज्ञ) , ब्रह्मज्ञान (वेद) , ब्रह्मवर्चस आदि। अपर ब्रह्म सृष्टि का उद्भव, पालन एवं संवरणकर्त्ता है; किन्तु परम व्योम में जहाँ सृष्टि हुई ही नहीं, वहाँ वह परम या ज्येष्ठ ब्रह्म है, ऐसी विद्वज्जनों की अवधारणा है-

२८८२. यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१ ॥

जो भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्काल में सबके अधिष्ठाता हैं। जिनका केवल प्रकाशमय स्वरूप है, हम उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार करते हैं ॥१ ॥

२८८३. स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत्॥२ ॥

प्राणयुक्त और पलक झपकने वाला (अर्थात् सचेष्ट द्रष्टा) , सब आत्मा से युक्त जो यह सवाधार है, वही स्कम्भ, द्यौ और पृथ्वी को स्थिर किए है ॥२ ॥

[उसे पलक झपकाने वाला कहा गया है। पलक झपकाना स्वचालित प्रक्रिया (रिफ्लैक्स एक्शन अथवा आटो कन्ट्रोल्ड सर्किट) के अन्तर्गत आता है। ब्रह्म की भी सारी क्रियाएँ इसी स्तर की स्वनियंत्रित होती हैं।]

२८८४. तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्य१न्या अर्कमभितोऽविशन्त।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥३॥

तीन प्रकार की प्रजाएँ (सात्त्विक, राजस् और तामस्) अत्यधिक आवागमन को प्राप्त होती हैं। उनसे भिन्न एक (सत्त्वगुणी प्रजा) सविता मण्डल में आश्रय लेती है। बड़ी (राजस्) चमकीले (यशस्वी) लोकों में फैलती है तथा तीसरी हरण (परिवर्तन) शील प्रजा या शक्तियाँ हरण करने वाले देवों के अधिकार में जाती हैं ॥३॥

२८८५. द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥४॥

बारह प्रधियाँ, एक चक्र और तीन नाभियों वाले उसको कौन जानता है? वहाँ तीन सौ साठ खूँटे और उतनी ही कीलें हैं, जो अविचल हैं ॥४॥

[यहाँ बारह माह, एक संवत्सर, तीन ऋतु ३६० दिन व ३६० रात्रि का आशय सुसंगत लगता है।]

२८८६. इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥५॥

हे सविता! आप यह जानिए कि यहाँ छह यम (जोड़े) हैं, एक अकेला है, इनमें जो अकेला है, उसमें सब मिलने की इच्छा करते हैं ॥५॥

[छह ऋतुएँ हैं; जो दो-दो के जोड़े से रहती हैं - ये यम हैं, तो एक अकेला सूर्य या संवत्सर है, जिससे संयुक्त होते हैं। काया में पाँच तन्मात्राएँ एवं एक मन - ये छह यम हैं तथा एक जीवात्मा अकेली है, जिससे सभी जुड़ना चाहते हैं।]

२८८७. आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम्।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥६॥

प्रकाशवान् आत्मा इस देहरूप गुहा में विराजती है। जरत् (गतिशील) नामक महान् पद में यह सचेष्ट और प्राणयुक्त (आत्मा) प्रतिष्ठित है ॥६॥

२८८८. एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव ॥७॥

एक नाभि वाला एक चक्र, हजारों अक्षरों (अक्षय शक्तियों) वाला एक चक्र आगे एवं पीछे घूमता है, उसने अपने आधे भाग से विश्व का निर्माण किया और जो शेष आधा भाग है, वह कहाँ है? ॥७॥

२८८९. पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥८॥

इनमें जो पञ्चवाही (पाँच प्राणों से वहन की जाने वाली, आत्मा) है, वह प्रगति करती है या अन्त तक (परमात्मा तक) पहुँचती है। जो घोड़े (वहनकर्त्ता) युक्त हैं, वे भली प्रकार वहन करते हैं। इसका न चलना तो दिखाई देता है; पर चलना नहीं दिखाई देता है, यह समीप होकर भी दूर तक है और दूर तक संचरित होकर भी समीप है ॥८॥

२८९०. तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥९॥

तिरछे मुख वाला एवं ऊपर की ओर पैंदी वाला एक चमस् (पात्र) है। उसमें विश्वरूप यश निहित है। उसमें सात ऋषिगण इस महान् शरीर की रक्षा हेतु विराजते हैं ॥९॥

[इसका स्पष्टीकरण बृहदारण्यक (२.२.३.४) में किया गया है। मानव शरीर का कपाल ऊपर पेंदी वाला पात्र है, मुख तिरछा (सामने की ओर) है , सात ऋषिरूप प्राण आदि इसके पहरेदार हैं।]

२८९१. या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥१० ॥

जो विश्व में योजित है; आगे भी योजित है, पीछे भी योजित है तथा सब ओर योजित है । ऋचाओं में ऐसी वह कौन सी ऋचा है, जिससे यज्ञ का विस्तार किया जाता है ? ॥१० ॥

२८९२. यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥११ ॥

जो कम्पन करता है, गति करता है (फिर भी) स्थिर रहता है, जो प्राण धारण करता है, प्राणरहित होता है; जो पलक झपकाता है तथा जिसकी सत्ता है, वह ही इस विश्व को, पृथ्वी को धारण करता है, पुनः (प्रलयकाल में) वह सब मिलकर एक हो जाता है ॥११ ॥

२८९३. अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥१२ ॥

नानारूपों में वह अनन्त ही प्रकटरूप से फैला है । इस अनन्त में ही ससीम समाया है और यह निःसीम सब ससीम में समाया है । इसके भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के समस्त सम्बन्धों को जानता हुआ वह परमात्मा इस जगत् को चलाता है ॥१२ ॥

२८९४. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥१३ ॥

वह प्रजापति गर्भ (जगत्) के अन्दर अदृश्यरूप से विचरण करता हुआ नानारूपों में प्रकट होता है। वह अपने आधे भाग से समस्त भुवनों को उत्पन्न करता है, जो इसका शेष आधा भाग है, वह ज्ञानमय पुरुष कौन सा है ? ॥१३ ॥

२८९५. ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् । पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ।

भरे घड़े को ऊपर लाने वाला कोई (कहार) होता है । इस घटनाक्रम को लोग आँखों से तो देखते हैं; किन्तु (विश्वघट का धारणकर्त्ता कौन है ?) मन से इस सबका बोध नहीं कर पाते ॥१४ ॥

२८९६. दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥१५ ॥

अपूर्ण एवं पूर्ण दोनों से ही परे यह पूजनीयदेव महान् विश्व-ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित उस (विराट्) के लिए राष्ट्र सेवक बलि (आहार आदि) प्रदान करते हैं ॥१५ ॥

२८९७. यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति । तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन । ।

सूर्य जिससे उदित होता है और जिसमें ही अस्त हो जाता है, हम उसे ही ज्येष्ठ ब्रह्म मानते हैं । उसका अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता ॥१६ ॥

२८९८. ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥१७ ॥

जो प्राचीन, मध्य एवं वर्तमानकाल में स्थित इस सर्वज्ञानमय पुरुष का वर्णन करते हैं, वे आदित्य का ही वर्णन करते हैं । वे इससे द्वितीय अग्नि का वर्णन करते हैं तथा तीसरे त्रिवृत् हंस (तीन गुणों से आवृत आत्मा) का वर्णन करते हैं ॥१७ ॥

२८९९. सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥१८ ॥

हजारों दिनों (के प्रयास) से इस हंस (बँधे जीव) के पंख (आवागमनरूपी) गिर जाते हैं, तब यह अपने मुक्त स्वरूप में स्थित हो जाता है । वह (मुक्तात्मा) समस्त देवताओं (दिव्यताओं) को हृदय में धारण करके, समस्त धामों को देखता हुआ (परमधाम को) जाता है ॥१८ ॥

२९००. सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥१९ ॥

जो सत्य के द्वारा ऊपर तपता है, ज्ञान के द्वारा इस निचले जगत् को देखता है (या प्रकाशित करता है) तथा प्राण द्वारा तिर्यक् जगत् को जीवन्त रखता है, उसमें ही ज्येष्ठ ब्रह्म रहता है ॥१९ ॥

[जो सत्य की प्रेरणा ऊपर से ले, ज्ञानपूर्वक जगत् में व्यवहार करे तथा दोनों से सम्पर्क बनाए रखकर जीवन्त बना रहे, ज्येष्ठ ब्रह्म उसी का वरण करता है ।]

२९०१. यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वाञ्ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥२० ॥

जो (आत्म ज्ञानरूप) धन को मथने वाली उन दो (विद्या तथा अविद्या) अरणियों को जानता है । वह जानने वाला ज्येष्ठ ब्रह्म को जान सकता है ॥२० ॥

२९०२. अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्व१राभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥२१ ॥

प्रारम्भ में जब वह पादरहित था, तब वह इस समस्त जगत् अपने में धारण किये था । बाद में वह ही चार पाद (जरायुज, अण्डज, उद्‌भिज तथा स्वेदज) वाला भोग्य बनता है और अन्त में (प्रलयकाल में) समस्त भोजन को निगल लेता है ॥२१ ॥

२९०३. भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु । यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥२२ ॥

भोग्य हुए (इन ज्येष्ठब्रह्म को) जो बहुत-सा अन्न (यज्ञीयप्रक्रिया द्वारा) प्रदान करता है, वह सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त हुए , इस सनातनदेव की (ज्येष्ठब्रह्म की) ही उपासना करता है ॥२२ ॥

२९०४.सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः । अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः

उसे सनातन (पुरुष) कहते हैं, फिर आज भी वह नया है, जैसे कि दिन और रात्रि अन्योन्याश्रितरूप से नित-नये उत्पन्न होते हुए भी सनातन हैं ॥२३ ॥

२९०५. शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥२४ ॥

सैकड़ों, हजारों, लाखों ही नहीं असंख्य स्वत्व (आत्मतत्त्व) इसमें (ज्येष्ठब्रह्म में) निविष्ट हैं । वे इसमें ही लीन हो जाते हैं । यह देव ही साक्षीरूप से सबमें प्रकाशित रहता है ॥२४ ॥

२९०६. बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥२५ ॥

एक बाल से भी सूक्ष्म (अर्थात् सूक्ष्मतम-जड़) है और एक होते हुए भी दिखाई नहीं देता (अर्थात् चेतन) है। जो दिव्यशक्ति इन दोनों का आलिंगन करती है, वह चेतन आद्यशक्ति मेरा प्रिय है ॥२५ ॥

२९०७. इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः।

मनुष्य के घर में (अर्थात् देह में), यह कल्याणकारी चित्शक्ति अजर और अमररूप में लेटती है (अर्थात् निवास करती है)। जो इसके लिए उपासना करता है, वह इस लोक में पूजा (सम्मान) पाता है ॥२६ ॥

२९०८. त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥२७ ॥

तुम्हीं स्त्री हो, तुम्हीं पुरुष, तुम्हीं युवक एवं तुम्हीं युवती हो। वृद्ध होने पर तुम्हीं दण्ड लेकर चलते हो अर्थात् तुम्हीं नानाप्रकार के रूपों में प्रकट होते हो ॥२७ ॥

२९०९. उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥२८ ॥

इनके पिता और पुत्र तथा ज्येष्ठ और कनिष्ठ एक ही देव हैं, जो मन में प्रविष्ट हैं। वही पहले भी उत्पन्न हुआ था तथा वही गर्भ में आता रहता है ॥२८ ॥

२९१०. पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥२९ ॥

पूर्ण (परमेश्वर) से पूर्ण (जगत्) उत्पन्न होता है। पूर्ण से पूर्ण सींचा जाता है। आज (बोध हो जाने पर) हम जानते हैं कि यह कहाँ से सींचा जाता है ॥२९ ॥

२९११. एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्यु१षसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥३० ॥

यह सनातनशक्ति, सनातनकाल से विद्यमान है। यह पुरातनशक्ति ही समस्त संसार में व्याप्त रही है। ऐसी यह महान् देवी उषा को आभामयी बनाती है। वह अकेले-अकेले प्रत्येक प्राणी को देख रही है ॥३० ॥

२९१२. अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥३१॥

"अवि" (रक्षण करने वाली प्रकृति) देवी ऋत के द्वारा ढकी (आच्छादित) है। उसी के रूप से यह वृक्ष एवं पत्ते हरे हुए हैं ॥३१ ॥

२९१३. अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥३२ ॥

यह पास में आए हुए (शरणागत) को नहीं छोड़ता है और यह समीप स्थित को भी नहीं देखता है। इस देव के काव्य (वेदज्ञान) को देखो, जो न कभी मरता है और न ही जीर्ण होता है ॥३२ ॥

२९१४. अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥३३ ॥

जिसके पूर्व कोई नहीं था, उन (परमेश्वर) से प्रेरित वचन (वेद वाणियाँ) यथार्थ का वर्णन करती हुई , जहाँ तक जाती हैं, वह ज्येष्ठ ब्रह्म कहलाता है ॥३३ ॥

२९१५. यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥३४ ॥

जिस प्रकार अरे (चक्र की) उसकी नाभि में आश्रित होते हैं, उसी प्रकार देवता एवं मनुष्य उसमें आश्रित हैं ।अप्-तत्त्व उसके विषय में हमें बताए , जो माया द्वारा आच्छादित रहता है ॥३४ ॥

२९१६. येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥३५ ॥

जिनके द्वारा प्रेरित होकर वायु प्रवाहित होती है , जो मिली जुली पाँचों दिशाओं को अस्तित्व प्रदान करते हैं, जो देवता आहुतियों को अधिक मानते हैं, वे अप् प्रवाहों के नेता (नेतृत्व करने वाले) कौन हैं ? ॥३५ ॥

२९१७. इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥३६ ॥

एक वही इस पृथ्वी को आच्छादित करता है, एक वही अन्तरिक्ष के चारों ओर स्थित है । वह धारण करने वाला ही द्युलोक को धारण करता है । कुछ देव समस्त दिशाओं की रक्षा करते हैं ॥३६ ॥

२९१८. यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥३७ ॥

जिसमें ये समस्त प्रजाएँ ओत-प्रोत हैं , जो विस्तृत इस (प्रकृतिरूपी) सूत्र को एवं इसके कारणरूप सूत्र को भी जानता है । वास्तव में वह ज्येष्ठ ब्रह्म को जानता है ॥३७ ॥

२९१९. वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥३८ ॥

जिसमें ये समस्त प्रजाएँ ओत-प्रोत हैं, मैं उस विस्तृत (प्रकृतिरूपी) सूत्र को एवं उसके भी सूत्र (कारण) को जानता हूँ , वही ज्येष्ठब्रह्म है ॥३८ ॥

२९२०. यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वे वासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥३९ ॥

जब (प्रलयकाल में) द्यावा-पृथिवी के मध्य समस्त संसार को भस्म करने वाले अग्निदेव व्याप्त होते हैं, उस समय एक पत्नी (आज्ञा का पालन करने वाली एक मात्र संवरणशक्ति) ही रह जाती है, उस समय मातरिश्वा (वायु) कहाँ रहता है ? ॥३९ ॥

२९२१. अप्स्वा सीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥४० ॥

वायु उस समय अप् तत्त्व (सृष्टि के उत्पादक मूल सक्रिय तत्त्व) में प्रविष्ट रहता है तथा अन्य देव भी उसी में प्रवेश करते हैं, तब वह लोकों का रचनाकार सबका संचालक महान् परमेश्वर विद्यमान रहता है । सभी दिशाओं के जाज्वल्यमान रहने पर भी वह व्याप्त रहता है ॥४० ॥

२९२२. उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥४१ ॥

जो साधक प्राण (गय) से उत्तर (आगे) स्थित अमृत-प्रवाह को प्राप्त करके गायत्री महाविद्या में गतिशील होते हैं, जो साम (आत्मतत्त्व) से, साम (परमात्मतत्त्व) को जानते हैं, वे ही जानते हैं कि अज (अजन्मा-परमात्मा का) कहाँ प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) होता है ॥४१ ॥

२९२३. निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥४२ ॥

(अपनी शक्तियों का) निवेश करके (साधना की पूर्वोक्त) धारा के साथ गतिमान् (साधक) दिव्य सम्पदाओं के संग्राम में सत्य-धर्मपालक, सवितादेव तथा इन्द्रदेव की तरह (जयशील होकर) स्थित होता है ॥४२ ॥

२९२४. पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥४३ ॥

नौ द्वारों वाला पुण्डरीक जीवनरूपी कमल तीन गुणों (सत् , रज और तम) से घिरा है । उसमें जो वन्दनीय आत्मा का स्थान है, उसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥४३ ॥

२९२५. अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४४ ॥

निष्काम, धैर्यवान् , अमर तथा स्वयंभू ब्रह्म अपने ही रस से तृप्त रहता है । वह किसी भी विषय में न्यून नहीं है । उस धैर्यवान् , अजर तथा नित्य युवा आत्मा को जानने वाले मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होते ॥४४ ॥

[९ - शतौदनागौ सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** शतौदना(गौ) । **छन्द-** अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप्, १ २ पथ्यापंक्ति, २५ द्व्युष्णिक् गर्भानुष्टुप्, २६ पञ्चपदा बृहती अनुष्टुप् उष्णिक् गर्भा जगती, २७ पञ्चपदाति जागतानुष्टुब्गर्भा शक्वरी ।]

इस सूक्त के देवता 'शतौदना' हैं। जिसका अर्थ होता है 'सैकड़ों प्रकार का परिपक्व आहार देने वाली ।' उन्हें पय, घृत, मधु आदि की दात्री कहा गया है । इस आधार पर कुछ आचार्यों ने इस सम्बोधन को 'गौ' से जोड़ने का प्रयास किया है । व्यापक अर्थों में पृथ्वी एवं पोषक प्रकृति को भी गौ कहते हैं । उस संदर्भ में ही यह उक्ति ठीक है । पृथ्वी तथा प्रकृति मातृभाव से सैकड़ों प्रकार का पोषण देती है । अस्तु , वे 'शतौदना' हैं । इस 'शतौदना' को 'अहिंसनीय' कहा गया है । जो लोग प्रकृति संतुलन 'इकॉलाजी' को हानि पहुँचाते हैं, वे इस 'शतौदना' का हनन करते हैं । उनके प्रति ऋषि ने रोष प्रकट किया है-

२९२६. अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥१ ॥

पापियों (हानि पहुँचाने वालों) का मुख बन्द करो । उन शत्रुओं पर वज्र प्रहार करो । इन्द्रदेव द्वारा पहले दी गयी यह 'शतौदना' शत्रुओं का विनाश करने वाली तथा यजमान (यज्ञोन्मुख व्यक्तियों अथवा प्रक्रियाओं) का मार्गदर्शन करने वाली है ॥१ ॥

२९२७. वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥२ ॥

हे शतौदने ! आपका चर्म वेदिका बने और रोम कुशारूप हो । इस डोरी (यज्ञीयप्रक्रिया के सूत्रों) द्वारा आपको बाँधा गया है । यह ग्रावा (रस निष्पादक यंत्र) आपके ऊपर हर्ष से नृत्य करे ॥२ ॥

२९२८. बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं माष्ट्र्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥३ ॥

हे अहिंसनीय ! आपके बाल प्रोक्षणी बनें और जिह्वा शोधन करे । हे शतौदने ! आप पूज्य और पवित्र बनकर द्युलोक में गमन करें ॥३ ॥

२९२९. यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥४ ॥

जो मनुष्य 'शतौदना' का परिपाक करते हैं, वे कामनापूर्ति में समर्थ होते हैं और इससे हर्षित होकर ऋत्विग्गण यथायोग्य मार्ग से वापस जाते हैं ॥४ ॥

['शतौदना' तथा 'प्रकृति' का परिपाक विभिन्न प्रक्रियाओं से होता रहता है । मनुष्य में यज्ञीय तथा प्रकृति संवर्द्धक प्रक्रियाओं द्वारा सहायक बनते हैं । परिपाक में भाग लेने वाले लाभान्वित होते हैं ।]

२९३०. स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ।

जो 'शतौदना' को अपूप (मालपुवों) के रूप में प्रदान करते हैं, वे अन्तरिक्ष स्थित स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

[मालपुए का मैदा जब गर्म घी में छोड़ा जाता है, तो फैलकर बड़ा आकार बना लेता है । उसमें छिद्र हो जाते हैं तथा घी उसके अधिकतम भाग के साथ सीधे सम्पर्क में आकर उसे पकाता है । यज्ञ द्वारा छोड़े गए वायुभूत पोषक पदार्थ, इसी प्रकार प्रकृति में फैल जाते हैं । दिव्य आकाशीय प्रवाह उनके अधिकतम भाग के सीधे सम्पर्क में आकर उन्हें पोषण, क्षमता - सम्पन्न बनाते हैं । इसी प्रक्रिया की ओर ऋषि का संकेत प्रतीत होता है ।]

२९३१. स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥६ ॥

जो 'शतौदना' गौ को हिरण्य ज्योतियुक्त करके (यज्ञीय ऊर्जा या अंतरिक्षीय प्रकाशमान प्रवाहों से संयुक्त करके) दान करते हैं, वे उन लोकों को प्राप्त करते हैं, जो दिव्य तथा पार्थिव हैं ॥६ ॥

२९३२. ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥७ ॥

जो आपकी शान्ति के लिए तथा आपको परिपक्व करने वाले लोग हैं, वे सब आपकी सुरक्षा करेंगे । हे देवि ! आप उनसे भयभीत न हों ॥७ ॥

२९३३. वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥८ ॥

दक्षिण की ओर से वसुदेव आपकी सुरक्षा करेंगे, उत्तर की ओर से मरुद्गण और पीछे की ओर से आदित्य-गण आपकी सुरक्षा करेंगे, इसलिए आप अग्निष्टोम यज्ञ के पार गमन करें ॥८ ॥

२९३४. देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९ ॥

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व तथा अप्सराएँ, ये सब आपकी सुरक्षा करेंगे । आप अतिरात्र यज्ञ के पार गमन करें ॥९ ॥

२९३५. अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१० ॥

जो 'शतौदना' का दान करते हैं, वे अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथ्वी, सूर्य, मरुत् तथा दिशाओं आदि के सम्पूर्ण लोकों को प्राप्त करते है ॥१० ॥

२९३६. घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥११ ॥

हे अहिंसनीय सुभगा देवि ! आप घृत सिंचन करती हुई देवताओं को प्राप्त होंगी । आप पकाने वाले की हिंसा न करें, उन्हें स्वर्ग की ओर प्रेरित करें ॥११ ॥

['शतौदना' प्रकृति कभी-कभी क्रुद्ध हो उठती है, तो मनुष्यों का अनिष्ट होने लगता है । उससे प्रार्थना है कि हम आपके विकास-परिपाक में सहयोगी हैं । हे मातः ! हमें मारो मत, श्रेष्ठ दिशा में प्रेरित करो ।]

२९३७. ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१२ ॥

जो देव स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा धरती पर निवास करते हैं, उनके लिए सदैव दुग्ध, घृत तथा मधु का दोहन करें ॥

२९३८. यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१३ ॥

आपके जो सिर, मुख, कान तथा हनु हैं, वे दाता को, दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१३ ॥

२९३९. यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१४ ॥

आपके जो ओष्ठ, नाक, आँख तथा सींग हैं, वे दाता को, दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१४ ॥

२९४०. यत् ते क्लोमा यद् हृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१५ ॥

आपके जो फेफड़े, हृदय, मलाशय तथा कण्ठ भाग हैं, वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१५ ॥

२९४१. यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१६ ॥

आपके जो यकृत, गुर्दे, आँते तथा गुदा हैं, वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१६ ॥

२९४२. यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१७ ॥

आपके जो प्लीहा, गुदाभाग, कुक्षि (कोख) तथा चर्म हैं, वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१७ ॥

२९४३. यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१८ ॥

आपके जो मज्जा, अस्थि , मांस और रुधिर हैं, वे दाता को, दूध, दही, घी तथा मधु प्रदान करें ॥१८ ॥

२९४४. यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥१९ ॥

आपके जो बाहु , भुजाएँ , कन्धे तथा ककुत् हैं , वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥१९ ॥

२९४५. यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२० ॥

आपके जो गर्दन, पीठ, कन्धे तथा पसलियाँ हैं, वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥२० ॥

२९४६. यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२१ ॥

आपके जो जंघा, घुटने, कूल्हे तथा गुह्यांग हैं, वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥२१ ॥

२९४७. यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२२ ॥

आपके जो पूँछ, बाल, दुग्धाशय तथा थन हैं, वे दाता को दुग्ध, दही, घृत तथा मधु प्रदान करें ॥२२ ॥

२९४८. यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२३ ॥

आपके जो जंघा , खुट्टियाँ, खुर तथा कलाई के भाग हैं , वे दाता को दुग्ध, घृत, दही तथा मधु प्रदान करें ॥२३ ॥

२९४९. यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४ ॥

हे शतौदने ! हे अघ्न्ये ! आपके जो चर्म तथा रोम हैं. वे दाता को दुग्ध, घृत, दही तथा मधु प्रदान करें ॥२४ ॥

२९५०. क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥२५ ॥

हे देवि ! आपकेपार्श्व भाग, घृत द्वारा अभिषिंचित पुरोडाश हों । हे शतौदने ! आप उनको पंख बनाकर पकाने वाले को स्वर्ग ले जाएँ ॥२५ ॥

२९५१. उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२६ ॥

ओखली, मूसल, चर्म तथा सूर्प में जो चावल के कण रह गए हैं अथवा जिसको मातरिश्वा ने शुद्ध करते हुए मंथन किया है, उसको होता अग्निदेव श्रेष्ठ हविरूप बनाएँ ॥२६ ॥

२९५२. अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

मधुयुक्त घृत को प्रदान करने वाली दिव्य जल धाराओं को हम ब्राह्मणों के हाथों में अलग-अलग प्रदान करते हैं । हे ब्राह्मणो ! जिस कामना के लिए हम आपका अभिषेक करते हैं, वह सब हमें प्राप्त हो और हम धनपति बनें ॥२७ ॥

[१० - वशागौ सूक्त]

[ऋषि- कश्यप। देवता- वशा। छन्द- अनुष्टुप्, १ ककुम्मती अनुष्टुप्, ५ पञ्चपदाति जागतानुष्टुप्, गर्भा स्कन्धोग्रीवी बृहती, ६, ८, १० विराट् अनुष्टुप्, २३ बृहती, २४ उपरिष्टात् बृहती, २६ आस्तारपंक्ति, २७ शङ्कुमती अनुष्टुप्, २९ त्रिपदा विराट् गायत्री, ३१ उष्णिक् गर्भा अनुष्टुप, ३२ विराट् पथ्या बृहती।]

इस सूक्त के देवता वशा हैं। पूर्व सूक्त (क्र. ९ के 'शतौदना') की तरह इस सम्बोधन का भाव भी गौ की तरह पोषण देने वाली सूक्ष्म प्रकृति से जुड़ता है। हमारे पर्यावरण की सीमा में जो प्रकृति है, वहाँ तक हमारा वश चलता है अथवा यह हमारे जीवनचक्र को वश में रखने वाली है, इसलिए इसे वशा कहा गया है। मन्त्र क्र० २-३ के आधार पर यह यज्ञ से उत्पन्न पोषक शक्तिप्रवाह प्रतीत होती है तथा मन्त्र क्र० ६ में इसे पर्जन्य- पत्नी कहा है, जिससे इसके 'उर्वरता' होने का बोध होता है-

२९५३. नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१ ॥

हे अहिंसनीय गौ ! उत्पन्न हुई तथा उत्पन्न होने वाली आपको नमस्कार है। आपके बालों, खुरों तथा विभिन्न रूपों के लिए नमस्कार है ॥१ ॥

२९५४. यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥२ ॥

जो वशा गौ के सात जीवन- प्रवाहों, सात अन्तर-स्थानों तथा यज्ञ के सिर को जानते हैं, वे ही वशा गौ को स्वीकार कर सकते हैं ॥२ ॥

२९५५. वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३ ॥

सात जीवन- प्रवाहों, सात अन्तर स्थानों तथा यज्ञ के सिर को भी हम जानते हैं। इसमें जो विशेष आलोकित होने वाले सोमदेव हैं, उनको भी हम जानते हैं ॥३ ॥

२९५६. यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४ ॥

जिसने द्यावा, पृथिवी और समस्त जल की सुरक्षा की है, उस सहस्रधारा प्रदान करने वाली वशा गौ से हम ज्ञान द्वारा सम्मुख होकर वार्त्तालाप करते हैं ॥४ ॥

२९५७. शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥५ ॥

इसके पृष्ठ में दुग्ध के सैकड़ों बर्तन हैं, सैकड़ों दूध दुहने वाले हैं और सैकड़ों संरक्षक हैं। जो देवता उस गाय से जीवित रहते हैं, वे एकमत से उसके महत्त्व को जानते हैं ॥५ ॥

[प्रकृति के पोषण देने वाले सैकड़ों स्रोत हैं, उनके दोहन के क्रम भी सैकड़ों हैं। देवगण उसी से तृप्त होते हैं।]

२९५८. यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥६ ॥

यज्ञ में विशेष स्थान प्राप्त, दूध देने वाली, अन्नरूप प्राण को धारण करने से धरती पर प्रसिद्ध तथा पर्जन्य की पत्नी (उर्वरता) वशा, ब्रह्मरूप अन्न द्वारा देवताओं को प्राप्त करती है ॥६ ॥

२९५९. अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७ ॥

हे वशा गौ ! अग्निदेव और सोमदेव आप में प्रविष्ट हुए हैं । हे कल्याणकारी गौ ! पर्जन्य आपका दुग्ध स्थान है और हे वशे ! विद्युत् आपके स्तन हैं ॥७ ॥

२९६०. अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥८ ॥

हे वशा गौ ! आप सबसे पहले जल प्रदान करती हैं, उसके बाद उर्वरक भूमि प्रदान करती हैं, फिर तीसरी राष्ट्रीयशक्ति प्रदान करती हैं । हे वशे ! तत्पश्चात् आप अन्न और दूध प्रदान करती हैं ॥८ ॥

२९६१. यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥९ ॥

हे ऋतावरि ! जब आप आदित्यों द्वारा बुलाए जाने पर उनके समीप गयी थीं, तब हे वशे ! इन्द्रदेव ने आपको हजारों पात्रों से सोमरस पिलाया था ॥९ ॥

[सूर्य की उर्वरता सोम प्रवाहों से ही बनी हुई है- 'आदित्यः सोमेन बलिनः ।' इन्द्र नियन्ताशक्ति द्वारा सूर्यस्थ वशा- उर्वरता को सहस्रों धाराओं से सोमपान कराया जाता है ।]

२९६२. यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभो ऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो हरद् वशे ॥१० ॥

हे गौ ! जब आप अनुकूलता से इन्द्रदेव के समीप थीं, तब वृषभ ने आपको समीप से बुलाया था, इसी कारण क्रोधित होकर वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ने आपके दूध और जल को हर लिया था ॥१० ॥

२९६३. यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे । इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥

हे वशा गौ ! जब क्रोधित होकर धनपति ने आपके दुग्ध को हर लिया था, तब से आज तक यह स्वर्गधाम ही सोमरूप तीन पात्रों में उसकी सुरक्षा कर रहा है ॥११ ॥

२९६४. त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्य हरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१२ ॥

जहाँ पर दीक्षित होकर 'अथर्वा' ऋषि मनोहर आसन पर बैठते हैं, उनके समीप देवी वशा तीनों पात्रों में रखा हुआ सोमरस ले जाती हैं ॥१२ ॥

२९६५. सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१३ ॥

सोम तथा समस्त पैर वालों के साथ वशा गौ सुसंगत हो जाती है । वह कलि (ध्वनि करने वाले) गन्धर्वों के साथ समुद्र पर भी प्रतिष्ठित होती है ॥१३ ॥

२९६६. सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः । वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ।

वायु तथा समस्त पैर वाले प्राणियों के संग यह वशा गौ सुसंगत हो गई थी । यह ऋचा तथा साम को धारण करती हुई समुद्र में नर्तन करती है ॥१४ ॥

२९६७. सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५ ॥

सूर्य तथा समस्त नेत्र वालों से मिलती हुई, ज्योतियों को धारण करती हुई, कल्याणकारी वशा, समुद्र से भी अधिक विख्यात हुई ॥१५ ॥

२९६८. अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥१६ ॥

हे अन्न प्रदान करने वाली गौ ! जब आप स्वर्णिम आभूषणों से सम्पन्न होकर खड़ी हुई थीं, उस समय हे वशे ! आपके समीप समुद्र अश्व बनकर आ गया ॥१६ ॥

२९६९. तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥१७ ॥

जहाँ पर दीक्षित होकर 'अथर्वा' ऋषि स्वर्णिम आसन पर विराजते हैं, वहाँ पर वशा देष्ट्री तथा स्वधा (देने वाली तथा तृप्त करने वाली) होकर पहुँच जाती है ॥१७ ॥

२९७०. वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८ ॥

क्षत्रियों की माता वशा है, हे स्वधे ! आपकी माता भी वशा है । वशा से आयुध उत्पन्न हुए हैं और उससे चित्त विनिर्मित हुआ है ॥१८ ॥

२९७१. ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९ ॥

ब्रह्म के उच्च भाग (ककुद्) से एक बूँद ऊपर उछला, हे वशे ! उससे आप प्रकट हुईं, उसके बाद होता उत्पन्न हुए ॥१९ ॥

२९७२. आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥२० ॥

हे वशे ! आपके मुख से गाथाएँ बनी हैं, गर्दन के भागों से बल प्रकट हुआ है, दुग्धाशय से यज्ञ प्रकट हुआ है और स्तनों से किरणें प्रकट हुई हैं ॥२० ॥

२९७३. ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१ ॥

हे वशे ! आपके बाहुओं तथा पैरों से गमन होता है । आपकी आँतों से विविध पदार्थ तथा उदर से वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥२१ ॥

२९७४. यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥२२ ॥

हे वशे ! जब आप वरुणदेव के उदर में प्रविष्ट हुई थीं, तब ब्रह्मा ने आपको बुलाया था और वे ही आपके नेत्र को जान सके थे ॥२२ ॥

२९७५. सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥२३ ॥

ऐसा कहते हैं, कि समस्त प्राणी गर्भ से पैदा होने से भयभीत होते हैं, यह वशा ही उनको पैदा करती है और इसका भाई मन्त्रों से समर्थ होने वाला कर्म है ॥२३ ॥

[वशा उर्वरा शक्ति का भाई तथा मंत्रों से समर्थ होने वाला यज्ञ है । अगले मंत्र में उसे पार करने वाला कहा गया है ।]

२९७६. युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥२४ ॥

(वशा का) एक (अन्य भाई) संघर्षपूर्वक सृजन करता है ।एक यज्ञ पार कराने वाला है ।पार होने वालों का नेत्र वशा ही है ॥२४ ॥

[वशा के भाई सृजन और यजन है । सृजन उसके साथ उसकी शक्ति प्रकट करता है तथा यजन उसमें समाहित होकर उसकी शक्ति बढ़ाता है ।]

२९७७. वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥२५ ॥

वशा यज्ञ को स्वीकार करती है, उसने ही सूर्य को धारण किया है । ब्रह्मा के साथ वशा में ओदन भी प्रविष्ट है ॥२५ ॥

२९७८. वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥२६ ॥

देवगण 'वशा' को अमृत कहते हैं और उसे ही मृत्यु समझकर उसकी उपासना करते हैं । देव, मानव, असुर, पितर तथा ऋषि, ये सब वशामय ही हैं ॥२६ ॥

२९७९. य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥२७ ॥

जो इस ज्ञान को जानते हैं, वे 'वशा ' का प्रतिग्रहण करें । 'वशा' के दाता को यज्ञ अविचलित भाव से सब फल प्रदान करता है ॥२७ ॥

२९८०. तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८ ॥

वरुणदेव के मुँह के अन्दर तीन जिह्वाएँ चमकती हैं । उनके बीच में जो विशेषरूप से आलोकित होती है, वह 'वशा' ही है । अत: उसे दान में स्वीकार करना दुरूह है ॥२८ ॥

२९८१. चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९ ॥

'वशा' गौ का वीर्य चार भागों में विभक्त है । उसका चौथाई भाग जल, चौथाई अमृत, चौथाई यज्ञ तथा चौथाई पशु है ॥२९ ॥

२९८२. वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥३० ॥

'वशा' ही द्यौ और धरती है, 'वशा' ही प्रजापालक विष्णु है । जो साध्य तथा वसु देवगण हैं, वे 'वशा' का ही दुग्धपान करते हैं ॥३० ॥

[उर्वरतारूपी 'वशा' ही सबका पालन करती है, अतः विष्णु रूपा है । यह प्रवाह द्युलोक से पृथ्वी तक संचरित है ।]

२९८३. वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१ ॥

'वशा' का दुग्धपान करने वाले साध्य और वसु , सूर्यमण्डल में विद्यमान देवों के स्थान में दुग्ध की ही उपासना करते हैं ॥३१ ॥

[ऋषि की दृष्टि में उर्वरता के प्रवाह सूर्य मण्डल से भी निःसृत होते हैं ।]

२९८४. सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥३२ ॥

इनमें से एक सोम का दोहन करते हैं और एक घी को प्राप्त करने की साधना करते हैं । जो ऐसे ज्ञानी को गौ प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोक में गमन करते हैं ॥३२ ॥

२९८५. ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥३३ ॥

मनुष्य ब्राह्मणों को 'वशा' का दान करके समस्त लोकों को प्राप्त करते है। इस 'वशा' में सत्य, ब्रह्म तथा तप आश्रित (समाहित) हैं ॥३३ ॥

२९८६.वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥३४ ॥

देवगण 'वशा' पर जीवन व्यतीत करते हैं और मनुष्य भी 'वशा' पर जीवित रहते हैं । जहाँ तक आदित्य का आलोक पहुँच सकता है, वह सब 'वशा' ही है ॥३४ ॥

॥इति दशमं काण्डं समाप्तम् ॥

परिशिष्ट - १

अथर्ववेद भाग-१ के ऋषियों का संक्षिप्त परिचय-

१. **अगस्त्य (६.१३३)** - अगस्त्य ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद में ६.१३३ सूक्त इनके द्वारा दृष्ट है। ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी (२.१.१६६) के अनुसार ये मित्रावरुण के पुत्र थे तथा उर्वशी से उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद १.११७.११ में अगस्त्य ऋषि द्वारा विश्पला की टाँग के लिए अश्विनीकुमारों की स्तुति करने का उल्लेख मिलता है। ऋ० १.१७९ में इनके द्वारा अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ संवाद विवेचित हुआ है। इस सूक्त में प्रथम दो ऋचाएँ लोपामुद्रा द्वारा और अन्तिम दो ऋचाएँ अगस्त्य शिष्यों द्वारा दृष्ट हैं। एक ऋचा १०.६०.६ अगस्त्य-स्वसा द्वारा दृष्ट है। ऋ० ७.३३.१० से अगस्त्य और वसिष्ठ दोनों के मित्रावरुण और उर्वशी द्वारा उत्पन्न होने का प्रमाण मिलता है। इसी कारण दोनों के नाम के साथ मैत्रावरुणि पद संयुक्त होता है। बृह० ५.१५० में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। ऋ० १.१८९.८ में इन्हें मान्य (मान के पुत्र) के रूप में उपन्यस्त किया गया है। सप्तऋषियों में भी इन्हें मान्यता प्राप्त है।

२. **अङ्गिरा (२.३)** - अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर अङ्गिरा (अङ्गिरस्) को ऋषित्व प्राप्त हुआ है। सम्भवत: अग्नि कर्म से जुड़े होने के कारण इन्हें अङ्गिरस् कहा गया है। इनके वंशजों (आङ्गिरसों) में अनेकों को बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। नवग्व और दशग्व उनमें से श्रेष्ठतम हैं- **नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः** (ऋ० १०.६२.६)। इन्हें "विश्वरूप" कहकर विवेचित किया गया है- **विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः** (ऋ० १०.७८.५)। अग्नि की भाँति इन्हें भी शक्ति का पुत्र माना गया है- **अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे** (अथर्व० २०.१०३.३)। ये ज्येष्ठ ब्रह्म के नेत्ररूप माने गये हैं- **चक्षुरङ्गिरसो ऽ भवन्.....ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः** (अथर्व० १०.७.३४)। वे पितृतुल्य माने जाते थे- **अङ्गिरसो नः पितरो** (अथर्व० १८.१.५८)। अग्नि के आविष्कार के लिए अङ्गिरा को ख्याति प्राप्त है। मन्थन का कार्य पहले करने से ये सहसपुत्र कहलाये-**स जायसे मथ्यमानः सहोमहत् त्वामाहुः सहसस्पुत्र-मंगिरः** (ऋ० ५.११.६)। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें अग्नि का ही रूप माना गया है- **अङ्गिरा उ ह्यग्निः** (शत० ब्रा० १.४.१.२५)। **अङ्गिरसां वा एकोऽग्निः** (ऐत० ब्रा० ६.३४)। इन्हें ही प्राण एवं रसरूप में भी विवेचित किया गया है-**प्राणो वा अङ्गिराः** (शत० ब्रा० ६.१.२.२८)। **ये ऽ ङ्गिरसः स रसः** (गो० ब्रा० १.३.४)।

३. **अथर्वा (१.१-३)** - अथर्वा ऋषि को अथर्ववेद में प्रमुखरूप से ऋषित्व प्राप्त हुआ है। अनेक स्थानों पर इन्हें एक शल्य चिकित्सक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इनके द्वारा मनुष्य की मूर्धा को सिलने और हृदय को यथास्थान स्थिर करने का,उल्लेख मिलता है-**मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्** (अथर्व० १०.२.२६)। अथर्वा का इन्द्र के साथ सखा का सम्बन्ध था,उनके लिए उन्होंने पूर्ण चमस बनाया था- **अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते** (अथर्व० १८.३.५४)। अथर्वा प्रथम आहुति डालने के कारण विश्व के प्रथम याज्ञिक थे- **यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः** (अथर्व० १९.४.१) अथर्वा और अङ्गिरा को पिता तुल्य बृहस्पति माना गया है और देवबन्धु कहा गया है। अथर्वा को वरुण से उत्पन्न माना गया है-**अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्** (अथर्व० ५.११.११)। अथर्वा को प्रजापति भी माना गया है-**अथर्वा वै प्रजापतिः** (गो० ब्रा० १.१.४)। अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि प्रख्यात हैं- **तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः** (मैत्रा० सं० २.७.३)।

४. **अथर्वाङ्गिरा (४.८)** - अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर अथर्वा और अङ्गिरा का सम्मिलित ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। इनका साथ-साथ भी अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। अथर्वण और अङ्गिरस् को स्कम्भ (ब्रह्म) के मुख के रूप में मान्यता मिली है- **अथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः** (अथर्व० १०.७.२०)। अथर्वाङ्गिरस् को प्रथम आहुतिकर्त्ता या यज्ञ आविष्कारकर्त्ता के रूप में भी स्वीकार किया गया है- **मेद आहुतयो ह वा ऽ एता देवानाम्। यदथर्वाङ्गिरसः** (शत० ब्रा० ११.५.६.७)।

५. **अथर्वाचार्य (८.१०)** - अथर्ववेद के आठवें काण्ड के दसवें सूक्त के ऋषि अथर्वाचार्य माने गये हैं। सम्भव है, अथर्वा ऋषि ही यहाँ अथर्वाचार्य के रूप में विवेचित हुए हों अथवा अथर्वा के वंशज आथर्वण के रूप में। इस सूक्त में ऋषि ने विराट् (जगत् या पुरुष) की स्तुति की है।

६. **उच्छोचन (६.१०३)** - अथर्ववेद के छठवें काण्ड के १०३वें सूक्त के द्रष्टा उच्छोचन ऋषि हैं। इस सूक्त में उन्होंने 'शत्रुनाशन' देवता की स्तुति की है। इससे अगले सूक्त में भी 'शत्रुनाशन' देवता स्तुत्य हैं ;परन्तु वहाँ ऋषि नाम में 'प्रशोचन' ऋषि उल्लिखित है। उच्छोचन नाम व्यक्तिवाचक है अथवा नहीं, यह शोध का विषय है। इस सूक्त में ऋषि ने शत्रुसेनाओं को पाश-बन्धनों में डालने की प्रार्थना देवों से की है- **संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्** (अथर्व० ६.१०३.१)।

७. **उद्दालक (३.२९)** - उद्दालक को अथर्ववेद के दो सूक्तों ३.२९ और ६.१५ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इस सूक्त (३.२९) के प्रमुख देवता 'शितिपाद अवि' हैं। पाँच मंत्रों वाले इस सूक्त का प्रयोग 'ओदनसव कर्म' में श्वेत पैर वाली भेड़ के साथ याज्ञिक क्रियाओं में किया जाता है। इस सूक्त में श्वेत पैर वाली भेड़ के दान की महत्ता भी प्रतिपादित हुई है- **यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम्** (अथर्व० ३.२९.३)। दूसरे सूक्त ६.१५ में इनके द्वारा वनस्पति देवता की स्तुति की गई है।

८. **उन्मोचन (५.३०)** - अथर्ववेद के दो सूक्तों ५.३०, ६.१०५ के ऋषि नाम में "उन्मोचन" नाम उल्लिखित है। इस सूक्त (५.३०) का ऋषि हस्त से बालक का स्पर्श करने पर पाठ किया जाता है तथा अभिचार से उन्मोचन हेतु पिष्टरात्रि कल्प में सरसों के अभिमंत्रण के अनन्तर जप करना भी विनियोग होता है। इस सूक्त का देवता "आयुष्य" है। किन्हीं शास्त्रकारों ने ऋषि नाम में उन्मोचन को 'आयुष्काम' रूप में भी स्वीकार किया है। सम्भवत: इस सूक्त में ऋषि ने आयुष्य को क्षीण करने वाले अभिचार तथा पाप, रोगादि से उन्मोचन के लिए पाठ किया है, इसी क्रिया के आधार पर अज्ञातनामा ऋषि उन्मोचन आयुष्काम रूप में मान्य हुए। सूक्त ६.१०६ में "प्रमोचन" ऋषि भी निर्दिष्ट हैं।

९. **उपरिबभ्रव (६.३०-३१)** - उपरिबभ्रव ऋषि को अथर्ववेद में पाँच सूक्तों (६.३०-३१, ७.९-१०, ७.७९) तथा तीन ऋचाओं (ऋ० २०.४८.४-६) का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इन सूक्तों में ऋषि ने शमी, गौ (रश्मियों) पूषा, सरस्वती आदि की स्तुति की है।

१०. **ऋभु (४.१२)** - अथर्ववेद के चौथे काण्ड के १२वें सूक्त में ऋभु का ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। इस सूक्त में इन्होंने रोहणी वनस्पति की स्तुति की है। इस सूक्त का प्रयोग शस्त्रादि के प्रहार से कटे अंग से बहते रुधिर को रोकने, टूटी हड्डी को जोड़ने के लिए रोहणी लाख के औटाए हुए जल को छिड़कने में किया जाता है तथा इस सूक्त से घृत, दुग्ध का अभिमन्त्रण करके क्षत अंगवाले पुरुष को पिलाया जाता है।

११. **कपिञ्जल (२.२७)** - अथर्ववेद के तीन सूक्तों २.२७, ७.१००-१०१ के ऋषि रूप में 'कपिञ्जल' नाम निर्दिष्ट है। इस सूक्त का प्रमुख देवता वनस्पति है। अन्तिम दो मन्त्रों में रुद्र तथा इन्द्र की स्तुति की गयी है। निरुक्त द्वारा 'कपिञ्जल' शब्द की व्युत्पत्ति निम्नानुसार है-**"कपिञ्जल: कपिरिव जीर्ण:, कपिरिव जवत ईषत् पिङ्गलो वा, कमनीयं शब्दं पिञ्जयतीति वा"** (बूढ़े बन्दर के समान वर्ण वाले अथवा वृद्ध कपि के समान गति अथवा थोड़े भूरे वर्ण वाले अथवा सुमधुर शब्द वाले होने से कपिञ्जल कहा जाता है। (नि० ३.१८)। कपिञ्जल का सामान्य अर्थ चातक अथवा तित्तिर पक्षी किया जाता है।

१२. **कबन्ध (६.७५.७७)** - 'कबन्ध' द्रष्टा रूप में अथर्व के तीन सूक्तों ६.७५-७७ में उल्लिखित हैं। इनमें से प्रथम सूक्त में ऋषि ने इन्द्र की तथा द्वितीय में सान्तपन अग्नि और तृतीय में जातवेदा की स्तुति की है। 'कबन्ध' शब्द की व्युत्पत्ति वाच० के अनुसार **'कं जलं बध्नाति इति कबन्ध:'** है। इसका अर्थ अमरकोश के अनुसार 'जल' तथा निरुक्त के अनुसार 'मेघ' किया गया है।

१३. **कश्यप (१०.१०)** - 'कश्यप' ऋषि अथर्ववेद में १०.१० तथा १२.४-५ सूक्तों में ऋषि रूप में मान्य हैं। १०.१० तथा १२.४-५ सूक्तों में पोषक धाराओं (किरणों) के रूप में 'वशा' की स्तुति की गई है। यहाँ ऋषि नाम में अपत्यवाचक पद का उल्लेख नहीं किया गया है। सप्तर्षि मण्डल के प्रमुख ऋषि के रूप में इनका उल्लेख मिलता है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में इनका मरीचि पुत्र होना स्वीकार किया है- **मरीचि पुत्र: कश्यपो वैवस्वतो मनुर्वा ऋषि:** (ऋ० ८.२९ सा.भा.)। बृहद्देवता ग्रन्थ में कश्यप को प्रजापति के पौत्र, मरीचि के पुत्र तथा दक्ष की अदिति आदि तेरह पुत्रियों के पति के रूप में माना गया है- **प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीच: कश्यपो मुनि:। तस्य देव्यो ऽ भवञ्जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश** (बृह० ५.१४३)।

१४. **काङ्कायन (६.७०)** - अथर्ववेद के दो सूक्तों ६.७० और ११.११ के ऋषि नाम में 'काङ्कायन' निर्दिष्ट है। प्रथम सूक्त का देवता अघ्न्या और द्वितीय सूक्त का अर्बुदि है। प्रथम सूक्त का गौ और बछड़े के परस्पर विरोध को शान्त करने के लिए पाठ किया जाता है। दूसरे सूक्त का प्रयोग विजयाकांक्षी राजा युद्ध के समय करता है।

१५. **काण्व (२.३१-३२)** - काण्व ऋषि को अथर्ववेद के तीन सूक्तों २.३१-३२ तथा ५.२३ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है 'काण्व' पद अपत्यवाचक प्रतीत होता है। 'काण्व' पद का अर्थ 'कण्व गोत्रीय' ऋषि लिया जाता है। ऋषि नाम यहाँ अनुक्त है। प्रथम सूक्त में ऋषि ने मही, चन्द्रमा तथा द्वितीय सूक्त में आदित्य एवं तृतीय सूक्त में इन्द्र देवता की स्तुति की है। ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में 'काण्व' (कण्वगोत्रीय) ऋषियों को ऋषित्व प्राप्त होने का विशेष गौरव प्राप्त हुआ है। अथर्ववेद में ये ऋषि क्रिमिनाश विद्या के कारण गौरवान्वित हुए हैं- **अत्रिवत् व: क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्** (अथर्व० २.३२.३)। अनेक रोगों की एक मात्र ओषधि वीरुध् के वे ज्ञाता थे - **कण्वस्य वीरुधम्। आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् निशमयत्** (अथर्व० ६.५२.३)। कण्व ऋषियों (काण्वों) की इन्द्र विषयक स्तुतियाँ उत्तम मानी जाती थीं, अन्य स्तोता उनके समान स्तुति का प्रयत्न करते थे- **अहं प्रत्नेन मन्मना गिर: शुम्भामि कण्ववत्** (अथर्व० २०.११५.३)।

१६.कुत्स (१०.८) - कुत्स का ऋषित्व अथर्ववेद में अपत्यवाचक पदरहित नाम से निर्दिष्ट है। ऋग्वेद में ये आङ्गिरस (अङ्गिरस-गोत्रीय) पद से उल्लिखित हैं। अष्टाध्यायी (पाणिनि) के सूत्रों में पूर्वाचार्यों के नाम में तथा निरुक्त ३.११ में ऋषि रूप में ये उल्लिखित हुए हैं। कुत्स को ऋग्वेद १.११२.२३ में आर्जुनेय भी कहा गया है। आचार्य सायण ने वाजसनेयक का उद्धरण देकर इन्द्र को अर्जुनरूप में तथा कुत्स को उनके पुत्ररूप में उल्लिखित किया है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों में (अथर्व० ४.१६.१०-१२) कुत्स को इन्द्र के अभिन्न सखारूप में वर्णित किया गया है,जिन्हें देखकर इन्द्र पत्नी शची को इन्द्र के पहचानने में भ्रान्ति हुई थी। इन्द्रदेव ने कुत्स के लिए शुष्ण का हनन किया था- **कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः** (ऋ० ४.१६.१२)।

१७. कृति (१.६) - अथर्ववेद के एक सूक्त में ऋषि नाम कृति,सिन्धुद्वीप अथवा अथर्वा निर्दिष्ट है। इससे स्पष्ट है कि इस सूक्त के ऋषि कृति तथा सिन्धुद्वीप अथवा कृति तथा अथर्वा सम्मिलितरूप से हैं। कृति का ऋषित्व अन्यत्र कहीं निर्दिष्ट नहीं है। सामान्य अर्थ में कृति शब्द छन्द या असि या तलवार के रूप में प्रयुक्त होता है। वाचस्पत्यम् में इसके पुरुष प्रयत्न,कर्तृ व्यापार, हिंसा आदि अर्थ भी दिये हैं।

१८. कौरुपथि (७.६०) - अथर्ववेद के दो सूक्तों ७.६० तथा ११.१० के ऋषि नाम में 'कौरुपथि' नाम उपन्यस्त किया गया है। प्रथम सूक्त में ऋषि ने इन्द्रावरुण तथा द्वितीय सूक्त में 'अध्यात्म एवं मन्यु' देवता की स्तुति की है। कौरुपथि ऋषि का अन्यत्र कहीं कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है।

१९. कौशिक (६.३५) - कौशिक ऋषि को अथर्ववेद में ६ सूक्तों ६.३५,६.११७-१२१ तथा कुछ मन्त्रों १०.५.२५-३६ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। यह नाम अपत्यवाचक पद प्रतीत होता है,क्योंकि ऋग्वेद के चार सूक्तों ३.१९-२२ के ऋषि नाम में 'गाथी कौशिक' निर्दिष्ट है। अथर्ववेद में कौशिक ऋषि का नाम "गाथी" अनुक्त है। ये कुशिक के पुत्र तथा विश्वामित्र के पिता थे। ऋ० ३.३३.५ में विश्वामित्र को '**कुशिकस्य सूनुः**' कहकर उल्लिखित किया गया है। इन्हें राजा सुदास् के महायज्ञ में पुरोहित माना गया है। उक्त सूक्तों में कौशिक ऋषि ने प्रमुखरूप से अग्नि,वैश्वानर अग्नि की स्तुति की है।

२०. गरुत्मान् (४.६-७) - अथर्ववेद में गरुत्मान् को सात सूक्तों ४.६,७,५.१३,६.१२,६.१००,७.९३,१०.४ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इन सूक्तों में ऋषि ने प्रायः तक्षक और वनस्पति देवता की स्तुति की है। सम्भव है,ऋषि सर्प विषनिवारण की विद्या में पारंगत रहे हों। निरुक्तकार ने गरुत्मान् शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार दी है- **गरुत्मान् गरणवान् गुर्वात्मा महात्मेति वा** (नि० ७.१८)।

२१. गार्ग्य (६.४९) - अथर्ववेद में गार्ग्य ऋषि को तीन सूक्तों ६.४९,१९.७-८ के ऋषि होने का गौरव प्राप्त हुआ है। प्रथम सूक्त में ऋषि ने अग्नि की तथा शेष दो सूक्तों में नक्षत्रों की स्तुति की है। ऋग्वेद में एक सूक्त ६.४७ के ऋषि गर्ग भारद्वाज हैं। सम्भव है,गार्ग्य ऋषि इन्हीं के पुत्र या वंशज हों। बृ०उ० २.११ और कौषी०उ० ४.१ में बालाकि का पैतृक नाम गार्ग्य है। इनके वंशज गार्ग्यायण या गार्ग्यायणि कहलाये। निरुक्त १.१२,३.१३ में भी गार्ग्य का नामोल्लेख मिलता है।

२२. चातन (१.७-८) - अथर्ववेद के अनेक सूक्तों (१.७-८,१.१६ आदि) के ऋषि नाम में 'चातन' का उल्लेख है। इन्होंने प्रमुखरूप से अग्नि के विविधरूपों की स्तुति की है। इन ऋषि के विषय में अन्य कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता है।

२३. जगद्बीज पुरुष (३.६) - अथर्ववेद के एक सूक्त ३.६ के ऋषि नाम में जगद्बीज पुरुष नाम निर्दिष्ट है। यह सूक्त शत्रुनाशन सूक्त के नाम से विवेचित है। इसका देवता अश्वत्थ (वनस्पति) है। सम्भवतः ये ऋषि प्रजापति पुत्र आदि पुरुष होंगे,जिन्हें यजु० १२.१०२ सूक्त के ऋषि नाम में हिरण्यगर्भ कहा गया है,ऋ० १०.१२१ सूक्त के ऋषि नाम में हिरण्यगर्भ प्राजापत्य कहा गया है। काठक संहिता में पुरुष मात्र को जगत् (चैतन्य) संज्ञा से निरूपित किया गया है- **यः पुरुषमात्रस्स जगच्चित्** (काठ० सं० २१.४)।

२४. जमदग्नि (६.८-९) - जमदग्नि ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद में तीन सूक्तों ६.८-९,६.१०२ के ऋषि होने का गौरव इन्हें प्राप्त हुआ है। इन सूक्तों के देवता कामात्मा, अश्विनीकुमार आदि हैं। ऋग्वेद में इन्हें एक भार्गव (भृगु वंशज) कहा गया है। हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में इनके पुरोहित (अध्वर्यु) होने का वर्णन निर्दिष्ट है- **तस्य ह विश्वामित्रो होता ऽऽसीज्जमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्मा ऽ यास्य उद्गाता** (ऐत० ब्रा० ७.१६)। इन्हें जगद् द्रष्टा रूप में भी स्वीकार किया गया है- **चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत् पश्यत्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निरृषिः** (शत० ब्रा० ८.१.२.३)।

२५. जाटिकायन (६.३३) - जाटिकायन का ऋषित्व अथर्ववेद के दो सूक्तों ६.३३,६.११६ में दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने प्रथम सूक्त में इन्द्र तथा द्वितीय सूक्त में विवस्वान् की स्तुति की है। इनके विषय में अन्यत्र कोई विशेष विवरण नहीं प्राप्त होता है।

२६. द्रविणोदा (१.१८) - अथर्ववेद के एक सूक्त १.१८ के ऋषिरूप में द्रविणोदा को स्वीकार किया गया है। इन्होंने इस सूक्त में विनायक देवता की स्तुति की है। निरुक्तकार ने द्रविणोदा की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की है- **द्रविणोदाः कस्मात्? धनं**

द्रविणमुच्यते यदेनदभिद्रवन्ति बलं वा द्रविणं- यदेनेनाभिद्रवन्ति । तस्य दाता द्रविणोदाः (नि० ८.१)। द्रविणोदा अग्निरूप में भी मान्य हैं- **अथाप्यग्निं द्रविणोदसमाह** (नि० ८.२)।

२७. द्रुह्वण (६.६३) - अथर्व में 'द्रुह्वण' ऋषि को केवल एक सूक्त ६.६३ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। चार मन्त्रों के इस सूक्त में ऋषि ने क्रमशः निर्ऋति, यम, मृत्यु और अग्नि की स्तुति की है। इनके विषय में अन्यत्र कोई विशेष विवरण नहीं प्राप्त होता है।

२८. नारायण (१०.२) - नारायण ऋषि को चारों वेदों में ऋषित्व प्राप्त हुआ है। यजुर्वेद में प्रसिद्ध पुरुष सूक्त के द्रष्टा नारायण पुरुष ही हैं। आचार्य सायण के अनुसार आदि कारण पुरुष का प्रतिपादन करने के कारण इस सूक्त को पुरुष सूक्त कहा गया है। अथर्व में दो सूक्तों १०.२,१९.६ के द्रष्टा रूप में ये मान्य हैं। इनमें भी ऋषि ने प्रमुखरूप से 'पुरुष' देवता की स्तुति की है।

२९. पतिवेदन (२.३६) - अथर्ववेद के एक सूक्त २.३६ के ऋषि नाम में 'पतिवेदन' नाम उपन्यस्त किया गया है। इस सूक्त में ऋषि ने विभिन्न देवों की स्तुति की है।

३०. प्रचेता (६.४५-४८) - अथर्व में प्रचेता का ऋषित्व चार सूक्तों ६.४५-४८ में अङ्गिरस् एवं यम के साथ सम्मिलितरूप से दृष्टिगोचर होता है। एक मंत्र २०.९६.२४ में इनका स्वतंत्र ऋषित्व भी निर्दिष्ट है। इन्होंने प्रमुख रूप से दु:स्वप्ननाशन और विश्वेदेवा आदि की स्तुति की है। ऋग्वेद में एक सूक्त १०.१६४ के ऋषि नाम में इन्हें एक आङ्गिरस (अङ्गिरस्-गोत्रीय) स्वीकार किया गया है। वैदिक साहित्य में अग्नि एवं आदित्यों को भी प्रचेतस् कहा गया है। प्रचेतस् का सामान्य अर्थ 'प्रकृष्ट चित्त वाला' है। यास्क ने भी प्रायः यही अर्थ स्वीकार किया है- **प्रचेताः प्रवृद्धचेताः** (नि० ८.५)। अग्नि, सोम और सूर्य को भी प्रचेता विशेषण से सम्बद्ध किया गया है- **संयच्च प्रचेताश्चाग्नेः सोमस्य सूर्यस्य** (तैत्ति० सं० ४.४.११.२)। प्रचेता, वरुण के पर्यायरूप में मान्य हैं।

३१. प्रजापति (२.३०) - प्रजापति का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद के अनेक सूक्तों २.३०,४.३५ आदि के ऋषिरूप में प्रजापति मान्य हैं। ऋग्वेद में प्रजापति के साथ तीन वैकल्पिक पद संयुक्त हुए हैं-(i) वाच्य (ii) वैश्वामित्र (iii) परमेष्ठी। प्रजापति शब्द का उल्लेख वैदिक साहित्य में सृष्टि रचयिता, प्रजापालक, सविता, अग्नि, यज्ञ आदि के लिए किया गया है- **प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् सो ऽ कामयत प्रजाः पशून्त्सृजेयेति** (तैत्ति० सं० २.१.१.४)। **प्रजापतिर्वै भुवनस्य पतिः** (तैत्ति० सं० ३.४.८.६)। **सविता वै प्रजापतिः** (जैमि० ब्रा० १.६)। **प्रजापतिर्वा ऽ अग्निः** (जैमि० ब्रा० १.२९०)।

३२. प्रत्यङ्गिरस् (१०.१) - अथर्ववेद में प्रत्यङ्गिरस् को केवल एक ही सूक्त १०.१ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इस सूक्त में इन्होंने 'कृत्यादूषण' देवता की स्तुति की है। कृत्या को दूर करने के लिए इस सूक्त का विनियोग किया जाता है।

३३. प्रमोचन (६.१०६) - अथर्व में एक सूक्त ६.१०६ के ऋषि नाम में 'प्रमोचन' नाम उल्लिखित है। इससे पहले के सूक्त में उन्मोचन ऋषि नाम निर्दिष्ट है। ये नाम व्यक्तिवाचक नहीं प्रतीत होते। प्रमोचन ऋषि ने वहाँ 'दूर्वाशाला' देवता की स्तुति की है।

३४. प्रशोचन (६.१०४) - प्रशोचन का ऋषित्व अथर्ववेद ६.१०४ सूक्त में दृष्टिगोचर होता है। इसके पूर्व सूक्त के ऋषि उच्छोचन हैं। उक्त सूक्तों में इन्द्र, इन्द्राग्नी आदि देवगण स्तुत हुए हैं। उक्त सूक्त 'शत्रुनाशन सूक्त' नाम से वर्णित है।

३५. प्रस्कण्व (७.४०-४७) - प्रस्कण्व ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्र चारों वेदों में संगृहीत हैं। अथर्ववेद में अनेक सूक्तों के ऋषि नाम में प्रस्कण्व उल्लिखित हैं; परन्तु इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद अनुक्त है। ऋग्वेद में इन्हें एक काण्व (कण्व गोत्रीय) के रूप में उपन्यस्त किया गया है। निरुक्तकार ने इन्हें कण्व-पुत्र के रूप में वर्णित किया है- **प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः । कण्व प्रभवो यथा प्राग्रम्** (नि० ३.१७)। बृह० ६.८५ में प्रस्कण्व द्वारा पृषध्र को धन देने का वर्णन प्रतिपादित किया गया है। इन्द्र द्वारा इनकी सहायता का उल्लेख भी मिलता है- **धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ** (अथर्व० २०.९.३)।

३६. बभ्रुपिंगल (६.१४) - बभ्रुपिंगल को अथर्व में ६.१४ सूक्त का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इसमें इन्होंने बलास देवता की स्तुति की है। ऋग्वेद के एक सूक्त (५.३०) के ऋषि अत्रि गोत्रीय बभ्रु हैं, जिन्होंने ऋणंचय से दान प्राप्त किया था।

३७. बादरायणि (४.३७-३८) - बादरायणि का ऋषित्व अथर्ववेद के चार सूक्तों ४.३७-३८,७.६१,७.११४ में दृष्टिगोचर होता है। इन सूक्तों में से प्रथम दो सूक्तों में इन्होंने मुख्यतः अप्सराओं और तृतीय, चतुर्थ में क्रमशः अरिनाशन और अग्निदेवता की स्तुति की है। बादरायणि का सामान्य अर्थ 'बदर के वंशज' लिया जाता है। बदर वैदिक साहित्य में कोई ऋषि रहे होंगे। सामान्यतः बदर (बेर के) फलदार वृक्ष के रूप में मान्य है। पौराणिक सन्दर्भ में बादरायणि को व्यास का पुत्र शुकदेव माना गया है।

३८. बृहच्छुक्र (६.५३) - बृहच्छुक्र का अथर्व में मात्र एक सूक्त ६.५३ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। बृहच्छुक्र शब्द की व्युत्पत्ति **'बृहत् शुक्र'** की जाती है। शुक्र ऋषि को अथर्व में अनेक सूक्तों २.११,४.१७-१९ आदि का ऋषि माना गया है। 'बृहच्छुक्र' ऋषि शुक्र से भिन्न हैं या नहीं, यह शोध का विषय है। उक्त सूक्त में इन्होंने त्वष्टा, वैश्वानर, अग्नि, वायु आदि की स्तुति की है।

३९. बृहद्दिवोऽथर्वा (५.१-३) - बृहद्दिव और अथर्वा ऋषि को अथर्ववेद में तीन सूक्तों ५.१-३ का सम्मिलित ऋषित्व प्राप्त हुआ है। बृहद्दिव ऋषि को २०.१०७.४-१३ मंत्रों का स्वतंत्र ऋषित्व भी प्राप्त हुआ है। ऋक्, यजु और साम तीनों वेदों में इनके ऋषि नाम में 'आथर्वण' पद भी संयुक्त हुआ है। इससे स्पष्ट है कि ये अथर्वा के वंशज रहे होंगे। ये इन्द्र के स्तोताओं में अग्रणी रहे हैं- **इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः** (अथर्व० ५.२.८)। ये दोनों महान् ऋषि इन्द्र के शरीर की भाँति उनके अति निकट थे- **एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव** (अथर्व० ५.२.९)।

४०. बृहस्पति (१०.६) - बृहस्पति का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद १०.७१-७२ में इन्हें आङ्गिरस अथवा लौक्य के रूप में स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद में इन्हें एक सूक्त १०.६ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इस सूक्त में इन्होंने प्रमुखतः फालमणि वनस्पति की स्तुति की है। वे ज्ञान के देवता हैं तथा ज्ञान द्वेषियों को ताप देने वाले हैं- **ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते** (ऋ० २.२३.४)। वैदिक साहित्य में इन्हें **ब्रह्म ज्ञान** के रूप में ही कहा गया है- **बृहस्पतिर्वै सर्वं ब्रह्म** (गो० ब्रा० २.१.३)। **बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिः** (तैत्ति० सं० २.५.७.४)। बृहस्पति शब्द की व्युत्पत्ति निरुक्तकार ने निम्न प्रकार से दी है- **बृहस्पतिः बृहतः पाता वा पालयिता वा** (बृहस्पति अर्थात् बृहद् रूप से रक्षा करने वाले अथवा पालन करने वाले।) (नि० १०.११)।

४१. ब्रह्मा (१.१७, १९) - अथर्ववेद में अनेक सूक्तों के द्रष्टा रूप में ब्रह्मा स्वीकार किये गये हैं। ऋग्वेद में कण्व गोत्रीय एक ऋषि ब्रह्मातिथि का ऋषित्व (ऋ० ८.५ में) निर्दिष्ट है; परन्तु ब्रह्मा ऋषि का अन्य संहिताओं में ऋषित्व नहीं मिलता। निरुक्तकार ने ब्रह्मा की उपमाएँ निम्न प्रकार से दी हैं - **ब्रह्मैको जातेजाते विद्यां वदति। ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति। ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः** (नि० १.८)। इन्हें देवों में श्रेष्ठ की उपमा दी गई है- **तस्मादाहुर्ब्रह्मैव देवानां श्रेष्ठमिति** (शत० ब्रा० ८.४.१.३)। इन्द्र को ब्रह्मा रूप में स्वीकार किया गया है- **इन्द्र एव ब्रह्मा ऽऽसीत्** (जैमि० ब्रा० ३.३७४)।

४२. ब्रह्मास्कन्द (४.३१-३२) - ब्रह्मास्कन्द को अथर्ववेद के दो सूक्तों ४.३१-३२ के द्रष्टा रूप में स्वीकार किया गया है। इन दोनों सूक्तों में इन्होंने देवता रूप में 'मन्यु' की स्तुति की है। 'स्कन्द' सामान्य अर्थों में 'शिव का एक नाम' है। सम्भव है, ब्रह्मा और शिव का संयुक्त ऋषित्व यहाँ अभीष्ट हो।

४३. भग (६.८२) - भग ऋषि को अथर्ववेद के एक सूक्त ६.८२ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। इस सूक्त में इन्होंने इन्द्र देवता की स्तुति की है। यज्ञ के पर्याय के रूप में भी 'भग' प्रयुक्त हुआ है- **यज्ञो भगः** (शत० ब्रा० ६.३.१.१९)। निरुक्तकार ने 'भग' शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार दी है- **भगो भजतेः** (नि० १.७)। निरुक्त ग्रन्थ में ही आदित्यों के नाम में इन्हें परिगणित किया गया है- **तद्यथैतन्मित्रस्य वरुणस्यार्यम्णो दक्षस्य भगस्यांशस्येति** (नि० २.१३)। कश्यप पत्नी देवमाता अदिति को इनकी माता के रूप में स्वीकार किया गया है। पौराणिक सन्दर्भ में इनकी पत्नी का नाम सिद्धि है, जिनसे महिमा आदि पुत्र उत्पन्न हुए।

४४. भरद्वाज (२.१२) - भरद्वाज ऋषि को चारों वेदों में ऋषित्व प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद तथा सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'बार्हस्पत्य' संयुक्त हुआ है, जिसका आशय बृहस्पति के पुत्र अथवा वंशज से है। ये सप्तर्षियों में प्रतिष्ठा प्राप्त ऋषि हैं। उषा देवी से प्रार्थना की गई है कि वे भरद्वाज के समान हमें प्रकाशित करें- **उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद् विधते मघोनि** (ऋ० ६.६५.६)। निरुक्तकार ने भरद्वाज शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार दी है- **भरणाद् भारद्वाजो** (भरण-पोषण करने के कारण भरद्वाज कहलाते हैं- नि० ३.१७)। ब्राह्मण ग्रन्थ में इनकी संगति मन से बिठाते हुए उपन्यस्त किया है- **मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो बिभर्त्ति सो ऽन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः** (शत० ब्रा० ८.१.१.९)। इन्हें ममता के गर्भ से उत्पन्न बृहस्पति का पुत्र माना जाता है। बृहद्देवता ५.१०२-१०३ में इन्हें अङ्गिरस् का पौत्र तथा बृहस्पति पुत्र स्वीकार किया गया है।

४५. भागलि (६.५२) - अथर्ववेद के एक सूक्त ६.५२ का ऋषित्व भागलि को प्राप्त हुआ है। तीन मंत्रों के इस सूक्त में ऋषि ने क्रमशः सूर्य, गौ और भेषज का वर्णन किया है।

४६. भार्गव (७.११८-११९) - भार्गव ऋषि का ऋषित्व अथर्ववेद के दो सूक्तों ७.११८-११९ में दृष्टिगोचार होता है। ये सूक्त 'शत्रुनाशन सूक्त' शीर्षक से वर्णित हैं। इनमें ऋषि ने तृष्टिका और अग्नीषोमा देवता की स्तुति की है। भार्गव नाम व्यक्तिवाचक न होकर अपत्यवाचक है, जिसका आशय 'भृगु गोत्रीय' से है। भार्गव ऋषियों में इट, कवि, गृत्समद, च्यवन, जमदग्नि आदि प्रसिद्ध हैं। सम्भव है, उक्त दो सूक्त इन्हीं में से किन्हीं ऋषि द्वारा दृष्ट हों।

४७. भृगु (३.१३) - भृगु ऋषि को अथर्ववेद में अनेक सूक्तों के द्रष्टा रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद के दो सूक्त ९.६५, १०.१९ के ऋषि नाम में इनके साथ 'वारुणि' पद उल्लिखित है, जिसका आशय 'वरुण पुत्र' है, इसकी पुष्टि आचार्य सायण के भाष्य से होती है- **वरुणपुत्रस्य भृगोरार्षं भार्गवस्य** [illegible]**र्वा** (ऋ० ९.६५ सा० भा०) अथर्ववेद के एक सूक्त २.५ के ऋषि भृगु आथर्वण हैं, जिससे ये अथर्वा के वंशज प्रतीत होते हैं। अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में भृगु के साथ अङ्गिरा का सम्मिलित ऋषित्व

प्राप्त होता है । संभवत: भृगु अथवा भार्गवों को अग्नि-पूजक होने के कारण अङ्गिरा से सम्बद्ध माना गया है । निरुक्तकार ने इन्हें अङ्गिरा के रूप में स्वीकार किया है- **अर्चिषि भृगुः संबभूव । भृगुर्भृज्यमानोनदेहे, अङ्गारेष्वङ्गिरा** (नि० ३.१७) । शतपथ ब्राह्मण में ये वारुणि (वरुण-पुत्र) के रूप में अभिहित है- **भृगुर्ह वै वारुणिः । वरुणं पितरं........**(शत० ब्रा० ११.६.१.१) ।

४८. **भृगु आथर्वण (२.५)** - भृगु अथर्वण को अथर्ववेद के एक सूक्त २.५ का ऋषि स्वीकार किया गया है । वे अथर्वा ऋषि के वंशज हैं, इसी कारण अपत्यवाचक पद 'आथर्वण' संयुक्त किया गया है । इस सूक्त में ऋषि ने इन्द्र के पराक्रमों की विवेचना की है । इन्द्र ही इस सूक्त के देवता हैं । इन्हें इन्द्र के मित्र रूप में वर्णित किया गया है- **इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो ....बिभेद वलं भृगुर्न** (अथर्व० २.५.३) । मातरिश्वा ने अग्नि को भी इनका मित्र बनाया था- **वह्निं. .... रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा** (ऋ० १.६०.१) । आथर्वण ऋषि को साम मन्त्रों से भी सम्बद्ध माना गया है- **आथर्वणं लोककामाय ब्रह्म साम कुर्य्यात्** (तां० म० ८.२.५) ।

४९. **भृग्वङ्गिरा (१.१२-१४)** - अथर्ववेद में अनेक सूक्तों के द्रष्टा रूप में 'भृगु और अङ्गिरा' को सम्मिलित रूप से स्वीकार किया गया है । भृगु और अङ्गिरा का स्वतन्त्र ऋषित्व भी अनेक सूक्तों में निर्दिष्ट है । एक सूक्त १९.७२ में भृगु, अङ्गिरा के साथ ब्रह्मा को भी सम्मिलित ऋषित्व प्राप्त हुआ है । इन दोनों को मंगलकारी कहा गया है- **भद्रा भृगवोऽङ्गिरसः सुदानवः** (काठ० संक० ६२) । इन्हें तप में अग्रणी माना गया है- **भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्** (काठ० सं० १.७) । इन्हें विपुल ब्रह्मज्ञान का प्रतीक माना गया है- **एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः** (गो० ब्रा० १.३.४) ।

५०. **मयोभू (५.१७-१९)** - अथर्व में तीन सूक्तों ५.१७-१९ के ऋषिरूप में 'मयोभू' नाम उल्लिखित है ।इनमें इन्होंने ब्रह्मजाया और ब्रह्मगवी की स्तुति की है ।यजुर्वेद के एक मन्त्र ११.१८ के ऋषि नाम में 'मयोभुवः' नाम आता है, जिसका आशय सम्भवतः मयोभू के वंशजों से होगा । मयोभू का सामान्य अर्थ (मयस् से सुख तथा भू से प्राण) 'सुखकारी प्राणरूप' किया जाता है ।

५१. **मरीचि कश्यप (७.६४)** - मरीचि कश्यप को अथर्ववेद में एक सूक्त ७.६४ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है । इस सूक्त में इन्होंने अग्नि की स्तुति की है । ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर कश्यप मारीच का ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है । इन्हें आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में मरीचि पुत्र के रूप में विवेचित किया है- **'जातवेदसे' इति एकर्चं षष्ठं सूक्तं मरीचिपुत्रस्य कश्यपस्यार्षं त्रैष्टुभम्** (ऋ० १.९९ सा० भा०) । कश्यप ऋषि सप्तर्षियों में एक माने जाते हैं । बृहद्देवता ग्रन्थ (५.१४३-१४५) में प्रजापति के वंशज एवं दक्ष पुत्रियों अदिति आदि के पति के रूप में इनका उल्लेख निर्दिष्ट है । शतपथ ब्राह्मण (१३.७.१.१५) के अनुसार इन्होंने विश्वकर्मन् भौवन राजा का सर्वमेध यज्ञ कराया था ।

५२. **मातृनामा (२.२)** - मातृनामा को अथर्ववेद के तीन सूक्तों २.२, ४.२०, ८.६ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है । उक्त सूक्तों में गन्धर्व-अप्सरा मातृनामा और ब्रह्मणस्पति आदि की स्तुति की है ।

५३. **मृगार (४.२३-२९)** - अथर्ववेद के सात सूक्तों ४.२३-२९ में मृगार को मंत्रद्रष्टा ऋषि के रूप में स्वीकार किया गया है । इन सूक्तों में ऋषि ने प्रचेता अग्नि, इन्द्र, सविता, वायु, द्यावा-पृथिवी, मरुद्गण, मित्रावरुण आदि देवताओं की स्तुतियाँ की हैं ।

५४. **मेधातिथि (७.२६-३०)** - मेधातिथि का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है । अथर्ववेद के पाँच सूक्तों ७.२६-३० तथा एक मन्त्र २०.१४३.९ का ऋषित्व इन्हें प्राप्त हुआ है । ऋग्वेद तथा सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'काण्व' संयुक्त है, जिसका आशय 'कण्वगोत्रीय' है । आचार्य सायण ने इन्हें कण्वगोत्रीय के रूप में उल्लिखित किया है- **मेधातिथि मेध्यातिथि नामानौ द्वावृषी तौ च कण्वगोत्रौ** (ऋ०८.१ सा० भा०) । अथर्ववेद में मेध्यातिथि ऋषि को भी अनेक सूक्तों का ऋषित्व प्राप्त हुआ है । इन्द्र द्वारा मेधातिथि के पास जाकर सोमपान करने का उल्लेख मिलता है- **तेषां ह स्मेन्द्रो मेधातिथेर्मेषस्य रूपं कृत्वा सोमं व्रतयति** (जैमि० ब्रा० ३.२३४) । **मेधातिथेर्ह मेषो भूत्वा (इन्द्रः) राजानं (सोमम्) पपौ** (जैमि० ब्रा० २.७९) ।

५५. **यम (६.४५-४६)** - अथर्व में यम, प्रजापति, वरुण, सविता, भग, ब्रह्मा आदि देवों का ऋषित्व भी दृष्टिगोचर होता है । **'यस्य वाक्यं स ऋषिः'** के अनुसार जिन देवों द्वारा संवाद या वाक्य प्रस्तुत किया गया है, वे देवगण भी ऋषि रूप में अभिप्रेत हैं । ऋग्वेद के ऋषि नाम में 'यम' के साथ 'वैवस्वत' पद संयुक्त है । जिसका आशय विवस्वत् या विवस्वान् का पुत्र है । ऋग्वेद में यम की बहिन यमी वैवस्वती का ऋषित्व भी निर्दिष्ट है । इनकी माता का नाम सरण्यू विवेचित है- **यमस्य माता पर्युह्यमाना... द्वा मिथुना सरण्यूः** (ऋ० १०.१७.१-२) । यम गोत्रीय ऋषियों (यामायनों) में कुमार, दमन, देवश्रवा, शङ्ख, संकुसुक आदि ख्याति प्राप्त हैं ।

५६. **वरुण (७.११७)** - वरुण का ऋषित्व ऋक्, यजु और अथर्व तीनों वेदों में निर्दिष्ट है । अथर्ववेद में एक सूक्त ७.११७ का ऋषित्व वरुण को प्राप्त हुआ है । वरुण पुत्रों में भृगु और सत्यधृति का ऋषित्व भी क्रमशः ऋग्वेद ९.६५ तथा १०.१८५ में निर्दिष्ट है । वरुणानी इनकी पत्नी के रूप में अभिप्रेत हैं । भागवत पुराण के अनुसार वरुण की चर्षणी नाम की पत्नी से इन्हें दो पुत्र भृगु और वाल्मीकि प्राप्त हुए । निरुक्तकार ने इन्हें द्वादश आदित्यों में से एक माना है । महाभारत के अनुसार ये कश्यप द्वारा अदिति

के गर्भ से जन्मे थे। वरुण को सम्पूर्ण भुवनों के सम्राट् के रूप में वर्णित किया गया है- **आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि** (ऋ०८.४२.१)। निरुक्त में वरुण शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार दी है- **वरुणः वृणोतीति सतः** (नि० १०.३)।

५७. **वसिष्ठ (१.२९)** - वसिष्ठ ऋषि को चारों वेदों में ऋषित्व प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद और सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'मैत्रावरुणि' संयुक्त हुआ है। वसिष्ठ और अगस्त्य को मित्र और वरुण का पुत्र माना जाता है, अतः दोनों के नाम के साथ मैत्रावरुणि पद निर्दिष्ट है। इनके मित्रावरुण और उर्वशी से उत्पन्न होने की पुष्टि ऋग्वेद में होती है-**उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः** (ऋ०७.३३.११)। इन्हें सप्तर्षियों में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है। ऋ०७.३३.१०-१४ में वसिष्ठ पुत्रों का सम्मिलित ऋषित्व भी प्राप्त होता है। अथर्ववेद के एक सूक्त ४.२२ में वसिष्ठ और अथर्वा का सम्मिलित ऋषित्व निर्दिष्ट है। वसिष्ठगोत्रीय ऋषियों में उपमन्यु, द्युम्नीक, शक्ति आदि का ऋषित्व भी ऋग्वेद में वर्णित है। महामृत्युञ्जय मन्त्र के द्रष्टा भी वसिष्ठ ही हैं- **त्र्यम्बकं द्वे अनुष्टुभौ पूर्वस्यां वसिष्ठ**_ (यजु० सर्वा० १.१५)। पुराणानुसार कर्दम की पुत्री अरुन्धती इनकी पत्नी थी।

५८. **वामदेव (३.९)** - वामदेव ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में अभिहित है। अथर्ववेद और यजुर्वेद में इनके ऋषि नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'गौतम' अनुल्लिखित है। ये गौतम के पुत्र होने के कारण 'गौतम' पद से संयुक्त हुए हैं। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के अनेक सूक्तों के द्रष्टा वामदेव गौतम हैं। गोतम वंशजों ने इन्द्र की स्तुति करते हुए श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की है- **इन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्। एषु विश्वपेशसंधियं धाः** (अथर्व० २०.३५.१६)। शत्रुओं को नष्ट करने की सामर्थ्य इन्हें पिता से प्राप्त हुई थी- **महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय** (४.४.११)। बृहद्देवता ग्रन्थ में वामदेव द्वारा इन्द्र पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है (बृह० ४.१३२)। वामदेव गोत्रीय ऋषियों में अंहोमुक्, दधिक्रावा, बृहदुक्थ, मूर्धन्वान् ऋषियों का ऋषित्व ऋग्वेद में उपनिबद्ध है।

५९. **विश्वामित्र (३.१७)** - विश्वामित्र ऋषि को चारों वेदों में ऋषित्व प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद तथा सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'गाथिन' प्रयुक्त हुआ है। ये गाथि के पुत्र होने के कारण 'गाथिन' पद से संयुक्त हुए। ये कुशिक के पौत्र होने के कारण कौशिक भी कहे जाते हैं। निरुक्त ग्रन्थ में उनके पितामह के राजा होने का उल्लेख मिलता है-**प्रज्ञया वाऽवनाय कुशिकस्य सूनुः। कुशिको राजा बभूव** (नि० २.२५)। विश्वामित्र ने शुनः शेप को अपना दत्तक पुत्र बनाकर उनका नाम देवरात रखा, इसकी पुष्टि ऐत० ब्रा० ७.१७-१८ में होती है। ऋषि विश्वामित्र गायत्री महामंत्र के द्रष्टा के रूप में प्रख्यात हैं तथा सप्तऋषियों में भी ख्याति प्राप्त हैं। सम्पूर्ण विश्व के मित्र होने के कारण इन्हें विश्वामित्र कहा गया है- **विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस, विश्वं हास्मै मित्रं भवति य एवं वेद** (ऐत० ब्रा० ६.२०)। ये ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के ऋषि रूप में मान्य हैं। ये सुदास् के महायज्ञ के प्रमुख ऋत्विक् रूप में भी वर्णित हुए हैं।

६०. **विहव्य (१०.५.४२-५०)** - विहव्य ऋषि का ऋषित्व अथर्ववेद में ९ मन्त्रों (१०.५.४२-५०) में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त १०.१२८ तथा यजुर्वेद के एक मंत्र ३४.४६ का ऋषित्व भी इन्हें प्राप्त है। ऋग्वेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'आङ्गिरस' संयुक्त है। ये अङ्गिरस् गोत्रोत्पन्न होने के कारण आङ्गिरस कहलाये। बृहद्देवताकार ऋषि शौनक ने (बृह० २.१३०, ३.५७ में) वैश्वदेव सूक्तों के द्रष्टाओं में इन्हें परिगणित किया है। ऋषि रूप में ये जमदग्नि के साथ वर्णित हुए हैं- **जमदग्नेश्च वा ऋषीणाञ्च सोमौ सं सुतावास्तां तत एतज्जमदग्नि र्विहव्यमपश्यत्** (तां० म० ९.४.१४)।

६१. **वीतहव्य (६.१३६-१३७)** - अथर्ववेद में वीतहव्य का ऋषित्व दो सूक्तों ६.१३६-१३७ में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद का एक सूक्त ६.१५ तथा सामवेद के तीन मंत्र १५६७-६९ भी इनके द्वारा दृष्ट हैं, परन्तु यहाँ इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'आङ्गिरस' संयुक्त है। अथर्ववेद में इनका उल्लेख दो बार हुआ है। इन्द्र द्वारा सहायता पाने का उल्लेख प्राप्त होता है- **त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावः** (अथर्व० २०.३७.३)। ये असित के घर से ओषधि ढूँढ़कर लाये थे- **तां वीतहव्य आभ्रदासितस्य गृहेभ्यः** (अथर्व० ६.१३७.१)। ऋग्वेद के एक स्थान में भरद्वाज के साथ इनका नामोल्लेख मिलता है। इसके भाष्य में आचार्य सायण ने भरद्वाज को वीतहव्य ऋषि के विशेषण के रूप में वर्णित किया है तथा विकल्प में वीतहव्य को भरद्वाज ऋषि के विशेषण के रूप में भी उल्लिखित किया है- **वीतं गमितं हव्यं हविर्येन तादृशाय भरद्वाजायेति वा योज्यम्** (ऋ०६.१५.३ सा० भा०)।

६२. **वेन (२.१)** - वेन ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में उपन्यस्त है। अथर्व में तीन सूक्त २.१, ४.१-२ तथा ऋग्वेद में दो सूक्त ९.८५, १०.१२३ इनके द्वारा दृष्ट हैं; परन्तु ऋग्वेद में इन्हें एक भार्गव के रूप में माना गया है। ये एक मेधा सम्पन्न ऋषिरूप में मान्य हैं। पृथवान् को वैनगोत्रीय भी समझा जाता है- **प्र तद्दुः शीमे पृथवाने वेने** (ऋ० १०.९३.१४)। आचार्य सायण ने पृथु को वेन पुत्र कहकर वर्णित किया है, इसीलिए इनके नाम के साथ वैन्य पद संयुक्त हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थ में वेन को इन्द्र के रूप में माना गया है- **इन्द्र उ वै वेनः** (कौषी० ब्रा० ८.५)। आर्षा० में इन्हें भृगुपुत्र के रूप में प्रमाणित किया गया है- **वेनो नाम भृगोः सुतः** (आर्षा०

१०.६०)। पौराणिक सन्दर्भ में इन्हें राजा अंग तथा सुनीथा का पुत्र माना गया है। ये कुरु के पौत्र तथा चाक्षुष मनु के प्रपौत्र थे।

६३. शन्ताति (१.३३) - शन्ताति को अथर्ववेद के अनेक सूक्तों (१.३३,४.१३,६.१०,६.१९,६.२१-२४,६.५१,६.५६-५७,६.९३, ६.१०७,७.७०-७२) के ऋषि होने का गौरव प्राप्त हुआ है। अन्यत्र इनका ऋषित्व अनुपलब्ध है।

६४. शम्भु (२.२८) - शम्भु अथर्ववेद के ऋषि हैं। इन्हें अथर्ववेद के केवल एक ही सूक्त (२.२८) का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। 'शम्भुः' का अर्थ निरुक्तकार ने 'सुखभूः' लिया है (नि० ५.३), जिसका आशय 'सुख देने वाला' या 'समृद्धि देने वाला' है। इस सूक्त में इन्होंने मित्रावरुण, द्यावा-पृथिवी आदि देवगणों की स्तुति की है।

६५. शुक्र (२.११) - शुक्र को अथर्ववेद के अनेक सूक्तों का द्रष्टा माना गया है। ये अथर्ववेदीय ऋषि हैं। अन्य संहिताओं में इनका ऋषित्व उपलब्ध नहीं है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण २.७.७ में एक आचार्य का नाम शुक्र है, जो जबाला का वंशज होने के कारण 'जाबाल' पद से संयुक्त हैं। शुक्र को अनेक स्थानों पर आकाशीय प्रकाशमय ग्रह के अर्थ में लिया गया है- **एष वै शुक्रो य एष तपति** (शत० ब्रा० ४.३.१.२६)। **ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम्** (ऐत० ब्रा० ७.१२)। **असौ वा आदित्यः शुक्रः** (शत० ब्रा० ९.४.२.२१)। पौराणिक सन्दर्भ में इन्हें कवि का पुत्र तथा भृगु का पौत्र कहा गया है, जो दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य कहलाये।

६६. शुनःशेप (६.२५) - शुनःशेप ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में उपन्यस्त है। अथर्ववेद में इन्हें चार सूक्तों ६.२५,७.८८ २०.७४, २०.१२२ तथा तीन मंत्रों २०.२६.१-३ का ऋषित्व प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद तथा सामवेद में इनके नाम के साथ 'आजीगर्ति' पद संयुक्त है। ये अजीगर्त के पुत्र थे, इसी कारण आजीगर्ति कहलाये। ऐतरेय ब्राह्मण में ये विश्वामित्र के दत्तक पुत्र के रूप में विवेचित हैं, जो कालान्तर में देवरात वैश्वामित्र कहलाये। इनके पिता अजीगर्त के तीन पुत्रों, जिनमें से मध्यम शुनः शेप थे, का उल्लेख भी इसी में वर्णित है- **तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः शुनः पुच्छः शुनः शेपः शुनोलाङ्गूल इति** (ऐत० ब्रा० ७.१५)। बृहद्देवता (३.१०३) में इन्द्रदेव द्वारा शुनः शेप को स्वर्णमय रथ प्रदान करने का उल्लेख है।

६७. शौनक (२.६) - अथर्ववेद में शौनक ऋषि को २.६,६.१६,६.१०८,७.११-१३,७.८३ सूक्तों का द्रष्टा स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में शौनक ऋषि का पूरा नाम गृत्समद भार्गव शौनक वर्णित है तथा इनका पूर्व नाम गृत्समद आङ्गिरस शौनहोत्र उल्लिखित है। यहाँ शौनक का नाम अपत्यवाचक ही है, जो गृत्समद ऋषि के साथ संयुक्त हुआ है। ये भृगु कुल में उत्पन्न होने से भार्गव तथा शुनक पुत्र होने से शौनक कहलाये, इस तथ्य की पुष्टि आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में की है- **मण्डलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः। स च पूर्वम् आङ्गिरस कुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञ काले ऽ सुरैर्गृहीत इन्द्रेण मोचितः। पश्चात् तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनक पुत्रो गृत्समदनामा अभूत्** (ऋ० २.१ सा० भा०)। ये ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के ऋषि रूप में मान्य हैं। कौषीतकि ब्राह्मण २२.४ में ये भार्गव के रूप में तथा बृहद्देवता ४.७८ में ये शौनहोत्र के रूप में अभिप्रेत हैं। गृत्समद के पुत्र कूर्म गार्त्समद का ऋषित्व भी ऋ० २.२७-२९ में निर्दिष्ट है। गृत्समद शब्द की व्युत्पत्ति निरुक्तकार ने निम्न प्रकार की है- **गृत्समदो गृत्समदनः। गृत्स इति मेधाविनाम गृणातेः स्तुतिकर्मणः** (नि० ९.५)।

६८. सविता (२.२६) - सविता का ऋषित्व यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में अनेक देवगणों प्रजापति, ब्रह्मा, बृहस्पति, भग, तरुण आदि को भी ऋषित्व प्राप्त हुआ है। **'यस्य वाक्यं स ऋषिः'** सूत्रोक्ति के अनुसार मंत्रों में वर्णित देवों को जिन देवों द्वारा सम्बोधित किया गया है, वे देवगण भी ऋषि रूप में मान्य हैं। सविता को देवों का उत्पत्तिकारक कहा गया है- **सविता वै देवानां प्रसविता** (शत० ब्रा० १.१.२.१७)। यह सूर्य रश्मियों से पवित्र करने वाला है- **देवो वः सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः** (क०पि० कठ सं० १.५)। निरुक्तकार ने उन्हें सबका जनक स्वीकार किया है- **सविता सर्वस्य प्रसविता** (नि० १०.३१)। आदित्य को भी सविता कहा गया है- **आदित्योऽपि सविता उच्यते** (नि० १०.३२)। प्रजापति ने सविता रूप में प्रजा की उत्पत्ति की- **प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत** (तैत्ति० ब्रा० १.६.४.१)।

६९. सिन्धुद्वीप (१.४-५) - सिन्धु द्वीप ऋषि का ऋषित्व चारों वेदों में निर्दिष्ट है। ऋग्वेद में एक सूक्त १०.९ का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है, जिसमें इन्हें आम्बरीष (अम्बरीष पुत्र) कहा गया है। इनके पिता अम्बरीष वार्षागिर को एक राजा स्वीकार किया गया है। वृषागिर के पाँच राजर्षि पुत्रों ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस् का ऋषित्व भी ऋ० १.१०० में उपन्यस्त है। बृहद्देवताकार ऋषि शौनक (६.१५२-१५३) के अनुसार इन्द्र ने विश्वरूप का वध किया, उनके पाप का निवारण करने के लिए सिन्धुद्वीप ऋषि ने जल का सिञ्चन कर सूक्त १०.९ का गायन किया। आचार्य सायण ने इन्हें राजा अम्बरीष के पुत्र रूप में वर्णित किया है- **अम्बरीषस्य राज्ञः पुत्रः सिन्धुद्वीप ऋषिस्त्वाष्ट्र- पुत्रस्त्रिशिरा वा** (ऋ० १०.९ सा० भा०)।

* * *

परिशिष्ट - २

अथर्ववेद भाग-१ के देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. **अंश (६.४.२)** - बृहद्देवता में एक स्थान पर (७.११४ में) अदिति के आठ पुत्र वर्णित हैं; किन्तु इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर (५.१४७ में) अदिति के बारह पुत्रों (आदित्यों) का वर्णन भी मिलता है। इन दोनों प्रसङ्गों में अंश का देवत्व उपन्यस्त है- **धातेन्द्रो वरुणो मित्रो अंशः सूर्योऽर्यमा भगः** (बृह० ७.११७)। **भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च। धाता चैव विधाता च विवस्वांश्च महाद्युतिः** (बृह० ५.१४७)। अंश शब्द का उल्लेख अथर्ववेद में दो बार हुआ है। एक बार तब, जब वे मित्र, भग, वरुण, अदिति, मरुत् और अर्यमा के साथ हैं तथा उनसे शत्रु को दूर भगाने की प्रार्थना की गई है- **अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः। अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम्** (अथर्व० ६.४.२)। दूसरी बार तब उनके नाम का उल्लेख हुआ है, जब उनसे पाप से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की गई है और उनके साथ वरुण, भग, विष्णु और विवस्वान् हैं- .... **वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्। अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः** (अथर्व० ११.६.२)। इस प्रकार अथर्ववेद में अंशदेव पापों को दूर करने वाले तथा शत्रुओं से त्राण दिलाने वाले देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

२. **अग्नाविष्णू (७.३०)** अथर्ववेदीय देवयुग्मों में अग्नाविष्णू का देवत्व विवेचित है। अथर्ववेद में दो बार इनका नामोल्लेख हुआ है। अथर्ववेद के ७ वें काण्ड के ३० वें सूक्त में ऋषि मेधातिथि द्वारा इनकी स्तुति की गई है। इनकी महिमा का गान करते हुए ऋषि ने इन्हें गुह्य, आज्य एवं सांनाय्य नामक घृत पीने वाला तथा घर-घर में सातों रत्न प्रदान करने वाला बताया है- **अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम। दमे दमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात्** (अथर्व० ७.३०.१)। इन दोनों देवों के धाम को महान् तथा सबका प्रिय वर्णित किया गया है तथा उनसे निवेदन किया गया है कि आप दोनों की जिह्वा आज्य को ग्रहण करें- **अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।..........घृतमुच्चरण्यात्** (अथर्व० ७.३०.२)।

३. **अग्नि (८.३)** - चारों वेदों में अग्नि का देवत्व प्रतिष्ठित है। सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण इन्हें अग्नि कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है- **स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्निः** (शत० ब्रा० ६.१.१.११)। अग्निदेव को सभी देवों का अधिष्ठाता निरूपित किया गया है- **अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा** (शत० ब्रा० १४.२.२.५)। ये सभी पापों के विनाशक हैं। ऋग्वेद में इन्हें द्यौ से उत्पन्न विवेचित किया गया है- **यदेनं द्यौर्जनयत सुरेताः** (ऋ० १०.४५.८)। कुछ प्रसङ्गों में इन्हें आपः, त्वष्टा, सूर्य, यज्ञ तथा अरणि से भी उद्‌भूत कहा गया है। स्थिति भेद से इन्हें अनेक नामों से उपन्यस्त किया गया है। जैसे- घर्षणबल (अरणि मंथन) से उत्पन्न होने के कारण उन्हें सहसः पुत्र, नरों द्वारा प्रशंसित होने के कारण नराशंस, पार्थिव अग्नि को तनूनपात्, सर्वत्र विद्यमान, सर्वत्र पूजित अग्नि को वैश्वानर; घरों में प्रयोग होने वाली अग्नि को गार्हपत्य, शवों को जलाने में प्रयुक्त होने वाली अग्नि को क्रव्यादग्नि, सभी उत्पन्न हुए को जानने के कारण जातवेदा, द्रविण अर्थात् धन प्रदाता होने के कारण अग्नि को द्रविणोदा कहते हैं। पापनाशक होने के कारण अग्नि को पाप्मनाशन, कोशग्रन्थों के अनुसार प्रकृष्ट चित्त और प्रकृष्ट ज्ञान सम्पन्न होने के कारण प्रचेता अग्नि, सत्यरूपी बल से युक्त होने के कारण सत्यौजा अग्नि, यक्ष्मा विनाशक होने के कारण यक्ष्मनाशक अग्नि, अत्यन्त सन्तप्त करने की सामर्थ्य होने से सान्तपनाग्नि, पेट में भोजन को पचाने वाली अग्नि को जठराग्नि, जंगलों को जलाने वाली अग्नि को दावाग्नि तथा समुद्र में विद्यमान अग्नि को बड़वाग्नि कहते हैं। अग्नि का एक नाम त्रिणामा भी है; क्योंकि स्थान भेद की दृष्टि से ये (पार्थिव, वैद्युत और गार्हपत्य) तीन नाम वाले हैं- **एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्संमनसस्कृधीह** (अथर्व० ६.७४.३)। वैदिक देवों में इन्हें इन्द्रदेव के समान ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। अग्निदेव के अनेक कार्यों में सर्व प्रमुख कार्य वर-वधू का संयोजन करना है। सूर्या के विवाह में अग्नि को पुरोगव अर्थात् विवाह सुनिश्चित करने के लिए प्रतिपक्ष से भेजा गया प्रतिनिधि वर्णित किया गया है- **सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः** (अथर्व० १४.१.८)। अग्नि तथा वधू को सुभगा और जरदष्टि बनाने वाला कहा गया है- **अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु** (अथर्व० १४.१.४९)। अग्निदेव को देवताओं और मनुष्यों का नेत्र कहा गया है- **अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्** (अथर्व० ४.१४.५)। इस प्रकार चारों वेदों तथा इतर ग्रन्थों में भी अग्निदेव को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

४. **अग्नीन्द्र (१.७.३)** - वैदिक देवयुग्मों में अग्नीन्द्र की अभ्यर्थना चारों वेदों में प्राप्य है। इन्हें यमल भ्राता कहा जाता है। जो एक ही पिता की सन्तान हैं। ऋग्वेद के छठवें मण्डल में उल्लेख है- **बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ। समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा** (ऋ० ६.५९.२)। कष्टदायी मायावियों का निराकरण करके ये श्रेष्ठजनों की सहायता सदैव तत्परतापूर्वक करते हैं- **ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्।** (ऋ० १.२१.५)। इनके वीरतापूर्ण कृत्य प्रसिद्ध हैं- **यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि** (ऋ० १.१०८.५)। अथर्ववेद १.७.३ में इस देवयुग्म से राक्षसों को नष्ट करने तदनन्तर यज्ञ में आने व हवि और घृत स्वीकार करने की प्रार्थना की गई है- **वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः। अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम्॥** बृहद्देवता में भी अग्नीन्द्र का देवत्व प्रमाणित करते हुए ऋषि शौनक ने लिखा है- **सम्यगग्नीन्द्रसूर्याणां तान्युक्तानि यथाक्रमम्** (बृह० २.७०)। इस देवयुग्म का उल्लेख 'अग्नीन्द्र' और 'इन्द्राग्नी' दोनों रूपों में मिलता है। जहाँ अग्नि की प्रधानता होती है, वहाँ अग्नि का नाम पहले और इन्द्र का बाद में होता है तथा जहाँ इन्द्र की प्रधानता होती है, वहाँ इन्द्र का नाम पहले और अग्नि का बाद में होता है। शतपथ ब्राह्मण में इन दोनों (अग्नीन्द्र) की तुलना प्राणोदान से की गई हैं-इन्द्राग्नी हि प्राणोदानौ (शत० ब्रा० ४.३.१.२२)। इसी ग्रन्थ में इन समस्त देवों में महान् विवेचित किया गया है- **इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः** (शत० ब्रा० ६.१.२.२८)।

५. **अग्नीषोम (१.८.१-२)** - अग्नि और सोमदेव का सम्मिलित देवत्व 'अग्नीषोम' नाम से उपन्यस्त किया गया है। ऋग्वेद में यह देवयुगल प्रकाश प्रदाता के रूप में तथा कुछ स्थानों पर इन्हें जल-प्रवाहों को मुक्त करने वाला, आकाश में नक्षत्रों का विस्तारक निरूपित किया गया है- **युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान्** (ऋ० १.९३.५)। इन दोनों देवों में एक को मातरिश्वा द्वारा आकाश से तथा दूसरे को श्येन पक्षी द्वारा पर्वत शिखर (अद्रि) से यहाँ लाने का विवरण मिलता है- **आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः। अग्नीषोमा.....लोकम्** (ऋ० १.९३.६)। शतपथ ब्राह्मण में इन्हें दो भ्राता बताया गया है- **अग्नीषोमौ भ्रातरावब्रवीत्** (शत० ब्रा० ११.१.६.१९)। इसी ग्रन्थ में अग्नि को सूर्य से और सोम को चन्द्र से सम्बद्ध निरूपित किया गया है- **सूर्य एवाग्नेयश्चन्द्रमाः सौम्यः** (शत० ब्रा० १.६.३.२४)। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर इनसे धन, स्वर्ण, पशु, प्रजा और ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों में इनसे उपद्रवकारी राक्षसों को दण्ड देने और मारने की प्रार्थना की गई है- **अयं स्तुवान ....हर्यत। बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम्** (अथर्व० १.८.२)।

६. **अदिति (६.६८.२)** - अदिति विश्वदेवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। मैत्रायणी संहिता में उल्लेख है- **इयं (पृथिवी) वा अदितिर्देवी विश्वदेव्यवती** (मैत्रा० सं० ३.१.८)। सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण अदिति के द्वारा ही सम्पन्न होता है एवं इन्हीं के द्वा उसकी प्रतिष्ठा है- **एवा न देव्यदितिरनर्वा। विश्वस्यभर्त्री जगतः प्रतिष्ठा** (तैत्ति० सं० ३.१.११.४)। अदिति अष्ट आदित्यों की माता के रूप में प्रख्यात हैं- **अष्टयोनिरदितिरष्ट पुत्राष्टमीम्** (अथर्व० ८.९.२१)। निरुक्तकार यास्क ने भी अदिति को देवमाता के रूप में उपन्यस्त किया है- **अदितिरदीना देवमाता** (नि० ४.२२)। अदिति का भौतिक आधार अनन्त अन्तरिक्ष है, जहाँ आदित्य गण भ्रमण करते रहते हैं। इनकी सार्वभौम संज्ञा का संकेत अथर्ववेद के इस मंत्र में मिलता है- **अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः** (अथर्व० ७.६.१)।

७. **अध्यात्म (९.९)** - अथर्ववेद के नवें ग्यारहवें तथा तेरहवें काण्ड के कुछ मन्त्रों का देवत्व अध्यात्म को प्राप्त हुआ है। आचार्य सायण के **'यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)' सूत्र के अनुसार अध्यात्म को देवता के रूप में स्वीकार किया गया है, क्योंकि इन सूक्तों का वर्ण्य विषय अध्यात्म (तत्त्व) ही है। आप्टे० सं० कोश पृ० २८ के अनुसार अध्यात्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **'अध्यात्मनः संबद्धम्' इति अध्यात्मः**- अर्थात् आत्मा या व्यक्ति से सम्बंध रखने वाला (विषय)। हिन्दी शब्द सागर में पृ० १७६ पर अध्यात्म के तीन अर्थ वर्णित हैं - १- ब्रह्म विचार,ज्ञानतत्त्व, आत्मज्ञान। २- परमात्मा ३- आत्मा। बृहत्सर्वानुक्रमणी में अध्यात्म का देवत्व इन शब्दों में विवेचित है - **'यन्मन्युः' इति चतुस्त्रिंशत्। कौरुपथिः। अध्यात्ममन्यु दैवतम्** - - -(बृह० सर्वा ११.१०)। अथर्ववेद १०.७-८ में अध्यात्म के आधारभूत आत्मा को अलग से भी देवत्व प्रदान किया गया है। वस्तुतः 'आत्मा' को आधार मानकर या आत्मा पर आधारित जो भी चिन्तन - मनन - निदिध्यासन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, उसे 'अध्यात्म' की संज्ञा प्रदान की जाती है। 'आत्मा' ही वेदांत (वेद के चरम ज्ञान) का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। सभी उपनिषद् इसी तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। बृहद्देवता में आत्मा का देवत्व इस प्रकार निर्दिष्ट है - **तेषामात्मैव तत्सर्वं यद्यद्भक्तिः प्रकीर्त्यते** (बृह० १.७३)।

८. **अनुमति (६.११.३)** - अनुमति कल्याण की देवी के रूप में ख्यातिलब्ध हैं। अथर्ववेद में उल्लेख है कि वे किसी स्त्री के अरणि (दुर्भाग्य सूचक चिह्नों) को दूर करती हैं; क्योंकि सौभाग्य प्रदान करने का कार्य देवताओं द्वारा अनुमति देवी को ही सौंपा गया है- .... **निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय** (अथर्व० १.१८.२)। अनुमतिदेवी का वर्णन प्रायः सिनीवाली के साथ दृष्टिगोचर होता है। खोये हुए पशुओं को उनके गृह में वापस लाने में बृहस्पति और सिनीवाली उनकी सहायता करते हैं। अनुमति देवी से प्रार्थना की जाती है कि उन्हें (पशुओं को) गोष्ठ में बाँधकर रखें, जिससे वे बाहर न निकल सकें- ....**सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ** (अथर्व० २.२६.२)। सन्तति के विषय में प्रजापति, सिनीवाली के साथ अनुमति को भी गर्भस्थ भ्रूण का अंग निर्माता कहा गया है। अथर्ववेद के छठवें काण्ड के एक मंत्र में उपर्युक्त तीनों देवताओं द्वारा एक स्त्री के गर्भ से कन्या को जन्म देने वाले तत्त्वों को अन्यत्र पहुँचाकर उनके स्थान पर पुरुष तत्त्वों को स्थापित कर देने का वर्णन मिलता है- **प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चीक्लृपत्। स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह** (अथर्व० ६.११.३)। वैदिक ग्रन्थों में अनुमति को पूर्णिमा और सिनीवाली को अमावास्या काल का प्रतिनिधित्व करने वाला विवेचित किया गया है। अमरकोश के अनुसार अनुमति, पूर्णिमा (राका) से एक कला हीन दिन अर्थात् चतुर्दशी की देवी है- **कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे** (अमर० १.४८)। निरुक्त में भी यास्क मुनि ने इसी तथ्य की पुष्टि इन शब्दों में का है- **'या पूर्वा पौर्णमासी साऽनुमतिर्योत्तरा सा राके'** (नि० ७.२८)।

९. **अपांनपात् (६.३.१)** - अपांनपात् का देवत्व ऋक्० साम० तथा अथर्व० तीनों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अपांनपात् अग्निदेव का एक नाम भी है, जो मेघों में स्थित जल को नीचे न गिरने देकर उसका संवर्द्धन करते हैं। अपांनपात् को जल से उत्पन्न वनस्पतियों द्वारा उद्भूत माना गया है, इसीलिए उन्हें जल का पौत्र कहते हैं। जल से वृक्ष-वनस्पतियाँ और उनसे अग्नि। इस प्रकार अग्नि (अपांनपात्) आपः के तृतीय पुत्र (पौत्र) हुए। एक मन्त्र में वायु को अपांनपात् कहा गया है- **अपां नपादवतु वायुरिष्टये** (ऋ० १०.९२.१३)। ऋग्वेद में ही दो बार वैद्युत अग्नि के रूप में अपांनपात् का उल्लेख हुआ है। अथर्ववेद में अपांनपात् से सामान्य रक्षा और सहायता के लिए प्रार्थना की गई है- **अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः** (अथर्व० ६.३.१)। अपांनपात् का देवत्व स्वीकार करते हुए बृहद्देवताकार ने लिखा है- **अपांनपादित्यनेन नाम्नाग्निर्मध्यम स्तुतः** (बृह० ७.३३)।

१०. **अप्सरा (४.३८.१-४)** - अप्सराओं का देवत्व ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में संप्राप्य है। इनका उल्लेख एकवचन तथा बहुवचन में भी हुआ है। अप्सराओं का सम्बन्ध प्रायः गन्धर्वों और मृगों के साथ वर्णित है- **अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन्** (ऋ० १०.१३६.६)। अप्सराओं को गन्धर्वों की पत्नी भी निरूपित किया गया है- **ताभ्यो गन्धर्व पत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः** (अथर्व० २.२.५)। अथर्ववेद (३.२६.१-६) में गन्धर्वों को स्थिति भेद से क्रमशः साग्नि हेति, सकामा अविष्यव, वैराज, सवाता प्रविध्यन्त, सौषधिका निलिम्पा तथा बृहस्पतियुक्त अवस्वान् विशेषण प्रदान किए गए हैं। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार जल (अप्) से उत्पन्न होने के कारण ही इन्हें अप्सरा कहा जाता है- **अद्भ्यः समुद्रजलेभ्यः सरन्ति उद्यान्ति......अप्सु निर्मथनादेवरसात् तस्मात् वरस्त्रियः। उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्** (श० क० पृ० ७१)। अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड में सूर्य को गन्धर्व और उसकी किरणों को अप्सरा बताया गया है- **दिविस्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य। मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः** (अथर्व० २.२.२)। अप्सराओं का निवास समुद्र (अन्तरिक्ष या जल) बताते हुए यह भी कहा गया है कि वे वहीं से आती हैं और पुनः वहीं लौट जाती हैं ... **समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति** (अथर्व० २.२.३)।

११. **अप्सरा समूह (४.३७.१-५) - द्र० अप्सरा।**

१२. **अमावस्या (७.८४)** - वैदिक देवताओं में अमावस्या का नाम प्रतिष्ठित है। अमावस्या को विशेषतया अथर्ववेद में ही देवता का सम्मान मिला है। यों तो ऋग्वेद में 'अमा' शब्द का प्रयोग प्रायः १०-१२ बार हुआ है, पर वह गृह, समीप या सह के अर्थ में ही हुआ है। अस्तु, अमावस्या अथर्ववेदीय ऋषियों की सम्मानास्पद देवी के रूप में विवेचित हैं। ऋषियों द्वारा उन्हें वसुओं को प्राप्त कराने वाली शक्ति, पुष्टि और समृद्धि प्रदान करने वाली कहा गया है- **आगन्रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती। अमावस्यायै हविषा .... न आगन्** (अथर्व० ७८४.३)। अमावस्या को विश्ववारा-सबके द्वारा वरण करने योग्य श्रेष्ठ-भाग्यवती कहा गया है, जो याजक को धन, और वीर सन्तति प्रदान कर उसके यज्ञ को पूर्ण करती हैं- **तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्** (अथर्व० ७८४.१)। एक मंत्र में स्वयं अमावस्या के शब्द हैं कि अर्थ की दृष्टि से मैं सार्थक हूँ; क्योंकि सुकृती देवता मेरे अन्दर निवास करते हैं **(अमा समीपे अथवा सह वसन्ति देवाः यस्याम्) - अहमेवास्म्यमावस्या ३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे** (अथर्व० ७८४.२)।

१३. अराति समूह (५.७.१-३, ६-१०) - ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में 'अराति' का उल्लेख लक्ष्य को असफल कर देने वाली पीड़ा-प्रदात्री पाप देवता के रूप में हुआ है। इन्हें अनिष्टकर्त्री पापदेवता के रूप में स्वीकार किया गया है। एकवचन और बहुवचन दोनों में स्त्रीलिंग में अराति शब्द का प्रयोग मिलता है। असफलता, संकट और विपन्नता के अर्थों में भी कई जगह इस शब्द को लिया गया है। दुर्भाग्य सूचक अन्य वस्तुओं की तरह ही अराति को स्वयं व सन्तति से दूर रखने के लिए कई मंत्रों में संकेत दिये गये हैं। जैसे-**निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं१ निररातिं सुवामसि। अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि** (अथर्व० १.१८-१)। जंगिड नामक पदार्थ की बनी मणि से कृत्या और अराति को दूर करने का विवेचन भी वेदों में मिलता है, इसीलिए उस मणि को 'अराति दूषि' कहा गया है। अराति एवं अभिमाति आदि पाप देवताओं से बचने के लिए अन्य मणियों को बाँधने का विधान था-**परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम्। अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः** (अथर्व० २.७.४)। अराति से मुक्ति के निमित्त अग्नि से भी प्रार्थना की गई है- **वि देवा जरसावृतन्वि त्वमग्ने अरात्या** (अथर्व० ३.३१.१)।

१४. अरुन्धती (६-५९) - अथर्ववेद में अरुन्धती नामक ओषधि को भी देवता की श्रेणी में परिगणित किया गया है। इसका एक नाम सिलाची तथा लाक्षा भी है। अरुन्धती देवी की माता के रूप में रात्रि तथा पिता के रूप में नभ और पितामह के रूप में अर्यमा का उल्लेख है- **रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः। सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा** (अथर्व० ५.५.१)। अरुन्धती को देवताओं की बहिन निरूपित किया गया है। अरुन्धती को स्परणी नामक ओषधि भी कहते हैं, जो प्लक्ष, न्यग्रोध, खदिर, धव, पीपल और पर्ण वृक्षों से निकलती है- **भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात्। भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति** (अथर्व० ५.५.५)। इस (अरुन्धती नामक ओषधि) को रक्तवर्णा तथा कटे हुए अंगों को फिर से जोड़ देने वाली तथा रुधिर को रोकने वाली विवेचित किया गया है। पुरुषों को क्षयरोग रहित करने की क्षमता भी इसमें है। अरिष्ट निवारण हेतु भी अरुन्धती से प्रार्थना की गई है-**जीवलां नघारिषां ... । अरुन्धती मुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये** (अथर्व० ८.७.६)।

१५. अर्यमा (६-४-२) - अथर्ववेदीय देवताओं में अर्यमा का देवत्व उपन्यस्त है। इनका देवत्व ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में भी संप्राप्य है। अर्यमादेव की गणना आदित्यगणों में की गई है। तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख है- **असौ वा आदित्योऽर्यमा** (तैत्ति० सं० २.३.४.१)। सूर्य का ही एक नाम होने के कारण अर्यमा शब्द की व्युत्पत्ति इन शब्दों में वर्णित है- '**ऋच्छति सदा गच्छतीत्यर्यमा**'। अनेक स्थानों पर इनका नामोल्लेख वरुण और मित्र देवों के साथ हुआ है- **आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा** (ऋ० १.२६.४)। अर्यमादेव को सप्त होता का भी होता विवेचित किया गया है- **अर्यमा सप्तहोतॄणां होता** (तैत्ति० ब्रा० २.३.५.६)। वैदिक संहिताओं में अर्यमा को धन, कल्याण तथा स्वर्ग प्रदान करने वाला बताया गया है। अथर्ववेद में अर्यमा कल्याण के देवता रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे विवाह के अधिष्ठाता देवता के रूप में माने जाते हैं। वे अपने रश्मि समूह के साथ पूर्व से आते हैं और कन्या को पति और वर को पत्नी प्रदान करने की कामना करते हैं - **अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः। अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये** (अथर्व० ६.६०.१)। अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में अर्यमा को सुबन्धु तथा पतिवेदन कहा गया है, जो घनिष्ठ मित्र के समान कन्या के लिए पति और पति के लिए कन्या की खोज करते हैं-**अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः** (अथर्व० १४.१.१७)। अर्यमा देव प्रख्यात दाता के रूप में भी जाने जाते हैं, इसी कारण उन्हें यज्ञ की उपमा प्रदान की गई है- **एष वा अर्यमा यो ददाति** (काठ० सं० ११.४)। ..**यज्ञो वा अर्यमा** (मैत्रा० सं० ४.२.१०)।

१६. अशनि (३.२७.४) - वज्र आयुध को अशनि कहा गया है। आकाश में बादलों के परस्पर संघर्ष से कड़कने वाली बिजली को अशनि कहा गया है। अथर्ववेद में अशनि का देवत्व भी स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद के एक मंत्र में अशनि को उत्तर दिशा की रक्षा करने वाला 'बाण' विवेचित किया गया है- **उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो............एभ्यो अस्तु** (अथर्व० ३.२७.४)। अशनिपात से वृक्षों के जल जाने का वर्णन अनेकशः मिलता है। शपथ से प्रार्थना की गई है कि वे हमें अपशब्द कहने वाले को ऐसे जला दें, जैसे अशनि वृक्ष को जलाते हैं- **परिणो वृङ्धि शपथ ह्रदमग्निरिवादहन्। शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः** (अथर्व० ६.३७.२)। ऐक स्थान पर किसी को ये आशीष भी दिया गया है कि दिव्य अशनि उसे न मारें .....**मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत्** (अथर्व० ६.१४२.१)।

१७. अश्विनीकुमार (६.५०) - वैदिक संहिताओं में अश्विनीकुमारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः इन दो भाइयों का उल्लेख संयुक्तरूप में ही हुआ है। ये देवभिषक् हैं- **अश्विनौ वै देवानां भिषजौ** (तैत्ति० सं० २.३.११.२)। रासभ इनके वहनकर्त्ता हैं, जिस पर आरूढ़ होकर ये विजय प्राप्त करते हैं- **गर्दभ रथेनाश्विना उदजायताम्** (ऐ० ब्रा० ४.९)। निरुक्तकार यास्क मुनि ने इन्हें रात्रि तथा उषा का पुत्र कहा है- **वासात्योऽन्य उच्यत उषः पुत्रस्तवान्यः** (नि० १२.२)। ऋग्वेद में एक स्थान पर इन्हें विवस्वान् तथा त्वष्टा

पुत्री सरण्यू का यमलपुत्र भी उपन्यस्त किया गया है- **उताश्विनावभरद् यत्तदासी दजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः** (ऋ० १०.१७.२) ये कल्याण एवं शुभ प्रदाता के रूप में प्रतिष्ठित हैं- **ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती** (ऋ० ८.२२.१४) अथर्ववेद में अश्विनीकुमारों का ये शुभस्पती विशेषण प्रायः तीन बार (६.३.३,७.१.१९,६.६९.२) प्रयुक्त हुआ है। अथर्व में उनसे वर्चस् प्रदान करने, सन्तति विहीन स्त्री को गर्भ प्रदान करने, यजमान को निर्ऋति से बचाने, वषट्कार द्वारा स्तोता की रक्षा करने, बुद्धि को स्थिर रखने तथा ओजस्, तेजस् और वर्चस् में वृद्धि करने हेतु प्रार्थना की गई है-.. **एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम** (अथर्व० ९.१.१७)।

१८. अष्टका (३.१०) द्र०- एकाष्टका।

१९. असुर (१. १०-१) - वैदिक देवताओं की श्रेणी में असुरों की गणना की जाती है। प्रारम्भ में असुर शब्द 'प्राणवान्' के अर्थ में प्रयुक्त होता था। बाद में ये सुर (देवता) के विलोम अर्थ में असुर प्रयुक्त होने लगा। ऋग्वेद १.२४.१४ तथा अथर्व० १.१०.१ असुर शब्द वरुण के लिए प्रयुक्त हुआ है- **अवतं हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः। क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि** (ऋ० १.२४.१४), **अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः** (अथर्व० १.१०.१)। यह सृष्टि सत् और असत् के द्वन्द्व से बनी है। मानवीय चेतना इन दोनों शक्तियों पर विश्वास करती है, दोनों ही एक दूसरे की पूरक हैं। सामान्यतः देवताओं की विरोधी शक्तियाँ असुर कहलाती हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख है- **अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अपवयऋजीषिन्** (८.९६.९)। ये असुर शक्तियाँ सृष्टि के क्रिया-कलापों में अवरोध उत्पन्न करती हैं। जल-प्रवाह निरोध, सूर्याच्छादन तथा वृष्टि-अवरोध इनके प्रमुख कार्य हैं। अतः इन्द्रादि देवों द्वारा मंत्रों एवं शक्ति के माध्यम से इनको पराजित करने के प्रमाण मिलते हैं- **तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम। ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्** (ऋ० १०.५३.४)।

२०. आदित्यगण (५.३.९-१०) - आदित्यगणों का देवत्व ऋक्०, यजु०, साम तथा अथर्ववेद में मिलता है। कुछ स्थानों पर एक वचन में यह शब्द (आदित्य) मिलता है, अधिकांश स्थलों पर बहुवचन में प्राप्त होता है। ये अदिति के पुत्र हैं, इसीकारण अपत्यार्थक अण् प्रत्यय लगाकर इन्हें आदित्य कहते हैं- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तर पदाण्ण्यः** (अ० ४.१.८५)। ये आकाशस्थ देवता हैं। देवमाता अदिति के पुत्रों की संख्या अलग-अलग ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न वर्णित है। वह कहीं छः, कहीं सात, कहीं आठ और कहीं बारह बताई गई है। अथर्ववेद में इन्हें आठ बताया गया है- **अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं** (अथर्व० ८.९.२१)। ऋग्वेद २.२७.१ में आदित्यों की संख्या छः ९.११४.३ में सात तथा १०.७२.८ में आठ वर्णित हैं। आचार्य सायण ने इनकी संख्या आठ बताई है- **'ते च तैत्तिरीये' अष्टौ पुत्रासो अदितेरित्युपक्रम्य स्पष्टमनुक्रान्ताः- 'मित्रश्च वरुणश्च धाता च अर्यमा च अंशुश्च भगश्च इन्द्रश्च विवस्वांश्च इत्येते** (ऋ० २.२७.१ सा० भा०)। शतपथ ब्राह्मण में बारह आदित्यगणों का उल्लेख है- **स द्वादश द्रप्सान् गर्भ्यभवत्। ते द्वादशादित्याः असृज्यन्त। तान् दिव्युपादधात्** (शत० ब्रा० १.२.८)। ये बारह नाम हैं- धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता, अंशुमान तथा विष्णु। आदित्यगण सम्पूर्ण जगत् के धारणकर्त्ता हैं- **धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था** (ऋ० २.२७.४)। तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा जैमिनीय उपनिषद् में आदित्यों को प्रजाओं का सिर (मूर्धा- शिरोमणि) तथा चक्षु (द्रष्टा) भी उपन्यस्त किया है- **असावादित्यः शिरः प्रजानाम्** (तैत्ति० ब्रा० १.२.३.३)।..........**अथ यत्तच्चक्षुरासीत् स आदित्यो ऽभवत्** (जैमि० उ० २.१.२.३)। आदित्य का एक विशेषण संस्फान भी है। संस्फान अर्थात् प्रवृद्ध। अथर्व० ६.७.९ में दानादिगुण सम्पन्न और प्रवृद्ध आदित्य से धन- ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है।

२१. आपः (१.४-६) - आपो देवता अथवा आपः का देवत्व ऋग्, यजु० तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। ये अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं। इन्हें सूर्य का निकटस्थ तथा अग्नि का जनक प्रतिपादित किया गया है- **अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह** (ऋ० १.२३.१७), **या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्तान आपः शं स्योना भवन्तु** (अथर्व० १.३३.१)। ये चर-अचर के सृष्टिकर्त्ता तथा रोगहर्त्ता हैं, इसी कारण इन्हें श्रेष्ठ माता तथा भिषक् भी उपन्यस्त किया गया है- **यूयं हिष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः** (ऋ० ६.५०.७)। काठक संहिता में आपः को पवित्र (कारक) वर्णित किया गया है- **आपो वै पावत्रम्** (काठ० सं० ८.८) शतपथ ब्राह्मण में आपः को प्राण विवेचित किया गया है- **आपो वै प्राणाः** (शत० ब्रा० ३.८.२.४)। अथर्ववेद ६.१२४.१ में द्युलोक स्थानीय आपः अथवा दैवीयगुण सम्पन्न आपः को 'दिव्य आपः' कहा गया है। अथर्ववेद में आपः को विशेष महत्त्व मिला है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जहाँ ऋग्वेद का प्रारम्भ अग्नि की स्तुति से हुआ है, वहीं अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के ४-५-६ सूक्तों में आपः की स्तुति है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के छठे सूक्त के प्रथम मंत्र में आपः को देवी बताते हुए उनकी शक्तियों और उपयोग पर भी प्रकाश डाला गया है, उन्हें यज्ञ, पान और रोगों के शमन तथा भय के निवारण हेतु कल्याणकारी विवेचित किया गया है- **शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं यो रभि स्रवन्तु नः।**

२२. **आशापालक वास्तोष्पतिगण (१.३१)** - अथर्ववेद में आशापालक वास्तोष्पतिगणों का देवत्व प्रतिष्ठित है। प्रारम्भ में यज्ञभूमि की चतुर्दिक् रक्षा का दायित्व ये ही सँभालते थे। कालान्तर में वास्तोष्पतिगणों को गृहपति के अर्थ में माना जाने लगा और घर की रक्षा के देवता के रूप में उनकी स्तुति की गई। आशापाल का शाब्दिक अर्थ दिशापालक तथा वास्तोष्पति का (वसति गृह अर्थात् घर, पति अर्थात् पालन करने वाला) शाब्दिक अर्थ घर का पालक है। प्रारम्भ में वास्तोष्पति के यज्ञ रक्षक होने की पुष्टि इस मंत्र से भी होती है- **देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्** (ऋ० १०.६१.७)। बाद में इनके गृहपति होने का उल्लेख कई मंत्रों में मिलता है, जिनमें उन्हें गृहपालक, गृह के रोग मुक्तकर्त्ता, धन प्रदाता, पुत्र-पौत्र, पशु और शम् प्रदाता विवेचित करते हुए गो, अश्व और अन्य वस्तुओं का सम्वर्द्धनकर्त्ता उपन्यस्त किया गया है- **वस्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।.........चतुष्पदे** (ऋ० ७.५४.१)। इसी प्रकार इस मंत्र में भी उल्लेख है- **वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।** (ऋ० ७.५४.२)। पूर्वकाल में चारों दिशाओं के अधिपति या रक्षक के रूप में वास्तोष्पतिगणों को ही आशापाल विशेषण से सम्बद्ध किया जाता था। बाद में आशापाल विशेषण को चार देवताओं इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम से सम्बद्ध माना जाने लगा। इसी कारण इन चारों देवताओं को दिक्पाल भी कहते हैं। इन्हें समग्र भूतजात (प्राणियों) का अध्यक्ष विवेचित करते हुए अमर्त्य कहा गया है- **आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः। इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम्** (अथर्व० १.३१.१) आशापालों की प्रसन्नता से परिवार में माता-पिता, गोधन, परिजन आदि को सुख-समृद्धि प्राप्त होने की फलश्रुति भी एक मंत्र में उपन्यस्त है- **स्वस्ति मात्र उत पित्रे ....दृशेम सूर्यम्** (अथर्व० १.३१.४)। इस प्रकार आशापालों और वास्तोष्पतिगणों के गुणों में भी समानता परिलक्षित होती है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व में आशापाल शब्द वास्तोष्पतिगणों के साथ ही सम्बद्ध रहा होगा।

२३. **इन्द्र (८.८)** - इन्द्रदेव का देवत्व चारों वेदों में प्रतिष्ठित है। अथर्ववेद में आपः और अग्नि के बाद सर्वाधिक महत्त्व इन्द्रदेव को ही प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद में तो प्रायः २५० सूक्त इन्द्रदेव को समर्पित हुए हैं। ये अन्तरिक्ष स्थानीय (मध्यलोक के) देवता के रूप में ख्याति लब्ध हैं, जो संगठक शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। ये अतिशय सोमप्रिय हैं, जो तीन प्रमुख देवों (अग्नि, वायु और सूर्य) में वायु के प्रतिनिधि माने जाते हैं। इन्द्रदेव द्वारा अनेक राक्षसों का संहार किया गया था, जिनमें वृत्र प्रमुख है। इसी कारण इन्द्र को वृत्रहन् भी कहा गया है- **अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद** (ऋ० ६.४७.२)। वृत्र वध के समय इन्होंने तीन सोमहृदों का पान किया था- **त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम्** (ऋ० ५.२९.७)। इन्द्र को महेन्द्र तथा मघवा भी कहा गया है। वृत्रवध के उपरान्त ही इन्हें महेन्द्र उपाधि से विभूषित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में विवेचित है- **इन्द्रो वा एष........महेन्द्रोऽभवत्** (शत० ब्रा० १.६.४.२१)। धनवान् और दानी होने के कारण इन्हें मघवा विशेषण से भी अलंकृत किया गया है- इन्द्र को हिरण्यवर्ण और हिरण्यबाहु विशेषणों से भी सम्बद्ध किया गया है। इनके रथ को दो 'हरी' संज्ञक अश्वों द्वारा वहन करने का भी विवरण ऋग्वेद में मिलता है- **आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या** (ऋ० २.१८.४)। इनका रथ मन की गति से संचालित है- **यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि** (ऋ० १०.११२.२)। अथर्ववेद में इन्द्र को शतक्रतु उपन्यस्त किया गया है। यह भी सम्भव है कि पूर्व काल में शत शब्द अनेक अर्थ का बोधक हो और शतक्रतु का अर्थ अनेक क्रतुओं का हव्यभाक् (हवि ग्रहण करने वाला) रहा हो। कालान्तर में इन्द्र शब्द पार्थिव प्रशासकों के लिए भी प्रयोग में आया और उसका अर्थ हो गया पार्थिवों में उत्तम। इन्द्र और अग्निदेव की उत्पत्ति विराट् पुरुष के मुख से विवेचित की गई है- मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत (अथर्व० १९.६.७)। अथर्व० के एक मन्त्र में, सभी कार्यों में शक्त या समर्थ होने के कारण इन्द्र को 'शक्र' भी विवेचित किया गया है - **शक्रः : सर्वकार्येषुशक्त इन्द्रः** (अथर्व० ३.३१.२सा० भा०)। सेचन समर्थ होने से इन्द्र को 'वृषा' भी कहा गया है **......वृषा सेचन समर्थ इन्द्रः** (अथर्व० ६.४८.३ सा० भा०)।

२४. **इन्द्रवायू (३.२०.६)** - वैदिक देवयुग्मों में इन्द्रवायू को भी परिगणित किया जाता है। ऋग्वेद में इस देवयुग्म को सोमपान के लिए एक साथ आवाहित किया गया है- **उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये** (ऋ० १.२३.२)। ये अपने हिरण्यवन्धुर रथ में बैठकर मखमण्डल में पधारते हैं- **रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम्** (ऋ० ४.४६.४)। इन्हें शवसस्पति और धियस्पति जैसे विशेषणों के साथ सम्बद्ध किया गया है- **वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती** (ऋ० ४.४७.३)। **सहस्राक्षा धियस्पती** (ऋ० १.२३.३)। अथर्ववेद में केवल एक मंत्र में इन्द्रवायू की स्तुति की गई है, जिसमें इन्हें सुहव विवेचित करते हुए यज्ञ में आमन्त्रित किया गया है। इनके आगमन से लोग समाज में स्तुतिकर्त्ता के प्रति श्रेष्ठ मन वाले ही नहीं, दान देने के इच्छुक भी हो जाते है- **इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे। यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्दानकामश्च नो भुवत्** (अथर्व० ३.२०.६)।

२५. इन्द्राग्नी (६.१०३-१०४) - इन्द्राग्नी का देवत्व चारों वेदों में प्राप्य है। यह देवयुग्म सोमपायी देवताओं में श्रेष्ठ है। सोमपान के लिए वे रथारूढ़ होकर आते हैं- **य इन्द्राग्नी चित्रतमोरथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे** (ऋ० १.१०८.१) इन्द्राग्नी सोमपीतये (ऋ० ८.३८.७)। इन्द्राग्नी देव युगल का प्रमुख कार्य शत्रुओं और उनके आवास स्थलों का भेदन है। वज्र, विद्युत् और तिग्म नामक आयुधों से वे अपना कार्य सम्पन्न करके सज्जनों की रक्षा करते हैं- **आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः** (ऋ० १.१०९.७)। ऋग्वेद में इनके द्वारा दास नामक असुर के ९९ दुर्ग तोड़े जाने का वर्णन मिलता है- **इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्** (ऋ० ३.१२.६)। याज्ञिक कार्य करने के कारण इन्हें पुरोहित भी विवेचित किया गया है। अथर्ववेद में इन्द्राग्नी के नाम की २४ बार आवृत्ति हुई है। कई बार उनके नाम के साथ अन्य देवयुग्मों को भी आवाहित किया गया है। उनसे प्रायः सोमपान के निमित्त पधारने, शत्रुओं से रक्षा करने तथा धन प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। जैसे - **इन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि** (अथर्व० ५.७-६)।

२६. इन्द्राणी (१.२७) - अथर्ववेदीय देवियों में इन्द्राणी का देवत्व भी परिगणित किया गया है। यद्यपि ऋग्वेद में भी एक स्थान पर इनका देवत्व प्रकाशित हुआ है; किन्तु वहाँ वे केवल इन्द्रदेव की पत्नी के रूप में ही प्रतिष्ठित हैं। उनके किसी क्रियाकलाप व गुण विशेष का परिचय वहाँ नहीं मिलता; किन्तु अथर्ववेद में एक सम्पूर्ण सूक्त उन्हें समर्पित हुआ है। अथर्ववेद में उन्हें सेना की देवी के रूप में माना गया है। युद्ध के निमित्त प्रस्थान करते हुए एक योद्धा कहता है, हे पैरो ! उत्साहित होकर तेजी से आगे बढ़कर शत्रु तक ले चलो, वे इन्द्राणी जो अजीत व अनपहत हैं, आगे-आगे चलें- **प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्। इन्द्राण्येऽतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः** (अथर्व० १.२७.४)। इन्द्राणी को सुभगा व वीर पुत्रवती उपन्यस्त करते हुए नववधू से कहा गया है कि वह प्रसन्न मन से तल्प (शय्या) पर आरूढ़ हो और इन्द्राणी के समान स्वपति हेतु श्रेष्ठ सन्तति उत्पन्न करे और इन्द्राणी के समान ही बुद्धि- सम्पन्न रहकर उषाकाल में जागती रहे- **आरोह तल्पं सुमनस्य मानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि** (अथर्व० १४.२.३१)। बृहद्देवता में भी इन्द्राणी के देवत्व को प्रमाणित करते हुए आचार्य शौनक ने लिखा है- **इन्द्राणी वरुणानी च अग्नायी च पृथक् स्तुताः** (बृह० ३.९२)।

२७. इन्द्रापूषन् (६.३.१) - इन्द्रापूषन् नामक देवयुगल का देवत्व अथर्ववेद में गौण रूप में प्रतिपादित हुआ है। इन्हें केवल एक मंत्र समर्पित हुआ है, जिसमें उनसे रक्षा की कामना की गई है- **पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः। अपांनपात्सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः** (अथर्व० ६.३.१)। इस मंत्र में इन्द्रापूषन् के साथ अदिति, अपांनपात्, अग्नि, मरुद्गण, सप्तसिन्धु, आकाश और विष्णु आदि से भी रक्षा की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड में वाजसाति युद्ध में रोगों के निवारण व भय से मुक्ति हेतु भी इन्द्रापूषन् से प्रार्थना की गई है- **शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ** (अथर्व० १९.१०.१)। इन्द्रापूषन् का देवत्व बृहद्देवताकार ने भी स्वीकार किया है। इनके देवत्व को प्रमाणित करते हुए आचार्य शौनक ने लिखा है- **छागस्य कीर्तनं चात्र इन्द्रापूष्णोः सह स्तुतिः** (बृह० ४.३१)।

२८. इन्द्राबृहस्पती (७.५३) - अनेक देवयुग्मों की तरह अथर्ववेद में इन्द्राबृहस्पती का यमल देवत्व भी संप्राप्य है। ऋग्वेद में भी इन्द्राबृहस्पती को दो सूक्त समर्पित हुए हैं। जिनमें इन्हें सोमपान के लिए निमंत्रित करते हुए उनसे अश्वों से रहित विपुल धन प्रदान करने एवं परस्पर सौमनस्य में वृद्धि करने की प्रार्थना की गई है- **आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। सोमपा सोमपीतये। अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम्। अश्वावन्तं सहस्त्रिणम्** (ऋ० ४.४९.३-४)। अथर्ववेद में भी इन्द्राबृहस्पती से रक्षार्थ तथा धनार्थ प्रार्थना की गई है- **बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु** (अथर्व० ७.५३)। इन्द्राबृहस्पती का देवत्व प्रमाणित करते हुए आचार्य शौनक ने लिखा है- **स्तौतीन्द्रं प्रथमा त्वत्र द्वितीयाद्या बृहस्पतिम्। यज्ञ आद्येन्द्रमेवास्तौद् अन्त्या त्विन्द्राबृहस्पती** (बृह० ६.२६)।

२९. इन्द्रावरुण (७.६०) - इन्द्रावरुण का देवत्व ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद में इनके निमित्त आठ सम्पूर्ण सूक्त समर्पित हुए हैं। इन्हें मनुष्यों का धारणकर्त्ता विवेचित किया गया है- **धर्तारा चर्षणीनाम्** (ऋ० १.१७.२) अपने उपासकों को विजय प्रदान करने के लिए ये प्रख्यात हैं- **इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे। अस्मान्त्सुजिग्युषस्कृतम्** (ऋ० १.१७.७)। अथर्ववेद में इनका विवेचन सोमपान हेतु यजमान के घर अध्वर रथ से पधारने व यजमानों के कल्याणकर्त्ता के रूप में है- **इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ। युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये** (अथर्व० ७.६०.१)। बृहद्देवता में इन्द्रावरुण का देवत्व इन शब्दों में स्वीकार किया गया है- **दशाश्विनानीमानीति इन्द्रावरुणयो स्तुतिः** (बृह० ३.११९)।

३०. इन्द्रासोम (८.४) - इन्द्रासोम का देवत्व अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में उपन्यस्त है। उनका नाम शान्ति संस्थापक देवयुग्मों में प्रतिष्ठालब्ध है। ऋग्वेद में इस देवयुगल का प्रमुख कार्य शत्रुओं को परास्त करना, पहाड़ों में छिपी वस्तुओं को प्रकट करना, सूर्य को तेजस्वी बनाकर (मेघों को सामने से हटाकर) अन्धकार को दूर भगाना, द्युलोक को स्थिर करके पृथिवी को विस्तृत (उसके सद्गुणों, गाम्भीर्य, क्षमाशीलता, ममत्व आदि में वृद्धि) करना विवेचित है- **इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः। युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च** (ऋ० ६.७२.१) अथर्ववेद में इन्द्रासोम की स्तुति प्रमुखतः शत्रुओं, राक्षसों से रक्षा के लिए की गई है- **इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः। परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः** (अथर्व० ८.४-१)। बृहद्देवताकार ने भी इनका देवत्व प्रमाणित किया है- **इन्द्रश्च सोमश्चेत्येवम् इन्द्रासोमौ निदर्शनम्** (बृह० २.१०७)।

३१. ईश्वर (१.१९) - **यस्य वाक्यं स ऋषिर्या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०-१० सा० भा०) सूत्र के अनुसार अथर्ववेद में ईश्वर को भी देवता की श्रेणी में परिगणित किया गया है। वैदिक कोश के अनुसार प्रभु या स्वामी के अर्थ में ईश्वर शब्द का प्रयोग वैदिककाल से ही होता रहा है। ईश्वर शब्द में प्रभु या स्वामी का भाव इतना प्रबल है कि कालान्तर में यह शब्द भगवान् का पर्याय बन गया। अथर्व० १.१९ के प्रमुख देवता ईश्वर हैं, किन्तु ४ मंत्रों वाले इस सूक्त के प्रत्येक मंत्र के देवता क्रमशः इन्द्र, मनुष्यइषु, रुद्र और देवगण भी हैं अर्थात् इनकी समर्थता के कारण सम्पूर्ण सूक्त के देवता ईश्वर माने गये हैं। इसी प्रकार अथर्व० ७.१०२.१ में भी द्युलोक-पृथिवी और अन्तरिक्ष के ईश्वर (स्वामी या प्रभु) अग्नि, वायु और सूर्य माने गये हैं। अतः वहाँ भी समर्थता के अर्थ में ईश्वर शब्द का प्रयोग हुआ है- **नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे। मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वराः** (अथर्व० ७.१०७.१)। इस मंत्र के भाष्य में आचार्य सायण लिखते हैं- **ईश्वराः स्वामिनः द्युपृथिव्यन्तरिक्ष देवता अग्निवायुसूर्या......वधिषुः**।

३२. उषा (३.१६.७) - "उषा" प्रातः काल की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रख्यात हैं। इनका देवत्व चारों वेदों में प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद में इनका नामोल्लेख प्रायः ३०० बार हुआ है। उषा की रचना वैदिककाल की सर्वोत्कृष्ट मनोरम कल्पना है। प्रायः किसी भी साहित्य में उषा से अधिक आकर्षक चरित्र उपलब्ध नहीं होता। ऋग्वेद में उन्हें अनुपम सुषमा से सम्पन्न झिलमिलाती हुई, उदित होकर सौन्दर्य प्रदर्शन करती हुई, तमस् को दूर भगाकर प्रकाश के साथ अवतरित होने वाली उपन्यस्त किया गया है- **अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्** (ऋ० ५.८०.५)। उषा देवी प्रसुप्तों को जगाती एवं सभी प्राणियों द्विपादों एवं चतुष्पादों को गति हेतु प्रेरित करती हैं- **प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्** (ऋ० ४.५१.५)। अथर्ववेद में उषा की प्रतिष्ठा देवता के रूप में अधिक तथा प्रकृति सुन्दरी के रूप में कम है। वहाँ उषाकाल को सौभाग्य का जनक तथा दौर्भाग्य का विनाशक विवेचित किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि इस मंत्र से होती है, जिसमें याजक द्वारा यह आशा की गई है कि नक्षत्रों तथा उषाओं के विदा होते ही हमारे समस्त दुर्भूत और क्षेत्रिय रोग, (कुष्ठ, अपस्मार आदि) नष्ट हो जायेंगे- **अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत। अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु** (अथर्व० ३.७.७)। उषा और नक्षत्रों के विदा होने का समय एक ही है, यही समय देव यजन का भी माना गया है। उषा देवी सभी उपासकों को प्रबुद्ध करके यज्ञाग्नि को प्रदीप्त कराकर देवताओं पर भरपूर उपकार करती हैं- **उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य। यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः** (ऋ० १.११३.९)। उषा को भग की बहिन कहा गया है- **भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व** (ऋ० १.१२३.५)। उषा को रात्रि की बहिन तथा दिवः दुहिता (द्युलोक-पुत्री) भी कहा गया है। उषा का सूर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए वे सूर्य की यात्रा हेतु पथ खोलती हैं- **आरैक्पन्थां यातवे सूर्याय** (ऋ० १.११३.१६)। उषा देवी का सम्बन्ध अश्विनीकुमारों, चन्द्रमा, इन्द्र तथा बृहस्पति आदि देवताओं के साथ भी होने के प्रमाण मिलते हैं।

३३. उषासानक्ता (६.३.३) - उषासानक्ता का देवत्व ऋग्वेद तथा अथर्ववेद दोनों में दृष्टिगोचर होता है। उषा और रात्रि को युगल रूप में 'उषासानक्ता' नाम से आवाहित किया गया है। उषा और नक्त का संयुक्त रूप उषासानक्ता है। इन्हें दिन-रात की देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनसे रक्षा की प्रार्थना की जाती है- ....**उषासानक्तोत न उरुष्यताम्** (अथर्व० ६.३.३)। इन दोनों को दिवोदुहिता अर्थात् द्युलोक की पुत्री स्वरूप चित्रित किया गया है- **उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः** (ऋ० ७.२.६)। इन्हें धन सम्पदा से विभूषित दिव्य युवती भी विवेचित किया गया है- **उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा** (ऋ० २-३१-५)। अथर्ववेद में इन्हें सुवर्णाभूषणों से सज्जित, उज्ज्वल, राजमान और सौन्दर्य - श्री से युक्त योषा वर्णित किया गया है- **आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।** ....**दधाने** (अथर्व० ५.१२.६)। उषा और नक्त परस्पर बहिनें हैं, जिनका रंग तो अलग-अलग है, पर मन एक है। इनका मार्ग भी एक है और साथ ही अनन्त भी। ये न

कभी ठहरती हैं न परस्पर टकराती ही है- **समानो अध्वा स्वस्त्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे । न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे** (ऋ० १.११३.३)। निरुक्त में 'उषा' का निर्वचन इस प्रकार दिया गया है- **उषाः कस्माद् ? उछतीति** (नि० २.१८) अर्थात् जो अन्धकार को हल्का कर देती है, वह उषा है। इसी प्रकार निरुक्त में नक्त को भी अव्यक्तवर्णा कहा गया है- '**अपि वाऽनक्ताऽव्यक्तवर्णा** (नि० ८.१०)।

३४. **ऋभु (६.४८.२)** - वैदिक देवों में कुछ देवगण ऐसे भी हैं, जिनके दिव्यगुणों का अधिक विकास नहीं हो पाया है, फिर भी वे देवता संज्ञा से प्रतिष्ठित हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'ऋभु' हैं। अथर्ववेद में ऋभुओं को देवकल्प ऋषियों के रूप में उपन्यस्त किया गया है। ऋग्वेद में इनका नाम सौ से अधिक बार आवृत्त हुआ है तथा प्रायः ग्यारह सूक्तों में इनकी स्तुति की गई है। अथर्ववेद में ऋभुगणों का उल्लेख आठ बार हुआ है। इनका प्रचलित नाम तो 'ऋभु' है, पर ये एक समूह (ऋभुगण) के रूप में भी आवाहित किये जाते हैं, जिसमें तीन नामों का उल्लेख मिलता है। ये नाम हैं- ऋभुक्षन्, वाज और विभ्वन्। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद का एक मंत्र द्रष्टव्य है- **तद्वो वाजा ऋभवः सु प्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम्** (ऋ० ४.३६.३)। कुछ आचार्यों ने इन्हें परस्पर तीनों भाई विवेचित किया है, जो आङ्गिरस सुधन्वा के पुत्र थे। निरुक्त में इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों मे विवेचित है- **ऋभुर्विभ्वा वाज इति सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः बभूवुः** (नि० ११.१६)। कुछ आचार्यों ने ऋभु के ही ये तीनों नाम बताये हैं। कहीं-कहीं इनका यह स्वरूप कुछ धुँधला सा प्रतीत होता है; क्योंकि ऋभुओं के साथ ऋभु और विभुवों के साथ विभ्वन् का आवाहन भी मिलता है- **ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि** (ऋ० ७.४८.२)। निरुक्तकार यास्क ने आदित्य रश्मियों को ऋभु की संज्ञा प्रदान की है- **आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते** (नि०११.१६)। ऋभुगणों का आवाहन तृतीय सवन में किया जाता है, इसीलिए उन्हें तृतीय सवन का देवता कहते हैं। इसी कारण तृतीय सवन का ऋभु-सवन भी कहा जाता है- **ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वारभे ......(अथर्व० ६.४८.२)** । इन्द्रदेव के साथ ऋभु का सम्बन्ध इतना घनिष्ठतापूर्ण बताया गया है कि एक स्थान पर तो उन्हें अभिनव इन्द्र ही कह दिया गया है- **ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयान्** (ऋ० १.११०.७)। ऋभु को इन्द्र के अतिरिक्त मरुतों, आदित्य, सविता, पर्वत और सरिताओं से भी सम्बद्ध उपन्यस्त किया गया है।

३५- **एकाष्टका (३.१८.५)** - अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त एकाष्टका को समर्पित है। माघ मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी की पूर्वरात्रि को एकाष्टका या अष्टका कहते हैं। एकाष्टका को देवी का गौरव प्राप्त है। इस रात्रि में पितृकर्म करने तथा अनेक यागों को सम्पन्न करने का विधान है। शास्त्रों में वर्णित है कि सृष्टि के आदि में जब न रात्रि थी, न दिन तब देवताओं की शक्ति से पाँच उषाएँ जो अन्धकार को दूर कर प्रकाशित हुईं, उनमें एकाष्टका सर्वप्रथम थीं। देवगण आगामी एकाष्टका की रात्रि की धेनु के समान प्रतीक्षा करते हैं और कामना करते हैं कि वे हमारे लिए प्रतिवर्ष फलवती बनें और सुख प्रदान करें- **प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे** (अथर्व० ३.१०.१) । एकाष्टका को संवत्सर की पत्नी तथा प्रतिमा विवेचित करते हुए उन्हें मंगलदात्री, आयु प्रदात्री, सन्तति और धन प्रदात्री वर्णित किया गया है- **संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली** (अथर्व० ३.१०.२) तथा - **संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे। सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज** (अथर्व० ३.१०.३)। एकाष्टका के संवत्सर की पत्नी होने के विवेचन से ऐसा लगता है कि इस सूक्त की रचना के समय इसे वर्ष (नये संवत्सर) का प्रथम दिन माना जाता होगा, इसी कारण यह कहा गया है कि सर्वप्रथम यही उषा प्रकट हुई और अब अन्य उषाओं में प्रवेश करके संचरित होती है- **इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा।..............नवगज्जनित्री (अथर्व० ३.१०.४)** । एक स्थान पर अष्टका को प्रजापति की सुपुत्री तथा सोम और इन्द्र की माता भी कहा गया है- **इन्द्र पुत्रे सोम पुत्रे दुहितासि प्रजापतेः** (अथर्व० ३.१०.१३) । वार्षिक पितृकर्म के निमित्त इसी दिन पुरोहितगण पत्थरों द्वारा हवि तैयार करते हैं- **वानस्पत्या ग्रावाणो........... । एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम्** (अथर्व० ३.१०.५) ।

३६. **कश्यप (८.९)** - वैदिक देवताओं में 'कश्यप' भी निर्दिष्ट हैं। यों तो 'कश्यप' सप्तर्षि मण्डल के महत्त्वपूर्ण ऋषि के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं, किन्तु अथर्ववेद के आठवें काण्ड के नवें सूक्त के सातवें मंत्र में उन्हें देवता के रूप में परिगणित किया गया है। 'या तेनोच्यते सा देवता' सूत्र के अनुसार उनका वहाँ देवता के क्रम में परिगणन उचित भी है। वहाँ अन्य छः ऋषियों में कश्यप ऋषि से विराट् के सन्दर्भ में प्रश्न किये हैं। अस्तु, वहाँ कश्यप ऋषि देवता स्वरूप प्रतिष्ठित हुए- **षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च। विराज माहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः** (अथर्व० ८.९.७)। कुछ आचार्यगण कश्यप को मरीचि पुत्र भी विवेचित करते हैं। इसीकारण इनके नाम के साथ कई स्थलों पर अपत्यार्थक पद 'मारीच' भी संयुक्त मिलता है। बृहद्देवताकार आचार्य शौनक द्वारा इस तथ्य की पुष्टि इन शब्दों में प्राप्त होती है- **प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनि**

(बृह० ५.१४३)। बृहद्देवता (५.१४३) में ही कश्यप को प्रजापति का पौत्र तथा दक्ष का अदिति आदि तेरह पुत्रियों का पति भी उपन्यस्त किया गया है। आचार्य सायण ने भी इनका मरीचि पुत्र होना प्रतिपादित करते हुए लिखा है- **मारीचि पुत्रः कश्यपो वैवस्वतो मनुर्वा ऋषिः** (ऋ० ८.२९ सा० भा०)।

३७. काम (३.२९.७) - अथर्ववेदीय देवताओं में 'काम' भी देवता श्रेणी में प्रतिष्ठित है। सामान्य अर्थों में चाह या इच्छा को काम कहते हैं। प्रायः इसी अर्थ में अथर्ववेद में काम शब्द का प्रयोग हुआ है। काम की उत्पत्ति सृष्टि से भी पूर्व की मानी जाती है। काम ही मन का प्रथम रेतस् था, जिसके सहयोग से मन द्वारा समस्त सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ- **कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्** (अथर्व० १९.५२.१)। इसकी पुष्टि तैत्तिरीय ब्राह्मण २.२.९.१ द्वारा इन शब्दों में की गई है- **तदसदेव सन्मनो कुरुतस्यामिति**। यह काम का समष्टिगत स्वरूप है- व्यापक स्वरूप है। विशेष काम अर्थात् व्यक्ति विशेष की विशेष इच्छा यद्यपि संकुचित होती है, फिर भी बृहत्काम की ही सहोदर या सयोनि है- **स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि** (अथर्व० १९.५२.१)। काम का निवास स्थल हृदय है- **हृत्सु कामा अरंसत** (अथर्व० १४.२.५)। काम वा एक अन्य स्वरूप प्रणय मनोभव है, जो जीवन की सर्वोत्कृष्ट शक्तिशाली वृत्ति है। इसी वृत्ति को कामदेव की संज्ञा प्रदान की गई है। कामदेव का बाण इतना भयंकर है, जो सीधे हृदय पर चोट करता है- **उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे। इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि** (अथर्व० ३.२५.१)। काम-इषु अर्थात् काम बाण को दण्ड पर चढ़ाकर कामदेव अपने लक्ष्य, हृदय को विद्ध करते हैं- ....**तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि** (अथर्व० ३.२५.२)। कामावेश का आख्यान ऋग्वेद के यम-यमी संवाद में भी मिलता है, जिसमें यम के प्रति यमी के हृदय में कामाभिलाषा जाग्रत् हो उठती है, तब वह कहती है- **यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय। जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा** (ऋ० १०.१०.७)। ऋग्वेद का यही मंत्र अथर्व० १८.१.८ में भी पठित है। इस प्रकार काम के तीन स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम सामान्य निर्विकल्पक अभिलाषा अर्थात् निर्विषयक अभिलाषा-यह सात्त्विक काम है। द्वितीय धन आदि की इच्छा विशेष। काम शब्द का अधिकतर प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। यथा- ....**यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्यामा पतयो रयीणाम्** (ऋ० १०.१२१.१०)। तृतीय काम यौनेषणा के रूप में वर्णित है, जिसकी अथर्ववेद में विस्तृत चर्चा है। अथर्व ६.१३० में काम का एक नाम स्मर भी उल्लिखित है। स्मर शब्द काम के स्थूल आकर्षण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। स्मर उस मनः स्थिति को कहते हैं, जिसमें व्यक्ति सदा अपने स्नेही का स्मरण किया करता है।

३८. काम-बाण (३.२५) -द्र०-काम।

३९. कुहू (७.४९) - **यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०) सूत्र के अनुसार कुहू को भी देव श्रेणी में मान्यता प्रदान की गई है। अमावस्या का एक नाम कुहू भी है। जिस रात्रि को चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होता, उसे कुहू कहते हैं। इस तिथि को देवी की संज्ञा प्रदान की गई है। इन्हें सुकृत् अर्थात् सुकर्मा भी कहते हैं। याजकों द्वारा इनकी स्तुति करते हुए इनसे वरणीय धन और वीर सन्तति की कामना का विवेचन मिलता है। उसी क्रम में इन्हें शतदाय और विश्ववार भी कहा गया है- **कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनाप-समस्मिन्यज्ञे सुहवा जोहवीमि। सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्** (अथर्व० ७.४९.१)। कुहू को दिव्य अमृत की पुष्टिकर्त्री वर्णित किया गया है। इनके लिए हविष् अर्पित किये जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। वे जिस याजक पर कृपा करती हैं, उसे धन समृद्धि (रायस्पोष) से परिपूर्ण कर देती हैं- **कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत। शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु** (अथर्व० ७.४९.२)। बृहद्देवता में प्रायः ४ बार कुहू का नाम आवृत्त हुआ है। कुहू के देवत्व का प्रतिपादन आचार्य शौनक ने इन शब्दों में किया है- **तत्पूर्वं द्वे ऋचौ कुह्वाः कुहू-महमिति स्मृते** (बृह० ४८७)।

४०. गन्धर्व-अप्सरा समूह (२.२) - द्र०-अप्सरा।

४१. चन्द्रमा (६.७८.१-२) - चन्द्रमा देवता का देवत्व ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में निर्दिष्ट है। अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में चन्द्रदेव या चन्द्रमा का नाम प्रख्यात है। यजुर्वेद में चन्द्रमा की उत्पत्ति मन से बताई गई है- **चन्द्रमा मनसो जातः** (यजु० ३१.१२)। इनका अस्तित्व सूर्यआधृत है। अमावस्या को चन्द्रदेव आदित्य में प्रविष्ट हो जाते हैं- **चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति** (ऐ० ब्रा० ८.२८)। चन्द्रमा और सोम अभिन्न हैं, यह तथ्य कौषीतकि ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण दोनों में प्रतिपादित है- **सोमो वै चन्द्रमाः** (कौषी० ब्रा० १६.५)। **एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः** (ऐ० ब्रा० ७.११)। चन्द्रमा रात्रि के स्वामी हैं। उनके आविर्भाव से ही शुक्ल और कृष्ण पक्ष बनते हैं, जिनके अनुसार सभी देवगणों को उनका अंश (हविष्य) प्राप्त होता है। मासों और ऋतुओं के

सृजनकर्त्ता भी चन्द्रदेव ही हैं। नक्षत्रों में चन्द्रमा प्रमुख हैं। यही नक्षत्रों की प्रतिष्ठा है- **चन्द्रमा अस्यादित्ये श्रितः नक्षत्राणां प्रतिष्ठा** (तैत्ति० ब्रा० ३.११.१.१२) । अथर्ववेद में सूर्य और चन्द्रमा की तुलना शिशुओं से की गई है, जो परस्पर क्रीडा करते हुए कभी आगे और कभी पीछे परिभ्रमण करते हैं। इस क्रीडा में सूर्यदेव सभी भुवनों को देखते हैं और चन्द्रदेव ऋतुओं का निर्माण करते हैं-**पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्। विश्वान्यो भुवना विचष्टऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः** (अथर्व० ७.८६.१)। चन्द्रमा शान्ति और विश्रान्ति प्रदान करके दीर्घायुष्य प्रदान करते हैं-........ **भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन्प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः** (अथर्व० ७.८६.२)।

४२. **जरिमा (२.२८.१, ३)** - जरिमा शब्द का सामान्य अर्थ जरा अथवा वृद्धावस्था है। अथर्ववेद में इस शब्द का प्रयोग प्रायः चार बार हुआ है। '**या तेनोच्यते सा देवता**' सूत्र के अनुसार कुछ मंत्रों का वर्ण्य विषय 'जरिमा' होने के कारण उसे देवत्व प्रदान किया गया है। अथर्ववेद में सर्वत्र यही प्रार्थना है कि अमुक व्यक्ति जरावस्था तक देवों द्वारा सुरक्षित रहे- **इमान् रक्षतु पुरुषा नाजरिम्णः** (अथर्व० १८.३.६२)। एक अन्य मंत्र में जरिमा में देवत्व का आरोपण करके प्रार्थना है कि अमुक व्यक्ति तुम तक पहुँचने के लिए बढ़ता रहे, मृत्यु के अन्य साधन इसे नष्ट न कर सकें- **तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये** (अथर्व० २.२८.१)। निरुक्तकार यास्क ने जरिमा का अर्थ 'स्तूयमान' किया है- **जरा स्तुतिर्जरते स्तुति कर्मणः** (नि० १०.८)। आचार्य सायण ने भी यास्क मुनि के आधार पर इस मंत्र का भाष्य करते हुए लिखा है-**जरिमन् जरितः स्तुतिकर्मा** (अथर्व० २.२८.१ सा० भा०)। आचार्य सायण ने इस मंत्र के अर्थ में जरिमा को अग्नि माना है; क्योंकि अग्नि भी स्तूयमान है। जरिमा शब्द ऋग्वेद में भी आया है, पर वहाँ उसे देवता की श्रेणी में परिगणित नहीं किया गया है। वहाँ इसका प्रयोग वृद्धावस्था, स्तुति और स्तुतिकर्त्ता इन तीन अर्थों में हुआ है।

४३. **जातवेद (अग्नि) - द्र० अग्नि।**

४४. **तार्क्ष्य (७.९०)** - वैदिक देवताओं में तार्क्ष्य का देवत्व निर्दिष्ट है। ऋग्वेद में इन्हें कुछ मंत्रों का ऋषित्व भी प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद में तार्क्ष्य शब्द का विशेषण 'अरिष्टनेमि' है। मूलतः तार्क्ष्य की कल्पना अश्व स्वरूप की गई थी। वह तार्क्ष्य (अश्व) अरिष्टनेमि अर्थात् अनष्टनेमि (अर्थात् जिसके रथ की नेमि नष्ट न हो सके) था। वाजसनेयि संहिता १५.१८ तथा शतपथ ब्राह्मण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है-**तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्याविति** (शत० ब्रा० ८.६.१.१९)। परवर्ती ग्रन्थों में 'तार्क्ष्य' को पक्षी रूप में विवेचित किया गया। कालान्तर में तार्क्ष्य का तादात्म्य भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ के साथ हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में 'तार्क्ष्य' दिव्य अश्व स्वरूप आदित्य का प्रतिरूप रहा होगा; क्योंकि सूर्य को भी '**अश्व**' कहा गया है। तार्क्ष्य शब्द की व्युत्पत्ति तृक्ष से हुई है तृक्ष के पुत्र को अपत्यवाचक अर्थ में तार्क्ष्य कहा गया है। सुपर्ण के साथ भी तार्क्ष्य पद जोड़ा जाता है। आचार्य सायण ने सुपर्ण को तृक्ष पुत्र तार्क्ष्य कहा है- **तार्क्ष्यं तृक्ष पुत्रं सुपर्णम्** (ऋ० १०.१७८.१ सा० भा०)। अथर्व० ७.९०.१ में तार्क्ष्य का आह्वान कल्याण के लिए किया गया है- **त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम।** वैदिक कोश के अनुसार एक राजा का नाम तृक्षि था, जो त्रसदस्यु का वंशज था। अतः त्रासदस्यव को भी तार्क्ष्य कहा गया है।

४५. **तिस्रो देव्यः (इळा, भारती, सरस्वती) (५.२७.९)** - वेदों में प्रायः तीन देवियों का नाम एक साथ लिया गया है, इन्हें एक शब्द में तिस्रो देव्यः (तीन देवियाँ) नाम से जानते हैं। ये हैं- इळा, भारती और सरस्वती। 'तिस्रोदेव्यः' समूह की प्रथम देवी-इळा को घृतवती माना गया है। उनके घृतसिक्त अंगों का वर्णन मिलता है। हविष् की प्रतिरूप होने के कारण उन्हें घृतहस्ता और घृतपाद उपन्यस्त किया गया है- **येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति** (ऋ० ७.१६.८) । **मनुष्वद् यज्ञं हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त** (ऋ० १०.७०.८)। शतपथ ब्राह्मण में इळा को मित्रावरुण की पुत्री निरूपित किया गया है- **इळासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः** (शत० ब्रा० १४.९.४.२७)। तीन देवियों के इस वर्ग में द्वितीय देवी भारती हैं। बृहद्देवता के अनुसार ये तीनों देवियाँ जो 'वाच्' के रूप में हैं, इनके तीन स्थान हैं (**त्रिस्थानैवेह सा तु वाक-३.११**) । इळा अग्नि की अनुगामिनी, सरस्वती मध्यम से सम्बद्ध तथा भारती दिव्य लोक में स्थित हैं- **अग्निमेवानुगेळा तु मध्यं प्राप्ता सरस्वती। .... भारती भवति ह्यसौ** (बृह० ३.१३)। त्रिदेवी (तिस्रोदेव्यः) वर्ग की तृतीय देवी-सरस्वती नाम से प्रख्यात हैं। इन्हें वाणी की देवी के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है- **वाग्वै सरस्वती पावीरवी** (ऐ० ब्रा० ३.३७)। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें वाणी की उत्प्रेरिका देवी भी निरूपित किया गया है- **अथ यत्स्फूर्जयन् वाचमिव वदन्दहति तदस्य सारस्वतं रूपम्** (ऐत० ब्रा० ३.४)। शतपथ ब्राह्मण में सरस्वती को जिह्वा स्थानीय देवी माना गया है-...... **जिह्वा सरस्वती** (शत० ब्रा० १२.९.१.१४)। इनके द्वारा ही सम्पूर्ण वेदों की उत्पत्ति वर्णित है-**सरस्वत्याः सर्वे वेदाः**

अभवन् (गा० रु० उ० ४५.९-१०)। सरस्वती बौद्धिक पुष्टि प्रदात्री भी हैं, इसी कारण इन्हें पुष्टि पत्नी भी विवेचित किया गया है-**सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी** (तैत्ति० ब्रा० २.५.७.४)। अथर्ववेद में इन तीनों देवियों से यज्ञ मण्डप में पधारने और बर्हि पर बैठने के लिए प्रार्थना की गई है- .... **तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना** (अथर्व० ५.२७.९)।

४६. त्रिणामा (६.७४) द्र०-अग्नि।

४७.त्वष्टा (३.८.२) - दिव्य शिल्पी के रूप में त्वष्टा देव चारों वेदों में प्रतिष्ठित हैं। विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों में वे निष्णात और समर्थ हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस तथ्य का उल्लेख इन शब्दों में है-**त्वष्टा रूपाणि विकरोति** (तैत्ति० ब्रा० २.७.२.१)। **त्वष्टा वै रूपाणामीशे** (तैत्ति० ब्रा० १.४.७.१)। उनके द्वारा देवताओं के निमित्त उपयोगी सामग्री के रूप में वज्र, आयस, परशु, भोज्य तथा पानक वस्तुओं को रखने हेतु 'चमस' बनाने का उल्लेख विशेषतः मिलता है- **उतत्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः** (ऋ० १.२०.६)। उनके हाथों से श्रेष्ठतम निर्माण के कारण उन्हें सुपाणि कहा गया है-**सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्** (ऋ० ३.५४.१२)। त्वष्टा देवता का एक अन्य कार्य सन्तति प्रदान करना भी है। वे ही मनुष्यों और पशुओं के अंग-अवयवों का सृजन कर उनका लिङ्ग निर्धारित करते हैं- **त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृत्** (तैत्ति० ब्रा० ३.८.११.२)। जन्मोपरान्त शिशु के पोषण में भी त्वष्टा ही सहायता करते हैं-**बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वेदेवा निधनम्** (अथर्व० ९.१०.२)। आचार्य सायण ने वैद्युत अग्नि का नाम भी त्वष्टा निरूपित किया है- .... **त्वष्टुः दीप्तात् मध्यमात् वायोः सकाशात् जनयन्त वैद्युतमग्निम् उत्पादयन्ति** (ऋ० १.९५.२ सा० भा०)। बृहद्देवता में चौदह बार त्वष्टा का नामोल्लेख हुआ है।

४८. त्विषि (६.३८) - अथर्ववेद में 'त्विषि' जो एक गुण है, को भी देवत्व प्राप्त हुआ है। त्विषि का अर्थ 'दीप्ति' या 'तेजस्' है। यह एक ऐसा गुण है, जो किसी पदार्थ या व्यक्ति को प्रखरता-सम्पन्न बनाता है। स्तोता पृथ्वी माता से त्विषि प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता है- ....**सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे** (अथर्व० १२.१.८)। ओषधि भी त्विषि सम्पन्न हो सकती है। वरुण को भी त्विषिमान् विवेचित किया गया है- .... **नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते** (अथर्व० ६.२०.२)। त्विषि को मेधा के समान ही महत्त्वपूर्ण गुण की प्रतिष्ठा प्राप्त है। मेधा आन्तरिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है, तो त्विषि बाह्य शक्ति के रूप में। सिंह, व्याघ्र, अग्नि, सूर्य, ब्राह्मण और पृदाकु में त्विषि विद्यमान है। त्विषि को सुभगा निरूपित करते हुए विवेचन किया गया है कि उन्हीं के द्वारा इन्द्र का आविर्भाव हुआ अर्थात् इन्द्र में इन्द्रत्व का आविर्भाव हुआ। एक मंत्र में त्विषि से प्रार्थना की गई है कि वे आएँ और साथ में अपने मित्र के रूप में वर्चस् को भी लाएँ- **सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या। इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना** (अथर्व० ६.३८.१)।

४९. दधिक्रावा (३.१६.६) - दधिक्रावा का देवत्व ऋक्, साम और अथर्व में प्राप्त है; किन्तु ऋक् और साम में 'दधिक्रा' पाठ मिलता है; जबकि अथर्ववेद में दधिक्रावा। दधिक्रावा का अभिप्राय दैवी अश्व से है। गर्जनशील और शक्तिस्वरूप होने से इसे दैवी अश्व की संज्ञा प्रदान की गई है। बृहद्देवताकार ने उस शक्ति को 'दधिक्रा' कहा है, जो आकाश में आठ मास तक जल को धारण करके रखती है तथा यदा-कदा गर्जना करती है- **अपामम्बरगर्भौघम्......दधिक्रास्तेन कथ्यते** (बृह० २.५६)। आचार्य सायण ने दधिक्रावा की व्याख्या इन शब्दों में की है-**दधिकावेव। अश्वनामैतत्। दधिः धारयिता सन् क्रामतीति दधिक्रावा अश्वः** (अथर्व० ३.१६.६ सा० भा०)। उन्होंने दधिक्रा को अश्व विशेष कहा है-**दधिक्राम् एतन्नामकमश्वविशेषं देवम्** (ऋ० ७.४४.२ सा० भा०)। निरुक्तकार यास्क ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है-**दधत् क्रामतीति वा। दधत् क्रन्दतीति वा। दधदाकारी भवतीति वा** (नि० २.२७)। अथर्व में देवी उषा से प्रार्थना की गई है कि जैसे-दधिक्रावा शुद्ध स्थान पर पद रखने के लिए समुद्यत होता है, उसी तरह वे धन-प्रदाता भग देवता को याजक के पास लाने हेतु उद्यत हों-**समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु** (अथर्व० ३.१६.६)। कुछ स्थानों पर 'दधिक्र' शब्द से विद्युत् का संकेत भी मिलता है।

५०. दिव (४.३९.५-६) द्र०-द्यौ।

५१.दिव्य आपः (६.१२४) द्र०-आपः।

५२. दिव्य ऋषिगण (६.४१.३) द्र०-सप्तर्षिगण।

५३. देवगण (६.९७.१, ३) - देवगणों का देवत्व ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भी विवेचित है। यों तो एक मंत्र में एक या दो देवताओं का देवत्व ही दृष्टिगोचर होता है; किन्तु कुछ मंत्रों में एक ही मंत्र में कई देवताओं का देवत्व उपन्यस्त है। ऐसे मंत्रों के देवताओं के समूह को 'देवगण' कहते हैं। जैसे-ऋग्वेद की एक ऋचा में बालक, तरुण, वृद्ध सभी को देव मानकर नमन किया गया है।

इनके लिए देवाः (देवगण) शब्द प्रयुक्त हुआ है-**नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः** (ऋ० १.२७.१३)। बृहद्देवता में इस देवसमूह को 'विश्वेदेवा' नाम दिया गया है- **जराबोधेति विज्ञेया वैश्वदेव्युत्तमा नमः** (बृह० ३.९९)। इसी प्रकार अथर्ववेद के इस मंत्र में भी अनेक देवताओं (याग, अग्नि, सोम, सेना, हवि आदि) की एक साथ स्तुति की गई है- **अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः । अभ्य १ हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः** (अथर्व० ६.९७.१)। देवताओं के विशिष्ट गण के लिए बहुवचन में 'देवजन' शब्द का उल्लेख भी मिलता है। मोनियरविलियम्स ने राक्षसों एवं सर्पों के समूह को भी देवजन कहा है। पवित्रता के निमित्त देवजनों से प्रार्थना की गई है- **पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया** (अथर्व० ६.१९.१) अर्थात् देवजाति के व्यक्ति मुझे पवित्र करें। सर्पों का उत्कीलन करने के लिए भी देवगणों व देवजनों की स्तुति की गई है- **माने देवा अहिर्वधीत् सतोकान्तसहपूरुषान् । संयतं न विष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः** (अथर्व० ६.५६.१) आचार्य सायण ने देवजन शब्द का अर्थ 'सर्पादि के विष को दूर करने में समर्थ व्यक्ति' किया है- **देवजनेभ्यः ये सर्पादि विष निर्हरण समर्थाः....नमोस्तु** (अथर्व० ६.५६.१ सा० भा०)। अथर्ववेद के कई मंत्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि देवजनों का सर्पों के साथ निश्चित ही कोई सम्बन्ध रहा होगा। देवजन विद्या के प्रसंग (छा० उप०) में भी सर्प विद्या का ही उल्लेख है। 'देवगण' और 'देवजन' शब्द मिलते-जुलते होने के कारण दोनों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

५४. देवजन (६.१९.१) - द्र०-देवगण।

५५. देवपत्नी (७.५१) - वैदिक आस्था के क्रम में जहाँ देवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, वहाँ देवियों अथवा देवपत्नियों का स्थान अपेक्षाकृत गौण है। ऋग्वेद में कुछ स्थानों पर यज्ञ की रक्षा के निमित्त देवताओं की पत्नियों को भी आवाहित किया गया है-**अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्** (ऋ० १.२२.११)। देवपत्नियों अथवा देवियों का अलग से कोई व्यक्तित्व प्रकाशित नहीं होता, वरन् देवों के नामों के आधार पर ही उनका भी नामकरण हुआ है। अथर्ववेद के एक मंत्र (जो ऋ० ५.४६.७ में भी पठित है) में अग्निदेव की पत्नी अग्नायी, इन्द्रदेव की पत्नी इन्द्राणी, अश्विनीकुमारों की पत्नी अश्विनी, रुद्रदेव की पत्नी रोदसी और वरुणदेव की पत्नी वरुणानी का रक्षार्थ आवाहन किया गया है- **उतग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् । आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्** (अथर्व० ७.५१.२)। ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में सोमपान हेतु इन्द्राणी, अग्नायी और वरुणानी को निमंत्रित किया गया है- **इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये** (ऋ० १.२२.१२)। अथर्ववेद ३.२०.३ का भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने देवी शब्द को इन्द्राणी तथा सरस्वती के साथ सम्बद्ध किया है-**देवीः देव्यः इन्द्राणीप्रभृतयः धनम्.....प्रयच्छन्तु । .....देवी सरस्वती रयिम्....प्रयच्छतु** (अथर्व० ३.२०.३ सा० भा०)। कुछ स्थानों पर दो अप्सराओं को भी देवपत्नी निरूपित किया गया है- **ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम्** (अथर्व० ६.११८.३)। इसी प्रकार वृषाकपि की पत्नी को वृषाकपायी विवेचित किया गया है- **वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे** (अथर्व० २०.१२६.१३)।

५६- देवी (३.२०.३) - द्र०-देवपत्नी।

५७- द्यावा-पृथिवी (६.३.२) - वैदिक देवयुग्मों में द्यावा-पृथिवी उच्च स्थल पर प्रतिष्ठित हैं। इन्हें आकाश और पृथ्वी भी कहते हैं। आदिम चिन्तन में ये दोनों देवता एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध थे कि उनके दाम्पत्य भाव की कथाएँ आदिमजनों में सर्वत्र उभर कर आई थीं। इसी कारण द्यावा-पृथिवी को सभी ने माता-पिता के रूप में स्वीकार किया है-**उत मन्ये पितरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः** (ऋ० १.१५९.२)। इन्हें आदि जनक-जननी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है- **प्र पूर्वजे पितरा नव्य सीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य । आ नो द्यावा-पृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम्** (ऋ० ७.५३.२)। द्यावा-पृथिवी का पृथक्-पृथक् उल्लेख भी अनेक बार हुआ है; किन्तु उनका संयुक्त उल्लेख कई बार विराट् विश्व की ओर ध्यानाकर्षित करने के लिए हुआ है। एक मंत्र में द्यावा-पृथिवी से प्रार्थना की गई है कि वे गोद में बैठे व्यक्ति को भूख-प्यास से पीड़ित न होने दें- **एव वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत्** (अथर्व० २.२९.४) अर्थात् पृथ्वी और आकाश के बीच निवास करने वाले जगत् के कोई भी प्राणी भूख-प्यास से परेशान न हों। द्यावा-पृथिवी से पाप- मुक्त करने की प्रार्थना की गई है। उन्हें सचेतस्, सुभोजस्, अपरिमित योजनों तक विस्तार वाली तथा वसुओं का आगार विवेचित किया गया है-**मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि । प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसुनां ते नो मुञ्चतमंहसः** (अथर्व० ४.२६.१)। द्यावा-पृथिवी के देवत्व को प्रमाणित करते हुए आचार्य शौनक लिखते हैं- **द्यावापृथिव्यौ द्वे च स्यात् स्योनेत्यृक् पार्थिवी स्मृता** (बृह० ३.९३)।

५८. द्यौ (३.२.५) - वैदिक देवों में द्यौ का देवत्व प्रख्यात है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में इन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। ऋग्वेद में द्यौ का उल्लेख प्रायः ५०० बार हुआ है। अधिकांशतः इस शब्द का प्रयोग स्थूल आकाश के अर्थ में हुआ है। कभी-कभी

दिन के अर्थ में भी इसका उल्लेख मिलता है। पृथ्वी को मातृ स्वरूप माना गया है तथा द्यौ को पिता स्वरूप मान्यता प्रदान की गई है- **मधु द्यौरस्तु नः पिता** (ऋ० १.९०.७)। ऋग्वेद में पृथ्वी माता के साथ उनके पितृत्व का प्रायः १५ बार उल्लेख मिलता है-**द्यौ३ष्पितः पृथिविमातरध्रुक्....** (ऋ० ६.५१.५)। अथर्व० में द्यौ के लिए दिव शब्द का भी प्रयोग हुआ है। द्यौ अथवा दिव को विश्ववेदस् अर्थात् सर्वज्ञाता मानकर उन्हें नमन किया गया है- **दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः** (अथर्व० १.३२.४)। द्यौ के पितृत्व का अथर्ववेद में भी कई बार उल्लेख हुआ है-**द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने** (अथर्व० २.२८.४)। अन्य देवताओं के साथ द्यौ से भी रक्षा हेतु प्रार्थना निर्दिष्ट है-......... **अपांनपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः** (अथर्व० ६.३.१)। द्यौ सबको सुख- सम्पन्न बनाते तथा मृत्यु के बन्धन से छुटकारा प्रदान करते हैं- **उत् त्वा द्यौरुत् ......मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन्** (अथर्व० ८.१.१७)।

५९. द्यौष्पिता (६.४.३) द्र०-द्यौ।

६०. द्रविणोदा (५.३.५) द्र०-अग्नि।

६१. धनपति (२.३६.६) - अथर्ववेदीय देवताओं में धनपति का देवत्व धन के देवता के रूप में प्रतिष्ठित है, फिर भी उनकी स्तुति कन्या के द्वारा इच्छित वर को उसके (कन्या के) अनुकूल बनाने, वर को बुलाने और अभिलषित वर को दाम्पत्य के अनुरूप व्यवहार करने के लिए प्रेरित करने हेतु की गई है- **आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु। सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः** (अथर्व० २.३६.६)। यों तो अथर्ववेद में कुछ अन्य स्थलों पर धनपति शब्द इन्द्र और राजा के विशेषणरूप में प्रयुक्त हुआ है- **अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि** (अथर्व० ५.२३.२)। **अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा** (अथर्व० ४.२२.३); किन्तु शांखायन श्रौत सूत्र २.१४ में इसे कुबेर का नाम निरूपित किया गया है। विश्रवा के पुत्र होने के कारण कुबेर को वैश्रवण भी कहते हैं। अथर्व० २.३६.६ में धनपति शब्द वैश्रवण (कुबेर) के लिए ही आया है। आचार्य सायण लिखते हैं- **हे धनपते वैश्रवण वरम् वरयितारं ....उद्घोषय** (अथर्व० २.३६.६ सा० भा०)पौराणिक कोश में वायुदेव को धनपति उपन्यस्त किया गया है।

६२. धन्वन्तरि (२.३) - अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड का तृतीय सूक्त धन्वन्तरि को समर्पित है। इस सूक्त में चिकित्सा या ओषधि सम्बन्धी मंत्र होने के कारण इसे भैषज्य सूक्त भी कहते हैं। एक मंत्र में आस्राव-ओषधि की स्तुति इन शब्दों में की गई है- **तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत्** (अथर्व० २.३.३)। धन्वन्तरि को आयुर्वेद का प्रवर्तक कहते हैं। मत्स्य पुराण ४७.३० के अनुसार धन्वन्तरि को विष्णु भगवान् का तेरहवाँ अवतार विवेचित किया गया है। जो दीर्घतमा या दीर्घतपा के पुत्र तथा केतुमान् के पिता थे। इन्हें देवताओं का वैद्य निरूपित किया गया है, जो समुद्र मन्थन के समय १४ (चौदह) रत्नों के साथ समुद्र से प्रकट हुए थे। भाव प्रकाश के अनुसार इन्हें इन्द्र द्वारा आयुर्वेद का शिक्षण देकर लोककल्याण हेतु धरित्री पर भेजा गया था। अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी में धन्वन्तरि का देवत्व इन शब्दों में प्रमाणित किया गया है- **'अदो यत्' इति भैषज्यायुर्धन्वन्तरिदैवतं........ (बृह०सर्वा० २.३)** ।

६३. धाता (३.८.२) - धाता देवता त्वष्टा के निकटस्थ देव निर्दिष्ट हैं। वे दोनों कई कार्य साथ-साथ सम्पन्न करते हैं। त्वष्टा यदि किसी कन्या के लिए 'वहतु' की व्यवस्था करते हैं, तो धाता उसे सुयोग्य और अनुकूल वर (पति) की प्राप्ति कराते हैं-**धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम्** (अथर्व० २.३६.२)। त्वष्टा के साथ धाता को भी हविष् अर्पित की जाती है। वे त्वष्टा के सहभोक्ता हैं- **धाता रातिः सवितेदं......... मेवचः। हुवे देवीमदितिं......... यथासानि** (अथर्व० ३.८.२)। धारण स्थापन की सामर्थ्य के कारण उन्हें धाता संज्ञा से अलंकृत किया गया है। वे गर्भ धारण में विशेष सहायता करते हैं। उन्हें स्त्री के गर्भाशय में पुत्र को दशम मास में प्रसवार्थ स्थापित करने वाला भी निरूपित किया गया है- **धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः। पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे** (अथर्व० ५.२५.१०)। धाता विधाता और समृध् का नाम प्रायः एक साथ आता है। विधाता को निर्माण का, धाता को धारण (स्थित) का तथा समृध् को समृद्धि का देवता उपन्यस्त किया गया है- **धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे** (अथर्व० ३.१०.१०)। एक अन्य मंत्र में धाता को प्रजापति और पुष्टिपति के साथ भी विवेचित किया गया है। प्रजापति को प्रजनन, धाता को धारण तथा पुष्टिपति को पोषणकर्त्ता निरूपित किया गया है। ये तीनों देव एक मूल से समुत्पन्न, समान ज्ञान वाले तथा समान विचार और इच्छा वाले हैं- **प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः। संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु** (अथर्व० ७.२०.१)। धाता देवता पृथ्वी और द्यौ को उचित स्थान पर धारण करते हैं तथा पतिकामा स्त्री को उसका प्रेम पात्र प्रदान करते हैं- **धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम्।.......... प्रतिकाम्यम्** (अथर्व० ६.६०.३)।

६४. धेनु (३.१०.१) द्र०-एकाष्टका।

६५. निर्ऋति (२.१०.४-८) - ऋग्वेद और अथर्ववेद में निर्ऋति का देवत्व प्राप्त होता है। निर्ऋति शब्द विनाश, विलय, दुर्भाग्य, रोग, विपत्ति आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। उन्हें मृत्यु के समान माना गया है। बृहद्देवता में एक स्थान पर निर्ऋति को मृत्यु के समतुल्य विवेचित किया गया है- **ऋक् सौम्या निर्ऋती चैषा .....परे** (बृह० ७.९२)। अथर्ववेद के एक मंत्र में एक रोगाक्रान्त पुरुष के सन्दर्भ में कहा गया है कि चाहे उसकी आयु पूरी हो चुकी हो अथवा वह इस लोक से प्रयाण कर मृत्यु के निकट जा चुका हो, मैं उसे निर्ऋति के पास से भी वापस ले आऊँगा-**यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एवं। .... निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय** (अथर्व० ३.११.२)। निर्ऋति को पापदेवता वर्णित किया गया है, जो अराति और मृत्यु से घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध है। निरुक्त में भी निर्ऋति को पाप देवता निरूपित किया गया है- **निर्ऋत्याः पाप देवतायाः** (नि० १.१७)। निरुक्त में ही एक अन्य स्थल पर निर्ऋति की व्युत्पत्ति पृथ्वी के अर्थ में दी गई है- "**तत्र निर्ऋतिर्निरमणात्** (नि० २.७)।" अर्थात् जिस पर प्राणी प्रसन्नतापूर्वक रमण करते हैं, वह निर्ऋति अर्थात् पृथ्वी है। अथर्ववेद में पाप देवता के रूप में निर्ऋति का देवत्व विवेचित है।

६६. पराशर (६.६५) - पराशर का देवत्व अथर्व० ६.३५ में निर्दिष्ट है। यों तो पराशर शक्ति के पुत्र और ऋषि वसिष्ठ के पौत्र वर्णित हैं। निरुक्तकार यास्क ने भी यह तथ्य प्रमाणित किया है- .... **पराशरः ऋषिर्वसिष्ठस्य नप्ता शक्तेः पुत्र एव** (नि० ६.३०); किन्तु कुछ स्थानों पर पराशर शब्द इन्द्र के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। आचार्य सायण ने पराशर शब्द की व्याख्या इस प्रकार है- **हे पराशर परागत्य शृणाति हिनस्ति शत्रून् इति पराशर इन्द्रः** (अथर्व० ६.६५.१ सा० भा०) अर्थात् शत्रुओं को परास्त करके उन्हें नष्ट कर देने वाले को पराशर कहते हैं। ये गुण इन्द्र में हैं, अतः वे भी पराशर हैं। निरुक्त में एक अन्य स्थल पर पराशर की दूसरी व्याख्या इन शब्दों में विवेचित है- **इन्द्रोऽपि पराशर उच्यते। परा शातयिता यातूनाम्।.....परा परितः यातूनां ....रक्षसाम्। ....शातयिता विनाशकः** (नि० ६.३०) अर्थात् जो चारों ओर से राक्षसों का विनाश करने में समर्थ हो, वह पराशर है। इसी गुण के कारण यहाँ इन्द्र को भी पराशर निरूपित किया गया है। अथर्व० के इस मंत्र में पराशर (इन्द्र) से प्रार्थना की गई है कि वे शत्रु को नष्ट करें- **अव मन्युरवायताव..... । पराशरत्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि** (अथर्व० ६.६५.१)।

६७. पर्जन्य (६.४.१) - पर्जन्य का देवत्व ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में भी दृष्टिगोचर होता है। देवताओं के विभक्तीकरण में इन्हें वायवीय देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। देवता प्रायः तीन भागों में विभक्त हैं- पार्थिव, वायवीय और स्वर्गीय। इन्हें प्रायः जल बरसाने वाले देवता के रूप में जाना जाता है; किन्तु ये जल के साथ प्राण तत्त्व का भी वर्षण करते हैं, जिससे धरती की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है, वनस्पतियाँ पोषित होती हैं तथा प्राण शक्ति सम्पन्न बनती हैं- **समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु** (अथर्व० ४.१५.१)। अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में पर्जन्य को शरों का पिता (उत्पादक) तथा समूची सृष्टि के जड़-जंगम पदार्थों का उत्पादन एवं पोषण करने वाला निरूपित किया गया है- **विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्** (अथर्व० १.२.१)। पर्जन्य को शरों (बाणों) का पिता इसलिए कहा गया है कि बाण शरकण्डा से ही बनते हैं और शरकाण्ड वर्षाकाल में ही वर्द्धित होते हैं। इषु (बाण) को ऋग्वेद में 'पर्जन्यरेतस्' कहा गया है-**इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः** (ऋ० ६.७५.१५)। पर्जन्य को पृथ्वी का वृषभ (गर्भाधायक) भी उपन्यस्त किया गया है- **पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः** (ऋ० ६.४९.६)। पर्जन्य का मण्डूकों (मेढकों) से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जो मेढक पूरे वर्ष पृथ्वी के गर्भ में शयन करते हैं, वे पर्जन्यागमन से प्रसन्न होकर पर्जन्य को प्रसन्नता प्रदान करने वाली वाणी बोलते हैं- .... **वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः** (अथर्व० ४.१५.१३)। पजन्य का सम्बन्ध अग्नि, मरुत्, वात और इन्द्र के साथ भी निर्दिष्ट है- **वाचं सुमित्रावरुणा विरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्** (ऋ० ५.६३.६) ऋग्वेद में पर्जन्य शब्द मेघ का विशेषण है। बृहद्देवता में पर्जन्य का देवत्व प्रमाणित करते हुए लिखा है- **वातेनैव च पर्जन्यो लक्ष्यतेऽन्यत्र वै क्वचित्** (बृह० २.५)।

६८. पवमान (६.१९.१-२) - पवमान वस्तुतः एक विशेषण है, जो 'पवित्रकारक' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह विशेषण कुछ स्थलों पर तो स्वयं उसी देवता का वाचक बन गया है, जिसके लिए प्रयुक्त किया गया है। जैसे-ऋग्वेद में पार्थिव अग्नि को पवमान कहा गया है। दिव्य प्रवहमान सोम भी पवित्रकारक होने से 'पवमान' के रूप में प्रख्यात है। पवमान सोम द्युलोक और अन्तरिक्ष से पृथ्वी की ओर प्रवाहित होता है- **पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधि सानवि** (ऋ० ९.६३.२७)। पावन करने वाले वायु को भी पवमान संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य सायण इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं- **हरितः दिशः पवमानः वायुः आविवेश आविष्टः** (ऋ० ८.१०१.१४ सा० भा०)। जैमिनीय ब्राह्मण में तो अग्नि, वायु के साथ आदित्य की भी

पवमान उपन्यस्त किया गया है- **त्रयो हवा एते समुद्रा यत् पवमानाः । अग्निर्वायुरसावादित्यः** (जैमि० ब्रा० १.२७४)। पवित्र करने वाला होने से प्राण को भी पवमान कहा गया है- **प्रजा वै हरितः । ता अयं प्राणः पवमान आविष्टः** (जैमि० ब्रा० २.२२९)।

६९. पशुपति (२.३४.१) - पशुपति का देवत्व अथर्ववेद में प्रतिष्ठित है। इन्हें संसार के समस्त द्विपदों और चतुष्पदों (दो पैर वाले और चार पैर वाले पशु-पक्षियों) का स्वामी विवेचित किया गया है। एक मंत्र में भव और शर्व को पशुपति कहा गया है,इसी कारण,उनसे प्रार्थना की गई है कि वे द्विपदों और चतुष्पदों से होने वाले कष्ट से हमारी रक्षा करें- **भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् । प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मो चतुष्पदः** (अथर्व० ११.२.१)। एक अन्य मंत्र में पशुपति से विनती की गई है कि श्वान, गृध्र, शृगाल आदि मांसभक्षी पशु हमारे शरीर को न खाएँ-**शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि..........च कृष्णा अविष्यवः** (अथर्व० ११.२)। पशुपति कष्ट देने वाले शृगालों,श्वानों एवं विकेशी पिशाचियों से प्रार्थी की रक्षा करते हैं- .... **स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः** (अथर्व० ११.२.११)। अथर्ववेद के ही एक मंत्र में जहाँ भव और शर्व को पशुपति विवेचित किया है,वहीं रुद्र को भी पशुपति कहा है। उनके बाण सर्वविदित हैं, जो स्तोता के लिए कल्याणकारी (शिव) होते हैं- **भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः । इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः** (अथर्व० ११.६.९)।

७० . पाप्महा (३.३१) - वैदिक देवों में 'पाप्महा' का देवत्व भी स्वीकार किया गया है। यद्यपि इनका व्यक्तित्व स्पष्टतः प्रकाशित नहीं होता;तथापि अथर्ववेद के कुछ मंत्रों में पाप से बचाने वाले या पाप को नष्ट करने वाले देवता के रूप में इनकी स्तुति की गई है। इस मंत्र में उपनयन के उपरान्त बालक को पाप से बचाने तथा यक्ष्मारोग से दूर रखने की प्रार्थना की गई है-......... **व्य १ हं सर्वेण पाप्मना वियक्ष्मेण समायुषा** (अथर्व० ३.३१.१)। बृहत्सर्वानुक्रमणीकार ने इनके देवत्व को प्रमाणित करते हुए लिखा है- **'वि देवाः' इत्येकादशर्चं पाप्महदेवत्यमानुष्टुभम् । .... देवान् पाप्मघ्नानस्तौत्** (बृ० सर्वा० ३.३१)। पाप के अधिष्ठाता देवता का एक नाम पाप्मा या पाप्मन् भी है। अथर्व० के छठे काण्ड के २६ वें सूक्त में उनसे प्रार्थना की गई है कि वे (पाप्मा) हमें छोड़ दें,हमें शान्ति से रहने दें और हमें कष्टमुक्त करके भद्रलोक में स्थान दें- **अव मा पाप्मान्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः । आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम्** (अथर्व० ६.२६ .१)। बृहत्सर्वानुक्रमणी में भी इनके देवत्व को प्रमाणित किया गया है-**'अव मा पाप्मन्' इति पाप्मदेवताकमानुष्टुभम्** (बृ० सर्वा० ६.२६)।

७१. पाप्मा (६.२६) द्र०-पाप्महा ।

७२. पितर अङ्गिरस (२.१२.४) द्र०-पितरगण ।

७३. पितरगण (३.२७.२) - उच्च स्थानीय स्वर्ग के निवासी पुण्यात्मा मृतक पितर या पितृगण कहलाते हैं। सृष्टि में विभिन्न योनि वर्ग हैं। जैसे-देव,पितर,मनुष्य,गन्धर्व और अप्सराएँ। इनमें पितरों का स्थान देवों के उपरान्त ही आता है- **देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये** (अथर्व० १०.९.९)। पितरों को यज्ञों में आमंत्रित किया जाता है,वे आकर वेदी के दक्षिण भाग में बर्हि पर घुटने मोड़कर बैठते हैं और हविष् को ग्रहण करके आह्वाता की भूलों को क्षमा करके उसकी रक्षा करते हैं- **आच्या जानु दक्षिण तो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम** (अथर्व० १८.१.५२)। पितृगणों की अनेक जातियाँ हैं ,जैसे-नवग्व पितर,अङ्गिरस् पितर,अथर्वन् पितर आदि- **अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः** (अथर्व० १८.१.५८)। इसी प्रकार इनकी कई कोटियाँ भी हैं,जैसे- अवर,पर,मध्यम,पूर्व और अपर- **उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः** (अथर्व० १८.१.४४)। यम मृतकों में सर्वप्रथम थे,जो विवस्वान् के पुत्र थे। मृत्यु के उपरान्त सभी वहीं जाते हैं,वहीं प्रेत और पितर मिलते हैं। पितृगणों का भोज्य हविष् 'स्वाहा' से भिन्न 'स्वधा' शब्द से अर्पित किया जाता है- **यांश्च देवा वावृधुर्ये......... स्वधयान्ये मदन्ति** (ऋ० १०.१४.३)। पितरों से प्रार्थना की गई है कि वे अपने वंशजों को अपने प्रति किए गए अपराधों के लिए दण्ड न दें और न क्षति ही पहुँचाएँ। बृहद्देवता में भी इनके देवत्व का उल्लेख है- **संस्कार्यप्रेत संयुक्तैः पितृभिः स्तूयते यमः** (बृह० ६.१५८)।

७४ . पितर सौम्य (२.१२.५) द्र०-पितरगण ।

७५. पुरुष (१०.२) - पुरुष का देवत्व चारों वेदों में प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद में एक सम्पूर्ण सूक्त (ऋ० १०.९०) पुरुष को समर्पित है। यही सूक्त मंत्रों के क्रमान्तर से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में भी सम्प्राप्य है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- **'पुरि शेते तस्मात्पुरुषः'** अर्थात् जो इस शरीर में शयन करता है, वह पुरुष है। पुरुष के संदर्भ में कहा गया है कि विश्व

में जो कुछ उत्पन्न हुआ है और आगे उत्पन्न होगा, वह सब पुरुष ही है- **पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्** (अथर्व० १९.६.४)। उस पुरुष के विराट् स्वरूप के विषय में उल्लेख है कि उसके हजारों सिर, हजारों आँखें, हजारों हाथ तथा हजारों पैर हैं, वह भूमि तथा (इसके अतिरिक्त) और जो कुछ भी है, सबको आवृत किए हुए है- **सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वा ऽ त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम** (ऋ० १०.९०.१)। विराट् पुरुष के शरीर से ही चतुर्वर्णों की उत्पत्ति हुई है, जो इन शब्दों में विवेचित है- **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यो ऽ भवत्। मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत** (अथर्व० १९.६.६)। इस प्रकार वह सृष्टि के मूल में अवस्थित मूलतत्त्व के अतिरेकी और अन्तर्यामी स्वरूप का द्योतक है। उसका यही स्वरूप सर्वेश्वरवाद के नाम से प्रख्यात है।

७६. पुष्टिपति (७.२०) द्र०-धाता।

७७. पूषा (३.१४.२) - पूषा देवता की गणना महत्त्वपूर्ण देवताओं में की जाती है। इनका देवत्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। पूषन् शब्द संस्कृत की पुष् धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ-'पोषक' अथवा 'पुष्ट करने वाला' है। ऋग्वेद में पूषा देवता 'सूर्य की मानव पुष्टि प्रदात्री' तथा मानव 'कल्याणकारी शक्ति' के प्रतीक रूप में विवेचित हैं। निरुक्तकार यास्क ने 'पूषा' की व्याख्या करते हुए लिखा है- '**अथ यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत्पूषा भवति** (नि० १२.१६)' अर्थात् जो पोषण हेतु रश्मियों (किरणों) को पोषकत्व से भर देता है, वह पूषा है। यजुर्वेद में पूषा देवता को सविता (सूर्य के प्राण) की प्रेरणा से ही विचरण करने वाला विवेचित किया गया है- **तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्** (यजु० १७.५८)। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि सविता ही जब जाता है (चलता है), तो वही पूषा कहलाता है। वे प्राणियों को दीर्घायु एवं वर्चस् प्रदान करते हैं-**पूष्णः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शतशारदाय शतं शरद्भ्यः आयुषे वर्चसे** (तैत्ति० ब्रा० १.२.१.१९)। वैवाहिक प्रसंग में भी पूषा देवता का स्मरण कई बार किया गया है। पूषा देवता धाता, सविता और मरुद्गणों के साथ वर को शक्ति प्रदान करते हैं-......... **अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति** (अथर्व० १४.१.३३)। विवाहोपरान्त भी दम्पती के यौन सम्बन्धों को सार्थक बनाने में भी पूषा द्वारा सहायता किया जाना उपन्यस्त है- **तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या ३ वपन्ति** (अथर्व० १४.२.३८)। प्रसव कर्म में सहायता के लिए भी अर्यमा वेधा और पूषा देवता से प्रार्थना की गई है- **वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः** (अथर्व० १.११.१)। पूषा दन्तहीन हैं तथा उन्हें करम्भ (पुआ) अधिक रुचिकर हैं, यह वर्णन कौषीतकि ब्राह्मण में मिलता है- **तस्य (पूष्णः) दन्तान्परोवाप तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भ भाग इति** (कौषी० ब्रा० ६.१३)। पूषा देवता का नाम कई प्रमुख देवों के साथ मिलता है। ये देव हैं- इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आदित्य, विश्वेदेवा, अर्यमा, वेधा, बृहस्पति, मित्रावरुण, अश्विनीकुमार, भग, ब्रह्मणस्पति, सोम, रुद्र आदि।

७८. पृथिवी (६.१७) - वैदिक ग्रन्थों में पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकार किया गया है। पृथ्वी का नामोल्लेख द्यौ या द्यावा के साथ अधिक मिलता है। पृथ्वी और आकाश को जगत् का माता-पिता निरूपित किया मया है- **भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः। द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति....... लोकात्** (अथर्व० ६.१२०.२)। अथर्ववेद के ही एक अन्य मंत्र में पर्जन्य को पति और धरती (भूमि) को उनकी पत्नी उपन्यस्त किया गया है-......... **भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे** (अथर्व० १२.१.४२)। इसी सूक्त के बारहवें मंत्र में सभी प्राणियों को पुत्र तथा पर्जन्य को पिता और पृथ्वी को माता विवेचित किया गया है- .... **माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु** (अथर्व० १२.१.१२)। पृथ्वी शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की प्रथ् धातु से हुई है, जिसका अर्थ फैलना (विस्तार होना) है। इस प्रकार पृथ्वी शब्द का अर्थ हुआ-विस्तृत आकार वाली'। निरुक्तकार यास्क मुनि ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए पृथ्वी की व्युत्पत्ति इन शब्दों में विवेचित की है- **प्रथनात्पृथिवीत्याहुः........ प्रथनात्पृथुत्वात्पृथिवीत्याहुस्ते शाकटायनाः** (नि० १.१३)। ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख है कि इन्द्रदेव ने पृथ्वी का प्रथन किया (पप्रथत्), उस मंत्र से पृथ्वी के इस अर्थ की संगति ठीक-ठाक बैठ जाती है- **स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार** (ऋ० २.१५.२)। पृथ्वीमाता पर्वतों का भार धारण करने वाली, वन्य ओषधियों की धारणकर्त्री, भूमि को उर्वरता प्रदान करने वाली तथा जल बरसाने वाली हैं- **बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि। प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि** (ऋ० ५.८४.१)। पृथ्वी का आधार सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ है। इन्हीं के सहारे वे टिकी रहकर हमारा हर तरह संरक्षण करती हैं- **सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य....... पृथिवी नः कृणोतु** (अथर्व० १२.१.१)।

७९. पौर्णमासी (७.८५.१-२,४) - '**यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)' सूत्र के अनुसार पौर्णमासी को भी देवत्व प्रदान किया गया है। जिस तिथि की रात्रि को चन्द्रमा पूर्णरूपेण प्रकाशित होता है, उसे पौर्णमासी या

पूर्णमासी कहते हैं। इस दिन यज्ञादि धर्मकृत्य सम्पन्न करने से देवों के साथ निवास करने का पुण्य प्राप्त होता है और उपयोगी सामग्रीसहित स्वर्ग के पृष्ठ पर आनन्दित होने का सौभाग्य हस्तगत होता है- **पूर्णा...... पौर्णमासी जिगाय। तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम** (अथर्व० ७८५.१)। पूर्णिमा या पौर्णमासी की अधिष्ठात्री देवी राका हैं, जो उत्तम ऐश्वर्य प्रदात्री, पुष्टिकर्त्री तथा श्रेष्ठ सन्तति प्रदान करने वाली हैं। आचार्य सायण ने भी पौर्णमासी की अधिष्ठात्री देवी के रूप में 'राका' का उल्लेख इन शब्दों में किया है- **संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी राका** (ऋ० २.३२.४ सा० भा०)। विभिन्न यागों में पौर्णमास याग बहुत्र महत्त्वपूर्ण हैं और यह याग पौर्णमासी को ही सम्पन्न होता है- **पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु** (अथर्व० ७८५.४)।

८०. प्रचेता अग्नि (४.२३) - द्र०-अग्नि।

८१. प्रजापति (६.११.३) - प्रजापति का देवत्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। प्रजापति 'क' नाम से भी प्रख्यात हैं। सायणाचार्य ने 'क' का अर्थ सुख लिया है। सुखमय होने के कारण ही प्रजापति को 'क' की संज्ञा प्रदान की गई है; इसीलिए 'कस्मै' शब्द से 'प्रजापति के लिए' अर्थ लिया जाता है। 'क' वर्ण से वाच्य होने के कारण प्रजापति को वाच्य प्रजापति भी कहते है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानों पर प्रजापति के साथ परमेष्ठी और वैश्वामित्र विशेषण भी संयुक्त हुए हैं। प्रजापति का उल्लेख प्रायः सम्पूर्ण जीवों के रचयिता अथवा ब्रह्मा, प्रजापालक, सविता या अग्नि के रूप में हुआ है। ऋग्वेद में उल्लेख है- **प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परि ता बभूव** (ऋ० १०.१२१.१०)। प्रजापति आदिदेव के रूप में भी स्वीकृत हैं। उन्हें सर्व प्रथमोद्भूत, जगत्स्वामी तथा पृथ्वी और आकाश का धारणकर्त्ता निरूपित किया गया है। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में उन्हें हिरण्यगर्भ के प्रतिरूप ही विवेचित किया गया है- **हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम** (ऋ० १०.१२१.१) शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति का आदिकाल में एकाकी होना निर्दिष्ट है- **प्रजापति र्ह वाऽइदमग्र ऽ एक एवाऽस** (शत० ब्रा० २.२.४.१)। प्रजापति ही प्रथम यज्ञकर्त्ता भी थे- **प्रजापति र्ह वा ऽ एतेनाग्रे यज्ञेनेजे** (शत० ब्रा० २.४.४.१)। आचार्य सायण ने प्रजापति को ब्रह्मा विवेचित करते हुए लिखा है- **ब्रह्माणम् एषां देवानां स्रष्टारं प्रजापतिम्** (अथर्व० ३.२०.४ सा० भा०) प्रजापति नष्टवीर्य पुरुष में पुरुषत्व जाग्रत् कर देते हैं, उन्हें वृषा कहा गया है, वे अपनी शक्ति से पुरुष की प्रजनन शक्ति में वृद्धि कर देते हैं ____ **उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना** (अथर्व० ४.४.२)।

८२. प्राण (२.१५-१७) - **'या तेनोच्यते सा देवता'** (ऋ० १०.१० सा० भा०) सूत्र के अनुसार प्राण को भी देवता के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के (१५-१७) तीन सम्पूर्ण सूक्त प्राण को ही समर्पित हैं। प्राण को सभी का ईश्वर विवेचित करते हुए यह भी कहा गया है कि सभी कुछ उसी (प्राण) में प्रतिष्ठित है, अतः वह नमन करने योग्य है- **प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्व प्रतिष्ठितम्** (अथर्व० ११.६.१)। प्राण की स्थिति विवेचित करते हुए ऋषि ने लिखा है कि आते हुए, जाते हुए, स्थिर, आसीन होते हुए, संचरण करते हुए, पराचीन और प्रतीचीन जिसरूप में भी हो प्राण नमनीय है- **नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते..... नमः। नमस्ते प्राण प्राणते नामो अस्त्वपानते। पराचीनाय.... त इदं नमः** (अथर्व० ११.६.७-८)। प्राण की सामर्थ्य निरूपित करते हुए द्रष्टा ने यह भी कहा है कि जो श्वांस लेते दीखते हैं, उनके ही नहीं, जो श्वाँस लेते प्रत्यक्षतः नहीं दीखते, उनके भी स्वामी प्राण देवता हैं। जिस तरह पिता अपने पुत्र को संरक्षण प्रदान करता है, वैसे ही प्राणदेव सभी प्रजाओं को ढँके (आच्छादित किए) हैं- **प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्। प्राणो हि सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न** (अथर्व० ११.६.१०)। गर्भ में भी प्राण अपना काम करते रहकर गर्भ को पुष्ट कर देता है, तदुपरान्त वह प्राणी के रूप में उत्पन्न हो जाता है- **अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा। यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः** (अथर्व० ११.६.१४)। कोश ग्रन्थों में प्राण के कई प्रकार वर्णित हैं। ये हैं- प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान। शरीर के अन्दर स्थिति भेद से इनके कार्य भी अलग-अलग हैं।

८३. बृहस्पति (६.३८) - वेदों में बृहस्पति प्रमुख देव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्हें स्तुति अधिपति माना गया है, इसी कारण इन्हें कवि उपाधि से विभूषित किया गया है- **कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्** (ऋ० २.२३.१)। इन्हें वाणी और प्रज्ञा के देवता के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है, साथ ही ये देव पुरोहित भी हैं- **वाग् वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः** (शत० ब्रा० १४.४.१.२२)। **बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा** (शत० ब्रा० १७.४.२१)। ऋषियों के नेतृत्व करने के कारण इन्हें पुरोधा ब्रह्मन् आदि नामों से भी संबोधित किया गया है- **ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः** (तैत्ति० सं० २.२.९.१)। अथर्ववेद में बृहस्पति, अग्नि, वरुण और सोम की तरह सांमनस्यकारी देवता के रूप में प्रख्यात हैं। आचार्य सायण ने बृहस्पति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार वर्णित की है- **बृहस्पतिः**

बृहतां देवानाम् अधिपतिः (अथर्व० ६.७३.१ सा० भा०) अर्थात् बृहस्पति बड़े-बड़े देवों के अधिपति हैं। उन्हें अष्ट वसुओं के साथ आमंत्रित किया गया है- **एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु** (अथर्व० ६.७३.१)।वे राजा के राज्य को स्थिर बनाते हैं- **ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः** (अथर्व० ६.८८.२)। वे सविता अर्यमा और मित्र आदि देवताओं की तरह शत्रु से यजमान की रक्षा करते हैं। वैवाहिक कृत्यों में भी बृहस्पति संरक्षण व सहयोग प्रदान करते हैं। वस्तुतः बृहस्पति एक कल्याणकारी देवता हैं,जो वन्ध्या को गर्भधारण कराने से लेकर किसी विपत्ति में मणि बन्धन करने तक के सभी कर्मों में सहायता प्रदान करते हैं- **गर्भं ते मित्रा वरुणो गर्भं देवो बृहस्पतिः दधातु ते** (अथर्व० ५.२५.४)।......... **आ त्वा चृतत्वयमा पूषा बृहस्पतिः** (अथर्व० ५.२८.१२)। द्युलोक गो मोचन,बल हनन,अन्धकार निराकरण आदि इनके प्रमुख शौर्य कृत्यों में गिने जाते हैं। इनका सम्बन्ध मरुद्‌गणों,इन्द्र, वरुण और पूषा के साथ विवेचित है।

८४. बृहस्पति युक्त अवस्वान् (३.२६.६) - द्र०-अप्सरा।

८५. ब्रध्न (७.२३) - द्र०- सूर्य।

८६. ब्रह्म (५.६.१) - अथर्ववेदीय देवताओं में ब्रह्म का देवत्व भी दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्म शब्द की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार यास्क ने लिखा है- 'ब्रह्म परिवृढं सर्वतः(नि० १८) अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है,वह ब्रह्म है। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म से ही जन्मा है और उसी में लय हो जाता है,इसीलिए इस सम्पूर्ण जगत् में जो कुछ है,वह निश्चित ही ब्रह्म है। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए छान्दोग्य उपनिषद्‌कार ने लिखा है- **सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत** (छांदो० ३.१४.१)। ब्रह्म के एक स्वरूप को 'विश्वरूप' भी कहते हैं,क्योंकि वह सर्वत्र व्याप्त रहता है; किन्तु अथर्ववेद में 'विश्वरूप' एक राजा के विशेषण स्वरूप भी प्रयुक्त हुआ है,जिसका प्रधान कारण राजा का , शत्रु,मित्र,कलत्र आदि रूपों में विद्यमान होना है। जैसा कि कहा गया है -'**तादृङ् नामांकितो राजा विश्वरूपः शत्रु मित्रकलत्रादिषु नानाविधरूपः** (अथर्व० ४८.३ सा० भा०) अथर्ववेद में भी ब्रह्म को सर्व प्रथमोद्‌भूत विवेचित किया गया है- **ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्** (अथर्व० ५.६.१)। विराट् विश्व ब्रह्माण्ड में संचरित समष्टिगत चेतना को ब्रह्म कहते हैं और वही चेतना जब व्यष्टिगत होकर प्राणियों के हृदयक्षेत्र में संचरित होती है,तब उसे आत्मा कहते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए अथर्ववेद के ऋषि ने ब्रह्मात्मा का स्वरूप इन शब्दों में स्पष्ट किया है- **वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकं रूपम्** (अथर्व० २.१.१) । आचार्य सायण ने इसका भाष्य करते हुए लिखा है- **गुहारूपे सर्वप्राणि हृदये यत् श्रुत्यन्तप्रसिद्धं सत्यज्ञानादिलक्षणं परमम् ब्रह्म** (अथर्व० २.१.१ सा० भा०)।

८७. ब्रह्म-आत्मा (२.१) - द्र०- ब्रह्म ।

८८. ब्रह्मगवी (५.१८-१९) - अथर्ववेदीय देवताओं में 'ब्रह्मगवी' को भी देवत्व प्रदान किया है। ब्रह्मगवी का सामान्य अर्थ 'ब्राह्मण की गाय' होता है; किन्तु विशिष्ट अर्थों में इसे 'ब्राह्मण की सम्पदा' भी कहते हैं। ब्रह्म-अर्थात् ब्राह्मण ,गवी अर्थात् गो। गो के कई अर्थ होते हैं,जैसे- गाय,भूमि,इन्द्रियाँ,वाणी तथा किरणें आदि। अथर्ववेद के पाँचवें काण्ड के अठारहवें और उन्नीसवें सूक्त में ब्रह्मगवी का बार-बार उल्लेख आया है,जिनमें ऐसे प्रसंग हैं,जिनसे ब्राह्मण की सामान्य गाय (पशु) की संगति नहीं बैठती,वरन् उसका अर्थ ब्रह्मवृत्ति एवं ब्रह्मनिष्ठा लेने से तात्पर्य ठीक-ठीक समझ में आता है। जैसे- **ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे। तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति.......... वृषा** (अथर्व० ५.१९.४)।इस मन्त्र का सामान्य अर्थ तो यह है कि जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की गाय का हनन होता है, वह राष्ट्र तेजहीन हो जाता है; किन्तु विशिष्ट अर्थ में यह माना गया है कि जिस राष्ट्र में ब्रह्मनिष्ठा या ब्रह्मवृत्ति प्रायः समाप्त हो जाती है,वहाँ तेजस्विता समाप्त हो जाती है। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण की गाय अथवा सम्पत्ति का अपहरण जिस राष्ट्र में होता है ,वहाँ कोई जाग्रत् नहीं रह सकता- .... **न ब्राह्मणस्य गां जगध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन** (अथर्व० ५.१९.१०) । इसका भावार्थ है कि जिस राष्ट्र में ब्राह्मण की सम्पत्ति (आदर्शों के प्रति निष्ठा अथवा लोकसेवी प्रवृत्ति) का हरण हो जाता है,वहाँ कोई जाग्रत् नहीं रह सकता। उसकी विचित्रता का उल्लेख (अथर्व० ५.१९.७) इस प्रकार है- वह गो आठ पाँव वाली,चार आँखों वाली,चार कानों वाली,चार हनु वाली,दो मुख तथा दो जिह्वा वाली होकर ब्राह्मण को सताने वाले राजा के राष्ट्र को हिला देती है- '**अष्टापदी चतुरक्षी चतुः श्रोत्रा........ धूनुते ब्रह्मज्यस्य।**' इसीलिए एक मंत्र में यह निर्देश है कि कोई राजा ब्राह्मण की गाय (सम्पत्ति) को नष्ट न करें- **मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम्** (अथर्व० ५.१८.१)। बृहत्सर्वानुक्रमणी में ब्रह्मगवी का देवत्व इन शब्दों में प्रतिपादित है- **पञ्चदशके ब्रह्मगवी देवत्ये** (बृह० सर्वा० ५.१८-१९)।

८९. ब्रह्मणस्पति (१.२९) - बृह्मणस्पति का देवत्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति यों तो अलग-अलग देवों के रूप में प्रतिष्ठित हैं; किन्तु कुछ आचार्यों ने इनका तादात्म्य स्वीकार किया है- **बृहस्पते ब्रह्मणस्पते** (तैत्ति० ब्रा० ३.११.४.२)। कौषीतकि ब्राह्मणकार ने ब्रह्म को ही ब्रह्मणस्पति माना है- **ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः** (कौषी० ब्रा० ८.५.९.५)। **ब्रह्म** और **ब्रह्मण** दोनों ही शब्द मंत्र या स्तुति के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं- **ब्रह्म वै मन्त्रः** (शत० ब्रा० ७.१.१.५)।अस्तु, स्तुति के अधिष्ठाता को ब्रह्मणस्पति कहा गया है- **ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्** (ऋ० २.२३.१)। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के २९ वें सूक्त में ब्रह्मणस्पति से विनय की गई है कि वे हमें इस प्रकार वृद्धि प्रदान करें कि हम राष्ट्र को समर्थ एवम् समृद्ध बना सकें- **अभीवर्तेन मणिना..........तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय** (अथर्व० १.२९.१)। अग्नि, इन्द्र, अश्विनीकुमार, मित्रावरुण, भग, पूषा, सोम और रुद्र के साथ ब्रह्मणस्पति का भी प्रातःकाल आवाहन किये जाने का उल्लेख मिलता है- **प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं........... हवामहे** (अथर्व० ३.१६.१)। इतना ही नहीं ब्रह्मणस्पति अपने उपासकों को अनेक कष्टों, उत्पातों, संकटों शापों और दुश्मनों से भी बचाते हैं। अथर्व० के एक मंत्र में सर्प दंश के कारण एक व्यक्ति के अंग-अवयवों के टेढ़े पड़ जाने पर उन्हीं के द्वारा सीधे करने व उसे कष्टमुक्त करने का वर्णन मिलता है- **अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा......... ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः** (अथर्व० ७.५८.४)।

९०. ब्रह्मा (३ २०.४) - द्र०- प्रजापति ।

९१. भग (२.३६.७) - भग का देवत्व ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में सम्प्राप्य है। इनकी गणना द्वादश आदित्यों में की गई है। ऋग्वेद के एक प्राचीन मंत्र में छः आदित्यों का वर्णन मिलता है, जिसमें भग भी एक हैं। बृहद्देवताकार ऋषि शौनक ने भग के आदित्य (अदिति पुत्र) होने का प्रतिपादन करते हुए बारहों आदित्यों के नाम भी गिनाए हैं- **........तत्रैका त्वदितिर्देवी द्वादशजनयत्सुतान्** (बृह० ५.१४६)। **भगश्चैवार्य मांशश्च मित्रो वरुण एव च......... द्वादशो विष्णुरुच्यते।........वरुणश्च ह** (बृह० ५.१४७-४८) शत० ब्रा० (६.३.१.१९)। इनके विषय में ऐसी परिकल्पना है कि ये नेत्रहीन थे- **तस्य (भगस्य) चक्षुः परापतत् तस्मादाहुरन्धो वै भग इति** (गो० ब्रा० २.१.२)। भग शब्द का प्रयोग ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में ऐश्वर्य, काम, तेजस्विता, सौन्दर्य, प्रणय, समृद्धि तथा नारी की योनि के अर्थ में प्राप्त होता है। भग को सत्यराध (वास्तविक धन वाला) सबका नेता तथा गो, अश्व और धन-सम्पत्ति प्रदाता कहा गया है- **भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां .... गोभिरश्वैर्भग.........स्याम** (अथर्व० ३.१६.३)। विवाहादि पुनीत कृत्यों में भी भग देवता सहायता प्रदान करते हैं। सूर्या विवाह में भी विवाहोपरान्त वे सूर्या को हाथ पकड़कर उसके पतिगृह ले गये थे तथा पालकी के चारों पाँवों का निर्माण भी उन्हीं ने किया था।

९२. भव-शर्व (४.२८) - द्र० - पशुपति ।

९३. भूमि (४.४०.५) - द्र० - पृथिवी ।

९४. मन्यु (४.३१.३२) - अथर्ववेदीय देवताओं के क्रम में मानवीय प्रवृत्ति 'मन्यु' (साहस, स्फूर्ति या उत्साह) को भी देवत्व प्रदान किया गया है। मन्यु क्रोधभिमानी देवता हैं। प्रारम्भ में मन्यु शब्द का प्रयोग, मन की अवस्था विशेष, बाद में स्फूर्ति, उत्साह तथा अन्त में क्रोध के अर्थ में हुआ है। निरुक्त में मन्यु अमूर्त देवता रूप में उल्लिखित हुए हैं- **मन्युर्मन्यतेर्दीप्ति कर्मणः, क्रोध कर्मणो** (नि० १०.२९)। मरुद्गण मन्यु के साथी हैं। मन्यु अग्नितुल्य प्रदीप्त, शत्रु को पराजित करने वाले सहनशील हैं, जो आवाहित होकर ओज प्रदर्शित कर शत्रुओं को रणक्षेत्र से भगा देते हैं- **अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व..........मृधो नुदस्व** (अथर्व० ४.३१.२)। सामने खड़ी सेना या चुनौती देते हुए शत्रुओं (अथवा अपने आन्तरिक दोष - दुर्गुणों) का प्रतिरोध करने हेतु प्रथमतः मन्यु का उद्दीप्त होना अनिवार्य है, इसीलिए उन्हें देव स्वरूप माना गया है। वे हर व्यक्ति को अनाचार और अनौचित्य के प्रति युद्ध करने के लिए उत्तेजित करते हैं। मन्यु की तेजस्विता का वर्णन करते हुए अथर्ववेद के ऋषि ने उन्हें इन्द्र, अग्नि, वरुण और होता तक कहा है- **मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ....सजोषाः** (अथर्व० ४.३२.२)।

९५. मरुत्पिता (५.२४.१२) - द्र० - मरुद्गण ।

९६. मरुद्गण (३.१.२) - वेदों में मरुद्गणों को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इनका देवत्व सभी वेदों में प्राप्त होता है। ये गण देवता के रूप में प्रख्यात हैं अर्थात् इनकी संख्या गणों में है- **गणशो हि मरुतः** (ता० म० ब्रा० १९.१४.२)। इनकी संख्या ७ गुणक के रूप में पाई जाती है। **त्रिवै सप्त-सप्त मरुतः** (काठ० सं० ३७.४)। इनकी संख्या का कोई सुनिश्चित उल्लेख नहीं मिलता, फिर

भी परम्परा से इन्हें उन्चास माना जाता है। इनकी माता पृश्नि हैं- **पृश्न्या वे मरुतो जाता ....पृथिव्याः** (काठ० सं० १०.११)। रुद्र को मरुतों का पिता विवेचित किया गया है,इसीलिए इन्हें (मरुतों को) कई बार रुद्राः या रुद्रियाः कहा गया है। अथर्ववेद के एक मंत्र में भी पशुपति अर्थात् रुद्र को मरुतों के पितारूप में स्वीकार किया गया है- **मरुतांपिता पशूनामधिपतिः स..........**(अथर्व० ५.२४.१४)। मरुद्गण वायु और आँधी के देवस्वरूप प्रतिष्ठित हैं। वर्षा के साथ भी मरुद्गण घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध हैं। वे ही जल को समुद्र से ऊपर उठाते हैं और फिर अन्तरिक्ष से नीचे पृथ्वी पर गिराते हैं। जल बरसाते समय वे जोर-जोर से उद्घोष करते हुए पर्जन्य का गुणगान करते हैं- **उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो...........पृथिवीं तर्पयन्तु** (अथर्व० ४.१५.५)। मरुतों ने वृत्र वध में भी इन्द्र की सहायता की थी।

९७. मित्र (३.८) - द्वादश आदित्यों में मित्र भी प्रतिष्ठित हैं। इन्हें भी अदिति पुत्र माना गया है-.........**अदितिर्देवी द्वादशजनयत्सुतान्। भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च।........महाद्युतिः** (बृह० ५.१४६-४७)। 'मित्र' शान्ति के देवता के रूप में प्रख्यात हैं- **मित्रो वै यज्ञस्य शान्तिः** (काठ० सं० ३५.१९)। मित्र द्युलोक एवं पृथिवी के धारणकर्त्ता हैं- **मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्** (काठ० सं० २३.१२)। नवोत्पन्न अग्नि को 'वरुण' और समिद्ध अग्नि को 'मित्र' की संज्ञा प्रदान की गई है- **त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः** (ऋ० ५.३.१)। इसीप्रकार रात्रि से सम्बद्ध देवता को वरुण और प्रातः या प्रकाश से सम्बद्ध देव को मित्र कहा गया है- **वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु** (अथर्व० ९.३.१८)। मित्रदेव अपने उपासकों को जरा,मरण और पाप से बचाते हैं- **प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् ....व्रतेन। न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्** (ऋ० ३.५९.२)। मित्र का वर्णन प्रायः सूर्य के पर्याय के रूप में ही मिलता है। स्थिति भेद से सूर्य या आदित्य के अनेक नाम हैं,जिनमें मित्र भी हैं,मित्र का सम्बन्ध अनेक देवों से है ; किन्तु उनका नामोल्लेख सर्वाधिक बार वरुण के साथ हुआ है।

९८. मित्रावरुण (५.२४.५) - द्र०-मित्र।

९९. मृत्यु (६.१३) - अथर्ववेदीय देवताओं में मृत्यु को भी परिगणित किया गया है। **यस्य वाक्यं स ऋषिर्या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०) सूत्र के अनुसार कई सूक्तों का वर्ण्य विषय 'मृत्यु' होने के कारण यह देवत्व न्याय संगत भी है। अथर्ववेद में मृत्यु शब्द का प्रयोग प्रायः यम या अन्तक के पर्याय स्वरूप हुआ है। मृत्यु वस्तुतः एक स्थिति या अवस्था का नाम है, जो जीवन के अन्त के रूप में प्रकट होती है। निरुक्तकार यास्कमुनि ने मृत्यु को मारक बताया है अर्थात् जो सबको मार देती है,वह मृत्यु है- **मृत्युर्मारुतीति सतः** (नि० ११.६)। यमदेव को साक्षात् मृत्यु कहा गया है। मृत्यु और यम दोनों को नमन किया गया है-.......... **तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे** (अथर्व० ६.२८.३)। निर्ऋति और मृत्यु की परस्पर मित्रता निर्दिष्ट है-..........**तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना** (अथर्व० ७.७३.१)। मृत्यु को अन्तक विवेचित करते हुए अथर्ववेद के ऋषि ने कहा है- **अन्तकाय मृत्यवे नमः** (अथर्व० ८.१.१)। एक स्थान पर मृत्यु को यम का दूत भी वर्णित किया गया है; क्योंकि वह प्रेत के प्राणों को पितरों के पास वहाँ पहुँचाने का कार्य सम्पन्न करती है- **मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार** (अथर्व० १८.२.२७)। जीवन प्रकाश का तथा मृत्यु अन्धकार का प्रतीक है-...........**उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि** (अथर्व० ५.३०.११)।

१००. मेधा (६.१०८.१-३,५) - अथर्ववेद में कुछ मंत्रों का वर्ण्य विषय 'मेधा' होने से मेधा को भी देवश्रेणी में परिगणित किया गया है। निरुक्तकार यास्क ने मेधा की विवेचना करते हुए लिखा है- **मेधाकस्मात् ?........ मतौ धीयते। मतिर्बुद्धिः तस्यां या पुरुषशक्तिर्धीयते अभिव्यज्यते धारणानाम सैव मेधा इत्युच्यते** (नि० ३.१९) अर्थात् मति बुद्धि को कहते हैं। बुद्धि में जो धारण करने की शक्ति अभिव्यक्त होती है,वह मेधा कहलाती है। दूसरे शब्दों में श्रुत धारण-समर्था बुद्धि ही मेधा है। ब्रह्मचारी मेखला धारण करते समय इष्ट से प्रार्थना करता है,कि वे उसे मति (भविष्य दर्शिनी बुद्धि) तथा मेधा (श्रुत धारण समर्था बुद्धि) प्रदान करें- **सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च** (अथर्व० ६.१३३.४)। काव्य रचना,मंत्र रचना में मेधा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसीलिए इस शक्ति से सम्पन्न व्यक्तियों- कवियों को मेधावी कहा जाता है। सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने में भी मेधा ही कारण भूत है। मेधा की इस महत्ता ने ही उसे देवता पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। ऋभुगणों, असुरों और ऋषियों द्वारा जिस मेधा का साक्षात्कार कर लिया गया,बाद में उसका आवाहन किया जाने लगा और अपने अन्दर आवेशित करने की प्रार्थना की जाने लगी- **यां मेधामृभवो.......... मय्यावेशयामसि** (अथर्व० ६.१०८.३)। मेधा से प्रार्थना की जाती है कि वह सूर्य रश्मियों की तरह हमारे पास आये- **त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया** (अथर्व० ६.१०८.१)। बृहद्देवता में भी मेधा का देवत्व प्रमाणित हुआ है।...........**श्रद्धा मेधा च दक्षिणा** (बृह० २८४)।

१०१. यक्ष्मनाशन अग्नि (१.२५) - द्र० अग्नि।

१०२. यज्ञ (३.१०.७) - अथर्ववेदीय देवताओं में यज्ञ को भी देवत्व प्रदान किया गया है। वैदिककाल से ही यज्ञ को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता रहा है। प्रारम्भ में यज्ञ शब्द यजन, पूजन या उपासना के अर्थ में प्रयुक्त होता था; किन्तु कालान्तर में अग्नि में आहुति प्रदान करने के साथ अनेक अनुष्ठानों को यज्ञ समझा गया। बाद में यज्ञ के कई प्रकार विकसित हुए, जैसे अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय, पुरुषमेध, दर्श-पूर्णमास, अग्निष्टोम आदि। इन यज्ञों को तीन भागों में बाँटा गया (१) पाकयज्ञ (२) हविर्यज्ञ-(३) सोमयज्ञ। बाद में यज्ञ का स्वरूप इतना विस्तृत हो गया कि त्याग और परमार्थ की क्रिया को भी यज्ञ संज्ञा प्रदान की गई; क्योंकि यज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति ही संस्कृत की यज् धातु से हुई है। महर्षि पाणिनि के अनुसार- '**यज्ञ देवपूजा संगतिकरणदानेषु** (पाणि० धा० को० १००२)।'-यज के तीन अर्थ हैं- देवपूजा, संगतिकरण और दान। अर्थात् यज्ञ में इन तीनों तथ्यों का समावेश रहता है। अस्तु, देवपूजा, संगतिकरण और दान परक प्राय: सभी प्रक्रियाएँ यज्ञ कहलाती हैं। इसीलिए दानार्थक श्रेष्ठ कार्यों को भी यज्ञ कहा गया है जैसे- नेत्रदान यज्ञ, रक्तदान यज्ञ, भूदान यज्ञ आदि। यज्ञ को समस्त भुवनों की 'नाभि' कहा गया है-..........**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः** (यजु० २३.६२)। सृष्टि के आदि पुरुष को विराट् पुरुष कहा गया है, उसे ही यज्ञ पुरुष की संज्ञा भी प्रदान की गई है। उस विराट् यज्ञ पुरुष से ही ऋक्, साम, यजु और अथर्व वेदों की उत्पत्ति विवेचित है- **तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत** (यजु० ३१.७)। चौबीस अवतारों में भी यज्ञ को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। अथर्ववेद में कई मंत्र यज्ञ देव को समर्पित हैं। **यथा-इमं होग्ग यज्ञमवतेमं संस्त्रावणा उत। यज्ञमिमं .... जुहोमि** (अथर्व० १९.१.२)।

१०३. यम (४.४०.२) - ऋग्वेद में परलोकवाद एवं मृत्यु विषयक सिद्धान्तों के क्रम में यम का देवत्व प्रतिष्ठित है; किन्तु वहाँ उनके नाम के साथ अपत्यवाची पद 'वैवस्वत' संयुक्त है। यम का सम्बन्ध मुख्यत: वरुण, बृहस्पति, अग्नि निर्ऋति, मृत्यु अन्तक आदि देवताओं के साथ वर्णित है। मृतकों को ले जाने वाले होने से ये सब देवगण सहज ही यम से सम्बद्ध हैं। यम देवता मृतकों पर शासन करते हैं, अत: कहीं-कहीं इनका उल्लेख एक राजा के रूप में भी मिलता है- यमराज्ञो गच्छतु रि प्रवाह:(ऋ० १०.१६.९)। यम को मृत्यु भी कहा गया है-____ यमाय नमो अस्तु मृत्यवे (अथर्व० ६.२८.३)। मृतक व्यक्ति स्वर्ग में पहुँचकर यम और वरुण का दर्शन करते हैं। यम के आवास को यम सदन कहते हैं- **अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः** (अथर्व० २.१२.७)। यम के पास जाने के लिए पंचभौतिक शरीर का परित्याग आवश्यक है, इसीलिए अभिचारकर्ता कहता है कि मैं इस पुरुष को यम के निमित्त पंचभूतों से माँगता हूँ- **मृत्यो रहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय** (अथर्व० ६.१३३.३)। यम को मृत्यु के साथ अन्तक भी कहा गया है- **अन्तकाय मृत्यवे नमः** (अथर्व० ८.१.१)। निरुक्त में यम की व्युत्पत्ति इन शब्दों में निर्दिष्ट है- **यमो-यच्छतीति सतस्तस्यैषा भवति। यमः निर्वक्तव्यः। स पुनरेव यच्छति उपरमयति जीवितात्सर्वं भूतग्राममिति यमः** (नि० १०.१९)। अर्थात् जो प्राणि-समुदाय को विश्रान्ति प्रदान करता है, वह यम है।

१०४. यमसादन (यम स्थान) (२.१२.७) - द्र० यम।

१०५. राका (७.५०) द्र०-पौर्णमासी।

१०६. रात्रि (३.१०.२-४,७) - वैदिक देवताओं में रात्रि को भी देवता के रूप में परिगणित किया गया है। रात्रि का देवत्व ऋक्, साम तथा अथर्ववेद में संप्राप्य है। रात्रि को उषा की बहिन वर्णित किया गया है- **निरुस्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती** (ऋ० १०.१२७.३)। अथर्ववेद में रात्रि को सम्वत्सर का प्रतिनिधि भी कहा गया है- **संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे** (अथर्व० ३.१०.३)। रात्रि से प्रार्थना की गई है कि वे हमें धन से तथा पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध करें- **आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम......भर** (अथर्व० ३.१०.७)। रात्रि को दिवो दुहिता भी कहा गया है। वे प्रकाश के द्वारा अन्धकार को दुराती हैं। उनके आजाने पर मनुष्य अपने घरों को तथा पक्षी अपने घोंसलों की तरफ लौट जाते हैं और विश्रान्ति प्राप्त करते हैं- **उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः** (ऋ० १०.१२७.८) बृहद्देवता में भी रात्रि का देवत्व निर्दिष्ट है-.......**स्कन्नं रात्रौ न्यधारयत्** (बृह० ५.८४)।

१०७. रुद्र (६.५५.२-३) - वैदिक देवताओं में रुद्रदेव उच्च प्रतिष्ठालब्ध हैं। रुद्र शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की रु अथवा रुद् धातु से हुई है, जिसका अर्थ बहुत शब्द करने वाला या रुलाने वाला है-**रुद्रो रौतीति स तो, रोरूयमाणो द्रवतीति वा। रोदयतेर्वा** (नि० १०.५)। जाबालोपनिषद् के अनुसार मृत्युकाल में प्राणियों को ब्रह्म या तारक मन्त्र का उपदेश करने के कारण रुद्र का यह नाम पड़ा है. जो निरुक्तकार की व्युत्पत्ति के साथ ठीक बैठता है। वायवीय संहिता के अनुसार रुद्र अर्थात् रुलाने वाले दु:ख का

द्रावणकर्त्ता (विनाशकर्त्ता) होने के कारण रुद्र नाम पड़ा-**रुद् दुःखं दुःख हेतुर्वा तद् द्रावयति नः प्रभुः-रुद्र इत्युच्यते तस्मात्** (वायु० सं०)। वस्तुतः रुद्र संहार के देवता के रूप में प्रख्यात हैं। रुद्र जहाँ एक ओर संहार के देवता हैं, वहीं दूसरी ओर उनका सर्जकरूप भी प्रकाशित होता है। रुद्र समस्त भूतों का सृजन करने में भी सक्षम हैं- **य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये** (अथर्व० ७.९२.१)। तैत्तिरीय संहिता में रुद्रों की संख्या ग्यारह विवेचित है- **एकादश रुद्रा एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्** (तैत्ति० सं० ३.४.९.७)। इसी ग्रन्थ में दूसरे स्थल पर रुद्रों की संख्या तैंतीस वर्णित है- **त्रिंशत्त्रयश्च गणिनो रुजन्तो दिवं रुद्राः पृथिवीं च सचन्ते** (तैत्ति० सं० १.४.११.१)। ये विभिन्न वेशोंवाले तथा अनेक कार्यों के सम्पादक कहे जाते हैं, इसीलिए इनकी एवं इनके गणों की अभ्यर्थना कई जगह साथ-साथ की जाती है- **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्य श्च वो नमो..........**(यजु० १६.२५)। रुद्र और अग्नि का सम्बन्ध अत्यन्त निकटवर्ती है- **यो वैरुद्रः सो अग्निः** (तैत्ति० ब्रा० ५.२.४.१३)। रुद्र मरुत्पिता भी हैं- **आ ते पितर्मरुतां........रुद्र प्रजाभिः** (ऋ० २.३३.१)। रुद्र को सर्वात्मा विशेषण से भी विभूषित किया गया है। बृहत्सर्वानुक्रमणीकार ने लिखा है-......... **सर्वात्मकं रुद्रमिति** (बृह० सर्वा० ५.६.११-१४)। तैत्ति० आ० १०.१६.१ में भी इस तथ्य की पुष्टि मिलती है- **सर्वो वै रुद्रः** ।

१०८. रुद्रगण (५.६.३-४) - द्र० रुद्र।

१०९. वरुण (५.१-२) - अथर्ववेद में वरुण का नामोल्लेख प्रायः १५० बार हुआ है। वरुण को देवताओं का राजा कहा गया है- **क्षत्रस्य राजा वरुणोधिराजः** (तैत्ति० सं० ३.१.२.७)। ये सम्पूर्ण भुवनों के अधिपति भी निर्दिष्ट हैं- **तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा.....**(ऋ० ५.८५.३)। द्यावा और पृथिवी इन्हीं के अनुशासन या धर्म के आश्रय में हैं- **द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते.....** (ऋ० ६.७०.१)। सूर्य के निमित्त मार्गान्वेषण भी इन्हीं के द्वारा सम्पन्न होता है- **उरु ॐ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ** (कपि० क० सं० ३.११)। वरुण शब्द की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार ने कहा है कि आवृत करने वाला होने से इसे वरुण कहते हैं- **वरुणः - वृणोतीति सतः (नि० १०.३)** अर्थात् जो अपने आवरण (मेघों) से आकाश का आवृत कर लेता है, वह वरुण है। आचार्य सायण ने अपने अथर्ववेद भाष्य में लिखा है- **वृणोति तमसा पाशैर्वा प्राणिजातम् इति वरुणः** (अथर्व० १.३.३ सा० भा०) अर्थात् जो समस्त जगत् को अंधकार द्वारा या समस्त प्राणियों को पाशों द्वारा आवृत कर देता है, वह वरुण है। वरुण का उल्लेख प्रायः मित्र के साथ मिलता है। मित्र को दिनाभिमानी तथा वरुण को रात्र्यभिमानी देवता विवेचित किया गया है। वरुणदेव जल को भी समावृत कर लेते हैं। अस्तु, इन्हें जल का देवता भी कहा गया है- **यच्च (आपः) वृत्वाऽतिष्ठंस्त द्वरणोऽभवत्तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इति** (गो० ब्रा० १.१.७)।

११०. वसुगण (६.६८.१) - वैदिक देवों में कुछ देवता गणों सहित भी प्रतिष्ठित हैं। जैसे- आदित्यगण, रुद्रगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण और वसुगण आदि। वसुओं की संख्या प्रायः ८ प्रसिद्ध है - **अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः** (तैत्ति० ब्रा० ३.१.२.६); किन्तु ३३३ तक का उल्लेख भी मिलता है। तैत्तिरीय संहिता में वर्णन है- **तेन त्रीणि च शतान्यसृजन्त त्रयस्त्रिंशतं च** (तैत्ति० सं० ५.५.२.६)। 'वसु' शब्द का अर्थ धन-सम्पत्ति है। इसी कारण वसु को सम्पत्तिदायक देवता माना जाता है। निरुक्तकार यास्काचार्य ने वसु शब्द की परिभाषा इन शब्दों में की है- **वसुना अन्न साधनेन गवादि धनेन** (नि० ५.१९)। एक अन्य व्युत्पत्ति में सबका आच्छादन कर्त्ता होने से इन्हें वसु कहा गया है- **वसवो यद्विवसते सर्वम्।..............वसते आच्छादयन्ति तस्माद्वसव उच्यन्ते** (नि० १२.४१)। वसुगण प्रार्थी के शत्रुओं का भी मर्दन करते हैं- **अमीमृणन्वसवो नाथिता इमे.............** (अथर्व० ३.१.२)। वसुगण विशेषतः आदित्य और रुद्रों से सम्बन्धित हैं- **एते वै त्रया देवा यद्वसवो रुद्रा आदित्याः** (शत० ब्रा० १.३.४.१२)। तैत्तिरीय संहिता में वसु को अग्नि का सहचर तथा इन्द्र, सोम, रुद्र, आदित्य, वरुण, विश्वेदेवा, बृहस्पति आदि से सम्बन्धित विवेचित किया गया है- **अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वेदेवैः** (तैत्ति० सं० ६.२.२.१)। वसुगण हविष् और मधु ग्रहण करके तृप्त होकर यजमान को विविध 'वसु' प्रदान करते हैं तथा जम्भ तमस् और प्रमयु (हिंसक) के आक्रमण से रक्षा करते हैं............ **जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि** (अथर्व० ७.१०२.३)।

१११. वाक् (७.४४) - 'वाक्' अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में निर्दिष्ट हैं। निरुक्त में वाक् के सम्बन्ध में यास्क मुनि ने लिखा- **वाक् कस्मात् ?...........वचेः।....... स च वाक् शब्दः " वच परिभाषणे"** (नि० २.२३) अर्थात् वाक् शब्द वच धातु से निष्पन्न है, जिसका परिभाषण के अर्थ में प्रयोग होता है। आचार्य सायण ने वाक् के प्रकारों का उल्लेख करते हुए अपने अथर्ववेद भाष्य में लिखा है- **सर्वा हि वाक् परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपचतुरवस्थापन्ना** (अथर्व० ७.४४.१ सा० भा०)। आचार्य सायण की व्याख्या के अनुसार वाक् के प्रायः ४ प्रकार हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। निरुक्तकार ने इनमें मध्यमा को वाक् नाम से सम्बोधित

किया है- **तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते** (नि० ११.२७)। माध्यमिका वाक् को सरस्वती भी कहा गया है-...........**सरस्वती माध्यमिका वाक्** (नि० ११.२७)। वाणी का सम्बन्ध बृहस्पति से वर्णित है। ऋग्वेद के वाक् सूक्त में आत्मकथन है- **बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधाना:** (ऋ० १०.७१.१)। ऋग्वेद के वाक् सूक्त की द्रष्ट्री वागाम्भृणी हैं, जो अम्भृण ऋषि की सुपुत्री हैं। इसमें आत्मकथन होने से वाक् को देवत्व व ऋषित्व दोनों प्राप्त हुए हैं। वाक् को देवी, राष्ट्री और दिव्या स्वीकार किया गया है- **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्** (ऋ० १०.१२५.३)। अथर्व० ४.३० में वाक् का उल्लेख सर्वरूपा, सर्वात्मिका और सर्वदेवमयी देवी के रूप में मिलता है, जिनका देवत्व बृहत्सर्वानुक्रमणीकार ने इन शब्दों में प्रमाणित किया है- **वाचं सर्वरूपां सर्वात्मिकां सर्वदेवमयीमित्यस्तौत्** (बृह० सर्वा० ४.३०)।

११२. **वाचस्पति (१.१)** - वाचस्पति को वाक् का स्वामी विवेचित किया गया है, किन्तु वाक् की अपेक्षा अथर्ववेद में वाचस्पति का देवत्व अत्यल्प है। वाचस्पति का स्वरूप बहुत स्पष्ट नहीं हुआ है। अथर्व० में उनसे प्रार्थना की गई है कि वे हमारे लिए पृथ्वी को सुख प्रदात्री बनाएँ, उसकी योनि (परतें) सुखद हों और हमारे लिए भी सुख प्रदायक हों- **वाचस्पते पृथिवी न स्योना...... सुशेवा** (अथर्व० १३.१.१७)। वाचस्पति से एक मंत्र में यह भी प्रार्थना की गई है कि वे हमें सुन्दर मन प्रदान करें, हमारे गोष्ठ में गौएँ उत्पन्न करें, श्रेष्ठ सन्तति प्रदान करें। इसी मंत्र में आगे कहा गया है कि 'हे परमेष्ठिन्! आपको मैं वर्चस् और आयु से धारण करता हूँ'। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि परमेष्ठी (प्रजापति या ब्रह्मा) विशेषण के रूप में ही वाचस्पति शब्द आया है अथवा परमेष्ठी के साथ वाचस्पति का कोई सम्बन्ध है- **वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा ज़नय योनिषु प्रजा:। इहैव प्राण: सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि** (अथर्व० १३.१.१९)। अथर्ववेद (शौनकीय संहिता) के प्रारम्भिक चार मंत्रों में वाचस्पति की ही स्तुति की गई है, जिनमें वेदरूपा वाणी के स्वामी की ही स्तुति की गई है, जिनमें वेदरूपा वाणी के स्वामी के रूप में वेद वाणी समझने के लिए उनका आवाहन किया गया है- **उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्........राधिषि** (अथर्व० १.१.४)। इसी मन्त्र के भाष्य में आचार्य सायण ने वाचस्पति को वाच् (वाक् या वाणी) का पालनकर्त्ता देवता निरूपित किया है- **वाचस्पति: वाच: पालयिता देव:**। यास्क मुनि ने भी वाचस्पति को वाच् का पालन करने वाला ही निरूपित किया है- **वाचस्पतिर्वाच: पाता वा पालयिता वा** (नि० १०.१७)।

११३. **वात (६.६२) - द्र० वायु ।**

११४. **वात पत्नी (२.१०.४-८) - द्र० वायु ।**

११५. **वाम (९.१४ '९') - द्र० सूर्य ।**

११६. **वायु (६.१०.२)** - वायुदेव अन्तरिक्ष स्थानीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। निरूक्तकार यास्क ने इस तथ्य को प्रतिपादित करते हुए लिखा है- **वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान:** (नि० ७.५)। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वायु को अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं का अध्यक्ष निरूपित किया गया है- **वायुरन्तरिक्षस्याध्यक्ष:** (तैत्ति० ब्रा० ३.२१.३.४) वायु समस्त देवताओं की आत्मा के रूप में भी वर्णित हैं- **सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यद्वायु:** (शत० ब्रा० ९.१.२.३८)। ऋग्वेद में वायु की उत्पत्ति प्रजापति के प्राण से बताई गई है- **प्राणाद्वायुरजायत** (ऋ० १०.९०.१३)। वायु का प्रवाह तिर्यक् गतिवाला होता है- **अयं वायुरस्मिन्नन्तरिक्षे तिर्यङ् पवते** (जैमि० ब्रा० ३.३.१०)। समस्त देवों में वायु की गति सर्वाधिक है- **वायुर्वै देवानामाशु: सारसारितम:** (तैत्ति० सं० ३.८.७.१)। वायुदेव पशुओं के संरक्षक हैं, इसीलिए अथर्ववेद में उनसे प्रार्थना की गई है कि वे गोष्ठ से बाहर गये पशुओं को पुन: गोष्ठ में वापस ले आएँ- **इह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां.......गोष्ठे सविता नियच्छतु** (अथर्व० २.२६.१)। अथर्व० के एक मंत्र में वायु को इष् (अन्न), ऊर्ज, काम (इच्छित), आयु, सन्तति, रयि और पोष- प्रदाता विवेचित किया गया है-.........**सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्। आयु: प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा**। (अथर्व० ४.३९.४)। शरीर में संचरण करने के कारण वायु को वात भी कहते हैं-....... **तथा वात: वायु: देहमध्ये संचरन्** (अथर्व० ६.६२.१ सा० भा०)। दिशाओं में वायु का संचार होते रहने के कारण वायु को दिशाओं का पति माना गया है, इसीलिए दिशाओं को "वातपत्नी" संज्ञा प्रदान की गई है-...... **इमा या देवी: प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि.........स्ताम** (अथर्व० २.१०.४)।

११७. **वास्तोष्पति (३.१२) - द्र० आशापालक वास्तोष्पतिगण ।**

११८. **विद्युत् (१.१३)** - अथर्ववेदीय देवताओं में विद्युत् को भी देवत्व प्रदान किया गया है। विद्युत् के तीन रूप प्रकट हुए हैं, प्रथम- स्तनयित्नु (गरजने वाला), द्वितीय- अश्मा के रूप में (गिरकर भस्म करने वाला) और तृतीय- विद्योतमान (तीव्र प्रकाश

वाला)। ऋषि ने इन तीनों स्वरूपों वाले विद्युत् देव को नमन किया है- **नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि** (अथर्व० १.१३.१)। विद्युत् के अन्दर अग्नि निरन्तर संचरित रहती है-......... **ये विद्युतमनुसंचरन्ति। ....अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्** (अथर्व० ३.२१.७)। वर्षाकाल में विद्युत् सभी दिशाओं में कौंधती हुई अभ्र और आपः (जल) के साथ सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती है। पर्जन्य से प्रार्थना की गई है कि वे विद्युत् से हमारी फसल को नष्ट न करें..... **मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं.....** (अथर्व० ७.१२.१)। विद्युत् शब्द का उल्लेख कुछ स्थलों पर बहुवचन में भी मिलता है, जो सम्भवतः उसके विभिन्न रूपों का निदर्शक है। विद्युत् का मूल स्वभाव मारक है, जो कई मंत्रों में परिलक्षित होता है-......... **विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह** (अथर्व० ११.४.९)। बृहद्देवता में विद्युत् का देवत्व इन शब्दों में निर्दिष्ट है- **अरोदोदन्तरिक्षे यद् विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्** (बृह० २.३४)।

११९. विधाता (५.३.९) - द्र० धाता।

१२०. विराट् (८.१०) - विराट् पुरुष का नाम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में सर्वप्रथम मिलता है। वेदों में वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम विराट् ही उत्पन्न हुआ, तदुपरान्त विराट् से पुरुष या यज्ञ पुरुष उत्पन्न होने के बाद उस विराट् ने सब ओर से पृथ्वी व अन्य लोकों को आवृत कर लिया और उससे भी बड़ा (विराट्) हो गया- **विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः** (अथर्व० १९.६.९)। वह विराट् (पुरुष) हजारों भुजाओं, हजारों पैर, हजारों आँखों वाला है, जो सप्त समुद्र और द्वीप वाली पृथ्वी को अपनी महिमा से परिव्याप्त करके दस अंगुल के परिमाण वाले हृदयाकाश में स्थित हो गया- **सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्** (अथर्व० १९.६.१) विराट् के विषय में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में विस्तार से वर्णन है, जिसके मंत्र पाठ भेद से यजुर्वेद व अथर्ववेद में भी प्राप्त होते हैं। विराट् शब्द का प्रयोग कई बार स्त्रीलिंग में भी हुआ है और पुल्लिंग में भी जैसे- विराट् वाक् है और पृथ्वी भी। वह अन्तरिक्ष भी है और प्रजापति भी- **विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः** (अथर्व० ९.१५.२४)। कई बार विराट् शब्द का प्रयोग इन्द्र, प्रजापति, परमेष्ठी आदि की उत्कृष्टता ज्ञापित करने के लिए उनके विशेषण स्वरूप भी हुआ है, फिर भी विराट् की मूल अवधारणा विराट् पुरुष के रूप में ही समझनी चाहिए।

१२१. विवस्वान् (६.११६) - विवस्वान् का देवत्व ऋग्वेद और अथर्ववेद में दृष्टिगोचर होता है। विवस्वान् यम देवता के पिता हैं, इसी कारण यम को वैवस्वत भी कहते हैं। प्रेत कर्म में विवस्वान् का भी आवाहन करने का विधान है- **विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्बर्हिष्या निषद्य** (अथर्व० १८.१.५९)। यम के कोप से रक्षा हेतु भी उनके पिता विवस्वान् से अभयदान की याचना की गई है- **विवस्वन्नो अभयं कृणोतु --------- पुष्टम्** (अथर्व० १८.३.६१)। बृहद्देवता में (६.१६२-७.७ तक) विवस्वान् के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन मिलता है। त्वष्टा की दो पुत्रियाँ थीं- सरण्यू और त्रिशिरा। सरण्यू विवस्वान् की पत्नी थीं। सरण्यू और विवस्वान् की दो सन्तानें थीं - यम और यमी। सरण्यू के स्वसदृश एक स्त्री का निर्माण करके स्वयं अश्वी बनकर चले जाने पर विवस्वान् ने उस स्त्री को सरण्यू ही समझा और उससे एक सन्तति हुई, जिसका नाम मनु पड़ा। इसीलिए मनु को भी वैवस्वत विशेषण से विभूषित किया जाता है- **अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु तस्यामजनयन्मनुम्** (बृह० ७.२)। सर्वाधिक दीप्तिमान् होने के कारण आदित्य को भी विवस्वान् कहा गया है। अग्नि को विवस्वान् का दूत निरूपित किया गया है।

१२२. विश्वकर्मा (२.३५) - विश्वकर्मा का देवत्व ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में निर्दिष्ट है। इनकी ख्याति सृष्टिकर्त्ता के रूप में है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है- **अथो विश्वकर्मणे। विश्वं वै तेषां कर्म कृतं सर्वं जितं भवति.......** (शत० ब्रा० ४.६.४.५)। निरुक्तकार यास्क मुनि ने विश्वकर्मा को सभी का कर्त्ता विवेचित किया है- **विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता** (नि० १०.२५)। कुछ स्थलों पर प्रजापति और विश्वकर्मा में तादात्म्य दृष्टिगोचर होता है- **प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा** (शत० ब्रा० ८.२.१.१०)। यज्ञमण्डप वेदिका निर्माण, यज्ञ की अन्य व्यवस्थाओं एवं यज्ञ को पूर्ण करने का दायित्व भी विश्वकर्मा पर ही है - **..... या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा** (अथर्व० २.३५.१)। यज्ञादि कार्यों में हुई भूलों के लिए क्षमा प्रदान करने के निमित्त भी विश्वकर्मा से याजकगण प्रार्थना करते हैं- **अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः। ---------- विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये** (अथर्व० २.३५.३)। शौनक प्रणीत बृहद्देवता में विश्वकर्मा का देवत्व इन शब्दों में स्वीकृत है- **अपश्यमिति चाग्नेये य इमा वैश्वकर्मणे** (बृह० ७.११७)।

१२३. विश्वजित् (६.१०७) - "यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता (ऋ० १०.१० सा० भा०)" सूत्र के अनुसार अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों का वर्ण्य विषय विश्वजित् होने से उसे भी देवत्व प्रदान किया गया है। ऋग्वेद में विश्वजित् शब्द इन्द्र और सोम के

विशेषण स्वरूप प्रयुक्त हुआ है; किन्तु अथर्ववेद में तो उसे देवता रूप में ही स्वीकार किया गया है। (अथर्व० १७.१.११) के भी एक मंत्र में विश्व को वश में करने वाले होने के कारण इन्द्र को विश्वजित् कहा गया है- **त्वमिन्द्रासि विश्वजित्।** विश्वजित् एक सोमयाग है- **विश्वजिदभिजतौ द्वौ सोमयागौ** (अथर्व० ११.९.१२ सा० भा०)। विश्वजित् को देवता मानकर प्रार्थना की गई है कि वे स्तुतिकर्त्ता को त्रायमाण (त्राण करने वाले) देवता के संरक्षण में दें। उसी तरह त्रायमाण से प्रार्थना है कि वे उसे विश्वजित् को सौंप दें। इस प्रार्थना का एक ही भाव है कि ये देव दो पैर वाले (मनुष्यों) और चार पैर वाले (पशुओं) और उनकी सम्पूर्ण सम्पदा की रक्षा करें- **विश्वजित् त्रायमाणायै मा परिदेहि। त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम्। त्रायमाणे विश्वजिते.......** (अथर्व० ६.१०७.१-२)। कौषीतकि ब्राह्मण में प्रजापति को विश्वजित् कहा गया है; क्योंकि उनके द्वारा ही समूची सृष्टि की उत्पत्ति हुई है- **प्रजापतिर्विश्वजित्** (कौषी० ब्रा० २५.११.१२.१५)।

१२४. विश्वरूप (४.८.३) - द्र० ब्रह्म।

१२५. विश्वेदेवा (६.११४-११५) - विश्वेदेवा देवता का देवत्व चारों वेदों में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में विश्वेदेवों का उल्लेख गणरूप में मिलता है। आदित्यों, वसुओं, रुद्रों और मरुतों की तरह विश्वेदेवों का भी एक गण है। इनकी संख्या तीन से लेकर तैंतीस कोटि तक वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण में इन्हें अनन्त कहा गया है- **अनन्ता विश्वे देवा** (शत० ब्रा० १४.६.१.११)। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामदेव तथा परवर्ती ब्राह्मण ग्रन्थों में यह माना गया है कि विश्वेदेवा के समुदाय में सभी देवगण समाहित हो जाते हैं अर्थात् देवताओं का समष्टिगत स्वरूप ही विश्वेदेवा है। सम्पूर्ण देवताओं के प्रतिनिधि रूप में यज्ञमण्डप में इनका आवाहन किया जाता है। यज्ञ में इनकी सायुज्यता अनिवार्य है- **विश्वेषामहं देवानां देवयज्यया प्राणानां सायुज्यं गमेयम्** (काठ० सं० ५.१)। इन्हें आमन्त्रित कर लेने पर कोई देवता अनामंत्रित नहीं रहते। कौषीतकि ब्राह्मण में उल्लेख है- **एते वै सर्वे देवा यद्विश्वेदेवाः** (कौषी० ब्रा० ४.१४५.२)। देव मण्डल में इनका यश सर्वाधिक है- **विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः** (शत० ब्रा० १३.१.२८। अथर्ववेद में विश्वेदेवों से कल्याण व रक्षा के निमित्त अनेकशः प्रार्थनाएँ की गई हैं- ..... विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् (अथर्व० ३.३.५)। आयु वृद्धि के निमित्त भी विश्वेदेवा की स्तुति की गई है- **कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम्** (अथर्व० २.१३.४)।

१२६. विष्णु (३.२७.५) - वैदिक देवताओं में विष्णु उच्चस्तरीय प्रतिष्ठालब्ध हैं। "विष्णु" शब्द संस्कृत की **विष्लृ** धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है- सर्वत्र फैलना अथवा व्यापक होना। महाभारत (५.७० ,१३-१४) में विष्णु का सर्वत्र फैलना उल्लिखित भी है। ये द्युलोक स्थानीय देवता के रूप में प्रख्यात हैं। ऋग्वेद में विष्णु के साथ 'उरुगाय' और 'उरुक्रम' विशेषण संलग्न किये गये हैं- **उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः** (ऋ० १.१५४.५)। अथर्ववेद में प्रायः पैंसठ बार विष्णु का नामोल्लेख हुआ है। विष्णु के तीन पाद (पग या डग) वर्णित हैं, जो समस्त प्राणियों के आश्रयदाता हैं- **त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः** (अथर्व० ७.२७.५)। विष्णु के क्रम (डग) को 'विष्णु क्रम' भी कहते हैं। विष्णुक्रम को भी कुछ मंत्रों में देवत्व प्रदान किया गया है- **विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा** (अथर्व० १०.५.३०)। विष्णु इन्द्र के सखा हैं। ये दोनों कभी पराजित नहीं होते। सिनीवाली विष्णु की पत्नी के रूप में वर्णित हैं- --- **विष्णोः पत्नि: तुभ्यं राता** ---- (अथर्व० ७.४८.३)। मूलतः विष्णु का स्वरूप पालनकर्त्ता, आश्रय प्रदानकर्त्ता और संरक्षक का है, इसीलिए वे ऋग्वेद में 'अघ्नन' अर्थात् पीड़ा न पहुँचाने वाले कहे गये हैं- **अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः** -----(ऋ० ८.२५.१२)। यज्ञ वेदिका की परिकल्पना विष्णु की ही है- **यज्ञेवात्र विष्णुमन्वविन्दं स्तस्माद्वेदिर्नाम** (शत० १.२.५.१०)। विष्णु को यज्ञ का प्रतीक भी माना जाता है- **यज्ञो वै विष्णुः** (मैत्रा० सं० ४.१.१२)।

१२७. विष्णुक्रम (१०.५.२५-३५) - द्र० विष्णु।

१२८. वृषा (६.४८.३) - द्र० इन्द्र।

१२९. वेधा (१.११) - अथर्ववेदीय देवताओं में वेधा का देवत्व भी निर्दिष्ट है। वेधा या वेधस् शब्द का प्रयोग कई अर्थों में मिलता है। वेधा को सम्पूर्ण जगत् का निर्माणकर्त्ता और धाता कहा गया है। इन्हें पूषा और अर्यमा के समतुल्य माना गया है- **वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः** (अथर्व० १.११.१)। अथर्ववेद में ही अन्यत्र वेधा का अर्थ ज्ञानवान् से लिया है- **आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा** (अथर्व० १.३२.२) कुछ स्थलों पर 'वेधा' अग्नि का विशेषण भी है; क्योंकि वह भी विधाता है। विद्वान् ऋषि को भी वेधस् कहा गया है- ...... **हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः** (अथर्व० ५.१८.१४)। ऋग्वेद में सामान्यतः वेधा शब्द उसके मूल अर्थ "विधान या निर्माण करने वाला" अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इस दृष्टि से बहुत से देवगण विधाता या वेधा हैं। मरुद्‌गण, अग्नि, सोम, सूर्य, अश्विनीकुमार आदि सभी को वेधा कहा गया है। इस प्रकार वेधा शब्द अपने

मूल अर्थ विधाता या सृष्टिकर्त्ता का बोधक होकर विशिष्ट देवताओं और विद्वज्जनों के सम्मानपूर्ण विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है; इसीलिए कुछ स्थलों पर इसे सीधे भी देवत्व प्रदान किया गया है।

१३०. वैराज (३.२६.३) - द्र० अप्सरा ।

१३१. वैश्वदेवी (५.३.६) - अथर्ववेद में वैश्वदेवी का देवत्व भी वैश्वदेवों की तरह ही प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार वैश्वदेवों में कुछ पुरुषवाचक देवगणों की गणना की जाती है अर्थात् समस्त देवों के लिए वैश्वदेव शब्द प्रयुक्त किया जाता है। उसी प्रकार समस्त स्त्रीवाची देवियाँ वैश्वदेवी में समाहित मानी जाती हैं अथवा समस्त देवियों का आवाहन वैश्वदेवी के रूप में कर लिया जाता है। अथर्व० के एक मन्त्र में वैश्वदेवी से प्रार्थना की गई है कि वे षट् उर्वियों (पृथ्वी, आकाश, जल, ओषधि, दिन और रात) को विस्तृत रूप में करने की कृपा करें- **दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम्** (अथर्व० ५३.६)। यों तो उर्वी शब्द पृथ्वी के लिए प्रयुक्त होता है; किन्तु 'उर्वी' शब्द विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त होने से उपर्युक्त छह तत्त्वों को भी उर्वी की श्रेणी में परिगणित किया गया है। बृहत्सर्वानुक्रमणीकार ने वैश्वदेवी का देवत्व इन शब्दों में प्रमाणित किया है- **परा वैश्वदेवी** (बृह० सर्वा० ५.३.६)। जबकि आचार्य सातवलेकर ने "देवीः" ही लिखा है।

१३२. वैश्वानर (६.११९) - द्र० अग्नि।

१३३. शकधूम (६.१२८) - अथर्ववेद में शकधूम का मानवीकरण दृष्टिगोचर होता है। सामान्यतः शकधूम का अर्थ गोबर या उपले से निकला हुआ धुआँ है। अथर्ववेद में नक्षत्रों द्वारा शकधूम को अपना राजा स्वीकार किया गया है, इसी कारण राजा शकधूम से प्रार्थना की गई है कि वे हमें 'भद्राह' (कल्याणकारी दिवस) प्रदान करें। हमारे लिए प्रातः, माध्यन्दिन, सायं तथा रात्रि कल्याणकारी हो- **शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत** (अथर्व० ६.१२८.१)। ...... **ते नक्षत्र राज शकधूम सदा नमः** (अथर्व० ६.१२८.२)। आचार्य सायण ने शकधूम का अर्थ अग्नि किया है। उनका कहना है शक (गोबर के उपले) से सम्बन्धित धूम्र जिस अग्नि में है, वह शकधूम अग्नि है- **शकस्य शकृतः संबन्धी धूमोयस्मिन्नग्नौ शकधूमः अग्निः** (अथर्व० ६.१२८.१ सा० भा०)। आचार्य सायण ने अग्नि से अभेद के कारण शकधूम को ब्राह्मण भी कहा है- ......तदभेदाद् ब्राह्मणोत्र अभिधीयते (अथर्व० ६.१२८.१ सा० भा०)। प्रो० ब्लूमफील्ड ने चन्द्रमा को शकधूम कहा है; क्योंकि चन्द्रमा पर दिखाई देने वाली कालिमा उपलों के धुएँ जैसी दिखती है और चन्द्रमा से भद्राह की याचना भी युक्ति- युक्त है।

१३४. शक्र (३.३१.२) - द्र० इन्द्र ।

१३५. शुक्र (६.५३.१) - द्र० सूर्य ।

१३६. श्येन (६.४८.१) - अथर्ववेद के कुछ मंत्रों का देवत्व श्येन को प्रदान किया गया है। यों तो यह मूलतः एक पक्षी (बाज़, गरुड़ अथवा सुपर्ण) का नाम है; किन्तु लाक्षणिक स्थिति में इसे सूर्य का नाम भी माना गया है। श्येन अति तीव्रगामी पक्षी होता है, जो आकाश में बहुत ऊँचाई तक उड़ता है, इसीलिए इस गुण साम्य के आधार पर सूर्य को भी श्येन कहा गया है- **श्येनः शंसनीय गतिः सूर्यः** (अथर्व० ७.४२.१ सा० भा०)। श्येन को सबका द्रष्टा, द्युस्थित, सुपर्ण, सहस्रचरणों से युक्त और शक्ति या अन्न का धारणकर्त्ता विवेचित किया गया है। यह सभी गुण सूर्य के हैं, इसलिए भी सूर्य को श्येन कहा गया है- **श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः** (अथर्व० ७.४२.२)। प्रातः सवनात्मक गायत्रच्छन्द यज्ञ को भी श्येन विवेचित किया गया है; क्योंकि वह प्रशंसनीय गति से चलने वाले बाज़ (श्येन) पक्षी की तरह शीघ्रगामी है। प्रातः सवनात्मक सोमयाग में गायत्री छन्द का ही अधिक प्रयोग होता है, सम्भवतः इसीलिए श्येन को गायत्रच्छन्दा यज्ञ कहा गया है। श्येनाकार वेदिका (श्येनचित वेदिका) में प्रतिष्ठित होने से अग्नि भी श्येन निर्दिष्ट है- **श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे। .... स्वाहा** (अथर्व० ६.४८.१)। ऋग्वेद में श्येन प्रायः सोम के सम्बन्ध में उल्लिखित है, इन्द्र के लिए सोमरस श्येन ही लेकर आया था- **इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ अयं ते श्येन उशते जभार** (ऋ० ३.४३.७)। श्येन के समान सोम पर टूट पड़ने के कारण इन्द्र को भी श्येन वर्णित किया गया है- **उप यत्सीदर्दिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून्** (ऋ० १०.९९.८)।

१३७. संवत्सर (३.१०.८) - संवत्सर का देवत्व ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में दृष्टिगत होता है। संवत्सर काल चक्र का एक विभाजन है, जिसे "**यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)। सूत्र के अनुसार देवत्व प्रदान किया गया है। एक संवत्सर प्रायः तीन सौ साठ दिनों अथवा बारह महीनों अथवा तीन ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त) वाला माना गया है- **त्र्यृतुः संवत्सरो ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति** (नि० ४.२७)। यह समय एक वर्ष का होता है। ऋग्वेद में इस काल-संवत्सर का रूपक एक चक्र

के साथ निरूपित किया गया है, जिसमें बारह अरे, तीन नाभियाँ और तीव्र गतिवाली तीन सौ साठ खूँटियाँ लगी हैं- **द्वादश प्रध्यश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत । तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवो ऽ र्पिता: षष्टिर्न चलाचलास:** (ऋ० १.१६४.४८)। अथर्ववेद में भी संवत्सर की विवेचना इसी से मिलती जुलती है । अथर्ववेद में उसे चौबीस पक्षों, चैत्रादि बारह महीनों वाला वर्णित किया गया है- **...... समा: संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे** (अथर्व० ३.१०.९)। यह समय भी एक वर्ष का ही है । संवत्सर को एकाष्टका (माघ कृष्ण अष्टमी की पूर्व रात्रि) का पति निरूपित किया गया है । सम्भवत: वैदिक काल में एकाष्टका से ही नये वर्ष (संवत्सर) का शुभारम्भ होता होगा, इसीलिए एक मंत्र में याजक एकाष्टका से विनय करता है कि हे एकाष्टके ! आपका पति संवत्सर आ गया है, अत: आप अपने पति सहित हमारी पुत्र-पौत्रादि प्रजा को आयुष्य व धन सम्पत्ति प्रदान करें- **आयमगन्त्संवत्सर: पतिरेकाष्टके तव । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज** (अथर्व० ३.१०.८)।

१३८. संस्फान (६.७९) - द्र० आदित्यगण ।

१३९. सकामा अविष्यव (३.२६.२) - द्र० अप्सरा ।

१४०. सत्यौजा अग्नि (४.३६) - द्र० अग्नि ।

१४१. सप्तर्षिगण (६.४०.१) - अथर्ववेद में सप्तर्षियों को भी देवत्व प्राप्त हुआ है । अन्यत्र तो इनके ऋषित्व का ही वर्णन मिलता है; किन्तु अथर्ववेद में इनके देवत्व के भी दर्शन होते हैं, जो '**......या तेनोच्यते सा देवता**' सूत्र के अनुसार तर्क संगत भी है । सप्तर्षियों में प्राय: भरद्वाज बार्हस्पत्य, कश्यप मारीच, गोतम राहूगण, अत्रि भौम, विश्वामित्र गाथिन, जमदग्नि भार्गव, तथा वसिष्ठ मैत्रावरुणि का नामोल्लेख मिलता है । कुछ स्थानों पर इनके नाम के साथ अपत्यार्थक पद का उल्लेख नहीं मिलता । इन ऋषियों द्वारा मंत्र चारों वेदों में सम्प्राप्य हैं । कुछ स्थानों पर इनका स्वतन्त्र ऋषित्व है और कुछ स्थानों पर समुदित । अथर्व० के एक मंत्र में इनका समुदित देवत्व भी वर्णित है वहाँ इन्हें समस्त ऋषिगण कहा गया है- **षट् त्वा पृच्छाम ऋषय:** .... (अथर्व० ८.९.७)। अथर्व० ६.४०.१ में सप्त ऋषियों की स्तुति है, अत: वहाँ भी इन्हें देवत्व प्रदान किया गया है- **सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ।** आश्वलायन परिशिष्ट १ का उद्धरण देते हुए आचार्य सायण ने अपने अथर्ववेद भाष्य में सप्तर्षियों के ये नाम गिनाये हैं- **सप्तर्षीणाम् विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतम: । अत्रिर्वसिष्ठ: कश्यप:** (आश्व० प० १) **इत्येवं प्रसिद्धा ये सप्त ऋषय: सन्ति** (अथर्व० ६.४०.१ सा० भा०)। मैत्रायणी संहिता में सप्तप्राणों को भी सप्तर्षियों की संज्ञा प्रदान की गई है- **प्राणा वै विश्वेदेवा: सप्त ऋषय:** (मैत्रा० सं० १.५.११)। अथर्ववेद में बाइस बार सप्तर्षियों का नामोल्लेख हुआ है, इससे स्पष्ट है कि इस काल तक अन्य ऋषियों की अपेक्षा सप्तर्षियों को अधिक महत्त्व मिल चुका था ।शौनक प्रणीत बृहद्देवता में भी सप्तर्षियों का देवत्व प्रतिपादित किया गया है- **देवा: सप्तर्षयश्च ये** (बृह० २.११)।

१४२. सप्तसिन्धु (४.६.२) - वैदिक ग्रन्थों में सप्त सिन्धुओं की स्तुति सहायता या रक्षा के निमित्त की गई है । अस्तु, इन्हें भी देवता की श्रेणी में परिगणित किया गया है- **...... अपांनपात् सिन्धव: सप्त पातन ...... रुत द्यौ:** (अथर्व० ६.३.१)। कोश ग्रन्थों में सप्त नदियों को सप्त सिन्धु कहा गया है । मैक्समूलर ने पंजाब की सिन्धु और सरस्वती के अतिरिक्त अन्य पाँच नदियों को सप्त सिन्धु कहा है । पौराणिक कोश पृष्ठ ५११ के अनुसार सात नदियों के तीन वर्ग प्राप्त होते हैं- (अ) वेदों में वर्णित- गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज), परुष्णि, मरुद्वृद्धा और आर्जीकीया (व्यास या विपाशा)। (ब) महाभारत में वर्णित- गंगा, यमुना, प्लक्षगा, रथस्था, सरयू, गोमती और गंडक अथवा वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी, गंगा, सीता, सिन्धु और जम्बू । (स) रामायण में वर्णित- नलिनी, ह्लादिनी, पावनी, चक्षु, सीता, सिन्धु और भागीरथी । ऋग्वेद में गंगादि सात नदियों को सप्त सिन्धु इन शब्दों में विवेचित किया गया है- **...... सर्तवे सप्त सिन्धून्** (ऋ० १.३२.१२)। अथर्ववेद के एक मंत्र में संसार में फैले सात समुद्रों को सप्त सिन्धु की संज्ञा प्रदान की गई है- **सप्त संख्याका: सिन्धव: समुद्रा** (अथर्व० ४.६.२ सा० भा०)। इन समुद्रों अथवा नदियों के समूह को सिन्धु समूह कहकर भी देवत्व प्रदान किया गया है । आचार्य सायण ने सिन्धु को स्पन्दनशील उदक की आत्मा कहा है- **सिन्धु: स्यन्दनशीलोदकात्मा देवता** (ऋ० १.९४.१६ सा० भा०)।

१४३. समस्त ऋषिगण (८.९) - द्र० सप्तर्षिगण ।

१४४. सरस्वती (६.९४) - द्र० तिस्रो देव्य: ।

१४५. सरस्वान् (७.४१) - सरस्वान् का देवत्व ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में विवेचित है । सरस्वान् शब्द का मूल अर्थ 'जल से भरा हुआ' है । ऋग्वेद में इनकी स्तुति सूर्य के पर्यायरूप में की गई है । सूर्य प्राणस्वरूप हैं, इसलिए इन्हें भी प्राण स्वरूप

माना गया है। बृहद्देवताकार ने लिखा है- **सस्वन्तमिति प्राणो वाचं ....**(बृह० ४.३९)। सूर्य के पर्याय स्वरूप सरस्वान् को ऋग्वेद में सुपर्ण, बृहत्, जल का केन्द्र, जल वृष्टि द्वारा चतुर्दिक् भूमि को तृप्त करने वाला और ओषधियों को पुष्ट करने वाला वर्णित किया गया है- **दिव्यं सुपर्णं वायसं .... वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि** (ऋ० १.१६४.५२)। शतपथ ब्राह्मण में सरस्वान् को मन भी कहा गया है- **मनो वै सरस्वान्** (शत० ब्रा० ७.५.१.३१)। एक अन्य मंत्र में सरस्वान् को पुष्टिपति कहा गया है- **सरस्वन्तं पुष्टिपतिं रयिष्ठाम्** (अथर्व० ७.४०.२)।

१४६. सवाता प्रविध्यन्त (३.२६.४) - द्र० अप्सरा।

१४७. सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् (४.३०) - द्र० वाक्।

१४८. सविता (६.१) - द्र० सूर्य।

१४९. सर्वात्मा रुद्र (५.६.११-१४) - द्र० रुद्र।

१५०. साग्नि हेति (३.२६.१) - द्र० अप्सरा।

१५१. सान्तपनाग्नि (६.७६) - द्र० अग्नि।

१५२. सावित्री (७.८६) - द्र० सूर्य।

१५३. सिनीवाली (६.११.३) - सिनीवाली ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में देवता स्वरूप प्रतिष्ठित हैं। राका और सिनीवाली चन्द्रमा की कलाओं से सम्बन्धित मानी गई हैं। पूर्ण चन्द्र दिवस को राका और प्रथम अभिनव चन्द्र दिवस को सिनीवाली कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में सिनीवाली अमावास्या के नव चन्द्र दिन एवं उसकी अधिष्ठात्री देवी के रूप में वर्णित हैं, जो उर्वरता की प्रतीक है- **या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली** (ऐत० ब्रा० ७.११)। सिनीवाली को देवताओं की बहिन कहा गया है- ...... **सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा** (ऋ० २.३२.६)। ऋ० में सरस्वती राका तथा गुँगू के साथ इनका भी आवाहन किया गया है- **या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती** (ऋ० २.३२.८)। आचार्य सायण ने इन्हें प्रकाश की देवी निरूपित किया है- **दृष्टचन्द्रा अमावास्या सिनीवाली** (ऋ० २.३२.६ सा० भा०)। अथर्ववेद में सिनीवाली का प्रजापति और अनुमति के साथ उल्लेख है, जो गर्भाशय स्थित रेतस् के अंग-अवयवों का निर्माण करके, उसमें लिंग का निर्धारण भी करते हैं- **प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चीक्लृपत्** (अथर्व० ६.११.३)।

१५४. सिन्धु समूह (१.१५) - द्र० सप्तसिन्धु।

१५५. सीता (३.१७) - सीता का देवत्व ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में निर्दिष्ट है। सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। कोश ग्रन्थों में सामान्यतया सीता शब्द का अर्थ हल के फाल से धरती में बनने वाली रेखा (या कूँड़) है। ऋग्वेद में सीता से उत्तम फल, ऐश्वर्य एवं कृपावर्षण की प्रार्थना की गई है- **अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा** (ऋ० ४.५७.६)। अन्न की उत्पादिका होने के कारण अथर्व० में सीता की सुभगा कहकर प्रार्थना की गई है- **सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।....... सुफला भुवः** (अथर्व० ३.१७.८)। सीता घृत और मधु से सिंचित हैं, जो स्तोता को पयस्- सम्पन्न करती हैं- **घृतेन सीता मधुना समक्ता .... पिन्वमाना** (अथर्व० ३.१७.९)। बृहद्देवता में सीता का देवत्व इन शब्दों में विवेचित है- **द्वे तु सीतायै षष्ठी सप्तमी च** (बृह० ५.९)।

१५६. सुपर्ण (६.८.२) - द्र० श्येन।

१५७. सूर्य (३.३१.७) - वैदिक देवों में सूर्य को प्रमुख देव के रूप में मान्यता प्राप्त है। इनका देवत्व चारों वेदों में सम्प्राप्य है। द्वादश आदित्यों में सूर्य भी एक हैं। विराट् पुरुष के नेत्रों से सूर्य की उत्पत्ति हुई है- ...... **चक्षोः सूर्यो अजायत** (यजु० ३१.१२), इसी कारण सूर्य को सभी जीवों के कर्मों को देखने वाला विवेचित किया गया है- **सूरायविश्वचक्षसे** (ऋ० १.५०.२)। सूर्य के बिना किसी का जीवित रहना कठिन है, अतः सूर्य को सभी की आत्मा उपन्यस्त किया गया है- **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** (ऋ० १.११५.१)। अथर्ववेद में सूर्य की स्तुति कई अन्य नामों से भी की गई है। जैसे- ब्रध्न, वाम, शुक्र, सविता आदि। सभी को अपने कर्म और उसके फल में टिकाए (बन्धित) रखने के कारण सूर्य को ब्रध्न कहा गया है- **ब्रध्नः सर्वेषां स्वस्व कर्मसु तत्फलेषु च बन्धकः संयोजकः सूर्यः** (अथर्व० ७.२३.२ सा० भा०)। जगत् के पालक होने के कारण सूर्य को वाम भी कहा गया है- **अस्य वामस्य पलितस्य** ......(अथर्व० ९.१४.१)। देदीप्यमान होने के कारण सूर्य को शुक्र भी कहते हैं- **शुक्रः शोचमानो दीप्यमानः सूर्यः** (अथर्व० ६.५३.१ सा० भा०)। सबका प्रेरक होने से सूर्य को सविता कहा गया है- ......**सवितारम् अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकं सूर्यं स्तुहि**

(अथर्व० ६.१.१ सा० भा०)। अपने ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने उदित होने से पूर्व, सूर्य को सविता कहा है- **उदयात् पूर्व भावी सविता** (ऋ० ५.८१.४ सा० भा०)। सविता सभी देवताओं के जनक हैं- **सविता वै देवानां प्रसविता** (शत० ब्रा० १.१.२.१७)। सूर्य की पुत्री सूर्या हैं, यह तथ्य इन शब्दों में उल्लिखित है- **आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती** (ऋ० १.११६.१७)। सूर्या को सविता की पुत्री भी कहते हैं, इसीलिए इनका एक नाम सवित्री भी है। ऐतरेय ब्राह्मण में सावित्री प्रजापति की पुत्री वर्णित हैं- **प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीम्** (ऐत० ब्रा० ४.७)। सावित्री-सोम अथवा अश्विनों की पत्नी भी हैं। इस प्रकार सूर्यदेव वस्तुतः अग्नि तत्त्व के ही आकाशीय रूप हैं। वे विश्व विधान के संरक्षण कर्त्ता हैं, इसीलिए उनका चक्र नियमित और सार्वभौमिक नियमों का अनुगामी है। सूर्य अग्नि एवं मित्रावरुण से विशिष्टतः सम्बद्ध हैं।

१५८. सोम (६.२) - सोम को पृथ्वी स्थानीय देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। सोम का देवत्व चारों वेदों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में सैकड़ों बार इनका नामोल्लेख हुआ है। सामान्यतः इनका उद्गम पार्थिव सोमलता से माना जाता है और इससे (सोमलता से) निकले मादक स्राव को सोम कहा गया है। द्रव रूप में सोम की यज्ञ में आहुति भी दिये जाने का वर्णन मिलता है- **तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमा हुतो जरसे मृळयत्तमः** (ऋ० १.९४.१४)। सोम को अमृत और राजा की संज्ञा प्रदान की गई है- **सोमो राजाऽमृतꣳ सुत** (यजु० १९.७२)। ओषधियों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण सोम को वनस्पतियों का अधिपति कहा गया है- **सोमं नमस्य राजानं यो यज्ञे वीरुधां पतिः** (अथर्व० ३.२७.४)। अथर्ववेद के एक अन्य मंत्र में वर्णन है कि लोग जिस सोम नामक ओषधि को पीसकर पान करते हैं, वे वास्तविक सोम का पान नहीं करते, पर ब्राह्मण (विद्वान्) लोग जिस सोम को जानते हैं, उसको कोई मर्त्य ग्रहण नहीं कर सकता। उसका पान देवगण करते हैं और वह (सोम) पुनः प्रबुद्ध हो जाता है। पवित्रकारक होने के कारण सोम को 'पवमान सोम' भी कहा गया है। ये द्युलोक और अन्तरिक्ष से पृथ्वी की ओर प्रवाहित होता है- **पवमाना दिवस्पर्यन्त रिक्षा दसृक्षता पृथिव्या अधि सानवि** (ऋ० ९.६३.२७)। यों तो अन्य देवों के साथ भी सोम सम्बन्ध हैं, किन्तु सोम का सम्बन्ध प्रमुखतः इन्द्र के साथ दिखाई देता है- **इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत** (अथर्व० ६.२.१)।

१५९. सोमारुद्र (५.६) - अथर्ववेद में सोम और रुद्र के युग्म का देवत्व भी प्राप्त होता है। यहाँ वे ओषधियों के श्रेष्ठ विज्ञ एवं अधिपति स्वरूप निर्दिष्ट हैं। वे शरीरान्तर्गत विषूची और अमीवा रोगों को दूर कर निर्ऋति को दूर भगाते हैं- **सोमा रुद्रा विवृहतं विषूचीममीवा या नो गयमा विवेश** (अथर्व० ७.४३.१)। शरीर के मल विकारों को दूर कर वे उपासक को पापमुक्त भी करते हैं- **सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वातनूषु भेष जानि धत्तम्** (अथर्व० ७.४३.२)। अथर्व० के एक अन्य मंत्र में इन्हें तीक्ष्ण आयुधों वाला और सुख प्रदाता विवेचित किया गया है- **तिग्मायुधौ तिग्म हेती सुशेवौ सोमा रुद्राविह सु मृडतं नः** (अथर्व० ५.६.५)।

१६०. सौधन्वन् (६.४७.३) - अथर्ववेदीय देवताओं में सुधन्वा आङ्गिरस के पुत्र देवश्रेणी में परिगणित हुए हैं। वस्तुतः सुधन्वा अङ्गिरस् गोत्रीय ऋषि थे, जिनके तीन पुत्र क्रमशः ऋभुक्षन् वाज और विभ्वन् थे। इन्हें ऋभुगण कहते हैं। इनका अपत्यवाची सम्बोधन सौधन्वन् है। इन तीनों पुत्रों ने अपनी कर्म-कुशलता के कारण देवत्व को प्राप्त किया। पौराणिक कोश के अनुसार इन्होंने इन्द्र के घोड़ों और रथ का निर्माण किया था और अपने वृद्ध पिता को युवा बना दिया था। निरुक्त ११.१६ का उद्धरण देकर आचार्य सायण ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है- **सौधन्वनाः सुधन्वन आङ्गिरसस्य पुत्राः। .. सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः। ऋभुर्विभ्वा वाज इति।....ते च मनुष्या एव सन्तो रथ निर्माणादि शिल्प करणेन देवांस्तोषयित्वा तत्प्रसादेन देवत्वं प्राप्ताः** (अथर्व० ६.४७.३ सा० भा०)। इन तीनों पुत्रों को त्वष्टा ने शिक्षण प्रदान किया था, जिसके कारण इन्होंने सोम के लिए चार चमसों का निर्माण किया था- **सुधन्वन ....ऋभुर्विभ्वा च वाजश्च शिष्यास्त्वष्टुश्च तेऽभवन्** (बृह० ३-८३)।

१६१. सौषधिका निलिम्पा (३.२६.५) - द्र० अप्सरा।

१६२. स्कम्भ (१०.७) - अथर्ववेद में विराट् ब्रह्माण्ड के आधारस्वरूप स्कम्भ का देवत्व प्रतिष्ठित है। स्कम्भ आदि सनातन देव का नाम है। स्कम्भ को ब्रह्मा से भी प्राचीन माना गया है, अतः इन्हें ज्येष्ठ ब्रह्म की संज्ञा प्रदान की गई है- **स्कम्भ इति सनातनतमो देवो ब्रह्मणोप्याद्य भूतः। अतो ज्येष्ठं ब्रह्मेति तस्य संज्ञा** (अथर्व० १०.७ सा० भा०)। विराट् एवं सम्पूर्ण देवता स्कम्भ में ही समाहित हैं। स्कम्भ उस दैवी शक्ति के रूप में विवेचित हैं, जिसके ऋत, तप, श्रद्धा, सत्य, अग्नि, वायु, चन्द्र, भूमि, अन्तरिक्ष आदि अंग-अवयव हैं- **कस्मिन्नङ्गे तपो .... तिष्ठत्युत्तरं दिवः** (अथर्व० १०.७.१-३)। लोग जिस हिरण्यगर्भ को सर्वातिशायी और अनिर्वचनीय बताते हैं, वह हिरण्यगर्भ संसार को सर्वप्रथम स्कम्भ द्वारा ही प्रदान किया गया था- **हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जनाविदुः। स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा** (अथर्व० १०.७.२८)। स्कम्भ की माप भूमि को बताया गया है, साथ ही उनके उदर को अन्तरिक्ष, मूर्धा को द्यौ, सूर्य और चन्द्र को दो नेत्र, अग्नि को मुख, प्राण और अपान को वायु, अङ्गिरा गोत्रियों को दृष्टि और दिशाओं को

ज्ञानेन्द्रियाँ कहा है- **यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।........दिशो यश्चक्रे .... नमः** (अथर्व० १०.७.३२-३४)। स्कम्भ के इस विवेचन की संगति पुरुषसूक्त के उस विवेचन से बैठती प्रतीत होती है, जो विराट् पुरुष के लिए वर्णित है। जैसे- **चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत** (यजु० ३१.१२)। अथर्व० के एक मंत्र में लोक, तप और ऋत, इन्द्र में समाहित बताते हुए इन्द्र को स्कम्भ कहा गया है- **इन्द्रे लोका .... इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्** (अथर्व० १०.७.३०)।

१६३. स्तनयित्नु (४.१५.११) - स्तनयित्नु को अथर्ववेद में गौण स्थान प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद एवं परवर्ती साहित्य में स्तनयित्नु को गर्जन के अर्थ में लिया है। ताण्ड्य ब्राह्मण में उल्लेख है- **तत् स्तनयित्नोर्घोषो ऽन्वसृज्यत** (ता० ब्रा० ७८.१०)। शतपथ ब्राह्मण में इसे अशनि (वज्र या बिजली) के अर्थ में लिया गया है- **कतस्तनयित्नुरिति। अशनिरिति** (शत० ब्रा० ११.६.३.९)। आकाशीय विद्युत् गर्जनशील और कड़कने वाली होती है, जो वज्र की तरह गिरती है, सम्भवतः इसीलिए शतपथ ब्राह्मणकार ने इसे अशनि कहा है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में ऋषि ने स्तनयित्नु को गरजता हुआ मेघ कहा है- **प्रजापतिः सलिलादा ... स्तनयित्नुनेहि** (अथर्व० ४.१५.११)।

१६४. स्मर (६.१३०-१३२) - द्र० काम।

अन्य देव समुदाय

वैदिक ऋषि और देवताओं के निर्धारण के सम्बन्ध में मूल अवधारणा यह है कि मन्त्र द्रष्टा ऋषि तथा मन्त्रोक्त (अथवा मन्त्र का वर्ण्य विषय) देवता है- **यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)। वेदविद् आचार्य सायण ने इस सूत्र को आधार मानकर ही अथर्ववेद के ऋषियों और देवताओं का निर्धारण किया गया है। कुछ प्रचलित और प्रख्यात देवगण जैसे- अग्नि, इन्द्र, वरुण, अश्विनीकुमार, सोम, पृथिवी आदि के अतिरिक्त अचेतन और अमूर्त (भावात्मक), मानव, पशु-पक्षी व अन्य प्राणी, उपकरण, हव्य, वस्तु, द्रव्य तथा अंग-अवयव आदि का भी देवश्रेणी में परिगणन किया गया है। गुण-धर्म के आधार पर इन सभी को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया गया है-

(क) मानव वर्ग- अतिथि, क्षत्रिय राजा, दम्पती, द्रुह्वण (द्रोह करने वाला व्यक्ति), ब्रह्मजाया (ब्राह्मण की पत्नी), ब्रह्मद्विट् (वेदोक्त कर्म से द्वेष करने वाला), ब्राह्मण, ब्राह्मणम्, ब्राह्मणाः, मनुवंशी (मनुष्य), राजा आदि।

(ख) पशु या प्राणी वर्ग- अघ्न्या (न मारने योग्य) गौ, अनड्वान् (बैल), अश्व समूह, असित (काला सर्प), ऋषभ (बैल), एक वृष (बैल) कल्माषग्रीव (कालीगर्दन वाला सर्प), गो-समूह, गृध्रद्वय, तक्षक (सर्प), तिरश्चिराजी (तिरछी रेखाओं वाला सर्प), पञ्चौदन अज (यज्ञ का अज विशेष), पतत्रिण (पक्षी), पशु समूह, पृदाकु (सर्प विशेष), मण्डूक समूह, मधु (मधुकशा नामक गौ), वय (पक्षी), वशा (वशानामक गौ), वाजी (अश्व), वृश्चिकादि, वृषभ, व्याघ्र, शतौदना (गो विशेष), शितिपात् अवि (श्वेत पैर वाली भेड़), स्वज (सर्प विशेष), हरिण (कृष्ण मृग) आदि।

(ग) उपकरण वर्ग- कृशन (शत्रु को क्षीण करने वाला शंख), ग्रावा (पत्थर), दुन्दुभि (वाद्ययन्त्र), मनुष्यों के बाण, मेखला (कमर में बाँधने वाली), वज्र (आयुध), हेति (संहारक अस्त्र) आदि।

(घ) स्थान वर्ग- गृह समूह (घर), गोष्ठ (पशु बाँधने का स्थान), दूर्वाशाला (दूर्वागृह), वेदी (यज्ञवेदी), शाला (गृह) आदि।

(ङ) अंग-अवयव वर्ग- अक्षि (आँख) दन्त समूह, योनि (नारी का प्रजनन अंग), रामायणी (रामायणी नामक नाड़ी), शेप (पुरुष की उपस्थेन्द्रिय), हस्त (हाथ), हिरा (धमनी या शिरा) आदि।

(च) हव्य वर्ग- अन्न, आज्य (घृत), ब्रह्मौदन (ऋत्विज् हेतु पकाया गया भात) आदि।

(छ) वस्तु या द्रव्य वर्ग- अभीवर्त मणि (सफलता प्रदायक मणि), अर्क (अर्कमणि), जङ्गिड़ (काष्ठमणि), त्रिवृत् (तीन लड़ों से बनी मणि विशेष), त्रैककुदाञ्जन (त्रिककुद् पर्वत से उत्पन्न आञ्जन मणि), पर्णमणि (पलाश वृक्ष से बनी मणि), फालमणि (खदिर काष्ठ के फाल की बनी मणि), योषित लोहित वासस (स्त्री के लोहित वर्ण वस्त्र), रयि (धन), वरण मणि (वरण नामक वृक्ष की बनी मणि), वास (वस्त्र), विष, शंखमणि, हिरण्य (स्वर्ण) आदि।

(ज) वनस्पति या ओषधि वर्ग- अज शृंगी, अपामार्ग वनस्पति, अपामार्ग वीरुत् (पाप मार्जक काष्ठ) अश्वत्थ (पीपल की बनी मणि), असिक्नी वनस्पति (काली वनस्पति), आसुरी वनस्पति (कुष्ठादि नाशक वनस्पति), ईर्ष्यापनयन (ईर्ष्या विनाशक ओषधि), ओषधि ,ओषधिसमूह, कुष्ठ (कुष्ठ नामक ओषधि), तृष्टिका (दाहोत्पादक ओषधि), नितत्नी वनस्पति (नीचे को फैलने वाली वनस्पति), पिप्पली, भेषज, मधुलौषधि (मधुर ओषधि), मधुवनस्पति (मधूकलता), मातृनामौषधि, लाक्षा, वनस्पति (आसुरी दुहिता), वनस्पति पृश्निपर्णी, वीरुध (ओषधि का पौधा), शमी (वृक्ष) आदि ।

(झ) अमूर्त्त (भावात्मक) देव वर्ग- अति मृत्यु (मृत्यु को पार करना), अन्तरिक्ष (द्यु और पृथिवी के बीच का लोक), अपचिद् भैषज्य (गण्डमाला की चिकित्सा) , अपान (शरीरगत मल का निष्कासन करने वाली वायु), अरिनाशन (शत्रुनाशक सूक्त), अहः (दिन) , आदित्यरश्मि, आयु, आयुष्य, आशीर्वचन, ईर्ष्यापनयन (ईर्ष्या विनाशक सूक्त), उदीची दिशा (उत्तर दिशा), ऋक्-साम, ऋतुएँ, कर्म, कामात्मा, कासा (खाँसी रोग), कृत्या दूषण, कृत्या परिहरण (घातक प्रयोग को लौटाना), गर्भ दृंहण (गर्भ की दृढ़ता), घर्म (धूप), छन्द समूह, जायान्य (स्त्री संयोग से उत्पन्न क्षय रोग), तक्मनाशन (तक्मा नामक ज्वर विनाशक सूक्त), तता पितरगण (सपिण्डमृतक पितर), ततामहा पितरगण (ततामह अर्थात् बाबा महान् पितर), तारागण, दक्षिण दिशा, दधत्यसीस (नदी का फेन), दिशाएँ, दीर्घायु, दुःस्वप्ननाशन (दुःस्वप्न विनाशक सूक्त), ध्रुव (स्थिर होना), निविद् आज्ञारूप वाणी, परसेना हनन (पर सेना का हनन करने वाला सूक्त), प्रतीची दिशा (पश्चिम दिशा), प्राची दिशा (पूर्व दिशा), बलास (बल का क्षय करने वाला रोग), ब्रह्म कर्मात्मा (वेदोक्त कर्म), ब्रह्म प्रकाशन (ब्रह्म का प्रकाशक सूक्त), भैषज्य (ओषधि सम्बन्धी सूक्त), मन, मन्याविनाशन (गण्डमाला का विनाशक सूक्त), मन्युशमन (क्रोधशामक सूक्त), मही (भारी-विशेषण), यक्ष्म (राजयक्ष्मादि क्षेत्रिय रोग), यक्ष्मनाशन (यक्ष्मा का विनाशक सूक्त), यक्ष्म विबर्हण (यक्ष्मा को पृथक् करने वाला सूक्त), यमिनी (जुड़वाँ बच्चों की जन्मदात्री-गाय, पृथिवी, प्रकृति आदि), यातुधानी (राक्षसी), योनिगर्भ (गर्भ विषयक सूक्त), राज्याभिषेक (राज्याभिषेक सम्बन्धी सूक्त), रेतस् (वीर्य), रोहिणी (लोहित वर्ण वाली गण्डमाला), वर्चस् (शक्ति) , विद्या (ज्ञान), विनायक (दुर्लक्षण नाशक शक्ति), विश्वाभुवनानि (समस्त प्राणियों के अन्तःकरण), विश्वा भूतानि (समस्त प्राणी), वेद (दर्भ की मुटठी), शालाग्नि, श्वित्र (श्वेतरोग), सन्नति (निकट जाकर नमन करने की स्थिति), सभा, सर्वशीर्षामयाद्यपाकरण (शिरः रोग दूरीकरण), सुख, सेनामोहन (सेना को मोहित कर देने वाला सूक्त), स्वापन (स्वप्न), हरिमा (कामिला रोग से उत्पन्न शरीर का पीला रंग), हृद्रोग आदि । अथर्ववेद में इन सब की भी स्तुति और वर्णन है । अस्तु, उपर्युक्त सभी वर्गों को देव श्रेणी में प्रतिष्ठित किया गया है ।

परिशिष्ट-३

अथर्ववेद भाग-१ में प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त विवरण

छन्द- नाम		वर्ण संख्या	उदाहरण
१.	**अति जगती**	५२	६.२०.१
	अतिशक्वरीगर्भा चतुष्पदा अतिजगती	५२	३.२८.१
	अनुष्टुब्गर्भा षट्पदा परातिजगती	५२	५.२७.९
	चतुष्पदा अतिजगती	५२	८.९.१४
	त्रिष्टुप्ककुम्मतीगर्भा षट्पदा त्र्यवसाना अतिजगती	५२	३.१९.६
	द्व्यनुष्टुब्गर्भापञ्चपदा अतिजगती	५२	१०.१.३२
	परानुष्टुप् पञ्चपदा अतिजगती	५२	८.७.४
	परानुष्टुप् पञ्चपदा विराट् अतिजगती	५०	३.२२.३
	पुरस्कृति त्रिष्टुब्बृहतीगर्भा चतुष्पदा त्र्यवसाना अतिजगती	५२	५.९.८
	पुरस्कृति भुरिक् चतुष्पदा अतिजगती	५३	९.१५.२४
	पुरोधृति अनुष्टुब्गर्भा पराष्टि चतुष्पदा त्र्यवसाना अतिजगती	५०	५.१०.८
	विपरीत पादलक्ष्मा चतुष्पदा अतिजगती-	५२	८.८.७
	विराड्गर्भाषट्पदा त्र्यवसाना अतिजगती	५०	३.१०.७
२.	**अतिधृति**		
	त्रैष्टुभगर्भा दशपदा चतुरवसाना अतिधृति	७२	१०.५.१५-१६
३.	**अति शक्वरी**	६०	१०.५.२५;२६;३२
	चतुष्पदा अतिशक्वरी	६०	५.२४.१-१०
	पञ्चपदा अतिशक्वरी	५५	४.१४.८
	पञ्चपदा त्र्यवसाना अतिशक्वरी	५७	९.३.१५
	विराट् पञ्चपदा अतिशक्वरी	५८	८.७.१२
४.	**अत्यष्टि**		
	ककुम्मतीगर्भा पञ्चपदा अत्यष्टि	६६	३.२७.२
	बृहतीगर्भा विराट् षट्पदा त्र्यवसाना अत्यष्टि	६६	३.१५.४
	भूरिक् अत्यष्टि	६९	४.३८.५
	षट्पदा त्र्यवसाना अत्यष्टि	६५	५.१.९
	सप्तपदा अत्यष्टि	६८	२.१०.६
५.	**अनुष्टुप्**	३२	१.१.१-३
	आर्ची अनुष्टुप्	२४	८.१३.४८
	आर्ची एकावसाना अनुष्टुप्	२४	१०.७.४४
	आर्ची द्विपदा अनुष्टुप्	२४	९.२.१३
	आर्ची द्विपदा एकावसाना अनुष्टुप्	२४	५.६.८
	आर्ची निचृद् द्विपदा एकावसाना अनुष्टुप्	२३	६.८३.४

आर्ची भुरिक् द्विपदा अनुष्टुप्	२५	८.७.९
आर्षी अनुष्टुप्	३२	३.१२.७
आसुरी अनुष्टुप्	१३	५.१६.२-३,६
उष्णिग्गर्भा निचृत् अनुष्टुप्	३१	२.३३.६
उष्णिग्गर्भापरात्रिष्टुप् अनुष्टुप्	३२	१०.४.८
ककुम्मती अनुष्टुप्	३०	१.१०.३
ककुम्मती उष्णिग्गर्भा चतुष्पदा अनुष्टुप्	३०	१.११.३
ककुम्मती पराबृहती चतुष्पदा अनुष्टुप्	३०	५.२९.१४
गायत्रीगर्भा त्रिपदा अनुष्टुप्	२८	१०.५.४४
चतुष्पात् शंकुमती अनुष्टुप्	२९	६.३०.३
त्रिपदा अनुष्टुप्	३२	६.१३.२.१
द्व्युष्णिग्गर्भा अनुष्टुप्	३०	१०.८.२६;९.२५
निचृत् अनुष्टुप्	३१	३.१३.१
परा विराट् अनुष्टुप्	३१	१०.७.३३
पुरः ककुम्मती अनुष्टुप्	३०	७.७३.३
प्राजापत्या अनुष्टुप्	१६	१.१.१
प्राजापत्या द्विपदा अनुष्टुप्	१६	८.१५.३
प्राजापत्या भुरिक् अनुष्टुप्	१७	१.१.१
प्राजापत्या भुरिक् एकावसाना द्विपदा अनुष्टुप्	१७	६.१२३.८
बृहतीगर्भा अनुष्टुप्	३३	५.३१.११,१०.८.२
बृहतीगर्भाककुम्मती अनुष्टुप्	३०	६.१६.३
भुरिक् अनुष्टुप्	३३	१.१७.१
विराट् अनुष्टुप्	३०	५.२३.१३
विराट् चतुष्पदा अनुष्टुप्	३०	८.१२.१
विराट् चतुष्पात् अनुष्टुप्	३०	१.१८.३
विराट् त्रिपदा अनुष्टुप्	३०	५.१८.८
शंकुमती अनुष्टुप्	२९	४.१५.१५
साम्नी अनुष्टुप्	१६	८.१०.३१
साम्नी त्रिपदा अनुष्टुप्	१६	८.११.१
साम्नी द्विपदा अनुष्टुप्	१६	६.१२३.३
साम्नी भुरिक् द्विपदा अनुष्टुप्	१७	५.२७.२
स्वराट् अनुष्टुप्	३४	४.७.४;२०.१
६. अष्टि		
अष्टपदा त्र्यवसाना अष्टि	६४	१०.६.७-९
ककुम्मतीगर्भा पञ्चपदा अष्टि	६२	३.२७.१
पञ्चपदाअतिशाक्वरअतिजागतगर्भा अष्टि	६४	१०.५.३६
भुरिक् ककुम्मतीगर्भा अष्टि	६३	३.२७.५
विराट्सप्तपदात्र्यवसाना अष्टि	६२	६.२९.३
षट्पदा त्र्यवसाना अष्टि	६४	९.१.२४

सप्तपदा अष्टि	६४	२.१०.२
७. **आकृति**		
दशपदा- आकृति	८८	९.५.३६
८. **उष्णिक्**	२८	६.४८.१-३
अनुष्टुब्गार्भा ककुम्मती चतुष्पदा उष्णिक्	२८	९.१३.१२
अनुष्टुब्गार्भा चतुष्पदा उष्णिक्	२८	३.१८.४
आर्ची उष्णिक्	२१	९.१२.२
आर्ची द्विपदा उष्णिक्	२१	८.१५.४
आर्ची द्विपदा एकावसाना उष्णिक्	२१	१०.१.२२
आर्षी भुरिक् उष्णिक्	२९	६.९०.३
आसुरी उष्णिक्	१४	२.१७.७
आसुरी एकपदा उष्णिक्	१४	२.१६.२
ककुप् यवमध्या विराट् उष्णिक्	२६	३.२८.४
ककुप् यवमध्या उष्णिक्	२८	५.१०.७
चतुष्पदा उष्णिक्	२८	७.३९.३
निचृत् चतुष्पदा उष्णिक्	२७	२.३२.६
परोष्णिक् (पर उष्णिक्) उष्णिक्	२८	४.३७.७
परोष्णिक् त्रिपदा उष्णिक्	२८	२.११.२-५
परोष्णिक् निचृत् त्रिपदा उष्णिक्	२७	७.९४.४
परोष्णिक् विराट् उष्णिक्	२६	७.५७.२
पिपीलिकमध्या उष्णिक्	२८	९.८८
पिपीलिकमध्या निचृत् उष्णिक्	२७	२.११.४
पुर उष्णिक्	२८	४.४.४
पुर उष्णिक् निचृत् उष्णिक्	२७	२.३६.८
पुर उष्णिक् पिपीलिकमध्या उष्णिक्	२६	६.१.२-३
पुर उष्णिक् पिपीलिकमध्या त्रिपदा (एका०) उष्णिक्	२६	५.२६.९
पुर उष्णिक् विराट्	२६	३.१.५
ब्राह्मी त्रिपदा पुर उष्णिक्	४२	९.१.२२
भुरिक् चतुष्पदा उष्णिक्	२९	२.३३.४
शंकुमती भुरिक् चतुष्पदा उष्णिक्	२७	७.११८.२
साम्नी उष्णिक्	१४	५.१६.१,४-५
९. **कृति**		
चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुभगर्भा कृति	८०	१०.५.१९-२०
सप्तपदा त्र्यवसाना कृति	८०	४.३४.५
१०. **गायत्री**	२४	१.४.१-३
आर्षी गायत्री	२४	३.१७.१
आर्षी त्रिपदा गायत्री	२४	१.१७.४
आसुरी गायत्री	१५	५.१६.११
त्रिपदा गायत्री	२४	४.१२.१

त्रिपाद् गायत्री	२४	२.१५.१-६
द्विपदासुरी गायत्री	१५	२.१६.४-५
नागी त्रिपदा गायत्री	२४	९.६.१
निचृद् गायत्री	२३	५.१३.१०-११
निचृत् त्रिपदा गायत्री	२३	६.१६.१
पादनिचृत् एकावसाना गायत्री	२१	१.२६.४
पिपीलिकमध्या त्रिपदा गायत्री	२४	९८.१-६.९
पिपीलिकमध्या निचृत् त्रिपदा गायत्री	२३	९.१२.७
प्रतिष्ठा त्रिपदा गायत्री	२१	६.१६.४
प्रतिष्ठा नाम त्रिपदा एकावसाना गायत्री	२१	९.३.२७-३०
प्राजापत्या एकपदा गायत्री	८	९.११.४
ब्राह्मी भुरिक् त्रिपदा गायत्री	३७	८.१४.१२
भुरिक् गायत्री	२५	१०.४.१२
भूरिक् त्रिपदा गायत्री	२५	६.१३४.२
भुरिक् त्रिपाद् गायत्री	२५	२.३२.१
यवमध्या त्रिपदा गायत्री	२४	५.१०.१-६
यवमध्या भुरिक् त्रिपदा गायत्री	२५	४.१२.६
याजुषी एकपदा गायत्री	६	८.११.३
वर्धमाना गायत्री	२१	१.५.४
विराट् गायत्री	२२	८.१०.७;१३
विराट् त्रिपदा गायत्री	२२	५.२६.३
विराड् द्विपदा गायत्री	२०	८.१५.१
विराड् द्विपदा एकावसाना गायत्री	२०	७.२३.१
विराड् भूरिक् त्रिपाद् गायत्री	३१	९.६.१७
विराड् विषमा गायत्री	२२	१०.५.४०
विराण्नाम गायत्री	३३	६.२९.१-२
विराण्नाम चतुष्पदा गायत्री	३०	२.११.१
विराण्नाम त्रिपदा गायत्री	३३	१.२.३
विराण्नाम त्रिपाद् गायत्री	३३	४.१६.९
विराण्नाम द्विपदा गायत्री	२०	५.२७.६
विषमा निचृद् गायत्री	२३	२.१९.१-४
विषमा निचृत् त्रिपदा गायत्री	२३	९.१०.५ पूर्वार्द्ध
विषमा भुरिक् गायत्री	२५	२.१९.५;२०.५
विषमा स्वराड् गायत्री	२६	२.२३.५
समविषमा गायत्री	२४	२.२३.१-४
साम्नी गायत्री	१२	९.१२.९;१३
११. जगती	४८	३.८.२
अति जगतीगर्भा जगती	४६	६.६३.२
अनुष्टुबुष्णिक् त्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती	५०	५.६.४

अनुष्टुबुष्णिग्गर्भा उपरिष्टाद्बार्हता विराट् पञ्चपदा जगती	४९	९.५.२४
अनुष्टुब्गर्भा पुरोपरिष्टाज्ज्योतिष्मती पञ्चपदा त्र्यवसाना जगती	४७	४.३८.७
आर्षी जगती	४८	३.१६.१
आसुरी एकपदा जगती	९	९.११.१२
उपरिष्टाज्ज्योति जगती	४४	१०.७.११
उपरिष्टाद् दैवी बृहती ककुम्मतीगर्भा विराट् षट्पदा त्र्यवसाना जगती	४६	३.२९.७
चतुष्पदा जगती	४८	१०.१.१९
जगतीगर्भा (त्रिष्टुब्गर्भा) चतुष्पदा जगती	४८	१०.५.६
त्रिष्टुप् उष्णिग्गर्भा पराशक्वरी पञ्चपदा त्र्यवसाना जगती	५०	८८.२४
दैवी जगती	७	५.९.३-४
द्व्युष्णिग्गर्भा षट्पदा त्र्यवसाना जगती	४८	५८.९
निचृद् जगती	४७	१.१८.२
पञ्चपदा जगती	४८	८.२.९
पञ्चपदा त्र्यनुष्टुब्गर्भा जगती	४६	१०.६.३५
पञ्चपदा त्र्यवसाना जगती	४८	४.१.१२
पराजगती शक्वरीगर्भा चतुष्पदा	५२	९.२.१६
पराऽतिशक्वरी चतुष्पदा जगती	४८	५.२६.१२
पराशक्वरी विराड्गर्भा जगती	४६	७.२२.१
पुरस्कृति चतुष्पदा जगती	४८	८.५.९
पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती	४४	८.२.८
पुरोऽतिजगती विराड् जगती	४६	५.२९.५
पुरोऽतिशक्वरी चतुष्पदा जगती	४८	९.५.३
पुरोऽतिशक्वरी पादयुग्जगती	४८	४.४०.८
पुरोविराड् जगती	४६	२.५.४
पुरोविराडतिशाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती	४६	६.६८.१
पुरोऽष्टि जगती	४६	४.२६.१
प्राजापत्या चतुष्पदा जगती	३३	८.१४.५
बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती	४८	८.३.२५
बृहतीगर्भा षट्पदा त्र्यवसाना जगती	४८	३.११.८
बृहत्यनुष्टुप् उष्णिग्गर्भा पञ्चपदा जगती	४७	१०.९.२६
भुरिक् चतुष्पदा जगती	४९	६.२२.२
भुरिग्द् त्रिपदा जगती	५०	५.२४.१५-१६
भुरिक् षट्पदा त्र्यवसाना जगती	४९	७.९५.३
भुरिक् जगती	४९	४.३५.३
मध्येज्योति जगती	४४	१०.७.३१
मध्येज्योतिष्मती जगती	४४	१०.१.२९
याजुषी जगती	१२	८.१०.२;४,६
विपरीतपादलक्ष्मा पञ्चपदा जगती	४८	३.२६.२,५,६
विराट् चतुष्पदा जगती	४६	१.१३.३

विराड् जगती	४७	३.३०.५
विराट् षट्पदा त्र्यवसाना जगती	४६	६.१३९.१
विराडुष्णिक् बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती	४७	५.९.७
शक्वरीगर्भा जगती	४८	३.११.४
शक्वरीगर्भा पञ्चपदा त्र्यवसाना जगती	४८	६.४६.२
शक्वरीगर्भा विराड् जगती	४६	१.३०.३
षट्पदा जगती	४८	४.३७.११
षट्पदा त्र्यवसाना जगती	४८	५.३०.१७
सप्तपदा त्र्यवसाना जगती	४८	८.६.१७
साम्नी चतुष्पदा जगती	२४	८.१३.१
साम्नी त्रिपदा जगती	२४	९.६.६
साम्नी पिपीलिकमध्या त्रिपदा जगती	२४	६.१.१
साम्नी भुरिक् त्रिपदा जगती	२५	७.१०२.७
१२. त्रिष्टुप्	४४	१.९.१-४
अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप्	४४	६.६८.३
अतिशक्वरीगर्भा त्रिष्टुप्	४४	४.२५.३
अनुष्टुप्गर्भा त्रिष्टुप्	४२	१०.८.१०
अनुष्टुप् उष्णिक्गर्भा उपरिष्टाद् बार्हता भुरिक् पञ्चपदा त्रिष्टुप्	४५	९.५.२६
अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप्	४१	१.३५.४
अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् पञ्चपदा त्रिष्टुप्	४५	४.१५.१२
आर्ची त्रिष्टुप्	३३	८.१२.२
आर्ची त्रिपदा त्रिष्टुप्	३३	९.७.१०
आर्षी त्रिष्टुप्	४४	२.३१.३,५
आसुरी एकपदा त्रिष्टुप्	१०	२.१६.१,३
उपरिष्टाज्ज्योति त्रिष्टुप्	४४	४.२८
उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	४२	६.१४०.२
जगतीगर्भा त्रिष्टुप्	४५	८.५.१९
दैवी त्रिष्टुप्	६	५.९.२,६
द्युतिजागतगर्भा भुरिक् त्रिष्टुप्	४५	४.२८.१
निचृत् त्रिष्टुप्	४३	३.१३.६
परानुष्टुप् त्रिष्टुप्	४२	१.३१.४
पराबृहती त्रिष्टुप्	४२	५.१.१
पराविराट् त्रिष्टुप्	४२	८.५.२१
पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्	४१	४.५.७
पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	४१	४.२३.३
पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्	४२	१.२५.४
पुरोबृहती त्रिष्टुप्	४४	८.१.१
पुरोबृहती विराड्गर्भा त्रिष्टुप्	४२	६.१२६.३
बार्हतगर्भा त्रिष्टुप्	४२	१८.४

बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्	४२	२.३५.१
बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् षट्पदा त्र्यवसाना त्रिष्टुप्	४४	१०.४.२६
बृहतीगर्भा विराट् चतुष्पदा त्रिष्टुप्	४२	३.८.४
भुरिक् त्रिष्टुप्	४५	२.२८.५
भुरिक् उत्तमा त्रिष्टुप्	४५	४.३४.४
भुरिक् पराऽतिजागता त्रिष्टुप्	४५	५.२.९
भुरिक् विपरीतपादलक्ष्मा पञ्चपदा त्रिष्टुप्	४५	३.२६.३-४
याजुषी त्रिष्टुप्	११	९.६.८
विपरीतपादलक्ष्मा पञ्चपदा त्रिष्टुप्	४४	३.२६.१
विराट् त्रिष्टुप्	४२	१.३१.३
विराडास्तारपंक्ति त्रिष्टुप्	४२	१.१८.३
विराड्गर्भा त्रिष्टुप्	४२	१.२५.२-३
विराड्गर्भा भुरिक् त्रिष्टुप्	४३	३.१.२
शाक्वरगर्भा अतिमध्येज्योति त्रिष्टुप्	४४	४.२६.७
शाक्वरीगर्भा (शाक्वरगर्भा) पुरः शक्वरी त्रिष्टुप्	४४	४.२४.१
षट्पदा त्र्यवसाना त्रिष्टुप्	४४	४.३७.३
साम्नी त्रिष्टुप्	२२	८.१४.८
साम्नी एकावसाना त्रिपदा त्रिष्टुप्	२२	१.२६.२
साम्नी एकावसाना द्विपदा त्रिष्टुप्	२२	९.५.३८
साम्नी त्रिपदा त्रिष्टुप्	२२	५.१४.११
साम्नी द्विपदा त्रिष्टुप्	२२	५.२७.५
१३. त्र्यवसाना नवपदा धृति	७२	१०.६.१०
सप्तपदा धृति	७२	२.१०.३-५
१४. पंक्ति	४०	१.११.१
आर्ची त्रिपदा पंक्ति	३०	८.१०.१
आर्ची द्विपदा पंक्ति	३०	९.१.२३
आर्षी उष्णिग्गर्भा पंक्ति	४०	७.५५.४
आर्षी चतुष्पदा पंक्ति	४०	२.६.४
आर्षी पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति	४०	१०.८.१२
आसुरी एकपदा पंक्ति	११	९.१२.१९
आस्तार पंक्ति	४०	५.८.६
आस्तार पंक्ति बृहतीगर्भा	४०	६.९८.२
आस्तार पंक्ति विराट्	३८	३.१९.७
आस्तार पंक्ति विराड्गर्भा	३८	८.५.२०
आस्तार पंक्ति सम्राट्	४२	७.८६.५
चतुष्पदा पंक्ति	४०	७.५१.२
चतुष्पदा भुरिक् पंक्ति	४१	३.३.३
त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पंक्ति	४०	१.१३.४
त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति	४१	९.१.२

पथ्या पंक्ति	४०	१.३.१-५
पथ्या उष्णिग्गर्भा पंक्ति	४०	३.१८.६
पथ्या उष्णिग्बृहतीगर्भा पंक्ति	४०	३.११.७
पथ्या द्व्युष्णिग्गर्भा पंक्ति	४०	५.८.७
पथ्या निचृत् पंक्ति	३९	१.२४.२
पथ्या भुरिक् पंक्ति	४१	१.१५.२
पथ्या भुरिक् त्र्यवसाना पंक्ति	४१	७.७९.२
पथ्या विराड्गर्भा भुरिक् पंक्ति	४०	८.७.६
परोष्णिक् पंक्ति	४०	९.१.१०
पुर उष्णिक् भुरिक् पंक्ति	४१	२.२४.१-२
पुरोदेवत्या विराट् पंक्ति	३९	२.२४.३-४
पुरोऽभिकृति ककुम्मतीगर्भा त्रिपदा पंक्ति	३९	१०.५.१-५
प्रस्तार पंक्ति	४०	३.३०.६
प्रस्तार पंक्ति ककुम्मती	३९	६.२०.२
प्रस्तार पंक्ति चतुष्पदा	४०	९.९.१०
प्रस्तार पंक्ति पराबृहती	४०	९.१.९
प्रस्तार पंक्ति पराबृहती निचत्	३९	२.२९.४
प्राजापत्या चतुष्पदा पंक्ति	२४	८.१२.३
बृहतीगर्भा संस्तार पंक्ति	४०	९.१.८
बृहतीपुरस्तात् प्रस्तार पंक्ति	३९	८.८.४
भुरिक् पंक्ति	४१	३.१६.४
भुरिक् विष्टार पंक्ति	४१	९.१.२०
भुरिक् संस्तार पंक्ति	४१	८.५.५
विराट् प्रस्तार पंक्ति	३८	२.४.१
विराड्गर्भा प्रस्तार पंक्ति	४०	३.२८.६
विष्टार पंक्ति	४०	६.४६.१
संस्तार पंक्ति	४०	४.३९.२
सतः पंक्ति	४०	६.२०.३
साम्नी एकपदा पंक्ति	२०	८.११.४
साम्नी निचृत् पंक्ति	१९	९.६.१३
साम्नी पंक्ति	२०	८.११.७
स्वराट् पंक्ति	४२	५.६.१४
१५. प्रकृति		
दशपदा प्रकृति	८४	९.५.३२-३५
१६.बृहती	३६	४.१२.७
आर्ची बृहती	२७	८.१२.४,६
आर्ची त्रिपदा बृहती	२७	६.८४.२
आर्ची द्विपदा बृहती	२७	५.२७.३
आसुरी एकपदा बृहती	१२	९.१२.२३

उपरिष्टाद् बृहती	३६	३.२९८
उरो बृहती	३६	६.१०८.२
उष्णिग्गर्भा विराट् चतुष्पदा उपरिष्टाद् बृहती	३४	८.११.२
ककुम्मतीगर्भा उपरिष्टाद् बृहती	३३	४.३.७
ककुम्मती बृहती	३४	७८७.२
चतुष्पदा बृहती	३६	२.२४.५
चतुष्पदा विराट् उरोबृहती	३४	१.१.४
त्रिपदा महाबृहती	३६	४.३९.१
त्रिपदा स्वराट् उपरिष्टान्महाबृहती	३८	२.३.६
त्र्यवसाना बृहती	३६	७.९३.१
दैवी बृहती	४	५.९.१,५
निचृत् उपरिष्टाद् बृहती	३५	२.५.१
निचृत् चतुष्पदा बृहती	३५	३.९.४
निचृत् पुरस्ताद् बृहती	३५	८८.२०
निचृद् बृहती	३५	५.१४.१०
न्यंकुसारिणी बृहती	३६	७.६६.२
पञ्चपदा विराट् पुरस्ताद् बृहती	३४	९.७.७
पथ्या बृहती	३६	६.३.१
पथ्या विराड् बृहती	३४	१.२८.३
पुरः परोष्णिक् बृहती	३६	७.६९.१
पुरस्ताद् बृहती	३६	१.४.४
प्राजापत्या त्रिपदा एकावसाना बृहती	२०	९.३.२५;३१
प्राजापत्या त्रिपदा बृहती	२०	७.१०२.६
प्राजापत्या द्विपदा बृहती	२०	५.२६.२;४
प्राजापत्या बृहती	२०	६.१०.२
भुरिक् अनुष्टुप् उष्णिग्गर्भा पञ्चपदा बृहती	३७	९.५.२०-२२
भुरिक् उपरिष्टाद् बृहती	३७	३.२३.५
भुरिक् चतुष्पदा बृहती	३७	२.२४.६-८
भुरिक् त्रिपदा महाबृहती	३७	८.१.१३
भुरिग् बृहती	३७	३.१९.३
१७. **महाबृहती**	३६	१०.१.१
यवमध्या अतिजागतगर्भा महाबृहती	३६	९.१.७
यवमध्या अतिशक्वरीगर्भा महाबृहती	३७	९.१.६
विपरीतपादलक्ष्मा पञ्चपदा त्र्यवसाना बृहती	३६	१०.५.७-१०
विराट् उपरिष्टाद् बृहती	३४	२.३१.२
विराट् उरोबृहती	३४	३.५.८
विराट् त्रिपदा महाबृहती	३४	६.१३२.२;४
विराट् पञ्चपदा पुरस्ताद् बृहती	३४	९.७.७
विराट् पुरस्ताद् बृहती	३४	४.१५.४

विराड् बृहती	३४	८.८.३
साम्नी द्विपदा एकावसाना बृहती	१८	६.१३६.२
साम्नी द्विपदा बृहती	१८	५.२७.७
साम्नी बृहती	१८	२.१८.१-५
साम्नी भुरिग् द्विपदा एकावसाना बृहती	१९	८.१.१४
साम्नी भुरिग् द्विपदा बृहती	१९	५.२७.४
साम्नी भुरिग् बृहती	१९	९.६.१०
स्कन्धोग्रीवी अतिजागताऽनुष्टुब्गार्भा पञ्चपदा बृहती	३६	१०.१०.५
स्कन्धोग्रीवी बृहती	३६	३.२३.६
१८. शक्वरी	५६	५.२४.११
अनुष्टुब्गार्भा उपरिष्टाज्जागता निचृत् षट्पदा त्र्यवसाना शक्वरी	५५	४.११.७
चतुष्पदा शक्वरी	५३	८.८.२२
पञ्चपदा अतिजागताऽनुष्टुब्गार्भा शक्वरी	५६	१०.९.२७
परानुष्टुप् पञ्चपदा शक्वरी	५६	४.१०.७
भुरिक् शक्वरी	५७	४.३४.७
विराट् त्रिपदा शक्वरी	५४	५.२४.१७
विराट् षट्पदा त्र्यवसाना शक्वरी	५४	७.२७.३
विराट् सप्तपदा शक्वरी	५४	१०.६.६
विराड्गर्भा भुरिक् सप्तपदा त्र्यवसाना शक्वरी	५७	८.५.२२
षट्पदा त्र्यवसाना शक्वरी	५६	१०.६.१२-१७
सप्तपदा त्र्यवसाना शक्वरी	५६	८.६.१५

परिशिष्ट - ४

अथर्ववेद संहितायाः वर्णानुक्रम सूची भाग-१

अथर्ववेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग-२

[काण्ड ११ से २०तक]

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

०५

मूल्य : १२५ रुपए

• प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

• लेखक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

• आवृत्ति

२००५

• मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

अनुक्रमणिका

संकेत-विवरण

उप०	=	उपनिषद्	नि०	=	निरुक्त
ऋ०	=	ऋग्वेद	पं० ब्रा०	=	पञ्चविंश ब्राह्मण
ऐत० आर०	=	ऐतरेय आरण्यक	पृ०	=	पृष्ठ
ऐत० ब्रा०	=	ऐतरेय ब्राह्मण	बृह० उ०	=	बृहदारण्यक उपनिषद्
काठ० सं०	=	काठक संहिता	बृ०सर्वा०	=	बृहत्सर्वानुक्रमणी
कौषी० ब्रा०	=	कौषीतकि ब्राह्मण	बृह०	=	बृहद्देवता
गो० ब्रा०	=	गोपथ ब्राह्मण	मत्स्य० पु०	=	मत्स्य पुराण
छा० उ०	=	छान्दोग्य उपनिषद्	महा० शा०	=	शान्ति पर्व
जैमि० उ०	=	जैमिनीय उपनिषद्	मैत्रा० सं०	=	मैत्रायणी संहिता
जैमि० ब्रा०	=	जैमिनीय ब्राह्मण	यजु०	=	यजुर्वेद
जै० उ० ब्रा०	=	जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण	शत० ब्रा०	=	शतपथ ब्राह्मण
तैत्ति० आर०	=	तैत्तिरीय आरण्यक	सर्वा०	=	सर्वानुक्रमणी
तैत्ति० सं०	=	तैत्तिरीय संहिता	सा० भा०	=	सायण भाष्य
दे०	=	देवता	साम०	=	सामवेद

• • •

ॐ

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां
पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं
प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत
ब्रह्मलोकम्॥

हम साधकों द्वारा स्तुत (पूजित) हुई,
अभीष्ट फल प्रदान करने वाली
वेदमाता (गायत्री)
द्विजों को पवित्रता और प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं।
आप हमें दीर्घ जीवन प्राणशक्ति, सुसन्तति, श्रेष्ठ पशु (धन),
कीर्ति, धन- वैभव और ब्रह्मतेज प्रदान करके
ब्रह्मलोक के लिए
प्रस्थान करें।
(अथर्व० १९.७१.१)

*

॥ अथैकादशं काण्डम् ॥

[१-ब्रह्मौदन सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मौदन । छन्द- त्रिष्टुप् ,१ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् पंक्ति, २,५ बृहतीगर्भा विराट् त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती, ४, १५-१६,३१ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६ उष्णिक्, ८ विराट् गायत्री, ९ शक्वरातिजागतगर्भा जगती, १० विराट् पुरोऽतिजगती विराट् जगती, ११ जगती, १७, २१, २४-२६, ३७ विराट् जगती, १८ अतिजागतगर्भा परातिजागता विराट् अतिजगती, २० अतिजागतगर्भा परशाक्वरा चतुष्पदा भुरिक् जगती, २७ अतिजागतगर्भा जगती, २९ भुरिक् विराट् जगती, ३५ चतुष्पदा ककुम्मती उष्णिक्, ३६ पुरोविराट् त्रिष्टुप्]

सूक्त क्र. ४. ३४ की तरह इस सूक्त के भी देवता ब्रह्मौदन हैं। इसके ऋषि भी ब्रह्मा (सृजेता देव) हैं। ब्रह्मौदन 'यज्ञ' से संस्कारित पक्व अन्न को कहते हैं। उस अन्न से अन्नमय कोश (स्थूल शरीर) के जो सूक्ष्म कोश (सैल) बनते हैं, वे यज्ञीय प्रवृत्तियुक्त होते हैं। यह सृष्टि भी यज्ञीय संस्कार युक्त है। इसके सूक्ष्मतम कणों को बनाने के लिए जो अन्न (उपकरण-सब पार्टिकल्स को) पकाया (उपयोग के लिए तैयार किया) गया था, वह भी यज्ञीय ब्रह्म के सुसंस्कारों से युक्त था, इसलिए उसे भी ऋषि 'ब्रह्मौदन' के रूप में देखते हैं। इसलिए यज्ञशाला में पकाये गये अन्न के अतिरिक्त जिसे देवमाता अदिति (मन्त्र क्र.१) ने पकाया, ऐसा वह ब्रह्मौदन सृष्टि के सृजन में प्रयुक्त सूक्ष्म अन्न (ऊर्जा एवं पदार्थ के बीच की स्थिति वाला कोई तत्त्व) ही हो सकता है-

२९८७. अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रकट हों । यह अदिति (देवमाता) सुसन्तति की कामना करती हुई ब्रह्मौदन (हविष्यान्न) पकाती हैं । अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न सप्तर्षि जो प्राणियों को उत्पन्न करने वाले हैं, वे आप (अग्निदेव) को इस देवयजन कार्य में प्रजा (याजकों) के साथ मंथन क्रिया द्वारा उत्पन्न करें ॥१ ॥

[लौकिक सन्दर्भ में बच्चों में यज्ञीय संस्कार पैदा करने की इच्छुक माता ब्रह्मौदन पकाती हैं। सूक्ष्म सन्दर्भ में अदिति (अ + दिति = अखण्ड ब्राह्मी चेतना) सृष्टि उत्पादक सूक्ष्म कणों को पकाती तैयार करती हैं। सूक्ष्म संदर्भ में सप्त ऋषि प्राण की सात दिव्य धाराएँ हैं। वे मन्थन द्वारा यज्ञीय संस्कार उत्पन्न करने वाले अग्नि को प्रकट करते हैं ।]

२९८८. कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥२ ॥

हे सामर्थ्य सम्पन्न मित्रो (ऋत्विजो) ! आप मंथन द्वारा अग्नि को उत्पन्न करें । ये अग्निदेव द्रोहरहित साधकों के संरक्षक हैं, शत्रुओं (कुसंस्कारों) की सेना को पराजित करने वाले उत्तम वीर हैं, जिनके द्वारा देवों ने दस्युओं को वशीभूत किया ॥२ ॥

२९८९. अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप महान् पराक्रम के लिए उत्पन्न होते हैं । ज्ञानवर्धक अन्न (ब्रह्मौदन) पकाने के लिए , प्राणियों के उत्पादक सप्तर्षियों ने आपको प्रकट किया है, अतः इस माता को वीर भावों से सम्पन्न सुसन्तति प्रदान करें ॥३ ॥

२९९०. समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं से प्रदीप्त होकर आप यज्ञीय देवों को लेकर यहाँ पधारें। हे ज्ञान सम्पन्न अग्ने! आप देवताओं के लिए हविष्यान्न पकाने के पश्चात् इसके अनन्तर इसे यजमान को श्रेष्ठ स्वर्ग में प्रतिष्ठित करें ॥४॥

२९९१. त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥

हे देवताओं, पितरगणों और मनुष्यों के तीन प्रकार के भाग पहले से स्थापित करके रखे गये हैं। हम उन्हें विभाजित करके समर्पित करते हैं। आप अपने अपने अंश के अभिप्राय को जानें, इनमें जो देवों का अंश है, वही अग्नि में आहुति रूप में समर्पित होकर, इस यजमान पत्नी 'देवमाता अदिति' को पार करें, (इष्ट लक्ष्य तक पहुँचायें) ॥५॥

२९९२. अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥६॥

हे अग्निदेव! आप बलशाली और शत्रुओं के पराभूतकर्ता हैं। अतः विद्वेषी शत्रुओं को अधःपतित करें। हे यजमान! यह परिमित परिमाण में मापी हुई शाला (यज्ञशाला) आपके सजातीय वीरों को आपके लिए द्रव्य भेंट करने वाला बनाए ॥६॥

२९९३. साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥

हे याजक! आप साथ जन्मे हुए साथियों के साथ वृद्धि को प्राप्त हों। उच्च पराक्रमी कार्य के लिए इसे (ब्रह्मौदन को) तैयार करें। इस लोक में आरोहण करें, जिसे स्वर्ग लोक कहा गया है ॥७॥

२९९४. इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥८॥

यह विस्तृत देवी स्वरूपा पृथ्वी शुभसंकल्पों से युक्त होकर (अमरूपी कवचरूपी) ढाल अपने संरक्षण के लिए धारण करे, जिससे हम पुण्यलोक को प्राप्त करें ॥८॥

[यज्ञीय प्रक्रिया से पृथ्वी का रक्षक कवच पुष्ट होता है, इससे हम पुण्य, हितकारी, वातावरणयुक्त लोक (क्षेत्र) प्राप्त होता है।]

२९९५. एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥

हे ऋत्विक्! इन साथ-साथ रहने वाले दोनों ग्रावाओं (सोम निष्पादक उपकरण) को पृथ्वी के ऊपर पर रखें। यजमान के निमित्त सोमरस को कूटकर निकालें। जो इस स्त्री (अदिति) पर आक्रमण करते हैं, उन्हें विनष्ट करें। हे अदिति! सोमरस निचोड़ती हुई और भरण-पोषण करती हुई आप अपने प्रजाजनों को श्रेष्ठ पद पर स्थापित करें ॥९॥

[स्थूल एवं सूक्ष्म सोम निष्पादक उपकरण सोम निचोड़ें, अदिति (प्रकृति या पृथ्वी) का सन्तुलन बिगाड़ने वाले नष्ट हों। यह अदिति सोम प्रवाहों द्वारा प्रजा को पुष्ट एवं उन्नत बनाए।]

२९९६. गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१० ॥

हे वीर ऋत्विग्! आप अपने हाथों में ग्रावाओं को धारण करें । पूजनीय देवता आपके यज्ञ में पधारें । हे यजमान, आप जिन तीनों वरों की कामना करना चाहते हैं, उन्हें मैं यहाँ पूर्ण सिद्ध (पूर्ण) करता हूँ ॥१० ॥

२९९७. इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमाः पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११ ॥

हे अभिषेचक! यह आपकी धारण शक्ति है और यह आपकी उत्पत्ति है । शूरों की माता अदिति आपको ग्रहण करें । वीरों की सेना वाली इस देवी को जो कष्ट दें, उन्हें दूर हटा दें और इसे वीरों से समृद्ध करें ॥

२९९८. उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२ ॥

हे यज्ञकामिन् (याजको या अन्नकणो)! आप जीवन यात्रा के लिए स्थित हों । तुषों (विकारों) को अलग करें तथा समान प्रकार के अन्नों से श्रेष्ठ बनें । विद्वेषियों को हम पद दलित करें ॥१२ ॥

२९९९. परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३ ॥

हे नारि! (प्रकृति अथवा सामान्य स्त्री या जलधारा) आप दूर जाकर शीघ्र लौटें । आपको गोष्ठों (गौ या किरणों के स्थान) पर जल की आपूर्ति के लिए पहुँचाया जा रहा है । वहाँ से यज्ञीय जल-अंशों को ग्रहण करें तथा बुद्धिपूर्वक शेष (अनुपयोगी) जल अंशों को छोड़ दें ॥१३ ॥

[लौकिक सन्दर्भ में यज्ञीय कार्य के लिए शुद्ध जल लाया जाए, तथा सूक्ष्म सन्दर्भ में प्रकृति द्वारा अन्तरिक्ष से श्रेष्ठ प्रवाहों का आकर्षण हो ।]

३०००. एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४ ॥

ये देवियाँ सुसज्जित होकर आ गयी हैं । आप उठें और पराक्रम आरंभ करें । स्वामियों में श्रेष्ठ स्वामी वाली तथा संतानों में श्रेष्ठ संतान वाली (हे स्त्री!) तुम्हें यज्ञ की प्राप्ति हुई है । इस कुम्भ (पूरित करने वाले पात्र) को स्वीकार करो ॥१४ ॥

३००१. ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५ ॥

हे जलदेवो! आपके शक्तिप्रद भाग पहले से निहित किये गये हैं, ऋषियों के निर्देश से उन्हें ही भरकर यहाँ लाएँ । आपके निमित्त सम्पन्न होने वाला यह यज्ञ पथप्रदर्शक, ऐश्वर्यवर्धक, सुसन्तानदायक, पराक्रमवर्धक, गौ, अश्वादि पशु प्रदान करने वाला तथा वीर सन्ततियों को प्रदान करने वाला हो ॥१५ ॥

३००२. अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६ ॥

हे अग्ने! यज्ञ के लिए उपयुक्त पवित्र और तप साधना से सम्पन्न अन्न (चरु) उपलब्ध हुआ है, अतएव आप इसे अपनी ऊष्मा से पतप्त करें । ऋषि और देवगण भी इसे तपाएँ और ऋतुओं के अनुकूल बनाएँ ॥१६ ॥

३००३. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥१७ ॥

पवित्र किये गये, शुद्ध और मिश्रित करने वाले यज्ञ के योग्य यह शुभ्र वर्णयुक्त जल, चरुस्थाली में प्रवेश करे । यह जल हमें सुसन्तति और श्रेष्ठ पशु प्रदान करे । ब्रह्मौदन (ज्ञान सम्पन्न पोषक प्रवाह) के पाचक (पकाने वाले) यजमान पुण्यलोक को प्राप्त करें ॥१७ ॥

३००४. ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥१८ ॥

मंत्र से पवित्र और घृतादि से पके हुए दोषरहित ये चावल सोम के अंश स्वरूप हैं । अतएव हे यज्ञीय तण्डुलो ! तुम चरुस्थाली में स्थित जल में प्रवेश करो । ब्रह्मौदन (ज्ञान सम्पन्न पोषक प्रवाह) के पाचक (पकाने वाले) यजमान स्वर्गलोक को प्राप्त करें ॥१८ ॥

३००५. उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥१९ ॥

(हे ब्रह्मौदन !) आप बढ़ें और महत्ता प्राप्त करके फैल जाएँ । हे सहस्रपृष्ठ (हजारों आधार वाले) !आप पुण्यलोकों में प्रविष्ट हों । पितामह, पिता, संतानों, उनकी संतानों के क्रम में आपको पकाने वाला मैं पन्द्रहवाँ हूँ ॥

[स्थूल अर्थों में यज्ञ एवं ब्रह्मौदन पाक का क्रम पन्द्रह पीढ़ियों से चलते आने का भाव है । सूक्ष्म संदर्भ से ब्रह्मौदनरूपी सूक्ष्म उपकरणों का परिपाक चौदह भुवनों में अपने-अपने ढंग से हुआ है । इस भूमण्डल में हम उसे अपनी आवश्यकता के रूप में पकाने वाले पन्द्रहवें हैं ।]

३००६. सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२० ॥

हे यजमान ! यह सहस्रपृष्ठ और सैकड़ों धाराओं वाला ब्रह्मौदन देवयान मार्ग से स्वर्ग प्रदायक है । इसे मैं आपके लिए धारण करता हूँ । इन्हें संतान के साथ संयुक्त कर देने के लिए प्रेरित करें और हमें सुखी करें ॥२० ॥

३००७. उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥२१ ॥

(यज्ञदेव) वेदिका के ऊपर उदय हों, इसे (ब्रह्मौदन) ऊर्ध्वगति दें । शत्रुओं को नष्ट करें । इसको विशेष रूप से धारण करें । हम सभी समानतायुक्त पुरुषों की तुलना में श्रेष्ठ बनें तथा विद्वेषी शत्रुओं को पददलित करें ॥

३००८. अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न ओदन ! आप इस भूमि को प्राप्त हों, देवताओं सहित इसके साथ मिल जाएँ । आपको शाप न लगे और बाधक अभिचार प्रभावित न करे । आप अपने निवास क्षेत्र में नीरोग रहकर प्रकाशित हों ॥२२ ॥

३००९. ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३ ॥

यज्ञ से बनी तथा मन से स्थापित यह ब्रह्मौदन की वेदिका सामने प्रतिष्ठित है । उस पर स्थाली स्थापित करके उसमें देवताओं के लिए अन्न तैयार करें ॥२३ ॥

३०१०. अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन्।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥२४॥

प्राणिमात्र के स्रष्टा सप्तर्षियों ने देवमाता अदिति के दूसरे हाथ के रूप में स्रुवा को बनाया है। यह स्रुवा ओदन के पक्व भाग को जानती हुई वेदिका के मध्य ज्ञाननिष्ठ ओदन की स्थापना करे ॥२४॥

३०११. शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥२५॥

तैयार हुए यज्ञ योग्य ओदन के समीप पूजनीय देवगण पधारें। हे ओदन ! आप अग्नि से बाहर आकर पुनः इन देवों को प्रसन्न करें। सोमरस से पवित्र होकर ब्रह्मनिष्ठों के उदर में प्रवेश करें। आपको ग्रहण करने वाले ऋषिगण दुखी न हों ॥२५॥

३०१२. सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥२६॥

हे राजा सोम ! जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण आपके समीप बैठे हैं, उन्हें श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करें। हम उन आर्षेय ऋषियों को ब्रह्मौदन के लिए बार-बार आवाहित करते हैं ॥२६॥

३०१३. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७॥

शुद्ध, पापरहित और दूसरों को पावन बनाने वाले यज्ञीय जल को विप्रजनों के हाथों पर छोड़ते हैं। हे जल ! जिस अभिलाषा से हम तुम्हारा अभिषिञ्चन करते हैं, उस अभीष्ट को मरुद्‌गणों के साथ इन्द्रदेव हमें प्रदान करें ॥२७॥

३०१४. इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥२८॥

यह स्वर्ण अमर ज्योतिरूप है और खेत से प्राप्त यह शुद्ध ओदन (परिपक्व अन्न) कामधेनु के समान है, जिसे हम दक्षिणा स्वरूप ज्ञानियों को प्रदान करते हैं। यह स्वर्ग में असंख्य गुना बढ़े। इससे हम पितरों के स्वर्गलोक का मार्ग प्रशस्त करते हैं ॥२८॥

३०१५. अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम्।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥

इस अन्न के तुषों (विकारों) को जातवेदा अग्नि में डाल दें, छिलकों को दूर फेंकें। यह (अन्न) सद्‌गृहस्थ के गृह का अंश है, ऐसा हमने सुना है। यह अतिरिक्त निर्ऋति देवता का भाग है, ऐसा हम जानते हैं ॥२९॥

३०१६. श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥३०॥

हे ज्ञानयुक्त ओदन ! आप तपः साधना करने वाले और सोमरस का अभिषवण करने वाल याजकों को समझें तथा स्वर्ग पथ की ओर इन्हें प्रेरित करें। दुःखों से रहित जो परम उत्कृष्ट स्वर्ग नामक अन्तरिक्ष है, उनमें ये यजमान उत्तम श्येनपक्षी की तरह, जिस प्रकार भी हो, ऊपर आरोहण कर सकें, ऐसा प्रयत्न करें ॥३०॥

३०१७. बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥३१ ॥

हे अध्वर्यु ! इस पोषक ओदन के ऊपरी भाग को भली प्रकार शुद्ध करें, तदुपरान्त ओदन के मध्य घृतसिंचन के लिए गर्तरूप स्थान बनाएँ तथा सभी अवयवों को घृत से सींचें । जो मार्ग पितरगणों के समीप स्वर्ग में ले जाता है, ओदन के माध्यम से हम उसी का निर्माण करते हैं ॥३१ ॥

३०१८. बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥३२ ॥

हे ब्रह्मौदन ! जो अब्राह्मण (ब्रह्मवृत्ति से विरत) तुम्हारे निकट (सेवन करने के उद्देश्य से) आएँ, उनमें से अहंकारी राक्षसों को दूर कर दें । आपका सेवन करने वाले अन्नार्थी यशस्वी ऋषिगण कभी विनष्ट न हों ॥३२ ॥

३०१९. आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३३ ॥

हे ओदन ! हम आपको ऋषि पुत्रों में स्थापित करते हैं, अनार्षेयों के भाग इसमें नहीं हैं । अग्निदेव और मरुद्गण इसके संरक्षक हैं तथा सम्पूर्ण देवगण भी इस परिपक्व ज्ञान ब्रह्मौदन का चारों ओर से संरक्षण करें ॥३३ ॥

३०२०. यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥३४ ॥

यह ब्रह्मौदन यज्ञों का उत्पादक होने से सदैव प्रवृद्ध करने वाला, धारणकर्त्ता एवं सम्पत्ति का घर है । हे ज्ञाननिष्ठ ओदन ! हम आपके द्वारा पुत्र-पौत्रादि प्रजा की पुष्टि, दीर्घायु और धन-सम्पदा प्राप्त करें ॥३४ ॥

३०२१. वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥३५

हे अभीष्टपूरक ओदन ! आप स्वर्गलोक को प्रदान करने वाले हैं । अतः आप हमारे द्वारा प्रदत्त किये जाने पर आर्षेय ऋषियों को प्राप्त हों । तत्पश्चात् पुण्यात्माओं के स्वर्गधाम में स्थित हों । वहाँ हम दोनों का (भोक्ता-भोक्तव्यात्मक) संस्कार निष्पन्न होगा ॥३५ ॥

३०२२. समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥३६ ॥

हे ओदन ! आप सुसंगत होकर गंतव्य स्थल में जाएँ । हे अग्निदेव ! आप देवयानमार्ग की रचना करें । हम भी पुण्यकर्मों के प्रभाव से सप्त किरणों से युक्त (दुःख रहित) स्वर्गलोक में स्थिर रहने वाले यज्ञ का अनुकरण करते हुए वहाँ पहुँचें ॥३६ ॥

३०२३. येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७ ॥

जिस ज्ञानयुक्त अन्न (ब्रह्मौदन) द्वारा इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्गलोक में गये हैं, हम भी उसी ब्रह्मौदन को पकाकर स्वर्गारूढ़ होकर श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करें ॥३७ ॥

[२- रुद्र सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** रुद्र । **छन्द-** अनुष्टुप्, १ परातिजागता विराट् जगती, २ अनुष्टब्गर्भा पञ्चपदा विराट् जगती, ३ चतुष्पदा स्वराट् उष्णिक्, ६ आर्षी गायत्री, ८ महाबृहती, ९ आर्षी त्रिष्टुप्, १० पुरः कृति त्रिपदा विराट् त्रिष्टुप्, ११ पञ्चपदा विराट् जगतीगर्भा शक्वरी, १२ भुरिक् त्रिष्टुप्, १४, १७-१९, २३, २६, २७ विराट् गायत्री, २० भुरिक् गायत्री, २२ त्रिपदा विषमपादलक्ष्मा महाबृहती, २४, २९ जगती, २५ पञ्चपदा अतिशक्वरी, २८ त्रिष्टुप्, ३० चतुष्पदोष्णिक्, ३१ त्र्यवसाना षट्पदा विपरीतपादलक्ष्मा त्रिष्टुप्।]

३०२४. भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१ ॥

हे भव और शर्व देवो ! आप दोनों हमें सुखी करें । संरक्षणार्थ हमारे सम्मुख रहें । हे प्राणियों के पालक एवं पशुपति ! आप दोनों को नमन है । आप अपने धनुष पर चढ़ाए और खींचे गए बाण को हमारे ऊपर न छोड़ें आप हमारे द्विपादों- चतुष्पादों का विनाश न करें ॥१ ॥

३०२५. शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२ ॥

हे संहारकारी देवो ! आप दोनों हमारी देहों को कुत्ते, गीदड़, मांसभक्षी गिद्धों और काले तथा हिंसक कौए इत्यादि के लिए काटने हेतु न दें, मक्खियाँ और पक्षी खाने के लिए इन कटे हुए शरीरों को न पाएँ ॥२ ॥

३०२६. क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः। नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥३

हे सर्व उत्पादक (भव) देव ! आपके क्रन्दन रूप शब्द और प्राण वायु के लिए हम प्रणाम करते हैं । आपके मोह- माया की ओर प्रेरित करने वाले शरीरों को प्रणाम है । हे अविनाशी रुद्रदेव ! हजारों नेत्रों से युक्त आपके प्रति हमारा प्रणाम है ॥३ ॥

३०२७.पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत। अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥

हे रुद्रदेव ! हम आपके प्रति पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में नमस्कार करते हैं । अन्तरिक्ष मण्डल के मध्य सर्व नियन्तारूप में स्थित हम आपको प्रणाम करते हैं ॥४ ॥

३०२८. मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव। त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः।

हे पशुपालक, भवदेव ! आपके मुख, आँखों, त्वचा और नील, पीत आदि वर्ण के लिए प्रणाम है । आपकी समानतायुक्त दृष्टि और पृष्ठ भाग के लिए नमस्कार है ॥५ ॥

३०२९. अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते। दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६ ॥

हे पशुपतिदेव !आपके उदर, जिह्वा, मुख, दाँत, घ्राणेन्द्रिय तथा अन्य अंगों के लिए हमारा नमस्कार है ।

३०३०.अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना। रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि

नील केशधारी, सहस्र नेत्रयुक्त, तीव्रगति वाले, अर्द्धसेना के विनाशक, रुद्रदेव से हम कभी पीड़ित न हों ॥७ ॥

३०३१. स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८ ॥

उत्पत्तिकर्त्ता भवदेव सभी प्रकार के कष्टों से हमें मुक्त करें । जिस प्रकार अग्निदेव जल का परित्याग कर देते हैं, वैसे ही रुद्रदेव हमें मुक्त रखें । वे हमें किसी प्रकार का कष्ट न दें । उन भवदेव को हम प्रणाम करते हैं ॥८ ॥

३०३२. चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥

हे शर्वदेव! आपके लिए चार बार तथा हे भवदेव! आपके लिए आठ बार नमस्कार है। हे पशुपते! आपके लिए दस बार प्रणाम है। ये गौ, घोड़े, भेड़, बकरी और पुरुष आदि आपके आश्रित हैं ॥९॥

३०३३. तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्व१न्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥

हे प्रचण्ड बलशाली रुद्रदेव! ये चारों दिशाएँ आपकी ही हैं। ये स्वर्गलोक, पृथ्वी और विशाल अन्तरिक्ष भी आपके ही शरीर हैं। पृथ्वी में जीवन प्रक्रिया आपके ही अनुशासन में चलती है। अतएव सभी पर अनुग्रह करने के लिए आप ही वन्दनीय हैं ॥१०॥

३०३४. उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः। स नो मृड पशुपते
नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११॥

हे पशुपालक रुद्रदेव! जिसमें ये सम्पूर्ण लोक स्थित हैं, वे वसुओं के निवास रूप, विश्वरूप (अण्डकटाहात्मक) विशाल कोश आपके ही हैं। ऐसे आप हमें सुख प्रदान करें, आपके लिए हमारा नमस्कार है। मांसभोजी सियार और कुत्ते आदि सभी हमसे दूर रहें। अमंगलकारी शब्दों से रोने वाली, बालों को खोलकर चिल्लाने वाली पैशाचिक वृत्तियाँ हमसे दूर अन्यत्र चली जाएँ ॥११॥

३०३५. धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१२॥

हे रुद्रदेव! आपका सुवर्णमय धनुष एक बार के प्रयास से हजारों जीवों को समाप्त कर देता है, ऐसे शिखण्डों से युक्त धनुष को प्रणाम है। यह देवों का आयुध जिस दिशा में भी हो, उसी ओर उसे हमारा नमन है ॥

३०३६. योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३॥

हे रुद्रदेव! जो पलायन कर जाता है और छिपकर आपको हानि पहुँचाना चाहता है। आप घायल पदान्वेषी की तरह खोजकर उसका वध कर देते हैं ॥१३॥

३०३७. भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१४॥

भव और रुद्रदेव समान मतिवाले हैं। ये प्रचण्ड पराक्रमशाली अपना शौर्य प्रदर्शन करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं। वे जिस दिशा में विद्यमान हों, उसी ओर उन्हें हमारा नमस्कार है। ॥१४॥

३०३८. नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते। नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥

हे रुद्रदेव! हमारे समक्ष आते हुए, वापस जाते हुए, बैठे हुए और खड़े होने, सभी स्थितियों में आपके प्रति हमारा नमस्कार है ॥१५॥

३०३९. नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

हे रुद्रदेव ! प्रातः, सायं, रात्रि और दिन सभी कालों में आपके प्रति हमारा प्रणाम है। भव और शर्व दोनों देवों के प्रति हम नमस्कार करते हैं ॥१६ ॥

३०४०. सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥१७ ॥

हजारों नेत्रों से युक्त, अति सूक्ष्मद्रष्टा, पूर्व की ओर अनेक बाण छोड़ने वाले मेधावी और जिह्वा से सम्पूर्ण विश्व के भक्षणार्थ सर्वत्र संव्याप्त रुद्रदेव के समीप हमारा गमन न हो ॥१७ ॥

३०४१. श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८ ॥

अरुण वर्ण के अश्वयुक्त काले अपवित्र के मर्दक, उन भयंकर महाकाल को, जिन्होंने (केशी नामक राक्षस के) रथ को धराशायी किया था, उन्हें हम पहले से जानते हैं- वे हमारा प्रणाम स्वीकार करें ॥१८ ॥

३०४२. मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥१९ ॥

हे पशुपतिदेव ! अपने आयुध हमारी ओर न फेंकें। आप हमारे ऊपर क्रोधित न हों, आपके प्रति हमारा नमस्कार है। अपने देवास्त्र को हमसे दूर फेंकें ॥१९ ॥

३०४३. मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः। मा त्वया समरामहि ॥

आप हमारी हिंसा न करें, हमें (अच्छे - बुरे के सम्बन्ध में) समझाएँ। हमारे ऊपर क्रोधित न होकर संरक्षण बनाये रखें। आपके प्रति कभी हमारा विरोध न रहे ॥२० ॥

३०४४. मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१ ॥

हे उग्रवीर ! आप हमारे गौ, मनुष्य, भेड़-बकरियों की कामना न करें। आप अपने शस्त्र को अन्यत्र देवहिंसकों की प्रजा पर छोड़कर उनका विनाश करें ॥२१ ॥

३०४५. यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥२२ ॥

जिन रुद्रदेव के आयुध क्षय, ज्वर और खाँसी हैं, बलशाली घोड़े के हिनहिनाने के समान ही पूर्व लक्षित मनुष्य के प्रति जिनके आयुध जाते हैं, उन उग्र रुद्रदेवता के लिए हमारा नमस्कार है ॥२२ ॥

३०४६. योऽ३न्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून्।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥२३ ॥

जो (रुद्रदेव) अन्तरिक्ष मण्डल में विराजमान रहते हुए यज्ञभाव से विहीन देवविरोधियों को नष्ट करते हैं, हम उन रुद्रदेव के लिए दसों शक्तियों (अँगुलियों) के साथ प्रणाम करते हैं ॥२३ ॥

३०४७. तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
तव यक्षं पशुपते अप्स्व१न्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४ ॥

हे पशुपतिदेव ! जंगली मृगादि पशु, हंस, गरुड़, शकुनि और अन्य वनचर पक्षी आदि आपके ही हैं।

आपका पूजनीय आत्मतेज अप् प्रवाहों में स्थित है, अतएव आपको अभिषिक्त करने के लिए ही दिव्य जल प्रवाहित होता है ॥२४ ॥

३०४८. शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो
अस्यसि । न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान्
परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् त्समुद्रे ॥२५ ॥

घड़ियाल, अजगर, कछुए, मछली और जलचर प्राणियों पर आप अपने तेज आयुधों को फेंकते हैं । हे रुद्रदेव ! आपकी सीमा से परे कुछ भी नहीं । आप सम्पूर्ण भूमण्डल को एक ही दृष्टि से देखने में समर्थ हैं । आप पूर्व और उत्तर समुद्रों तक में व्याप्त पृथ्वी पर आघात करते हैं ॥२५ ॥

३०४९. मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥२६ ॥

हे रुद्रदेव ! आप ज्वरादि रोगों से हमें पीड़ित न करें, स्थावर और जंगम के विष से भी हमें बचाएँ । विद्युत् रूप आग्नेयास्त्र हमसे दूर किसी भिन्न स्थान पर गिराएँ ॥२६ ॥

३०५०. भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व१न्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥२७ ॥

भगदेव द्युलोक के अधीश्वर हैं और भू-मण्डल के स्वामी हैं । वे द्यावा-पृथिवी के मध्य विस्तृत अन्तरिक्ष लोक को भी अपने तेजस् से परिपूर्ण करते हैं । उत्पत्तिकर्त्ता देव यहाँ से जिस दिशा में हों, उसी ओर उन्हें हमारा नमस्कार है ॥२७ ॥

३०५१. भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥२८ ॥

हे उत्पत्तिकर्त्ता देवराज ! आप याज्ञिक यजमानों को सुखी करें, आप पशुओं के अधिपति हैं । जो श्रद्धालु मनुष्य इन्द्रादि देवों को संरक्षक मानते हैं, उनके द्विपाद और चतुष्पाद जीवों को सुख प्रदान करें ॥२८ ॥

३०५२. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९ ॥

हे रुद्रदेव ! आप हमारे शिशुओं, वृद्धों एवं समर्थ पुरुषों का संहार न करें । हमारे वीर पुरुषों को विनष्ट न करें । आप हमारे माता-पिता और शरीर को भी पीड़ित न करें ॥२९ ॥

३०५३. रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः । इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥

रुद्रदेव के प्रेरणायुक्त कर्मों में तत्पर प्रमथगणों और कटुभाषी गणों को हम नमस्कार करते हैं । मृगया विहार के निमित्त किरात वेशधारी भवदेव के विस्तृत मुख युक्त श्वानों को नमन करते हैं ॥३० ॥

३०५४. नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः । नमो नमस्कृताभ्यो नमः
सम्भुञ्जतीभ्यः । नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥३१ ॥

हे रुद्रदेव ! आपकी विस्तृत घोषयुक्त शब्दों वाली, केशधारी, नमस्कारों से शोभित और संयुक्तरूप से भोजन ग्रहण करने वाली सेनाओं को प्रणाम है । हे देव ! आपकी कृपा से हमें मंगल और निर्भयता प्राप्त हो ॥३१ ॥

[३ - ओदन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** बार्हस्पत्यौदन । **छन्द-** १,१४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री, ३, ६, १० आसुरी पंक्ति, ४, ८ साम्नी अनुष्टुप् , ५, १३, १५, २५ साम्नी उष्णिक्, ७, १९-२२ प्राजापत्यानुष्टुप, ९, १७, १८ आसुर्यनुष्टुप् , ११ भुरिक् आर्ची अनुष्टुप्, १२ याजुषी जगती, १६, २३ आसुरी बृहती, २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, २६ आर्ची उष्णिक्, २७ साम्नी गायत्री, २८ साम्नी बृहती, २९ भुरिक् साम्नी बृहती, ३० याजुषी त्रिष्टुप्, ३१ अल्पशः अथवा याजुषी पंक्ति ।]

इस सूक्त के देवता भी ओदन (अन्न) हैं। इस सूक्त में यह बहुत स्पष्ट हो गया है कि ऋषि द्वारा वर्णित ओदन केवल स्थूल अन्न तक सीमित नहीं है, वह सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त ऐसा तत्त्व है, जिसकी विशेषताओं ने प्रकृति में विभिन्न आकार-प्रकार उत्पन्न किये हैं। उसका सेवन भी परम्परागत ढंग से नहीं होता, उसके लिए ऋषियों जैसी-परिष्कृत इन्द्रियाँ ही सक्षम होती हैं-

३०५५. तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥१ ॥

उस ओदन (अन्न) का सिर बृहस्पतिदेव हैं और ब्रह्म उसका मुख है ॥१ ॥

३०५६ द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२ ॥

द्युलोक और पृथ्वी इसके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा इस अन्न तत्त्व के नेत्र हैं। जो मरीचि आदि सप्तर्षि हैं, वे इसके प्राण और अपान हैं ॥२ ॥

३०५७. चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥३ ॥

धान्यकणों को कूटने वाला मूसल ही इसकी दृष्टि है और औखली ही इसकी अभिलाषा है ॥३ ॥

३०५८. दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४ ॥

दिति (विभाजक शक्ति) ही इसका सूप है और सूप को धारण करने वाली अदिति (अखण्ड शक्ति) है, वायुदेव (कणों-तुषों) को पृथक् करने वाले हैं ॥४ ॥

[अदिति शक्ति के अखण्ड प्रवाह ने सृष्टि उत्पादक मूल प्रवाह को धारण किया। दिति (विभाजक) शक्ति से उसका वर्गीकरण किया गया। यह क्रिया प्रत्यक्ष अन्न के लिए सूप में होती है तथा वायु प्रवाह इसके सहयोगी होते हैं।]

३०५९. अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥५ ॥

इस विराट् अन्न के कण ही अश्व हैं, चावल गौएँ हैं और पृथक् किया गया भूसा ही मच्छर हैं ॥५ ॥

[सृष्टि उत्पादक मूल तत्त्व में कुछ शक्ति कण (पावर पार्टिकल्स) अश्व शक्ति के प्रतीक हैं। उर्वर और पोषक सामर्थ्य वाले कण गौ के तुल्य हैं। मच्छर आदि कीट जिनमें प्राण तत्त्व नहीं के बराबर होता है, उन्हें उस दिव्य अन्न की भूसी कहना युक्ति- संगत है।]

३०६०. कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥६ ॥

नाना - प्रकार के दृश्य उसके (ब्रह्मौदन के) छिलके हैं, मेघ ही ऊपरी सतह (सिर) है ॥६ ॥

३०६१. श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७ ॥

काले रंग की धातु (लोहा) इसका मांस और लाल रंग का (ताँबा) इस अन्न तत्त्व का रक्त है ॥७ ॥

३०६२. त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥८ ॥

ओदन पकने के बाद जो भस्म शेष रहती है, वह सीसा है, जो सुवर्ण है, वही अन्न का वर्ण और जो कमल है, वही अन्न की गन्ध है ॥८ ॥

३०६३. खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥९ ॥

खलिहान इसके पात्र हैं, शकट के अवयव इसके कंधे हैं और ईषा (नामक शकट का अवयव) हँसली (कंधे की अस्थियाँ) है ॥९ ॥

३०६४. आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥१० ॥

बैलों के गले में बँधी हुई रस्सियाँ ही इसकी आँतें और चर्म रज्जु ही गुदा भाग है ॥१० ॥

३०६५. इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११ ॥

यह विस्तृत भूमि ही ओदन पाक के निमित्त कुम्भीरूपा है और द्युलोक ही इसका ढक्कन है ॥११ ॥

३०६६. सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥१२ ॥

जुताई की गहरी लकीरें इसकी पसलियाँ और नदी आदि में जो रेत है, वह (ऊबध्य) मलस्थान है ॥१२ ॥

३०६७. ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥१३ ॥

जल इसका हस्त प्रक्षालक है और छोटी-छोटी नदियाँ इस (ओदन) की अभिषिञ्चक हैं ॥१३ ॥

३०६८. ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥१४ ॥

कुम्भी ऋग्वेद द्वारा अग्नि पर रखी गयी है और यजुर्वेद द्वारा हिलायी गयी है ॥१४ ॥

३०६९. ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५ ॥

अथर्ववेद द्वारा इसे धारण किया गया (पकड़ा गया) है और सामवेदीय मंत्रों से इसे घेरा गया है ॥१५ ॥

३०७०. बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥१६ ॥

बृहत्साम ही जल में डाले गये चावलों को मिलाने वाला (काष्ठ) है और रथन्तरसाम ओदन निकालने का उपकरण (करछी) है ॥१६ ॥

३०७१. ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥१७ ॥

ऋतुएँ इस अन्न को पकाने वाली हैं और इनके (ऋतुओं के) दिवस-रात्रि इसकी (ओदन की) अग्नि के प्रज्वलनकर्त्ता हैं ॥१७ ॥

३०७२. चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३भीन्धे ॥१८ ॥

पाँच मुखों से युक्त पात्र में स्थित चावल को सूर्य की गर्मी उबालती है ॥१८ ॥

[पाक- पात्र पाँच मुखों वाला है, पककर यह अन्न पाँच तत्त्वों के रूप में प्रकट होता है । अन्तरिक्षीय सूक्ष्म प्रवाह सौर ऊर्जा के संयोग से विभिन्न पदार्थों का सृजन कर सकता है ।]

३०७३. ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥१९ ॥

इस ओदन यज्ञ द्वारा समस्त लोकों को अभिलषित फल की प्राप्ति होती है ॥१९ ॥

३०७४. यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥२० ॥

जिस ब्रह्मौदन के ऊपर और नीचे समुद्र, द्युलोक तथा पृथ्वी तीनों ही आश्रित हैं ॥२० ॥

३०७५. यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥२१ ॥

उस (ओदन) के उच्छिष्ट (शेष बचे अंश) से छह अस्सी (६x८० =४८० या ६८०) देव प्रकट हुए ॥२१ ॥

[यह कथन रहस्यात्मक है, किन्तु यह बात विज्ञान सम्मत है कि प्रकृति की सृजन-पोषण प्रक्रिया से बचे शेष पदार्थों को कृष्णगर्तों (ब्लैक होल्स) द्वारा खींचा जाकर उन्हें पुनः नयी सृजन प्रक्रिया में लगा दिया जाता है ।]

३०७६. तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥२२ ॥

उस ओदन की जो महत्ता है, उसके सम्बन्ध में हम (तत्त्वदर्शियों से) पूछते हैं ॥२२ ॥

३०७७. स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥२३ ॥

जो इस अन्न की महिमा के ज्ञाता हैं, वे यह (रहस्य) समझें ॥२३ ॥

३०७८. नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥२४ ॥

वे इसे कम न कहें, वह असिंचित है यह भी न कहें तथा वह क्या है ? ऐसा भी न कहें ॥२४ ॥

३०७९. यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥२५ ॥

दाता ने जितना दिया है, उससे अधिक न चाहें ॥२५ ॥

३०८०. ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३: प्रत्यञ्चा३मिति ॥२६ ॥

(ब्रह्मज्ञानी विचारक परस्पर वार्तालाप करते हैं) आपने आगे (सामने) के ओदन का सेवन किया है अथवा पीछे (पराङ्मुख) स्थित अन्न को ग्रहण किया ॥२६ ॥

३०८१. त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥२७ ॥

आपने ओदन का भक्षण किया है अथवा ओदन ने ही आपका प्राशन किया है ॥२७ ॥

३०८२. पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥२८ ॥

यदि आपने पराङ्मुख स्थित ओदन का सेवन किया है, तो प्राणवायु आपको त्याग देगी, ऐसा इनसे (सेवनकर्त्ताओं से) कहा जाए ॥२८ ॥

३०८३. प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥२९ ॥

यदि आपने सम्मुख उपस्थित ओदन का सेवन किया है, तो अपान वायु की वृत्तियाँ आपका परित्याग करेंगी । विद्वान् इस प्रकार इसके सेवनकर्त्ता से कहें ॥२९ ॥

३०८४. नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥३० ॥

न मैंने ओदन का सेवन किया है, और न ही अन्न ने मेरा प्राशन किया है ॥ ३० ॥

३०८५. ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥३१ ॥

वास्तव में अन्न ही अन्न का सेवन करता है ॥

[अपने को ' मैं ' सम्बोधन करने वाला तो जीवात्मा है, उसे अन्न की आवश्यकता नहीं होती । अन्नमय कोश ही अन्न का सेवन करता है । सृष्टि की अन्तरंग प्रक्रिया में भी खेत का बीज इसी सूक्ष्म अन्न को खाकर कई गुना हो जाता है ।]

[४ - ओदन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** १, ७, १० (१) , १-१८ (७) साम्नी त्रिष्टुप् , १, ४, ११ (२) , १-१८ (३) , २-३, १३-१७ (५) एकापदासुरी गायत्री, १, १०, १२, १६ (४) दैवी जगती, २, १३ (४) आसुरी बृहती, ७, १३, १५(२) १, ४-१२, १८ (५) एकपदासुर्यनुष्टुप् , १-१८ (६) साम्नी अनुष्टुप् , २- ५, ८-९, ११-१८ (१) आर्च्यनुष्टुप्, ६ (१) साम्नी पंक्ति, २, ५, ९, १६, १७ (२) आसुरी जगती, ३, ६, १०, १२, १४ (२) आसुरी पंक्ति, ३(४) आसुरी त्रिष्टुप्, ४, १५, १७ (४) याजुषी गायत्री, ५, ६, ९ (४) दैवी पंक्ति, ७-८ (४) प्राजापत्या गायत्री, ८ (२) आसुर्युष्णिक् , ११, १४, १८ (४) दैवी त्रिष्टुप् , १८ (२) एकपदा भुरिक् साम्नी बृहती ।]

इस सूक्त में दिव्य ओदन के सेवन की मर्यादाएँ बतलायी गई हैं । इसका सेवन सिर, मुँह, आँख, कान, पृष्ठ आदि शरीर के सभी अंगों से किया जाता है । वर्तमान विज्ञान इस निष्कर्ष तक तो पहुँच गया है कि मनुष्य जो भोजन करता है, उसके अलावा

भी उसकी शक्ति का कोई अन्य भी स्रोत है, किन्तु वह क्या है; यह उसे विदित नहीं। वृक्ष - वनस्पति जिस प्रकार प्रकृति के सूक्ष्म प्रवाहों से अपना अन्न (आहार) प्राप्त करके बढ़ते- पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को भी वह प्राप्त होता है। वेद ने उसे ही दिव्य ओदन कहा है। वह सामान्य रूप से जितना मिलता है; उतना तो मिलता रहता है, किन्तु उसे विशेष रूप में पाने के लिए ऋषियों जैसे (सुसंस्कार युक्त) अंग-अवयव चाहिए, अन्यथा उसे पाया नहीं जा सकता। रेडियो तरंगों के प्रसारण को स्थूल कान सीधे सुन नहीं सकते, उसके लिए मध्यस्थ तंत्र (सर्किट) की आवश्यकता होती है। संगीत की बारीकियों को अनगढ़ कान नहीं सुन सकते, दिव्य दृष्टि के बिना अर्जुन विराट् के दर्शन नहीं कर सकते। अंग-प्रत्यंगों में ऋषियों जैसी सुसंस्कारिता के अंश विकसित हुए बिना उस दिव्य ओदन का प्राशन (चाटना-सेवन) संभव नहीं है, यही बात इस सूक्त में स्पष्ट करते हुए उसे ग्रहण करने के सूत्र संकेत दिये गये हैं। विभिन्न अंगों से सम्बन्धित दिव्य शक्तियों, उनके संस्कारों द्वारा ही उसे आत्मसात् किया जा सकता है-

३०८६. ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१ ॥

पूर्व अनुष्ठाता ऋषियों ने जिस सिर से ओदन का प्राशन किया था, यदि इसके अतिरिक्त दूसरे सिर से आप प्राशन करते हैं, तो ज्येष्ठ सन्तान से प्रारंभ होकर क्रमशः आपकी सन्ततियों के विनष्ट होने की संभावना है; ऐसा ज्ञाता पुरुष उससे (प्राशनकर्त्ता से) कहे। प्राशिता कहे- मैंने अभिमुख (आगे) और पराङ्मुख (पीछे) की स्थिति में भी इस अन्न का सेवन नहीं किया। पूर्व ऋषियों ने बृहस्पति से सम्बन्धित सिर से इसका प्राशन किया, मैंने भी अन्न सम्बन्धी सिर से उसी प्रकार सेवन किया। ओदन ने ही ओदन का प्राशन किया है। इस प्रकार यह प्राशित अन्न सम्पूर्ण अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। जो मनुष्य इस प्रकार से ओदन के प्राशन को जानता है, वही सर्वांगपूर्ण होकर पुण्यमय स्वर्गलोक में विराजता है ॥१ ॥

३०८७. ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥२ ॥

पूर्व ऋषियों की रीति से भिन्न यदि आपने दूसरे कानों से इसका (ओदन का) प्राशन किया, तो बधिर दोष से दु:खी होंगे, (ज्ञाता मनुष्य प्राशनकर्ता से) यह कहे। प्राशिता कहे-द्यावा-पृथिवी रूप कानों से मैंने इस अन्न का सेवन किया और उससे उसके वांछित फल को प्राप्त किया। इसमें दोष की सम्भावना नहीं। इस प्रकार सेवन किया हुआ ओदन सभी अंगों और अवयवों से परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार जो इसे जानता है, वह सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करते हुए पुण्यमय स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥२ ॥

३०८८. ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सूर्याचन्द्रमसाभ्या मक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन नेत्रों से प्राशन किया था, उनसे भिन्न यदि आपने दूसरे लौकिक नेत्रों से सेवन किया,

तो नेत्रहीनता का दोष लगेगा, ऐसा इससे (सेवनकर्त्ता से) कहे । (सेवनकर्त्ता कहे) मैंने इस अन्न को अभिमुख और पराङ्मुख होकर ग्रहण नहीं किया, अपितु उसका सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रों से सेवन किया, जिससे अभीष्ट फल को प्राप्त किया । अत: यह अन्न परिपूर्ण अङ्ग- अवयवों से युक्त है । इस प्रकार से जो इसे जानते हैं, वे सर्वांगपूर्ण फल को उपलब्ध करते हुए पुण्यप्रद स्वर्गादि लोकों में पहुँचते हैं ॥३ ॥

३०८९.ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४ ॥

जिस ब्रह्मात्मक मुख से प्राचीन ऋषियों ने ओदन का प्राशन किया था, यदि आप उनसे भिन्न दूसरी रीति से इसका सेवन करेंगे, तो आपके समक्ष ही सन्तति का विनाश होगा, यह सेवनकर्त्ता को बताएँ । (सेवनकर्त्ता का कथन) मैंने इस अन्न का अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में प्राशन नहीं किया है; किन्तु ब्रह्मरूपी मुख से इसका सेवन किया है । उसी ब्राह्मी मुख से इसे यथेष्ट स्थल तक पहुँचाया है, इस प्रकार यह सेवित अन्न सर्वांगपूर्ण होकर सम्पूर्ण फल को ज्ञाता से कहता है । जो मनुष्य इस प्रकार से ओदन- प्राशन की विधि से परिचित हैं, वे सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करके पुण्यफल का उपभोग करने वाले स्वर्गादि लोक को प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

३०९०.ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह।तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥५ ॥

पूर्व ऋषियों ने जिस जिह्वा से ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न दूसरी (लौकिक) जिह्वा से इसका सेवन करने पर आपकी जिह्वा की सामर्थ्य (प्रभावक्षमता) समाप्त हो जाएगी, ऐसा उससे (प्राशनकर्त्ता से) कहे । प्राशिता का कथन- इस अन्न का हमने अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में सेवन नहीं किया, अग्निरूपी जिह्वा से हमने इसको ग्रहण किया, वही प्राशिता और अन्न की जिह्वा है, जिससे उसके फल को प्राप्त किया । अत: यह अन्न सभी अंगों और अवयवों से परिपूर्ण है । इस प्रकार से जो इसे जानते हैं, वे सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करते हुए पुण्य फलरूप स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

३०९१.ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ऋतुभिर्दन्तैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥६ ॥

प्राचीनकालीन ऋषिगणों ने जिन दाँतों से अन्न का भक्षण किया था, उनसे भिन्न दूसरे (लौकिक) दाँतों से सेवन करने की स्थिति में आपके दाँत गिर जाएँगे, ऐसा उससे (प्राशिता से) कहे ।(प्राशिता का कथन -) इस ओदन को हमने अभिमुख और पराङ्मुख अवस्था में सेवन नहीं किया, अपितु इसे वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुरूप दाँतों से प्राशित किया है, इस प्रकार सेवित अन्न सर्वांगपूर्ण फल को प्रदान करता है । इस प्रकार से जानने वाला ज्ञानी पुरुष सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में विराजमान होता है ॥६ ॥

३०९२. ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह।तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सप्तर्षिभिः प्राणापानैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥७॥

पूर्व पुरुषों ने जिन प्राणों, अपानों से ओदन का सेवन किया, उनसे भिन्न दूसरी स्थिति में (लौकिक प्राणापानों से) सेवन करने पर प्राण और अपानरूप मुख्य प्राण आपका परित्याग कर देंगे, ऐसा प्राशिता से कहे। (प्राशिता कहे-) हमने अभिमुख और पराङ्मुख किसी भी स्थिति में अन्न का सेवन नहीं किया, अपितु सप्तर्षिरूप प्राणों-अपानों से इसका प्राशन किया है। इस प्रकार सेवित अन्न सम्पूर्ण फल को प्रदान करता है। इस प्रकार जो मनुष्य इस ओदन- प्राशन की विधि को जानता है, वह सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करता हुआ, इसके पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है॥७॥

३०९३.ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अन्तरिक्षेण व्यचसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥८॥

पूर्वकालीन ज्ञानियों ने जिस विधि से ओदन का प्राशन किया, उससे भिन्न अन्य विधियों से (लौकिक रूप से) इसका सेवन किये जाने पर राजयक्ष्मा रोग आपका विनाश करेगा, ऐसा इससे (प्राशनकर्त्ता से) कहे। (प्राशनकर्त्ता कहे-) हमने अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में इसका सेवन न करके अन्तरिक्षात्मक विधि से (अन्तः प्राण से) इसका सेवन किया है और इससे अभीष्ट फलों को प्राप्त किया है। जो प्राशनकर्त्ता इस प्रकार से ओदन-प्राशन की विधि को जानते हैं; वे अभीष्ट फल को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं॥८॥

३०९४.ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥९॥

जिस पृष्ठ से प्राचीन ऋषियों ने इस ओदन का सेवन किया , उसके अतिरिक्त यदि किसी पृष्ठ भाग से प्राशन करेंगे, तो विद्युत् आपको विनष्ट कर देगी, ऐसा (प्राशिता से) कहे। (प्राशिता कहे-) हमने इसका अभिमुख और पराङ्मुख होकर सेवन नहीं किया, अपितु द्यौरूपी पृष्ठ से इसका प्राशन किया है, उसी से इसे यथेष्ट स्थल पर प्रेरित किया है। इस प्रकार से सेवन किया गया यह अन्न अभीष्ट फलदायी होता है। जो साधक इस प्रकार से इस ओदन-प्राशन के सम्बन्ध में जानते हैं, वे पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करते हैं॥९॥

३०९५. ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। पृथिव्योरसा।तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१०॥

जिस वक्षस्थल से प्राचीन ज्ञानियों (ऋषियों) ने इस ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न दूसरे वक्षस्थल से सेवन किये जाने पर कृषि कार्य में समृद्ध नहीं होंगे, ऐसा प्राशिता से कहे। (प्राशिता कहे-) हमने पराङ्मुख अथवा अभिमुख होकर इस अन्न का प्राशन नहीं किया, अपितु पृथ्वीरूप वक्षस्थल से ओदन का प्राशन किया और उसे यथेष्ट स्थल की ओर प्रेरित किया है। इस प्रकार से प्राशित यह अन्न सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो साधक इसके सम्बन्ध में इस प्रकार ज्ञान रखता है, वह पुण्यभूत स्वार्गादि के सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करता है ॥१० ॥

३०९६. ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११ ॥

पूर्वकालीन पुरुषों ने जिस उदर से अन्न का सेवन किया, उससे भिन्न दूसरे ढंग से प्राशन करने की स्थिति में उदर के लिए कष्टदायी अतिसार नामक रोग से आपका विनाश होगा, ऐसा (प्राशिता से) कहे। (प्राशिता कहे-) अभिमुख अथवा पराङ्मुख अवस्था में मैंने इसका सेवन नहीं किया, अपितु सत्यरूपी उदर से इसका प्राशन किया, जिससे इसके दोष से मुक्त होकर यथेष्ट स्थल में इसे प्रेषित किया है। इस प्रकार से सेवित यह ओदन सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो साधक इस विधि से इससे (ओदन- प्राशन से) संबंधित जानकारी रखता है, वह इसके सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि को उपलब्ध करता है ॥११ ॥

३०९७. ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१२ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिस वस्ति (मूत्राशय) द्वारा ओदन का सेवन किया था, उससे भिन्न दूसरी विधि से इसके सेवन से आपकी जल में मृत्यु होगी, ऐसा (प्राशनकर्त्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) मैंने अभिमुख अथवा पराङ्मुख अवस्था में इसका प्राशन नहीं किया है, अपितु समुद्र रूपी वस्ति से ओदन का प्राशन किया है, इससे दोषमुक्त होने पर उसके यथेष्ट लाभ को प्राप्त किया है। इस प्रकार सेवित यह अन्न सम्पूर्ण अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस विधि का ज्ञाता सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट लाभ प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है ॥१२ ॥

३०९८. ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। मित्रावरुणयो रूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१३ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन जंघाओं से इस ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न विधि से इसके सेवन से जंघाएँ विनष्ट हो जाएँगी, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) हमने अभिमुख अथवा पराङ्मुख स्थिति में ओदन का प्राशन नहीं किया। अपितु मित्रावरुण रूपी जंघाओं से इसका सेवन करके उसके यथेष्ट फल को प्राप्त किया। इस प्रकार से प्राशित यह अन्न सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो इस प्रकार से इसके सम्बन्ध में ज्ञान रखता है, वह सर्वाङ्गपूर्ण फलों को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों का अधिकारी होता है ॥१३ ॥

३०९९.ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। स्रामो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥

पूर्व ऋषियों ने जिन अस्थियुक्त जानुओं (घुटनों) से इस अन्न का सेवन किया, उससे भिन्न विधि से इसके सेवन किये जाने से जानु भाग सूख जाएगा, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे ।(प्राशिता कहे-) मैंने अभिमुख (सामने) या पराङ्मुख (पीछे) स्थिति में इसका सेवन नहीं किया, अपितु त्वष्टादेव के जानुओं से ओदन- प्राशन किया और उनसे उसे यथेष्ट स्थान की ओर प्रेषित किया । इस प्रकार सेवित यह अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । इस प्रकार जो इसकी विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

३१००. ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१५॥

पूर्व ज्ञानी पुरुषों ने जिन पैरों से ओदन का सेवन किया, उनसे भिन्न दूसरी विधि से सेवन किये जाने पर आपको बहुत अधिक चलने (निरर्थक चलने वाले) का पाप लगेगा, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे । (प्राशिता कहे-) सामने या पीछे से मैंने ओदन का प्राशन नहीं किया, अपितु अश्विनीकुमारों के पैरों से मैंने इसका सेवन किया, जिससे यथेष्ट स्थल की ओर इसे प्रेषित किया है । इस प्रकार के प्राशन से यह सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । इस प्रकार से जो इससे सम्बंधित विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥१५ ॥

३१०१. ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१६॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन पंजों (पदाग्र भाग) से इस ओदन का सेवन किया, उससे भिन्न विधि से इसका सेवन करने पर सर्प दंश से मृत्यु को प्राप्त होगा, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे । (प्राशिता कहे-) अभिमुख अथवा पराङ्मुख दोनों ही अवस्थाओं में हमने इसका सेवन नहीं किया, अपितु सवितादेव के पंजों से इसका प्राशन किया है, इस स्थिति में दोषमुक्त होकर यह यथास्थान पहुँचा है । इस प्रकार से सेवित अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । इस प्रकार की विधि का ज्ञाता मनुष्य इसके सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥१६ ॥

३१०२. ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१७॥

पूर्वकालीन ज्ञानियों ने जिन हाथों से ओदन का प्राशन किया, उससे भिन्न रीति से इसके सेवन से आपको ब्रह्महत्या का दोष लगेगा, (अभिज्ञ पुरुष प्राशिता से) ऐसा कहे ।(प्राशिता कहे-) समक्ष अथवा पृष्ठभाग (पराङ्मुख) से हमने इसका प्राशन नहीं किया, अपितु परब्रह्म के सत्यरूप हाथों से इसका सेवन किया और उन्हीं से इसके यथेष्ट फल की प्राप्ति की है अथवा इसे यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार सेवन किया गया अन्न सभी अंग- अवयवों से परिपूर्ण होता है । जो साधक इस प्रकार से इस प्राशन- विधि का ज्ञाता है, वह पुण्यभूत स्वर्गलोक में सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करता है ॥१७ ॥

३१०३.ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१८ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिस ब्रह्मात्मक प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न रीति से इसके सेवन से आप अपनी प्रतिष्ठा खो देंगे, ऐसा (प्राशिता से) कहे । (प्राशिता कहे-) अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में हमने इसे ग्रहण नहीं किया, अपितु ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर संसार के प्रतिष्ठाभूत ब्रह्म से इसका प्राशन किया और इसके यथेष्ट फल को प्राप्त किया है । इस प्रकार से सेवित यह अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । जो साधक पुरुष इस प्रकार से इस अन्न सेवन की विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के प्रदाता पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में विराजमान होते हैं ॥१८ ॥

[५ - ओदन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** आसुरीअनुष्टुप्, २ आर्ची उष्णिक्, ३ भुरिक् साम्नी त्रिपदा त्रिष्टुप्, ४ आसुरी बृहती, ५ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती, ६ साम्नी उष्णिक्, ७ प्राजापत्या बृहती ।]

३१०४. एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥१ ॥

यह (उक्त महिमायुक्त) जो ओदन है, उसका स्वरूप सूर्य मण्डलात्मक है ॥१ ॥

३१०५. ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥२ ॥

जो मनुष्य ओदन के ज्ञाता हैं, वे सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

३१०६. एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥३ ॥

प्रजापति ने इस महिमाशाली ओदन से तैंतीस देवों या लोकों की रचना की ॥३ ॥

३१०७. तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥४ ॥

उन लोकों या देवों के प्रज्ञान (प्रकृष्ट ज्ञान या पहचान) के लिए ही यज्ञीय विज्ञान का निर्माण किया गया ॥४ ॥

३१०८. स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥५ ॥

इस तथ्य के ज्ञाता के जो निंदक होते हैं, वे अपने प्राण की गति को रोक देते हैं (मृत्यु को प्राप्त होते हैं) ॥५ ॥

३१०९. न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥६ ॥

इससे उसकी प्राणशक्ति का ही क्षय नहीं होता, अपितु उसका सम्पूर्ण अस्तित्व समाप्त हो जाता है ॥६ ॥

३११०. न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥७ ॥

उसका सर्वस्व नाश ही नहीं होता, अपितु उसके प्राण असमय में ही उसका परित्याग कर देते हैं ॥७ ॥

[६ - प्राण सूक्त]

[**ऋषि-** वैदर्भि भार्गव। **देवता-** प्राण। **छन्द-** अनुष्टुप्, १ शङ्कुमत्यनुष्टुप्, ८ पथ्यापंक्ति, १४ निचृत् अनुष्टुप्, १५ भुरिक् अनुष्टुप्, २० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, २१ मध्येज्योति जगती, २२ त्रिष्टुप्, २६ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्।]

३१११.प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१

जिस प्राण के अधीन यह सम्पूर्ण विश्व है, उस प्राण के लिए हमारा नमन है । वही प्राण सभी प्राणियों का ईश्वर है और उसी में सम्पूर्ण विश्व विराजमान है ॥१ ॥

३११२.नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२

हे प्राण ! आप शब्दध्वनि करने वाले और मेघों में गर्जना करने वाले हैं, आपके निमित्त प्रणाम है । आप विद्युत् रूप में चमकने वाले और जल वृष्टि करने वाले हैं, आपको हमारा नमन है ॥२ ॥

३११३. यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३ ॥

हे प्राण ! जिस समय आप मेघों द्वारा ओषधियों को अभिलक्षित करते हुए, महान् गर्जना करते हैं, तब ओषधियाँ तेजस्वी होती हैं और गर्भ को धारण करके विविध प्रकार से विस्तार प्राप्त करती हैं ॥३ ॥

३११४. यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥४ ॥

वर्षाकाल में जब प्राण ओषधियों को लक्षित करके गर्जना करते हैं, तब उस समय सभी हर्षित होते हैं । भूमि के सम्पूर्ण प्राणी आनन्द- विभोर हो जाते हैं ॥४ ॥

३११५. यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५ ॥

जब प्राणदेव जल वृष्टि द्वारा विस्तृत भूक्षेत्र को सींचते हैं, उस समय गौ आदि पशु हर्षित होते हैं कि निश्चित ही अब हम सबकी अभिवृद्धि होगी ॥५ ॥

३११६. अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६ ॥

प्राणदेव से अभिषिञ्चित हुई ओषधियाँ, प्राण के साथ वार्तालाप करती हुई कहती हैं कि हे प्राण ! आप हम सबकी आयु की वृद्धि करें तथा सभी को शोभन सुगन्धि से युक्त करें ॥६ ॥

३११७. नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥७ ॥

हे प्राणदेव ! आगमन करते हुए, जाते हुए, कहीं भी स्थित हुए तथा बैठते हुए, (सभी स्थितियों में) आपके प्रति हमारा नमन है ॥७ ॥

३११८. नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते । पराचीनाय
ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥८ ॥

हे प्राणदेव ! प्राण- प्रक्रिया के व्यापार करने वाले तथा अपानन व्यापार करने वाले आपके निमित्त नमन है । परागमन स्वभाव वाले, आगे बढ़ने और पीछे लौटने आदि सभी व्यापारों में आपके प्रति हमारा नमन है ॥८ ॥

३११९. या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९ ॥

हे प्राणदेव ! आपका प्रिय जो (प्राणमय) शरीर है , आपकी जो प्रेयसी (जीवनीशक्ति) है तथा अमृतत्त्व से युक्त ओषधि है; वह सब दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥९ ॥

३१२०. प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥१० ॥

पुत्र के साथ रहने वाले पिता की तरह, प्रजाओं के साथ प्राण रहते हैं । जो प्राण धारण करने वाले (जंगम प्राणी) हैं तथा जो ऐसे नहीं (वृक्ष- वनस्पति या पत्थर, धातु आदि) हैं, उन सबके ईश्वर (नियन्त्रणकर्ता) प्राण ही हैं ।

३१२१. प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११ ॥

प्राण ही मृत्यु (के कारण) हैं, प्राण ही रोगादि (के कारण) हैं । देवशक्तियाँ प्राणों की ही उपासना करती हैं । प्राण ही सत्यनिष्ठ व्यक्ति को श्रेष्ठ लोक में प्रतिष्ठित करता है ॥११ ॥

[प्राण शरीर छोड़ते हैं, तो मृत्यु होती है । प्राण शरीरस्थ विकारों को बाहर फेंकते हैं , तो रोग प्रकट होते हैं । देव शक्तियाँ भी प्राण की विशिष्ट धाराओं के रूप में प्रकट होती हैं ।]

३१२२. प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२ ॥

प्राण ही विराट् और सर्वप्रेरक है, अतएव उस प्राण की ही सभी देव उपासना करते हैं । वही सर्व उत्पादक सूर्य अमृतमय सोम और प्रजाओं के उत्पत्तिकर्त्ता प्रजापतिदेव हैं ॥१२ ॥

३१२३. प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥१३ ॥

प्राण और अपान ही चावल और जौ के रूप में रहते हैं । प्राणों को ही अनड्वान (भारवाही वृषभ) कहते हैं । जौ में प्राण स्थित है तथा चावलों को अपान कहा गया है ॥१३ ॥

[प्राण -प्रक्रिया, धारक -प्रक्रिया है तथा अपान निष्कासक प्रक्रिया है । यह शोध का विषय है कि जौ और चावलों का इनके साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है ।]

३१२४. अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४ ॥

जीवात्मा गर्भ में प्राणन और अपानन की क्रिया सम्पन्न करता है । हे प्राण ! आपके द्वारा प्रेरित हुआ प्राणी पृथ्वी पर उत्पन्न होता है ॥१४ ॥

३१२५.प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५ ॥

प्राण को मातरिश्वा वायु कहा गया है और वायु का नाम ही प्राण है। भूतकाल में, भविष्यत्काल में और वर्तमानकाल में जो कुछ भी है, वह सब प्राण में ही प्रतिष्ठित है ॥१५ ॥

३१२६. आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६ ॥

हे प्राण ! जब आप वृष्टि द्वारा परितृप्त करते हैं, तब महर्षि अथर्वा द्वारा रचित, अंगिरा गोत्रियों और देवताओं द्वारा निर्मित तथा मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की जाने वाली सम्पूर्ण ओषधियाँ प्रकट होती हैं ॥१६ ॥

३१२७. यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७ ॥

जिस समय प्राण वर्षा ऋतु में वृष्टिरूप से विशाल पृथ्वी पर बरसता है, तो इसके अनन्तर ही ओषधियाँ और वनस्पतियाँ प्रादुर्भूत होती हैं ॥१७ ॥

३१२८. यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥१८ ॥

हे प्राणदेव ! जो आपके वर्णित माहात्म्य को जानते हैं और जिस ज्ञानी मनुष्य में आप विराजमान होते हैं, उसके निमित्त समस्त देव उत्तमलोक (स्वर्ग) एवं अमरत्व प्रदान करते हैं ॥१८ ॥

३१२९. यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥१९ ॥

हे प्राण ! सम्पूर्ण प्रजाजन, जिस प्रकार आपके निमित्त बलि (उपभोग योग्य अन्न) लेकर आते हैं; हे श्रेष्ठ यशस्विन् ! उसी प्रकार आपकी महिमा को सुनने वाले विद्वान् के निमित्त भी (वे मनुष्यादि) बलि प्रदान करें ॥१९ ॥

३१३०. अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२० ॥

देवशक्तियों में जो प्राण है, वही गर्भ में विचरण करता है। सभी ओर संव्याप्त होकर वही पुनः प्रकट होता है। इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल और भविष्यत्काल में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में , इस प्रकार अपनी शक्तियों से प्रवेश किया है, जिस प्रकार पिता अपने पुत्र में, अपनी शक्तियों के साथ प्रविष्ट होता है ॥२० ॥

३१३१. एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्। यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य
न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥२१ ॥

जल से ऊपर उठता हुआ हंस एक पैर को उठाता नहीं है। हे प्रियजनो ! यदि वह उस पैर को उठा दे, तो यह आज, कल, दिन, रात्रि, प्रकाश और अंधकार कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा ॥२१ ॥

[प्राण को हंस और संसार को भवसागर कहा गया है। यह प्राण सदैव गतिशील रहता है, किन्तु इस भवसागर में वह अपना एक अंश सतत बनाये रखता है। यदि प्राण का वह अंश भी हट जाए, तो यह काया- जगत् सब समाप्त हो जाएगा।]

३१३२. अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२ ॥

आठ चक्रों वाला एक नेमि-धुरा (प्राण) हजारों अक्षर (अनश्वर) प्रभावों के साथ आगे- पीछे घूमता है। अपने आधे भाग से वह विश्व के लोकों-पदार्थों की रचना करता है, जो भाग शेष रहता है, वह किसका प्रतीक-चिह्न है।

[शरीर भी आठ चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि पूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, लोलक तालु तथा सहस्रार) वाला है। विश्व भी आठ दिशाओं से संयुक्त है। ये आठों चक्र प्राण की धुरी पर ही गतिशील हैं। प्राण अन्दर- बाहर सभी जगह सक्रिय है, एक भाग शरीर या विश्व व्यवस्था चलाता है, शेष किस (अनन्तसत्ता) का प्रतीक है, ऐसी जिज्ञासा व्यक्त की गई है।]

३१३३. यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥२३ ॥

जो प्राण अनेक जन्मों को धारण करने वाले, चेष्टाशील सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं और दूसरे प्राणियों की देह में शीघ्रतापूर्वक प्रवेश करते हैं, ऐसे हे प्राण ! आपके निमित्त हमारा प्रणाम है ॥२३ ॥

३१३४. यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥२४ ॥

जो प्राण अनेक रूपों से जन्मने और गतिमान् रहने वाले सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है, वह प्राण प्रमादरहित होकर सदैव सभी ओर विचरणशील होते हुए ज्ञानशक्ति से सम्पन्न और असीमित होकर हमारे समीप स्थित रहे ॥

३१३५.ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते । न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ।

हे प्राण ! प्राणियों की निद्रावस्था में उनके रक्षणार्थ आप जागते रहें, सोएँ नहीं। प्राणियों के सोने पर, इस प्राण के सोने के सम्बन्ध में किसी ने परम्परा क्रम से सुना नहीं है ॥२५ ॥

[जब मनुष्य सो जाता है, तब भी प्राण - प्रवाह शरीर के पाचन, श्वास-प्रश्वास, रक्त संचरण आदि सभी संस्थानों को गतिशील रखते हैं।]

३१३६. प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६ ॥

हे प्राण !आप हमसे विमुख न हों और न हमसे दूर अन्यत्र जाएँ। हम आपको अपने अस्तित्व के लिए बाँधते हैं। वैश्वानर अग्नि को जिस प्रकार देह में धारण करते हैं, उसी प्रकार हम अपने शरीर में आपको धारण करते हैं ॥

[७ - ब्रह्मचर्य सूक्त]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- ब्रह्मचारी । **छन्द**- १ पुरोऽतिजागत विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी, ३ उरोबृहती, ४-५, २४ त्रिष्टुप्, ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती, ७ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, ८ पुरोऽतिजागता विराट् जगती, ९ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, १० भुरिक् त्रिष्टुप्, ११, १३ जगती, १२ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराट् अतिजगती, १४, १६-२२ अनुष्टुप्, १५ पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्, २३ पुरोबार्हतातिजागतगर्भा त्रिष्टुप्, २५ एकावसानार्च्युष्णिक्, २६ मध्येज्योति उष्णिग्गर्भा त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि ब्रह्मा तथा देवता ब्रह्मचारी हैं। 'चर' धातु चलने-आचरण एवं सेवन के अर्थों में प्रयुक्त होती है। इस आधार पर ब्रह्मचारी का व्यापक अर्थ होता है, ब्रह्म (ब्राह्मी चेतना या अनुशासन) में ही चलने वाला अथवा उसी का सेवन करने वाला। सूक्त के मन्त्रों में ब्रह्मचारी की जो महत्ता दर्शायी गयी है, वह इसी व्यापक संदर्भ से सिद्ध होती है। ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ 'वीर्य रक्षा' भी उसी व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत आता है। वेद अध्येता मन्त्रों को इसी संदर्भ के अनुसार देखें-समझें-

३१३७. ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं१ तपसा पिपर्ति ॥१ ॥

ब्रह्मचारी (ब्रह्म के अनुशासन में आचरणशील) द्युलोक और भूलोक इन दोनों को अपने अनुकूल बनाता हुआ चलता है। देवगण उस (ब्रह्मचारी) में सौमनस्यतापूर्वक निवास करते हैं। इस प्रकार वह पृथ्वी और द्युलोक को अपने तप से धारण करता है तथा आचार्य को परिपूर्ण (तृप्त या सार्थक) बनाता है ॥१ ॥

[ब्रह्म के अनुशासन में चलने वाले अपनी भावनाओं , विचारों तथा क्रियाओं से पृथ्वी एवं आकाश के स्थूल - सूक्ष्म प्रवाहों को अपने (ब्रह्मानुशासन के) अनुरूप बनाता है । लौकिक अर्थों में शरीर का नाभि से नीचे वाले भाग को पृथ्वी से सम्बद्ध, नाभि से कण्ठ तक अन्तरिक्ष से तथा सिर को 'द्यु' से सम्बन्धित कहा जाता है । ब्रह्मचारी इनको परस्पर बनाता है तथा सभी को ब्रह्मानुशासन में आबद्ध रखता है ।]

३१३८. ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे । गन्धर्वा एनमन्वायन्
त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥२ ॥

देव, पितर, गन्धर्व और देवगण ये सभी ब्रह्मचारी के पीछे (सहयोगार्थ) चलते हैं । तीन एवं तीस (या तैंतीस), तीन सौ और छह हज़ार इन देवताओं का ब्रह्मचारी ही अपने तप से परितोषण करता है ॥२ ॥

[देवों को विभिन्न कोटियों (विभागों) में बाँटा गया है । तीनों लोकों के तीन, उनके दस-दस सहयोगी ३०, दोनों ३३ आदि । वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार देव शक्तियों को विशिष्ट प्राण प्रवाह कहा गया है । उनकी संख्या हजारों कही गयी है । वही भाव यहाँ युक्तिसंगत बैठता है ।]

३१३९. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३ ॥

ब्रह्मचारी को अपने समीप बुलाते हुए (उपनयन संस्कार करके) आचार्य अपने ज्ञानरूपी शरीर के गर्भ में उसे धारण करता है । आचार्य तीन रात्रि तक उसे अपने गर्भ में रखता है । जब (दूसरे आध्यात्मिक जन्म को लेकर) वह बाहर आ जाता है, तो देवगण (दिव्य शक्ति प्रवाह अथवा सत् पुरुष) एकत्रित (उसके सहयोग या अभिनन्दन के लिए) होते हैं ॥३ ॥

[आचार्य शिष्य को अपने गर्भ में तीन रात्रियों में रखता है, तीन दिनों का उल्लेख नहीं है । रात्रि अन्धकार की-अज्ञान ग्रस्त स्थिति की प्रतीक होती है । जब तक शिष्य के तीनों प्रकार के अन्धकारों (भावना, विचारणा तथा कायापरक अभाव, अज्ञान एवं अशक्ति) का निवारण नहीं हो जाता , तब तक आचार्य उसे अपने संरक्षण (गर्भ) में रखते हैं ।]

३१४०. इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४ ॥

ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, श्रम और तप द्वारा लोकों का पोषण करता है । उसकी पहली समिधा पृथ्वी है, दूसरी द्युलोक है तथा (तीसरी) अन्तरिक्ष है ॥४ ॥

[समिधा ही अग्नि को धारण करती है, मेखला उसे मर्यादित रखती है । यह ऊर्जा को उत्पादित करने तथा उसे मर्यादा की सीमा में प्रयुक्त करने का संकेत है । श्रम स्थूल पुरुषार्थ का तथा तप सूक्ष्म पुरुषार्थ का प्रतीक है । शरीर के क्रम में पहली समिधा पृथ्वी नाभि से नीचे वाला अंग है । ब्रह्माग्नि प्राप्त करने के लिए इसे पहले समर्पित करते हैं अर्थात् पहले स्थूल ब्रह्मचर्य का अभ्यास किया जाता है । द्युलोक दूसरी समिधा है अर्थात् विचारों को ब्रह्मानुशासन में लाना दूसरा चरण है । अन्तरिक्ष, नाभि से कंठ तक का हृदय भाग तीसरी समिधा है अर्थात् भावों को ब्रह्ममय बनाना तीसरा चरण है । इन्हीं से क्रमशः अशक्ति , अज्ञान एवं अभाव की तीन रात्रियों का निवारण होता है ।]

३१४१. पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५ ॥

ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ घोषित होने) से पूर्व साधक ब्रह्मचारी (ब्राह्मी अनुशासन का अभ्यासी) होता है । वह ऊर्जा धारण करता हुआ ऊपर उठता (उन्नतिशील होता) है, तब ब्राह्मण के रूप में प्रकट होता है और ज्येष्ठ ब्रह्म (परब्रह्म) तथा देवगणों का सान्निध्य उसे प्राप्त होता है ॥५ ॥

३१४२. ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६ ॥

(पहले वर्णित ढंग से) समिधाओं को प्रज्वलित करके कृष्णवस्त्र (कृष्णमृग चर्म) धारण करके बढ़े हुए दाढ़ी- मूँछोंयुक्त ब्रह्मचारी पूर्व (पहले वाले) समुद्र (सांसारिक भण्डार) से उत्तर (श्रेष्ठतर) समुद्र (दिव्य भण्डारों) तक पहुँच जाता है ॥६ ॥

३१४३. ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥७ ॥

अमृत गर्भ में रहकर ब्रह्मचारी, ब्रह्मतेज, श्रेष्ठ लोकों (स्थितियों या क्षेत्रों) , प्रजापति (प्रजापालक सामर्थ्य) तथा सर्वश्रेष्ठ स्थिति वाले विराट् को उत्पन्न (अपने अन्दर जाग्रत्) करता है । तब वह इन्द्र (नियन्ता बनकर) निश्चित रूप से असुरों (आसुरी प्रवाहों) को नष्ट करता है ॥७ ॥

३१४४. आचार्य स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥८ ॥

(आचार्य के गर्भ में ब्रह्मचारी को नया जीवन मिलता है । उसका विवरण देते हुए ऋषि कहते हैं-) आचार्य नभ (गर्भाकाश) में दोनों बड़े और गम्भीर पृथ्वी और द्युलोक का सृजन (ब्रह्मचारी के लिए) करते हैं । ब्रह्मचारी अपनी तप:साधना से उनकी रक्षा करता है, इसीलिए देवगण उसके साथ सौमनस्यतापूर्वक रहते हैं ॥८ ॥

[पृथ्वी पार्थिव देह की तथा द्युलोक चेतन प्रवाह का प्रतीक है । आचार्य के गर्भ में ब्रह्मचारी के ये दोनों ही आधार बदल जाते हैं । दोनों में से हीनता, संकीर्णता का निवारण होकर उनमें महत्ता एवं गम्भीरता का समावेश होता है । इन प्राप्त विभूतियों की रक्षा तप: शक्ति से ही की जा सकती है, तभी देव- अनुग्रह - प्राप्ति का सुयोग बनता है ।]

३१४५. इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९ ॥

सर्वप्रथम ब्रह्मचारी ने भूमि की भिक्षा ग्रहण की, तत्पश्चात् द्युलोक को भी प्राप्त किया । इन दोनों लोकों को समिधा बनाकर उसने अग्नि (ब्रह्मतेज) की उपासना की । इन दोनों के बीच ही उसका संसार स्थित होता है ॥९ ॥

३१४६. अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१० ॥

ब्राह्मण की सम्पत्ति निकटवर्ती गुहा (अन्त:करण या अनुभूति) में तथा द्युलोक के आधार से भी परे स्थित है । ब्रह्मचारी उसकी रक्षा तप द्वारा करता है । वह तप उसे निश्चित रूप से ब्रह्मविद् बना देता है ॥१० ॥

आगे के मंत्रों के भाव साधक के साथ-साथ प्रकृति में संव्याप्त ब्रह्मानुशासन युक्त दिव्य प्रवाहों पर भी घटित होते हैं-

३१४७. अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११ ॥

इधर (द्युलोक में) एक (तेजस्) है तथा इस पृथ्वी पर दूसरा (तेजस्) है, ये दोनों अन्तरिक्ष में मिलते हैं । उनसे शक्तिशाली किरणें प्रसारित होती हैं । तप:शक्ति से ब्रह्मचारी उन दिव्य संचारों का अधिकारी बनता है ॥११ ॥

३१४८. अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१२ ॥

बड़ा प्रभावशाली अरुण (भूरे) और काले रंग वाला, गर्जन करने वाला (ब्रह्मचारी मेघ) पृथ्वी को (उत्पादक तत्त्वों से) भर देता है । वह पृथ्वी और पर्वतों के समतल स्थानों पर रेतस् (उत्पादक तेज) का सिंचन करता है, जिससे चारों दिशाएँ जीवन्त हो उठती हैं ॥१२ ॥

३१४९. अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३ ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और जल में ब्रह्मचारी समिधाओं को अर्पित करता है । उनके तेजस् अलग-अलग रूप से अन्तरिक्ष में निवास करते हैं । उसी से वर्षा, जल, घृत और पुरुष आदि समृद्ध (तेज: सम्पन्न) होते हैं ॥१३ ॥

३१५०. आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥१४ ॥

आचार्य ही मृत्यु (यम-अनुशासनकर्त्ता अथवा पूर्व अस्तित्व को समाप्त करने वाले) , वरुण (नवसृजक) सोम (आनन्दप्रद प्रवाह), ओषधि (उपचारक) तथा पय: (पोषक रस-दूध) के तुल्य हैं । वही सत्प्रवाह युक्त मेघ हैं ; क्योंकि उन्होंने ही (साधक में) यह (नया) स्व: (आत्मबोध) भर दिया है ॥१४ ॥

३१५१. अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥१५ ॥

प्रजापति की जैसी इच्छा होती है, (तदनुसार) आचार्य वरुण बनकर केवल शुद्ध घृत (सार-तेजस्) उत्पन्न करते हैं । ब्रह्मचारी उसे अपने अधिकार में लेकर अपने मित्रों (समानधर्मियों) को प्रदान करता है ॥१५ ॥

३१५२. आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥१६ ॥

ब्रह्मचारी ही आचार्य बनता है और वही प्रजापति (प्रजापालक-रक्षक-शासक) बनता है । ऐसा प्रजापालक ही ब्रह्मानुशासनयुक्त राज्य करता है; विराट् को वश में करने वाला इन्द्र नियन्ता बनता है ॥१६ ॥

३१५३. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७ ॥

ब्रह्मचर्य एवं तप: शक्ति से ही शासक राष्ट्र की रक्षा करता है । आचार्य भी ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ब्रह्मचर्य की आस्था वाले (शिष्य) की कामना (उनके सृजन का प्रयास) करते हैं ॥१७ ॥

[दिव्य अनुशासन के परिपालन से ही राष्ट्र की सुरक्षा एवं व्यवस्था स्थायी बन सकती है, प्रशासनिक आतंक उसके लिए पर्याप्त नहीं है । आचार्यगण भी दिव्य अनुशासन- पालन में समर्थ व्यक्तित्व गढ़ने की कामना करें , तभी राष्ट्र के उत्थान का सही आधार बनता है ।]

३१५४. ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८ ॥

ब्रह्मचर्य - संयम साधना से ही कन्या युवापति को प्राप्त करती है । बैल और अश्व आदि भी ब्रह्मचर्य का पालन करके ही भक्षणीय (शक्तिवर्द्धक) घास (आधार) की अभिलाषा रखते हैं ॥१८ ॥

[असंयमी को यौवन का ठीक-ठीक लाभ नहीं मिल पाता । बैल-अश्व आदि नैसर्गिक रूप से प्राप्त उस वृद्धि के कारण ही शक्तिसम्पन्न बनते हैं ।]

३१५५. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥१९

ब्रह्मचर्यरूप तप: साधना से सभी देवताओं ने मृत्यु का निवारण किया । ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ही देवराज इन्द्र अन्य देवताओं को दिव्य तेजस् (अथवा स्वर्ग) देने में समर्थ हुए ॥१९ ॥

३१५६.ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः । संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ।

ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, ऋतुओं के साथ गमनशील संवत्सर, दिन-रात्रि, भूत और भविष्यत् , ये सभी जन्म से ही ब्रह्मचारी होते हैं ॥२० ॥

३१५७. पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१ ॥

पृथ्वी में जन्म लेने वाले प्राणी, आकाश में विचरणशील प्राणी, वन्य पशु, ग्रामीण पशु, पक्षहीन पशु तथा पंखयुक्त पक्षी, ये सभी जन्मजात ब्रह्मचारी होते हैं ॥२१ ॥

३१५८. पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२ ॥

प्रजापति परमेश्वर से उत्पादित सभी प्राणी अपने अन्दर प्राणशक्ति को भिन्न-भिन्न ढंग से धारण करते हैं । ब्रह्मचारी में अवस्थित ब्रह्म उन (प्राणों) की रक्षा करता है ॥२२ ॥

३१५९. देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३ ॥

देवों का यह सर्वश्रेष्ठ उत्साह उत्पन्न करने वाला (वर्चस्) ज्योतिष्मान् होकर गतिशील होता है । उससे उत्पन्न ब्राह्मण सम्बन्धी ज्येष्ठज्ञान तथा देवगण सब अमृत तत्त्व से युक्त हो गये ॥२३ ॥

३१६०. ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४ ॥

ब्रह्मचारी प्रकाशमान ब्रह्म (चेतन या ज्ञान) को धारण करता है, इसलिए उसमें सभी देवगण समाहित रहते हैं । वह (ब्रह्मचारी) प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, ज्ञान तथा मेधाशक्ति को उत्पन्न करता है ॥२४ ॥

३१६१. चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥२५ ॥

(अस्तु , ऐसे ब्रह्मचारी) हममें दृष्टि, श्रवणशक्ति, यश, अन्न, वीर्य, रक्त और उदर (पाचन शक्ति) प्रदान करें ॥२५॥

३१६२. तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः
समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६ ॥

ब्रह्मचारी उपर्युक्त इन सभी के सम्बन्ध में कल्पनाशील होते हुए जल के समीप तप: साधना में संलग्न होता है । इस ज्ञानरूप समुद्र में तपोनिष्ठ होकर, यह ब्रह्मचारी स्नातक हो जाता है और तब वह अति तेजस्वी होकर, इस भूमण्डल में विशिष्ट आभायुक्त हो जाता है ॥२६ ॥

[८- पापमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** शन्ताति । **देवता-** चन्द्रमा अथवा मन्त्रोक्त । **छन्द-** अनुष्टुप् , २३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् ।]

३१६३. अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१ ॥

अग्निदेव, ओषधिसमूह, वनस्पतिसमूह, लतासमूह, इन्द्र, बृहस्पति और सर्वप्रेरक सूर्यदेव की हम सब स्तुति करते हैं । ये सभी हमें पापकर्मों के प्रभाव से मुक्त करें ॥१ ॥

३१६४. ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२ ॥

प्रकाशमान वरुणदेव, मित्रदेव, व्याप्तिशील विष्णु, भजनीय देव, भग, अंशदेव और विवस्वान् नामक सभी देवों की हम स्तुति करते हैं। ये सभी पाप-कृत्यों से हमें विमुक्त करें ॥२ ॥

३१६५. ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्। त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥

हम सर्व उत्पादक सवितादेव, धातादेव, पूषादेव और अग्रणी त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं, ये हमें पापकर्मों से मुक्त करें ॥३ ॥

३१६६. गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४ ॥

गन्धर्वगण, अप्सरागण, अश्विनीकुमारों, वेदों के पति ब्रह्मा और अर्यमा आदि देवों से हम प्रार्थना करते हैं । ये देवगण हमें पाप-कृत्यों से मुक्त करें ॥४ ॥

३१६७.अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा। विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस।

दिन-रात्रि, इनके अधिष्ठाता देव सूर्य और चन्द्र तथा अदिति के सब पुत्रों (देवों) की हम स्तुति करते हैं, वे हमें दुष्कर्म रूपी पापों से बचाएँ ॥५ ॥

३१६८. वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः। आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥

वायुदेव, पर्जन्यदेव, अन्तरिक्ष, दिशाओं और उपदिशाओं की हम वन्दना करते हैं, वे हमें पाप से बचाएँ ॥६ ॥

३१६९. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥७ ॥

दिन, रात्रि और उषःकाल के अधिष्ठाता देव, हमें शपथजनित पापों से बचाएँ, ज्ञानी लोग जिसे चन्द्रमा कहते हैं, वे सोमदेव भी हमें शपथजनित पापों से बचाएँ ॥७ ॥

३१७०. पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥८ ॥

पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्राणी, अन्तरिक्ष में रहने वाले पक्षी और जंगल में वास करने वाले मृग आदि पशुओं और शकुन्त पक्षियों से हम प्रार्थना करते हैं, वे सभी हमें पाप-कृत्यों से संरक्षित करें ॥८ ॥

३१७१. भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥९ ॥

भव और शर्वदेव तथा जो पशु संरक्षक रुद्रदेव हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं। इन देवों के जिन बाणों को हम जानते हैं , वे हमारे निमित्त सदैव कल्याणकारी हों ॥९ ॥

३१७२. दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१० ॥

द्युलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष, पर्वत, सातों समुद्रों, नदियों और जलाशयों की हम स्तुति करते हैं, वे सभी हमें पापों से संरक्षित करें ॥१० ॥

३१७३. सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम्।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११ ॥

सप्तर्षिगण, जल, प्रजापति ब्रह्मा, पितरगण और उनके अधिपति मृत्यु देवता यम की हम प्रार्थना करते हैं, वे हमें पाप-कृत्यों से रक्षित करें ॥११ ॥

३१७४.ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये। पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः

दिव्यलोक में विद्यमान देव, अन्तरिक्ष मण्डल में स्थित देव तथा भूलोक में जो देवगण हैं, वे हमें दुष्कर्म रूपी पापों से बचाएँ ॥१२ ॥

३१७५. आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३ ॥

बारह आदित्यगण, एकादश रुद्रगण, आठ वसुगण, दिव्यलोक के वर्तमान देव, ऋषि अथर्वा, अंगिरा और मनीषीगण सभी हमसे स्तुत होकर, हमें पापों से मुक्त करें ॥१३ ॥

३१७६.यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥

हम यज्ञ और यजमान की स्तुति करते हैं। ऋचाओं और सामगान की हम स्तुति करते हैं। ओषधियों और यज्ञकर्त्ता होता, इन सबकी वन्दना करते हैं, वे हमें पापों से बचाएँ ॥१४ ॥

३१७७. पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५ ॥

पत्र, काण्ड, फल-फूल और मूलात्मक पाँच राज्यों (स्थानों) से युक्त ओषधियों में सोमलता सर्वश्रेष्ठ है। दर्भ, भाँग, जौ और धान, ये सभी हमसे स्तुत होकर हमारे दुष्कर्मों को काटने में समर्थ हों ॥१५ ॥

३१७८. अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन्।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६ ॥

यज्ञविरोधी असुरों, सर्पों, पुण्यकर्मियों, पितरगण और एक सौ एक मृत्यु के देवताओं की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पापों से संरक्षित करें ॥१६ ॥

३१७९. ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१७ ॥

ऋतुओं, ऋतुओं के अधिपतियों, षड्ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पदार्थों, संवत्सरों और मासों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पापों से मुक्त करें ॥१७ ॥

३१८०. एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८ ॥

हे देवगण ! आप पूर्व - पश्चिम - उत्तर- दक्षिण अपनी- अपनी दिशाओं से शीघ्रतापूर्वक आकर, हमें पाप-कृत्यों से बचाएँ ॥१८ ॥

३१८१. विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९ ॥

हम सत्य के प्रति दृढ़निष्ठ, सत्कर्मरूप यज्ञ संवर्द्धक समस्त देवों की , उनकी सहयोगी शक्तियों के साथ वन्दना करते हैं, वे हमें पापों से रक्षित करें ॥१९ ॥

३१८२. सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२० ॥

हम सत्यनिष्ठ, यज्ञवर्द्धक देवों की उनकी शक्तियों के साथ स्तुति करते हैं, वे हमारे पापों का शमन करें ॥२०॥

३१८३. भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१ ॥

भूतों को वशीभूत करने वाले, भूतों के अधिपति की हम स्तुति करते हैं, वे सभी हमें पापों से बचाएँ ॥२१ ॥

३१८४. या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२ ॥

दिव्यतायुक्त पाँच दिशाओं, बारह मासों और संवत्सर की दाढ़ों (पक्ष, सप्ताह आदि) की हम स्तुति करते हैं । वे हम सभी के प्रति कल्याणकारी हों ॥२२ ॥

३१८५. यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥२३ ॥

(इन्द्र के सारथि) मातलि जिस रथक्रीत (रथ के बदले प्राप्त) अमरता देने वाली ओषधि के ज्ञाता हैं, इन्द्र ने उस ओषधि को जल में प्रविष्ट किया है । हे जलदेव ! आप वह कल्याणकारी ओषधि हमें प्रदान करें ॥२३ ॥

[मातलि का अर्थ होता है, मतल (मत स्थापनकर्त्ता) से उत्पन्न । स्थापित मत के आधार पर क्रियात्मक संकल्प उभरता है । यही इन्द्र (सर्वनियन्ता देव) का सारथि है । इन्द्र की शक्ति को यही सारथि उपयुक्त स्थान पर पहुँचाता है । वह स्रष्टा द्वारा स्थापित मत से उत्पन्न क्रियात्मक संकल्प ही यह जानता है कि अपने रथ (मनोरथ) को समर्पित करते ही यह अमरता प्राप्त की जा सकती है । इन्द्र ने उसे जल (रस तत्त्व) में स्थापित किया है । मनुष्य पाप तभी करता है, जब उसे ईश्वरीय अनुशासन से भिन्न क्रियाओं में रस आने लगे । यदि हितप्रद ईश्वरीय अनुशासन के पालन में हमें 'रस' आने लगे, तो हमारे सारे हीन मनोरथ समर्पित हो जाएँ तथा हम रथक्रीत अमरत्व की ओषधि पा जाएँ ।]

[९ - उच्छिष्ट-ब्रह्म-सूक्त]

[**ऋषि-** १-२७ अथर्वा । **देवता-** उच्छिष्ट, अध्यात्म । **छन्द-** अनुष्टुप् , ६ पुरोष्णिग् बार्हतपरा अनुष्टुप् , २१ स्वराट् अनुष्टुप् , २२ विराट् पथ्या बृहती ।]

इस सूक्त के देवता 'उच्छिष्ट' हैं । उच्छिष्ट का अर्थ होता है-अवशिष्ट, शेष बचा हुआ, छोड़ा हुआ । यजुर्वेद (४०.१) में कहा गया है- 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' (उसके द्वारा छोड़े हुए का ही भोग करो) । परमात्म सत्ता ने , अपने अव्यक्त गुणातीत स्वरूप में से, जो अंश त्याग दिया-छोड़ दिया है, वही उच्छिष्ट अंश नाम, रूपात्मक सृष्टि बनी है । यह उच्छिष्ट के प्रकट होने का क्रम सतत चल रहा है । परमात्म सत्ता के उच्छिष्ट (छोड़े हुए) अंश से सृष्टि का मूल उत्पादक, क्रियाशील तत्त्व, 'अप्' बना । अप् प्रवाह द्वारा छोड़े गये, उच्छिष्ट अंश से परमाणुओं के घटक सूक्ष्मकण (सब एटामिक पार्टिकल्स) बने । उनका अविरल प्रवाह बह रहा है उनके उच्छिष्ट से पंचभूतों की उत्पत्ति होती है । पृथ्वी के उच्छिष्ट से अन्न, वनस्पति आदि उत्पन्न होते हैं, प्रकृति चक्र में प्राणियों द्वारा उच्छिष्ट छोड़े हुए से वृक्ष-वनस्पतियों का तथा वृक्ष-वनस्पतियों के उच्छिष्ट से प्राणियों का क्रम चलता है । यही प्रकृति यज्ञ इकालॉजी का आधार है । ऋषि इस उच्छिष्ट चक्र को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उस रहस्य को प्रकट करते हैं-

३१८६. उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥१ ॥

(उस विराट् के) उच्छिष्ट (छोड़े हुए) में ही नाम और रूप तथा उसी में लोक -लोकान्तर स्थापित हैं। उसके अन्दर ही इन्द्र, अग्नि तथा समस्त विश्व समाहित है ॥१ ॥

३१८७. उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥२ ॥

उस अवशेष में द्युलोक और पृथ्वी के सभी प्राणी समाहित हैं। जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु ये सभी उसी उच्छिष्ट स्वरूप ब्रह्म में विद्यमान हैं ॥२ ॥

३१८८. सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥३ ॥

सत् (चेतनशील) और असत् (जड़तायुक्त) सृष्टि दोनों, इसी अवशिष्ट में हैं। मृत्यु, सर्जक बल तथा प्रजापति उसी उच्छिष्ट में स्थित हैं। सभी लोक वरुणदेव और अमृतमय सोम इसी में समाहित हैं। हममें श्री- शोभा उसी के कारण स्थित है ॥३ ॥

३१८९. दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥४ ॥

सुदृढ़ (लोकादि), दृढ़ एवं स्थिर (जड़ पदार्थ), गतिमान् प्राणी, अव्यक्त ब्रह्म, विश्व की उत्पत्ति करने वाली दस देव शक्तियाँ नाभि के आश्रित चक्र की तरह उच्छिष्ट के आश्रित हैं ॥४ ॥

३१९०. ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्‌गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥५ ॥

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, उद्‌गीथ, स्तुति और स्तवन, ये सभी उच्छिष्ट में स्थित हैं। हिंकार, स्वर और सामगान के गायन, ये सभी यज्ञीय अवशिष्ट में ही निहित हैं। ये सभी हमारे अन्दर स्थित रहें ॥५ ॥

३१९१. ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्। उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भइव मातरि ॥

इन्द्राग्नि की स्तुति वाले सूक्त, पवमान सोम के सूक्त, पावमान एवं महानाम्नी ऋचाएँ, महाव्रतशील यज्ञीय मंत्र भाग, ये सभी उसी प्रकार उच्छिष्ट में विद्यमान हैं, जिस प्रकार माता के गर्भ में जीव रहता है ॥६ ॥

३१९२.राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः। अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अर्क, अश्वमेध और आनन्दप्रद जीवन रक्षक यज्ञ, ये सभी प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही विद्यमान हैं ॥७ ॥

३१९३. अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥८ ॥

अग्न्याधान, दीक्षा, छन्द से कामनाओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ, उत्सन्न यज्ञ और सोमयागात्मक यज्ञ, ये सभी उच्छिष्ट में विद्यमान हैं ॥८ ॥

३१९४. अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥९ ॥

अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा एवं अभीष्टपूर्ति, ये सभी उस उच्छिष्ट में विद्यमान हैं ॥९ ॥

३१९५. एकरात्रो द्विरात्रः सद्यः क्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१० ॥

एकरात्र, द्विरात्र, सोमयाम, सद्य क्री एवं प्रक्री (एक दिन में सम्पन्न होने वाले सोम यज्ञ) उक्थ्य (उक्थ गान के साथ होने वाले याग), ये सभी यज्ञ तथा यज्ञ के शेष अंश ब्रह्मविद्या के साथ उच्छिष्ट में ही आश्रयीभूत हैं ॥१० ॥

३१९६. चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह । षोडशी
सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११ ॥

चतुरात्र, पंचरात्र, षड्रात्र और इनके दो गुना दिनों वाले (अर्थात् अष्टरात्र, दशरात्र, द्वादशरात्र), सोलह तथा सप्तरात्र ये सभी यज्ञ उच्छिष्ट द्वारा ही विनिर्मित हैं । ये सभी अमृतमय फल प्रदान करने वाले हैं ॥११ ॥

३१९७. प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥१२ ॥

प्रतिहार, निधन, विश्वजित्, अभिजित्, साह्न, अतिरात्र, द्वादशाह, ये सभी यज्ञ उच्छिष्टरूपी ब्राह्मी चेतना से युक्त हैं । ये सभी हमारे अन्दर स्थित हों ॥१२ ॥

३१९८. सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥१३ ॥

सत्यनिष्ठ वाणी, विनम्रभाव, कल्याण, पितरगणों को तृप्ति देने वाले स्वधा, बलप्रद अन्न, अमरत्व प्रदाता अमृत (पीयूष), पराक्रमयुक्त शक्ति, ये सभी अभीष्ट काम यज्ञ, अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, जो उच्छिष्ट में ही विद्यमान हैं ॥१३ ॥

३१९९. नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥१४ ॥

नौ खण्डों वाली भूमि, सात समुद्र, दिव्यलोक, सूर्यदेव और दिन-रात्रि भी उच्छिष्ट में ही समाहित हैं । यह सम्पूर्ण ज्ञान हमारे अन्दर स्थित हो ॥१४ ॥

३२००. उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥१५ ॥

उपहव्य, विषूवान् और गुहा में आश्रित (अज्ञात) जो यज्ञ है, उन्हें विश्व पोषक और पिता के भी उत्पन्नकर्त्ता उच्छिष्ट ही धारण करने वाले हैं ॥१५ ॥

३२०१. पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥१६ ॥

उच्छिष्ट, उत्पन्नकर्त्ता का भी परमपिता है, प्राण का पौत्र भी है और पितामह भी है । वह विश्व का नियन्ता होकर सर्वव्यापक है, सर्व समर्थ और पृथ्वी में सर्वोत्तम है ॥१६ ॥

३२०२. ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥१७ ॥

ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रमशीलता, क्रियाशीलता, भूत (उत्पादित विश्व), उत्पादित होने वाला भविष्यत्,

वीर्य (पराक्रम शक्ति) , श्री - सम्पदा और बल, ये सभी उच्छिष्ट के ही आश्रित हैं ॥१७ ॥

३२०३. समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।

संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥१८ ॥

भौतिक समृद्धि, शारीरिक ओज, संकल्प बल, क्षात्रतेज, क्षात्र धर्म से संरक्षण योग्य राष्ट्र, छह भूमियाँ, संवत्सर, इडा (अन्न) देव, ऋत्विजों के कर्मप्रेरक मंत्र प्रैष, ग्रह, चरु से युक्त हवि, ये सभी उच्छिष्ट (परब्रह्म) में ही स्थित हैं ॥१८।

३२०४. चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।

उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥१९ ॥

चतुर्होता, आप्रिय, चातुर्मास्य, स्तोता की गुणवत्ता को प्रकट करने वाले मंत्र निविद, यज्ञ होत्रा (सप्त वषट्कर्त्ता), पशुबन्ध और उसकी इष्टियाँ उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥१९ ॥

३२०५. अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।

उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥२० ॥

अर्धमास (पक्ष), मास, ऋतुओं के साथ ऋतु-पदार्थ, घोषयुक्त जल, गर्जना करते हुए मेघ और पवित्र भू-मण्डल, ये सभी उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥२० ॥

३२०६. शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।

अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥२१ ॥

पथरीली बालू, रेत, पत्थर, ओषधियाँ , वनस्पतियाँ और घास, जलपूर्ण बादल, विद्युत् तथा वृष्टि ये सभी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में ही आश्रित हैं ॥२१ ॥

३२०७. राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।

अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥२२ ॥

पूर्ण सिद्धि, इष्टफल की प्राप्ति, सम्यक् प्राप्ति-समाप्ति, अनेक प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति- व्याप्ति, तेजस्विता, अभिवृद्धि -समृद्धि, अत्यधिक प्राप्ति और ऐश्वर्यशीलता, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म में ही आश्रययुक्त हैं ॥२२ ॥

३२०८. यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२३ ॥

प्राण धारण करने वाले (प्राणी) , जो नेत्रों से देखने वाले हैं, ये सभी उच्छिष्ट से निर्मित हैं । जो देव शक्तियाँ दिव्यलोक (स्वर्गलोक) में विद्यमान हैं, वे सभी उच्छिष्ट में ही सन्निहित हैं ॥२३ ॥

३२०९. ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२४ ॥

यजु, ऋक्, साम, छन्द (अथर्व) आदि वेद द्युलोक तथा स्वर्गस्थ सभी देवता उच्छिष्ट यज्ञ में ही स्थित हैं ॥

३२१०. प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२५ ॥

प्राण, अपान, श्रोत्र, चक्षु, भौतिक और अक्षय - चेतनशील तथा दिव्यलोक के देवगण, ये सभी उच्छिष्ट (परब्रह्म) से ही प्रादुर्भूत हैं ॥२५ ॥

३२११. आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२६ ॥

आनन्द, मोद, प्रमोद, प्रत्यक्षीभूत आनन्द और स्वर्गीय देवगण, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म से ही उत्पादित हुए हैं ॥

३२१२. देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२७ ॥

देवगण, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सराएँ और देवता, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म से ही उत्पादित हैं ॥२७ ॥

[१० - अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** कौरुपथि। **देवता-** अध्यात्म और मन्यु। **छन्द-** अनुष्टुप्, ३३ पथ्यापंक्ति।]

इस सूक्त के देवता अध्यात्म मन्यु हैं। कोश ग्रंथों के अनुसार मन्यु के अर्थ अनेक हैं, यहाँ उत्साह एवं अहंकार ठीक बैठते हैं। प्रथम मंत्र में मन्यु अपनी पत्नी को संकल्प के घर से प्राप्त करता है। मन्यु आत्मतत्त्व पर आधारित उत्साह या अहंकार (स्वबोध) संकल्प के घर में अपनी सहधर्मिणी संकल्पशक्ति से विवाह रचाता है। वह आत्म स्फूर्त, उत्साह, संकल्पशक्ति के संयोग से सृष्टि (रचना) करता है। उसमें वर पक्ष एवं कन्या पक्ष के रूप में अनेक प्रवृत्तियाँ, शक्तिधाराएँ सहयोग करके उस महोत्सव को सफल बनाती हैं। प्रारंभ के मंत्रों में संरचना के घटकों देवशक्तियों का वर्णन करते हुए बाद के मंत्रों में सृजित शरीरों के निर्माण और उनकी विशेषताओं का वर्णन है। यह वर्णन मनुष्यों, प्राणियों के शरीरों से लेकर प्रकृति के विराट् शरीर तक सर्वत्र लागू होता है। मंत्रार्थ इस ढंग से करने के प्रयास किये गये हैं कि अध्येता विभिन्न दृष्टियों से उन्हें समझ सकें-

३२१३. यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरो ऽभवत् ॥१ ॥

जिस समय मन्यु (आत्म स्फूर्ति, उत्साह) ने संकल्पबल के गृह (स्रोत) से अपनी संकल्पशक्ति रूपी स्त्री को प्राप्त किया, उस समय कन्यापक्ष के लोग कौन थे ? वर पक्ष के लोग कौन थे ? उनमें किसे श्रेष्ठ वर की संज्ञा से विभूषित किया गया था ? ॥१ ॥

३२१४. तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे। त आसं
जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरो ऽभवत् ॥२ ॥

अर्णव (सृष्टि से पूर्व सृष्टि के मूल सक्रिय तत्त्व के महासागर) के बीच तप और कर्म ये दो पक्ष थे, वे ही वर पक्षीय और कन्या पक्षीय लोग थे तथा ब्रह्म ही उस समय सर्वश्रेष्ठ वर थे ॥२ ॥

३२१५. दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा। यो वै
तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥३ ॥

अधिष्ठाता देवों से दस देवता उत्पन्न हुए (उनका वर्णन अगले मंत्र में है) । जिस साधक ने प्रत्यक्ष रूप में इनका निश्चित ही साक्षात्कार किया, वही ज्ञानी मनुष्य देश, काल आदि से रहित विराट् ब्रह्मज्ञान को कहने में समर्थ है ॥३ ॥

३२१६. प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥४ ॥

प्राण, अपान, नेत्र, श्रवणेन्द्रिय, क्षीणता रहित-ज्ञानशक्ति, क्षीणतायुक्त भौतिक शक्ति, व्यान (अन्नरस को संचारित करने वाली वृत्ति) , उदान (ऊपरी उद्‌गार, व्यापार को चलाने वाली प्रक्रिया) , वाणी और मस्तिष्क, ये दस प्राण निश्चित ही संकल्पशक्ति को धारण करते हैं ॥४ ॥

३२१७. अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥५ ॥

ऋतुएँ, धाता, बृहस्पतिदेव, देवराज इन्द्र, अग्निदेव और अश्विनीकुमार ये सभी देव जब उत्पन्न नहीं हुए थे, ऐसी अवस्था में इन देवों ने (अपनी उत्पत्ति के लिए) किस श्रेष्ठ की उपासना की थी ? ॥५ ॥

३२१८.तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे । तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥६ ।

ज्ञानयुक्त तप और फलरूप कर्म ही विशाल समुद्र में विद्यमान थे । कर्मशक्ति से तप की उत्पत्ति हुई, इसलिए वे धाता आदि देव अपनी उत्पत्ति के लिए उसी की उपासना करते हैं ॥६ ॥

३२१९. येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥७ ॥

वर्तमान भूमि (पृथ्वी या काया) से पूर्व की (बीते हुए जीवन या कल्प) की जो भूमि थी, उसे तप के प्रभाव से सर्वज्ञ महर्षियों ने जान लिया था । अतीतकालीन भूमि को जो पृथक्-पृथक् नाम से जानते हैं, वही पुराण (पुरातन) के जानने वाले कहे जाते हैं ॥७ ॥

३२२०. कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥८ ॥

उस (सृष्टि सृजन के) समय में इन्द्र, अग्नि, सोम, त्वष्टा और धातादेव आदि किससे उत्पन्न हुए ॥८ ॥

३२२१. इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥९ ॥

(उस समय) इन्द्र से इन्द्र, सोम से सोम, अग्नि से अग्नि, त्वष्टा से त्वष्टा तथा धाता से धाता की उत्पत्ति हुई ॥९ ॥

[परमात्मा में ये सभी शक्तियाँ या विशेषताएँ बीज रूप में स्थित रहती हैं । उन विशेषताओं से ही वे शक्तियाँ पहले वाले कल्प की तरह ही प्रकट हुई ।]

३२२२. ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥१० ॥

जिन अग्नि आदि अधिष्ठाता देवों से पूर्वोक्त प्राण, अपान आदि दस देवगण उत्पन्न हुए, वे (देवगण) अपने पुत्रों को स्थान देकर किस लोक में आश्रयीभूत हुए ? ॥१० ॥

३२२३. यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनुप्राविशत् ॥११ ॥

सृष्टि-रचना काल में स्रष्टा ने जब बाल, अस्थि, नसों, मांस और मज्जा को एकत्र किया, तो उनसे हाथ-पैर आदि शारीरिक अंगों की रचना करके किस लोक में अनुकूलता के साथ प्रवेश किया ? ॥११ ॥

३२२४. कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥१२ ॥

उस स्रष्टा ने किस- किस उपकरण से केशों, किससे स्नायु भाग, कहाँ से अस्थियों को परिपूर्ण किया ? कहाँ से शारीरिक अंग-अवयवों, पोरों और मांस, मज्जा को एकत्रित किया ? ऐसा कह पाने में कौन समर्थ है ? ॥

३२२५. संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३ ॥

वे देवगण सींचने वाले (संसिच) इस नाम से युक्त हैं । वे देव मरणधर्मा शरीर को रक्त से गीला करके उसे पुरुष आकृति रूप बनाकर उसमें प्रविष्ट हुए ॥१३ ॥

३२२६. ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम्।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥१४ ॥

किस ऋषि ने जंघाओं, घुटनों, पैरों, सिर, हाथ, मुख, पीठ, हँसली और पसलियों आदि सभी अंगों को आपस में मिलाया ? ॥१४ ॥

३२२७. शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥१५ ॥

सिर, हाथ, मुख, जीभ, कण्ठ और अस्थियों आदि सभी पर चर्म के आवरण को चढ़ाकर देवों ने अपने-अपने कर्म में संलग्न किया ॥१५ ॥

३२२८. यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत्।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥१६ ॥

जो यह विशाल शरीर है, संधाता (जोड़ने वाला) देव द्वारा जिसके अवयव जोड़े गये हैं, वह शरीर जिस वर्ण (प्रकृति या रंग) से प्रकाशित है, किस देव ने इस शरीर में वर्ण की स्थापना की ? ॥१६ ॥

३२२९. सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥१७ ॥

देवों ने शिक्षा (प्रतिभा) प्रदान की । स्थिर (धर्म पर स्थिर) वधू (सर्जक शक्ति) ने उसे समझ लिया ।सबको वश में रखकर शासन चलाने वाली उस जाया (जन्मदात्री) ने (अंगों में) वर्णों (प्रवृत्तियों) को भर दिया ॥१७ ॥

३२३०.यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः । गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥

जगत् के उत्पादक जो श्रेष्ठ आदिदेव त्वष्टा हैं, उन्होंने जब नेत्र, कान आदि छिद्रों की रचना की, उस समय मनुष्य देह को घर बनाकर प्राण, अपान और इन्द्रिय आदि देवों ने उसमें प्रवेश किया ॥१८ ॥

३२३१. स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥१९ ॥

स्वप्न, निद्रा, आलस्य, निर्ऋति आदि पापमूलक देवों ने वृद्धावस्था में क्षरण करने वाले खालित्य, बाल सफेद करने वाले पलितत्व आदि सहित शरीर में प्रवेश किया ॥१९ ॥

३२३२. स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत्।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२० ॥

चोरी, दुराचार, कुटिलता, सत्य, यज्ञ, महान् कीर्ति, बल, क्षात्रतेज और सामर्थ्य शक्ति- ये सभी मनुष्य देह में प्रवेश कर गये ॥२० ॥

३२३३. भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।

क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१ ॥

ऐश्वर्य, दरिद्रता, दानवृत्ति, कंजूसी, भूख और सभी प्रकार की तृष्णा, ये सभी इस मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ।

३२३४. निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।

शरीरं श्रद्धा दक्षिणा श्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२२ ॥

निन्दा, स्तुति, आनन्दप्रद वस्तु, आनन्दरहित शोक, श्रद्धा, धन-समृद्धि रूप दक्षिणा (दक्षता) , अश्रद्धा आदि भी मनुष्य देह में प्रवेश कर गये ॥२२ ॥

३२३५. विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।

शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥२३ ॥

विद्या (आत्मविद्या) एवं अविद्या (भौतिक विद्या) तथा अन्य जो उपदेश करने योग्य शब्द हैं, साथ ही ऋक्, साम, यजुर्वेद आदि सभी इस मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२३ ॥

३२६.आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये । हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥

आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य- विनोद, हास्य चेष्टा और नर्त्तन आदि ये भी मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए ॥२४ ॥

३२३७.आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये । शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥

सार्थक कथन (आलाप) , निरर्थक कथन (प्रलाप) और वार्तालाप इन सभी ने मनुष्य में प्रवेश किया । आयोजन, प्रयोजन और योजन भी मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२५ ॥

३२३८. प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥२६ ॥

प्राण, अपान, चक्षु, कान, जड़- चेतनशक्ति, व्यान, उदान, वाणी और मन ये सभी मनुष्य देह में प्रविष्ट होकर उसके साथ अपने-अपने कार्यों में संलग्न होते हैं ॥२६ ॥

३२३९. आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।

चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥२७ ॥

प्रार्थना रूप आशीष, घोषणा- प्रशासन, संमति, विशेष अनुशासन, मन बुद्धि, चित्त और अहंकार की समस्त वृत्तियों ने मानव देह में प्रवेश किया ॥२७ ॥

३२४०. आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।

गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥२८ ॥

स्नान में प्रयुक्त (स्वच्छ करने वाला) जल, स्नान (पेय रूप) जल, प्राण को स्थिरता देने वाला जल, शीघ्रगामी जल, अल्प जल, गुहा स्थित जल, शुक्ररूपी जल, स्थूल जल तथा वीभत्स भाव (ये सभी प्रकार के रस एवं भाव प्रवाह) शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२८ ॥

३२४१.अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् । रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥

अस्थियों को समिधा रूप (आधार) बनाकर आठ प्रकार के जल ने शरीर की आकृति को गढ़ा और वीर्य को घृत रूप में प्रयुक्त करके देवों ने मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥२९ ॥

३२४२. या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥३० ॥

यह जल, देवगण जो विराट् ब्रह्म के साथ (अव्यक्त रूप में) रहते हैं, वे सभी ब्रह्मतेज के साथ मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए । ब्रह्म भी शरीर में प्रविष्ट हुआ और वही प्रजापति (स्वामी) रूप में स्थित रहता है ॥३० ॥

३२४३.सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे । अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये।

सूर्यदेव ने आँख को, वायुदेव ने घ्राणेन्द्रिय को अपने भाग रूप में स्वीकार किया, इसके अतिरिक्त छह कोशयुक्त शरीर को सभी देवगणों ने अग्नि को भागरूप में प्रदान किया ॥३१ ॥

३२४४. तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२ ॥

इस प्रकार इन सभी बातों का ज्ञाता विद्वान् मनुष्य शरीर को "यह ब्रह्म स्वरूप है" ऐसा मानता है; क्योंकि इसमें सभी देव शक्तियाँ उसी प्रकार वास करती हैं, जिस प्रकार गोशाला में गौएँ निवास करती हैं ॥३२ ॥

३२४५. प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥३३ ॥

(यह जीवात्मा) मृत्यु के क्रम में एक प्रकार के (श्रेष्ठ) कर्म से (उच्च लोकों में) जाता है, एक प्रकार के (हीन) कर्म से (निम्न लोकों में) जाता है तथा एक प्रकार के कर्म से (पुनः इस विश्व का) सेवन (भोग) करता है ॥३३ ॥

३२४६. अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥३४ ॥

पोषक अप् (जल) प्रवाह (अन्तरिक्ष अथवा गर्भ) के बीच यह शरीर बढ़ता है, इसलिए इसे शव (बढ़ने वाला) कहते हैं । उसके अन्दर स्थापित उस (बढ़ाने वाले) आत्मतत्त्व को 'शव' कहते हैं ॥३४ ॥

[११ - शत्रुनिवारण सूक्त]

[**ऋषि-** काङ्कायन । **देवता-** अर्बुदि । **छन्द-** अनुष्टुप् , १ त्र्यवसाना सप्तपदा विराट् शक्वरी, ३ परोष्णिक् , ४ त्र्यवसाना उष्णिक् बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप् षट्पदा अतिजगती, ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापंक्ति, १५, २२, २४-२५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराट् उपरिष्टाज्ज्योति त्रिष्टुप् , १७ त्रिपदा गायत्री ।]

इस सूक्त के ऋषि काङ्कायन तथा देवता अर्बुदि है । कंक का अर्थ क्षत्री-रक्षक होता है । कांकायन का अर्थ रक्षा प्रयासों में प्रवृत्त व्यक्ति । अर्बुदि अर्व धातु से बना है, जिसका अर्थ संहार होता है । अस्तु , अधिकांश आचार्यों ने अर्बुदि को शत्रुसंहारक के अर्थ में ही लिया है । मन्त्रार्थों में शत्रुसंहारक सेनानायक द्वारा शत्रु हनन का भाव भी उभर आता है; किन्तु अर्बुद का अर्थ- मेघ तथा न्यर्बुद (निः अर्बुद) का अर्थ- विशिष्ट प्रयोजन से मेघ भी होता है । यज्ञीय एवं मन्त्र की सामर्थ्य के संयोग से विकसित स्थूल सूक्ष्म मेघों के प्रहार से वातावरण में व्याप्त- सूक्ष्म और स्थूल घातक पदार्थों और प्राणियों को नष्ट करने का भाव सूक्त मंत्रों में बड़ी स्पष्टता से उभरता है । अध्येता उन्हें दोनों संदर्भों में समझ सकते हैं । सूक्त में एक शब्द उदारान् भी बार-बार आया है । उसका अर्थ, उत् + आरान् ऊपर के आततायी अथवा ऊपर के भीषण अस्त्र होता है । अर्बुद से ऊपर के आततायियों को भयभीत करने के लिए ऊपर के अस्त्र दिखाने, उनका प्रभाव दिखाने की प्रार्थना की गयी है-

३२४७. ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च । असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च
यद्धृदि । सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१ ॥

हे अर्बुदे ! ये जो आपके (विशाल) बाहु हैं, बाण- धनुषों के पराक्रम हैं, तलवारें, परशु आदि आयुध तथा हृदय के संकल्प हैं, उन्हें अमित्रों (शत्रुओं) द्वारा देखे जाने योग्य स्थिति में लाएँ, उत्-आरानों को भी दिखाएँ ॥१ ॥

[अमित्र जब हमें कमजोर देखते हैं , तो हानि पहुँचाने के लिए आक्रामक हो उठते हैं । सामर्थ्य को देखकर वे मर्यादा में बने रहते हैं । ऋषि का भाव है कि आततायी हमारी सामर्थ्य देखकर ही शांत रहें ; ताकि भले लोग शान्ति से बने रहें, शान्ति भंग न हो तथा किसी को मारना भी न पड़े । उदारान् प्रदर्शय के दोनों अर्थ होते हैं- (१) ऊपर के आतताइयों को शस्त्र दिखायें अथवा ऊपर के पीड़क शस्त्र दिखाकर दुष्टों को शान्त करें ।]

३२४८. उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥२ ॥

हे मित्र देवो ! आप उठें और युद्ध के लिए तत्पर हों । हे शत्रुनाशक अर्बुदे ! जो हमारे मित्र हैं, उन्हें आप भली प्रकार सुरक्षित रखें । आपके द्वारा हमारे सभी वीर सैनिक संरक्षणयुक्त हों ॥२ । ।

३२४९. उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् । अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥३ ॥

हे अर्बुदे ! आप अपने स्थान से उठें और अपना कार्य प्रारम्भ करें । 'आदान' और 'संदान' विधियों या उपकरणों से शत्रु सेनाओं को वशीभूत करें ॥३ ॥

३२५०. अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः । याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं
च पृथिवी मही । ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥४ ॥

जो अर्बुदि और न्यर्बुदि नाम से प्रसिद्ध देव हैं, जिन्होंने अन्तरिक्ष और भूमण्डल को आवृत कर रखा है, ऐसे इन्द्र के स्नेही (अर्बुदि और न्यर्बुदि) विजय दिलाने वाले हैं, ऐसी हमारी मान्यता है ॥४ ॥

३२५१.उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥

हे देव समुदाय वाले अर्बुदे ! आप अपनी सैन्य शक्ति के साथ उठें और शत्रुओं की शक्ति खण्डित करते हुए, उन्हें चारों ओर से घेर लें या दूर हटा दें ॥५ ॥

३२५२.सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् । तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ।

हे न्यर्बुदे ! ऊपर के सात प्रकार के अस्त्रों की समीक्षा करते हुए घृताहुति दिये जाने के साथ ही अपनी सैन्यशक्ति सहित उठ खड़े हों ॥६ ॥

३२५३. प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु । विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥

हे अर्बुदे ! आपके प्रहार से पुरुष या पौरुष नष्ट हो जाने पर शत्रु शक्तियाँ श्री- हीन, अस्त-व्यस्त तथा अश्रुमुखी होकर आक्रोश से भर उठें ॥७ ॥

३२५४. संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती । पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव।

हे अर्बुदे ! आपके आक्रमण से वह (शत्रु शक्ति) करूकर (कार्यतन्त्र) को समेट कर अपने पुत्र, भाई- बन्धुओं (कुटुम्बियों) के हित (सुरक्षा) की कामना करें ॥८ ॥

३२५५. अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९ ॥

हे शत्रुनाशक अर्बुदे ! आपके प्रहार से शत्रुओं के नष्ट हो जाने पर भयंकर विशाल मांसभक्षी पक्षी गीध, बाज और कौवे आदि उनको खाकर परितृप्त हों । इसे आप देखते रहें ॥९ ॥

[मरे हुए शरीरों से सड़ाँध न फैले, इसके लिए प्रकृति ने मरे हुए प्राणियों का माँस खाने वाले जीव पैदा किये हैं। वे युद्ध में मरे शत्रुओं अथवा प्रकृति द्वारा नष्ट किये गये शत्रु कीटों को खाकर तृप्त होते हैं।]

३२५६.अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः। पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव।

हे शत्रुसंहारक अर्बुदे ! आपके द्वारा नष्ट किये जाने पर गीदड़, व्याघ्र, मक्खी और मांस के छोटे कृमि- ये सभी शत्रुओं के शवों का भक्षण करके परितृप्त हों ॥१० ॥

३२५७. आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११ ॥

हे अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक वीरो ! आप दोनों शत्रुओं के प्राणों को ग्रहण करें और उन्हें समूल विनष्ट करें। जिससे उनमें कोलाहल-हाहाकार मचने लगे ॥११ ॥

३२५८. उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज। उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥

हे न्यर्बुदे ! आप हमारे शत्रुओं को भयभीत करें, शत्रु भयाक्रान्त होकर पलायन करने लगें। वे भयभीत हों, तत्पश्चात् आप हमारे शत्रुओं को हाथों और पैरों की क्रिया से रहित करके प्रताड़ित करें ॥१२ ॥

३२५९.मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि। मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥

हे शत्रु संहारक अर्बुदे ! आपके द्वारा प्रताड़ित शत्रुओं की भुजाएँ शिथिल हो जाएँ, हृदय के संकल्प भी विस्मृत हो जाएँ, इन शत्रुओं के रथ, हाथी, अश्वादि कुछ भी सुरक्षित न रह सकें ॥१३ ॥

३२६०. प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्य१ः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४ ॥

हे शत्रु विनाशक अर्बुदे ! आपके प्रहार से पुरुषों या पुरुषत्व का नाश होने पर शत्रु शक्तियाँ, आधारहीन, बिखरे केशवाली अस्तव्यस्त होकर छाती पीटती हुई रोती- भागती फिरें ॥१४ ॥

३२६१. श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे। अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम्।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१५ ॥

हे अर्बुदे ! आप श्वन्वती (फूलने वाले) रूपवाली अप्सराओं, अन्तः पात्र (अन्तःकरण) को उत्तेजित करने वाली पीड़ा, मायारूपी सेनाओं, ऊर्ध्व अस्त्रों और भयंकर दैत्यों को, शत्रुओं को दिखाएँ ॥१५ ॥

३२६२. खड्रूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम्। य उदारा
अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये। सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६ ॥

अन्तरिक्ष में भ्रमणशील छोटे से छोटे स्थान पर रहने वाली हिंसक पक्षिका को दिखाएँ, जो ऊपर स्थित उत्पीड़क गुह्य अस्त्रों का प्रयोग करे। अपनी माया से दृष्टिगोचर न होने वाले गंधर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस हैं; उन्हें आप पराजित करने हेतु शत्रुओं को दिखाएँ ॥१६ ॥

३२६३. चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान्। स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥१७ ॥

चार दाढ़ों से युक्त, काले दाँतों वाले, घड़े के समान अण्डकोशों वाले, रक्त से संलिप्त मुख वाले, भयभीत होने वाले और भयभीत करने वाले- इन सभी को शत्रुओं को दिखाकर भयाक्रान्त करें ॥१७ ॥

३२६४. उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राञ्जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८ ॥

हे अर्बुदे ! आप शत्रुओं की सेनाओं को शोकाकुल करके कम्पायमान करें । आप दोनों विजयशील इन्द्रदेव के मित्ररूप हैं, अतएव हमारे वैरियों को पराजित करते हुए, हमें विजयी बनाएँ । ।१८ ॥

३२६५. प्रब्लीनो मृदितः शयां हतो३मित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९ ॥

हे न्यर्बुदे ! हमारा शत्रु घेरे जाकर, मसले जाकर सो जाए और यज्ञीय धूम्र शिखा तथा अग्नि ज्वालाएँ शत्रुओं की सेनाओं को जीतती हुई, हमारी सेना के साथ प्रस्थान करें ॥१९ ॥

३२६६.तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् । अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन।

हे अर्बुदे ! आपके द्वारा युद्धभूमि से भागे हुए श्रेष्ठ शत्रुवीरों को इन्द्रदेव चुन-चुनकर हिंसित करें और इन शत्रुओं में से कोई भी सुरक्षित न रह सके ॥२० ॥

३२६७.उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु । शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् मोत मित्रिणः।

शत्रुओं के हृदय उखड़ जाएँ, शत्रुओं के प्राण ऊपर ही ऊपर शरीर का साथ छोड़ दें । भयवश उनके मुख सूख जाएँ और हमारे मित्रजनों को इस प्रकार के कष्ट न हों ॥२१ ॥

३२६८. ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये । तमसा ये च तूपरा अथो
बस्ताभिवासिनः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२२

जो धैर्यशाली वीर, अधीर, कायर, युद्ध से पलायन करने वाले भयवश शक्ति -विहीन अन्धकार से घिरे हुए हैं । जो मोहवश, भग्नशृंग पशु के समान परेशान होकर खड़े रह जाते हैं और जो भेड़-बकरियों के समान शब्द करने वाले वीर हैं, हे अर्बुदे ! हमारे उन सभी सेनानियों को, शत्रुओं को पराजित करने के लिए इन शत्रुओं के समक्ष करें ॥२२ ॥

३२६९. अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥२३ ॥

अर्बुदि और त्रिषन्धि नामक ये दोनों देव हमारे वीरनायक हैं, ये शत्रुओं को अनेक विधियों से विनष्ट करें, हे वृत्रनाशक शचीपति इन्द्रदेव ! जिन हजारों प्रकार की रीतियों से हम इन शत्रुओं का संहार कर सकें, उस प्रकार आप इन्हें प्रताड़ित करें ॥२३ ॥

३२७०. वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्य-
जनान् पितॄन् । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२४ ॥

हे अर्बुदि देव ! वृक्ष और वनस्पतियों से निर्मित पदार्थों, ओषधियों, लताओं, गंधर्वों , अप्सराओं, सर्पों, देवों, पुण्यजनों , पितरगणों को आप शत्रुओं को प्रदर्शित करें और आकाशीय अस्त्रों (शक्तियों) को भी प्रदर्शित करें , जिससे शत्रुपक्ष भयभीत हो जाए ॥२४ ॥

३२७१. ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः
प्रजापतिः । ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥२५ ॥

हे अर्बुदे ! आपके आक्रमण किये जाने पर, शत्रुओं की पहचान होने के बाद हमारे शत्रुपक्ष को मरुद्गण दण्डित करें । इन्द्र, अग्नि आदि देवता शत्रुओं पर नियंत्रण करें । धाता, मित्र, प्रजापति, आदित्य, ब्रह्मणस्पति देव तथा अथर्वा, अङ्गिरा आदि ऋषिगण शत्रुओं को नियंत्रित करें ॥२५ ॥

३२७२. तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६ ॥

हे हमारे मित्ररूप देवगण ! आप हमारे शत्रुपक्ष का नियंत्रण करने के लिए उठकर तत्पर हों । इस प्रस्तुत युद्ध में भली प्रकार विजय प्राप्त करके अपने-अपने स्थान को प्रस्थान करें ॥२६ ॥

[१२ - शत्रुनाशक सूक्त]

[**ऋषि-** १-२७ भृग्वङ्गिरा । **देवता-** त्रिषन्धि । **छन्द-** अनुष्टुप्, १ विराट् पथ्या बृहती, २ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भा अतिजगती, ३ विराट् आस्तार पंक्ति, ४ विराट् अनुष्टुप्, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्, १२ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, १३ षट्पदा जगती, १६ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मती अनुष्टुप् त्रिष्टुब्गर्भा शक्वरी, १७ पथ्यापंक्ति, २१ त्रिपदा गायत्री, २२ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २५ ककुप् उष्णिक्, २६ प्रस्तार पंक्ति ।]

३२७३.उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह। सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत।

हे उदार वीरो ! आप अपनी ध्वजा- पताकाओं के साथ युद्ध के लिए चल पड़ें । हे सर्प के समान आकृति वाले देवगण ! आप राक्षसों और अन्य लोगों के साथ हमारे शत्रुओं पर आक्रमण करें ॥१ ॥

३२७४. ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह । ये अन्तरिक्षे ये दिवि
पृथिव्यां ये च मानवाः। त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥२ ॥

हे शत्रुओ ! वज्रधारी देव तुम्हें वश में रखें । हे त्रिषन्धिदेव ! आप अपनी अरुणवर्ण ध्वजा-पताकाओं के साथ उठें और आकाश, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी के बुरे काम (दुष्प्रतिष्ठा) वाले मनुष्यों पर दृष्टि रखें ॥२ ॥

३२७५. अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥३ ॥

त्रिषन्धि वज्र के साथ लोहे के मुख (फल) वाले, सुई की नोक के समान बहुत से काँटों वाले, वृक्षों के समान काँटेदार, कच्चे मांस का भक्षण करने वाले और वायु के वेग से गमन करने वाले (बाण) शत्रुओं पर टूट पड़ें ॥३ ॥

३२७६.अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु। त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥४ ।

हे जातवेदा, हे आदित्य ! आप शत्रु शवों को आत्मसात् कर लें । त्रिषंधिदेव की वज्र को धारण करने वाली सेना भली प्रकार हमारे नियन्त्रण में रहे ॥४ ॥

३२७७. उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह। अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥

हे देवजनो, हे अर्बुदे ! आप अपनी सेना के साथ उठें । यह आहुति आपको तृप्ति प्रदान करने वाली हो । त्रिषन्धिदेव की सेना भी हमारी आहुति से परितृप्त होकर हमारे शत्रुओं को विनष्ट कर डाले ॥५ ॥

३२७८.शितिपदी सं द्यतु शरव्येऽयं चतुष्पदी। कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया।

यह शितिपाद चार चरण वाली शक्ति, बाणों की तरह शत्रुओं का संहार करे । हे विनाशकारिणी कृत्ये ! आप त्रिषन्धि नामक देव के वज्र को धारण करने वाली सेना के साथ शत्रुओं के विनाश के लिए उद्यत रहें ॥६ ॥

३२७९.धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥७ ॥

मायावी धूम्र से शत्रुसेना के नेत्र भर जाएँ और वह धराशायी होने लगे । नगाड़ों की ध्वनि से श्रवण शक्ति

के नष्ट होने पर शत्रुसेना रोने लगे । त्रिषन्धिदेव की सेना की विजय होने पर लाल वर्ण के ध्वज फहराये जाएँ ॥७ ॥

३२८०. अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८ ॥

जो पक्षी दिव्यलोक और अन्तरिक्ष लोक में विचरण करने वाले हैं, शत्रुदल की मृत्यु पर मांस भक्षण के लिए नीचे मुख करके आ जाएँ । हिंसक पशु और मक्खियाँ शवभक्षण के लिए हमला करें । कच्चे मांस को खाने वाले गीध भी शवों का भक्षण करें ॥८ ॥

३२८१. यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९ ॥

हे बृहस्पति देव ! आपने देवराज इन्द्र और प्रजापति ब्रह्मा से जो संधान क्रिया (प्रतिज्ञा) की थी; हे इन्द्रदेव ! उस प्रतिज्ञा स्वरूप संधान क्रिया से हम समस्त देवों को यहाँ आवाहित करते हैं । हे आवाहित देवो ! आप हमारे सैन्यदल को विजय श्री प्रदान करें, शत्रुसेना को नहीं ॥९ ॥

३२८२. बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः । असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥

अंगिरा के पुत्र देवमन्त्री बृहस्पति और अपने ज्ञान से प्रखर अन्य ऋषि भी असुरों के संहारक त्रिषन्धि नामक वज्र का दिव्यलोक में आश्रय लेते रहे हैं ॥१० ॥

३२८३. येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥११ ॥

जिस त्रिषन्धि ने सूर्यदेव को संरक्षित किया । सूर्य और इन्द्र दोनों उससे रक्षित रहते हैं । त्रिषन्धि नामक वज्र को सभी देवों ने ओज और बल के लिए स्वीकृत किया है ॥११ ॥

३२८४. सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥१२ ॥

अंगिरा के पुत्र बृहस्पति ने जिस असुर-विनाशक वज्र को निर्मित किया, इन्द्र आदि सभी देवताओं ने उसी से सभी लोकों पर विजय प्राप्त की ॥१२ ॥

३२८५. बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! उसी वज्र के ओज से हम शत्रु सेना को शक्तिपूर्वक नष्ट करते हैं , जिसे आपने असुर संहार के लिए विनिर्मित किया था ॥१३ ॥

३२८६. सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट् कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥१४ ॥

जो वषट्कार से प्रदत्त हविष्यान्न का सेवन करते हैं, वे देवगण शत्रुओं को जीतकर हमारी ओर आगमन कर रहे हैं । हे देवगण ! आप इस आहुति को ग्रहण करें और यहाँ शत्रुओं को पराजित करें, उधर से नहीं ॥१४ ॥

३२८७. सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥१५ ॥

समस्त देवगण शत्रुसेना का अतिक्रमण करें । त्रिषन्धि वज्र को हवि प्रिय है । हे देवगण ! जिससे आपने प्रारम्भ में आसुरी शक्तियों का पराभव किया, उसी से सन्धि की सुरक्षा करें ॥१५ ॥

३२८८.वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रति-
धामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६ ॥

वायुदेव शत्रुओं के बाणों के अग्रिम भागों को शक्ति विहीन करें । इन्द्रदेव इनकी भुजाओं को खंडित कर दें । वे शत्रु प्रत्यञ्चा पर बाण चढ़ा पाने में सक्षम न हों । सूर्यदेव इनके आयुधों को विनष्ट करें । चन्द्रदेव शत्रु के मार्ग को अवरुद्ध करें ॥१६ ॥

३२८९. यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे।तनूपानं
परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७ ॥

हे देवताओ ! यदि शत्रुरूप राक्षसों ने पूर्व से ही मन्त्रमय कवचों का निर्माण किया हो, तो आप उन मन्त्रों को निरर्थक (शक्तिहीन) कर दें ॥१७ ॥

३२९०.क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥१८ ॥

हे त्रिषंधिदेव ! आप शत्रु समूह को घेरकर मांसभक्षियों के सामने धकेल दें और अपनी सेना के साथ आगे बढ़ें तथा शत्रुओं को जीतकर, उन्हें अपने नियन्त्रण में करें ॥१८ ॥

३२९१.त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ।

हे त्रिषन्धिदेव ! आप अपने मायावी अन्धकार से शत्रुओं को घेरें, पृषदाज्य (महान् व्रत या सार तत्त्व) से प्रेरित होकर इन शत्रुओं में से कोई भी मुक्त न रह पाए ॥१९ ॥

३२९२. शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥

श्वेत पादयुक्त शक्ति शत्रुओं की सेना के ऊपर गिर पड़े । हे अर्बुदे ! आज ये युद्धभूमि में दूर-दूर दिखाई देती हुई शत्रु सेनाएँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाएँ ॥२० ॥

३२९३. मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥२१ ॥

हे अर्बुदे ! आप अपनी माया से शत्रुओं को व्यामोहित करें, इनके मुख्य सेनापतियों का पराभव करें । आपके अनुग्रह से हमारी सेना भी उन पर विजय प्राप्त करे ॥२१ ॥

३२९४. यश्च कवची यश्चाकवचो३मित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥२२ ॥

शत्रु सैनिक कवच को धारण किये हुए, कवचरहित अथवा रथारूढ़ जिस भी स्थिति में युद्ध कर रहे हों, वे अपने ही कवच बाँधने के पाशों, प्रत्यञ्चा पाशों और रथ के आघातों से घायल होकर गत्यवरोध से चेष्टारहित होकर गिर पड़ें ॥२२ ॥

३२९५. ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥२३ ॥

जो शत्रु कवचधारी, कवचविहीन और कवच के अतिरिक्त रक्षा साधनों को धारण करने वाले हैं । हे अर्बुदे ! उनकी मृत देहों को पृथ्वी पर कुत्ते, गीदड़ आदि भक्षण कर जाएँ ॥२३ ॥

३२९६. ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥२४ ॥

रथारूढ़, रथरहित, अश्वरहित और घुड़सवार जो भी शत्रु सैनिक हों, हे अर्बुदे ! मारे गये उन शत्रुओं को गीध, श्येन (बाज) आदि पक्षी खा डालें ॥२४ ॥

३२९७. सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् । विविद्धा ककजाकृता ॥२५ ॥

शत्रु सेनाएँ शस्त्रों से बिंधकर हजारों की संख्या में घायल होकर शव के रूप में गिर पड़ें ॥२५ ॥

३२९८. मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥२६ ॥

हमारे जो शत्रु उस पृषदाज्य आहुति को वापस करके हमसे युद्ध करने के इच्छुक हैं, उनके मर्मस्थल बाणों से छिन्न-भिन्न हों । मार्मिक वेदना से वे रुदन करने लगें । दुखों से पीड़ित होकर वे पृथ्वी पर गिरें और हिंसक पशु उन्हें खा जाएँ ॥२६ ॥

३२९९. यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥२७ ॥

देवगण जिस अनुष्ठान को सम्पन्न करते हैं और जो कभी निरर्थक नहीं होता, उस त्रिषंधि वज्रास्त्र से वृत्रसंहारक इन्द्र हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥२७ ॥

॥ इत्येकादशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ द्वादश काण्डम् ॥

[१ - भूमि सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** भूमि । **छन्द-** त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४-६, १०, ३८ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ७ प्रस्तार पंक्ति, ८, ११ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टि, ९ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, १२-१३, ३७ त्र्यवसाना पञ्चपदा शक्वरी, १४ महाबृहती, १५ पञ्चपदा शक्वरी, १६, २१ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्, १८ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप् अनुष्टुब्गर्भा शक्वरी, १९ उरोबृहती, २० विराट् उरोबृहती, २२ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् अतिजगती, २३ पञ्चपदा विराट् अतिजगती, २४ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा जगती, २५ त्र्यवसाना सप्तपदा उष्णिक् अनुष्टुब्गर्भा शक्वरी, २६-२८, ३३, ३५, ३९-४०, ५०, ५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप्, ३० विराट् गायत्री, ३२ पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्, ३४ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप् बृहतीगर्भा अतिजगती, ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति, ४१ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मती शक्वरी, ४२ स्वराट् अनुष्टुप्, ४३ विराट् आस्तार पंक्ति, ४४-४५, ४९ जगती, ४६ षट्पदा अनुष्टुब्गर्भा पराशक्वरी, ४७ षट्पदा उष्णिक् अनुष्टुब्गर्भा परातिशक्वरी, ४८ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्, ५१ त्र्यवसाना षट्पदा अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी, ५२ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती, ५३ पुरोबार्हतानुष्टुप्, ५७ पुरोऽतिजागता जगती, ५८ पुरस्ताद् बृहती, ६१ पुरोबार्हता त्रिष्टुप्, ६२ पराविराट् त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त को पृथ्वी सूक्त कहा जाता है । इसमें सभी भूतों को पृथ्वी माता की सन्तान कहा गया है । इसे मातृभूमि सूक्त भी कहते हैं । मन्त्रों में भूमि की विशेषताओं एवं उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों का बोध कराया गया है । भूमि अथवा मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य पालन करने वालों के लिए आवश्यक गुणों, प्रवृत्तियों, मर्यादाओं का भी उल्लेख है । उस क्रम में अनुभव होने वाली कठिनाइयों तथा उनके निवारणार्थ सूत्रों का भी उल्लेख है । राष्ट्रीय अवधारणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित, पोषित एवं फलित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सूक्त है-

३३००. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१ ॥

सत्यनिष्ठा, विस्तृत यथार्थ बोध, दक्षता, क्षात्रतेज, तपश्चर्या, ब्रह्मज्ञान और त्याग-बलिदान ये भाव भूमि अथवा मातृभूमि का पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं भूतकालीन और भविष्य में होने वाले सभी जीवों का पालन करने वाली मातृभूमि हमें विस्तृत स्थान प्रदान करे ॥१ ॥

[स्वार्थपूर्ण, महत्वाकांक्षाओं से ग्रस्त, जन्मभूमि या मातृभूमि को पुष्ट एवं विकसित नहीं कर सकते ।]

३३०१. असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२ ॥

हमारी जिस भूमि के मनुष्यों के मध्य (गुण, कर्म और स्वभाव की भिन्नता होने पर भी) परस्पर अत्यधिक सामञ्जस्य और ऐक्यभाव है, जो हमारी मातृभूमि रोगनाशक ओषधियों को धारण करती है, वह हमारी कामना पूर्ति और यशोवृद्धि का साधन बने ॥२ ॥

३३०२. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३ ॥

हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नद, नदी, नहर, झीलें-तालाब, कुएँ आदि जल साधन हैं ; जहाँ सब भाँति के अन्न, फल तथा शाक आदि अत्यधिक मात्रा में पैदा होते हैं; जिसके सभी प्राणी सुखी हैं, जिसमें कृषक लोग, शिल्पकर्म विशेषज्ञ तथा उद्यमी लोग अत्यधिक संगठित हैं, इस प्रकार की हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो ॥३ ॥

[जहाँ प्राकृतिक सम्पदा के साथ विभिन्न प्रतिभा- सम्पन्न वर्ग परस्पर तालमेल के साथ रहते हैं; वहाँ भूमि सभी प्रकार के वैभव प्रदान करती है ।]

३३०३. यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४ ॥

हमारी जिस भूमि में उद्यमी और शिल्पकला में निपुण, कृषि कार्य करने वाले हुए हैं, जिस भूमि में चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ धान, गेहूँ आदि पैदा करती हैं, जो विभिन्न प्रकार से प्राणधारियों और वृक्ष- वनस्पतियों का पालन-पोषण और संरक्षण करती हैं, वह मातृभूमि हमें गौ आदि पशु और अन्नादि प्रदान करने वाली हो ॥४ ॥

३३०४. यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५ ॥

हमारी जिस पृथ्वी में प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रकार के पराक्रमी कर्म सम्पन्न किये हैं, जिसमें देव समर्थक वीरों ने आसुरी शक्तियों से धर्म-युद्ध किया है, जिस भूमि में गाय, घोड़े और पशु-पक्षी विशेष रूप से आश्रय ग्रहण करते हैं, ऐसी हमारी मातृभूमि हमारे ज्ञान-विज्ञान, शौर्य, तेज, वीर्य और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली हो ॥५ ॥

३३०५. विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६ ॥

विश्व के सभी जीवों का पोषण करने वाली, सम्पदाओं (खनिजों) की खान, सबको प्रतिष्ठित करने वाली, स्वर्णिम वक्ष वाली, जगत् (सभी प्राणियों) का निवेश करने वाली, वैश्वानर (प्राणाग्नि) का भरण-पोषण करने वाली यह भूमि अग्रणी, बलशाली इन्द्रदेव तथा हम सबको अनेक प्रकार के धन धारण कराने वाली हो ॥६ ॥

३३०६. यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७ ॥

निद्रा, तंद्रा, आलस्य, अज्ञान आदि दुर्गुणों से रहित देवगण (या देवपुरुष) जिस विशाल भूमि की, प्रमाद-रहित होकर रक्षा करते हैं, वह मातृभूमि सभी उत्तम, प्रिय तथा कल्याणकारी पदार्थों से हमें सुसम्पन्न करे तथा हमें ज्ञान, वर्चस् और ऐश्वर्य प्रदान करे ॥७ ॥

३३०७. यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः । यस्या हृदयं
परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः । सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८

जिस भूमि का हृदय परमव्योम के सत्य-अमृत प्रवाह से आवृत रहता है, मनीषीगण अपनी कुशलता से जिसका अनुगमन करते हैं ; वह भूमि हमारे श्रेष्ठ राष्ट्र में तेजस्विता, बलवत्ता बढ़ाने वाली हो ॥८ ॥

[पृथ्वी आकाश के सूक्ष्म अमृत प्रवाहों से पोषण प्राप्त करती है । ज्ञानवान् लोग भी पृथ्वी की विशेषताओं का लाभ अपनी प्रतिभा द्वारा उठाते रहते हैं ।]

३३०८. यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९ ॥

जिस धरा पर चारों ओर विचरने वाले परिव्राजक, संन्यासी शीतल जल की भाँति समदृष्टि सम्पन्न उपदेश देते हुए रात-दिन सजग होकर ज्ञान का संचार करते रहते हैं । जो भूमि हमें सभी प्रकार के अन्न-जल और दूध, घी इत्यादि प्रदान करती है, वह मातृभूमि हमारी तेजस्विता, प्रखरता को बढ़ाए ॥९ ॥

३३०९. यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१० ॥

अश्विनीकुमारों ने जिस धरा का मापन किया, विष्णुदेव ने जिस पर विभिन्न पराक्रमी कार्य सम्पन्न किये और इन्द्रदेव ने जिसे दुष्ट शत्रुओं से विहीन करके अपने नियन्त्रण में किया था, वह पृथ्वी मातृसत्ता द्वारा पुत्र को दुग्धपान कराने के समान ही अपनी (हम सभी) सन्तानों को खाद्य पदार्थ प्रदान करे ॥१० ।।

३३१०. गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥

हे धरतीमाता ! आपके हिमाच्छादित पर्वत और वन हमारे लिए सुखदायक हों, वे शत्रुओं से रहित हों । विभिन्न रंगों वाली इन्द्रगुप्ता (इन्द्र-रक्षित) पृथ्वी पर मैं क्षय से रहित, कभी पराजित न होने वाला और अनाहत होकर प्रतिष्ठित रहूँ ॥११ ॥

३३११. यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२ ॥

हे पृथिवीमाता ! जो आपके मध्यभाग और नाभिस्थान हैं तथा आपके शरीर से जो पोषणयुक्त पदार्थ प्रादुर्भूत होते हैं; उसमें आप हमें प्रतिष्ठित करें और हमें पवित्रता प्रदान करें । यह धरती हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं । पर्जन्य (उत्पादक प्रवाह) हमारे पिता हैं, वे भी हमें पूर्ण करें- सन्तुष्ट करें ॥१२ ॥

३३१२. यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३ ॥

जिस भूमि पर सभी ओर वेदिकाएँ बनाकर विश्वकर्मादि (विश्व सृजेता अथवा सृजनशील मनुष्य) यज्ञ का विस्तार करते हैं । जहाँ शुक्र (स्वच्छ या उत्पादक) आहुतियों के पूर्व यज्ञीय यूप (आधार) स्थापित किये जाते हैं- यज्ञीय उद्‌घोष होते हैं । वह वर्धमान भूमि हम सबका विकास करे ॥१३ ॥

[भूमि को यज्ञीय-परमार्थ कर्मों की वेदी कहा गया है, श्रेष्ठ यज्ञीय प्रक्रिया के पहले उसके लिए प्रवृत्तियों के आधार बनाने होते हैं, तभी वे फलित होते हैं ।]

३३१३. यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन । तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४ ॥

हे मातृभूमे ! जो हमसे द्वेष- भावना रखते हैं, जो सेना द्वारा हमें पराभूत करने के इच्छुक हैं, जो मन से हमारा अनिष्ट चाहते हैं, जो हमें परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ने की कुचेष्टा करते हैं, जो हमारा संहार करके हमें पीड़ा पहुँचाना चाहते हैं, ऐसे हमारे शत्रुओं का आप समूल नाश करें ॥१४ ॥

३३१४. त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५ ॥

हे पृथिवीमाता ! आपसे उत्पन्न और आपके ऊपर विचरण करने वाले प्राणियों, दोपायों, चौपायों, सभी का आप पालन- पोषण करती हैं । सूर्य अपनी अमृतस्वरूपी रश्मियों को जिनके लिए चारों ओर विस्तारित करता है, ऐसे हम पाँच प्रकार के मनुष्य (विद्वान् , शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार और सेवा धर्मरत) आपके ही हैं ॥१५ ॥

३३१५. ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६ ॥

हे मातृस्वरूप भूमे ! सूर्य की किरणें हमारे निमित्त प्रजाओं और वाणी का दोहन करें । आप हमें मधुर पदार्थ और वाणी प्रदान करें ॥१६ ॥

३३१६. विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७ ॥

जिसमें सभी प्रकार की श्रेष्ठ वनस्पतियाँ और ओषधियाँ पैदा होती हैं, वह पृथ्वी माता विस्तृत और स्थिर हो । विद्या, शूरता, सत्य, स्नेह आदि सद्‌गुणों से पालित-पोषित, कल्याणकारी और सुख- साधनों को देने वाली मातृभूमि की हम सदैव सेवा करें ॥१७ ॥

३३१७. महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय
हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८ ॥

हे पृथिवी माता ! आप हम सभी को रहने का स्थान देती हैं । इसलिए आप बढ़ती रहती हैं । आप जिस गति से आकाश में कम्पित होकर जाती हैं, वह वेग अतितीव्र है । इन्द्रदेव सजगता के साथ आपकी रक्षा करते हैं । आप स्वयं स्वर्ण के समान तेजः सम्पन्न हैं, हमें भी तेजस्वी बनाएँ , हममें परस्पर कोई द्वेषभाव न हो, हम सबके प्रिय हों ॥१८ ॥

३३१८. अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९ ॥

पृथ्वी के मध्य भाग और ओषधियों में, अग्नि तत्त्व विद्यमान है । जल (मेघ) में,विद्युत् (अग्नि) में, पत्थरों में (चकमक इत्यादि) , मनुष्यों में, गौओं, घोड़ों आदि पशुओं में भी (जठराग्नि रूप में) , अग्नि तत्त्व की उपस्थिति है ॥१९ ॥

३३१९. अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२० ॥

दिव्यलोक में, सूर्यरूप में अग्निदेव ही सब ओर प्रकाशित होते हैं, विशाल अन्तरिक्ष भी उसी प्रकाश स्वरूप अग्नि से आलोकित होता है । यज्ञ में प्रदत्त आहुतियों को ले जाने वाले घृत- स्नेहयुक्त अग्नि को मनुष्य प्रदीप्त करते हैं ॥२० ॥

३३२०. अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१ ॥

असितवर्ण से पृथ्वी में स्थित अग्निदेव हमें प्रकाश से- तेजस्विता से संयुक्त करें ॥२१ ॥

३३२१. भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन
मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२ ॥

जिस भूमि पर यज्ञ सुशोभित होते हैं और यज्ञों में मनुष्यों द्वारा देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, जिससे मनुष्य भूमि पर श्रेष्ठ अन्न और जल से जीवन धारण करते हैं; वह भूमि हमें प्राण और आयु प्रदान करे । वह पृथ्वी हमें पूर्ण आयुष्य प्राप्त करने योग्य बनाए ॥२२ ॥

३३२२. यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः । यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३ ॥

हे मातृभूमे ! आपके अन्दर विद्यमान श्रेष्ठ सुगन्धित ओषधियों और वनस्पतियों के रूप में जो गन्ध उत्पन्न होती है, जिसे अप्सराएँ और गन्धर्व भी धारण करते हैं । आप हमें उस सुगन्धि से सुरभित करें । हममें कोई परस्पर द्वेष न करे, सभी मनुष्य परस्पर मैत्रीभाव से रहें ॥२३ ॥

३३२३. यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे । अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४ ॥

हे भूमे ! आपकी जो सुगन्धि कमल में प्रविष्ट हुई है, जिस सुगन्धि को सूर्या (उषा) के पाणिग्रहण के समय वायुदेव ने धारण किया, उसी सुगन्धि से आप हमें सुगन्धित करें । संसार में कोई भी पारस्परिक द्वेष-भाव न रखें ॥२४ ॥

३३२४. यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५ ॥

हे मातृभूमे ! वीर पुरुषों, साधारण स्त्री- पुरुषों में और हाथी, घोड़े आदि चार पैरों वाले पशुओं में जो तेजस्विता है तथा अविवाहित कन्याओं में आपकी जो गन्ध (तेजस्) है, वही गन्ध (तेजस्) हमारे अन्दर भी समाविष्ट हो । हमसे कोई द्वेष करने वाला न हो ॥२५ ॥

३३२५. शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता । तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६ ॥

जिस भूमि के ऊपर धूल, शिलाखण्ड और पत्थर हैं, जिसके भीतर स्वर्ण- रत्नादि अमूल्य खनिज पदार्थ हैं, उस धरती माँ को हम नमन करते हैं ॥२६ ॥

३३२६. यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा । पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७ ॥

जिस भूमि में वृक्ष-वनस्पति और लता आदि सदा स्थिर रहते हैं, जो वृक्ष-लतादि ओषधिरूप में सबकी सेवा सम्पन्न करती है, ऐसी वनस्पतिधारिणी, धर्मधारिणी और सर्वपालनकर्त्री धरती की हम शीश झुकाकर स्तुति करते हैं ॥२७ ॥

३३२७. उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः । पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८ ॥

हे मातृ भूमे ! हम दाँयें अथवा बायें पैर से चलते-फिरते, बैठे या खड़े होने की स्थिति में कभी दुखी न हों ॥२८ ॥

३३२८. विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् । ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९ ॥

क्षमा स्वरूपिणी, परम पावन और मन्त्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाली भूमि की हम स्तुति करते हैं । हे पुष्टिदात्री, अन्नरस और बल-धारणकर्त्री पृथ्वी माता ! हम आपको घृताहुति समर्पित करते हैं ॥२९ ॥

३३२९. शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये
तं नि दध्मः । पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३० ॥

हे मातृभूमे ! आप हमारी शुद्धता के लिए स्वच्छ जल प्रवाहित करें । हमारे शरीर से उतरा हुआ जल हमारा अनिष्ट करने के इच्छुकों के पास चला जाए । हे भूमे ! पवित्रशक्ति (पवित्रता प्रदायक प्रवृत्तियों या प्रवाहों) से हम स्वयं को पावन बनाते हैं ॥३० ॥

३३३०. यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१ ॥

हे भूमे ! आपकी पूर्व, पश्चिम आदि चारों दिशाओं, चारों उपदिशाओं तथा नीचे और ऊपर की दिशाओं में जो लोग विचरण करते हैं, वे सभी हमारे लिए कल्याणकारी हों । हमारा किसी प्रकार का अध: पतन न हो ॥३१ ॥

३३३१. मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२ ॥

हे भूमे ! हमारे पूर्व- पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों दिशाओं में, आप प्रहरी बनकर संरक्षण करें, आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । दुष्ट शत्रु हमें न जान पाएँ , उन शत्रुओं के संहार से हमें मुक्त रखें ॥३२ ॥

३३३२. यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३ ॥

हे भूमे ! जब तक हम स्नेही (अपने प्रकाश से आनन्दित करने वाले) सूर्यदेव के समक्ष आपका विस्तार देखते रहें, तब तक हमारी आयुष्य वृद्धि के साथ नेत्रज्योति (दर्शनेन्द्रिय) में किसी प्रकार की शिथिलता न आए ॥३३ ॥

३३३३. यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्
पृष्टीभिरधिशेमहे । मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४ ॥

हे मातृभूमे ! जब सुप्तावस्था (सोयी हुई स्थिति) में हम दाँयें और बायें करवट लें तथा आपके ऊपर पश्चिम की ओर पैर पसारते हुए पीठ नीचे की ओर करके शयन करें , तब सभी मनुष्यों की आश्रयभूता हे भूमे ! आप हमारा संहार न करें ॥३४ ॥

३३३४. यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५ ॥

हे धरतीमाता ! जब हम (ओषधियाँ, कन्द आदि निकालने अथवा बीज बोने के लिए) आपको खोदें, तो वे वस्तुएँ शीघ्र उगें-बढ़ें । अनुसंधान के क्रम में हमारे द्वारा आपके मर्म- स्थलों को अथवा हृदय को हानि न पहुँचे ॥३५ ॥

[आज हम अपने अनुसंधान के क्रम में धरती को क्षत-विक्षत करने पर उतारू हैं । ऋषि हमें इस सम्बन्ध में हृदय हीन होने से रोकते हैं ।]

३३३५. ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६ ॥

हे विशाल मातृभूमे ! आपमें जो ग्रीष्म, वर्षा, शरद् , हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये छह ऋतुएँ वर्षभर में प्रतिष्ठित की गई हैं, उन - उन ऋतुओं के दिन-रात सभी तरह से हमारे लिए सुखप्रद हों ॥३६ ॥

३३३६. याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्व१न्तः । परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७ ॥

हिलती हुई गतिशील जिस भूमि में अग्नि स्थित है, जो जल के अन्दर है । देववृत्तियों की अवरोधक, वृत्र जैसे शत्रुओं का संहार करने वाले, देवराज इन्द्र का वरण करने वाली पृथ्वी, शक्तिशाली, वीर्यवान् और सामर्थ्यशाली पुरुष के लिए धारण की गई है ॥३७ ॥

[पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई, भौंरे की तरह हिलती हुई, अन्तरिक्ष में दौड़ रही है- यह बात पदार्थ विज्ञानियों को अभी कुछ सौ वर्ष पहले ही मालूम हुई है, ऋषि इसे हजारों वर्ष पूर्व जानते थे ।]

३३३७. यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८ ॥

जिस धरती पर हविष्यान्न समर्पित करने के लिए यज्ञ-मण्डप का निर्माण किया जाता है, जिसमें यज्ञ-स्तम्भ खड़े किये जाते हैं । जिस भूमि पर ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मंत्रों से ऋत्विग्गण पूजा अर्चना करते हैं और इन्द्रदेव के लिए सोमपान के कार्य में संलग्न रहते हैं ॥३८ ॥

३३३८. यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः । सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९

प्राचीन काल में जिस पृथ्वी पर प्राणिसमूह के हितैषी क्रान्तदर्शी ऋषियों ने सप्त सत्रवाले ब्रह्म-यज्ञ किये और तपःपूत वाणी द्वारा वन्दनाएँ कीं ॥३९ ॥

३३३९. सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे । भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥

वह पृथ्वी हमारी आवश्यकता के अनुरूप हमें वाञ्छित धन प्रदान करे । ऐश्वर्य हमारा सहायक हो । इन्द्रदेव अग्रणी होकर आगे बढ़ें ॥४० ॥

३३४०. यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः । युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः । सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१ ॥

जिस भूमि में मनुष्य प्रसन्नता से गाते तथा नृत्य करते हैं, जिसमें मनुष्य शौर्योचित गुण से परिपूर्ण राष्ट्र के संरक्षण के लिए युद्धरत होते हैं, जहाँ शत्रु रुदन करते हैं, जहाँ नगाड़े बजाये जाते हैं, वह पृथ्वी हमारे शत्रुओं को दूर भगाकर हमें शत्रुविहीन करें ॥४१ ॥

३३४१. यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः । भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२ ॥

जिस भूमि में धान, गेहूँ, जौ आदि खाद्य-पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं, जहाँ (विद्वान् , शूरवीर, व्यापारी , शिल्पकार तथा सेवक) ये पाँच प्रकार के लोग आनन्दपूर्वक निवास करते हैं । जिस भूमि में निश्चित समय पर जलवृष्टि होकर अन्नादि का उत्पादन होता है, पर्जन्य से जिसका पोषण होता है, ऐसी मातृभूमि के प्रति हमारा नमन है ॥४२ ॥

३३४२. यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते । प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३ ॥

देवगणों द्वारा रचित हिंसक पशु पृथ्वी के जिस क्षेत्र में विभिन्न क्रीड़ाएँ सम्पन्न करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को स्वयं में धारण किये है, उस पृथ्वी की प्रत्येक दिशा को प्रजापति हमारे लिए सौन्दर्य- सम्पन्न बनाएँ ॥४३ ॥

३३४३. निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४ ॥

अपने अनेक गुह्य स्थलों में धन, रत्न आदि तथा सोना, चाँदी आदि निधियों को धारण करने वाली पृथ्वी देवी हमारे लिए ये सभी खनिज-पदार्थ प्रदान करें । धन प्रदात्री, वरदात्री दिव्य -स्वरूपा पृथ्वी हमारे ऊपर प्रसन्न होकर, हमें ऐश्वर्य प्रदान करे ॥४४ ॥

३३४४. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५ ॥

अनेक प्रकार की धार्मिक मान्यता वालों और विभिन्न भाषा- भाषी जन समुदाय को एक परिवार के रूप में आश्रय देने वाली, अविनाशी और स्थिर स्वभाव वाली पृथ्वी, गाय के दूध देने के समान ही असंख्य ऐश्वर्य हमारे लिए प्रदान करने वाली बने ॥४५ ॥

३३४५. यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।क्रिमिर्जिन्वत्
पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६ ॥

हे मातृभूमे ! आप में जो साँप-बिच्छू आदि वास करते हैं, जिनका दंश प्यास और दाह पैदा करने वाला है, जिनके काटने पर शरीर पर दाने उठ आते हैं, जो कृमि गुफा में सोते रहते हैं, ये सभी वर्षा ऋतु में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले प्राणी तथा रेंगने वाले विषैले प्राणी कभी हमारा स्पर्श न करें । जो प्राणिसमूह हमारे लिए कल्याणकारी हों, वे हमें सुख प्रदान करें ॥४६ ॥

३३४६. ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे । यैः संचरन्त्युभये
भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७ ॥

हे देवस्वरूपे ! मनुष्यों के चलने फिरने योग्य, रथ और गाड़ियों के चलने योग्य जो आपके मार्ग हैं, जिन पर परोपकाररत सज्जन और स्वार्थरत दुर्जन दोनों तरह के लोग विचरण करते हैं, उन्हें आप चोरों और शत्रुओं के भय से मुक्त करें । हम कल्याणकारी मार्ग से जाते हुए विजय प्राप्त करें, उन मार्गों से आप हमें सुखी करें ॥४७ ॥

३३४७. मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८ ॥

गुरुत्वाकर्षण शक्ति को धारण करने की क्षमता से युक्त, पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्यों को सहन करती हुई वह पृथ्वी उत्तम जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता का निवारण करके, सूर्य के चारों ओर विशेषरूप से गमन करती है ॥४८ ॥

३३४८. ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९ ॥

हे पृथिवि ! जो जंगली पशु , पुरुषभक्षी सिंह, बाघ आदि जंगल में घूमते- फिरते हैं, उन उल नामक पशुओं, भेड़ियों, भालुओं और राक्षसों को हमारे यहाँ से दूर करके हमें निर्भय बनाएँ ॥४९ ॥

३३४९. ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५० ॥

हे भूमे ! जो हिंसक, आलसी, दरिद्र, दूसरे के धन के हरणकर्त्ता, मांसभक्षी और राक्षसी वृत्तियों वाले आततायी हैं, उन सभी को हमसे पृथक् करें ॥५० ॥

३३५०. यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि । यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् । वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

जिस भूमि पर दो पैर वाले हंस, गरुड़ आदि पक्षी उड़ते हैं, जहाँ धूलि- कणों को उड़ाती और पेड़ों को उखाड़ते हुए अन्तरिक्ष में संचरित होने वाले मातरिश्वा वायुदेव प्रवाहित होते हैं, उन वायुदेव की तीव्रता से अग्नि देव भी तीव्रगति से चलते हैं ॥५१ ॥

३३५१. यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२ ॥

जिस पृथ्वी पर अरुण और कृष्ण दिन-रात्रि मिलकर स्थित रहते हैं, जो पृथ्वी वृष्टि से आवृत रहती है, वह पृथ्वी हमें अपनी कल्याणकारी चित्तवृत्ति से प्रिय धामों में प्रतिष्ठित करे ॥५२ ॥

३३५२. द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥५३ ॥

द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल, मेधा (धारण शक्तियुक्त बुद्धि) तथा समस्त देवों ने हमें चलने (विभिन्न प्रकार से संव्याप्त होने) की शक्ति प्रदान की है ॥५३ ॥

३३५३. अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४ ॥

मैं शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला, पृथ्वी में विशेषरूप से प्रख्यात हूँ । मैं शत्रुओं के सम्मुख पहुँच कर, उन्हें प्रताड़ित करूँ । मैं हर दिशा में विद्यमान शत्रुओं को ठीक तरह से वश में कर लूँ ॥५४ ॥

३३५४. अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५ ॥

हे पृथिवी देवि ! जब आपका विकास नहीं हुआ था, तब देवताओं ने आपसे विस्तृत होने की प्रार्थना की थी, उस समय आपके अंदर श्रेष्ठ प्राणी प्रविष्ट हो गये, तभी आपने चार दिशाओं की कल्पना की थी ॥५५ ॥

३३५५. ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् । ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥

भूमि में जहाँ-जहाँ गाँव, नगर, वन, सभाएँ हैं तथा जहाँ संग्राम और युद्ध मन्त्रणाएँ सम्पन्न होती हैं, वहाँ-वहाँ हम आपकी स्तुति करते हैं ॥५६ ॥

३३५६. अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७ ॥

पृथ्वी पर उत्पादित होने वाले पदार्थ पृथ्वी पर वास करते हैं, उनके ऊपर अश्व के समान ही धूलिकण उड़ाते

हैं । यह पृथ्वी प्रसन्नतादायी अग्रणी, विश्वरक्षक वनस्पतियों और ओषधियों का पालन करने वाली है ॥५७ ॥

३३५७. यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८ ॥

हम (अपने राष्ट्र के विषय में) जो उच्चारण करें, वह हितकर और मधुरता से भरा हुआ हो, जो देखें, वह सब हमारे लिए प्रिय (सहायक) हो । हम तेजस्वी, वेग- सम्पन्न हों तथा दूसरे (शत्रुओं) का संहार कर दें ॥५८ ॥

३३५८. शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९ ॥

शान्तिप्रद, सुगन्धिसम्पन्न, सुखदायी अन्न को देने वाली, पयस्वती मातृभूमि हमें उपभोग्य सामग्री और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो तथा हमारे पक्ष में बोले ।५९ ॥

३३५९. यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६० ॥

विश्वकर्मा ने जब अन्तरिक्ष में अर्णव (प्राथमिक उत्पादक प्रवाहों) से हवियों के द्वारा भूमि को निकाला, तो भोज्य पदार्थों के छिपे हुए भण्डार प्रकट हो गये ॥६० ॥

३३६०. त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१ ॥

हे धरतीमाता !आप मनुष्यों को दुःखों से रहित करने वाली वाञ्छित पदार्थों को देने वाली, क्षेत्ररूपा और विस्तार वाली हैं ।आपके भाग जो कम हो जाते हैं, उन्हें सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत प्रजापति ब्रह्मा पूर्ण कर देते हैं ।

३३६१. उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२ ॥

हे भूमे ! आपमें उत्पन्न हुए सभी लोग, नीरोग, क्षयरोगरहित होकर हमारे समीप रहने वाले हों । हम दीर्घायुष्य को प्राप्त करते हुए मातृभूमि के लिए हवि प्रदान करने वाले बनें ॥६२ ॥

३३६२. भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३ ॥

हे मातृभूमे ! आप हमें कल्याणकारी प्रतिष्ठा से युक्त करें । हे कवे ! हे देवि ! हमें ऐश्वर्य और विभूति में प्रतिष्ठित करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति कराएँ ॥६३ ॥

[२ - यक्ष्मारोगनाशन सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-** १-२०, ३४-५५ अग्नि, मन्त्रोक्त, २१-३३ मृत्यु । **छन्द-** त्रिष्टुप् , २, ५, १२-१५, १७, १९-२०, ३४-३६, ३८-३९, ४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप् , ३ आस्तार पंक्ति, ६ भुरिक् आर्षी पंक्ति, ७, ४५ जगती, ८, ४८-४९ भुरिक् त्रिष्टुप् , ९ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति, १६ ककुम्मती पराबृहती अनुष्टुप्, १८ निचृत् अनुष्टुप्, ३७ पुरस्ताद् बृहती, ४० पुरस्तात् ककुम्मती अनुष्टुप्, ४२ त्रिपदा एकावसाना भुरिक् आर्ची गायत्री, ४४ एकावसाना द्विपदार्ची बृहती, ४६ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती, ५० उपरिष्टात् विराट् बृहती, ५२ पुरस्ताद् विराट् बृहती, ५५ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।]

३३६३. नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥१ ॥

हे (क्रव्याद्) अग्ने ! आप नड (सरकंडे) पर आरोहण करें । आपके लिए यहाँ स्थान नहीं है, यह सीसा तुम्हारा भाग है, इस पर आप आएँ । जो यक्ष्मारोग गौओं और मनुष्यों में है, आप उस रोगसहित नीचे के द्वारों से यहाँ से दूर चली जाएँ ॥१ ॥

३३६४. अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥२ ॥

सभी रोग पापियों और दुष्टों के साथ यहाँ से दूर चले जाएँ । कर (क्रिया) और अनुकर (सहायक क्रिया) से यक्ष्मारोग को अलग करता हूँ , उसके द्वारा मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ॥२ ॥

३३६५. निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३ ॥

हे (क्रव्याद्) अग्निदेव ! हम यहाँ से पाप देवता निर्ऋति और मृत्यु को दूर करते हैं । जो हमारे साथ विद्वेष करते हैं, उनका आप भक्षण करें । जिनसे हम द्वेष रखते हैं, उनकी ओर हम आपको प्रेरित करते हैं ॥३ ॥

३३६६. यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥४ ॥

यदि प्रेतदाहक (क्रव्याद्) अग्नि और हिंसक बाघ अन्यत्र कहीं स्थान न पाकर इस गोशाला में प्रवेश करे, तो उसे हम 'माषाज्य' विधि से दूर करते हैं, वह जल में वास करने वाली अग्नियों के समीप गमन करे ॥४ ॥

३३६७. यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥५ ॥

किसी मनुष्य की मृत्यु पर उसके दाह संस्कार के लिए प्राणियों ने क्रोध से आप (क्रव्याद् अग्नि) को प्रदीप्त किया, अब वह कार्य (शवदाह) सम्पन्न होने पर आपको, आपसे ही प्रदीप्त करते हैं ॥५ ॥

३३६८. पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आदित्य, रुद्र, वसु, धनप्रदाता ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति ने आपको सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने के लिए पुनः प्रतिष्ठित किया था ॥६ ॥

३३६९. यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥७ ॥

जो मांसभक्षी (क्रव्याद्) अग्निदेव दूसरे जातवेदा अग्नि को देखते हुए हमारे घर में प्रविष्ट हुए हैं, उन्हें पितृयज्ञ के निमित्त हम दूर ले जाते हैं, वे परम व्योम में घर्म (उष्णता) की वृद्धि करें ॥७ ॥

३३७०. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८ ॥

क्रव्याद् अग्नि को हम दूर ले जाते हैं, वह दोष को दूर करने वाले मृत्युदेव यमराज के समीप पापसहित चला जाए। यहाँ जो द्वितीय जातवेदा अग्नि है, वह सभी देवों के लिए यजनीय भाग का वहन करे ॥८ ॥

३३७१. क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम्।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके अपि भागो अस्तु ॥९ ॥

मनुष्यों को मृत्यु की ओर ले जाने वाले प्रेतदाहक अग्नि को हम मन्त्ररूप वज्रास्त्र द्वारा दूर भगाते हैं। हम ज्ञानसम्पन्न लोग गार्हपत्य अग्नि द्वारा उसे नियन्त्रित करते हैं। पितरों के लोक में उस क्रव्याद् अग्नि का भाग अवश्य स्थित हो ॥९ ॥

३३७२. क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१० ॥

उक्थ्य की प्रशंसा करने वाले प्रेतदाहक अग्नि को हम पितरों के गमन मार्ग से दूर भेजते हैं। देवयान के मार्ग से आप दोबारा यहाँ न आएँ। आप पितरलोक में रहते हुए वहीं जाग्रत् रहें ॥१० ॥

३३७३. समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११ ॥

पवित्र अग्निदेव ही जीव के कल्याण के निमित्त शवभक्षक अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। इसस सभी दुर्भावजन्य दोषों और पापकर्मों का निवारण होता है। पवित्र अग्निदेव प्रदीप्त होकर सभी की शुद्धि करते हैं ॥१२ ॥

३३७४. देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत्।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥१२ ॥

दहन कार्य में प्रयुक्त अग्निदेव प्रदीप्त होकर द्युलोक में आरोहण करते हैं, हम सभी को पापों से बचाते हुए अप्रशस्त (न अपनाने योग्य-अलक्षित) मार्ग से संरक्षित करते हैं ॥१२ ॥

३३७५. अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१३ ॥

इस विदाहक अग्नि में हम सभी अपने दुष्कर्मों का शोधन करते हैं। हम शुद्ध हो गये हैं और यज्ञीय कार्यों के उपयुक्त बन गये हैं। अग्निदेव हमें दीर्घायु बनाएँ ॥१३ ॥

३३७६. संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१४ ॥

संघातक, विघातक और शब्दरहित अग्निदेव आपके यक्ष्मा रोग को जानने वाले यक्ष्मा के साथ ही अतिदूर जाकर के विनष्ट हो गये ॥१४ ॥

३३७७. यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥१५ ॥

जो अग्नि हमारे अश्वों, वीरपुरुषों, गौओं और भेड़- बकरियों में लोगों के लिए पीड़ाप्रद है, उस मांसभक्षी अग्नि को हम दूर करते हैं ॥१५ ॥

३३७८. अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१६ ॥

जीवनक्रम के विनाशक क्रव्याद् अग्नि को गौओं, घोड़ों और अन्य मनुष्यों से हम दूर करते हैं ॥१६ ॥

३३७९. यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! जिसमें देवगण और मनुष्य पवित्र होते हैं, उसमें घृताहुति से शुद्ध बनकर आप भी दिव्यलोक में आरोहण करें ॥१७ ॥

३३८०. समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः । अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

हे आवाहित अग्निदेव ! प्रज्वलित होकर आप हमारा त्याग न करें । आप द्युलोक में प्रकाशमान हों । आप हमें चिरकाल तक सूर्य के दर्शन से निरंतर लाभान्वित करें ॥१८ ॥

३३८१. सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥१९ ॥

हे मनुष्यो ! आप सिर के रोग को सीसे और नड नामक घास से दूर करें । उसे आप संकसुक (विनाशक) अग्नि में, भेड़ और स्त्री तथा सिर रखने के स्थान (तकिए) में स्थित मल को शुद्ध करें ॥१९ ॥

३३८२. सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥२० ॥

हे मनुष्य !आप सिर तकिए पर रखें तथा मल को सीसे तथा काली भेड़ में शोधित करके पवित्र हो जाएँ ॥२०

[पवित्र या निरोग होने के यह सूत्र शोध की अपेक्षा रखते हैं ।]

३३८३. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥२१ ॥

हे मृत्यु ! देवयान मार्ग से भिन्न आपका जो (हीन) मार्ग है, वह हम से दूर रहे । हमारे वीर (वीर पुरुष या प्राण प्रवाह) बढ़ते रहें ॥२१ ॥

[देवता जिस पर चलते हैं, वह देवयान मार्ग दिव्य अनुशासनों और अनुदानों से युक्त होता है । उसके अनुगमन से अपने प्राण और परिजन क्षीण नहीं होते ।]

३३८४. इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२२ ॥

ये जीवित (दिखने वाले) लोग मृतकों (निर्जीव व्यक्तियों या मानसिकता) से घिरे हुए हैं । (हम जीवन्त रहें इसलिए) श्रेष्ठ वाणियाँ (सत्पुरुषों के वचन अथवा देव प्रार्थनाएँ) हमारे लिए आज कल्याणप्रद हों । हम हँसते-नाचते (उल्लासपूर्वक) आगे बढ़ें और श्रेष्ठ वीरों (वा प्राणों) के साथ विशिष्ट प्रयोजनों में लगे रहें ॥२२ ॥

३३८५. इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२३ ॥

जीवों-प्राणियों के लिए यह मर्यादा देता हूँ, कोई भी इन (मर्यादाओं) का उल्लंघन कभी न करे । (इस

अनुशासन में रहकर) सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करे तथा मृत्यु को पर्वतों (दृढ़ माध्यमों) से तिरोहित करे ॥२३ ॥

३३८६. आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यदि स्थ ।

तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४ ॥

वृद्धावस्था तक की दीर्घ आयु का वरण करो । एक के बाद एक प्रयास (प्रगति हेतु) करते रहें । श्रेष्ठ सृजन करने वाले त्वष्टादेव सभी को पूर्ण आयु तक ले जाएँ ॥२४ ॥

३३८७. यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥२५ ॥

हे धाता (धारणकर्त्ता) ! जैसे दिन एक के साथ दूसरा लगा रहता है, जैसे ऋतुएँ एक से एक जुड़ी रहती हैं, जिस प्रकार ये एक दूसरे को छोड़ते नहीं, उसी प्रकार जीवन को (सतत प्रवाह वाला) बनाएँ ॥२५ ॥

३३८८. अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६ ॥

(हे साथियो !) चट्टानों वाली (वेगवती) नदी बह रही है ।सावधान हो जाओ, वीरत्व धारण करो और तैर जाओ ।तैरने में बाधक बने उन (वजनों-पाप वृत्तियों) को यहीं फेंक दो ।पार होकर रोगरहित पौरुष प्राप्त होगा ॥२६।

[यह संसार की धारा पहाड़ी नदी की तरह खतरनाक बहाव वाली है । पार करने के लिए सावधानी तथा वीरता चाहिए । पाप आदि व्यसनों का वजन साथ लेकर इसे तैर कर पार नहीं किया जा सकता । उन्हें त्याग देने में भलाई है । पार होने पर विकार रहित पराक्रमी जीवन प्राप्त होता है ।]

३३८९. उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।

अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७ ॥

हे मित्रगण ! आप उठें और तैरने के लिए तैयार हों, यह पत्थरों से युक्त नदी वेगपूर्वक बह रही है । जो अकल्याणकारी है, उसे यहीं फेंकें । हम तैरकर नदी को पार करके, सौख्यप्रद अन्न को उपलब्ध करें ॥२७ ॥

३३९०. वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८ ॥

हे (पवित्र करने वाले) पावको ! आप शुद्ध, पावन और दोष- विकारों से रहित होकर कल्याण के निमित्त सभी देवों की स्तुति प्रारम्भ करें । हम ऋक्पदों से पापों का अतिक्रमण करते हुए पुत्र-पौत्रादि सभी वीरों के साथ सौ वर्षों तक आनन्दपूर्वक रहें ॥२८ ॥

३३९१. उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।

त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९ ॥

ऋषियों ने त्रिसप्त (तीन क्रमों में सात) पुरुषार्थ करके, ऊपर वाले श्रेष्ठ वायुयुक्त मार्गों से (चलकर) नीचे वालों (हीन पथों) का अतिक्रमण किया । इस प्रकार अपने पदोपनयन (पैरों को, कदमों को संतुलित ढंग से रखने के क्रम) द्वारा मृत्यु को पराजित किया ॥२९ ॥

[ऋषि उत्कृष्ट प्राण धाराओं के प्रतीक हैं। वे पृथ्वी (शरीर का अधोभाग) , अन्तरिक्ष (मध्यभाग) तथा द्युलोक (ऊर्ध्वभाग) इन तीनों में संचरित सप्त-प्राण-प्रवाहों को निम्नकोटि की आकांक्षाओं-हीन पथों पर विचरण न करने देकर उच्च आदर्शों-उद्देश्यों में उनका नियोजन करते हैं । यह २१ पराक्रम करने के लिए उन्हें जीवन का हर चरण संतुलन (उपनयन) पूर्वक

रखना पड़ता है। इस प्रकार वे नीचे के मार्ग वालों को लाँघकर आगे बढ़ जाते हैं और मृत्यु को भी जीत लेते हैं। इस मन्त्र के भाव के साथ परशुराम जी द्वारा २१ बार आततायी राजाओं को पराजित करने के कथानक की संगति भी बैठती है। वे शिव के परशु से अशिव संकल्पों को काटकर यह २१ पराक्रम करते हैं।]

३३९२. मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३० ॥

मृत्यु के चरणों को (विनाशकारी चरण क्रम को) रोककर, अधिक लम्बी तथा श्रेष्ठ आयु को धारण करें। इस क्रम में स्थित होकर मृत्यु को पीछे धकेल दें। ऐसा जीवन जिओगे, तो अपने आवास-स्थल (शरीर, घर या क्षेत्र) में विशिष्ट प्रयोग (यज्ञादि) की बात कह सकोगे ॥३० ॥

[जो व्यसनों में, पापों में रस लेते हैं, वे उद्देश्यपूर्ण या यज्ञीय जीवन नहीं जी सकते हैं।]

३३९३. इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१ ॥

ये नारियाँ श्रेष्ठ पत्नियाँ बनें, सधवा रहें, अंजन (दृष्टि शोधक) तथा घृत (तेजोवर्द्धक) आदि तत्वों से युक्त रहें। वे रोगरहित (स्वस्थ शरीर) तथा अश्ररहित (उल्लसित मन वाली) होकर श्रेष्ठ रत्नों (गुणों या नर रत्नों) को जन्म देने वाली बनकर अग्रणी श्रेणियों में उन्नति करें ॥३१ ॥

३३९४. व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२ ॥

हविष्यान्न द्वारा हम इन दोनों मृतकों (पितरों) और जीवितों (मनुष्यों) को ही विशेष लाभान्वित करते हैं। ज्ञानशक्ति से हम इनकी विशेष कल्पना करते हैं। पितरगणों को दी जाने वाली स्वधायुक्त आहुति को हम अविनाशी बनाते हैं तथा इन्हें दीर्घायु से सम्पन्न करते हैं ॥३२ ॥

३३९५. यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥३३ ॥

हे पितरगण ! जो अमर फलप्रदाता अग्नि मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होती है, उस दिव्य अग्नि को हम अपने अन्दर ग्रहण करते हैं। वह हमारे साथ विद्वेष न करे और हम भी उससे द्वेष न करें ॥३३ ॥

३३९६. अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥३४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम मंत्र प्रयोग से, गार्हपत्य अग्नि से दूर होकर क्रव्याद् (मृतककर्म में प्रयुक्त अग्नि) की ओर दक्षिण दिशा में जाओ। वहाँ पर ज्ञानियों, पितरों तथा अपनी प्रसन्नता के लिए प्रिय कार्य करो ॥३४ ॥

३३९७. द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या। अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ।

जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि को शान्त नहीं करता, वह पितृसम्पदा के दो भाग (स्वयं की और ज्येष्ठ पुत्र की सम्पदा) मिलने पर भी क्षीणता को प्राप्त होता है ॥३५ ॥

३३९८. यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६ ॥

जो व्यक्ति क्रव्यादग्नि को शांत नहीं करता, उसकी कृषि, सेवनीय-वस्तुएँ, मूल्य देकर प्राप्त की गई वस्तुएँ आदि समाप्तप्राय हो जाती हैं ॥३६ ॥

[जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि से सम्बन्धित कार्य करके पितृऋण नहीं चुकाता, उसका लौकिक पुरुषार्थ फलित नहीं होता ।]

३३९९. अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्त्तते ॥३७ ॥

जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि को विलग नहीं करता, वह यज्ञ करने की अपनी पात्रता समाप्त कर देता है । तेजरहित व्यक्ति की हवि भी देवगण स्वीकार नहीं करते ।उस व्यक्ति के कृषि, गौएँ और ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं ॥

३४००. मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥

क्रव्याद् अग्नि जिसके पीछे पड़ जाती है, वह व्यक्ति पीड़ाजनक स्थिति को प्राप्त होता है । उसे आवश्यक साधनों के लिए भी बारम्बार दीनतायुक्त वचनों का प्रयोग करना पड़ता है ॥३८ ॥

[जो व्यक्ति यज्ञादि पुण्यकार्यों की अपेक्षा पाप कर्मों द्वारा सुख-साधन बटोरने का प्रयास करते हैं, उनके पीछे अग्नि का उत्पीड़क प्रवाह लग जाता है । उसके सारे साधन उत्पीड़न करने में लग जाते हैं ।]

३४०१. ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥३९ ॥

जब स्त्री का पति मर जाता है, तब घर यातना- केन्द्र जैसे बन जाते हैं । (उस समय) ज्ञानी ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ-परमार्थपरायण) ही बुलाने योग्य (परामर्श लेने योग्य) होता है । वह क्रव्याद् अग्नि को शांतकर (उचित मार्ग का निर्धारण कर) सकता है ॥३९ ॥

३४०२. यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥४० ॥

जो पाप, दोष और दुष्कर्म हमारे द्वारा किये गये हैं, उनसे और प्रेतदाहक अग्नि के स्पर्श से हमें जो दोष लगा है, उससे जल हमें पवित्रता प्रदान करे ॥४० ॥

३४०३. ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१ ॥

जो जल देवों के गमन मार्ग से दक्षिण से उत्तर के स्थानों को घेरता है, तत्पश्चात् वही प्राचीन जल नूतन रूप होकर वर्षा करने वाले पर्वतीय शिखरों पर नदियों के रूप में प्रवाहित होता है ॥४१ ॥

३४०४. अग्ने अक्रव्यान्निःक्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥४२ ॥

हे अक्रव्याद् अग्निदेव ! आप क्रव्याद् (मांस- भक्षक) अग्नि को हमसे पृथक् करें । देवों की पूजन सामग्री को देवों के समीप पहुँचाएँ ॥४२ ॥

३४०५. इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३ ॥

क्रव्याद् अग्नि ने इस व्यक्ति में अपना प्रभाव जमा लिया है, यह व्यक्ति भी उस शवभक्षक का अनुगामी हो गया है । मैं इन दोनों को व्याघ्ररूप मानता हूँ । कल्याण से भिन्न अशिवरूप अनेकों को अपने साथ ले जाने वाली क्रव्याद् अग्नि को मैं विलग करता हूँ ॥४३ ॥

३४०६. अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥४४ ॥

गार्हपत्य अग्निदेव देवताओं और मनुष्यों के मध्यस्थ हैं ; क्योंकि वे देवताओं की अन्तर्धि (अन्दर स्थित) और मनुष्यों की परिधि (बाहरी रक्षक सीमा) स्वरूप हैं ॥४४ ॥

[गार्हपत्य अग्नि से मनुष्य देवत्व की ओर बढ़ना आरंभ करता है तथा उसकी सामर्थ्य से देवत्व का विकास होता है ।]

३४०७. जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥४५ ॥

हे अग्ने !आप प्राणियों की आयुष्य बढ़ाएँ और जिनका निधन हो चुका है, वे पितरलोक को प्राप्त करें । श्रेष्ठ गार्हपत्य अग्निदेव शत्रुओं को संतप्त करें और हमारे लिए प्रत्येक उषा को कल्याणमय बनाएँ ॥४५ ॥

३४०८. सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥४६ ॥

हे अग्निदेव ! सभी प्रकार के दुष्टों , शत्रुओं को पराभूत करते हुए आप उनकी सम्पत्ति और सामर्थ्य को हमारे अंदर स्थापित करें ॥४६ ॥

३४०९. इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥४७ ॥

हे मनुष्यो ! आप इन सामर्थ्यवान् , ऐश्वर्यशाली अग्नि की उपासना प्रारंभ करें । ये आपको निंदनीय दुष्कर्मों से दूर करें । उन (दुष्कर्मों) के अस्त्रों को नष्ट करें तथा रुद्रदेव के अस्त्रों से स्वयं को संरक्षित करें ॥४७ ॥

३४१०. अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥४८ ॥

(हे साधको !) भार वहन करके तैरने वाली इस सवितादेव की नाव पर चढ़ो; यह तुम्हें निन्दनीय दुष्कर्मों-दुष्प्रवृत्तियों से बचाएगी ।उनकी विशाल छह शक्तियों के सहारे हम अमति (अज्ञान) को पार कर सकेंगे ॥४८ ॥

[इस भवसागर में अज्ञान की भीषण तरंगें उठ रही हैं । उन्हें पार करने के लिए अपना भार सँभाल सकने वाली समर्थ तरिणी-नाव चाहिए । दिव्य प्रेरणा के स्रोत सवितादेव की सद्प्रेरणा रूपी विशाल नाव पर अपनी पाँच प्राणों एवं मन की शक्तियों को आधारित करके अज्ञान के समुद्र को पार किया जा सकता है ।]

३४११. अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९ ॥

हे तल्प (सुखद सहारा देने वाले - सविता या गार्हपत्य अग्नि) ! आप हमारे क्षेम (कुशलता) का निर्वाह करते हुए दिन-रात हमें बढ़ाते हुए श्रेष्ठवीर की तरह गतिशील रहते हैं । उत्तम मन वाले आतुरतारहित साधकों को धारण करने वाले आप सुगन्धियुक्त पुरुषार्थ हमें प्रदान करें ॥४९ ॥

३४१२. ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा । क्रव्याद्
यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५० ॥

जो पाप से आजीविका चलाते हैं, वे पुरुष देवों से अपना संबंध तोड़ लेते हैं । उन्हें क्रव्याद् अग्नि उसी तरह कुचलती है, जिस प्रकार घोड़ा नड नामक घास को कुचलता है ॥५० ॥

३४१३. ये ऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते । ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥

जो धनकामी, अश्रद्धालु ,दूसरों की हाँड़ी (पके - पकाये अन्न या धन) हथियाते हैं , वे क्रव्याद् (उत्पीड़क) अग्नि के निकट पहुँच जाते हैं ॥५१ ॥

३४१४. प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥५२ ॥

जिसके पल्ले क्रव्याद् (प्रेतकर्मा) अग्नि पड़ जाती है । वह मन से बार-बार पतनशील कर्मों की ओर लौटना-उन्हीं में प्रवृत्त होना चाहता है ॥५२ ॥

३४१५. अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३ ॥

हे मांसभक्षक अग्ने ! काले वर्ण की भेड़ आपका भाग है, सीसा और चन्द्र (लोहा-स्वर्ण आदि धातु) भी आपके ही भाग कहे गये हैं । पिसे हुए उड़द आपके हविष्यान्न हैं । आप घरों से दूर जंगल में निवास करें ॥५३ ॥

३४१६. इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥५४ ॥

हे इन्द्रदेव !आपने बहुत पुरानी मूँज, तिलों का पुञ्ज, समिधा और सरकंडे की आहुति देकर यमाग्नि को पृथक् किया ॥५४ ॥

३४१७. प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्या विवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५ ॥

सही पथ का ज्ञाता (साधक) सामने गतिशील सूर्य को (श्रद्धा) समर्पित करता हुआ उस (धर्म मार्ग) में विशेष रूप से प्रवृत्त होता है । वह मृतकों के प्राणों को भी परमगति प्रदान करता है । मैं (ऋषि) ऐसे जीवन्तों को दीर्घायुष्य प्रदान करता हूँ ॥५५ ॥

[३- स्वर्गौदन सूक्त]

[**ऋषि-** यम । **देवता-** स्वर्ग, ओदन, अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् , १, ४२-४३, ४७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८, १२, २१-२२, २४ जगती, १३, १७ स्वराट् आर्षी पंक्ति, ३४ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, ३९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, ४४ पराबृहती त्रिष्टुप् , ५५-६० त्र्यवसाना सप्तपदा शङ्कुमती अतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भा अतिधृति (५६ विराट् कृति, ५५, ५७-६० कृति ।)]

३४१८. पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥१ ॥

हे पुरुषार्थी पुरुष !आप अधिकारपूर्वक इस चर्म आसन पर विराजमान हों, जो आपके आत्मीयजन हैं, उन्हें बुलाएँ ।जितने पति-पत्नी इस प्रक्रिया को पहले कर चुके हैं, उनका तथा आप दोनों दम्पती का फल समान हो ॥१ ॥

३४१९. तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥२ ॥

(हे दम्पती !) अग्निदेव जिस प्रकार आपके शरीरों को तपाते हैं , उसी के अनुरूप तुम्हारी दृष्टि है, वैसा ही

वीर्य है, वैसा ही तेज है और वैसा ही बल है । इसी परिपाक विधि से यह जोड़े (नर-मादा) उत्पन्न होते हैं ॥२ ॥

३४२०. समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्‌ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३ ॥

आप दोनों इस अन्न के प्रभाव से इस लोक में परस्पर मिलकर रहें, देवत्व के मार्ग पर साथ-साथ बढ़ें, नियन्ता (यम) के राज्य में भी एक साथ मिलकर रहें । आप दोनों का उत्पादक तेज मिलकर जो कुछ भी उपलब्धियाँ पा सकता है, उसे स्वयं प्राप्त करें ॥३ ॥

३४२१. आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥४ ॥

हे पुत्रो ! जीवन से संयुक्त होकर, जीवन को धन्य बनाने वाले अप् (जीवन जल या प्रवाह) में प्रवेश करो । तुम्हारी माता (देहधारी माँ-अथवा प्रकृति) जिस अन्न को पका रही है, उसे हम बतलाते हैं, उसके अमृत का सेवन करो ॥४ ॥

३४२२. यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥५ ॥

यदि आपके माता-पिता पापमय और मलिन वाणी के प्रयोग से मुक्त होने के लिए अथवा किसी अन्य पाप से मुक्ति हेतु ओदन पकाते हैं, तो वह सहस्रों धाराओं से सुखों को देने वाला ओदन अपनी महिमा से द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों में व्याप्त हो जाता है ॥५ ॥

[जो मलिनता का - पापों का निवारण कर सकता है, ऐसा ओदन-अन्न या तो यज्ञ द्वारा पकता है अथवा सूक्ष्म अन्न मन, वाणी एवं कर्म के रूप में परिपक्व होता है ।]

३४२३. उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥६ ॥

हे दम्पती ! द्यावा-पृथिवी में यजमान जिन लोकों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, उन लोकों में जो मधुर और तेजस्विता- सम्पन्न लोक हैं, उनमें आप सुसन्ततियों के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त आनन्दित रहें ॥६ ॥

३४२४. प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७ ॥

हे दम्पती ! आप प्रकाशरूप पूर्व दिशा की ओर अग्रसर हों, इस स्वर्गीय सुखरूप लोक को श्रद्धालु लोग ही उपलब्ध करते हैं । जो आपका परिपक्व हविष्यान्न अग्नि में समर्पित किया गया है, उसके संरक्षण के लिए आप दोनों सन्नद्ध हों ॥७ ॥

३४२५. दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥८ ॥

हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होते हुए इस पात्र के चारों और परिक्रमा करके वापस आएँ, उस समय आपके पितरजनों के साथ समान-विचार धारा से युक्त होकर नियामक देव (यम) परिपक्व अन्न के लिए प्रचुर सुख प्रदान करें ॥८ ॥

३४२६. प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥९ ॥

यह पश्चिम दिशा है, जो दिशाओं में श्रेष्ठ है । जिस दिशा में सोमदेव अधिपति और सुखदायक हैं, उनका आश्रय ग्रहण करते हुए आप श्रेष्ठ पुण्य कर्मों को सम्पन्न करें । हे दम्पती ! इसके बाद आप दोनों परिपक्व अन्न के प्रभाव से संयुक्त- शक्तिशाली हों ॥९ ॥

३४२७. उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥१० ॥

यह उत्तर का प्रकाशमान क्षेत्र प्रजाजनों से सम्पन्न है, दिशाओं में श्रेष्ठ उत्तर दिशा हमें आगे बढ़ाए । व्यवस्थित छन्द (ज्ञान) प्रादुर्भूत हुआ है । हम सभी अपनी सर्वांगीण उन्नति के साथ प्रादुर्भूत हों ॥१० ॥

[पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में ही भू-भाग अधिक है, इसलिए प्रजा की संख्या भी अधिक है , सम्भवतः इसीलिए इसे प्रजाजनों की दृष्टि से उन्नत कहा गया है ।]

३४२८. ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११ ॥

हे संसार की हितकारिणी पृथ्वी देवि ! आप अटल और विराट् हैं, आप हम सबके लिए कल्याणकारिणी हों । आप हमारे लिए और हमारी सन्ततियों के लिए शुभकर हों । आप निर्धारित संरक्षक की तरह इस परिपक्व (अन्न या प्रजा) की सुरक्षा करें ॥११ ॥

३४२९. पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥१२ ॥

हे पृथ्वी देवि ! पिता पुत्रों के सम्मिलन के समान ही आप हम सबके साथ व्यवहार करें । इस पृथ्वी पर हमारे लिए कल्याणकारी वायु बहाते रहें । जिस अन्नभाग को ये दोनों (दम्पती अथवा द्यावा-पृथिवी) परिपक्व करते हैं, वे हमारे तपः प्रभाव और सत्य संकल्प से अवगत हों ॥१२ ॥

३४३०. यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१३ ॥

यदि काला पक्षी (कौआ या कुसंस्कारी) कपट रीति से बिल बनाकर इसमें प्रविष्ट हो अथवा गीले हाथों वाली दासी ऊखल और मूसल को खराब कर दे, तो यह जल उन्हें शुद्ध करे ॥१३ ॥

३४३१. अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥१४ ॥

यह विशाल आधारयुक्त पत्थर हविरूप अन्न को कूटकर तैयार करता है । पवित्रे (पवित्रकारक उपकरणों) से पुनीत होता हुआ यह दुष्ट वृत्तियों (कूड़े- करकट) का संहार करे । हे ओदन (परिपक्व अन्न) ! आप पृथ्वी की त्वचा पर बैठें और अतिकल्याणप्रद हों । स्त्री- पुरुषों और उनकी सन्ततियों को पाप स्पर्श भी न कर सके ॥१४ ॥

३४३२. वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम ॥१५ ॥

देवशक्तियों के साथ वनस्पतिदेव हमारे समीप आ गये हैं, वे सभी रोग बीजरूपी राक्षसों और पिशाचों को दूर करते हैं। वे ऊँचे उठकर उद्घोष करते हैं कि सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करेंगे ॥१५ ॥

३४३३. सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६ ॥

पशुओं (जीवों) ने सात मेधों (यज्ञों अथवा अन्नों) को ग्रहण किया। तैंतीस देवता उनका सेचन करते हैं। इनमें जो तेजस्वी और सूक्ष्म हैं, वे हमें स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥ १६ ॥

३४३४. स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥१७ ॥

हे ओदन !आप हमें स्वर्गलोक में पहुँचा रहे हैं, वहाँ हम अपनी भार्या और सन्तति सहित पहुँचें। निर्ऋति और शत्रु हमको प्रताड़ित न कर सकें, इसलिए हम आपका हाथ पकड़ते हैं, आप हमारा संरक्षण करें ॥१७ ॥

३४३५. ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥१८ ॥

हे वनस्पतिदेव !(आपके प्रभाव से हम) पाप द्वारा प्रादुर्भूत अन्धकार को दूर करते हुए मधुर वाणी उच्चरित करेंगे। यह वानस्पत्य ऊर्ध्वगामी होकर देवपथ में जाने वाले हमारे (हम साधकों के हितों) और चावलों (हव्यान्न) की हिंसा न करे ।१८ ॥

३४३६. विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥१९ ॥

(हे दिव्य अन्न !) चारों ओर से घृत से सिञ्चित हुए आप उस (घृतादि) के साथ एकरूप होकर (पर्जन्य के रूप में) इस लोक में हमारे समीप आएँ। प्रतिवर्ष प्रवृद्ध होने वाले आप सूर्य की संगति से तिनकों और भूसी को दूर करें ॥१९ ॥

३४३७. त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥२० ॥

ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मशक्ति द्वारा तीनों लोक संयुक्त हुए हैं। (इस अन्न में) यह द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष के अंश हैं। (हे दम्पती !) तुम दोनों इनके अंशों को लेकर कार्य आरंभ करो। यह फलें-बढ़ें और पुनः सूप में (सफाई के लिए) आएँ ॥२० ॥

[खेत में डाला हुआ अन्न १५-२० गुना हो जाता है। उसमें पृथ्वी का बहुत थोड़ा अंश जाता है; क्योंकि खेत की मिट्टी घटती नहीं। शेष अंश आकाशीय एवं अन्तरिक्षीय प्रवाहों से प्राप्त होते हैं। इसी प्रक्रिया से वे बढ़ते-परिपक्व होते हैं, तब उन्हें उपयोग के लिए भूसी आदि से अलग किया जाता है।]

३४३८. पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥२१ ॥

पशु (हव्य पदार्थ) भिन्न-भिन्न होते हैं; किन्तु समृद्ध (तैयार) किये जाने पर एक रूप हो जाते हैं। हे ग्रावन् ! आप इनकी लोहिनी (लाल या कठोर) त्वचा को हटा दें तथा जैसे धोबी वस्त्र शुद्ध करते हैं, वैसे इसे शोधित करें ॥२१ ॥

३४३९. पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२ ॥

हे मूसल ! तुम पृथ्वी तत्त्व से बने होने के कारण पृथ्वी ही हो, अत: मैं पृथ्वी को पृथ्वी में ही मारता हूँ । पृथ्वी और तुम्हारा शरीर समान है । हे ओदन ! मूसल के प्रहार से तुम्हें जो पीड़ा पहुँच रही है, उससे तुम भूसी से पृथक् हो जाओ । मैं तुम्हें वेद मन्त्रों से अग्नि में अर्पित करता हूँ ॥२२ ॥

३४४०. जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥२३ ॥

(ओदन पाक के संदर्भ में कथन है) जननी जैसे पुत्र को सँभालती है, वैसे हम पृथ्वी (वेदिका) पर पृथ्वी (कुंभी एवं अन्नादि) को स्थापित करते हैं । उखा (अग्निपात्र) तथा कुंभी (पाक पात्र) वेदिका पर व्यथित न हों; क्योंकि आपको यज्ञ साधनों तथा घृतादि से सिञ्चित किया गया है ॥२३ ॥

३४४१. अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥२४ ॥

आपको पकाने वाले अग्निदेव आपकी रक्षा करें । इन्द्रदेव संरक्षण करें । मरुद्‌गण दक्षिण दिशा से, वरुणदेव पश्चिम दिशा तथा सोमदेव उत्तर दिशा की ओर से आपके आधार को सुदृढ़ करते हुए सुरक्षित करें ॥२४ ॥

३४४२. पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥२५ ॥

पवित्र कर्मों से पावन बनकर जल धाराएँ शुद्ध करती हैं । वे द्युलोक और फिर पृथ्वी को प्राप्त होती हैं । इन जीवनदायिनी, जीव को कृतार्थ करने वाली, सबकी आधारभूत, पात्र में अधिष्ठित जलधाराओं को अग्निदेव चारों ओर से संतप्त (दीप्त) करें ॥२५ ॥

३४४३. आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥२६ ॥

दिव्यलोक से आगमन करने वाली जल-धाराएँ पृथ्वीलोक में एकत्रित होती हैं, पृथ्वी से (वाष्पभूत होकर) पुन: अन्तरिक्ष में घनीभूत होती हैं । वह शुद्ध जल सबको पावन बनाता है । ऐसा (यज्ञीय धान्य से मिले हुए) पवित्र जल हमें स्वर्गीय सुखों की ओर ले जाए ॥२६ ॥

३४४४. उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥२७ ॥

जल निश्चित ही प्रभावशाली, प्रशंसनीय, बलवर्द्धक, पवित्र, अमृततुल्य और प्रभुस्वरूप है । हे जल ! आप दम्पती द्वारा डाले गये ओदन को शुद्ध करते हुए पकाएँ ॥२७ ॥

३४४५. संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥२८ ॥

प्राण और अपान वायु सहित ओषधियुक्त जल बिन्दु पृथ्वी को सिंचित करते हैं और सुन्दर वर्ण वाले जीवों में प्रविष्ट होकर , उन्हें शुचिता प्रदान करते हुए उनमें व्याप्त होते हैं ॥२८ ॥

३४४६. उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥२९ ॥

यह जल तप्तावस्था में युद्ध- सा करता है, शब्द ध्वनि करता है, फेन को उड़ाता है तथा अनेक बुद्बुदों को फेंकता है । हे जल प्रवाहो ! जिस प्रकार स्त्री पति के साथ ऋतुयज्ञ (प्रजनन कर्म) के लिए संयुक्त होती है, उसी प्रकार आप ऋतुयज्ञ के निमित्त चावलों के साथ सम्मिलित हों ॥२९ ॥

३४४७. उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥३० ॥

हे अग्ने ! (कुम्भी) तली में स्थित चावलों को आप ऊपर उठाएँ । जल के साथ ये स्वयं भली प्रकार मिल जाएँ । ये (चारों दिशाओं में जाने वाले) चावल भी मापे जा चुके हैं, अत: जल भी मापा गया है ॥३० ॥

३४४८. प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१ ॥

परशु प्रदान करो, शीघ्रता करो, (ओषधियाँ) यहाँ लाओ । ओषधियों को नष्ट न करते हुए उन्हें काटें । ये सभी शाक राजा सोम के राज्य में हैं । ओषधियाँ हमारे साथ क्रोध भावना से रहित हों ॥३१ ॥

३४४९. नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥३२ ॥

ओदन (सेवन) के लिए कुशा (आसन) बिछा दें, वह आसन हृदय तथा नेत्रों को प्रिय लगने वाला हो । वहाँ पर सभी देवगण अपनी दैवी शक्तियों के साथ बैठें और इस ओदन को ऋतुओं के अनुरूप सेवन करें ॥३२ ॥

३४५०. वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३३ ॥

हे वनस्पते (वनस्पति से उत्पन्न ओदन) ! इस बिछाये गये आसन पर आप प्रतिष्ठित हों, देवताओं ने आपको अग्निष्टोम में स्वीकार किया है । स्वधिति ने त्वष्टादेव के समान इसे सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है; जो अब पात्रों में दिखाई दे रहा है ॥३३ ॥

३४५१. षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥३४ ॥

निधिरक्षक यजमान साठ वर्ष तक इस पक्व अन्न से स्वर्ग (या सुख) प्राप्ति की कामना करे । पिता-पुत्र दोनों इसी के सहारे अपना जीवन चलाएँ । हे अग्निदेव ! आप इस (अन्न या यजमान) को स्वर्ग तक गति दें ॥३४ ॥

३४५२. धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥३५ ॥

हे अन्न ! आप धारणकर्त्ता हैं, अत: आप पृथ्वी के आधार पर स्थिर हों, आप अच्युत्य को देवशक्तियाँ च्युत न करें । जिनके पुत्र जीवित हैं, ऐसे स्त्री- पुरुष आपको अग्न्याधान से पुष्टि प्रदान करें ॥३५ ॥

३४५३. सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥३६ ॥

आप स्वर्गादि सभी लोकों को यज्ञ द्वारा जीतकर अपनी सम्पूर्ण मनोकामनाओं की तृप्ति करते हुए आएँ। दम्पती द्वारा करछी और चमस पात्र से ओदन निकाल कर इस एक पात्र में रखा जाए ॥३६ ॥

३४५४. उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥३७ ॥

पात्र में घृत डालकर उसे फैलाते हुए घृत से परिपूर्ण पात्र को भरें। हे देवगण ! जैसे दुधारू गौएँ दुग्धपान करने वाले बछड़े को चाहती हुई शब्द करती हैं, वैसे ही तैयार हुए अन्न के प्रति आप प्रसन्नता सूचक शब्द करें ॥३७ ।

३४५५. उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥३८ ॥

हे याजको ! आपने इस लोक में इस (अन्न) को तैयार किया तथा (यज्ञ द्वारा) ऊपर (उच्च लोकों में) फैलाया। यह उस अप्रतिम स्वर्ग में खूब विस्तार पाए, जिसमें महान् सूर्यदेव स्थित हैं। इसे देवगण (या देवपुरुष) ही देवों (देवशक्तियों) के लिए प्रदान करते हैं ॥३८ ॥

३४५६. यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९ ॥

हे स्त्री ! आप इस ओदन का पाक करती हैं। यदि आप अपने पति से पहले चली जाएँ और आपके पति बाद में स्वर्ग पहुँचें, तो वहाँ आप दोनों मिल जाएँ। आप दोनों एक ही लोक में साथ-साथ रहें और यह ओदन वहाँ भी आपके साथ रहे ॥३९ ॥

३४५७. यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४० ॥

इस (नारी या प्रकृति) से उत्पन्न सभी पुत्रों को, जो हमारे आस- पास भूमि की सेवा करते हैं, उन्हें (ओदन) पात्र के निकट बुलाएँ। पुत्र भी इस बात को समझते हुए इस नाभि (केन्द्र या यज्ञ) में आ जाए ॥४० ॥

३४५८. वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥४१ ॥

वासदाता ओदन की धाराएँ शहद और घृत मिश्रित हैं। अमरत्व प्रदान करने वाली वे धाराएँ स्वर्ग में केन्द्रीभूत हैं, स्वर्ग उन सबको अपने नियंत्रण में रखे। निधि का संरक्षक यजमान साठ वर्षों की आयु के पश्चात् इसकी अभिलाषा करे ॥४१ ॥

३४५९. निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥४२ ॥

निधि के संरक्षक यजमान दान द्वारा श्रेष्ठ वैभव की अभिलाषा करें। जो दूसरे वैभव रहित हैं वे सम्पदा के अभाव में दरिद्रताग्रस्त रहें। हमारी दान देने की प्रवृत्ति से उपलब्ध हुए, स्वर्गीय सुख ही ऐसे हैं, जो तीन काण्डों (तीन विभागों) से तीन श्रेणी के स्वर्गों से श्रेष्ठ स्तर के हैं ॥४२ ॥

३४६०. अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥४३ ॥

मेरे कर्मों के फल में बाधा डालने वाली राक्षसी शक्तियों को अग्निदेव संतप्त करें । क्रव्याद् अग्नि और राक्षसी प्रवृत्तियों में संलग्न लोग हमारा शोषण न करें । इस असुर को हम दूर भगाते हैं, इसे समीप नहीं आने देंगे । आदित्यगण और अंगिरावंशज ऋषि इस दुष्ट को नियंत्रित करें ॥४३ ॥

३४६१. आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥४४ ॥

हम आदित्यों और अंगिरा गोत्रीय ऋषियों के लिए घी से मिश्रित शहद निवेदित करते हैं । ज्ञाननिष्ठ मनुष्य के पुण्यमय दोनों हाथ जो अकल्याण से रहित हैं , वे पुण्यशाली हैं । वे इसे स्वर्ग की ओर ले जाएँ ॥४४ ॥

३४६२. इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥४५ ॥

जिस दर्शन योग्य काण्ड द्वारा प्रजापति ने फल प्राप्त किया था, उसके श्रेष्ठ भाग को हमने उपलब्ध कर लिया है । इसे घी से सींचें, यह घृत से युक्त भाग हम अङ्गिरा वंशजों का ही है ॥४५ ॥

३४६३. सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥४६ ॥

हम सत्य, तप और देवताओं के निमित्त इस ओदनरूपी निधि को समर्पित करते हैं। आपसी कर्म के आदान-प्रदान रूप जुआ में और सभा- समिति में भी यह हमसे दूर न हो, हमें त्याग कर अन्य के पास न जाए ॥४६ ॥

३४६४. अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो३न्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥४७ ॥

मैं ही पकाने की क्रिया सम्पन्न कर रहा हूँ और इसे दानादि रूपों में मैं ही प्रदान कर रहा हूँ । हे यज्ञ स्वरूप कर्म ! हमारे यहाँ कुमारावस्था से युक्त दर्शनीय पुत्र उत्पन्न हुआ है । अब हम श्रेष्ठतायुक्त यज्ञान्न का पाचन और दान जैसे श्रेष्ठ कार्यों का शुभारम्भ करते हैं ॥४७ ॥

३४६५. न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥४८ ॥

इस कर्म में कोई दोष नहीं है और न ही इसका कोई (भिन्न) आधार है । यह स्वजनों के साथ मिलजुल कर भी नहीं जाता । यह रखा हुआ पूर्ण पात्र फिर से पकाने वाले को ही प्राप्त हो जाता है ॥४८ ॥

३४६६. प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥४९ ॥

हे यजमान ! अतिशय प्रिय कर्म को हम तुम्हारे लिए सम्पन्न करते हैं । जो तुमसे द्वेष करते हैं, ऐसे व्यक्ति नर करूपी अन्धकार को प्राप्त करें । गौएँ , बैल, अन्न, आयुष्य और पुरुषार्थ हमारे निकट आएँ और अपमृत्यु को दूर करें ॥४९ ॥

३४६७. समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्या३तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ।।५० ।।

जो अग्निदेव ओषधियों और जल का सेवन करते हैं (उनमें रहते हैं), वे परस्पर एक दूसरे को जानते हैं । ये तथा अन्य अग्नियाँ भी इस कर्म से अवगत हैं । पाककर्त्ता को देवताओं के तपरूप पुण्य और सुवर्ण आदि ज्योतिर्मय पदार्थ प्राप्त होते हैं ।।५० ।।

३४६८. एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ।।५१ ।।

मनुष्य को यह चर्म (आच्छादन) अन्यों के सहयोग से प्राप्त है । अन्य पशु भी नग्न नहीं (सुरक्षित) हैं । अपने पुरुषार्थ से स्वयं को आच्छादित (संरक्षित) करो और इस अन्न के मुख को भी वसन (वस्त्र) से ढको ।।५१ ।।

३४६९. यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ।।५२ ।।

(धन की लालसा से) आपने जुआ आदि खेलों अथवा सभा में जो असत्य भाषण किया है, उन अपने कषाय-कल्मषों को उसी स्थान में रख दें, समानता (ताने-बाने वाला वस्त्र) धारण करें ।।५२ ।।

[अपनी - शोभा प्रतिष्ठा के लिए जो अनीति हो गई हो, उसे वहीं छोड़ दें तथा मनुष्योचित प्रतिष्ठा से स्वयं को सुशोभित करें - यही उचित कहा गया है ।]

३४७०. वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।।५३ ।।

(हे यज्ञान्न !) देवों के समीप जाएँ , वर्षा प्राप्त करें, त्वचा (पृथ्वी या प्राणियों के रक्षक आवरण) के चारों ओर (यज्ञ का) धूम्र उड़ाएँ । विश्व में विस्तृत हों, घृत (तेज) से युक्त होने की इच्छा वाले आप पुनः इस लोक को प्राप्त हों ।।५३ ।।

३४७१. तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ।।५४ ।।

यह अन्न स्वर्गलोक में अपने स्वरूप को अनेक आकार का गढ़ने में सक्षम है । अन्य वर्ण वालों को भी आत्मवत् ही जानता है । कालिमा को दूर करता है और तेजस्विता को शुद्ध बनाता है । उसका जो लोहित (सुदृढ़ या लाल वर्ण का) अंश है, उसे अग्नि में होमा जाता है ।।५४ ।।

३४७२. प्राच्यै त्वा दिशे३ग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ।।५५ ।।

हम आपको पूर्व दिशा, अधिपति अग्निदेव, संरक्षणकर्त्ता असित और बाणधारी आदित्य के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में वृद्धावस्था पर्यन्त उपलब्ध कराते रहें और हमारी वृद्धावस्था इसे मृत्यु तक पहुँचाए । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ।।५५ ।।

३४७३. दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।दिष्टं नो अत्र जरसे
नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५६ ॥

हम आपको दक्षिण दिशा, अधिपति इन्द्रदेव रक्षणकर्त्ता तिरश्चिराजी नामक सर्प और बाणधारी यम के लिए प्रदान करते हैं, आप हमारे यहाँ से जाने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में जीर्णावस्था तक तथा वृद्धावस्था से मृत्यु तक पहुँचाएँ । इस पके हुए अन्न के साथ हम पुन: उत्पन्न होंगे ॥५६ ॥

३४७४. प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५७ ॥

हम आपको पश्चिम दिशा, अधिपति वरुण, रक्षणकर्त्ता पृदाकु नामक सर्प और वरुणधारी अन्न के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में वृद्धावस्था पर्यन्त उपलब्ध कराते रहें और वृद्धावस्था इसे मृत्यु तक पहुँचाए । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुन: उत्पन्न होंगे ॥५७ ॥

३४७५. उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या
इषुमत्यै । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र
जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५८ ॥

हम आपको उत्तर दिशा, अधिपति सोम, संरक्षणकर्ता स्वज नामक सर्प और अशनि के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से जाने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप वृद्धावस्था तक प्राप्त कराते रहें और वृद्धावस्था इसे मृत्यु को सौंप दें । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुन: उत्पन्न होंगे ॥५८ ॥

३४७६. ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य
इषुमतीभ्यः । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र
जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५९ ॥

हम आपको ध्रुव दिशा, अधिपति विष्णु, संरक्षणकर्ता कल्माषग्रीव नामक सर्प और इषुमती ओषधियों के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से गमनकाल तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप जीर्णावस्था तक प्राप्त कराएँ । जीर्णावस्था इसे मृत्यु को समर्पित करे । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुन: उत्पन्न होंगे ॥५९ ॥

३४७७. ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥६० ॥

हम आपको ऊर्ध्व दिशा, अधिपति बृहस्पति, संरक्षक श्वित्र नामक सर्प और इषुवान् वर्षा के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक संरक्षण करते रहें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप बुढ़ापे तक पहुँचाएँ , बुढ़ापा इसे मृत्यु को समर्पित करे । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुन: उत्पन्न होंगे ॥६० ॥

[४ - वशा गौ सूक्त]

[**ऋषि-** कश्यप । **देवता-** वशा । **छन्द-** अनुष्टुप्, ७ भुरिक् अनुष्टुप्, २० विराट् अनुष्टुप्, ३२ उष्णिक् बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, ४२ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् ।]

सूक्त के ऋषि हैं 'कश्यप' = पश्यक = द्रष्टा । देवता हैं वशा । वशा के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे नारी, गौ, वन्ध्या, वश में आयी हुई आदि । सूक्तकार-द्रष्टा ने गौ के उपलक्षण से प्रकृति के रहस्यों को स्पष्ट किया है । प्रकृति उर्वर उत्पादक है, अनेक प्रकार के पोषक पदार्थ स्नेहपूर्वक देती है, इसलिए इसे पयस्वती (दूध या रस देने वाली) गौ कहा गया है । प्रकृति की कुछ उत्पादक विधाएँ हैं, जो मनुष्यों के हाथ आ सकती हैं या जो उसके संकल्प से प्रभावित हो सकती हैं, उन्हें वशा (वश में आने वाली) कहा गया प्रतीत होता है । केवल स्थूल गौ मान लेने से मन्त्रार्थों की रहस्यात्मकता का निर्वाह नहीं होता । काण्ड-१० के १०वें सूक्त के भी ऋषि 'कश्यप' तथा देवता 'वशा' हैं । दोनों सूक्त एक दूसरे के पूरक हैं । लौकिक गौ के उपलक्षण से समझाये गये ये रहस्य बड़े उपयोगी हैं । 'वशा' ब्राह्मण के अधिकार में रहने पर ही कल्याणकारी सिद्ध होती है, अन्य के नियन्त्रण में वह अनर्थकारी हो जाती है । ब्राह्मण का अर्थ यहाँ ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अथवा ब्रह्म का यज्ञीय अनुशासन है । ब्राह्मण ज्ञान, यज्ञ और दान के लिए ही अपनी प्रतिभा को समर्पित, सुरक्षित रखता है, इसलिए वशा-प्रकृति की उत्पादक विद्या (क्रिएटिव-टेक्नालॉजी) का सदुपयोग उसी के द्वारा संभव है । स्वार्थियों-लोलुपों द्वारा हथियायी जाने पर यह विद्या या प्रतिभा अनिष्टकारी हो जाती है । इसीलिए इसे ब्राह्मण को ही सौंप देने का आग्रह किया गया है । मन्त्रार्थों के भावों को स्पष्ट करने के लिए यथास्थान संक्षिप्त टिप्पणियाँ कर दी गई हैं-

३४७८. ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत । वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥

हरेक सद्गृहस्थ 'दान देता हूँ' ऐसा ही सदैव कहे । दान के अनुकूल भावना भी रखे । याचक ब्राह्मणों को वशा का दान करे । यह दान, दाता को प्रजा और सन्तति प्रदान करने वाला है ॥१ ॥

३४७९. प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥२ ॥

जो मनुष्य, माँगने वाले ऋषिपुत्रों को देवताओं की गौ (वशा-विद्या) नहीं देते, वे अपनी प्रजा को ही बेचते हैं और पशुओं से रहित होकर अपयश को प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

[जो वशा-प्रकृति की उत्पादक विद्या का उपयोग स्वार्थपूर्ण कार्यों में करते हैं, उनकी प्रजा अभावों में पलती है; उत्पादनों का प्रयोग स्वार्थ के लिए होने लगता है ।]

३४८०. कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥३ ॥

वशा की सींग (वशा विद्या का पैनापन) टूटने से उस (अदानी व्यक्ति) के निकटवर्ती (साधन या व्यक्ति) नष्ट होते हैं । लँगड़ी होने से उन्हें गड्ढे में गिरना पड़ता है, बण्डी (बिना पूँछ की या विकल) होने से घर जल जाते हैं, तथा कानी (एक आँख खराब होने) से अपनी ही सम्पदा नष्ट होती है ॥३ ॥

[अब्राह्मण-अज्ञानी वशा विद्या को सँभाल नहीं पाते । वह लँगड़ी हो जाए, तो सब जगह जा नहीं सकती, अतः समाज का पतन होता है । कानी (एक तरफ ही देखने वाली) अपनी ही सम्पदा की दूसरे पक्ष की हानि कर देती है आदि । इसी प्रकार उपलक्षणों से भाव स्पष्ट किये गये हैं ।]

३४८१. विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्यु१च्यसे ॥४ ॥

गौ के गोबर से रक्त ज्वर प्रकट होकर कृपण स्वामी का विनाश करता है । इसी कारण से वशा को दुर्वमनीय (शक्ति से दबायी न जा सकने वाली) कहा गया है ॥४ ॥

[वशा विद्या-उत्पादक टैक्नालॉजी का गलत उपयोग होने से उससे उत्पन्न गोबर-प्रदूषण तमाम रोगों का कारण बनता है। उसके अनुशासन का उल्लंघन करके छल-बलपूर्वक उससे बचा नहीं जा सकता ।]

३४८२. पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥५ ॥

(इस रुष्ट) गौ के पैर रखने के स्थान में विक्लिन्दु नामक रोग फैलता है, जिसे गौ सूँघती है, ऐसे (गौ के स्वामी) बिना ख्याति को प्राप्त हुए ही क्षीण होकर विनष्ट हो जाते हैं ॥५ ॥

३४८३. यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥६ ॥

जो गौ के कानों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मानो देवताओं पर प्रहार करते हैं । गौ पर परिचय चिह्न बनाने वाले गोपालकों का धन क्षीण हो जाता है ॥६ ॥

३४८४. यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥७ ॥

जो किसी साज-सज्जा के लिए इस गौ के बालों का कर्तन करते हैं, इस अपराध कर्म से उनकी सन्तानें मृत्यु को प्राप्त होती हैं और भेड़िया, बच्चों पर आघात करता है ॥७ ॥

[वृक्ष- वनस्पतियों को पृथ्वी की लोम राशि कहा गया है । उन्हें जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए तो प्रयुक्त किया जा सकता है, भोग- विलास, प्रदर्शन- वैभव के लिए काटना पाप है । पर्यावरण बिगड़ने से संतति पर संकट आते हैं ।]

३४८५. यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षोअजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥८ ॥

यदि गोपति की उपस्थिति में कौवा, गौ के बालों को नोचता है, तो इससे उसकी संतानें मृत्यु को प्राप्त होती हैं और क्षयरोग उसे सहजरूप में ग्रसित करता है ॥८ ॥

[गोपति संरक्षक के प्रतीक हैं तथा कौवे स्वार्थ, धूर्त प्रकृति के लोगों के पर्याय हैं ।]

३४८६. यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति । ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥

यदि गौ की परिचारिका, गौ का गोबर और मूत्र इधर-उधर फेंकती है, तो उस पापकर्म से गोपति का रूप विकृत हो जाता है ॥९ ॥

[लौकिक अर्थों में भी गाय का गोबर, गोमूत्र जहाँ-तहाँ फेंकने से स्थान का स्वरूप विकृत हो जाता है, सूक्ष्म संदर्भ में वशा-विद्या टैक्नालॉजी का कचरा ठिकाने न लगाया जाए, तो उस क्षेत्र का स्वरूप विकृत हो जाता है ।]

३४८७. जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१० ॥

जो वशा उत्पन्न होती है, वह मात्र ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानियों और देवताओं के लिए ही उत्पन्न होती है, अतएव इसे ज्ञाननिष्ठ ब्रह्मकर्म में संलग्न लोगों को दानस्वरूप देना उपयुक्त है, ऐसा विद्वानों का कथन है ॥१० ॥

३४८८. य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा । ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥११॥

ब्रह्मनिष्ठों के माँगने पर उन्हें गौ प्रदान न करके, जो 'अपनी प्रिय है' ऐसा कहते हुए अपने ही पास रखता है, उसका यह कृत्य ब्रह्मनिष्ठों पर अत्याचार के समान ही है; क्योंकि देवों ने उसे उनके लिए ही निर्मित किया है ।

३४८९. य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥१२ ॥

जो लोग लोकहित को दृष्टिगत रखने वाले याचक ऋषिपुत्रों को देवों की गौ दानस्वरूप नहीं देते । उनके ऊपर ब्राह्मणों के कोप और देवों के आघात बरसते हैं ॥१२ ॥

३४९०. यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१३ ॥

यदि कोई भोग सामग्री चाहता है, तो वह वशा (ब्रह्म विद्या) से नहीं, किसी दूसरी विधि से प्राप्त करे; क्योंकि जो वशा याचना करने पर भी नहीं दी जाती, वह गौ ही उस मनुष्य (गोपति) के विनाश का कारण बनती है ॥१३ ॥

३४९१. यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥१४ ॥

जैसे किसी की सुरक्षित निधि होती है, वैसे ही यह वशा (गाय) ब्राह्मणों की है । कहीं किसी के भी गृह में उत्पन्न होने पर उसके पास ब्राह्मण लोग याचक भाव से पहुँचते हैं ॥१४ ॥

३४९२. स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥१५ ॥

यदि ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ) गौ के समीप आते हैं, तो वे अपनी सम्पत्ति के पास ही आते हैं । इस गौ को रोकना (न देना) मानो इन्हें (ब्राह्मणों को) दूसरे अर्थ में व्यथित करना ही है ॥१५ ॥

३४९३. चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती । वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥१६ ।

तीन कालों (वर्षों या जीवन के अंशों) तक, जब तक वशा की पहचान न हो, तब तक उसे गोपति (इन्द्रियों का स्वामी) विचरण करने दे । हे नारद ! वशा (प्रतिभा या विद्या) को पहचान लेने पर उसके लिए ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अथवा अनुशासन) खोजकर उसे सौंप दिया जाए ॥१६ ॥

३४९४. य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥१७ ॥

जो देवों की स्थायी निधि (सुरक्षित निधि) रूप वशा को अवशा (न देने योग्य) कहते हैं, तो भव और शर्व ये दोनों देव उस पर पराक्रमी प्रहार स्वरूप बाण चलाते हैं ॥१७ ॥

[भव उत्पन्नकर्त्ता और शर्व विसर्जन कर्त्ता देवों के नाम हैं । ये दोनों संबोधन शिवजी के लिए भी हैं । अदानी, नियम का उल्लंघन करने वाले को शिव का चक्र चलाने वाले देव दण्डित करते हैं ।]

३४९५. यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥१८ ॥

जो गोपालक उसके ऊध (थन) और स्तनों को नहीं जानते, वे भी दानस्वरूप गौ को देने में सक्षम हुए, तो वह वशा (गाय) उन्हें पुण्यफल के साथ पर्याप्त दूध का अभीष्ट फल देती है ॥१८ ॥

[काण्ड १० के १०.७ मन्त्र में वशा के ऊध और स्तन पर्जन्य तथा विद्युत् कहे गये हैं । जो यह रहस्य नहीं जानते तथा उत्पादक द्रव्यों की आहुतियाँ ब्रह्मकर्म-यज्ञ में देते हैं, उन्हें वशा का पय मिलता है ।]

३४९६. दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥१९ ॥

जो याचना किये जाने पर भी ब्राह्मणों को नहीं देते, उनके घर में यह गौ दुर्दम्य (नियन्त्रणरहित) होकर वास करती है । जो इसे न देकर अपने पास ही रखना चाहते हैं , उनके अभीष्ट पूर्ण नहीं होते ॥१९ ॥

[**जो प्रतिभा या विद्या, ब्रह्मनिष्ठों के नियन्त्रण में नहीं दी जाती, वह बागी होकर अनर्थ खड़े करती है ।**]

३४९७. देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् । तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥२० ।

ब्राह्मण का रूप धारण करके, देव-शक्तियाँ ही वशा की याचना करती हैं । अतः दानस्वरूप गौओं को न देने वाले मनुष्य देवों के कोपभाजन बनते हैं ॥२० ॥

३४९८. हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् । देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते

देवताओं की सुरक्षित निधि रूप में रखे गये भाग (वशा) को जो मनुष्य अपना प्रिय मानकर ब्राह्मणों को दान स्वरूप नहीं देता, तो उसे पशुओं का भी कोप भाजन बनना पड़ता है ॥२१ ॥

३४९९. यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥२२ ॥

गोपति के पास सैकड़ों अन्य ब्राह्मण भी यदि वशा की याचना करें, तो भी वशा विद्वान् की होती है, ऐसा देवों का कथन है ॥२२ ॥

[**ब्रह्मनिष्ठों में भी जो विद्वान्-अनुभवी- कुशल हों- उन्हें सृजन विद्या के उपयोग का अधिकार सौंपना चाहिए ।**]

३५००. य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥२३ ॥

जो मनुष्य इस प्रकार विद्वान् को गौ न देकर; दूसरे अपात्र को गोदान करता है, उसके लिए उसके स्थान में समस्त देवों के साथ-साथ पृथ्वी भी कष्टदायी हो जाती है ॥२३ ॥

३५०१. देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत । तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥२४।

जिसके यहाँ वशा का जन्म होता है, उससे देवता गौ की माँग करते हैं । नारद ने यह जान लिया कि देवों को इसका दान दिये जाने से (गौ और देवताओं) सबकी प्रगति होती है ॥२४ ॥

[**यह भाव गीता के उस भाव के अनुरूप है कि यज्ञ से देवों को तृप्त करो, देवता तुम्हें उत्कर्ष देंगे ।**]

३५०२. अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५ ॥

ब्राह्मणों द्वारा माँग किये जाने पर भी, जो वशा (गाय) को अपना प्रिय मानकर अपने पास रखता है, वह वशा उस मनुष्य को सन्तति के सौभाग्य से रहित और पशुधन से भी क्षीण करती है । ।२५ ॥

३५०३. अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥२६ ॥

ब्राह्मण लोग अग्नि, सोम, मित्र, वरुण और काम आदि देवों के निमित्त वशा की याचना करते हैं, अपने लिए नहीं, इसलिए यह दान न किये जाने पर मनुष्य उन देवों को ही अपमानित करता है ॥२६ ॥

[ब्राह्मण- ऋषि स्तर के व्यक्ति, लोगों की प्रतिभा एवं विद्या को देव कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए ही माँगते हैं। उनको न देना देवकर्मों में अपनी साझेदारी से इनकार कर देने जैसा ही है।]

३५०४. यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम्।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७ ॥

जब तक गोपति (इन्द्रियों का स्वामी) स्वयं ऋचाएँ नहीं सुनता, तब तक उसकी गौओं (इन्द्रियों) के बीच वशा (प्रतिभा या विद्या) विचरण करती रहे, परन्तु ऋचा सुनने (ज्ञान होने) के बाद उसे दानस्वरूप दे देना चाहिए ॥२७ ॥

३५०५. यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥२८ ॥

जो गोपालक मन्त्रघोष सुनकर भी अपनी गौओं के बीच दानस्वरूप दी जाने वाली गौ को चराता है, देवगण उसके ऊपर क्रोधित होकर उसकी आयु और सम्पदा को विनष्ट कर देते हैं ॥२८ ॥

३५०६. वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९ ॥

वशा अनेक स्थानों में विचरणशील होती हुई देवों की सुरक्षित निधिस्वरूपा ही है। जब वह अपने स्थान पर जाने की इच्छुक होती है, तो विभिन्न प्रकार के रूपों को प्रकट करती है ॥२९ ॥

३५०७. आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्याय कृणुते मनः ॥३० ॥

जब वशा अपने निवास स्थान पर जाने की इच्छुक होती है, तब वह अपने मनोभावों को प्रदर्शित करती है। ब्राह्मणों द्वारा याचना के लिए वह गौ अपने मन में संकल्पित होती है ॥३० ॥

[जब विद्या या प्रतिभा जाग्रत् होती है, तो अन्दर से उसके ब्रह्मनिष्ठ-श्रेष्ठ उपयोग के भाव उठते हैं। यही वशा का अपना संकल्प होता है।]

३५०८. मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१ ॥

उस वशा (गाय) के मानसिक संकल्प किये जाने पर वे संकल्प देवों तक पहुँचते हैं। इसके बाद ही ब्राह्मण लोग गौ की याचना के लिए आगमन करते हैं ॥३१ ॥

[यह एक सूक्ष्म चक्र है। भावना से देवशक्तियों का सम्पर्क होता है और उसी आधार पर प्रतिभा के सदुपयोग का ताना- बाना बुना जाता है।]

३५०९. स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः। दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति।

स्वधारूप तर्पण कृत्य से पितरों की तृप्ति तथा यज्ञ और वशादान से देवों की संतुष्टि हो जाने पर क्षत्रिय गाय की माता (जन्मदात्री) का कोपभाजन नहीं बनता ॥३२ ॥

[अथर्व० १०.१०.१८ में भी वशा को क्षत्रियों की माता कहा गया है। क्षत्रिय धर्मी-प्रशासन कर्मियों को चाहिए कि वशा-प्रतिभा-विद्या के प्रति माँ का भाव रखें तथा उसे सत्पात्रों द्वारा ही प्रयुक्त होने दें।]

३५१०. वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३ ॥

वशा (गाय) को क्षत्रियों की माता कहा गया है । जो वशा को ब्राह्मणों के लिए दानस्वरूप प्रदान करते हैं, वस्तुत: वह उनका दान नहीं है; क्योंकि गौ तो ब्राह्मण की ही सुरक्षित निधि कही गयी है ॥३३ ॥

३५११. यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥३४ ॥

जिस प्रकार स्रुवा में लिया हुआ घी अग्नि को न समर्पित करना अपराध है, उसी प्रकार ब्राह्मणों को वशा (गाय) दानस्वरूप न देने वाले को अपराधी माना जाता है ॥३४ ॥

३५१२. पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥३५ ॥

पुरोडाशरूपी वत्स से उत्तम दूध देने (दुहाने) वाली वशा; इस लोक में इस दानी यजमान के समीप ही रहती है, वह गौ इस दाता की समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करती है ॥३५ ॥

[बछड़े के स्नेह से गाय के थन भर आते हैं और गोपति को दूध मिलता है, इसी प्रकार पुरोडाश आदि (पोषक पदार्थों) के हवन से प्रकृति स्थित वशा तृप्त होकर, याजकों के लिए कामधेनु की तरह फलवती होती है ।]

३५१३. सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६ ॥

वशा दान करने वाले दाता की सम्पूर्ण कामनाएँ यम (अनुशासन) के राज्य में पूर्ण होती हैं; परंतु याचना करने पर भी दान न देने वाले को नरकलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा विद्वज्जनों का अभिमत है ॥३६ ॥

३५१४. प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा । वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम्

सृजनशील वशा (प्रतिभा), गोपति (इन्द्रियों के स्वामी अविवेकी व्यक्ति) के लिए क्रोधित होकर विचरण करती है । वह अभिशाप देती है कि मुझे वन्ध्या (अनुत्पादक) स्थिति में रखने वाला मृत्युपाश से आबद्ध हो ॥३७ ॥

३५१५. यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् । अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः

जो वशा गौ को गर्भपातिनी (वन्ध्या) मानकर उसे अपने घर में पकाता है, बृहस्पति (विद्या के अधिष्ठाता) देव उसके पुत्र और पौत्रों से भिक्षा मँगवाते हैं ॥३८ ॥

[लोकहित के लिए देव शक्तियों द्वारा विकसित विद्या या प्रतिभा को जो घर में ही परिपक्व करके स्वार्थ में प्रयुक्त करना चाहते हैं, उनकी संतति की मति भ्रष्ट हो जाती है ।]

३५१६. महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि । अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥३९

यह गौ (वशा) गौओं (इन्द्रियों) के बीच चरती हुई भी अत्यधिक सन्ताप देती है, मानो दान न देने वाले गोरक्षक के लिए यह दूधरूपी विष देती है ॥३९ ॥

[प्रतिभा से इन्द्रिय सुख अर्जित करने वालों की इन्द्रियाँ विलासी होकर क्षीण होती जाती हैं । उनके लिए दूध भी विष बन जाता है ।]

३५१७. प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥४० ॥

जो वशा ब्राह्मणों को दानस्वरूप दी जाती है, वह शेष पशुओं के लिए भी कल्याणकारक होती है । इसलिए वशा को देवताओं के लिए दी गई आहुति ही प्रिय है ॥४० ॥

३५१८. या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।

तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥४१ ॥

जिस समय वशा को देवों ने यज्ञ से बनाया (संकल्पित किया), उसी समय अधिक घृतवती और विशालकाय वशा को नारद ने अनुभव (स्वीकार) किया ॥४१ ॥

३५१९. तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।

तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥४२ ॥

उस सम्बन्ध में देवों ने विचार विनिमय किया कि यह गौ स्वामी के वश में रहने योग्य नहीं है । तब नारद ने वशा को शेष गौओं की अपेक्षा सहज नियन्त्रित रहने वाली कहा ॥४२ ॥

३५२०. कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।

तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥४३ ॥

हे ऋषि नारद !मनुष्यों के यहाँ उत्पन्न होने वाली ऐसी कितनी गौएँ हैं, जिनके सम्बंध में आपको ज्ञान है ? आप विद्वान् पुरुष हैं, अतः हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जो ब्राह्मण से भिन्न है, वह किसका सेवन न करे ? ॥४३ ॥

३५२१. विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४४ ॥

(नारद का उत्तर) हे बृहस्पते ! ऐश्वर्य की कामना करने वाला वह व्यक्ति अब्राह्मण विलिप्ती (विशिष्ट प्रयोजनों में लिप्त), सूतवशा (प्रेरक वशा) तथा वशा (वशा के इन तीनों स्वरूपों) का सेवन न करे ॥४४ ॥

[अथर्व० १०.१०.३० में भी वशा के तीन रूप दिये हैं, उसे द्युलोक, पृथ्वी तथा विष्णु-प्रजापति कहा गया है । पृथ्वी में वशा का विलिप्तीरूप है, विष्णु-प्रजापति में प्रेरक सूतवशा है तथा द्युलोक में वशा (सर्ववशा) है । इन तीनों ही रूपों में यह केवल ब्रह्मनिष्ठों-परमार्थ परायणों के लिए ही फलित होती है ।]

३५२२. नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा । कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥

हे ऋषि नारद ! आपके लिए वन्दन है । यह वशा (गाय) विद्वान् पुरुष की प्रार्थना के अनुकूल ही है, परन्तु इन गौओं में कौन सी अतिभयंकर है, जिसे दानस्वरूप न देने पर पराभव होता है ॥४५ ॥

३५२३. विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४६ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो ब्राह्मण से भिन्न हैं, वे यदि ऐश्वर्य समृद्धि की कामना करते हैं, तो वे विलिप्ती, सूतवशा, सर्ववशा, इन तीनों प्रकार की गौओं के सेवन से बचाव करें ॥४६ ॥

३५२४. त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।

ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सो ऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥४७ ॥

विलिप्ती, सूतवशा और वशा ये गौओं की तीन श्रेणियाँ (प्रजातियाँ) हैं, इन्हें जो ब्राह्मणों को दानस्वरूप देते हैं, वे प्रजापति के क्षोभ से सुरक्षित रहते हैं ॥४७ ॥

३५२५. एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।

वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥४८ ॥

"हे ब्रह्म ज्ञानियो ! यह (वशा) आपकी हवि (आपके लिए समर्पित) है ।" ब्राह्मण द्वारा याचना किये जाने पर गोपति ऐसा उच्चारित करे । अदानी के घर में वशा अत्यंत भयंकर हो जाती है ॥४८ ॥

३५२६. देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥४९ ॥

क्रोधित देवों ने, वशा से कहा, "इसने दान नहीं दिया, ऋचाओं (प्रदत्तज्ञान) में भेद उत्पन्न किया", इसलिए इसका पराभव हुआ ॥४९ ॥

३५२७. उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥५० ॥

इन्द्रदेव द्वारा वशा की याचना करने पर भी जो नहीं देता, उसके राज्य में भेद उत्पन्न होता है । उसके पाप के दण्डस्वरूप देवता उसे अहंकार के घेरे में डालकर विनष्ट करते हैं ॥५० ॥

३५२८. ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१ ॥

जो लोग, गोपति को (मर्यादा से) परे हटाकर 'मत दो' ऐसी सलाह देते हैं, वे दुर्बुद्धि के कारण इन्द्रदेव के कोप द्वारा विनष्ट होते हैं ॥५१ ॥

३५२९. ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥५२ ॥

जो गो-रक्षक के पास जाकर कहते हैं कि दानरूप में गौ को न दें, वे अपनी कुमति के कारण रुद्रदेव के फेंके हुए शस्त्र से विनष्ट होते हैं ॥५२ ॥

३५३०. यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥५३ ॥

हुत (यज्ञाहुतिरूप या दान में दी गयी) या अहुत (न दी गयी) वशा (विद्या अथवा प्रतिभा) को यदि (कोई व्यक्ति) अपने घर में (सीमित स्वार्थ के लिए) परिपक्व करता है, तो वह कुटिल होकर ब्राह्मणों और देवों का अपराधी बनकर लोकों (श्रेष्ठ लोकों या स्तरों) से पतित हो जाता है ॥५३ ॥

[५ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** ब्रह्मगवी । **छन्द-** १ प्राजापत्या अनुष्टुप् , २ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप् , ३ चतुष्पदा स्वराट् उष्णिक् , ४ आसुर्यनुष्टुप् , ५ साम्नी पंक्ति, ६ साम्नी उष्णिक्]

आगे के सूक्तों ५-११ की देवता ब्रह्मगवी है । ब्राह्मण की कामधेनु उसकी तपःशक्ति या वाक्शक्ति कही गई है । ऐसे ही किसी संदर्भ से मन्त्रार्थ फलित होते हैं-

३५३१. श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥१ ॥

तपश्चर्या द्वारा उत्पन्न की गई सत्य में आश्रययुक्त यह (ब्रह्मगवी) ब्राह्मण द्वारा जानी या पायी जाने वाली है ॥

३५३२. सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥२ ॥

यह सत्य से अच्छादित, श्री- सम्पदा से परिपूर्ण और यशस्विता से चारों ओर से घिरी (सम्पन्न) रहती है ॥२ ॥

३५३३. स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥३ ।

यह अपनी धारणा शक्ति से सुरक्षित हुई, श्रद्धा भावना से सम्पन्न , दीक्षाव्रत से संरक्षित और यज्ञ में प्रतिष्ठित रहती है, (ब्राह्मणेतर) क्षत्रिय (आदि) का इसकी ओर देखना (पानेकी लालसा करना) मृत्यु है ॥३ ॥

३५३४. ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥४ ॥

इस गौ के द्वारा ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है, ब्राह्मण ही इस गौ का स्वामी है ॥४ ॥

३५३५. तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५ ॥

३५३६. अप क्रामति सूनृता वीर्यं१ पुण्या लक्ष्मीः ॥६ ॥

ब्राह्मण की गौ के अपहरणकर्त्ता और ब्रह्मज्ञानी को व्यथा पहुँचाने वाले क्षत्रिय की लक्ष्मी, वीर्य और प्रिय मधुर वाणी साथ छोड़ देती है ॥५-६ ॥

[६ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** ब्रह्मगवी । **छन्द-** साम्नी त्रिष्टुप्, २ भुरिक् आर्ची एकपदा अनुष्टुप्, ३ आर्ची एकपदा अनुष्टुप्, ४ उष्णिक् (एकपदा), ५ आर्ची निचृत् पंक्ति ।]

३५३७. ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥१ ॥

३५३८. ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥२ ॥

३५३९. आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥३ ॥

३५४०. पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥४ ॥

३५४१. तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५ ॥

ओज, तेज, शत्रुओं को दबाने की सामर्थ्य, बल, वाणी, इन्द्रिय शक्ति , लक्ष्मी, धर्म, वेद, शौर्यशक्ति, राष्ट्र, प्रजाजन, तेज, यश, पराक्रम, धन, आयुष्य, रूप, नाम, यशस्विता, प्राण, अपान, आँखें, कान, दूध, रस, अन्न को पचाने की अग्नि (ऊर्जा) , ऋत, सत्य, वेद विहित याग आदि इष्ट पूर्त (स्मृति विहित कूप तटाक आदि) प्रजा और पशु । उपर्युक्त ये सभी (चौंतीस) पदार्थ ब्राह्मण की गौ को छीनने वाले और संहार करने वाले क्षत्रिय को छोड़ देते हैं ॥

[७ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** ब्रह्मगवी । **छन्द-** १ विराट् विषमा गायत्री, २ आसुर्यनुष्टुप्, ३, १५ साम्नी उष्णिक्, ४ गायत्री, ५-६, ८-९ प्राजापत्यानुष्टुप्, ७ याजुषी जगती, १०, १४ साम्नी अनुष्टुप्, ११ साम्नी बृहती, १२ याजुषी त्रिष्टुप्, १३ आसुरी गायत्री, १६ आर्ची उष्णिक् ।]

३५४२. सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१ ॥

यह ब्रह्मगवी भयानक, विषैली, प्रत्यक्ष आघात करने वाली तथा संहारक कृत्यास्वरूप हो जाती है ॥१ ॥

३५४३. सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥२ ॥

इस गौ में सभी प्रकार की भयंकरता और मृत्यु की सभी सम्भावनाएँ समाविष्ट हैं ॥२ ॥

३५४४. सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥३ ॥

इसमें सभी क्रूरतापूर्ण कृत्य और सभी पुरुषों के वध विद्यमान हैं ॥३ ॥

३५४५. सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥४ ॥

ब्राह्मण से छीनी गई यह ब्रह्मगवी, ब्रह्मघाती और देवताओं के शत्रु को मृत्यु के पाश में बाँध देती है ॥४ ॥

३५४६. मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥५ ॥

ब्राह्मण की आयु का ह्रास करने वालों के लिए, क्षयकारी यह गौ सैकड़ों प्रकार से संहार करने वाली (अस्त्र) हो जाती है ॥५ ॥

३५४७. तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥६ ॥

इसलिए ज्ञानी मनुष्यों को समझना चाहिए कि ब्राह्मण की गौ दबाने योग्य नहीं है ॥६ ॥

३५४८. वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥७ ॥

जब वह दौड़ती है, तब वज्र के समान बन जाती है और जब उठती है, तो आग के समान ऊपर को गमन करती है ॥७ ॥

३५४९. हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३पेक्षमाणा ॥८ ॥

वह खुरों को पटकती हुई हथियार के समान और दृष्टि डालती हुई संहारकदेव रुद्र के समान होती है ॥८ ॥

३५५०. क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥९ ॥

वह देखती हुई छुरे की धार के समान तीक्ष्ण वज्ररूप होती है और शब्द करने पर गरजती प्रतीत होती है ॥९ ॥

३५५१. मृत्युर्हिङ्कृण्वत्यु१ग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥१० ॥

हिंकार शब्द करती हुई मृत्युरूप और पूँछ को चारों ओर घुमाती हुई उग्रदेव स्वरूप भयानक होती है ॥१० ॥

३५५२. सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥११ ॥

वह कानों को हिलाती हुई, सब प्रकार की आयु को क्षीण करने वाली और मूत्र विसर्जन क्रिया के साथ क्षय रोग विस्तारित करने वाली बनती है ॥११ ॥

३५५३. मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥१२ ॥

दुही जाती हुई यह गौ मारक शस्त्ररूप होती है और दुही जाने के बाद सिर वेदना स्वरूपा होती है ॥१२ ॥

३५५४. सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥१३ ॥

समीप खड़ी होने पर संहारक और स्पर्श करने पर द्वन्द्व - संग्राम करने वाले वैरी के समान होती है ॥१३ ॥

३५५५. शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥१४ ॥

मुँह में बाँधी जाने पर बाणों के समान और ताड़ित किए जाने पर महाविनाशकारिणी होती है ॥१४ ॥

३५५६. अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥१५ ॥

बैठती हुई भयानक विषरूपा और बैठी होने पर साक्षात् मृत्युरूप अन्धकार के तुल्य होती है ॥१५ ॥

३५५७. अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥१६ ॥

इस प्रकार की यह ब्रह्मगवी (ब्राह्मण की गाय) ब्राह्मण को नुकसान पहुँचाने वाले का अनुगमन करती हुई, उसके प्राणों का संहार करती है ॥१६ ॥

[८ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** ब्रह्मगवी । **छन्द-** १ आसुरी गायत्री, २,१० आसुरी अनुष्टुप्, ३ साम्नी अनुष्टुप्, ४ याजुषी त्रिष्टुप्, ५साम्नी गायत्री, ६-७ साम्नी बृहती, ८ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्, ९ साम्नी उष्णिक्, ११ प्रतिष्ठा गायत्री ।]

३५५८. वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥१ ॥

ब्राह्मण से छीनी हुई इस गौ को काट देने पर पुत्र-पौत्रादि का विभाजन करा देती है ॥२ ॥

३५५९. देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥२ ॥

चुराई जाते समय यह देवों का अस्त्र और हरण होने के बाद विपत्तिरूपा होती है ॥२ । ।

३५६०. पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥३ ॥

अधीन रखने पर पापरूपा और तिरस्कृत होने पर कठोरतामयी बनती है ॥३ ॥

३५६१. विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥४ ॥

कष्टमयी होने पर विषरूपा और सताये जाने पर तक्मा (ज्वर) के समान होती है ॥४ ॥

३५६२. अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥५ ॥

पकाये जाते समय पापरूपा और पक जाने के बाद दुष्ट (बुरे) स्वप्न के समान दु:खदायी होती है ॥५ ॥

३५६३. मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥६ ॥

यह ब्रह्मगवी घुमायी जाने पर मूल को उखाड़ने वाली और परोसी जाने पर विनाशकारिणी होती है ॥६ ॥

३५६४. असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥७ ॥

गन्ध द्वारा मूर्च्छित करने वाली, उठाई जाने पर शोकप्रदा और उठाई न जाने पर साँप के समान होती है ॥७ ॥

३५६५. अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥८ ॥

पास में ली गई वह विपत्ति स्वरूपा और समीप रखी हुई पराभवकारी होती है ॥८ । ।

३५६६. शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥९ ॥

वह पीसी जाती हुई क्रोधित रुद्रदेव के समान और पिसी हुई (पीसे जाने के बाद) सुखनाशक होती है ॥९ ॥

३५६७. अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥१० ॥

वह खाई जाती हुई दरिद्ररूपा और भक्षण किये जाने पर दुर्गतिकारिणी पापदेवी निर्ऋति के समान है ॥१० ॥

३५६८. अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥११ ॥

प्राशन की गई ब्राह्मण की गौ ब्रह्मघाती को इस लोक और परलोक दोनों से ही पृथक् कर देती है ॥११ ॥

[९ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** ब्रह्मगवी । **छन्द-** १ साम्नी पंक्ति , २ याजुषी अनुष्टुप्, ३, ८ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप् , ४ आसुरी बृहती, ५ साम्नी बृहती, ६ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्, ७ आर्ची बृहती ।]

३५६९. तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥१ ॥

उसका आहनन (ले जाना-संहार करना) कृत्या के समान, आशसन (काटना) आयुध के समान तथा अर्धपक्व गोबर मिला चारा विनाशकारी होता है ॥१ ॥

३५७०. अस्वगता परिह्णुता ॥२ ॥

अपहरण की गई धेनु अपने नियंत्रण में नहीं रहती अर्थात् घातक होती है ॥२ ॥

३५७१. अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥३ ॥

ब्रह्मगवी क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि बनकर ब्रह्मघाती में प्रविष्ट होकर उसका भक्षण कर डालती है ॥३ ॥

३५७२. सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥४ ॥

इसके (उत्पीड़क के) सभी अंग-प्रत्यंगों और जोड़ों को काट डालती है ॥४ ॥

३५७३. छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥५ ॥

इस (उत्पीड़क) के पिता से सम्बंधित बंधुओं का छेदन और मातृपक्ष के बन्धुओं को पराभूत करती है ॥५ ॥

३५७४. विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥६॥

क्षत्रिय द्वारा वापस न की गई ब्रह्मगवी ब्रह्मघाती क्षत्रिय के सभी विवाहित और सजातीय बन्धुओं को नष्ट कर देती है ॥६ ॥

३५७५. अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥७ ॥

वह इसे निवासरहित, परतन्त्र और सन्ततिहीन कर देती है, जिससे यह (ब्रह्मघाती) सहायता से विहीन होकर विनाश को प्राप्त होता है ॥७ ॥

३५७६. य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥८ ॥

जो क्षत्रिय ज्ञानी ब्राह्मण की इस गौ को अपहृत करता है (उसकी यही दुर्दशा होती है) ॥८ ॥

[१० - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाचार्य । **देवता-** ब्रह्मगवी । **छन्द-** प्राजापत्या अनुष्टुप्, २ आर्षी अनुष्टुप्, ४ साम्नी बृहती, ८-९ प्राजापत्या उष्णिक्, १० आसुरी गायत्री, १४ गायत्री ।]

३५७७. क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥१ ॥

उस (ब्रह्मघाती) दुष्ट के निधन होने पर गीध शीघ्र ही कोलाहल मचाते हैं ॥१ ॥

३५७८. क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः
पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥२ ॥

केशों को बिखेरकर स्त्रियाँ शीघ्र ही उस (दुष्ट) को भस्मीभूत करने वाली चिता के समीप चक्कर काटती हैं और हाथों से वक्षस्थल को पीटती हुई अश्रुपात करती हैं ॥२ ॥

३५७९. क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥३ ॥

उनके घरों में शीघ्र ही भेड़िये अपने नेत्र घुमाने (शब्द करने) लगते हैं ॥३ ॥

३५८०. क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥४ ॥

शीघ्र ही उसके सम्बन्ध में पुरुष लोग पूछते हैं कि उसका जो स्वरूप था, क्या यह वही है ॥४ ॥

३५८१. छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥५ ॥

हे ब्रह्मगवी ! आप इस अपहरणकर्त्ता को काट डालें और टुकड़े-टुकड़े कर डालें । आप इसका समूल नाश करें ॥५ ॥

३५८२. आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥६ ॥

हे आङ्गिरसि (अङ्गिरस् की शक्ति) ! आप ब्राह्मण की धेनु के अपहरणकर्त्ता (ब्रह्मज्य) का संहार करें ॥६ ॥

३५८३. वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥७ ॥

(हे ब्रह्मगवि !) आप समस्त देवों की संहारकशक्ति (कृत्या) विनाशकशक्ति (कूल्बज) हैं, ऐसा आपके सम्बन्ध में कहा गया है ॥७ ॥

३५८४. ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥८ ॥

आप मन्त्ररूपी वज्रास्त्र से भस्मीभूत करने वाली तथा भली प्रकार भस्म करने वाली शक्ति हैं ॥८ ॥

३५८५. क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥९ ॥

आप छुरे के समान तीक्ष्ण बनकर तथा उसकी मृत्युरूपा बनकर प्रहार करें ॥९ ॥

३५८६. आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥१० ॥

आप अपहरणकर्त्ता से तेजस्विता, अभीष्टों की पूर्णता और सभी आशीषों को छीन लेती हैं ॥१० ॥

३५८७. आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥११ ॥

उस ब्रह्मघाती को अल्पायु करने के लिए आप पकड़कर परलोक की ओर भेजती हैं ॥११ ॥

३५८८. अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥१२ ॥

हे अघ्न्ये (वधरहित गौ) ! आप ब्राह्मण के अभिशाप से ब्रह्मघाती के लिए पैरों की बेड़ीरूपा हैं ॥१२ ॥

३५८९. मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥१३ ॥

आप अस्त्ररूप बाणों के समूह को प्राप्त करती हुई, उसके पापों के कारण अघविषा (पापरूपा) बनें ॥१३ ॥

३५९०. अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥१४ ॥

हे अघ्न्ये (वधरहित गौ) ! आप उस ब्रह्मघाती, पापी, देवविरोधी, दानविहीन अपराधी का सिर काट लें ॥१४

३५९१. त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥१५ ॥

आपके द्वारा मारे गये नष्ट-भ्रष्ट हुए दुर्बुद्धिग्रस्त शत्रु को अग्निदेव भस्मीभूत करें ॥१५ ॥

[११- ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वाचार्य । **देवता**- ब्रह्मगवी । **छन्द**- प्राजापत्या अनुष्टुप्, ४ गायत्री, ६ प्राजापत्या गायत्री, १० आसुरी पंक्ति, ११ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १२ आसुरी उष्णिक् ।]

३५९२. वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥१ ॥

हे अघ्न्ये ! आप ब्रह्मघाती को काटें, अत्यधिक काटें, भली प्रकार काटें । जलाएँ, अधिक जलाएँ, भली प्रकार जलाएँ ॥१ ॥

३५९३. ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ।।२ ।।

हे वधरहित दिव्यस्वरूपा गौ ! आप ब्राह्मण के प्रति हिंसक भाव रखने वाले को समूल भस्म कर डालें ।।२ ।।

३५९४. यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ।।३ ।।

३५९५. एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ।।४ ।।

३५९६. वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ।।५ ।।

३५९७. प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ।।६ ।।

हे वधरहित गौ ! आप पापकर्मी, देवविरोधी, कर्त्तव्यपूर्ति में विघ्नकारी, ब्रह्मघाती के सिर और कन्धों को सैंकड़ों नोंकवाले छुरे के समान धाराओं से युक्त तीक्ष्ण वज्रास्त्र से विच्छिन्न करें, जिससे यह यमगृह से अतिदूर के पापलोकों को प्राप्त करे ।।३-६ ।।

३५९८. लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ।।७ ।।

(हे ब्रह्मगवी !) इसके लोमों को काट डालें, इसकी त्वचा को उधेड़ें ।।७ ।।

३५९९. मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ।।८ ।।

(हे ब्रह्मगवी !) इसके मांस को काट डालें और इसके स्नायु संस्थान को फुलाएँ (कुचलें) ।।८ ।।

३६००. अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ।।९ ।।

(हे ब्रह्मगवी !) इसकी अस्थियों को पीड़ित करें और इसकी मज्जा को क्षीण (विनष्ट) करें ।।९ ।।

३६०१. सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ।।१० ।।

(हे ब्रह्मगवी !) इसके सभी अंग-अवयवों और पर्वों (जोड़ों) को पृथक् (ढीला) करें ।।१० ।।

३६०२. अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ।।११ ।।

क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि इसे भस्मीभूत करे और वायुदेव इसे अन्तरिक्ष और पृथ्वी से बाहर खदेड़ दें ।।११ ।।

३६०३. सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ।।१२ ।।

सूर्यदेव इसे द्युलोक से बाहर करके भस्मीभूत कर डालें ।।१२ ।।

।।इति द्वादशं काण्डं समाप्तम् ।।

॥ अथ त्रयादश काण्डम् ॥

[१- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त]

[**ऋषि -** ब्रह्मा । **देवता-** १- २ , ४-२७, ३२-६० अध्यात्म, रोहितादित्य, ३ मरुद्गण, २८-३० अग्नि, ३१ अग्नि, मन्त्रोक्त । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ३-५, ९, १२ जगती, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, १३ अतिशाक्वरगर्भा अतिजगती, १४ त्रिपदा पुरःपरशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति, १५ अतिजागतगर्भा जगती, १६, २९-३०, ३२, ३९-४०, ४५-५१, ५३-५४ अनुष्टुप्, १७ पञ्चपदा ककुम्मती जगती, १८ पञ्चपदा परशाक्वराभुरिक् ककुम्मती अतिजगती, १९ पञ्चपदा परातिजागता ककुम्मती अतिजगती, २१ आर्षी निचृत् गायत्री, २६ विराट् परोष्णिक्, २८ भुरिक् अनुष्टुप्,३१ पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगती, ३५ उपरिष्टाद् बृहती, ३६ निचृद् महाबृहती, ३७ परशाक्वरा विराट् अतिजगती, ४२ विराट् जगती, ४३ विराट् महाबृहती, ४४ परोष्णिक् , ५२ पथ्यापंक्ति, ५५ ककुम्मती बृहतीगर्भा पथ्यापंक्ति, ५७ ककुम्मती अनुष्टुप्, ५९-६० गायत्री ।]

३६०४. उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१ ॥

हे गतिमान् सूर्यदेव ! अप् (तेजस्वी धाराओं) के बीच से उदित होकर, आप प्रिय सत्यनिष्ठा से युक्त राष्ट्र (ज्योतिरूप) में प्रविष्ट हों । हे राष्ट्राधिपते ! जिस (देव) ने इस (विश्व) को प्रकट किया है, वह आपको राष्ट्र के उत्तम रीति से भरण-पोषण में भी सक्षम बनाए ॥१ ॥

३६०५. उद्वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप ऊपर उठें । अप् धाराओं में निवास करने वाली प्रजा और अन्न में आप उच्च स्थान प्राप्त करें । सोम आदि वनस्पतियों को पुष्ट करते हुए जल, ओषधियों, द्विपादों (मनुष्यों) , चतुष्पादों (गौआदि पशुओं) को अपने राष्ट्र में प्रतिष्ठित कराएँ ॥२ ॥

३६०६. यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥३ ॥

हे मरुद्गण ! आप महान् पराक्रमी और पृथ्वी के प्रति मातृवत् व्यवहार करने वाले हैं । आप इन्द्रदेव के सहयोग से दुष्ट रिपुओं का संहार करें । हे श्रेष्ठ दानी मरुद्गणो ! आप स्वादिष्ट पदार्थों से प्रसन्न होते हैं । सूर्यदेव आपकी बात को सुनें ॥३ ॥

३६०७. रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४ ॥

सूर्यदेव उदित होकर ऊपर चढ़ रहे हैं, वे उत्पादन क्षमता से युक्त (प्रकृति) माता के अंक में गर्भरूप होकर बैठ गये हैं । छः दिशाओं ने उन (सूर्यदेव) के द्वारा बढ़ाये गर्भ को धारण किया है । वे उन्नति के मार्ग को जानते हुए राष्ट्र को भी उन्नत करते हैं ॥४ ॥

३६०८. आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्या स्थन्मृधो अभयं ते अभूत्।
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥५ ॥

आपके राष्ट्र में सूर्यदेव आ गये हैं। उन्होंने अनिष्टकारी शत्रुओं (रोगों) को दूर भगाकर आपको निर्भयता प्रदान की है। ये द्युलोक और भूलोक आपके लिए यथेच्छ मात्रा में सम्पत्तियों और शक्तियों को दुहने वाले हों ॥५ ।

३६०९. रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥६ ॥

सूर्यदेव से द्युलोक और भूलोक का प्राकट्य हुआ है। वहाँ प्रजापति ने सूत्ररूप आत्मतत्त्व को विस्तारित किया है। वहीं पर एक पाद अज (आत्मा) ने अवलम्बन लिया है और अपनी सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी दोनों को सुदृढ़ता प्रदान की ॥६ ॥

३६१०. रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्व स्तभितं तेन नाकः।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥

सूर्यदेव ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को सुदृढ़ता प्रदान की। उनके द्वारा सुखों से परिपूर्ण स्वर्गलोक को स्थिर किया गया। उनके द्वारा ही दैवी शक्तियों ने अमरता को उपलब्ध किया ॥७ ॥

३६११. वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥८ ॥

रोहितदेव (सूर्यदेव) ने ही सभी रुह (ऊपरी) और प्ररुह (निम्नस्थ) दिशाओं को भलीप्रकार प्रकट करते हुए सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों के शरीरों का स्पर्श किया है। वे अपनी महान् महिमा से द्युलोक पर चढ़कर आपके राष्ट्र को दूध और घृतादि से परिपूर्ण रखें ॥८ ॥

३६१२. यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९ ॥

जो आपकी ओर अग्रसर होने वाली, पीछे की ओर लौटने वाली तथा ऊँचाई की ओर बढ़ने वाली लतारूप प्रजा है, जिससे आप स्वर्ग और अन्तरिक्ष को पोषण देते हैं। उनके शक्तिवर्द्धक घृत, दुग्ध आदि से हृष्ट-पुष्ट होते हुए इस राष्ट्र और प्रजा में आप सतत जाग्रत् रहें ॥९ ॥

३६१३. यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥१० ॥

सूर्य की तपः शक्ति से सभी प्रजाओं का प्राकट्य हुआ है। वे प्रजाएँ गायत्री (विद्या या शक्ति) के अनुकूल होकर प्रगति करती हैं। वे सभी श्रेष्ठ, कल्याणकारी, संकल्पशक्ति से युक्त मन से आप में प्रवेश करें। अपनी माता सहित सूर्यदेव उन्नति को प्राप्त हों ॥१० ॥

३६१४. ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥११ ॥

तरुण, क्रान्तदर्शी, विश्व के रूपों को प्रकट करते हुए सूर्यदेव ऊर्ध्वगामी होकर द्युलोक में विराजमान होते हैं। अग्निदेव भी उनकी प्रखर तेजस्विता से प्रकाशवान् होते हैं। वे तीसरे लोक (द्युलोक) में रहते हुए भी मनुष्यों के प्रिय कार्यों को करते हैं ॥११ ॥

३६१५. सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२ ॥

(ज्वालारूपी) हजारों शृंगों से युक्त, अभीष्टवर्षक, घृताहुतियों द्वारा आहुत, सोम को पृष्ठभाग पर धारण करने वाले, श्रेष्ठ वीर सन्तानों को प्रदान करने वाले, सर्वज्ञ अग्निदेव कभी हमारा परित्याग न करें । हम भी कभी आपका आश्रय न छोड़ें । हे अग्ने ! आप हमें गाय आदि पशुओं के संरक्षण और वीर सन्तति के पालन में समर्थ बनाएँ ॥१२

३६१६. रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥१३ ॥

सूर्यदेव यज्ञ के उत्पादनकर्त्ता और मुखरूप हैं । हम वाणी, कान और मन तीनों के सहयोग से सूर्य के लिए आहुति प्रदान करते हैं । सभी देवगण हार्दिक प्रसन्नता के साथ सूर्य को प्राप्त करते हैं । वे हमें सभा-समितियों द्वारा मानवीय प्रगति के शिखर पर चढ़ाएँ ॥१३ ॥

३६१७. रोहितो यज्ञं व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥१४ ॥

सूर्यदेव ने सम्पूर्ण विश्व के सत्कर्मों के लिए यज्ञीय विज्ञान का पोषण किया । उसी यज्ञीय भावना से ये सभी तेजस्वी गुण हमारे समीप आ रहे हैं । इस सम्पूर्ण विश्व के मध्य, महत्त्व की दृष्टि से यही आप (सूर्यदेव) का प्रमुख भाग है, ऐसा हमारा कथन है ॥१४ ॥

३६१८. आ त्वा रुरोह बृहत्यू३त पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥१५ ॥

हे सर्वज्ञ (जातवेदा) अग्निदेव ! बृहती, पंक्ति, ककुप् तथा उष्णिक् आदि सभी छन्द अपनी तेजस्विता सहित आप में प्रविष्ट हुए हैं । वषट्कार भी आपमें प्रविष्ट हुआ है । सूर्यदेव भी अपने तेज के साथ आपमें ही प्रविष्ट होते हैं ॥१५ ॥

३६१९. अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥१६ ॥

ये सूर्यदेव पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के भीतर विद्यमान हैं । ये (अग्नि) सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक (सूर्य) के शीर्षस्थल स्वर्गलोक में संव्याप्त होते हैं ॥१६ ॥

३६२०. वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥१७ ॥

हे वाचस्पते (वाणी के अधिपति) ! हमारे लिए भूमि, योनि गृह, शय्या आदि सभी पदार्थ सुखदायक हों । जीवन तत्त्व प्राण हमारे साथ मैत्री भावना करते हुए इसी लोक में दीर्घकाल तक रहें । हे परमात्मन् ! ये अग्निदेव हमें दीर्घायु और तेजस्विता के साथ उपलब्ध हों ॥१७ ॥

३६२१. वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः । इहैव प्राणः
सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥१८ ॥

हे वाचस्पतिदेव ! जो हमारे सम्पूर्ण कर्मों को साधने वाली पाँच ऋतुएँ उत्पन्न हुई हैं, हमारे प्राण उनमें सहयोग भावना रखते हुए यहीं स्थित रहें । हे प्रजापते ! ऐसे आपको सूर्यदेव आयु और तेज के साथ धारण करें ॥१८ ॥

३६२२. वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधाम ॥१९ ॥

हे वाचस्पति देव ! हम सभी के मन शुभ संकल्पों से युक्त हों, आप हमारी गोशाला में प्रचुर गौओं एवं घर में वीर संतानों को पैदा करें । प्राण हमारे साथ मैत्री भावना रखते हुए इसी लोक में रहें । हे प्रजापते ! ऐसे आपको हम दीर्घायु और तेजस्विता के साथ धारण करते हैं ॥१९ ॥

३६२३. परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥२० ॥

हे राष्ट्राधिपते ! सर्वप्रेरक सवितादेव आपको चारों ओर से परिपुष्ट करें । अग्नि, मित्र तथा वरुणदेव आपको चारों ओर से संरक्षित करें । आप सभी राष्ट्रद्रोही शत्रुओं पर चढ़ाई करते हुए आगे बढ़ें तथा इस राष्ट्र को प्रिय और सत्यवाणी से युक्त करें ॥२० ॥

३६२४. यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥२१ ॥

हे सूर्यदेव ! आपको विविध रंगवाली घोड़ियाँ (किरणें) रथ में धारण करती हैं । आप पानी को गतिमान् करते हुए प्रकाश के साथ श्रेष्ठ रीति से चलते हैं ॥२१ ॥

३६२५. अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२२ ॥

सबके उत्पादनकर्त्ता रोहित (सूर्य) की आज्ञानुसार चलने वाली उत्पत्ति शक्ति (प्रकृति) सूक्ष्म ज्ञानयुक्त और उत्तम वर्ण वाली, प्रचुर अन्नयुक्त (तेजस्विनी) रोहिणी है । उस (रोहिणी) के द्वारा हम सभी अन्न या बल पर विजय प्राप्त करें । उससे ही हम सभी सेनाओं (बाधाओं) को वश में करें ॥२२ ।

३६२६. इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३ ॥

सूर्य ही इस विलक्षण शक्ति (रोहिणी) का स्रोत है । यही वह मार्ग है, जिससे उसकी विविध वर्णों से युक्त किरणों की शक्ति गमन करती है । गन्धर्व और कश्यप उसे उन्नत करते हैं । ज्ञानवान् लोग विशिष्ट कौशल के साथ उसे संरक्षण देते हैं ॥२३ ॥

३६२७. सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४ ॥

प्रकाशमान, गतिशील और अमर अश्व (किरणें) सूर्य के रथ को चलाते हैं । इन पुष्टिप्रद किरणों से युक्त तेजस्वी सूर्यदेव विविध वर्णयुक्त प्रभा के साथ द्युलोक में प्रविष्ट होते हैं ॥२४ ॥

३६२८. यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥२५ ॥

जो रोहितदेव तेजस्वी किरणों से युक्त अभीष्टवर्षक हैं, वे अग्नि और सूर्य के चारों ओर स्थित हैं । जो पृथ्वी और द्युलोक को स्थिरता प्रदान करते हैं, उनसे ही देवों ने सृष्टि की उत्पत्ति की है ॥२५ ॥

३६२९. रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात्। सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥२६ ॥

सूर्यदेव विशालसागर से द्युलोक के ऊपर चढ़ते हैं।ये ऊपर उठने वाली वस्तुओं पर आरोहण करते हैं।

३६३०. वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥२७ ॥

उत्तम दूध और घृत देने वाली देवों की गौओं का मान (पालन) करें। देवों की गौएँ हलचल नहीं करतीं। इन्द्रदेव सोमरस का पान करें, अग्निदेव कल्याण करें, (देवों की) स्तुति करें और शत्रुओं को खदेड़ दें ॥२७ ॥

३६३१. समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥२८ ॥

प्रज्वलित हुए अग्निदेव घृताहुतियों से भली प्रकार प्रवृद्ध हुए हैं। वे सभी ओर से शत्रुओं को दूर करके विजय प्राप्त करने वाले अग्निदेव हमारे सभी शत्रुओं को विनष्ट करें ॥२८ ॥

३६३२. हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥२९ ॥

इन सभी वैरियों को अग्निदेव भस्म कर डालें। जो शत्रु सैन्यशक्ति के साथ हमारे संहार के आकांक्षी हैं, क्रव्याद् (मांसभक्षक) अग्नि द्वारा हम उन शत्रुओं को भस्म करते हैं ॥२९ ॥

३६३३. अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान्।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३० ॥

हे बाहुबल सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप वज्र से हमारे शत्रुओं को नीचे झुकाकर (पराभूत करके) विनष्ट करें। हे अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी लपटों से हमारे शत्रुओं को भस्मीभूत करें ॥३० ॥

३६३४. अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे समक्ष शत्रुओं को पददलित करें, ऊपर को उठने वाले समान जातीय शत्रु को पीड़ित करें। हे इन्द्राग्नि, मित्रावरुण देवो ! जो शत्रु हमारे प्रतिकूल होकर क्रोध करें, वे पददलित हों ॥३१ ॥

३६३५. उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥३२ ॥

हे सूर्यदेव ! उदित होते हुए आप हमारे शत्रुओं (हमारे विकास में अवरोधक तत्त्वों) का संहार करें। इन्हें अपनी विनाशकारी शक्ति से विनष्ट करके, मृत्यु के घने अंधकार में फेंक दें ॥३२ ॥

३६३६. वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम्।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३ ॥

विराट् वत्स (बाल सूर्य) सद्बुद्धि के संवर्द्धक, सामर्थ्यशाली पृष्ठिभूमि वाले होकर अंतरिक्ष पर चढ़ते हैं। वे स्वयं ब्रह्म के स्वरूप हैं, साधक उन्हें ब्रह्म (मंत्रों-यज्ञों) द्वारा समृद्ध करते हैं ॥३३ ॥

३६३७. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥३४ ॥

हे राष्ट्राध्यक्ष ! आप स्वर्ग, पृथ्वी, राष्ट्र, धन, प्रजा और अमरत्व पर अधिष्ठित रहें। सूर्य प्रकाश से अपने शारीरिक सम्बन्ध को संयुक्त करें ॥३४ ॥

३६३८. ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्। तैष्टे रोहितः
संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥३५ ॥

राष्ट्र का भरण-पोषण करने वाली जो देवशक्तियाँ सूर्य के चारों ओर घूमती हैं, उनके साथ मतैक्य स्थापित करके रोहितदेव प्रसन्नतापूर्वक आपके राष्ट्र को धारण करें ॥३५ ॥

३६३९. उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा
वहन्ति। तिरः समुद्रमति रोचसे ऽर्णवम् ॥३६ ॥

हे सूर्यदेव ! मन्त्रों द्वारा पुनीत हुए यज्ञकृत्य आपका वहन करते हैं और सुमार्ग से गमन करने वाले अश्व भी आपका वहन करते हैं। आप अपनी किरणो से महासागर को प्रकाशवान् करते हैं ॥॥३६ ॥

३६४०. रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७ ॥

धन, गौओं और ऐश्वर्य सम्पदा को उपलब्ध कराने वाले सूर्यदेव के अवलम्बन से द्युलोक और पृथ्वी स्थिर हैं, जिनसे सहस्र (हजारों) धाराओं (में प्रकाश) और सात (वर्ण या प्राण) जन्म लेते हैं। ऐसे आप ही संसार की महानता के केन्द्र हैं, ऐसी हमारी मान्यता है ॥३७ ॥

३६४१. यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम्।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥३८ ॥

आप दिशाओं और उपदिशाओं में यशस्वी होकर गमन करते हैं, पशु और मनुष्यों में यशस्वी होकर जाते हैं। हम भी अखण्डनीया भूमि की गोद में यशस्वी होकर सवितादेव के समान सुन्दर बनें ॥३८ ॥

३६४२. अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि। इतः
पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९ ॥

आप वहाँ (द्युलोक में) वास करते हुए भी यहाँ के तथा इस लोक में रहते हुए वहाँ के सभी रहस्यों का दर्शन करते हैं। प्राणी भी यहाँ से द्युलोक में प्रकाशमान, ज्ञानसम्पन्न सूर्यदेव का दर्शन करते हैं ॥३९ ॥

३६४३. देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥४० ॥

आप स्वयं देव (प्रकाशक) होते हुए भी देवशक्तियों को क्रियाशील करते हैं और अन्तरिक्षलोक में विचरण करते हैं। जो समान तेजस्वी अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, वे क्रान्तदर्शी विद्वान् इसके सम्बंध में जानते हैं ॥४० ॥

३६४४. अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१ ॥

गौएँ (पोषक किरणें) द्युलोक से नीचे की ओर तथा इस (पृथ्वी) से ऊपर की ओर (सतत) गतिमान् हैं। ये बछड़े (जीवनतत्त्व) को धारण किये हुए किस लक्ष्य की ओर जाते हैं ? ये गौएँ किस आधे भाग से परे निकल कर जन्म देती हैं ? यहाँ समूह के मध्य तो नहीं देतीं ॥४१ ॥

[पदार्थ विज्ञान की नवीनतम शोधों के अनुसार सूक्ष्म किरणों के प्रवाह पृथ्वी से आकाश की ओर तथा आकाश से पृथ्वी की ओर सतत गतिशील हैं । ये प्रवाह पृथ्वी के किसी भी अर्धभाग (हैमिस्फियर) को छूते हुए निकल जाते हैं । यह प्रभाव कब-कहाँ जीवन तत्त्व को प्रकट कर देते हैं ? किसी को पता नहीं है ।]

३६४५. एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२ ॥

वह सूर्य रश्मि एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टपदी और नवपदी हो जाती है । वह जगत् की पंक्तिरूप है, जो सघन जलवाली होकर मेघों को क्षरित करती है ॥४२ ॥

३६४६. आरोहन् द्यामममृतः प्राव मे वचः । उत् त्वा यज्ञा
ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥४३ ॥

अमृतरूप हे सूर्यदेव ! आप द्युलोक पर चढ़ते हुए हमारी वाणी का संरक्षण करें । मन्त्रों से पुनीत यज्ञ आपका वहन करते हैं तथा मार्गस्थ (अश्व) किरणें सम्पूर्ण विश्व में आपको विस्तारित करती हैं ॥४३ ॥

३६४७. वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि । यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥४४ ॥

हे अविनाशीदेव ! आपके द्युलोक में विचरण स्थान और परम व्योम में जो निवास के स्थान हैं, उन्हें हम अच्छी तरह जानते हैं ॥४४ ॥

३६४८. सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५ ॥

सूर्यदेव दिव्यलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल आदि को विशेषरूप से देखते हैं । सूर्य ही सम्पूर्ण विश्व (प्राणिमात्र) के अद्वितीय नेत्र हैं । वे विशाल द्युलोक में आरोहण करते हैं ॥४५ ॥

[नेत्र, प्रकाश अथवा प्रकाश के परावर्तन (रिफ्लैक्शन) को ही देखते हैं । सूर्यदेव प्रकाश के अद्वितीय स्रोत हैं, इसीलिए उन्हें अद्वितीय नेत्र कहा गया है ।]

३६४९.उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत । तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ।

(सृष्टिरूपी यज्ञ कर्म के समय) पृथ्वी की वेदिका बनाई गई । इसकी उर्वियाँ परिधि बन गईं । तब सूर्यदेव ने हिम और दिन (शीतकाल और उष्णकाल) ये दो अग्नियाँ इस यज्ञ में प्रयुक्त कीं ॥४६ ॥

३६५०.हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् । वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः

सूर्य के उत्तम सुखों को पाने के अभिलाषी, साधक हिम और दिन (शीत और उष्ण ऋतुओं) का आधान करके तथा पहाड़ों को स्तम्भ (यूप) बनाकर वर्षारूप घृत से अग्नि की अर्चना करते थे ॥४७ ॥

३६५१. स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते । तस्माद्
घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञो ऽजायत ॥४८ ॥

आत्मज्ञान की प्राप्ति में सहायक सूर्यदेव के मन्त्र से यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया जाता है । उससे हिम (शीत) दिवस, उष्णता और यज्ञ का प्राकट्य हुआ है ॥४८ ॥

३६५२.ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः।

ब्रह्म (ज्ञान) से बढ़ने वाले, ब्रह्म (मन्त्रों) से प्रदीप्त होने वाले, ब्रह्म (यज्ञ) में आहुति पाने वाले, ये दो ब्रह्म और अग्नि हैं । स्वर्ग के जानकार इन सूर्यदेव के तेज से ये दोनों ब्रह्म और अग्नि प्रदीप्त हैं ॥४९ ॥

३६५३. सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्व१न्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५० ॥

एक अग्नि सत्य में प्रतिष्ठित है और दूसरी अप् प्रवाहों में प्रदीप्त होती है । स्वर्ग के ज्ञाता सूर्यदेव के तेज से ये दोनों अग्नियाँ प्रदीप्त होती हैं ॥५० ॥

३६५४. यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५१ ॥

जिन्हें वायु, इन्द्र और ब्रह्मणस्पति आदि देवगण सुशोभित करने के अभिलाषी हैं, ऐसे सूर्यदेव के तेज से ये दोनों अग्नियाँ प्रज्वलित होती हैं ॥५१ ॥

३६५५. वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥५२ ॥

भूमि को वेदिका बनाकर, द्युलोक को दक्षिणारूप देकर और दिवस को ही अग्नि मानकर सूर्यदेव ने वृष्टिरूप घी से सम्पूर्ण विश्व को आत्मवान् (अस्तित्ववान्) बना दिया है ॥५२ ॥

३६५६. वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥५३ ॥

वर्षा ऋतु को घृत, दिन को अग्नि और भूमि को वेदिकारूप बनाया गया । वहाँ स्तुति-वचनों से सम्पन्न अग्नि द्वारा, इन पर्वत शिखरों को ऊँचा (उन्नत) किया गया ॥५३ ॥

३६५७. गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥५४ ॥

स्तुति वचनों से पर्वतों को उन्नत बनाकर सूर्यदेव ने भूमि से कहा कि जो भूत और भविष्यत्काल में सम्भावित है, वह सभी आपमें प्रकट हो ॥५४ ॥

३६५८. स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत । तस्माद्ध जज्ञ इदं
सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥५५ ॥

यह यज्ञ सर्वप्रथम भूत और भविष्यत् के रूप में उत्पन्न हुआ, उससे वह सब कुछ प्रकट हुआ, जो विराजित (प्रकाशमान) है, इसे द्रष्टा ऋषि रोहित (सूर्य) ने ही परिपुष्ट किया है ॥५५ ॥

३६५९. यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५६ ॥

जो पैर से गाय का स्पर्श करता है और सूर्य की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करता है, मैं उसे समूल विनष्ट करता हूँ । मैं उसके ऊपर छाया (कृपा) भी नहीं करता ॥५६ ॥

३६६०. यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५७ ॥

जो मुझे छाया में रखने (ढकने) का प्रयास करेगा, मेरा अतिक्रमण करेगा और जो मेरे (सूर्य के) और अग्नि के बीच में अवरोध बनेगा, उसे मैं समूल विनष्ट कर दूँगा ॥५७ ॥

३६६१. यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥५८ ॥

हे सूर्यदेव ! जो हमारे (अग्नि के) और आपके मध्य इस समय विघ्न पैदा करने के इच्छुक हैं, हम उनमें बुरे स्वप्न, दुष्ट कल्पनाओं और पापकर्मों को प्रविष्ट करते हैं ॥५८ ॥

३६६२. मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥५९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अपने श्रेष्ठ मार्ग का कभी परित्याग न करें। हम सोमयाग से कभी दूर न हों। शत्रु हमारे देश की सीमा में न रहें ॥५९ ॥

३६६३. यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतमशीमहि ॥६० ॥

जो यज्ञ सभी देवों में देवत्व के लक्षणरूप में विस्तारित हुआ है, उस यज्ञ का हम सेवन करें ॥६० ॥

[२ - अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि**- ब्रह्मा। **देवता**- रोहितादित्य, अध्यात्म। **छन्द**- त्रिष्टुप्, १,१२-१५, ३९-४१ अनुष्टुप्,२-३,८, ४३ जगती, १० आस्तार पंक्ति, ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, १६-२४ आर्षी गायत्री, २५ ककुम्मती आस्तार पंक्ति, २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिक् जगती, २७ विराट् जगती, २९ बार्हतगर्भा अनुष्टुप्, ३० पञ्चपदा उष्णिक् बृहतीगर्भा अतिजगती, ३४ आर्षी पंक्ति, ३७ पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती, ४४ चतुष्पदा पुरःशाक्वरा भुरिक् जगती, ४५ अतिजागतगर्भा जगती।]

३६६४. उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥१ ॥

सेचन समर्थ सूर्यदेव महान् व्रतशील और मनुष्यों के निरीक्षक हैं, जिनकी किरणें आकाश में उदित होने पर शुद्ध तेजस्वी प्रकाश से चमकती हैं ॥१ ॥

३६६५. दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥२ ॥

अपनी दीप्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, सागर में श्रेष्ठ रश्मियों के साथ विचरने वाले तथा अपनी किरणों से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले उन त्रिभुवन के संरक्षक सूर्यदेव की हम स्तुति करते हैं ॥२ ॥

३६६६. यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३ ॥

हे आदित्यदेव ! आप पूर्व और पश्चिम दिशा में अपनी धारकक्षमता के साथ शीघ्रतापूर्वक गमन करते हैं, अपनी विलक्षण शक्ति से विभिन्नरूप वाले रात्रि और दिन बनाते हैं। आप संसार में सबसे महान् और अद्वितीय प्रभाव से युक्त हैं ॥३ ॥

३६६७. विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः।
स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥४ ॥

सात तेजस्वी किरणें भवसागर से पार करने वाले जिन ज्ञानी सूर्यदेव को वहन करती हैं, जिन्हें अत्रि (त्रिगुणातीत) प्रवाहों से उठाकर द्युलोक पहुँचाया गया है; ऐसे आपको हम चारों ओर घूमते हुए देखते हैं ॥४ ॥

३६६८. मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम्।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥५ ॥

हे सूर्यदेव ! आप द्युलोक और पृथ्वी पर दिन और रात्रि की रचना करते हुए विचरण करते हैं , ऐसे आपको शत्रु न दबा पाएँ । आप शीघ्रतापूर्वक सुख के साथ दुर्गम स्थलों को पार करें ॥५ । ।

३६६९. स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप जिससे दोनों सीमाओं तक शीघ्र ही पहुँच जाते हैं, उस मंगलकारी रथ का कल्याण हो, जिसे सात किरणें अथवा विचरणशील सौ अश्वरूप किरणें चलाती हैं ॥६ ॥

३६७०. सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७ ॥

हे सूर्यदेव ! आप तेजस्वी, सुखदायी सुन्दर अग्नि के समान देदीप्यमान, गतिशील श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हों । आपके उस रथ का सात या अनेक हरित अश्व गंतव्य स्थल की ओर वहन करते हैं ॥७ ॥

३६७१. सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८ ॥

स्वर्णिम त्वचा वाले सूर्यदेव व्यापक प्रकाशयुक्त सात किरणरूपी हरित अश्वों के साथ अपने रथ में विराजमान होते हैं । पावन प्रकाश से युक्त सूर्यदेव अन्धकार को दूर हटाकर रजोगुण से परे दिव्यलोक में स्वयं प्रविष्ट हुए ॥८

३६७२. उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत्।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥९ ॥

उदित होने वाले महान् ध्वजा (प्रकाश) के साथ सूर्यदेव आ रहे हैं, वे अन्धकार को दूर भगाकर तेजस्विता का आश्रय ले रहे हैं ।उस दिव्य प्रकाश से युक्त अदिति के वीरपुत्र(सूर्य) ने सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया ॥९ ॥

३६७३. उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१० ॥

हे सूर्यदेव ! आप उदित होते समय अपनी रश्मियों को फैलाते हैं और सभी पदार्थों के रूप (आकार) को परिपुष्ट करते हैं । आप देदीप्यमान होकर अपने यज्ञीय प्रभाव से दोनों समुद्रों और सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करते हैं ॥१० ॥

३६७४. पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥११ ॥

ये दोनों शिशुरूप सूर्य और चन्द्रमा क्रीड़ा करते हुए अपनी शक्ति से समुद्र तक भ्रमण करते हुए जाते हैं इनमें एक सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करता है और दूसरे को अश्व अपनी स्वर्णिम किरणों से वहन करते हैं ॥११ ॥

३६७५. दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२ ॥

हे सूर्यदेव ! अत्रि ने आपको मास समूह के निर्माण हेतु द्युलोक में स्थापित किया है । आप तापयुक्त होकर सभी प्राणियों को प्रकाशित करते हुए स्वयं सुस्थिर होकर चलते हैं ॥१२ ॥

३६७६.उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव । नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ।

जैसे बालक माता-पिता के समीप जाता है, वैसे ही आप दोनों समुद्रों (उदय और अस्त दोनों भागों) को प्राप्त होते हैं । ये देव निश्चित ही यह समझते हैं कि सभी शाश्वत ब्रह्म है ॥१३ ॥

३६७७. यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः । अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः

जो मार्ग समुद्र के आश्रय से युक्त है, सूर्यदेव उन्हें प्राप्त करने के इच्छुक हैं । इनके पूर्व और पश्चिम के मार्ग महिमामय और विस्तृत हैं ॥१४ ॥

३६७८.तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नापचिकित्सति । तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते

हे सूर्यदेव ! उस मार्ग को आप शीघ्रगामी अश्वों (किरणों) से पूर्ण करते हैं, आप उससे सतर्क रहते हुए देवों का अमृतसेवन नहीं रोकते ॥१५ ॥

३६७९. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६ ॥

रश्मियाँ जातवेदा सूर्यदेव को, समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए उच्च स्थान में ले जाती हैं ॥१६ ॥

३६८०. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१७ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के साथ नक्षत्र (तारागण) वैसे ही छिप जाते हैं , जैसे दिवस का प्रादुर्भाव होते ही चोर छिप जाते हैं ॥१७ ॥

३६८१. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८ ॥

सूर्यदेव की रश्मियाँ जीव-जगत् को प्रकाशित करती हुई अग्नि की किरणों के समान दृष्टिगोचर होती हैं ॥१८

३६८२. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१९ ॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले, सबके द्रष्टा और प्रकाश प्रदाता हैं । सम्पूर्ण विश्व को आप ही प्रकाशित करते हैं ॥१९ ॥

३६८३. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्व दृशे ॥२० ॥

हे सूर्यदेव ! आप सभी देवताओं और मनुष्यों के सामने उदित होते हैं, जिससे सभी को आपका दर्शन एवं प्रकाश मिलता है ॥२० ॥

३६८४. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥२१ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले हे देव ! जिस दृष्टि से आप भरण-पोषण करने वाले लोगों को देखते हैं, उसी से हमें भी देखें ॥२१ ॥

३६८५. वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥२२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप जीवों पर अनुग्रह करने हेतु दिन और रात्रि की रचना करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में परिभ्रमण करते हैं ॥२२ ॥

३६८६. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२३ ॥

हे सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ! तेजस्वी सप्तवर्णी किरणरूपी अश्व रथ में आपको ले जाते हैं ॥२३ ॥

३६८७. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२४ ॥

ज्ञानसम्पन्न ऊर्ध्वगामी सूर्यदेव पवित्रता प्रदायक अपने सप्तवर्णी अश्वों (किरणों) से सुशोभित रथ में अपनी युक्तियों से गमन करते हैं ॥२४ ॥

३६८८. रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥२५ ॥

अपनी तपश्चर्या रूप तेजस् से तेजस्वी सूर्यदेव द्युलोक पर आरोहण करते हैं, वे योनि (मूलस्थान) में पहुँचकर पुनः उत्पन्न होते हैं, वे ही सभी देवों के अधिपति बने ॥२५ ॥

३६८९. यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६ ॥

जो प्राणियों के द्रष्टा, अनेक मुखों से युक्त, चारों ओर हाथों और भुजाओं से विस्तृत हैं, वे अद्वितीय सूर्य अपनी पतनशील किरणों से द्युलोक और पृथ्वी को उत्पन्न करते हुए अपनी भुजाओं से सबका पोषण करते हैं ॥२६

३६९०. एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते ॥२७ ॥

एक पाद द्विपादों से अधिक चलता है, फिर द्विपाद त्रिपादों के साथ मिलता है । द्विपाद निश्चय ही षट्पदों से भी अधिक चलता है । वे एक पाद के शरीर का आश्रय ग्रहण करते हैं ॥२७ ॥

[गोपथ ब्रा० (१.२) में वायु को और परमात्मा को एक पाद कहा है, उनका पाद आकाश है । चन्द्र को द्विपाद् (दो पक्षों वाला) तथा सूर्य को त्रिपाद (तीन लोकों वाला) कहा गया है । चन्द्रमा नक्षत्रों में गति करता हुआ सूर्य को भी पीछे से पकड़ लेता है । अग्नि छह पाद, मनुष्य द्विपाद वाला है । ये सभी एक पादवाले परमात्मा अथवा दिव्य प्राण का आश्रय लेते हैं ।]

३६९१. अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥२८ ॥

आलस्यरहित सूर्यदेव गमन करने के लिए जब अश्वारूढ़ होते हैं, उस समय वे अपने दो स्वरूप निर्मित करते हैं । हे आदित्यदेव ! उदित होते हुए प्रकाशरूप ध्वजा वाले आप सभी लोकों को जीतते हुए (वशीभूत करते हुए) प्रकाशित होते हैं ॥२८ ॥

३६९२. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥२९ ॥

हे सूर्यदेव ! आपकी महिमा महान् है, यही सत्य है । हे आदित्यदेव ! आप महान् की महिमामय ख्याति भी महानता युक्त है ॥२९ ॥

३६९३. रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अपस्व१न्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥३० ॥

हे सूर्यदेव ! आप द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल के भीतर प्रकाशित होते हैं । आप अपने तेजस् से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हैं । हे देव ! आप स्वर्गलोक के विजेता महासामर्थ्य से सम्पन्न हैं ॥३० ॥

३६९४. अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१ ॥

ज्ञानसम्पन्न सूर्यदेव दक्षिणायन की ओर जाते हुए शीघ्रता से मार्ग को पार करते हैं। ये सूर्यदेव विशिष्ट ज्ञानी और व्यापक हैं। वे अपनी सामर्थ्य से अधिष्ठित होते हुए, अपने सम्पूर्ण गतिमान् विश्व को धारण करते हैं ॥३१ ॥

३६९५. चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम्।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२ ॥

अद्‌भुत ज्ञानसम्पन्न, समर्थ और श्रेष्ठ गतिशील सूर्यदेव अन्तरिक्ष, पृथ्वी और द्युलोक को प्रकाशित करते हैं। वे सूर्यदेव दिन और रात्रि का निर्माण करके सबमें पराक्रमी सामर्थ्य विस्तारित करते हैं ॥३२ ॥

३६९६. तिग्मो विभ्राजन् तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥३३ ॥

ये तेजस्वी और तीक्ष्ण सूर्यदेव पर्याप्त गतियुक्त, उच्चस्थान पर विराजमान होने वाले पक्षी के समान आकाश में संचरित होते हुए, शक्तिमान् और अन्न के पोषणकर्त्ता, सभी दिशाओं को तेजस् प्रदान करते हैं ॥३३ ॥

३६९७. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४ ॥

देवों के ध्वजरूप, अद्‌भुत, मूल आधाररूप तेजस्वी सूर्यदेव दिशाओं में उदित होकर अपने तेजस् से सम्पूर्ण अन्धकार को दूर करते हैं और अपने प्रकाश से दिन का निर्माण करते हैं ॥३४ ॥

३६९८. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५ ॥

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मा- सूर्यदेव दैवी शक्तियों के अद्‌भुत तेजस् के समूह के रूप में उदित हो गये हैं। मित्र, वरुण आदि के चक्षुरूप इन सूर्यदेव ने उदित होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेजस् से भर दिया है ॥३५ ॥

३६९९. उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्त्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥३६ ॥

जिसे ऊँचे स्थान से गमन करने वाले पक्षी के समान अन्तरिक्ष में तेजस्वी होकर तैरने वाला और विशिष्ट ज्योतिस्वरूप कहा गया है, जिसे आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक दु:खों से रहित स्वीकार करते हैं, उन सविता देव को हम सदैव देखें ॥३६ ॥

३७००. दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥३७ ॥

अन्तरिक्षलोक में पक्षी के समान द्रुतगामी अदिति के पुत्र सूर्यदेव की शरण में भयभीत होकर जाते हैं। हे सूर्यदेव ! आप हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें, हम कभी हिंसित न हों और आपकी श्रेष्ठ बुद्धि में रमण करें ॥३७ ॥

३७०१. सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यंन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८ ॥

इस स्वर्गलोक को जाते हुए हरणशील हंस जैसे गतिशील, पापनाशक सूर्यदेव के दोनों दक्षिणायन और उत्तरायणरूप पक्ष हजारों दिन तक अनुशासित रहते हैं। वे सभी देवों को अपने में समाहित करके सभी लोकों के प्राणियों को देखते हुए जाते हैं ॥३८ ॥

३७०२. रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्व१राभरत् ॥३९ ॥

सूर्यदेव ही काल गणना के निर्धारक हुए, आगे वे ही प्रजापालक बने और वे ही यज्ञीय सत्कर्मों में प्रमुख होकर प्रकाशरूप स्वर्गीय सुख प्रदान करते हैं ॥३९ ॥

[समय की गणना का आधार सूर्य के सापेक्ष पृथ्वी की गति ही है, इस आधार पर सूर्यदेव ही काल गणना के निर्धारक कहे गये हैं। सूर्य-निःसृत ऊर्जा से प्राणियों का पालन होता है तथा उसी से यज्ञीय चक्र चलता है, यह भी सत्य है।]

३७०३. रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम्।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥४० ॥

सूर्यदेव ही सब लोकों के निर्माता होकर द्युलोक को प्रकाशित करने लगे। वही अपनी किरणों से भूमि और समुद्र में संचार करते हैं ॥४० ॥

३७०४. सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं विरक्षति ॥४१ ॥

द्युलोक स्वर्ग के स्वामी सूर्य सभी दिशाओं में संचार करके द्युलोक से समुद्र में विचरण करते हैं। वही सभी प्राणियों और पृथ्वी का संरक्षण करते हैं ॥४१ ॥

३७०५. आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥४२ ॥

ये आलस्य- प्रमाद से विरत बलशाली तेजस्वी सूर्यदेव, विस्तृत दिशाओं में आरूढ़ होकर अपने दो रूपों की रचना करते हैं। अद्भुत, ज्ञानसम्पन्न और सामर्थ्ययुक्त गतिशीलता को प्राप्त करते हैं तथा जितने भी लोक विद्यमान हैं, उन सभी को वे प्रकाशमान करते हैं ॥४२ ॥

३७०६. अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३ ॥

दिन और रात्रि से महिमायुक्त होते हुए ये सूर्यदेव एक भाग से सामने आते हैं और दूसरे भाग से गति करते रहते हैं। हम अन्तरिक्षलोक में विराजमान सूर्यदेव की स्तुति करते हैं, भयाक्रान्त हम सभी को वे श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान करें ॥४३ ॥

३७०७. पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४ ॥

पृथ्वी के पालनकर्त्ता, महिमायुक्त, दुःखी मनुष्य के पथप्रदर्शक, दृष्टियुक्त सूर्यदेव विश्व के चारों ओर संव्याप्त हैं। विश्व के द्रष्टा, कल्याणकारी, ज्ञानशक्ति से सम्पन्न और पूजन योग्य सूर्यदेव हमारा निवेदन सुनें ॥४४ ॥

३७०८. पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम्।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४५ ॥

उनकी ख्याति सर्वत्र संव्याप्त है, ये अपनी आभा से पृथ्वी, समुद्र, द्युलोक और अन्तरिक्ष सब में विस्तृत हैं। सभी कर्मों के द्रष्टा, मंगलमयी ज्ञानशक्ति से युक्त और पूजनीय सूर्यदेव हमारे निवेदन को ध्यानपूर्वक सुनें ॥४५ ॥

३७०९. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६ ॥

उषःकाल के आगमन के समय जिस प्रकार गौओं को जगाया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों की समिधाओं से यज्ञाग्नि भी प्रदीप्त होती है। तब उस अग्नि की ऊपर उठने वाली विशाल ज्वालाएँ उसी प्रकार सीधी स्वर्गधाम जाती हैं, जिस प्रकार वृक्षों की शाखाएँ आकाश की ओर जाती हैं ॥४६ ॥

[३ अध्यात्म - सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा। **देवता-** अध्यात्म, रोहितादित्य। **छन्द-** चतुरवसाना अष्टपदा आकृति, २ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिगष्टि, ३ त्र्यवसाना षट्पदाष्टि, ४ त्र्यवसाना षट्पदा अतिशाक्वरगर्भा धृति, ५-६ शाक्वरातिशाक्वरगर्भा सप्तपदा चतुरवसाना प्रकृति, ७ चतुरवसाना सप्तपदा अनुष्टुब्गर्भातिधृति, ८, २०, २२ त्र्यवसाना षट्पदात्यष्टि, ९-१२ चतुरवसाना सप्तपदा भुरिक् अतिधृति, १३-१४ चतुरवसाना अष्टपदा कृति, १५ चतुरवसाना सप्तपदा निचृत् अतिधृति, १७, २४ चतुरवसाना सप्तपदा कृति, १९ चतुरवसाना अष्टपदा भुरिक् आकृति, २३, २५ चतुरवसाना अष्टपदा विकृति, २६ अनुष्टुप्।]

३७१०. य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१ ॥

जिन्होंने इस द्युलोक और पृथ्वी को प्रकट किया, जो सम्पूर्ण लोकों को आच्छादन बनाकर उनमें संव्याप्त हैं। जिनके अंदर छह दिशाएँ और उप दिशाएँ सूर्य से प्रकाशित होकर निवास करती हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उस (ब्रह्मघाती) को कम्पायमान करें, उसे क्षीण करें तथा बन्धन में डाल दें ॥१ ॥

३७११. यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२ ॥

जिस देव द्वारा वायुदेव ऋतुओं के अनुसार बहते हैं और जिससे समुद्र (जल प्रवाह) विविध ढंग से प्रवाहित होते हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को कम्पायमान करें, उसकी शक्ति को विनष्ट करें तथा उसे बंधनों में जकड़ें ॥२ ॥

३७१२. यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३ ॥

जिससे सभी मनुष्य प्राणशक्ति प्राप्त करते हैं, जिसकी क्षीणता से मृत्यु होती है तथा जिनकी सामर्थ्य से सभी प्राणी जीवन व्यापार (श्वास-प्रश्वास) चलाते हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह

उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन बनता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को भयभीत करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बंधनों में जकड़ें ॥३ ॥

३७१३. यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४ ॥

जो परमात्म सत्ता, प्राणशक्ति द्वारा द्युलोक और पृथ्वी को संतुष्ट करती और अपानशक्ति द्वारा समुद्र के उदर को भरती है । इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्महत्यारे) को भयभीत करें, उसकी शक्ति का क्षय करें तथा पाशों में जकड़ें ॥४ ॥

३७१४. यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः । यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ५ ॥

जिसमें विराट् परब्रह्म प्रजापति अग्नि और वैश्वानर पंक्ति के साथ आश्रित हैं, जिसने उत्तम प्राण और परम तेजस्विता को ग्रहण किया है । इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्महत्यारे) को भयभीत करें, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा पाशों से जकड़ डालें ॥५ ॥

३७१५. यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः । यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६ ॥

जिसमें छह उर्वियाँ तथा पाँच विस्तृत दिशाएँ, चार प्रकार के जल और यज्ञ के तीन अक्षर आश्रित हैं,जो अन्तर (अन्तःकरण) से उग्र होकर द्युलोक और भूलोक को देखते हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को कँपाएँ, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा पाशों में जकड़ें ॥६ ॥

३७१६. यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः । भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७ ॥

जो अन्न के संरक्षक, अन्नभक्षक और ब्रह्मणस्पति (ज्ञान के अधिपति) हैं , जो भूत और भविष्यत् जगत् के स्वामी हैं । इस मर्म के ज्ञाता -विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है , वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को भयभीत करें, उसकी सामर्थ्य का क्षय करें तथा बन्धनों में बाँधें ॥७ ।

३७१७. अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८ ॥

जिन्होंने दिन और रात्रि के तीस अंगों का एक महीना बनाया और जो वर्ष के तेरहवें (अधिक मास) का नेर्माण करते हैं । इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे कम्पायमान करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा पाशों से जकड़ें ॥८ ॥

३११८. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं
जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९ ॥

सूर्यदेव की श्रेष्ठ किरणें पृथ्वी से जल लेकर आकाश में जाती हैं, फिर वे किरणें जल के स्थान (मेघमण्डल) से बार-बार लौटती हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी क्षमता का ह्रास करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥९ ॥

३७१९. यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु । यस्मिन्त्सूर्या
आर्पिताः सप्त साकम् । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं
जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१० ॥

हे कश्यप ! आपके द्वारा संगृहीत आनन्ददायक, प्रकाशमान और अति विलक्षण तेजस् में सात सूर्य साथ-साथ रहते हैं । इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसे क्षीण करें तथा पाशों में बाँधें ॥१० ॥

३७२०. बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात् । ज्योतिर्वसाने
सदमप्रमादम् । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥११ ॥

बृहद्गान इसके समक्ष स्थित होते हैं और रथन्तरगान पृष्ठभाग से इसे ग्रहण करते हैं । ये दोनों प्रमाद त्यागकर सदैव ज्योतियों से आच्छादित रहते हैं । इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य क्षीण करें तथा पाशों में जकड़ डालें ॥११ ॥

३७२१. बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची । यद् रोहितमजनयन्त
देवाः । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् । ।१२ ॥

जब देवशक्तियों ने सूर्यदेव को प्रकट किया, तो बृहद्गान का एक पक्ष और रथन्तर गान का दूसरा पक्ष बना । ये दोनों बलशाली और साथ-साथ रहने वाले पक्ष हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसे सामर्थ्यहीन करें तथा बन्धनों में जकड़ डालें ॥१२ ॥

३७२२. स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१३ ॥

वही (पापनाशक) वरुणदेव सायंकाल के समय अग्नि होते हैं और प्रभात वेला में उदित होते हुए मित्र सूर्य होते हैं। वे अन्तरिक्ष के मध्य में सविता बनकर तथा द्युलोक के मध्य इन्द्र होकर तपते हैं। इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य का ह्रास करें तथा बन्धनों में जकड़ें ॥१३॥

३७२३. सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१४॥

स्वर्ग स्थान को गमन करते हुए गतिशील, पापनाशक सूर्यदेव के दोनों पक्ष हजारों दिन तक नियमित रूप से क्रियाशील रहते हैं। सभी देवों को अपने में धारण करके ये सभी प्राणियों को देखते हुए जाते हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥१४॥

३७२४. अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१५॥

जिसने इस सम्पूर्ण जगत् की रचना की, वे देव वही (सूर्य) हैं, जिसके हजारों मूल और शाखाएँ हैं, जो तीनों प्रकार के दुखों से रहित हैं और जल के भीतर विराजमान हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥१५॥

३७२५. शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१६॥

अपने वर्चस् (प्रभाव) से देदीप्यमान देव को द्रुतगति वाले अश्व (किरण समूह) द्युलोक में धारण करते हैं। उनके शरीर के ऊपरी भाग की किरणें दिव्यलोक को तपाती हैं तथा श्रेष्ठ वर्णयुक्त किरणें इस ओर (नीचे) पृथ्वी पर प्रकाशित होती हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा उसे बन्धनों से प्रताड़ित करें ॥१६॥

३७२६. येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः। यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१७॥

जिस देव की सामर्थ्य से सूर्य के किरणरूप अश्व उन्हें वहन करते हैं, जिनकी महिमा से विद्वान् मनुष्य यज्ञ क्रिया को सम्पन्न करते हैं तथा जो एक तेज से सम्पन्न होकर भी अनेक प्रकार से प्रकाशित होते हैं। इस मर्म के

ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे पाशों में जकड़ें ॥१७ ॥

३७२७. सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१८ ॥

एक चक्रवाले सूर्यरथ को सात शक्तियाँ जोतती हैं । सात नाम वाला एक ही अश्व इसे खींचता है । उसका तीन नाभियों (ऋतुओं या लोकों) वाला चक्र जरारहित और नाशरहित है । इसी (कालचक्र) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अवस्थित है । इस मर्म के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥१८ ॥

३७२८. अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१९ ॥

जो अग्निदेव देवशक्तियों के पालनकर्त्ता और विचारों के उत्पादक हैं, वे उग्र होकर आठ प्रकार से चलते हैं । वायुदेव यज्ञ के ताने- बाने को मन की गति से मापते हुए सम्पूर्ण दिशाओं को शुद्ध करते हैं । इस मर्म के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे ब्रह्मघाती को भयभीत करें, उसकी शक्ति का क्षय करें तथा उसे पाशों में जकड़ें ॥१९ ॥

३७२९. सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२० ॥

यज्ञ की भावना का यह सूत्र सभी दिशाओं में विस्तारित हो रहा है, यह गायत्रीरूपी अमृत के भीतर स्थित है । इस मर्म के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे ब्रह्मघाती को प्रकम्पित करें, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा उसे पाशों से बाँधें ॥२० ॥

३७३०. निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२१ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपके तीन प्रकार के जन्मों से अवगत हैं, देवशक्तियों के तीन जन्मों के विषय में भी हम जानते हैं । तीन अस्त और तीन उषः काल हैं । अन्तरिक्ष और द्युलोक के भी तीन भेद हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा पाशों में जकड़ें ॥२१ ॥

३७३१. वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२२ ॥

जो देव प्रादुर्भूत होकर पृथ्वी को आच्छादित करते हैं और अन्तरिक्ष में समुद्री जल को धारण करते हैं । इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सवितादेव ! आप ऐसे ब्रह्मघाती को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को निस्तेज करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥२२ ॥

३७३२. त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितो३र्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ज्ञानयज्ञों में प्रतिष्ठित किये जाते हैं, अच्छी प्रकार प्रज्वलित होकर द्युलोक में प्रकाशित होते हैं । जिस समय देवताओं ने सूर्यदेव को प्रकट किया, उस समय क्या भूमि को मातृवत् स्वीकार करने वाले मरुद्गणों ने आपका पूजन- वन्दन किया था ? इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे रोहितदेव ! आप उस ब्रह्मघाती को कम्पायमान करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा बन्धनों में जकड़ें ॥२३ ॥

३७३३. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यो३स्येशे
द्विपदो यश्चतुष्पदः । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं
जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२४ ॥

जो आत्मिकशक्ति के और शारीरिक सामर्थ्य के प्रदाता तथा सभी देवों के उपास्य हैं । जो दो पैर वाले (मनुष्य आदि) और चार पैर वाले (गौ- अश्वादि) प्राणियों के स्वामी हैं । इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी शक्ति को क्षीण करें तथा ब्रह्महत्या के अपराध स्वरूप पाशों में जकड़ें ॥२४ ॥

३७३४. एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२५ ॥

ये देव एक पाद होकर द्विपादों से अधिक चलते हैं, फिर द्विपाद, त्रिपादों के साथ सम्मिलित होते हैं । द्विपाद निश्चित ही षट्पादों से भी अधिक चलते हैं । वे सभी एक पद (ब्रह्म) के शरीर का आश्रय ग्रहण करते हैं । इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे ब्रह्मघाती को प्रकम्पित करें, क्षीण करें तथा बन्धन में जकड़ें ॥२५ ॥

३७३५. कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६ ॥

कृष्णवर्ण वाली रात्रि का पुत्र सूर्य उदित हुआ, वह उदित होते हुए द्युलोक पर चढ़ता है । वह रोहित (सूर्य) रोहणशील वस्तुओं के ऊपर आरोहण करता है ॥२६ ॥

[४ - अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** प्राजापत्या अनुष्टुप्, १२ विराट् गायत्री, १३ आसुरी उष्णिक् ।]

३७३६. स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१ ॥

ये सूर्यदेव द्युलोक के पृष्ठ भाग में प्रकाशित होते हुए आगमन करते हैं ॥१ ॥

३७३७. रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥२ ॥

इन्होंने अपनी किरणों से आकाश को परिपूर्ण किया । ये महान् इन्द्र (सूर्य) देव तेजस्विता से युक्त होकर चलते हैं ॥२ ॥

३७३८.स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।

वही धाता, विधाता और वायुदेव हैं, जिनने ऊँचे आकाश को बनाया है, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥३ ॥

३७३९. सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥

वही अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव हैं, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥४ ॥

३७४०. सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।

वही अग्निदेव, सूर्य और महायम हैं, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥५ ॥

३७४१.तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः

उनके साथ एक मस्तक वाले दस वत्स संयुक्त होकर रहते हैं, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥६ ॥

[पाँच प्राण + पाँच उपप्राण या दस इन्द्रियों के प्रवाह एक ही सिर (संचालन केन्द्र) से संचालित होते हैं ।]

३७४२. पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥७ ॥

वे उदित होते ही प्रकाशित होते हैं तथा बाद में (पीछे से) उनकी पूजन योग्य किरणें उन्हें चारों ओर से घेर लेती हैं, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥७ ॥

३७४३. तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८ ॥

उनके साथ ये मरुद्गण (एक ही) छींके में रखे हुए के समान चलते हैं ॥८ ॥

३७४४. रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥९ ॥

इन सूर्यदेव ने अपनी किरणों से आकाश को संव्याप्त किया है, ये महान् इन्द्र तेजस्वी किरणों से आवृत होकर चलते हैं ॥९ ॥

३७४५. तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥१० ॥

उनके ये नौ कोश विभिन्नरूपों में स्थित नौ प्रकार हैं ॥१० ॥

३७४६. स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११ ॥

वे (सूर्यदेव) स्थावर, जंगम सभी प्रजाजनों के द्रष्टा और सबके प्राणस्वरूप हैं ॥११ ॥

३७४७. तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥१२ ॥

वे एकत्र हुई शक्ति हैं । वे अद्वितीय एक मात्र व्यापक देव केवल एक ही हैं ॥१२ ॥

३७४८. एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥१३ ॥

ये सभी देवगण इसमें एकरूप होते हैं ॥१३ ॥

[५ अध्यात्म - सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्, २ आसुरी पंक्ति, ३, ६ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ४-५ आसुरी गायत्री, ७ द्विपदा विराट् गायत्री, ८ आसुर्यनुष्टुप् ।]

३७४९. कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥१ ॥

३७५०. य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२ ॥

जो इन देव को मात्र एक ही समझता है, उसे कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्चस (परमात्म तेज) अन्न और उपभोग्य सामग्री प्राप्त होती है ॥१-२ ॥

३७५१. न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।य एतं देवमेकवृतं वेद ॥३ ॥

३७५२. न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।य एतं देवमेकवृतं वेद ॥४ ॥

३७५३. नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।य एतं देवमेकवृतं वेद ॥५ ॥

जो इन एक मात्र व्यापक देव के ज्ञाता हैं, वे दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें और दसवें ऐसे नहीं कहे जाते ॥३-५ ॥

३७५४. स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥६ ॥

जो इन एक वरेण्य देव के ज्ञाता हैं, वे जड़ और चेतन सबको देखते हैं और प्राणवान् हैं ॥६ ॥

३७५५. तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥७ ॥

वह एकत्र हुई सामर्थ्य है । वह अद्वितीय वरेण्य देव केवल मात्र एक है ॥७ ॥

३७५६. सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥८ ॥

इसमें ये सम्पूर्ण देवगण एक रूप होते हैं, जो एक अद्वितीय वरेण्य देव को जानते हैं ॥८ ॥

[६ - अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप्, २ आर्ची गायत्री, ३ आसुरी पंक्ति , ४ एकपदासुरी गायत्री, ५ आर्ची अनुष्टुप्, ६-७ प्राजापत्या अनुष्टुप् ।]

३७५७. ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं
चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१ ॥

ब्रह्मज्ञान, तप:शक्ति, कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्चस, अन्न और उपभोग्य सामग्री उन्हें ही उपलब्ध होती है, जो इन एकमात्र वरेण्य देव के ज्ञाता हैं ॥१ ॥

३७५८. भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥२ ॥

भूत, भविष्यत्, श्रद्धा, तेजस्विता, कान्ति, स्वर्ग और स्वधा उन्हें ही प्राप्त होते हैं, जो एकमात्र वरेण्य देव के ज्ञाता हैं ॥२ ॥

३७५९. य एतं देवमेकवृतं वेद ॥३ ॥

जो इन एकमात्र वरेण देव के ज्ञाता हैं, उन्हें ही उपर्युक्त सामर्थ्य उपलब्ध होती है ॥३ ।।

३७६०. स एव मृत्युः सो३मृतं सो३भ्वं१ स रक्षः ॥४ ॥

वही मृत्यु, अमृत, महान् और संरक्षक अथवा राक्षस हैं ॥४ ॥

३७६१. स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥५ ॥

वही रुद्रदेव, धनदान के समय धन - प्राप्तकर्ता, नमस्कार यज्ञ में श्रेष्ठ विधि से उच्चरित वषट्कार हैं ॥५ ॥

३७६२. तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥६ ॥

सभी यातनादायी शक्तियाँ उनके निर्देशन में ही चलती हैं ॥६ ॥

३७६३. तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥७ ॥

उनके ही वश में चन्द्रमा के साथ ये सभी नक्षत्र रहते हैं ॥७ ॥

[७- अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** आसुरी गायत्री, २, ४, ७-८, १४ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३ विराट् गायत्री, ६, ९-१० साम्नी उष्णिक्, १३ साम्नी बृहती, १५ आर्षी गायत्री, १६ साम्नी अनुष्टुप् ।]

३७६४. स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥१ ॥

वे दिन से प्रकट हुए और दिन उनसे उत्पन्न हुए ॥१ ॥

३७६५. स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥२ ॥

वे रात्रि से प्रकट हुए और रात्रि उनसे उत्पन्न हुई ॥२ ॥

३७६६. स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥३ ॥

वे अन्तरिक्ष से प्रकट हुए और अन्तरिक्ष उनसे प्रकट हुआ ॥३ ॥

३७६७. स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥४ ॥

वे वायुदेव से उत्पन्न हुए और वायुदेव उनसे प्रकट हुए ॥४ ॥

३७६८. स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥५ ॥

वे द्युलोक से प्रकट हुए और द्युलोक उनसे उत्पन्न हुआ ॥५ ॥

३७६९. स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥६ ॥

वे दिशाओं से उत्पन्न हुए और दिशाएँ उनसे उत्पन्न हुईं ॥६ ॥

३७७०. स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥७ ॥

वे पृथ्वी से प्रकट हुए और भूमि उनसे उत्पन्न हुई ॥७ ॥

३७७१. स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥८ ॥

वे अग्निदेव से उत्पन्न हुए और अग्निदेव उनसे प्रकट हुए ॥८ ॥

३७७२. स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥९ ॥

वे जल से उत्पन्न हुए और जल उनसे प्रकट हुआ ॥९ ॥

३७७३. स वा ऋग्भ्यो ऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥१० ॥

वे ऋचाओं से प्रकट हुए और ऋचाएँ उनसे उत्पन्न हुईं ॥१० ॥

३७७४. स त्रै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥११ ॥

वे यज्ञदेव से उत्पन्न हुए और यज्ञदेव उनसे प्रकट हुए ॥११ ॥

३७७५. स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥१२ ॥

वे यज्ञ हैं, यज्ञ उन्हीं का है और वे यज्ञ के शीर्षरूप हैं ॥१२ ॥

३७७६. स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥१३ ॥

वही गर्जन करते हैं, दीप्तिमान् होते हैं तथा ओलों को गिराते हैं ॥ १३ ॥

३७७७. पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥१४ ॥

३७७८ यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥१५ ॥

आप पापकर्मियों, हितकारक पुरुषों अथवा आसुरी वृत्तियों से युक्त मनुष्यों (राक्षसों) और ओषधियों का निर्माण करते हैं, कल्याणकारी वृष्टिरूप में बरसते हैं अथवा उत्पन्न हुए लोगों को उच्चस्तरीय कल्याणमयी दृष्टि से प्रवृद्ध करते हैं ॥१४-१५ ॥

३७७९. तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥१६ ॥

हे मघवन् (ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव) ! ऐसी आपकी महिमा है, ये सभी सैकड़ों शरीर आपके ही हैं ॥१६ ॥

३७८०. उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥१७ ॥

आप अपने समीपस्थ सैकड़ों बँधे हुए लोगों को पार करने वाले तथा असीमित हैं ॥१७ ॥

८- अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** आसुरी गायत्री, २ यवमध्या गायत्री, ३ साम्नी उष्णिक्, ४ निचृत् साम्नी बृहती, ५ प्राजापत्या अनुष्टुप् , ६ विराट् गायत्री ।]

३७८१. भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥१ ॥

इन्द्र अमरता से भी विशाल हैं (श्रेष्ठ हैं) । हे इन्द्रदेव ! आप मृत्यु के मूलभूत कारणों से भी श्रेष्ठतम हैं ॥१ ॥

३७८२. भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥२ ॥

हे शक्ति के अधिपति इन्द्रदेव ! आप दुष्ट शत्रुओं से श्रेष्ठ हैं । आप सर्वव्यापक परमेश्वररूप हैं, ऐसा जानते हुए हम आपकी उपासना करते हैं ॥२ ॥

३७८३. नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥३ ॥

हे दर्शन योग्य ! आपके लिए नमन है, हे शोभन तेजस्विन् ! आप हमारी ओर दृष्टिपात करें ॥३ ॥

३७८४. अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४ ॥

आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न करें ॥४ ॥

३७८५. अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत। अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५ ॥

जल, पौरुष, महत्ता और सामर्थ्यवान् इन स्वरूपों में हम आपकी उपासना करते है। आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

३७८६. अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत। अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥६ ॥

जल, अरुण (लाल वर्ण), श्वेत और क्रियाशक्ति रूपों में हम आपकी उपासना करते हैं। आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मबर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥६ ॥

[९ - अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा। **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३ द्विपदार्षी गायत्री, ४ साम्नी उष्णिक्, ५ निचृत् साम्नी बृहती]

३७८७. उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत।अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥१ ॥

महानतायुक्त, विस्तृत, श्रेष्ठ प्राणस्वरूप, तथा दुःखरहित आपके गुणों की हम उपासना करते हैं आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

३७८८. प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत।अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥२ ॥

विस्तृत, श्रेष्ठ, व्यापक और लोकों में संव्याप्त आपके गुणों की हम उपासना करते हैं, आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

३७८९. भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥३ ॥

ऐश्वर्य सम्पन्न, वैभवों से युक्त, सभी ऐश्वर्यों के संग्रहकर्ता, सभी सम्पदाओं के भण्डार, ऐसा मानकर हम आपकी उपासना करते हैं, आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥३ ॥

३७९०. नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥४ ॥

हे दर्शनीय ! आपके लिए हमारा वन्दन है, हे शोभन तेजस्विन् ! आप हमारी ओर दृष्टिपात करें ॥४ ॥

३७९१. अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५ ॥

आप हमें खाद्य सामग्री, यशस्विता, तेजस्विता और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

॥ इति त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुदश काण्डम् ॥

[१ - विवाह- प्रकरण सूक्त]

[**ऋषि-** सावित्री, सूर्या । **देवता-** सोम, ६ स्वविवाह, ७-२२, २६, २८- ६४ आत्मा, २३ सोमार्क, २४ चन्द्रमा, २५ विवाह मन्त्र आशीष, वधूवास संस्पर्शमोचन, २७ वधूवास संस्पर्श-मोचन । **छन्द-** अनुष्टुप्, १४ विराट् प्रस्तार पंक्ति, १५ आस्तार पंक्ति, १९-२०, २४, ३२-३३, ३७, ३९, ४०, ४७, ४९-५०, ५३, ५६-५७ ५८-५९, ६१ त्रिष्टुप्, २१, ४६ जगती, २३, ३१, ४५ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २९, ५५ पुरस्ताद् बृहती, ३४ प्रस्तार पंक्ति, ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्, ४८ पथ्यापंक्ति, ५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६० परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।]

इस पूरे काण्ड (सूक्त १ और २) की ऋषिका सूर्या - सावित्री हैं। ऋक् १०/८५ की ऋषिका भी ये ही हैं। सूक्त में बहुत से मंत्र सूर्या के विवाह एवं दाम्पत्य को लक्ष्य करके कहे गये हैं। लौकिक कन्या विवाह प्रकरण में भी मंत्रों के अर्थ सिद्ध होते हैं। साथ ही वे प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों के भी प्रकाशक हैं। ब्रह्मा की दो सहधर्मिणी शक्तियाँ (१) गायत्री एवं (२) सावित्री कही गयी हैं। गायत्री प्राण विद्या है तथा सावित्री पदार्थ विद्या है। सावित्री का अर्थ सुप्रसविनी श्रेष्ठ सृजनकर्त्री भी होता है। सूर्य के माध्यम से निःसृत होने से वह सूर्या भी है। पदार्थ विद्या का उपयोग करने वाली देवशक्तियों को उसके विभिन्न पतियों के रूप में वर्णित किया गया है। इस काण्ड के सूक्त-२ में वह प्रसंग है। आवश्यकतानुसार टिप्पणियों द्वारा उसका स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-

३७९२. सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१ ॥

सत्य ने पृथ्वी को आकाश में स्थापित किया है। सूर्यदेव द्युलोक को स्तम्भित किये हुए हैं। ऋत से आदित्यगण स्थित हैं और सोम द्युलोक के ऊपर स्थित है ॥१ ॥

३७९३. सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२ ॥

आदित्यादि देव सोम के कारण ही बलशाली हैं। सोम द्वारा ही पृथ्वी महिमामयी हुई है। इन नक्षत्रों के बीच भी सोम को ही स्थापित किया गया है ॥२ ॥

[सोम व्योमव्यापी विकिरण है। सूर्यादि प्रकाशोत्पादक पिण्डों का ईंधन सोम ही है। उसी से उन्हें बल प्राप्त होता है। ऋषि इस वैज्ञानिक प्रक्रिया के द्रष्टा थे।]

३७९४. सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३ ॥

जिस समय सोमलतादि वनस्पतियों, ओषधियों की पिसाई की जाती है, उस समय सोमपान करने वाले ऐसा समझते हैं कि हमने सोमपान किया है; परन्तु जिस सोम को ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीजन जानते हैं, उसे कोई भी व्यक्ति मुख से पीने की सामर्थ्य नहीं रखता ॥३ ॥

[सूक्ष्म सोम प्रवाह प्रकृति एवं प्राणियों को भी शक्ति देते हैं ; किन्तु वे सूक्ष्म प्रवाह मुख से सेवनीय नहीं हैं। वे प्रवाह प्राण - प्रक्रिया द्वारा ग्रहण या धारण किये जाने वाले हैं।]

३७९५. यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४ ॥

हे सोमदेव ! जिस समय लोग ओषधिरूप में आपको ग्रहण करते हैं, उसके बाद आप बारम्बार प्रवृद्ध होते हैं । वायुदेव सोम की उसी प्रकार सुरक्षा करते हैं, जिस प्रकार महीने, वर्ष को सुरक्षित करते हैं ॥४ ॥

३७९६. आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५ ॥

हे दिव्यसोम ! आप बृहती विद्या के जानकारों से विदित तथा गुह्य विधियों द्वारा सुरक्षित हैं (संकीर्ण मानस वाले कुपात्र इसे नहीं पा सकते) । आप ग्रावा (सोम निष्पादक यंत्र या गरिमामय वाणी) की ध्वनि को सुनते हैं । आपको पृथ्वी के प्राणी सेवन करने में सक्षम नहीं हैं ॥५ ॥

आगे के मन्त्रों में सूर्या के विवाह-प्रसंग का वर्णन है-

३७९७. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६ ॥

जिस समय सूर्यपुत्री ने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया, उस समय ज्ञान (श्रेष्ठ विचार) ही उसका उपबर्हण (सिरहाना - तकिया) था । नेत्र ही श्रेष्ठ अञ्जन थे । द्युलोक और पृथ्वी ही उसके कोषागार थे ॥६ ॥

३७९८. रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥७ ॥

सूर्या की विदाई के समय नाराशंसी और रैभी नामक ऋचाएँ (अथवा मनुष्यों की प्रशंसा करने वाली वाणियाँ) उसकी सखीरूपा हुईं । सूर्या का परिधान अतिशोभायमान था, जिसे लेकर दोनों सखियाँ साथ गईं (अर्थात् कल्याणकारी गाथाओं मन्त्रादि से विशेषतः सज्जित होकर सूर्या गईं) ॥७ ॥

३७९९. स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥८ ॥

स्तवन (स्तुति मंत्र) ही सूर्या के लिए अन्न था, कुरीर नामक छन्द सिर के आभूषण थे । सूर्या के वर अश्विनी कुमार थे तथा अग्नि अग्रगामी दूतरूप थे ॥८ ॥

३८००. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९ ॥

सूर्या द्वारा हृदय से पति की कामना करने पर जब (सूर्य ने) उन्हें अश्विनीकुमारों को प्रदान किया, तब सोम भी वधूयु (उनके साथ विवाह के इच्छुक) थे; परन्तु अश्विनीकुमार ही उनके वररूप में स्वीकृत किये गये ॥९ ॥

३८०१. मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥१० ॥

जिस समय सूर्या अपने पतिगृह में गईं, उस समय मन ही उनका रथ (वाहन) था और आकाश ही रथ के ऊपर की छतरी थी । दो शुक्र (प्रकाशवान् सूर्य-चन्द्र) उनके रथवाहक थे ॥१० ॥

३८०२. ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११ ॥

हे सूर्या देवि ! ऋक् और साम स्तवनों (ज्ञान) को सुनने वाले-धारण करने वाले, एक दूसरे के साथ साम्य रखने वाले दो श्रोत्र आपके मनरूपी रथ के चक्र हुए । रथ के गमन का मार्ग आकाश निश्चित हुआ ॥११ ॥

३८०३. शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१२ ॥

जाने के समय आपके रथ के दोनों पहिये पवित्र अथवा अति उज्ज्वल हुए । उस रथ की धुरी वायुदेव थे । पतिगृह को जाने वाली सूर्या मनरूपी रथ पर आरूढ़ हुईं ॥१२ ॥

३८०४. सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्यु ह्यते ॥१३ ॥

सूर्या के पतिगृह - गमनकाल में सूर्य ने पुत्री के प्रति स्नेहरूप जो धन स्रवित किया (दिया) , उसे पहले ही भेज दिया था । मघा नक्षत्र में विदाई के समय दी गई गौओं को हाँका गया तथा अर्जुनी अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कन्या को पति के गृह भेजा गया ॥१३ ॥

[नक्षत्रों की संगतियों से होने वाली प्रक्रियाएँ शोध का विषय हैं ।]

३८०५. यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय आप दोनों तीनचक्रों से युक्त रथ से सूर्या (सूर्यपुत्री) को ले जाने के लिए पहुँचे थे, तब आपका एक चक्र कहाँ स्थित था ? आप दोनों अपने-अपने क्रिया - व्यापार में प्रेरणा प्रदान करने वाले कौन से स्थान पर रहते थे ? ॥१४ ॥

३८०६. यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । विश्वे देवा
अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥१५ ॥

हे श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाहक अश्विदेवो ! जब आप दोनों सूर्य पुत्री को श्रेष्ठ वधू मानकर उनके समीप वरण करने के लिए पहुँचे थे, तब आपके उस कार्य का सभी देवों ने अनुमोदन किया था । पूषादेव ने पुत्र द्वारा पिता को स्वीकार करने के समान आपको धारण किया ॥१५ ॥

३८०७. द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः । अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥

हे सूर्ये ! ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति) इस बात से परिचित हैं कि आपके रथ के दो (कर्मशील) चक्र ऋतुओं के अनुसार गतिशील होने में प्रसिद्ध हैं । तीसरा (ज्ञान-विज्ञान परक) चक्र जो गोपनीय था, उसे विद्वान् जानते हैं ॥

३८०८. अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥१७ ॥

पति की प्राप्ति कराने वाले तथा श्रेष्ठ बन्धु-बान्धवों से युक्त रखने वाले अर्यमादेव का हम यजन करते हैं । जिस प्रकार ककड़ी या खरबूजा (पकने पर) बेल के बन्धन से (सहज ही) पृथक् होता है, वैसे ही हम पितृकुल से कन्या को पृथक् करते हैं, परन्तु पतिकुल से उसे पृथक् नहीं करते ॥१७ ॥

३८०९. प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥१८ ॥

हे कन्ये ! इस पितृकुल से आपको मुक्त करते हैं, लेकिन पतिकुल से नहीं। उस (पतिकुल) से आपको भली प्रकार सम्बद्ध करते हैं। हे कामनावर्षक इन्द्रदेव ! यह वधू सुसन्ततियुक्त और सौभाग्यवती हो ॥१८ ॥

३८१०. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥१९ ॥

हे कन्ये ! आपको हम वरुण के बन्धनों से छुड़ाते हैं। सवितादेव ने सेवा कार्य के लिए आपको बन्धनयुक्त किया था। सत्य के आधार और सत्कर्मों के निवासरूप लोक में अनिष्टरहित पति के साथ आपको विराजमान करते हैं ॥१९ ॥

[सविता द्वारा सूर्या को, पिता द्वारा पुत्री को विवाह से पूर्व जो सेवा कार्य सौंपे जाते हैं, उनके उत्तरदायित्वों से उसे विवाह के समय मुक्त कर दिया जाता है।]

३८११. भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२० ॥

भगदेव आपको यहाँ से हाथ पकड़कर ले जाएँ। आगे अश्विनीकुमार आपको रथ में विराजित करके ले चलें। आप अपने पतिगृह की ओर प्रस्थान करें। वहाँ आप गृहस्वामिनी और सबको अपने नियंत्रण (अनुशासन) में रखने वाली बनें। वहाँ आप विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करें ॥२० ॥

३८१२. इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥२१ ॥

पतिगृह में सुसन्ततियुक्त होकर आपके स्नेह की वृद्धि हो और इस घर में आप गार्हपत्य अग्नि के प्रति जागरूक रहें अर्थात् गृहस्थधर्म के कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए सदैव जागरूक रहें। स्वामी के साथ आप संयुक्त (एक प्राण, एक मन वाली) होकर रहें। वृद्धावस्था में आप दोनों (दम्पती) श्रेष्ठ उपदेश (अपनी सन्तानों के लिए) करें ॥२१ ॥

३८१३. इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२२ ॥

हे वर और वधु ! आप दोनों यहीं रहें। कभी भी परस्पर पृथक् न हों। सम्पूर्ण आयु का विशेष रीति से उपभोग करें। अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए पुत्र-पौत्रादि सन्तानों के साथ आमोद-प्रमोदपूर्वक जीवन व्यतीत करें ॥२२ ॥

३८१४. पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥२३ ॥

ये दोनों शिशु (सूर्य और चन्द्रमा) अपने तेज से पूर्व और पश्चिम में विचरते हैं। ये दोनों क्रीड़ा करते हुए यज्ञ में पहुँचते हैं। उन दोनों में से एक (सूर्य) सभी लोकों को देखता है तथा दूसरा (चन्द्र) ऋतुओं का निर्धारण करते हुए बार-बार (उदित-अस्त होता हुआ) नवीन होता है ॥२३ ॥

३८१५. नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२४ ॥

हे चन्द्रदेव ! नित्य उदित होकर आप नित-नवीन होते हैं । आप अपनी कलाओं के कारण ह्रास और वृद्धि को प्राप्त होते हुए प्रतिपदा आदि तिथियों के ज्ञापक हैं । आप उषः काल में सूर्य के समक्ष आते हैं और सभी देवों को उनका हविभाग देते हैं । हे चन्द्रदेव ! आप चिरायु प्रदान करते हैं ॥२४ ॥

मंत्र क्र० २५ से २९ तक आलंकारिक वर्णन है, जिसके अन्तर्गत सूर्या या वधू पर कृत्या (आभिचारिक-विनाशक) शक्ति आरोपित होती है, वह लाल-नीली होती है । लाल-नीली होना क्रोधग्रस्त होना अथवा रजोदर्शन के समय लाल अथवा नीला स्राव होने का प्रतीकात्मक उल्लेख हो सकता है । उसकी प्रतिक्रियाएँ बतलाई गई हैं । मंत्र क्र० २५, २६, २७ और २९ में उससे सम्बन्धित उपचारों एवं सावधानियों का उल्लेख है । ये उक्तियाँ लौकिक सन्दर्भ में तो सहज परिलक्षित होती हैं ; किन्तु सूक्ष्म प्रकृतिगत सूर्या के सम्बन्ध में इस पर शोध वाञ्छनीय है-

३८१६ परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥२५ ॥

शामुल्य (शरीरस्थ मल विकारों अथवा मन पर छाये मलिन आवरणों) का परित्याग करें । ब्राह्मणों (या ब्रह्म विचार) को धन या आवास प्रदान करें । (इस प्रयोग से) कृत्या शक्ति (शमित होकर) जाया (जन्म देने वाली) होकर पति के साथ सहगामिनी बन जाती है ॥२५ ॥

३८१७. नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्य ज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२६ ॥

(सूर्या या वधू) जब नील-लोहित (क्रुद्ध या रजस्वला) होती है, तब उस पर कृत्या शक्ति अभिव्यक्त होती है । उसी के अनुकूल तत्त्व वर्धित होते हैं । पति उसके प्रभाव से बन्धन में बँध (मर्यादित हो) जाता है ॥२६ ॥

३८१८. अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥२७ ॥

उक्त (कृत्या जन्य) विकारों की स्थिति में स्त्री पीड़ादायक होती है । ऐसी स्थिति में वधू से संयुक्त होने से पति का शरीर भी कान्तिरहित तथा रोगादि से दूषित हो जाता है ॥२७ ॥

३८१९. आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥२८ ॥

सूर्या का स्वरूप कैसा है, इसे देखें । इसका वस्त्र कहीं एक जगह फटा हुआ है, कहीं बीच में से, तो कहीं चारों ओर से कटा हुआ है, सृष्टि निर्माणकर्त्ता ब्रह्मा ही इसे सुशोभित करते हैं ॥२८ ॥

३८२०. तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।

सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥२९ ॥

यह स्थिति दोषपूर्ण, अग्रहणीय, दूर रखने योग्य एवं विष के समान घातक (पीड़ाजनक) है । यह व्यवहार के योग्य नहीं है, जो मेधावी विद्वान्, सूर्या को भली प्रकार जानते हैं, वे ही वधू के साथ हितकारी सम्बन्ध स्थापित करने योग्य होते हैं ॥२९ ॥

३८२१. स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥३० ॥

उसी मंगलकारी और सुखकर वस्त्र को ब्रह्मा (ब्राह्मण) धारण करते हैं, जिससे प्रायश्चित्त विधान सम्पन्न होता है और धर्मपत्नी असमय (अकाल) मृत्यु से मुक्त रहती है ॥३० ॥

३८२२. युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१ ॥

आप दोनों स्त्री- पुरुष सद्व्यवहार में अवस्थित रहकर समृद्धि सौभाग्य को अर्जित करें । हे ब्रह्मणस्पते ! स्त्री के हृदय में पति के सम्बन्ध में आदर-भावना रहे तथा पति भी सुन्दर और मधुर वाणी का प्रयोग करे ॥३१ ॥

३८२३. इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ
शुभं यतीरुस्त्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥३२ ॥

गृहस्थ जनों के घर में गौएँ स्थित हों । वे कभी गृह का परित्याग न करें । वे श्रेष्ठ सन्तानों के साथ समृद्ध हों । हे गौओ ! आप मंगल को प्राप्त कराने में सहायक और चन्द्र के समान तेजस्विता युक्त हों । विश्वेदेवा आपके मन को यहीं (गृहों में) स्थिर करें ॥३२ ॥

३८२४. इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥३३ ॥

हे गौओ ! आप अपने बछड़ों के साथ इस घर में प्रविष्ट हों, इससे देवों का भाग विलुप्त नहीं होता । पूषादेव, मरुद्गण, विधाता तथा सवितादेव इसी मनुष्य के निमित्त आपकी उत्पत्ति करते हैं ॥३३ ॥

३८२५. अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४ ॥

जिन मार्गों से हमारे सभी मित्र कन्या के घर की ओर जाते हैं, वे मार्ग आपके लिए निष्कंटक और सुगमतापूर्ण हों । परमात्मा (धातादेव) आपको सौभाग्य, तेजस्विता और सूर्यशक्ति के साथ उचित रीति से संयुक्त करें ॥३४ ॥

३८२६. यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥३५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो तेजस्विता आँखों में, सम्पत्ति में और गौओं में विद्यमान है, उसी तेज से आप इसका (वधू का) संरक्षण करें ॥३५ ॥

३८२७. येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६ ॥

हे अश्विनीदेवो ! जिस तेज से महान् गौ का जघन अर्थात् दुग्धाशय भाग, जिससे सम्पत्ति और आँखें अभिपूरित हैं, उसी से आप इस (वधू) का संरक्षण करें ॥३६ ॥

३८२८. यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्या वान् ॥३७ ॥

स्तोतागण जिसकी यज्ञकाल में प्रार्थना करते हैं तथा जो बिना ईंधन (काष्ठ) के अन्तरिक्ष में विद्युत्‌रूप में प्रदीप्त होते हैं, वे हमें वृष्टिरूप जल प्रदान करें, जिससे इन्द्रदेव तेजस्वी होकर अपनी पराक्रमशक्ति को उत्पन्न करें ॥३७ ॥

३८२९. इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥३८ ॥

हम शरीर को दोषमुक्त करने वाले रोग बीजों को दूर हटाते हैं और उसमें जो कल्याणकारी तेजस्वी तत्त्व है, उसे प्राप्त करते हैं ॥३८ ॥

३८३०. आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥३९ ॥

ब्रह्मनिष्ठ लोग इसके निमित्त स्नान करने योग्य जल लेकर आएँ , यह जल निरर्थक भीरुता को नष्ट करके बल वृद्धि करने वाला हो । हे पूषादेव ! वे अर्यमा और अग्नि की परिक्रमा करें । इसके (वधू के) श्वसुर और देवर ससुराल में इसकी प्रतीक्षा करते हैं ॥३९ ॥

३८३१. शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥४० ॥

हे सौभाग्यवती वधु ! आपके निमित्त सुवर्ण, जल, गोबन्धन स्तम्भ और युग (जुआ) का छिद्र आदि सभी कल्याणकारी हों । सैकड़ों प्रकार से पवित्रता प्रदान करने वाला जलतत्त्व सुखकारक हो । आप कल्याण के निमित्त पति के शरीर का स्पर्श करें ॥४० ॥

३८३२. खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥४१ ॥

उन शतक्रतु (शतकर्मा- इन्द्रदेव) ने रथ (इन्द्रिययुक्त काया) , अनस (शकट की तरह पोषक प्राण) तथा दोनों को जोड़ने वाले 'युग' (मन) इन तीन स्थानों या छिद्रों से अपाला को पवित्र करके उसकी त्वचा (बाहरी संरक्षक सतह) को सूर्यदेव के तेज से युक्त बना दिया ॥४१ ॥

['रथ' अन्नमय कोश को कह सकते हैं, 'अनस' प्राणमय कोश है, मनोमय कोश चेतना एवं पंचभूतों को जोड़ने वाला 'युग' (जुआ) है । अपाला (बुद्धि) की अभिव्यक्ति के यही माध्यम हैं, अतः इन्हें अपाला की त्वचा कह सकते हैं । उपासना से प्राप्त सोम पीकर समर्थ हुआ जीवात्मा (इन्द्र) छिद्रों (दोषों) से अपाला को निर्मल बनाकर उसे सूर्य सदृश कान्तियुक्त विज्ञानमय कोश का अधिकारी बना देता है ।]

३८३३. आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२ ॥

आप श्रेष्ठ मनोभावों, सुसन्तति, सौभाग्य और वैभव की अभिलाषा करती हुई, पति के अनुकूल सदाचरण से युक्त होकर अमरत्व प्राप्ति के श्रेयस्कर मार्ग पर आरूढ़ हों ॥४२ ॥

३८३४. यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥४३ ॥

जिस प्रकार रत्नवर्षक महासागर नदियों के साम्राज्य का उपभोग करते हैं, उसी प्रकार पतिगृह में पहुँचकर यह वधू स्वयं को उसकी सम्राज्ञी मानकर गृहस्थ- साम्राज्य का संचालन करे ॥४३ ॥

३८३५. सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु । ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥४४ ॥

हे वधु ! आप सास, श्वसुर, ननद, और देवरों की सम्राज्ञी (महारानी) के समान हों, आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हों ॥४४ ॥

३८३६. या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥४५ ॥

जिन देवी स्वरूपा स्त्रियों ने (सूत्र) कातकर, बुनकर इस वस्त्र को विस्तृत किया है और जो चारों ओर के अन्तिम भागों को उचित रीति से बनाती हैं, वे वृद्धावस्था पर्यन्त आपके लिए उचित वस्त्रों की व्यवस्था करती रहें । हे देवि ! आप दीर्घायु होकर इस वस्त्र को धारण करें ॥४५ ॥

३८३७. जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥४६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो पुरुष अपनी पत्नी की जीवन रक्षा के लिए रुदन तक करते हैं, उन्हें यज्ञादि सत्कर्मों में नियोजित करते हैं, गर्भाधानादि संस्कार से सन्तानोत्पादन करके पितृयज्ञ में नियोजित करते हैं, उनकी स्त्रियाँ उन्हें सुख और सहयोग प्रदान करती हैं ॥४६ ॥

३८३८. स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७ ॥

मैं (पति) इस सुखप्रद स्थिर पत्थर जैसे आधार को पृथ्वी देवी की गोद में अपनी सन्तान के लिए स्थापित करता हूँ । आप श्रेष्ठ, तेजस्विता- सम्पन्न और आनन्दित होकर इस पत्थर पर चढ़ें । सवितादेव आपकी आयु में वृद्धि करें ॥४७ ॥

३८३९. येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥४८ ॥

जिस पवित्र उद्देश्य से अग्निदेव ने इस भूमि के दाहिने हाथ को ग्रहण किया है, उसी पवित्र भावना से मैं (पति) आपका (वधू का) पाणिग्रहण करता हूँ । आप दु:ख-कष्टों से रहित होकर मेरे साथ सुसन्तति और ऐश्वर्य सम्पदा के साथ रहें ॥४८ ॥

३८४०. देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥४९ ॥

हे वधु ! सविता आपका (वधू का) पाणिग्रहण करें, राजा सोम आपको श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त करें । जातवेदा अग्नि आपको सौभाग्ययुक्त करते हुए वृद्धावस्था तक पति के साथ वास करने वाली बनाएँ ॥४९ ॥

३८४१. गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥५० ॥

हे वधु ! आपके हाथ को सौभाग्य वृद्धि के लिए मैं ग्रहण करता हूँ । मुझे पतिरूप में स्वीकार करके, आप वृद्धावस्था पर्यन्त (मेरे) साथ रहना, यही मेरी प्रार्थना है । भग, अर्यमा, सविता और पूषादेवों ने आपको मेरे निमित्त गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए प्रदान किया है ॥५० ॥

३८४२. भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥५१ ॥

भगदेव और सवितादेव ने ही मुझे माध्यम बनाकर आपके हाथ को ग्रहण किया है । अब आप धर्मानुसार मेरी धर्मपत्नी हैं और मैं आपका गृहस्वामी हूँ ॥५१ ॥

३८४३. ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२ ॥

यह स्त्री मेरा पोषण करने वाली हो, बृहस्पतिदेव ने आपको मेरे लिए सौंपा है । हे सन्तानों से युक्त स्त्री ! आप मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥५२ ॥

३८४४. त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥५३ ॥

हे शुभकारिणी स्त्री ! बृहस्पतिदेव और मेधावीजनों के आशीर्वाद से त्वष्टादेव ने इस सुखकर वस्त्र को विनिर्मित किया है । सवितादेव और भगदेव जिस प्रकार सूर्यपुत्री को वस्त्र धारण कराते हैं, उसी प्रकार इस स्त्री को सन्तानादि से परिपूर्ण करें ॥५३ ॥

३८४५. इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५४ ॥

इन्द्र, अग्नि, द्यावा-पृथिवी, वायु, मित्र, वरुण, भग दोनों अश्विनीकुमार, बृहस्पति, मरुद्‌गण, ब्रह्म और सोम ये सभी देवशक्तियाँ इस नारी को श्रेष्ठ सन्तानों के साथ प्रवृद्ध करें ॥५४ ॥

३८४६. बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५ ॥

पहले बृहस्पतिदेव ने सूर्या का केश विन्यास किया था, उसी का अनुसरण करते हुए दोनों अश्विनीकुमार इस नारी को पति प्राप्ति के लिए सुशोभित करें ॥५५ ॥

३८४७. इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् । ।५६ ॥

यह वही दर्शनीयरूप है, जिसे युवा स्त्री धारण करती है । युवती के मनोभावों को मैं भली प्रकार समझता हूँ । नूतन गतिवाली सखियों के अनुसार मैं उस (स्त्री) का अनुसरण करता हूँ । इन बालों का गुन्थन किस समझदार स्त्री (सखी) ने किया है ॥५६ ॥

३८४८. अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७ ॥

मैं इस स्त्री के अन्तःकरण को जानता हुआ और उसकी छवि को देखता हुआ, उसे अपने हृदय में प्रतिष्ठित करता हूँ । मैं चोरी का अन्न ग्रहण नहीं करता । मैं स्वयं वरुणदेव के बन्धनों को ढीला करता हुआ मन की अस्थिरता से युक्त होता हूँ ॥५७ ॥

३८४९. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८ ॥

सवितादेव ने जिस वरुणपाश से आपको आबद्ध किया था, हे स्त्री ! उस वरुण पाश से मैं आपको मुक्त करता हूँ । आप सुयोग्या, सहधर्मिणी के लिए विस्तृत स्थान और श्रेष्ठ गमन योग्य मार्ग निर्मित करता हूँ ॥५८ ॥

३८५०. उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९ ॥

(धर्मपत्नी को पीड़ित करने वाले) दुष्ट राक्षसों का संहार करने के लिए आप लोग अस्त्र-शस्त्रों को उठाएँ । इस स्त्री को सदैव पुण्यकर्मों में संलग्न रखें, ज्ञान सम्पन्न विधाता के मार्गदर्शन से इसे पति की प्राप्ति हुई है । राजा भग ऐसा जानते हुए विवाह कार्य में अग्रगामी हों ॥५९ ॥

३८५१. भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६० ॥

भगदेव ने पावों के चार आभूषण और शरीर पर धारण करने के चार कमल पुष्प बनाये; त्वष्टादेव ने कमर में बाँधने योग्य कमरपट्टा बनाया । इन्हें धारण करके यह स्त्री श्रेष्ठ - मंगलकारिणी बने ॥६० ॥

३८५२. सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥६१ ॥

हे सूर्य पुत्री ! आप अपने पतिगृह की ओर जाते हुए सुन्दर प्रकाशयुक्त पलाशवृक्ष से बने तथा शाल्मलिवृक्ष या मलरहित (काष्ठ) से विनिर्मित नानारूप, स्वर्णिम वर्ण, श्रेष्ठ और सुन्दर चक्रयुक्त रथ पर आरूढ़ हों । आप पति के निमित्त, अमृत स्वरूप लोक को सुखकारी बनाएँ ॥६१ ॥

३८५३. अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥६२ ॥

हे वरुण, बृहस्पति, इन्द्र और सविता देवो ! आप इस वधू को पतिगृह में भाई, पशु और पति किसी को भी हानि न पहुँचाने वाली (सुखदायी) तथा श्रेष्ठ सन्तति प्रदात्री बनाएँ ॥६२ ॥

३८५४. मा हिंसिष्टं कुमार्यं१ स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥६३ ॥

हे दो स्तम्भो ! आप देवशक्तियों द्वारा बनाये मार्ग पर इस वधू को ले जाने वाले रथ को हानि न पहुँचाएँ । हम गृहरूप देवता के द्वार पर वधू के आगमन मार्ग को सुखदायक बनाते हैं ॥६३ ॥

३८५५. ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥६४ ॥

इस वधू के आगे, पीछे, भीतर, मध्य सभी ओर ब्रह्म अर्थात् ईश प्रार्थना के मन्त्र गुञ्जरित हों । आधि-व्याधि रहित पति की गृहरूप देवनगरी को प्राप्त करके यह पतिगृह में मंगलकारिणी और सुख देने वाली होकर विराजमान रहे ॥६४ ॥

[२ - विवाह - प्रकरण सूक्त]

[**ऋषि-** सावित्री, सूर्या । **देवता-** १९, १२-३५, ३७-७५ आत्मा, १० यक्ष्मनाशनी, ११दम्पती परिपन्थनाशनी, ३६ देवगण । **छन्द-** अनुष्टुप्, ५-६, १२, ३१, ४० जगती, ९ त्र्यवसाना षट्पटा विराट् अत्यष्टि, १३-१४, १७-१९, ४१-४२, ४९, ६१, ७०, ७४-७५ त्रिष्टुप्, २४-२५, ३२, ३४, ३६, ३८ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, १५, ५१ भुरिक् अनुष्टुप्, २० पुरस्पाद् बृहती, २६ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ३३ विराट् आस्तार पंक्ति, ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप्, ३७, ३९ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति, ४४ प्रस्तार पंक्ति, ४७ पथ्या बृहती, ४८ सत: पंक्ति, ५० उपरिष्टात् निचृद् बृहती, ५२ विराट् परोष्णिक्, ५९-६०, ६२ पथ्यापंक्ति, ६८ विराट् पुरउष्णिक्, ६९ त्र्यवसाना षट्पदा अतिशक्वरी, ७१ बृहती ।]

३८५६. तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१

हे अग्निदेव ! दहेज (कन्याधन) के रूप में सूर्या को सर्वप्रथम आप (यज्ञाग्नि) के ही समीप ले जाया जाता है । आप पति को श्रेष्ठ सुसन्तति वाली स्त्री प्रदान करें अर्थात् विवाहितों को सुसन्तति से सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

३८५७. पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥२ ॥

अग्नि ने पुन: दीर्घायु, तेजस्वी और कान्तियुक्त पत्नी प्रदान की । इसके जो पति हैं, वे चिरंजीवी होकर शतायु तक जीवित रहें ॥२ ॥

मन्त्र क्र० ३ और ४ में सूर्या के अवतरण का क्रम वर्णित है । सूर्या प्रकृतिगत पदार्थ - उत्पादक विधा है । उसका प्रथम स्वामी सोम (सूक्ष्म पोषक विकिरण) हुआ, इस समय वह सावित्री थी । सोम से गन्धर्व (गां- किरणों को धारण करने वाले आदित्य) को वह शक्ति प्राप्त हुई । आदित्य- सूर्य ने उसे भूमि पर अग्नि को प्रदान किया, तब वह सूर्या हुई । अग्नि से वह उर्वरा शक्ति मनुष्यों को प्राप्त हुई । मनुष्यों या प्राणियों को वह भूमिगत तथा नारी जातिगत उर्वरता के रूप में प्राप्त हुई । अश्व सम्बोधन शक्ति का द्योतक है । इस द्विधा (जड़ एवं चेतन प्रकृतिगत) उर्वरता को फलित करने वाले शक्ति-प्रवाहों को अश्विनीकुमार कहना युक्ति संगत है । पृथ्वी की उर्वरता से प्राणियों तथा प्राणियों के कारण भूमि के उत्पादन का क्रम जुड़ा हुआ है, यह दोनों प्रवाह एक साथ जुड़े होने से अश्विनीकुमारों को जुड़वाँ कहा जाना भी समीचीन है । सूर्या का वरण सोम द्वारा, फिर गन्धर्व द्वारा, फिर अग्नि के द्वारा तथा अन्त में अश्विनीकुमारों द्वारा होने का आलंकारिक वर्णन इस प्रक्रिया में भलीप्रकार सिद्ध होता है-

३८५८. सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः

हे सूर्ये ! सोम ने सर्वप्रथम पत्नीरूप में आपको प्राप्त किया । तदनन्तर गन्धर्व आपके पति हुए, आपके तीसरे पति अग्निदेव हैं । मनुष्य वंशज आपके चौथे पति हैं ॥३ ॥

३८५९. सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् । ।४

सोम ने, (स्त्री को) गन्धर्व को दिया । गंधर्व ने अग्नि को दिया, तदनन्तर अग्नि ने (भूमि से उत्पन्न) ऐश्वर्य और (नारी से उत्पन्न) सन्तानसहित मुझे (मनुष्य को) प्रदान किया ॥४ ॥

३८६०. आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ॥५ । ।

हे अन्न और ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारो ! आप हमारे प्रति कृपादृष्टि रखें, हमारी मानसिक इच्छाओं की पूर्ति में सहायक हों तथा आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । हम अपने पति की प्रेमपात्र बनकर पतिगृह को सुशोभित करें ॥५ ॥

३८६१. सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥६ ॥

हे देवि ! आप कल्याणकारी मन से सभी वीरों से युक्त श्लाघ्य धन को पुष्ट करें । हे अश्विनीकुमारो ! आप इस तीर्थ को फलीभूत करते हुए पथ में मिलने वाली दुर्मति का निवारण करें ॥६ ॥

३८६२. या ओषधयो या नद्यो३ यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥७ ॥

हे सौभाग्यवती वधु ! जो ओषधियाँ नदियों, खेत और वन में हैं, वे आपको सन्ततियुक्त करें और आपके पति को आसुरी वृत्तियों से सुरक्षित रखें ॥७ ॥

३८६३. एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥८ ॥

हम उन सुगम मार्गों से प्रयाण करें, जो रथादि वाहनों के लिए कल्याणकारी हैं, जिनमें निर्भयता के कारण शौर्य- क्षमता का क्षय न हो अथवा धन-सम्पदा प्राप्त हो ॥८ ॥

३८६४. इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! आप सभी लोग हमारी इस उद्घोषणा को सुनें, जिसके आशीर्वाद से विवाहित स्त्री- पुरुष श्रेष्ठ सांसारिक सुखों का उपभोग करें । इन वनस्पतियों में जो दिव्य गंधर्व और अप्सराएँ हैं, वे इस वधू के लिए सुखदायी हों और इस कन्याधन को ले जाने वाले रथ को विनष्ट न करें ॥९ ॥

३८६५. ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥१० ॥

चन्द्रमा की तरह शोभन वधू के जीवन में जो (शारीरिक- मानसिक) रोग जन्मदाता माता-पिता से स्वभावतः आते हैं, यजनीय देवगण उन्हें उनके पिछले स्थान पर पुनः लौटाएँ, जहाँ से वे आए थे ॥१० ॥

३८६६. मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥११ ॥

जो रोगरूपी शत्रु दम्पती के समीप आते हैं, वे विनष्ट हों । वे सुगम मार्गों से दुर्गम स्थानों में चले जाएँ । शत्रुसमूह हमारे यहाँ से दूर चले जाएँ ॥११ ॥

३८६७. सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥१२ ॥

कन्याधन से युक्त रथ को घर के सभी परिजन ज्ञानपूर्वक प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखें । इस प्रकार हम इसे उद्घाटित करते हैं । इसमें जो भी (गृहस्थाश्रम के लिए उपयोगी) विविध-वर्णों की वस्तुएँ बँधी हैं, उन्हें सवितादेव पति-पत्नी के लिए सुखकर बनाएँ ॥१२ ॥

३८६८. शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।

तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिःप्रजया वर्धयन्तु ॥१३ ॥

यह मंगलकारी स्त्री पतिगृह में पहुँच गयी है । विधाता ने इसके लिए यही स्थान (पतिगृह) निर्देशित किया है । दोनों अश्विनीकुमार अर्यमादेव, भगदेव तथा प्रजापति ब्रह्मा- ये सभी देवगण इस वधू को श्रेष्ठ सन्तति से समृद्ध करें ॥१३ ॥

३८६९. आत्मन्वत्युर्वेरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।

सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४ ॥

आत्मिक शक्तिसम्पन्न तथा श्रेष्ठ सन्तति की उत्पादन शक्ति से युक्त यह स्त्री वधू के रूप में पति के घर पहुँच गई है । हे पौरुष सम्पन्न मनुष्य ! आप इस स्त्री में अपने वीर्य रूप वंशानुक्रम बीज का वपन करें, तत्पश्चात् यह स्त्री वीर्यवान् पुरुष के वीर्य और दूध को धारण करती हुई अपने गर्भाशय से सन्तान उत्पन्न करे ॥१४ ॥

३८७०. प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥१५ ॥

हे सरस्वती स्वरूपा स्त्री ! आप पतिगृह में गौरव (प्रतिष्ठा) को प्राप्त करें, आप घर की साम्राज्ञी हैं, आपके पति विष्णुदेव के समान यहाँ हैं और आप लक्ष्मी स्वरूपा हैं । हे अन्नवती देवि ! आपके ऊपर भाग्यदेवता की महान् अनुकम्पा रहे और आपको श्रेष्ठ सन्तति का लाभ प्राप्त हो ॥१५ ॥

३८७१. उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्ये नसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥१६ ॥

हे जल ! आपकी तरंगें रथ की धुरी से टकराती रहें । हे दुष्कर्महीना, पापरहिता, अनिन्दनीया नदियो ! आपको (प्रवाहित होने में) कोई बाधा न हो ॥१६ ॥

३८७२. अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।

वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥१७ ॥

हे वधु ! आप सुखकारिणी, स्नेहदृष्टि से युक्त, कल्याणकारिणी, सेवा करने वाली, श्रेष्ठ नियमों पर चलने वाली, वीर सन्तानों को जन्म देने वाली, देवर की (कल्याण) कामना वाली, पति को क्षीण न करने वाली और शुभ अन्तर्भावनाओं से युक्त हों, जिससे हम आपसे वृद्धि को प्राप्त करें ॥१७ ॥

३८७३. अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥१८ ॥

देवर और पति को कष्ट न पहुँचाती हुई, पशुओं के लिए हितकारिणी, श्रेष्ठ नियमों पर चलने वाली, श्रेष्ठ तेजस्विता - सम्पन्न, सन्तानयुक्त वीर सन्तानों को जन्म देने वाली, पतिगृह में देवर का कल्याण चाहती हुई, सुखदायिनी बनकर आप इस गार्हपत्य अग्नि की हवन द्वारा अर्चना करें ॥१८ ॥

३८७४. उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१९ ॥

हे पाप देवी निर्ऋते ! आप यहाँ से उठें, आप कौन सी अभिलाषा से यहाँ उपस्थित हुई हैं ? हम अपने घर से भगाते हुए आपका निरादर करते हैं ; क्योंकि आप घर को सुनसान (मरघट) करने की इच्छा से प्रेरित होकर यहाँ आई हैं, अतएव हे शत्रुरूपिणी निर्ऋते ! आप यहाँ से उठकर भाग जाएँ , यहाँ विचरण न करें ॥१९ ॥

३८७५. यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥२० ॥

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व वधू गार्हपत्य अग्नि की पूजा- अर्चना करे, तत्पश्चात् हे स्त्री ! आप सरस्वती देवी और पितरजनों को नमन-वन्दन करें ॥२० ॥

३८७६. शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥

पति अपनी धर्मपत्नी के लिए आसनरूपी मृगचर्म (सुखदायी आसन-बिछौना) और संरक्षण साधन को लेकर आएँ । हे सिनीवालि (अन्नवती देवी) ! यह स्त्री भली प्रकार सन्तान को जन्म दे और सौभाग्य के श्रेष्ठ आशीर्वाद को प्राप्त करे ॥ २१ ॥

३८७७. यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥२२ ॥

आपके द्वारा बिछाई गई चटाई और मृगचर्म पर यह श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देने वाली और पति को प्राप्त करने वाली कन्या आरोहण करे ॥२२ ॥

३८७८. उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥२३ ॥

सर्वप्रथम चटाई फैलाएँ, उस पर मृगचर्म को बिछाएँ, वहाँ श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देने वाली स्त्री बैठकर अग्नि की अर्चना करे ॥२३ ॥

३८७९. आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥२४ ॥

आप मृगछाल पर आरोहण करके अग्निदेव के समीप बैठें । ये अग्निदेव सभी दुष्ट राक्षसों का संहार करने में सक्षम हैं । आप इस घर में अपने पति के लिए सुसन्तति को जन्म दें । आपकी यह प्रथम ज्येष्ठ सन्तान सुयोग्य और सुसंस्कृत बने ॥२४ ॥

३८८०. वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥२५ ॥

मातृत्व को धारण करने वाली इस स्त्री के साथ नानाविध रूप- वर्ण वाले, गाय आदि पशु रहें । हे उत्तम मंगलमयी स्त्री ! आप अग्निदेव के समीप बैठकर देवों को सुशोभित करें ॥२५ ॥

३८८१. सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥२६ ॥

हे वधु ! श्रेष्ठ मंगलकारिणी, गृहव्यवस्था का संचालन करने वाली, पति की सेवा करने वाली, श्वसुर को सुख पहुँचाने वाली तथा सास को आनन्दित करनें वाली आप इस घर में प्रविष्ट हों ॥२६ ॥

३८८२. स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥२७ ॥

आप श्वसुरों के लिए मंगलमयी हों, पति और घर के लिए कल्याणकारिणी हों । आप सभी परिवारीजनों को सुख देती हुई उनकी पुष्टि के लिए सुखदायिनी बनें ॥२७ ॥

३८८३. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥२८ ॥

यह वधू मंगलकारिणी है । सभी जन एकत्र होकर इसे देखें । इसको सौभाग्य प्रदान करने का आशीर्वाद देकर, दुर्भाग्य दूर करते हुए वापस लौट जाएँ ॥२८ ॥

३८८४. या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्व१स्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥२९ ॥

जो द्वेष भावना से युक्त युवतियाँ और वृद्धा स्त्रियाँ हैं, वे सभी इस वधू को अपनी तेजस्विता देकर अपने-अपने घर वापस चली जाएँ ॥२९ ॥

३८८५. रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥३० ॥

मन को सुन्दर लगने वाले बिस्तरों से युक्त, अनेक शोभा- सज्जा को धारण करने वाले सुखदायक रथ पर सूर्य पुत्री सावित्री विशाल सौभाग्य को उपलब्ध करने के लिए आरोहण करती हैं ॥३० ॥

३८८६. आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥३१ ॥

आप मन में प्रसन्नता के भावों को धारण करती हुई बिस्तर पर आएँ और पति के लिए श्रेष्ठ सन्तति को जन्म दें । इन्द्राणी के समान श्रेष्ठ बुद्धिमती होकर, उषःकाल से पहले जागकर निद्रा से निवृत्त होकर उठ जाएँ ॥३१ ॥

३८८७. देवा अग्रे न्य पद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व स्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥३२ ॥

प्राचीनकाल में देवगण भी अपनी सहयोगी शक्तियों के सहभागी हुए और अपने शरीर को उनके शरीर के साथ संयुक्त करते थे । हे स्त्री ! आप भी सूर्या के समान अपनी महिमा से अनेक रूप होकर श्रेष्ठ संतति निर्माण की इच्छा से पति के साथ संयुक्त होकर वास करें ॥३२ ॥

३८८८. उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥३३ ॥

हे ऐश्वर्य सम्पन्न वर श्रेष्ठ ! आप यहाँ से उठ खड़े हों, हम आपका स्वागत करते हैं । आप पिता के घर में वास करने वाली शोभायुक्त वधू का वरण करने की अभिलाषा करें, वह आपका ही भाग है । इस स्त्री के जन्म सम्बन्धी वृत्तान्त आप जानें ॥३३ ॥

आगे के विवरण से स्पष्ट हो जाता है, यह सब कथन केवल लौकिक दम्पतियों के लिए नहीं हैं । लौकिक दम्पतियों पर तो यह लागू होते ही हैं, उस उपलक्षण के साथ प्रकृति के उत्पादक चक्र की ओर ऋषि का संकेत स्पष्ट दिखाई देता है । इस क्रम में

नारी को अप्सरा कहा गया है। अप्सरा का अर्थ होता है - अप् से उत्पन्न। अप् वेद में सृष्टि के मूल उत्पादक- धारक प्रवाह को कहा गया है। उससे ही उर्वर प्रकृति उत्पन्न हुई, इसलिए वह अप्सरा है। सामान्य अर्थों में अप् का अर्थ जल या जीवनरस होता है। अन्तरिक्ष में पर्जन्य की वृद्धि से लेकर गर्भ में जीवन के विकास तक यह सभी जल या जीवन रस की धारक शक्ति से ही सम्भव होते हैं। इस धारक प्रकृति में पुरुष के संयोग से जीवन चक्र आगे बढ़ता है। यहाँ उस पुरुष तत्त्व को गन्धर्व कहा गया है। गन्धर्व का अर्थ होता है, 'गां' अर्थात गौ का धारणकर्त्ता। गौ सम्बोधन वाणी, किरणों, इन्द्रियों तथा पृथ्वी के लिए प्रयुक्त होता है। धारक प्रकृति-अप्सराओं में इन्हीं के द्वारा रेतस् की स्थापना से जीवन चक्र आगे बढ़ता रहता है। इन सूत्रों को ध्यान में रखकर अध्येता मन्त्रार्थों में ऋषि मेधा की व्यापकता का रस एवं लाभ प्राप्त कर सकते हैं -

३८८९. अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥३४॥

इस यज्ञ भूमि और सूर्य के बीच (अन्तरिक्ष) में अप्सराएँ (उर्वरधाराएँ) साथ-साथ मिलकर प्रसन्नतादायक कर्म में संलग्न होती हैं। वही (अन्तरिक्ष) आप (पुरुष) की तथा जनित्री (पत्नी या उर्वर प्रकृति) का (उत्पत्ति) स्थान है, आप (पुरुष) उनके समीप जाएँ। गन्धर्वों की ऋतु सामर्थ्य के साथ आपको नमन है।३४॥

३८९०. नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥३५॥

गन्धर्व के हविर्भाग के लिए हमारा नमस्कार है और उनके तेजस्वी नेत्रों को भी हम नमन करते हैं। हे विश्वावसो ! हम आपको ज्ञान के साथ नमन करते हैं। अप्सरारूप स्त्री की ओर आप बढ़ें ॥३५॥

३८९१. राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥३६॥

हम धन- सम्पदा के साथ श्रेष्ठ मनस्वितायुक्त हों, यहाँ से हम गन्धर्वों को ऊपर भेजते हैं। वह ईश्वर (परमदेव) परम उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हुआ है, जहाँ हम आयु को दीर्घ बनाते हुए पहुँचते हैं ॥३६॥

[यहाँ गन्धर्व सम्बोधन यज्ञीय या मंत्र ऊर्जा के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।]

३८९२. सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥३७॥

हे स्त्री- पुरुषो ! आप अपने रेतस् (उत्पादक तेज) की सामर्थ्य से ही माता-पिता बनने में सक्षम होंगे। अतः ऋतुकाल में संयुक्त हों। वीर्यवान् पुरुष के समान इस स्त्री के साथ संयुक्त हों। आप दोनों सन्तान को जन्म दें और धन- सम्पदा भी बढ़ाएँ ॥३७॥

३८९३. तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥३८॥

हे पूषन् (पोषण में समर्थ) ! आप उस कल्याणकारिणी स्त्री (उर्वराशक्ति) को प्रेरित करें, जिसमें मनुष्य बीज वपन करते हैं। वह प्रेम प्रदर्शित करती हुई (उल्लसित होती हुई) अपने ऊरु प्रदेश को विस्तारित करती है। उसके गर्भ में उत्साहपूर्वक (फलित होने के विश्वास से) बीज स्थापित किया जाए ॥३८॥

३८९४. आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥३९॥

आप स्त्री के साथ प्रेम पूर्वक संयुक्त हों, प्रसन्नचित्त होकर स्त्री का स्पर्श करें । आप दोनों आनन्द विभोर होते हुए सन्तान को जन्म दें । सवितादेव आप दोनों (स्त्री- पुरुषों) की आयु में वृद्धि करें ॥३९ ॥

३८९५. आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४० ॥

प्रजापालक परमेश्वर आप दोनों के लिए संतान उत्पन्न करें । अर्यमादेव आप दोनों को दिन-रात एक साथ रखें । हे वधु ! आप दोष - दुर्गुणों से रहित होती हुई पति के गृह में प्रविष्ट हों, आप हमारे दो पैर वाले और चतुष्पाद प्रजाओं के लिए सुखदायी हों ॥४० ॥

३८९६. देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१ ॥

मनु जी के साथ देवों ने इस वधू को वस्त्र प्रदान किया है, जो ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण के लिए इस वधू के वस्त्र दान करते हैं, वे निश्चित ही शयन स्थान में उत्पन्न होने वाले राक्षसों (कुसंस्कारों) को विनष्ट करते हैं ॥४१ ॥

[उत्पादक प्रकृति का रक्षक आवरण देवताओं द्वारा प्रदान किया गया है । उस संरक्षक आवरण के संरक्षण का अधिकार ब्रह्मनिष्ठों को दिया जाना चाहिए, इससे उत्पादन चक्र में हीन-आसुरी प्रवृत्तियों, शक्तियों के प्रवेश को रोका जा सकता है ।]

३८९७. यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥४२ ॥

हे बृहस्पति और इन्द्रदेवो ! आप दोनों ही ब्रह्मा के निर्देश से विवाह के समय के वधू - वस्त्र और सामान्य वधू के वस्त्र ब्राह्मण का भाग जानकर हमें प्रदान करें ॥४२ ॥

३८९८. स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥४३ ॥

हे स्त्री- पुरुषो ! सुखदायक गृह में भली प्रकार जागते हुए , हास्य विनोद करते हुए , स्नेहपूर्वक प्रसन्नचित होते हुए, सुन्दर इन्द्रियों या गौओं से युक्त, सुसन्तति सम्पन्न , श्रेष्ठ गृह सामग्रियों से युक्त, जीवनतत्त्व को धारण करते हुए आप दोनों (नर-नारी अथवा पुरुष एवं प्रकृति) प्रकाशमयी उषाओं (विकासमान जीवन) के साथ तैर जाएँ (पार हो जाएँ) ॥४३ ॥

३८९९ नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥४४ ॥

नूतन परिधान पहिनते हुए, सुरक्षित जीवन को धारण करते हुए, सुन्दर निवास से युक्त हम जीवधारी मनुष्य तेजस्वी प्रभात वेला में जागते रहें । अण्डे से पक्षी के बाहर आने के समान हम सभी प्रकार के दुष्कर्मों (पापों) से मुक्ति प्राप्त करें ॥४४ ॥

[जब अन्दर के जीव का शरीर परिपक्व हो जाता है तो वह उस संकीर्ण आवरण को तोड़कर बाहर निकलता है । इसी आधार पर अण्डज पक्षी को द्विज कहते हैं । मनुष्य भी साधना द्वारा परिपक्व होकर जब संकीर्णता से बाहर निकलता है , तो द्विज कहलाता है, तब वह मुक्ति मार्ग पर चल पड़ता है ।]

३९००. शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४५ ॥

द्युलोक और पृथ्वी दोनों निकटतापूर्वक सुख प्रदान करने वाले महान् व्रत (नियम) पालने वाले तथा विशेष रूप से शोभायमान हैं । इनके मध्य सात दिव्य जल (प्राण) प्रवाह बह रहे हैं । वे जल (प्राण) प्रवाह हमें पाप कर्मों से विमुक्त करें ॥४५ ॥

३९०१. सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥४६ ॥

सूर्या (उषा), देवगण, मित्र और वरुणादि देवों तथा सभी प्राणियों को जो ज्ञान प्रदान करने वाले देव हैं, हम उन्हें प्रणाम करते हैं ॥४६ ॥

३९०२. य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥४७ ॥

जो इन्द्रदेव हँसुली (गले से नीचे की हड्डी) को रक्त निकलने से पूर्व संधान द्रव्य के बिना ही जोड़ देते हैं, (जो कठिनतम कार्यों को सुगमता से सम्पन्न कर देते हैं) , प्रचुर धन के स्वामी वे इन्द्रदेव छिन्न-भिन्न होने वालों को पुनः जोड़ (एकत्र कर) देते हैं ॥४७ ॥

[शरीर में तथा विराट् प्रकृति में भी जो टूट-फूट होती है, इन्द्रशक्ति बिना किसी जोड़ने वाले (भिन्न) पदार्थ की सहायता के उन (अंग-अवयवों या इकाइयों) को पुनः जोड़ देने में समर्थ है । शरीर के रक्त- स्राव अथवा प्रकृति के ऊर्जा-प्रवाहों के नष्ट होने के पहले ही यह उपचार हो जाता है ।]

३९०३. अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्य१स्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥४८ ॥

जो नीला, पीला और लाल वर्ण का अज्ञानरूप धूम्र है, वह हमसे दूर भाग जाए । जो जलाने वाली दोषावस्था इसमें विद्यमान है, उसे हम स्तम्भ में स्थापित करते हैं ॥४८ ॥

३९०४. यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥४९ ॥

इस उपवस्त्र में जितने विघातक तत्त्व, राजा वरुण के पाश (बन्धन) , दरिद्रतायुक्त स्थितियाँ तथा विकारों से युक्त दुरवस्थाएँ हैं, उन्हें हम इसी स्तम्भ में स्थापित करते हैं अर्थात् इस वस्त्र से पृथक् करते हैं ॥४९ ॥

३९०५. या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥५० ॥

मेरा शरीर जो सुडौल और हृष्ट-पुष्ट है, वस्त्र धारण करने से उसकी कान्ति घटने लगती है, इसलिए हे वनस्पतिदेव ! सर्वप्रथम आप उसकी ग्रन्थि को (ठीक-ठीक) बनाएँ, जिससे हम व्यथित न हों ॥५० ॥

[यहाँ सूक्ष्म देह द्वारा स्थूल देह का आवरण धारण करते समय बरती गयी सावधानी का संकेत परिलक्षित होता है ।]

३९०६. ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥५१ ॥

जिस वस्त्र में (प्राणों और पंच तत्त्वों के) ताने- बाने वाले सूत्र हैं, जो उत्तम वस्त्र हमारी नारी वर्ग ने बुनकर तैयार किया है, जिसमें सुन्दर किनारियाँ और झालरें लगाई गई हैं, वह वस्त्र हमारे लिए सुखदायी स्पर्श देने वाला हो ॥५१ ॥

३९०७. उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥५२ ॥

पितृगृह से पतिगृह में आती हुई और श्रेष्ठ वर की कामना से युक्त ये कन्याएँ, गृहस्थधर्म के दीक्षाव्रत को धारण करें, यह सुन्दर उक्ति है (अथवा इस संदर्भ में आहुति को समर्पित करते हैं) ॥५२ ॥

३९०८. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५३ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा रचित इस ओषधि अथवा दीक्षा को सम्पूर्ण देवों ने ग्रहण किया है, उसे हम गौओं (गौओं-इन्द्रियों) में प्रविष्ट हुए वर्चस् से संयुक्त करते हैं ॥५३ ॥

३९०९. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५४ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा विरचित इस ओषधि या दीक्षा को विश्वेदेवों ने ग्रहण किया, उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुई तेजस्विता से संयुक्त करते हैं ॥५४ ॥

३९१०. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५५ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा निर्मित इस ओषधि अथवा दीक्षा को विश्वेदेवों ने धारण किया, उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुए परम सौभाग्य से संयुक्त करते हैं ॥५५ ॥

३९११. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५६ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा सृजित यह ओषधि या दीक्षा सभी देवों द्वारा स्वीकार हुई है, उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुई यशस्विता से संयुक्त करते हैं ॥५६ ॥

३९१२. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५७ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित इस ओषधि या दीक्षा को समस्त देवों द्वारा धारण किया गया है । उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुए दूध से संयुक्त करते हैं ॥५७ ॥

३९१३. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५८ ॥

बृहस्पति द्वारा निर्मित इस ओषधि अथवा दीक्षा को सभी देव शक्तियों ने धारण किया है । उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुए रस से संयुक्त करते हैं ॥५८ ॥

३९१४. यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥५९ ॥

यदि लम्बे केशयुक्त ये लोग आपके घर में कन्या के जाने से दुखित होकर रुदन करते हुए घूमते रहें, तो उस पाप से अग्नि और सवितादेव आपको बचाएँ ॥५९ ॥

३९१५. यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्य१घम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६० ॥

यदि यह पुत्री आपके घर में केशों को खोलकर रुदन करती हुई, दुःख को बढ़ाती रहे, तो उससे उत्पन्न पाप-दोष से अग्निदेव और सवितादेव आपको संरक्षित करें ॥६० ॥

३९१६. यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६१ ॥

जो बहिनें और स्त्रियाँ आपके घर में कन्या के गमन से दुखित होकर रोती रहें , तो (उनके इस कृत्य से) समुत्पन्न पापदोष से अग्नि और सवितादेव आपको संरक्षित करें ॥६१ ॥

३९१७. यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६२ ॥

पाप- दुःख फैलाने वालों ने जो आपके परिवार, सन्तति, पशुओं और घर में दुःखद वातावरण बना दिया है, उससे लगे पाप से सविता और अग्निदेव आपको मुक्त करें ॥६२ ॥

३९१८. इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥६३ ॥

धान्य, खीलों की आहुति समर्पित करती हुई, यह नारी ईश्वर से प्रार्थना करती है कि मेरा पति दीर्घायु बनकर सौ वर्ष तक जीवन यापन करे ॥६३ ॥

३९१९. इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्य श्नुताम् ॥६४ ॥

हे देवराज इन्द्र ! इस दम्पती को चक्रवाक (चकवा-चकवी) के जोड़े के समान स्नेहभाव बनाये रखने के लिए प्रेरित करें। ये दोनों श्रेष्ठ गृह और श्रेष्ठ सन्तान से युक्त होकर आजीवन विभिन्न भोगों को प्राप्त करें ॥६४ ॥

३९२०. यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम्।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५ ॥

बैठक (बैठने की चौकी) पर, बिस्तर (सिरहाना) पर, उपवस्त्र पर तथा विवाह के समय जो कोई पाप या घातक (कृत्या) प्रयोग हुए हों, उन्हें हम स्नान द्वारा (आत्मशुद्धि से) धो डालते हैं ॥६५ ॥

३९२१. यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत्।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥६६ ॥

विवाह संस्कार और बरात के रथ में जो कोई दुष्कृत्य और पापकर्म बन गये हों, उन्हें हम मृदुभाषी के कम्बल (आवरण) में स्थापित करते हैं ॥६६ ॥

३९२२. संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम्।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६७ ॥

हम याज्ञिक जन, मल को संभल से तथा दुरितों को कम्बल से शुद्ध करके दोषरहित (पवित्र) हों। यज्ञदेव हमारी आयु का विस्तार करें ॥६७ ॥

३९२३. कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।

अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥६८ ॥

सैकड़ों दाँत वाला जो कृत्रिम कंघा है, वह इस वधू (प्रकृति) के सिर की मलीनता को दूर करके उसे स्वच्छ बनाए ॥६८ ॥

[यज्ञ, मन्त्र एवं सद्भाव की शक्ति से प्रकृति को स्वच्छ करने की विद्या ऋषियों के पास थी। अगले मन्त्रों के भाव से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह सब प्रार्थना केवल लौकिक वधू के लिए ही नहीं की गयी है।]

३९२४. अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।

तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्व१न्तरिक्षम्।

अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितृंश्च सर्वान् ॥६९ ॥

हम इस वधू या प्रकृति के प्रत्येक अंग से रोगों को दूर करते हैं। यह दोष पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक और देव-शक्तियों को प्राप्त न हो। हे अग्निदेव ! यह मलीनता जल, यम और पितरजनों को भी कष्ट न दे सके ॥६९ ॥

३९२५. सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्।

सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥७० ॥

हे वधु (प्रकृति) ! हम आपको पृथ्वी के दूध के समान पोषक तत्त्वों और ओषधियों के पौष्टिकतत्त्व से युक्त करते हैं। आपको श्रेष्ठ सन्तति और वैभव - सम्पदा से युक्त करते हैं। आप इन्ह गुणों से युक्त होकर बलशालिनी हों ॥७० ॥

३९२६. अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं

पृथिवी त्वम्। ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥७१ ॥

हे नारी ! मैं पुरुष प्राणतत्त्व विष्णु हूँ, तो आप रयि (लक्ष्मी) हैं, मैं सामगान हूँ, तो आप ऋक् (ऋचा) हैं, मैं (पुरुष) द्युलोक (सूर्य शक्ति) हूँ, तो आप सहनशीलता की प्रतीक पृथ्वी हैं, हम दोनों पारस्परिक स्नेह से एकत्र होकर श्रेष्ठ सन्तति को जन्म दें ॥७१ ॥

३९२७. जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।

अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥७२ ॥

जैसे अविवाहित हम (दोनों) विवाह की कामना करते हैं, उसी प्रकार दाताजन पुत्र की अभिलाषा रखते हैं। हम जीवित रहने तक अन्न-धन आदि महान् सामर्थ्य की प्राप्ति हेतु एक साथ रहें ॥७२ ॥

३९२८. ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्।

ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥७३ ॥

बरात के आगमन पर नववधू के दर्शनार्थ जो सम्भ्रान्त स्त्री- पुरुष एकत्रित हों, वे सभी सुशीला नववधू को सन्तानवती होने का मंगल आशीर्वाद प्रदान करें ॥७३ ॥

३९२९. येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥७४ ॥

जो स्त्री रस्सी के समान अनेक धागों से संयुक्त होकर सर्वप्रथम इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने जा रही है, यहाँ उस वधू को धन और सुसंतति का मंगलमय आशीष देकर उसे पूर्व में अनुभवहीन मार्ग से सुरक्षित लेकर जाएँ । वह वधू तेजस्विनी और श्रेष्ठ प्रजावाली होकर विजयश्री प्राप्त करे ॥७४ ॥

३९३०. प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५ ॥

हे श्रेष्ठ ज्ञानवती स्त्री ! आप ज्ञानयुक्त रहकर सौ वर्ष का दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए जाग्रत् रहें । आप अपने पतिगृह जाएँ, वहाँ गृहस्वामिनी बनकर रहें, सर्वप्रेरक सवितादेव आपकी आयु को दीर्घ बनाएँ ॥७५ ॥

॥इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ पञ्चदश काण्डम् ॥

[१ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (प्रथम पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** साम्नी पंक्ति, २ द्विपदा साम्नी बृहती, ३ एकपदा यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप्, ४ एकपदा विराट् गायत्री, ५ साम्नी अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ आसुरी पंक्ति, ८ त्रिपदा अनुष्टुप् ।]

इस काण्ड के सभी सूक्तों के देवता 'व्रात्य' हैं। 'व्रात्य' का प्रचलित अर्थ व्रतों का उल्लंघन करने वाला है। स्मृतियों में 'व्रात्य' सम्बोधन इसी सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है; किन्तु वेद में 'व्रात्य' का प्रयोग श्रेष्ठता के सन्दर्भ में किया गया है। यथा- 'व्रात' = समूह - समाज, तेभ्यः हितः अर्थात् उसका हितकारी 'व्रात्य' है। 'व्राते भवः' समूह में उत्पन्न व्रात्य है। मन्त्रों के भाव भी यही सिद्ध करते हैं कि वेद में व्रात्य का अर्थ विधेयात्मक गुणवाला है। मन्त्रों के भाव के अनुसार व्रत- संकल्पपूर्वक सृष्टि रचना में प्रवृत्त ईश्वरीय सत्ता एवं श्रेष्ठ व्रतों, ब्रह्मचर्यादि में प्रवृत्त देव - मानवों के लिए 'व्रात्य' सम्बोधन प्रयुक्त किया गया प्रतीत होता है-

३९३१. व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥१ ॥

व्रात्य समूहपति ने व्रात्य स्थिति को प्राप्त करते ही प्रजापालक ब्रह्मा को श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान किया ॥१ ॥

३९३२. स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥२ ॥

उस प्रजापति ब्रह्मा ने अपने में तेजस्वी आत्मा का दर्शन किया, तत्पश्चात् सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया ॥२ ॥

३९३३. तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥३ ॥

वही प्रजापतिदेव महान्, विलक्षण, ज्येष्ठ (विशाल), ब्रह्मा (सृष्टि रचयिता), तप: शक्ति से युक्त और सत्यनिष्ठ बनें। मात्र उसी एक के द्वारा इस (व्रात्य) को उत्पन्न किया गया ॥३ ॥

३९३४. सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥४ ॥

वही प्रजापति वृद्धि को प्राप्त करके महान् बने और महादेव (महान् देवत्व के गुणों से सुशोभित) हुए ॥४ ॥

३९३५. स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥५ ॥

वही देवों के स्वामी और ईशान अथवा ईश्वरत्व के पद से अलंकृत हुए ॥५ ॥

३९३६. स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥६ ॥

वही व्रात्यसमूह के एकमात्र अधिपति हैं, उनके द्वारा जिस धनुष का स्पर्श किया गया (धारण किया गया), वही इन्द्रधनुष के नाम से कहा गया ॥६ ॥

३९३७. नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥७ ॥

इसकी पीठ लाल वर्ण और उदर (मध्य भाग) नील वर्ण से सुशोभित है ॥७ ॥

३९३८. नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥८॥

नील वर्ण के भाग से यह अप्रिय अर्थात् दुष्ट शत्रु को घेरता है और लाल वर्ण के पृष्ठभाग से, द्वेषभावना से ग्रसित शत्रुओं को विदीर्ण करता है, ऐसा तत्त्वज्ञानियों का कथन है ॥८ ॥

[इन्फ्रारेड और अल्ट्रावायलेट किरणों से रोगों के उपचार की विधि तो विज्ञान के हाथ लग गयी है, भावनात्मक परिष्कार की प्रक्रिया अभी शोध का विषय है। ध्यान योग के क्रम में विभिन्न रंगों के ध्यान से मानसिक प्रवृत्तियों के उपचार की प्रक्रिया योग विद्या में अवश्य उपलब्ध है।]

[२ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (द्वितीय पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा। **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य। **छन्द-** साम्नी अनुष्टुप्, २, १६, २२ साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदार्षी पंक्ति, ४, १८, २४ द्विपदा ब्राह्मी गायत्री, ५, १३, १९, २५ द्विपदार्ची जगती, ७, १४(२), २०(२), २७ पदपंक्ति, ८, १४(३), २०(३), २८ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १० एकपदोष्णिक्, ११ द्विपदार्षी भुरिक् त्रिष्टुप्, १२ आर्षी परानुष्टुप, १४(१) साम्नी पंक्ति, १७ द्विपदा विराट् आर्षी पंक्ति, २० आसुरी गायत्री, २३ निचृत् आर्षी पंक्ति ।]

३९३९. स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनुव्यचलत् ॥१ ॥

वह (व्रात्य) उन्नत हुआ और प्रगति मार्ग की प्रतीक पूर्व दिशा की ओर चल दिया ॥१ ॥

३९४०. तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्य चलन् ॥२ ॥

उसके पीछे बृहत्साम, रथन्तर साम, आदित्यगण तथा सभी दैवी शक्तियाँ चल पड़ीं ॥२ ॥

३९४१. बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३ ॥

जो मनुष्य ज्ञानवान् व्रात्य (व्रतचारी) को अपमानित करते हैं, वे बृहत्, रथन्तर आदित्यगण तथा समस्त देवताओं के प्रति ही अवज्ञा- अवहेलना करते हैं ॥३ ॥

३९४२. बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥४ ॥

जो उस (व्रात्य) का) आदर करते हैं। वे बृहत्, रथन्तर आदित्यदेवों तथा समस्त देवशक्तियों की प्रिय पूर्व दिशा में अपना प्रियधाम बनाते हैं ॥४ ॥

३९४३. श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५ ॥

उसके लिए श्रद्धा पुंश्चली (स्त्री रूप) मित्र (सूर्य मागधरूप स्तुति करने योग्य), विज्ञान लज्जा निवारक वस्त्र रूप, दिन शिरोवस्त्र (पगड़ी) रूप, रात्रि केश (बालों के) समान, सूर्य किरणें कर्णकुण्डल (आभूषण रूप) तथा आकाशीय तारागण मणिमुक्ताओं के समान होते हैं ॥५ ॥

३९४४. भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६ ॥

अतीत (भूत) और भविष्यत्काल ये इसके परिष्कन्द (संरक्षक) होते हैं तथा मन जीवन-संग्राम रथ के समान होता है ॥६ ॥

३९४५. मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७ ॥

मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) ये दो इसके रथ के घोड़े, प्राणवायु सारथि तथा रेष्मा (वायु), उसका चाबुकरूप होता है ॥७ ॥

३९४६. कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८ ॥

जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति-यशस्विता अग्रसर (बढ़ती) होती है ॥८ ॥

३९४७. स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्य चलत् ॥९ ॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नतिशील होकर) दक्षिण दिशा की ओर अनुकूलतापूर्ण स्थिति में विचरण करता है ॥९ ।

३९४८. तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥१० ॥

उसके पीछे यज्ञायज्ञीय, साम, वामदेव्य, यज्ञ (यज्ञीय सत्कर्म), यजमान (साधक) और पशुधन (गवादिपशु) भी अनुकूल होते हुए अर्थात् लाभप्रद होते हुए गमन करते हैं ॥१० ॥

३९४९. यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय
च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११ ॥

जो मनुष्य ज्ञान सम्पन्न व्रात्य की अवमानना करते हैं, वे यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम, यज्ञीय सत्कर्मों, यजमान साधकों तथा पशुओं की ही अवज्ञा करते हैं ॥११ ॥

३९५०. यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च
पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२ ॥

(जो मनुष्य उस व्रात्य का आदर करते हैं) वे दक्षिण दिशा में यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम, यज्ञादिकर्मों, यजमान साधकों तथा गौ आदि पशुओं के प्रियधाम बनते हैं ॥१२ ॥

३९५१. उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१३ ॥

उसके निमित्त उषा पुंश्चली (स्त्रीरूप) , मंत्र प्रशंसा करने वाले (मागध), विशिष्ट ज्ञान (लज्जा निवारक) वस्त्ररूप, दिन (सिर के वस्त्र के समान) पगड़ीरूप, रात्रि (कृष्णवर्ण) बाल के समान, सूर्य किरणें कर्णकुण्डल (आभूषण) रूप तथा आकाशीय तारे मणि के समान होते हैं ॥१३ ॥

३९५२. अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च
पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च यशश्च
पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१४ ॥

अमावास्या और पूर्णिमा उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप होते हैं । मन उसका जीवन समर के रथ के समान होता है । मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) उसके जीवन रथ के घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप तथा रेष्मा (वायु), उसका चाबुकरूप होता है । जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति अग्रसर होती है ॥

३९५३. स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१५ ॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नत होकर) पश्चिम दिशा की ओर अनुकूलतापूर्ण स्थिति में विचरण करता है ॥१५ ॥

३९५४. तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥१६ ॥

ऐसे में वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजा वरुण ये सभी उसके लिए अनुकूलतापूर्वक गमन करते हैं ॥१६ ॥

३९५५. वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥१७ ॥

जो मनुष्य विद्वान् व्रात्य के प्रति निन्दा का भाव रखते हैं, वे परोक्षरूप में वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजावरुण की अवहेलना करते हैं ॥१७ ॥

३९५६. वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥१८ ॥

(इसके विपरीत जो उसके अनुकूल होकर रहते हैं) वे वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजावरुण के प्रियधाम बनते हैं ॥१८ ॥

३९५७. इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१९ ॥

उसके निमित्त भूमि पुंश्चली (स्त्री रूप) , हास्य प्रशंसा करने वाला (मागध) , विशिष्ट ज्ञान वस्त्ररूप, दिन शिरोवस्त्ररूप, रात्रि केश (बाल) रूप, किरणें कर्णकुण्डलरूप तथा आकाशीय तारागण मणियों के समान होते हैं ॥१९ ॥

३९५८. अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च
पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च
यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२० ॥

रात्रि और दिन उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप हैं, मन उसके जीवन- समर के रथतुल्य है । मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) वायु उसके रथ के दो घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप तथा रेष्मा (वायु) उसके चाबुक के समान हैं । जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति उसी स्तर से अग्रसर होती है ॥२० ॥

३९५९. स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥२१ ॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नत होकर) उत्तर दिशा की ओर अनुकूल रीति से चलता है ॥२१ ॥

३९६०. तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२ ॥

श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम भी ऐसे व्रात्य के अनुगामी होकर चलते हैं ॥२२ ॥

३९६१. श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च
राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥२३ ॥

जो मनुष्य ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्रात्य की निन्दा करते हैं, वे श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम को ही परोक्ष रूप में अपमानित करते हैं ॥२३ ॥

३९६२. श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥२४ ॥

(परन्तु इसके विपरीत जो उसे आदर- सम्मान देते हैं) वे उत्तर दिशा में श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम के ही प्रियधाम बनते हैं ॥२४ ॥

३९६३. विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥२५ ॥

उसके लिए विद्युत् स्त्रीरूप, गरजने वाले मेघमण्डल प्रशंसक, विज्ञान वस्त्ररूप, दिन (शिरोवस्त्र) पगड़ीरूप, रात्रि का अँधेरा केशरूप, सूर्यकिरणें कर्णकुण्डल (आभूषण) रूप तथा आकाश के तारे मणियों के समान होते हैं ॥२५ ॥

३९६४. श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥२६ ॥

श्रुत (सुना हुआ ज्ञान) और विश्रुत (विज्ञान) ये उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप होते हैं तथा मन उसका (जीवन समर का) रथरूप है ॥२६ ॥

३९६५. मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥२७ ॥

मातरिश्वा (श्वास) , पवमान (उच्छ्‌वास) वायु उसके जीवन रथ के दो घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप और रेष्मा (वायु) उसके चाबुक के समान होते हैं ॥२७ ॥

३९६६. कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२८ ॥

ऐसी योग्यता की वृद्धि करने वाले व्रात्य की कीर्ति और यशस्विता उसी स्तर से प्रवृद्ध होती है ॥२८ ॥

[३ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (तृतीय पर्याय)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द**- १ पिपीलिकमध्या गायत्री, २ साम्नी उष्णिक्, ३ याजुषी जगती, ४ द्विपदार्ची उष्णिक्, ५ आर्ची बृहती, ६ आसुर्यनुष्टुप्, ७ साम्नी गायत्री, ८ आसुरी पंक्ति, ९ आसुरी जगती, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ११ विराट् गायत्री ।]

३९६७. सं संवत्सरमूर्ध्वो ऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥१ ॥

व्रात्य एक वर्ष पर्यन्त खड़ा रहा, ऐसी स्थिति में देवशक्तियों ने उससे कहा कि हे व्रात्य ! आप किस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर तपश्चर्यारत हैं ॥१ ॥

३९६८. सो ऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥२ ॥

व्रात्य ने कहा कि आप हमारे निमित्त चौकी (बैठने का आसन) प्रदान करें ॥२ ॥

३९६९. तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥३ ॥

तब देवशक्तियों ने व्रात्य के निमित्त बैठने के लिए चौकी की रचना की ॥३ । ।

३९७०. तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥४ ॥

उस चौकी के दो पाये ग्रीष्म- वसन्त तथा दो पाये शरद- वर्षा ऋतुरूप हुए ॥४ ॥

३९७१. बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये३ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥५ ॥

दो बाजू के फलक (अनूच्य) बृहत् और रथन्तर साम तथा दो तिरछे फलक (तिरच्य) यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम कहलाए ॥५ ॥

३९७२. ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥६ ॥

ऋग्वेद मंत्र लम्बाई (प्राञ्च्) के तन्तु हुए तथा यजुर्वेद मंत्र तिरछे (तिर्यक्) तन्तु कहलाए ॥६ ॥

३९७३. वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥७ ॥

वेद ज्ञान उस व्रात्य का शयन बिछौना तथा ब्रह्म विद्या उसका ओढ़ने का ऊपरी वस्त्र था ॥७ ॥

३९७४. सामासाद उद्‌गीथो ऽपश्रयः ॥८ ॥

सामवेदीय ज्ञान उसका गद्दा तथा उद्‌गीथ उसका तकिया था ॥८ ॥

३९७५. तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥९ ॥

ऐसी ज्ञानरूप चारपाई (चौकी) पर व्रात्य ने आरोहण किया ॥९ ॥

३९७६.तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥

देवशक्तियाँ उसकी परिष्कन्द (संरक्षणकर्त्री) , सत्य संकल्प उसके सहायक तथा समस्त प्राणी उसके साथ बैठने वाले हुए ॥१० ॥

३९७७. विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥११ ॥

जो तत्त्वदर्शी हैं , वे सभी प्राणी उसके (व्रात्य के) साथ बैठने के योग्य होते हैं ॥११ ॥

[४- अध्यात्म- प्रकरण सूक्त (चतुर्थ पर्याय]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** दैवी जगती, २, ८ आर्ची अनुष्टप् , ३, १२ द्विपदा प्राजापत्या जगती, ४, ७, १० प्राजापत्या गायत्री, ५ प्राजापत्या पंक्ति, ६ आर्ची जगती, ९ आर्ची त्रिष्टुप् , ११ साम्नी त्रिष्टुप् , १४ प्राजापत्या बृहती, १५, १८ द्विपदार्ची पंक्ति, १७ आर्ची उष्णिक् ।]

३९७८. तस्मै प्राच्या दिशः ॥१ ॥

३९७९. वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥२ ॥

उस (व्रात्य) के लिए देवसमूह ने पूर्व दिशा की ओर से वसन्त ऋतु के दो महीनों को संरक्षक नियुक्त किया तथा बृहत् और रथन्तर साम को उस व्रात्य का अनुष्ठाता (सेवक) बनाया ॥१-२ ॥

३९८०. वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च
रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥३ ॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) इस प्रकार से जानकारी रखते हैं, उनके पूर्व दिशा से वसन्त ऋतु के दो महीने संरक्षणकर्त्ता होते हैं तथा बृहत् और रथन्तर साम उसके लिए अनुकूलतापूर्ण बनते हैं ॥३ ॥

३९८१. तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥४ ॥

३९८२. ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥५ ॥

देवसमूह ने उस (व्रात्य) के लिए दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु के दो महीनों को संरक्षक रूप में नियुक्त किया । यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम उस व्रात्य के अनुष्ठाता बनाये गये ॥४-५ ॥

३९८३. ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥६ ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) ऐसा ज्ञान रखते हैं, उनके दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु के दो महीने, संरक्षणकर्त्ता होते हैं । और यज्ञायज्ञीय तथा वामदेव्य साम उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥६ ॥

३९८४. तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥७ ॥

३९८५. वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥८ ॥

देवशक्तियों ने उस (व्रात्य समूह) के लिए पश्चिम दिशा से वर्षाऋतु के दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया। वैरूप तथा वैराजसाम को अनुष्ठाता (अनुगामी) बनाया ॥७-८ ॥

३९८६. वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च
वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥९ ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार का ज्ञान रखते हैं, उनके पश्चिम दिशा से वर्षा ऋतु के दो महीने संरक्षणकर्त्ता होते हैं। वैरूप और वैराजसाम दोनों उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥९ ॥

३९८७. तस्मा उदीच्या दिशः ॥१० ॥

३९८८. शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥११ ॥

देवशक्ति समूह ने उस (व्रात्य समूह) के लिए उत्तर दिशा से शरद् ऋतु के लिए दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया। श्यैत और नौधस को उसका सेवक बनाया ॥१०-११ ॥

३९८९. शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च
नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१२ ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार की जानकारी रखते हैं, उत्तर दिशा से शरद ऋतु के दो महीने उनका संरक्षण करते हैं। श्यैत और नौधस उनका अनुसरण करते हैं ॥१२ ॥

३९९०. तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥१३ ॥

३९९१. हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥१४ ॥

उसके (व्रात्य समूह) लिए देवशक्तियों द्वारा ध्रुव दिशा से हेमन्त ऋतु के दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया गया। भूमि और अग्निदेव को अनुष्ठाता बनाया गया ॥१३-१४ ॥

३९९२. हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार का ज्ञान रखते हैं, उनकी सुरक्षा ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त ऋतु के दो मास करते हैं। भूमि और अग्निदेव भी उनके अनुगामी बनते हैं ॥१५ ॥

३९९३. तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६ ॥

३९८४. शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥१७ ॥

उस (व्रात्य समूह) के निमित्त देवताओं ने ऊर्ध्व दिशा की ओर से शिशिर ऋतु के दो महीनों को संरक्षण हेतु नियुक्त किया। आदित्यदेव (सूर्य) और द्युलोक को अनुष्ठाता (अनुपालनकर्त्ता) बनाया ॥१६-१७ ॥

३९९५. शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) ऐसी जानकारी रखते हैं , उनका संरक्षण ऊर्ध्व दिशा से शिशिर ऋतु के दो मास करते हैं। सूर्य और द्युलोक भी उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥१८ ॥

[५ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (पंचम पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** रुद्र । **छन्द-** १ त्रिपदा समविषमा गायत्री, २त्रिपदा भुरिक् आर्ची त्रिष्टुप् , ३, ५ (२), ७(२) , ९ (२) , ११ (२) , १३ (२) , १६ द्विपदा प्राजापत्या अनुष्टुप् , ४ स्वराट् प्राजापत्या पंक्ति, ५ (१), ७ (१), ९ (१) १३ (१) त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री, ६, ८, १२ त्रिपदा ककुप् उष्णिक् , १०, १४ भुरिग्विषमा गायत्री,११ (१) निचृद् ब्राह्मी गायत्री, १५ विराट् गायत्री ।]

३९९६. तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१ ॥

उस (व्रात्य) के निमित्त देवताओं ने पूर्व दिशा के कोण से बाण का सन्धान करने वाले (धनुर्धारी) भवदेव को अनुष्ठाता बनाया ॥१ ॥

३९९७. भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२ ॥

३९९८. नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३ ॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) ऐसा ज्ञान रखते हैं, धनुर्धारी भव पूर्व दिशा के कोण से उनके अनुकूल होकर रहते हैं और भव, शर्व तथा ईशान भी उनका घात नहीं करते । उनके गाय आदि पशुओं और सामान्य श्रेणी के बन्धु-बान्धवों को रुद्रदेव हिंसित नहीं करते ॥२-३ ॥

३९९९. तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥४ ॥

उस (व्रात्य) के निमित्त देवशक्तियों द्वारा दक्षिण दिशा के कोने से बाण चलाने वाले (धनुर्धारी) शर्व को अनुष्ठाता बनाया गया ॥४ ॥

४०००. शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥५ ॥

जो ऐसा जानते हैं, उनके लिए धनुर्धारी शर्व दक्षिण दिशा के कोने से अनुकूल होकर रहते हैं । भव, शर्व तथा ईशान भी इसे हिंसित नहीं करते । रुद्रदेव उनके गौ, आदि पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं को नहीं मारते ॥५

४००१ तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥६ ॥

उसके निमित्त देवशक्तियों ने पश्चिम दिशा के कोने से बाण चलाने वाले पशुपति को अनुष्ठाता नियुक्त किया ।

४००२. पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥७ ॥

जो इस तत्त्व के ज्ञाता हैं, उनके निमित्त बाण सन्धानकर्त्ता पशुपति दक्षिण दिशा के कोने से अनुकूलता पूर्ण होकर रहते हैं । भव, शर्व तथा ईशान भी उन्हें हिंसित नहीं करते ॥७ ॥

४००३. तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८ ॥

उनके निमित्त देवसमूह ने उत्तर दिशा के कोने से उग्रदेव को धनुर्धारी अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥८ ॥

४००४. उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥९ ॥

जिन्हें ऐसा ज्ञान है, धनुर्धारी उग्रदेव उत्तर दिशा के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी उन्हें हिंसित नहीं करते औन न उनके पशुओं तथा समवयस्क बांधवों को विनष्ट करते हैं ॥९ ॥

४००५. तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१० ॥

उनके निमित्त देवसमूह ने ध्रुव दिशा के कोण से रुद्रदेव को धनुर्धारी अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥१० ॥

४००६. रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥११ ॥

जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, अनुष्ठाता रुद्रदेव उनके हितकारी होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान उन पर घात नहीं करते और उनके पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं को भी ये देव विनष्ट नहीं करते ॥११ ॥

४००७. तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१२ ॥

उनके निमित्त देवों ने ऊर्ध्व दिशा के कोने से धनुर्धारी महादेव को अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥१२ ॥

४००८. महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१३ ॥

जो इसे जानते हैं, धनुर्धारी महादेव ऊर्ध्व दिशा के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी इनके लिए घातक नहीं होते और इनके पशुओं तथा समवयस्कों के लिए भी संहारक नहीं होते ॥१३ ॥

४००९. तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१४ ॥

उनके निमित्त देवशक्तियों द्वारा समस्त दिशाओं के कोने से बाण सन्धानकर्त्ता ईान को अनुष्ठाता बनाया ॥

४०१०. ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥१५ ॥

४०११. नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१६ ॥

जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, धनुर्धारी ईशान सभी दिशाओं के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान उनका संहार नहीं करते। उनके पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं का भी वे विनाश नहीं करते ॥१५-१६ ॥

[६ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (षष्ठ पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा। **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य। **छन्द-** १, ४ आसुरी पंक्ति, २, १७ आर्ची पंक्ति, ३ आर्षी पंक्ति, ५, ११ साम्नी त्रिष्टुप्, ६, १२ निचृत् बृहती, ७, १०, १३, १६, २४ आसुरी बृहती, ८ साम्नी पंक्ति, ९ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १४, २३ आर्ची त्रिष्टुप्, १५, १८ विराट् जगती, १९ आर्ची उष्णिक्, २० साम्नी अनुष्टुप्, २१ आर्ची बृहती, २२ परोष्णिक्, २५ आर्ची अनुष्टुप्, २६ विराट् बृहती।]

४०१२. स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥१ ॥

उस (व्रात्य) ने ध्रुव दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥१ ॥

४०१३. तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्य चलन् ॥२ ॥

भूमि, अग्नि, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ छोटे और बड़े वृक्ष सभी उसके अनुकूल होकर चलें ॥२ ॥

४०१४. भूमेश्च वै सो३ग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च
वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३ ॥

जो इस सम्बन्ध में जानते हैं, वे भूमि, अग्नि, ओषधियों, वनस्पतियों तथा छोटे और बड़े वृक्षों के प्रियधाम बनते हैं ॥३ ॥

४०१५. स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥४ ॥

उस (व्रात्य) ने ऊर्ध्व दिशा की ओर गमन किया ॥४ ॥

४०१६. तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥५ ॥

तब ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र उसके अनुगामी होकर चल दिये ॥५ ॥

४०१७. ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥६ ॥

इस तथ्य के ज्ञाता सत्य, ऋत, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों के प्रियधाम बनते हैं ॥६ ॥

४०१८. स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥७ ॥

अब (व्रात्य) के द्वारा उत्तम दिशा की ओर गमन किया गया ॥७ ॥

४०१९. तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥८ ॥

तब साम, ऋचाएँ , यजु: और ब्रह्म अर्थात् अथर्ववेद उसके अनुगामी होकर चले ॥८ ॥

४०२०. ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥९ ॥

जो इस तत्त्व को जानने वाले हैं, वे साम, ऋचाओं, यजु: और ब्रह्म (अथर्व) के प्रियधाम होते हैं ॥९ ॥

४०२१. स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥१० ॥

उस व्रात्य ने बृहती दिशा में प्रस्थान किया ॥१० ॥

४०२२. तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्य चलन् ॥११ ॥

उस समय इतिहास, पुराण और नाराशंसी गाथाएँ उसके अनुगामी होकर चले ॥११ ॥

४०२३. इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२ ॥

जो इस बात के ज्ञाता हैं, वे इतिहास पुराण और नाराशंसी गाथाओं के प्रिय स्थान बनते हैं ॥१२ ॥

४०२४. स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१३ ॥

उस (व्रात्य) ने परम दिशा की ओर गमन किया ॥१३ ॥

४०२५. तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्य चलन् ॥

तब आहवनीय, गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान तथा पशु उसके अनुगामी होकर चल दिये ॥१४

४०२६. आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५ ॥

इस प्रकार जानने वाले, आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान तथा पशुओं के प्रियधाम बनते हैं ॥१५

४०२७. सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥१६ ॥

उस व्रात्य ने अनादिष्ट दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥१६ ॥

४०२८. तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्य चलन् ॥१७

तब ऋतु और ऋतु पदार्थ, लोक और लोक सम्बन्धी पदार्थ, महीने, पक्ष, दिन-रात्रि उसके अनुगामी होकर चले ॥१७ ॥

४०२९. ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१८ ॥

जो इस तत्त्व के ज्ञाता हैं, वे ऋतु- ऋतु सम्बन्धी, लोक- लोक सम्बन्धी पदार्थ, मास, पक्ष तथा दिन और रात्रि के प्रिय धाम बनते हैं ॥१८ ॥

४०३०. सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥१९ ॥

उस (व्रात्य) ने अनावृत दिशा की ओर गमन किया और वहाँ से वापस न लौटने का मन में चिन्तन किया ॥१९ ॥

४०३१. तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥२० ॥

तब उसके पीछे दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी ने गमन किया ॥२० ॥

४०३२. दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२१ ॥

जो ऐसा जानते हैं, वे दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी के प्रिय धाम बनते हैं ॥२१ ॥

४०३३. स दिशोऽनु व्य चलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२२ ॥

उस (व्रात्य) ने सभी दिशाओं की ओर गमन किया, तब विराट् आदि समस्त देव उसके अनुकूल होकर पीछे-पीछे चले ॥२२ ॥

४०३४. विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां । प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२३ ॥

इस प्रकार का ज्ञान रखने वाले, विराट् आदि देवसमूह तथा (अन्य) समस्त देवों के प्रिय धाम बनते हैं ॥२३ ॥

४०३५. स सर्वानन्तर्देशाननु व्य चलत् ॥२४ ॥

वह व्रात्य सभी अन्तर्देशों (सभी दिशाओं के कोणों) में अनुकूल होकर चला ॥२४ ॥

४०३६. तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५ ॥

तब प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसके अनुगामी होकर चले ॥२५ ॥

४०३७. प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२६ ॥

ऐसा जानने वाले, प्रजापति, परमेष्ठी पिता और पितामह के प्रियधाम बनते हैं ॥२६ ॥

[७- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (सप्तम पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १ त्रिपदा निचृत् गायत्री, २ एकपदा विराट् बृहती, ३ विराट् उष्णिक्, ४ एकपदा गायत्री, ५ पंक्ति ।]

४०३८. स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रो ऽभवत् ॥१ ॥

वह विराट् व्रात्य समर्थ होकर तीव्रतापूर्वक पृथ्वी के अन्तिम छोर तक गया और समुद्र में परिवर्तित हो गया

४०३९. तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्य वर्तयन्त ॥

प्रजापति, परमेष्ठी, पिता, पितामह, जल और श्रद्धा वृष्टिरूप होकर इसके अनुशासन में (अनुकूल) रहने लगे ॥

४०४०. ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छन्त्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥३ ॥

जो व्रात्य के सम्बन्ध में इस प्रकार से ज्ञान रखते हैं, उन्हें जल, श्रद्धा और वृष्टि की प्राप्ति होती है ॥३ ॥

४०४१. तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४ ॥

उनके चारों ओर श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्नादि खाद्य-सामग्री अपनी सत्ता में उत्पन्न हुए ॥४ ॥

४०४२. ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं
गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥५ ॥

जो व्रात्य के सम्बन्ध में ऐसा ज्ञान रखते हैं, उन्हें श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्न को ग्रहण करने की शक्ति भी प्राप्त होती है ॥५ ॥

[८ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (अष्टम पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अधवा व्रात्य । **छन्द-** १ साम्नी उष्णिक्, २ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३ आर्ची पंक्ति ।]

४०४३. सो ऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥१ ॥

वह (व्रात्य) सबका रञ्जन करने वाला होकर राजा के पद से सुशोभित हुआ ॥१ ॥

४०४४. स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥२ ॥

तब प्रजाजन, बान्धवगण, अन्न तथा अन्न के पाचन की सामर्थ्य उसके अनुकूल रहने लगे ॥२ ॥

४०४५. विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३ ॥

जो इस मर्म के ज्ञाता हैं, वे प्रजाजनों, बन्धु-बांधवों, अन्न और अन्न पाचन की सामर्थ्य के प्रियधाम बनते हैं ॥३

[९-अध्यात्म-प्रकरणसूक्त (नवमपर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १आसुरी जगती, २ आर्ची गायत्री, ३ आर्ची .पंक्ति]

४०४६. स विशोऽनु व्य चलत् ॥१ ॥

वह (व्रात्य) प्रजाजनों के अनुकूल व्यवहार करने लगा ॥१ ॥

४०४७. तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्य चलन् ॥२ ॥

तब सभा, समिति, सैन्यशक्ति तथा सुरा (तीक्ष्णौषधि रस) या धनकोश उसकी अनुकूलता में रहने लगे ॥२ ॥

४०४८. सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३ ॥

जो इस तथ्य के वेत्ता हैं, वे सभा, समिति, सैन्यशक्ति तथा तीक्ष्णौषधिरस (धन कोष) के प्रियधाम बनते हैं ॥३

[१०-अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (दशम पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १ द्विपदा साम्नी बृहती, २ त्रिपदार्ची पंक्ति, ३ द्विपदा प्राजापत्या पंक्ति, ४ त्रिपदा वर्धमाना गायत्री, ५ त्रिपदा साम्नी बृहती, ६, ८, १० द्विपदासुरी गायत्री, ७, ९ साम्नी उष्णिक् , ११ आसुरी बृहती ।]

४०४९. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१ ॥

४०५०. श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२ ॥

ऐसे ज्ञाननिष्ठ व्रात्य जिस अधिपति-राजा के गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु प्रस्तुत हों, तो इसे अपना हितकारक मानकर राजा उसे सम्मानित करे, ऐसी क्रिया करने पर क्षात्रबल का क्षय नहीं होता तथा राष्ट्रीय गौरव को भी किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती ॥१-२ ॥

४०५१. अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३ ॥

इसके बाद ज्ञान (ब्रह्मबल) और वीर्य (क्षात्रबल) की उत्पत्ति होती है, वे दोनों बल प्रश्न करते हैं कि हम किसमें प्रविष्ट होकर वास करें ? ॥३ ॥

४०५२. अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥४ ॥

ब्रह्मज्ञान को बृहस्पतिदेव और पराक्रमशक्ति (क्षात्रबल) को इन्द्रदेव में निःसन्देह प्रवेश करना चाहिए ॥४ ॥

४०५३. अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥५ ॥

तब ब्रह्मज्ञान में बृहस्पतिदेव और पराक्रम शक्ति ने इन्द्रदेव में प्रवेश किया ॥५ ॥

४०५४. इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥६ ॥

(निश्चित रूप से) यह पृथ्वी ही बृहस्पतिदेव और द्युलोक ही इन्द्रदेव हैं ॥६ ॥

४०५५. अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥७ ॥

(निश्चित रुप से) यह अग्नि ही ब्रह्मशक्ति और आदित्य (सूर्य) ही पराक्रम (क्षात्र-शौर्य) शक्ति है ॥७ ॥

४०५६. ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥८ ॥

४०५७. यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥९ ॥

जो पृथ्वी को बृहस्पतिदेव तथा अग्नि को ब्रह्मस्वरूप जानते हैं, उन्हें ब्रह्मज्ञान तथा ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है ॥८-९ ॥

४०५८. ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥१० ॥

४०५९. य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥११ ॥

जो आदित्य को क्षत्र (पराक्रम शक्ति) और द्युलोक को इन्द्रशक्ति के रूप में जानते हैं, उनके समीप इन्द्र की (इन्द्रियशक्ति) पराक्रम शक्ति आती है और वे इन्द्रियवान् (शौर्यवान्) हो जाते हैं ॥१०-११ ॥

[११- अध्यात्म -प्रकरण सूक्त (एकादश पर्याय)]

[**ऋषि**- अथर्वा । **देवता**- अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द**- निचृत् आर्ची बृहती, १ दैवी पंक्ति, २ द्विपदा पूर्वात्रिष्टुप् अतिशक्वरी, ७, ९ द्विपदा प्राजापत्या बृहती, १० भुरिक् आर्ची बृहती, ११ द्विपदा आर्ची अनुष्टुप् ।]

४०६०. तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१ ॥

४०६१. स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वा ऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥२ ॥

जिसके घर में ऐसा ज्ञानी व्रात्य आतिथ्य सत्कार हेतु उपस्थित हो, तब गृहपति स्वयं उनसे पूछे कि हे व्रात्य ! आपका निवास कहाँ है ? यह जल आपके निमित्त (प्रस्तुत) है । हमारे घर के सदस्य आपको तृप्ति प्रदान करें । जो आपको रुचे वही हो, जैसी आपकी इच्छा हो वही बने, जैसा आपका निकाम (अभिलाषा) हो, वैसा ही हो ॥१-२

४०६२. यदेनमाह व्रात्य क्वा ऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥३ ॥

व्रात्य से यह पूछने पर कि आप कहाँ निवास करते हैं ? देवयान पथ अपने (प्रश्नकर्त्ता के) अधीन हो जाता है अर्थात् देवयान मार्ग खुल जाता है ॥३ ॥

४०६३ यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥४ ॥

व्रात्य से यह कहने पर कि हे व्रात्य ! यह जल आपके लिए है,(स्वागतकर्त्ता को) पर्याप्त जल मिलता है ॥४ ।

४०६४. यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥५ ॥

ये जो कहते हैं कि हे व्रात्य ! ये हमारे परिवारी स्वजन आपको सेवा शुश्रूषा द्वारा संतुष्ट करें, इस वचन से वे अपनी प्राण ऊर्जा को ही बढ़ाते हैं ॥५ ॥

४०६५. यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥६ ॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! जो आपके लिए प्रीतिप्रद हो, वही हो, तो इस कथन से वे अपने स्नेहयुक्त पदार्थों को ही उपलब्ध करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं ॥६ ॥

४०६६. ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥७ ॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वे प्रीतियुक्त (पुरुष) को उपलब्ध करते हैं तथा अपने प्रिय के भी प्रिय हो जाते हैं ॥

४०६७. यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥८ ॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! जैसी आपकी कामनाएँ हैं, वैसा ही हो, तो इस कथन से वे अपनी श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति के द्वार को ही खोलते हैं ॥८ ॥

४०६८. ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥९ ॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) जानते हैं , उन्हें सभी अभीष्ट फल (वश) उपलब्ध होते हैं तथा वे वशीभूत करने वालों को भी अपने वश में करने वाले होते हैं ॥९ ॥

४०६९. यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्द्धे ॥१० ॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! आप अपनी अभिलाषाओं के अनुरूप उपलब्ध करें , तो इससे वे मानो अपने लिए अभिलाषाओं के द्वार को उद्घाटित करते (खोल देते) हैं ॥१० ॥

४०७०. ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥११ ॥

व्रात्य की अभिलाषाओं की पूर्ति होती है, जो इस विषय के मर्मज्ञ हैं, उन्हें निश्चित रूप से अभीष्ट प्राप्त होते हैं ॥११ ॥

[१२- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (द्वादश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** आसुरी गायत्री, १ त्रिपदा गायत्री, २ प्राजापत्या बृहती , ३ भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप् ४ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्, ७, ११ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ८ विराट् गायत्री ।]

४०७१. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥

४०७२. स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्याति सृज होष्यामीति ॥२ ॥

अग्निहोत्र प्रारम्भ होने पर अग्नि प्रदीपन के समय यदि किसी अग्निहोत्री (याज्ञिक) के गृह पर ज्ञाननिष्ठ व्रात्य उपस्थित हों , तो ऐसी स्थिति में (याज्ञिक) स्वयं उसे आसन देकर कहे कि हे व्रात्य ! आप निर्देश दें, मैं यज्ञकर्म करने के लिए तत्पर होऊँगा ॥१- २ ॥

४०७३. स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥३ ॥

यदि विद्वान् व्रात्य अनुमति प्रदान करें , तभी आहुतियाँ समर्पित करें, अनुमति न दें तो आहुतियाँ समर्पित न करें ॥३ ॥

४०७४. स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥४ ॥

४०७५. प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५ ॥

यदि याज्ञिक विद्वान् व्रात्य के कथन के अनुसार आहुति प्रदान करता है, तो वह पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग का ज्ञान उपलब्ध करता है ॥४-५ ॥

४०७६. न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥६ ॥

४०७७. पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥७ ॥

ऐसे अग्निहोत्री द्वारा प्रदत्त आहुतियाँ देवत्व संवर्धक शक्तियों को ही प्राप्त होती हैं । देवशक्तियों में इसका किसी प्रकार का दोष नहीं माना जाता । इससे उसका आश्रयस्थल संसार में चतुर्दिक् सुरक्षित रहता है ॥६-७ ॥

४०७८. अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥८ ॥

४०७९. न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥९ ॥

इसके विपरीत जो ज्ञानवान् व्रात्य के दिशा निर्देश न देने पर भी आहुतियाँ प्रदान करते हैं, वे इसके दोषस्वरूप पितृयान मार्ग और देवयान मार्ग दोनों के ही ज्ञान से वञ्चित रह जाते हैं ॥८-९ ॥

४०८०. आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१० ॥

देवों के प्रति इस अपराध के साथ उसका यज्ञ भी निष्फल हो जाता है ॥१० ॥

४०८१. नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥११

जो विद्वान् व्रात्य के दिशा निर्देश के बिना यज्ञ कार्य करते हैं, उनका इस विश्व में किसी प्रकार का आधार (आश्रय) नहीं रहता ॥११ ॥

[१३- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (त्रयोदश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवां व्रात्य । **छन्द-** १ साम्नी उष्णिक्, २, ६ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३, ५, ७ आसुरी गायत्री, ४, ८ साम्नी बृहती, ९ द्विपदा निचृत् गायत्री, १० द्विपदा विराट् गायत्री, ११ प्राजापत्या पंक्ति, १२ आसुरी जगती, १३ सत: पंक्ति, १४ अक्षर पंक्ति ।]

४०८२. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१ ॥

४०८३. ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥२ ॥

जिसके गृह में ऐसे ज्ञानवान् व्रात्य का एक रात्रि के लिए अतिथिरूप में वास रहता है । वह गृहस्थ इसके पुण्यफल से पृथ्वी के सभी पुण्यलोकों को जीत लेता है ॥१-२ ॥

४०८४. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥३ ॥

४०८५. येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥४ ॥

ऐसे ज्ञानी व्रात्य, जिसके गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु दूसरी रात्रि भी रुकते हैं, उसके फलस्वरूप वह गृहस्थ अन्तरिक्ष के पुण्यदायी लोकों को उपलब्ध करता है ॥३-४ ॥

४०८६. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥५ ॥

४०८७. ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥६ ॥

ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्रात्य जिसके गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु तीसरी रात्रि तक ठहरते हैं, उसके पुण्य फल स्वरूप वह गृहस्थ द्युलोक के पुण्यप्रद लोकों को प्राप्त करता है ॥५-६ ॥

४०८८. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥७ ॥

४०८९. ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥८ ॥

ऐसे ज्ञानवान् व्रात्य, जिसके घर में अतिथिक्रम में चतुर्थ रात्रि तक रुकते हैं, उससे उपलब्ध फल से वह गृहस्थ पुण्यात्माओं के पुनीत लोकों को प्राप्त करता है ॥७-८ ॥

४०९०. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥९ ॥

४०९१. य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥१० ॥

ऐसे विद्वान् व्रात्य जिस सद्गृहस्थ के घर में अतिथिरूप में असंख्य रात्रियों तक निवास करते हैं, उसके फलस्वरूप वह गृहस्थ अपने लिए असंख्य पुण्यदायी लोकों को प्राप्त करता है ॥९-१० ॥

४०९२. अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥११ ॥

४०९३. कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥१२ ॥

जिसके गृह में व्रात्य गुणों से हीन तथा स्वयं को विद्वान् व्रात्य प्रदर्शित करने वाला अव्रात्य अतिथि रूप में आगमन करे, तो क्या उसे अपने निवास से भगा दें ? नहीं उसका भी तिरस्कार न करें ॥११-१२ ॥

४०९४. अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां
देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥१३ ॥

सद्‌गृहस्थ कहे कि हम इस (व्रात्य अतिथि) देव के लिए जल की स्तुति (प्रार्थना) करते हैं। इस अतिथिदेव को गृह में निवास प्रदान करते हैं तथा देवस्वरूप समझकर इसे परोसते हैं ॥१३ ॥

४०९५. तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥१४ ॥

जो इस तत्त्वज्ञान का मर्मज्ञ है, उसी देवता में उस सद्‌गृहस्थ का अतिथि सत्कार रूप हवन होता है ॥१४ ॥

[१४- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (चतुर्दश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** द्विपदासुरी गायत्री, १ त्रिपदानुष्टुप्, ३, ९ पुर उष्णिक्, ५ अनुष्टुप्, ७ प्रस्तार पंक्ति, ११ स्वराट् गायत्री, १२, १४, १६, १८ भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, १३, १५, १७ आर्ची पंक्ति, १९ भुरिक् नागी गायत्री, २१ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, २३ निचृत् आर्ची पंक्ति ।]

४०९६. स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य चलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥१॥

जब उसने पूर्वदिशा की ओर प्रस्थान किया, तब बलशाली होकर वायुदेव के अनुकूल चलते हुए, उसने अपने मन को अन्न भक्षण करने वाला बनाया ॥१ ॥

४०९७. मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२ ॥

जो इस विषय का मर्मज्ञ है, वह अन्न भक्षण करने की मनोवृत्ति से अन्न सेवन करता है ॥२ ॥

४०९८. स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्य चलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥३ ॥

जिस समय उसने दक्षिण दिशा में गमन किया, तब बल- सामर्थ्य को अन्नाद बनाकर और स्वयं को इन्द्र (पराक्रमशील) बनाते हुए वह गतिशील हुआ ॥३ ॥

४०९९. बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥४ ॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वह अन्नाद (अन्न भक्षक) बल- सामर्थ्य से अन्न का भक्षण करता है ॥४ ॥

४१००. स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्य चलदपो ऽन्नादीः कृत्वा ॥

जब उसने पश्चिम दिशा की ओर गमन किया, उस समय जल को अन्नाद (अन्न सेवन करने वाला) बनाते हुए स्वयं राजा वरुण बनकर चला ॥५ ॥

४१०१. अद्भिरन्नादिभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥६ ॥

जो इस बात का मर्मज्ञ है, वह अन्न-भक्षक जल के साथ अन्न का उपभोग करता है ॥६ ॥

**४१०२. स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्य
चलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७ ॥**

जब उसने उत्तर दिशा की ओर गमन किया, तब सप्तर्षियों द्वारा प्रदत्त आहुतियों को अन्न भक्षक आहुति बनाकर राजा सोम की अनुकूलता में चला ॥७ ॥

४१०३. आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥८ ॥

जो इस बात का ज्ञाता है, वह अन्नभक्षक आहुतियों द्वारा अन्न का उपभोग करता है ॥८ ॥

४१०४. स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्य चलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९॥

जब वह ध्रुवदिशा की ओर प्रस्थान किया, तब विराट् पृथ्वीको अन्नमयी बनाकर विष्णुरूप बन संचरित हुआ

४१०५. विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१० ॥

जो इस विषय का ज्ञाता है, वह अन्नमयी विराट् पृथ्वी द्वारा अन्न का सेवन करता है ॥१० ॥

४१०६. स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्य चलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥११ ॥

जब वह (व्रात्य) पशुओं (अज्ञानी प्राणियों) की ओर बढ़ा, तब ओषधियों को अन्न भक्षणरूप बनाते हुए स्वयं रुद्रदेव बनकर चला ॥११ ॥

४१०७. ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१२ ॥

जो इस विषय का ज्ञाता है, वह अन्न भक्षक ओषधियों द्वारा अन्न का उपभोग करता है ॥१२ ॥

४१०८. स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्य चलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥१३

जब वह (व्रात्य) पितरजनों की ओर (उनके अनुकूल) चला, तो स्वधाकार को अन्नाद (अन्नभक्षक) बनाते हुए स्वयं यम राजा बनकर अनुकूल रीति से चला ॥१३ ॥

४१०९. स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४ ॥

जो इस तथ्य को जानता है, वह स्वधाकार द्वारा खाद्य सामग्री का सेवन करता है ॥१४ । ।

४११०. स यन्मनुष्या३ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्य चलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥१५ ॥

जब वह मनुष्यों की ओर चला, तो स्वाहाकार को अन्न के सेवन योग्य बनाकर, स्वयं अग्निरूप होकर चला ।

४१११. स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१६ ॥

जो इस मर्म का ज्ञाता है, वह स्वाहाकार के माध्यम से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१६ ॥

४११२.स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्य चलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥१७

जब वह (व्रात्य) ऊर्ध्व दिशा की ओर गतिशील हुआ, तो वषट्कार को अन्न के सेवन योग्य बनाकर तथा स्वयं बृहस्पति बनकर अनुकूल रीति से चला ॥१७ ॥

४११३. वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१८ ॥

जो इस तथ्य का ज्ञाता है, वह वषट्कार के माध्यम से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१८ ॥

४११४. स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्य चलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥१९ ॥

जब वही (व्रात्य) देवशक्तियों की अनुकूलता में गतिशील हुआ, तो वही मन्यु (उत्साह) को सेवित अन्न बनाकर तथा स्वयं ईशान बनकर देवताओं के अनुशासन में गतिमान् हुआ ॥१९ ॥

४११५. मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२० ॥

जो इस तत्त्व ज्ञान का ज्ञाता है, वह उत्साह (मन्यु यज्ञ) से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥२० ॥

४११६. स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्य चलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१ ॥

जब वही (व्रात्य) प्रजाजन अर्थात् जन- साधारण के लिए उपयोगी बनकर गतिशील हुआ, तो प्राणशक्ति को अन्न भक्षण योग्य बनाते हुए तथा स्वयं प्रजापतिरूप बनकर गतिमान् हुआ ॥२१ ॥

४११७. प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२२ ॥

जो इस तत्त्व का ज्ञाता है, वह प्राणतत्त्व (प्राणशक्ति) खाद्य सामग्री का सेवन करता है ॥२२ ॥

४११८. स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्य चलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥२३

जब वही (व्रात्य) सभी अन्तर्देशों (दिशा के कोणों) के लिए उपयोगी बनकर चला, तो वही ब्रह्म को अन्न भक्षण योग्य बनाते हुए तथा स्वयं परमेष्ठी रूप बनकर विचरणशील हुआ ॥२३ ॥

४११९. ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२४ ॥

जो इस तथ्य को इस प्रकार जानता है, वह ब्रह्म (ब्रह्मज्ञान) द्वारा अन्न (खाद्य सामग्री) का सेवन करता है ॥२४ ॥

[१५- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (पंचदश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप् , १ दैवी पंक्ति, २ आसुरी बृहती, ३ प्राजापत्या अनुष्टुप् , ५, ६ द्विपदा साम्नी बृहती, ९ विराट् गायत्री ।]

४१२०. तस्य व्रात्यस्य ॥१ ॥

४१२१. सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥२ ॥

उस व्रात्य (समूहपति) के सप्त प्राण, सप्त अपान और सप्त व्यान हैं ॥१-२ ॥

४१२२. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥३ ॥

इस व्रात्य का जो सर्वप्रथम प्राण है, उसे ऊर्ध्व नामक अग्नि से सम्बोधित किया गया है ॥३ ॥

४१२३. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४ ॥

इस व्रात्य का जो द्वितीय प्राण है, उसे प्रौढ़ नामक आदित्य कहा गया है ॥४ ॥

४१२४. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणो३भ्यू ढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५ ॥

इस व्रात्य का जो तीसरा प्राण है, उसे अभ्यूढ़ नामक चन्द्रमा कहा गया है ॥५ ॥

४१२५. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥६ ॥

इस व्रात्य के विभू नामक चौथे प्राण को पवमान वायु की संज्ञा दी गई है ॥६ ॥

४१२६. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥७ ॥

इसी व्रात्य के योनि नामक पाँचवें प्राण को अप् (जल) बताया गया है ॥७ ॥

४१२७. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥८ ॥

इस व्रात्य के प्रिय नामक छठें प्राण को पशु कहा गया है ॥८ ॥

४१२८. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥९ ॥

इस व्रात्य का अपरिचित नामक जो सातवाँ प्राण है, वह प्रजा नाम से सम्बोधित है ॥९ ॥

[१६-अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (षोडश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १, ३ साम्नी उष्णिक् (दैवी पंक्ति) , २, ४-५ प्राजापत्या उष्णिक् , ६ याजुषी त्रिष्टुप् , ७ आसुरी गायत्री ।]

४१२९. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥१ ॥

उस व्रात्य के प्रथम अपान को पौर्णमासी कहा गया है ॥१ ॥

४१३०. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥२ ॥

उस व्रात्य के दूसरे अपान को अष्टका कहा गया है ॥२ ॥

४१३१. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥३ ॥

उस व्रात्य के तृतीय अपान को अमावस्या कहा गया है ॥३ ॥

४१३२. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥४ ॥

उस व्रात्य के चौथे अपान को श्रद्धा कहा गया है ॥४ ॥

४१३३. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥५ ॥

उस व्रात्य का जो पाँचवाँ अपान है, वह दीक्षा नाम से जाना जाता है ॥५ ॥

४१३४. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥६ ॥

उस व्रात्य के छठे अपान को यज्ञ कहा गया है ॥६ ॥

४१३५. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥७ ॥

उस व्रात्य के सातवें अपान को दक्षिणा कहा गया है ॥७ ॥

[१७ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (सप्तदश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १, ५ प्राजापत्या उष्णिक् (दैवी पंक्ति) २, ७ आसुरी अनुष्टुप्, ३ याजुषी पंक्ति, ४ साम्नी उष्णिक्, ६ याजुषी त्रिष्टुप्, ८ त्रिपदा प्रतिष्ठार्ची पंक्ति, ९ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् , १० साम्नी अनुष्टुप् ।]

४१३६. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥१ ॥

उस व्रात्य के प्रथम व्यान को "भूमि" कहा गया है ॥१ ॥

४१३७. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥२ ॥

उस व्रात्य के द्वितीय व्यान को अन्तरिक्ष कहा गया है ॥२ ॥

४१३८. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥३ ॥

उस व्रात्य का तृतीय व्यान द्यौ संज्ञक है ॥३ ॥

४१३९. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥४ ॥

उस व्रात्य का चतुर्थ व्यान नक्षत्र संज्ञक है ॥४ ॥

४१४०. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥५ ॥

उस व्रात्य के पञ्चम व्यान को ऋतुएँ कहा गया है ॥५ ॥

४१४१. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥६ ॥

उस व्रात्य के छठे प्राण को (आर्तव) ऋतुओं में प्रकट होने वाला पदार्थ कहा गया है ॥६ ॥

४१४२. तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥७ ॥

उस व्रात्य के सातवें व्यान को संवत्सर कहा गया है ॥७ ॥

४१४३. तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा
एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥८ ॥

देवशक्तियाँ उस व्रात्य के समान गुणों से युक्त अर्थ को ग्रहण करती हैं तथा संवत्सर और ऋतुएँ भी निश्चित रूप से उनका अनुसरण करती हैं ॥८ ॥

४१४४. तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥९ ॥

अमावास्या और पूर्णिमा के समय जो भाव आदित्य (सूर्य) में प्रविष्ट होते हैं, वे इस व्रात्य के भाव ही होते हैं ॥९ ॥

४१४५. तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृत्वमित्याहुतिरेव ॥१० ॥

उस व्रात्य और इन (उक्त सभी) भावों का एक अमरत्व है, ऐसा कहा गया है ॥१० ॥

[१८- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (अष्टादश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** दैवी पंक्ति, २, ३ आर्ची बृहती, ४ आर्ची अनुष्टुप् , ५ साम्नी उष्णिक् ।]

४१४६. तस्य व्रात्यस्य ॥१ ॥

४१४७. यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥२ ॥

उस व्रात्य का दक्षिण नेत्र सूर्यरूप तथा बायाँ नेत्र चन्द्ररूप है ॥१-२ ॥

४१४८. योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥३ ॥

इसका दाहिना कान अग्निरूप और बायाँ कान पवमानरूप है ॥३ ॥

४१४९. अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥४ ॥

दिन-रात्रि उसकी नासिका, दिति और अदिति सिर के दोनों कपाल भाग तथा वर्ष उसका सिररूप है ॥४ ॥

४१५०. अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥५ ॥

दिन में पूर्व की ओर तथा रात्रि में पश्चिम की ओर व्रात्य को हमारा नमन है ॥५ ॥
[इस मन्त्र के भाव से व्रात्य सम्बोधन सूर्य के लिए प्रयुक्त लगता है ।]

॥ इति पञ्चदशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ षाडश काण्डम् ॥

[१ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** प्रजापति । **छन्द-** १, ३ द्विपदा साम्नी बृहती, २, १० याजुषी त्रिष्टुप्, ४ आसुरी गायत्री, ५ द्विपदा साम्नी पंक्ति, ६ साम्नी अनुष्टुप्, ७ निचृत् विराट् गायत्री, ८ साम्नी पंक्ति, ९ आसुरी पंक्ति, ११ साम्नी उष्णिक्, १२-१३ आर्ची अनुष्टुप् ।]

सूक्त के देवता प्रजापति हैं। इसमें सृष्टि के विभिन्न घटकों-अवयवों के अतिसृष्ट (अदिति अखण्ड प्रवाह या अखण्ड ब्रह्म में से मुक्त होकर प्रकट) होने का वर्णन है। सृष्टि उद्भव की वैदिक अवधारणा यही है कि उस अखण्ड ब्रह्म के संकल्प से उसी के अन्दर से कुछ मूल घटक या तत्त्व मुक्त होकर निकल पड़े, उन्हीं से सृष्टि के नाना रूपों और पदार्थों का निर्माण हुआ -

४१५१. अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१ ॥

वृषभ (बलशाली अथवा वर्षणशील) अप् (मूल सक्रिय द्रव्य) विमुक्त होकर प्रकट हुआ, (उसी से) दिव्य अग्निदेव भी प्रकट हुए ॥१ ॥

४१५२. रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥२ ॥

४१५३. म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३ ॥

४१५४. इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४ ॥

४१५५. तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५ ॥

(इन ब्रह्म द्वारा अतिसृष्ट तत्त्वों में से) तोड़ने-फोड़ने वाले, नष्ट-भ्रष्ट करने वाले, घातक खोदने वाले, दाह उत्पन्न करने वाले, दाह उत्पन्न करने वाले मन का भञ्जन करने वाले, आत्म दूषण उत्पन्न करने वाले, काया को दूषित करने वाले, इन सबको हम त्यागते हैं और उन्हें कभी प्राप्त न करें । जिनसे हमें द्वेष है एवं जिन्हें हमसे द्वेष है, उन्हीं के माध्यम से हम उन (घातक पदार्थों) को त्यागते हैं ॥२-५ ॥

४१५६. अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६ ॥

हे जल के भीतर के उत्तम अंश ! हम आपको समुद्र की ओर विसर्जित करते हैं ॥६ ॥

४१५७. यो३प्स्व१ग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७ ॥

जल के मध्य घातक, खादक और शरीर को दोषयुक्त करने वाले अग्नि को हम दोष मुक्त करते हैं ॥७ ॥

४१५८. यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥८ ॥

हे जल ! आपमें जिस अग्नि तत्त्व ने प्रवेश लिया है, उनमें आपके लिए भयंकर अंश यह है ॥८ ॥

४१५९. इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९ ॥

आपके परम वैभवयुक्त अंशों का इन्द्रिय शक्ति से अभिषेक करना चाहिए ॥९ ॥

४१६०. अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥१० ॥

विकार रहित जल हमसे सभी प्रकार के पाप- विकारों को दूर हटाए ॥१० ॥

४१६१. प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥११ ॥

यह जल हमारे पाप- विकारों को प्रवाहित करके दूर ले जाए और दुःस्वप्नों के प्रभाव को भी दूर करे ॥११ ॥

४१६२. शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२ ॥

हे जल !आप हमें अनुग्रह- दृष्टि से देखें और अपने कल्याणकारक अंगों से हमारी त्वचा का स्पर्श करें ॥१२।

४१६३. शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥१३ ॥

जल में संव्याप्त मंगलकारी अग्नियों को हम आमन्त्रित करते हैं, यह दिव्य जल हमारे अन्दर क्षात्रबल (पराक्रमशक्ति) और तेजस्विता प्रतिष्ठित करे ॥१३ ॥

[२ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** वाक् । **छन्द-** १ आसुरी अनुष्टुप्, २ आसुरी उष्णिक्, ३ साम्नी उष्णिक् , ४ त्रिपदा साम्नी बृहती, ५ आर्ची अनुष्टुप्, ६ निचृत् विराट् गायत्री ।]

४१६४. निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥१ ॥

हम विकारजनित नेत्र रोग (अर्म) से सर्वथा मुक्त रहें, हमारी वाणी मधुर और ओजस्वी हो ॥१ ॥

४१६५. मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥२ ॥

(हे ओषधियो !) आप मधुरता सम्पन्न हैं, अतएव हम भी मधुर वाणी का प्रयोग करें ॥२ ॥

४१६६. उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३ ॥

हम इन्द्रियों के पालनकर्त्ता मन को बुलाते हैं और (सोमपान करने वाले) मुख को बुलाते हैं ॥३ ॥

४१६७. सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४ ॥

हमारे दोनों कान श्रेष्ठ ज्ञान, कल्याणकारी वचन और हितकारी वार्तालाप का ही श्रवण करें ॥४ ॥

४१६८. सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५ ॥

श्रेष्ठ श्रवणशक्ति और दूर से सुनने की क्षमता मेरा परित्याग कदापि न करे । हम सदैव गरुड़ के नेत्र के समान तेजस्वी दृष्टि से युक्त रहें ॥५ ॥

४१६९. ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६ ॥

आप ऋषियों के पाषाण हैं, देवरूप आप (पाषाण) को हमारा नमन है ॥६ ॥

[३ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आदित्य । **छन्द-** १ आसुरी गायत्री, २-३ आर्ची अनुष्टुप्, ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ५ साम्नी उष्णिक्, ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।]

४१७०. मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥१ ॥

धन- सम्पदा की दृष्टि से हम मूर्धन्य बनें और समान स्पर्धी लोगों के अग्रणी बनें ॥१ ॥

४१७१. रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥२ ॥

तेजस्विता और कान्ति हमारा परित्याग न करे । मूर्धा (विचार) और धर्म भी हमारा परित्याग न करे ॥२ ॥

४१७२. उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥३ ॥

आचमन पात्र, चमसपात्र, धारक और आश्रय देने वाले भी कभी हमें परित्यक्त न करें ॥३ ॥

४१७३. विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४ ॥

मुक्तिप्रद और आर्द्रशस्त्र हमें न छोड़ें ।आर्द्रता देने वाला जल और मातरिश्वा (प्राण) हमें छोड़कर न जाएँ ॥४ ॥

४१७४. बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥५ ॥

प्रसन्नता देने वाले, अनुकम्पा प्रदायक तथा मन को एकाग्र करने वाले बृहस्पतिदेव हमारी अन्तरात्मा हैं ॥५ ॥

४१७५. असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६ ॥

हमारे हृदय सन्तापरहित हों, विशाल गौ (पृथ्वी) हो ।धारण क्षमता के द्वारा हम समुद्र के समान हों ॥६ ॥

[४ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आदित्य । **छन्द-** साम्नी अनुष्टुप् , २ साम्नी उष्णिक् , ४ त्रिपदा अनुष्टुप् , ५ आसुरी गायत्री, ६ आर्ची उंष्णिक् , ७ त्रिपदा विराड्गर्भा अनुष्टुप् ।]

४१७६. नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१ ॥

हम वैभव, सम्पदा और समान जातीय बन्धुओं दोनों के नाभि (केन्द्र) बनकर रहें ॥१ ॥

४१७७. स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥२ ॥

मरणधर्मा मनुष्यों में तेजस्वी उषा अमरत्व प्रदान करने वाली और उत्तम रीति से विराजमान होने वाली हो ॥

४१७८. मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥३ ॥

जीवनतत्त्व, प्राण और अपान कभी भी हमें छोड़कर दूर न जाएँ ॥३ ॥

४१७९. सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो
मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥४ ॥

सूर्यदेव दिन से, अग्निदेव पृथ्वी से, वायुदेव अन्तरिक्ष से, यमदेव मनुष्यों से तथा देवी सरस्वती पृथ्वी से उत्पन्न हुए पदार्थों से हम सभी की सुरक्षा करें ॥४ ॥

४१८०. प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥५ ॥

जीवनतत्त्व प्राण और अपान हमारा परित्याग न करें, हमारा अस्तित्व बना रहे ॥५ ॥

४१८१. स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥६ ॥

आज (की प्रभातवेला) और रात्रि हमारे लिए कल्याणप्रद हो । हम सभी प्रकार के जल-समूह और सभी गणों से सम्पन्न होकर सुख का उपभोग करें ॥६ ॥

४१८२. शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

हे पशुओ ! आप सामर्थ्यवान् हों , हमारे समीप उपस्थित रहें । मित्र और वरुणदेव हमारे प्राण-अपान तत्त्व को परिपुष्ट करें तथा अग्निदेव हमारी सामर्थ्य को सुदृढ़ करें ॥७ ॥

[५ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** यम । **देवता-** दुःस्वप्ननाशन । **छन्द-** १,४-६ (१) विराट् गायत्री, २, ४-७(२), ९ प्राजापत्या गायत्री, ३, ४-७ (३) , १० द्विपदा साम्नी बृहती, ७ (१) भुरिक् विराट् गायत्री, ८ स्वराट् विराट् गायत्री ।]

४१८३. विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१ ॥

हे स्वप्न !हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं, तुम ग्राह्यपिशाची (व्याधि) के पुत्र हो और यमदेव के उपकरण हो ॥

४१८४. अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२ ॥

तुम अन्त करने वाले और मत्युरूप हो ॥२ ॥

४१८५. तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे उस स्वरूप के ज्ञाता हैं, अतएव दु: स्वप्नों से तुम हमें बचाओ ॥३ । ।

४१८६. विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥४ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं । तुम पाप देवी (निर्ऋति) के पुत्र और यमदेव के साधनभूत हो ॥४ ॥

४१८७. विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥५ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारी उत्पत्ति को भली प्रकार जानते हैं । तुम अभूति के पुत्र और यमदेव के साधन भूत हो ।

४१८८. विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥६ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे उद्‌भव के ज्ञाता हैं । तुम निर्भूति (निर्धनता) के पुत्र और मृत्युदेव के साधन हो ॥६ ॥

४१८९. विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रो ऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥७ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं, तुम पराभव के पुत्र और मृत्यु की ओर ले जाने के साधन हो ॥७ ॥

४१९०. विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे ज्ञाता हैं, तुम इन्द्रिय विकारों के पुत्र और मृत्युदेव की ओर ले जाने के साधन हो ॥८ ॥

४१९१. अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९ ॥

तुम जीवन को अन्त करने वाले और साक्षात् मृत्यु की प्रतिमूर्ति हो ॥९ ॥

४१९२. तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥१० ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे उस स्वरूप के ज्ञाता हैं । अतएव तुम हमें बुरे स्वप्न के प्रभाव से मुक्त रखो ॥१० ॥

[६ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि**- यम । **देवता**- उषा, दुःस्वप्ननाशन । **छन्द**- प्राजापत्या अनुष्टुप् , ५ साम्नी पंक्ति, ६ निचृत् आर्ची बृहती, ७ द्विपदा साम्नी बृहती, ८ आसुरी जगती, ९ आसुरी बृहती, १० आर्ची उष्णिक् , ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री अथवा आर्ची अनुष्टुप् ।]

४१९३. अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥१ ॥

हम विजय प्राप्त करें, भूमि उपलब्ध करें और पाप- तापों से मुक्त रहें ॥१ ॥

४१९४. उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥२ ॥

हे उष:काल ! जिस बुरे स्वप्न से हम भयभीत होते हैं, वह भय विनष्ट हो जाए ॥२ ॥

४१९५. द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥३ ॥

(हे देव !) आप इस भय को उनके समीप ले जाएँ, जो हमसे विद्वेष रखते हैं और जो हमारे निन्दक हैं ॥३ ॥

४१९६. यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥४ ॥

जो हमारे प्रति द्वेष रखते हैं और हम जिनसे द्वेष रखते हैं, उनकी ओर हम इस भय को प्रेरित करते हैं ॥४ ॥

४१९७. उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्यु१षसा संविदाना ॥५ ॥

देवी उषा वाणी के साथ और वाग्देवी उषा के साथ सम्मति रखती हुई मिलें ॥५ ॥

४१९८. उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६ ॥

उषा के पति वाचस्पति के साथ तथा वाचस्पति उषा के स्वामी के साथ सहमत होते हुए परस्पर मिलें ॥६ ॥

४१९९. ते३मुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७ ॥

४२००. कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥८ ॥

वे इस दुष्ट शत्रु के लिए दूषित नाम वाले दु:ख और अन्य आपदाओं, कुम्भ के समान बढ़ने वाले उदर रोगों, शरीरजन्य दूषित रोगों और प्राण घातक रोगों को प्रेरित करें ॥७-८ ॥

४२०१. जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥९ ॥

४२०२. अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१० ॥

जाग्रत् अवस्था के समय बुरे स्वप्न से मिलने वाले फलों, सुषुप्त अवस्था में बुरे स्वप्न से प्राप्त होने वाले फलों, दरिद्रता के भूतकालीन संकल्पों, न प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पदार्थों और न मुक्त होने योग्य द्रोहजनित पाशों से हम आपको मुक्त करते हैं ॥९-१० ॥

४२०३. तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! उन सभी प्रकार की आपदाओं को शत्रु की ओर सम्पूर्ण देवगण ले जाएँ, जिससे वह शत्रु पौरुषहीन, व्यथायुक्त और सज्जनोचित गरिमा से रहित हो जाए ॥११ ॥

[७ - दु:खमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** यम । **देवता-** दु:स्वप्ननाशन । **छन्द-** १ पंक्ति, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३ आसुरी उष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आर्ची उष्णिक्, ६, ९, ११ साम्नी बृहती, ७ याजुषी गायत्री, ८ प्राजापत्या बृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।]

४२०४. तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं
विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१ ॥

हम इसे अभिचार क्रिया से, अभूति (दुर्गति) से, दारिद्र्य (निर्भूति) से, पराभूति (पराभव) से, ग्राह्य (रोग) से और अन्धकार (अज्ञान) से विदीर्ण करते हैं ॥१ ॥

४२०५. देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥२ ॥

हम इसे देवशक्तियों के भयानक और क्रूरतापूर्ण निर्देशों के सामने उपस्थित करते हैं ॥२ ॥

४२०६. वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥३ ॥

हम इसे वैश्वानर अग्नि की दाढ़ों में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

४२०७. एवानेवाव सा गरत् ॥४ ॥

वह आपदा इस शत्रु का इस रीति अथवा अन्य रीति से भक्षण करे ॥४ ॥

४२०८. यो३स्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५ ॥

जो हमसे द्वेष करते हैं, आत्मचेतना उससे द्वेष करे तथा जिसके प्रति हम द्वेषभाव रखते हैं, वह अपनी चेतना के प्रति द्वेष करे ॥५ ॥

४२०९. निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६ ॥

हम ईर्ष्या-द्वेष रखने वाले को द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष से दूर फेंकते हैं ॥६ ॥

४२१०. सुयामंश्चाक्षुष ॥७ ॥

४२११. इदमह मामुष्यायणे३मुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८ ॥

हे श्रेष्ठ नियामक निरीक्षणकर्त्ता ! हम बुरे स्वप्नों से प्राप्त होने वाले फल को अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक के पुत्र में प्रेषित करते हैं ॥७-८ ॥

४२१२. यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥९ ॥

४२१३. यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥१० ॥

४२१४. यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥११ ॥

पूर्वरात्रि में जिन अमुक कर्मों को हम प्राप्त कर चुके हैं, जो जाग्रत् स्थिति, सुषुप्त स्थिति, दिन में , रात्रि में अथवा नित्यप्रति हम पापजन्य दोषों को प्राप्त करते हैं, उन दोषों से हम इसे (शत्रु को) विनष्ट करते हैं ॥९-११ ॥

४२१५. तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२ ॥

हे देव ! आप उस शत्रु के साथ चलते हुए उसका संहार करें और उसकी पसलियों को भी भग्न करें ॥१२ ॥

४२१६. स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥१३ ॥

प्राणतत्त्व उसका परित्याग करें, वह जीवित न रहे ॥१३ ॥

[८ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि**- यम । **देवता**- दुःस्वप्ननाशन । **छन्द**- १, ५- २९ (१) , ३० यजुर्ब्राह्मी एकपदा अनुष्टुप् , २, ५-२९ (२), ३१ त्रिपदा निचृत् गायत्री, ३ प्राजापत्या गायत्री, ४, ५-२९ (४), ३३ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् , ५-७ (३), १२ (३), २० (३), २२ (३), २७ (३) आसुरी जगती, ८ (३), १०-११ (३), १३-१४ (३), १६ (३), २१ (३) आसुरी त्रिष्टुप् , ९ (३), १५ (३), १७-१९ (३), २३-२६ (३), ३२ आसुरी पंक्ति, २८-२९ (३) आसुरी बृहती ।]

४२१७. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१ ॥

विजयश्री प्राप्त करके लाये गये और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके लाये गये पदार्थ हमारे हैं । सत्य

तेजस्विता, सद्ज्ञान, स्वर्गीय सुख (आत्मज्ञान) , यज्ञीय सत्कर्म , गौ आदि दुधारू पशु, प्रजारूप सन्तति और शूरवीर हमारे गौरव को बढ़ाएँ ॥१ ॥

४२१८. तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२ ॥

जो अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक की सन्तान हमारी शत्रु है, उसे इस अपराध कर्म के फलस्वरूप, हम इस लोक से दूर भगाते हैं ॥२ ॥

४२१९. स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३ ॥

वह शत्रु ग्राह्य (रोग) के बन्धन से मुक्त न हो ॥३ ॥

४२२०. तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४ ॥

हम उसकी तेजस्विता, वर्चस्व, प्राणऊर्जा और आयुष्य को घेरकर उसे औंधे मुँह गिराते हैं ॥४ ॥

४२२१. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥५ ॥

विजय प्राप्ति से उपलब्ध पदार्थ शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने से प्राप्त पदार्थ, सत्यनिष्ठा, तेजस्विता, सद्ज्ञान, (ब्रह्म) , स्वर्गीय सुख (आत्मज्ञान) , यज्ञीय सत्कर्म, गौ आदि पशु, प्रजारूप सन्तति और वीर सन्तानें हमारे गौरव को बढ़ाएँ । अमुक गोत्र में उत्पन्न अमुक की सन्तान को हम इस लोक से दूर भगाते हैं । वह पाप देवता के पाश बन्धन से जकड़ा रहे । हम उसकी तेजस्विता वर्चस्व, प्राण और आयुष्य को क्षीण करके, उसे अधोगामी करते हुए धराशायी करते हैं ॥५ ॥

मन्त्र क्र. ५ से २९ तक मन्त्रों और उनके अर्थ में केवल एक छोटा - सा चरण (अमुक बन्धन में बाँधते हैं) भर भिन्न है, बाकी सब अंश एक ही जैसे हैं । अतः आगे भावार्थ में केवल भिन्नता वाले चरण का अर्थ लिखकर शेष भाग को यथावत् (.....) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है-

४२२२. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥६ ॥

विजय प्राप्ति से...... भगाते हैं । वह दरिद्रता के पाश से मुक्त न हो । हम उसको...... धराशायी करते हैं ॥६ ॥

४२२३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥७ ॥

विजय प्राप्ति से...... भगाते हैं । वह दुर्गतिजन्य दुर्दशा (निर्भूति) के पाश से विमुक्त न हो सके । हम उसको...... धराशायी करते हैं ॥७ ॥

४२२४. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥८ ॥

विजय प्राप्ति से...... भगाते हैं। वह पराभव (पराभूति) के बन्धन से मुक्त न होने पाए। हम उसको...... धराशायी करते हैं ॥८ ॥

४२२५. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥९ ॥

विजय प्राप्ति से...... भगाते हैं। वह इन्द्रिय विकारों (देवजामि) के बन्धन से मुक्ति प्राप्त न कर सके। हम उसको...... धराशायी करते हैं ॥९ ॥

४२२६. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१० ॥

विजय प्राप्ति से...... भगाते हैं। वह बृहस्पतिदेव के बन्धन से मुक्त न हो सके। हम उसको...... धराशायी करते हैं ॥१० ॥

४२२७. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥११ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं। वह प्रजापतिदेव के पाश से न छूट पाए। हम उसको...... धराशायी करते हैं ॥११ ॥

४२२८. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१२ ॥

विजय प्राप्ति से...... भगाते हैं। वह ऋषियों के पाश से मुक्त न हो सके। हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१२ ॥

४२२९. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१३॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं। वह ऋषियों से उत्पन्न (आर्षेय) बन्धनों से न छूटे। हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१३॥

४२३०. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१४॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं। वह अङ्गिराओं के बन्धन से विमुक्त न हो। हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१४॥

४२३१. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१५॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं। वह आङ्गिरस के बन्धन से विमुक्त न हो। हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१५॥

४२३२. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१६॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं। वह अथर्वाओं के पाश से न छूटे। हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१६॥

४२३३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१७॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं। वह आथर्वणों के वचन से छूट न पाये। हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१७॥

४२३४. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१८ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह वनस्पतियों के पाश से छुटकारा न पा सके । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१८ ॥

४२३५. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१९ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह वनस्पति से जन्य पाश में जकड़ा रहे । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१९ ॥

४२३६. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२० ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह ऋतुओं के पाश से न छूटे । हम उसको ...... उसे अधोगामी करते हुए धराशायी करते हैं ॥२० ॥

४२३७. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आर्तवानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२१ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह (आर्तव) ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पदार्थों के बन्धन से जकड़ा रहे । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥२१ ॥

४२३८. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स मासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह मासों (महीनों) के बन्धन में आबद्ध रहे । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥२२ ॥

४२३९. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३ ॥

विजय प्राप्ति से .... भगाते हैं । वह अर्ध मासों के बन्धन में बँधा रहे । हम उसको .... धराशायी करते हैं ॥२३ ॥

४२४०. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४ ॥

विजय प्राप्ति से .... भगाते हैं । वह दिन और रात्रि के बन्धन में बँधा रहे । हम उसको .... धराशायी करते हैं ॥२४ ॥

४२४१. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२५ ॥

विजय प्राप्ति से ......भगाते हैं । वह दिन- रात्रि के संपत भागों के पास से बँधा रहे । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥२५ ॥

४२४२. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२६ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह द्युलोक और पृथ्वी के बन्धन से जकड़ा रहे । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥२६ ॥

४२४३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२७ ॥

विजय प्राप्ति से ...... भगाते हैं । वह इन्द्र और अग्निदेव के पाशों से जकड़ा रहे । हम उसको ...... धराशायी करते हैं ॥१७ ॥

४२४४. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२८ ॥

विजय प्राप्ति से ..... भगाते हैं । वह मित्र और वरुणदेव के बन्धन में बँधा रहे । हम उसको ..... धराशायी करते हैं ॥२८ ॥

४२४५. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२९ ॥

विजय प्राप्ति से .... भगाते हैं । वह राजा, वरुण के पाश में जकड़ा रहे । हम उसको .... धराशायी करते हैं ॥२९ ॥

४२४६. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥३० ॥

विजयश्री से अर्जित पदार्थ, शत्रुओं को छिन्न-भिन्न (विदीर्ण) करने से प्राप्त पदार्थ, सत्यनिष्ठा, तेजस्विता, सद्ज्ञान (ब्रह्म), स्वर्गीय आनन्द (आत्मज्ञान), यज्ञीयसत्कर्म, गौ आदि पशु, प्रजारूप सन्तति और वीर सन्तानें हमारी गरिमा के अनुरूप हों ॥३० ॥

४२४७. तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥३१ ॥

अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक की सन्तान को हम इस लोक से निष्कासित करते हैं ॥३१ ॥

४२४८. स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३२ ॥

वह मृत्युदेव के पाश बन्धन से न छूटे ॥३२ ॥

४२४९. तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३३ ॥

उसकी उस तेजस्विता, वर्चस्व (बल- सामर्थ्य) प्राणशक्ति और आयुष्य आदि का ह्रास करते हुए हम उसे अधोगामी करके गिराते हैं ॥३३ ॥

[९ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि**- यम । **देवता**- १ प्रजापति, २ सोम, पूषा, ३-४ सूर्य । **छन्द**- १ आर्ची अनुष्टुप्, २ आर्ची उष्णिक्, ३ साम्नी पंक्ति, ४ परोष्णिक् ।]

४२५०. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१ ॥

विजयश्री से उपलब्ध पदार्थ और छिन्न - भिन्न उपार्जित किए (हथियाए) गये पदार्थ हमारे वर्चस्व को बढ़ाएँ, हम समस्त शत्र सैन्य शक्ति पर प्रतिष्ठित रहें ॥१ ॥

४२५१. तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥२ ॥

अग्निदेव और सोमदेव इसी आशय का अनुमोदन कर रहे हैं। पूषादेव हमें पुण्यलोक में अधिष्ठित (विराजमान) करें ॥२ ॥

४२५२. अगन्म स्व१: स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥३ ॥

हम आत्मज्योति (स्वर्गलोक) को प्राप्त हों, हम अपनी तेजस्विता को प्राप्त करें । हम सूर्य की ज्योति से संयुक्त होकर भली प्रकार स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करें ॥३ ॥

४२५३. वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥४ ॥

ऐश्वर्य- सम्पदा की वृद्धि के लिए हमें धन- सम्पदा का स्वामी बनाएँ । हे देव ! ऐश्वर्य भी यज्ञ स्वरूप है, अत: आप हममें वैभव- सम्पदा स्थापित करें ॥४ ॥

॥ इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ सप्तदश काण्डम् ॥

[१ - अभ्युदयार्थप्रार्थना सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा। **देवता-** आदित्य। **छन्द-** त्र्यवसाना षट्पदा अतिजगती, १त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ६-७,१९ त्र्यवसाना सप्तपदात्यष्टि, ८, ११, १६ त्र्यवसाना सप्तपदातिधृति, ९, १४-१५ पञ्चपदा शक्वरी, १० त्र्यवसाना अष्टपदा धृति, १२ त्र्यवसाना सप्तपदा कृति, १३ त्र्यवसाना सप्तपदा प्रकृति, १७ पञ्चपदा विराट् अतिशक्वरी, १८ त्र्यवसाना सप्तपदा भुरिक् अष्टि, २० ककुप् उष्णिक् , २१ चतुष्पदा उपरिष्टात् बृहती, २२द्विपदा अनुष्टुप्, २३द्विपदा निचृद् बृहती, २४ विराडत्यष्टि, २५-२६ अनुष्टुप् , २७, ३० जगती, २८-२९ त्रिष्टुप् ।]

४२५४. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥१ ॥

अतिसमर्थ, सहनशील, शत्रुहनन के सहज स्वभाव से युक्त, वैरी को दबा डालने में सक्षम, नित्य विजेता, महाबली, अपने पराक्रम से दिग्विजय करने में समर्थ, स्वर्ग के विजेता , गौ (भूमि, इन्द्रियों और गौओं) के विजयी, वैभव सम्पदा के विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं, उनकी अनुकम्पा से हम दीर्घायुष्य प्राप्त करें

४२५५. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥२ ॥

अतिसमर्थ, सहिष्णुतायुक्त, शत्रुहनन के सहज स्वभाव से युक्त, वैरी पर दबाव डालने में सक्षम, नित्य विजेता, महाबलिष्ठ, अपने पराक्रम से दिग्विजय में सक्षम, स्वर्ग के विजेता, पृथ्वी, इन्द्रियों और गौओं के विजेता, ऐश्वर्यों को जीतने वाले, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं। उनकी अनुकम्पा से हम, देवशक्तियों के प्रियपात्र बनें ॥२

४२५६. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥३ ॥

अति सक्षम, सहिष्णु, शत्रुओं के स्वाभाविक हन्ता, शत्रु को दबा डालने में समर्थ, नित्य विजेता, महाबलशाली, स्वसामर्थ्य से दिग्विजय में सक्षम, स्वर्ग को जीतने वाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं तथा ऐश्वर्यों के विजेता, इन्द्र-रूप सूर्य को हम आवाहित करते हैं। उनके अनुग्रह से हम प्रजाजनों के प्रिय पात्र बनें ॥३ ॥

४२५७. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥४ ॥

अति सक्षम, सहनशील, शत्रुओं के सहज हननकर्त्ता, वैरी को दबा डालने में समर्थ, महाबलिष्ठ, नित्य विजेता, स्वर्गीय सुखों, भूमि, इन्द्रियों और गौओं तथा वैभव सम्पदा के विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं। उनकी अनुकम्पा से हम पशुओं (गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हाथी, घोड़े- ऊँट आदि) के प्रियपात्र बनें ॥४ ॥

४२५८. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५ ॥

अत्यन्त समर्थ, सहनशील, शत्रुओं के स्वाभाविक हन्ता, शत्रुओं को दबाने में सक्षम, महाबली, नित्य विजेता, स्वर्गीय सुखों, भूमि, इन्द्रियों, गौओं तथा धन- सम्पदा के विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं। उनकी कृपादृष्टि से हम समवयस्क मनुष्यों के प्रिय रहें ॥५ ॥

४२५९. उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥६॥

हे सूर्यदेव ! उदित हों, उदित होकर अपने वर्चस् से हमें प्रकाशित करें, हमसे द्वेष- भाव रखने वाले, हमारे वशीभूत हों ; परन्तु हम भूलकर भी विद्वेषी शत्रुओं के चंगुल में न आएँ । हे विष्णुरूप सूर्यदेव ! आपका असीम (अनन्त) पराक्रमी शौर्य (कार्य) है, आप हमें विभिन्न आकृतियों से युक्त, पशुओं से परिपूर्ण करें तथा अन्त में परमव्योम (स्वर्ग) में प्रतिष्ठित करें और सुधारस से परितृप्त करें ॥६॥

[मन्त्र क्र. ६ से १९ तक मन्त्रों और उनके अर्थ के अन्तिम चरण एक जैसे हैं। अतः आगे के भावार्थ में अन्तिम भाग को यथावत् (....) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है।]

४२६०. उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥७॥

हे सूर्यदेव ! आप उदित हों, उदित होकर अपनी तेजस्विता से हमें प्रकाशित करें । जिन प्राणियों को हम देखते हैं तथा जिन्हें देखने में सक्षम नहीं हैं, उन दोनों के सम्बन्ध में हमें श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित करें । हे विष्णुरूप !...... परितृप्त करें ॥७॥

४२६१. मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र। हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥८॥

हे सूर्यदेव ! जल के बीच पाशधारी (प्रच्छन्नचारी) राक्षस आपको अन्तरिक्षीय जल में दबाने में समर्थ न हो सकें । हे सूर्यदेव ! आप निन्दा भाव त्यागकर द्युलोक में आरूढ़ हों और हमें सुख प्रदान करें । हम आपके अनुग्रहपूर्ण मार्गदर्शन में रहें । हे विष्णुरूप सूर्यदेव !..... परितृप्त करें ॥८॥

४२६२. त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥९॥

हे इन्द्रदेव ! सौभाग्य की प्राप्ति के लिए आप अदम्य प्रकाश से हमारा संरक्षण करें । हे विष्णुरूप सूर्यदेव !...... परितृप्त करें ॥९॥

४२६३. त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव। आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारा कल्याण करें, अपने संरक्षण साधनों से कल्याणप्रद हों । आप तृतीय स्थान द्युलोक में आरूढ़ होकर सोमरस का पान करते हुए, प्रकाश प्रदान करते हुए और लोक कल्याण करते हुए हमारा संरक्षण करें । हे विष्णुरूप सूर्यदेव !...... परितृप्त करें ॥१०॥

४२६४. त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र। त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥११॥

हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्ररूप सूर्य ! आप समस्त विश्व के विजेता, सर्वज्ञ और प्रशंसनीय हैं। आप उत्तम स्तोत्रों को प्रेरित करें, हमें सुख प्रदान करें, हम आपकी कृपाबुद्धि में स्थित रहें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !..... परितृप्त करें॥११॥

४२६५. अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे। अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥१२॥

हे इन्द्रात्मक सूर्य ! आप द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथ्वी में अदम्य हैं ; क्योंकि आप अजस्र शक्ति के स्रोत ब्रह्म द्वारा निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !..... परितृप्त करें॥१२॥

४२६६. या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्

हे इन्द्ररूप सूर्यदेव ! आप जल में स्थित ओषधि के सारभूत तत्त्वों से हमें सुख प्रदान करें। पृथ्वी और अग्नितत्त्व में जो सुख विद्यमान है, वह हमें प्रदान करें तथा अन्तरिक्ष में संव्याप्त अपने स्वरूप से आप हमारा कल्याण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !..... परितृप्त करें॥१३॥

४२६७. त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥१४।

हे इन्द्रात्मक सूर्यदेव ! अभीष्ट फल की कामना से युक्त प्राचीन ऋषि आपको स्तोत्रों से प्रवृद्ध करते हुए सत्र नामक यज्ञ सम्पन्न करने के लिए अनुशासित होकर बैठते थे। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !..... परितृप्त करें॥१४॥

४२६८. त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥१५॥

हे इन्द्रात्मक सूर्यदेव ! आप विस्तृत अन्तरिक्ष में संव्याप्त अनन्त धाराओं से युक्त मेघों को प्राप्त होते हैं। ये मेघ ओषधियों के संवर्धक और यज्ञ के साधनभूत होकर यज्ञ की प्रतिमूर्ति हैं। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव !..... परितृप्त करें॥१५॥

४२६९. त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि। त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥१६॥

हे सूर्यदेव ! आप चारों दिशाओं के संरक्षक हैं। आप अपनी तेजस्विता से द्युलोक और पृथ्वी को आलोकित करते हैं और इन सभी लोकों के अनुकूल होकर प्रतिष्ठित होते हैं। ऋत (यज्ञ-सत्य) को समझकर उसी मार्ग का अनुसरण करते हैं। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव !..... परितृप्त करें॥१६॥

४२७०. पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।

हे सूर्यदेव ! आप पाँच (किरणों) से ऊपर के लोकों को प्रकाशित करते हैं तथा एक (किरण) से नीचे की ओर प्रकाश फैलाते हैं । इस प्रकार (कुहरे, मेघ आदि से रहित) सुदिन की स्थिति में सभी लोगों द्वारा आप प्रार्थित होते हैं । हे विष्णुरूप सूर्यदेव !...... परितृप्त करें ॥१७ ॥

[अन्तरिक्ष (भुवः) में स्थित सूर्य ऊपर के पाँच लोकों (स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्) को प्रकाशित करते हैं और नीचे के एक (भूः) लोक को प्रकाशित करते हैं- यही पाँच और एक किरण का तात्पर्य है ।]

४२७१. त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१८ ॥

हे सूर्यदेव ! आप ही स्वर्गलोक के अधिपति इन्द्र हैं, आप ही पुण्यात्माओं को प्राप्त होने वाले पुण्यलोक हैं । सम्पूर्ण प्रजा के उत्पादक (स्रष्टा) आप ही हैं । साधकगण आपके लिए ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ सम्पन्न करते हैं । हे सर्वव्यापक देव !...... परितृप्त करें ॥१८ ॥

४२७२. असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१९ ॥

असत् (प्राकृतिक) जगत् में सत् (चेतन तत्त्व) है और सत् तत्त्व (चेतन तत्त्व) में उत्पन्न हुआ यह जगत् प्रतिष्ठित है । भूत (अतीत) समूह भविष्यत् (आगे होने वाले भूत समूह) में विद्यमान रहता है और भविष्यत् विगत भूत समूह पर आश्रित रहता है । हे विष्णुरूप सूर्यदेव !...... परितृप्त करें ॥१९ ॥

४२७३. शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२० ॥

हे सूर्यदेव ! आप तेजस्वी होकर देदीप्यमान रहते हैं । हे देव ! जिस प्रकार आप सम्पूर्ण विश्व को अपनी तेजस्विता से प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार हम (उपासक) भी तेजोमय प्रकाश को प्राप्त करें ॥२० ॥

४२७४. रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥२१ ॥

हे सूर्यदेव ! आप दीप्तिरूप और देदीप्यमान रहने वाले हैं । जिस प्रकार आप विश्व की प्रकाशक दीप्ति से देदीप्यमान हैं, उसी प्रकार हम भी गौ, अश्वादि पशुओं और ब्रह्मतेजस् से प्रकाशमान रहें ॥२१ ॥

४२७५. उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः। विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२ ॥

हे सूर्यदेव ! उदीयमान को नमस्कार है, ऊपर उठने वाले को नमस्कार है, उदय हो चुकने वाले को नमस्कार है, विशेष दीप्तिमान् को नमन है, स्वकीय तेजस्विता से जाज्वल्यमान को नमन है तथा उत्कृष्टरूप से प्रकाशमान को हमारा वन्दन है ॥ २२ ॥

४२७६. अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३ ॥

अस्त होने की स्थिति वाले, अर्द्धास्त हो चुकने वाले और सम्पूर्णरूप से अस्त हो चुकने वाले आदित्य को नमन है । विशेष तेजवान् , श्रेष्ठ प्रकाशमान तथा स्वकीय तेजस्विता से प्रकाशित होने वाले सूर्यदेव के निमित्त हमारा वन्दन है ॥२३ ॥

४२७७. उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां
मा धेहि परमे व्योमन् ॥२४ ॥

अपने किरण समूह से सम्पूर्ण लोकों को भली प्रकार प्रकाशित करते हुए सूर्यदेव, हमारे आधि-व्याधि रूप शत्रुओं (विकारों) को दूर करते हुए उदित हो गये हैं । हे सूर्यदेव ! आपकी कृपादृष्टि से हम दुष्ट- विकारों के वशीभूत न हो सकें । हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके अनन्त पराक्रम हैं, आप हमें विभिन्न आकारों से युक्त पशुओं से परिपूर्ण करें । देहत्याग के पश्चात् हमें परम व्योम में अधिष्ठित करें और अमृतरस से तृप्त करें ॥२४ ॥

४२७८. आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥२५ ॥

हे सूर्यदेव ! आप हमारे कल्याण के निमित्त सैकड़ों अरित्रों (डाँडों) से युक्त नाव पर आरोहण करें । आप दिन में और रात्रि के समय भी हमारे साथ रहकर हमें पार करें ॥२५ ॥

४२७९. सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप (आकाश सागर से पार जाने के लिए) विश्व के मंगलार्थ (वायुरूपी) सैकड़ों पतवारों के साथ (रथरूपी) नाव पर आरूढ़ हुए हैं । आपने हमें सकुशल रात्रि के पार पहुँचा दिया है, इसी प्रकार आप हमें दिन के भी पार उतारें ॥२६ ॥

४२८०. प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७ ॥

प्रजापतिरूप सूर्य के ज्ञानरूप कवच से आच्छादित होते हुए हम कश्यप (सर्वदर्शक) के तेज और शक्ति से युक्त होकर वृद्धावस्था पर्यन्त नीरोग रहकर सुदृढ़ अंग- अवयवों से युक्त रहते हुए चिरकाल तक विभिन्न भोगों का उपभोग करें । हमारी गति कहीं अवरुद्ध न हो । हम दीर्घायु पाकर लौकिक और वैदिक सम्पूर्ण क्रियाकलापों को भली प्रकार सम्पन्न करके स्वयं को धन्य बनाएँ । हे सूर्यदेव ! हम आपके कृपापात्र रहें ॥२७ ॥

४२८१. परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८ ॥

हम कश्यप (द्रष्टा) आदित्यदेव के मन्त्ररूप कवच, उनके तेज और रश्मि प्रकाश से संरक्षित रहें । अतएव हमारे संहारार्थ देवों और मनुष्यों द्वारा भेजे गये बाण (आयुध) हमें प्रभावित न करें (अर्थात् हमारे संहार में समर्थ न हों) ॥२८ ॥

४२८२. ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९ ॥

हम सत्यनिष्ठा से वसन्तादि ऋतुओं से तथा पूर्वकाल और भविष्यत्काल में उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थों से संरक्षित रहें। नरक का निमित्त कारण पाप कर्म और मृत्यु हमें प्राप्त न हो। हम मन्त्ररूपी वाणी से स्वयं को रक्षित (परिष्कृत) करते हैं ॥२९ ॥

४२८३. अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३० ॥

संरक्षक अग्निदेव सभी ओर से हमारी सुरक्षा करें, सूर्यदेव उदित होते समय मृत्यु के रूप में विस्तृत सर्प, अग्नि, व्याघ्र आदि के बन्धनों से मुक्त करें। प्रकाशयुक्त उषःकाल और स्थिर पर्वत मृत्यु के बन्धनों का निवारण करें। प्राणशक्ति विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में सचेष्ट होता हुआ हमारी आयुष्य वृद्धि में संलग्न रहे, इन्द्रिय शक्तियाँ भी सतत हममें चेष्टाशील रहें ॥३० ॥

॥ इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥अथाष्टादशं काण्डम्॥

[१ - पितृमेध सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** यम, मन्त्रोक्त, ४० रुद्र, ४१-४३ सरस्वती, ४४-४६, ५१-५२ पितरगण । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ८, १५ आर्षी पंक्ति, १४, ४९-५० भुरिक् त्रिष्टुप्, १८-२३ जगती, ३७-३८ परोष्णिक्, ५६-५७, ६१ अनुष्टुप्, ५९ पुरोबृहती ।]

इस सूक्त के मंत्र क्रमांक १ से १६ तक ऋक् १०/१० की तरह यम-यमी प्रसंग है। ऋक् १०/१० में १४ मंत्र हैं, क्रमांक ६ अधिक है तथा क्रं. १४ एवं १५ में आधे-आधे चरण अतिरिक्त हैं, शेष मंत्र एक जैसे हैं। इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए ऋक् १०/१० में पर्याप्त समीक्षात्मक टिप्पणी दी गई है। संक्षेप में पौराणिक सन्दर्भ से यम और यमी विवस्वान् के पुत्र-पुत्री हैं। यमी ने एक बार यम से प्रणय निवेदन किया, यम ने विवेक सम्मत तर्क देकर उसके आग्रह को टाल दिया। स्थूल सम्बन्धों में यदि एक पक्ष कमजोरी दिखाये, तो दूसरे को उसे सँभाल लेना चाहिए।

प्रकृति-सृष्टि के सन्दर्भ में 'विवस्वान्' परम व्योम में संव्याप्त दिव्य चेतना का प्रकाश या प्रवाह है। उसके विभाजन से नियानक शक्ति युक्त दो प्रकार उभरे- यम और यमी। यदि वे दोनों आपस में ही मिल जाएँ, तो पुनः वही एक रस तत्त्व 'विवस्वान्' बन जाएँ, इसलिए यम, यमी से आग्रह करते हैं कि हम अलग-अलग रहकर सृष्टि चक्र को आगे बढ़ाएँ। यह प्रक्रिया पदार्थ विज्ञान द्वारा स्थापित सृष्टि उद्भव के क्रम से भी मेल खाती है-

४२८४. ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

(यमी ने कहा) हे यमदेव ! विशाल समुद्र (व्योम) के एकान्त प्रदेश में सख्य भाव या मित्ररूप से आपसे मैं मिलना चाहती हूँ। विधाता की इच्छा है कि नौका के समान संसार-सागर में तैरने के लिए पिता के नाती सदृश श्रेष्ठ सन्तति को जन्म देने के लिए हम परस्पर संगत हों ॥१॥

४२८५. न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

(यम का कथन) हे यमी ! आपका सहयोगी यम आपके साथ इस प्रकार के सम्पर्क की कामना से रहित है, क्योंकि आप सहोदरा बहिन हैं। हमें यह अभीष्ट नहीं। असुर (प्राणरक्षक, शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों या तत्त्वों) के वीर पुत्र, जो दिव्य लोकादि के धारणकर्त्ता हैं, वे सर्वत्र विचरण करते हैं (उनकी संगति ही अभीष्ट हो) ॥२॥

४२८६. उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥३॥

(यमी का कथन है) हे यम ! यद्यपि मनुष्यों में ऐसा संयोग त्याज्य है, तो भी देवशक्तियाँ इस प्रकार के संसर्ग की इच्छुक होती हैं। मेरी इच्छा का अनुसरण आप भी करें। पतिरूप में आप ही हमारे लिए उपयुक्त हैं ॥३॥

४२८७. न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

(यम का कथन) हे यमी ! हमने पहले भी इस प्रकार का कृत्य नहीं किया। हम सत्यवादी हैं, असत्य वचन नहीं बोलते। अप् (सृष्टि का मूल तत्त्व) से ही गन्धर्व और अप् से ही योषा (नारी-माता) की उत्पत्ति हुई है, वे ही हम दोनों के उत्पादक हैं, यही हमारा विशिष्ट सम्बन्ध है (जिसे हमें निभाना चाहिए) ॥४॥

[अप् का सामान्य अर्थ जल लिया जाता है; किन्तु विद्वानों ने इसे मूल उत्पादक तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था कहा है। वर्तमान भौतिक विज्ञान के सन्दर्भ में इसे पदार्थ की 'क्वान्टम' अवस्था कह सकते हैं। सायण ने भी लिखा है "आपो वै सर्वा देवताः"। गोपथ ब्राह्मण ने 'अपांगर्भः पुरुष' 'अप् का गर्भ ब्रह्म' कहा है। पौराणिक सन्दर्भ में गन्धर्व से सूर्य तथा योषा से सूर्य पत्नी सरण्यु का भाव लिया जाता है।]

४२८८. गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

(यमी का कथन) हे यम ! सर्वप्रेरक और सर्वव्यापी उत्पादनकर्त्ता त्वष्टा (गढ़ने वाले) देव ने हमें गर्भ में ही (एक साथ रहकर) दम्पति के रूप में सम्बद्ध किया है। उस प्रजापालक परमेश्वर की इच्छा (विधि-व्यवस्था) को रोकने में कोई सक्षम नहीं, हमारे इस सम्बन्ध का पृथ्वी और द्युलोक को भी परिचय है ॥५॥

४२८९. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

सामर्थ्यवान् शत्रुओं पर क्रोध करने वाले, बाण धारण करके लक्ष्यभेद करने वाले, इन्द्रदेव के रथ, जिसकी धुरी ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) है, उसके साथ अश्वों को आज कौन योजित कर सकता है ? वही (ऐसा करने वाला) जीवित (प्राणवान्) रहता है ॥६॥

[जीवन के शत्रुओं-दोषों को पराजित करने के लिए जो व्यक्ति ऊर्जा (शक्ति) को ऋत के साथ जोड़ने में समर्थ होता है, वही प्राणवान् होकर जीवित रहता है।]

४२९०. को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७॥

हे यम ! इस प्रथम दिवस की बात से कौन परिचित है ? इसे कौन देखता है ? इस पारस्परिक सम्बन्ध को कौन बतलाने में समर्थ है ? मित्रावरुण देवों के इस महान् धाम में अधःपतन की बात आप किस प्रकार कहते हैं ? ॥

४२९१. यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८॥

पति के प्रति पत्नी के समर्पण के समान ही, तुम्हें अपने आपको सौंपती हूँ। एक ही स्थान पर साथ-साथ रहकर कर्म करने की कामना मुझे प्राप्त हुई है। हम रथ के दो पहियों की तरह समान कार्यों में प्रेरित हों ॥८॥

४२९२. न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥९॥

(यम का कथन) हे यमी ! इस लोक में जो देवताओं के पार्षद हैं, वे रात-दिन विचरण करते हैं, वे कभी रुकते नहीं, उनकी दृष्टि से कुछ भी छिपा सकने की सामर्थ्य नही। हे आक्षेपकारिणि ! आप कृपया इस भावना से मेरे समीप से चली जाएँ और किसी दूसरे को पतिरूप में वरण करें ॥९॥

४२९३. रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥१०॥

(यमी का कथन) हे यम ! रात्रि और दिवस दोनों ही हमारी कामनाओं को पूर्ण करें, सूर्य का तेज यम के लिए तेजस्विता प्रदान करे। द्युलोक और पृथ्वी के समान ही हमारा सम्बन्ध अभिन्न साथी का है; अतएव यमी, यम का साहचर्य प्राप्त करे, इसमें दोष नहीं है ॥१०॥

४२९४. आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! ऐसा समय भविष्य में आ सकता है, जिसमें बहिनें बन्धुत्व भावरहित भाइयों को ही पतिरूप में स्वीकार करें; किन्तु हे सुभगे ! आप मुझसे पतित्व सम्बन्ध की अपेक्षा न रखें । आप किसी दूसरे से सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करें ॥११ ॥

४२९५. किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥१२ ॥

(यमी का कथन) हे यम ! वह कैसा भाई जिसके रहते बहिन अनाथ फिरे ? वह कैसी बहिन; जो लाचार की तरह पलायन कर जाए ? काम भावना से प्रेरित होकर मेरे द्वारा बहुत बात कही जा रही है, इसीलिए परस्पर काया को संयुक्त करें ॥१२ ॥

४२९६. न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१३ ॥

हे यमी ! यहाँ मैं (यम) तुम्हारा स्वामी नहीं हूँ; अतएव तुम्हारे शरीर के साथ अपने शरीर को संयुक्त करना उपयुक्त नहीं; तुम मेरे प्रति इस अभिलाषा को त्यागकर अन्य पुरुष के साथ आनन्द का उपभोग करो । हे सौभाग्यवति ! आपका भाई यम इस प्रकार का (दाम्पत्य) सम्बन्ध तुम्हारे साथ स्थापित नहीं कर सकता ॥१३ ॥

४२९७. न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥१४ ॥

पूर्वोक्त कथन को सुदृढ़ता प्रदान करते हुए यम कहते हैं- हे यमी ! आपके साथ मैं अपने शरीर को किसी भी स्थिति में संयुक्त करने में सहमत नहीं । धर्मवेत्ता ज्ञानियों ने भाई- बहिन के पवित्र सम्बन्ध में इसे धर्म विरुद्ध, पापकर्म कहा है । मैं भाई होते हुए बहिन की शय्या पर शयन करूँ, यह भावना (हृदय) तथा बुद्धि (मन) दोनों दृष्टियों से असंगत है ॥१४ ॥

४२९८. बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥१५ ॥

(यमी का कथन) अरे यम ! तुम बहुत दुर्बल हो । तुम्हारे मन और हृदय के भावों को समझने में मुझ से भूल हुई । क्या रस्सी द्वारा घोड़े को बाँधने के समान तथा लता द्वारा वृक्ष को आच्छादित करने के समान तुम्हें कोई अन्य स्त्री (नारी) स्पर्श कर सकती है (फिर मैं क्यों नहीं ?) ॥१५ ॥

४२९९. अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१६ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! जब आप इस जानकारी से परिचित हैं, तो आप भी अन्य पुरुष का, वृक्ष की लता के समान आश्रय ग्रहण करें, अन्य पुरुष को पतिरूप में आप स्वीकार करें, परस्पर एक दूसरे की हार्दिक इच्छाओं के अनुरूप, आचरण करें तथा उसी से अपने मंगलकारी सुख को प्राप्त करें ॥१६ ॥

४३००. त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥१७ ॥

ज्ञानियों ने इस संसार को आच्छादित करने वाले जल, वायु और प्राण तत्त्व को निर्वाह के लिए नाना प्रकार के कार्यों में संलग्न किया है। इन तीनों में प्रत्येक, अनेक रूपों से युक्त हैं। वह अद्‌भुत और सबके दर्शन योग्य है। इन जल, वायु और ओषधियों को देव शक्तियों ने भूगोल में निर्वाह हेतु स्थापित किया है ॥१७॥

४३०१. वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् ॥१८॥

वर्षणशील, महिमायुक्त और अदम्य अग्निदेव ने अन्तरिक्षीय मेघों का दोहन करके यज्ञ-सम्पादक यजमानों के लिए जल बरसाया। जिस प्रकार वरुणदेव अन्तर्ज्ञान से सम्पूर्ण संसार के ज्ञाता हैं। यज्ञ में प्रयुक्त अग्निदेव की ऋचाओं के अनुरूप अर्चना करें ॥१८॥

४३०२. रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥१९॥

अग्निदेव की महिमा का गान करने वाली गन्धर्व-पत्नी (वाणी) और जल द्वारा शुद्ध हुई हवियों ने अग्निदेव को सन्तुष्ट किया। एकाग्रतापूर्वक स्तोत्रगान करने वाले साधकों को अखण्ड अग्निदेव यज्ञीय सत्कर्मों की ओर प्रेरित करें। यजमानों में प्रमुख, हमारे ज्येष्ठ भ्राता के समान, यज्ञ संचालक इन अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१९॥

४३०३. सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥२०॥

जब यश की कामना से साधकगण ब्राह्ममुहूर्त में यज्ञादि कर्म के लिए अग्निदेव को प्रकट करते हैं। निश्चित ही उसी समय सबका कल्याण करने वाली, पोषक तत्त्वों से सम्पन्न, सविता के तेज से देदीप्यमान, उषा प्रकाशित होती है ॥२०॥

४३०४. अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१॥

इस (दिव्य उषा के आवरण) के बाद यज्ञ प्रेरित श्येन (सुपर्ण-सूर्य) द्वारा बलशाली, महिमामय, दर्शनीय सोम को समुचित मात्रा में लाया गया। जिस समय श्रेष्ठ जन, सम्मुख जाने योग्य, दर्शनीय तथा देवों के आवाहनकर्त्ता, अग्निदेव की स्तुति करते हैं; उसी (यज्ञ के) समय धी (बुद्धि अथवा धारण करने की क्षमता) उत्पन्न होती है ॥२१॥

४३०५. सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो३ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥२२॥

हे अग्निदेव ! पशुओं के लिए जिस प्रकार घास आदि आहार विशेष रुचिकर होते हैं, उसी प्रकार आप सदैव रमणीय होकर श्रेष्ठ यज्ञों से मनुष्यों के लिए कल्याणप्रद हों। स्तोताओं के स्तोत्रगान से प्रशंसित होकर आप हविष्यान्न ग्रहण करते हुए विभिन्न देव शक्तियों के साथ हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ ॥२२॥

४३०६. उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३॥

हे अग्ने !सूर्यदेव अपने प्रकाशरूपी तेज से सर्वत्र फैलते हैं, वैसे आप भी अपने ज्वालारूपी तेज को माता-पिता (पृथ्वी-आकाश) में विस्तृत करें। सन्मार्गाभिलाषी यजमान अन्तःकरण से यज्ञ करने के इच्छुक हैं। अग्निदेव स्तोत्रों को संवर्द्धित करते हैं तथा यज्ञकर्म में कोई त्रुटि न रह जाए, इसलिए सदैव जागरूक रहते हैं। है ॥२३॥

४३०७. यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥२४ ॥

बल से उत्पन्न हे अग्निदेव ! जो मनुष्य आपकी सुमति को प्राप्त कर लेते हैं । वे विशेष ख्याति को प्राप्त होते हैं । अन्नादि से सम्पन्न, अश्वादि से युक्त, तेजस्-सम्पन्न और शक्तिशाली होकर वे मनुष्य दीर्घजीवन तथा सुख-सौभाग्य को प्राप्त करते हैं ॥२४ ॥

४३०८. श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥२५ ॥

हे अग्निदेव ! इन सम्पूर्ण देवताओं से सम्पन्न यज्ञस्थल में रहते हुए आप हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं के अभिप्राय को जानें । आप अपने अमृतवर्षक रथ को योजित करें । देव शक्तियों के माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी को हमारे यज्ञ में लेकर आएँ । कोई भी देव हमारे यज्ञ कर्म से असन्तुष्ट न हो , अतएव आप यहीं रहें । देवों के आतिथ्य से पृथक् न हों ॥२५ ॥

४३०९. यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६ ॥

हे स्वधायुक्त यज्ञीय अग्निदेव ! जिस अवसर पर, हम यजनीय देवताओं के लिए, प्रार्थना सम्पन्न करें तथा जिस समय आप विभिन्न प्रकार के रत्नादि द्रव्यों को यजमानों में वितरित करते हों, उस समय आप हमारे भी धन का हिस्सा हमें प्रदान करें ॥२६ ॥

४३१०. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७ ॥

अग्निदेव सर्वप्रथम उषा और उसके बाद दिन को प्रकट करते हैं । वे ही सूर्यात्मक होकर उषा, किरण तथा द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त हैं । सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता अग्निदेव ही इन सबमें भिन्न-भिन्न रूपों में संव्याप्त हैं । वास्तव में सूर्य भी अग्नि तत्त्व से पृथक् नहीं ॥२७ ॥

४३११. प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८ ॥

अग्निदेव नित्य उषःकाल में प्रकाशित होते हैं तथा वे ही दिन के साथ प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं । श्रेष्ठ, जातवेदा अग्निदेव नाना रूपों में, सूर्य की रश्मियों में भी स्वयमेव प्रकाशित होते हैं तथा द्युलोक और पृथ्वीलोक में अपना आलोक फैलाते हैं ॥२८ ॥

४३१२. द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥२९ ॥

सत्य वचनों के द्वारा द्युलोक और पृथ्वी, यज्ञीय अवसर पर नियमानुसार अग्निदेव का आवाहन करें । तत्पश्चात् तेजस्-सम्पन्न अग्निदेव भी यज्ञीय कर्म की ओर मनुष्यों को प्रेरित करें । वे अपनी प्रज्वलित ज्योति से अग्नि में प्रतिष्ठित होकर देवों के आवाहन के लिए उद्यत हों ॥२९ ॥

४३१३. देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धुमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३० ॥

दिव्यगुण-सम्पन्न, देवताओं में ऋत (यज्ञ या सत्य) के प्रमुख ज्ञाता, सर्वोत्तम अग्निदेव हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को देवताओं के समीप पहुँचाएँ। धूम्र-ध्वजा वाले, समिधाओं द्वारा ऊर्ध्वगामी, कान्ति द्वारा उज्ज्वल, प्रशंसनीय, देवों के आवाहक, नित्य अग्निदेव को प्रार्थनापूर्वक आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं ॥३० ॥

४३१४. अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञीय कर्मों को सम्पन्न करें । हे जलवर्षक द्यावापृथिवी ! हम आपकी स्तुति करते हैं । आप इस अभिप्राय को जानें । स्तोता जिस समय यज्ञ के अवसर पर आपकी प्रार्थना करते हैं, उसी समय माता-पिता रूपी पृथ्वी और द्युलोक यहाँ जल-वृष्टि करके हमारे लिए विशेष सहायक सिद्ध हों ॥३१ ॥

४३१५. स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३२ ॥

अग्निदेव द्वारा सुखों को प्रदान करने वाले जल का उत्पादन होता है, उससे उत्पादित ओषधियों का द्यावा-पृथिवी द्वारा पोषण किया जाता है । हे अग्निदेव ! आपकी दीप्तिमान् ज्वालाएँ, स्वर्गस्थ दिव्य पोषक रस के रूप में जल का दोहन करती हैं । सभी देवताओं द्वारा, आपके इस जल-वृष्टि रूपी अनुदान की महिमा का गान किया जाता है ॥३२ ॥

४३१६. किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥३३ ॥

क्या प्रज्वलित अग्निदेव हमारी प्रार्थनाओं और हविष्यान्न को ग्रहण करेंगे ? क्या हमारे द्वारा उनके नियमों- व्रतों का उचित रीति से निर्वाह किया गया है ? इसे जानने में कौन समर्थ है ? श्रेष्ठ मित्रों को बुलाने के समान ही अग्निदेव भी हमारे आवाहन पर प्रकट होते हैं । हमारी ये प्रार्थनाएँ और हविष्यान्न देवताओं की ओर गमन करें ॥३३ ॥

४३१७. दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥३४ ॥

जल इस भूमि पर अमृतस्वरूप गुणों से सम्पन्न और नानाविध रूपों में संव्याप्त है, जो यमदेव के अपराधों को क्षमा करता है । हे महिमावान् , तेजस्वी अग्निदेव ! आप इस जल का संरक्षण करें ॥३४ ॥

४३१८. यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥३५ ॥

यमराज की यज्ञवेदी (पूजावेदी) पर प्रतिष्ठित होने वाले देवगण, अग्निदेव के सान्निध्य को प्राप्त करके हर्षित होते हैं । इनके द्वारा ही सूर्य में तेजस्विता (दिवस) तथा चन्द्रमा में रात्रि को स्थापित किया गया है । ये दोनों सूर्य और चन्द्र अनवरत तेजस्विता को धारण किये हुए हैं ॥३५ ॥

४३१९. यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६ ॥

जिन ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव की उपस्थिति में देव शक्तियाँ अपने कार्यों का निर्वाह करती हैं । हम उनके रहस्यमय स्वरूप को जानने में असमर्थ हैं ॥३६ ॥

४३२०. सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥३७ ॥

हे मित्रो ! स्तोत्रों से, वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करते हुए, हम उनसे आशीर्वाद की याचना करते हैं। श्रेष्ठ वीर तथा शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव की, आप सभी के कल्याण के लिए हम स्तुति करते हैं ॥३७ ॥

४३२१. शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा। मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥३८ ॥

हे मित्र याजको ! वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त हम स्तुति पाठ करते हैं। आप भी उन रिपुसंहारक तथा महान् नायक इन्द्रदेव की भली प्रकार से प्रार्थना करें ॥३८ ॥

४३२२. स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥३९ ॥

जिस प्रकार वर्षाकाल में मेढक पृथ्वी को छोड़कर जल में छलाँग लगाता है, उसी प्रकार आप भी विस्तृत भू-भाग को लाँघकर ऊपर की ओर गमन करें। वायुदेव, अग्नि के सहयोग से हमारे निमित्त सुखकारक बनकर बहें। प्राणि- समुदाय के सखारूप मित्रदेव और वरुणदेव अग्नि द्वारा घास को पूर्णरूप से भस्मसात् करने के समान ही हमारे दुःख और कष्टों को दूर करें ॥३९ ॥

४३२३. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥४० ॥

हे स्तोताओ ! यशस्वी रथ में विराजमान तरुण सिंह के समान भय उत्पन्न करने वाले, शत्रुसंहारक, बलशाली रुद्रदेव की स्तुति करो। हे रुद्रदेव ! आप स्तोताओं को सुखी बनाएँ तथा आपकी सेना शत्रुओं का संहार करे ॥४० ।

४३२४. सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४१ ॥

दैवी गुणों के इच्छुक मनुष्य, देवी सरस्वती का आवाहन करते हैं। यज्ञ के विस्तारित होने पर वे देवी सरस्वती की ही स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ पुण्यात्माओं द्वारा देवी सरस्वती के आवाहन किये जाने पर, वे दानियों की आकांक्षाओं को परिपूर्ण करती हैं ॥४१ ॥

४३२५ सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२ ॥

हमारे आवाहन पर दक्षिण दिशा से आने वाले सभी पितर जिन माँ सरस्वती को पाकर संतुष्ट होते हैं। वे माता सरस्वती हमारे इस पितृयज्ञ में उपस्थित हों। हम उनका आवाहन करते हैं। वे प्रसन्नतापूर्वक हमें उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने वाला अन्न प्रदान करें ॥४२ ॥

४३२६. सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४३ ॥

हे सरस्वती देवि ! जो आप स्वधायुक्त अन्न द्वारा परितृप्त होती हुई पितरजनों के साथ एक ही रथ पर आगमन करती हैं। आप मनुष्यों को परितृप्त करने वाला अन्न भाग और वैभव-सम्पदा, हम साधकों को प्रदान करें ॥४३ ॥

४३२७. उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४ ॥

हमारे तीनों प्रकार (उत्तम, मध्यम और अधम) के पितर अनुग्रहपूर्वक इस यज्ञानुष्ठान में उपस्थित हैं । वे पुत्रों की प्राणरक्षा के उद्देश्य से यज्ञ में समर्पित हविष्यान्न ग्रहण करें तथा हमारी रक्षा करें ॥४४ ॥

४३२८. आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५ ॥

हमने यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने का विधि-विधान अपने पितरों से ही सीखा है । वे इससे भली-भाँति परिचित हैं । सभी पितर यज्ञशाला में कुश-आसन पर प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न एवं सोमरस ग्रहण करें ॥४५ ॥

४३२९. इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥४६ ॥

जो पितामहादि पूर्वज या उसके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त पितरगण हैं या जो पृथ्वी के राजसी भोगों का उपभोग करने के लिए उत्पन्न हुए हैं या जो सौभाग्यवान्, वैभव-सम्पन्न बांधवों के रूप में हैं, उन सभी को नमन है ॥४६ ॥

४३३०. मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७ ॥

इन्द्रदेव कव्यों से, यमदेव अंगिरसों से तथा बृहस्पतिदेव ज्ञान से, पोषण प्राप्त करके संतुष्ट होते हैं । देवों को बढ़ाने वाले वे कव्य अंगिरस् आदि पितर हमारी रक्षा करें । हम उनका आवाहन करते हैं ॥४७ ॥

४३३१. स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥४८ ॥

सोमरस तीक्ष्ण, मधुर एवं रुचिकर स्वाद वाला होता है । इस सोम के पीने वाले इन्द्रदेव को युद्ध में कोई जीत नहीं सकता ॥४८ ॥

४३३२. परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥४९ ॥

विस्तृत पृथ्वी को पार करके अतिदूरस्थ लोक में ले जाने वाले, अनेक पितरजनों द्वारा चले गये मार्ग में जाने वाले विवस्वान् के पुत्र, राजा यम की हविष्यान्न समर्पित करते हुए अर्चना करें ॥४९ ॥

४३३३. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥५० ॥

यमदेव ने हमारे गमन पथ को सर्वप्रथम जाना है । उसे कोई परिवर्तित करने में सक्षम नहीं है । जिस मार्ग से हमारे पूर्वकालीन पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से सभी मनुष्य भी स्व-स्व कर्मों के अनुसार लक्ष्य की ओर जाएँगे । हे सर्वोत्तम यमदेव ! आप सभी मनुष्यों के पापरूपी दुष्कर्म और पुण्यरूपी सत्कर्मों को जानने में समर्थ हैं ॥५० ॥

४३३४. बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥५१ ॥

हे पितृगण ! हमारे आवाहन पर उपस्थित होकर कुश-आसन पर प्रतिष्ठित हों, इनको स्वीकार कर आप हमारा हर प्रकार से कल्याण करें । पाप से बचाकर रक्षा करें ॥५१ ॥

४३३५. आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥५२ ॥

हे पितृगण !आप हमारी रक्षा के लिए पधारें । यज्ञशाला में दक्षिण की ओर घुटनों के बल विराजमान होकर यज्ञ में समर्पित हवियों को ग्रहण करें । हमसे मानवीय भूलों के कारण जो अपराध बन पड़े हैं, उनके कारण हमें पीड़ित न करें ॥५२ ॥

४३३६. त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥५३ ॥

त्वष्टा (स्रष्टा) अपनी पुत्री (प्रकृति) को वहन करने योग्य अथवा विवाहित करते हैं । (इस प्रक्रिया में) समस्त विश्व के प्राणी सम्मिलित होते हैं । यम की माता (सरण्यू) का जब सम्बन्ध हुआ, उस समय विवस्वान् (सूर्य) की महिमामयी पत्नी लुप्त हुई ॥५३ ॥

[प्रसिद्ध है कि त्वष्टा की पुत्री अपनी छाया (प्रतिकृति-डुप्लीकेट) को सूर्य के साथ करके लुप्त हो गई थी । यम उसी प्रतिकृति से उत्पन्न हुए थे ।]

४३३७. प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४ ॥

हे पिता ! जिन पुरातन मार्गों से हमारे पूर्वज पितरगण गये हैं, उन्हीं से आप भी गमन करें । वहाँ स्वधारूप अमृतान्न से तृप्त होकर राजा यम और वरुणदेवों के दर्शन करें ॥५४ ॥

४३३८. अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥५५ ॥

हे दुष्ट पिशाचो ! पितरगणों ने इस मृतात्मा के लिए यह स्थान निर्धारित किया है अर्थात् दाहस्थल निश्चित किया है । अत: आप इस स्थान को त्यागकर दूर चले जाएँ । यमदेव ने दिन-रात जल से सिञ्चित इस स्थल को मृत देहों के लिए प्रदान किया है ॥५५ ॥

४३३९. उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५६ ॥

हे पवित्र यज्ञाग्ने ! हम श्रद्धापूर्वक यत्न करते हुए आपको प्रतिष्ठित करते हैं तथा अधिक प्रज्वलित करने का प्रयत्न करते हैं । जो देव एवं पितृगण यज्ञ की कामना करते हैं, आप उन तक समर्पित हव्य को पहुँचाते हैं ॥५६ ॥

४३४०. द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५७ ॥

हे अग्निदेव ! हम दीप्तिमान् होते हुए आपको आवाहित करते हैं, कान्तियुक्त होकर हम आपको भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं । दीप्तिमान् होकर आप हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए पितरगणों को साथ लेकर पधारें ॥५७ ॥

४३४१. अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५८ ॥

अंगिरा, अथर्वा और भृगु आदि हमारे पितरगण अभी-अभी पधारे हैं । वे सभी सोम के इच्छुक हैं । उन पितरगणों की कृपादृष्टि हमें उपलब्ध हो, हम उनके अनुग्रह से कल्याणकारी मार्ग की ओर बढ़ें ॥५८ ॥

४३४२. अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥५९ ॥

हे यमदेव ! आप विरूप ऋषि के वंश में उत्पन्न हुए अंगिरादि पूजनीय पितरजनों (पूर्वजों) के साथ यहाँ पधारें और यज्ञ में परितृप्ति प्राप्त करें । आपके साथ पिता विवस्वान् को भी आवाहित करते हैं । वे भी इस यज्ञ में पहुँचकर फैलाये गये कुशा के आसन पर बैठें । आप दोनों हविष्यान्न को ग्रहण करके आनंदित हों ॥५९ ॥

४३४३. इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥६० ॥

हे यमदेव ! अंगिरादि पितरजनों सहित आप हमारे इस उत्तम यज्ञ में आकर विराजमान हों । ज्ञानी ऋत्विजों के स्तोत्र आपको आमंत्रित करें । हे मृत्युपति यम ! इन आहुतियों से तृप्त होकर आप हमें आनन्दित करें ॥६० ॥

४३४४. इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥

यहाँ से पितरगण ऊर्ध्वलोक की ओर प्रस्थान करते हैं । तत्पश्चात् उन्हें दिव्यलोक के उपभोग्य स्थानों पर प्रतिष्ठापित किया जाता है । जिस मार्ग से भूमि पर विजयश्री प्राप्त करने वाले आंगिरस आदि पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से अन्य पितर भी दिव्यलोक में पहुँचते हैं ॥६१ ॥

[२ - पितृमेध सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** यम, मन्त्रोक्त, ४, ३४ अग्नि, ५ जातवेदा, २९ पितरगण । **छन्द-** अनुष्टुप् , ४, ७, ९, १३ जगती, ५, २६, ४९, ५७ भुरिक् त्रिष्टुप् , ८, १०-१२, २१, २७-२९, ३१-३३, ३५, ४७, ५३-५५, ५८-६० त्रिष्टुप् , १९ त्रिपदार्षी गायत्री, २४ त्रिपदा समविषमार्षी गायत्री, ३७ विराट् जगती, ३८-३९, ४१ आर्षी गायत्री, ४०, ४२-४४ भुरिक् आर्षी गायत्री, ४५ ककुम्मती अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में यम के अतिरिक्त पितर देवों का वर्णन है। 'पितर' सम्बोधन केवल मृतात्माओं - प्रेतात्माओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है, लेकिन वेद में इसके प्रयोग अनेकार्थक हैं। शत० १३.४.३.६ के अनुसार वैवस्वत राजा यम की प्रजाएँ पितर हैं। शत० ब्रा० २.१.३.४ में मर्त्य मरणधर्मा को पितर कहा गया है। गो०ब्रा० २.१.२४ में देवों को पितर कहा है। इसी प्रकार शत० ब्रा० १३.८.१.२ में ओषधियों को तथा २.४.२.२४ में षड्ऋतुओं को पितर कहा गया है। मंत्रों के स्वाभाविक अर्थों के अनुसार पितरों की अवधारणा करना उचित है। जहाँ द्विवचनपरक 'पितरौ' सम्बोधन है, वहाँ माता-पिता का भाव लिया जाना ही उचित है-

४३४५. यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ।

(ऋषिगण) यम (देवता अथवा अनुशासन) के निमित्त (यज्ञ में) सोम का अभिषव करते हैं । आहुतियाँ वे यमदेव को समर्पित करते हैं । सोम और हवियों से अलंकृत अग्निदेव को दूत बनाकर यज्ञदेव यम की ओर (निकट) ही जाते हैं ॥१ ॥

४३४६. यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप यमदेव के निमित्त अति मधुर आहुतियाँ प्रदान करें और प्रतिष्ठा भी यम के लिए समर्पित करें । इस प्रकार पूर्वकालीन पितृलोक के मार्ग को विनिर्मित करने वाले मंत्रद्रष्टा ऋषियों को नमन करें ॥२ ॥

४३४७. यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन । स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे

हे ऋत्विजो ! यमराज के निमित्त घृतयुक्त खीर को हविरूप में समर्पित करें । वे हविष्यान्न को स्वीकार करके हमारे जीवन को संरक्षित करते हुए हमें शतायु प्रदान करें ॥३ ॥

४३४८. मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥४ ॥

हे अग्ने ! इस मृतात्मा को पीड़ित किये बिना (अन्त्येष्टि) संस्कार सम्पन्न करें । इस मृतात्मा को छिन्न-भिन्न न करें । हे सर्वज्ञदेव !जब आपकी ज्वालाएँ इस देह को भस्मीभूत कर दें, तभी इसे पितरगणों के समीप भेज दें ।

४३४९. यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥५ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जब आप मृत शरीर को पूर्णरूप से दग्ध कर दें, तब इस मृतात्मा को पितरजनों को समर्पित करें । जब यह मृतात्मा पुनः प्राणधारी हो, तो देवाश्रय में ही रहे ॥५ ॥

४३५०. त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥६ ॥

एक यम ही त्रिकद्रुक (ज्योति, गौ और आयु) नामक यज्ञ में संव्याप्त हैं । वे यमदेव छह स्थानों (द्युलोक, भूलोक, जल, ओषधियों, ऋक् और सूनृत) में निवास करने वाले हैं । त्रिष्टुप् , गायत्री एवं दूसरे सभी छन्दों के माध्यम से हम उनका स्तुतिगान करते हैं ॥६ ॥

४३५१. सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७ ॥

हे मृत मनुष्य ! आपके प्राण और नेत्र वायु और सूर्य से संयुक्त हों । आप अपने पुण्य कर्मों के फल की प्राप्ति के लिए स्वर्ग, पृथ्वी अथवा जल में निवास करें । यदि वृक्ष- वनस्पतियों में आपका कल्याण निहित है, तो सूक्ष्म शरीर से उन्हीं में आप प्रवेश करें ॥७ ॥

४३५२. अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! इस मृत पुरुष में जो अविनाशी ईश्वरीय अंश है, उसे आप अपने तेज से तपाएँ, प्रखर बनाएँ । आपकी ज्वालाएँ उसे सुदृढ़ बनाएँ । हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप अपनी कल्याणकारी विभूतियों से उन्हें पुण्यात्माओं के लोक में ले जाएँ ॥८ ॥

४३५३. यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥९ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपकी जो पवित्र एवं तीव्रगामी ज्वालाएँ हैं, जिससे आप द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक में संव्याप्त हो जाते हैं, उन ज्वालाओं से आप इस अज भाग (आत्मा) को प्राप्त हों । दूसरी मंगलमय ज्वालाओं से इस मृत देह को हवि के समान ही पूर्णतया भस्मीभूत करें ॥९ ॥

४३५४. अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! जो मृतदेह आहुति रूप में आपको समर्पित की गयी है; जो हमारे द्वारा प्रदत्त स्वधान्न से युक्त होकर आपमें गतिशील है, उसे आप पुनः पितृलोक के लिए मुक्त करें । इसकी संतानें दीर्घायु प्राप्त करती हुई गृह की ओर लौट जाएँ । यह श्रेष्ठ तेजस्विता युक्त और पितृलोक में आश्रय योग्य शरीर प्राप्त करें ॥१० ॥

४३५५. अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥११ ॥

हे मृतात्मा ! चार नेत्रों वाले, अद्‌भुत स्वरूप वाले, जो ये दो सारमेय (सरमा के पुत्र अथवा साथ रमण करने वाले) श्वान हैं, इनके सान्निध्य में आप गमन करें । तदनन्तर जो पितरगण यम के साथ सदैव हर्षित रहते हैं, उन विशिष्ट ज्ञानी पितरों का सान्निध्य भी आप प्राप्त करें ॥११ ॥

[सारमेय श्वान का अर्थ यहाँ सरमा से उत्पन्न कुत्ते करना असंगत लगता है । साथ रमण करने वाले या शीघ्र गमनशील अर्थ यहाँ सटीक बैठता है । मनुष्य के साथ रहने वाले तथा लोकान्तरों तक साथ जाने वाले चित्रगुप्त के दो दूतों-गुप्त संस्कारों के रूप में इन्हें देखा जा सकता है । यह चार अक्षि-चार भाग (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) वाले हैं ।]

४३५६. यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥१२ ॥

हे मृत्युदेव यम ! आपके गृहरक्षक, मार्गरक्षक तथा ऋषियों द्वारा ख्यातिप्राप्त चार नेत्रों वाले जो दो श्वान हैं, उनसे मृतात्मा को संरक्षित करें तथा इस मृतात्मा को कल्याण का भागी बनाकर पापकर्मों से मुक्त करें ॥१२ ॥

४३५७. उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१३ ॥

यमदेव के ये दो दूत (कुक्कुर) लम्बी नाक वाले, प्राणहन्ता और अति सामर्थ्यवान् हैं । ये मनुष्यों के प्राणहरण का लक्ष्य लेकर घूमते हैं । दोनों (यमदूत) हमें सूर्य दर्शन लाभ के लिए इस स्थान पर कल्याणकारी प्राणदान देने की कृपा करें ॥१३ ॥

४३५८. सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१४ ॥

किन्हीं पितरजनों के निमित्त सोमरस उपलब्ध रहता है और कोई घृताहुति का सेवन करते हैं । हे प्रेतात्मन् ! जिनके लिए मधुर रस की धारा प्रवाहित होती है, आप उन्हीं के समीप पहुँचें ॥१४ ॥

४३५९. ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१५ ॥

पूर्वकालीन जो पुरुष सत्य का पालन करने वाले और सत्यरूप यज्ञ के संवर्द्धक थे, तपः ऊर्जा से अनुप्राणित उन अतीन्द्रिय द्रष्टा ऋषियों के समीप ही यमदेव के अनुशासन से युक्त यह मृतात्मा भी पहुँचे ॥१५ ॥

४३६०. तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१६ ॥

जो तपश्चर्या के प्रभाव से किसी भी प्रकार पराभूत नहीं हो सकते, जो तपश्चर्या के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं तथा जिन्होंने कठिन तप- साधना सम्पन्न की है; हे प्रेतात्मन् ! आप उन्हीं के समीप जाएँ ॥१६ ॥

४३६१. ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१७ ॥

हे प्रेत ! जो शूरवीर संग्राम में अपने प्राणों की आहुति देकर वीरगति को प्राप्त हुए हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकार के दान देकर अपनी कीर्ति से इस संसार में अमर हो गये हैं । आप उन लोगों के समीप पहुँचें ॥१७ ॥

४३६२. सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१८ ॥

जिन पूर्वज मनीषियों ने जीवन की हजारों श्रेष्ठ विधाओं को विकसित किया । जो सूर्य की शक्तियों के संरक्षक हैं और तप से उत्पन्न जिन पितरों ने तपस्वी जीवन जिया, हे मृतात्मन् ! आप उन्हीं के समीप पहुँचें ॥१८ ॥

४२६३. स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥१९ ॥

हे पृथिवी देवि ! आप इसके निमित्त सुखकारिणी, दु:ख-कष्टों से रहित, प्रवेश करने योग्य और विस्तारयुक्त होकर शान्ति प्रदान करने वाली हों ॥१९ ॥

४३६४. असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥२० ॥

हे मुमूर्षो ! आपने यज्ञवेदी रूप विस्तृत दर्शनीय स्थल पर स्थित होकर सर्वप्रथम पितरों और देवों के लिए जिन स्वधायुक्त आहुतियों को समर्पित किया था, वे आपको मधु आदि रसों के प्रवाहरूप में उपलब्ध हों ॥२० ॥

४३६५. ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥२१ ॥

हे प्रेतपुरुष ! अपने मन से आपके मन को हम बुलाते हैं । (जहाँ पितृकर्म किया जाता है) आप उन गृहों में आगमन करें । (संस्कार क्रिया के पश्चात्) पिता, पितामह और प्रपितामह के साथ (सपिण्डीकरण के द्वारा) संयुक्त होकर यमराज के समीप प्रस्थान करें, सुखप्रद वायुदेव आपके लिए बहते रहें ॥२१ ॥

४३६६. उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥२२ ॥

हे प्रेत पुरुष ! मरुद्गण आपको अन्तरिक्ष में धारण करें अथवा वायुदेव आपको ऊपरी लोक में पहुँचाएँ । जल के धारणकर्त्ता और वर्षक मेघ गर्जना करते हुए समीपस्थ अज के साथ तुम्हें वृष्टिजल से सिञ्चित करें ॥२२ ॥

४२६७. उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥२३ ॥

(हे पितरो !) हम आपको दीर्घायु, प्राण, अपान तथा जीवन के लिए आमंत्रित करते हैं । तुम्हारा मन संस्कार क्रिया से प्रकट हुए नये शरीर को उपलब्ध करे । इसके बाद आप वसुरूप पितरगणों के समीप पहुँचें ॥२३ ॥

४३६८. मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते । मा ते हास्त तन्व१ः किं चनेह ॥२४ ॥

(हे पितरो !) इस संसार में वास करते हुए तुम्हारा मन तुम्हें त्याग कर न जाए । तुम्हारे प्राण का कोई भी अंश क्षीण न हो और तुम्हारे हाथ- पैर आदि में कोई विकार उत्पन्न न हो । आपकी देह के रुधिर आदि रस भी किसी मात्रा में देह का परित्याग न करें । इस लोक में कोई भी शारीरिक अंग आपसे पृथक् न हों ॥२४ ॥

४३६९. मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥२५ ॥

(हे पितर पुरुष !) जिस पेड़ के नीचे आप आराम करें , वह पेड़ आपके लिए बाधक न हो । आप जिस दिव्य गुण सम्पन्न पृथ्वी का आश्रय लें, वह भी आपको व्यथित न करे । यमदेव जिनके राजा हैं , उन पितरजनों में स्थान प्राप्त करके आप वृद्धि को प्राप्त करें ॥२५ ॥

४३७०. यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥२६ ॥

हे प्रेतात्मन् ! जो अंग आपके शरीर से पृथक् हो चुका है तथा जो अपान आदि सप्तप्राण दुबारा प्रवेश न करने के लिए शरीर से बाहर जा चुके हैं , उन सबको आपके साथ निवास करने वाले पितरगण घास से घास को बाँधने के समान दूसरे शरीर में प्रविष्ट कराएँ ॥२६ ॥

४३७१. अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥२७ ॥

हे प्राणधारी बन्धुगण ! इस प्रेतात्मा को घर से बाहर ले जाएँ । इस मृत देह को उठाकर ग्राम से बाहर ले जाएँ; क्योंकि श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न, यमराज के दूत मृत्यु ने इस मृत पुरुष के प्राणों को पितरजनों में प्रविष्ट कराने के लिए प्राप्त कर लिया है ॥२७ ॥

४३७२. ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥२८ ॥

जो दुष्ट प्रेतात्मा ज्ञानवानों के समान आकृति बनाकर पिता, पितामह और प्रपितामह आदि पितरों में घुसपैठ करते हैं और आहुति प्रदान करने पर छल से उस हविष्यात्र का सेवन करते हैं, जो पिण्डदान करने वाले पुत्र-पौत्रों को विनष्ट कर डालते हैं, हे अग्निदेव ! पितरों के लिए किये जाने वाले इस यज्ञ से प्रसन्न होकर आप उन छद्म-वेशधारी असुरों को बाहर करें ॥२८ ॥

४३७३. सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९ ॥

इस यज्ञ में हमारे गोत्र में उत्पन्न पिता, पितामह, प्रपितामह आदि पितरगण, भली प्रकार प्रतिष्ठित हों, वे हमें सुख-समृद्धि के साथ दीर्घजीवन प्रदान करें । वृद्धि प्राप्त करते हुए हम उन पितरों को हविष्यात्र समर्पित करते हैं, वे हमें दीर्घायुष्य का सुख प्रदान करें ॥२९ ॥

४३७४. यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३० ॥

हे मृतात्मन् ! हम आपके निमित्त जिस गौ का दान करते हैं तथा दूध मिश्रित जिस भात को समर्पित करते हैं , उस भाग द्वारा आप यमलोक में अपने जीवन को परिपुष्ट करें ॥३० ॥

४३७५. अश्वावतीं प्र तर या सशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥३१ ॥

हे प्रेत पुरुष ! आप हमें अश्वावती नदी से पार उतारें; यह नदी हमारे लिए सुखप्रदायिनी हो । हम रीछ आदि हिंसक पशुओं से परिपूर्ण निर्जन वन- प्रदेश को पार करें । हे प्रेत ! जिसने तुम्हारा संहार किया है, वह पुरुष वध योग्य है । वह पापी पुरुष पूर्व में उपभोग किये गये पदार्थों के अतिरिक्त दूसरी उपभोग्य सामग्री को प्राप्त करने में सक्षम न हो ॥३१ ॥

४३७६. यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥३२ ॥

सूर्य के पुत्र यमदेव अपने पिता सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं । हम किसी भी प्राणी को यमराज से उत्कृष्ट नहीं मानते । हमारे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की सफलता यमदेव के अनुग्रह पर ही आधारित है । यज्ञ की सफलता के लिए सूर्यदेव ने अपनी किरणों से भूमण्डल को प्रकाशित किया है ॥३२ ॥

४३७७. अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३ ॥

मरणधर्मा मनुष्यों से देवों ने अपने अमरत्व को छिपा लिया । (उन्होंने) सूर्यदेव के लिए समान वर्णयुक्त स्त्री बनाकर प्रदान की । सरण्यू ने घोड़ी की आकृति धारण करके अश्विनीकुमारों का भरण- पोषण किया । त्वष्टा की कन्या सरण्यू ने सूर्यदेव के घर का त्याग करते समय स्त्री- पुरुष (यम-यमी) के जोड़े को वहीं पर छोड़ दिया था ॥

४३७८. ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥३४ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन सभी पितरजनों के हवि सेवनार्थ आएँ , जो भूमि में गाड़ने, खुली हवा या एकान्त स्थल में छोड़ देने अथवा अग्नि दहन द्वारा अन्त्येष्टि संस्कार के विधान से संस्कारित हुए हों तथा जो संस्कार क्रिया के पश्चात् ऊपरी पितृलोक में विराजमान हों ॥३४ ॥

४३७९. ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥३५ ॥

अग्नि संस्कार अथवा अग्निरहित संस्कारयुक्त जो पितरगण स्वधा प्रक्रिया द्वारा द्युलोक में सुखपूर्वक स्थित हैं, हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप उन सभी पितरों को उनकी सन्तानों द्वारा किये जाने वाले पितृयज्ञ में लेकर आएँ ॥३५ ॥

४३८०. शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं१ तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥३६ ॥

हे अग्निदेव ! प्रेतदेह को जिस प्रकार सुख प्राप्त हो, उसी प्रकार उसे भस्मीभूत करें । आपकी शोषण करने वाली लपटें वन की ओर प्रस्थान करें और आपका जो रस को हरने वाला तेज है, वह पृथ्वी में ही रहे ॥३६ ॥

४३८१. ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७ ॥

यम का कथन-यदि यह आने वाला पुरुष हमारी सेवा में संलग्न रहे, तो हम इसे आश्रय- स्थल प्रदान कर दें, क्योंकि यह पुरुष हमारे पास आया है; ऐसा मानने वाले यमदेव मृतात्मा से पुन: कहते हैं कि यह मृतपुरुष हमारी अर्चना करते हुए समीप रहे ॥३७ ॥

४३८२. इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥३८ ॥

हम इस (जीवन काल) की मात्रा इस प्रकार नापते (तय करते) हैं , जैसे पहले किसी अन्य ने इसे नहीं नापा हो । सौ शरद् ऋतुओं से पूर्व हमारी जीवन यात्रा समाप्त न हो ॥३८ ॥

४३८३. प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥३९ ॥

हम इस (जीवनकाल) की मात्रा को भली प्रकार नापते हैं, जिससे सौ वर्ष से पूर्व बीच में दूसरा श्मशान कर्म हमें प्राप्त न हो ॥३९ ॥

४३८४. अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४० ॥

हम इस (जीवन की) मात्रा का दोष हटाकर नापते हैं, जिससे हमें सौ वर्ष से पूर्व मध्य में दूसरा मृत कर्म न करना पड़े ॥४० ॥

४३८५. वी३मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४१ ॥

हम इस (जीवन की) मात्रा को विशेष प्रकार से नापते हैं, जिससे हमें सौ वर्ष से पूर्व दूसरा मृत कर्म न करना पड़े ॥४१ ॥

४३८६. निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४२ ॥

हम इस (जीवन की) मात्रा को निश्चित रूप से नापते हैं, जिससे हमारे सामने सौ वर्षों के बीच कोई दूसरा श्मशान कर्म करने की स्थिति न आए ॥४२ ॥

४३८७. उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४३ ॥

हम इस (जीवन) की मात्रा को उत्तम ढंग से नापते हैं, जिससे सौ वर्ष से पूर्व दूसरा श्मशान कर्म करने की स्थिति न बन सके ॥४३ ॥

४३८८. समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४४ ॥

हम इस (जीवन) की मात्रा को सम्यक् रूप से नापते हैं, जिससे सौ वर्ष से पहले दूसरे श्मशान कर्म करने की आवश्यकता न हो ॥४४ ॥

४३८९. अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥४५ ॥

हम इस (जीवन) की मात्रा को नापें, सुख प्राप्त करें और दीर्घायु बनें । हमने पूर्वोक्त विधि से श्मशान भूमि को नाप लिया, उस नाप के आधार पर हम इस मृतक को स्वर्ग भेज चुके हैं, उसी सत्कर्म के प्रभाव से हम सौ वर्ष की आयु से सम्पन्न हों । हमें सौ वर्ष से पूर्व श्मशान कर्म न करना पड़े ॥४५ ॥

४३९०. प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥४६ ॥

प्राण, अपान, व्यान, आयु और नेत्र ये सभी सूर्य के दर्शनार्थ अर्थात् संसार में जीवन धारण करने के निमित्त हों । हे मनुष्यो ! आयु की पूर्णता पर देहावसान की अवस्था में आप यमराज के कुटिलतारहित सरल मार्ग से पितरों को प्राप्त करें ॥४६ ॥

४३९१. ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७ ॥

जो अग्रगामी, प्रशंसनीय, सन्ततिरहित मनुष्य द्वेष भावों को त्याग करके दिवंगत हुए हैं; वे अन्तरिक्ष को लाँघकर, दु:खों से रहित, स्वर्ग के ऊपरी भाग को प्राप्त करते हुए पुण्यफलों का उपभोग करते हैं ॥४७ ॥

४३९२. उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८ ॥

उदन्वती (जलयुक्त) द्युलोक सबसे नीचे है, पीलुमती (नक्षत्र मण्डल वाला) मध्य में हैं, उससे ऊपर जो तीसरा प्रद्यौ नाम से प्रख्यात है, वहीं पितर निवास करते हैं ॥४८ ॥

४३९३. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥४९ ॥

हम अपने पिता के पितरों, पितामह आदि, विशाल अन्तरिक्ष, द्युलोक और पृथ्वी पर वास करने वाले सभी पितरों को स्वधापूर्वक हव्य प्रदान करते हैं। नमन करते हुए उनकी पूजा- अर्चना करते हैं ॥४९ ॥

४३९४. इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम्।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥५० ॥

हे मृतात्मन् ! आप द्युलोक में जो सूर्य देखते हैं, वही आपका (स्थान) है, कोई अन्य नहीं। हे पृथ्वी देवि ! आप उसी प्रकार इस मृत पुरुष को अपने तेज से आच्छादित करें, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को आच्छादित रखती है ॥५० ॥

४३९५. इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम्।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥५१ ॥

वृद्धावस्था के बाद शरीर के लिए यही (अन्त्येष्टि) कार्य शेष रह जाता है, दूसरा अन्य कार्य नहीं। अतएव हे भूमे ! आप इस (शव) को ऐसे ढक लें, जिस प्रकार पत्नी अपने वस्त्र से मृतक पति के शरीर को ढक लेती है ॥५१ ॥

४३९६. अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥५२ ॥

हे मृतक ! हम तुम्हें पृथ्वी माता के मंगलकारी वस्त्र से आच्छादित करते हैं। इस लोक में जो कल्याणमय है, उसे हम प्राप्त करें तथा पितृलोक में (परलोक में) जो स्वधान्न है, उसे आप (मृतात्मा) प्राप्त करें ॥५२ ॥

४३९७. अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम्।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३ ॥

हे अग्नि और सोम देवो ! आप पुण्यलोक में जाने के लिए मार्ग का निर्माण करने वाले हैं। देवताओं ने पुण्यात्माओं के लिए साधन- सम्पन्न स्वर्गलोक की रचना की है। जो लोक सूर्यदेव के समीपस्थ है, इस प्रेतात्मा को उसी लोक में सुगमतापूर्वक पहुँचाने का अनुग्रह करें ॥५३ ॥

४३९८. पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥५४ ॥

हे मृतात्मन् ! जगत् को प्रकाशित करने वाले, सभी को पोषण देने वाले, हमारे पशुओं को विनाश से बचाने वाले पूषा देवता तुम्हें पृथ्वी लोक से ऊर्ध्व लोक की ओर अन्य पितरों के समीप ले जाएँ । अग्निदेव तुम्हे ऐश्वर्यशाली देवताओं तक पहुँचाएँ ॥५४ ॥

४३९९. आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५ ॥

हे प्रेतात्मन् ! जीवन के अधिष्ठाता देव 'आयु' आपके संरक्षक हों। पूषादेव पूर्व दिशा की ओर जाने वाले मार्ग में आपके संरक्षक हों। जहाँ पुण्यात्माएँ निवास करती हैं, उस पुण्यलोक के श्रेष्ठ भाग में सर्वप्रेरक सवितादेव आपको प्रतिष्ठित करें ॥५५ ॥

४४००. इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥५६ ॥

हे मृतात्मन् ! हम तुम्हारे प्राणरहित शरीर को ले जाने के लिए भार खींचने वाले दो बैलों को बैलगाड़ी में जोतते हैं। इन बैलों से आप भली प्रकार यमराज के गृह को प्राप्त करें ॥५६ ॥

[वैदिक मत से शव ले जाने के लिए गाड़ी का प्रयोग भी किया जा सकता है, कंधों पर ले जाना ही अनिवार्य नहीं है।]

४४०१. एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥५७ ॥

हे मृत पुरुष ! जिस वस्त्र को आप पहले धारण किया करते थे, उस वस्त्र का परित्याग करके श्मशान के नवीन वस्त्र को धारण करें। जिन इच्छाओं की पूर्णता के लिए आपने सगे-सम्बंधियों को धन- सम्पदा प्रदान की थी, उसे जानते हुए उसके फल को प्राप्त करें ॥५७ ॥

[कायारूपी वस्त्र का त्याग करने के बाद जीवात्मा अपने कर्मों के अनुरूप देहरूप नये वस्त्र का ताना- बाना बुनता है।]

४४०२. अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥५८ ॥

हे मृतात्मन् ! आप गौ (वाणियों-वेदमंत्रों अथवा इन्द्रियों से प्रज्वलित) अग्नि से स्वयं को भली प्रकार आवृत कर लें। वह (अग्नि) तुम्हारे स्थूल मेद आदि को अच्छादित करे। इस प्रकार तेजोमय तथा हर्षित अग्निदेव (तुम्हारी काया को) दग्ध करते हुए उसे इधर-उधर बिखेरेंगे नहीं ॥५८ ॥

४४०३.दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥५९ ॥

हे जीवात्मन् ! जो चला गया है, उसके हाथ से दण्ड, श्रवण- सामर्थ्य, वर्चस् तथा बल लेकर आप यहीं रहें। हम वहाँ भली प्रकार सुखी रहते हुए समस्त संग्रामों और अहंकारी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥५९ ॥

४४०४. धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥६० ॥

मृत (राजा या क्षत्रिय) के हाथ से धनुष को धारण करते हुए क्षात्र धर्म की असाधारण तेजस्विता और सामर्थ्य-शक्ति से सम्पन्न बनें। प्रचुर धन- सम्पदा को हमारे पोषण के लिए आप ग्रहण करें। इस प्रकार सम्पदा से परिपूर्ण होकर जीवलोक में हमारे सम्मुख उपस्थित हों ॥६० ॥

[३ - पितृमेध सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा। **देवता-** यम, मन्त्रोक्त, ५-६ अग्नि, ४४, ४६ पितरगण, ५० भूमि, ५४ इन्दु, ५६ आपः। **छन्द-** त्रिष्टुप्, ४, ८, ११, २३ सतः पंक्ति, ५ त्रिपदा निचृत् गायत्री, ६, ५६, ६८, ७०, ७२ अनुष्टुप्, १८, २५, २७, ४४, ४६ जगती, २६, २८ भुरिक् जगती, २९ विराट् जगती, ३० पञ्चपदातिजगती, ३१ विराट् शक्वरी, ३२-३५, ४७, ४९, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३६ एकावसाना आसुरी अनुष्टुप्, ३७ एकावसाना आसुरी गायत्री, ३९ परात्रिष्टुप् पंक्ति, ५० प्रस्तार पंक्ति, ५४ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्, ५८ विराट् त्रिष्टुप्, ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ६४ भुरिक्पथ्यापंक्ति अथवा भुरिक् आर्षी पंक्ति, ६७ पथ्या बृहती, ६९, ७१ उपरिष्टात् बृहती।]

४४०५. इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१ ॥

हे मृत मनुष्य ! यह नारी पतिकुल (के हित) की अभिलाषा करती हुई स्वधर्म का निर्वाह करने हेतु आपके निकट आई है । धर्म में निरत इस नारी के लिए संसार में पुत्र, पौत्रादि श्रेष्ठ संतानें और धन-संपदा प्रदान करें ॥१ ॥

[पति के बाद पत्नी उसके कुल एवं सम्पदा की स्वामिनी मानी जाए, यह भाव मंत्र में व्यक्त हो रहा है ।]

४४०६. उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥२ ॥

हे नारी ! तू मृत पति के समीप ही सो रही है, यह उचित नहीं । इसे छोड़कर तुम इस संसार की ओर चलो । यहाँ पाणिग्रहण के बाद तुम्हारी सुरक्षा करने वाले पति के पुत्र-पौत्रादि स्वजन हैं, उनके समीप रहो ॥२ ॥

४४०७. अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।

अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३ ॥

मृतपुरुष के पीछे-पीछे श्मशान भूमि में जाती हुई तरुणी स्त्री को पुनः घर की ओर वापस होती हुई हमने देखा है । यह स्त्री शोक से उत्पन्न घने अँधेरे से आवृत थी । उस स्त्री को यहाँ सामने लेकर आये हैं ॥३ ॥

[उस समय पत्नी, पति की अन्त्येष्टि में भाग लेती थी, यह भाव स्पष्ट है । सतीप्रथा बाद में प्रचलित हुई प्रतीत होती है ।]

४४०८. प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।

अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥४ ॥

हे अवध्य स्त्री ! तुम इस संसार को ठीक-ठीक जानकर देवत्व का मार्ग को अनुसरण करो । अपने उस पति से प्रीति करो । उसके सत्कर्मों में सहायिका बनकर उसे स्वर्गलोक का अधिकारी बनाओ ॥४ ॥

४४०९. उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥५ ॥

नदियों का जल, काई (सिवार) और वेतस (नदी के किनारे उगने वाले नड़) में अत्यन्त संरक्षक सारभूत तत्त्व है । हे अग्निदेव ! आप जल और पित्त का शोधन करने वाले हैं ॥५ ॥

४४१०. यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! जिस मृत पुरुष को आपने भस्म किया है, उसे भली प्रकार सुखी करें । इस दहन स्थल पर क्याम्बु (ओषधियुक्त जल) का सिञ्चन करें, ताकि विविध शाखाओं से युक्त दुःखनाशक दूर्वा (घास) उगे ॥६ ॥

४४११. इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।

संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥७ ॥

हे प्रेतपुरुष ! तुम्हारे परलोक की ओर जाने के लिए यह (गार्हपत्य) अग्नि एक ज्योति के रूप में है । तुम (अन्वाहार्य पचन नामक) द्वितीय ज्योति तथा (आवाहनीय नामक) तृतीय ज्योति में भली प्रकार स्वयं को प्रविष्ट करो । इस प्रकार अग्नि संस्कार से उत्पन्न देवत्व प्रधान शरीर से शोभायुक्त होकर वृद्धि को प्राप्त करो ॥७ ॥

४४१२. उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।

तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८ ॥

हे प्रेत ! तुम इस स्थान से ऊपर उठो, उठने के बाद शीघ्रता से चलते हुए अन्तरिक्ष लोक में अपना आश्रय बनाओ । उस लोक में पितरजनों से मतैक्य (सामञ्जस्य) करके सोमपान से भली-प्रकार आनन्दित हो । श्राद्धकर्म के समय प्रदान किये गये स्वधान्न से तृप्त होकर आनन्द प्राप्त करो ॥८ ॥

४४१३. प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम्।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥९ ॥

हे प्रेतपुरुष ! तुम इस स्थान से आगे बढ़कर शरीर का भली प्रकार पोषण करो । तुम्हारे हाथ- पैर आदि अंग तुम्हें छोड़कर न जाएँ, तुम्हारा शरीर भी तुम्हें पृथक् न करे, तुम्हारा मन जिसे अपना ध्येय मान रहा है, उस स्वर्गादि लोक में प्रवेश करे । तुम जिस भू-भाग से स्नेह रखते हो, उस क्षेत्र को प्राप्त करो ॥९ ॥

४४१४. वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१० ॥

सोम सम्पादनशील पितृदेव हम याजकों को तेजस्विता से सम्पन्न करें । समस्त देवगण मधुरतायुक्त घृत से हमें सम्पन्न करें । हमें लम्बे समय तक दर्शन लाभ के लिए रोग इत्यादि से पृथक् करें । हमें वृद्धावस्था तक समर्थ-सक्रिय बनाते हुए दीर्घायु प्रदान करें ॥१० ॥

४४१५. वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्य नक्त्वासन्।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥११ ॥

अग्निदेव से हमें तेजस्विता की प्राप्ति हो । सर्वदेव, विष्णुदेव हमारे मस्तक में विवेक बुद्धि को भली प्रकार स्थापित करें । सम्पूर्ण देवशक्तियाँ कल्याणप्रद वैभव की हमें प्राप्ति कराएँ तथा जल अपने शुद्धतायुक्त वायु के अंशों से हमें पावन बनाएँ ॥११ ॥

४४१६. मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२ ॥

दिन और रात्रि के अधिष्ठाता देव एवं मित्रावरुण देव हमें वस्त्रादि से युक्त करें । अदिति के पुत्र आदित्यगण हमारे वैरियों को संताप देते हुए हमें बढ़ाएँ । ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारे हाथों में शौर्य स्थापित करें । सर्वप्रेरक सवितादेव हमें दीर्घ- आयुष्य प्रदान करें ॥१२ ॥

४४१७. यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३ ॥

मनुष्यों में सर्वप्रथम विवस्वान् के पुत्र राजा यम को मृत्यु की प्राप्ति हुई, पश्चात् वे लोकान्तर को प्राप्त हुए । उसी सूर्य- पुत्र यम को सभी प्राणी प्राप्त करते हैं । हे ऋत्विजो ! सभी प्राणियों के पुण्य-पाप के अनुसार फल-प्रदाता राजा यम की आप सब अर्चना करें ॥१३ ॥

४४१८. परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥१४ ॥

हे पितरो ! हमारे द्वारा किये गये पितृयज्ञ रूपी कर्म से परितृप्त होकर आप अपने स्थान को वापस जाएँ, पुनः आवाहन करने पर आगमन की कृपा करें । हमने आपके लिए मधुर घृत से युक्त आहुतियाँ प्रदान की हैं, उन्हें ग्रहण करके आप हमारे लिए इस गृह में कल्याणकारी धन प्रतिष्ठित करें । पुत्र-पौत्रादि प्रजा तथा पशुधन से हमें सम्पन्न बनाएँ ॥१४ ॥

४४१९. कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥१५ ॥

कण्व, कक्षीवान् , पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सोभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप और वामदेव आदि सभी पूजनीय ऋषि हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

४४२०. विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥१६ ॥

विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम, वामदेव आदि हे ऋषियो ! आप सभी हमें सुख प्रदान करें । अत्रि ऋषि ने हमारे गृह को संरक्षण हेतु स्वीकार किया है । हे स्वधान्न से स्तुति योग्य पितृगण ! आप सभी हमारे लिए सुखकारी हों ॥१६ ॥

४४२१. कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥१७ ॥

हम श्मशान स्थल में बन्धु की मृत्यु के शोक का परित्याग करते हुए शवस्पर्श से उत्पन्न पाप से विमुख होकर घर जाते हैं । इससे हम दुखों से रहित हों । पुत्र-पौत्रादि प्रजा, स्वर्ण, रजत, गौ, अश्वादि पशुधन से बढ़ें तथा घरों में श्रेष्ठ (कर्मों की) सुगन्ध भरी रहे ॥१७ ॥

४४२२. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥१८ ॥

(पितरों की तुष्टि-वृद्धि के लिए किये जाने वाले सोमनामक) यज्ञ में मधुर रस (आज्य अथवा सोमरस) का ही प्रयोग करते हैं । इस आज्य (रस) से यज्ञ को संयुक्त करते हैं, इसी से यज्ञ में आहुतियाँ देते हैं तथा इसी से यज्ञ का विस्तार करते हैं । इसी सोमरस (चन्द्रमा की रश्मियों) के संसर्ग से सुवर्ण आदि धन की रक्षा करने वाले सागर के जल में वृद्धि होती है । वही सोम (चन्द्रमा) सभी को अपनी धाराओं (शीतल रश्मियों) से अभिषिञ्चित करते हैं ॥१८ ॥

४४२३. यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥१९ ॥

हे पितरगण ! हर्ष एवं सौम्यता को बढ़ाने वाले आपके जो कार्य हैं , उनसे आप हमें संयुक्त करें । आप निश्चित रूप से यशस्वी हैं , अतः अभीष्ट फल प्रदान करें । गतिशील, क्रान्तदर्शी तथा श्रेष्ठ धन-सम्पन्न आप यज्ञ में बुलाये जाने पर पधार कर हमारी उपर्युक्त प्रार्थनाएँ सुनें ॥१९ ॥

४४२४. ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥२० ॥

हे पितरगण ! आप अत्रि और अंगिरा ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न हुए हैं, नौ महीनों तक सत्रयज्ञ (नवग्व) करके स्वर्ग के अधिकारी बन चुके हैं तथा दर्श पूर्णमास आदि यज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं । इसलिए आप बिछाये गये कुशा के आसनों पर विराजमान होकर हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों से परितृप्त हों ॥२० ॥

४४२५. अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥२१ ॥

हमारे पूर्वजों ने श्रेष्ठ, प्राचीन और ऋतरूप यज्ञ कर्मों में नियत स्थान तथा ओज को प्राप्त किया । उन लोगों ने स्तोत्रों को उच्चारित करके तम को नष्ट किया तथा अरुण रंगवाली उषा को प्रकाशित किया ॥२१ ॥

४४२६. सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥२२ ॥

जिस प्रकार लोहार धौंकनी द्वारा लोहे को पवित्र बनाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म में निरत तथा अभिलाषा करने वाले याजक यज्ञादि कर्म से मनुष्य जीवन को पवित्र बनाते हैं। वे अग्निदेव को प्रदीप्त करके इन्द्रदेव को समृद्ध करते हैं। चारों तरफ से घेर करके उन्होंने महान् गौओं (पोषक प्रवाहों) के झुण्ड को प्राप्त किया था ॥२२ ॥

४४२७. आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥२३ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! जैसे अन्न से सम्पन्न घर में पशुओं के झुण्ड की सराहना की जाती है, उसी प्रकार जो लोग देवताओं के निकट उनकी प्रार्थना करते हैं, उनकी संतानें समर्थ होती हैं और उनके स्वामी पालन करने में सक्षम होते हैं ॥२३ ॥

४४२८. अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२४ ॥

हे पालनकर्त्ता अग्निदेव ! हम आपके सेवक हैं, आपकी तेजस्विता से हम श्रेष्ठ कर्मों से युक्त हों, प्रभातवेला हमारे यज्ञ, दानादि कर्मफल को सत्य सिद्ध करे। देवशक्तियाँ जिस शास्त्रोक्त कर्म की सुरक्षा करती हैं, वे सभी हमारे लिए कल्याणकारक हों। हम श्रेष्ठ संतति से युक्त यज्ञ में बृहत् स्तुतियाँ बोलें ॥२४ ॥

४४२९. इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२५ ॥

मरुद्गणों के साथ इन्द्रदेव हम संस्कारकर्त्ता मनुष्यों को पूर्वदिशा में संव्याप्त भय से सुरक्षित करें। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें। जिन देवों के निमित्त यज्ञभाग आहुति स्वरूप दिया गया है, जो देवमार्ग का निर्माण करने वाले तथा देवलोक तक ले जाने वाले हैं, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥२५ ॥

४४३०. धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२६ ॥

सबके धारणकर्त्ता धातादेव दक्षिण दिशा से आने वाली आपदाओं से हमारी सुरक्षा करें। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें। जिन देवों के निमित्त यज्ञ भाग आहुति स्वरूप दिया गया है, जो देवमार्ग का निर्माण करने वाले तथा देवलोक तक पहुँचाने वाले हैं, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥२६ ॥

४४३१. अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२७ ॥

अपने पुत्रों के साथ देवमाता अदिति हमें पश्चिम दिशा की आसुरी वृत्तियों से संरक्षित करें। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें। जिन देवों के लिए यज्ञीय भाग दिया जा चुका है, जो देव मार्ग प्रवर्त्तक और स्वर्गलोक तक ले जाने वाले हैं, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥२७ ॥

४४३२. सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२८ ॥

समस्त देवों के साथ सोमदेव उत्तर दिशा में स्थित श्मशान में रहने वाले असुरों के भय से हमें संरक्षित करें। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें। जिन देवों के लिए यह यज्ञीय भाग आहुत हो चुका है, उन स्वर्ग के मार्गदर्शक और स्वर्ग तक ले जाने वाले देवों की हम वन्दना करते हैं ॥२८ ॥

४४३३. धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२९ ॥

हे प्रेतपुरुष ! सम्पूर्ण विश्व के धारणकर्त्ता धरुणदेव ऊर्ध्वदिशा में जाने के लिए तुझे धारण करें, जिस प्रकार सर्वप्रेरक सूर्यदेव दीप्तिमान् द्युलोक को ऊपर ही धारण किये रहते हैं। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक का संरक्षण करती है, उसी प्रकार आप हमारा भी संरक्षण करें। जिन देवों के लिए यज्ञीय अंश दिया जा चुका है, उन स्वर्ग के मार्गदर्शक देवों का हम वन्दन करते हैं ॥२९ ॥

४४३४. प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३० ॥

दहन स्थल से पूर्व दिशा की ओर कम्बल आदि द्वारा आच्छादित हुए हे प्रेतपुरुष ! हम तुम्हें पितरों को परितृप्त करने वाली स्वधा में स्थापित करते हैं। पृथिवी जैसे द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, वैसे भूमि तुम्हारी सुरक्षा करे। हे देवगण ! जिनके निमित्त यज्ञीय भाग दिया जा चुका है, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥३० ॥

४४३५. दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३१ ॥

हे प्रेतपुरुष ! दहन स्थल से दक्षिण दिशा की ओर कम्बल से आच्छादित तुम्हें, हम पितरों की तृप्तिप्रद स्वधा समर्पित करते हैं। पृथ्वी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे। हे देवगण ! जिनके निमित्त यज्ञीय भाग निष्पन्न किया जा चुका है, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥३१ ॥

४४३६. प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३२ ॥

दहन स्थल से पश्चिम की ओर वस्त्रादि से आच्छादित हुए हे प्रेतपुरुष ! हम तुम्हें पितरों के लिए तृप्तिदायक स्वधा में प्रतिष्ठित करते हैं। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे। हे देवगण ! जिनके निमित्त यज्ञीय भाग आहुत हो चुका है, ऐसे स्वर्ग के मार्गदर्शक देवों की हम अर्चना करते हैं ॥३२ ॥

४४३७. उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३३ ॥

दहनस्थल से उत्तराभिमुख वस्त्रादि से आच्छादित हुए हे प्रेतपुरुष ! हम तुम्हें पितरजनों के लिए तृप्तिप्रद स्वधा में प्रतिष्ठित करते हैं। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे। हे देवगण ! जिनके निमित्त हव्यभाग आहुत किया जा चुका है, ऐसे स्वर्ग के मार्गदर्शक देवों की हम अर्चना करते हैं ॥३३ ॥

४४३८. ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३४ ॥

दहन दिशा से ध्रुव दिशा की ओर वस्त्रादि से ढके हुए हे प्रेतपुरुष ! पितरों को परितृप्त करने वाली स्वधा में हम तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे । जिनके निमित्त हव्यभाग दिया जा चुका है, ऐसे स्वर्ग के मार्गदर्शक देवगणों की हम अर्चना करते हैं ॥३४ ॥

४४३९. ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३५ ॥

दहन स्थल से ऊपरी (ऊर्ध्व) दिशा की ओर वस्त्रादि से ढके हुए हे प्रेतपुरुष ! पितरों को परितृप्त करने वाली स्वधाहुति में हम तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे, जिनके निमित्त हव्यभाग आहुत हो चुका है, ऐसे मार्गप्रेरक स्वर्ग प्राप्तिरूप देवों की हम अर्चना करते हैं ॥३५ ॥

४४४०. धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥३६ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबके धारणकर्ता और सबके द्वारा धारण किये जाने वाले हैं । आप संभजनीय पदार्थों के प्राप्तिरूप हैं ॥३६ ॥

४४४१. उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥३७ ॥

हे अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व में जल पहुँचाने वाले, मधुर गुणों से युक्त रसों को पहुँचाने वाले तथा प्राण वायु को प्रवाहित करने वाले हैं ॥३७ ॥

४४४२. इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥३८ ॥

हे हविर्धाना (हविष्य को धारण करने वाली) द्यावापृथिवी ! इस पृथ्वी और स्वर्ग में विद्यमान सभी विपदाओं से हमारा संरक्षण करें । हे हविर्धाना ! आप दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुई सन्तति के समान विश्व को पोषण करने के लिए साथ-साथ प्रयत्नशील होकर विचरण करती हैं । देवशक्तियों के अनुग्रह के इच्छुक साधक जब आपके निमित्त हवि समर्पित करें, तब आप अपने उपयुक्त स्थान को जानकर आसन ग्रहण करें ॥३८ ॥

४४४३. स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥३९ ॥

हे हविर्धाना ! हमारी वैभव-सम्पन्नता हेतु आप दोनों श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों । जिस प्रकार विद्वान् सन्मार्ग पर चलकर अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हम आपको पुरातन स्तोत्रों सहित नमन करते हैं, ताकि ये स्तुतियाँ आप तक पहुँचती रहें । हमारी इन स्तुतियों को सभी अमरत्व प्राप्त देवगण सुनें ॥३९ ॥

४४४४. त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥४० ॥

मोहमाया से ग्रस्त मृतात्मा इस संस्कार से अनुस्तरणी गौ को ध्यान में रखकर तीनों लोकों पर आरोहण करती है ।वह इस नाशवान् देह को त्यागकर अविनाशी आत्मस्वरूप से स्वर्गादि पुण्य फल को प्राप्त करती है ।

४४४५. देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्व१मा रिरेच ॥४१ ॥

मृत्यु देवों का वरण क्यों नहीं करती ? देवों के अमरत्व के निमित्त बृहस्पतिदेव ने ऋषित्व पद को प्राप्त करके यज्ञ सम्पन्न किया, उसके फलस्वरूप देवों को अमरत्व पद की प्राप्ति हुई। मनुष्यादि प्रजाजनों के लिए विधाता ने अमरत्व का विधान नहीं बनाया, इसलिए वे 'मर्त्य' कहलाये। इसी कारण प्राणों के अपहरणकर्त्ता यमराज मनुष्यों की देह से प्राण को पृथक् करते हैं ॥४१ ॥

४४४६. त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥४२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! हम आपके प्रति स्तुति-प्रार्थना करते हैं। आप हमारी श्रेष्ठ- सुगन्धित आहुतियों को स्वीकार करके पितरगणों को प्रदान करें। पितरगण स्वधा द्वारा समर्पित आहुतियों को ग्रहण करें। हे अग्निदेव ! आप भी श्रद्धा-भावनापूर्वक समर्पित आहुतियों का सेवन करें ॥४२ ॥

४४४७. आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥४३ ॥

अरुणिम ज्वालाओं के सन्निकट बैठने वाले (यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले) यजमान को धन-धान्य प्रदान करें। हे पितरो ! आप यजमान के पुत्र-पौत्रों को भी धन- ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे वे यज्ञादि कर्मों के निमित्त धन नियोजित करते रहें ॥४३ ॥

४४४८. अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥४४ ॥

हे अग्निष्वाता पितरो ! आप यहाँ आएँ और निर्धारित स्थानों में विराजमान हों। हे पूजनीय पितरो ! पात्रों में स्थित हविष्यान्न का सेवन करें तथा सन्तानादि से युक्त ऐश्वर्य एवं साधन हमें प्रदान करें ॥४४ ॥

४४४९. उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥४५ ॥

अपने पितृगणों का आवाहन करते हैं। कुश- आसन पर विराजमान होकर प्रस्तुत सोमरस आदि हविष्यान्न का उपभोग करें। हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा करें ॥४५ ॥

४४५०. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥४६ ॥

सोमरस तैयार करने वाले वसिष्ठ आदि (याजक) वैभव-सम्पन्न होकर सोमपायी पितरों को हविरूप सोम प्रदान करते हैं। पितरों के साथ पितृपति यम के हविष्य की कामना करते हैं, वे सभी उनका सेवन करें ॥४६ ॥

४४५१. ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४७ ॥

देवत्व को प्राप्त हुए, यज्ञों के विशेषज्ञ, स्तोत्रों के रचयिता, जो पितरजन पूजनीय स्तुतियों द्वारा इस संसार रूप सागर से पार हो गये हैं, उन हजारों बार देवों द्वारा स्तुत, वचनपालक, क्रान्तदर्शी ऋषियों एवं यज्ञ में विराजमान होने वाले पितरों के साथ हे अग्निदेव ! आप हमारे पास पधारें ॥४७ ॥

४४५२. ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४८ ॥

जो पितरगण वचनपालक, हवि की रक्षा करके उसे ग्रहण करने वाले तथा वेगसम्पन्न इन्द्रादि देवों के साथ रथारूढ़ होते हैं। उन कल्याणमयी विद्या वाले ऐसे प्राचीन व नवीन ऋषियों के साथ यज्ञ में बैठने वाले पितरगणों सहित हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त पधारें ॥४८ ॥

४४५३. उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥४९ ॥

हे मृतक ! आप इस मातृ- स्वरूपा, महिमामयी, सर्वव्यापिनी तथा सुखदायिनी धरतीमाता की गोद में विराजमान हों। यह धरतीमाता ऊन के समान कोमल स्पर्श वाली तथा दानी पुरुष की स्त्री के समान ही सभी ऐश्वर्यों की स्वामिनी है। यह (पृथ्वी माता) तुम्हारे प्रशस्त पथ की रक्षा करे ॥४९ ॥

४४५४. उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५० ॥

हे धरतीमातः ! मृतक को पीड़ादायक सन्ताप से रक्षित करने के लिए आप इसे ऊपर उठाएँ। इसका भली प्रकार स्वागत-सत्कार करने वाली तथा सुख में साथ रहने वाली बनें। हे भूमातः ! जिस प्रकार माता पुत्र को अञ्चल से ढँकती है, उसी प्रकार आप भी इसे सभी ओर से आच्छादित करें ॥५० ॥

४४५५. उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५१ ॥

हे मृतक ! देह को आच्छादित करने वाली धरती माता भली प्रकार स्थित हों तथा हजारों प्रकार के धूलिकण इसके ऊपर समर्पित करें। यह धरती घृत की स्निग्धता के समान आश्रय प्रदान करने वाली होकर सुखदायी हो ॥

४४५६. उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥५२ ॥

हे अस्थि कुम्भ ! आपके ऊपर पृथ्वी (मिट्टी) को भली प्रकार स्थापित करते हैं, आप इस भार को वहन करें। यह आपको पीड़ा न पहुँचाए। आपके इस अवलम्बन को पितरगण धारण करें। यमदेव यहाँ आपके निमित्त निवास स्थल प्रदान करें ॥५२ ॥

४४५७. इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥५३ ॥

हे अग्ने ! देवों और पितरगणों के प्रिय इस चमस पात्र को आप हिंसित न करें। यह चमसपात्र मात्र देवताओं के सोमपान के निमित्त ही सुरक्षित है। इसी से सम्पूर्ण अविनाशी देव तथा पितरगण आनन्दित होते हैं ॥५३ ॥

४४५८. अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥५४ ॥

अथर्वा (अविचल बुद्धिवाले) ऋषि ने हवि से परिपूर्ण जिस अन्नयुक्त चमस पात्र को इन्द्रदेव के निमित्त धारण किया था, उस चमस में ऋत्विग्गण भली प्रकार सम्पन्न किये गये यज्ञ में यज्ञावशिष्ट हवि का सेवन करते हैं। उसी अथर्वा द्वारा विनिर्मित चमस में रसरूप अमृत सदैव बहता रहता है ॥५४ ॥

४४५९. यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५५ ॥

हे मृत मनुष्य ! आपके शरीर (जिस अंग-अवयव) को कौए, चींटी, साँप अथवा किसी दूसरे हिंसक पशु ने व्यथित किया हो, तो सर्वभक्षक अग्निदेव उस अंग को पीड़ारहित करें । शरीर के अन्दर जो पोषण- रसरूप सोम विद्यमान है, वह भी उसे कष्टमुक्त करे ॥५५ ॥

४४६०. पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥५६ ॥

हमारे लिए ओषधियाँ सारयुक्त हों । हमारा सार ही सार सम्पन्न हो, जल इत्यादि रसों के साररूप सत्त्व अंश से जलाभिमानी वरुणदेव हमें शुद्ध करें ॥५६ ॥

४४६१. इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७ ॥

सधवा (सौभाग्यवती) और सुन्दर नारियाँ घृताञ्जन से शोभायमान होकर अपने घरों में प्रविष्ट हों । ये नारियाँ आँसुओं को रोककर मानसिक विकारों का त्याग करती हुई, आभूषणों से सुसज्जित होकर आदरपूर्वक आगे-आगे चलती हुई घरों में प्रविष्ट हों ॥५७ ॥

४४६२. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥५८ ॥

हे पिता ! आप उत्तम लोक स्वर्ग में यज्ञ आदि दान - पुण्य कर्मों के फलस्वरूप अपने पितरगणों के साथ संयुक्त हों । पाप कर्मों के प्रभाव से मुक्त होकर पुनः घर में प्रविष्ट हों तथा तेजस्वी देवरूप को प्राप्त करें ॥५८ ॥

४४६३. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥५९ ॥

पितामह, प्रपितामह तथा हमारे गोत्र में उत्पन्न हुए जिन पितरों ने विस्तृत अन्तरिक्षलोक में प्रवेश लिया है, उनके निमित्त स्वयं प्रकाशमान प्राणस्वरूप परमेश्वर हमारी देहों को इच्छानुरूप विनिर्मित करते हैं ॥५९ ॥

४४६४. शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् । शीतिके शीतिकावति ह्लादिके
ह्लादिकावति । मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ॥६० ॥

हे प्रेतपुरुष ! दहन से उत्पन्न तुम्हारी जलन को यह कुहरा शान्त करे । धीरे- धीरे बरसते हुए बादल तुम्हें सुख प्रदान करें । हे शीतिका ओषधि सम्पन्न और ह्लादिका ओषधियुक्त माता पृथिवि ! आप इस दग्ध हुए प्रेतात्मा के लिए मण्डूकपर्णी ओषधि से सुख प्रदान करें, आप इस दाहक अग्नि को अच्छी तरह शान्त कर दें ॥६० ॥

४४६५. विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१ ॥

सब प्रकार से संरक्षक , जीवनदाता सूर्यदेव हमें अभय प्रदान करें । इस संसार में हमारी पुत्र-पौत्रादि सन्तति की वृद्धि हो, हम गाय, अश्वादि पशुओं से परिपूर्ण रहें ॥६१ ॥

४४६६. विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वे षामसवो यमं गुः ॥६२ ॥

सूर्यदेव हमें अमरत्व प्रदान करें । उनकी कृपादृष्टि से मृत्यु का भय समाप्त हो । हम अमरत्व पद के अधिकारी बनें तथा वे वृद्धावस्था तक इन पुत्र-पौत्रादि की सुरक्षा करें । इनमें से किसी के प्राण वैवस्वत यम को प्राप्त न हों ॥

४४६७. यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥६३ ॥

वे प्रखर प्रतिभा- सम्पन्न और क्रान्तदर्शी यमदेव मेधा- सम्पन्न पितरों को अपनी सामर्थ्य से अन्तरिक्षलोक में धारण किये हुए हैं । हे सम्पूर्ण विश्व के मित्ररूप मानवो ! आप यमराज की आहुतियों से अर्चना करें । वे पूजनीय यम हमारे जीवन को दीर्घायु प्रदान करें ॥६३ ॥

४४६८. आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६४ ॥

हे मंत्रद्रष्टा ऋषिगण ! आप यज्ञीय सत्कर्मों के प्रभाव से श्रेष्ठ स्वर्गलोक में आरूढ़ हों, किसी प्रकार से भयभीत न हों । हे ऋषियो ! आप सोमपानकर्त्ता और अन्यों को सोमपान में सहयोग करने वाले हैं, आपके निमित्त हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं, जिससे हम उत्तम ज्योति (अर्थात् चिरजीवन) प्राप्त करें ॥६४ ॥

४४६९. प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥६५ ॥

वे अग्निदेव धूम्ररूप विशाल पताका से युक्त होकर , द्युलोक और पृथ्वी में संव्याप्त होते हैं । वे देवों के आवाहन काल में वर्षणशील एवं शब्द करने वाले होते हैं । वे द्युलोक के समीपस्थ प्रदेश में व्याप्त होते हैं तथा जल के आश्रय- स्थान अन्तरिक्ष में विद्युत्रूप में संवर्द्धित होते हैं ॥६५ ॥

४४७०. नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६ ॥

पक्षी की तरह आकाश में गतिशील सुनहले पंख वाले, सबको पोषण देने वाले वरुण (वरणीय) के दूत हे वेनदेव ! आपको लोग हृदय से चाहते हैं । अग्नि के उत्पत्ति स्थल अन्तरिक्ष में आपको पक्षी की तरह विचरण करते हुए (द्रष्टागण) देखते हैं ॥६६ ॥

४४७१. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें उत्तम कर्मों (यज्ञों) का फल प्राप्त हो । जैसे पिता पुत्रों को धन आदि प्रदान करके उनका पोषण करता है, वैसे ही आप हमें पोषित करें । अनेकों द्वारा सहायता के लिए पुकारे गये हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में आप हमें दिव्य तेजस् प्रदान करें ॥६७ ॥

४४७२. अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥६८ ॥

हे प्रेतपुरुष ! जिन घृत, मधु आदि से निर्मित मालपुओं से परिपूर्ण घड़ों को आपके उपभोग के लिए देवों ने धारण किया है, वे घड़े आपके लिए स्वधायुक्त, मधुरतायुक्त तथा घृत से परिपूर्ण हों ॥६८ ॥

४४७३. यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९ ॥

हे प्रेतपुरुष ! तिल मिश्रित स्वधायुक्त जो जौ की खीलें हम समर्पित कर रहे हैं, वे आपको ऐश्वर्य गुणसम्पन्न और तृप्तिदायी हों । राजा यम आपको खीलों का उपयोग करने की अनुमति प्रदान करें ॥६९ ॥

४४७४.पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७० ॥

हे वनस्पतिदेव ! आपमें जिस अस्थिरूप पुरुष की स्थापना की गई थी, आप उसे हमें पुनः लौटाएँ, जिससे यमराज के घर में वह यज्ञीय कर्मों को प्रकाशमान करता हुआ विराजमान हो ॥७० ॥

४४७५. आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥७१ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप दहन कार्य के लिए तत्पर हों, आपका रस हरणशील तथा दहन ऊर्जा (लपटों) से युक्त हो । इस मृतदेह को आप अच्छी प्रकार से भस्मीभूत करें और पुण्यात्माओं के श्रेष्ठलोक स्वर्ग में प्रतिष्ठित करें ॥७१ ॥

४४७६. ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यै तु शतधारा व्युन्दती ॥७२ ॥

पहले उत्पन्न होकर जो पितरजन परलोक सिधारे हैं और जो बाद में उत्पन्न हुए अर्वाचीन पितर परलोक वासी हुए हैं, उन सभी प्राचीन व अर्वाचीन पितरों के लिए घृत की नदी प्रवाहित हो । उसकी असंख्य धाराएँ आपको अभिषिञ्चित करती रहें ॥७२ ॥

४४७७. एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३ ॥

हे मृतात्मन् ! आप इस देह से निकलकर स्वयं को शुद्ध करके इस अन्तरिक्ष में आरोहण करें । इस लोक में आपके बन्धुगण वैभव- सम्पन्न होकर रहें । बान्धवों की आसक्ति को त्यागकर उच्चलोक को लक्षित करके आरोहण करें । द्युलोक में जो पितरों का प्रमुख लोक है, उसका परित्याग न करें ॥७३ ॥

[४ - पितृमेध सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** यम, मन्त्रोक्त, ८१-८७ पितरगण, ८८ अग्नि, ८९ चन्द्रमा । **छन्द-** त्रिष्टुप्, १,४,७,१४,३६,६० भुरिक् त्रिष्टुप्, २, ५, ११, २९, ५०-५१, ५८ जगती, ३ पञ्चपदा भुरिक् अतिजगती, ६ पञ्चपदा शक्वरी, १२ महाबृहती, १३ त्र्यवसाना पञ्चपदा शक्वरी, १६-२४ त्रिपदा भुरिक् महाबृहती, २५, ३१-३२, ३८, ४१-४२, ५५, ५७, ५९, ६१ अनुष्टुप्, २६ विराट् उपरिष्टाद् बृहती, २७ याजुषी गायत्री, ३३, ४३ उपरिष्टाद् बृहती, ३९ पुरोविराट् आस्तार पंक्ति, ४९अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, ५३ पुरोविराट् सतः पंक्ति, ५६ ककुम्मती अनुष्टुप्, ६२ भुरिक् आस्तार पंक्ति, ६३ स्वराट् आस्तार पंक्ति, ६६ त्रिपदा स्वराट् गायत्री, ६७ द्विपदा आर्ची अनुष्टुप्, ६८, ७१ आसुरी अनुष्टुप्, ७२- ७४, ७९ आसुरी पंक्ति, ७५ आसुरी गायत्री, ७६ आसुरी उष्णिक्, ७७ दैवी जगती, ७८ आसुरी त्रिष्टुप्, ८० आसुरी जगती, ८१ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ८२ साम्नी बृहती, ८३, ८४ साम्नी त्रिष्टुप्, ८५ आसुरी बृहती, ८६चतुष्पदा ककुम्मती उष्णिक्, ८७ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, ८८ त्र्यवसाना पथ्यापंक्ति, ८९ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति ।]

४४७८. आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥१ ॥

हे (जन्म से ही ज्ञानी) अग्नियो ! आप अपनी जन्मदात्री (वनस्पतियों , अन्तरिक्षीय धाराओं) तक पहुँचें । हम आपको पितृयान मार्ग द्वारा वहाँ भली प्रकार पहुँचाते हैं । प्रिय हव्यों के वहनकर्त्ता अग्निदेव हविष्यात्र को वहन करते हैं । हे अग्नियो ! आप परस्पर मिलकर यज्ञीय सत्कर्मों के निष्पन्नकर्त्ता यजमान को श्रेष्ठ पुण्यात्माओं के लोक में प्रतिष्ठित करें ॥१ ॥

[अग्निदेव जातवेदा (जन्म से ही ज्ञानी अथवा जन्म को जानने वाले) हैं ; क्योंकि हर प्राणी के जन्म में उनकी सुनिश्चित भूमिका होती है । वे अन्तरिक्षीय प्रवाहों एवं वनस्पतियों से उत्पन्न किए जा सकते हैं तथा यज्ञीय प्रयोगों द्वारा पुनः उर्वर संस्कारों के साथ उन्हें उन स्थानों तक पहुँचाया जा सकता है ।]

४४७९. देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥२ ॥

इन्द्रादि देवगण ऋतुओं के अनुसार यज्ञ की क्रिया करते हैं । हव्य सामग्री , घृत , पुरोडाश, स्रुवा आदि यज्ञ पात्र, जुहू आदि यज्ञीय आयुध भी यज्ञ को सम्पादित करते हैं । हे पुरुष ! आप देवयान मार्ग का अनुगमन करें । यज्ञ के निष्पन्नकर्त्ता मनुष्य जिन मार्गों से प्रस्थान करते हैं, उन्हीं देवत्व की प्राप्ति कराने वाले मार्गों से आप आगे बढ़ें ॥२ ॥

४४८०. ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व।

हे पुरुष ! आप यज्ञ के सत्य मार्ग को भली प्रकार समझें । जिन यज्ञ से सम्बन्धित मार्गों से पुण्यकर्म करने वाले अङ्गिरस जाते हैं, उन्हीं मार्गों से आप स्वर्गलोक को जाएँ । जिस स्वर्ग में अदिति पुत्र देवगण मधुर अमृत का उपभोग करते हैं, उस दुःख- क्लेश रहित तृतीय स्वर्गलोक में जाकर आप विश्रान्ति ग्रहण करें ॥३ ॥

४४८१. त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥४ ॥

उत्तम रीति से गमनशील अग्नि, वायु और सूर्य तथा मेघों से सम्बन्धित शब्दध्वनि करने वाले वायु और पर्जन्य, ये सम्पूर्ण देव स्वर्ग के ऊपर विराजमान हैं । स्वर्गलोक सुधारस से परिपूर्ण है । यह (लोक) यज्ञ के अनुष्ठानकर्त्ता याजकों को अभीष्ट अन्न और बल प्रदान करे ॥४ ॥

४४८२. जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥५ ॥

जुहू (घृताहुति देने वाले पात्र या साधन) ने द्युलोक को धारण किया । उपभृत (पुनः भर देने वाले) पात्र अन्तरिक्ष को धारण किये हैं, ध्रुव (स्थिर स्वभाव वाले पात्र या संसाधन) ने आश्रयदाता पृथ्वी को धारण कर रखा है । इस ध्रुवा से धारित भूमि को लक्षित करके देदीप्यमान पृष्ठभागयुक्त स्वर्गलोक, यज्ञकर्त्ता यजमान की सम्पूर्ण अभिलाषाओं को पूर्ण करें ॥५ ॥

[ऋषि स्थूल यज्ञ के साथ प्रकृति में संचालित विराट् यज्ञ को भी देख रहे हैं । द्युलोक से घृत-तेजस्-सारतत्त्व की आहुति देने की क्षमता जुहू रूप है । अन्तरिक्ष उपभृत (पुनः भर देने वाले पात्र) के रूप में है । ध्रुवा (हव्य को स्थिरता से धारण करने वाले) पात्र की समता स्वाभाविक रूप से पृथ्वी से ही बैठती है । आहुति करने वाली, आपूर्ति करने वाली तथा स्थिरता से धारण करने वाली क्षमताएँ ही द्यु , अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के लिए आधार रूप हैं ।]

४४८३. ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व । जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥६ ॥

हे ध्रुवा (स्थिर रहकर धारण करने वाली क्षमता) ! सम्पूर्ण विश्व की पालनकर्त्री पृथ्वी पर यजमान के साथ आरोहण करके विराजमान हों । हे उपभृत ! आप यजमान के साथ अन्तरिक्ष लोक में आरोहण करें । हे जुहू ! आप द्युलोक में यजमान के साथ जाएँ । इस प्रकार से हे यजमान ! आप संकोच त्यागकर स्रुवा रूपी वत्स से भली प्रकार (दूध देने के लिए) तैयार की गई दिशा रूपी गौओं से अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करें ॥६ ॥

[बछड़े के प्रभाव से गाय स्नेहपूर्वक दूध देने की स्थिति में आ जाती है । इसी प्रकार स्रुवा द्वारा दी गयी आहुतियों से प्रकृतिरूपी गौ अपने दिव्य पय प्रवाहित करने के लिए प्रेरित होती है ।]

४४८४. तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति । अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥७ ॥

तीर्थ और यज्ञ जैसे सत्कर्म सम्पन्न करने वाले सत्पुरुष बड़ी से बड़ी आपदाओं से छुटकारा पा जाते हैं, यह विचार करने वाले यज्ञकर्त्ता पुरुष जिस रास्ते से स्वर्ग में पहुँचते हैं, उस मार्ग की खोज करते हुए याज्ञिक, इस यजमान के लिए भी वह श्रेष्ठ पथ- प्रशस्त करें ॥७ ॥

४४८५. अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः । महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥८

पूर्व दिशा में आहवनीय अग्नि, अङ्गिरसों का अयन नामक सत्र (यज्ञ) है । गार्हपत्य अग्नि, आदित्य देवों का अयन नामक सत्र यज्ञ है । दक्षिण दिशा में दक्षिणाग्नि, दक्षायन नामक सत्र है । हे पुरुष ! आप सुदृढ़तायुक्त एवं सम्पूर्ण अवयवों से युक्त होकर वेद मन्त्रों से यज्ञ में स्थापित की गई अग्नि की महत्ता को सुखपूर्वक प्राप्त करें ॥८ ॥

४४८६. पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः । दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् । ।९ ॥

पूर्व दिशा की अग्नि आपको अग्रभाग से सुखपूर्वक तपाये । गार्हपत्य अग्नि पृष्ठ भाग से आपको सुखपूर्वक तपाये । दक्षिण दिशा में दक्षिणाग्नि (कवच) के समान चारों ओर से आपका रक्षण करती हुई आपको सुखपूर्वक तपाये । हे अग्निदेव ! आप उत्तर आदि समस्त दिशाओं से आने वाले क्रूर हिंसकों से इस समर्पित व्यक्ति की सुरक्षा करें ॥९ ॥

४४८७. यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् । अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्रतिष्ठित हुए आप अपने आधानकर्त्ता को परम मंगलकारी अपने शरीरों से (घोड़ों के समान अपनी पीठ पर बैठाकर) स्वर्गलोक की ओर ले जाएँ । उस लोक में यज्ञकर्त्ता यजमान देवों के साथ आनंद का उपभोग करते हुए हर्ष को प्राप्त हों ॥१० ॥

४४८८. शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् । एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! इस यज्ञकर्त्ता को पश्चिम भाग से, पूर्व भाग से, उत्तर और नीचे से सुखपूर्वक तपाएँ । हे उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले जातवेदा अग्ने ! एक होते हुए भी आपको पूर्वाग्नि, गार्हपत्याग्नि और दक्षिणाग्नि इन तीन तरह से प्रतिष्ठित किया जाता है । ऐसे अग्निहोत्री को पुण्यात्माओं के लोक में भली प्रकार से स्थापित करें ॥११ ॥

४४८९. शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१२ ॥

समिधाओं से प्रदीप्त जातवेदा आदि अग्नियाँ इस प्रजापति के मेध्य (यजनीय पदार्थ, जीव या आत्मा) को यहाँ (यज्ञीय वातावरण में) प्रेरित करें, पतित या पथभ्रष्ट न होने दें ॥१२ ॥

४४९०. यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् । तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां
प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः । शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१३ ॥

विशाल पितृमेधयज्ञ समुचित रूप से सम्पन्न होकर यज्ञकर्त्ता को स्वर्गीय सुखों को प्राप्त कराता है । अतएव जातवेदा आदि अग्नियाँ सर्वस्व होम करने वाले (यज्ञकर्त्ता) को भली प्रकार तृप्त-संतुष्ट करें ॥१३ ॥

४४९१. ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥१४ ॥

स्वर्ग से ऊपरी द्युलोक की अभिलाषा से युक्त यह पुरुष, चयन की गई अग्नि को प्रदीप्त करता है । उस श्रेष्ठ याजक के निमित्त अन्तरिक्ष का प्रकाशमान देवयान मार्ग, उसके स्वर्ग में आरोहण करते हुए प्रकाशित हो ॥१४ ॥

[आगे के मन्त्रों का उपयोग अन्त्येष्टि के कृत्यों में किए जाने की परम्परा होने से कुछ आचार्यों ने इन मन्त्रों के अर्थ उन क्रियाओं के साथ जोड़कर, करने का प्रयास किया है । इस भाषानुवाद में यज्ञपरक स्वाभाविक अर्थ इस प्रकार किये गये हैं कि वे विशिष्ट प्रयोग के साथ-साथ व्यापक संदर्भों में भी फलित हों ।]

४४९२. अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥१५ ॥

हे यज्ञनिष्ठ ! आपके यज्ञ में अग्निदेव 'होता', बृहस्पतिदेव 'अध्वर्यु' तथा इन्द्रदेव 'ब्रह्मा' बनकर दाहिनी ओर (शुभ दिशा में) स्थित हों । इस प्रकार से सम्पन्न यह यज्ञ उसी स्थान पर जाता है, जहाँ पूर्वकाल में आहुति स्वरूप दिये गये यज्ञ स्थित हैं ॥१५ ॥

४४९३. अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१६ ॥

यहाँ इस यज्ञ में पुए (अन्न- घी में पकाकर बनाये गये) तथा क्षीर (दूध में अन्न पकाकर बनाये गये) आदि पकवान स्थित हों । हम श्रेष्ठ लोकों के तथा उनमें ले जाने वाले मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१६ ॥

४४९४. अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१७ ॥

पुओं और दधियुक्त चरु यहाँ इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता, उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१७ ॥

४४९५. अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१८ ॥

पुओं तथा अन्य रसों से युक्त चरु यहाँ इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१८ ॥

४४९६. अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१९ ॥

पुओं तथा घृत से युक्त चरु यहाँ इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१९ ॥

४४९७. अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२० ॥

अपूपों और गूदे से बना चरु इस यज्ञशाला में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२० ॥

४४९८. अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२१ ॥

अपूपों और अन्न से युक्त चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२१ ॥

४४९९. अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२२ ॥

अपूपों और मधु से युक्त चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२२ ॥

४५००. अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२३ ॥

अपूपों और रसों से युक्त चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारें हैं ॥२३ ॥

४५०१. अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२४ ॥

अपूपों और जल से निर्मित चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२४ ॥

४५०२. अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥२५ ॥

जिन अपूपों (पुओं) से भरे हुए कलशों को आपके उपभोग हेतु देवों ने ग्रहण किया है, वे कलश आपके निमित्त स्वधायुक्त, मधुरतापूर्वक तथा घृतादि से सम्पन्न हों ॥२५ ॥

४५०३. यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥२६ ॥

तिल मिश्रित जिन स्वधान्नयुक्त जौ की खीलों को हम समर्पित करते हैं, वे खीलें तुम्हारे परलोक प्रस्थान पर विस्तृत सत्परिणाम देने वाली हों । राजा यम आपको खीलों का उपभोग करने की आज्ञा प्रदान करें ॥२६ ॥

४५०४. अक्षितिं भूयसीम् ॥२७ ॥

बहुत समय तक के लिए (यमराज इन विस्तृत खीलों के उपभोग की अनुमति) प्रदान करें ॥२७ ॥

४५०५. द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥२८ ॥

सोमरस पृथ्वी पर ऋषियों तथा देवताओं के लिए अन्तरिक्षलोक से उत्पन्न हुआ है । जो हमारे प्रखर-तेजस्वी पूर्वज थे, उन्हें ही यह सोमरस उपलब्ध हुआ । हम सात याज्ञिक समानलोक में रहने वाले, उस दिव्य सोमरस को आहुतिरूप में समर्पित करते हैं ॥२८ ॥

४५०६. शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥२९ ॥

सैंकड़ों मार्गों से प्रवाहित वायु के लिए, स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले आदित्यगण के लिए, अन्य सभी मनुष्यों के लिए तथा कल्याणकारी देवों को ऐश्वर्य अर्पित करने के लिए वे यजमान तत्पर रहते हैं । जो लोग देवों को संतुष्ट करते तथा यज्ञादि में अन्न, द्रव्यादि का दान देते हैं, वे सात होताओं की दक्षिणा पाने के पात्र होते हैं ॥२९ ॥

४५०७. कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥३० ॥

मंगलकारी कार्यों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार स्तनरूपी छिद्र वाली, नानाविध वस्तुओं के कोश (खजाने) से परिपूर्ण, मधुर अन्नप्रदात्री भूमिरूपी गाय को दुहते हैं । हे अग्निदेव ! जन समाज में अपने दूधरूपी अन्न से तृप्ति- प्रदात्री अखण्डनीय अदिति (न मारने योग्य गाय) देवी और बलप्रदायक अन्न को क्षति न पहुँचाए ॥३० ॥

[यज्ञों के प्रभाव से प्रकृति को प्रसन्न करके इच्छित मात्रा में पोषक- पदार्थ प्राप्ति का प्रयास करने वाले ऋषि प्रकृति का संतुलन न बिगड़ने देने के लिए जागरूक रहते थे ।]

४५०८. एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥३१ ॥

हे पुरुष ! सब प्रकार सवितादेव आपके आच्छादन हेतु इस वस्त्र को देते हैं । तृप्तिप्रद इस वस्त्र को ओढ़कर आप यमराज के राज्य में विचरण करें ॥३१ ॥

[वह वस्त्र यज्ञीय ताने- बाने द्वारा तैयार होता है , जिसे ओढ़कर व्यक्ति यम के यहाँ निर्भय जा सकता है ।]

४५०९. धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥३२ ॥

हे प्रेतपुरुष ! आप वत्सरूप तिल और क्षयरहित धेनुरूपा खीलों से अपना जीवन व्यापार चलाएँ ; क्योंकि ये भुने हुए जौ की खीलें कामधेनु स्वरूपा और तिल ही इसके वत्स (बछड़े) रूप हैं ॥३२ ॥

४५१०. एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥३३ ॥

हे अमुक पुरुष ! ये लाल एवं श्वेत वर्ण वत्स के समान और उनसे भिन्न स्वरूपवाली तिलात्मक वत्सरूपा खीलें तुम्हारे लिए कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु स्वरूप हों तथा इस यमगृह में अभीष्ट फल प्रदान करने के लिए तुम्हारे समीप विद्यमान रहें ॥३३ ॥

४५११. एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥३४ ॥

आपके हरितवर्ण धान, अरुण व श्वेत वर्णवाली गौएँ हों , कृष्ण वर्ण के धान, लालवर्ण की गौएँ हों, तिल वत्सा गौएँ कभी विनष्ट न हों और इसे सदैव ऊर्जाप्रदायक दुग्धरस प्रदान करती रहें ॥३४ ॥

४५१२. वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥३५ ॥

वैश्वानर अग्नि में हम इन हवियों को समर्पित करते हैं, जो हवियाँ नानाप्रकार के जल प्रवाहों से युक्त हैं, वे जलवर्षा के मेघ के समान सींचती हुई, अपने उपजीवी पितरजनों के लिए तृप्तिप्रद हों । इन हवियों से हर्षित होकर वैश्वानर अग्निदेव, पितर श्रेणी को प्राप्त हमारे पिता, दादा, परदादा इत्यादि सभी पूर्वजों का पोषण करें ॥३५ ॥

४५१३. सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥३६ ॥

सैकड़ों-हजारों धाराओं के स्रोत से सम्पन्न, मेघों की तरह जल से परिपूर्ण, अन्तरिक्ष के ऊपरी भाग में व्याप्त, अन्न-बल प्रदाता, कभी चलायमान न होने वाले हविष्य को पितरजन स्वधारूप आहुति के साथ ग्रहण करते हैं ॥३६

४५१४. इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥३७ ॥

सञ्चयन प्रक्रिया द्वारा संगृहीत किये हुए इस जल से गीले अस्थि समूह को हे सजातीय बन्धुगण ! यहाँ आकर भली प्रकार देखें । यह मरणधर्मा प्रेतपुरुष (जिसका कि अस्थि सञ्चयन किया गया है) अमरत्व को प्राप्त कर रहा है । उपस्थित सभी सजातीय बन्धु इसके लिए आश्रय स्थानों का निर्माण करें ॥३७ ॥

४५१५. इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥३८ ॥

हे मनुष्य ! आप यहीं पर रहते हुए वृद्धि को प्राप्त करें । यहीं पर ज्ञानवान् और कर्मशील होकर हमारे लिए धन- सम्पदा देने वाले बनें । यहीं पर अति बलशाली और शत्रुओं से अपराजेय होकर अन्न से दूसरों का परिपोषण करते हुए प्रबुद्ध हों ॥३८ ॥

४५१६. पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥३९ ॥

आचमन करने योग्य यह मधुरतापूर्ण जल पुत्र-पौत्रादि को परितृप्त करता है । इस पिण्ड पर जीवन को चलाने वाले पितरों के निमित्त अमृतरूप यह जल, स्वयं को प्रसन्नता देने वाली स्वधा को प्रदान करता है । ये दिव्य जल मातृवंश और पितृवंश के दोनों प्रकार के पितरों को परितृप्त करें ॥३९ ॥

४५१७. आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥४० ॥

हे जलप्रवाहो ! आप इस अग्नि को पितरजनों के समीप भेजें । हमारे पितृगण इस यज्ञान्न का सेवन करें । जो पितर हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न को ग्रहण करने हेतु समीप उपस्थित होते हैं, वे सभी पितर हमें पराक्रम- सम्पन्न वीर पुत्रोंसहित प्रचुर धन- सम्पदा प्रदान करें ॥४० ॥

४५१८. समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान्॥४१॥

अविनाशी, घृतप्रिय, हवियों को ले जाने वाले अग्निदेव को कार्यकुशल पुरुष समिधाओं द्वारा प्रज्वलित करते हैं। यही अग्निदेव अदृश्य निधियों के समान अतिदूर- देश में विद्यमान पितरों को जानते हैं, अतएव वही पितरों को हविष्यान्न पहुँचाएँ, वही पहुँचा पाने में सक्षम भी हैं॥४१॥

४५१९. यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥४२॥

हे पितरो ! जिस मंथन प्रक्रिया से प्राप्त पदार्थ मक्खन, भात और अन्न आदि को हम आपके लिए समर्पित करते हैं, वह आपके लिए स्वधायुक्त, मधुरता सम्पन्न और घृतादि से परिपूर्ण हो॥४२॥

४५२०. यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्॥४३॥

हे पितरो ! तुम्हारे निमित्त जिन काले तिलों से युक्त स्वधान्न तथा भूनकर तैयार की गई जौ की खीलों को हम समर्पित कर रहे हैं, वही खीलें परलोक गमन पर तुम्हें बृहद् आकार और बड़ी मात्रा में प्राप्त हों। इन खीलों को उपभोग करने की यमदेव तुम्हें आज्ञा प्रदान करें॥४३॥

४५२१. इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम्॥४४॥

यह जो सामने शकट (संवाहक तंत्र-शरीर या यज्ञीय प्रवाह) है, वह प्राचीन के साथ नवीन भी है। इसी से तुम्हारे पूर्वज गये थे। इस समय योजित किये जाते इस शकट के दोनों तरफ जो दो वृषभ हैं, वे तुम्हें पुण्यात्माओं के लोक में लेकर जाएँ॥४४॥

४५२२. सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥४५॥

देवत्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य सरस्वती का आवाहन करते हैं। श्रेष्ठ कर्मशील मनुष्य भी वाणी की देवी सरस्वती को बुलाते हैं। देवी सरस्वती हविप्रदाता यजमान को वरण करने योग्य अभिलषित पदार्थ प्रदान करें॥४५

४५२३. सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे॥४६॥

वेदी की दक्षिण दिशा में विराजमान पितर, सरस्वती का आवाहन करते हैं। हे पितृगण ! आप यज्ञ में पधारकर हर्षित हों। सरस्वती को परितृप्त करते हुए हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों से स्वयं तृप्ति प्राप्त करें। हे सरस्वती देवि ! पितरों द्वारा आवाहित किये जाने पर आप आरोग्यप्रद अन्न प्रदान करके हमें कृतार्थ करें॥४६॥

४५२४. सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥४७॥

हे सरस्वती देवि ! आप उक्थ, शस्त्र और स्वधान्न से परितृप्त होती हुई पितरजनों के साथ एक ही रथ पर आती हैं। आप इस यज्ञ में यजमान साधक के लिए हजारों (व्यक्तियों) द्वारा वन्दनीय अन्नभाग और धन को पुष्ट करें॥४७॥

४५२५. पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥४८ ॥

हे पृथिवि (पार्थिव काया) ! तुम्हें हम पृथ्वी तत्त्व में प्रविष्ट करते हैं । धाता देव हमें दीर्घायु बनाएँ । हे दूर चले गये (प्राणो) ! तुम्हारे लिए (धाता देव) आवास प्रदायक हों । मृतात्माएँ पितरों के साथ जा मिलें ॥४८ ॥

४५२६. आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥४९ ॥

तुम दोनों (प्राण और अपान अथवा सूक्ष्म एवं कारण देह) इस शकट (धारक काया) से विलग हो जाओ । हे अहिंसनीय ! इस (नाशवान् काया) के कारण (तुमसे) जो निन्दनीय वचन कहे जाते हैं, उनसे मुक्त होकर शुद्ध हो जाओ । इस (पितृमेध) में प्रदत्त (आहुति अथवा दान दक्षिणा) हमारा पालन करने वाली हों ॥४९ ॥

४५२७. एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥५० ॥

(इस पितृमेध में) श्रेष्ठ दुग्ध (पोषण) तथा बल देने वाली यह दक्षिणा हमें (याजकों) को कल्याणकारी (माध्यमों अथवा स्थानों) से प्राप्त हुई है, जिससे हमारा अमंगल नहीं होगा । जिस प्रकार युवावस्था के पश्चात् जीवों को जरावस्था निश्चित रूप से आती है, उसी प्रकार यह दक्षिणा इन प्राणियों (संस्कारित आत्माओं) को पितरों के समीप श्रेष्ठ रीति से अवश्य पहुँचाएगी ॥५० ॥

४५२८. इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥५१ ॥

इन कुशों को हम पितरजनों के निमित्त (आसनरूप में) बिछाते हैं और देवों के लिए जीवों से भिन्न या उच्चस्तर पर कुश के आसन बिछाते हैं । हे पुरुष ! पितृमेध के लिए उपयोगी बनकर, आप इन कुशाओं पर आरोहण करें; ताकि पितरजन आपको परलोक में प्रस्थान किया हुआ मानें ॥५१ ॥

४५२९. एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२ ॥

हे पितरो ! इन बिछाये गये कुशों पर आप आरूढ़ हो गये हैं, पितृयज्ञ के निमित्त आप पवित्रता धारण कर चुके हैं । पितरजन आपको परे (उच्च लोकों में) गया हुआ जानें । अपनी सूक्ष्म देह के जोड़ों को (घटकों को) पूर्ण बनाएँ । हम आपके अंगों को ब्रह्मशक्ति के द्वारा (योग्य) स्वरूप प्रदान करते हैं ॥५२ । ।

४५३०. पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥५३ ॥

राजा (प्रकाशमान) पर्ण (पत्ता या पालनकर्त्ता) इस (दिव्य) चरु का आवरण है । वह (चरु) हमें अन्न, बलिष्ठता संघर्षशक्ति, ओजस् प्रदान करे एवं जीवों को सौ शरद ऋतुओं (वर्षों) की आयु धारण कराए ॥५३ ॥

४५३१. ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४ ॥

(हे मित्रो !) अश्म (कूटने वाले पत्थरों) के द्वारा अन्न के स्वामी को जो (चरु) प्राप्त हुआ है, अन्न का विभाजन करने वाले जिस (यम) के द्वारा यह उत्पन्न हुआ है, हवियों द्वारा उनका अर्चन करो । वे हमें दीर्घायु प्रदान करें ॥५४ ॥

४५३२. यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥५५ ॥

पाँच श्रेणी के जन समुदाय ने जैसे यमराज के लिए आश्रयस्थल बनाया है, वैसे ही पितरों के लिए इस पितृगृह को हम ऊँचा उठाते हैं । हे बन्धुगण ! इससे आप प्रचुर संख्या में निवास स्थान प्राप्त कर सकेंगे ॥५५ ॥

४५३३. इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥५६ ॥

(हे पुरुष !) आप इस हिरण्य (स्वर्ण निर्मित आभूषण अथवा तेजस्वी आवरण) को धारण करें, जिसे आपके पिता ने भी पहले धारण किया था । इस प्रकार आप स्वर्ग की ओर जाते हुए पिता के दाहिने हाथ (अथवा दक्षिणा देने की प्रवृत्ति) की शोभा बढ़ाएँ ॥५६ ॥

४५३४. ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥५७ ॥

जीवित प्राणियों, दिवंगत हुए प्राणियों , उत्पन्न हुए प्राणियों तथा उत्पन्न होने वाले प्राणियों, ऐसे सभी श्रद्धास्पदों को मधु - प्रवाह से उमड़ती हुई घृत अथवा जल की नदी उपलब्ध हो ॥५७ ॥

४५३५. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥५८ ॥

स्तोताओं को अभीष्ट फलदायक, विशिष्ट- दर्शनीय, सोम पवित्र स्थिति में गमन करता है । यह सोमरूप सूर्य अहोरात्र का निष्पन्नकर्त्ता है । यही उषाकाल और द्युलोक की वृद्धि का निमित्त कारण है । वर्षा का कारण भूत होने से नदियों का प्राणरूप है । यह सोम कलशों को लक्षित करके (कलशों की ओर गमन करते हुए) भयंकर क्रन्दन करता है । यह तीनों प्रकार के सवनों में पूजनीय इन्द्रदेव के हृदय में (उदर में) प्रवेश करता है ॥५८ ॥

४५३६. त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९ ॥

हे पवित्रकारक अग्ने ! प्रदीप्त होने के पश्चात् आपका धवल धूम्र अन्तरिक्ष में फैलकर दृष्टिगोचर होता है । हे पावन अग्निदेव ! स्तुति के प्रभाव से आप सूर्य की तरह प्रकाशित होते हैं ॥५९ ॥

४५३७. प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६० ॥

यह अभिषुत सोमरस इन्द्रदेव के उदर में ही जाता है । मित्रवत् हितैषी सोम, अभिषवण और स्तोत्रादि से मित्ररूप यजमान की कामनाओं को निष्फल नहीं, अपितु पूर्ण करते हैं । पुरुष के स्त्री से संगत होने के समान ही सोम द्रोणकलश में हजारों-असंख्य धाराओं से भली प्रकार आता है ॥६० ॥

४५३८. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१ ॥

मेधावी पितरगण पिण्डों का सेवन करके तृप्ति को प्राप्त हुए , तृप्ति द्वारा वे अपनी प्रियदेह को कान्तिमान् बनाते हैं । ये पितर स्वयं प्रकाशमान होकर हमारी प्रशंसा करते हैं । पिण्डसेवन से संतुष्ट पितरों से हम युवापुरुष अपने अभीष्ट फलों की याचना करते हैं ॥६१ ॥

४५३९. आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२ ॥

हे सोमपानकर्त्ता पितरो ! आप गम्भीर पितृयान मार्गों से आगमन करें तथा हमें आयुष्य, प्रजा (सन्तति) और धन-सम्पदा से भली प्रकार परिपुष्ट करें ॥६२ ॥

४५४०. परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३ ॥

हे सोमपानकर्त्ता पितृगण ! आप अपने पितृलोक के गम्भीर असाध्य पितृयान मार्गों से अपने लोक को जाएँ । मास की पूर्णता पर अमावस्या के दिन हविष्य का सेवन करने के लिए हमारे गृहों में आप पुनः आएँ । हे पितृगण ! आप ही हमें उत्तम प्रजा और श्रेष्ठ सन्तति प्रदान करने में सक्षम हैं ॥६३ ॥

४५४१. यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥६४ ॥

हे पितरो ! आपको पितृलोक में ले जाते समय जातवेदा अग्नि ने आपके जिस एक भाग को चिताग्नि में भस्म नहीं किया है, आपके उस अंग को हम पुनः अग्नि को सौंपकर आपको अगली यात्रा के लिए तैयार करते हैं । अपने सभी अङ्ग-अवयवों से परिपूर्ण होकर हे पितृगण ! आप स्वर्गलोक में पहुँचकर आनन्दपूर्वक वास करें ॥

४५४२. अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५ ॥

मनुष्यों द्वारा प्रातः - सायं वन्दित अग्निदेव को हमने पितरजनों के समीप भेजा है । हे अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों को पितरों के लिए समर्पित करें । स्वधापूर्वक प्रदत्त आहुतियों को पितरजन ग्रहण करें, तदनंतर हे अग्निदेव ! आपके निमित्त दी गई आहुतियों को आप स्वयं भी ग्रहण करें ॥६५ ॥

४५४३. असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥६६ ॥

हे अमुक नामवाले प्रेतपुरुष ! आपकी आसक्ति इन ईंटों द्वारा बनाये गये स्थान के प्रति है । हे श्मशान स्थल रूप भूमे ! आप उसी प्रकार इस स्थल पर स्थित प्रेत को आच्छादित करें, जिस प्रकार कुलीन स्त्रियाँ अपने कन्धे (सिर) को वस्त्र से ढक लेती हैं ॥६६ ॥

४५४४. शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥६७ ॥

हे प्रेतात्मा ! जिनमें पितरगण विराजमान होते हैं, वे लोक आपके लिए शोभायमान हों । हम आपको उसी लोक में प्रतिष्ठित करते हैं ॥६७ ॥

४५४५. येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥६८ ॥

हे कुश से निर्मित बर्हि ! आप हमारे पूर्वपितरों के आसीन होने के स्थान बनें ॥६८ ॥

४५४६. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥६९ ॥

हे वरुणदेव ! आप तीनों तापरूपी बंधनों से हमें मुक्त करें । आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाश हमसे दूर हों तथा मध्य एवं नीचे के बन्धन हमसे अलग करें । हे सूर्यपुत्र ! पापों से रहित होकर आपके कर्मफल सिद्धांत में अनुशासित हम दयनीय स्थिति में न रहें ॥६९ ॥

४५४७. प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७० ॥

हे वरुणदेव ! आप उन सभी प्रकार के पाश-बन्धनों से हमें भली प्रकार मुक्त करें, जिन बन्धनों से मनुष्य समाम अर्थात् जकड़ जाता है तथा व्याम अर्थात् उससे भी अधिक संकीर्ण बन्धन में जकड़ जाता है । तदनन्तर हे राजा वरुण ! आपके द्वारा संरक्षित हम शतायु प्राप्त करें ॥७० ॥

४५४८. अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१ ॥

कव्य के वहनकर्त्ता (पितरों के लिए हवि पहुँचाने को 'कव्य' कहा गया है) अग्निदेव के लिए स्वधा उच्चारण से आहुति समर्पित हो और नमन स्वीकार हो ॥७१ ॥

४५४९. सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२ ॥

श्रेष्ठ पिता वाले सोमदेव के निमित्त यह स्वधान्न और नमन प्राप्त हो ॥७२ ॥

४५५०. पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥७३ ॥

सोमयुक्त पितृगण के लिए यह स्वधाकार आहुति और वन्दन प्राप्त हो ॥७३ ॥

४५५१. यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७४ ॥

पितरों के अधिष्ठाता यमदेव को यह स्वधाकार आहुति और प्रणाम प्राप्त हो ॥७४ ॥

४५५२. एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७५ ॥

हे प्रपितामह ! आपके निमित्त पिण्डरूप में प्रदत्त यह आहुति स्वधा से युक्त हो । धर्मपत्नी, पुत्रादि पितर जो आपके अनुगामी होकर रहते हैं, उन्हें भी यह स्वधान्न प्राप्त हो ॥७५ ॥

४५५३. एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७६ ॥

हे पितामह ! आपके लिए यह पिण्डरूप में प्रदत्त स्वधाकार आहुति समर्पित है । धर्मपत्नी, पुत्रादि पितर जो आपके अनुगामी होकर रहते हैं, उन्हें भी यह स्वधान्न उपलब्ध हो ॥७६ ॥

४५५४. एतत् ते तत स्वधा ॥७७ ॥

हे पिता ! आपके लिए यह पिण्डादिरूप में स्वधाकार आहुति समर्पित हो ॥७७ ॥

४५५५. स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८ ॥

पृथ्वी पर वास करने वाले पितरों के निमित्त स्वधाकार से यह आहुति समर्पित हो ॥७८ ॥

४५५६. स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥७९ ॥

अन्तरिक्षवासी पितरगण के निमित्त यह आहुति स्वधारूप में समर्पित हो ॥७९ ॥

४५५७. स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८० ॥

द्युलोकवासी पितरगण के निमित्त स्वधा रूप प्रदत्त यह आहुति समर्पित हो ॥८० ॥

४५५८. नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१ ॥

हे पितृगण ! आपके अन्न, बल और मधुरादि रस के लिए हमारा नमन है ॥८१ ॥

४५५९. नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥८२ ॥

हे पितृगण ! आपके क्रोध और मन्यु के लिए हमारा नमन हो ॥८२ ॥

४५६०. नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३ ॥

हे पितरो ! विध्वंसकारियों के लिए आपके विकरालरूप और क्रूर स्वरूप के लिए हमारा नमन हो ॥८३ ॥

४५६१. नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥८४ ॥

हे पितरो ! आपके कल्याणप्रद और सुखकारी स्वरूप के लिए हमारा प्रणाम है ॥८४ ॥

४५६२. नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥८५ ॥

हे पितरो ! आपके निमित्त नमनपूर्वक यह स्वधाकार आहुति समर्पित हो ॥८५ ॥

४५६३. येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्माँस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६ ॥

हे पितरगण ! इस पितृयज्ञ में आप देवस्वरूप में विराजमान हों । अपने आश्रित अन्य पितरों से आप श्रेष्ठतर हों, वे आपके अनुगामी हों . आप उनके श्रेष्ठ अनुगमन के निमित्त बनें ॥८६ ॥

४५६४. य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७ ॥

हे पितरगण ! इस पितृयज्ञ में जो पितर पितृत्वगुण से युक्त हैं, उनमें आप श्रेष्ठतम बनें । इस भूलोक में पिण्डदानकर्त्ता हम लोग श्रेष्ठ जीवनयुक्त आयुष्य का उपभोग करें । हम समान आयु, वंश, विद्या और धन- सम्पदा से सम्पन्न लोगों में भी श्रेष्ठ हों ॥८७ ॥

४५६५. आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८८ ॥

हे प्रकाशमान अग्निदेव ! आप देदीप्यमान और जीर्णतारहित हैं, हम अपने समक्ष आपको प्रज्वलित करते हैं । आपकी अभिनन्दनीय आभा अन्तरिक्ष में (सूर्य में) प्रकाशित होती है । हे जाज्वल्यमान अग्निदेव ! आप हम स्तोताओं को अभीष्ट अन्नरूप फल प्रदान करें ॥८८ ॥

४५६६. चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८९ ॥

अन्तरिक्ष में चन्द्रमा तथा द्युलोक में सूर्य दौड़ रहे हैं । (हे विज्ञ पुरुषो !) तुम्हारा स्तर सुनहरी धारवाली विद्युत् को जानने योग्य नहीं है । हे द्युलोक एवं भूलोक ! आप हमारे भावों को समझें (हमें उनका बोध करने की सामर्थ्य प्रदान करें) ॥८९ ॥

[(क) वेद ने अन्तरिक्ष को अप्सु अन्तः जल क्षेत्र का अन्त कहा है । वर्तमान विज्ञान के अनुसार पृथ्वी के वायु मण्डल की सीमा तक जलवाष्प है, उसी के कारण आकाश नीला दिखता है । वायुमण्डल के बाहर निकलने पर आकाश नीला नहीं दिखता है । पृथ्वी का प्रभाव क्षेत्र वायुमण्डल तक ही है, उसके बाद अन्तरिक्ष प्रारम्भ होता है । इसीलिए अन्तरिक्ष को अप्सुअन्तः कहा गया है (ख) चन्द्रमा अन्तरिक्ष में है तथा सूर्य उससे ऊपर द्युलोक में है, यह तथ्य ऋषि देखते रहे हैं । (ग) द्युलोक एवं पृथ्वी से प्रार्थना की गयी है कि जिन सूक्ष्म प्रवाहों को हम नहीं जान पाते, उनका भी लाभ हमें प्रदान करें ।]

॥ इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ एकानावश काण्डम् ॥

[१ - यज्ञ सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** यज्ञ और चन्द्रमा । **छन्द-** पथ्याबृहती, ३ पंक्ति ।]

इस सूक्त में यज्ञ को प्रकृति में संव्याप्त व्यापक प्रकिया के रूप में प्रतिपादित किया गया है-

४५६७. सं सं स्त्रवन्तु नद्य१: सं वाताः सं पतत्रिणः ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१ ॥

नदियाँ सम्यक् रूप से प्रवहमान रहें । वायुदेव अनुकूल होकर प्रवाहित रहें । पक्षी भी स्वाभाविक रूप से उड़ते रहें । यज्ञों को हमारी स्तुतियाँ संवर्द्धित करें । सुख- सौभाग्य का संचार करने वाली आहुतियों से हम यजन करते हैं ॥१ ॥

४५६८. इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२ ॥

हे होमे गये पदार्थो ! आप इस यज्ञ की सुरक्षा करें । हे सुखदायक प्रवाहो ! आप भी इस यज्ञ की रक्षा करें। हमारी स्तुतियाँ यज्ञ को संवर्द्धित करें। सुख- सौभाग्य को संचरित करने वाली आहुतियों से हम यजन करते हैं ॥२ ॥

४५६९. रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।

यज्ञमिमं चतस्त्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३ ॥

हम (याजक) विविध रूपों और विविध बलों से युक्त इस (यजमान अथवा यज्ञ) की सुरक्षा करते हैं । चारों दिशाएँ इस यज्ञ को संवर्द्धित करें । हम सुख- संचार करने वाली आहुतियों से यजन करते हैं ॥३ ॥

[२ - आपः सूक्त]

[**ऋषि-** सिन्धुद्वीप । **देवता-** आपः । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

४५७०. शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१ ॥

(हे साधको !) हिम से उत्पन्न जल- प्रवाह, स्रोत (झरने) से प्रवाहित होने वाले, अनवरत तीव्रवेग से बहने वाले तथा वर्षा द्वारा नदियों में आये जल- प्रवाह , ये सभी आपके लिए सुखदायक एवं कल्याणकारी हों ॥१ ॥

४५७१. शं त आपो धन्वन्या३: शं ते सन्त्वनूप्याः ।

शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२ ॥

हे यजमान ! मरुस्थल के जल, जल सम्पन्न भू-भाग में होने वाले जल, खोदकर प्राप्त किये गए (कुएँ, बावड़ी आदि के) जल तथा घड़ों में भरकर लाये गए जल , ये सभी प्रकार के जल आपके लिए कल्याणप्रद हों ॥२ ॥

४५७२. अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३ ॥

कुदाल आदि खनन उपकरणों के न रहते हुए भी जो दोनों ओर के तटों को गिराने में सक्षम हैं । जो स्वयं का जीवन- व्यापार चलाने वाले मनुष्यों की बौद्धिक सामर्थ्य को बढ़ाते हैं तथा जो अतिगहन स्थलों में रहते हैं, ऐसे वैद्यों (ओषधि विशेषज्ञों) से भी अधिक हितकारी जल की हम स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४५७३. अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् । अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! वर्षा द्वारा आकाश मार्ग से प्राप्त होने वाले तथा स्रोतों से प्राप्त होने वाले जल के सदुपयोग के लिए अश्व की भाँति शीघ्रता करें ॥४ ॥

४५७४. ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः । यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥

हे ऋत्विजो ! आप मंगलकारी, हानिकारक रोगों के शमनकर्त्ता, ओषधिरूप जल को लेकर शीघ्र आएँ , जिससे सुखों की वृद्धि हो ॥५ ॥

[३ - जातवेदा सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वाङ्गिरा । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् , २ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

४५७५. दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप पृथ्वी, द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, वनस्पतियों और ओषधियों में जहाँ कहीं भी विशेष रूप से विद्यमान हों, प्रसन्नतापूर्वक हमारे अनुकूल होकर पधारें ॥१ ॥

४५७६. यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्व१ः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी महत्ता जो जल में (बड़वाग्निरूप में), जंगल में (दावानलरूप में), ओषधियों में (फल पाकरूप में), पशु आदि सभी प्राणियों में (वैश्वानररूप में) तथा अन्तरिक्षीय मेघों में (विद्युत् रूप में) विद्यमान है ।अपने उन सभी स्वरूपों के साथ आप पधारें और हमारे लिए अक्षय धन प्रदान करने वाले सिद्ध हों ॥

४५७७. यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! देवों में स्वाहाकार हव्य को पहुँचाने वाले, पितरों में स्वधाकार कव्य को पहुँचाने वाले तथा मनुष्यों में आहार को पचाने वाले के रूप में आपकी महिमा है । इन सभी रूपों में आप अनुकूल होकर पधारें तथा हमें धन प्रदान करें ॥३ ॥

४५७८. श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४ ॥

स्तुतियों को सुनने में समर्थ, अतीन्द्रिय क्षमतायुक्त, सबके जानने योग्य, अभीष्ट फलप्रदाता अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं। हे अग्निदेव ! जिनसे हमें भय है, उनसे निर्भयता की प्राप्ति हो । आप हमारे प्रति देवों के क्रोध को शान्त करें ॥४ ॥

[४ - आकूति सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाङ्गिरा । देवता- अग्नि, २ आकूति । छन्द- त्रिष्टुप्, १ पञ्चपदा विराडतिजगती, २ जगती ।]

४५७९. यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१ ॥

सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने जो आहुति प्रदान की थी, जिस आहुति को जातवेदा अग्निदेव ने सबसे पहले देवों तक पहुँचाया था । हे अग्निदेव ! वही आहुति सभी यजमानों से पूर्व मैं आपको प्रदान करता हूँ । प्रसन्नतापूर्वक आप इसे वहन करें, यह आहुति आपको समर्पित है ॥१ ॥

४५८०. आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२ ॥

सौभाग्य प्रदायिनी (सरस्वती) देवी को हम पहले स्थापित करते हैं । मातृवत् चित्तवृत्तियों को नियन्त्रित करने वाली ये देवी हमारे आवाहन पर अनुकूल हों । हमारी इच्छाएँ पूर्ण हों । मन में स्थित संकल्प पूर्ण हों ॥२ ॥

४५८१. आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! प्रबल इच्छाशक्ति के रूप में आप हमें प्राप्त हों । आप हमें ज्ञानरूप ऐश्वर्य प्रदान करें तथा हमारे लिए सुगम रीति से आवाहन योग्य हों ॥३ ॥

४५८२. बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४ ॥

आंगिरस कुल में उत्पन्न बृहस्पतिदेव हमारे निमित्त वाणी की अधिष्ठात्री शक्ति की स्तुति करें । देवशक्तियाँ जिनके नियंत्रण में रहती हैं, जो सभी के संगठक हैं; वे अभीष्ट फलों के प्रदाता बृहस्पतिदेव हमारे अनुकूल हों ॥४ ॥

[५ - जगद् - राजा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाङ्गिरा । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४५८३. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१ ॥

इन्द्रदेव समस्त स्थावर और जंगम जगत् के एकमात्र सर्वप्रथम राजा (शासक) हैं । हविप्रदाता को अनेक प्रकार का वैभव प्रदान करने वाले, वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें धन प्रदान करें ॥१ ॥

[६ - जगद्बीजपुरुष सूक्त]

[ऋषि- नारायण । देवता- पुरुष । छन्द- अनुष्टुप् ।]

यह सूक्त भी यजुर्वेद अध्याय ३१ की तरह १६ मन्त्रों वाला पुरुष सूक्त कहा गया है । १५ मन्त्र कुछ यथावत् तथा कुछ में थोड़ा पाठभेद है । १६ वाँ मन्त्र पूर्णतया भिन्न है । इनमें विराट् पुरुष से ही सृष्टि के उद्भव का भाव व्यक्त हुआ है -

४५८४. सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१ ॥

जो सहस्रों भुजाओं वाले, सहस्रों नेत्रों वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष हैं, वे सम्पूर्ण भूमि को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं ॥१ ॥

४५८५.त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः । तथा व्य क्रामद् विष्वङशनानशने अनु

चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार (जड़ और चेतन) विविध रूपों में समाहित है । इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाए हुए हैं ॥२ ॥

४५८६. तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३ ॥

विराट् पुरुष की महिमा अति विस्तृत है । इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी समाए हैं । तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं ॥३ ॥

४५८७.पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥४ ।

जो सृष्टि बन चुकी, जो बनने वाली है, यह सब विराट् पुरुष ही है । इस अमर जीव- जगत् के भी वही स्वामी हैं । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वही स्वामी हैं ॥४ ॥

४५८८. यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५ ॥

संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ?उसका मुख क्या है ?भुजाएँ , जंघाएँ और पाँव कौन से हैं ?शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ? ॥५ ॥

४५८९. ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यो ऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६ ॥

विराट् पुरुष के मुख (से) ज्ञानीजन ब्राह्मण (उत्पन्न) हुए । क्षत्रिय उसके बाहुओं से (समुद्भूत) हुए । वैश्य उसके मध्य भाग एवं सेवाधर्मी शूद्र उसके पैर (से प्रकट) हुए ॥६ ॥

४५९०.चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।

विराट् पुरुष परमात्मा के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु का प्रकटीकरण हुआ ॥७ ॥

४५९१. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥८ ॥

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँवों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं । इसी प्रकार (उसके द्वारा अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया (रचा) गया ॥८ ॥

४५९२. विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९ ॥

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । उसी विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए । वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, तत्पश्चात् शरीरधारियों को उत्पन्न किया ॥९ ॥

४५९३. यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१० ॥

जब देवों ने विराट् पुरुष को हवि मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया, तब घृत वसन्त ऋतु, ईंधन (समिधा) ग्रीष्म ऋतु एवं हवि शरद् ऋतु हुई ॥१० ॥

४५९४. तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः। तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये।

देवताओं एवं प्राण तथा इन्द्रियों को वश में करने वाले साधकों ने सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले विराट् पुरुष का पवित्र जल से अभिषेक किया। उसी परम पुरुष से यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ ॥११ ॥

४५९५. तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१२ ॥

उसी विराट् यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दाँतवाले घोड़े और उसी विराट् पुरुष से गौएँ, भेड़-बकरी आदि पशु उत्पन्न हुए ॥१२ ॥

४५९६. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥१३ ॥

उस विराट् यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ। उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ ॥१३ ॥

४५९७. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४ ॥

उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ। उसी से वायु में रहने वाले (उड़ने वाले), वनों और ग्रामों में रहने वाले पशु उत्पन्न हुए ॥१४ ॥

४५९८. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५ ॥

देवों ने जिस (सृष्टि विस्तारक) यज्ञ का विस्तार किया, उसकी सात परिधियाँ हुईं तथा त्रिसप्त (तीन प्रकार की सात-सात) समिधाएँ प्रयुक्त की गईं। उस यज्ञ में विराट् पुरुष को ही पशु (हव्य) के रूप में बाँधा (नियुक्त या अनुबन्धित किया) गया ॥१५ ॥

[तीनों लोकों में सात-सात विभाग हैं, शरीर में सप्त धातु हैं, ऊर्ध्व भाग (द्युलोक), मध्य भाग (अन्तरिक्ष) तथा अधोभाग(भूलोक) में संचरित है। इन सभी को समिधा की तरह प्रयुक्त करने पर ब्रह्माग्नि-ब्रह्मविद्या विकसित होती है। ब्रह्मविद्या से उत्पन्न पदार्थों में ब्राह्मीचेतना की आहुतियों से ही सृष्टि में जीवन का संचार हुआ है। इस प्रकार समिधाओं को प्रज्वलित करने वाला तथा आहुति रूप में होमा जाने वाला वह विराट् पुरुष ही है।]

४५९९. मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः। राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि

यज्ञ पुरुष से निष्पन्न हुए राजा सोम के मस्तक से सात रंग वाली सत्तर बार (चार सौ नब्बे) महान् दीप्ति युक्त किरणें प्रकट हुईं ॥१६ ॥

[विराट् पुरुष के संकल्प से सृष्टि के मूल पोषक- प्रवाह को सोम कहा गया है। ऋषि के अनुसार इसमें ७ x ७० = ४९० किरणें या विभिन्न प्रवाह समाहित हैं। यह वैज्ञानिक स्तर पर शोध का विषय है।]

[७-नक्षत्र सूक्त]

[ऋषि- गार्ग्य । देवता- नक्षत्रादि । छन्द- त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में अभिजित् सहित सभी नक्षत्रों का वर्णन है । ज्योतिर्गणित में सवा दो नक्षत्रों की एक राशि मानी जाती है, इस प्रकार १२ X २.२५ = २७ नक्षत्रों का ही प्रयोग होता है; किन्तु अभिजित् भी २८ वाँ मान्य नक्षत्र है । राशि गणना 'मेष' से तदनुसार नक्षत्र गणना 'अश्विनी' से की जाती है । इस सूक्त में कृत्तिका नक्षत्र से वर्णन प्रारम्भ करके चक्र पूरा किया गया है । लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ओरायन' (सन् १८९३ ई०) की भूमिका में इसी 'कृत्तिका' नक्षत्र की प्रमुखता के आधार पर 'वेदों का काल निर्धारण' सुनिश्चित किया है । उनका मानना है कि जिन दिनों कृत्तिका नक्षत्र की प्रमुखता थी, कृत्तिका नक्षत्र से नक्षत्र चक्र प्रारम्भ होता था; उसी नक्षत्र को आधार मानकर दूसरे नक्षत्रों की गतिविधि तथा दिन-रात की गणना होती थी, वही ब्राह्मण काल था, संहिताकाल इससे भी पूर्व था, उसे 'मृगशिराकाल' कहते थे; क्योंकि उस समय 'मृगशिरा' नक्षत्र की प्रमुखता थी । उनके मतानुसार इस समय से भी पूर्व, जिसे अदितिकाल (६०००-४००० ई०पू०) कहते हैं, मन्त्रों का प्रादुर्भाव हो चुका था-

४६००. चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१ ॥

हम अनिष्ट निवारक श्रेष्ठ बुद्धि की कामना करते हुए, द्युलोक में विचित्र वर्णों से एक साथ चमकते हुए, नष्ट न होने वाले, तीव्र वेग से सतत गतिशील नक्षत्रों एवं स्वर्गलोक की अपनी वाणी से स्तुति करते हैं ॥१ ॥

४६०१. सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र हमारे लिए सुखपूर्वक आवाहन करने योग्य हों । मृगशिरा नक्षत्र कल्याणप्रद हो ।आर्द्रा शान्तिकारक हो । पुनर्वसु श्रेष्ठ वक्तृत्व कला (वाक्शक्ति) देने वाला एवं उत्तम फलदायी हो । आश्लेषा प्रकाश देने वाला तथा मघा नक्षत्र हमारे लिए प्रगतिशील मार्ग प्रशस्त करने वाला हो ॥२ ॥

४६०२. पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३ ॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र पुण्यदायी, हस्त और चित्रा नक्षत्र कल्याणकारी, स्वाति नक्षत्र सुखदायी, राधा-विशाखा नक्षत्र आवाहन योग्य तथा अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र मंगलप्रद हों ॥३ ॥

४६०३. अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४ ॥

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हमारे लिए अन्नप्रद और उत्तराषाढ़ा बलदायक अन्नरस प्रदान करे । अभिजित् हमारे लिए पुण्यदायी, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र हमारे लिए उत्तम रीति से पालन करने वाले हों ॥४ ॥

४६०४. आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५ ॥

शतभिषक् नक्षत्र महान् वैभव प्रदाता तथा दोनों श्रेष्ठपदा नक्षत्र हमें श्रेष्ठ सुख प्रदान करने वाले हों । रेवती और अश्वयुग (अश्विनी) नक्षत्र ऐश्वर्यदाता तथा भरणी नक्षत्र भी हमें वैभव प्रदान करने वाले हों ॥५ ॥

[८- नक्षत्र सूक्त]

[ऋषि- गार्ग्य । देवता- १-५, ७ नक्षत्र- समूह, ६ ब्रह्मणस्पति । छन्द- अनुष्टुप्, १ विराट् जगती, २ महाबृहती त्रिष्टुप्, ३ विराट्स्थाना त्रिष्टुप्, ७ द्विपदा निचृत् त्रिष्टुप् ।]

४६०५. यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१ ॥

जो नक्षत्र द्युलोक में, अन्तरिक्ष लोक में, जल में , पृथ्वी में, पर्वतश्रेणियों तथा दिशाओं में दिखाई देते हैं । चन्द्रमा जिनको प्रदीप्त करते हुए प्रादुर्भूत होते हैं , वे सभी नक्षत्र हमें सुख प्रदान करने वाले हों ॥१ ॥

४६०६. अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२ ॥

कृत्तिकादि कल्याणप्रद जो २८ नक्षत्र हैं, वे हमें अभीष्ट प्रदान करें । नक्षत्रों का सहयोग हमारे लिए लाभप्रद हो । हम प्राप्त वस्तु के संरक्षण में समर्थ हों । हम अहोरात्र के प्रति वन्दना करते रहें, हमें योग-क्षेम प्राप्त हो ॥२ ॥

४६०७. स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥३ ॥

प्रातः- सायं हमारे लिए सुखप्रद हों । हम श्रेष्ठ प्रयोजन हेतु अनुकूल नक्षत्र में गमन करें , जिसमें हरिण आदि पशु-पक्षी शुभ संकेत वाले हों । हे अमर्त्य अग्ने ! आप हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर यहाँ पधारें ॥३ ॥

४६०८.अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥४ ।

हे सवितादेव !स्पर्धा, संघर्ष, निन्दा, घृणा आदि दुर्गुणों को सारहीन खाली घड़े के समान हमसे दूर कर दें ।

४६०९. अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५ ॥

पापयुक्त त्याज्य अन्न को हमसे दूर करें तथा पुण्य से प्राप्त अन्न का हम सेवन करें । हे पाप पुरुष ! तेरी निर्लज्ज नाक पर श्रेष्ठ मार्गगामी स्त्री-पुरुष अपमान सूचक शब्द कहें ॥५ ॥

४६१०. इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते । सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि

हे ब्रह्मणस्पति इन्द्रदेव ! पूर्व आदि जिन दिशाओं में आँधी-तूफान के रूप में वायुदेव चलते हैं , उन्हें आप उपयुक्त मार्ग से चलने वाला बनाकर हमारे लिए मंगलमय बनाएँ ॥६ ॥

४६११. स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७ ॥

हमारा हर तरह से कल्याण हो, हमें निर्भयता की प्राप्ति हो । अहोरात्ररूप देव को हमारा नमस्कार है ॥७ ॥

[९ - शान्ति सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- शान्ति, मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुप् , १ विराट् उरोबृहती, ५ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, ९ पञ्चपदा ककुम्मती त्रिष्टुप् , १२ त्र्यवसाना सप्तपदाष्टि, १४ चतुष्पदा सङ्कृति ।]

४६१२. शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१ ॥

द्युलोक, पृथ्वी, विस्तृत अन्तरिक्षलोक, समुद्री जल और ओषधियाँ ये सभी उत्पन्न होने वाले अनिष्टों का निवारण करके हमारे लिए सुख- शान्ति प्रदान करें ॥१ ॥

४६१३. शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२ ॥

पूर्वजन्म में किये गये कर्म हमारे लिए शान्ति प्रदायक हों । हमारे द्वारा सम्पन्न किये गये और न किये गये कार्य भी शान्ति प्रदान करें । भूत और भविष्यत् दोनों हमारे लिए शान्ति प्रदायक सिद्ध हों । सभी कर्म हमें शान्ति और सुख प्रदान करें ॥२ ॥

४६१४.इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः

परमपद पर विराजमान, तेजस्वी ज्ञान से देदीप्यमान जो वाणी की देवी सरस्वती हैं, वे हमारे द्वारा दूसरों के प्रति बोले गये अपशब्दों के दोष से हमें मुक्त करें तथा हमारे लिए शान्ति प्रदान करने वाली सिद्ध हों ॥३ ॥

४६१५.इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४

यह जो परम स्थान में विराजमान ज्ञान से देदीप्यमान इस जगत् का मूल कारण 'मन' है । यदि इसके द्वारा दुष्कर्म की उत्पत्ति हुई हो, तो यही हमारे द्वारा किये गये बुरे कर्मों के प्रभाव को शान्ति प्रदान करे ॥४ ॥

४६१६. इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५ ॥

चेतना द्वारा संचालित मन के साथ जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे हृदय में वास करती हैं, उनसे यदि अपराध कर्म बन पड़ा हो, तो उनके द्वारा रचित उस दुष्कर्म की हमारे प्रति शान्ति हो ॥५ ॥

४६१७. शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६ ॥

दिन के अधिष्ठाता देवता सूर्य (मित्र) , रात्रि के अभिमानी देव वरुण, पालनकर्त्ता विष्णुदेव, प्रजा के पालक प्रजापति, परम वैभवयुक्त इन्द्रदेव, बृहस्पति तथा अर्यमादेव, ये सभी देवता हमें शान्ति प्रदान करने वाले हों ॥६ ॥

४६१८. शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७ ॥

मित्र, वरुण, अन्धकारनाशक विवस्वान्, सभी प्राणियों के संहारकर्त्ता अन्तकदेव, हमें सुख प्रदान करने वाले सिद्ध हों । पृथ्वी और अन्तरिक्षलोक में होने वाले उत्पात और द्युलोक में विचरणशील मंगल आदि ग्रह हमारे दोष का निवारण करके हमारे लिए शान्तिप्रद सिद्ध हों ॥७ ॥

४६१९. शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥८ ॥

कम्पायमान पृथ्वी हमारे लिए शान्तिदायक हो । उल्कापात भी शान्तिप्रद हो । लोहित दूध देने वाली गौएँ भी हमारे लिए सुखदायी हों तथा कटी हुई पृथ्वी भी हमारे लिए कल्याणमयी हो ॥८ ॥

[भूकम्प-उल्कापात जैसी भयजनक क्रियाओं को ऋषि प्रकृति के सहज प्रवाह के अंग के रूप में देखते हैं । उन्हें रोकने की प्रार्थना नहीं करते, बल्कि वे परिवर्तन, कल्याणकारी प्रभाव उत्पन्न करने वाले हों, ऐसी भावना करते हैं ।]

४६२०. नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९ ॥

उल्काओं से फेंका गया नक्षत्र हमें शान्ति प्रदान करने वाला हो । अभिचार क्रियाएँ तथा कृत्या प्रयोग भी हमारे लिए शान्तिप्रद हों । भूमि में खोदकर किये गए प्रयोग भी हमारे लिए घातक न हों । उल्काएँ शान्त हों । देश में होने वाले सभी प्रकार के विघ्न भी शान्त हो जाएँ ॥९ ॥

४६२१.शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा । शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः

चन्द्र मण्डल के मंगल आदि ग्रह, राहु से ग्रस्त आदित्य ग्रह, मारक धूमकेतु के अनिष्ट और रुद्र के तीखे सन्तापक उत्पात ये सभी शान्त हों ॥१० ॥

४६२२.शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः । शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः

एकादश रुद्रगण, आठ वसुगण, बारह आदित्य, सभीप्रकार की अग्नियाँ , इन्द्रादि देव शक्तियाँ, सप्तर्षि और बृहस्पतिदेव ये सभी शान्ति प्रदान करते हुए हमारे लिए कल्याणकारी सिद्ध हों ॥११ ॥

४६२३. ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२ ॥

परब्रह्म, धाता, प्रजापति, ब्रह्मा, सभी वेद, सात लोक, सात ऋषि और सभी अग्नियाँ - इन सबके द्वारा हमारे कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ है । इन्द्र, ब्रह्मा, विश्वेदेवा और समस्त देव हमारे श्रेय के मार्ग को प्रशस्त करें ॥१२ ॥

४६२४. यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३ ॥

अतीन्द्रिय द्रष्टा सप्तर्षिगण शान्तिप्रद जितनी भी विद्याओं के ज्ञाता हैं, वे सभी युक्तियाँ हमारे लिए कल्याणकारी हों । हमें सभी ओर से सुख-शान्ति एवं निर्भयता की प्राप्ति हो ॥१३ ॥

४६२५. पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह
पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥१४ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, जल, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ और समस्त देव हमारे लिए शान्तिप्रद हों । शान्ति से बढ़कर असीम शान्ति को हम प्राप्त करें । इन सभी प्रकार की शान्ति- प्रक्रियाओं द्वारा हम घोर कर्म, क्रूर-कर्मफल और पापपूर्ण फल को दूर हटाते हैं, वे शान्त होकर कल्याणप्रद हों । वे सभी हमारे लिए मंगलप्रद हों ॥

[१० - शान्ति सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६२६. शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१ ॥

हवि ग्रहण करके इन्द्र और अग्निदेव तथा इन्द्र और वरुणदेव हम सभी का कल्याण करें । इन्द्र और पूषादेव मंगलकारी अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करें । इन्द्र और सोमदेव सुसन्तति प्राप्ति के लिए तथा रोगों के शमन और भय दूर करने के लिए , हमारे लिए मंगलमय हों ॥१ ॥

४६२७. शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२ ॥

भग देवता हमें शान्ति प्रदान करें । यह शान्ति मनुष्यों द्वारा प्रशंसित हो । बुद्धि एवं धन हमें शान्ति प्रदान करे । श्रेष्ठ एवं शिष्ट बोले गये वचन हमें शान्ति देने वाले हों । अर्यमादेव हमें शान्ति देने वाले हों ॥२ ॥

४६२८. शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३ ॥

धाता (आधार प्रदान करने वाले), धर्त्ता (धारण करने वाले), द्यावा-पृथिवी, पृथ्वी का अन्न, पर्वत तथा देवताओं की उपासना- ये सभी हम सबके लिए शान्तिदायक-कल्याणप्रद हों ॥३ ॥

४६२९. शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४ ॥

तेजस्वी अग्निदेव, मित्रावरुणदेव, सूर्यदेव, चन्द्रदेव, दोनों अश्विनीकुमार , सत्कर्मा एवं गमनशील वायुदेव हमें शान्ति प्रदान करें ॥४ ॥

४६३०. शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५ ॥

द्यावा - पृथिवी हमें प्रथम बार प्रार्थना में शान्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ दर्शन के निमित्त अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे । वनस्पति एवं ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें । विजयशील लोकपाल भी हमें शान्ति प्रदान करें ॥५ ॥

४६३१. शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६ ॥

इन्द्र देवता वसुगणों सहित हमें शान्ति प्रदान करें । आदित्यों सहित वरुणदेव, रुद्रगणों सहित जलदेव हमें शान्ति प्रदान करें । त्वष्टादेव, देवपत्नियों सहित हमें शान्ति दें । (सभी देवगण) हमारी विनय सुनें ॥६ ॥

४६३२. शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥७ ॥

सोम एवं ग्रावा (सोम कूटने वाला पत्थर) हमें शान्ति दें । ब्रह्मा एवं यज्ञदेव हमें शान्ति प्रदान करें । यूपों का प्रमाण, ओषधियाँ, वेदिका आदि सभी हमें शान्ति प्रदान करें ॥७ ॥

४६३३. शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्त्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८ ॥

विशाल तेजधारी सूर्यदेव हमें शान्ति प्रदान करने के लिए उदित हों । चारों दिशाएँ हमें शान्ति दें, स्थिर पर्वत, जल एवं समुद्र हमें शान्ति प्रदान करें ॥८ ॥

४६३४. शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९ ॥

अदिति अपने व्रतों द्वारा हमें शान्ति प्रदान करें । उत्तम तेजस्वी मरुद्गण हमें शान्ति प्रदान करें । विष्णुदेव, पूषादेव, अन्तरिक्ष एवं वायुदेव हमें शान्ति प्रदान करें ॥९ ॥

४६३५. शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१० ॥

त्राण प्रदाता सवितादेव हमें शान्ति प्रदान करें । तेजस्वी उषाएँ हमें शान्ति प्रदान करें । पर्जन्य एवं क्षेत्रों के कल्याणकारी अधिपति हमारी प्रजा के लिए शान्ति प्रदायक-मंगलकारी हों ॥१० ॥

[११ - शान्ति सूक्त]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- मन्त्रोक्त । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

४६३६. शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१ ॥

सत्य के अधिपति, अश्व एवं गौएँ हमें सुख - शान्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ कर्म करने वाले एवं श्रेष्ठ भुजाओ वाले ऋभुगण हमें शान्ति प्रदान करें । हमारे पितरगण हमारी प्रार्थना सुनकर हमें शान्ति प्रदान करें ॥१ ॥

४६३७. शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥२ ॥

विश्वदेव (समस्त देवगण) हमें शान्ति प्रदान करें । सद्बुद्धि देने वाली देवी सरस्वती हमें शान्ति प्रदान करें । यज्ञकर्त्ता, दानदाता, द्युलोक , पृथ्वी और जल के देवगण हमें शान्ति प्रदान करें ॥२ ॥

४६३८. शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्य१ः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३ ॥

एक पाद अजदेव हमारा कल्याण करें । अहिर्बुध्न्य और समुद्रदेव हमें शान्ति प्रदान करें । अपांनपात् देव शान्ति दें । देवताओं से संरक्षित गौ (किरणें या प्रकृति) हमें शान्ति प्रदान करें ॥३ ॥

४६३९. आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥४ ॥

नवरचित स्तोत्रों को आदित्यगण, वसुगण एवं रुद्रगण ग्रहण करें । द्युलोक, पृथ्वी एवं स्वर्ग में उत्पन्न देवगण और भी जो यजनीय देव आदि हैं, वे सब हमारी स्तुति स्वीकार करें ॥४ ॥

४६४०. ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ॥

यजनीय देवताओं के लिए भी जो पूज्य हैं एवं मनुष्य के लिए भी जो पूज्य हैं, ऐसे अमर, ऋतज्ञदेव आज प्रसन्न होकर हमें यशस्वी पुत्र दें तथा हमारा पालन एवं कल्याण करें ॥५ ॥

४६४१. तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥६ ॥

हे मित्रावरुण और अग्निदेवो ! हमारे लिए सब कुछ शान्तिप्रद हो । आप हमारे दु:खों को दूर कर सुख का मार्ग प्रशस्त करें । हमें सांसारिक वैभव और प्रतिष्ठा प्राप्त हो । हम, सबके आश्रयभूत द्युलोक को नमन करते हैं ।

[१२ - सुवीर सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४६४२. उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१ ॥

रात्रि के अन्धकार को दूर कर भली प्रकार उत्पन्न होने वाली उषा सबको प्रगति का मार्ग दिखाती है । इससे हम देवत्व के विकास के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त करें । हम बलवान् सन्तानों से युक्त होकर सौ वर्ष (पूर्ण आयु) तक जीवित रहें ॥१ ॥

[१३ - एकवीर सूक्त]

[**ऋषि-** अप्रतिरथ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ३-६, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

४६४३. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्व१र्यत् ॥१ ॥

इन्द्र के दृढ़, अभीष्ट (शक्ति या सुखों के) वर्षक, अद्‌भुत, बलशाली, (संकटों से) पार ले जाने वाले बाहुओं को हम अभिषिक्त करते हैं, समय आने पर जिनसे असुरों का स्वत्व जीता जाता है ॥१ ॥

४६४४. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥२ ॥

स्फूर्तिवान्, विकराल, वृषभ की तरह शत्रु को भयभीत करने वाले, दुष्टनाशक, शत्रुओं को रुलाने वाले, द्वेष करने वालों को क्षुब्ध करने वाले, आलस्यहीन वीर इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं को पराजित करके विजयी होते हैं ॥२ ॥

४६४५. संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३ ॥

हे योद्धाओ ! शत्रुओं को रुलाने वाले, आलस्यरहित, विजयी, निपुण, अविचल तथा बाणधारी इन्द्रदेव की सहायता से युद्ध जीतकर शत्रुओं को भगाओ ॥३ ॥

४६४६. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु१ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव बाण और तलवारधारी योद्धाओं के सहयोग से शत्रुओं को वश में करते हैं । वे युद्ध में अतिकुशल, विजेता, सोम पीने वाले, बाहु-बल सम्पन्न, धनुर्धारी तथा शत्रु - संहारक हैं ॥४ ॥

४६४७. बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सबके बलों के ज्ञाता, उत्तम वीर, शत्रु के आक्रमण को सहने वाले, बलवान्, शत्रु-विजेता, उग्र, महावीर, शक्तिशाली होकर भी जन्म लेने वाले, गौ-पालक तथा विजय रथ पर प्रतिष्ठित हों ॥५ ॥

४६४८. इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥६ ॥

हे समान कर्म और बुद्धिशाली वीरो ! आप इन उग्रवीर इन्द्र को प्रसन्न करके उनका अनुगमन करें । वे शत्रुओं के गाँवों, गौओं और युद्ध में भूमि के विजेता हैं । वे वज्रबाहु और वेगपूर्वक शत्रुओं का मर्दन करने वाले हैं ॥६ ॥

४६४९. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्यो३स्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ॥७ ॥

बल से शत्रु के किलों को भेदने वाले पराक्रमी, शत्रुओं पर दया न करने वाले वीर, अविचल, शत्रु-विजेता, अद्वितीय योद्धा इन्द्रदेव हमारी सेना को संरक्षण प्रदान करें ॥७ ॥

४६५०. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥८ ॥

हे सर्वपालक इन्द्रदेव ! राक्षसों को मारते हुए, शत्रुओं को त्रास देकर उन्हें कुचलते हुए और अमित्रों का ध्वंस करते हुए यहाँ आएँ । हमारे शरीरों की रक्षा करते हुए आप आगे बढ़ें ॥८ ॥

४६५१. इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥९ ॥

हमारी सेनाओं के नेतृत्वकर्ता इन्द्रदेव हों ! बृहस्पतिदेव सबसे आगे- आगे चलें । दक्षिणा यज्ञ संचालक सोम भी आगे चले । शत्रु- नाशक मरुद्गण विजयी देवों की सेना के बीच में रहें ॥९ ॥

४६५२. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१० ॥

बलशाली इन्द्रदेव, राजा वरुण, आदित्यों और मरुतों का तीक्ष्ण बल हमारा सहायक हो । शत्रु- नगरों के विध्वंसक, विशालमना और विजयी देवों का जयघोष गुञ्जायमान हो ॥१० ॥

४६५३. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥११ ॥

(युद्ध में) ध्वज एकत्रित होने पर इन्द्रदेव हमें सुरक्षा प्रदान करें । हमारे बाण शत्रुओं पर विजय पाने वाले हों । हमारे वीर विजयी हों । हे देवो ! आप युद्ध में हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥११ ॥

[१४ - अभय सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** द्यावापृथिवी । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४६५४. इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१ ॥

श्रेय के लक्ष्य तक हम पहुँच चुके हैं । द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिए कल्याणकारी हों । समस्त दिशाएँ हमारे लिए शत्रुओं के उपद्रवों से रहित हों । हे शत्रुओ ! हम तुम्हारे प्रति द्वेष नहीं रखते, अत: हमें निर्भय करो ॥

[१५ - अभय सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** १-४ इन्द्र, ५-६ मन्त्रोक्त । **छन्द-** १ पथ्याबृहती, २, ५ चतुष्पदा जगती, ३ विराट् पथ्यापंक्ति, ४, ६ त्रिष्टुप् ।]

४६५५. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम भयभीत हैं, हमें भयरहित करें । हे धनवान् देव ! आप सर्वसामर्थ्यवान् हैं, अत: द्वेष वृत्तिवालों को जीतकर हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

४६५६. इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥२ ॥

आराधना योग्य इन्द्रदेव को हम आवाहित करते हैं । हम द्विपाद मनुष्यों और चतुष्पाद (पशुओं) से भली प्रकार से समृद्ध हों । हे इन्द्रदेव ! अनुदार शत्रुसेना हमारे समीप न आ सके, विद्रोही शत्रुओं को सब प्रकार से विनष्ट करें ॥२ ॥

४६५७. इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३ ॥

वृत्रासुर के नाशक इन्द्रदेव हमारे संरक्षक हों । वरण करने योग्य इन्द्रदेव शत्रुओं के प्रभाव से हमें बचाएँ । वे इन्द्रदेव अन्त, मध्य, आगे और पीछे सभी ओर से हमें पूर्ण संरक्षण प्रदान करने वाले हों ॥३ ॥

४६५८. उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, सर्वज्ञ हैं, अत: आप हमें इस बड़े क्षेत्र की बाधाओं से निकालकर सरलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँचाएँ और निर्भय करें । युद्ध में दृढ़ रहने वाली आपकी दोनों भुजाएँ बहुत उग्र हैं । हम आपके विशाल आश्रय (संरक्षण) में रहें ॥४ ॥

४६५९. अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५ ॥

अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक और पृथ्वी ये सभी हमें निर्भयता प्रदान करें । उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम ये चारों दिशाएँ भी हमारे लिए निर्भयतायुक्त हों ॥५ ॥

४६६०. अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥६ ॥

मित्रों, शत्रुओं तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनिष्टों से हमें किसी प्रकार का भय न हो । हमें दिन और रात्रि से निर्भयता की प्राप्ति हो । हम अभय के आकांक्षियों के लिए सभी दिशाएँ मित्रवत् कल्याणकारी हों ॥६ ॥

[१६ - अभय सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** अनुष्टुप् , २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भा अतिशक्वरी ।]

४६६१. असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१ ॥

हमारे आगे (पूर्व दिशा में) शत्रु न रहें तथा पीछे (पश्चिम) से हम निर्भय रहें । दक्षिण की तरफ से सवितादेव और उत्तर की तरफ से इन्द्रदेव हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

४६६२.दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः । इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विना-
वभितः शर्म यच्छताम् । तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ।

आदित्यदेव द्युलोक से हमारा संरक्षण करें । अग्नियाँ पृथ्वीलोक के अनिष्टों का निवारण करें । इन्द्राग्नि पूर्व दिशा में हमारे संरक्षक हों । अश्विनीकुमार चारों ओर से हमें सुख प्रदान करें । सब भूतों (पदार्थों) के निर्माता जातवेदा अग्निदेव चारों ओर से हमारे निमित्त अभेद्य कवच रूप हों ॥२ ॥

[१७ - सुरक्षा सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** १ उपजगती, २-४ , ८ जगती, ६ भुरिक् जगती, ५, ७,१० अतिजगती, ९ पञ्चपदा विराट् अतिशक्वरी ।]

४६६३. अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१ ॥

अग्निदेव वसुगण के साथ पूर्व दिशा से हमें संरक्षण प्रदान करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय ग्रहण करते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥१ ॥

४६६४. वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥२ ॥

वायुदेव अन्तरिक्ष के साथ इस पूर्व दिशा में हमारा संरक्षण करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥२ ॥

४६६५. सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥३ ॥

सोमदेव रुद्रगण के साथ दक्षिण दिशा में हमारा संरक्षण करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥३ ॥

४६६६. वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥४ ॥

वरुणदेव आदित्यों के साथ दक्षिण दिशा में हमारे संरक्षणकर्त्ता हों । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥४ ॥

४६६७. सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा । ।५ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव द्यावा- पृथिवी सहित पश्चिम दिशा में हमारे संरक्षक हों । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥५ ॥

४६६८. आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि । ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥६ ॥

ओषधियुक्त जल इस दिशा से हमारा संरक्षण करे । हम उसका अनुगमन और आश्रय लेते हैं । हम उस नगर में प्रवेश करते हैं । वह हमारी रक्षा और पालन करे, उसके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥६ ॥

४६६९. विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥७ ॥

विश्व के स्रष्टा परमात्मा सप्तर्षियों के सहयोग से हमें उत्तर दिशा में संरक्षण प्रदान करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं, वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें । उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥७ ॥

४६७०. इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥८ ॥

इन्द्रदेव मरुद्‌गण के सहयोग से इस दिशा में हमारे संरक्षक हों । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥८ ॥

४६७१. प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥९ ॥

सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति के कारणभूत, प्रजनन क्षमता से युक्त प्रजापतिदेव ध्रुव दिशा में हमारे संरक्षक हों । हम उनका अनुगमन करते हैं और उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥९ ॥

४६७२. बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१० ॥

देवशक्तियों के हितैषी बृहस्पतिदेव सम्पूर्ण देवों सहित ऊर्ध्व दिशा में हमारे संरक्षक रूप हों । हम उनका अनुगमन करते हैं और उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥१० ॥

[१८ - सुरक्षा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- १, ८ साम्नी त्रिष्टुप् , २-४, ६ आर्ची अनुष्टुप् , ५ सम्राट् (स्वराट्) आर्ची अनुष्टुप् , ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप् ।]

४६७३. अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशो ऽभिदासात् ॥१ ॥

जो पापी पूर्व दिशा से हमें पराधीन बनाने के आकांक्षी हैं, वे शत्रु वसुओं के साथ अग्नि में भस्म हो जाएँ ॥१ ॥

४६७४. वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥२ ॥

जो पापी शत्रु इस दिशा से हमें पराधीन बनाना चाहते हैं, वे अन्तरिक्षीय वायु को प्राप्त (नष्ट)हो जाएँ ॥२ ॥

४६७५. सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशो ऽभिदासात् ॥३ ॥

जो दुष्ट लोग दक्षिण दिशा से हमें हिंसित करना चाहते हैं, वे रुद्रदेवों के साथ सोम को प्राप्त (विनष्ट) हों ॥३ ॥

४६७६. वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥४ ॥

जो दुष्ट शत्रु हमें इस दिशा में मारने के इच्छुक हैं, वे अदितिपुत्रों के साथ वरुणदेव के पाश में पड़ें ॥४ ॥

४६७७.सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव प्रतीच्या दिशो ऽभिदासात् ॥५ ॥

जो पाप रूप शत्रु पश्चिम दिशा से आकर हमारा वध करना चाहते हैं, वे द्यावा - पृथिवी को अपने प्रकाश से विस्तृत करने वाले सूर्य को प्राप्त (विनष्ट) हों ॥५ ॥

४६७८. अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥६ ॥

जो शत्रु इस दिशा से आकर हमारा संहार करना चाहते हैं, वे ओषधियुक्त जल के वश में (विनष्ट) हों ॥६ ॥

४६७९. विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशो ऽभिदासात् ॥

जो शत्रु उत्तर दिशा से आकर हमारा वध करना चाहते हैं, वे सप्तर्षियों से युक्त विश्वकर्मा को प्राप्त हों ॥७ ॥

४६८०. इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥८ ॥

जो शत्रु इस दिशा से आकर हमारे संहारेच्छुक हों, वे शत्रु मरुत्वान् इन्द्रदेव को प्राप्त (विनष्ट) हो जाएँ ॥८ ॥

४६८१. प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशो ऽभिदासात् ॥९ ॥

जो पापी ध्रुव दिशा से हमारे वधाकांक्षी हैं, वे प्रजनन क्षमता से युक्त प्रजापति के वशीभूत (विनष्ट) हों ॥९ ॥

४६८२. बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशो ऽभिदासात् ॥१०

जो पापी ऊर्ध्व दिशा से आकर हमारे संहार के इच्छुक हैं, वे शत्रु समस्त देवताओं से युक्त बृहस्पतिदेव के वशीभूत (विनष्ट) हो जाएँ ॥१० ॥

[१९ - शर्म सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- चन्द्रमा , (मित्र) और मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुब्गर्भा पंक्ति, १, ३, ९ भुरिक् बृहती, १० स्वराट् पंक्ति ।]

इस सूक्त के मन्त्र क्र० १ से ११ तक केवल प्रथम चरणों में भिन्नता है । मन्त्रों के शेषांश का अर्थ एक जैसा है । अतः मन्त्र क्र० २ से ११ तक भावार्थ में केवल प्रथम चरण का अर्थ लिखकर शेष भाग के लिए यथावत् (..........) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है-

४६८३. मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१ ॥

मित्र (अग्निदेव) पृथ्वी से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर (नगर) में हम आपको प्रविष्ट करते हैं । आप उसमें प्रवेश करें, उसमें वास करें । यह नगरी आपको सुख तथा कवच की तरह संरक्षण दे ॥१ ॥

४६८४. वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२ ॥

वायुदेव अपने आश्रय स्थान अन्तरिक्ष से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया , उस पुर में...संरक्षण दे ।

४६८५. सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३ ॥

सूर्यदेव द्युलोक से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में ....संरक्षण दे ॥३ ॥

४६८६. चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४ ॥

चन्द्रदेव नक्षत्रों में से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में.........संरक्षण दे ॥४ ॥

४६८७. सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥५ ॥

सोम ओषधियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में......संरक्षण दे ॥५ ॥

४६८८. यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६ ॥

यज्ञदेव दक्षिणाओं से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में......संरक्षण दे ॥६ ॥

४६८९. समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७ ॥

सागर नदियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में......संरक्षण दे ॥७ ॥

४६९०. ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८ ॥

ब्रह्म (परमात्म ज्ञान) ब्रह्मचारियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में......संरक्षण दे ॥८ ।

४६९१. इन्द्रो वीर्ये३णोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९ ॥

इन्द्रदेव वीर्य (शौर्य) से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में......संरक्षण दे ॥९ ॥

४६९२. देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१० ॥

देवगण अमृत रस से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में......संरक्षण दे ॥१० ॥

४६९३. प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११ ॥

प्रजापतिदेव ने प्रजाजनों के साथ (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया है, उस पुर में.....संरक्षण दे ॥११ ॥

[२० - सुरक्षा सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** (धाता) , मन्त्रोक्त । **छन्द-** त्रिष्टुप् , २ जगती, ३ पुरस्तात् बृहती, ४ अनुष्टुप् ।]

४६९४. अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥१ ॥

शत्रुओं द्वारा गुप्तरीति से किये गये मारण प्रयोग से इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण दोनों अश्विनीकुमार , यम और पूषा आदि सभी देव शक्तियाँ हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

४६९५. यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥२ ॥

प्रजापति ने प्रजाओं के संरक्षण हेतु जिस कवच की रचना की है, मातरिश्वा-वायु प्रजापति, दिशाएँ एवं प्रदिशाएँ जिन कवचों को धारण करती हैं, वे सुरक्षा कवच हमारे लिए प्रचुर मात्रा में (उपलब्ध) हों ॥२ ॥

४६९६.यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः

देवशक्तियों ने जिस कवच को अपनी देह पर धारण किया था और इन्द्रदेव ने भी जिसे धारण किया, वह रक्षाकवच चारों ओर से हमारा संरक्षण करने वाला हो ॥३ ॥

४६९७. वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका

द्यावा- पृथिवी हमारे लिए हो । सूर्यदेव, विश्वेदेवा तथा दिन भी हमारे लिए कवच स्वरूप हों । विरोध करने वाले शत्रु हमें न मिलें ॥४ ॥

[२१ - छन्दांसि सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** छन्दांसि । **छन्द-** एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।]

४६९८. गायत्र्यु१ष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥१ ॥

गायत्री, उष्णिक् , अनुष्टुप् , बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती इन सभी छन्दों के लिए यह आहुति अर्पित हो ॥

[२२- ब्रह्मा सूक्त]

[**ऋषि-** अङ्गिरा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** दैवी पंक्ति, १ साम्नी एकावसाना उष्णिक् , ३, १९ प्राजापत्या गायत्री, ४, ७, ११, १७ दैवी जगती, ५, १२-१३ दैवी त्रिष्टुप् , ८-१० आसुरी जगती, १८ आसुरी अनुष्टुप् (एकावसाना), २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।]

४६९९.आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥१ ॥ ४७००. षष्ठाय स्वाहा ॥२ ॥

४७०१. सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥३ ॥ **४७०२. नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥४ ॥**

४७०३. हरितेभ्यः स्वाहा ॥५ ॥ **४७०४ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥६ ॥**

४७०५. पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥७ ॥ **४७०६. प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥८ ॥**

४७०७. द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥९ ॥ **४७०८. तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥१० ॥**

४७०९. उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११ ॥ **४७१०. उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥१२ ॥**

४७११. उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३ ॥ **४७१२. ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१४ ॥**

४७१३. शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५ ॥ **४७१४. गणेभ्यः स्वाहा ॥१६ ॥**

४७१५. महागणेभ्यः स्वाहा ॥१७ ॥ **४७१६.सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ।**

४७१७. पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९ ॥ **४७१८. ब्रह्मणे स्वाहा ॥२० ॥**

आंगिरसों के प्रारम्भिक पाँच अनुवाकों से यह आहुति समर्पित है । छठे के लिए यह आहुति समर्पित है । सातवें और आठवें के लिए आहुति समर्पित है । नीलनखों के लिए आहुति समर्पित है । हरितों के लिए यह आहुति समर्पित है । क्षुद्रों के लिए आहुति समर्पित है । पर्याय वालों के लिए आहुति समर्पित है । प्रथम शंखों के लिए आहुति समर्पित है । द्वितीय शंखों के लिए श्रेष्ठ आहुति समर्पित है । तृतीय शंखों के लिए आहुति समर्पित है । उपोत्तमों के लिए आहुति समार्पित है । उत्तमों के निमित्त आहुति समर्पित है । उत्तरों (उच्चतरों) के निमित्त यह आहुति है । मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के निमित्त आहुति समर्पित है । शिखियों (शिखा वालों) के निमित्त आहुति समर्पित है । गणों अर्थात् सोद्देश्य समूह के लिए आहुति समर्पित है । महागणों के निमित्त आहुति समर्पित है । गणों (समूह) के ज्ञाता सभी अंगिराओं के निमित्त आहुति समर्पित है । पृथक्-पृथक् सहस्रों के निमित्त आहुति समर्पित है । बीस काण्डों से युक्त वेदज्ञ ब्रह्मा नामक ऋषि के निमित्त आहुति समर्पित है ॥१-२० ॥

४७१९. ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१ ॥

इस वेद में ब्रह्मज्ञान तथा अन्य सामर्थ्यों का उल्लेख संगृहीत है । सृष्टि के आदिकाल में सर्वप्रथम ब्रह्म तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ । ब्रह्म ने द्युलोक को उत्पन्न किया । तत्पश्चात् ब्रह्मा (सृष्टि उत्पादनकर्त्ता) की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने सृष्टि की रचना की । वे सर्वाधिक सामर्थ्यवान् थे, अत: उनसे स्पर्धा करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२१ ॥

[२३ - अथर्वाण सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** मन्त्रोक्त अथवा चन्द्रमा । **छन्द-** दैवी त्रिष्टुप् , १ आसुरी बृहती, ८, १०-१२, १४-१६ प्राजापत्या गायत्री, १७, १९, २१, २४-२५, २९ दैवी पंक्ति, ९, १३, १८, २२, २६, २८ दैवी जगती (एकावसाना) , ३० चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।]

४७२०. आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१ ॥ **४७२१. पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥२ ॥**

४७२२. षड्चेभ्यः स्वाहा ॥३ ॥ **४७२३. सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥४ ॥**

४७२४. अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥५ ॥ **४७२५. नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥६ ॥**

४७२६. दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥७ ॥ **४७२७. एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८ ॥**

४७२८. द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥९ ॥ **४७२९. त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१० ॥**

४७३०. चतुर्दशर्चेभ्य स्वाहा ॥११ ॥ **४७३१. पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२ ॥**

४७३२. षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३ ॥ **४७३३. सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४ ॥**
४७३४. अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१५ ॥ **४७३५. एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६ ॥**
४७३६. विंशतिः स्वाहा ॥१७ ॥ **४७३७. महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८ ॥**
४७३८. तृचेभ्यः स्वाहा ॥१९ ॥ **४७३९. एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥२० ॥**
४७४०. क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥२१ ॥ **४७४१. एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२ ॥**
४७४२. रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३ ॥ **४७४३. सूर्याभ्यां स्वाहा ॥२४ ॥**
४७४४. व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५ ॥ **४७४५. प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६ ॥**
४७४६. विषासह्यै स्वाहा ॥२७ ॥ **४७४७. मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८ ॥**
४७४८. ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९ ॥

आथर्वणों (अथर्ववेदीय ऋषियों) की चार ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । पाँच ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । षड्ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है । सप्त ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । आठ ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । नौ ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है । दस ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । ग्यारह ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । बारह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है । तेरह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है । चौदह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है । पन्द्रह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है । सोलह ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । सत्रह ऋचाओं के निमित्त यह आहुति समर्पित है । अठारह ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । उन्नीस ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । बीस ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है । बड़े काण्ड के निमित्त आहुति निवेदित है । तृचों (तीन ऋचा वालों) के लिए आहुति समर्पित है । एकर्चों (एक ऋचा वालों) के लिए आहुति समर्पित है । क्षुद्रों के लिए आहुति समर्पित है । एकानृचों (एक चरण की ऋचा, जिसे पूर्ण ऋचा नहीं कहा जा सकता) के लिए आहुति समर्पित है । रोहितों (हरों) के निमित्त आहुति समर्पित है । दो सूर्यों के निमित्त आहुति समर्पित है । व्रात्यों के लिए आहुति समर्पित है । प्राजापत्यों के लिए आहुति समर्पित है । विषासही के निमित्त आहुति समर्पित है । मांगलिकों के निमित्त आहुति समर्पित है । ब्रह्मा के लिए आहुति समर्पित है ॥१-२९ ॥

४७४९. ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३० ॥

इस वेद (अथर्व) में ब्रह्मज्ञान तथा अन्य अनेक सामर्थ्यों का उल्लेख संगृहीत है । सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम ब्रह्मतत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ, उन्होंने द्युलोक को प्रकट किया । तत्पश्चात् ब्रह्मा (रचयिता) की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने सृष्टि की रचना की । वे सबसे अधिक सामर्थ्यवान् थे, अत: उनसे स्पर्धा करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥३० ॥

[२४ - राष्ट्रसूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** मन्त्रोक्त अथवा ब्रह्मणस्पति । **छन्द-** अनुष्टुप् , ४-६, ८ त्रिष्टुप् , ७ त्रिपदार्षी गायत्री]

४७५०. येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् । तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! देवों ने जिस प्रकार सवितादेव को चारों ओर से धारण किया, उसी विधि से इस महान् शान्ति के अनुष्ठाता यजमान को राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सन्नद्ध (तत्पर) करें ॥१ ॥

४७५१. परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत्।

इन्द्रदेव इस साधक को आयुष्य और क्षात्र तेज की प्राप्ति के निमित्त प्रतिष्ठित करें। यह साधक वृद्धावस्था तक पहुँचे तथा जागरूकता के साथ क्षात्र धर्म में तत्पर रहे ॥२ ॥

४७५२. परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत्।

सोमदेव इस साधक को दीर्घ आयु, महान् ज्ञान, तेजस्विता अथवा यशस्विता के लिए परिपुष्ट करें। यह साधक वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न हो ॥३ ॥

४७५३. परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४ ॥

देवगण इस (शिशु) को वह आवरण धारण कराएँ, हमारे इस बालक को तेजस्विता सम्पन्न कराएँ, इसके जीवन में वृद्धावस्था के बाद ही मृत्यु आए, इसी परिधान को बृहस्पतिदेव ने राजा सोम को भेंट किया था ॥४ ॥

४७५४. जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥५ ॥

हे साधक ! आप वृद्धावस्था तक सकुशल रहें। इस जीवनरूपी वस्त्र को धारण किये रहें और प्रजा को विनाश से बचाए रहें। सौ वर्ष तक जीवन जीते हुए धन-सम्पदा से युक्त होकर परिपुष्ट रहें ॥५ ॥

४७५५. परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥६ ॥

हे साधक ! आपने इस वस्त्र को कल्याणकारी भावना से धारण किया है, इससे आप गौओं को विनाश से बचाने वाले बन चुके हैं। सौ वर्ष की पूर्ण आयु का उपभोग करें, वस्त्र से युक्त रहते हुए श्रेष्ठ धन- सम्पदा को परिवारों, स्वजनों एवं मित्रों में बाँटते रहें ॥६ ॥

४७५६. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥७ ॥

हम सभी मित्र, प्रत्येक उद्योग और प्रत्येक संग्राम में एकत्र होकर, बलशाली इन्द्रदेव को अपने संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं ॥७ ॥

४७५७. हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥८ ॥

हे साधक ! आप स्वर्णिम कान्ति से युक्त रहते हुए बुढ़ापे से रहित श्रेष्ठ सन्तति से सम्पन्न, जरावस्था के बाद मृत्यु को प्राप्त करने वाले, पुत्र भृत्यादि के साथ इस घर में विश्राम करें। अग्निदेव, सोमदेव, बृहस्पतिदेव, सविता और इन्द्रदेव भी इस तथ्य का अनुमोदन करते हैं ॥८ ॥

[२५- अश्व सूक्त]

[**ऋषि-** गोपथ। **देवता-** वाजी। **छन्द-** अनुष्टुप्।]

४७५८.अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च। उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात्।

(हे देही !) हम आपको थकावटरहित मन से संयुक्त करते हैं। जैसे नदी का जल दोनों तटों के ऊपर चढ़कर प्रवाहित होता है। आप वैसे ही वेगवान् बनें, उठें और लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ें ॥१ ॥

[२६ - हिरण्यधारण सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अग्नि, हिरण्य । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ पथ्यापंक्ति ।]

४७५९. अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥१ ॥

अग्नि से समुत्पन्न होने वाला जो हिरण्य (स्वर्ण या तेज) है, मनुष्यों में अमृत स्थापित करता है । इस तथ्य का ज्ञाता पुरुष निश्चित रूप से उसे धारण करने योग्य है । जो मनुष्य इस स्वर्ण को धारण करते हैं, वे वृद्धावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं अर्थात् उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती ॥१ ॥

४७६०. यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२ ॥

जिस श्रेष्ठ वर्णयुक्त स्वर्ण या तेजस् को प्रजावान् मनुष्यों ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य से ग्रहण किया था, वह हर्षप्रद स्वर्ण आपको तेजस्विता प्रदान करे ।ऐसे स्वर्ण को धारण करने वाला मनुष्य दीर्घायुष्य को प्राप्त करता है ।

४७६१. आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥३ ॥

हे हिरण्यधारी पुरुष ! यह आह्लादप्रद स्वर्ण आपको दीर्घजीवन, तेजस्विता, ओजस्विता तथा शारीरिक बल से युक्त करे । आप मनुष्य समाज में उसी प्रकार देदीप्यमान हों, जिस प्रकार सोना अपने तेज से दमकता है ॥३ ॥

४७६२. यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥४ ॥

जिस स्वर्ण के ज्ञाता राजा वरुणदेव, बृहस्पतिदेव, वृत्रासुर के संहारक इन्द्रदेव हैं । हे स्वर्णधारी पुरुष ! वरुण आदि देवों से परिचित वह स्वर्ण आपके लिए आयुष्य और तेजस्विता की वृद्धि करने वाला हो ॥४ ॥

[२७ - सुरक्षा सूक्त]

[**ऋषि-** भृग्वङ्गिरा । **देवता-** त्रिवृत् अथवा चन्द्रमा । **छन्द-** अनुष्टुप्, ३, ९ त्रिष्टुप्, १० विराट्स्थाना त्रिष्टुप्, ११ एकावसाना आर्ची उष्णिक्, १२ एकावसाना आर्ची अनुष्टुप्, १३ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्, १५ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्वरी ।]

इस सूक्त के देवता त्रिवृत् हैं । इन मंत्रों के साथ त्रिवृत् (स्वर्ण, चाँदी और लोहे से युक्त) मणि को धारण करने की परम्परा पूर्वकाल में रही होगी । इसीलिए सायणाचार्य आदि ने सूक्त के मन्त्रों के अर्थ त्रिवृत् मणि धारणकर्त्ता पर आरोपित किये हैं । यों इस सूक्त में द्युलोक, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी सहित अनेक दिव्य प्रवाहों को तीन या त्रिवृत् (तीन आवृत्तियों वाला) कहा है । तीन गुणों या तीन आयामों से युक्त को त्रिवृत् कहा जाना युक्तिसंगत है । सृष्टि के सभी घटक त्रिवृत् हैं । उनके एकांगी उपयोग से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो सकता । उन्हें समग्र (त्रिवृत्) रूप में ही प्रयुक्त किया जाना ऋषियों की दृष्टि में समीचीन हो -

४७६३. गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१ ॥

हे पुरुष ! वृषभ अपने गौ समूह के साथ आपका संरक्षण करे । प्रजनन - क्षमता युक्त अश्व तीव्रगामी अश्वों के साथ आपका संरक्षण करे । अन्तरिक्षीय वायु ब्रह्मज्ञान से आपका संरक्षण करे । इन्द्रदेव इन्द्रिय शक्तियों के साथ आपको संरक्षण प्रदान करें ॥१ ॥

४७६४. सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥२ ॥

ओषधियों के अधिपति सोम, ओषधियों के साथ आपके संरक्षणकर्त्ता हों । सूर्यदेव नक्षत्र ग्रहों के साथ, अंधकार रूप असुर के हन्ता, चन्द्रदेव मासों के साथ तथा वायुदेव प्राणवायु के साथ आपके संरक्षणकर्त्ता हों ॥२ ॥

४७६५. तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥३ ॥

तीन द्युलोक, तीन भूलोक, तीन अन्तरिक्षलोक (पुण्यात्माओं के तीन प्रकार के गन्तव्य स्थल) , चार सागर, स्तोम और जल त्रिवृत् कहे गये हैं । ये सभी तीनों प्रकार (तीनों आयामों में) तीन गुणों (त्रिगुणों) से युक्त होकर आपकी रक्षा करें ॥३ ॥

४७६६. त्रीन्नाकांस्त्रीन् त्समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥४ ॥

हम तीन प्रकार के स्वर्ग लोकों को, तीन सागरों को, तीन भुवनों को, तीन वायु-प्रवाहों को, रश्मियों और उनके अधिष्ठाता भेद से तीन सूर्यों को आपके संरक्षणकर्त्ता के रूप में नियुक्त करते हैं ॥४ ॥

४७६७. घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ के साधनभूत घी के द्वारा प्रवृद्ध करते हुए हम आपको भली प्रकार सींचते हैं । हे पुरुष ! अग्निदेव, चन्द्रमा और सूर्यदेव के अनुग्रह से आपके जीवन को मायावी लोग विनष्ट न कर सकें ॥५ ॥

४७६८. मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥६ ॥

हे पुरुष ! मायावी असुर आपके प्राण- अपान को विनष्ट न कर सकें । हे समस्त देवशक्तियो ! अपनी सर्वज्ञता से दमकते हुए अपनी दिव्य सामर्थ्यों के साथ आप भी इनके सहयोग - संरक्षण हेतु पधारें ॥६ ॥

४७६९. प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७ ॥

समिंधनकर्त्ता पुरुष प्राणवायु से अग्नि को संयुक्त करते हैं । बाहरी वायु मुख में स्थित प्राण के साथ जुड़ा रहता है । देवताओं ने सभी ओर प्रकाशित होने वाले सर्वतोमुखी सूर्यदेव को प्राण से ही उत्पन्न किया है ॥७ ॥

४७७०. आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥८ ॥

आयु बढ़ाने वाले (पूर्वज ऋषियों) द्वारा प्रदत्त आयु से आप जीवित रहें । दीर्घ काल तक आप जीवित रहें । मृत्यु को प्राप्त न हों । प्राणवान् आत्मज्ञानी के सदृश आप जीवित रहें । मृत्यु के वश में न रहें ॥८ ॥

४७७१. देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥९ ॥

देवताओं के जिस गुप्त कोष को इन्द्रदेव ने देवयान मार्ग से ढूँढ़कर प्राप्त किया था , उस हिरण्य की त्रिवृत् जल ने सुरक्षा की थी । वे (हिरण्य) तीनों आयामों तथा तीनों गुणों से युक्त होकर आपको संरक्षण प्रदान करें ॥९ ॥

४७७२. त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्व१न्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥१० ॥

तैंतीस प्रकार की देवशक्तियों ने तीन पराक्रमों से जिस प्रिय तेज को जल के अन्दर प्रतिष्ठित किया तथा आह्लादकारी चन्द्र में जो चमकने वाला तेजस् है, उसके प्रभाव से यह पुरुष वीरोचित कार्य सम्पन्न करे ॥१० ॥

४७७३. ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११ ॥

द्युलोक में जो ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं , वे (दिव्यशक्तियाँ) इस हवि को ग्रहण करें ॥११ ॥

४७७४. ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२ ॥

अन्तरिक्ष लोक में जो ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं, वे (दिव्यशक्तियाँ) इस हवि को ग्रहण करें ॥१२ ॥

४७७५. ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३ ॥

भूलोक में जो ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं, वे (दिव्यशक्तियाँ) इस हवि को ग्रहण करें ॥१३ ॥

४७७६.असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ।

हे सविता और शचीपति देवो ! आप हमें सामने की (पूर्व) दिशा और पीछे की (पश्चिम) दिशा से, दक्षिण दिशा से और उत्तर दिशा से हमें शत्रुभय से मुक्त करें ॥१४ ॥

४७७७. दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५ ॥

आदित्यदेव द्युलोक से और अग्निदेव पृथ्वी से हमारी सुरक्षा करें । इन्द्र और अग्निदेव आगे से और दोनों अश्विनीकुमार सभी दिशाओं से हमारा संरक्षण करें । तिरछे (टेढ़े) स्थानों से जातवेदा अग्निदेव और पञ्चभूतों के अधिष्ठाता देव हमें चारों ओर से सुरक्षा कवच प्रदान करें ॥१५ ॥

[२८ - दर्भमणि सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा (सपत्नक्षयकाम) । **देवता-** दर्भमणि । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

सूक्त क्र० २८, २९ एवं ३० में देवता 'दर्भमणि' हैं । पूर्व प्रसङ्गों में भी उल्लेख किया जा चुका है कि 'मणि' शब्द का प्रयोग ऋषियों ने 'गुण' या 'विशेषता' के सन्दर्भ में किया है । मन्त्र के व्यापक भावों का निर्वाह ऐसा ही मानने से होता है । दर्भ का सामान्य अर्थ 'कुश' नामक वनस्पति होता है; किन्तु कोश ग्रन्थों में दर्भ का अर्थ 'विदारक' होता है । कुश में भी विदारक पैनापन होता है, इसलिए उसे भी दर्भ विशेषण दिया गया है । दर्भ मणिरूप में दर्भ से तैयार कोई मणि भी प्रचलित रही होगी; किन्तु ऋषि द्वारा दर्भमणि कहने का भाव विदारक गुण या विदारक क्षमता-तेजस्वितापरक मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है । सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध तेजस्वी व्यक्तियों में ऋषि दुष्ट विदारक क्षमता की स्थापना करना चाहते हैं, यह भाव मणि बाँधने की परम्परागत प्रक्रिया के प्रतिकूल भी नहीं है । विज्ञजन इस भाव को ध्यान में रखेंगे, तो मन्त्रार्थों की अधिक गहराई पा सकेंगे-

४७७८.इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे । दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१

हे पुरुष ! आपके दीर्घ जीवन और तेजस्विता के लिए हम इस दर्भमणि को तुम्हारे शरीर के साथ बाँधते हैं । यह दर्भमणि शत्रु संहारक और विद्वेषी शत्रुओं के हृदय को संतप्त करने वाली है ॥१ ॥

४७७९. द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन्॥२ ॥

हे दर्भमणे (विदारक क्षमता) ! आप द्वेषी शत्रुओं के हृदय-क्षेत्र को तथा मन को संतप्त करें । उन शत्रुओं के (गृह, परिवार, पशु आदि) सभी को सूर्य के समान संतप्त करके विनष्ट करें ॥२ ॥

४७८०. घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥३ ॥

हे दर्भमणे ! आप द्वेषी शत्रुओं को ग्रीष्म के समान सन्तप्त करते हुए नष्ट कर डालें । आप पराक्रमी इन्द्रदेव के समान आन्तरिक और बाह्य सामर्थ्य से शत्रुओं के हृदय क्षेत्र को छिन्न- भिन्न कर डालें ॥३ ॥

४७८१. भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४ ॥

हे दर्भमणे ! आप द्वेषभाव रखने वाले वैरियों के हृदय का भेदन करें । उनके सिरों को आप उसी प्रकार काटकर गिरा दें, जिस प्रकार भूमि के त्वचारूपी ऊपरी भाग को मनुष्य गृह निर्माण हेतु काटकर फेंक देते हैं ॥४ ॥

४७८२. भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों को और सैन्य दल का गठन करने वाले शत्रुओं को भी नष्ट कर दें । सभी दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट करें तथा सभी विद्रोही शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर डालें । ।५ ॥

४७८३. छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों और हमारे लिए सैन्यदल का गठन करने वाले शत्रुओं का छेदन करें । आप हमारे सभी दुष्ट शत्रुओं को समाप्त करें तथा द्वेषभाव रखने वाले शत्रुओं को छिन्न- भिन्न कर डालें ॥६ ॥

४७८४.वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः । वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ।

हे दर्भमणे ! हमारे शत्रुओं का कर्त्तन करें, हमारे लिए सैन्यशक्ति का गठन करने वाले शत्रुओं को काट डालें । आप हमारे सभी दुष्ट वैरियों का कर्त्तन करें तथा वैर भाव रखने वाले शत्रुओं को भी काट डालें ॥७ ॥

४७८५. कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों को तथा हमारे लिए सैन्यबल एकत्रित करने वाले शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करें । हमारे सभी दुष्ट वैरियों को काट डालें तथा द्वेष रखने वाले शत्रुओं को तोड़-फोड़ डालें ॥८ ॥

४७८६. पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९ ॥

हे दर्भमणे ! हमारे वैरियों को तथा हमारे लिए सैन्यशक्ति को संगृहीत करने वाले शत्रुओं को पीस डालें । हमारे दुष्ट वैरियों को एवं द्वेष-दुर्भाव रखने वाले सभी वैरियों को भी पीस डालें ॥९ ॥

४७८७ . विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१० ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे शत्रुओं का बेधन करें (ताड़ना करें), हमारे निमित्त सैन्यशक्ति का गठन करने वाले शत्रुओं को ताड़ित करें । हमारे सभी दुष्ट शत्रुओं तथा हमसे द्वेष रखने वाले वैरियों को भी आप प्रताड़ित करें ॥

[२९ - दर्भमणि सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- दर्भमणि । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४७८८. निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१ ॥

हे दर्भमणे (विदारक शक्ति) ! आप हमारे शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार करें । हमारे प्रति सैन्यबल गठित करने वाले विद्रोहियों को, दुष्टात्माओं को तथा हमसे द्वेष रखने वालों को भी आप शस्त्र प्रहार करके समाप्त करें ॥१ ॥

४७८९. तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२ ॥

हे दर्भमणे ! आप वैरियों का उच्छेदन करें । सैन्यबल एकत्र करने वाले विद्रोहियों, दुष्टों और द्वेष करने वालों को उच्छेदन करके उन्हें समाप्त करें ॥२ ॥

४७९०. रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों तथा हमारे प्रति सैन्यदल का गठन करने वालों को रूँध (रौंद) दें । दुष्टों और हमसे द्वेष रखने वाले वैरियों को भी आप रौंद डालें ॥३ ॥

४७९१.मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः । मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे

हे दर्भमणे ! आप हमारे विरोधियों तथा सैन्यदल तैयार करने वाले वैरियों का संहार करें । आप दुष्टों और द्वेषभाव रखने वाले हमारे शत्रुओं का भी संहार करें ॥४ ॥

४७९२. मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे विद्रोही शत्रुओं तथा सैन्यबल का गठन करने वाले शत्रुओं को भी मथ डालें । दुष्ट हृदयवालों और हमसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को भी मथ डालें ॥५ ॥

४७९३. पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥६ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे शत्रुओं के अहंकार को तथा सैन्य शक्ति का गठन करने वाले शत्रुओं को भी चूर्ण करें । आप दुष्ट स्वभाव वालों और हमसे वैरभाव रखने वाले शत्रुओं के अहं भाव को चूर्ण करें ॥६ ॥

४७९४. ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे विद्रोहियों तथा सैन्यबल एकत्र करने वाले विद्रोहियों को भी भस्म करें । दुष्ट हृदय वालों और हमसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को भी आप भस्मासात् कर डालें ॥७ ॥

४७९५. दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः । दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८ ।

हे दर्भमणे ! आप हमारे विरोधियों तथा सैन्य बल का गठन करने वाले शत्रुओं को दग्ध करें । संवेदना शून्य विरोधियों और द्वेष-दुर्भाव रखने वाले शत्रुओं को भी आप दग्ध करें ॥८ ॥

४७९६.जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः । जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे।

हे दर्भमणे ! आप हमारे विद्रोहियों तथा सैन्य बल का गठन करने वाले विद्रोहियों को भी मार गिराएँ । संवेदनारहित सभी दुष्टों और हमसे विद्वेष रखने वाले शत्रुओं का भी आप संहार करें ॥९ ॥

[३० - दर्भमणि सूक्त]

[**ऋषि**- ब्रह्मा । **देवता**- दर्भमणि । **छन्द**- अनुष्टुप् ।]

४७९७.यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते । तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः।

हे दर्भमणे ! आप में वृद्धावस्था के उपरान्त ही मृत्यु होने की शक्तियाँ सन्निहित हैं । जीर्णता और मृत्यु को दूर रखने वाला आपका जो कवच है, उससे इसे सुरक्षा प्रदान करें । अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं का संहार करें ॥१ ॥

४७९८.शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते । तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः।

हे दर्भमणे ! आपके सैकड़ों कवच और हजारों वीर्य (पराक्रम) हैं । समस्त देवों ने इस व्यक्ति की जरावस्था को दूर करने के निमित्त कवचरूप में और पोषण के लिए आपको ही नियुक्त किया है ॥२ ॥

४७९९. त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् । त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ।

हे दर्भमणे ! आपको देवों का कवच कहा जाता है । आपको ही ब्रह्मणस्पति के नाम से पुकारा जाता है तथा आपको ही देवराज इन्द्रदेव का कवच भी कहा गया है । आप राष्ट्रों की रक्षा करें ॥३ ॥

[विकारों की उच्छेदक सामर्थ्य को ब्रह्मणस्पति रूप कहा गया है । ब्रह्मज्ञान का निर्वाह करने में जो बाधाएँ सामने आती हैं, उनके उच्छेदन की सामर्थ्य के बिना कोई साधक ज्ञान का अनुगमन नहीं कर सकता ।]

४८००. सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः । मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४।

हे दर्भ ! हम आपको शत्रुओं (विकारों) का नाश करने में समर्थ तथा विद्वेषियों के हृदय को सन्तप्त करने वाला मानते हैं । क्षात्रबल को समृद्ध करते हुए शारीरिक संरक्षक के रूप में आपको नियुक्त करते हैं ॥४ ॥

४८०१. यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५ ॥

जलवर्षक मेघ विद्युत् के साथ गर्जना करते हैं, उससे स्वर्णमय जल बिन्दु और उससे कुशा की उत्पत्ति हुई ॥

[३१ - औदुम्बरमणि सूक्त]

[**ऋषि**- सविता (पुष्टिकाम) । **देवता**- औदुम्बरमणि । **छन्द**- अनुष्टुप्, ५, १२ त्रिष्टुप्, ६ विराट् प्रस्तार पंक्ति, ११, १३ पञ्चपदा शक्वरी, १४ विराट् आस्तार पंक्ति ।]

४८०२. औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१ ॥

ज्ञानी अथवा विधाता ने औदुम्बर मणि से सभी प्रकार की पुष्टि चाहने वालों के लिए एक प्रयोग किया था, जिससे सवितादेव हमारे गोष्ठ में सभी प्रकार के पशुओं को बढ़ाएँ ॥१ ॥

४८०३. यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२ ॥

जो गार्हपत्य अग्नि हमारे पशुओं के अधिपति हैं , वे इस शक्ति-सम्पन्न औदुम्बर मणि को हमारी पुष्टि के लिए सृजित करें ॥२ ॥

४८०४.करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३ ॥

धातादेव औदुम्बर मणि की तेजस्विता से हमारे अन्दर परिपुष्टता को प्रतिष्ठित करें । गोबर की खाद से परिपूर्ण करने वाली गौ सन्तानों (बछड़ों) से युक्त होकर हमें अन्न और दुग्ध आदि पर्याप्त मात्रा में प्रदान करे ॥३ ॥

४८०५. यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४ ॥

औदुम्बर मणि को धारण करके हम द्विपाद मनुष्यों , चतुष्पाद पशुओं तथा अन्य अन्नों तथा विविध रसों को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करते हैं ॥४ ॥

४८०६. पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५ ॥

हम मनुष्यों, गौ आदि पशुओं तथा धान्यादि के लिए पोषक तत्त्व प्राप्त करें । सवितादेव और बृहस्पतिदेव पशुओं के सारभूत दूध और ओषधियों के रस हमें प्रदान करें ॥५ ॥

४८०७. अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥६ ॥

हम पशुओं के अधिपति हों (स्वामी हों) । पुष्टि के अधिष्ठाता औदुम्बरमणि हमारे पशुओं की वृद्धि करे तथा हमें धन-सम्पदा प्रदान करे ॥६ ॥

४८०८.उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च । इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ।

औदुम्बर मणि प्रजा और वैभव के साथ हमें उपलब्ध हुई है । यह मणि इन्द्रदेव की प्रेरणा से तेजस्विता के साथ हमारे समीप आयी है ॥७ ॥

४८०९. देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये । पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ।

देवसंज्ञक यह औदुम्बरमणि शत्रुओं की संहारक तथा अभीष्ट धन-सम्पदा की प्रदात्री है । यह मणि अन्य पशुओं के साथ हमारे गोधन की वृद्धि करे ॥८ ॥

४८१०. यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे । एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥

हे वनस्पतियों की रक्षक, औदुम्बरमणे ! आप जिस प्रकार ओषधियों, वनस्पतियों के साथ उत्पन्न होकर पुष्टि और वृद्धि को प्राप्त हुई हैं, उसी प्रकार सरस्वती देवी हमारे निमित्त धन-वैभव की वृद्धि करें ॥९ ॥

४८११.आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम्। सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः।

सरस्वती, सिनीवाली और औदुम्बरमणि, धन-धान्य और दुग्धादि वैभव को लेकर हमारे समीप पधारें ॥१०

४८१२. त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान। त्वयीमे वाजा
द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११ ॥

आप सभी मणियों की अधिपति और बलवान् हैं। पुष्टिपति ब्रह्मा ने आप में सभी पोषक तत्त्वों को भर दिया है। विभिन्न प्रकार के अन्न और धन आपमें सन्निहित हैं, ऐसी हे औदुम्बरमणे ! आप कृपणता, दुर्बुद्धि और भूख को हमसे दूर हटाएँ ॥११ ॥

४८१३. ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ॥
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२ ॥

हे औदुम्बरमणे ! आप ग्राम की नेता हैं।आप समूह से उठकर अभिषिक्त हों और हमें भी अपने वर्चस् से अभिषिक्त करें। आप तेजरूपा हैं, हममें तेजस्विता स्थापित करें।आप धनरूपा हैं, हमें भी धन-धान्य प्रदान करें।

४८१४. पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु। औदुम्बरः स
त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम्।

आप पुष्टिरूपा हैं, हमें भी पुष्ट बनाएँ। आप गृहमेधा हैं, हमें भी गृहपति की योग्यता प्रदान करें। ऐसी हे औदुम्बरमणे ! हममें ऐश्वर्य को प्रतिष्ठित करें, पुत्र-पौत्रादि प्रदान करें। हम आपको धन-सम्पदा की वृद्धि के लिए धारण करते हैं ॥१३ ॥

४८१५. अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४ ॥

यह औदुम्बर मणि स्वयं वीररूप है, इसीलिए वीरों को बाँधी जाती है। यह मणि हमें मधुर रसों के साथ धन-धान्यादि वैभव तथा वीर संतानें प्रदान करे ॥१४ ॥

[३२ - दर्भ सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु (आयुष्काम)। **देवता-** दर्भ। **छन्द-** अनुष्टुप्, ८ पुरस्ताद् बृहती, ९ त्रिष्टुप्, १० जगती।]

४८१६. शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः। दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे।

हे मनुष्य ! जो असंख्य (गाँठों) काण्डों से युक्त, कठिनाई से (नष्ट करने) हटाने योग्य, हजारों पत्तों से युक्त, सभी ओषधियों से श्रेष्ठ, प्रचण्ड शक्तिसम्पन्न 'दर्भरूप' ओषधि है, उसे हम आपके दीर्घायु के निमित्त बाँधते हैं ॥

४८१७. नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२ ॥

(जिस पुरुष के निमित्त) अखण्डित पत्तों वाला दर्भ सुख पहुँचाता है, उसके केशों को यमराज नहीं उखाड़ते। उसके वक्षस्थल को पीटते हुए उसे मारते भी नहीं हैं ॥२ ॥

४८१८. दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः। त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे।

हे ओषधे ! आपका शिखा भाग आकाश में है और पृथ्वी पर आप स्थिर हैं। आपके असंख्य काण्डों द्वारा हम अपनी आयु को बढ़ाते हैं ॥३ ॥

४८१९. तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४ ॥

(हे दर्भ !) आप त्रिवृत् द्युलोक और त्रिवृत् पृथ्वी को चीरकर उनमें संव्याप्त हो रहे हैं । आपके द्वारा हम संवेदना शून्य शत्रुओं की जिह्वा और कटुभाषी वाणियों को नष्ट कर डालते हैं ॥४ ॥

४८२०. त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् । उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ॥

आप जीतने में सक्षम हैं, हम भी संघर्ष की सामर्थ्य से युक्त हैं । हम दोनों परस्पर मिलकर, सामर्थ्य से युक्त होकर अपने शत्रुओं का दमन कर देंगे ॥५ ॥

४८२१.सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि

(हे दर्भ !) आप हमारे शत्रुओं को दबाएँ । सभी दुष्ट हृदय वाले शत्रुओं तथा सैन्यदल द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं को पराभूत करें तथा हमारे मित्रों की वृद्धि करें ॥६ ॥

४८२२. दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् । तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च

देवताओं के द्वारा उत्पन्न किये गये 'दर्भ' द्वारा और द्युलोक के स्तम्भरूप 'दर्भमणि' द्वारा हम दीर्घजीवी संतानों को प्राप्त करें ॥७ ॥

४८२३. प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८ ॥

हे दर्भ ! ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों, क्षात्रतेज सम्पन्न क्षत्रियों, शूद्रों और आर्यश्रेष्ठों के लिए हम जिस प्रकार प्रियपात्र बन सकें, वैसा हमें बनाएँ । हम जिसके प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, उनके लिए आप भी हमें प्रियपात्र बनाएँ ॥८ ॥

४८२४. यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९ ॥

जिस 'दर्भ' ने उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण पृथ्वी को सुदृढ़ कर दिया, जिसने अन्तरिक्ष और द्युलोक को स्थिर किया । जिसके धारणकर्त्ता को पाप संव्याप्त नहीं करता है । वह वरुणदेव की भाँति हमें प्रकाशित करे ॥९ ॥

४८२५. सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१० ॥

शत्रुसंहारक, शतकाण्डों से सम्पन्न, शक्तिमान् 'दर्भ' ओषधियों में प्रमुख बनकर प्रकट हुआ है । ऐसा 'दर्भ' चारों ओर से हमारी रक्षा करे । हम सैन्यशक्ति के अभिलाषी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥१० ॥

[३३ -दर्भ सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु । देवता- मन्त्रोक्त । **छन्द-** जगती, २, ५ त्रिष्टुप्, ३ आर्षी पंक्ति, ४ आस्तार पंक्ति ।]

४८२६. सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१ ॥

अतिमूल्यवान् , सैकड़ों काण्डों से युक्त, दुग्धयुक्त जल, अग्नि , ओषधि एवं राजसूय यज्ञ की शक्ति एवं प्रभाव से सम्पन्न यह 'दर्भमणि' हमें सभी प्रकार से सुरक्षा प्रदान करे तथा दीर्घ आयुष्य प्रदान करे ॥१ ॥

४८२७. घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२ ॥

हे दर्भ ! आप घृत (तेज) से सिञ्चित, मधुमय दुग्ध से युक्त, अपनी जड़ों से पृथ्वी को सुदृढ़ करने वाले, क्षयरहित तथा शत्रुओं को च्युत करने वाले हैं । आप शत्रुओं को दूर हटाते हुए उन्हें पतित करें तथा इन्द्रियों की सामर्थ्य को बढ़ाएँ ॥२ ॥

४८२८. त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३ ॥

(हे दर्भ !) आप अपनी शक्ति से भूमि को लाँघ जाते तथा यज्ञवेदी पर सुन्दरढंग से विराजमान होते हैं । ऋषियों ने स्वयं को पवित्र बनाने के लिए आपको धारण किया । आप पापों को दूर करके हमें भी पावन बनाएँ ॥३ ।

४८२९. तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४ ॥

यह दर्भ तीक्ष्ण, राजा के तुल्य श्रेष्ठ, शत्रुओं को पराभूत करने वाला, असुर संहारक, सभी प्राणियों का द्रष्टा तथा इन्द्रादि देवों की ओजस्विता एवं उग्रबल का हेतु है । हम ऐसे दर्भ को वृद्धावस्था के कल्याण के लिए (आपके साथ) बाँधते हैं ॥४ ॥

४८३०. दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५ ॥

हे वीर पुरुष ! आप 'दर्भ' की शक्ति से पराक्रमी कर्म करें । इसे धारण करके अपने मन में स्वयं दुखी न हों । अपनी सामर्थ्य से दूसरों को प्रभावित करते हुए सूर्य के समान ही चारों दिशाओं को प्रकाशित करें ॥५ ॥

[३४ - जङ्गिड़मणि सूक्त]

[**ऋषि-** अङ्गिरा । **देवता-** मन्त्रोक्त अथवा वनस्पति । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

४८३१. जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥

हे जङ्गिड़मणे ! आप सभी भय से हमें संरक्षण प्रदान करने वाली हैं । हमारे द्विपाद (मनुष्य समुदाय) और चतुष्पाद (गौ आदि पशुओं) की यह जङ्गिड़ मणि सुरक्षा करे ॥१ ॥

[जङ्गिड़ मणि का प्रसंग पहले भी आ चुका है । यह वनस्पति से उत्पन्न मणि रोगों एवं कष्टों की निवारक मानी गयी है ।]

४८३२. या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥२ ॥

जो हिंसक कृत्याएँ एक सौ पचास की संख्या में हैं और जो सौ हिंसक कर्म करने वाले हैं; उन सभी को यह जङ्गिड़ मणि अपनी तेजस्विता से सत्त्वरहित करके उन्हें हमसे दूर करें ॥२ ॥

४८३३. अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः । अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥

(अभिचार कृत्य से प्रकट हुई) बनावटी ध्वनि को यह जङ्गिड़मणि सत्त्वहीन करे । हानिकारक सातों प्रवाह रसहीन हों । आप यहाँ से दुर्मति को उसी प्रकार दूर हटाएँ, जिस प्रकार बाण चलाने वाला शत्रुओं को दूर करता है ॥३ ॥

४८३४. कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४ ॥

यह जङ्गिड़मणि हिंसक कृत्याओं को विनष्ट करने वाली है । यह शत्रुओं का विनाश करने वाली है । यह जङ्गिड़मणि सामर्थ्यशाली है । यह मणि हमारी आयु को बढ़ाए ॥४ ॥

४८३५. स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५ ॥

जङ्गिड़मणि अपनी महत्ता द्वारा सभी दिशाओं से हमारी रक्षा करे । अपने ओज से वात-व्याधि को समूल नष्ट करे । संस्कन्ध रोग को हम इसी मणि की शक्ति से दूर करते हैं ॥५ ॥

४८३६.त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि । तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः

पृथ्वी पर स्थायित्व प्रदान करने वाली (जङ्गिड़) तुम्हें देवताओं ने तीन बार के प्रयास से उत्पन्न किया है । इसके विषय में पूर्वकालीन ब्राह्मण और अंगिरा ऋषि भली प्रकार जानते हैं ॥६ ॥

४८३७. न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७ ॥

हे जङ्गिड़मणे ! पूर्व में पैदा हुई ओषधियाँ और जो नूतन ओषधियाँ हैं , वे भी सामर्थ्य में आपको नहीं लाँघ सकती हैं । आप रोगों के लिए विशेष रूप से अवरोध पैदा करने वाली, उग्ररूप तथा हमारे लिए श्रेष्ठ मंगलकारी संरक्षक के समान हैं ॥७ ॥

४८३८. अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य । पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८ ॥

भगवान् की शक्ति के प्रतिनिधि हे जङ्गिड़मणे ! पराक्रमी शत्रु आपको अपना ग्रास बनाकर समाप्त न करें, इसलिए देवराज इन्द्र ने आपमें प्रचण्ड शक्ति की स्थापना की है ॥८ ॥

४८३९. उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥९ ॥

हे जङ्गिड़मणे ! इन्द्रदेव ने आपमें शक्ति की स्थापना की है । हे ओषधे ! आप सभी रोगों को विनष्ट करते हुए भय के मूल कारण असुरों का विनाश करें ॥९ ॥

४८४०. आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥१० ॥

शरीर को हानि पहुँचाकर उसको नष्ट करने वाले रोगों, खाँसी, पृष्ठ भाग के रोगों तथा शरद् ऋतु में प्रभावित करने वाले ज्वर आदि विभिन्न रोगों को यह जङ्गिड़मणि निस्सार करके नष्ट कर देती है ॥१० ॥

[३५ - जङ्गिड़ सूक्त]

[**ऋषि-** अङ्गिरा । **देवता-** मन्त्रोक्त अथवा वनस्पति । **छन्द-** अनुष्टुप् , ३ पथ्यापंक्ति, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ।]

४८४१. इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१ ॥

जिस (जङ्गिड़) को देवताओं ने सर्वप्रथम तैयार किया था। ऋषियों ने इन्द्रदेव की साक्षी में उस जङ्गिड़मणि को (रोगोपचार हेतु) प्रदान किया ॥१ ॥

४८४२. स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव। देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम्।

जिस प्रकार कोषाध्यक्ष प्रयत्नपूर्वक धन की सुरक्षा करता है, उसी प्रकार यह जङ्गिड़मणि हमें संरक्षण प्रदान करे, जिसे देवों और ब्रह्मनिष्ठों ने संरक्षक और शत्रुनाशक के रूप में बनाया है ॥२ ॥

४८४३. दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३ ॥

सहस्र नेत्रों से युक्त हे जङ्गिड़मणे ! आप दुष्ट हृदय वाले शत्रु की क्रूर दृष्टि को, हिंसा आदि पापकर्म करने वाले को तथा विनाश की इच्छा से आये हुए व्यक्ति को अपनी सजगदृष्टि से विनष्ट करें; क्योंकि आप सबके संरक्षक रूप में विख्यात हैं ॥३ ॥

४८४४. परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥४ ॥

यह जङ्गिड़मणि दिव्यलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वीलोक, ओषधियों, भूतकाल में हो चुकी और भविष्यत् में होने वाली घटनाओं से, दिशाओं और उपदिशाओं से होने वाले सभी प्रकार के अनिष्टों से हमें संरक्षण प्रदान करे ॥४ ॥

४८४५. य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः। सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत्।

जो देवों द्वारा विनिर्मित हिंसक-कर्म और मनुष्यों से प्रेरित हिंसककृत्य हैं, उन सभी को सर्व- चिकित्सक जङ्गिड़मणि सारहीन करे ॥५ ॥

[३६ - शतवारमणि सूक्त]

[**ऋषि**- ब्रह्मा। **देवता**- शतवार। **छन्द**- अनुष्टुप्।]

४८४६. शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१ ॥

(सैकड़ों रोगों की निवारक) शतवार नामक ओषधि (मणि) अपने प्रभाव से रोगों को विनष्ट करे। शरीर से बाँधे जाने पर कुत्सित नाम वाले त्वचा रोगों की निवारक यह मणि अपनी तेजस्विता से शरीर के विकारों को भी भस्मसात् करे ॥१ ॥

४८४७. शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः। मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२॥

यह शतवारमणि सींगों (अपने अग्रिम भागों) से आसुरीवृत्तियों को दूर करती है। मूलभाग से यातना देने वाले रोगों को दूर करती है तथा मध्य (काण्ड) भाग से समस्त रोगों का निवारण करती है। इसे कोई भी रोग (पाप) लाँघ (कर बढ़) नहीं सकता ॥२ ॥

४८४८. ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३ ॥

जो अविकसित सूक्ष्म बीजरूप (यक्ष्मा आदि) रोग हैं, जो वृद्धि को प्राप्त हुए रोग हैं तथा जो शब्द करने वाले असाध्य रोग हैं, उन सबको यह दुष्ट नाम वाले रोगों की संहारक शतवार मणि समूल नष्ट करे ॥३ ॥

४८४९. शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्। दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥

यह (मणि) सौ (सैंकड़ों) वीरों (रोगनाशक शक्तियों) को जन्म देती है, सैकड़ों रोगों का निवारण करती है तथा सभी दुष्ट नाम वालों को नष्ट करके राक्षसों (रोगबीजों) या दुष्ट प्रवृत्तियों को कँपा देती है ॥४ ॥

४८५०.हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः । दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत्

स्वर्ण की तरह चमकते हुए सींग (अगले भाग) वाली, सभी ओषधियों में शक्तिशाली यह शतवार मणि कुत्सित नाम वाले सभी रोगों को विनष्ट करके रोगाणुओं को दूर कर देती है ॥५ ॥

४८५१. शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥

गन्धर्व और अप्सरस् नामक देवयोनि के सैकड़ों रोगों को तथा उपचार के बाद भी बार-बार पीड़ा पहुँचाने वाले सैकड़ों रोगों को मैं इस शतवार नामक ओषधि (मणि) के द्वारा दूर करता हूँ ॥६ ॥

[३७ - बलप्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप्, २ आस्तार पंक्ति, ३ त्रिपदा महाबृहती, ४ पुर उष्णिक् ।]

४८५२. इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१ ॥

अग्निदेव हमें वर्चस्, तेजस्, यश, साहस, ओज, आयु (शारीरिक) बल प्रदान करते हैं । देवों के जो तैंतीस प्रकार के वीर्य (पराक्रम) हैं, अग्निदेव के अनुग्रह से हम उनके अधिकारी बनें । ।१ ॥

४८५३. वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप हमारे शरीर में तेजस्विता, ओजस्विता, सत्साहस, सामर्थ्य और पराक्रम की स्थापना करें । हम इन्द्रियों की सुदृढ़ता, यज्ञादि कर्मों की सिद्धि और सौ वर्ष की आयु प्राप्ति के लिए आपको धारण करते हैं ॥२

४८५४. ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३ ॥

हम अन्न, बल, ओजस्विता और साहसिकता की वृद्धि के लिए, शत्रुओं को परास्त करने, राष्ट्र की सेवा करने तथा सौ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए हम आपको (अग्नि की प्रेरणाओं को) धारण करते हैं ॥३ ॥

४८५५. ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४ ॥

ग्रीष्म आदि ऋतुओं, ऋतु-सम्बन्धी देवों, महीनों, संवत्सरों, धातादेव, विधातादेव, समृद्धि के देवता तथा समस्त प्राणियों के अधिपति की प्रसन्नता के लिए हम यजन (यज्ञादि सत्कर्म) करते हैं ॥४ ॥

[३८ - यक्ष्मनाशन सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** गुल्गुलु । **छन्द-** अनुष्टुप्, २ चतुष्पदा उष्णिक्, ३ एकावसाना प्राजापत्या अनुष्टुप् ।]

४८५६. न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥१ ॥

उस मनुष्य को कोई रोग पीड़ित नहीं करता, दूसरों के द्वारा दिये गये अभिशाप, उसे स्पर्श तक नहीं कर पाते हैं, जिसके पास ओषधिरूप गुग्गुल (गुल्गुलु) की श्रेष्ठ सुगन्धि संव्याप्त रहती है ॥१ ॥

४८५७. विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥२ ॥

इस गुग्गुल की सुगन्धि से यक्ष्मा आदि रोग उसी प्रकार सभी दिशाओं को पलायन कर जाते हैं, जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व और मृग दौड़ जाते हैं। यह गुग्गुल (गुल्गुलु) नामक ओषधि नदी या समुद्र के तट पर उत्पन्न होती है ॥२ ॥

४८५८. उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥३ ॥

हम इस रोगी के कल्याण के निमित्त गुग्गुल के दोनों स्वरूपों का वर्णन करते हैं ॥३ ॥

[३९ - कुष्ठनाशन सूक्त]

[**ऋषि-** भृग्वङ्गिरा। **देवता-** कुष्ठ। **छन्द-** अनुष्टुप्, २-३ त्र्यवसाना पथ्यापंक्ति, ४ षट्पदा जगती, ५ चतुरवसाना सप्तपदा शक्वरी, ६-८ चतुरवसाना अष्टपदाष्टि।]

४८५९. ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः।

कुष्ठ रोग को दूरकर संरक्षण प्रदान करने वाली दिव्य ओषधि हिमालय पर्वत से हमें प्राप्त हो। यह दिव्य ओषधि सभी प्रकार के विकारों का क्षय करते हुए पीड़ादायक रोगों को दूर करे ॥१ ॥

४८६०. त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥२ ॥

हे ओषधे ! आपके रहस्यमय तीन नाम हैं, जो क्रमशः नद्यमार, नद्यारिष और नद्य कहलाते हैं। जिस पुरुष को हम प्रातः - सायं और दिन में (ओषधि प्रयोग) बतलाएँ, वह (रोग को) मिटाने में समर्थ हो ॥२ ॥

४८६१. जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥३ ॥

हे ओषधे ! आपकी जन्मदात्री माता जीवला (प्राणयुक्त) और पिता जीवन्त (पोषण देने वाले) नाम से प्रख्यात हैं। जिस पुरुष को हम प्रातः- सायं और दिन में (ओषधि प्रयोग) बतलाएँ, वह (रोग को) मिटाने में समर्थ हो ॥

४८६२. उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।
नद्यायं पुरुषो रिषत्। यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥४ ॥

हे ओषधे !आप रोग निवारक ओषधियों में उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार (खुर वाले) पशुओं में भारवाहक बैल और (पंजे वाले पशुओं में) व्याघ्र सर्वश्रेष्ठ होता है। जिस पुरुष को हम प्रातः, सायं और दिन में (ओषधि प्रयोग) बतलाएँ, वह (रोग को) मिटाने में समर्थ हो ॥४ ॥

४८६३. त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि। त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥५ ॥

समस्त रोगों की निवारक जिस ओषधि को अंगिरावंशज शाम्बुओं, आदित्यदेवों तथा विश्वेदेवों द्वारा तीन प्रकार से प्रकट किया गया है । सोमरस के साथ विद्यमान रहने वाली वह कुष्ठ ओषधि सभी रोगों का निवारण करती है । हे कूट ओषधे ! आप सभी प्रकार के कष्टदायी रोगों और सभी यातना देने वालों को नष्ट करें ॥५ ॥

४८६४. अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः
कुष्ठो अजायत । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥६ ॥

तृतीय लोक 'दिव्यलोक' में देवशक्तियों का निवास है, वहाँ अग्निदेव अश्वरूप में विद्यमान रहते हैं तथा वहीं अमृत का स्रोत भी है । यह कुष्ठ ओषधि पहले सोम (अमृत) के साथ दिव्यलोक में ही वास करती थी । हे ओषधे ! आप कष्टप्रद रोगों और यातनादायी सभी रोगाणुओं को विनष्ट करें ॥६ ॥

४८६५. हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः
कुष्ठो अजायत । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥७ ॥

स्वर्णनिर्मित और स्वर्णिम खूँटे से बँधी हुई नाव दिव्यलोक में सदा घूमती रहती है । वहीं अमृत की ज्योति है, जहाँ से कुष्ठ की उत्पत्ति हुई है । वह कुष्ठ ओषधि समस्त रोगों को दूर करती है । यही कुष्ठ पूर्वकाल में अमृतरूप सोम के साथ वास करती थी । हे कुष्ठ (कूट) ओषधे ! आप कष्टप्रद रोगों और यातनादायी सभी रोगाणुओं को विनष्ट करें ॥७ ॥

४८६६. यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः
कुष्ठो अजायत । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८

जिस (दिव्यलोक) से नीचे नहीं गिरना होता और जहाँ हिमयुक्त पर्वत का शिखर भाग है, जहाँ अमृत की ज्योति है, वहीं कूट ओषधि का प्राकट्य हुआ है । यही कूट सभी रोगों को दूर करती है । यह पहले दिव्यलोक में अमृतरूप सोम के साथ स्थित थी । हे ओषधे ! आप कष्टप्रद सभी रोगों तथा यातनादायी सभी रोगाणुओं को भी विनष्ट करें ॥८ ॥

४८६७. यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥९ ॥

हे कूट (कुष्ठ) ओषधे ! सभी रोगों का निवारण करने वाली अचूक ओषधिरूप में आपका परिचय सर्वप्रथम राजा इक्ष्वाकु तथा काम के पुत्र ने प्राप्त किया था । वसु ने भी इसी रूप में आपकी जानकारी प्राप्त की थी । इस प्रकार आप सभी रोगों की निवारक श्रेष्ठ ओषधि सिद्ध हों ॥९ ॥

४८६८. शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः । तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥

हे कूट (कुष्ठ) ! तृतीय द्युलोक आपका शीर्षभाग है । आप आधि- व्याधियों की निवारक हैं । विभिन्न सामर्थ्यों से सम्पन्न हे ओषधे ! आप कष्टप्रद रोगों को अधोगामी करके सर्वथा दूर करें ॥१० ॥

[४० - मेधा सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** बृहस्पति अथवा विश्वेदेवा । **छन्द-** परानुष्टुप् त्रिष्टुप् , २ पुरः ककुम्मती उपरिष्टाद् बृहती, ३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् , ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।]

४८६९. यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१ ॥

हमारे जो मानसिक छिद्र (दोष) हैं, जो वाणी के छिद्र (दोष) हैं तथा जो क्रोधजन्य दोष हैं, उन सब को समस्त देवशक्तियों के साथ मिलकर बृहस्पतिदेव दूर करें ॥१ ॥

४८७०. मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२ ॥

हे जलदेव ! आप हमारी मेधा को कलुषित न होने दें । हमारे वेदाभ्यास को क्षीण न होने दें । आप सुखपूर्वक प्रवाहित होते रहें । आपके द्वारा अनुगृहीत होकर हम मेधासम्पन्न और ब्रह्मबल से युक्त हों ॥२ ॥

४८७१. मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३ ॥

(हे द्यावा-पृथिवी !) आप हमारी मेधा को विनष्ट न होने दें । हमारी दीक्षा को हानि न पहुँचने दें । हम जो तपः साधना कर रहे हैं, उसे भी विनष्ट न करें । (जल) हमारी आयु के लिए कल्याणकारी हो । मातृवत् प्रवाह हमारे लिए कल्याणप्रद हो ॥३ ॥

४८७२. या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ॥४ ॥

हे अश्विनीदेवो ! ज्योतिर्मयी (मेधा, विद्या या रात्रि) हमें पूर्णता दे, अन्धकार से पार करे, हमें शक्ति प्रदान करे।

[४१ - राष्ट्रबल सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** तप । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४८७३. भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१ ॥

सबके हितचिन्तक, आत्मज्ञानी ऋषि सृष्टि के प्रारम्भ में तप और दीक्षादि नियमों का पालन करने लगे । उसी से राष्ट्रीय भावना, बल और सामर्थ्य की उत्पत्ति हुई । अतएव ज्ञानी लोग उस (राष्ट्र) के समक्ष विनम्र हों (राष्ट्रसेवा करें) ॥१ ॥

[४२ - ब्रह्मयज्ञ सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** ब्रह्म । **छन्द-** अनुष्टुप् , २ त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापंक्ति, ३ त्रिष्टुप् , ४ जगती ।]

४८७४. ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१ ॥

ब्रह्म ही यज्ञ का होता है । यज्ञ भी ब्रह्मस्वरूप ही है । ब्रह्म से ही सात स्वरों के ज्ञाता (उद्गातृगण)हुए हैं । अध्वर्युगण भी ब्रह्मशक्ति से ही उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मतत्त्व में ही यज्ञीय हवि भी अन्तर्निहित है ॥१ ॥

४८७५. ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥२ ॥

घी से भरे हुए स्रुकपात्र, यज्ञवेदी, यज्ञ- प्रक्रिया तथा आहुतियाँ प्रदान करने वाले ऋत्विग्गण- ये सभी ब्रह्म (परमात्मतत्त्व) के ही स्वरूप हैं, शान्तिदायक ब्रह्म के लिए ही यह आहुति समर्पित है ॥२ ॥

४८७६. अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३ ॥

पापों से मुक्त कराने वाले, श्रेष्ठ रक्षक (इन्द्र) के प्रति हम अपनी बुद्धि समर्पित करते हैं और स्तुतियों का गान करते हैं । हे इन्द्रदेव ! यह हव्य स्वीकार करें, इस यजमान की कामनाएँ सत्य (पूर्ण) हों ॥३ ॥

४८७७. अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४ ॥

पापों से मुक्ति दिलाने वाले, यज्ञीय वर्षा करने वाले, यज्ञों में सर्वोत्तम पद पर विराजमान, जल को न गिरने देने वाले (अग्निदेव) और अश्विनीकुमारों का हम आवाहन करते हैं । वे हमें इन्द्रियशक्ति और बल प्रदान करें ॥४ ॥

[४३ - ब्रह्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त अथवा ब्रह्म । **छन्द-** त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापंक्ति ।]

४८७८. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१ ॥

दीक्षा के अनुशासनों के पालनकर्त्ता और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, अग्निदेव हमें वहीं ले जाएँ । वे हमें मेधाशक्ति प्रदान करें । उन्हीं के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥१ ॥

४८७९. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, वायुदेव हमें वहीं ले जाएँ । वे पंचप्राणों को हममें प्रतिष्ठित करें ।उन्हीं के निमित्त यह आहुति समर्पित है

४८८०. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥३ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं , सूर्यदेव हमें वहीं पहुँचाएँ । वे हममें दर्शनक्षमता स्थापित करें । यह श्रेष्ठ आहुति उन्हीं को समर्पित है ॥

४८८१. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥४ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, चन्द्रदेव हमें वही स्थान प्रदान करें ।वे हममें श्रेष्ठ मन की स्थापना करें, उनके लिए यह आहुति अर्पित है

४८८२. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा ॥५ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, सोमदेव हमें भी उसी स्थान की प्राप्ति कराएँ और पोषक रस प्रदान करें ।उन्हीं को यह आहुति अर्पित है।

४८८३. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा ॥६ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, इन्द्रदेव हमें वही स्थान उपलब्ध कराएँ ।वे हमें शारीरिक पुष्टि प्रदान करें ।उन्हींको यह आहुति अर्पित है।

४८८४. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ॥७ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, आपो देव हमें वही स्थान प्राप्त कराएँ। वे हमें अमृतत्त्व भी प्रदान करें। उन्हीं के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥७ ॥

४८८५. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा ॥८ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, ब्रह्मा हमें वही स्थान प्राप्त कराएँ ।वे हमें ब्रह्मविद्या की प्रेरणा प्रदान करें ।उन्हीं को यह आहुति अर्पित है।

[४४ - भैषज्य सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु। **देवता-** अञ्जन, ८-९ वरुण। **छन्द-** अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, ५ त्रिपदा निचृत् विषमा गायत्री।]

४८८६. आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१ ॥

हे आञ्जन ! आप मनुष्यों को सौ वर्ष की पूर्ण आयु प्रदान करने वाले हैं। चिकित्सकों के कथनानुसार आप विशेष स्फूर्तिवान् और कल्याणरूप हैं। आप हमें शान्ति और अभय प्रदान करें ॥१ ॥

४८८७. यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥२ ॥

हे पुरुष ! आपके शरीर में जो पाण्डु (पीलिया) नामक रोग, स्त्री सम्पर्क द्वारा होने वाला रोग, वातादि द्वारा उत्पन्न अंगभेद रोग अथवा विसर्पक (एग्जीमा-व्रण) आदि जो भी कष्टकारी रोग हों, उन सभी को यह आञ्जन (मणि) आपके शरीर से पृथक् करे ॥२ ॥

४८८८. आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्। कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम्।

पृथ्वी से उत्पन्न हुआ कल्याणप्रद और मनुष्यों को जीवनी शक्ति प्रदान करने वाला यह आञ्जन (मणि) हमें अमरत्व प्रदान करता है। यह हमें रथ के समान गतिशील और पापमुक्त बनाता है ॥३ ॥

४८८९. प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४ ॥

हे (दिव्य) प्राण ! आप हमारे प्राण को संरक्षण प्रदान करें । हे दु:खरहित प्राण ! आप हमारे प्राण को सुख प्रदान करें । हे पापदेवते ! आप दुर्गति (दु:खदायिनी प्रकृति) के बन्धनों से हमें मुक्त कराएँ ॥४ ॥

४८९०. सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५ ॥

हे आञ्जन ! आप समुद्रीय जल के गर्भ तथा बिजलियों के पुष्प (वृष्टि जल के) रूप में जाने जाते हैं। वायु आपके प्राण, सूर्य नेत्र और दिव्यलोक की पोषक धाराएँ आपके लिए रसरूप हैं । ।५ ॥

४८९१. देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६ ॥

हे दिव्य आञ्जन ! आप त्रैककुद(तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ) पर्वत पर उत्पन्न हुए हैं। आप हमारी चारों ओर से रक्षा करें । पर्वतों से भिन्न स्थानों पर उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ आपकी अपेक्षा कम लाभप्रद होती हैं ॥६ ॥

४८९२. वी३दं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७ ॥

असुर संहारक और रोग विनाशक यह आञ्जन पर्वत शिखर से नीचे आकर प्रत्येक वस्तु में फैल जाता है। यह समस्त विकारों को विनष्ट कर देता है। यह आक्रामक रोगों का भी निवारण कर देता है ॥७ ॥

४८९३. बह्वी३दं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः। तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥८ ।

हे पापनिवारक राजा वरुण ! यह पुरुष प्रात:काल से लेकर शयन तक अतिशय मिथ्याभाषण कर चुका है। इसे दोष मुक्त करें । हजारों बलों से सम्पन्न हे आञ्जन ओषधे ! आप मिथ्या-भाषण के पाप से हमें मुक्त करें ॥८ ॥

४८९४. यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम। तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥

जल के अधिष्ठाता न मारने योग्य हे वरुणदेव ! जो हम कहते हैं, उसे आप साक्षीरूप में जानें। हे असीम शक्तियुक्त आञ्जन ! सभी पापकर्मों के कुप्रभाव से आप हमें मुक्त रखें ॥९ ॥

४८९५. मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन। तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१० ।

हे आञ्जन ! मित्र और वरुणदेव दिव्यलोक से भूमि पर पहुँचे, पुन: लौटकर आपके पीछे-पीछे गये । आप सुखोपभोग के लिए उनको यहाँ लेकर आएँ ॥१० ॥

[४५ - आञ्जन सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-** १-५ अञ्जन, (९ भग) मन्त्रोक्त । **छन्द-** अनुष्टुप्, ३-५ त्रिष्टुप्, ६ एकावसाना विराट् महाबृहती, ७-१० एकावसाना निचृत् महाबृहती ।]

४८९६. ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम्।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१ ॥

हे आञ्जन ! जैसे ऋण लेने वाला पुरुष ऋण का बोझ ऋणदाता को सौंप देता है, वैसे ही घातक प्रयोग हेतु भेजी गई कृत्या को, भेजने वाले पुरुष पर ही लौटाते हुए आप दुष्ट हृदय वाले शत्रु की पसलियों को तोड़ दें ॥१ ॥

४८९७. यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२ ॥

हममें, हमारे पशुओं में तथा हमारे भवनों में जो भी दु:स्वप्न की भाँति भयंकर हो, वह सब दुष्ट हृदय वाले के समीप प्रिय वस्तु के समान पहुँचे ॥२ ॥

४८९८. अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३ ॥

जल की ऊर्जा और सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त करने वाला, जातवेदा अग्नि से उत्पन्न होने वाला, अपनी सामर्थ्य से चारों दिशाओं में व्याप्त तथा पर्वत पर उत्पन्न होने वाला आञ्जन हमारे निमित्त दिशाओं और उपदिशाओं को मंगलप्रद करे ॥३ ॥

४८९९. चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४ ॥

हे श्रेष्ठ पुरुष ! चतुर्दिक् शक्ति का विस्तार करने वाली अञ्जनमणि को आपके शरीर पर बाँधते हैं। इसे धारण करने से आपको सभी दिशाओं से निर्भयता प्राप्त हो। आप सूर्य सदृश सभी को प्रकाशित करते हुए स्थिर रहें। सभी प्रजाजन श्रेष्ठ पदार्थों को उपहाररूप में आपके लिए समर्पित करते रहें ॥४ ॥

४९००. आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम्।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५ ॥

हे पुरुष ! आप आञ्जन की एक मात्रा को आँखों में लगाएँ, दूसरे को मणिरूप बनाएँ। उसकी एक मात्रा को स्नान हेतु प्रयुक्त करें, एक मात्रा का पान करें। यह चार वीरों की सामर्थ्ययुक्त आञ्जन चार प्रकार के राक्षसी बन्धनों तथा अपने चंगुल में जकड़ने वाले रोगों से हमें संरक्षण प्रदान करे ॥५ ॥

४९०१. अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६ ॥

अग्रणी, गुणसम्पन्न अग्निदेव अपनी शत्रुसंतापक सामर्थ्य द्वारा हमारी रक्षा करें। प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस, सामर्थ्य, तेज, कल्याणकारी जीवन तथा श्रेष्ठ विभूतियों के लिए यह आहुति समर्पित करते हैं ॥६ ॥

४९०२. इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७ ॥

देवराज इन्द्र अपने पराक्रम द्वारा हमारी रक्षा करें। प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस, सामर्थ्य, तेज, कल्याणकारी जीवन तथा श्रेष्ठ विभूतियों के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥७ ॥

४९०३. सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८ ॥

सोमदेव अपनी सौम्य सामर्थ्य द्वारा हमारी रक्षा करें। प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस, ओज, तेज, कल्याणकारी जीवन तथा श्रेष्ठ विभूतियों के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥८ ॥

४९०४. भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा।

भगदेव सौभाग्ययुक्त सामर्थ्य से हमारी रक्षा करें। प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस, ओज, तेज, मंगलकारी जीवन और उत्तम विभूतियों के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥९ ॥

४९०५. मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१० ॥

मरुद्गण अपने गणों की शक्ति द्वारा हमारी रक्षा करें । प्राण, अपान, आयु, तेज, ओज, ब्रह्मवर्चस, सुखी कल्याणकारी जीवन और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥१० ॥

[४६ - अस्तृतमणि सूक्त]

[**ऋषि-** प्रजापति । **देवता-** अस्तृतमणि ।**छन्द-** पञ्चपदा मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, २ षट्पदा भुरिक् शक्वरी, ३, ७ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, ४ चतुष्पदा त्रिष्टुप्, ५ पञ्चपदा अतिजगती, ६ पञ्चपदा उष्णिग्गर्भा विराट् जगती ।]

४९०६. प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥१ ॥

सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्मा ने शौर्य की आकांक्षा से अस्तृतमणि को धारण किया था ।हे मनुष्य !इस मणि को हम आयु , तेज, सामर्थ्य और बल की प्राप्ति हेतु (आपके शरीर में) बाँधते हैं ।यह आपको संरक्षण प्रदान करे ।

४९०७. ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः । इन्द्र इव
दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥२ ॥

हे मणे ! आप उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित तथा जागरूक रहते हुए इसकी सुरक्षा करें । यातना देने वाले असुर आपकी सामर्थ्य का नाश न कर सकें । जिस प्रकार इन्द्रदेव शत्रुओं को विनष्ट करते हैं, उसी प्रकार आप सैन्यशक्ति द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं का नाश करें । हे पुरुष ! अस्तृतमणि आपको संरक्षण प्रदान करे ॥२ ॥

४९०८. शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३ ॥

घातक प्रहार और हिंसक आक्रमण किये जाते हुए भी इस मणि से पार नहीं पाया जा सकता । इन्द्रदेव ने शत्रुओं द्वारा अवध्य इस मणि के अन्दर दर्शन- शक्ति, प्राणशक्ति और सामर्थ्य को स्थापित किया है । यह मणि अपने धारण करने वाले पुरुष की सुरक्षा करे ॥३ ॥

४९०९. इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥४ ॥

हे अस्तृत मणे ! हम आपको इन्द्रदेव के कवच से आच्छादित करते हैं । सभी देव भी आपको प्रेरित करें । आप अपने धारककर्ता का संरक्षण करें ॥४ ॥

४९१०. अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते । व्याघ्रः
शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥५ ॥

इस अस्तृतमणि में एक सौ एक प्रकार की शक्तियाँ तथा असीम प्राणबल है । हे मणिधारक पुरुष ! आप शत्रुओं पर बाघ के समान प्रहार करें । जो आपके ऊपर सैन्यशक्ति द्वारा आक्रमण करने के इच्छुक हों, वे परास्त हों । यह अस्तृतमणि आपको पूर्ण संरक्षण प्रदान करे ॥५ ॥

४९११. घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६ ॥

घी, दूध और मधु से परिपूर्ण, समस्त देवशक्तियों से अनुप्राणित होने से असीम सामर्थ्ययुक्त, इन्द्रदेव के कवच से युक्त, दीर्घजीवन एवं कल्याणकारी, शारीरिक सुखों की प्रदाता, शक्ति और दिव्य रसों से परिपूर्ण यह अस्तृतमणि धारण करने वाले को संरक्षण प्रदान करे ॥६ ॥

४९१२. यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७ ॥

हे साधक मनुष्य ! जिस प्रकार से आप सबसे उत्कृष्ट, शत्रुरहित, सजातियों को अपने वशीभूत करने वाले बन सकें, सर्वप्रेरक सवितादेव आपको वैसा ही बनाएँ । यह अस्तृतमणि आपको संरक्षण प्रदान करे ॥७ ॥

[४७ - रात्रि सूक्त]

[**ऋषि-** गोपथ । **देवता-** रात्रि । **छन्द-** पथ्याबृहती, २ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती, ३-५, ८-९ अनुष्टुप्, ६ पुरस्ताद् बृहती, ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

४९१३. आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१ ॥

हे रात्रे ! आपका अन्धकार पृथ्वीलोक और पितृलोक (द्युलोक) सभी स्थानों में संव्याप्त हो गया है । यह अन्धकार तीनों लोकों में संव्याप्त होकर विद्यमान है । पृथ्वी पर मात्र अन्धकार ही व्याप्त है ॥१ ॥

४९१४. न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥२ ॥

जिसका दूसरा छोर दिखाई नहीं देता, जिसमें सम्पूर्ण विश्व एक ही दिखाई देता है, प्रयत्नशील प्राणी भी इस रात्रि में सो जाते हैं । अन्धकारयुक्त हे रात्रे ! हम सभी विनाशरहित होकर आपसे पार हो जाएँ । हे कल्याणी ! आपके अन्धकार से हम मुक्ति पाएँ ॥२ ॥

४९१५. ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ।

हे रात्रे ! मनुष्यों के कर्माकर्म का निरीक्षण करने वाले आपके जो निन्यानबे, अट्ठासी और सतहत्तर गण (शक्ति धाराएँ) हैं, उन सबके द्वारा आप हमारा संरक्षण करें ॥३ ॥

४९१६. षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥४ ॥

धन एवं सुख प्रदान करने वाली हे रात्रे ! आप अपने छासठ, पचपन, चौवालिस तथा तैंतीस दिव्य शक्तिधाराओं द्वारा हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥४ ॥

४९१७. द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ।

हे रात्रि ! आपके बाईस तथा कम से कम ग्यारह संरक्षक हैं । हे दिव्यलोक की कन्या रात्रे ! आप उन रक्षकों द्वारा इस समय हमें संरक्षण प्रदान करें ॥५ ॥

[मंत्र क्र. ३ से ५ तक रात्रि की शक्तिधाराओं की गणना में ११ का उलटा पहाड़ा (९९ से ११ तक) आया है ।]

४९१८. रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥६ ॥

हे रात्रेदेवि ! आप हमारी रक्षा करें । पापी पुरुष या कुख्यात व्यक्ति हमारे ऊपर अधिकार न कर सकें । चोर हमारी गौओं पर अधिकार न कर सकें तथा भेड़िया हमारी भेड़ों को बलपूर्वक ले जाने में सफल न होने पाए ॥६ ॥

४९१९. माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः । परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥७ ॥

हे रात्रे ! घोड़ों के तस्कर और मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने वाले हमारे लिए कष्टदायक न हों । धन को चुराने वाले चोर, दूर के मार्गों से पलायन करें । हमारे प्रति हिंसक भाव से प्रेरित दुष्ट पुरुष भी दूर चले जाएँ ॥७ ॥

४९२०. अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥८ ॥

हे रात्रे ! जहरीले धुएँ (श्वास) से पीड़ा पहुँचाने वाले सर्प को आप मस्तक रहित कर दें । भेड़िये जैसे हिंसक व्यक्ति के जबड़ों को तोड़ डालें और धन के अपहर्त्ता को आप खूँटे से बाँधकर दण्डित करें ॥८ ॥

४९२१. त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि । गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ।

हे रात्रे ! हम आपके आश्रय में निवास करते हैं । जब हम शयन करें, उस समय आप सजग रहें । आप हमारी गौओं, अश्वादि पशुओं तथा प्रजाजनों के लिए भी सुखमय आश्रय प्रदान करें ॥९ ॥

[४८- रात्रि सूक्त]

[**ऋषि-** गोपथ । देवता- रात्रि । छन्द- १ त्रिपदार्षी गायत्री, २ त्रिपदा विराट् अनुष्टुप्, ३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, ४,६ अनुष्टुप्, ५ पथ्यापंक्ति ।]

४९२२. अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि ॥१ ॥

हे रात्रे ! जिन्हें हम जानते हैं, (ऐसी प्रकट वस्तुएँ) तथा जो बन्द मंजूषा में (अप्रकट या अज्ञात वस्तुएँ) हैं, उन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सभी साधनों को हम आपके लिए समर्पित करते हैं ॥१ ॥

[रात्रि में मनुष्य के लिए निश्चिन्तता की नींद आवश्यक है । नींद में कोई अपने आश्रित व्यक्तियों या साधनों की रक्षा नहीं कर सकता । उनके लिए समुचित व्यवस्था व्यावहारिक स्तर पर करने के साथ ही उनके प्रति निश्चिन्त होना आवश्यक है । रात्रि में जिसने विश्राम की व्यवस्था बनाई है, उसी दिव्य चेतना को अपने दायित्व सौंपकर सोने से क्रमशः योग युक्त निद्रा का अभ्यास होने लगता है । यहाँ ऋषि ने उसी के सूत्र संकेत दिये हैं ।]

४९२३. रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥२ ॥

हे माता ! हे रात्रे ! आप अपने पश्चात् उषाकाल के आश्रय में हमें पहुँचा दें । उषा हमें दिन को समर्पित कर दे । दिन पुनः आपको ही सौंप दे ॥२ ॥

४९२४. यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् । यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥३ ॥

हे रात्रे ! आकाश मार्ग में उड़ने वाले (बाज़ आदि पक्षी), भूमि पर रेंगकर चलने वाले (सर्पादि) तथा पर्वतीय जंगलों में घूमने वाले (बाघ आदि) हिंसक पशुओं से आप हमें संरक्षण प्रदान करें ॥३ ॥

४९२५. सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत । गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४ ॥

हे रात्रे ! आप आगे, पीछे, ऊपर तथा नीचे (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) चारों दिशाओं से हमारी सुरक्षा करें । हे तेजस्विनी रात्रे ! आप हमारी सुरक्षा अवश्य करें; क्योंकि हम आपकी स्तुति करते हैं ॥४ ॥

४९२६. ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥५ ॥

जो साधक रात्रि में जप-अनुष्ठान आदि करते हुए जागते रहते हैं । जो गौ आदि पशुओं तथा प्राणियों की सुरक्षा के लिए रात्रि में जागरण करते हैं ।वे ही हमारे प्रजाजनों तथा पशुओं की सुरक्षा के प्रति भी जागरूक रहें ॥५॥

४९२७. वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥६ ॥

हे रात्रे ! हम आपके प्रभाव को भली- भाँति जानते हैं । दीप्तिमती (घृताची) के रूप में आपकी प्रसिद्धि है । भरद्वाज ऋषि आपको इसी नाम से जानते हैं । आप हमारे वैभव की रक्षा के प्रति जागरूक रहें ॥६ ॥

[४९ - रात्रि सूक्त]

[**ऋषि-** गोपथ, भरद्वाज । **देवता-** रात्रि । **छन्द-** त्रिष्टुप् , ६ आस्तार पंक्ति, ७ पथ्यापंक्ति, ९ अनुष्टुप् , १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

४९२८. इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥१ ॥

अभीष्ट, चिरयुवा नारी सदृश, अपने को नियन्त्रण में रखने वाली, भगदेव एवं सवितादेव की शक्ति शीघ्रता से प्रवृत्त होने वाली, नेत्रों की अवहेलना करने वाली, यह रात्रि अपनी महत्ता से द्यावापृथिवी को पूर्ण कर देती है ॥१॥

४९२९. अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥२ ॥

गहन अन्धकार विश्व को आच्छादित करके विराजमान है । यह (रात्रि) विश्व समुदाय को हृदय से चाहती हुई आरोहित हुई है । जिस प्रकार मित्र (सूर्यदेव) विश्व में प्राण संचार करते हैं, उसी प्रकार यह कल्याणकारी रात्रि भी अपनी शक्तियों का संचार करती है ॥२ ॥

४९३०. वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम्।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३ ॥

उत्तम, वरणीय, वन्दनीय, सौभाग्यवती हे रात्रे ! श्रेष्ठ गुणों के साथ आपका अवतरण हो रहा है । यहाँ श्रेष्ठ मनवाली होकर आप हमारा संरक्षण करें । मनुष्यों और गौ आदि पशुओं के कल्याण के निमित्त पैदा होने वाले पदार्थों की भी आप सुरक्षा करें ॥३ ॥

४९३१. सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४ ॥

यह अभिलाषामयी रात्रि गजसमूह, सिंह, हरिन, गेंडा तथा बाघ आदि पशुओं की क्षमताओं को (तेजस्विता को) ग्रहण कर लेती है । अश्व की स्वाभाविक गति और मनुष्यों की वाक्शक्ति को भी अपने वश में करती है । इस प्रकार स्वयं विशेष रूप से चमकती हुई रात्रि विभिन्न स्वरूपों में दिखाई देती है ॥४ ॥

४९३२. शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५ ॥

मंगलकारिणी रात्रि तथा उसके स्वामी सूर्यदेव की हम वन्दना करते हैं । हिम (सर्दी) को उत्पन्न करने वाली रात्रि हमारे लिए स्तुति करने योग्य है । हे सौभाग्यवती रात्रे ! आप हमारी उस प्रार्थना को समझें, जिससे हम सभी दिशाओं में संव्याप्त आपकी वन्दना करते हैं ॥५ ॥

४९३३. स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥६ ॥

हे तेजस्विनी रात्रे ! राजा द्वारा स्तोताओं की प्रार्थना को स्नेहपूर्वक सुनने के समान ही आप हमारी प्रार्थना से प्रसन्न हों । आप नित्यप्रति प्रकट होने वाले उषाकाल में हम साधकों को सदा वीर सन्तानों और समस्त वैभव-सम्पदा से युक्त करें ॥६ ॥

४९३४. शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥७ ॥

हे रात्रे ! आप "शम्या" (विश्राम देने वाली) नाम से जानी जाती हैं । जो शत्रु हमारे धन- वैभव के अपहरणकर्त्ता हैं, उनके प्राणों को संतप्त करती हुई, आप आगमन करें । चोर- लुटेरे राष्ट्र में विद्यमान न रहें तथा उनकी पुन: उत्पन्न होने की सम्भावना भी न रहे ॥७ ॥

४९३५. भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८ ॥

हे रात्रे ! आप चमस पात्र के समान ही मंगलकारिणी हैं । अन्धकार के रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं तथा गौ की भाँति पोषक रस प्रदान करती हैं । आप हमें परिपुष्ट करती हुई, नेत्र ज्योति प्रदान करें । नक्षत्रों से सुशोभित आकाश की भाँति आप पृथ्वी को भी सजाएँ ॥८ ॥

४९३६. यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥९ ॥

हे तेजस्विनी रात्रे ! चारों ओर हत्या की योजना से आ रहे दुष्टों को आप उल्टे पैर वापस भगा दें । आप उनकी गर्दन और सिर पर प्रहार करें ॥९ ॥

४९३७. प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स
संपिष्टो अपायति । अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥१० ॥

हे रात्रे ! आप शत्रु के दोनों पैरों, दोनों हाथों को तोड़ डालें, जिससे वह पुन: हत्या का कुत्सित कार्य न कर सके । हमारे समीप आने वाले चोर या हत्यारे को कुचलकर वापस करें, जिससे वह निर्जन वन के सूखे वृक्ष का ही आश्रय प्राप्त करे ॥१० ॥

[५०- रात्रि सूक्त]

[ऋषि- गोपथ । देवता- रात्रि । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४९३८. अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि

हे रात्रे ! जहरीली श्वास छोड़ने वाले साँप को आप छिन्न- मस्तक (सिर रहित) करें । भेड़िये की दोनों आँखों को दृष्टि विहीन करके उसे वृक्ष के नीचे समाप्त करें ॥१ ॥

४९३९.ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा

हे रात्रे ! तीव्रगामी, तीखे सींगों से युक्त भारवाहक आपके जो बैल हैं, उनसे हमें सभी संकटों से पार करें ॥२ ।

४९४०. रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥३ ॥

हे रात्रे !हम शरीरों से सुरक्षित प्रत्येक रात्रि से पार हों, शत्रु नौकारहित यात्रियों की तरह पार न हो सकें ॥३ ॥

४९४१. यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।

एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥४ ॥

श्यामाक (साँवा) नामक अन्न के एक बार (जमीन पर) गिरने के बाद पुनः उसको ढूँढ़कर एकत्र कर पाना सम्भव नहीं होता ।हे रात्रे ! जो हमारे पास पाप की दुर्भावना से आ रहा है, उसे आप साँवा की भाँति नष्ट कर दें ॥४

४९४२.अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥५॥

हे रात्रे ! आप उन सभी प्रकार के अपहर्त्ताओं को, जो वस्त्र, गौ, बकरी के साथ-साथ घोड़ों को रस्सी से बाँधकर ले जाते हैं, उन्हें आप दूर हटाएँ ॥५ ॥

४९४३.यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥६॥

स्वर्ण आदि वैभव को बाँटने वाली हे सौभाग्यवती रात्रे ! आप अपना धन हमें प्रदान करें; हम उसका उपयोग कर सकें । वह धन हमारे शत्रुओं को न प्राप्त हो ॥६ ॥

४९४४. उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥

हे रात्रे ! हम निष्पाप स्तोताओं को आप उषा के नियन्त्रण में सौंप दें, उषा दिन को प्रदान कर दे, दिन हमें संरक्षण प्रदान करता हुआ पुनः आपको सौंप दे । हे तेजस्विनी रात्रे ! इस प्रकार आप हमारी सुरक्षा करें ॥७ ॥

[५१ - आत्मा सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आत्मा, २ सविता । **छन्द-** एकावसाना एकपदा ब्राह्मी अनुष्टुप् , २ एकावसाना त्रिपदा यवमध्योष्णिक्]

४९४५. अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे

प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥१ ॥

हम पूर्णतायुक्त हैं, हमारी आत्मा पूर्ण है, हमारे शरीर, शारीरिक अंग, नेत्र, कान, नासिका, प्राण, अपान, व्यान भी परिपूर्ण हैं । हम सभी इन्द्रियों की शक्ति से परिपूर्ण हैं ॥१ ॥

४९४६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥२ ॥

सर्वप्रेरक सवितादेवता की प्रेरणा से, अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषादेव के हाथों से प्रेरित हम (साधक) मनुष्य इस कार्य का शुभारम्भ करते हैं ॥२ ॥

[५२ - काम सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** काम । **छन्द-** त्रिष्टुप् , ३ चतुष्पदा उष्णिक् ५ उपरिष्टात् बृहती ।]

४९४७. कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१ ॥

सर्वप्रथम काम की उत्पत्ति हुई । काम ही मन का प्रथम बीज हुआ । विराट् काम सृष्टि- उत्पादन की ईश्वरीय कामना का सहोदर है । यह यजमान को धन और पुष्टि प्रदान करे ॥१ ॥

४९४८. त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२ ॥

हे काम !आप सामर्थ्यवान् हैं ।आप सर्वव्यापक , तेजसम्पन्न और मित्रवत् व्यवहार करने वाले के साथ मित्र भाव रखते हैं । आप शत्रुओं को वश में करने वाले वीर हैं , आप यजमान को ओजस् और शक्तिसम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

४९४९.दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥३

सभी दिशाएँ दुर्लभ फल की कामना करने वाले याजक को अभिलषित फल प्रदान करने के लिए संकल्पित हैं । वे सभी प्रकार के सुख भी प्रदान करें ॥३ ॥

४९५०.कामेन मा काम आगन् हृदयाद् हृदयं परि । यदमीषाममदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४ ॥

हमारी ओर काम के द्वारा ही काम का आगमन हुआ है । हृदय द्वारा हृदय की ओर भी काम का आगमन हुआ है । उन श्रेष्ठ जनों का मन भी हमारे पास आए ॥४ ॥

४९५१. यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५ ॥

हे काम ! जिस अभिलाषा की पूर्ति के लिए हम आपको हवि प्रदान करते हैं, हमारी वह इच्छा पूर्ण हो । यह हवि आपके लिए समर्पित है, आप इसे स्वीकार करें ॥५ ॥

[५३ - काल सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-** काल । **छन्द-** त्रिष्टुप् , ५ निचृत् पुरस्ताद् बृहती, ६-१० अनुष्टुप् ।]

४९५२. कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१ ॥

काल स्वरूप अश्व विश्वरूपी रथ का वाहक है । वह सात किरणों और सहस्र आँखों वाला है ।वह जरारहित और प्रचुर पराक्रम सम्पन्न है, समस्त लोक उसके चक्र हैं ।उस (अश्व या रथ) पर बुद्धिमान् ही आरोहण करते हैं ॥१

[गतिशीलता अश्व का पर्याय है । काल सबको अपने साथ घसीटता हुआ चलता है । बुद्धिमान् व्यक्ति ही काल-समय पर आरूढ़ होकर चलते हैं । जैसे अश्वारूढ़ व्यक्ति अश्व को नियन्त्रित कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान् लोग अपने समय को सुनियोजित करके उसे सत्प्रयोजनों में नियोजित कर लेते हैं । शेष लोग समय के साथ घिसटते हुए किसी प्रकार अपना समय बिताते हैं ।]

४९५३. सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२ ॥

वह काल सात चक्रों का वाहक है । (उन चक्रों की) सात नाभियाँ हैं तथा वह अक्ष (धुरा) अमृत-अनश्वर है । वह प्रथम देव 'काल' सभी भुवनों को प्रकट करता हुआ सतत गतिशील है ॥२ ॥

[विश्व ब्रह्माण्ड की ७ परिधियाँ कही गयी हैं, काल उन सभी को संचालित किये हुये है । समय विभाजन में ७ दिन मुख्य आधार हैं, सात के बाद वही चक्र पुनः दोहराया जाता है । काल चक्र विभाग में सात ऋतुओं का भी उल्लेख मिलता है ।]

४९५४. पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३ ॥

विश्व ब्रह्माण्डरूप भरा हुआ कुम्भ, काल के ऊपर स्थापित है। संत- ज्ञानीजन उस काल को (दिवस-रात्रि आदि) विभिन्न रूपों में देखते हैं। वह काल इन दृश्यमान प्राणियों के सामने प्रकट होकर उन्हें अपने में समाहित कर लेता है। मनीषीगण उस काल को विकारों से रहित आकाश के समान (निर्लेप) बताते हैं ॥३ ॥

४९५५. स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत्।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४ ॥

वह काल समस्त भुवनों का पोषण करने वाला तथा सभी में श्रेष्ठ रीति से संव्याप्त है। वही भूतकाल में इन (प्राणियों) का पिता और अगले जन्म में इनका पुत्र हो जाता है। इस काल से उत्तम कोई भी तेज नहीं है ॥४ ॥

४९५६. कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५ ॥

काल ने ही इस दिव्यलोक को उत्पन्न किया और इसी ने सभी प्राणियों की आश्रयभूता भूमि को उत्पन्न किया है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी इस अविनाशी काल के आश्रित रहते हैं ॥५ ॥

४९५७. कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः। काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति।

काल ने ही इस सृष्टि का सृजन किया है। काल की प्रेरणा से ही सूर्यदेव इस संसार को प्रकाशित करते हैं। इसी काल के आश्रित समस्त प्राणी हैं। नेत्र भी इसी काल के आश्रित होकर विविध पदार्थों को देखते हैं ॥६ ॥

४९५८काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः।

काल में ही मन, काल में ही प्राण तथा काल में ही सभी नाम समाहित हैं, जो समयानुसार प्रकट होते रहते हैं। काल की अनुकूलता से ही समस्त प्रजाजन आनन्दित होते हैं ॥७ ॥

४९५९. काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥८ ॥

तप:शक्ति, महानता (ज्येष्ठता) तथा ब्रह्मविद्या इसी काल में सन्निहित है। काल ही सभी (स्थावर- जङ्गम विश्व-ब्रह्माण्ड) का ईश्वर, समस्त प्रजा का पालक तथा सबका पिता है ॥८ ॥

४९६०.तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्। कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्।

यह संसार काल द्वारा प्रेरित, उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ तथा उसी के आश्रय में प्रतिष्ठित भी है। काल ही अपनी ब्राह्मी चेतना को विस्तृत करके, परमेष्ठी (प्रजापति) को धारण करता है ॥९ ॥

४९६१. कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥१० ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में काल ने सर्वप्रथम प्रजापति का सृजन किया, तत्पश्चात् प्रजाजनों की रचना की। काल स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न) है। सबके द्रष्टा कश्यप काल से प्रादुर्भूत हुए तथा काल से ही तप:शक्ति उत्पन्न हुई ॥१० ॥

[५४ - काल सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु। **देवता-** काल। **छन्द-** अनुष्टुप्, २ त्रिपदार्षी गायत्री, ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टि।]

४९६२. कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१ ॥

काल से आपः, ज्ञान तप:शक्ति तथा दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं । काल की सामर्थ्य से सूर्य उदित होता है, पुनः उसी (काल) में प्रविष्ट भी हो जाता है ॥१ ॥

४९६३. कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता ॥२ ॥

काल की प्रेरणा से वायुदेव प्रवाहित होते हैं, काल से यह विशाल पृथ्वी गतिमान् हो रही है , विशाल दिव्यलोक भी काल के आश्रय में ही स्थित है ॥२ ॥

४९६४. कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥३ ॥

काल के द्वारा पूर्व समय में भूत और भविष्य को उत्पन्न किया गया है । काल से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ और यजुर्वेद के मन्त्र भी प्रकट हुए हैं ॥३ ॥

४९६५. कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४ ॥

काल ने ही क्षयरहित यज्ञ-भाग को देवत्व संवर्द्धक शक्तियों के निमित्त प्रेरित किया है । काल से ही गन्धर्व और अप्सराओं का प्रादुर्भाव हुआ । समस्त लोक काल में ही प्रतिष्ठित हैं ॥४ ॥

४९६६.कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः । इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः । सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः

अंगिरा और अथर्वा ऋषि अपने उत्पादनकर्त्ता इस काल में ही अधिष्ठित हैं । इहलोक, परलोक और पुण्यलोकों तथा पवित्र मर्यादाओं को जीतकर वह कालदेव ब्रह्म ज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है ॥५ ॥

[५५ - रायस्पोष प्राप्ति सूक्त]

[**ऋषि-** भृगु । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् , २ आस्तार पंक्ति , ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् , ६ निचृत् बृहती ।]

४९६७. रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१ ॥

जैसे प्रत्येक रात्रि में गमन न करने वाले घोड़े को घास प्रदान करते हैं, वैसे हे अग्ने ! हम आपको हवि प्रदान करते हैं ।आप धन, पुष्टि तथा अन्न प्रदान करें, जिससे प्रसन्न होकर आपके समीप रहते हुए कष्ट से मुक्त रहें ॥१ ॥

४९६८. या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप आश्रय प्रदाता हैं । आप अपने वायुरूप बाण से हमें सुखी करें । हे अग्निदेव ! आपके समीप वास करने वाले हम कष्टरहित स्थिति में धन, पुष्टि तथा अभीष्ट अन्नादि से सदैव आनन्दित रहें ॥२ ॥

४९६९. सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३ ॥

गार्हपत्य अग्निदेव प्रत्येक प्रातः-सायं हम सभी को श्रेष्ठ मन वाला बनाते हैं । हे अग्ने ! आप श्रेष्ठ सम्पदाएँ प्रदान करके हमारी वृद्धि करें । आपको हविष्यान्न से प्रदीप्त करते हुए हम शारीरिक परिपुष्टता प्राप्त करें ॥३ ॥

४९७०. प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४ ॥

गार्हपत्य अग्निदेव हमें प्रत्येक प्रातः - सायं श्रेष्ठ मन प्रदान करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ वैभव देते हुए हमारी वृद्धि करें । आपको हविष्यान्न से प्रदीप्त करते हुए हम सौ वर्ष का जीवन पूर्ण करें ॥४ ॥

४९७१. अपश्चादग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥५ ॥

जले हुए अन्न भाग से हम मुक्त रहें ।अन्न के सेवनकर्त्ता अन्नपति रुद्ररूप अग्निदेव को नमस्कार है ।सभा में उपस्थित आप सभी इसकी सुरक्षा करें ।जो सभा में पधारने वाले सभासद् हैं, वे भी हमारी सभा का संरक्षण करें ।

४९७२. त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्य श्नवत् ।
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६ ॥

बहुतों द्वारा आवाहित ऐश्वर्ययुक्त (हे इन्द्राग्ने !) आपके उपासक हम सब अन्न का उपभोग सम्पूर्ण आयु तक कर सकें । जो साधक घोड़े को घास देने के समान ही प्रतिदिन आपके निमित्त बलिवैश्व यज्ञ करते हैं , उन्हें आप जीवन पर्यन्त प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

[५६ - दुःस्वप्ननाशन सूक्त]

[**ऋषि**- यम । **देवता**- दुःस्वप्न । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

स्वप्न व्यापक संदर्भों में प्रयुक्त होने वाला शब्द है । कोशग्रंथों में सोते समय मानसिक रूप से दिखने वाले दृश्यों के अतिरिक्त मानसिक कल्पनाएँ, दर्शन आदि संदर्भ में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है । सत्पुरुष भविष्य के लिए जो श्रेष्ठ वैचारिक ताना-बाना बुनते हैं, उन्हें भी स्वप्न कहा जाता है । ऐसे स्वप्नों को साकार करना, गौरव और सौभाग्य का विषय माना जाता है । विधाता ने भी सृष्टि संरचना का स्वप्न सँजोया था, ऐसा इस सूक्त के ऋषि का मत है । स्वप्न में बड़ी शक्ति है; किन्तु बहुधा वे दुःस्वप्न के रूप में भी प्रकट हो जाते हैं । जिसका निवारण बहुत आवश्यक हो जाता है । उनका उद्भव चित्त की गहराइयों से होता है, अतः उनका निवारण भी गहरे मानसिक संकल्पों के द्वारा ही संभव होता है । इस सूक्त का उपयोग दुःस्वप्नों के निवारणार्थ किए जाने का उल्लेख सूत्रग्रंथों में है-

४९७३. यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१ ॥

(हे दुःस्वप्न !) तुम यमलोक से पृथ्वी पर आए हो, निःसंकोच- निर्भय होकर तुम स्त्रियों और मरणधर्मा मनुष्यों के समीप पहुँच जाते हो । तुम प्राणधारी आत्माओं के हृदयस्थल में दुःस्वप्न का निर्माण कर देते हो और उनके रथ (मनोरथ) पर साथ ही बैठकर जाते हो ॥१ ॥

[स्वप्न यम के लोक से आते हैं । यम अनुशासन के देवता हैं । उनके प्रतिनिधि चित्रगुप्त (विचित्र और गुप्त रूप से) अवचेतन मस्तिष्क-चित्त में स्थित रहते हैं । जब स्थूल मस्तिष्क विश्राम करने लगता है, तभी अवचेतन में समाहित भले-बुरे विचार अपना रूप प्रकट करने लगते हैं । अपने ही कुसंस्कार दुःस्वप्न बनकर मनुष्य के मनोरथों के साथ जुड़ जाते हैं ।]

४९७४. बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२ ॥

हे दुःस्वप्न ! सबके स्रष्टा (स्व-स्व कर्मानुसार) आबद्धकर्ता ने रात्रि के उद्भव से पूर्व एक दिन तुम्हें देखा था । उसी समय से तुम इस जगत् में संव्याप्त हो । वैद्यों से तुम अपने स्वरूप को छिपा लेते हो ॥२ ॥

[दुःस्वप्न कठिन रोग की तरह लोगों को दुखी करते हैं ; किन्तु काय चिकित्सक इस रोग का निदान नहीं कर पाते ।]

४९७५. बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्व रानशानाः ॥३ ॥

तीव्र रूप से गतिशील, महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर स्वप्न असुरों के समीप से देवताओं के निकट पहुँचा। उस स्वप्न को तैंतीस देवों ने सामर्थ्य प्रदान की ॥३ ॥

[दुःस्वप्न आसुरी प्रवृत्तियों में से प्रकट होते हैं तथा मन के साथ जुड़कर शरीरस्थ देवशक्तियों मन, बुद्धि आदि के संयोग से सशक्त होकर प्रभावी होते हैं।]

४९७६. नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४ ॥

इस स्वप्न में जिनका वार्तालाप चलता है, उन्हें न तो पितरगण जानते हैं और न देवगण। वरुणदेव द्वारा उपदिष्ट नेतृत्वकर्त्ता आदित्य इस स्वप्न के अप् तत्त्व (सृष्टि के मूल क्रियाशील तत्त्व) से उत्पन्न त्रित (त्रिगुणात्मक सृष्टि) में स्थापित करते हैं ॥४ ॥

[काया का वरण करने वाले जीवात्मा के अनुशासन में स्व प्रकाशित अन्तःकरण से उत्पन्न त्रित-मन, बुद्धि एवं चित्त में स्वप्न स्थापित होते हैं।]

४९७७. यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५ ॥

जिस स्वप्न के प्रभाव से दुष्ट- दुराचारी भयंकर फल प्राप्त करते हैं और पुण्यात्मा पुण्यकर्मों के प्रभाव से दीर्घायु को भोगते हैं, ऐसे हे स्वप्न ! तुम परम बन्धु (परमात्मा या जीवात्मा) के साथ रहते हुए स्वर्गीय सुखों का आनन्द पाते हो तथा तपाये गये मन से उत्पन्न होते हो ॥५ ॥

[मन में जो भाव पककर अवचेतन तक पहुँच जाते हैं; वे ही स्वप्नों में प्रकट होते हैं। मानसिक संकल्पों के तपने-परिपाक होने से ही स्वप्न उपजते हैं। वे दुष्ट स्वभाव वालों के लिए भयंकर तथा सद्भाव वालों के लिए आनन्दप्रद होते हैं।]

४९७८. विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६ ॥

हे स्वप्न ! तुम्हारे सभी साथी परिजनों को हम जानते हैं, तुम्हारे जो अधिपति हैं, उनसे भी हम परिचित हैं। हमारी यशस्विता (श्रेष्ठ कर्तृत्व) द्वारा दुःस्वप्नों से हमारी रक्षा करो और हमारे विद्वेषियों को हमसे दूर ले जाओ ॥६

[५७ - दुःस्वप्ननाशन सूक्त]

[**ऋषि-** यम। **देवता-** दुःस्वप्न। **छन्द-** अनुष्टुप् , २ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ३ त्र्यवसाना चतुष्पदा त्रिष्टुप्, ४ षट्पदा उष्णिक् बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी, ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वरातिजगती।]

४९७९. यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति। एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥

'जिस प्रकार (चन्द्रमा की) कलाएँ (क्रमशः) बढ़ती-घटती हैं, जैसे (अश्व के) खुरों से (कदमों से क्रमशः) मार्ग तय किया जाता है तथा जिस प्रकार ऋण (क्रमशः) चुकाया जाता है; उसी प्रकार हम दुःस्वप्नजन्य सभी अनिष्टों को अप्रिय शत्रुओं पर फेंकते हैं ॥१ ॥

४९८०. सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः।
समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥२ ॥

जिस प्रकार राजा (युद्ध के लिए) संघबद्ध होते हैं, जैसे ऋणभार (थोड़ा-थोड़ा जुड़ते हुए) इकट्ठा हो जाता है, जैसे कुष्ठ आदि रोग (थोड़ा-थोड़ा करके) बढ़ जाते हैं तथा कलाएँ संयुक्त होकर (पूर्ण चन्द्र का) आकार बनाती हैं, उसी प्रकार दु:स्वप्न बढ़ते हैं । हम दु:स्वप्नों को द्वेष करने वालों की ओर धकेलते हैं ॥२ ॥

४९८१. देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न । स मम यः पापस्तद्
द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३ ॥

हे देवपत्नियों के गर्भ (पुत्र) , यम के हाथ, स्वप्न !आप हमें अपना मंगलप्रद भाग प्रदान करें तथा आपके अनिष्ट भाग को हम शत्रुओं की ओर प्रेरित करते हैं ।हे स्वप्न: !आप काले पक्षी के मुख दर्शन के समान न हों ॥३

४९८२. तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् ।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥४ ॥

हे स्वप्न ! आपके सम्बन्ध में हम भली प्रकार जानते हैं । जिस प्रकार घोड़ा शरीर को झटककर धूलि को झाड़ देता है और काठी पर रखी वस्तु को गिरा देता है, उसी प्रकार गौओं तथा गृह से सम्बन्धित हमारे दु:स्वप्नों के प्रभाव को आप हमसे भिन्न देवत्व के विरोधी दुष्टों पर फेंक दें ॥४ ॥

४९८३. अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि । दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥५ ।।

हे देव ! हमसे भिन्न जो देवों के निन्दक दुष्ट शत्रु हैं, वे दु:स्वप्न जन्य कुप्रभाव को आभूषण के समान धारण करें । दु:स्वप्न से उत्पन्न कुप्रभाव को आप हमसे नौ हाथ तक दूर हटाएँ । दु:स्वप्नजन्य दुष्प्रभाव को हम विद्वेषी शत्रुपक्ष की ओर प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

[५८ - यज्ञ सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** यज्ञ अथवा मन्त्रोक्त । **छन्द-** त्रिष्टुप् , २ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् , ३ चतुष्पदा अतिशक्वरी, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् , ६ जगती ।]

४९८४. घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१ ॥

दैवी शक्तियों के साथ मन लगाकर अविच्छिन्न गति से प्रदान की गई घृत (तेज) की आहुति से संवत्सर की वृद्धि होती है । हमारे प्राण, कान, नाक, तेज और आयु अविच्छिन्न रहें ॥१ ॥

४९८५. उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्य१न्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥२ ॥

प्राण हमें चिरजीवी बनाएँ , हम प्राणों का आवाहन करते हैं । पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सोम, बृहस्पति और विशिष्ट पुष्टिदाता सूर्यदेव ने हमारे लिए तेजस्विता को धारण किया है ॥२ ॥

४९८६. वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥३ ॥

हे द्यावापृथिवी ! आप तेजस्विता संगृहीत करने वाली हैं ।उसे प्राप्त करके हम पृथ्वी पर संचरित करेंगे । यशस्विता के साथ हमें गौओं की प्राप्ति हो ।हम गौओं और कीर्ति को पाकर पृथ्वी पर विचरण योग्य बन सकें ॥

४९८७. व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।

पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ।।४ ।।

(हे मनुष्यो !) आप गोशाला का निर्माण करें, वह निश्चित रूप से आपका पोषण करने में सक्षम है । आप बड़े-बड़े कवचों को सिलकर तैयार करें । अपनी सुरक्षा हेतु लोहे की सुदृढ़ नगरियों को इस प्रकार बनाएँ, जिससे शत्रुपक्ष आक्रमण न कर सके । आपके अन्न, जल आदि रखने के पात्र भी चुएँ नहीं, उन्हें सुदृढ़ बनाएँ ।।४ ।।

४९८८. यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ।।५ ।।

यज्ञ के चक्षु और मुख (अग्नि) विशेष रूप से पोषण करने वाले हैं ।हम वाणी, श्रोत्र तथा मन को संयुक्त करके उन्हें आहुति अर्पित करते हैं । विश्वकर्मा द्वारा विस्तारित इस यज्ञ में श्रेष्ठ विचारों वाले सभी देव पधारें ।।५ ।।

४९८९. ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।

इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ।।६ ।।

जो देवों के ऋत्विज् एवं पूज्य हैं, जिनके निमित्त हविष्यान्न समर्पित करने का विधान है, ऐसे सभी देवगण अपनी शक्तियों के साथ इस यज्ञ में आकर हमारे द्वारा प्रदत्त हवि पाकर परितृप्त हों ।।६ ।।

[५९ - यज्ञ सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** गायत्री, २ -३ त्रिष्टुप् ।]

४९९०. त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ।।१ ।।

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों के बीच व्रतों के संरक्षक हैं और यज्ञों में स्तुति योग्य हैं ।।१ ।।

४९९१. यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ।।२ ।।

हे देवगण ! आपके व्रत- अनुशासन से अनभिज्ञ हम लोग जो भी त्रुटियाँ करें, उन्हें यज्ञीय व्रतों के ज्ञाता अग्निदेव अवश्य पूर्ण करें । सोमपूजक ब्रह्मनिष्ठों के समान ही अग्निदेव उस स्थान पर विराजमान हैं ।।२ ।।

४९९२. आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।

अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ।।३ ।।

हम देवत्व के मार्ग पर गतिमान् हों । हमारा वह कार्य अनुकूलतापूर्वक पूर्ण हो । वे ज्ञानी अग्निदेव निश्चित रूप से होता हैं । वे ऋतुओं और यज्ञों को समर्थ बनाएँ ।।३ ।।

[६० - अङ्ग सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** मन्त्रोक्त, वाक् । **छन्द-** पथ्याबृहती, २ ककुम्मती पुर उष्णिक्]

४९९३. वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।

अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ।।१ ।।

हमारे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में उत्तम दृष्टि, कानों में श्रवण शक्ति, श्वेत रंग से रहित केशों में सौन्दर्य रहे । हमारे दाँत अक्षुण्ण तथा भुजाएँ बलिष्ठ रहें ।।१ ।।

४९९४. ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः। प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥२ ॥

हमारे ऊरुओं (जंघाओं) में ओज, पिंडलियों में गतिशीलता और पैरों में स्थिर रहने की सामर्थ्य विद्यमान रहे । हमारे सभी शारीरिक अंग-अवयव नीरोग रहें तथा आत्मबल गिरे नहीं ॥२ ॥

[६१ - पूर्ण आयु सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** ब्रह्मणस्पति । **छन्द-** विराट् पथ्याबृहती ।]

४९९५.तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय। स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे।

हम शरीर के अंगों, दाँतों की स्वस्थता सहित पूर्ण आयुष्य प्राप्त करें । हे पवमान (अग्निदेव) ! आप सुखपूर्वक हमारे यहाँ प्रतिष्ठित रहें और स्वर्गलोग में हमें सुख से परिपूर्ण रखें ॥१ ॥

[६२ - सर्वप्रिय सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** ब्रह्मणस्पति । **छन्द-** अनुष्टुप्]

४९९६. प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।

हे अग्निदेव ! आप हमें देवताओं एवं राजाओं का प्रिय बनाएँ । शूद्रों, आर्यों आदि सभी दर्शकों का भी प्रिय पात्र बनाएँ ॥१ ॥

[६३- आयुवर्धन सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** ब्रह्मणस्पति । **छन्द-** विराट् उपरिष्टाद् बृहती]

४९९७. उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१ ॥

हे ज्ञान के स्वामी (ब्रह्मणस्पते) ! आप स्वयं उठकर देवशक्तियों को यज्ञीय प्रयोजनों के लिए प्रेरित करें । आप यजमान की आयुष्य, प्राण (जीवनीशक्ति) , प्रजा, पशुधन तथा कीर्ति को भी बढ़ाएँ ॥१ ॥

[६४- दीर्घायु सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** अनुष्टुप्]

४९९८.अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु।

जातवेदा अग्निदेव के लिए हम समिधा लेकर आये हैं । समिधाओं से प्रदीप्त हुए अग्निदेव हमें श्रद्धा और मेधा प्रदान करें ॥१ ॥

४९९९.इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि। तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च।

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! जिस प्रकार हम आपको समिधाओं से प्रवृद्ध करते हैं, उसी प्रकार आप हमें सन्तानरूप प्रजा और धन सम्पदाओं से बढ़ाएँ- सम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

५०००.यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि। सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य।

हे अग्निदेव ! आपके निमित्त हम जो भी काष्ठ लाकर रखते हैं, वे सभी हमारे निमित्त कल्याणकारी हों । हे तरुण अग्निदेव ! आप इन समिधाओं का सेवन करें ॥३ ॥

५००१. एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव। आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय।

हे अग्निदेव ! आपके निमित्त ये समिधाएँ लाई गई हैं, इनसे आप प्रज्वलित हों । आप हम समिधाधानकर्त्ताओं को दीर्घ आयुष्य प्रदान करें । आप हमारे आचार्य को भी अमरता प्रदान करें ॥४ ॥

[६५- सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** जातवेदा, सूर्य । **छन्द-** जगती ।]

५००२. हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽ बिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१ ॥

हरि (दु:खहर्ता) सुपर्ण (सूर्यदेव) अपनी तेजस्विता से आकाश पर आरूढ़ होते हैं । हे जातवेदा सूर्यदेव ! आकाश में आरूढ़ होते समय जो अवरोधक आपको हानि पहुँचाते हैं , उन्हें आप अपने संहारक तेज से विनष्ट करें । निर्भय होकर आप अपने प्रचण्ड पराक्रम से द्युलोक पर आरोहण करें ॥१ ॥

[६६ - असुरक्षयणम् सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** जातवेदा , सूर्य, वज्र । **छन्द-** अतिजगती ।]

५००३. अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

हे जातवेदा ! जो मायावी राक्षस लौहपाश और लौहजाल हाथ में लेकर विचरण करते हैं, उन सभी को हम आपके तेज से नष्ट करते हैं ।आप हजारों नोकों (रश्मियों) वाले वज्र से शत्रुओं का संहार करके हमारी रक्षा करें ॥

[६७ - दीर्घायु सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** सूर्य । **छन्द-** प्राजापत्या गायत्री ।]

५००४. पश्येम शरदः शतम् ॥१ ॥ **५००५. जीवेम शरदः शतम् ॥२ ॥**
५००६. बुध्येम शरदः शतम् ॥३ ॥ **५००७. रोहेम शरदः शतम् ॥४ ॥**
५००८. पूषेम शरदः शतम् ॥५ ॥ **५००९ भवेम शरदः शतम् ॥६ ॥**
५०१०. भूयेम शरदः शतम् ॥७ ॥ **५०११. भूयसीः शरदः शतात् ॥८ ॥**

(हे सूर्यदेव !) हम सौ वर्षों तक देखें । हम सौ वर्ष तक जीवित रहें । हम सौ वर्ष तक ज्ञान- सम्पन्न रहें । हम सौ वर्ष तक निरंतर वृद्धि करते रहें । हम सौ वर्ष तक परिपुष्ट रहें । हम सौ वर्ष तक सन्तान आदि के प्रभाव से भली प्रकार सम्पन्न रहें । सौ वर्ष से भी अधिक समय तक हम जीवित रहें ॥१-८ ॥

[६८ - वेदोक्तकर्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** कर्म । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

५०१२. अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१ ॥

हम व्यापक और अव्यापक (प्राण तत्त्व) के बिल (मर्म या गुह्य आश्रय स्थल) में कुशलतापूर्वक प्रवेश करते हैं । उनके ज्ञान के उद्धरण द्वारा हम कर्मानुष्ठान करते हैं ॥१ ॥

[जो प्राण हमारे शरीरों में संव्याप्त हैं तथा जो व्याप्त नहीं हैं, उनका मर्म समझकर उनके सदुपयोग के ज्ञान के आधार पर कर्म का ताना-बाना बुनना अभीष्ट है ।]

[६९- आपः सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** आप: देव । **छन्द-** आसुरी अनुष्टुप्, २ साम्नी एकावसाना अनुष्टुप्, ३ आसुरी गायत्री, ४ साम्नी उष्णिक् ।]

५०१३. जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१ ॥

(हे देवगण !) आप आयु सम्पन्न हैं । हम भी आयुष्मान् हों, हम पूर्ण आयु (१०० वर्ष) तक जीवित रहें ॥१ ॥

५०१४. उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२ ॥

आप दीर्घ आयु से युक्त हैं, हम भी दीर्घायु सम्पन्न हों, हम सम्पूर्ण आयु पर्यन्त जीवन धारण किये रहें ॥२ ॥

५०१५. संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३ ॥

आप श्रेष्ठ जीवनयापन करने वाले हैं, हम भी श्रेष्ठ जीवनयापन करें और सम्पूर्ण आयु तक जिएँ ॥३ ॥

५०१६. जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४ ॥

हे देवगण ! आप जीवन युक्त हैं, हम भी जीवन सम्पन्न रहें, पूर्ण आयु तक जीवन धारण किये रहें ॥४ ॥

[७० - पूर्णायु सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** इन्द्र, सूर्य । **छन्द-** त्रिपदा गायत्री ।]

५०१७. इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जीवनयुक्त रहें । हे सूर्यदेव ! आप जीवन सम्पन्न रहें । हे देवशक्तियो ! आप भी जीवन्त रहें । हम भी चिरकाल तक जीवन धारण किये रहें ॥१ ॥

[७१-वेदमाता सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** गायत्री । **छन्द-** त्र्यवसाना पञ्चपदा अतिजगती ।]

५०१८. स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥१ ॥

हम साधकों द्वारा स्तुत (पूजित) हुई, अभीष्ट फल प्रदान करने वाली वेदमाता (गायत्री) द्विजों को पवित्रता और प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं । आप हमें दीर्घ जीवन प्राणशक्ति, सुसन्तति, श्रेष्ठ पशु (धन), कीर्ति, धन- वैभव और ब्रह्मतेज प्रदान करके ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करें ॥१ ॥

[७२ - परमात्मा सूक्त]

[**ऋषि-** भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । **देवता-** परमात्मा, समस्त देवगण । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५०१९. यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् । कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१ ॥

जिस कोश से हमने वेद को निकाला है, उसी स्थान में उसे (वेद को) पुन: प्रतिष्ठित करते हैं । ज्ञान की शक्ति (वीर्य) से जो अभीष्ट कर्म किया गया है, देव शक्तियाँ उस तप के द्वारा हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ विंशं काण्डम् ॥

[सूक्त-१]

[**ऋषि-** १-३ क्रमशः विश्वामित्र, गौतम, विरूप । **देवता-** १-३ क्रमशः इन्द्र, मरुद्गण, अग्नि । **छन्द-** गायत्री ।]

५०२०. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१ ॥

हे परम बलशाली इन्द्रदेव ! अभिषुत सोम का पान करने के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । आप मधुर सोम का पान करें ॥१ ॥

५०२१. मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥२ ॥

दिव्यलोक के वासी, तेजस्विता- सम्पन्न हे मरुद्गण ! आप जिन यजमानों के यज्ञस्थल (घर) पर सोमपान करते हैं, वे निश्चित ही चिरकाल तक आपके द्वारा संरक्षित रहते हैं ॥२ ॥

५०२२. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥३ ॥

बैलों द्वारा (कृषिकार्य से) उत्पन्न अन्न, गौओं द्वारा उत्पन्न दुग्ध, घृतादि रस तथा सोमरस को हवि के रूप में ग्रहण करने वाले अग्निदेव का महान् स्तोत्रों के द्वारा हम पूजन करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-२]

[**ऋषि-** गृत्समद या मेधातिथि । **देवता-** मरुद्गण, २ अग्नि, ३ इन्द्र, ४ द्रविणोदा । **छन्द-** एकावसाना विराट् गायत्री, ३ एकावसाना आर्ची उष्णिक्, ४ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ।]

५०२३. मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥१ ॥

सोमरस को पवित्र करने वाले ऋत्विक् (पोता) द्वारा ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का वीर मरुद्गण पान करें ॥१ ॥

५०२४. अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥२ ॥

यज्ञाग्नि को प्रज्वलित रखने वाले ऋत्विक् (आग्नीध्र) द्वारा ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का अग्निदेव पान करें ॥२ ॥

५०२५. इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥३ ॥

यज्ञ का संचालन करने वाले ऋत्विक् (ब्राह्मणाच्छंसी) द्वारा ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का यज्ञ के ब्रह्मा (संगठक) इन्द्रदेव पान करें ॥३ ॥

५०२६. देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥४ ॥

सोमरस को पवित्र करने वाले ऋत्विक् (पोता) द्वारा पान ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का धनप्रदाता द्रविणोदा देवता करें ॥४ ॥

[सूक्त-३]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०२७. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । यह सोमरस आपको समर्पित है, इसका पान करके इस श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों ॥१ ॥

५०२८. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! मन्त्र सुनते ही (संकेत मात्र से) रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से, आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥२ ॥

५०२९. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोम- यज्ञकर्त्ता साधक, सोमपान के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-४]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०३०. आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥१ ॥

श्रेष्ठ मुकुट धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमयज्ञ करने वाले हम याजकगण, अपनी श्रेष्ठ प्रार्थनाओं के द्वारा आपको अपने निकट बुलाते हैं । अतः आप यहाँ आकर सोमरस का पान करें । ।१ ॥

५०३१. आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके उदर को सोमरस से पूर्ण करते हैं । वह रस आपके सम्पूर्ण शरीर में संचरित हो और आप इस मधुर सोमरस का जिह्वा द्वारा स्वादपूर्वक सेवन करें ॥२ ॥

५०३२. स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! मधुयुक्त सोम आपको सुस्वादिष्ट लगे । आपके शरीर, हृदय के लिए यह आनन्द उत्पन्न करे ॥३॥

[सूक्त- ५]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०३३. अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥१ ॥

हे दूरदर्शी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार श्वेत वस्त्र धारण करने वाली स्त्री सात्त्विकता की अभिव्यक्ति करती है, उसी प्रकार गोदुग्ध में मिला हुआ सोमरस तेजोयुक्त होकर आपको प्राप्त हो ॥१ ॥

५०३४. तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२ ॥

सुन्दर ग्रीवा वाले, विशाल उदर वाले तथा सुदृढ़ भुजाओं वाले इन्द्रदेव, सोम रसपान से प्राप्त उत्साह द्वारा शत्रुओं का वध करते हैं ॥२ ॥

५०३५. इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥३ ॥

हे जगत् पर शासन करने वाले ओजस्वी इन्द्रदेव ! आप अग्रणी होकर गमन करें । हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने वाले हैं ॥३ ॥

५०३६. दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिसके द्वारा सोमयाग करने वाले याजकों को ऐश्वर्य अथवा आवास प्रदान करते हैं, आपका वह अंकुश (आयुध) अत्यधिक विशाल है ॥४ ॥

[अंकुश या आयुध के द्वारा धन या आवास प्रदान करना आलंकारिक उक्ति है । अंकुश , संयम- अनुशासन का प्रतीक है । बिना अंकुश के वृत्तियाँ असंयत होकर अपना वैभव खो देती हैं । इन्द्र दैवी सम्पदा देते हैं , जो बिना संयम के धारण नहीं की जा सकती ।]

५०३७. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! वेदिका पर सुशोभित, आसन पर स्थापित, शोधित सोमरस आपके लिए प्रस्तुत है । आप शीघ्र आकर इसका पान करें ॥५ ॥

५०३८. शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥६ ॥

शक्तियुक्त गो (किरणों) वाले शत्रुनाशक, सामर्थ्यवान् , तेजस्वी हे पूज्य इन्द्रदेव ! आपके आनन्दवर्द्धन हेतु सोमरस तैयार किया गया है, (उसके पान हेतु) हम आपका आवाहन करते हैं । ।६ ॥

५०३९. यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्य स्मिन् दध्र आ मनः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका जो न गिरने वाला, न गिरने देने वाला शृंग के समान बल है, उसके लिए हम कुण्डपायी यज्ञ में अपना मन स्थिर करते हैं ॥७ ॥

[कुण्डपायी एक सोमयज्ञ था, जिसमें कुण्ड या बड़े पात्र से सोमपान करने का विधान था अथवा कुण्ड में ही सोमरस की आहुति प्रदान करने से यह कुण्डपायी यज्ञ कहा जाता था ।]

[सूक्त- ६]

[**ऋषि-** विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०४०. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! अभिषुत सोम का पान करने के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । आप मधुर सोम का पान करें ॥१ ॥

५०४१. इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२ ॥

हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव ! आप कर्म (या यज्ञ) के ज्ञाता हैं । इस अभिषुत सोम की कामना करें , इसका पान करें और बलवान् बनें ॥२ ॥

५०४२. इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥३ ॥

हे स्तुत्य और प्रजापालक इन्द्रदेव ! आप समस्त पूजनीय देवों के साथ हमारे इस हव्यादि द्रव्यों से पूर्ण यज्ञ को संवर्द्धित करें ॥३ ॥

५०४३. इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४ ॥

हे सत्यव्रतियों के अधिपति इन्द्रदेव ! यह दीप्तियुक्त, आह्लादक और अभिषुत सोम आपके लिए प्रेषित है ।

५०४४. दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह अभिषुत सोम आपके द्वारा वरण करने योग्य है; क्योंकि यह दीप्तिमान् और आपके पास स्वर्ग में रहने योग्य है । आप इसे अपने उदर में धारण करें ॥५ ॥

५०४५. गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥६ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा शोधित सोमरस का आप पान करें; क्योंकि इस आनन्ददायी सोमरस की धाराओं से आप सिंचित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से ही हमें यश मिलता है ॥६ ॥

५०४६. अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७ ॥

देवपूजक यजमान के द्वारा समर्पित दीप्तिमान् और अक्षय सोमादियुक्त हवियाँ इन्द्रदेव की ओर जाती हैं । इस सोम को पीकर इन्द्रदेव उत्फुल्ल होते हैं ॥७ ॥

५०४७. अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८ ॥

हे वृत्रहन्ता ! आप समीपस्थ स्थान से हमारे पास आएँ । दूरस्थ स्थान से भी हमारे पास आएँ । हमारे द्वारा समर्पित इन स्तुतियों को ग्रहण करें ॥८ ॥

४०४८. यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दूरस्थ देश से, समीपस्थ देश से तथा मध्य के प्रदेशों से बुलाये जाते हैं, उन स्थानों से आप हमारे यज्ञ में आएँ ॥९ ॥

[सूक्त- ७]

[**ऋषि-** सुकक्ष, ४ विश्वामित्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५०४९. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१ ॥

जगद् विख्यात, ऐश्वर्य-सम्पन्न, शक्तिशाली, मानव मात्र के हितैषी और (दुष्टों पर) अस्त्रों से प्रहार करने वाले (इन्द्रदेव ही सूर्य रूप में) उदित होते हैं ॥१ ॥

५०५०. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वो जसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२ ॥

अपने बाहुबल से शत्रु के निन्यानबे निवास केन्द्रों को विध्वंस करने वाले और वृत्रनामक दुष्ट का नाश करने वाले (इन्द्रदेव ने) अहि का भी वध किया ॥२ ॥

५०५१. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३ ॥

हमारे लिए कल्याणकारी, मित्ररूप इन्द्र, गौओं की असंख्य दुग्ध-धाराओं के समान हमें प्रचुर धन प्रदान करें ।

५०५२. इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥४ ॥

हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव ! आप कर्म (या यज्ञ) के ज्ञाता हैं । इस अभिषुत सोम की कामना करें, इसका पान करें और बलवान् बनें ॥४ ॥

[सूक्त- ८]

[**ऋषि-** १-३ क्रमशः भरद्वाज, कुत्स, विश्वामित्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५०५३. एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तुति सुनकर हमारी वृद्धि करें । आपने जैसे पहले सोमपान किया था, वैसे ही सोमरस का पान करें । यह रस आपको पुष्ट करे । आप सूर्यदेव को प्रकट करके हमें अन्न प्रदान करें । पणियों द्वारा चुरायी गयी गौओं (किरणों) को बाहर निकालें एवं शत्रुओं का विनाश करें ॥१ ॥

५०५४. अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥२ ॥

हे सोमाभिलाषी इन्द्रदेव ! आप हमारे सम्मुख पधारें । यह अभिषुत सोम आपके निमित्त है । इसे अपने उदर में स्थापित करें तथा आवाहन किये जाने पर हमारी प्रार्थनाओं को पिता के समान ही सुनने की कृपा करें ॥२ ॥

५०५५. आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३ ॥

यह सोमरस से परिपूर्ण कलश इन्द्रदेव के पीने के लिए है । जैसे सिंचनकर्त्ता क्षेत्र को सिंचित करते हैं, वैसे ही हम इन्द्रदेव को सोमरस से सींचते हैं । प्रिय सोम इन्द्रदेव के मन को प्रमुदित करने के लिए प्रदक्षिणा गति करता हुआ उनके समीप पहुँचे ॥३ ॥

[सूक्त- ९]

[**ऋषि-** नोधा, ३-४ मेध्यातिथि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् , ३-४ प्रगाथ (बृहती + सतोबृहती) ।]

५०५६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी सोमरस से तृप्त होने वाले इन्द्रदेव की हम उसी प्रकार स्तुति करते हैं, जैसे गोशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए गौएँ उल्लसित होकर रँभाती हैं ॥१ ॥

५०५७. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२ ॥

देवलोकवासी, उत्तम दानदाता, सामर्थ्यवान् , बहुत प्रकार के पोषण देने वाले पर्वत के समान अन्न और गौओं से सम्पन्न इन्द्रदेव से हम सैकड़ों-सहस्रों (सम्पत्तियाँ) माँगते हैं ॥२ ॥

५०५८. तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिस शक्ति से यतियों तथा भृगु ऋषि को धन प्रदान किया था तथा जिस ज्ञान से ज्ञानियों (प्रस्कण्व) की रक्षा की थी, उस ज्ञान तथा बल की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥३ ॥

५०५९. येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस शक्ति से आपने समुद्र तथा विशाल नदियों का निर्माण किया है; वह शक्ति हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाली है । आपकी जिस महिमा का अनुगमन द्यावा - पृथिवी करते हैं, उसका कोई पारावार नहीं ॥४ ॥

[सूक्त-१०]

[**ऋषि-** मेध्यातिथि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ (बृहती + सतोबहती) ।]

५०६०. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१ ॥

(जीवन-संग्राम में) वास्तविक विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्य प्राप्ति के माध्यम, सतत रक्षा करने वाले मधुर स्तोत्र, युद्ध के उपकरण रथ के समान महत्त्वपूर्ण कहे जाते हैं ॥१ ॥

५०६१. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२ ॥

कण्व गोत्रोत्पन्न ऋषियों की भाँति स्तुति करते हुए भृगुगोत्रोत्पन्न ऋषियों ने इन्द्रदेव को चारों ओर से उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार सूर्य - रश्मियाँ इस संसार में चारों ओर फैल जाती हैं । प्रियमेध ने ऐसे महान् इन्द्रदेव की स्तुति करते हुए उनका पूजन किया ॥२ ॥

[सूक्त-११]

[**ऋषि**- विश्वामित्र । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

५०६२. इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥१ ॥

शत्रुओं के गढ़ को ध्वस्त करने वाले महिमावान्, धनवान् इन्द्रदेव ने शत्रुओं को मारते हुए अपनी तेजस्विता से उन्हें भस्म कर दिया । स्तुतियों से प्रेरित और शरीर से वर्द्धित होते हुए विविध अस्त्रधारक इन्द्रदेव ने द्यावा-पृथिवी दोनों को पूर्ण किया ॥१ ॥

५०६३. मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूजनीय और बलशाली हैं । आपको विभूषित करते हुए हम अमरत्व प्राप्ति के लिए प्रेरक स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । आप हम मनुष्यों और देवों के अग्रगामी हों ॥२ ॥

५०६४. इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥३ ॥

प्रसिद्ध नीतिज्ञ इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को रोका, शत्रुवध की इच्छा करके मायावी असुरों को मारा तथा वन में छिपे स्कन्धविहीन असुर को नष्ट करके अन्धकार में छिपायी गयी गौओं (किरणों) को प्रकट किया ॥३ ॥

५०६५. इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४ ॥

स्वर्ग-सुख-प्रेरक इन्द्रदेव ने दिवस को प्रकट करके युद्धाभिलाषी मरुतों के साथ शत्रु सेना का पराभव कर उन्हें जीता । तदनंतर मनुष्यों के लिए दिन के प्रज्ञापक (बोधक) सूर्यदेव को प्रकाशित किया तथा महान् युद्धों में विजय प्राप्ति के निमित्त दिव्य ज्योति (तेजस्विता) को प्राप्त किया ॥ ४ ॥

५०६६. इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५ ॥

विपुल सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ने नेतृत्वकर्त्ता की भाँति अवरोधक शत्रु- सेना में प्रविष्ट होकर उसे छिन्न -भिन्न किया, स्तुतिकर्त्ताओं के लिए उषा को चैतन्य किया और उनके शुभ्रवर्ण को और भी दीप्तिमान् किया ॥५ ॥

५०६७. महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६ ॥

स्तोतागण महान् पराक्रमी इन्द्रदेव के श्रेष्ठ कर्मों का गुणगान करते हैं । वे इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्यों से शत्रुओं के पराभवकर्त्ता हैं । उन्होंने अपनी माया द्वारा बलवान् दस्युओं को पूरी तरह से नष्ट किया ॥६ ॥

५०६८. युधेन्द्रो मह्नावरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७ ॥

सज्जनों के अधिपति और उनके मनोरथों की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ने अपनी महत्ता से युद्धों में देवों की श्रेष्ठता प्रमाणित की । बुद्धिमान् स्तोतागण यजमान के घर में इन्द्रदेव के उन श्रेष्ठ कर्मों की प्रशंसा करते हैं ॥७ ॥

५०६९. सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८ ॥

स्तोतागण शत्रु-विजेता, वरणीय, बलप्रदाता, स्वर्ग-सुख और दीप्तिमान् जल के अधिपति इन्द्रदेव की उत्तम स्तुतियों से वन्दना करते हैं, उन्होंने इस द्युलोक और पृथ्वी लोक को अपने ऐश्वर्यों के बल पर धारण किया ॥८ ॥

५०७०. ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुतभोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९ ॥

इन्द्रदेव ने अत्यों (लाँघ जाने वाले अश्वों या शक्ति प्रवाहों) का , सूर्य एवं पर्याप्त भोजन प्रदान करने वाली गौओं का, स्वर्णिम अलंकारों एवं भोग्य पदार्थों का दान किया तथा दस्युओं को मारकर आर्यों की रक्षा की ।

५०७१. इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥१० ॥

इन्द्र ने प्राणियों के कल्याण के लिए ओषधियाँ , दिन (प्रकाश) का अनुदान तथा वनस्पति और अन्तरिक्ष प्रदान किया ।वलासुर का मर्दन किया, प्रतिवादियों को दूर किया और युद्धाभिमुख हुए शत्रुओं का दमन किया है।

५०७२. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव पवित्रकर्त्ता, मनुष्यों के नियन्ता, स्तुतियों के श्रवणकर्त्ता , उग्र, युद्धों में शत्रु- विनाशकर्त्ता, धन-विजेता और ऐश्वर्यवान् हैं ॥११ ॥

[सूक्त- १२]

[**ऋषि-** वसिष्ठ, ७ अत्रि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५०७३. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१ ॥

हे वसिष्ठ ! (साधना के बल पर विशिष्ट पद प्राप्त ऋषि) अन्न (पोषक आहार) प्राप्ति की कामना से किये जाने वाले यज्ञ में अपनी शक्ति से सम्पूर्ण भुवनों को विस्तृत करने वाले यश के संवर्द्धक, उपासकों की प्रार्थना सुनने वाले इन्द्रदेव की महिमा का वर्णन करें । उनके लिए उत्तम स्तोत्रों का पाठ करें ॥१ ॥

५०७४. अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२ ॥

उस समय शोक को रोकने वाली (ओषधियाँ या शक्तियाँ) बढ़ती हैं, जिस समय देवों की स्तुति की जाती है । हे इन्द्र ! मनुष्यों में अपनी आयु को जानने वाला कोई नहीं है । आप हमें सारे पापों से पार ले जाएँ ॥२ ॥

५०७५. युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३ ॥

गौ (किरणों अथवा इन्द्रियों) के आविष्कर्ता इन्द्रदेव के रथ में हरितवर्ण के दोनों अश्वों को स्तोत्रों द्वारा हम (वसिष्ठ) नियोजित करते हैं । स्तोत्र उन इन्द्रदेव की सेवा करते हैं, जो हमारे उपास्य हैं । ये इन्द्रदेव अपनी महिमा से द्यावा-पृथिवी को व्याप्त किए हुए हैं । इन्द्रदेव ने अनुपम ढंग से वृत्र का वध किया ॥३ ॥

५०७६. आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से अप्रसूता (बन्ध्या) गौ की पुष्टि की तरह जल प्रवाह बढ़ते जाएँ। आपके स्तोतागण यज्ञ करते रहें । अश्व वायु के समान हमारे पास (आपको लेकर) आएँ । आप स्तोतागणों को बुद्धिबल और अन्न प्रदान करते हैं ॥४ ॥

५०७७. ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! देवों में एकमात्र आप ही हम मानवों पर बड़ी दया करते हैं । आप इस यज्ञ में सोमरस पीकर आनन्दित हों । शूरवीर हे देव ! प्रचुर सम्पदा देने वाले आपको साधकों की स्तुतियाँ आनन्दित करें ॥५ ॥

५०७८. एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ॥

वसिष्ठ गोत्रीय बलवान्, वज्रधारी इन्द्रदेव की स्तोत्रों द्वारा पूजा करते हैं । वे स्तुति द्वारा प्रसन्न होकर स्तोताओं को वीरों और गौओं सहित धन प्रदान करते हैं । वे कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

५०७९. ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥७ ॥

इन्द्रदेव सोम-धारणकर्त्ता, वज्रधारी, अभीष्टवर्षक, शत्रु-संहारक, बलवान्, शासक , वृत्रहन्ता और सोमपान-कर्त्ता हैं ।वे अपने अश्वों को रथ से युक्त करके हमारे समीप आएँ और माध्यन्दिन सवन में सोमपान कर हर्षित हों।

[सूक्त- १३]

[**ऋषि-** १-४ क्रमशः वामदेव, गोतम, कुत्स, विश्वामित्र । **देवता-** १ इन्द्राबृहस्पती, २ मरुद्गण, ३-४ अग्नि । **छन्द-** जगती, ४ त्रिष्टुप् ।]

५०८०. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१ ॥

हे बृहस्पतिदेव !आप तथा इन्द्रदेव इस यज्ञ में सोमपान से हर्षित होकर, याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करें । सर्वत्र विद्यमान रहने वाला सोम आप दोनों के अन्दर प्रवेश करे ।आप हमें पराक्रमी सन्तान एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ।

५०८१. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२ ॥

हे मरुद्गणो ! वेगवान् अश्व आपको इस यज्ञ स्थल पर ले आएँ । आप शीघ्रतापूर्वक दोनों हाथों में धन को धारण कर इधर आएँ । आपके निमित्त यहाँ बड़ा स्थान विनिर्मित किया गया है । यहाँ कुश के आसनों पर अधिष्ठित होकर, मधुर हविरूप अन्न का सेवन कर हर्षित हों ॥२ ॥

५०८२. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३ ॥

पूजनीय जातवेदा (अग्नि) को यज्ञ में प्रकट करने के लिए, स्तुतियों को विचारपूर्वक रथ की तरह प्रयुक्त करते हैं । इस यज्ञाग्नि के सान्निध्य से हमारी बुद्धि कल्याणकारी बनती है । हे अग्निदेव ! हम आपकी मित्रता से सन्तापरहित रहें ॥३ ॥

[एक जैसी आकृति के मनुष्यों के संस्कार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं । इसी प्रकार अग्नि की ज्वालाएँ एक सी दिखने पर भी उनके ताप और संस्कारों में भिन्नता पाई जाती है । यज्ञीय संस्कार वाली अग्नि को प्रकट करने में श्रेष्ठ मनोभावों - युक्त आवाहन की आवश्यकता होती है । उस मनोयोगयुक्त आवाहन को ही मंत्र कहा जाता है । इसीलिए मन्त्रों को यज्ञाग्नि का रथ कहा गया है । गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि हे मनुष्यो ! तुम यज्ञ को बढ़ाना, यज्ञ तुम्हे बढ़ायेंगे । भावयुक्त विचार प्रवाह संस्कारित यज्ञाग्नि को प्रकट करते हैं और यज्ञाग्नि बुद्धि को संस्कारित करती है । इस प्रकार संस्कारयुक्त प्रक्रिया का अविरल चक्र चल पड़ता है ।]

५०८३. ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥४ ॥

हे अग्ने ! आप उन सभी देवों के साथ एक ही रथ पर या विविध रथों से हमारे पास आएँ । आपके अश्व वहन करने में समर्थ हैं, तैंतीस देवों को उनकी पत्नियों सहित सोमपान के लिए लाएँ और इससे उन्हें प्रमुदित करें ।

[सूक्त- १४]

[**ऋषि-** सौभरि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ (विषमा ककुप् + समासतोबृहती) ।]

५०८४. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥१ ॥

हे अद्वितीय इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सांसारिक गुण-सम्पन्न, शक्तिशाली मनुष्यों को लोग बुलाते हैं, उसी प्रकार अपनी रक्षा की कामना से विशिष्ट सोमरस द्वारा तृप्त करते हुए , हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५०८५. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२ ॥

हे शत्रुसंहारक देवेन्द्र ! कर्मशील रहते हुए हम अपनी सहायता के लिए तरुण और शूरवीर रूप में विद्यमान आपका ही आश्रय लेते हैं । मित्रवत् सहायता के लिए हम आपका स्मरण करते हैं ॥२ ॥

५०८६. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥३ ॥

हे मित्रो ! पूर्वकाल से ही जो, धन - वैभव प्रदान करने वाले हैं, उन इन्द्रदेव की हम आपके कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

५०८७. हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४ ॥

जो साधक, हरिसंज्ञक अश्वों वाले, भद्रजनों का पालन करने वाले तथा रिपुओं को परास्त करने वाले इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ; उन्हें इन्द्रदेव सैकड़ों गौओं तथा अश्वों से भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त- १५]

[ऋषि- गोतम । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५०८८. प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१ ॥

उदार दानी, महान् ऐश्वर्यशाली, सत्यस्वरूप, पराक्रमी इन्द्रदेव की हम बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं । नीचे की ओर बहने वाले दुर्धर्ष जल-प्रवाहों के समान, विश्व के प्राणियों के लिए प्रवाहित, इनके शक्ति अनुदान प्रसिद्ध हैं ॥१ ॥

५०८९. अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपका स्वर्ण सदृश दीप्तिमान् मारक वज्र मेघों को विदीर्ण करने में तत्पर हुआ, तब हे इन्द्रदेव ! सारा जगत् आपके लिए यज्ञ-कर्मों में संलग्न हुआ । जल के नीचे की ओर प्रवाहित होने के समान याजकों के द्वारा समर्पित सोम आपकी ओर प्रवाहित हुआ ॥२ ॥

५०९०. अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३ ॥

हे दीप्तिमती उषा देवि ! शत्रुओं के प्रति विकराल और प्रशंसनीय उन इन्द्रदेव के लिए नमस्कार के साथ यज्ञ सम्पादन करें, जिनका धाम (स्थान) अन्नादि दान के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है; जिनकी सामर्थ्य और कीर्ति , अश्व के सदृश सर्वत्र संचरित होती है ॥३ ॥

५०९१. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥४ ॥

हे सम्पत्तिवान् एवं बहु प्रशंसित इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में कार्य करते हुए , निष्ठापूर्वक रहते हुए , हम आपकी स्तुति करते हैं । सभी पदार्थों को स्वीकार करने वाली पृथ्वी के समान आप भी हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें । आपके अतिरिक्त कोई अन्य इस योग्य नहीं है ॥४ ॥

५०९२. भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! स्तुति करने वाले इन साधकों की कामनाएँ पूर्ण करें । आपका पराक्रम महान् है । यह महान् द्युलोक भी आपके बल पर ही स्थित है और यह पृथ्वी भी आपके बल के आगे झुकती है ॥५ ॥

५०९३. त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने महान् बलशाली मेघों को अपने वज्र से खण्ड-खण्ड किया और रुके जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया। केवल आप ही सब संघर्षक शक्तियों को धारण करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त- १६]

[ऋषि- अयास्य। देवता- बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप्।]

इस सूक्त में बृहस्पतिदेव द्वारा किये गये इन्द्र के समतुल्य पराक्रम का वर्णन है। सूक्त के द्रष्टा ऋषि 'अयास्य' हैं, जिसका अर्थ होता है 'मुख से प्रकट प्राण-प्रवाह' अर्थात् ज्ञानयुक्त वाणी को प्रकट करने वाली वाक्। देवता 'बृहस्पति' हैं, जिसका भाव होता है 'बृहद् ज्ञान या वाक् के पालक या रक्षक'। इन्द्र जिस प्रकार शक्ति - कणों के संगठक कहे गये हैं, वैसे ही बृहस्पति 'ज्ञान-विचार कणों' के संगठक- परिपाक करने वाले माने गये हैं। 'इन्द्र' पदार्थ से उत्पन्न किरणों (गौओं) को स्थूल अवरोधों (पर्वतों) को तोड़कर मुक्त करते हैं। बृहस्पति चेतना से उत्पन्न ज्ञान की किरणों (गौओं) को ज्ञान के अवरोधक अज्ञान रूप पर्वतों को तोड़कर बाहर निकालते हैं। इन्द्र का वज्र - प्रहार वृत्र (अवरोधक-आवरण) को तोड़ता है, तो बृहस्पति का प्रहार अवरोधक वृत्ति रूपी वृत्र को नष्ट करता है। जड़ता का जो बल पदार्थ कणों को संयुक्त होने से रोकता है, उस बल (असुर) को इन्द्र नष्ट करते हैं तथा वैचारिक जड़ता का जो बल ज्ञान को प्रकट होने से रोकता है, उसे बृहस्पति नष्ट करते हैं। इस प्रकार इन्द्र और बृहस्पति के पराक्रम समान स्तर के दिखाई देते हैं, उन्हीं का इस सूक्त में आलंकारिक वर्णन है-

५०९४. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन् ॥१ ॥

पानी के समीप पक्षी (जल क्रीड़ा के समय) तथा रक्षक समुदाय जिस प्रकार निरन्तर शब्द करते हैं। जैसे मेघों का गर्जन बार- बार होता है, जैसे पर्वतों से गिरने वाले झरने तथा मेघों से गिरने वाली जल - धाराएँ शब्द करती हैं, उसी प्रकार ऋत्विग्गण बृहस्पतिदेव की निरन्तर स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५०९५. सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२ ॥

अंगिरस् (बृहस्पति) ने गुप्त स्थान में रहने वाली गौओं (वाणियों या किरणों) को प्रकाशित किया। वे देव भग (ऐश्वर्य) की तरह अर्यमा (आदित्य या सृजेता) को लाकर प्रजाजनों में मित्र की तरह रहने वाले दम्पत्ती (नर-मादा) को सुसज्जित करते हैं। हे बृहस्पते ! आप हमें युद्ध के अश्वों की तरह शक्तिसम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

५०९६. साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३ ॥

कल्याणकारी दूध देने वाली, निरन्तर गतिशील, काम्य स्पृहायुक्त, श्रेष्ठ वर्णयुक्त, निन्दारहित, रूपवती गौओं को बृहस्पतिदेव उसी प्रकार पर्वतों (गुप्त स्थानों) से शीघ्रतापूर्वक बाहर निकालें, जिस प्रकार कृषक संगृहीत धान्य से जौ को बाहर निकाल कर बोते हैं ॥३ ॥

[जौ आदि धान्य गुप्त स्थानों में संगृहीत-सुरक्षित रहता है, बोने के लिए उसे निकाला जाता है, उसी प्रकार गुप्त सूक्ष्म प्रवाहों को सृष्टि के पोषण के लिए, बढ़ाने तथा प्रयुक्त करने के लिए प्रकट किया जाता है। जो लोग उन्हें सृजन प्रयोगों के लिए नहीं, सिद्धि - चमत्कार जैसे कौतुकों के लिए प्रयुक्त करना चाहते हैं, उनके लिए वे प्रवाह प्रकट या फलित नहीं होते।]

५०९७. आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४ ॥

जैसे आकाश में उल्काएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार पूज्य बृहस्पतिदेव ऋत (सत्य या यज्ञ) के योनि (उद्‌भव स्थल) में मधुर रसों को गिराते हैं । उन्होंने मेघों से गौओं (किरणों) को मुक्त किया तथा पृथ्वी की त्वचा को इस प्रकार भेदा, जैसे वर्षा की बूँदें भेदती हैं ॥४ ॥

[वर्षा की बूँदें पृथ्वी को भेदती हैं; किन्तु इससे भूमि की शक्ति बढ़ती है । इसी प्रकार बृहस्पतिदेव दिव्य - प्रवाहों को पृथ्वी तल में या मनोभूमियों में समाहित करते हैं ।]

५०९८. अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५ ॥

जैसे वायु प्रवाह जल की पीठ पर स्थित शैवाल (काई) को दूर हटाते हैं, मेघों को दूर हटाते हैं, वैसे बृहस्पति-देव ने विचारपूर्वक वलासुर (अज्ञान) के आवरण को हटाकर गौओं (ज्ञानयुक्त वाणियों) को बाहर निकाला ॥५ ॥

५०९९. यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६ ॥

बृहस्पतिदेव के अग्नितुल्य, प्रतप्त और उज्ज्वल आयुधों ने, जिस समय 'वल' के अस्त्रों को छिन्न-भिन्न किया, उसी प्रकार उन्होंने उन गौओं (दिव्य वाणियों) को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया । जैसे दाँतों द्वारा चबाये गये अन्न को जीभ प्राप्त करती है, वैसे ही पणियों का वध करके बृहस्पतिदेव ने गौओंको प्राप्त किया ॥६ ॥

५१००. बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७ ॥

गुफा में छिपाकर रखी गई गौओं के रँभाने की आवाज को सुनकर बृहस्पतिदेव को गौओं की उपस्थिति का आभास हुआ । जिस प्रकार अण्डों को फोड़कर पक्षियों के बच्चे बाहर आते हैं, वैसे ही बृहस्पतिदेव पर्वत (मेघों-अवरोधों) को तोड़कर गौओं (किरणों) को बाहर निकाल लाए ॥७ ॥

[माँ के हृदय की गर्मी से जब अण्डों के अन्दर बच्चे अपना ठोस आकार प्राप्त कर लेते हैं, तब वे संकीर्ण घेरे को तोड़कर बाहर निकल आते हैं । इसी प्रकार देवगुरु बृहस्पति के अनुशासन में जब देवत्व परिपक्व हो जाता है, तो वह संकीर्ण स्वार्थपरता का घेरा तोड़कर प्रकट हो जाता है ।]

५१०१. अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८ ॥

बृहस्पतिदेव ने पर्वतीय गुफा में बँधी हुई सुन्दर गौओं को उसी दयनीय अवस्था में देखा, जिस प्रकार जल की अल्प मात्रा में मछलियाँ व्यथित होती हैं , जैसे वृक्ष से सोमपात्र के निर्माण हेतु काष्ठ निकाला जाता है ; वैसे ही बृहस्पतिदेव ने विभिन्न प्रकार के बन्धनों को तोड़कर गौओं को मुक्त किया ॥८ ॥

[मनुष्य में दिव्य ज्ञान के बीज स्वभावतः होते हैं । वे जब जीवन्त होने लगते हैं, तो संकीर्णता की मनोभूमि में अल्पजल में मीन की तरह कष्ट अनुभव करते हैं । गुरु रूप में बृहस्पतिदेव मनुष्य की देव प्रवृत्तियों - गौओं को बन्धन मुक्त करते हैं ।]

५१०२. सोषामविन्दत् स स्व१: सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९ ॥

बृहस्पतिदेव ने गौओं की मुक्ति के लिए उषा को प्राप्त किया । उन्होंने सूर्य और अग्नि के माध्यम से अन्धकार को विनष्ट किया । जैसे अस्थि को भेदकर मज्जा प्राप्त की जाती है, वैसे ही वल (असुर) को भेदकर (बृहस्पतिदेव ने) गौओं (किरणों) को बाहर निकाला ॥९ ॥

५१०३. हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१० ॥

जिस प्रकार हिमपात पद्मपत्रों का हरण (नाश) करता है, उसी प्रकार गौओं का वलासुर द्वारा अपहरण किया गया । बृहस्पतिदेव के द्वारा वलासुर से उनको मुक्त कराया गया । ऐसा कार्य किसी दूसरे द्वारा किया जाना सम्भव नहीं । सूर्य और चन्द्र दोनों ही इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ॥१० ॥

५१०४. अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥११ ॥

जिस प्रकार कृष्णवर्ण घोड़े को स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित किया जाता है, वैसे ही देवताओं ने द्युलोक को नक्षत्रों से विभूषित किया है । उन्होंने रात्रिकाल में अन्धकार तथा दिवस में प्रकाश को स्थापित किया । उसी समय बृहस्पतिदेव ने पर्वत (मेघ) को तोड़कर गौओं (किरणों) को प्राप्त किया ॥११ ॥

५१०५. इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥१२ ॥

आकाश में उत्पन्न हुए बृहस्पतिदेव के निमित्त ये स्तुतिगान किये गये हैं । हम उन्हें सादर प्रणाम करते हैं । जिनके लिए नानाविध चिरपुरातन ऋचाओं को बार-बार उच्चारित किया गया है, वे बृहस्पतिदेव हमें गौएँ, घोड़े, वीर सन्तानें तथा सेवकों सहित अन्नादि प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त- १७]

[**ऋषि-** कृष्ण । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।]

५१०६. अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१ ॥

पवित्र, आत्मशक्ति की वृद्धि करने वाली, एक साथ रहने वाली तथा उन्नति की कामना करने वाली हमारी स्तुतियाँ इन्द्रदेव को वैसे ही आवृत करती हैं, जैसे स्त्रियाँ आश्रय पाने के लिए अपने पति का आलिंगन करती हैं ।

५१०७. न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेवपानमस्तु ते ॥२ ॥

हे असंख्यों द्वारा स्तुतियोग्य इन्द्रदेव ! आपको त्यागकर हमारा मन दूसरी ओर नहीं जाता । आप में ही हम अपनी आकांक्षाओं को केन्द्रित करते हैं । जैसे राजा राजसिंहासन पर विराजमान होते हैं, वैसे ही आप कुशा के आसन पर प्रतिष्ठित हों । इस श्रेष्ठ सोमरस से आपके, पान करने की इच्छा की पूर्ति हो ॥२ ॥

५१०८. विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३ ॥

हमें दुर्दशायुक्त कुमति तथा अन्नाभाव से संरक्षण प्रदान करने के लिए इन्द्रदेव हमारे चारों ओर विराजमान रहें । ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ही सभी सम्पदाओं और धनों के अधिपति हैं । अभीष्टवर्षक और तेजस्वी इन्द्रदेव के निर्देशन में ही सप्त सरिताएँ (स्थूल नदियाँ एवं सूक्ष्म धाराएँ) प्रवाहित होकर उस बलवान् उत्साही योद्धा (इन्द्र) की शक्ति को बढ़ाती हैं ॥३ ॥

५१०९. वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४ ॥

जिस प्रकार पक्षी सुन्दर पत्तेदार वृक्ष का अवलम्बन लेते हैं, उसी प्रकार पात्रों में विद्यमान हर्षदायक सोमरस इन्द्रदेव का आश्रय लेते हैं । सोमरस के प्रभाव एवं तेज से उनका मुख तेजोमय हो जाता है । वे अपनी सर्वोत्तम तेजस्विता मनुष्यों को प्रदान करें ॥४ ॥

५११०. कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५ ॥

जैसे जुआरी जुए के अड्डे पर विजेता को खोजकर पराजित करता है, वैसे ही वैभवशाली इन्द्रदेव ने सूर्य को जीता (प्रेरित किया) । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! कोई भी पुरातन या नवीन मनुष्य आपके पराक्रम की बराबरी करने में सक्षम नहीं है ॥५ ॥

५१११. विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६ ॥

अभीष्टदाता इन्द्रदेव सभी मनुष्यों तक सहज पहुँच जाते हैं । वे स्तोताओं की स्तुतियों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं । इन्द्रदेव जिस यजमान के सोमयाग में हर्षित होते हैं, वे यजमान तीक्ष्ण सोमरस द्वारा युद्धाभिलाषी रिपुओं को पराभूत करने में सक्षम होते हैं ॥६ ॥

५११२. आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७ ॥

जिस प्रकार नदियाँ सागर की ओर स्वाभाविक रूप में प्रवाहित होती हैं तथा छोटे-छोटे नाले सरोवर की ओर बहते हैं, वैसे ही सोमरस भी सहज क्रम से इन्द्रदेव को ही प्राप्त होता है । जैसे दिव्य वृष्टि करने वाले पर्जन्य जौ की कृषि को संवर्द्धित करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव की महिमा को यज्ञस्थल में ज्ञानी लोग बढ़ाते हैं ॥७ ॥

५११३. वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजः स्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८ ॥

जिस प्रकार क्रोधित बैल दूसरे बैल की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव क्रोधित होकर मेघ की ओर दौड़ते हैं । उसे तोड़कर जल को हमारे लिए विमुक्त करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव सोम-अभिषवणकर्त्ता, दानी और हविष्यान्न समर्पित करने वाले यजमानों को तेजस्विता प्रदान करते हैं ॥८ ॥

५११४. उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९ ॥

इन्द्रदेव का वज्रास्त्र तेजस्विता के साथ प्रकट हो, पुरातनकाल के समान ही यज्ञ में स्तोत्रों का प्रादुर्भाव हो । स्वयं देदीप्यमान इन्द्रदेव तेजस्विता से शोभायुक्त और पवित्र हों । सज्जनों के पालक वे सूर्य के समान ही शुभ्रज्योति से प्रकाशमान हों ॥९ ॥

५११५. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे अनेकों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन द्वारा दु:ख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों । जौ आदि अन्नों से हम क्षुधा की आपूर्ति करें । शासनाध्यक्षों के अनुशासन में अपनी सामर्थ्य से विपुल सम्पदाओं को हम जीत सकें ॥१० ॥

५११६. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्य भाग से आने वाले शत्रुओं से हमें बचाएँ । वे इन्द्रदेव सबके सखा हैं । हम भी उनके प्रति मित्रभावना को सुदृढ़ करें । वे इन्द्रदेव हमारे अभीष्टों को पूर्ण करें ॥११ ॥

५११७. बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२ ॥

हे बृहस्पति और इन्द्रदेव ! आप दोनों पृथ्वी और द्युलोक के ऐश्वर्य के स्वामी हैं, इसलिए स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनों से हमारी सुरक्षा करें ॥१२ ॥

[सूक्त- १८]

[**ऋषि-** मेधातिथि, प्रियमेध, ४-६ वसिष्ठ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५११८. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे मित्रता करने के इच्छुक हम याजकगण (आपके स्तोता) तथा सभी कण्ववंशीय साधक स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५११९. न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥२ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! यज्ञ कर्म में आपकी स्तुति करने के अतिरिक्त हम अन्य दूसरे की स्तुति नहीं करेंगे । हम स्तोत्रों द्वारा आपकी ही स्तुति करना जानते हैं ॥२ ॥

५१२०. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३ ॥

यज्ञ के निमित्त सदैव सोमरस तैयार करने वाले साधकों से देवगण प्रसन्न रहते हैं, उन्हीं की कामना करते हैं । आलस्यरहित देवगण आनन्द प्रदान करने वाले सोमरस का सदा पान करते हैं ॥३ ॥

५१२१. वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्व१स्य नो वसो ॥४ ॥

हे श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव ! हम आपकी कामना करते हुए बारम्बार नमन करते हैं । सबको आश्रय देने वाले आप हमारी प्रार्थनाएँ सुनें और उन पर ध्यान देने की कृपा करें ॥४ ॥

५१२२. मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे स्वामी हैं । आपसे हम लोग प्रार्थना करते हैं कि हमें कटुभाषी, निंदक और कंजूस के वश में न रहना पड़े ॥५ ॥

५१२३. त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के सम्मुख पहुँचकर उनका नाश करने के लिए आप विश्व-विख्यात हैं । आप कवच के समान रक्षा करने वाले हैं । आपकी सहायता पाकर हम शत्रुओं का वध करने में समर्थ होते हैं ॥६ ॥

[सूक्त- १९]

[ऋषि- विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१२४. वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र नामक असुर का हनन करने के लिए तथा शत्रु सेना को पराजित करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए हम आपका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं ॥१ ॥

५१२५. अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२ ॥

सैकड़ों कर्म या यज्ञ सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण स्तुति करते हुए आपकी प्रसन्नता, अनुग्रह और कृपा- दृष्टि को हमारी ओर प्रेरित करें ॥२ ॥

५१२६. नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए हम आपके यश एवं वैभव का बखान करते हैं ॥३ ॥

५१२७. पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४ ॥

बहुतों द्वारा स्तुत्य, महान् तेजस्वी, मनुष्यों को धारण करने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

५१२८. इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥५ ॥

बहुतों द्वारा आवाहनीय, वृत्र-हन्ता इन्द्रदेव को हम भरण-पोषण के लिए बुलाते हैं ॥५ ॥

५१२९. वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं । वृत्र का हनन करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

५१३०. द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! धन प्राप्ति के समय, युद्ध में और शत्रु पराभव के समय, यश प्राप्ति तथा अवरोधों का सामना करते समय आप हमारे साथ रहें ॥७ ॥

[सूक्त- २०]

[ऋषि- विश्वामित्र, ५-७ गृत्समद । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री, ४ अनुष्टुप् ।]

५१३१. शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥१ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आप अत्यन्त बल-प्रदायक , दीप्तिमान् चेतनता लाने वाले सोमरस का पान करें ॥१ ॥

५१३२. इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥२ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! पाँच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) में जो इन्द्रियाँ (विशेष सामर्थ्य) हैं, उन्हें आपकी शक्तियों के रूप में हम वरण करते हैं ॥२ ॥

५१३३. अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह महान् हविष्यान्न आपके पास जाए । आप शत्रुओं के लिए दुर्लभ, तेजस्वी सोमरस ग्रहण करें । हम आपके बल को प्रवृद्ध करते हैं ॥३ ॥

५१३४. अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि।

हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ प्रदेश से हमारे पास आएँ । दूरस्थ देश से भी आएँ । आपका जो उत्कृष्ट लोक है, वहाँ से भी आप यहाँ पधारें ॥४ ॥

५१३५. इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥५ ॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव महान् पराभवकारी तथा भय को शीघ्र ही दूर करते हैं ॥५ ॥

५१३६. इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥६ ॥

यदि इन्द्रदेव हमें सुख प्रदान करें, तो पाप हमें नष्ट नहीं कर सकते, वे हर प्रकार से हमारा कल्याण ही करेंगे ॥६ ॥

५१३७. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥७ ॥

शत्रु विजेता, प्रज्ञावान् इन्द्रदेव सभी दिशाओं से हमें निर्भय बनाएँ ॥७ ॥

[सूक्त- २१]

[**ऋषि-** सव्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

५१३८. न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१ ॥

हम विवस्वान् के यज्ञ में महान् इन्द्रदेव की उत्तम वचनों से स्तुति करते हैं । जिस प्रकार सोने वालों का धन चोर सहजता से ले जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव ने (असुरों के) रत्नों को प्राप्त किया । धन दान करने वालों की निन्दा करना उचित नहीं है ॥१ ॥

५१३९. दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अश्वों, गौओं तथा धन-धान्य के देने वाले हैं । आप सबका पालन-पोषण करते हुए उन्हें उत्तम कर्म की प्रेरणा प्रदान करने वाले तेजस्वी वीर हैं । आप संकल्पों को नष्ट न करने वाले तथा मित्रों के भी मित्र हैं । इस प्रकार हम आपकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

५१४०. शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३ ॥

शक्तिशाली, बहु-कर्मा, दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! सम्पूर्ण धन आपका ही है- यह सर्वज्ञात है । हे विजेता ! उस धन को एकत्रित करके (उपयुक्त स्थानों पर) पहुँचा दें । आप अपने प्रशंसकों की कामना पूरी करने में कृपणता न करें ॥३ ॥

५१४१. एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४ ॥

तेजस्वी हवियों और तेजस्वी सोमरस द्वारा तृप्त होकर हे इन्द्रदेव ! हमें गौओं और घोड़ों (पोषण और प्रगति) से युक्त धन को देकर हमारी दरिद्रता का निवारण करें । सोमरस से तृप्त होने वाले, उत्तम मन वाले इन्द्रदेव के द्वारा हम शत्रुओं को नष्ट करते हुए द्वेषरहित होकर अन्न से सम्यक् रूप से हर्षित हों ॥४ ॥

**५१४२. समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! हम धन-धान्य से सम्पन्न हों, बहुतों को हर्ष प्रदान करने वाली सम्पूर्ण तेजस्विता तथा बल से सम्पन्न हों । हम वीर पुत्रों, श्रेष्ठ गौओं एवं अश्वों को प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से युक्त हों ॥५ ॥

**५१४३. ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६ ॥**

हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! वृत्र को मारने वाले संग्राम में आपने बलवर्द्धक सोमरस का पान करके आनन्द एवं उत्साह को प्राप्त किया और तब आपने याजकों के निमित्त दस हजार असुरों का संहार किया ॥६ ॥

**५१४४. युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७ ॥**

हे संघर्षशील शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप शत्रु योद्धाओं से युद्ध करते रहे हैं । उनके अनेक नगरों को आपने अपने बल से ध्वस्त किया है । उन नमनशील, योग्य मित्र, मरुतों के सहयोग से आपने प्रपंची असुर 'नमुचि' (मुक्त न करने वाले) को मार दिया है ॥७ ॥

**५१४५. त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने 'अतिथिग्व' को प्रताड़ित करने वाले 'करंज' (कुत्सित स्वभावयुक्त) और 'पर्णय' (गतिशील) नामक असुरों का तेजस्वी अस्त्रों से वध किया । सहायकों के बिना ही 'वंगृद' (मर्यादा तोड़ने वाले) के सैकड़ों नगरों को गिराकर घिरे हुए 'ऋजिश्वा (ऋजु-सरल मार्ग का अनुसरण करने वालों) को मुक्त किया ॥८ ॥

**५१४६. त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९ ॥**

हे प्रसिद्ध इन्द्रदेव ! आपने बन्धुरहित 'सुश्रवस' (श्रेष्ठ कीर्ति वाले) राजा के सम्मुख लड़ने के लिए खड़े हुए बीस राजाओं को तथा उनके साठ हजार निन्यानबे सैनिकों को अपने दुष्प्राप्य चक्रव्यूह (अथवा गतिशील प्रक्रिया) द्वारा नष्ट कर दिया ॥९ ॥

**५१४७. त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१० ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने अपने रक्षण-साधनों से 'सुश्रवस' की और पोषण साधनों से 'तूर्वयाण' की रक्षा की । आपने इस महान् तरुण राजा के लिए 'कुत्स', 'अतिथिग्व' और 'आयु' नामक राजाओं को वश में किया ॥१० ॥

**५१४८. य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११ ॥**

यज्ञ में स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! देवों द्वारा रक्षित, हम आपके मित्र हैं । हम सर्वदा सुखी रहें । आपकी कृपा से हम उत्तम बल से युक्त, दीर्घायु को भली प्रकार धारण करते हैं तथा आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त- २२]

[**ऋषि-** त्रिशोक, ४-६ प्रियमेध । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१४९. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्य श्नुही मदम् ॥१ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! इस यज्ञ में आपके लिए सोमरस समर्पित है ।आप इस तृप्तिकारक रस का पान करें ॥

५१५०. मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे रक्षण की कामना करने वाले मूर्खों तथा उपहास करने वाले धूर्तों का आप पर कोई प्रभाव न पड़े । ज्ञान-द्वेषियों की आप कोई भी सहायता न करें ॥२ ॥

५१५१. इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौ-दुग्ध मिश्रित सोमरस की हवि देकर होता ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं । तालाब में जल पीने वाले मृग की भाँति आप सोमरस का पान करें ॥३ ॥

५१५२. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४ ॥

हे याजको ! गोपालक, सत्यनिष्ठ, सज्जनों के संरक्षक इन्द्रदेव की मन्त्रोच्चारण सहित प्रार्थना करें, जिससे उनकी शक्तियों का आभास हो सके ॥४ ॥

५१५३. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव की हम अपने यज्ञ मण्डप में प्रार्थना करते हैं, उत्तम अश्व उनको यज्ञशाला में ले आएँ ॥५ ॥

५१५४. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६ ॥

जब यज्ञस्थल के पास इन्द्रदेव मधुर रस का पान करते हैं, तब गौएँ उन्हें मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त- २३]

[**ऋषि-** विश्वामित्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१५५. आ तू न इन्द्र मद्र्य ग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमपान के लिए हम आपका आवाहन करते हैं, आप हरि संज्ञक अश्वों के साथ आएँ ॥१ ॥

५१५६. सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥२ ॥

हमारे यज्ञ में ऋतु के अनुसार यज्ञकर्त्ता होता बैठे हैं । उन्होंने कुश के आसन बिछाएँ हैं और सोम-अभिषव के लिए पाषाण खण्ड को संयुक्त (तैयार) किया है । हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान के निमित्त आएँ ॥२ ॥

५१५७. इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! स्तोतागण इन स्तुतियों को सम्पादित करते हैं । अतएव आप इस आसन पर बैठें और पुरोडाश का सेवन करें ॥३ ॥

५१५८. रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४ ॥

हे स्तुति-योग्य, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप यज्ञ में तीनों सवनों में किये गये स्तोत्रों और मन्त्रों में रमण करें ॥४ ॥

५१५९. मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५ ॥

हमारी ये स्तुतियाँ महान् सोमपायी और बलों के अधिपति इन्द्रदेव को उसी प्रकार प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों को प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

५१६०. स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! विपुल धनराशि दान देने के लिए आप सोमयुक्त हविष्यान्न से अपने शरीर को प्रसन्न करें । हम स्तोताओं को निन्दित न होने दें ॥६ ॥

५१६१. वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७ ॥

हे सबके आश्रय प्रदाता इन्द्रदेव ! आपकी अभिलाषा करते हुए हम हवियों से युक्त होकर आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

५१६२. मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८ ॥

हे हरि संज्ञक अश्वों के प्रिय स्वामी इन्द्रदेव ! आप अपने घोड़ों को हमसे दूर जाकर न खोलें । हमारे पास आएँ । इस यज्ञ में आकर हर्षित हों ॥८ ॥

५१६३. अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! दीप्तिमान् (स्निग्ध) केशवाले अश्व आपको सुखकर रथ द्वारा हमारे निकट ले आएँ । आप यहाँ यज्ञस्थल पर कुश के पवित्र आसन पर सुशोभित हों ॥९ ॥

[सूक्त-२४]

[**ऋषि-** विश्वामित्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१६४. उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! याजकों की अभिलाषा करते हुए आप अश्वों से योजित अपने रथ द्वारा हमारे पास आएँ । हमारे द्वारा अभिषुत गोदुग्धादि मिश्रित सोम का पान करें ॥१ ॥

५१६५. तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्व स्य तृण्णवः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पाषाणों से निष्पन्न कुश के आसन पर सुसज्जित तथा हर्षप्रदायक सोम के निकट आएँ । प्रचुर मात्रा में इसका पान करके तृप्त हों ॥२ ॥

५१६६. इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३ ॥

इन्द्रदेव के आवाहन के लिए की गई स्तुतियाँ, उनको सोमपान के लिए इस यज्ञस्थल पर भली-भाँति लाएँ ॥३॥

५१६७. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४ ॥

हम इन्द्रदेव को सोमपान करने के लिए यहाँ - इस यज्ञ में स्तुति गान करते हुए बुलाते हैं । स्तोत्रों द्वारा वे अनेक बार विभिन्न यज्ञों में आ चुके हैं ॥४ ॥

५१६८. इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५ ॥

हे अन्न-धन के अधीश्वर, शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके लिए अभिषुत सोम प्रस्तुत है, इसे उदरस्थ करें ॥५ ॥

५१६९. विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६ ॥

हे क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव ! हम आपको शत्रुओं के पराभवकर्त्ता और धनों के विजेता के रूप में जानते हैं; अतएव हम आपसे धन की याचना करते हैं ॥६ ॥

५१७०. इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७ ॥

हे इन्द्र !आप अपने बलवान् अश्वों द्वारा आकर हमारे अभिषुत, गो-दुग्ध तथा जौ मिश्रित सोम का पान करें ।

५१७१. तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम यज्ञस्थल पर आपके निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं । यह सोम आपके हृदय में रमण करे ॥

५१७२. त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९ ॥

हे पुरातन इन्द्रदेव ! हम कुशिक वंशज आपकी संरक्षणकारी सामर्थ्यों की अभिलाषा करते हैं । सोमपान के लिए यज्ञस्थल पर हम आपका आवाहन करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त- २५]

[ऋषि- गोतम, ७ अष्टक । देवता- इन्द्र । छन्द- जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

५१७३. अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सामर्थ्य से रक्षित हुआ आपका उपासक अश्वों और गौओं से युक्त धन को पाकर अग्रणी होता है । जैसे जल सब ओर से समुद्र को प्राप्त होता है, वैसे ही आपके सम्पूर्ण धन उस उपासक को पूर्ण करके उसे भली प्रकार सन्तुष्ट करते हैं ॥१ ॥

५१७४. आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२ ॥

होता (चमस पात्र) को जिस प्रकार जल धाराएँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार देवगण अन्तरिक्ष से यज्ञ को देखकर अपने प्रिय स्तोताओं के निकट पहुँचकर उनकी मंत्रयुक्त प्रिय स्तुतियों को ग्रहण करते हैं । वे उन स्तोताओं को पूर्व की ओर श्रेष्ठ मार्गों से ले जाते हैं ॥२ ॥

५१७५. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! परस्पर संयुक्त दो अन्न पात्र आपके निमित्त समर्पित हैं । आपने उन पात्रों को स्तुति वचनों के साथ स्वीकार किया है । जो स्तोता आपके नियमों के अनुसार रहता है, उसकी आप रक्षा करते हैं और पुष्टि प्रदान करते हैं । सोमयाग करने वाले यजमान को आप कल्याणकारी शक्ति देते हैं ॥३ ॥

५१७६. आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अंगिराओं ने अपने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रज्वलित करके सर्वप्रथम हविष्यान्न प्रदान किया है । अनन्तर उन श्रेष्ठ पुरुषों ने सभी अश्वों, गौओं से युक्त पशुरूप धन और भोज्य पदार्थों को प्राप्त किया ॥४ ॥

५१७७. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५ ॥

सर्वप्रथम 'अथर्वा' ने 'यज्ञ' के सम्पूर्ण मार्गों को विस्तृत किया । तदनन्तर व्रतपालक सूर्यदेव का प्राकट्य हुआ । पुनः 'उशना' (तेजस्वी) ने समस्त गौओं (किरणों या वाणियों) को बाहर निकाला । हम सब इस जगत् के नियामक अविनाशी इन्द्रदेव की पूजा करते हैं ॥५ ॥

५१७८. बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६ ॥

जिसके घर में उत्तम यज्ञादि कर्मों के निमित्त कुश काटे जाते हैं । सूर्योदय के पश्चात् आकाश में जहाँ स्तोत्रपाठ गुंजरित होते हैं । जहाँ उक्थ (स्तोत्र) वचनों सहित सोम कूटने के पाषाणों का शब्द गूँजता है; इन्द्रदेव उनके यहाँ ही हविद्रव (सोमरस) का पान करके आनन्द पाते हैं ॥६ ॥

५१७९. प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७ ॥

हरितवर्ण के अश्वाधिपति हे इन्द्रदेव ! आपके लिए सोम अभिषुत किया गया है । सुख- ऐश्वर्यों के वर्षक आप यज्ञ की ओर सुनिश्चित रूप से आयेंगे, ऐसा जानते हुए आपके पानार्थ सोम प्रस्तुत करते हैं । हे देव ! आप स्तोत्रों को सुन करके आनन्दित हों । आप सत्कर्म सम्पादित करें तथा नानाविध स्तोत्रों से परितृप्त हों ॥७ ॥

[सूक्त- २६]

[**ऋषि-** शुनः शेप , ४-६ मधुच्छन्दा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१८०. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१ ॥

सत्कर्मों के शुभारम्भ में एवं हर प्रकार के संग्राम में बलशाली इन्द्रदेव का हम अपने संरक्षण के लिए मित्रवत् आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५१८१. आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्त्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव प्रार्थना से प्रसन्न होकर निश्चित ही सहस्त्रों रक्षा-साधनों तथा अन्न, ऐश्वर्य सहित हमारे पास आयेंगे ॥

५१८२. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥३ ॥

हम अपनी सहायता के लिए स्वर्गधाम के वासी, बहुतों के पास पहुँचकर, उन्हें नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । हमारे पिता ने भी ऐसा ही किया था ॥३ ॥

५१८३. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥४ ॥

वे (इन्द्रदेव) द्युलोक में आदित्य रूप में, भूमि पर अहिंसक अग्नि के रूप में, अन्तरिक्ष में सर्वत्र प्रसरणशील वायु के रूप में उपस्थित हैं । उन्हें उक्त तीनों लोकों के प्राणी अपने कार्यों में देवत्वरूप से सम्बद्ध मानते हैं । द्युलोक में प्रकाशित होने वाले नक्षत्र-ग्रह आदि उन्हीं (इन्द्रदेव) के ही स्वरूपांश हैं (अर्थात् तीनों लोकों की प्रकाशमयी, प्राणमयी शक्तियों के वे ही एक मात्र संगठक हैं) ॥४ ॥

५१८४. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५ ॥

इन्द्रदेव के रथ में दोनों ओर रक्तवर्ण, संघर्षशील, मनुष्यों को गति देने वाले दो घोड़े नियोजित रहते हैं ॥५ ॥

५१८५. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रात: पुन: सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो (प्रति- दिन जन्म लेते हो) ॥६ ॥

[सूक्त- २७]

[**ऋषि-** गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१८६. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात्॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, वैसा ही यदि मैं बन जाऊँ , तो मेरे स्तोता भी गौओं के साथी (वाणी का धनी अथवा इन्द्रियों का मित्र) हो जाएँ ॥१ ॥

[अनियन्त्रित इन्द्रियाँ या वाणी शत्रु का कार्य करती हैं। वही नियन्त्रित होने पर मित्र बन जाती हैं। इन्द्र जैसी नियंत्रण क्षमता प्राप्त करके साधक भी यह लाभ पा सकते हैं।]

५१८७. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम्॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! यदि मैं गौओं (वाणी या इन्द्रियों) का स्वामी बन जाऊँ, तो मनीषियों को दान देने वाला एवं उन्हें शिक्षा, सहायता देने वाला बनूँ ॥२ ॥

५१८८. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमयाजी (सोम यज्ञकर्त्ता) के लिए आपकी सत्यनिष्ठ धेनु (वाणी) पुष्टि प्रदायिनी है । वह गौ (पोषक प्रवाहों) तथा अश्वों (शक्ति प्रवाहों) का दोहन करती है ॥३ ॥

५१८९. न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद् दित्ससि स्तुतो मघम्॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप स्तुत्य होकर याजक को धन प्रदान करना चाहते हैं, तब आपको धन देने से देवता या मानव कोई रोक नहीं सकता ॥४ ॥

५१९०. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ॥५ ॥

जब यज्ञ ने इन्द्र (की शक्ति) को बढ़ाया, (तो) इन्द्रदेव ने द्युलोक में आवास बनाकर भूमि का विस्तार किया ।

[यज्ञ से प्रकृति की देव शक्तियों के संयोजक इन्द्र की शक्ति बढ़ती है, तो द्युलोक में से दिव्य प्रवाह उमड़कर भूमि को समृद्ध बनाता है।]

५१९१. वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके उस दिव्य संरक्षण को प्राप्त करना चाहते हैं , जिससे हम समृद्ध हों तथा शत्रुओं के समस्त ऐश्वर्यों को जीत सकें ॥६ ॥

[सूक्त- २८]

[**ऋषि-** गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१९२. व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् वलम्॥१ ॥

सोमपान से उत्पन्न उमंग में जब इन्द्रदेव ने बलवान् मेघों को विदीर्ण किया, तो (प्रकारान्तर से) उन्होंने प्रकाशवान् आकाश का भी विस्तार किया ॥१ ॥

५१९३.उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥२ ॥

सूर्यरूप हे इन्द्रदेव ! आपने गुफा में स्थित (अप्रकट) किरणों (गौओं) को प्रकटकर, उन्हें देहधारियों (अंगिराओं) तक पहुँचाया । उन्हें रोके रखने वाला असुर (बल) नीचा मुँह करके पलायन कर गया ॥२ ॥

५१९४. इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥३ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित सभी प्रकाशवान् नक्षत्रों को इन्द्रदेव ने सुदृढ़ तथा समृद्ध किया । उन नक्षत्रों को कोई भी उनके स्थान से च्युत नहीं कर सकता ॥३ ॥

५१९५. अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार समुद्र की लहरें उछलती चलती हैं, उसी प्रकार आपके लिए की गई प्रार्थनाएँ शीघ्रता से पहुँचकर, आपके उत्साह को बढ़ाती हैं ॥४ ॥

[सूक्त- २९]

[**ऋषि-** गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५१९६. त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोत्रों तथा स्तुतियों से सन्तुष्ट, समृद्ध होते हैं । आप स्तुतिकर्त्ताओं के लिए हितकारी हैं

५१९७. इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥२ ॥

बालों से युक्त दोनों अश्व, श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव को सोम पीने के लिए यज्ञ मण्डप के समीप ले जाते हैं

५१९८. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥३ ॥

इन्द्रदेव ने नमुचि (मुक्त न करने वाले असुर या आसुरी प्रवृत्ति) के सिर को अप् (जल या प्राण प्रवाह) के फेन (उफान-शक्ति) से नष्ट कर दिया ॥३ ॥

५१९९. मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी माया के द्वारा सर्वत्र विद्यमान हैं । आपने द्युलोक में बढ़ने वाले दस्युओं (वृत्र, अहि आदि) को नीचे धकेल दिया ॥४ ॥

५२००. असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्य नाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान करने वाले तथा महान् हैं । सोमयज्ञ न करने वाले (स्वार्थी) मनुष्यों के संगठन को आपस में लड़ाकर, आपने विनष्ट कर दिया ॥५ ॥

[सूक्त- ३०]

[**ऋषि-** वरु अथवा सर्वहरि । **देवता-** हरि (इन्द्र) । **छन्द-** जगती ।]

५२०१. प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों घोड़ों की, इस महायज्ञ में हम अर्चना करते हैं । आपके सेवनीय, प्रशंसा- योग्य उत्साह की हम कामना करते हैं । जो हरि (हरणशील सूर्यादि) के माध्यम से घृत (तेज अथवा जल) सिंचित करते हैं, ऐसे मनोहारी इन्द्रदेव के समीप हमारे स्तोत्र पहुँचें ॥१ ॥

५२०२. हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२ ॥

हे ऋत्विग्गण ! जो अश्व द्रुतगति से इन्द्रदेव को दिव्य धामों में पहुँचाते हैं। इन्द्रदेव के उन दोनों अश्वों की स्तुति करें। अश्वों सहित इन्द्रदेव की कल्याणप्रद सामर्थ्य की स्तुति करें। जैसे गौएँ दूध देती हैं, उसी प्रकार आप भी हरिताभ सोम एवं स्तुतियों से इन्द्रदेव को तृप्त करें ॥२ ॥

५२०३. सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३ ॥

इन्द्रदेव का जो वज्र हरित (हरणशील) और लौह धातु का है, उस शत्रुनाशक वज्र को दोनों हाथों से धारण किया जाता है। इन्द्रदेव वैभवशाली, सुन्दर हनुयुक्त हैं और क्रोधित होकर दुष्टजनों को बाणों द्वारा विनष्ट करने वाले हैं। हरिताभ सोम द्वारा इन्द्रदेव को अभिषिंचित किया जा रहा है ॥३ ॥

५२०४. दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश कान्तिमान् वज्र, प्रशंसनीय होकर सबको संव्याप्त करता है, मानो उसने अपनी गति से रथ के वहनकर्त्ता अश्वों के सदृश ही सम्पूर्ण दिशाओं को संव्याप्त किया है। सुन्दर हनु से युक्त और सोमरस पानकर्त्ता इन्द्रदेव, लोहे से विनिर्मित वज्रास्त्र के द्वारा वृत्रासुर के हननकाल में असाधारण आभायुक्त हुए ॥४

५२०५. त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५ ॥

हे हरिकेश इन्द्रदेव ! पुरातन कालीन ऋषियों द्वारा आपकी ही यज्ञ में प्रार्थना की जाती थी तथा आप यज्ञ में उपस्थित होते थे। आप सबके लिए प्रशंसा योग्य हैं। हे इन्द्रदेव ! आपके सभी प्रकार के अन्न प्रशंसनीय हैं, आप कान्तिमान् और असाधारण विशेषताओं से सम्पन्न हैं ॥५ ॥

[सूक्त- ३१]

[**ऋषि-** वरु अथवा सर्वहरि। **देवता-** हरि (इन्द्र)। **छन्द-** जगती।]

५२०६. ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१ ॥

स्तुतियोग्य और वज्रधारी इन्द्रदेव जब सोमरस के पान हेतु हर्षित होकर सन्नद्ध होते हैं, तो उस समय दो सुन्दर हरितवर्ण घोड़े उनके रथ में जोते जाकर उनको वहन करते हैं। वहाँ (हमारे यज्ञस्थल में) सोम की कामना करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त अनेक बार सोमरस का अभिषवण किया जाता है। ॥१ ॥

५२०७. अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२ ॥

इन्द्रदेव के निमित्त यथोचित मात्रा में सोमरस रखा गया है, उसी सोमरस द्वारा इन्द्रदेव के अविचल घोड़ों को यज्ञ की ओर वेगशील किया जाता है। गतिशील घोड़े जिस रथ को युद्ध- भूमि की ओर वहन करते हैं, वही रथ इन्द्रदेव को कमनीय और सोमरस- सम्पन्न यज्ञ में प्रतिष्ठित करता है ॥२ ॥

५२०८. हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥३ ॥

हरि (किरणों) को श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) एवं केशों के समान धारणकर्त्ता, लोहे के समान सुदृढ़ शरीरधारी इन्द्रदेव, तीव्रता से हर्षित करने वाले सोमरस का पान करके उत्साहित होते हैं । वे गतिशील अश्वों से यज्ञों तक पहुँचते हैं । दोनों अश्वों को जोतकर वे हमारे सभी प्रकार के विघ्नों का निवारण करें ॥३ ॥

५२०९. स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥४ ॥

बलशाली इन्द्रदेव के दो हरितवर्ण अथवा दीप्तिमान् नेत्र यज्ञवेदी में दो स्रुवों के समान ही विशिष्ट ढंग से सोमरस पर केन्द्रित रहते हैं । उनके हरणशील दोनों जबड़े सोमपान हेतु कम्पायमान होते हैं । शोधित चमस-पात्र में जो अति सुखप्रद, उज्ज्वल सोमरस था, उसे पीकर वे अपने दोनों अश्वों के शरीरों को परिमार्जित करते हैं ॥४ ॥

५२१०. उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५ ॥

कान्तिमान् इन्द्रदेव का आवास द्यावा-पृथिवी पर ही है । वे रथारूढ़ होकर घोड़े के समान ही अतिवेग से समरक्षेत्र में गमन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! उत्कृष्ट स्तोत्र आपको प्रशंसित करते हैं । आप अपनी सामर्थ्यानुसार विपुल अन्न को धारण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त- ३२]

[**ऋषि-** वरु अथवा सर्वहरि । **देवता-** हरि (इन्द्र) । **छन्द-** जगती, २-३ त्रिष्टुप् ।]

५२११. आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी महत्ता से द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त करते हैं और नवीन प्रिय स्तोत्रों की कामना करते हैं । हे बल- सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप गो (पृथ्वी) को हर्षित करने के लिए प्रेरक सूर्यदेव के लिए घर की तरह आकाश को प्रकट करते हैं ॥१ ॥

५२१२. आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२ ॥

हे सुन्दर हनुयुक्त इन्द्रदेव ! आपके अश्व, रथ में जोते जाकर मनुष्यों द्वारा सम्पादित यज्ञ में आपको पहुँचाएँ । आपके निमित्त प्रेमपूर्वक तैयार किया गया मधुर सोमरस प्रस्तुत है, उसे आप पिएँ । दस अँगुलियों से अभिषवित सोमरस, जो यज्ञ का साधनरूप है, आप युद्ध में विजय हेतु उसे पीने की कामना करें ॥२ ॥

५२१३. अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥३ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! पहले प्रातः सवन में सोमरस दिया गया है, उसको आपने ग्रहण किया । इस समय (माध्यन्दिन सवन में) जो सोम प्रस्तुत है, वह मात्र आपके निमित्त ही है । आप इस मीठे सोमरस से आनन्द प्राप्त करें । हे विपुल वृष्टिकर्त्ता इन्द्रदेव ! आप अपने उदर को सोमरस से परिपूर्ण करें ॥३ ॥

[सूक्त- ३३]

[ऋषि- अष्टक। देवता- हरि। छन्द- त्रिष्टुप्।]

५२१४. अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥१॥

अश्वों के अधिपति हे इन्द्रदेव ! जल में शोधित, इस यज्ञ में लाये गये सोमरस का पान करें। इससे अपनी उदरपूर्ति करें। हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! पाषाणों द्वारा जिसका अभिषवण किया गया है, आप उसे पीकर उत्साहित होकर हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें ॥१॥

५२१५. प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥२॥

हरिताश्वपति हे इन्द्र ! आपके लिए सोम अभिषवित किया गया है। सुख-ऐश्वर्यों के वर्षक आप यज्ञ की ओर सुनिश्चित रूप से आयेंगे, ऐसा जानते हुए आपके पानार्थ सोम प्रस्तुत करते हैं। हे देव ! आप स्तोत्रों को ग्रहण करके आनन्दित हों। आप समस्त बुद्धियों और शक्तियों के सहित स्तुत्य हैं ॥२॥

५२१६. ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! उशिज् वंशज यज्ञ कर्म के विशेषज्ञ हैं। वे आपके आश्रित होकर आपके प्रभाव से अन्न और सन्तान प्राप्त करके यजमान के यज्ञगृह में रहने लगे। वे सभी आनन्द विभोर होकर आपकी प्रार्थना करने लगे ॥३॥

[सूक्त- ३४]

[ऋषि- गृत्समद। देवता- इन्द्र। छन्द- त्रिष्टुप्।]

५२१७. यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

हे मनुष्यो ! अपने पराक्रम के प्रभाव से ख्याति प्राप्त उन मनस्वी इन्द्रदेव ने उत्पन्न होते ही अपने श्रेष्ठ कर्मों से देवताओं को अलंकृत कर दिया था, जिनकी शक्ति से आकाश और पृथिवी दोनों लोक भयभीत हो गये ॥१॥

५२१८. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

हे मनुष्यो ! उन इन्द्रदेव ने विशाल आकाश को मापा, द्युलोक को धारण किया तथा काँपती हुई पृथिवी को मजबूत आधार प्रदान करके क्रुद्ध पर्वतों को स्थिर किया ॥२॥

५२१९. यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

हे मनुष्यो ! जिन्होंने वृत्र राक्षस को मारकर (जल वृष्टि द्वारा) सात नदियों को प्रवाहित किया, जिन्होंने बल (राक्षस) द्वारा अपहृत की गयी गौओं को मुक्त कराया, जिन्होंने पाषाणों के बीच अग्निदेव को उत्पन्न किया, जिन्होंने शत्रुओं का संहार किया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥३॥

५२२०. येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! जिन्होंने समस्त गतिशील लोकों का निर्माण किया, जिन्होंने दास वर्ण (अमानवीय आचरण करने वालों) को निम्न स्थान प्रदान किया; जिन्होंने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और व्याध द्वारा पशुओं के समान शत्रुओं की समृद्धि को अपने अधिकार में ले लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥४ ॥

५२२१. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव के बारे में लोग पूछा करते हैं कि वे कहाँ हैं ? कुछ लोग कहते हैं कि वे हैं ही नहीं । इन्द्रदेव (उन न मानने वाले) शत्रुओं की पोषणकारी सम्पत्ति को वीरता के साथ नष्ट कर देते हैं । हे मनुष्यो ! इन इन्द्रदेव के प्रति श्रद्धा व्यक्त करो, ये सबसे महान् देव इन्द्र ही हैं ॥५ ॥

५२२२. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो यो ऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! जो दरिद्रों, ज्ञानियों तथा स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं । सोमरस निकालने के लिए पत्थर रखकर (कूटने के लिए) जो यजमान तैयार हैं, उस यजमान की जो रक्षा करते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥६ ॥

५२२३. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके अधीन समस्त ग्राम, घोड़े तथा रथ हैं, जिनने सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया, जो समस्त प्रकृति के संचालक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥७ ॥

५२२४. यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८ ॥

हे मनुष्यो ! परस्पर साथ चलने वाले द्युलोक तथा पृथिवी लोक जिन्हें सहायता के लिए बुलाते हैं, महान् तथा निम्न स्तरीय शत्रु भी जिन्हें युद्ध में मदद के लिए बुलाते हैं, एकरथ पर आरूढ़ दो वीर साथ- साथ जिन्हें मदद के लिए बुलाते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥८ ॥

५२२५. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव या अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! जिनकी सहायता के बिना शूरवीर युद्ध में विजयी नहीं होते, युद्धरत वीर पुरुष अपने संरक्षण के लिए जिन्हें पुकारते हैं, जो समस्त संसार को यथाविधि जानते हुए अपरिमित शक्तिवाले शत्रुओं का संहार कर देते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥९ ॥

५२२६. यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१० ॥

हे मनुष्यो ! जिनने अपने वज्र से महान् पापी शत्रुओं का हनन किया, जो अहंकारी मनुष्यों का गर्व नष्ट कर देते हैं, जो दूसरे के पदार्थों का हरण करने वाले दुष्टों के नाशक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१० ॥

५२२७. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११ ॥

हे मनुष्यो ! जिनने चालीसवें वर्ष पर्वत में छिपे हुए शंबर राक्षस को ढूँढ़ निकाला, जिनने जल को रोककर रखने वाले सोये हुए असुर वृत्र को मारा, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥११ ॥

५२२८. यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥१२ ॥

हे मनुष्यो ! जिन्होंने अपने वज्र से मेघों को विदीर्ण किया, जो सुरुचिपूर्वक सोमरस का पान करते हैं , जो यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वालों को पर्वत शिखर की भाँति ऊँचा उठा देते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१२ ॥

५२२९. यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१३ ॥

हे मनुष्यो ! जो सात किरणों वाले बलशाली और ओजस्वी देव सात नदियों (धाराओं) को प्रवाहित करते हैं । जिनने द्युलोक की ओर चढ़ती रोहिणी को अपने हाथ के वज्र से रोक लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१३ ॥

५२३०. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके प्रति द्युलोक तथा पृथिवी लोक नमनशील हैं, जिनके बल से पर्वत भयभीत रहते हैं , जो सोमपान करने वाले, वज्र के समान भुजाओं वाले तथा शरीर से महान् बलशाली हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१४ ॥

५२३१. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५ ॥

हे मनुष्यो !जो सोम शोधित करने वालों तथा स्तुतियाँ करने वालों की रक्षा करते हैं । सोम जिनके बल को, ज्ञान जिनके यश को तथा आहुतियाँ जिनकी सामर्थ्य को बढ़ाती हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१५ ॥

५२३२. जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१६ ॥

हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न होते ही द्युलोक की गोद में प्रकाशित हुए । जो मातृरूपा पृथ्वी तथा पितृरूप द्युलोक को भी नहीं जानते और जो हमारे द्वारा स्तुति किये जाने पर दिव्य व्रतों को पूर्ण करते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१६ ॥

५२३३. यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७ ॥

हे मनुष्यो ! सोमरस की कामना करते हुए जो हरि नामक घोड़ों को अच्छी प्रकार चलाते हैं । जिनके द्वारा शम्बर और शुष्ण असुरों का संहार किया गया है । जो पराक्रमी कार्यों में असाधारण शौर्य दिखाते हैं, जिनसे सभी प्राणी भयभीत रहते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१७ ॥

५२३४. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८ ॥

जो सोमयज्ञ करने वाले तथा सोमरस को शोधित करने वाले याजकों को धन प्रदान करते हैं, वे निश्चित रूप से सत्यरूप इन्द्रदेव हैं। हे इन्द्रदेव ! हम सन्ततियुक्त प्रियजनों के साथ सदैव आपका यशोगान करें ॥१८ ॥

[सूक्त- ३५]

[ऋषि- नोधा। देवता- इन्द्र। छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५२३५. अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१ ॥

शीघ्र कार्य करने वाले मंत्रों द्वारा वर्णनीय महान् कीर्ति वाले, अबाध गति वाले इन्द्रदेव के लिए हम प्रशंसात्मक मंत्रों का गान करते हुए हविष्यान्न अर्पित करते हैं ॥१ ॥

५२३६. अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२ ॥

हम उन इन्द्रदेव के निमित्त हविष्य के समान स्तोत्र अर्पित करते हैं ; उन शत्रुनाशक, इन्द्रदेव के लिए उत्तम स्तुति-गान करते हैं। ऋषिगण उन पुरातन इन्द्रदेव के लिए हृदय, मन और बुद्धि के द्वारा पवित्र स्तुतियाँ करते हैं ॥

५२३७. अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३ ॥

हम महान् विद्वान् इन्द्रदेव को आकृष्ट करने वाली उनकी महिमा के अनुरूप उत्तम स्तुतियों को निर्मल बुद्धि से नादपूर्वक उच्चारित करते हैं ॥३ ॥

५२३८. अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४ ॥

जैसे त्वष्टादेव रथ का निर्माण करके इन्द्रदेव को प्रदान करते हैं, वैसे ही हम समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले, स्तुत्य, मेधावी इन्द्रदेव के लिए अपनी वाणियों से सर्वप्रसिद्ध श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान करते हैं ॥४ ॥

५२३९. अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५ ॥

अश्व को रथ से नियोजित करने के समान हम धन की कामना से इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्रों को वाणी से युक्त करते हैं। ये स्तोत्र हम उन वीर, दानशील, विपुल यशस्वी, शत्रु के नगरों को ध्वस्त करने वाले इन्द्रदेव की वन्दना के रूप में उच्चारित कर रहे हैं ॥५ ॥

५२४०. अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६ ॥

लक्ष्य को भली प्रकार बेधने वाले शक्तिशाली वज्र को त्वष्टादेव ने युद्ध के निमित्त इन्द्रदेव के लिए तैयार किया। उसी वज्र से शत्रुनाशक, अति बलवान् इन्द्रदेव ने वृत्र के मर्म स्थान पर प्रहार करके उसे मारा ॥६ ॥

५२४१. अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७ ॥

वृष्टि के द्वारा माता की भाँति जगत् का श्रेष्ठ निर्माण करने वाले महान् इन्द्रदेव ने यज्ञों में हवि का सेवन किया और सोम का शीघ्र पान किया । उन सर्वव्यापक इन्द्रदेव ने शत्रुओं के धन को जीता और वज्र का प्रहार करके मेघों का भेदन किया ॥७ ॥

५२४२. अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८ ॥

'अहि' (गतिहीनों) का हनन करने पर देव-पत्नियों ने इन्द्रदेव की स्तुतियाँ की । इन्द्रदेव ने फिर पृथ्वी लोक और द्युलोक को वश में किया । दोनों लोकों में उनकी सामर्थ्य के सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥८ ॥

५२४३. अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९ ॥

इन्द्रदेव की महत्ता आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष से भी विस्तृत है । स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, उत्तम योद्धा, असीमित बल वाले इन्द्रदेव युद्ध के लिए अपने वीरों को प्रेरित करते हैं ॥९ ॥

५२४४. अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१० ॥

इन्द्रदेव ने अपने बल से शोषक वृत्र को वज्र से काट दिया और अपहृत गौओं के समान रोके हुए जल को मुक्त किया । हविदाताओं को अन्न से पूर्ण किया ॥१० ॥

५२४५. अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११ ॥

इन्द्रदेव के बल से ही नदियाँ प्रवाहित हुईं ; क्योंकि इन्होंने ही वज्र से इन्हें नियन्त्रित कर दिया है । शत्रुओं को मारकर सभी पर शासन करने वाले इन्द्रदेव हविदाता को धन देते हुए 'तुर्वणि' (शत्रुओं) से मोर्चा लेने वाले की सहायता करते हैं ॥११ ॥

५२४६. अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२ ॥

अति वेगवान्, सबके स्वामी महाबली हे इन्द्रदेव !आप इस वृत्र पर वज्र का प्रहार करें और इसके जोड़ों को (वज्र के) तिरछे प्रहार से भूमि के समान (समतल) काट दें । इस प्रकार जल को मुक्त करके प्रवाहित करें ॥१२ ॥

५२४७. अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३ ॥

हे मनुष्य ! इन स्फूर्तिवान् इन्द्रदेव के पुरातन कर्मों की प्रशंसा करें । वे स्तुति योग्य हैं । युद्ध में वे शीघ्रता से शस्त्रों का प्रहार करके समाज को हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं को विनष्ट करते हैं ॥१३ ॥

५२४८. अस्येदु भिया गिरयश्च दृळहा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥१४ ॥

इन इन्द्रदेव के भय से दृढ़ पर्वत, आकाश, पृथ्वी और सभी प्राणी भी काँपते हैं । नोधा ऋषि इन्द्रदेव के श्रेष्ठ रक्षण सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए उनके अनुग्रह से बलशाली हुए थे ॥१४ ॥

५२४९. अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५ ॥

अपार धन के एक मात्र स्वामी इन्द्रदेव जो इच्छा करते हैं, वही स्तोताओं के द्वारा अर्पित किया जाता है । इन्द्रदेव ने स्वश्व के पुत्र 'सूर्य' के साथ स्पर्धा करने वाले, सोमयाग करने वाले, 'एतश' ऋषि को सुरक्षा प्रदान की ॥१५ ॥

५२५०. एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६ ॥

हरे रंग के अश्वों से योजित रथ वाले हे इन्द्रदेव ! गोतम वंशजों ने आपके निमित्त आकर्षक मन्त्रयुक्त स्तोत्रों का गान किया है । इन स्तोत्रों का आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें । विचारपूर्वक अपार धन-वैभव प्रदान करने वाले इन्द्रदेव हमें प्रातः (यज्ञ में) शीघ्र प्राप्त हों ॥१६ ॥

[सूक्त- ३६]

[**ऋषि-** भरद्वाज । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५२५१. य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१ ॥

एक इन्द्रदेव संकट काल में मनुष्यों द्वारा आवाहन करने योग्य हैं । वे स्तुतियाँ करने पर आते हैं । इच्छापूर्ति करने वाले पराक्रमी, ज्ञानी, सत्यवादी एवं शत्रुओं को पीड़ा देने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५२५२. तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२ ॥

अङ्गिरा आदि प्राचीन ऋषियों ने इन्द्रदेव को पराक्रमी और प्रवर्द्धमान बनाने के लिए नौ मासिक यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किये तथा उनकी स्तुति की । वे इन्द्रदेव सभी के शासक, तीव्रगामी एवं शत्रुओं के संहारक हैं ॥२ ॥

५२५३. तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! हम पुत्र-पौत्रादि स्वजनों, सेवकों, पशुओं से युक्त प्रसन्नतादायक धन की आप से याचना करते हैं । आप क्षीण न होने वाला, स्थायी, सुखदायक धन प्रचुर मात्रा में हमें उल्लसित करने के लिए प्रदान करें ॥

५२५४. तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४ ॥

हे शत्रुजयी, पराक्रमी, अनेकों द्वारा आहूत ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दुष्ट असुरों का नाश करने की सामर्थ्य वाले हैं । आपको यज्ञ में कौन सा भाग मिला है ? हे इन्द्रदेव ! आप हमें वही सुख प्रदान करें, जो आपने पहले भी स्तोताओं को दिया है ॥४ ॥

५२५५. तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५ ॥

वज्रधारी, रथारूढ़, बहुकर्मा, अनेक शत्रुओं को एक साथ पकड़ने वाले इन्द्रदेव की गुण-गाथा का गान करते हुए, जो यजमान यज्ञकर्म और स्तुति करता है, वह शत्रुओं को हराने वाला एवं सुख प्राप्त करने वाला होता है ॥५ ॥

५२५६. अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीलिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वयं के बल से युक्त हैं । आपने अपने मनोवेगी वज्र से उस बढ़ते हुए मायावी वृत्रासुर का संहार किया है । हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! आपने अचल, सुदृढ़ एवं शक्तिशाली पुरियों को नष्ट किया है ॥६ ॥

५२५७. तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७ ॥

प्राचीन ऋषियों की तरह हम भी पुरातन पराक्रमी इन्द्रदेव को नवीन स्तोत्रों से प्रवर्धमान करते हैं । वे अनन्त महिमावान्, सुन्दर वाहन वाले इन्द्रदेव हमें विश्व के सभी संकटों से पार लगाएँ ॥७ ॥

५२५८. आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट की वर्षा करने वाले हैं । द्युलोक, पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त होकर अपने तीव्र तेज से तप्त करके ब्रह्म विद्वेषियों (दुष्टों) को भस्म करें ॥८ ॥

५२५९. भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९ ॥

हे तेजस्वी, अजर इन्द्रदेव ! आप देवलोकवासी एवं पृथ्वीवासी सभी लोगों के राजा हैं । आप दाहिने हाथ में वज्र को धारण करके विश्व के मायावियों का नाश करें ॥९ ॥

५२६०. आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१० ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने के लिए अक्षुण्ण, संयमित एवं कल्याणकारी धन प्रचुर मात्रा में हमें प्रदान करें । जिससे दासों (इन्द्रियों के दास, कुमार्गगामियों) को आर्य (श्रेष्ठ मार्गगामी) बनाया जा सके और मनुष्य के शत्रुओं का नाश हो सके ॥१० ॥

५२६१. स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११ ॥

हे इन्द्र ! आप पूज्य एवं अनेकों द्वारा आहूत हैं । आप सभी लोगों द्वारा प्रशंसित घोड़ों से हमारे पास आएँ ।जिन अश्वों की गति को देवता एवं असुर भी नहीं रोक सकते हैं, उन अश्वों के साथ आप हमारे पास आएँ ॥११॥

[सूक्त -३७]

[**ऋषि-** वसिष्ठ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५२६२. यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१ ॥

जो इन्द्रदेव तीक्ष्ण सींग वाले वृषभ के समान भयंकर हैं, वे अकेले ही शत्रुओं को अपने स्थान से पदच्युत कर देते हैं। यजन न करने वालों के निवास छीन लेने वाले हे इन्द्रदेव ! आप हम याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

५२६३. त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्य स्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब संग्राम काल में आपने 'कुत्स' की सुरक्षा, स्वयं शुश्रूषा करके की थी, तब अर्जुनी के पुत्र कुत्स को धन दिया था एवं दास 'शुष्ण' और 'कुयव' का संहार किया था ॥२ ॥

५२६४. त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३ ॥

हे अदम्य इन्द्रदेव ! आप हवि पदार्थ अर्पित करने वाले राजा सुदास की सुरक्षा, अपनी रक्षण शक्ति सहित वज्र द्वारा करते हैं। आपने शत्रु का संहार करने के समय एवं भूमि के बँटवारे के समय, पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु एवं पूरु का संरक्षण किया था ॥३ ॥

५२६५. त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥४ ॥

मनुष्यों के हितैषी हे इन्द्र ! आपने युद्ध भूमि में मरुद्गणों की सहायता से उनके शत्रुओं का विनाश किया था। हे हरित वर्ण के अश्व वाले इन्द्रदेव ! आपने ही दभीति की सुरक्षा के लिए दस्यु चुमुरि एवं धुनि को मारा ॥४ ॥

५२६६. तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने अपने प्रसिद्ध बल के द्वारा शत्रुओं के निन्यानबे नगरों को बहुत कम समय मे ही ध्वस्त कर दिया। अपने निवास के लिए सौवें नगर में प्रवेश कर आपने वृत्रासुर एवं नमुचि को मारा ॥५ ॥

५२६७. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने हविदाता राजा सुदास के लिए सदा रहने वाली धन-सम्पदा प्रदान की। हे बहुकर्मा इन्द्रदेव ! आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। हम आपके लिए दो बलशाली अश्वों को रथ में नियोजित करते हैं। आप बलवान् (इन्द्र) के पास हमारे स्तोत्र पहुँचें ॥६ ॥

५२६८. मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलवान् हैं और अश्वों के स्वामी हैं। आपके इस यज्ञ में हम दूसरों से सहायता प्राप्त करने का पाप न करें। आप अपने रक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें। हम आपकी स्तुति करने वाले आपके विशेष प्रिय पात्र बनें ॥७ ॥

५२६९. प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८ ॥

हे धनपति इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति करने वाले हम परस्पर प्रेमपूर्वक मित्रभाव से घर में प्रसन्न होकर रहें । आप अतिथि-सत्कार में निपुण सुदास को सुख प्रदान करते हुए, तुर्वश एवं यदुवंशी को परास्त करें ॥८ ॥

५२७०. सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणींरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आपके यज्ञ में हम स्तोता ही उक्थ (स्तोत्रों) का उच्चारण करते हैं । आपको हवि अर्पित करके, उक्थों के उच्चारण द्वारा पणियों (लोभियों) को भी धन दान करने की प्रेरणा दी । हम सबको आप मित्रवत् स्वीकार करें ॥९ ॥

५२७१. एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१० ॥

हे नेतृत्व करने वालों में श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! स्तोत्रों और हवि द्वारा आपका यजन करने वालों ने आपको हम सबका हितैषी बना दिया है । आप युद्ध के समय इन्हीं स्तोताओं की रक्षा करें ॥१० । ।

५२७२. नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! स्तुत्य होकर और ज्ञान से प्रेरित होकर आपके शरीर और रक्षण शक्तियों में वृद्धि हो । हम सबको आप अपनी कल्याणकारी शक्तियों द्वारा सुरक्षित कर, अन्न एवं आवास (घर) प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त-३८]

[**ऋषि-** इरिम्बिठि, ४-६ मधुच्छन्दा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५२७३. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । तैयार किया गया सोमरस आपके लिए समर्पित है, उसका पान करके आप श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों ॥१ ॥

५२७४. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्र सुनते ही (संकेत मात्र से) रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से, आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं को सुनें ॥१ ॥

५२७५. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३ ॥

हे सोमपायी इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोमयज्ञकर्त्ता साधक, सोमपान के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

५२७६. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४ ॥

सामगान के साधक गाये जाने योग्य बृहत् साम की स्तुतियों से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते हैं । इसी तरह याज्ञिक भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्र की ही स्तुति करते हैं ॥४ ॥

५२७७. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५ ॥

वज्रधारी, स्वर्ण से आभूषित इन्द्रदेव, वचन के संकेत मात्र से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥५ ॥

['वीर्यं वा अश्वः !' के अनुसार पराक्रम ही अश्व है । जो पराक्रमी समय पर संकेत मात्र से संगठित हो जाएँ , इन्द्र देवता उनके साथी हैं, जो अहंकारवश बिखरे रहते हैं, वे इन्द्रदेव के प्रिय नहीं हैं ।]

५२७८. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६ ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्थापित किया और सूर्यात्मक इन्द्र ने ही अपनी किरणों से मेघ-पर्वत आदि को दूर हटाया ॥६ ॥

[सूक्त-३९]

[**ऋषि**-मधुच्छन्दा,२-५ गोषूक्ति अश्वसूक्ति । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- गायत्री ।]

५२७९. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! सभी लोगों में उत्तम इन्द्र को, आप सब के कल्याण के लिए हम आमन्त्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥१ ॥

५२८०. व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२ ॥

सोमपान से उत्पन्न उमंग में जब इन्द्रदेव ने बलवान् मेघों को विदीर्ण किया, तो (प्रकारान्तर से) उन्होंने प्रकाशवान् आकाश का भी विस्तार किया ॥२ ॥

५२८१.उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३ ॥

सूर्यरूप हे इन्द्रदेव ! आपने गुफा में स्थित (अप्रकट) किरणों (गौओं) को प्रकट कर उन्हें देहधारियों (अङ्गिराओं) तक पहुँचाया । उन्हें रोके रखने वाला असुर (बल) नीचा मुँह करके पलायन कर गया ॥३ ॥

५२८२. इन्द्रेण रोचना दिवो दृळहानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित सभी प्रकाशवान् नक्षत्रों को इन्द्रदेव ने सुदृढ़ तथा समृद्ध किया । उन नक्षत्रों को कोई भी उनके स्थान से च्युत नहीं कर सकता ॥४ ॥

५२८३. अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार समुद्र की लहरें उछलती चलती हैं, उसी प्रकार आपके लिए की गयी प्रार्थनाएँ शीघ्रता से पहुँचकर आपके उत्साह को बढ़ाती हैं ॥५ ॥

[सूक्त-४०]

[**ऋषि**- मधुच्छन्दा । **देवता**- १-२ इन्द्र, ३ मरुद्‌गण । **छन्द**- गायत्री ।]

५२८४. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१ ॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, समान तेजवाले मरुद्‌गण, निर्भय रहने वाले इन्द्र के साथ (संगठित हुए) सुशोभित हैं। **[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है ।]**

५२८५. अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥२ ॥

अत्यन्त तेजस्वी और पापरहित इन्द्र की कामना करने वालों (मरुद्‌गणों) से यह यज्ञ सुशोभित होता है ॥

५२८६. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥३ ॥

यज्ञीय नामवाले, धारण करने में समर्थ मरुत् वास्तव में अन्न की (वृद्धि की) कामना से बार-बार (मेघ आदि) गर्भ को प्राप्त होते हैं ॥३ ॥

[वायु के विभिन्न घटक (नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि) उर्वर यौगिकों के रूप में बार-बार मेघों तथा वनस्पतियों के गर्भ में जाते हैं, इसी प्रक्रिया के आधार पर अन्नादि आहारों का उत्पादन बढ़ता है ।]

[सूक्त-४१]

[ऋषि- गोतम । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२८७. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१ ॥

अपराजित इन्द्रदेव ने दधीचि की हड्डियों से (बने हुए वज्र से) निन्यानबे वृत्रों (राक्षसों) का संहार किया ॥१ ॥

५२८८. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥२ ॥

जब इन्द्रदेव ने इच्छा मात्र से यह जान लिया कि (उस) अश्व का सिर पर्वतों के पीछे शर्यणावत् सरोत्र में है, तब (पूर्व मंत्रानुसार) उसका वज्र बनाकर असुरों का वध कर दिया ॥२ ॥

[आचार्य सायण के मतानुसार शाट्यायन लिखित (वेद) इतिहास में यह कथा है । दधीचि के प्रभाव से असुर पराभूत रहते थे । दधीचि के स्वर्ग गमन के पश्चात् वे उद्दण्ड हो उठे । इन्द्र उन्हें जीतने में असमर्थ रहे, तब उन्होंने दधीचि के किसी अवशेष की कामना की, बतलाया कि जिस अश्वमुख से दधीचि ने अश्विनीकुमारों को विद्या दी थी, वह शर्यणावत् सरोवर में है । इन्द्र ने उसे प्राप्त कर वज्र बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की ।]

५२८९. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३ ॥

इस प्रकार मनीषियों ने त्वष्टा (संसार को तुष्ट करने वाले सूर्यदेव) का दिव्यतेज, गतिमान् चन्द्रमण्डल में विद्यमान अनुभव किया ॥३ ॥

[सूक्त-४२]

[ऋषि- कुरुस्तुति । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२९०. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सत्य को बढ़ाने वाली, नवीन कल्पनाओं वाली तथा आठ पदों वाली वाणी को हमने धारण किया है ॥१ ॥

५२९१. अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥२ ॥

शत्रुओं से प्रतिस्पर्धा का भाव रखने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा शत्रुओं का नाश किये जाने पर द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों ही कम्पायमानकिया ॥२ ॥

५२९२. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! पात्र में रखे हुए सोमरस को ग्रहण करके सामर्थ्यशाली होकर आप उठें और अपनी दोनों हनुओं को कम्पायमान किया ॥३ ॥

[सूक्त- ४३]

[ऋषि- त्रिशोक । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२९३. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥१ ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे शत्रुओं का विनाश करके, उन्हें हमसे दूर हटाएँ तथा उनका ऐश्वर्य हमारे पास पहुँचाएँ ॥१॥

५२९४. यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें ऐसी सम्पत्ति प्रदान करें, जो पुष्ट और स्थिर भूमि में विद्यमान हो तथा जिसे किसी ने स्पर्श न किया हो ॥२ ॥

५२९५. यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर ॥३ ॥

हे इन्द्र !आपके द्वारा प्रदत्त जिस वैभव को सभी उचित ढंग से जानते हैं, वह हमें पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें ॥

[सूक्त- ४४]

[**ऋषि-** इरिम्बिठि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५२९६. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! आप , मनुष्यों में भली प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त, स्तुति किये जाने योग्य, शत्रुजयी नेतृत्व क्षमता सम्पन्न, महान् इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥१ ॥

५२९७. यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे ॥२ ॥

जिस प्रकार समस्त जल-प्रवाह समुद्र में मिलकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार समस्त स्तुतियों तथा कीर्तियों से इन्द्रदेव सुशोभित होते हैं ॥२ ॥

५२९८. तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्। महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३ ॥

हम महान् धन की प्राप्ति के लिए रणक्षेत्र में प्रबल पुरुषार्थ करने वाले, शक्तिशाली, महान् राजा इन्द्रदेव की श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा अभ्यर्थना करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-४५]

[**ऋषि-** शुनः शेप (देवरातापरनामा) । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५२९९. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस स्नेह से कपोत गर्भ धारण की इच्छावाली कपोती के पास गमन करता है, उसी प्रकार स्नेहपूर्वक यह सोमरस आपके लिए प्रस्तुत है । आप इसे स्वीकार करें ॥१ ॥

५३००. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥२ ॥

हे धनाधिपति, स्तुत्य और वीर इन्द्रदेव ! वैभव सम्पन्न आपके विषय में ये स्तोत्र सत्यसिद्ध हों ॥२ ॥

५३०१. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥३ ॥

हे सैकड़ों (यज्ञादि) श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! युद्ध (जीवन संग्राम) में हमारे संरक्षण के लिए आप सन्नद्ध रहें । अन्य देवों के उपस्थित रहने पर भी हम आपकी ही स्तुति करेंगे ॥३ ॥

[सूक्त- ४६]

[**ऋषि-** इरिम्बिठि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५३०२. प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु। सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव धनवानों से ऐश्वर्य का दान कराने वाले, संग्राम में शौर्य दिखाने वाले तथा अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा रिपुओं को परास्त करने वाले हैं ॥१ ॥

५३०३. स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥२ ॥

प्रतिपालक इन्द्रदेव अनेकों द्वारा आवाहित किये जाते हैं । वे रक्षण-साधनों रूपी अपनी नाव के द्वारा समस्त रिपुओं से हमें पार लगा दें (हमारी रक्षा करें) ॥२ ॥

५३०४. स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च। अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥३ ॥

हे इन्द्र !आप हमें शक्ति और धन-धान्य पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करें ।श्रेष्ठ मार्ग प्रदर्शित करते हुए हमें सुखी बनाएँ।

[सूक्त- ४७]

[**ऋषि-** सुकक्ष, ४-६, १०-१२ मधुच्छन्दा, ७-९ इरिम्बिठि, १३-२१ प्रस्कण्व। **देवता-**१-१२इन्द्र, १३-२१ सूर्य। **छन्द-** गायत्री।]

५३०५. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत् ॥१ ॥

वृत्र के संहार के लिए हम इन्द्रदेव को स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं। वे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव शक्ति-सम्पन्न एवं पराक्रमी वीर हों ॥१ ॥

५३०६. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव दान देने के लिए प्रख्यात हैं। वे बलवान् बनने के लिए सोमपान करते हैं। प्रशंसनीय कार्य करने वाले वे देव सोम पिलाये जाने योग्य हैं ॥२ ॥

५३०७. गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥३ ॥

वज्रपाणि, स्तुतियों से प्रशंसित, तेजस्वी, वीर और अपराजेय इन्द्रदेव साधकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

५३०८. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४ ॥

सामगान के साधक गाये जाने योग्य बृहत् साम की स्तुतियों (गाथा) से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते हैं। इसी तरह याज्ञिक भी मंत्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की ही स्तुति करते हैं ॥४ ॥

[गाथा शब्द गान या पद्य के अर्थ में आया है, इसे मंत्र या ऋक् के स्तर का नहीं माना जा सकता।]

५३०९. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५ ॥

वज्रधारी, स्वर्ण वस्त्र मण्डित इन्द्रदेव, वचन के संकेत मात्र से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥५ ॥

['वीर्यं वा अश्वः,' के अनुसार पराक्रम ही अश्व है। जो पराक्रमी समय पर संकेत मात्र से संगठित हो जाएँ, इन्द्रदेव उनके साथी हैं, जो अहंकारवश बिखरे रहते हैं, वे इन्द्रदेव के प्रिय नहीं हैं।]

५३१०. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६ ॥

(देव शक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव के उच्चाकाश में स्थापित किया और सूर्यात्मक इन्द्र ने ही अपनी किरणों से मेघ, पर्वत आदि को दूर हटाया ॥६ ॥

५३११. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें। तैयार किया गया सोमरस आपके लिए समर्पित है, उसका पान करके आप श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों ॥७ ॥

५३१२. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! मन्त्र सुनते ही (संकेत मात्र से) रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से, आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं को सुनें ॥८ ॥

५३१३. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे ॥९ ॥

हे सोमपायी इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोम यज्ञकर्ता साधक, सोमपान के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥९ ॥

५३१४. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥१० ॥

ब्रध्न (बाँधकर रखने वाले) तेजस्वी (इन्द्र) स्थित रहते हुए भी चारों ओर घूमने वालों को जोड़कर रखते हैं । वे (इसी प्रकार) प्रकाशमान द्युलोक को प्रकाशित करते हैं ॥१० ॥

५३१५. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥११ ॥

इन (इन्द्र) के रथ के दोनों पक्षों में कामना योग्य नेता (इन्द्र) का वहन करने वाले विचार एवं संघर्ष क्षमता युक्त दो हरि (गतिशील अश्व) जुड़े रहते हैं ॥११ ॥

[इन्द्र को ब्रध्न-बाँधकर रखने वाली संगठक सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है । वे स्थिर रहकर चारों ओर घूमने वालों को जोड़े रखते हैं । यह प्रक्रिया परमाणुओं से लेकर सौर मण्डल तक सिद्ध होती है । वे न्यूक्लियस के चारों ओर घूमते हुए, केन्द्र से जुड़े रहते हैं, इसी प्रकार चलने वाले ग्रह-उपग्रह अपने केन्द्र से जुड़े रहते हैं । इन्द्र के रथ (इस प्रक्रिया) में दो घोड़े जुड़े हैं । एक शक्ति घूमने वालों को अपनी ओर खींचे रहती है तथा दूसरी उनके बीच की उचित दूरी विचारपूर्वक बनाए रखती है ।]

५३१६. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥१२ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो (प्रतिदिन जन्म लेते हो) ॥१२ ॥

५३१७. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१३ ॥

ये ज्योतिर्मयी रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणियों के ज्ञाता सूर्यदेव की एवं समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं ॥१३ ॥

५३१८. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१४ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के तारा मण्डल वैसे ही छिप जाते हैं, जैसे (दिन होने पर) चोर छिप जाते हैं ॥१४ ॥

५३१९. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१५ ॥

प्रज्वलित हुई अग्नि की किरणों के समान सूर्यदेव की रश्मियाँ सम्पूर्ण जीव-जगत् को प्रकाशित करती हैं ।

५३२०. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले हैं, समस्त संसार में एकमात्र दर्शनीय प्रकाशक हैं तथा आप ही विस्तृत अन्तरिक्ष को सभी ओर से प्रकाशित करते हैं ॥१६ ॥

५३२१. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१७ ॥

हे सूर्यदेव ! देवों और मनुष्यों के निमित्त आप नियमित रूप से उदित होते हैं । आप सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ॥१७ ॥

५३२२. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥१८ ॥

हे पवित्रकारक देव ! जिस दृष्टि अर्थात् प्रकाश से आप प्राणियों के भरण- पोषण करने वाले मनुष्यों को देखते हैं (प्रकाशित करते हैं) , उसी से हमें भी देखें अर्थात् हमें भी प्रकाशित करें ॥१८ ॥

५३२३. वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१९ ॥

हे सूर्यदेव ! आप दिन एवं रात में समय को विभाजित करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में भ्रमण करते हैं और सभी प्राणियों को देखते हैं ॥१९ ॥

५३२४. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२० ॥

हे सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ! आप तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त सप्तवर्णी किरणरूपी अश्वों के रथ में दिव्यतापूर्वक सुशोभित होते हैं ॥२० ॥

५३२५. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२१ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले ज्ञान-सम्पन्न ऊर्ध्वगामी सूर्यदेव अपने सप्तवर्णी अश्वों से (किरणों से) सुशोभित रथ में अपनी युक्तियों से गमन करते हैं ॥२१ ॥

[यहाँ सप्तवर्णी का तात्पर्य सात रंगों से है, जिसे विज्ञान ने बाद में 'वैनी आहपीनाला' के क्रम से दर्शाया ।].

[सूक्त- ४८]

[**ऋषि-** खिल, ४-६ सार्पराज्ञी । **देवता**-गौ, सूर्य । **छन्द**- गायत्री ।]

५३२६. अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ॥१ ॥

जिस प्रकार विचरणशील गौएँ अपने बछड़े के समीप बार-बार जाती हैं, उसी प्रकार स्तुतिरूप वाणियाँ तेज द्वारा आपका सिञ्चन करती हुईं आपके सामने प्रस्तुत होती हैं ॥१ ॥

५३२७. ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥२ ॥

जिस नवजात शिशु को माताएँ (संरक्षणभाव से) हृदय से लगाती हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ भावना से युक्त स्तुतियाँ तेज से संयुक्त होती हुई इन्द्रदेव को सुशोभित करती हैं ॥२ ॥

५३२८. वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥३ ॥

वज्र, असाध्य रोग या दुर्गुण आदि मरने वालों की ओर ले जाएँ , हमें आयुष्य, घृत (तेज) तथा पय (दुग्धादि पोषक रस) प्राप्त हों ॥३ ॥

५३२९. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४ ॥

गतिमान् तेजस्वी सूर्यदेव प्रकट हो गये हैं । सबसे पहले वे माता पृथ्वी को और फिर पिता स्वर्ग और अन्तरिक्ष को प्राप्त होते हैं ॥४ ॥

५३३०. अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥५ ॥

इन (सूर्यदेव) का प्रकाश आकाश में संचरित होता है । ये (सूर्य रश्मियाँ) प्राण से अपान तक की प्रक्रिया सम्पन्न करती हैं । ये महान् सूर्यदेव द्युलोक को विशेष रूप से प्रकाशित करते हैं ॥५ ॥

५३३१. त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥६ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव दिन की तीस घटियों तक अपनी रश्मियों से प्रकाशित होते हैं । उनकी स्तुति के लिए हम वाणी का आश्रय ग्रहण करते (उनकी स्तुतियाँ करते) हैं ॥६ ॥

[सूक्त- ४९]

[**ऋषि-** खिल, ४-५ नोधा, ६-७ मेध्यातिथि । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- गायत्री, ४-७ प्रगाथ ।]

५३३२. यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन् वृषा ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब अन्तरिक्ष के ऊपर विजय की अभिलाषा से स्तोतागण वाणी का प्रयोग करते हैं, तो देवशक्तियाँ हर्षित होती हैं ॥१ ॥

५३३३. शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२ ॥

हे शक्तिमान् इन्द्र ! आप शिष्ट मनुष्य पर कठोर वाणी का प्रयोग न करें । आप महिमामय दिव्यलोक में आनन्दमग्न हों ॥२ ॥

५३३४. शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति । विमदन् बर्हिरासरन् ॥३ ॥

हे शक्र ! आप कठोरतापूर्वक वाणी का उच्चारण न करें । आप विशिष्ट आनन्द मग्न होकर कुशाओं पर आकर विराजमान होते हैं ॥३ ॥

५३३५. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी सोमरस से तृप्त होने वाले इन्द्रदेव की हम उसी प्रकार स्तुति करते हैं, जैसे गोशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए गौएँ उल्लसित रहती हैं ॥४ ॥

५३३६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५ ॥

देव लोकवासी, उत्तम दानदाता, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव से हम सब प्रकार के ऐश्वर्य, सैकड़ों गौएँ तथा पोषक अन्न की कामना करते हैं ॥५ ॥

५.३३७. तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिस शक्ति से यतियों तथा भृगु ऋषि को धन प्रदान किया था तथा जिस ज्ञान से ज्ञानियों (प्रस्कण्व) की रक्षा की थी, उस ज्ञान तथा बल की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

५३३८. येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस शक्ति से आपने समुद्र तथा विशाल नदियों का निर्माण किया है; वह शक्ति हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाली है ।आपकी जिस महिमा का अनुगमन द्यु तथा पृथ्वीलोक करते हैं, उसका कोई पारावार नहीं ।

[सूक्त- ५०]

[**ऋषि**- मेध्यातिथि । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- प्रगाथ ।]

५३३९. कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! चिर नवीन कोई भी आकार ग्रहण करने वाले बलवान् (इन्द्रदेव) की स्तुति करो । उनकी महिमा को पूरी तरह न गा सकने वाले स्तोता क्या स्वर्ग प्राप्त नहीं करते ?

५३४०. कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐसे कौन से देव हैं, जो आपके निमित्त यज्ञ करते हैं तथा कौन से ऋषि ज्ञानी हैं, जो आपकी स्तुति करके कृपा प्राप्त करते हैं ? हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप सोमरस अभिषुत करने वालों की स्तुति सुनकर उनके पास कब जाते हैं ? ॥२ ॥

[सूक्त- ५१]

[**ऋषि-** प्रस्कण्व, ३-४ पुष्टिगु । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५३४१. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव स्तुति करने वालों को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न बनाते हैं । अतः उत्तम धन की प्राप्ति के लिए जैसे भी संभव हो, उनकी (इन्द्रदेव की) अर्चना करो ॥१ ॥

५३४२. शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२ ॥

जिस प्रकार सेनापति; शत्रु पर चढ़ाई करते समय अपनी सेना का संरक्षण करता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों में अपने साधन लगाने वालों का इन्द्रदेव संरक्षण करते हैं । ऐसे साधन, लोगों को तृप्तिदायक पर्वत के जल (झरने) के समान लाभदायक होते हैं ॥२ ॥

५३४३. प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! जो इन्द्रदेव सोम यज्ञ करने वालों तथा स्तोताओं को सहस्रों प्रकार के इच्छित ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उन बलशाली तथा ऐश्वर्यशाली, यशस्वी इन्द्रदेव की; वाञ्छित सम्पत्ति प्राप्ति के निमित्त प्रार्थना करें ॥३ ॥

५३४४. शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।

गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥४ ॥

जब सुसंस्कृत सोमरस उन इन्द्रदेव को आनन्दित करता है, तब वे सम्पत्तिवानों को पर्वत के सदृश विशाल पदार्थों का भण्डार प्रदान करके, उन्हें तुष्ट करते हैं । उनके पास अडिग रहने वाले तथा भली प्रकार फेंके जाने वाले सैकड़ों अस्त्र-शस्त्र हैं ॥४ ॥

[सूक्त- ५२]

[**ऋषि-** मेध्यातिथि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** बृहती ।]

५३४५. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !जैसे जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार शोधित सोमरस सहित हम आपको झुककर नमन करते हैं । पवित्र यज्ञ में कुश के आसन पर एक साथ बैठकर याजकगण आपकी उपासना करते हैं ॥१ ॥

५३४६. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२ ॥

सभी को निवास देने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस निकालकर याजकगण आपकी स्तुति करते हैं। सोमपान की इच्छा वाले आप, वृषभ जैसा नाद करते हुए कब हमारे यहाँ पधारेंगे ? ॥२ ॥

५३४७. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३ ॥

धनवान् , ज्ञानी हे इन्द्रदेव ! हम आपसे शत्रुनाशक, सुवर्ण कान्तियुक्त, गौ के समान पवित्र धन पाने के इच्छुक हैं। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! कण्ववंशियों (मेधावी पुरुषों) द्वारा स्तुति किये जाने के बाद आप उन्हें हजारों प्रकार के बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त- ५३]

[**ऋषि-** मेध्यातिथि। **देवता-** इन्द्र। **छन्द-** बृहती।]

५३४८. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१ ॥

सोमयज्ञ में एक ही स्थान पर विद्यमान होकर सोमपान करने वाले अत्यधिक वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव को कौन नहीं जानता ? सोमपान से प्रमुदित, शिरस्त्राण धारण किये हुए इन्द्रदेव अपनी शक्ति से विरोधियों के नगरों को विनष्ट कर देते हैं ॥१ ॥

५३४९. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२ ॥

अपने ओज से विचरण करने वाले हमारे लिए सम्माननीय हे इन्द्रदेव ! आप इस सोमयज्ञ में पधारें। शत्रु की खोज में घूमने वाले, मतवाले हाथी के समान रथ द्वारा यज्ञ में जाने से आपको कोई रोक नहीं सकता ॥२ ॥

५३५०. य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३ ॥

जो शस्त्रों से सुसज्जित युद्धभूमि में स्थिर रहने वाले हैं, ऐसे अपराजेय, पराक्रमी, वैभवशाली इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनकर दूसरे स्थान पर न जाकर इस यज्ञ में ही पधारें ॥३ ॥

[सूक्त- ५४]

[**ऋषि-** रेभ। **देवता-** इन्द्र। **छन्द-** अतिजगती, २-३ उपरिष्टाद् बृहती।]

५३५१. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१ ॥

(ऋषियों या देवों ने) सेनानायक, पराक्रमी, संगठित सेना से युक्त, शस्त्रास्त्र धारण करने वाले इन्द्रदेव को प्रकट किया। वे शत्रुहन्ता, उग्र, तीव्र गति से कार्य करने वाले इन्द्रदेव महिमामय हैं ॥१ ॥

५३५२. समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥२ ॥

रेभादि ऋषियों (याजकों) ने सोमपान के लिए इन्द्रदेव की स्तुति की । जब (स्तोतागण), देवलोक के स्वामी, बल एवं वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव की वन्दना करते हैं, तो वे व्रतधारी ओज एवं संरक्षण - साधनों से युक्त हो जाते हैं ॥२ ॥

५३५३. नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥३ ॥

नम्र स्वभाव वाले विद्वान् (रेभ आदि) नेत्रों एवं वाणी से इन्द्रदेव को नमस्कार करते हैं । किसी से द्रोह न करने वाले हे श्रेष्ठ, तेजस्वी स्तोताओ ! आप भी इन्द्रदेव के कानों को प्रिय लगने वाली ऋचाओं से उनकी स्तुति करें ॥३ ॥

[सूक्त- ५५]

[**ऋषि-** रेभ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-**१ अतिजगती, २-३ बृहती ।]

५३५४. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१ ॥

धनवान्, वीर, महाबलशाली, अपराजेय इन्द्रदेव को हम सहायतार्थ बुलाते हैं । सबसे महान्, यज्ञों में पूज्य इन्द्रदेव की स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं । वे वज्रधारी ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हमारे सभी मार्ग सुगम बनाएँ ॥१ ॥

५३५५. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२ ॥

आत्मशक्ति सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप राक्षसों से जीतकर लाये गये धन से स्तोताओं का संरक्षण करें और जो आपका आवाहन करते हैं, उनकी वृद्धि करें ॥२ ॥

५३५६. यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके पास जो गौएँ, अश्व तथा अविनाशी ऐश्वर्य विद्यमान है, उसे आप सोमयागी तथा दक्षिणा प्रदान करने वाले याजकों को प्रदान करें । आप उसे सम्पत्ति अर्जित करने वाले कृपण जमाखोरों को न दें ॥३ ॥

[सूक्त- ५६]

[**ऋषि-** गोतम । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** पंक्ति ।]

५३५७. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१ ॥

हर्ष और उत्साहवर्धन की कामना से स्तोताओं द्वारा इन्द्रदेव के यश का विस्तार किया जाता है, अत: छोटे और बड़े सभी युद्धों में, हम रक्षक इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

५३५८. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिदः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सैन्यबलों से युक्त हैं । आप अनुचरों की वृद्धि करने वाले और उन्हें विपुल धन देने वाले हैं । आप सोमयाग करने वाले यजमान के लिए विपुल धन- प्राप्ति की प्रेरणा देने वाले हैं ॥२ ॥

५३५९. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३ ॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर शत्रुजयी ही धन प्राप्त करते हैं । हे इन्द्रदेव ! युद्धारम्भ होने पर मद टपकाने वाले अश्वों को आप अपने रथ में जोड़ें । आप किसका वध करें, किसे धन दें ? यह आपके ऊपर निर्भर है । अत: हे इन्द्रदेव ! हमें ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥३ ॥

५३६०. मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ कार्यों में सोमरस से प्रफुल्लित होकर आप हमें गौएँ आदि विपुल धन देने वाले हैं । आप हमें दोनों हाथों से सैकड़ों प्रकार का वैभव प्रदान करें । हम वीरतापूर्वक यश के भागीदार बनें ॥४ ॥

५३६१. मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल वृद्धि के लिए, हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए और अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे यज्ञस्थल में पधारें तथा सोमपान करके हर्षित हों । आप विपुल सम्पदाओं के स्वामी माने गये हैं । आप कामनाओं को पूरा करके हमारी रक्षा करने वाले हैं ॥५ ॥

५३६२. एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये सभी प्राणी आपके वरण करने योग्य पदार्थों की वृद्धि करने वाले हैं । हे स्वामी इन्द्रदेव ! आप कृपणों के गुप्त धन को जानते हैं, उस धन को प्राप्त कर हमें प्रदान करें ॥६ ॥

[लोभियों के द्वारा संचित धन अनुपयोगी स्थिति में पड़ा रहता है । वर्तमान अर्थशास्त्री भी इसे समाज के लिए हानिप्रद मानते हैं । ऋषि ऐसे रुके हुए अनुपयोगी धन को प्रवाह में लाने की प्रार्थना इन्द्रदेव से करते हैं ।]

[सूक्त- ५७]

[**ऋषि-** मधुच्छन्दा, ४-७ विश्वामित्र, ८-१० गृत्समद,११-१६ मेध्यातिथि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री, ७ अनुष्टुप्, ११-१६ बृहती ।]

५३६३. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥

(गो-दोहन करने वाले के द्वारा) जिस प्रकार प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिए सौन्दर्यपूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५३६४. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥२ ॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन- यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥२ ॥

५३६५. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमपान कर लेने के अनन्तर आपके समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर हम आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें । आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें ॥३ ॥

५३६६. शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आप अत्यन्त बल-प्रदायक दीप्तिमान्, चैतन्यता लाने वाले सोमरस का पान करें ॥४ ॥

५३६७. इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥५ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! पाँच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) में जो इन्द्रियाँ (विशेष सामर्थ्य) हैं, उन्हें आपकी शक्तियों के रूप में हम वरण करते हैं ॥५ ॥

५३६८. अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह महान् हविष्यान्न आपके पास जाए। आप शत्रुओं के लिए दुर्लभ तेजस्वी सोमरस ग्रहण करें। हम आपके बल को प्रवृद्ध करते हैं ॥६ ॥

५३६९.अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि।

हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ प्रदेश से हमारे पास आएँ। दूरस्थ देश से भी आएँ। आपका जो उत्कृष्ट लोक है, उस लोक से भी आप यहाँ आएँ ॥७ ॥

५३७०. इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥८ ॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव महान् पराभवकारी भय को शीघ्र ही दूर करते हैं ॥८ ॥

५३७१. इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥९ ॥

यदि बलशाली इन्द्रदेव हमारा संरक्षण करेंगे, तो हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता। वे हर प्रकार से हमारा कल्याण ही करेंगे ॥९ ॥

५३७२. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१० ॥

शत्रुविजेता, प्रज्ञावान् इन्द्रदेव सभी दिशाओं से हमें निर्भय बनाएँ ॥१० ॥

५३७३. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥११ ॥

सोमयज्ञ में एक ही स्थान पर विद्यमान होकर सोमपान करने वाले, अत्यधिक वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव को कौन नहीं जानता ? सोमपान से प्रमुदित, शिरस्त्राण धारण किये हुए इन्द्रदेव अपनी शक्ति से विरोधियों के नगरों को विनष्ट कर देते हैं ॥११ ॥

५३७४. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥१२ ॥

अपने ओज से विचरण करने वाले हमारे लिए सम्माननीय हे इन्द्रदेव ! आप इस सोमयज्ञ में पधारें। शत्रु की खोज में घूमने वाले मतवाले हाथी के समान, रथ द्वारा यज्ञ में जाने से आपको कोई रोक नहीं सकता ॥१२ ॥

५३७५. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥१३ ॥

जो शस्त्रों से सुसज्जित युद्धभूमि में स्थिर रहने वाले हैं, ऐसे अपराजेय, पराक्रमी वैभवशाली इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनकर, दूसरे स्थान पर न जाकर इस यज्ञ में पधारें ॥१३ ॥

५३७६. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१४ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! जैसे जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, वैसे ही शोधित सोम सहित हम आपको झुककर नमन करते हैं । पवित्र यज्ञ में कुश के आसन पर एक साथ बैठकर याजकगण आपकी उपासना करते हैं ।

५३७७. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥१५ ॥

सभी को निवास देने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस निकालकर याजकगण आपकी स्तुति करते हैं । सोमपान की इच्छा वाले आप, वृषभ जैसा नाद करते हुए कब हमारे यहाँ पधारेंगे ? ॥१५ ॥

५३७८. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥१६ ॥

धनवान् , ज्ञानी हे इन्द्रदेव ! हम आप से शत्रुनाशक, सुवर्ण कान्तियुक्त, गौ के समान पवित्र धन पाने के इच्छुक हैं । हे शूरवीर इन्द्रदेव ! कण्ववंशियों (मेधावी पुरुषों) द्वारा स्तुति किये जाने के बाद आप उन्हें हजारों प्रकार के बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त- ५८]

[**ऋषि-** नृमेध, ३-४ भरद्वाज । **देवता-** १-२ इन्द्र, ३-४ सूर्य । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५३७९. श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥१ ॥

जैसे किरणें सूर्य के आश्रय में रहती हैं, वैसे ही इन्द्रदेव सम्पूर्ण जगत् के आश्रयदाता हैं । इन्द्रदेव से हम अपने भाग की कामना करते हैं ; क्योंकि वे ही जन्म लिये हुए तथा जन्म लेने वालों को अपना-अपना भाग प्रदान करते हैं ॥१ ॥

५३८०. अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! आप सत्पुरुषों को धनादि दान करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करें; क्योंकि इनके दान कल्याणकारी प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं । जब इन्द्रदेव अपने मन के अनुरूप फल देने की प्रेरणा देते हैं, तो उपासक की कामना को नष्ट नहीं करते ॥२ ॥

५३८१. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥३ ॥

प्रेरक, अदितिपुत्र हे इन्द्रदेव ! यह सुनिश्चित सत्य है कि आप महान् तेजस्वी हैं । हे देव ! आप महान् शक्तिशाली भी हैं, आपकी महानता का हम गुणगान करते हैं ॥३ ॥

५३८२. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४ ॥

हे सूर्यदेव ! आप अपने यश के कारण महान् हैं । देवों के बीच विशेष महत्त्व के कारण आप महान् हैं । आप तमिस्रा (अन्धकार) रूपी असुरों का नाश करने वाले हैं । पुरोहित के समान देवों का नेतृत्व करने वाले हैं । आपका तेज अदम्य, सर्वव्यापी और अविनाशी है ॥४ ॥

[सूक्त- ५९]

[**ऋषि-** मेध्यातिथि, ३-४ वसिष्ठ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५३८३. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१ ॥

मधुरतायुक्त श्रेष्ठ वाणियाँ (स्तुतियाँ) प्रकट हो रही हैं । विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्य प्राप्ति के माध्यम, सतत रक्षा करने वाले मधुर स्तोत्र रथ के समान (देवों तक इच्छित भावों या हव्यों को) पहुँचाते हैं ॥१ ॥

५३८४. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२ ॥

कण्व गोत्रोत्पन्न ऋषियों की भाँति स्तुति करते हुए भृगु गोत्रोत्पन्न ऋषियों ने इन्द्रदेव को चारों ओर से उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार सूर्य रश्मियाँ इस संसार में चारों ओर फैल जाती हैं । प्रियमेध ने स्तुति करते हुए महान् इन्द्रदेव का पूजन किया ॥२ ॥

५३८५. उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥३ ॥

जो यजमान हरि (अश्व) युक्त इन्द्रदेव के लिए सोमरस तैयार कर अर्पित करते हैं, वे इन्द्रदेव की कृपा से प्राप्त बल द्वारा शत्रु को जीतते हैं ॥३ ॥

५३८६. मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥४ ॥

(हे स्तोतागण !) यजनीय देवताओं के बीच इन्द्रदेव के लिए बड़े- सुगढ़ एवं सुन्दर- शोभनीय स्तोत्र अर्पित करो । जिसके स्तोत्रों को इन्द्रदेव मन से स्वीकार कर लेते हैं, उसे किसी प्रकार का बन्धन, कष्ट नहीं दे सकता ॥४ ॥

[सूक्त- ६०]

[**ऋषि-** सुतकक्ष अथवा सुकक्ष, ४-६ मधुच्छन्दा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५३८७. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! रणक्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले, युद्ध में अडिग रहने वाले आप शूरवीर हैं । आपका मन (संकल्पशील) प्रशंसा के योग्य है ॥१ ॥

५३८८. एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त साधन सभी याजक प्राप्त करते हैं । आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ।

५३८९. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३ ॥

अन्नाधिपति, बलवान् हे इन्द्रदेव ! आप गोदुग्ध में मिलाये गये मधुर सोमरस का पान कर आनन्दित हों । आलसी ब्राह्मण की भाँति निष्क्रिय न रहें ॥३ ॥

५३९०. एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४ ॥

इन्द्रदेव की अति मधुर और सत्यवाणी उसी प्रकार सुख देती है, जिस प्रकार गोधन के दाता और पके फल वाली शाखाओं से युक्त वृक्ष यजमानों (हविदाताओं) को सुख देते हैं ॥४ ॥

५३९१. एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टदात्री और संरक्षण प्रदान करने वाली जो विभूतियाँ हैं; वे हमारे जैसे सभी दानदाताओं (अपने साधन श्रेष्ठ कार्य में नियोजन करने वालों) को तत्काल प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

५३९२. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६ ॥

दाता की स्तुतियाँ अति मनोरम एवं प्रशंसनीय हैं । ये सब सोमपान करने वाले इन्द्रदेव के लिए हैं ॥६ ॥

[सूक्त- ६१]

[**ऋषि-** गोषूक्तिअश्वसूक्ति । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** उष्णिक् ।]

५३९३. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥

हे वज्रपाणि इन्द्रदेव ! शक्तिशाली, संग्राम में शत्रु को पराजित करने वाले, कल्याणकारक तथा अश्वों के लिए सेवनीय आपके उत्साह की हम प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

५३९४. येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने दीर्घजीवी मनुष्य के हित के लिए ज्योतिष्मान् (सूर्यादि नक्षत्र) प्रकाशित किये हैं । आप इस बर्हि (यज्ञ वेदिका) पर विराजमान होते हैं ॥२ ॥

५३९५. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सनातन स्तुतिकर्त्ता आज भी आपके बल की स्तुति करते हैं । पर्जन्य की वर्षा करने वाले जल को आप प्रतिदिन मुक्त करें अर्थात् समयानुसार वर्षा करते रहें ॥३ ॥

५३९६. तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! अनेक यजमानों द्वारा स्तुतिपूर्वक आवाहन किये जाने वाले, प्रशंसा के योग्य उन महान् इन्द्रदेव की विभिन्न स्तोत्रों से स्तुति करो ॥४ ॥

५३९७. यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरींरज्राँ अपः स्व वृषत्वना ॥५ ॥

वे इन्द्रदेव अपनी शक्ति से शीघ्रगामी बादलों तथा गतिमान् जल को धारण करते हैं । उनके महान् बल को द्युलोक और पृथ्वीलोक ग्रहण करते हैं ॥५ ॥

५३९८. स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥६ ॥

बहुप्रशंसित हे इन्द्रदेव ! आप अपनी दिव्य कान्ति से आलोकित होते हैं । ऐश्वर्य तथा कीर्ति को प्राप्त करने के निमित्त आप अकेले ही वृत्रासुर का वध करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त-६२]

[**ऋषि-** सौभरि, ५-७ नृमेध, ८-१० गोषूक्तिअश्वसूक्ति । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ, ५-१० उष्णिक् ।]

५३९९. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥१ ॥

वज्रधारी, अनुपम हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सांसारिक गुण-सम्पन्न, शक्तिशाली मनुष्यों को लोग बुलाते हैं; उसी प्रकार अपनी रक्षा की कामना से विशिष्ट सोमरस द्वारा तृप्त करते हुए, हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५४००. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२ ॥

हे शत्रु-संहारक देवेन्द्र ! कर्मशील रहते हुए हम अपनी सहायता के लिए तरुण और शूरवीर रूप में विद्यमान आपका ही आश्रय लेते हैं। मित्रवत् सहायता के लिए हम आपका स्मरण करते हैं ॥२ ॥

५४०१. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे। सखाय इन्द्रमूतये ॥३ ॥

हे मित्रो ! पूर्वकाल से ही जो, धन- वैभव प्रदान करने वाले हैं, उन इन्द्रदेव की हम आपके कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

५४०२. हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४ ॥

हरित अश्वों वाले, भद्रजनों का पालन करने वाले, रिपुओं को परास्त करने वाले तथा स्तुतियों से प्रसन्न रहने वाले इन्द्रदेव की हम प्रार्थना करते हैं, वे हम स्तुतिकर्त्ताओं को सैकड़ों गौओं तथा अश्वों से भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

५४०३. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥५ ॥

हे उद्गाताओ ! विवेक-सम्पन्न, महान्, स्तुत्य, ज्ञानवान् इन्द्रदेव के निमित्त आप लोग बृहत्साम (नामक स्तोत्रों) का गायन करें ॥५ ॥

५४०४. त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥६ ॥

सूर्य को प्रकाशित करने वाले, दुष्ट - दुराचारियों को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप विश्वकर्मा हैं, विश्व के प्रकाश हैं, महान् हैं ॥६ ॥

५४०५. विभ्राजं ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥७ ॥

अपने तेज का विस्तार करते हुए सूर्य को प्रकाशित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप पधारें। समस्त देवतागण आपसे मित्रतापूर्वक सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं ॥७ ॥

५४०६. तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥८ ॥

हे स्तोताओ ! अनेक यजमानों द्वारा स्तुतिपूर्वक आवाहन किये जाने वाले, प्रशंसा के योग्य उन महान् इन्द्रदेव की विभिन्न स्तोत्रों से स्तुति करो ॥८ ॥

५४०७. यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी। गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥९ ॥

वे इन्द्रदेव अपनी शक्ति से शीघ्रगामी बादलों तथा गतिमान् जल को धारण करते हैं। उनके महान् बल को द्युलोक और पृथ्वीलोक ग्रहण करते हैं ॥९ ॥

५४०८. स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥१० ॥

बहुप्रशंसित हे इन्द्रदेव ! आप अपनी दिव्य कान्ति से आलोकित होते हैं। ऐश्वर्य तथा कीर्ति को प्राप्त करने के निमित्त आप अकेले ही वृत्रासुर का वध करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त- ६३]

[**ऋषि-** १,२,३ (पूर्वार्द्ध) भुवन अथवा साधन, ३ (उत्तरार्द्ध) भरद्वाज, ४-६ गोतम , ७-९ पर्वत । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ४-९ उष्णिक् ।]

५४०९. इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥१ ॥

इन समस्त लोकों को हम शीघ्र ही प्राप्त करें । इन्द्रदेव और सभी देवगण हमारे लिए सुख- शान्ति की प्राप्ति में सहायक हों । इन्द्रदेव और आदित्यगण हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ , शरीर को निरोग बनाएँ और हमारी संतानों को सद्व्यवहार के लिए प्रेरित करें ॥१ ॥

५४१०. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२ ॥

इन्द्रदेव, आदित्यों और मरुद्गणों के साथ पधार कर हमारे शरीरों को सुरक्षा प्रदान करें । जिस समय देवगण वृत्रादि असुरों का संहार करके अपने स्थान की ओर लौटे , उस समय अमर देवत्व की सुरक्षा हो सकी ॥२ ॥

५४११. प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥३ ॥

स्तोताओं ने इन्द्रादि देवों के निमित्त श्रेष्ठ यज्ञादि कर्मों से युक्त स्तुतियाँ प्रस्तुत की । उसके पश्चात् सभी ने अन्तरिक्ष में बरसते हुए जल को देखा । हे इन्द्रदेव ! आप हम स्तोताओं को अन्नादि से युक्त करें । हम वीर पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर शतायु हों तथा सुखमय जीवनयापन करें ॥३ ॥

५४१२. य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥४ ॥

हे प्रिय याजको ! दानशील होने के कारण मनुष्यों को धन देने वाले, प्रतिकार न किये जाने वाले, वे अकेले इन्द्रदेव ही सभी (प्राणियों) के अधिपति हैं ॥४ ॥

५४१३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥

वे इन्द्र हमारी स्तुतियाँ कब सुनेंगे ? और आराधना न करने वालों को क्षुद्र पौधे की भाँति कब नष्ट करेंगे ? ॥

[श्रेष्ठ किसान- माली, निराई करके उन पौधों को उखाड़ देते हैं ; जो फसल के स्तर के अनुरूप नहीं है । हीन मानस वाले व्यक्ति मनुष्यता को कलंकित न करें, इस हेतु इन्द्रदेव से क्षुद्रता के उन्मूलन की प्रार्थना की गई है ।]

५४१४. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥

असंख्यों में से जो यजमान सोमयज्ञ करके आपकी आराधना करता है, उसे हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्र बल सम्पन्न बना देते हैं ॥६ ॥

[सोम पोषक तत्त्व है । उसे यज्ञीय भाव से सभी तक पहुँचाना सोमयज्ञ कहा जाता है । इस प्रकार के यज्ञीय कार्यों में अपनी क्षमता का नियोजन करने वालों को ही शक्ति अनुदान दिये जाते हैं ।]

५४१५. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्य१त्त्रिणं तमीमहे ॥७ ॥

सोमपान करने वालों में श्रेष्ठ हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप उल्लसित होकर कार्यों के प्रति जागरूक होते हैं । जिस बल से आप घातक असुरों (आसुरी वृत्तियों) को नष्ट करते हैं, हम आपसे वही सामर्थ्य माँगते हैं ॥७ ॥

५४१६. येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम्। येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस शक्ति से आपने 'अंगिरा वंशीय अध्रिगु' की, अंधेरे को नष्ट करने वाले सूर्य की तथा समुद्र या अन्तरिक्ष की रक्षा की थी, उसी शक्ति की हम आपसे याचना करते हैं ॥८ ॥

५४१७. येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः। पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिस बल से विशाल जल राशियों को रथ की भाँति समुद्र की ओर प्रेरित (गतिशील) किया, उसी बल को हम यज्ञीय पथ पर गमन करने के लिए आपसे माँगते हैं ॥९ ॥

[सूक्त- ६४]

[**ऋषि-** नृमेध, ४-६ विश्वमना । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** उष्णिक् ।]

५४१८. एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः। गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥१ ॥

सर्वप्रिय, सभी शत्रुओं को जीतने वाले, अपराजेय हे इन्द्रदेव ! पर्वत के सदृश सुविशाल, द्युलोक के अधिपति आप (अनुदान देने हेतु) हमारे पास पधारें ॥१ ॥

५४१९. अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी। इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥

सत्यपालक, सोमपायी हे इन्द्रदेव ! आप आकाश और पृथ्वी दोनों लोकों को अपने प्रभाव में लेने में समर्थ हैं। हे द्युलोक के स्वामी ! आप सोमयाग - कर्त्ताओं को उन्नति प्रदान करने वाले हैं ॥२ ॥

५४२०. त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दुष्टों के अविनाशी पुरों का नाश करने वाले, अज्ञान मिटाने वाले, यज्ञकर्त्ता, मनुष्यों के मनोबल को बढ़ाने वाले तथा प्रकाशलोक के स्वामी है ॥३ ॥

५४२१. एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः। एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥

हे ऋत्विग्गण ! मधुर सोमपान से आनन्दित होने वाले इन्द्रदेव को यह रस समर्पित करो। पराक्रमी और निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले इन्द्रदेव ही स्तोताओं द्वारा सर्वदा प्रशंसित होते हैं ॥४ ॥

५४२२. इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्। उदानंश शवसा न भन्दना ॥५ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! ऋषि प्रणीत आपकी स्तुतियों को अपनी सामर्थ्य एवं तेजस्विता से अन्य कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते ॥५ ॥

५४२३. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः। अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥६ ॥

ऐश्वर्य की कामना से हम उन वैभवशाली इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, जो प्रमादरहित होकर याजकों के यज्ञों (सत्कर्मों) से वृद्धि को (पोषण को) प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ६५]

[**ऋषि-** विश्वमना । **देवता-** इन्द्र ।**छन्द-** उष्णिक् ।]

५४२४. एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम्। कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१ ।

हे मित्रो ! शीघ्र आओ ; हम उन स्तुत्य, वीर इन्द्रदेव की प्रार्थना करें, जो अकेले ही सभी शत्रुओं को परास्त करने में सक्षम हैं ॥१ ॥

५४२५. अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२ ॥

हे याजको ! गौ (गाय, वाणी अथवा इन्द्रियों) का वध न करके उसको संरक्षित करने वाले तेजस्- सम्पन्न इन्द्रदेव के निमित्त घृत एवं शहद से भी अधिक सुस्वादयुक्त स्तुति वचनों का पाठ करें ॥२ ॥

५४२६. यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव असीम शौर्य से सम्पन्न हैं । उनकी सम्पत्ति को कोई प्राप्त नहीं कर सकता । उनका दान, प्रकाश के समान सबके लिए उपलब्ध है ॥३ ॥

[सूक्त-६६]

[**ऋषि-** विश्वमना । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** उष्णिक् ।]

५४२७. स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! वे इन्द्रदेव अहिंसित शक्ति- सम्पन्न तथा समस्त जगत् को नियमित करने वाले हैं । आप व्यश्व ऋषि के सदृश उनकी प्रार्थना करें । वे दानियों को सराहनीय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१ ॥

५४२८. एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२ ॥

हे विश्वमना वैयश्व ऋषे ! वे विद्वान् इन्द्रदेव मनुष्यों के अन्दर नौ प्राणों के अतिरिक्त दसवें प्राण (मुख्य प्राण) की तरह विद्यमान रहते हैं- ऐसे पूजनीय इन्द्रदेव की आप स्तुति करें ॥२ ॥

५४२९. वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥३ ॥

जिस प्रकार शोधनकर्त्ता (सूर्य, अग्नि आदि) सब ओर गतिशील (प्राणियों- पक्षियों) को जानते (उन्हें शुद्ध बनाते) हैं, उसी प्रकार हे वज्रपाणे ! आप निर्ऋतियों (राक्षसों- सभी लोकों) को नियंत्रित करना जानते हैं ॥३ ॥

[सूक्त - ६७]

[**ऋषि-** परुच्छेप, ४-७ गृत्समद । **देवता-** इन्द्र, २ , ४ मरुद्गण, ३, ५ अग्नि, ७ द्रविणोदा । **छन्द-** अत्यष्टि, ४-७ जगती ।]

५४३०. वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो
देवानामव द्विषःसुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥१ ॥

सोमयाग करने वाले यजमान धनयुक्त आवास प्राप्त करते हैं । वे ही दुष्टों और देव- विरोधियों को दूर करते हैं । जो याजक अवरोधों से घेरे न जाकर सहस्रों प्रकार के दिव्य धन को जीतना चाहते हैं ; इन्द्रदेव उन्हें पर्याप्त धन देते हैं, पर्याप्त (दिव्य- सम्पदा) देते हैं ॥१ ॥

५४३१. मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्
पुरोत जारिषुः । यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥२ ॥

हे मरुद्गणो ! पुरातनकाल की आपकी पराक्रमी सामर्थ्यों को हम कभी विस्मृत न करें, उसी प्रकार हमारी कीर्ति सदैव अक्षुण्ण रहे तथा हमारे नगरों का विध्वंस न हो । आश्चर्यप्रद, स्तुतियोग्य और अमृतरूपी रस प्रदान

करने वाली गौओं से सम्बन्धित तथा मनुष्य मात्र के लिए जो धन सम्पदाएँ हैं, वे सभी युगों- युगों तक हमारे पास विद्यमान रहें । आप हमें कठिनाई से प्राप्त होने योग्य सम्पदाएँ भी प्रदान करें ॥२ ॥

५४३२. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥३ ॥

दैवी गुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ कर्म के सम्पादक, जो अग्निदेव देवताओं के समीप जाने वाली ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारयुक्त होकर, अनवरत घृतपान की अभिलाषा करते हैं; उन देव - आवाहनकर्त्ता, दानकर्त्ता, सबके आश्रयभूत, अरणिमन्थन से उत्पन्न, शक्ति के पुत्र, सर्वज्ञान- सम्पन्न, शास्त्रज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी के सदृश; अग्निदेव को हम स्वीकार करते हैं ॥३ ॥

५४३३. यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत । आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥४ ॥

यज्ञीय कार्य में सहायक, भूमि को सिञ्चित करने वाले, शस्त्रों से सुशोभित, आभूषण प्रेमी, भरण-पोषण में समर्थ, देवपुत्र तथा नेतृत्व प्रदान करने वाले हे मरुद्गणो !आप यज्ञ में विराजमान होकर पवित्र सोम का पान करें।

५४३४. आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु । प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृण्णुहि ॥५ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ में देवगणों को सत्कारपूर्वक बुलाएँ । हे होता अग्निदेव ! हमारे यज्ञ की कामना से आप तीनों लोकों में प्रतिष्ठित हों । शोधित सोमरस को स्वीकार करके इस यज्ञ में सोमपान करें, समर्पित किये गये भाग से आप तृप्त हों ॥५ ॥

५४३५. एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः । तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में आएँ । होतागण उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, अत: हमारे आवाहन को सुनकर यज्ञ में बैठकर सुशोभित हों । हे देवो ! याजकों द्वारा शोधित यह सोमरस दुग्ध मिश्रित है , जो शरीर के बल की वृद्धि करने वाला है ; अत: आप हमारे इस यज्ञ में आकर इस सोमरस का पान करें ॥६ ॥

५४३६. यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते । अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥७ ॥

जिन अग्निदेव को हमने पहले भी बुलाया था, उन्हें अब भी आवाहित करते हैं । ये अग्निदेव निश्चित ही याजकों को धन प्रदान करने वाले तथा सभी के स्वामी हैं, आवाहन के योग्य हैं । इन देव के लिए याजकों द्वारा सोमरस शोधित किया गया है । हे अग्निदेव ! इस पवित्र यज्ञ में ऋतु के अनुरूप सोमरस का पान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ६८]

[**ऋषि**- मधुच्छन्दा । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- गायत्री ।]

५४३७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥

गोदोहन करने वाले के द्वारा जिस प्रकार प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिये सौन्दर्य पूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५४३८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥२ ॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन- यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥२ ॥

५४३९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३ ॥

सोमपान कर लेने के अनन्तर हे इन्द्रदेव ! हम आपके अत्यन्त समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें । आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें ॥३ ॥

५४४०.परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४ ॥

हे ज्ञानवानो ! आप उन विशिष्ट बुद्धि वाले, अपराजेय इन्द्रदेव के पास जाकर मित्रों- बन्धुओं के लिए धन-ऐश्वर्य के निमित्त प्रार्थना करें ॥४ ॥

५४४१. उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५ ॥

इन्द्रदेव की उपासना करने वाले उपासक उन (इन्द्रदेव) के निन्दकों को यहाँ से अन्यत्र निकल जाने को कहें; ताकि वे यहाँ से दूर हो जाएँ ॥५ ॥

५४४२. उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुग्रह से समस्त वैभव प्राप्त करें, जिससे देखने वाले सभी शत्रु और मित्र हमें सौभाग्यशाली समझें ॥६ ॥

५४४३. एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत् सखम् ॥७ ॥

(हे याजको !) यज्ञ को श्री - सम्पन्न बनाने वाले, प्रसन्नता प्रदान करने वाले, मित्रों को आनन्द देने वाले इस सोमरस को शीघ्रगामी इन्द्रदेव के लिए भरें (अर्पित करें) ॥७ ॥

५४४४. अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! इस सोमरस को पीकर आप वृत्र आदि प्रमुख शत्रुओं के संहारक सिद्ध हुए हैं । आप समर भूमि में वीर योद्धाओं की रक्षा करें ॥८ ॥

५४४५. तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्धों में बल प्रदान करने वाले आपको हम धनप्राप्ति के लिए हवि अर्पित करते हैं ॥९ ।

५४४६. यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१० ॥

हे याजको ! जो धनों के महान् रक्षक, दुःखों को दूर करने वाले और सोमयाग करने वाले याज्ञिकों से मित्रवत् भाव रखते हैं , उन इन्द्रदेव के लिए आप स्तोत्रों का गान करें ॥१० ॥

५४४७. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥११ ॥

हे स्तोत्रगायक मित्रो ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए स्तुति हेतु शीघ्र आकर बैठो और हर प्रकार से उनका गुणगान करो ॥११ ॥

५४४८. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥१२ ॥

हे याजक मित्रो ! सोम के अभिषुत होने पर शत्रुओं को पराजित करने वाले और ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्रदेव की संयुक्त रूप से स्तुति करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ६९]

[ऋषि- मधुच्छन्दा । देवता- इन्द्र, १२ मरुद्गण । छन्द- गायत्री ।]

५४४९. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर बनाने में सहायक, धन - धान्य से हमें परिपूर्ण करें तथा ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए पोषक अन्न सहित हमारे निकट आएँ ॥१ ॥

५४५०. यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥२ ॥

(हे स्तोताओ !) संग्राम में जिनके अश्वों से युक्त रथों के सम्मुख शत्रु टिक नहीं सकते, उन इन्द्रदेव के गुणों का आप गान करें ॥२ ॥

५४५१. सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥३ ॥

यह निचोड़ा और शुद्ध किया हुआ दही मिश्रित सोमरस, सोमपान की इच्छा करने वाले इन्द्रदेव के भोग हेतु जाता है ॥३ ॥

५४५२. त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥४ ॥

हे उत्तम कर्मवाले इन्द्रदेव ! आप सोमरस पीने के लिए और देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होने के लिए वृद्ध (बड़े) हो जाते हैं ॥४ ॥

५४५३. आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये तीखे (तिक्त स्वाद वाले) सोम, आपके अन्दर प्रवेश करें और आप ज्ञानसम्पन्न देव के लिए कल्याण कारक हों ॥५ ॥

५४५४. त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥६ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ करने वाले इन्द्रदेव ! स्तोत्र आपकी वृद्धि करें । यह उक्थ (स्तोत्र) वचन और हमारी वाणी आपकी महत्ता बढ़ाए ॥६ ॥

५४५५. अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥७ ॥

रक्षणीय की सर्वथा रक्षा करने वाले इन्द्रदेव बल- पराक्रम प्रदान करने वाले विविध रूपों में विद्यमान सोमरूप अन्न का सेवन करें ॥७ ॥

५४५६. मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥८ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे शरीर को कोई भी शत्रु क्षति न पहुँचाए । हमें कोई भी हिंसित न करे, आप हमारे संरक्षक रहें ॥८ ॥

५४५७. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥९ ॥

ब्रध्न (बाँधकर रखने वाले) तेजस्वी (इन्द्र) स्थित रहते हुए भी चारों ओर घूमने वालों को जोड़कर रखते हैं । वे (इसी प्रकार) प्रकाशमान द्युलोक को प्रकाशित किए रहते हैं ॥९ ॥

५४५८. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१०॥

इन (इन्द्र) के रथ के दोनों पक्षों में कामनायोग्य नेता (इन्द्र) का वहन करने वाले विचार एवं संघर्ष क्षमतायुक्त दो हरी (गतिशील-अश्व) जुड़े रहते हैं ॥१०॥

[इन्द्र को ब्रध्न-बाँधकर रखने वाली-संगठक सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है। वे स्थिर रहकर चारों और घूमने वालों जोड़े रखते हैं। यह प्रक्रिया परमाणुओं से लेकर न्यूक्लियस के चारों ओर घूमते हुए केन्द्र से जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार चलने वाले ग्रह - उपग्रह अपने केन्द्र से जुड़े रहते हैं। इन्द्र के रथ (इस प्रक्रिया) में दो घोड़े जुड़े हैं। एक शक्ति घूमने वालों को अपनी ओर खींचे रहती है तथा दूसरी शक्ति उनके बीच की उचित दूरी विचारपूर्वक बनाए रखती है।]

५४५९. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥११॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो (प्रतिदिन जन्म लेते हो)।

५४६०. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥१२॥

यज्ञीय नाम वाले, धारण करने में समर्थ मरुत् वास्तव में अन्न की (वृद्धि की) कामना से बार-बार (मेघ आदि) गर्भ को प्राप्त होते हैं।

[यज्ञ में वायुभूत पदार्थ मेघ आदि के गर्भ में स्थापित होकर उर्वरता को बढ़ाते हैं।]

[सूक्त-७०]

[**ऋषि-** मधुच्छन्दा। **देवता-** इन्द्र, मरुद्गण, ३-५ मरुद्गण। **छन्द-** गायत्री।]

५४६१. वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ किलेबन्दी को ध्वस्त करने में समर्थ, तेजस्वी मरुद्गणों के सहयोग से आपने गुफा में अवरुद्ध गौओं (किरणों) को खोजकर प्राप्त किया ॥१॥

५४६२. देवयन्तो यथ मतिमच्छा विदद् वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥२॥

देवत्व प्राप्ति की कामना वाले ज्ञानी ऋत्विज्, यशस्वी, ऐश्वर्यवान् वीर इन्द्र की बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥२॥

५४६३. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥३॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, समान तेज वाले मरुद्गण निर्भय रहने वाले इन्द्रदेव के साथ (संगठित हुए) सुशोभित होते हैं ॥३॥

[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा- सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है।]

५४६४. अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥४॥

अत्यन्त तेजस्वी और पापरहित इन्द्रदेव की कामना करने वालों (मरुतों) से यह यज्ञ सुशोभित होता है ॥४॥

५४६५. अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥५॥

हे सर्वत्र गमनशील मरुद्गणो ! आप अन्तरिक्ष से, आकाश से अथवा प्रकाशमान द्युलोक से यहाँ पर आएँ; क्योंकि इस यज्ञ में हमारी वाणियाँ आपकी स्तुति कर रही हैं ॥५॥

५४६६. इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः ॥६॥

इस पृथ्वी, अंतरिक्ष अथवा द्युलोक से- कहीं से भी प्रभूत धन प्राप्त करने के लिए, हम इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ॥६॥

५४६७. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥७ ॥

सामगान के साधक नये गाये जाने योग्य बहत्साम की स्तुतियों (गाथा) से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते हैं । इसी तरह याज्ञिक भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की ही स्तुति करते हैं ॥७ ॥

५४६८. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८ ॥

वज्रधारी, स्वर्ण वस्त्र मण्डित इन्द्रदेव, वचन के संकेत मात्र से जुड़ जान वाले अश्वों के साथी हैं ॥८ ॥

५४६९. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥९ ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्था!पित किया और सूर्यात्मक इन्द्र ने ही अपनी किरणों से मेघ-पर्वत आदि को दूर हटाया ॥९ ॥

५४७०. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥१० ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सहस्रों प्रकार के लाभ वाले छोटे- बड़े संग्रामों में वीरतापूर्वक हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

५४७१. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥११ ॥

हम छोटे-बड़े सभी (जीवन) संग्रामों में वृत्रासुर के संहारक, वज्रपाणि इन्द्रदेव को सहायतार्थ बुलाते हैं ॥११ ।

५४७२. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥१२ ॥

सतत दानशील, सदैव अपराजित हे इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए मेघ से जल की वृष्टि करें ॥१२ ॥

५४७३. तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥१३ ॥

प्रत्येक दान के समय, वज्रधारी इन्द्रदेव के सदृश दानी की उपमा कहीं अन्यत्र नहीं मिलती । इन्द्रदेव की इससे अधिक उत्तम स्तुति करने में हम समर्थ नहीं हैं ॥१३ ॥

५४७४. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥१४ ॥

सबके स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करने वाले, शक्तिमान् इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनुदान बाँटने के लिए मनुष्यों के पास उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार वृषभ गौओं के समूह में जाता है ॥१४ ॥

५४७५. य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥१५ ॥

इन्द्रदेव, पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) और सब ऐश्वर्यो- सम्पदाओं के अद्वितीय स्वामी हैं ॥१५ ॥

५४७६. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१६ ॥

हे ऋत्विजो ! हे यजमानो ! सभी लोगों में उत्तम, इन्द्रदेव को, आप सबके कल्याण के लिए हम आमंत्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥१६ ॥

५४७७. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारी जीवन रक्षा तथा शत्रुओं को पराभूत करने के निमित्त हमें ऐश्वर्य से पूर्ण करें ॥१७ ॥

५४७८. नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता !!१८ ॥

उस ऐश्वर्य के प्रभाव और आपके द्वारा रक्षित अश्वों के सहयोग से हम मुक्के का प्रहार करके (शक्ति प्रयोग द्वारा) शत्रुओं को भगा दें ॥१८ ॥

५४७९. इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर तीक्ष्ण वज्रों को धारण कर हम युद्ध में स्पर्धा करने वाले शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥१९ ॥

५४८०. वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित कुशल शस्त्र चालक वीरों के साथ, हम अपने शत्रुओं को पराजित करें ॥२०।

[सूक्त-७१]

[ऋषि- मधुच्छन्दा। **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।**]**

५४८१. महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे। द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१ ॥

इन्द्रदेव श्रेष्ठ और महान् हैं। वज्रधारी इन्द्रेव का यश द्युलोक के समान व्यापक होकर फैले तथा इनके बल की प्रशंसा चतुर्दिक् हो ॥१ ॥

५४८२. समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ। विप्रासो वा धियायवः ॥२ ॥

जो संग्राम में जुटते हैं, जो पुत्र की विजय हेतु संलग्न होते हैं और बुद्धिपूर्वक ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं, वे सब इन्द्रदेव की स्तुति से इष्टफल पाते हैं ॥२ ॥

५४८३. यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥३ ॥

अत्यधिक सोमपान करने वाले इन्द्रदेव का उदर समुद्र की तरह विशाल हो जाता है। वह (सोमरस) जीभ से प्रवाहित होने वाले रसों की तरह सतत द्रवित होता रहता है ॥३ ॥

५४८४. एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४ ॥

इन्द्रदेव की मधुर और सत्यवाणी उसी प्रकार सुख देती है, जिस प्रकार गोधन के दाता और पके फल वाली शाखाओं से युक्त वृक्ष आदि (हविदाताओं) को सुख देते हैं ॥४ ॥

५४८५.एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टदात्री और संरक्षण प्रदान करने वाली विभूतियाँ हमारे जैसे सभी दानदाताओं (अपनी विभूतियाँ श्रेष्ठ कार्य में नियोजन करने वालों) को तत्काल प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

५४८६. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ॥६ ॥

दाता की स्तुतियाँ और उक्थ वचन अति मनोरम एवं प्रशंसनीय हैं। ये सब सोमपान करने वाले इन्द्रदेव के लिये हैं ॥६ ॥

५४८७. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरूपी अन्नों से आप प्रफुल्लित होते हैं। अपनी शक्ति से दुर्दान्त शत्रुओं पर विजय श्री वरण करने की क्षमता प्राप्त करने हेतु आप (यज्ञशाला में) पधारें ॥७ ॥

५४८८. एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥८ ॥

(हे याजको !) प्रसन्नता देने वाले सोमरस को (निचोड़कर) तैयार करें तथा सम्पूर्ण कार्यों के सम्पादक इन्द्रदेव सामर्थ्य बढ़ाने वाले इस सोम को अर्पित करें ॥८ ॥

५४८९. मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा ॥९ ॥

हे उत्तम शस्त्रों से सुसज्जित (अथवा शोभन नासिका वाले), सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव ! हमारे इन यज्ञों में आकर प्रफुल्लता प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आप आनन्दित हों ॥९ ॥

५४९०. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति के लिए हमने स्तोत्रों की रचना की है। जैसे कामनायुक्त स्त्रियाँ समर्थ पति के पास पहुँचती है , वैसे ही हमारी स्तुतियाँ आपके पास पहुँचें ॥१० ॥

५४९१. सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित् ते विभु प्रभु ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ही विपुल ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, अत: विविध प्रकार के ऐश्वर्यों को हमारे पास प्रेरित करें।

५४९२. अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वतः ॥१२ ॥

हे प्रभूत ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप वैभव की प्राप्ति के लिए हमें श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें, जिससे हम परिश्रमी और यशस्वी हो सकें ॥१२ ॥

५४९३. सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौओं, धन-धान्यों से युक्त अपार वैभव एवं अक्षय पूर्णायु प्रदान करें ॥१३ ॥

५४९४. अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रभूत यश एवं विपुल ऐश्वर्य तथा बहुत से रथों में भरकर अन्नादि प्रदान करें ॥१४ ॥

५४९५. वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥१५ ॥

धनों के अधिपति, ऐश्वर्यों के स्वामी, ऋचाओं से स्तुत्य इन्द्रदेव का हम स्तुतिपूर्वक आवाहन करते हैं। वे हमारे यज्ञ में पधार कर हमारे ऐश्वर्य की रक्षा करें ॥१५ ॥

५४९६. सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥१६ ॥

प्रत्येक सोमयज्ञ में सोम निचोड़ने के अवसर पर याजकगण इन्द्रदेव के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त-७२]

[**ऋषि-** परुच्छेप। **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अत्यष्टि।]

५४९७. विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः
सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयव स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी सोमयज्ञों में विभिन्न उद्देश्यों वाले याजक आपको हविष्यान्न प्रदान करते हैं। स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक भी पृथक् रूप से आहुतियाँ देते हैं। मनुष्यों को सागर से पार ले जाने वाली नाव के समान ही इन्द्रदेव को जागरूक करके सेना के अग्रिम भाग में प्रतिष्ठित करते हैं। हम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥१॥

५४९८. वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! संरक्षण के इच्छुक गृहस्थजन सपत्नीक स्वर्ग प्राप्ति एवं गौओं की प्राप्ति के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत होते हैं । ऐसे में हे इन्द्रदेव ! गौ समूह की प्राप्ति के लिए होने वाले संग्राम में आपको स्वयं ले जाकर प्रेरित करने वाले यजमान आपके लिए यज्ञ कर्म सम्पादित करते हैं । आपने ही अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट (प्रयुक्त) किया है ॥२ ॥

५४९९. उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे प्रभातकालीन यज्ञादिकर्मों के समय उच्चारित स्तुतियों पर ध्यान दें और आहुतियों को ग्रहण करें । सुखों की प्राप्ति हेतु स्तुतियों के अभिप्राय को जानें । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप शत्रुनाशक कार्यों में सजग रहते हैं, उसी गम्भीरता से आप नवीन रचित स्तोत्रों और नये ज्ञानी स्तोताओं की प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥३ ॥

[सूक्त-७३]

[**ऋषि-** वसिष्ठ, ४-६ वसुक्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** १ त्रिपदा विराट् अनुष्टुप् , ४-५ जगती, ६ अभिसारिणी त्रिष्टुप् ।]

५५००. तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए ये अनेक सवन हैं । ये स्तोत्र भी आपका यश बढ़ाने के लिए हैं । आप ही मनुष्यों के द्वारा हवि प्रदान करने योग हैं ॥१ ॥

५५०१. नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥२ ॥

हे दर्शनीय इन्द्रदेव ! आपकी ऐसी सम्माननीय महिमा का कोई पार नहीं पा सकता है । हे शूरवीर ! आपके पराक्रम एवं धन का पार भी कोई नहीं पा सकता है ॥२ ॥

५५०२. प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! महान् कार्य सम्पन्न करने वाले, प्रख्यात इन्द्रदेव के लिए सोम प्रदान करते हुए श्रेष्ठ स्तोत्रों से उनकी स्तुति करो । हे इन्द्रदेव ! आप भी हविदाता प्रजाओं की कामना पूर्ण करते हुए उनका कल्याण करें ॥३ ॥

५५०३. यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४ ॥

इन्द्रदेव जब अपने तेजस्वी स्वर्णिम वज्र को धारण कर अपने दो अश्वों से जोते गये रथ पर आरूढ़ होते हैं, तब वे विशेष रूप से सुशोभित होते हैं । इन्द्रदेव सभी के द्वारा जाने गये उत्तम अन्नों और ऐश्वर्य- सम्पदा के अधीश्वर हैं ॥४ ॥

५५०४. सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥५ ॥

जिस प्रकार वर्षा के जल से पशु समूह भीगता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव हरितवर्ण सोमरस से अपनी दाढ़ी-मूँछ को भिगोते हैं। तत्पश्चात् वे उत्तम यज्ञस्थल में जाकर प्रस्तुत मधुर सोमरस का पान करते हैं, तब जैसे वायु वन- वृक्षों को कम्पायमान करती है, वैसे ही वे रिपुओं को संत्रस्त करते हैं ॥५ ॥

५५०५. यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६ ॥

अनेक प्रकार की उत्तेजक वाणी का प्रयोग करने वाले शत्रुओं को सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ने अपनी ललकार से शान्त किया और क्रोध से हजारों शत्रुओं का समूल नाश किया। पिता जिस प्रकार अन्नादि से पुत्रों का पोषण करता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव मनुष्यों का पोषण करते हैं। हम उन बलवान् इन्द्रदेव की महिमा का गुणगान करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त-७४]

[**ऋषि-** शुनः शेप। **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** पंक्ति]

५५०६. यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१ ॥

हे सत्यस्वरूप सोमपायी इन्द्रदेव ! यद्यपि हम प्रशंसा पाने के पात्र तो नहीं हैं, तथापि आप हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और घोड़े प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

५५०७. शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शक्तिशाली, शिरस्त्राण धारण करने वाले, बलों के अधीश्वर और ऐश्वर्यशाली हैं। आपका सदैव हम पर अनुग्रह बना रहे। हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और घोड़े प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

५५०८. नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! दोनों दुर्गतियाँ (विपत्ति और दरिद्रता) परस्पर एक दूसरे को देखती हुई सो जाएँ। वे कभी न जागें, वे अचेत पड़ी रहें। आप हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥३ ॥

५५०९. ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शत्रु सोते रहें और हमारे वीर दानी मित्र जागते रहें। आप हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥४ ॥

५५१०. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! कपटपूर्ण वाणी बोलने वाले शत्रुरूप गधे को मार डालें। आप हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

५५११. पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! दुष्ट शत्रु विध्वंसकारी बवण्डर की भाँति वनों से दूर जाकर गिरें । आप हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनाएँ ॥६ ॥

५५१२. सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम पर आक्रोश करने वाले सब शत्रुओं को विनष्ट करें, हिंसकों का नाश करें । आप हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनाएँ ॥७ ॥

[सूक्त-७५]

[**ऋषि-** परुच्छेप । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अत्यष्टि ।]

५५१३. वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! संरक्षण के इच्छुक गृहस्थजन सपत्नीक स्वर्ग प्राप्ति एवं गौओं की प्राप्ति के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत होते हैं । ऐसे में हे इन्द्रदेव ! गौ समूह की प्राप्ति के लिए होने वाले संग्राम में आपको स्वयं ले जाकर प्रेरित करने वाले यजमान आपके लिए यज्ञ कर्म सम्पादित करते हैं । आपने ही अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट (प्रयुक्त) किया है ॥१ ॥

५५१४. विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपके द्वारा शत्रुओं की सामर्थ्य को पददलित तथा उनकी शरत्कालीन आवासीय नगरियों को विध्वंस किया गया, तब प्रजाजनों में आपकी शक्ति विख्यात हुई । हे शक्ति के प्रतिनिधि इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के कल्याण के लिए यज्ञ विध्वंसक राक्षसों को दण्डित करके पृथ्वी एवं जल पर उनके प्रभुत्व को समाप्त किया ॥२ ॥

५५१५. आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ । चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥३ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आनन्दित होते हुए आपने यजमानों तथा मित्र भाव रखने वालों का संरक्षण किया । उनके द्वारा आपकी शक्ति को चारों ओर विस्तारित किया गया । आपने ही धनादि वितरण से संग्रामों में वीरों को प्रोत्साहित किया । आपने एक-दूसरे के सहयोग से धन लाभ देते हुए अन्नादि के इच्छुकों को अन्न उपलब्ध कराया ॥३ ॥

[सूक्त-७६]

[ऋषि- वसुक्र । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५१६. वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१ ॥

जिस प्रकार पक्षी फलाहार की इच्छा से अपने शिशु को वृक्ष के नीड़ में सावधानीपूर्वक रखते हैं, उसी प्रकार ये अति पवित्र स्तोत्र आपके निमित्त समर्पित हैं ।बहुत दिनों तक हम इन्हीं स्तोत्रों से इन्द्रदेव का आवाहन करते रहे, वे इन्द्रदेव नेतृत्व प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, पराक्रमशाली, नायक तथा रात्रिकाल में भी सोमपान करने वाले हैं ॥१ ॥

५५१७. प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२ ॥

हे मनुष्यों को नेतृत्व प्रदान करने वाले ! इन उषाओं और अन्य उषाकालों में आपकी अर्चना से हमारी भी श्रेष्ठता जाग्रत् हो । हे इन्द्रदेव ! त्रिशोक नामक ऋषि ने आपकी स्तुति- प्रार्थना द्वारा आपसे सौ मनुष्यों का सहयोग प्राप्त किया तथा कुत्स ऋषि जिस रथ पर आरूढ़ होते हैं, वह भी आपकी सहायता का परिणाम है ॥२ ॥

५५१७. कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी स्तोत्र वाणियों को सुनकर यज्ञस्थल के द्वार की ओर आप शीघ्रता से आएँ । किस प्रकार का हर्षदायक सोम आपको अति प्रसन्नताप्रद तथा रुचिकर है ? हमें कब श्रेष्ठ वाहन मिलेंगे ? हमारे मनोरथ कब पूर्ण होंगे ? हम (आपके स्तोता) अन्न-धन की प्राप्ति के लिए कौन सी साधना से आपको प्रसन्न कर सकेंगे ? ॥३ ॥

५५१९. कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप किस समय हमारे ध्यान में प्रकट होंगे और किस समय हमें साधना की सिद्धि मिलेगी ? किस प्रकार के स्तोत्रों और सत्कर्मो से आप हम मनुष्यों को अपने समान ही सामर्थ्यवान् बनायेंगे ? हे यशस्वी इन्द्रदेव ! आप तो सभी के सच्चे सखारूप हितैषी हैं, यह बात इससे सिद्ध होती है कि सभी साधकों का अन्न से पालन-पोषण करने की आपकी अभिलाषा रहती है ॥॥

५५२०. प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५ ॥

तेजस्वी आप: देवताओं के लिए भली प्रकार प्रवाहित हो । हे ऋत्विजो ! मित्र और वरुणदेव के लिए श्रेष्ठ अन्नरूप सोम संस्कारित करो तथा महावेगशाली इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ रीति से स्तुतियों का उच्चारण करो ॥५ ॥

५५२१. मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी विशेष कृपा से प्राचीन समय में विनिर्मित ये जो द्युलोक और पृथ्वी लोक हैं, वही विविध लोकों के निर्माता हैं ।आपके लिए घृतयुक्त सोम प्रस्तुत किया जा रहा है, उस मधुर रस पीकर आप हर्षित हों ॥६ ॥

५५२२. आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७ ॥

वे इन्द्रदेव निश्चित ही ऐश्वर्यदाता हैं, अतएव ऐसे देव के निमित्त मधुपर्क से परिपूर्ण सोम- पात्र को सादर समर्पित करें । वे मनुष्यों के हितकारी हैं तथा पृथ्वी के व्यापक क्षेत्र में अपने पराक्रम से, सभी प्रकार से उन्नतशील हैं ॥७ ॥

५५२३. व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८ ॥

अतिशक्तिशाली इन्द्रदेव ने शत्रुसेना को घेर लिया, श्रेष्ठ शत्रु- सेनाएँ भी इन्द्रदेव से मैत्रीरूप सन्धि करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती हैं । हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार संसार के हित के लिए सत्प्रेरणा से आप समर- क्षेत्र में रथारूढ़ होकर जाते हैं, उसी प्रकार इस समय भी रथ पर आरूढ़ होकर प्रस्थान करें ॥८ ॥

[सूक्त-७७]

[**ऋषि-** वामदेव । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५५२४. आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१ ॥

व्यवहार कुशल, सत्यनिष्ठ तथा धनवान् इन्द्रदेव हमारे समीप पधारें । दौड़ते हुए उनके अश्व (उन्हें साथ लेकर) हमारे समीप शीघ्र ही पहुँचें । उन इन्द्रदेव के निमित्त हम याजक अन्नरूप सोमरस अभिषुत करते हैं । तृप्त होकर वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१ ॥

५५२५. अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! जिस प्रकार लक्ष्य पर पहुँचे हुए अश्वों को मुक्त करते हैं, उसी प्रकार आप हमें मुक्त करें; ताकि हम इस यज्ञ में आपको हर्षित करने के लिए भली-भाँति परिचर्या कर सकें । हे इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञाता तथा असुरों का संहार करने वाले हैं । याजकगण 'उशना' ऋषि के सदृश उत्तम स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं ॥२ ॥

[इन्द्रदेव लक्ष्य पर पहुँचकर अपने अश्वों को मुक्त कर देते हैं, यह कथन एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया को स्पष्ट करता है । इन्द्रदेव संगठन (संयुक्त रखने) की सामर्थ्य के रूप में मान्य हैं । किसी भी ऊर्जा स्रोत से उभरने वाले ऊर्जा प्रवाह (अश्व) इन्द्रशक्ति के कारण अपने स्रोत से जुड़े रहते हैं । वे ऊर्जा प्रवाह जब किसी पदार्थ या प्राणी तक पहुँच जाते हैं, तो वे उन (पदार्थों-प्राणियों) के द्वारा धारण किये जाते हैं और उन्हीं के अंगों के तन्त्र बनने के लिए ऊर्जा स्रोत के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं । जैसे सूर्य की हर किरण सूर्य से जुड़ी है, जब वह किसी वृक्ष की पत्ती पर पड़ जाती है, तो वह वृक्ष के (रस पकाने जैसे) प्राण चक्र का अङ्ग बन जाती है । सूर्य उसे मुक्त कर देता है ।]

५५२६ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३ ॥

जब यज्ञों को सम्पादित करते हुए तथा सोमपान ग्रहण करते हुए वे इन्द्रदेव पूजे जाते हैं, तब वे द्युलोक से सप्त रश्मियों को उत्पन्न करते हैं । जैसे विद्वान् गूढ़ अर्थों को जानते हैं, उसी प्रकार कामना की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव समस्त कार्यों को जानते हैं । उनकी रश्मियों की सहायता से याजकगण अपने कर्म सम्पन्न करते हैं ॥३ ॥

५५२७. स्व१र्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४ ॥

जब विस्तृत तथा तेजोयुक्त द्युलोक प्रकाशित होकर दर्शनीय बनता है, तब सभी के आवास भी आलोकित होते हैं । जगत् नायक सूर्यदेव ने उदित होकर मनुष्यों के देखने के लिए सघन तमिस्रा को विनष्ट कर दिया है ॥४॥

५५२८. ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५ ॥

अपरिमित महिमा को धारण करने वाले इन्द्रदेव ने समस्त भुवनों पर अपना अधिकार कर लिया है । सोमरस पान करने वाले वे इन्द्रदेव अपनी महिमा के द्वारा द्यावा- पृथिवी दोनों को पूर्ण करते हैं । इसीलिए इनकी महानता की कोई तुलना नहीं की जा सकती ॥५ ॥

५५२९. विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६ ॥

वे इद्रदेव मनुष्यों के समस्त कल्याणकारी कार्यों के ज्ञाता हैं । कामना करने वाले सखाभाव युक्त मरुतों के निमित्त उन्होंने जल वृष्टि की । जिन मरुतों ने अपनी ध्वनि के द्वारा मेघों को भी विदीर्ण कर दिया, उन आकांक्षा करने वाले मरुतों ने गौओं (किरणों) के भण्डार खोल दिये ॥६ ॥

५५३०. अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुरक्षा करने वाले आपके वज्र ने जब पानी को अवरुद्ध करने वाले मेघ को विनष्ट किया, तब पानी बरसने से धरती चैतन्य हुई । हे रिपुओं के संहारक, पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपने अपनी शक्ति से लोकपति होकर आकाश में स्थित जल को प्रेरित किया ॥७ ॥

५५३१. अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८ ॥

बहुतों के द्वारा आहूत किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! जब 'सरमा' ने आपके निमित्त गौओं (प्रकाश किरणों) को प्रकट किया, तब आपने जल से परिपूर्ण मेघों को विदीर्ण किया । अंगिरा-वंशियों से स्तुत्य होकर आप हमें प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त-७८]

[**ऋषि**- शंयु । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- गायत्री ।]

५५३२. तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥१ ॥

हे स्तुतिरत स्तोताओ ! आप शत्रुओं को जीतने वाले इन्द्रदेव का यशोगान करें । जैसे गाय उत्तम घास से प्रसन्न होती है, वैसे ही तैयार सोम सहित स्तुति से इन्द्रदेव सुख पाते हैं ॥१ ॥

५५३३. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥२ ॥

सभी के आश्रयदाता वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनने के बाद हमें धन-धान्य के रूप में अपार वैभव देने से नहीं रुकते हैं ॥२ ॥

५५३४. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हिंसा करने वालों, गौशाला से गौएँ चुराने और उन्हें छिपा देने वालों को आप शीघ्रता से ढूँढ़कर दण्डित करें और गौओं को मुक्त कराएँ ॥३ ॥

[सूक्त-७९]

[**ऋषि-** शक्ति अथवा वसिष्ठ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५५३५. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें उत्तम कर्मों (यज्ञों) का फल प्राप्त हो । जैसे पिता पुत्रों को धन आदि प्रदान करके उनका पोषण करता है, वैसे ही आप हमें पोषित करें । बहुतों द्वारा सहायता के लिए पुकारे गये हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में आप हमें दिव्य तेज प्रदान करें ॥१ ॥

५५३६. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अज्ञात, पापी, दुष्ट, कुटिल, अमंगलकारी लोग हम पर आक्रमण न करें । हे श्रेष्ठ वीर आपके संरक्षण में हम विघ्नों- अवरोधों के प्रवाहों से पार हों ॥२ ॥

[सूक्त-८०]

[**ऋषि-** शंयु । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-**प्रगाथ ।]

५५३७. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥१ ॥

हे वज्रपाणि देवेन्द्र ! हमें ओज एवं बल प्रदान करने वाले अन्न (पोषक तत्त्व) प्रदान करें । जो पोषक अन्न द्युलोक एवं पृथ्वी दोनों को पोषण देते हैं, उन्हें हम अपने पास रखने की कामना करते हैं ॥१ ॥

५५३८. त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं । आप महाबलशाली और शत्रुओं के विजेता हैं । आप सभी असुरों से हमारी रक्षा करें । संग्राम में हम विजयी हो सकें, आप ऐसी कृपा करें ॥२ ॥

[सूक्त-८१]

[**ऋषि-** पुरुहन्मा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५५३९. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों देवलोक, सैकड़ों भूमियाँ तथा हजारों सूर्य भी यदि उत्पन्न हो जाएँ , तो भी आपकी समानता नहीं कर सकते । द्यावा- पृथिवी में (कोई भी) आपकी बराबरी करने वाला नहीं है ॥१ ॥

[यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है । इन्द्र संगठक सत्ता के रूप में सक्रिय हैं । उस इन्द्रशक्ति के कारण ही नीहारिकाओं में पदार्थ घनीभूत होकर तारों, ग्रहों एवं उपग्रहों के रूप में स्थापित हैं । सिर्फ अपनी आकाश गंगा में अरबों सूर्य जैसे ज्योतिष्मान्

पिण्ड- तारे हैं। उनके ग्रहों-उपग्रहों की संख्या तो उनसे भी अनेक गुनी है, वे सब संगठक- इन्द्रशक्ति के प्रभाव से ही अपना रूप धारण किये हैं। ऋषि अपनी दिव्य दृष्टि से यह तथ्य देखते हैं इसलिए इन्द्र को अतुलनीय कहते हैं।]

५५४०. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से सभी की इच्छा पूरी करते हैं। हे बलवान्, धनवान् वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमें गौयुक्त (पोषण साधनों सहित) संरक्षण प्रदान करें ॥२ ॥

[सूक्त-८२]

[**ऋषि-** वशिष्ठ । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५५४१ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१ ॥

हे सम्पत्तिशाली इन्द्रदेव ! हम आपके समान सम्पदाओं के अधिपति होने की कामना करते हैं। स्तोताओं को धन प्रदान करने की हमारी अभिलाषा है; परन्तु पापियों को नहीं ॥१ ॥

५५४२. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥२ ॥

कहीं भी रहकर हम आपके यजन के लिए धन निकालते हैं। हे इन्द्रदेव ! मेरा तो आपके सिवाय और कोई भाई नहीं, कोई पिता तुल्य रक्षक भी नहीं है ॥२ ॥

[सूक्त-८३]

[**ऋषि-** शयु । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५५४३. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य-सम्पन्नों जैसा त्रिधातुयुक्त तीनों ऋतुओं में हितकारी आश्रय (घर या शरीर) हमें भी प्रदान करें। इससे चमक (भ्रामक चकाचौंध) दूर करें ॥१ ॥

५५४४. ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो शत्रु गौओं को छीनने के लिए आते हैं, उन पर आप घर्षण शक्ति से प्रहार करते हैं। हे धनवान् प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आप समीपवर्ती शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। हमारे शरीर की रक्षा करें ॥२ ॥

[सूक्त-८४]

[**ऋषि-** मधुच्छन्दा । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५५४५. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१ ॥

हे अद्भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! अँगुलियों द्वारा स्रावित, श्रेष्ठ पवित्रतायुक्त यह सोमरस आपके निमित्त है। आप आएँ और सोम रस का पान करें ॥१ ॥

५५४६. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा जानने योग्य आप, सोमरस प्रस्तुत करते हुए ऋत्विजों के द्वारा बुलाए गए हैं। उनकी स्तुति के आधार पर आप यज्ञशाला में पधारें ॥२ ॥

५५४७. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आप स्तवनों के श्रवणार्थ तथा इस यज्ञ में हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों का सेवन करने के लिए यज्ञशाला में शीघ्र ही पधारें ॥३ ॥

[सूक्त-८५]

[**ऋषि-** प्रगाथ, ३-४मेध्यातिथि । **देवता-**इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५५४८. मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१ ॥

हे मित्रो ! इन्द्रदेव को छोड़कर अन्य किसी देव की स्तुति उपादेय नहीं हैं । उसमें शक्ति नष्ट न करें । सोम शोधित करके, एकत्र होकर, संयुक्त रूप से बलशाली इन्द्रदेव की ही बार-बार प्रार्थना करें ॥१ ॥

५५४९. अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२ ॥

(हे स्तोतागण ! आप) सशक्त वृषभ (साँड़) के सदृश संघर्षशील जरारहित, शत्रुओं का विरोध और उनका संहार करने वाले, महान् दैविक और भौतिक ऐश्वर्यों के दाता इन्द्रदेव का ही स्तवन करें ॥२ ॥

५५५०. यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेहा विश्वा च वर्धनम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी रक्षा के निमित्त यद्यपि सभी मनुष्य आपका आवाहन करते हैं, फिर भी हमारी स्तुतियाँ आपके गौरव को सतत बढ़ाती रहें ॥३ ॥

५५५१. वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४ ॥

ऐश्वर्यवान्, ज्ञानी, श्रेष्ठ तथा मनुष्यों के पालक हे इन्द्रदेव ! आपकी अनुकम्पा से स्तोतागण समस्त विपत्तियों से बचे रहते हैं । आप हमारे निकट पधारें और पोषण के निमित्त विविध प्रकार के बल प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त-८६]

[**ऋषि-** विश्वामित्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५५५२. ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्रों से नियोजित होने वाले, युद्धों में कीर्ति सम्पन्न, मित्र- भाव सम्पन्न हरि नामक दोनों अश्वों को हम मन्त्रों के लिए योजित करते हैं । हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ और सुखकारी रथ में अधिष्ठित होकर आप सोमयाग के समीप आएँ । आप सब यज्ञों को जानने वाले विद्वान् हैं ॥१ ॥

[सूक्त-८७]

[ऋषि- वसिष्ठ । देवता- इन्द्र , ७ इन्द्र, बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५५३. अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन्॥१॥

हे अध्वर्युगण ! मानवों में श्रेष्ठ इन्द्रदेव के लिए निचोड़े हुए रक्ताभ सोमरस का हवन करें । पीने योग्य सोम को दूर से जानकर वे गौर मृग सदृश तीव्रगति से सोमयाग करने वाले यजमान के पास शीघ्र जाते हैं ॥१॥

५५५४ . यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान्॥२॥

हे इन्द्रदेव ! प्राचीनकाल में आप जिस सुन्दर अन्न (सोम) को उदर में धारण करते थे, वही सोम आप प्रतिदिन पीने की इच्छा करें । हृदय और मन से हमारे कल्याण की इच्छा करते हुए सोमरसों का पान करें ॥२॥

५५५५. जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! जन्म के समय से ही आपने शक्ति प्राप्ति के लिए सोमपान किया था । आपकी महिमा का वर्णन आपकी माता अदिति ने किया । आपने अपने वर्चस् से विस्तृत अंतरिक्ष को पूर्ण किया और युद्ध के माध्यम से देवों या स्तोताओं के लिए धन एकत्र किया ॥३॥

५५५६. यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान्।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम॥४॥

हे इन्द्रदेव ! अहंकार पूर्ण, अपने को बड़ा मानने वाले शत्रुओं से जब हमारा युद्ध हो, तब हम अपनी बाहुओं से ही हिंसक शत्रुओं का दमन कर सकें । आप यदि स्वयं अन्न अथवा यश के लिए युद्ध करें, तब हम आपके साथ रहकर उस युद्ध को जीतें ॥४॥

५५५७. प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य॥५॥

प्राचीन और अर्वाचीन काल में इन्द्रदेव द्वारा किये हुए पराक्रमों का हम वर्णन करते हैं । इन्द्रदेव ने जब से कुटिल- कपटी असुरों को परास्त किया, तब से सोम केवल इन्द्रदेव के लिए ही (सुरक्षित) है ॥५॥

[सोम - पोषक प्रवाह विधाता ने श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए उत्पन्न किये हैं । आसुरी तत्त्व उसका दुरुपयोग करते हैं । बाह्य जगत् में दुष्ट प्रवाहों तथा अन्तः दुष्प्रकृति को जब इन्द्र सत्ता परास्त कर देती है, तब पोषक सोम प्रवाह श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए सुरक्षित हो जाते हैं ।]

५५५८. तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आप सूर्य के तेज (प्रकाश) से जिसे देखते हैं, वह पशुओं (प्राणियों) से युक्त विश्व आपका ही है । सभी गौओं (किरणों इन्द्रियों) के स्वामी आप ही हैं । आपके द्वारा दिये धन का हम भोग करते हैं ॥६॥

५५५९. बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेव ! आप दोनों द्युलोक और पृथ्वी पर उत्पन्न धन के स्वामी हैं । आप दोनों स्तुति करने वाले स्तोता को धन प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनों से सदैव हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

[इन्द्र स्थूल पदार्थकणों- शक्तिकणों के संगठक हैं तथा बृहस्पतिदेव विचारकणों (जिनके बारे में वर्तमान विज्ञान के 'माइण्डॉन्स' की अवधारणा बनायी है) के संगठक हैं । इन्हीं के प्रभाव से पदार्थशक्ति तथा मेधाशक्ति रूप सम्पत्तियाँ अस्तित्व में आती हैं ।]

[सूक्त-८८]

[**ऋषि-** वामदेव । **देवता-** बृहस्पति । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५५६०. यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१ ॥

तीनों लोकों में निवास करने वाले जिन बृहस्पतिदेव ने धरती की दशों दिशाओं को स्तम्भित किया, मीठी बोली बोलने वाले उन देव को पुरातन ऋषियों तथा तेजस्वी विद्वानों ने पुरोभाग में स्थापित किया ॥१ ॥

५५६१. धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जिनकी गति रिपुओं को प्रकम्पित करने वाली है, जो आपको आनन्दित करते हैं तथा आपकी प्रार्थना करते हैं ; उनके लिए आप फल प्रदान करने वाले, वृद्धि करने वाले तथा हिंसा न करने वाले होते हैं । आप उनके विस्तृत यज्ञ को सुरक्षा प्रदान करें ॥२ ॥

५५६२. बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! दूरवर्ती प्रदेश में जो अत्यधिक श्रेष्ठ स्थान हैं, वहाँ से आपके अश्व यज्ञ में पधारते हैं । जिस प्रकार गहरे जलकुण्ड से जल स्रवित होता है, उसी प्रकार आपके चारों ओर प्रार्थनाओं के साथ पत्थरों द्वारा निचोड़ा गया मधुर सोम रस प्रवाहित होता है ॥३ ॥

५५६३. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥४ ॥

सप्त छन्दोमय मुख वाले, बहुत प्रकार से पैदा होने वाले तथा सप्त रश्मियों वाले बृहस्पतिदेव, महान् सूर्यदेव के समान परम आकाश में सर्वप्रथम उत्पन्न होते हैं । वे अपनी ज्योति के द्वारा तमिस्रा को नष्ट करते हैं ॥४ ॥

५५६४. स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्त्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥५ ॥

बृहस्पतिदेव ने अपनी तेजस्विता तथा प्रार्थना करने वाले ऋचा समूहों के साथ ध्वनि करते हुए (मेघ) वल नामक राक्षस का वध किया । उन्होंने हवि प्रेरित करने वाली तथा रँभाने वाली गौओं (वाणियों) को ध्वनि करते हुए बाहर निकाला ॥५ ॥

५५६५. एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६ ॥

इस प्रकार सबके पालनकर्त्ता समस्त देवों के स्वामी तथा बलशाली बृहस्पतिदेव की हम लोग यज्ञों, आहुतियों तथा प्रार्थनाओं के द्वारा सेवा करते हैं । हे बृहस्पतिदेव ! उनके प्रभाव से हम लोग श्रेष्ठ सन्तानों तथा पराक्रम से सम्पन्न ऐश्वर्य के स्वामी हों ॥६ ॥

[सूक्त-८९]

[**ऋषि**- कृष्ण । **देवता**- इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

५५६६. अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१ ॥

जिस प्रकार धनुर्धारी उत्तम रीति से लक्ष्यवेधी बाणों का प्रहार करते हैं तथा पुरुष आभूषणों से सुसज्जित होते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों का प्रयोग करें, जिससे प्रतिस्पर्धा करने वाले पराजित हो जाएँ । हे स्तोताओ ! पराक्रमी इन्द्रदेव को सोमपान की ओर आकर्षित करें ॥१ ॥

५५६७. दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२ ॥

हे स्तुतिकर्त्ताओ ! गौओं का दोहन करके अपना प्रयोजन पूर्ण करने के समान इन्द्रदेव से अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करें तथा प्रशंसा योग्य इन्द्रदेव को जाग्रत् करें । जैसे अन्न से भरे हुए पात्र के मुख को नीचे की ओर करके उसके अन्न को निकालते हैं, वैसे ही शूर इन्द्रदेव को अभीष्ट सिद्धि के लिए अनुकूल बनाएँ ॥२ ॥

५५६८. किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३ ॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आपको ज्ञानी लोग कामना पूरक क्यों कहते हैं ? आप हमें धन से सम्पन्न बनाएँ । हे इन्द्रदेव ! हमारी विवेक- बुद्धि जाग्रत् करें , कार्य कुशलता प्रदान करें तथा श्रेष्ठ ऐश्वर्य- सम्पदा से सौभाग्ययुक्त करें ॥३ ॥

५५६९. त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! योद्धा लोग समर भूमि में जाते हुए सहयोगार्थ आपका स्मरण करते हैं ।जो हवि (सोम) समर्पित करता है, वीर इन्द्रदेव उसकी सहायता करते हैं । जो हवि (सोम) प्रस्तुत नहीं करते, वे उनकी मैत्री भावना से वञ्चित रहते हैं ॥४ ॥

५५७०. धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५ ॥

जो प्रयत्नशील साधक सरस सम्पदा के समान तीव्र सोमरस इन्द्रदेव को समर्पित करते हैं, इन्द्रदेव उनके लिए सामर्थ्यवान् एवं अनेक आयुधों से युक्त शत्रुओं को परास्त कर देते हैं तथा वृत्र (घेरने वाले) असुर का भी संहार करते हैं ॥५ ॥

५५७१. यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६ ॥

जिन ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव की हम स्तोत्रों से प्रार्थना करते हैं तथा जो हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करते हैं, उनके सामने से शत्रु भयभीत होकर पलायन करें तथा शत्रु पक्ष की सम्पदा उन्हें प्राप्त हो ॥६ ॥

५५७२. आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७ ॥

प्रथम आवाहित हे इन्द्रदेव ! अपने तीक्ष्ण वज्र से आप हमारे समीपस्थ शत्रुओं को खदेड़कर दूर करें तथा हमें अन्न- जौ एवं गवादि से युक्त सम्पदा प्रदान करें । अपने स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना को अन्न- रत्नप्रसविनी बनाएँ ॥७॥

५५७३. प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८ ॥

तीक्ष्ण सोमरस, मधुरस के रूप में विभिन्न धाराओं से गिरता हुआ, जिस समय इन्द्रदेव की देह में प्रविष्ट होता है, उस समय वैभव- सम्पन्न इन्द्रदेव सोमरस प्रदाता यजमान का विरोध नहीं करते, अपितु (सोमरस के प्रस्तुतकर्त्ता को) प्रचुर मात्रा में (इच्छित) सम्पत्ति प्रदान करते हैं ॥८ ॥

५५७४. उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥९ ॥

जैसे पराजित जुआरी विजयी जुआरी को खोजकर अपनी पिछली पराजय का बदला, उसे पराजित करके लेता है, वैसे ही इन्द्रदेव भी अनिष्टकारी शत्रुओं के ऊपर पराक्रमी हमला करके उन्हें पराजित करते हैं । जो साधक देवपूजन (यज्ञादि) में कंजूसी नहीं दिखाते, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव उन साधकों को धन- सम्पदा से सम्पन्न बनाते हैं ॥९ ॥

५५७५. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥१० ॥

बहुसंख्यकों द्वारा आवाहनीय हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन द्वारा दुःख-दारिद्रयों से निवृत्त हों; जौ आदि अन्नों से क्षुधा को शान्त करें । हम शासनाध्यक्षों के साथ अग्रसर होते हुए अपनी सामर्थ्य (क्षमता) से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को अपने (आधिपत्य) में ले सकें ॥१० ॥

५५७६. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्ट- पापी शत्रुओं से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम , उत्तर तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्यभाग से आने वाले शत्रुओं से हमें संरक्षित करें । वे इन्द्रदेव सबके मित्र तथा हम भी उनके प्रिय सखा हैं, वे हमारे अभीष्टों को सिद्ध करें ॥११ ॥

[सूक्त-९०]

[**ऋषि-** भरद्वाज । **देवता-** बृहस्पति । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

५५७७. यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१ ॥

बृहस्पतिदेव सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, उन्होंने पर्वतों को ध्वस्त किया । जो अङ्गिरसों के हविष्यान्न से युक्त हैं, जो स्वयं के तेज से तेजस्वी हैं, वे उत्तम गुणों से भूमि की सुरक्षा करने वाले, बलवान्, हमारे पालक बृहस्पतिदेव, द्युलोक और भूलोक में गर्जना करें ॥१ ॥

५५७८. जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥२ ॥

जो बृहस्पतिदेव स्तोताओं को स्थान देते हैं, जो शत्रुओं को मारने वाले और शत्रुजयी हैं । वे शत्रुओं को परास्त करके उनके नगरों को ध्वस्त करें ॥२ ॥

५५७९. बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३ ॥

बृहस्पतिदेव ने असुरों को परास्त करके गोधन जीता है । दिव्य प्रकाश एवं रसों को धारण करने वाले बृहस्पतिदेव स्वर्ग के शत्रुओं का मन्त्र द्वारा विनाश करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-९१]

[ऋषि- अयास्य । देवता- बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५८०. इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१ ॥

हमारे पिता (सृजेता) ने ऋत से उत्पन्न सात शीर्ष वाली इस विशाल बुद्धि को प्राप्त किया । विश्वजन्य अयास्य ने इन्द्रदेव के लिए स्तोत्र बोलते हुए तुरीय (ईश्वर सान्निध्य) अवस्था का सृजन किया ॥१ ॥

५५८१. ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२ ॥

अंगिरा ऋषियों ने यज्ञ के श्रेष्ठ स्थल में जाने का निश्चय किया । वे सत्यव्रती, मनोभावों से सरल, दिव्य पुत्र, महाबलवान् तथा ज्ञानियों के समान आचरण निष्ठ हैं ॥२ ॥

५५८२. हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३ ॥

बृहस्पतिदेव के मित्रों (मरुतों) ने हंसों के समान स्वर निकाले । उनके सहयोग से बृहस्पतिदेव ने पत्थरों के बने द्वारों को खोल दिया । अन्दर अवरुद्ध गौएँ आवाज करने लगीं । वे ज्ञानी, देवजनों के प्रति श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्च स्वर से गान करने लगे ॥३ ॥

[' मरुतों ने स्वर निकाले' यह कथन विज्ञान सम्मत है । कण्ठ में वायु के संघात से ही स्वरों की उत्पत्ति होती है । बृहस्पतिदेव-बुद्धि के अधिष्ठाता की प्रेरणा से वायु प्रवाह उनके मित्रों की तरह यह कार्य करते हैं । बृहस्पतिदेव जब जड़तारूप पत्थरों को उठाते हैं, तो अन्दर स्थित भाव वाणी के साथ व्यक्त होने लगते हैं ।]

५५८३. अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४ ॥

असत् (अव्यक्त) गुह्यक्षेत्र में गौएँ (प्रकाश किरणें दिव्य वाणियाँ) छिपी हुई थीं । बृहस्पति (ज्ञान या वाणी

के अधिपति) देव ने अन्धकार से प्रकाश (अज्ञान से ज्ञान) की कामना करते हुए नीचे के दो (अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) तथा ऊपर का एक (द्युलोक), इस प्रकार तीनों द्वारों को खोलकर गौओं (किरणों या वाणियों) को प्रकट किया ॥४ ॥

५५८४. विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५ ॥

गौओं के लिए अवरोधक बल के अधोमुख पुरों (संस्थानों) को भेदन करके बृहस्पतिदेव ने एक साथ तीनों बन्धन काट दिये । उन्होंने जलाशय (मेघों या अप् प्रवाहों) से उषा, सूर्य एवं गौओं (किरणों) को एक साथ प्रकट किया । वे (बृहस्पतिदेव) विद्युत् की तरह गर्जना करने वाले अर्क (प्राण के स्रोत) को जानते हैं ॥५ ॥

५५८५. इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥६ ॥

जिस वल (राक्षस) ने गौओं को छिपाया था, उसे इन्द्रदेव ने हिंसक हथियार के समान अपनी तीव्र हुंकार से छिन्न-भिन्न कर दिया । मरुद्‌गणों की सहायता के इच्छुक उन्होंने पणि (वल के अनुचर) को नष्ट किया और उस असुर द्वारा चुराई गई गौओं को मुक्त किया ॥६ ॥

५५८६. स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥७ ॥

बृहस्पतिदेव ने सत्यस्वरूप, मित्ररूप, तेजस्वी और ऐश्वर्ययुक्त मरुद्‌गणों के सहयोग से गौओं के अवरोधक इस वल (राक्षस) को विनष्ट किया । उन्होंने वर्षणशील मेघों द्वारा प्रज्वलित एवं गतिशील मरुद्‌गणों के सहयोग से धन-धान्य को प्राप्त किया ॥७ ॥

५५८७. ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्त्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८ ॥

गौओं (किरणों) से प्रीति रखने वाले मरुद्‌गण सत्यनिष्ठ मन एवं अपने श्रेष्ठ कर्मों से बृहस्पतिदेव को गौओं के अधिपति बनाने के लिए प्रेरित किया ।उन्होंने दुष्ट राक्षसों से गौओं के संरक्षणार्थ एकत्रित हुए मरुद्‌गणों के सहयोग से गौओं को विमुक्त किया ॥८ ॥

५५८८.तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९ ॥

अन्तरिक्ष में सिंह के समान बार-बार गर्जना करने वाले, कामनाओं के वर्षक और विजयशील उन बृहस्पतिदेव को प्रोत्साहित करने वाले हम, मरुत् वीरों के युद्ध में कल्याणकारी स्तुतियों से उनकी प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

५५८९. यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१० ॥

जिस समय बृहस्पतिदेव सभी सांसारिक अन्नों का सेवन करते हैं तथा आकाश में ऊपर जाकर उत्तम लोकों में प्रतिष्ठित होते हैं, तब बलशाली बृहस्पतिदेव को देवगण मुख (वाणी) से प्रोत्साहित करते हैं, वे विभिन्न दिशाओं में रहते हुए उन्हें उन्नतिशील बनाते हैं ॥१० ॥

५५९०. सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११ ॥

हे देवगण ! अन्न प्राप्ति के निमित्त की गई हमारी प्रार्थनाओं को आप सफलता प्रदान करें । आप अपने आश्रय से हम साधकों का संरक्षण करें और हमारी सभी प्रकार की विपदाओं का निवारण करें । सम्पूर्ण विश्व को हर्षित करने वाली हे द्यावा- पृथिवी ! आप दोनों हमारे निवेदन के अभिप्राय को समझें ॥११ ॥

५५९१. इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२ ॥

सर्वप्रथम बृहस्पतिदेव ने विशाल जल भण्डार रूप मेघों के सिर को छिन्न- भिन्न किया । जल के अवरोधक शत्रुओं को विनष्ट किया ।सप्तधाराओं को प्रवाहित एवं संयुक्त किया । हे द्यावा- पृथिवी ! आप देवताओं के साथ आगमन करके हमारा संरक्षण करें ॥१२ ॥

[इस सूक्त में बृहस्पतिदेव द्वारा अवरोधों- असुरों का उच्छेदन करके गौओं को प्राप्त करने का वर्णन है । बृहस्पतिदेव प्रज्ञा, ज्ञान, वाणी के अधिपति हैं । मेधा प्रयोग से पदार्थों में छिपी प्रकाश किरणें अथवा प्रकृति में छिपे ज्ञान सूत्रों को प्रकट करने का आलंकारिक वर्णन इस सूक्त में है । बृहस्पतिदेव उच्चाकाश में, भूमण्डल में तथा मानवीय काया में सभी जगह प्रकारान्तर से क्रियाशील रहते हैं । वैदिक मन्त्र विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त होते हैं ।]

[सूक्त-९२]

[**ऋषि-** प्रियमेध, १-३ अयास्य, १६-२१ पुरुहन्मा । **देवता-** इन्द्र , ८ विश्वेदेवा, वरुण । **छन्द-** गायत्री, ४-७, ९-१२ अनुष्टुप् , ८, १३ पंक्ति, १४-१५ पथ्याबृहती, १६-२१ प्रगाथ ।]

५५९२. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१ ॥

हे याजको ! गोपालक, सत्यनिष्ठ, सज्जनों के संरक्षक इन्द्रदेव की मन्त्रोच्चारण सहित प्रार्थना करें, जिससे उनकी शक्तियों का आभास हो सके ॥१ ॥

५५९३.आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥

जिन इन्द्रदेव की हम अपने यज्ञ मण्डप में प्रार्थना करते हैं, उनको उत्तम अश्व, यज्ञशाला की ओर ले आएँ ॥२ ॥

५५९४.इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत्

जब यज्ञस्थल के समीप ही इन्द्रदेव मधुर रस का पान करते हैं, तब गौएँ वज्रहस्त इन्द्रदेव के (पान करने के) लिए मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं ॥३ ॥

५५९५. उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥४ ॥

जब हमने इन्द्रदेव के साथ सूर्यलोक में गमन किया, तब अपने सखा उन इन्द्रदेव के साथ मधुर सोमपान करके हम त्रिसप्त स्थानों पर उनसे संयुक्त हुए ।

[इस सूक्त के ऋषि प्रियमेध (इन्द्र को प्रिय मेधा या प्रिययज्ञ) हैं । इन्द्र पदार्थ कणों को तीनों आयामों या लोकों के सातों प्रवाहों में संगठित करते हैं । उन सभी के साथ मेधा या यज्ञीय भाव का संयोग होने से सृष्टिचक्र सुचारु रूप से चलता है ।]

५५९६.अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥५ ॥

हे प्रियमेध के वंशज मनुष्यो ! यज्ञ-प्रिय, सन्तान एवं साधकों की कामना को पूर्ण करने वाले तथा शत्रुओं को

पराजित करने वाले इन्द्रदेव का आप सभी (श्रद्धापूरित होकर) सम्मान करें ॥५ ॥

इस (अगली) ऋचा को अधिकांश टीकाकारों ने युद्ध पर घटित किया है; किन्तु इसका अर्थ प्रकृति पर भी बहुत सहज ही घटित होता है । यहाँ शब्दार्थ इस ढंग से करने का प्रयास किया गया है कि दोनों ही अर्थ सहज ही सिद्ध हो सकें-

५५९७.अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् । पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ।

गर्गर स्वर (रणवाद्यों अथवा मेघों से) उभर रहे हैं । गोधा (हस्तरक्षक आवरण अथवा किरणों के धारणकर्त्ता-अवरोधक) सब ओर शब्द कर रहे हैं । पिंगा (धनुष की प्रत्यंचा अथवा विद्युत्) की ध्वनि (टंकार अथवा कड़क) सब ओर सुनाई देती है । ऐसे में इन्द्रदेव (पराक्रमी संरक्षक अथवा वर्षा के देवता) के लिए स्तोत्र बोलें ॥६ ॥

५५९८.आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥७ ।

जब उज्ज्वल जल से समृद्ध नदियाँ प्रवाहित होती हैं । उस समय इन्द्रदेव के पीने के लिए श्रेष्ठ गुणों से युक्त मधुर सोमरस लेकर उपस्थित हों ॥७ ॥

५५९९. अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८ ॥

अग्नि, इन्द्र तथा विश्वेदेवा सोमपान करके हर्षित हुए । वरुणदेव भी यहाँ उपस्थित रहें । जिस प्रकार गौएँ अपने बच्चे को प्राप्त करने के लिए शब्द करती हैं, उसी प्रकार हमारे स्तोत्र उन वरुणदेव की प्रार्थना करते हैं ॥८ ॥

५६००.सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः । अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥

हे वरुणदेव ! जिस प्रकार किरणें सूर्य की ओर गमन करती हैं, उसी प्रकार आपके ओज से सातों सरिताएँ समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं ॥९ ॥

५६०१. यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥

जो इन्द्रदेव द्रुतगामी अश्वों को रथ में नियोजित करके हविप्रदाता यजमान के पास जाते हैं, वे विशाल शरीर वाले नायक इन्द्रदेव यज्ञशाला में प्रमुख स्थान प्राप्त करते हैं ॥१० ॥

५६०२. अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११ ॥

समर्थ इन्द्रदेव सभी विद्वेषियों को दूर हटाते हैं । उन्होंने अपनी छोटी सी आवाज से बादलों को नष्ट कर दिया ॥११ ॥

५६०३. अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२ ॥

ये इन्द्रदेव अपने विशाल शरीर से नूतन रथ पर सुशोभित होते हैं । वे विविध श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करते हुए बादलों को जल बरसाने के लिए प्रेरित करते हैं ॥१२ ॥

५६०४. आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१३ ॥

हे सुन्दर आकृति वाले दम्पते (इन्द्रदेव) ! सहस्रों रश्मियों से आलोकित, द्रुतगामी स्वर्णिम रथ पर आप भली प्रकार आरूढ़ हों (यहाँ आएँ) ; तब हम दोनों एक साथ मिलेंगे ॥१३ ॥

५६०५. तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१४ ॥

उन स्वप्रकाशित इन्द्रदेव की वन्दना करने वाले याजक साधना करते हैं । उसके बाद वे श्रेष्ठ सम्पत्ति तथा सद्बुद्धि ग्रहण करते हैं ॥१४ ॥

५६०६. अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१५ ॥

कुश- आसन फैलाने वाले तथा यज्ञों में हविष्यान्न प्रदान करने वाले 'प्रियमेध' ऋषि अथवा श्रेष्ठ बुद्धि या यज्ञ युक्त साधकों) ने पूर्वकाल के अनुरूप शाश्वत निवास स्थल (स्वर्ग) को प्राप्त किया ॥१५ ॥

५६०७. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो वो वृत्रहा गृणे ॥१६ ॥

मानवों के अधिपति, वेगवान्, शत्रुसेना के संहारक, वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१६ ॥

५६०८. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥१७ ॥

हे साधक ! अपनी रक्षा के लिए देवराज इन्द्र की उपासना करो । जिनके संरक्षण में (देवत्व की) रक्षा एवं (असुरता के) विनाश की दोहरी शक्ति है । वे इन्द्रदेव, सूर्य के समान तेजस्वी वज्र को हाथ में धारण करते हैं ॥१७ ॥

५६०९. नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवो जसम् ॥१८ ॥

स्तुत्य, महाबलशाली, समृद्ध, अपराजित, शत्रुओं का दमन करने वाले इन्द्रदेव को जो साधक यज्ञादि कर्मों द्वारा अपना सहचर (अनुकूल) बना लेता है, उसके कर्मों को कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥१८ ॥

५६१०. अषाळहमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥१९ ॥

जिन इन्द्रदेव के प्राकट्य पर महान् वेगवाली गौएँ (किरणें) और पृथ्वी तथा आकाश भी उनके समक्ष झुककर अभिवादन करते हैं, उन उग्र, शत्रु विजेता और पराक्रमी इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१९ ॥

५६११. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! पृथ्वी एवं द्युलोक सैकड़ों गुना विस्तार कर लें, सूर्य हजारों गुना विस्तार कर ले, तो भी आपकी समानता नहीं कर सकते । द्यावा- पृथिवी में (कोई भी) आपकी बराबरी करने वाला नहीं है ॥२० ॥

५६१२. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२१ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से सभी की इच्छा पूरी करते हैं । हे बलवान्, धनवान्, वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप गौयुक्त (पोषण साधनों सहित) हमें संरक्षण प्रदान करें ॥२१ ॥

[सूक्त-९३]

[ऋषि-प्रगाथ, ४-८ देवजामि इन्द्रमाता । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५६१३. उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको ये स्तोत्र आनन्द प्रदान करने वाले हों । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा ज्ञान के साथ द्वेष रखने वालों का संहार करें ॥१ ॥

५६१४. पदा पणींरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं । आपके समान सामर्थ्य किसी में नहीं है । आप यज्ञादि कर्म न करने वाले कृपणों को पीड़ित करें ॥२ ॥

५६१५. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सिद्ध रसयुक्त (सोमरस) पदार्थों एवं निषिद्ध पदार्थों के स्वामी हैं । आप समस्त प्राणियों के शासक हैं ॥३ ॥

५६१६. ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥४ ॥

इन्द्रदेव के समीप जाकर उनकी सेवा करने वाली, यज्ञादि सत्कर्म करने में संलग्न माताएँ उनकी ही उपासना-अर्चना करती हैं । उनसे सुखकारी श्रेष्ठ धन प्राप्त करती हैं ॥४ ॥

५६१७. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ॥५ ॥

हे बलवर्द्धक इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करने वाली सामर्थ्य और धैर्य से प्रख्यात हुए हैं । आप सर्वाधिक सामर्थ्यशाली और साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥५ ।

५६१८. त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रहन्ता और अन्तरिक्ष का विस्तार करने वाले हैं । आपने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक (स्वर्गलोक) को स्थायित्व प्रदान किया है ॥६ ॥

५६१९. त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपने कार्यों में सहयोगी (सखा) सूर्य को आपने दोनों हाथों से अन्तरिक्ष में स्थापित किया है । आप अपनी सामर्थ्य से वज्र को तीक्ष्णता प्रदान करते हैं ॥७ ॥

५६२०. त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव !आप अपनी शक्ति से सभी प्राणियों को वशीभूत करते हैं ।समस्त स्थानों पर आपका प्रभुत्व है ।

[सूक्त-९४]

[ऋषि- कृष्ण । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्, ४-९ जगती ।]

५६२१. आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१ ॥

जो शारीरिक दृष्टि से स्थूल हैं और जो अपनी विशाल तथा पराक्रमी सामर्थ्य से सम्पूर्ण शक्तिशाली पदार्थों को शक्तिहीन कर देते हैं, वे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव रथारूढ़ होकर, यहाँ आकर हर्ष को प्राप्त करें ॥१ ॥

५६२२. सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२ ॥

हे मनुष्यो के पालक इन्द्रदेव ! आपका रथ उत्तम रीति से विनिर्मित है, आपके रथ के दोनों अश्व भली प्रकार से नियंत्रित हैं और आप हाथ में वज्र को धारण किये हुए हैं । हे अधिपति इन्द्रदेव ! ऐसे सुशोभित आप श्रेष्ठ मार्ग से शीघ्रतापूर्वक हमारे समीप आएँ । सोमरस पीने की इच्छा वाले आपकी वीरता का हम संवर्द्धन करेंगे ॥२ ॥

५६२३. एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३ ॥

मनुष्यों के पालक, हाथ में वज्रधारणकर्त्ता, शत्रु सैन्यबल को क्षीण करने वाले, अभीष्टवर्षक तथा सत्यनिष्ठ वीर इन्द्रदेव के रथवाहक, उग्र, बलिष्ठ तथा अति उत्साहित अश्व उन्हें हमारे समीप लेकर आएँ ॥३ ॥

५६२४. एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस द्वारा शरीर परिपुष्ट होता है, जो कलश में मिश्रित होकर बल को संचारित करने वाला है, उसे आप अपने अन्दर समाहित करें तथा हमारी सामर्थ्य- शक्ति में वृद्धि करें । आप हमें अपना आत्मीय जन बना लें; क्योंकि आप ज्ञानशीलों की धन- सम्पदा को समृद्ध करने वाले हैं ॥४ ॥

५६२५. गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोताओं को आप विपुल सम्पदा प्रदान करें, सोम से युक्त हमारे यज्ञ में शुभाशीर्वाद देते हुए आएँ, क्योंकि आप ही सबके स्वामी हैं । आप हमारे यज्ञ में कुशा के आसन पर विराजमान हों । आपके सेवनार्थ सज्जित सोमपात्र को बलपूर्वक छीनने की सामर्थ्य किसी में नहीं है ॥५ ॥

५६२६. पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो श्रेष्ठ लोग पुरातनकाल से ही देवताओं को आमन्त्रित करते रहे हैं, उन्होंने यशस्वी तथा दुष्कर कार्यों को सम्पन्न करते हुए भिन्न-भिन्न देव लोकों को प्राप्त किया; परन्तु जो यज्ञ- उपासना रूपी नौका पर आरूढ़ न हो पाए, वे दुष्कृत्य रूपी पापों में फँसकर, ऋण-बोझ से दबकर दुर्गतिग्रस्त होकर पड़े रहते हैं ॥६ ॥

५६२७. एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽ श्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७ ॥

इस समय जो भी दुर्बुद्धिग्रस्त, यज्ञ विरोधी लोग हैं, जिनके (जीवन रूपी) रथ में पतन मार्ग में घसीटने वाले अश्व जोते गये हैं, वे अधोगामी होते हैं- नरकगामी होते हैं । जो मनुष्य पहले से ही देवताओं के निमित्त हविष्यान्न समर्पित करने में संलग्न हैं, वे वास्तव में स्वर्गधाम को प्राप्त करते हैं, जहाँ पर प्रचुर मात्रा में आश्चर्यप्रद उपभोग्य सामग्रियाँ उपलब्ध हैं ॥७ ॥

५६२८. गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८ ॥

जिस समय इन्द्रदेव सोमपान करके आनन्दित होते हैं, उस समय वे सब जगह घूमने वाले और काँपते हुए बादलों को सुस्थिर करते हैं । वे आकाश को विचलित कर देते हैं, जिससे वह गर्जना करने लगता है । जो द्युलोक और पृथ्वी आपस में सम्बद्ध हैं, उन्हें उसी स्थिति में धारण करते हुए वे उत्तम वचन उच्चारित करते हैं ॥८ ॥

५६२९. इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके इस श्रेष्ठ ढंग से बनाये गये अंकुश को हम धारण करते हैं, जिससे आप दुष्टजनों को दण्डित करते हैं । आप हमारे इस सोमयाग में पधार कर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हों । हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ रीति से सम्पन्न किये गये सोमयज्ञ में हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥९ ॥

५६३०. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे बहुतों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन के द्वारा दुःख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों तथा जौ आदि अन्नों से क्षुधा की पूर्ति करें । प्रशासकों के स्नेह पात्र बनकर अपनी क्षमता से विपुल सम्पदाओं को हम अपने अधिपत्य में ले सकें ॥१० ॥

५६३१. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्य भाग के प्रहारक शत्रुओं से हमें बचाएँ । इन्द्रदेव हमारे सखा हैं । हम भी उनके मित्र हैं । वे हमारे अभीष्ट की पूर्ति में सहायक हों ॥११ ॥

[सूक्त-९५]

[**ऋषि**- गृत्समद, २-४ सुदा पैजवन । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- अष्टि, २-४ शक्वरी ।]

५६३२. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद्
विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१ ॥

अत्यन्त बली, पूजनीय इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त, तृप्तिदायक दिव्यसोम को जौ के सार भाग के साथ मिलाकर विष्णुदेव के साथ इच्छानुसार पान किया । उस (सोम) ने महान् इन्द्रदेव को श्रेष्ठ कार्य करने के लिए प्रेरित किया । उत्तम दिव्य गुणों से युक्त उस दिव्य सोमरस ने इन्द्रदेव को प्रसन्न किया ॥१ ॥

५६३३. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु
वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! इन इन्द्रदेव के रथ के सम्मुख रहने वाले बल की उपासना करो । शत्रुसेना के आक्रमण के अवसर पर ये लोकपाल और शत्रुनाशक इन्द्रदेव ही प्रेरणा के आधार हैं, यह निश्चित जानें । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए , यही कामना करते हैं ॥२ ॥

५६३४. त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप नदियों के प्रवाहों में आये अवरोधों को तोड़ते हैं एवं मेघों को फोड़ते हैं । शत्रु विहीन हुए आप सभी वरणीय पदार्थों के पोषक हैं । हम आपको हविष्यान्न देकर हर्षित करते हैं । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए, ऐसी कामना करते हैं ॥३ ॥

५६३५. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः । अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु । ।४ ॥

हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु विनष्ट हो जाएँ । हे इन्द्रदेव ! हम पर घात करने वाले जघन्य दुष्टों को आप अपने शस्त्रों से मारते हैं । हमारी बुद्धि आपकी ओर प्रेरित हो । आपके धन आदि के दान हमें प्राप्त हों । हमारे शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए, ऐसी कामना करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त-९६]

[**ऋषि-** पूरण, ११-१६ रक्षोहा, १७-२३ ब्रह्मा, २४ प्रचेता । **देवता-** इन्द्र, ६-१० इद्राग्नी, यक्ष्मनाशन, ११-१६ गर्भसंस्राव प्रायश्चित्त, १७-२३यक्ष्मनाशन, २४ दुःस्वप्नघ्न । । **छन्द-** त्रिष्टुप् , ९ शक्वरीगर्भा जगती, १०-१८, २४ अनुष्टुप् , १९ ककुम्मती अनुष्टुप्, २० चतुष्पदा भुरिक् उष्णिक्, २१ उपरिष्टात् विराट् बृहती, २२उष्णिग्गर्भा निचृत् अनुष्टुप् , २३ पथ्यापंक्ति ।]

५६३६. तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च । इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप तीव्र प्रभाव वाले इस सोमरस का सेवन करें । गतिशील रथ से योजित किये गये अश्वों को यहाँ आकर मुक्त कर दें । अन्य यजमान आपको हर्षित न कर सकें, हम स्वयं आपको सन्तुष्ट करेंगे । आपके निमित्त ही यह सोमाभिषव किया गया है ॥१ ॥

५६३७. तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति । इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२ ॥

हे इन्द्र !आपके निमित्त ही सोम तैयार किया गया है, आगे भी आपके लिए ही प्रस्तुत होगा । ये सभी स्तुतियाँ आपका ही आवाहन करती हैं ।हे इन्द्रदेव ! शीघ्र ही उपस्थित होकर आप हमारे इस यज्ञ में सोमपान करें ॥२ ॥

५६३८. य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति । न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३ ॥

जो साधक भावनापूर्वक इन्द्रदेव के लिए सोमरस अभिषुत करते हैं, इन्द्रदेव उनकी गौओं को भी क्षीण नहीं करते । उन्हें श्रेष्ठ और प्रशंसनीय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

५६३९. अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् । निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४ ॥

जो धनवान् लोग इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं, उन्हें वे प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करते हैं । इन्द्रदेव अपनी भुजाओं से उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं । उत्तम कर्मों से विद्वेष करने वालों को इन्द्रदेव बिना कहे ही नष्ट करते हैं ॥४ ॥

५६४०. अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५ ॥

सुखदाता हे इन्द्रदेव ! अश्वों, गौओं और ऐश्वर्य की अभिलाषा से प्रेरित होकर हम आपके आगमन की प्रार्थना करते हैं । आपके निमित्त नवीन और श्रेष्ठ स्तोत्रों की रचना करके आपका आवाहन करते हैं ॥५ ॥

५६४१. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥६ ॥

हे रोगिन् ! यज्ञ के हविर्द्रव्य से हम आपको अज्ञात रोगों और राजयक्ष्मा से मुक्त करते हैं । जो घेर कर जकड़ लेने वाले (राक्षस या व्याधि विषाणु) हैं, उनसे इन्द्रदेव और अग्निदेव हमें मुक्ति दिलाएँ ॥६ ॥

[ऋषि ओषधि संयम और मंत्र के संयुक्त प्रयोग से असाध्य रोगों का भी उपचार पूरे विश्वास के साथ करने में समर्थ थे। अग्नि के सहयोग से यज्ञीय ऊर्जा तथा इन्द्र (आत्म- शक्ति) के सहयोग जीवनी शक्ति का समर्थन करते थे। इसीलिए अग्नि और इन्द्र से प्रार्थना की गयी है।]

५६४२. यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नी त एव।

तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥७ ॥

यदि रोगी की आयु क्षीण हो गयी है, यदि वह मृत्यु के समीप गया हुआ है, तो भी हम उसे (मृत्युदेव) निर्ऋति के समीप से वापस ला सकते हैं। (रोग निवारण विद्या के जानकार) हमने उसका स्पर्श किया है, जिससे वह सौ वर्ष तक जीवित रहेगा ॥७ ॥

५६४३. सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।

इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥८ ॥

सहस्र अक्ष (नेत्र या पहलुओं) वाली, शतवीर्य (प्राणवान् तत्त्व) वाली तथा शतायु बनाने वाली आहुतियाँ हमने प्रदान की हैं । उनसे जीवन को सुरक्षित किया है । सम्पूर्ण दु:खों का निवारण करके इन्द्रदेव इन्हें सौ वर्ष की आयु प्रदान करें ॥८ ॥

५६४४. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९ ॥

हे रोगमुक्त मनुष्य ! नित्यमेव वृद्धिशील होते हुए आप एक सौ शरद, एक सौ हेमन्त और एक सौ वसन्त तक सुखपूर्वक जीवित रहें । इन्द्रदेव, अग्निदेव, सवितादेव और बृहस्पतिदेव हविष्यान्न द्वारा परितृप्त होकर आपको सौ वर्ष तक के लिए जीवनी शक्ति प्रदान करें ॥९ ॥

५६४५.आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः। सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥

हे रोगी मनुष्य ! हम आपको मृत्यु के पास से लौटाकर लाये हैं । यह आपका पुनर्जीवन है । हे सर्वाङ्ग स्वस्थ ! आपके लिए समर्थ नेत्रों और आयुष्य को हमने उपलब्ध किया है ॥१० ॥

५६४६. ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥११ ॥

हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न होकर अग्निदेव शरीर की सभी बाधाओं (रोगों) का निवारण करें । हे नारी ! आपके शरीर में जो भी विकार (रोग) प्रत्यक्ष या गोपनीय रूप से विद्यमान हैं, उन सबको अग्निदेव दूर करें ॥११ ॥

५६४७. यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥१२ ॥

हे नारी ! जिन असुरों (रोगों) ने आपको पीड़ित किया है तथा आपकी सृजन एवं धारण करने की क्षमता को विनष्ट किया है; अग्निदेव उन सबको समाप्त करें, हम उनकी स्तुति करते हैं ॥१२ ॥

५६४८. यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३ ॥

हे स्त्री ! विभिन्न रोगों के रूप में जो भी पैशाचिक शक्तियाँ आपके गर्भ को पीड़ित करना चाहती हैं, जो आपकी सन्तानों को पीड़ा पहुँचाती हैं, उन सबको आपके पास से दूर करके नष्ट करते हैं ॥१३ ॥

५६४९.यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि॥

हे नारी ! जो विकार (रोग) जाने-अनजाने तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर गये हैं तथा जो तुम्हारी सन्तानों को नष्ट करना चाहते हैं, अग्निदेव की सहायता से हम उन सबका विनाश करते हैं ॥१४ ॥

५६५०. यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५ ॥

हे स्त्री ! जो रोग आपके पास छलपूर्वक भ्रातारूप से , पतिरूप से अथवा उपपति बनकर आता है और आपकी सन्तति को विनष्ट करने की कामना करता है, उसे हम यहाँ से दूर भगाते हैं ॥१५ ॥

[रोग या दुर्गुण हितैषियों जैसे, अपनों जैसे रूप बनाकर ही छलपूर्वक स्वभाव में या शरीर में प्रवेश करते हैं। उन्हें पहचानने और नष्ट करने की विद्या ऋषिगण जानते रहे हैं।]

५६५१.यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि।

हे नारी ! जो रोग स्वप्नवेला और निद्रावस्था में आपको मोह- मुग्ध करके समीप आता है और जो आपकी सन्तति को विनष्ट करने की कामना करता है, उसे हम यहाँ से दूर करते हैं ॥१६ ॥

[स्वप्न एवं सम्मोहन की स्थिति में अवचेतन अवस्था में विकार अपना जाल फैलाते हैं, उस गहराई तक उपचार किया जाना अभीष्ट है।]

५६५२. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१७ ॥

हे रोगिन् ! आपके दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दोनों नासिका रन्ध्रों, ठोढ़ी, सिर, मस्तिष्क और जिह्वा से हम रोग को दूर करते हैं ॥१७ ॥

५६५३. ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥१८ ॥

हे रोगिन् ! आपके गर्दन की नाड़ियों, ऊपरी-स्नायुओं, अस्थियों के संधि भागों, कन्धों, भुजाओं और अन्तर्भाग से यक्ष्मारोग का निवारण करते हैं ॥१८ ॥

५६५४. हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥१९ ॥

(हे मनुष्य !) हम आपके हृदय, फेफड़ों, क्लोम ग्रन्थि (पित्ताशय), दोनों पार्श्व (पसलियों) गुर्दों, तिल्ली, जिगर (लीवर) आदि से रोगों का निवारण करते हैं ॥१९ ॥

५६५५. आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥२० ॥

आपकी आँतो, गुदा, नाड़ियों, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत् और अन्यान्य पाचन तन्त्र के अवयवों से हम रोगों का निवारण करते हैं ॥२० ॥

५६५६. ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥२१ ॥

हे रोगिन् ! आपकी दोनों जंघाओं, जानुओं, एड़ियों, पंजों, नितम्ब भागों, कटिभागों और गुदाद्वार से हम यक्ष्मा रोग का निवारण करते हैं ॥२१ ॥

५६५७. अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥२२ ॥

हे रोगिन् ! आपकी अस्थियों, मज्जा, नाड़ियों और शरीर के प्रत्येक सन्धि भाग में जहाँ कहीं भी रोगों का निवास है, वहाँ से हम उन्हें दूर करते हैं ॥२२ ॥

५६५८. अङ्गे अङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥२३ ॥

शरीर के प्रत्येक अंग, रोमों (रोमकूपों) शरीर की सभी संधियों, जहाँ भी रोग का प्रभाव है, उन सभी स्थानों से हम उसका निवारण करते हैं ॥२३ ॥

[आज विज्ञान यह मानने लगा है कि गंभीर रोगों की जड़ें शरीर के तमाम कोशों, अंग - प्रत्यंगों में फैली होती हैं। ऋषि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्राणवान् उपचार प्रक्रिया से रोगों के समूल उच्छेदन का एक सशक्त तंत्र बनाते हैं।]

५६५९. अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर। परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥

हे दुःस्वप्न ! आपने हमारे मन को अपने अधीन कर लिया है। आप यहाँ से दूर भाग जाएँ। दूर देश में जाकर इच्छानुसार विचरण करें। निर्ऋति देवता जो यहाँ से दूर रहते हैं, उनसे जाकर कहें कि जीवित व्यक्तियों के मनोरथ विस्तृत होते हैं, अतएव वे मनोरथों के विनाशक दुःस्वप्न दर्शन को विनष्ट करें ॥२४ ॥

[सूक्त-९७]

[**ऋषि-** कलि। देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ, ३ बृहती ।]

५६६०. वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम्। तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते।

हम याजकों ने इन्द्रदेव को कल सोमरस से तृप्त किया था, उन्हें आज के यज्ञ में भी सोमरस प्रदान करते हैं। हे याजको ! इस समय स्तोत्रों का गान करके इन्द्रदेव को अलंकृत करें ॥१ ॥

५६६१. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२ ॥

भेड़िये जैसे क्रूर शत्रु भी इन्द्रदेव के समक्ष अनुकूल हो जाते हैं । वे (इन्द्रदेव) हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हुए हमें उत्कृष्ट चिन्तन, संयुक्त विवेक- बुद्धि प्रदान करें ॥२ ॥

५६६२. कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥३ ॥

ऐसा कौन सा पुरुषार्थ है, जिसको इन्द्रदेव ने (प्रभावित) नहीं किया तथा उनकी वीरता की गाथाएँ किसने नहीं सुनी ? वृत्र का संहार करने वाले इन्द्रदेव बचपन से ही विख्यात हैं ॥३ ॥

[सूक्त-९८]

[ऋषि- शंयु । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५६६३. त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोतागण अन्न प्राप्ति की कामना से आपका आवाहन करते हैं । आप सज्जनों के रक्षक हैं । शत्रु को जीतने के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५६६४. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२ ॥

विपुल पराक्रमी, वज्रधारी, बलधारक हे इन्द्रदेव ! अपनी असुरजयी शक्ति से महान् हुए आप हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हम साधकों को पशुधन तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

[सूक्त-९९]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५६६५. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्राचीनकाल से ही ऋभुगणों तथा रुद्रों (उग्रवीरों) द्वारा आपकी स्तुति की जाती रही है । याजकगण स्तुति करते हुए सोमपान के लिए सर्वप्रथम आपको ही बुलाते हैं ॥१ ॥

५६६६. अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव सोमरस का सेवन करके अत्यधिक आनन्दित होकर यजमान के वीर्य और बल को बढ़ाते हैं, अतएव स्तोतागण आज भी उनकी महिमा का वर्णन करते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-१००]

[ऋषि- नृमेध । देवता-इन्द्र । छन्द- उष्णिक्]

५६६७. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥१ ॥

स्तोत्रों से पूजित हे इन्द्रदेव ! आपके पास हम लोग बड़ी-बड़ी कामनाएँ लेकर उसी प्रकार आते हैं, जैसे जल स्वभावत: जल भण्डारों की ओर (नाले नदी की ओर तथा नदियाँ समुद्र की ओर) प्रवाहित होता है ॥१ ॥

५६६८. वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२ ॥

वज्रधारी, शूरवीर हे इन्द्रदेव ! जैसे नदियों के जल से समुद्र की गरिमा बढ़ती है, उसी तरह हम अपनी स्तुतियों से आपकी गरिमा का विस्तार करते हैं ॥२ ॥

५६६९. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥३ ॥

गमनशील इन्द्रदेव के महान् रथ में संकेत मात्र से ही दो श्रेष्ठ घोड़े नियोजित हो जाते हैं। स्तोतागण उन्हें स्तोत्रों से नियोजित करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-१०१]

[**ऋषि-** मेध्यातिथि। **देवता-** अग्नि । **छन्द-** गायत्री ।]

५६७०. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप यज्ञ के विशेषज्ञ हैं, समस्त देवशक्तियों को तुष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं। आप यज्ञ की विधि-व्यवस्था के स्वामी हैं। ऐसे समर्थ आपको देवदूत रूप में हम स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

५६७१. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२ ॥

प्रजापालक, देवों तक हवि पहुँचाने वाले, परमप्रिय, कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! हम याजकगण हवनीय मंत्रों से आपको सदा बुलाते हैं ॥२ ॥

५६७२. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः ॥३ ॥

हे स्तुत्य अग्निदेव ! आप अरणिमन्थन से उत्पन्न हुए हैं। विस्तृत कुशाओं पर बैठे हुए यजमान पर अनुग्रह करने हेतु आप (यज्ञ की) हवि ग्रहण करने वाले देवताओं को इस यज्ञ में बुलाएँ ॥३ ॥

[सूक्त-१०२]

[**ऋषि-** विश्वामित्र। **देवता-** अग्नि । **छन्द-** गायत्री ।]

५६७३. ईळेन्यो नमस्य स्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ॥१ ॥

स्तुत्य, प्रणम्य, अन्धकार नाशक, दर्शनीय और शक्तिशाली हे अग्निदेव ! आप आहुतियों द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित तथा संवर्द्धित किये जाते हैं ॥१ ॥

५६७४. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते ॥२ ॥

बलशाली अश्व जैसे राजा के वाहन को खींचकर ले जाते हैं, उसी प्रकार अग्निदेव देवताओं तक हवि पहुँचाते हैं। उत्तम प्रकार से प्रदीप्त हुए अग्निदेव यजमान की स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

५६७५. वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥३ ॥

हे अग्ने ! घृतादियुक्त हवि प्रदान करने वाले हम, शक्तिशाली, तेजस्वी और महान् आपको प्रदीप्त करते हैं।

[सूक्त-१०३]

[**ऋषि-** सुदीति और पुरुमीढ, २-३ भर्ग। **देवता-** अग्नि । **छन्द-** बृहती, २-३ प्रगाथ ।]

५६७६. अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! विस्तृत-विकराल ज्वालाओं वाले अग्निदेव की स्तुति करो । उद्गातागण उन प्रसिद्ध अग्निदेव से धन तथा श्रेष्ठ प्रकाशयुक्त आवास-प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

५६७७. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों को बुलाने वाले हैं, हमारी प्रार्थना सुनकर अपनी अग्नियों (विशिष्ट शक्तियों) सहित यहाँ पधारें । हे पूज्य अग्निदेव ! अध्वर्यु के द्वारा प्रदत्त आसन पर आपके प्रतिष्ठित होने पर, हम आपका पूजन करें ॥२ ॥

५६७८. अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥३ ॥

बल से उत्पन्न सर्वत्र गमनशील हे अग्निदेव ! आप तक हविष्यान्न पहुँचाने के लिए यह हवि पात्र सक्रिय है । शक्ति का ह्रास रोकने वाले अभीष्टदाता, तेजस्वी, ज्वालाओं से युक्त आपकी हम यज्ञस्थल पर प्रार्थना करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-१०४]

[**ऋषि-** मेध्यातिथि, ३-४ नृमेध । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** प्रगाथ ।]

५६७९. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमारी स्तुतियाँ आपकी कीर्ति को बढ़ाएँ । अग्नि के समान प्रखर पवित्रात्मा और विद्वान् साधक स्तोत्रों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

५६८०. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२ ॥

ये इन्द्रदेव हजारों ऋषियों के स्तुतिबल को पाकर प्रख्यात और समुद्र की तरह विस्तृत हुए हैं । इनकी सत्यनिष्ठा और शक्ति प्रसिद्ध है । यज्ञों में स्तोत्रगान करते हुए इनका सम्मान किया जाता है ॥२ ॥

५६८१. आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥३ ॥

संग्राम में रक्षा के लिए बुलाने योग्य, वृत्रहन्ता, धनुष की श्रेष्ठ प्रत्यंचा के समान, उत्तम मंत्रों से स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! हमारे (तीनों) सवनों एवं स्तोत्रों को आप सुशोभित करें ॥३ ॥

५६८२. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सर्वप्रथम धनदाता हैं । ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । आपसे हम पराक्रमी एवं श्रेष्ठ संतानों की कामना करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त-१०५]

[ऋषि- नृमेध, ४-५ पुरुहन्मा । देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ, ३ बृहती ।]

५६८३. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्राम में शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं । सबके जन्मदाता आप, पालन न करने वालों एवं असुरों को नष्ट करने वाले हैं ॥१ ॥

५६८४. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माता-पिता अपने शिशु की रक्षा में तत्पर रहते हैं । आकाश और पृथ्वी उसी प्रकार शत्रुसंहारक आपके बलों के संरक्षक होते हैं । जब आप वृत्रासुर का वध करते हैं, तब आपके क्रोध के समक्ष युद्ध के लिए तत्पर शत्रुपक्ष कमजोर पड़ जाता है ॥२ ॥

५६८५. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥३ ॥

हे साधको ! शत्रुसंहारक, सर्वप्रेरक, वेगवान्, यज्ञस्थल पर जाने वाले, उत्तम रथी, अहिंसनीय, जलवृष्टि करने वाले तथा अजर-अमर इन्द्रदेव का अपने संरक्षण के लिए आवाहन करो ॥३ ॥

५६८६. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥४ ॥

मानवों के अधिपति, वेगवान्, शत्रु-सेना के संहारक, वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

५६८७. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥५ ॥

हे साधको ! अपनी रक्षा के लिए देवराज इन्द्र की उपासना करो । जिनके संरक्षण में (देवत्व की) रक्षा एवं (असुरता के) विनाश की दोहरी शक्ति है । वे इन्द्रदेव, सूर्य के समान तेजस्वी वज्र को हाथ में धारण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त-१०६]

[ऋषि- गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५६८८. तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥

हे इन्द्र ! हमारी प्रार्थनाएँ आपके शौर्य, सामर्थ्य, कुशलता, पराक्रम और श्रेष्ठ वज्र को तेजस्वी बनाती हैं ॥

५६८९. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष से आपकी शक्ति-सामर्थ्य का और पृथ्वी से आपके यशस्वी स्वरूप का विस्तार है । जल प्रवाह और पर्वत (मेघ) आपको अपना अधिपति मानकर आपके पास पहुँचते हैं ॥२ ॥

[इन्द्रादि देवों की सामर्थ्य का भण्डार आकाश में है, पृथ्वी पर उनका प्रत्यक्ष प्रयोग होने से यहाँ उनका यशस्वी स्वरूप प्रकट होता है । सामर्थ्य प्राप्ति के लिए अन्तरिक्षीय सूक्ष्म प्रवाहों को धारण करने तथा यशः प्राप्ति के लिए उनके प्रत्यक्ष सदुपयोग की विद्या मनुष्यों को भी अपने अन्दर विकसित करनी पड़ती है ।]

५६९०. त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! महान् आश्रयदाता मान करके विष्णु , मित्र और वरुणादि देवता आपका स्तुतिगान करते हैं । मरुद्‌गणों के बल से आप हर्षित होते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-१०७]

[**ऋषि-** वत्स, ४-१२ बृहद्दिव और अथर्वा, १३-१४ ब्रह्मा, १५ कुत्स । **देवता-** इन्द्र , १३-१५ सूर्य । **छन्द-** गायत्री, ४-११, १४-१५ त्रिष्टुप् , १२ भुरिक् परातिजागता त्रिष्टुप् , १३ आर्षी पंक्ति ।]

५६९१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥१ ॥

समस्त प्रजाएँ उग्र इन्द्रदेव के प्रति नमनपूर्वक उसी प्रकार आकर्षित होती हैं, जैसे सभी नदियाँ समुद्र में मिलने के लिए वेग से जाती हैं ॥१ ॥

५६९२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥२ ॥

इन्द्रदेव का वह ओजस् (बल) अत्यन्त प्रभावयुक्त है, जिससे वे द्युलोक से पृथ्वी लोक तक आवरण के समान फैलकर सुरक्षा करते हैं ॥२ ॥

५६९३. वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥३ ॥

संसार को भयभीत करने वाले (कम्पित करने वाले) वृत्रासुर के सिर को शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ने अपने तीक्ष्ण प्रहार वाले वज्र से अलग कर दिया ॥३ ॥

५६९४. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४ ॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाशरूप में संव्याप्त हुआ, जिससे प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त (इन्द्रदेव) देव का प्राकट्य हुआ । जिनके प्रकट होते ही शत्रु नष्ट हो जाते हैं । उन्हें देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥४ ॥

५६९५. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५ ॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए, अनन्त शक्तियों से युक्त, दुष्टों के शत्रु इन्द्रदेव शत्रुओं के अन्तःकरण में भय उत्पन्न करते हैं । वे सभी चर-अचर प्राणियों को संचालित करते हैं । ऐसे देव की हम (याजकगण) सम्मिलित रूप से, एक साथ स्तुति करके उन्हें तथा स्वयं को आनन्दित करते हैं ॥५ ॥

५६९६. त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी यजमान आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं । जब यजमान विवाहोपरान्त दो तथा एक सन्तान के बाद तीन होते हैं , प्रिय लगने वाले (सन्तान) को प्रिय (धन या गुणों) से युक्त करें । बाद में इस प्रिय सन्तान को पुत्र- पौत्रादि की मधुरता से युक्त करें ॥६ ॥

५६९७. यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७ ॥

कभी पराजित न होने वाले हे इन्द्रदेव ! युद्धों में आप सदैव अपने पराक्रम से धन-सम्पदाओं पर विजय प्राप्त करते हैं । ब्रह्मनिष्ठ साधक (याजक) ऐसे अवसरों पर आपकी स्तुति करते हैं । आप स्तोताओं को तेजस्विता प्रदान करें । दुस्साहसी असुर कभी आपको पराभूत न कर सकें ॥७ ॥

५६९८. त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सहयोग से हम रणभूमि में दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । युद्ध की इच्छा से प्रेरित अनेक शत्रुओं पर हम दृष्टि रखते हैं । आपके वज्रादि आयुधों को हम स्तोत्रों द्वारा प्रोत्साहित करते हैं । स्तुति मंत्रों से हम आपकी तेजस्विता को तीक्ष्ण करते हैं ॥८ ॥

५६९९. नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस यजमान के घर में हविरूप अन्न से परितृप्त होते हैं, उसे दिव्य और भौतिक सम्पदाएँ प्रदान करते हैं । समस्त प्राणियों के निर्माता, गतिशील द्युलोक और पृथ्वीलोक को आप ही सुस्थिर करते हैं । उस समय आपको अनेक कार्यों का निर्वाह करना पड़ता है ॥९ ॥

५७००. स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१० ॥

स्तुत्य, विभिन्न स्वरूपों वाले, दीप्तिमान्, सर्वेश्वर और सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से आसुरी वृत्तियों का विनाश करें तथा पृथ्वी पर यज्ञीय प्रतिमानों को प्रतिष्ठित करें ॥१० ॥

५७०१. इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥११ ॥

ऋषियों में श्रेष्ठ और स्वर्गलोक के आकांक्षी बृहद्दिव (बृहद् आकाश तक गति वाले) ऋषि इन्द्रदेव को सुख प्रदान करने के लिए ही इन वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हैं । वे तेजस्वी, दीप्तिमान् इन्द्रदेव विशाल पर्वतों (अवरोध) को हटाते हैं तथा शत्रुपुरियों के सभी द्वारों के उद्घाटक हैं ॥११ ॥

['ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' के अनुसार वेद मंत्र परम व्योम अथवा बृहदाकाश में रहते हैं । ऋषि अपनी परिष्कृत चेतना द्वारा वहाँ से उन्हें अवतरित करते हैं । इसीलिए बृहद्दिव नाम या गुण वाले ऋषि द्वारा मंत्र पाठ की आशा की गयी है ।]

५७०२. एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥१२ ॥

अथर्वा ऋषि के पुत्र महाप्राज्ञ बृहद्दिव ने इन्द्रदेव के लिए अपनी बृहद् स्तुतियों का उच्चारण किया । माता सदृश भूमि पर उत्पन्न पवित्र नदियाँ, पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल प्रवाहित करती हैं तथा अन्नबल से लोगों का कल्याण करती हैं ॥१२ ॥

५७०३. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥१३ ॥

वीर पराक्रमी, पूजनीय, तेजस्वी प्रकाश किरणों से सम्पन्न, सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले तथा अन्धकार को दूर करने वाले सूर्यदेव (इन्द्रदेव) समस्त पापों को विनष्ट कर डालते हैं ॥१३ ॥

५७०४. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४ ॥

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मारूप सूर्यदेव, दैवी शक्तियों के अद्भुत तेज के समूह सहित उदित हो गये हैं । मित्र, वरुण आदि के चक्षु रूप इन सूर्यदेव ने उदय होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ॥१४ ॥

५७०५. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥१५ ॥

प्रथम दीप्तिमान् और तेजस्विता युक्त देवी उषा के पीछे सूर्यदेव उसी प्रकार अनुगमन करते हैं, जिस प्रकार पुरुष नारी का अनुगमन करते हैं । जहाँ देवत्व के उच्च लक्ष्य को पाने के लिए साधक यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करते हैं, वहाँ उन साधकों एवं कल्याणकारी यज्ञीय कर्मों को सूर्यदेव अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त-१०८]

[**ऋषि-** नृमेध । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री, २ ककुप् उष्णिक्, ३ पुर उष्णिक् ।]

५७०६. त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥१ ॥

अनेक कार्यों के सम्पादनकर्त्ता, ज्ञानी, हे इन्द्रदेव ! आप हमें शक्ति एवं ऐश्वर्य से परिपूर्ण करें तथा शत्रुओं को जीतने वाला पुत्र भी प्रदान करें ॥१ ॥

५७०७.त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥२ ॥

सबको आश्रय देने वाले शतकर्मा हे इन्द्रदेव ! आप पिता तुल्य पालन करने वाले और माता तुल्य धारण करने वाले हैं । हम आपके पास सुख माँगने के लिए आते हैं ॥२ ॥

५७०८. त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३ ॥

असंख्यों द्वारा स्तुत्य, बलवान्, प्रशंसित, शक्तिशाली हे इन्द्रदेव ! हम आपकी स्तुति करते हुए कामना करते हैं कि हमें उत्तम, तेजस्वी सामर्थ्य प्रदान करें ॥३ ॥

[सूक्त-१०९]

[**ऋषि-** गोतम । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** पथ्यापंक्ति ।]

५७०९. स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१ ॥

भक्तों पर कृपावृष्टि करने वाले इन्द्र (सूर्य) देव के साथ गौएँ (किरणें) आनन्दपूर्वक शोभायमान हैं । वे भूमि पर स्वराज्य की मर्यादा के अनुरूप उत्पन्न सुस्वाद मधुर रस का पान करती हैं ॥१ ॥

५७१०. ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२ ॥

इन्द्रदेव (सूर्य) का स्पर्श करने वाली धवल गौएँ (किरणें) दूध (पोषण) प्रदान करती हैं तथा उनके वज्र को प्रेरणा देती हुई स्वराज्य में ही रहती हैं ॥२ ॥

५७११. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३ ॥

ज्ञानयुक्त वे (किरणें) इन्द्रदेव के प्रभाव का पूजन करती हैं । पूर्व में हो चुके को समझने वाली वे किरणें इन्द्रदेव द्वारा पहले किये गये कार्यों का स्मरण दिलाती हैं और स्वराज्य के अनुशासन में ही रहती हैं ॥३ ॥

[इस सूक्त की उक्त तीन ऋचाओं में इन्द्र की किरणों (प्रतिभाओं) के लिए स्वराज्य (अपने राज्य) में मर्यादित तीन क्रियात्मक अनुशासनों का उल्लेख किया गया है ।

(१) स्वराज्य के अनुरूप मधुर रसों का पान करें, औसत नागरिकों के स्तर के अनुरूप ही निर्वाह के साधन स्वीकार करें ।

(२) इन्द्र (प्रशासन) को पुष्ट बनाते हुए अपराधियों के लिए दण्ड व्यवस्था को प्रभावपूर्ण बनाएँ ।

(३) व्यवस्थाओं की प्रशंसा करते हुए पूर्व की जा चुकी व्यवस्थाओं का स्मरण दिलाकर जन-जन को नैष्ठिक बनाएँ ।]

[सूक्त-११०]

[**ऋषि-** श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

५७१२. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१ ॥

हम स्तोतागण स्तुतियों द्वारा, इन्द्रदेव के निमित्त निकाले गये आनन्दमयी प्रकृति वाले दिव्य सोमरस की प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

५७१३. यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२ ॥

उन कान्तिमान् इन्द्रदेव का हम सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं, जिनकी स्तुति यज्ञ के सातों ऋत्विज् करते हैं ॥

५७१४. त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३ ॥

प्रेरणादायी, उत्साह बढ़ाने वाले, तीन चरणों में सम्पन्न होने वाले यज्ञ का विस्तार देवगण करते हैं । साधकगण उस यज्ञ की प्रशंसा करते हैं ॥३ ॥

[यज्ञ के तीन चरण प्रयाज, याज और अनुयाज होते हैं । प्रयाज से साधना द्वारा यजन के लिए उपयुक्त वातावरण तथा व्यवस्था बनने का विधान है । यजन में भावना पूर्वक तप साधना युक्त आहुतियाँ दी जाती हैं । अनुयाज में यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा का जनहितार्थ सुनियोजन किया जाता है ।]

[सूक्त-१११]

[**ऋषि-**पर्वत । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** उष्णिक् ।]

५७१५. यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञों में विष्णु के उपस्थित होने के बाद आपने सोमपान किया था । त्रितआप्त्य एवं मरुद्गणों के साथ सोमरस के सेवन से आनन्दित होने वाले आप हमारे यज्ञ में भी सोमपान करके आनन्दित हों ॥१ ॥

५७१६. यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सुदूर क्षेत्र में सोमरस पान करके आप हर्षित होते हैं, उसी प्रकार हमारे यज्ञ में भी सोमपान करके हर्षित हों ॥२ ॥

५७१७. यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥

हे सत्य के पालक इन्द्रदेव ! आप जिस याजक के यज्ञ में विधिवत् सोमपान करके आनन्दित होते हैं । उस याजक को आप बढ़ाते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-११२]

[ऋषि- सुकक्ष । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७१८. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥१ ॥

वृत्र संहारक हे इन्द्रदेव ! आपसे प्रकाशित होने वाला सब कुछ (सम्पूर्ण जगत्) आपके ही अधिकार में है ॥

५७१९. यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥२ ॥

प्रगति करने वाले तथा सज्जनों का पालन करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप स्वयं को अमर मानते हैं, आपका ऐसा मानना ही यथार्थ है ॥२ ॥

५७२०. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो सोमरस दूर या निकट के स्थानों पर अभिषुत किया जाता है, आप उन समस्त स्थानों पर पधारते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-११३]

[ऋषि- भर्ग । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७२१. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१ ॥

धनवान् और बलवान् हे इन्द्रदेव ! हमारी दोनों प्रकार की प्रार्थनाओं को समीप आकर सुनें । सामूहिक उपासना से प्रसन्न होकर आप सोमपान के लिए यहाँ पधारें ।

५७२२. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२ ॥

आकाश और पृथ्वी ने वृष्टिकर्त्ता, समर्थ और तेजस्वी इन्द्रदेव को प्रकट या नियुक्त किया है । हे इन्द्रदेव ! आप उपमानों में सर्वश्रेष्ठ हैं । आप सोमपान की इच्छा से यज्ञवेदी पर विराजमान होते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-११४]

[ऋषि- सौभरि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७२३. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जन्म से ही भ्रातृ संघर्ष से मुक्त हैं । आप पर शासन करने वाला कोई नहीं है और न ही सहायता करने वाला कोई मित्र । आप युद्ध (जन संरक्षण) द्वारा अपने सहयोगियों (मित्रों) और भक्तों को पाने की कामना करते हैं ॥१ ॥

५७२४. नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप (यज्ञ , दान आदि से रहित) धनाभिमानी को मित्र नहीं बनाते हैं । सुरा पीकर मदान्ध (अमर्यादित लोग) आपको दुखी करते हैं । ज्ञान एवं गुण-सम्पन्नों को मित्र बनाकर आप उन्नति पथ पर चलाते हैं, जिससे आप पिता तुल्य सम्मान प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-११५]

[ऋषि- वत्स । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७२५. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥१ ॥

हमने यज्ञरूप इन्द्र की बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, इससे सूर्य सदृश तेजोयुक्त हो गये हैं ।

५७२६ अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥२ ॥

कण्व ऋषि के सदृश हमने इन्द्र को उन स्तोत्रों से सुशोभित किया, जिनके प्रभाव से वे शक्तिसम्पन्न बनते हैं।

५७२७. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति न करने वाले तथा आपके निमित्त स्तुति करने वाले ऋषिगणों के मध्य भी हमारे स्तोत्र प्रशंसनीय हैं । आप उन स्तोत्रों के प्रभाव से भली प्रकार परिपुष्ट हों ॥३ ॥

[सूक्त-११६]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- बृहती ।]

५७२८. मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से हमारा पतन न हो और न ही हम दुःखी हों । पतझड़ में शाखाविहीन वृक्षों के समान हम सन्तानरहित न हों । हे इन्द्रदेव ! हम आपके घरों में सुरक्षित रहकर आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५७२९. अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥२ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! हम हड़बड़ाहट तथा क्रोधरहित होकर आपका स्तवन करें । हे वीर इन्द्रदेव ! आपके निमित्त हम भले ही जीवन में एक बार ही यज्ञ करें, पर प्रचुर धन-धान्य से सम्पन्न होकर करें ॥२ ॥

[सूक्त-११७]

[ऋषि- वसिष्ठ । देवता-इन्द्र । छन्द- विराट् गायत्री ।]

५७३०. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥

हे भूरेवर्ण के अश्वों से युक्त इन्द्रदेव ! आप आनन्ददायक सोमरस का पान करें । संचालक के बाहुओं से सुनियंत्रित घोड़े के समान (यज्ञशाला में) सुरक्षित रखे गये पत्थर के द्वारा आपके लिए सोम निकाला जाता है ॥

५७३१. यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ।

हरि नामक अश्वों के स्वामी हे समृद्धिशाली इन्द्रदेव ! जिस सोमरस के उत्साह द्वारा आप वृत्रासुर (दुष्टों) का हनन करते हैं, वह श्रेष्ठ रस आपको आनंद प्रदान करे ॥२ ॥

५७३२. बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! विशिष्ट याजक (वसिष्ठ) गुणगान करते हुए , जिस श्रेष्ठ वाणी से आपकी अर्चना कर रहे हैं, उसे आप भली-भाँति विचारपूर्वक स्वीकार करें तथा यज्ञस्थल पर इस (ज्ञानयुक्त) हविष्य को ग्रहण करें ॥३ ॥

[सूक्त-११८]

[ऋषि-भर्ग, ३-४ मेध्यातिथि। देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७३३. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१ ॥

हे शचीपति, शूरवीर इन्द्रदेव ! सब प्रकार के रक्षा-साधनों के साथ आप हमें अभीष्ट फल प्रदान करें। सौभाग्ययुक्त धन प्रदान करने वाले आपकी हम आराधना करते हैं ॥१ ॥

५७३४. पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप गौओं (इन्द्रियों, पोषण-प्रवाहों) तथा अश्वों (पुरुषार्थ एवं शक्ति प्रवाहों) को बढ़ाने वाले हैं। आप स्वर्ण सम्पदा के स्रोत हैं। आपके अनुदानों को विस्मृत करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है, आप हमें अभीष्ट फलों से परिपूर्ण करें ॥२ ॥

५७३५. इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्य ध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥३ ॥

दैवी प्रयोजनों के लिए किये गये यज्ञों में हम याजकगण जिस प्रकार यज्ञ के प्रारम्भ और उसकी समाप्ति के समय इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, वैसे ही धन प्राप्ति की कामना से भी बलशाली इन्द्रदेव को आवाहित करते हैं ॥३ ॥

५७३६. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥४ ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी को विस्तृत किया। इन्द्रदेव ने ही सूर्यदेव को आलोकयुक्त किया। इन्द्रदेव ने ही सभी लोकों को आश्रय प्रदान किया। ऐसे इन्द्रदेव के लिए ही यह सोमरस समर्पित है ॥४ ॥

[सूक्त-११९]

[ऋषि- आयु , २ श्रुष्टिगु। देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७३७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! आपने पूर्व यज्ञों में बृहती छन्द में सामगान किया था। अब आप इन्द्रदेव के लिए सनातन कण्ठस्थ स्तोत्रों का पाठ करें। इससे स्तोताओं की मेधा में वृद्धि होती है ॥१ ॥

५७३८. तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥२ ॥

शीघ्र कार्य करने वाले विप्रगण मधुर घृतसिक्त (भावयुक्त अथवा तेजस्वी) पूजनीय मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। इससे हमारे लिए धन, वीर्य (पौरुष) तथा सोम की सिद्धि होती है ॥२ ॥

[सूक्त-१२०]

[ऋषि- देवातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७३९. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्य ग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं द्वारा सहायता के लिए चारों ओर (पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण) से आवाहित किये जाते हैं । शत्रुनाशक हे इन्द्रदेव ! 'अनु' और 'तुर्वश' (अनुगामियों और दुष्टों को वश में रखने वालों) के लिए आपको प्रार्थनापूर्वक बुलाया जाता है ॥१ ॥

५७४०. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रुम, रुशम, श्यावक और कृप (ज्ञानियों, शूरों, धनिकों तथा श्रमशीलों) के लिए प्रसन्न किये जाते हैं । कण्ववंशीय ऋषिगण आपको विभिन्न स्तोत्रों से प्रभावित करने का प्रयास करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञार्थ पधारें ॥२ ॥

[सूक्त-१२१]

[ऋषि- देवातिथि । देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७४१. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप इस स्थावर एवं जंगम जगत् के स्वामी हैं । दिव्य दृष्टि-सम्पन्न आपके लिए हम उसी तरह लालायित रहते हैं, जैसे न दुही हुई गौएँ अपने बछड़े के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं ॥१ ॥

५७४२. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके समान इस पृथ्वीलोक या दिव्यलोक में न कोई है, न कभी हुआ है और न कभी होगा । हे देव ! अश्व, गौ तथा धन-धान्य की कामना वाले हम (स्तोतागण) आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-१२२]

[ऋषि- शुनःशेप । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७४३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१ ॥

जिनकी स्तुति करके हम प्रफुल्लित होते हैं , उन इन्द्रदेव के लिए की गई हमारी प्रार्थनाएँ हमें प्रचुर धन-धान्य प्रदान करने की सामर्थ्य वाली हों ॥१ ॥

५७४४. आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२ ॥

हे धैर्यशाली इन्द्रदेव ! आप कल्याणकारी बुद्धि से स्तुति करने वाले स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ अवश्य प्रदान करें । आप स्तोताओं को धन देने के लिए रथ के चक्रों को मिलाने वाली धुरी के समान ही सहायक हैं ॥२ ॥

५७४५. आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं द्वारा इच्छित धन उन्हें प्रदान करें। जिस प्रकार रथ की गति से उसके अक्ष (धुरे के आधार) को भी गति मिलती है, उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ताओं को धन की प्राप्ति हो ॥३ ॥

[सूक्त-१२३]

[**ऋषि-** कुत्स। देवता-सूर्य । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५७४६. तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१ ॥

वे महान् कार्य ही सूर्यदेव के देवत्व के कारण हैं। जब वे सूर्यदेव अपनी हरणशील किरणों को आकाश से विलग कर केन्द्र में धारण करते हैं, तब रात्रि इस विश्व के ऊपर गहन तमिस्रा का आवरण डाल देती है ॥१ ॥

५७४७. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२ ॥

द्युलोक की गोद में स्थित सूर्यदेव, मित्र और वरुण देवों का वह रूप प्रकट करते हैं, जिससे वे मनुष्यों को सब ओर से देखते हैं। उनकी किरणें अनन्त विश्व में एक ओर प्रकाश और चेतना भर देती हैं, तो दूसरी ओर अन्धकार भर देती हैं ॥२ ॥

[सूर्य की किरणों में दृश्य प्रकाश के साथ-साथ अदृश्य चेतना का प्रभाव भी रहता है।]

[सूक्त-१२४]

[**ऋषि-** वामदेव। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री, ३ पाद निचृत् गायत्री, ४-६ त्रिष्टुप् ।]

५७४८. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१ ॥

निरन्तर प्रगतिशील हे इन्द्रदेव ! आप किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों के भेंट करने से तथा किस तरह की पूजा- विधि से प्रसन्न होंगे ? आप किन दिव्य शक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥१ ॥

५७४९. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृळहा चिदारुजे वसु ॥२ ॥

सत्यनिष्ठों को आनन्द प्रदान करने वालों में सोम सर्वोपरि है; क्योंकि हे इन्द्रदेव ! यह आपको दुर्धर्ष शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रेरणा देता है ॥२ ॥

५७५०. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥३ ॥

स्तुतियों से प्रसन्न करने वाले अपने मित्रों के रक्षक हे इन्द्रदेव ! हमारी हर प्रकार से रक्षा करने के लिए आप उच्चकोटि की तैयारी सहित प्रस्तुत हों ॥३ ॥

५७५१. इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥४ ॥

हम इन समस्त लोकों को शीघ्र ही प्राप्त करें। इन्द्रदेव और सभी देवगण हमारे लिए सुख-शान्ति की प्राप्ति में सहायक हों। इन्द्रदेव और आदित्यगण हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ, शरीर को नीरोग बनाएँ और हमारी सन्तानों को सद्व्यवहार के लिए प्रेरित करें ॥४ ॥

५७५२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥५ ॥

इन्द्रदेव आदित्यों और मरुद्गणों के साथ पधारकर हमारे शरीरों को सुरक्षा प्रदान करें । जिस समय देवगण वृत्रादि असुरों का संहार करके अपने स्थान की ओर लौटे, उस समय अमर देवत्व की सुरक्षा हो सकी ॥५ ॥

५७५३. प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६ ॥

(इन्द्रदेव ने) शक्तियों सहित सूर्य को प्रकट किया, तब सबने स्वधा (वर्षा या तृप्तिदायक प्रक्रिया) को देखा । इस प्रकार देवों के हित में बल का अर्जन किया गया । (हम याजक) श्रेष्ठवीरों सहित सौ वर्षों तक हर्षित रहें ॥६ ॥

[सूक्त-१२५]

[**ऋषि**-सुकीर्ति । **देवता**- इन्द्र , ४-५ अश्विनीकुमार । **छन्द**- त्रिष्टुप् , ४ अनुष्टुप् ।]

५७५४. अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् एवं शत्रुओं के पराभूतकर्त्ता इन्द्रदेव ! आप हमारे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से आने वाले शत्रुओं को दूर हटाएँ । हम आपके समीप सुखपूर्वक रह सकें ॥१ ॥

५७५५. कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार जौ की खेती करने वाले कृषक जौ को बा-बार काटते हैं, उसी प्रकार देवताओं के प्रिय आप दुष्टों का दमन करके श्रेष्ठजनों को पोषण प्रदान कर उनकी रक्षा करें ।२ ॥

५७५६. नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३ ॥

एक चक्रवाली गाड़ी कभी भी समय पर नहीं पहुँचती ।युद्धकाल में उससे अन्नलाभ नहीं हो सकता ।अतः हम गौ, वृषभ, अश्व, अन्न तथा बल की कामना करते हुएइन्द्रदेव की मित्रता के लिए उनका भी आवाहन करते हैं ॥

[केवल पदार्थपरक सुविधाओं के सहारे जीवन लक्ष्य पा लेने की कामना एक पहिए की गाड़ी की तरह है । पदार्थों के साथ नियामक चेतना का भी आवाहन करना चाहिए ।]

५७५७. युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्।

हे अश्विनीकुमारो ! नमुचि नामक असुर के अधिकार में स्थित श्रेष्ठ- मधुर सोमरस भली प्रकार प्राप्त करके उसका पान करते हुए , आप दोनों ने नमुचि वध में इन्द्रदेव की सहायता की ॥४ ॥

५७५८. पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! राक्षसों के संसर्ग से अशुद्ध सोम का पान कर (स्वयं को संकट में डालकर) अश्विनीकुमारों ने आपकी उसी प्रकार की रक्षा की, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है । आपने नमुचि का वध करके जब प्रसन्नता प्रदान करने वाले सोम का पान किया, तब देवी सरस्वती भी आपके अनुकूल हुईं ॥५ ॥

५७५९. इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६ ॥

भली प्रकार से संरक्षण प्रदान करने की सामर्थ्य से युक्त वे इन्द्रदेव हमारी सुरक्षा करें । वे सर्वज्ञ परमेश्वर हमारे शत्रुओं के संहारक हों । हममें निर्भीकता स्थापित करें, जिससे हम उत्तम बलों के स्वामी बनें ॥६ ॥

५७६०. स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥७ ॥

हम यज्ञीय पुरुष की श्रेष्ठ बुद्धि में वास करें तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ मन से भी सम्पन्न हों । श्रेष्ठ, संरक्षक और ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव हमारे समीपस्थ और दूर छिपे हुए सभी शत्रुओं को सदा के लिए दूर करें ॥७ ॥

[सूक्त-१२६]

[**ऋषि**- इन्द्राणी और वृषाकपि । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- पंक्ति ।]

इस सूक्त में ऐन्द्र (इन्द्र के पुत्र या सहयोगी) वृषाकपि का वर्णन है । वे इन्द्रदेव को प्रिय हैं । इन्द्राणी उनसे रुष्ट हैं, तो इन्द्र और वृषाकपि उन्हें मनाते हैं । प्रत्येक मंत्र के अन्त में गति की टेक की तरह एक उक्ति आती है, विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं । 'वृषा' का अर्थ होता है - वर्षणशील या बलशाली तथा 'कपि' का अर्थ होता है - कम्पनशील । वृषाकपि-सोमदेव की तरह दिव्याकश, अन्तरिक्ष, भूमि एवं प्राणियों के शरीरों में सक्रिय दीखते हैं । आकाश में वे शक्तिसम्पन्न, कम्पनशील 'आयन' के रूप में सक्रिय हैं, जो इन्द्रदेव (संगठक-पदार्थ संयोजक शक्ति) को प्रिय हैं । अन्तरिक्ष में मेघस्थ वे ही वर्षणशील होते हैं । पृथ्वी पर अग्नि के अन्दर यही कम्पनशील कणों की प्रतिक्रिया चलती है । शरीर में 'जीव' इन्द्रदेव के साथ, कामनाशक्ति वृषाकपि का ही रूप है । जीवन की पदार्थ प्राप्ति या विकास की कामना इन्द्रदेव के लिए उपयोगी हैं । वे विकारग्रस्त हों, तो हानि है; इसलिए इन्द्राणी उन पर क्रुद्ध होती हैं; किन्तु जीवन के यज्ञीय सन्दर्भों में वे इन्द्रदेव के प्रिय सहयोगी हैं । इन्हीं सन्दर्भों में मंत्रार्थों को देखा जाना उचित लगता है-

५७६१. वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१ ॥

इन्द्रदेव ने स्तोताओं को सोम अभिषव या अन्य कार्य के लिए प्रेरित किया था, तथापि स्तुतिकर्त्ताओं ने इन्द्रदेव की प्रार्थना नहीं की (अपितु वृषाकपि की प्रार्थना की) । जहाँ सोमप्रवृद्ध यज्ञ में आर्य वृषाकपि (इन्द्रदेव के पुत्र) हमारे मित्र होकर सोमपान से हर्षित हुए, वहाँ भी इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१ ॥

५७६२. परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२ ॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप व्यथित होकर वृषाकपि के समीप दौड़ जाते हैं । आप दूसरे स्थान पर सोमपान हेतु नहीं जाते । निश्चय ही इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२ ॥

५७६३. किमयं त्वा वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३ ॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! इस हरित (हरे या हरणशील) मृग (भूमिगामी) वृषकपि ने आपका क्या हित किया है, जिसके कारण आप उदारता के साथ उन्हें पुष्टिकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥३ ॥

५७६४. यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।

श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप जिस प्रिय वृषाकपि को सुरक्षित करते हैं, वाराह पर आक्रमण करने वाला श्वान उसका कान काट ले। इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वेत्तम हैं ॥४॥

५७६५. प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्य दूदुषत्।

शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

(इन्द्राणी का कथन) आपको तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि ने दूषित कर दिया। मेरी अभिलाषा है कि इसके मस्तक को काट डालूँ। इस दुष्कर्म में संलग्न (वृषाकपि) की कभी हितैषी नहीं बनूँगी। इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ और महान् हैं ॥५॥

[इन्द्राणी शक्ति को तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि (कामना प्रवाह) दूषित करते हैं, तो वे उग्र होती हैं।]

५७६६. न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत्।

न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

(इन्द्राणी का कथन) कोई दूसरी स्त्री मुझसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी नहीं और न कोई दूसरी अतिसुखी और सुसन्तति युक्त है। मुझसे अधिक कोई भी स्त्री अपने पति को सुख देने में सक्षम भी नहीं होगी। इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥६॥

५७६७. उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वी व हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७॥

(वृषाकपि का कथन) हे इन्द्राणी माता ! आप सभी सुखों का लाभ प्राप्त करने वाली हैं। आपके अंग, जंघा, मस्तक आदि आवश्यकतानुसार स्वरूप धारण करने या कार्य करने में सक्षम हैं। आप पिता इन्द्रदेव के लिए स्नेहसिक्त सुख-प्रदात्री हों। इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं ॥७॥

५७६८. किं सुबा हो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्य मीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

(इन्द्र का कथन) हे वीर पत्नी इन्द्राणी ! आप श्रेष्ठ भुजाओं से युक्त, सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ केशवती तथा विशाल जंघाओं से युक्त हैं। आप वृषाकपि पर क्यों क्रोधित हो रही हैं ? इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥८॥

५७६९. अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

(इन्द्राणी का कथन) यह घातक वृषाकपि मुझे पति-पुत्रादि से रहित के समान ही मानता है ; परन्तु इन्द्रपत्नी सन्तानादि से सम्पन्न हैं तथा मरुद्गण उसके सहायक हैं। इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥९॥

[वृषाकपि द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इन्द्रदेव के संयोजक कार्यों में विघ्न पैदा हो जाते हैं। वृषाकपि इन्द्राणी की अभ्यर्थना करते हैं, तो भी उन्हें उनके कार्यों में अपने अधीनस्थ प्राण-प्रवाहों की उपेक्षा दिखती है।]

५७७०. संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

प्राचीन काल से ही नारी श्रेष्ठ यज्ञों और महोत्सवों में भाग लेती आई है । यज्ञ विधान सम्पन्न करने वाली और वीर पुत्रों की जन्म प्रदात्री होने से इन्द्रपत्नी (इन्द्राणी) की स्तुति सभी जगह होती है । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१० ॥

५७७१. इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्य स्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११ ॥

सभी स्त्रियों में इन्द्राणी को मैं सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी मानता हूँ । दूसरी स्त्रियों के पति के समान इन्द्राणी के पति इन्द्र, वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, (अपितु इन्द्र अमर हैं) इन्द्र ही वस्तुत: सर्वोत्तम हैं ॥११ ॥

५७७२. नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२ ॥

हे इन्द्राणी ! हमारे मित्र (मरुद्गण) वृषाकपि के बिना हर्षित नहीं रहते । वृषाकपि का ही अति प्रीतियुक्त द्रव्य (हव्यादि) देवों के समीप पहुँचता है, इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं ॥१२ ॥

[मरुद्गण संचरणशील हैं, उन्हें वृषाकपि मेधा या अग्निरूप में सहयोग देते हैं । हव्य एवं पर्जन्य को प्रवाहित करते हैं ।]

५७७३. वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३ ॥

हे वृषाकपायि !(वृषाकपि की माता या पत्नी) आप धनवती, श्रेष्ठ पुत्रवती और सुन्दर पुत्रवधू वाली हैं । आपके उक्षाओं का इन्द्रदेव शीघ्र सेवन करें । आपके प्रिय और सुखप्रद हविष्यान्न का भी वे सेवन करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥१३ ॥

[उक्षा का अर्थ वृषभ भी होता है, जो यहाँ युक्ति संगत नहीं ।'पुष्टिदायक ओषधि' तथा 'सेचन सामर्थ्य' यहाँ समीचीन हैं]

५७७४. उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४ ॥

(इन्द्र का कथन) मेरे लिए (शची द्वारा प्रेरित) पन्द्रह-बीस उक्षा (सेचन सामर्थ्य, इन्द्रियों तथा प्राण-उपप्राण आदि) एक साथ परिपक्व होते हैं, उनका सेवन करके मैं पुष्ट होता हूँ । मेरे दोनों पार्श्व उससे भर जाते हैं । विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वोपरि हैं ॥१४ ॥

५७७५. वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५ ॥

(इन्द्राणी का कथन) तीखे सींगों से युक्त वृषभ जैसे गो-समूह में गर्जनशील होकर (रँभाते हुए) विचरते हैं, वैसे आप भी हमारे साथ रमण करें । हे इन्द्र ! आपके हृदय का भावमंथन कल्याणप्रद हों ।आपके निमित्त भावना पूर्वक आकांक्षी इन्द्राणी जिस सोम का अभिषव करती है, वह भी कल्याणकारी हो ।इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥

मन्त्र क्र०१६ में इन्द्राणी जो बात कह रही हैं, मन्त्र क्र० १७ में इन्द्र उससे विपरीत तथ्य कह रहे हैं । यह रहस्यमय कथन है, जो प्रकृति एवं जीव-जगत् में घटित होता है । कुछ आचार्यों ने इन मन्त्रों का अर्थ रतिकर्म परक किया है, किन्तु वह शब्दार्थों के साथ खींचतान जैसा लगता है । 'कपृत्' का अर्थ 'उपस्थेन्द्रिय' भी होता है, किन्तु उसका अर्थ 'कुख्याति का कारणभूत' भी होता है । यह अनेकार्थी शब्द है । 'रम्बते'का अर्थ-शब्दायमान है, उसे रकार-लकार की एकता मानकर 'लम्बते' करते उचित नहीं लगता । इसी प्रकार रोमश: शब्द रोमयुक्त, अंकुरयुक्त एवं विकिरण युक्त के लिए प्रयुक्त होता है, उसे पुरुष जननेन्द्रिय से जोड़ना एक तरह की जबरदस्ती है । यहाँ मन्त्रों के सहज स्वाभाविक भाषा एवं भाव सम्मत अर्थ करने का प्रयास किया गया है । वैसे ये मन्त्र शोध की अपेक्षा रखते हैं-

५७७६. न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६ ॥

(प्राणिसंदर्भ में इन्द्राणी कहती हैं) जिसके सक्थ (भारवाहक दो अवयवों के बीच) कुख्याति प्रदायक (विकार) शब्द करते (अपनी अभिव्यक्ति करते) हैं । वे शासन करने में समर्थ नहीं होते । (वह विकार) जिसके रोमों से क्षरण का यत्न करते हैं, वह (विकारयुक्त होकर) शासन करने में समर्थ होता है । वास्तव में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१६ ॥

५७७७. न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७ ॥

(प्रकृति के संदर्भ में इन्द्र कहते हैं) जिसके कुरूप-विस्तार वाले (मेघादि) दो धारक (आकाश एवं पृथ्वी के बीच) अंतरिक्ष में शब्दायमान होते हैं, वही शासन करता है । जिसके विकिरणयुक्त अंग (अथवा अंकुरों) से विकार प्रकट होते हैं, वह शासन नहीं करता । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१७ ॥

५७७८. अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृषाकपि दूरवर्ती, अलभ्य पदार्थ भी प्राप्त करें । खड्ग (विकारनाशक) , पाकस्थल, नये चरु और काष्ठों से परिपूर्ण यह शकट ग्रहण करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम है ॥१८ ॥

५७७९. अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९ ॥

मैं (इन्द्र) यजमानों का निरीक्षण करते हुए, शत्रुओं को दूर करते हुए तथा आर्यों का अन्वेषण करते हुए यज्ञ में उपस्थित होता हूँ । सोम अभिषवणकर्त्ताओं और हविष्यान्न तैयार करने वालों द्वारा समर्पित किये गये सोम का सेवन करता हूँ । बुद्धिमान् यजमान की श्रेष्ठ रीति से रक्षा करता हूँ । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१९ ॥

५७८०. धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२० ॥

जल रहित मरुस्थल (उर्वरता रहित क्षेत्र) और काटने योग्य वन (जहाँ आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो रहा हो) में कितना अन्तर है ?(दोनों को ठीक करना होगा) अतएव हे वृषाकपे ! आप समीप ही स्थित हमारे घर में आश्रय ग्रहण करें । इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२० ॥

५७८१. पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१ ॥

हे वृषाकपे ! आप पुनः वापस आएँ । आपके निमित्त हम (इन्द्र-इन्द्राणी) सुखदायी श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करते हैं ।आप निद्रा एवं स्वप्ननाशक सूर्य के समान सुगम मार्ग से हमारे घर में पुनः आएँ ।इन्द्र ही सर्वोत्तम हैं ॥

[स्वप्नों में न भटक कर कामनाएँ तेजस्वी मार्ग से चलें, तो इन्द्र के सहयोग से फलित हों ।]

५७८२. यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२ ॥

हे वृषाकपि और इन्द्रदेव ! आप ऊपर से घूमकर हमारे घर में प्रविष्ट हों । बहुभोक्ता और लोगों के लिए आनन्ददायक विचरणशील आप कहाँ गये थे ? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२२ ॥

५७८३. पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३ ॥

मनु की पुत्री पर्शु (स्पर्श) नाम वाली हैं, जिनने बीस पुत्रों (दस इन्द्रियों, पाँच तन्मात्राओं और पंच प्राणों) को एक साथ जन्म दिया । जिन पर्शु का उदर विशाल हुआ था, उनका सदैव कल्याण हो ।इन्द्र ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२३ ॥

[सूक्त-१२७]

बीसवें काण्ड के सूक्त क्र० १२७ से १३६ तक के सूक्तों को 'कुन्ताप' सूक्त कहा गया है । कुछ आचार्य 'कुन्ताप सूक्तों' को खिल (प्रक्षिप्त) मानते हैं । इन पर सायण भाष्य भी उपलब्ध नहीं है; किन्तु सूत्र ग्रन्थों और ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है । विद्वानों ने इन्हें मूल संहिता में मान्यता दे दी है तथा सूक्तों एवं मंत्रों की गणना में ये शामिल हैं ।

आहवनीय यज्ञों के १२ दिवसीय अनुष्ठानों में छठे दिन इनके पाठ का विधान मिलता है । इस आधार पर इन्हें 'पृष्ठ्य षडह' सूक्त भी कहा जाता है । कुन्ताप का अर्थ 'कुयान् तप्यते' (अर्थात् कुत्सित-पापों को तपाकर भस्म कर देने वाला) होता है । अर्थ की दृष्टि से इन्हें दुरूह माना जाता है, फिर भी पापों-अनिष्टों के निवारण के भाव से इनके पाठ का महत्त्व कहा गया है । 'कुन्ताप' के अंतर्गत विभिन्न मंत्र वर्गों के अनेक नाम कहे गये हैं । उनका तथा उनसे सम्बन्धित कथानकों के संकेत सहित मन्त्रार्थ करने का प्रयास किया गया है ।

२०/२७/१-३ मंत्रों को 'नाराशंस्य' कहा गया है, जिसका अर्थ होता है नर- नेतृत्व करने वाले की प्रशंसा अथवा प्रजा में वाणी की स्थापना-

५७८४. इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥१ ।

हे जनो-लोगो ! नरों (इन्द्रादि देवों) की प्रशंसा में स्तवन किये जाते हैं, उन्हें सुनो । हे कौरम (कर्मठ-नायक) ! हम ६०९० रुशमों (वीरों) को पाते या नियुक्त करते हैं ॥१ ॥

[भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा ने ६०९० वीरों से चक्रव्यूह बनाये जाने का उल्लेख किया है । अन्य संदर्भों में यह अंक शोध की अपेक्षा रखता है ।]

५७८५. उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥२ ॥

बीस ऊँट अपनी वधुओं (शक्तियों) सहित उस (नर) के रथ को खींचते हैं । उस रथ के सिर द्युलोक को स्पर्श करने की इच्छा के साथ चलते हैं ॥२ ॥

५७८६. एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥३ ॥

इस (नर श्रेष्ठ ने) मामह ऋषि को सौ स्वर्ण मुद्राओं, दस हारों, तीन सौ अश्वों तथा दस हजार गौओं का दान दिया ॥३ ॥

मंत्र क्र० १२६/४-६ रेभ के लिए हैं । रेभ का अर्थ सूत्र ग्रन्थों के अनुसार शब्द या अग्नि माना गया है । मंत्रों में 'शब्द' का भाव ही अधिक संगत बैठता है-

५७८७. वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥४ ॥

हे स्तोता (रेभ) ! बोलो-पाठ करो । (पाठ के समय) ओष्ठ और जिह्वा जल्दी-जल्दी चलते हैं, जैसे पके फल वाले वृक्ष पर पक्षी (की चोंच) और कैंचियों के फल चलते हैं ॥४ ॥

५७८८. प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥५ ॥

स्तोता शक्तिसम्पन्न वृषभों के समान गतिमान् हो रहे हैं, इनके गृह, सुसन्तति एवं गवादि पशुओं से युक्त हैं ॥

५७८९. प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥

हे स्तोतागण ! आप गोधन उपलब्ध करने वाली और ऐश्वर्य सम्पदा की प्राप्तिभूत प्रेरक बुद्धि को धारण करें । जिस प्रकार बाण के संधानकर्त्ता मनुष्य का संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वाणी आपको संरक्षण प्रदान करे । देवताओं के समीप आप इन स्तोत्रों का गायन करें ॥६ ॥

मंत्र क्र० १२७/७-१० को पारिक्षित्य कहा गया है । परीक्षित को कसौटी पर खरे उतरने वाले शासक, अग्नि अथवा संवत्सर के रूप में लिया जाता है-

५७९०. राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्याँ अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥७ ॥

सर्वहितकारी, सभी पर शासन करने वाले एवं भली प्रकार परीक्षित राजा की श्रेष्ठ स्तुतियों का श्रवण करें; क्योंकि मनुष्यों में श्रेष्ठ होने के कारण राजा देवतुल्य होता है ॥७ ॥

५७९१. परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८ ॥

कौरव (कर्मठ) पुत्र गृह निर्माण करते हुए अपनी पत्नी से कहते हैं कि शोभन राज सिंहासन पर आसीन होकर परीक्षित राजा (अथवा अग्नि) ने हमारा कल्याण किया ॥८ ॥

५७९२. कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥९ ॥

परीक्षित (विश्वस्त राजा अथवा यज्ञाग्नि) राष्ट्र (क्षेत्र या प्रकाश) में स्त्री पति से पूछती है कि दही, मट्ठा या रस आदि में आपके लिए कौन सी वस्तु प्रस्तुत की जाए ? ॥९ ॥

[परीक्षित के प्रभाव से वांछित पदार्थों का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है, यह भाव इस मंत्र से प्रकट होता है ।]

५७९३. अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥१० ॥

जिस प्रकार पक्व जौ उदररूपी स्थल में जाता है, उसी प्रकार परीक्षित के राज्य में सभी प्राणी कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥१० ॥

मंत्र क्र० १२७/११-१४ को कारव्य नाम दिया गया है । कारव्य का अर्थ होता है , देवों या सत्पुरुषों द्वारा किये जाने वाले कल्याणकारी कार्य-

५७९४. इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥११ ॥

इन्द्रदेव ने स्तोता को प्रेरित किया कि वे उठ खड़े हों, जन - जागरण हेतु समाज में विचरें, (अनीति के प्रति) उग्र स्वभाव वाले मुझ इन्द्र की स्तुति करें । सभी शत्रु तुम्हारे समीप आत्मसमर्पण करेंगे ॥११ ॥

५७९५. इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ।

यहाँ मनुष्य, सन्तति और अश्व प्रचुर संख्या में उत्पन्न हों, गौएँ अपने गोवंश को बढ़ाएँ । हजारों प्रकार के अनुदानों के दाता पूषादेव यहाँ प्रतिष्ठित हैं ॥१२ ॥

५७९६. नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौएँ यहाँ हानिरहित हों, गोपालक भी हानिरहित हों, शत्रु और चोर भी इनके स्वामी न बनें ॥१३ ।

५७९७. उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपको कल्याणकारी वाणी से हर्षित करते हैं, हम आपको सूक्त द्वारा भी हर्षित करते हैं । आप हमारे स्तोत्रों का (अन्तरिक्ष से) श्रवण करें, हम कभी विनष्ट न हों ॥१४ ॥

[सूक्त-१२८]

मंत्र क्र० १ से ५ तक के मंत्र 'दिशां क्लृप्तयः' कहे जाते हैं । ये नीतिपरक दिशा-निर्देश करने वाले मंत्र हैं-

५७९८. यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥१ ॥

जो सभासद हैं, जो विदथ (विद्वान् सभा) के सदस्य हैं, जो सोम निष्पादक पुरुष हैं, उन्हें तथा सूर्य को देवों ने अग्रगामी बनाया है ॥१ ॥

५७९९. यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ।

जो बहिन के साथ दुर्व्यवहार करते , मित्र को हानि पहुँचाते और ज्येष्ठ होने पर दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं, ऐसे मनुष्य पतित कहलाते हैं ॥२ ॥

८००. यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥३ ॥

जिस भद्रपुरुष का पुत्र धर्षणशील (पराक्रमी) होता है, ऐसा विप्र अभीष्ट वाणी प्रयुक्त करने में सक्षम होता है, ऐसा गन्धर्व ने कहा है ॥३ ॥

५८०१. यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः । धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ।

जो वणिक् स्वयं उपभोग करने के साथ देवों के निमित्त हविष्यान्न देने की भावना से रहित होता है । वह समस्त धीर पुरुषों में निम्नकोटि का होता है, ऐसा हमने सुना है ॥४ ॥

५८०२.ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादिदः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥

जो स्तोतागण देवों का यजन करते हैं और दूसरों को दान देते हैं, वे सूर्य के समान स्वर्गलोक में जाते हैं और वे ऐश्वर्यवान् (अथवा इन्द्र) की तरह शोभा पाते हैं ॥५ ॥

मंत्र क्र० ६ से ११ 'जनकल्पाः' जनता का वर्गीकरण करने वाले कहे जाते हैं, ये भी भौतिक दिशापरक मंत्र हैं-

५८०३. योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणि वो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥६ ॥

अञ्जनरहित आँख, उबटनरहित शरीर, रत्न एवं स्वर्णरहित आभूषण तथा ब्रह्मज्ञानरहित ब्राह्मणपुत्र, ये सब एक जैसे (दोषपूर्ण) होते हैं ॥६ ॥

५८०४. य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥७ ॥

अञ्जनयुक्त आँख, उबटनयुक्त शरीर, श्रेष्ठ रत्न और सुन्दर सोने के आभूषण तथा ब्रह्म ज्ञान सम्पन्न विप्र पुत्र, ये सभी कल्पों में समान (श्रेष्ठ) माने गये हैं ॥७ ॥

५८०५. अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥८ ॥

जो तालाब पेयजल से रहित हैं, जो धनवान् होते हुए दानभाव से रहित हैं तथा रमणीय होने पर भी जो कन्याएँ गृहस्थ धर्म के आयोग्य हैं, वे सभी कल्पों में समान (दोषपूर्ण) माने जाते हैं ॥८ ॥

५८०६. सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥९ ॥

तालाबों का पेयजल से परिपूर्ण होना, धनवान् होने पर श्रेष्ठ दानकर्त्ता होना तथा सुन्दर कन्या होने के साथ गृहस्थ धर्म के निर्वाह योग्य होना, ये बातें सभी कल्पों में समान रूप से (श्रेष्ठ) मानी जाती हैं ॥९ ॥

५८०७.परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ।

महारानी का परित्याग करना, स्वस्थ होने पर संग्राम क्षेत्र में न जाना, तीव्रगति से रहित घोड़ा अथवा चलने वाला घोड़ा अथवा न चलने वाला घोड़ा, ये सभी बातें कल्पों में समान (दोषपूर्ण) मान्य हैं ॥१० ॥

५८०८. वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ।

प्रिय राजमहिषी होना, स्वस्थ होने पर युद्ध क्षेत्र में गमन और श्रेष्ठ गतिशील घोड़े, ये बातें सभी कल्पों में एक सी (श्रेष्ठ) मान्य होती हैं ॥११ ॥

मन्त्र क्र० १२ से १६ को 'इन्द्रगाथा' नाम दिया गया है। इसमें इन्द्र की स्तुति के साथ शत्रुओं के पराभव का भाव है-

५८०९. यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! दाशराज के युद्ध में प्रवेश करके आपने मनुष्यों को मथ डाला । (इस पराक्रम से) आप सभी के लिए सम्माननीय हुए । आप यक्षों के साथ प्रकट हुए थे ॥१२ ॥

[पौराणिक सन्दर्भ में दाशराज के युद्ध में इन्द्र ने पराक्रम करके प्रतिष्ठा पाई थी । आध्यात्मिक सन्दर्भ में दश इन्द्रियाँ अपने विषयों के फन्दे में फँस जाती हैं । इन्द्र (नियामक सत्ता) द्वारा उसमें प्रवेश करके उन्हें अपने वश में कर लिया जाता है, तब उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है ।]

५८१०. त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः । त्वं रौहिणं व्या स्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ।

(हे इन्द्र !) आप विजयशील हैं । आपने मनुष्यों के लिए सूर्य को नम्र (नीचे की ओर संचरित) किया । आपने ही ऊपर चढ़ते हुए वृत्र के सिर को काट गिराया ॥१३ ॥

५८११. यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ।।१४ ।।

जिन्होंने पर्वत शृंखलाओं को स्थापित किया है और जल को प्रवाहित किया है । जो महान् इन्द्रदेव वृत्रासुर के संहारक हैं, ऐसे हे इन्द्रदेव ! आपके लिए नमस्कार है ।।१४ ।।

५८१२. पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन् । स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ।।

अग्रगामी उच्चैःश्रवा घोड़ों से (याजकों ने) कहा- हे अश्व !आप जीतने के लिए मालाधारी इन्द्र को यहाँ लाएँ।

[उच्चैःश्रवा घोड़ा समुद्र मंथन से निकला था, जो इन्द्र को सौंपा गया था । यह घोड़ों की एक नस्ल भी होती है , जो ऊँचे कान वाले और तीव्रगामी होते हैं ।]

५८१३. ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ।।१६ ।।

दक्षिण (अनुकूलता से) योजित अजश्रवा अश्वो ! प्रथम नमनीय इन्द्र को धारण करके आपकी शुभ्रता और महान् (श्रेष्ठ) हो जाती है ।।१६ ।।

[सूक्त-१२९]

सूक्त क्र० १२९ से १३२ तक के सूक्त 'एतश प्रलाप' के नाम से जाने जाते हैं । ऐतरेय ब्राह्मण (३०/७) में इस संदर्भ की कथा दी गयी है । एतश नामक ऋषि ने 'अग्नेरायु:' नामक मन्त्र समूह का साक्षात्कार किया तथा अपने पुत्रों एवं शिष्यों को समझाया कि तुम्हारी समझ में न आये , तो भी मेरे कथन को अनर्गल मत कहना; किन्तु वे २७ पदसमूह कह पाये, तब तक उन्हीं के पुत्र (अभ्याग्नि) ने उसे अनर्गल कहकर रोक दिया । ऐतश ऋषि ने पुत्र को बहिष्कृत किया तथा अपनी शक्ति व्यक्त की । एतश प्रलाप के पाठ को यज्ञों में बहुत महत्त्व देकर उसका पाठ करने की बात भी कही गयी है । उसे पूज्य और छन्दों में वेद का रस भी कहा है । इसका सम्बन्ध अर्थ की अपेक्षा आस्था के साथ अधिक जोड़ा जाता है । एतश प्रलाप तथा कुन्ताप सूक्त के अन्य (१२९ से १३६) सभी सूक्तों में पाठभेद भी मिलता है । उसकी समीक्षा होशियारपुर के विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान द्वारा सम्पादित अथर्ववेद संहिता में संदर्भों सहित दी गयी है । इस अनुवाद में संहिताओं में मान्यता प्राप्त पाठ को ही लिया गया है-

५८१४. एता अश्वा आ प्लवन्ते ।।१ ।। **५८१५. प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ।।२ ।।**

यह अश्वाएँ (शक्तियाँ या प्रवृत्तियाँ) उमड़ रही हैं । प्रतिकूल (आत्मिक अनुशासन के विपरीत नश्वर) ऐश्वर्य प्राप्त कर रही हैं ।।१-२ ।।

५८१६. तासामेका हरिक्निका ।।३ ।। **५८१७. हरिक्निके किमिच्छसि ।।४ ।।**

उन (शक्तियों-प्रवृत्तियों) में एक हरि उन्मुख है ।हे हरिक्निके (चित्शक्ति) !तुम क्या चाहती हो ? ।।३-४ ।।

५८१८. साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ।।५ ।। **५८१९. क्वाहतं परास्यः ।।६ ।।**

(हरिक्निका की ओर से कथन) मैं साधु (सज्जन) पुत्र हिरण्य (पदार्थ के पूर्व की स्थिति में तेजस् तत्त्व) को चाहती हूँ । (उससे पुनः प्रश्न) उसे तुमने कहाँ छोड़ा ? ।।५-६ ।।

[सृष्टि सृजन में चेतना से पदार्थ बनाने के क्रम में पदार्थ से पूर्व तेजोमय द्रव्य को हिरण्य कहा गया है । चित् शक्ति उसी के द्वारा विभिन्न सृजन कार्य करती है ।]

५८२०. यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ।।७ ।। **५८२१. परि त्रयः ।।८ ।।**

जहाँ वे तीन छायाकार वृक्ष (तीन गुण या तीन संरक्षक माता-पिता एवं गुरु) हैं, उन्हीं तीन के आस-पास उन्हें छोड़ा है ।।७-८ ।।

[हिरण्य तत्त्व को जहाँ पदार्थ रूप में आकार दिया जा सकता है, चित्शक्ति उसे वहीं पहुँचाती है ।]

५८२२. पृदाकवः ॥९ ॥ **५८२३. शृङ्गं धमन्त आसते ॥१० ॥**

पृदाकू (अजगर या विशाल सर्प अथवा त्रिदोष या वासना, तृष्णा, अहंतारूप दोष) शृंगी फूँकते विजय वाद्य बजाते हुए स्थित हैं ॥९-१० ॥

५८२४. अयन्महा ते अर्वाहः ॥११ ॥ **५८२५. स इच्छकं सघाघते ॥१२ ॥**

यह तुम्हारा वहन करने वाला (अश्व) आ गया । यह इच्छा करने वालों की सहायता करता है ॥११-१२ ॥

५८२६. सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति॥१३ ॥ **५८२७. पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥१४ ॥**

गौ (वाणी) की शक्ति गौओं (इन्द्रियों) की गति की मदद करती है ।हे पुरुष !तुम कौन सी गति चाहते हो ?

[वाणी की प्रेरणाएँ तो सहज ही प्राप्त होती रहती हैं, मनुष्य की कामना के अनुरूप प्रेरणाएँ वह प्राप्त कर पाता है ।]

५८२८. पल्प बद्ध वयो इति ॥१५ ॥ **५८२९. बद्ध वो अघा इति ॥१६ ॥**

सीमा में बद्ध आयु है । बँधा होना तुम्हारे लिए पाप है ॥१५-१६ ॥

५८३०. अजागार केविका ॥१७ ॥ **५८३१. अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥१८ ॥**

अजा (प्रकृति) के इस गृह में (इन्द्रियाँ) सेविकाएँ हैं । तुम अश्व (शक्तियों) के सवार (नियन्त्रक) हो । गौओं (इन्द्रियों) के खुरों (चरणों) में पड़े हो ? ॥१७-१८ ॥

५८३२. श्येनीपती सा ॥१९ ॥ **५८३३. अनामयोपजिह्विका ॥२० ॥**

वह (बुद्धि-प्रकृति) गतिशील शक्तियों (प्रवृत्तियों) की स्वामिनी है ।आरोग्य को उपजीविका देने वाली है ।

[सूक्त-१३०]

५८३४. को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥१ ॥

कौन आर्य (श्रेष्ठ पुरुष) बहुत प्रकार के बाण रखता है ? ॥१ ॥

[संसार एक समर है, इसमें विजय पाने के लिए विचारों एवं शम, दम, नियमादि के बाणों का प्रयोग करना पड़ता है । ऋषि संभवतः उसी संदर्भ में प्रश्न कर रहे हैं ।]

५८३५. को असिद्याः पयः ॥२ ॥

५८३६. को अर्जुन्याः पयः ॥३ ॥ **५८३७. कः कार्ष्ण्याः पयः ॥४ ॥**

असिद् (असित् अर्थात् सत् से भिन्न रजोगुणी प्रकृति) का पय (पोषक तत्त्व) क्या है ? अर्जुनी (सत् प्रकृति) का पय क्या है ? तथा कार्ष्णी (तमोगुणी प्रकृति) का पय क्या है ? ॥२-४ ॥

[इन तीनों प्रकृतियों के पय को जो जान ले , वह इन तीनों का लाभ उठा सकता है । इस त्रिगुणात्मक संसार में उनसे बचना कठिन है, उनके सदुपयोग का तंत्र बिठाना ही उचित है ।]

५८३८. एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५ ॥ **५८३९. कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६ ॥**

यह (जानते नहीं हो तो) पूछो । किसी चमत्कारी व्यक्ति से पूछो । किसी अद्भुत कौशलयुक्त तथा परिपक्व व्यक्ति से पूछो ॥५-६ ॥

[भाव यह है कि केवल शाब्दिक जानकारी देने वाले से काम नहीं चलता, ऐसे गूढ़ विषय उनसे पूछना चाहिए, जिनका अनुभव परिपक्व हो ।]

५८४०. यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥७ ॥ **५८४१. अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥८ ॥**

यत्न करने वालों तथा धन-धान्य युक्त भूमि से (जानो),(प्रकृतिका मर्म न जानने वालों से) भूरक्षक कुपित हुए !

[जो प्रकृति का मर्म नहीं जानते , वे प्रकृति का शोषण करके संतुलन बिगाड़ते हैं। इसलिए पृथ्वी के रक्षक देवों के कोप-भाजन बनते हैं।]

५८४२. आमणको मणत्सकः ॥९ ॥ ५८४३. देव त्वप्रतिसूर्य ॥१० ॥

हे आमणक ! हे मणत्सक देव ! आप सूर्य के प्रतिरूप हैं ॥९-१० ॥

५८४४. एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥११ ॥ ५८४५. प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥१२ ॥

यह पापनाशक हवि है। (यह) ऐश्वर्य के प्रति गति देने वाली हो ॥११-१२ ॥

५८४६. शृङ्ग उत्पन्न ॥१३ ॥ ५८४७. मा त्वाभि सखा नो विदन् ॥१४ ॥

हे प्रकट हुए शृंग (सींग अर्थात् पीड़ादायक-हिंसक उपकरण) ! हमारे मित्रों का तुमसे पाला न पड़े ॥१३-१४॥

५८४८. वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५ ॥ ५८४९. इरावेदुमयं दत ॥१६ ॥

वशा (प्रकृति) के पुत्र को लाते हैं । ज्ञानमयी इरा (वाणी या भूमि) इसे दो ॥१५-१६ ॥

५८५०. अथो इयन्नियन्निति ॥१७ ॥ ५८५१. अथो इयन्निति ॥१८ ॥

अब (वह) चलने वाला हो , चलने वाला ही हो, अब चलने वाला ही हो ॥१७-१८ ॥

५८५२. अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥१९ ॥ ५८५३. उयं यकांशलोकका ॥२० ॥

अब (वह) श्वान (जैसे स्वभाव वाला) अस्थिर होकर निश्चय ही कष्टप्रद लोक वाला हो ॥१९-२० ॥

[सूक्त-१३१]

५८५४. आमिनोनिति भद्यते ॥१ ॥

५८५५. तस्य अनु निभञ्जनम् ॥२ ॥ ५८५६. वरुणो याति वस्वभिः ॥३ ॥

वह (परमतत्त्व) विभक्त हुआ ऐसा कहा गया है । उसका पुन: (सतत) विभाजन हुआ । वरुण (वरणशील देव) धन (सम्पत्तियों) के साथ चलते (गतिशील होते) हैं ॥१-२-३ ॥

[इन मन्त्रों में सृष्टि प्रारम्भ के समय हुए महा विस्फोट (बिग-बैंग) की प्रक्रिया व्यक्त की गयी प्रतीत होती है । उस परमात्म तत्त्व का विभाजन हुआ तथा वह विभाजन होता चला गया। तब वरुण (वरणशील) विभिन्न उपकरणों के संयोग से विभिन्न पदार्थों के रूप में सम्पत्ति बनाते हुए गतिशील हुए।]

५८५७. शतं वा भारती शवः ॥४ ॥ ५८५८. शतमाश्वा हिरण्ययाः ।
शतं रथ्या हिरण्ययाः । शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥५ ॥

(इस प्रक्रिया में) सौ (सैकड़ों) भारती (विद्याओं) के बल (प्रवृत्त) हैं । (उस प्रक्रिया से) हिरण्य तेजस् तत्त्व के सौ (सैकड़ों) अश्व, सैकड़ों रथ, सैकड़ों गद्दे तथा सैकड़ों हिरण्ययुक्त हार (प्रकट होते) हैं ॥४-५ ॥

[सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में सैकड़ों विद्याएँ प्रयुक्त हुई हैं। परमात्म तत्त्व के विभाजन से हिरण्य तत्त्व की उत्पत्ति कही गयी है, इसीलिए उसे हिरण्यगर्भ कहा गया है। हिरण्य चेतन और पदार्थ के बीच के तेजस् तत्त्व को कहा गया है। उस हिरण्य से ही अश्व (शक्तिकण) रथ (संवाहक कण) , गद्दे (गतिशील कणों के आघातों को सँभालने वाले बीच के नरम पदार्थ) तथा हिरण्य के हार (उपकरणों की लम्बी शृंखला वाले पदार्थ) बने।]

५८५९. अहल कुश वर्त्तक ॥६ ॥ ५८६०. शफेन इव ओहते ॥७ ॥

वह (परमतत्त्व) बिना हल के ही कुश का वर्तन (प्रयोग) करने वाला है । खुर की तरह वह (अनायास) ही खोदता है ॥६-७ ॥

['कुश के साथ वर्तता है ' यह वाक्य अनेकार्थी है । कुश-दर्भ की उत्पत्ति या उसे नष्ट करने के लिए वह परमात्म सत्ता हल का प्रयोग नहीं करती । पशु चलता है तो खुर के दबाव से भूमि खुदती या तृण उखड़ जाते हैं, इसी प्रकार उस देव की गतिशीलता के साथ वह कार्य सहज ही होते चलते हैं ।]

५८६१. आय वनेनती जनी ॥८ ॥

५८६२. वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥९ ॥ **५८६३. इदं मह्यं मदूरिति ॥१० ॥**

(हे परमसत्ता !) आप (बच्चों के लिए) झुकने वाली माता की तरह आएँ । निष्ठावान् (दायित्व को देखकर) रुकते नहीं । यह (ऊपर लिखे अनुसार किया जाना) हमारे लिए आनन्ददायक है ॥८-९-१० ॥

५८६४. ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥११ ॥ ५८६५. पाक बलिः ॥१२ ॥ ५८६६. शक बलिः ॥

(वे) वृक्षों (पेड़ों अथवा रक्षण या वरण करने वालों) के पास स्थित रहते हैं; (कौन ?) परिपक्व बलि (भोज्य पदार्थ) एवं समर्थ (शक्तियुक्त) बलि ॥११-१२-१३ ॥

[सूक्ष्म रूप में पोषक कण प्रकृति में सतत प्रवाहित हैं । वृक्ष उन्हें धारण करके परिपक्व करते हैं; तब वे प्राणियों के लिए उपयोगी बनते हैं । परिपक्व- शक्तियुक्त भोज्यपदार्थ उसी को लाभ पहुँचाते हैं, जो उनका रक्षण -वरण (पाचन) कर सकें]

५८६७.अश्वत्थ खदिरो धवः ॥१४ ॥ ५८६८.अरदुपरम ॥१५ ॥५८६९.शयो हत इव ॥१६।

अश्वत्थ (अश्व-इन्द्रियों पर आरूढ़ जो है वह) स्थिर दृढ़ स्वामी होता है । जो शौर्यहीन है, वह शयन (नींद) की स्थिति में मारे जाने वाले की तरह (दुर्गति पाता) है ॥१४-१५-१६ ॥

५८७०. व्याप पूरुषः ॥१७ ॥ **५८७१. अदूहमित्यां पूषकम् ॥१८ ॥**

(विश्व में) व्याप्त पुरुष (परमात्मा) बिना दुहे ही पोषण प्रदानकर्त्ता है ॥१७-१८ ॥

[प्रकृति भी प्राणियों के प्रति स्नेह के कारण दिव्य पय उत्पन्न करती है, किन्तु उसे दुहना पड़ता है । परम पुरुष बिना दुहे-अनायास ही पोषण देते हैं ।]

५८७२. अत्यर्धर्च परस्वतः ॥१९ ॥

अति स्तुत्य एवं पालक (उस परमात्मा) का अर्चन-पूजन करो ॥१९ ॥

५८७३. दौव हस्तिनो दृती ॥२० ॥

हाथी के दो दृति (चर्म या विदारण करने वाले दो दाँत) हैं ॥२० ॥

[सूक्त-१३२]

५८७४. आदलाबुकमेककम् ॥१ ॥ **५८७५.अलाबुकं निखातकम् ॥२ ॥**

५८७६. कर्करिको निखातकः ॥३ ॥ **५८७७. तद् वात उन्मथायति ॥४ ॥**

(यह) अलाबुक (न डूबने वाले पोले तुम्बे की तरह) एक ही है । यह एक निखात (खोदे गये गड्ढे) की तरह है । क्रियाशील (परमात्मा उस गर्त का) खोदने वाला है ।उस (तुम्बे) को वात (वायु या प्राण) हिलाता- डुलाता है ॥

[अलाबुक सम्बोधन इस पोले विश्व , ब्रह्माण्ड, जीव कोश, जीवात्मा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है ।]

५८७८. कुलायं कृणवादिति ॥५ ॥ **५८७९. उग्रं वनिषदाततम् ॥६ ॥**

५८८०. न वनिषदनाततम् ॥७ ॥ **५८८१. क एषां कर्करी लिखत् ॥८ ॥**

(वह जीव या ब्रह्म) अपना स्थान गढ़ लेता है । वह उग्र (तेजोयुक्त) और विस्तृत दिखता है । जो विस्तृत नहीं हुआ, वह नहीं दिखाई देता ॥५-८ ॥

५८८२. क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥९ ॥ ५८८३. यदीयं हनत् कथं हनत् ॥१० ॥

किसने इस कर्करी (नीचे छिद्र वाले जलपात्र अर्थात् बादल) की रचना की ? कौन इस नगाड़े को बजाता (मेघ गर्जन करता) है ॥९-१० ॥

५८८४. देवी हनत् कुहनत् ॥११ ॥ ५८८५. पर्यागारं पुनः पुनः ॥१२ ॥

देवी (दिव्य चेतना उस नगाड़े को) बजाती है, (तो) कहाँ बजाती है ? सभी आवासों (स्थानों) के चारों ओर बार-बार बजाती है ॥११-१२ ॥

५८८६. त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥१३ ॥ ५८८७. हिरण्यं इत्येके अब्रवीत् ॥१४ ॥

उष्ट्र के तीन नाम हैं । इनमें से एक नाम हिरण्य कहा गया है ।

[कोष ग्रन्थों में उष्ट्र के अर्थ-वाहक रथ, बली तथा दीर्घगति (तीव्र गतिवाला) (कहे)बताये गये हैं । जो सूक्ष्म कणों (सब एटामिक पार्टिकल्स) के रूप में ब्रह्माण्ड में पदार्थ प्रवाहित हैं, उसका रथ-संवाहक (कैरियर) हिरण्य (तेजस्) ही है । उसके दूसरे दो नाम विचारणीय हैं ।]

५८८८. द्वौ वा ये शिशवः ॥१५ ॥ ५८८९. नीलशिखण्डवाहनः ॥१६ ॥

दो ही ये शिशु हैं, नील शिखण्ड (नीली शिखा वाला मोर या अग्नि) उनका वाहन है ॥१५-१६ ॥

[सूक्त-१३३]

इस सूक्त के मन्त्रों को प्रवल्हिका-पहेलियाँ कहा जाता है । प्रत्येक मन्त्र में एक स्थायी पद (टेक) है , जिसका अर्थ है "हे कुमारि ! यह सब ऐसा नहीं है, जैसा तुम मानती हो" । यह कुमारी मनुष्य की अयुक्त (परम तत्त्व से जो जुड़ नहीं पायी हो, ऐसी) बुद्धि हो सकती है । वह जैसा समझती है, वस्तुतः यह (परम पुरुष) वैसा नहीं है-

५८९०. विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।

फैली हुई दो किरणों को यह पुरुष पीसता रहता है । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥१ ॥

[पदार्थ परक और चेतना परक दो प्रकार की किरणें निःसृत हो रही हैं । यह पुरुष उन्हें पीसकर, मिलाकर सृष्टि रचता है ।]

५८९१. मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२।

तुम्हारी माता से (यह) दोनों किरणें किसी पुरुष के बिना ही निवृत्त-निःसृत हुईं हैं । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥२ ॥

[मंत्र पाठ भेद में इसका उत्तर 'कोशबिल' माना जाता है । इसका अर्थ होता है कि बिल (गुप्त स्थान) में (रखा हुआ) कोश । किरणों का निस्सरण किसी कोश में रखे धन की तरह होता है ।]

५८९२.निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।

हे मध्यमे (जड़ एवं चेतन को संयुक्त करने वाली सत्ता !) आप दोनों कर्णों (छोरों) को अपने वश में करके उन्हें नियोजित कर देती हैं । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥३ ॥

[यह क्रिया कैसे होती है ? इसका उत्तर दो रस्सियों में गाँठ लगाने की प्रक्रिया जैसा 'रज्जुनि ग्रन्थेर्दानम्' कहा गया है ।]

५८९३. उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४ ॥

(यह प्रकृति) खड़े हुए या सोये(लेटे) हुए (सभी) को ढककर स्थित है । हे कुमारि ! .... नहीं है ॥४ ॥

[इस पहेली के उत्तर में जूते में पाँव 'उपानहि पादम्' की उपमा दी गयी है । वह पुरुष खड़ा है- उसका पैर जूते में लेटा है । 'पदभ्यां भूमिः ' के अनुसार यह विश्व उस विराट् पुरुष के पैर रूप में ही है । प्रकृति उसे जूते की तरह ढके है । उसे (पुरुष को) पहचानने के लिए प्रकृति के अन्दर झाँकना पड़ता है ।]

५८९४. श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५ ॥

स्नेहयुक्त (यह प्रकृति) स्नेह करने वालों से अपने स्नेह को ढँक कर रखती है । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥५ ॥

५८९५. अयश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥६ ॥

उस तैलीय पदार्थ की तरह जो नीचे उतर कर लोमराशि के हृदय में समा जाता है । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥६ ॥

[सूक्त-१३४]

इस सूक्त के मंत्रों को 'प्रतिगर' अथवा आजिज्ञासेन्या: कहा गया है । हम मंत्र में 'यहाँ इस प्रकार' कहकर कुछ व्यवस्थाएँ बतलायी गई हैं । किस प्रकार यह जानने की जिज्ञासा उभरती है-

५८९६. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-अरालागुदभर्त्सथ ॥१ ॥

यहाँ (संसार में) इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण (दिशाओं में-सभी ओर) द्वेष की भर्त्सना करने वाला (आदिदेव) स्थित है ॥१ ॥

५८९७. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-वत्सा: पुरुषन्त आसते ॥२ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में बच्चे पुरुषत्व के लिए स्थित हैं ॥२ ॥

५८९८. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-स्थालीपाको वि लीयते ॥३ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में स्थालीपाक (थाली में स्थित पके पदार्थ) विलीन हो जाते हैं ।

५८९९. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-स वै पृथु लीयते ॥४ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में वह (पके पदार्थ) बड़ी मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं ॥४ ॥

५९००. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-आष्टे लाहणि लीशाथी ॥५ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में प्रेरकशक्ति (या बुद्धि) विस्तार पाती है ॥५ ॥

५९०१. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-अक्ष्लिली पुच्छिलीयते ॥६ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में व्यावहारिक (शक्ति या बुद्धि) पूछी जाती है ॥६ ॥

[सूक्त-१३५]

इस सूक्तके मन्त्र १ से ३ को प्रतिराधा, ४-५ को 'अतिवाद' कहा जाता है । प्रसिद्धि है कि प्रतिराधा से देवों द्वारा असुरों या आसुरी प्रवृत्तियों के मार्ग में रुकावट डाली गयी थी तथा अतिवाद से उन्हें खरी-खोटी सुनाकर हतप्रभ किया गया था-

५९०२. भुगित्यभिगत: शलित्यपक्रान्त: फलित्यभिष्ठित: ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥१ ॥

भुक् (भोक्ता) अभिगत (प्रत्यक्ष सामने रहने वाला) है । (गतिशील-जीव) अपक्रान्त (शरीर) को छोड़कर निकल जाने वाला) है तथा फल (कर्म फल) अभितिष्ठ (चारों ओर स्थिर रहने वाला) है । हे जरित: (स्तोता) ! दैव (नियन्ता) की दुन्दुभि बजाने (प्रतिष्ठा बढ़ाने) के लिए हम दो (वाणी और कर्म) के डंके उठाएँ ॥१ ॥

५९०३. कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम्।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥२ ॥

कोश के बिल (खोह) में रखे धन की तरह, उत्तम जननी में, गाँठ में बँधे धन की तरह उत्पन्न होने वाले (मनुष्यों) में तथा जूते में पैर की तरह उत्पन्न पदार्थों में (वह दिव्य परमात्म चेतना स्थित) है ॥२ ॥

५९०४. अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम्।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो दैव ॥३ ॥

तुम्बी, घृतबिन्दु, पीपल और पलाश, चींटी, वट की कोंपलें, (जल में) बिजली एवं किरणें (आकाश में), गोखुर आदि (पृथ्वी पर जैसे ऊपर ही रहते हैं, वैसे ही) स्तोतागण (स्तोत्रों द्वारा) देव शक्तियों को उठाए रखते हैं ।

५९०५. वी मे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर । सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥४ ।।

(यज्ञ के समय) देवगण विशेष गतिशील (सक्रिय) हैं, हे अध्वर्यो ! शीघ्रता करो । तुम्हारी सुसत्य वाणियाँ (इन्हें या तुम्हें) आनन्द देने वाली हैं ॥४ ॥

५९०६. पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव ।
होता विष्टीमेन जरितरोऽथामो दैव ॥५ ॥

(इस समय) पत्नी (पालनकर्त्री प्रकृति) पत्नी (पोषिका) रूप में ही परिलक्षित हो रही है । हे स्तोताओ ! देवों को उठाओ, (परमात्मा) इनमें प्रविष्ट है, हे होता ! देवों को (आहुतियों और स्तोत्रों से) उन्नत करो ॥५ ॥

[अगले मंत्र वर्ग ६ से १० तक 'देवनीथ' कहलाते हैं । इस प्रसंग में कथा है कि आदित्यों और अंगिराओं में सोम यज्ञ हेतु स्पर्धा हुई । अग्नि नामक अंगिरा ने देवों की सहायता की । प्रसन्न होकर देवों ने उन्हें पृथ्वी दान में दी, उसे उन्होंने नहीं लिया तो उन्हें श्वेत अश्व प्रदान किया । अन्तिम मंत्र वर्ग ११ से १३ में 'भूतेच्छद:' नाम से इन्द्र की प्रशंसा है ।]

५९०७. आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥६ ॥

आदित्यों ने ही स्तुति करने वाले अंगिराओं को दक्षिणा प्रदान की । उस दक्षिणा को स्तोताओं ने ही प्राप्त किया, उसे उन्होंने स्वीकार किया ॥६ ॥

[यहाँ आदित्य स्वप्रकाशित अखण्ड तेज के प्रतीक हैं तथा अंगिरा, शरीरों (अंगों) में स्थित उसी तेज के अंश हैं ।]

५९०८. तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥७ ॥

उस (दक्षिणा) को जरिता (स्तोताओं) ने हमारे लिए पाया और स्वीकार किया । हम प्राप्त (पदार्थों) में बल संचार करने वाली तथा यज्ञ में बल संचार करने वाली चेतना को आगे बढ़कर स्वीकार करें ॥७ ॥

५९०९. उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥८ ॥

यह श्वेत (तेजस्वी) बलवान् पदों से शीघ्र गमन करने वाला है । यह निश्चित रूप से शीघ्रतापूर्वक (कार्य या लक्ष्य की निर्धारित मात्रा) को पूरा करता है ॥८ ॥

५९१०. आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥९ ॥

हे अंगिरा ! आदित्य, वसु, रुद्र आदि आपको अनुदान देते हैं, आप इस धन को स्वीकार करें ।यह धन प्रभु (प्रभावयुक्त) विभु (विभूतियुक्त) बृहत् (बड़ा) और पृथु (विस्तार वाला) है ॥९ ॥

५९११. देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् । युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥१०॥

(हे अंगिराओ या मनुष्यो !) देवगण तुम्हें जो बल दें, वह सुचेतना सम्पन्न हो तथा तुम्हें प्रतिदिन प्राप्त हो । तुम उसे प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करो ॥१० ॥

५९१२. त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः । विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने (प्राणियों के लिए) आश्रय और हव्य (आहार) पहुँचाया है । विप्रों (याजकों) एवं स्तोताओं के लिए भी धनादि का वहन करें ॥११ ॥

५९१३. त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने पंख से ही चलने वाले कपोत (कबूतर या सहनशीलों) के लिए भी अनेक बार दान, पक्व अन्न, फल, जल आदि बहुत बार (प्रकट या पैदा) किया है ॥१२ ॥

५९१४. अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया । इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥१३ ॥

तीन प्रकार से तीन लड़ों (वाले पाश) से बँधे हुए अंगिरा बार-बार कहते हैं कि वे श्रेष्ठ अन्न की प्रशंसा करते हैं तथा निन्दित अन्न को परे (दूर) हटाते हैं ॥१३ ॥

[सूक्त-१३६]

यह सूक्त 'आहनस्य' नाम से जाना जाता है । इसमें प्रजा-उत्पत्ति का वर्णन माना जाता है । मन्त्र में 'अस्याः' सम्बोधन को 'योनि' के सन्दर्भ में लेने से 'पस' और मुष्क आदि के अर्थ भी गुप्तांग परक हो जाते हैं । 'अस्याः' को वेदिका या उर्वरा भूमि के रूप में लेने से व्यापक सृष्टि या राष्ट्र व्यवस्था का भाव बनता है । ' पस' का अर्थ पुरुषेन्द्रिय के अतिरिक्त 'पापनाशक' तथा राष्ट्र भी होता है । इसी प्रकार 'मुष्क' का अर्थ अण्डकोशों के अतिरिक्त 'गुच्छक' जटायुक्त तस्कर एवं विषनाशक भी होते हैं । मंत्र क्रमांक ५ से ११ तक महान् अग्नि का वर्णन आया है । वह सृष्टि उत्पादक पोषक अग्नि ही हो सकती है । इस आधार पर प्रारम्भिक मंत्र में 'अस्याः' सम्बोधन उत्पादक या पोषक वेदिका के सन्दर्भ में लिया जाना युक्तिसंगत लगता है-

५९१५. यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव।

जब इस (वेदिका या धरा) के सूक्ष्म, स्थूल (भाग) नष्ट किये जाते हैं, तो इसके मुष्कविद् (दोषनाशक विशेषज्ञ) गाय के खुर (जितने स्थल में) दो मछलियों की तरह कम्पित होते हैं ॥१ ॥

५९१६. यथा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥२ ॥

जब स्थूल पस (पापनाशक) द्वारा मुष्क (विषनाशक) अणुओं का प्रहार किया जाता है, तो धूलि भरे क्षेत्रों में गर्दभों की तरह इसकी दोनों प्रकार की सन्तति का विकास होता है ॥२ ॥

५९१७. यदल्पिकास्वल्पिका कर्कधूकेवपद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥३ ॥

जब झरबेरी की तरह छोटे से छोटे (अति सूक्ष्म कण) गमन करते हैं, तो वे वायुरहित क्षेत्र के लिए वसन्त ऋतु जैसी तेजस्विता (उर्वरता) को प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

५९१८ यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥४ ॥

जब देवतुल्य प्रवाह, प्रधानतायुक्त उत्तम या कोमल क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, तो नारी (स्त्री, वेदिका या धरा) आँखों देखे सत्य की तरह कुल सम्पन्न हो जाती है ॥४ ॥

५९१९. महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रददस्थानासरन् । शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥

महान् अग्नि स्थिर भाव से आकर दोनों (नर-नारी या पृथ्वी-आकाश) को तृप्त करें । हम शक्ति के कानन (उपवन) से अपने चमस आदि में खाद्य पदार्थ, सत्तू आदि प्राप्त करें ॥५ ॥

५९२०. महानग्न्यु लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् । यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति ॥

महान् अग्नि ने उलूखल (हव्य कूटने वाली ओखली) का अतिक्रमण करते हुए कहा हे वनस्पते ! तुम्हें जिस लिए कूटा जाता है, वह (यज्ञ) ही सम्पन्न हो ॥६ ॥

५९२१. महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवति ॥७ ॥

महान् अग्निदेव ने कहा हे वनस्पते ! तुम नष्ट होकर भी पुनः उत्पन्न हो जाती हो, अतः तुम्हें पीसते हैं, वह(यज्ञीय प्रयोग) वैसा ही हो ॥७ ॥

५९२२.महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥८ ॥

महान् अग्नि ने कहा हे वनस्पते ! तुम नष्ट होकर भी पुनः उत्पन्न हो जाती हो । जैसे जीवन तापित होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है, वैसे ही नमनपूर्वक (हविरूप में) तुम्हें होमा जाता है ॥८ ॥

५९२३. महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः । इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥

महान् अग्नि ने कहा बहिन (विश्व या काया में संव्याप्त अग्नि) ने पस (पापनाशक) को आवेशित किया है । हम इस (प्रक्रिया में उत्पन्न) वृक्ष के फल का (सूपों द्वारा शोधित करके) सेवन करें ॥९ ॥

५९२४. महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१० ॥

महान् अग्नि 'कृक' ध्वनि के साथ शमी से (अरणी से) दौड़ते हैं । यह पता नहीं कौन सा मृग (भूचर) अपने सिर पर धाणिका (अन्न के भंडार) का वहन करता है ॥१० ॥

५९२५.महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति । इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥

महान् अग्नि, दौड़ते हुए महान् अग्नि के पीछे दौड़ते हैं । आप इन गौओं (इन्द्रियों, भूमियों या वाणियों) की रक्षा करें । हे यम (नियमनकर्त्ता) ! हमें अन्न खिलाइए ॥११ ॥

५९२६. सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् । कुसं पीवरो नवत् ॥१२ ॥

हे सुदेव ! आपको महान् अग्नि महत्त्वपूर्ण साधु (सराहनीय) ऐश्वर्य के लिए बाध्य करते हैं । वे कृशकाय और स्थूल सभी को झुका लेते हैं ॥१२ ॥

५९२७. वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे । महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥१३ ॥

वशा (वश में की हुई जीवनी शक्ति) जली हुई अँगुली की तरह उग्रता को परे (दूर) हटा देती है । (यह) महान् कल्याणकारी यम रूप ही है, हमें ओदन (पका हुआ अन्न) खिलाएँ ॥१३ ॥

५९२८. विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम्।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥१४॥

हे विशिष्ट देवो ! आप को महान् अग्नि बड़े साधु (सराहनीय) ऐश्वर्य के लिए बाध्य करते हैं। कुमारी पिंगलिका सद्य (अग्नि), कार्द (कीचड़ आदि विकारों) को भस्म करती हुई पृथ्वी पर दौड़ती है ॥१४ ॥

५९२९. महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः।

महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥१५ ॥

कल्याणकारी बिल्व (वृक्ष या भेदक अग्नि) महान् है। कल्याणकारी उदुम्बर (वृक्ष या शक्ति शाली अग्नि) भी महान् है। यह महान् प्रतिष्ठा वाले बड़े साधु (सराहनीय) ऐश्वर्य के लिए बाध्य करते हैं ॥१५ ॥

५९३०.यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत्। तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत्।

जो कुमारी पिंगलिका वसन्त (यौवन को) प्राप्त करे, वह तप्त तेलकुण्ड (व्यसनों) में पीड़ा पाती हुई शुद्धता का उद्धार करे ॥१६ ॥

[सूक्त-१३७]

[**ऋषि**-१-३ क्रमशः शिरिम्बिठि, बुध, वामदेव, ४-६ ययाति, ७-११ तिरश्चीराङ्गिरस अथवा द्युतान, १२-१४ सुकक्ष। **देवता**-अलक्ष्मीनाशन, २ वैश्वदेवी अथवा ऋत्विक्स्तुति, ३ दधिक्रा, ४-६ सोम पवमान, ७-८, १०-१४ इन्द्र, ८ (चतुर्थ पाद) मरुद्गण, ९ इन्द्राबृहस्पती। **छन्द**- अनुष्टुप्, २ जगती, ७-११ त्रिष्टुप्, १२-१४ गायत्री।]

५९३१.यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः। हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥१॥

गोले धारण करने वाली जब तुम अग्रिम होकर आगे बढ़ती हो, तो वीर इन्द्रदेव के सभी शत्रु जल के बुद्बुदों के समान विनष्ट हो जाते हैं ॥१ ॥

[तोप की तरह भीषण आघात करने वाली किसी शक्ति या उपकरण का संकेत यहाँ है, जो शत्रुओं को पानी के बुलबुलों की तरह नष्ट करने में समर्थ हैं।]

५९३२. कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२ ॥

हे कर्मशील मनुष्यो ! इन्द्रदेव श्रेष्ठ सुखों के दाता हैं। उन सुखदायक इन्द्रदेव को अपने अन्तरंग में धारण करो और अन्न, बल, ऐश्वर्यादि लाभ के लिए उन्हें प्रेरित करो। उनकी प्रार्थना करो तथा उन्हें शान्ति प्रदान करो। इस भूलोक में संरक्षण, कष्टों के निवारण के लिए तथा सोमपान के निमित्त अदिति पुत्र इन्द्रदेव का आवाहन करो ॥

५९३३. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।

सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥३ ॥

हम विजय से सम्पन्न, व्यापक तथा वेगवान् दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं। वे हमारी मुख आदि इन्द्रियों को सुरभित (श्रेष्ठ) बनाएँ तथा आयु की वृद्धि करें ॥३ ॥

५९३४. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।

पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४ ॥

मधुर और हर्ष प्रदायक सोमरस पवित्र होकर इन्द्रदेव के लिए तैयार होता है । हे सोमदेव ! आपका यह आनन्ददायक रस देवगणों के पास पहुँचे ॥४ ॥

५९३५.इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ।

इन्द्र के लिए शास्त्रों के अनुसार सोम शोधित होता है ।वह ज्ञानरक्षक, समर्थ सोम यज्ञ में प्रयुक्त होता है ॥५॥

५९३६.सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

वाणी के प्रेरक, ऐश्वर्यवान् , इन्द्रदेव के मित्र, सोम प्रतिदिन सहस्रों धाराओं से कलश में शोधित होता है ॥६॥

५९३७. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७ ॥

त्वरित गतिशील दस हजार सैनिकों सहित आक्रमण करने वाले, सम्पूर्ण संसार को दुःख देने वाले, 'अंशुमती' नदी (यमुना) के तटपर विद्यमान (सबको आकर्षित करके अपने चंगुल में फँसा लेने वाले) कृष्णासुर पर सर्वप्रिय इन्द्रदेव ने प्रत्याक्रमण करके सेनासहित उसे पराजित कर दिया ॥७ ॥

५९३८. द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८ ॥

इन्द्रदेव ने कहा 'अंशुमती' नदी के तट पर गुफाओं में घूमते हुए 'कृष्णासुर' को हमने सूर्य के सदृश देख लिया है । हे शक्तिशाली मरुतो ! हम आपके सहयोग की आकांक्षा करते हैं । आप संग्राम में उनका संहार करें ॥८॥

५९३९. अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्या३चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥९ ॥

'अंशुमती' नदी के तट पर शीघ्रगामी कृष्णासुर तेजसम्पन्न होकर निवास करता है । इन्द्रदेव ने बृहस्पतिदेव की सहायता से सभी ओर से आक्रमण के लिए बढ़ती हुई उसकी सेनाओं को परास्त किया ॥९ ॥

५९४०. त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१० ॥

अजातशत्रु हे इन्द्रदेव ! वृत्रासुर तथा सात राक्षसों के उत्पन्न होते ही आप उनके शत्रु हो गये । (राक्षसों द्वारा स्थापित किये गये) अंधकार से द्युलोक और पृथ्वी को (उद्धार करके) आपने प्रकाशित किया । अब आपने इनके लोकों को भली-भाँति स्थिर करके ऐश्वर्यवान् तथा सौन्दर्यशाली बना दिया ॥१० ॥

५९४१. त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११ ॥

वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप रिपुओं को दबाने वाले हैं । असीमित शक्ति वाले शुष्णासुर को आपने अपने वज्र से विनष्ट किया । राजर्षि 'कुत्स' के निमित्त आपने उसे (शुष्णासुर को) अपने हथियारों द्वारा काट डाला तथा अपने बल से गौओं (किरणों या जल धाराओं) को उत्पन्न किया ॥११ ॥

५९४२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१२ ॥

जो वृत्रहन्ता हैं, हम उनकी प्रशंसा और स्तुति करते हैं। वे दानदाता इन्द्रदेव हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें ॥१२ ॥

५९४३.इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥१३ ॥

दान देने के लिए ही उत्पन्न हुए इन्द्रदेव बलवान् बनने के लिए सोमपान करते हैं। प्रशंसनीय कार्य करने वाले वे देव, सोम पिलाये जाने योग्य हैं ॥१३ ॥

५९४४. गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥१४ ॥

वज्रपाणि, स्तुत्य, बलवान्, तेजस्वी और अपराजेय इन्द्रदेव साधकों को ऐश्वर्य देने की इच्छा रखते हैं ॥१४ ॥

[सूक्त-१३८]

[ऋषि- वत्स। देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री।]

५९४५. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१ ॥

जल की वृष्टि करने वाले मेघों के सदृश महान् और तेजस्वी वे यशस्वी इन्द्रदेव अपने प्रिय पात्रों की स्तुतियों से समृद्ध होकर व्यापक रूप ग्रहण करते हैं ॥१ ॥

५९४६. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२ ॥

जब आकाश मार्ग से गमन करने में सक्षम अश्व, यज्ञ में जाने के लिए तत्पर इन्द्रदेव को वेगपूर्वक (यज्ञस्थल पर) ले जाते हैं, तब उद्गातागण यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों से उन इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं ॥२ ॥

५९४७. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३ ॥

जब कण्व वंशीय ऋषिगण स्तुतियों के माध्यम से इन्द्रदेव को यज्ञ साधक (यज्ञ रक्षक) बना लेते हैं, तब (यज्ञ रक्षार्थ) शस्त्रों की आवश्यकता नहीं रह जाती, ऐसा कहा गया है ॥३ ॥

[सूक्त-१३९]

[ऋषि- शशकर्ण। देवता-अश्विनीकुमार । छन्द- बृहती, २-३ गायत्री, ५ कुकुप् उष्णिक् ।]

५९४८. आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों वत्स ऋषि की सुरक्षा के निमित्त निश्चित रूप से पधारें। उन्हें क्रोधी मनुष्यों से सुरक्षित विशाल आवास प्रदान करें। तत्पश्चात् आप दोनों उनके रिपुओं को दूर भगाएँ ॥१ ॥

५९४९. यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु। नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो ऐश्वर्य अन्तरिक्ष, दिव्यलोक तथा (पृथ्वी पर) पाँच प्रकार के मनुष्यों के पास उपलब्ध रहता है, वही ऐश्वर्य हमें भी प्रदान करें ॥२ ॥

५९५०. ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः। एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! कण्व पुत्रों ने तथा जिन विद्वान् पुरुषों ने अपनी प्रार्थनाओं के द्वारा आपके कर्मों को ज्ञात कर लिया है, आप उनकी जानकारी रखें अर्थात् उनकी रक्षा करें ॥३ ॥

५९५१. अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके निमित्त यह घर्म (गर्मी या ऊर्जा उत्पादक-यज्ञ अथवा सोम) स्तोत्रों (मंत्रशक्ति)

द्वारा सिञ्चित किया जा रहा है । हे बलसम्पन्न देवो ! यही वह मधुर सोम है, जिससे आप वृत्र को देख लेते हैं ॥४ ।

[प्रकृति एवं शरीर में छद्मरूप से छिपे वृत्ररूप घातक जीवों तक अश्विनीकुमारों (आरोग्यदायक प्रवाहों) को प्रभावपूर्ण ढंग से पहुँचाने में मंत्रशक्ति का प्रयोग किया जाता रहा है ।]

५९५२. यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस शक्ति से आप दोनों ने ओषधियों, विशाल वृक्षों तथा जल को रक्षित किया, उसी बल से हमारी भी रक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त-१४०]

[**ऋषि-** शशकर्ण । **देवता-** अश्विनीकुमार । **छन्द-** बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।]

५९५३. यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों जगत् के पालनकर्त्ता तथा सभी को स्वस्थ रखने वाले हैं ।केवल ज्ञान के द्वारा ये स्तोतागण आपको नहीं प्राप्त कर सकते; क्योंकि आप तो हवि प्रदान करने वाले याजकों के निकट जाते हैं ॥१ ।

[केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं, ज्ञान के अनुरूप यज्ञीय कर्मप्रयोगों से वाञ्छित लाभ मिलते हैं ।]

५९५४. आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया । आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ।

अश्विनीकुमारों की स्तुतियों को स्तोताओं ने अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से सम्पन्न किया । उन्होंने मधुर सोमरस तथा घृत सिञ्चित हवि को समर्पित किया ॥२ ॥

५९५५. आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना । आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ।

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों तेज चलने वाले रथ पर आरूढ़ होते हैं । नभ की तरह विस्तृत हमारी स्तुतियाँ आपको प्राप्त हों ॥३ ॥

५९५६. यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥४ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आज जिस प्रकार शस्त्र वचनों (स्तुतियों) द्वारा आपको बुलाया गया है, उसी प्रकार मुझ कण्व ऋषि द्वारा स्तोत्रों के माध्यम से आपका आवाहन किया जाता है ॥४ ॥

५९५७. यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार आप दोनों का कक्षीवान्, व्यश्व, दीर्घतमा ने आवाहन किया । जिस प्रकार यज्ञ स्थल पर वेनपुत्र पृथी ने आवाहित किया था, उसी प्रकार हम आपका इस समय आवाहन करते हैं, आप इसे (हृद्गत भाव को) जानें ॥५ ॥

[सूक्त-१४१]

[**ऋषि-** शशकर्ण । **देवता-**अश्विनीकुमार । **छन्द-** विराट् अनुष्टुप्, २जगती, ३ अनुष्टुप्, ४-५ बृहती ।]

५९५८. यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥१ ॥

सबके घरों की रक्षा करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे तथा हमारे घर और समस्त संसार के पालक बनें। आप हमारे पुत्र-पौत्रों के कल्याण के लिए घर पर पधारें ॥१ ॥

५९५९. यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! यदि आप इन्द्रदेव के साथ उनके रथ पर आसीन होकर गमन करते हैं, वायुदेव के साथ एक जगह निवास करते हैं, अदिति पुत्रों अथवा ऋभु संज्ञक देवों के साथ प्रेमपूर्वक रहते हैं तथा विष्णु के विशिष्ट पदक्षेप के साथ तीनों लोकों में विराजते हैं, तो हमारे निकट भी पधारें ॥२ ॥

५९६०. यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये। यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥३ ॥

अश्विनीकुमारों का संरक्षण उच्च कोटि का है। संग्राम में रिपुओं का विनाश करने में वे पूर्ण सक्षम हैं, अत: अपनी रक्षा के लिए यदि उन्हें हम पुकारें, तो वे निश्चित रूप से पधारेंगे ॥३ ।

५९६१. आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥४ ॥

यह सोमरस 'तुर्वश' और 'यदु' के घर पर विद्यमान है, यह कण्व पुत्रों को प्रदान किया गया था। हे अश्विनीकुमारो ! यह हव्यरूप सोमरस आपके लिए प्रस्तुत है, अत: आप (इसका पान करने के लिए) पधारें ॥४ ॥

५९६२. यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥५ ॥

सत्यनिष्ठ हे अश्विनीकुमारो ! जो ओषधियाँ निकट तथा दूर प्रदेश में उपलब्ध हैं, उनसे संयुक्त रहने हेतु अहंकाररहित वत्स ऋषि के लिए श्रेष्ठ आवास प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त-१४२]

[**ऋषि**-शशकर्ण। **देवता**- अश्विनीकुमार । **छन्द**- अनुष्टुप्, ५-६ गायत्री।]

५९६३. अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः। व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१ ॥

दोनों अश्विनीकुमारों की दिव्य वाणियों से हम चैतन्य हो गये हैं। हे उषा देवि ! आप अन्धकार को दूर करके सभी मनुष्यों को सद्बुद्धि तथा उपयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

५९६४. प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि। प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत्।

हे प्रकाशमान तथा महान् उषा देवि ! आप अश्विनीकुमारों को प्रेरित करें। हे याजको ! आप अश्विनीकुमारों को आनन्दप्रदायक प्रचुर हव्य प्रदान करें ॥२ ॥

५९६५. यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे। आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥

हे उषादेवि ! जब आप स्वर्णिम किरणों से सम्पन्न होकर चलती हैं, सूर्य के तेज से प्रकाशित हो जाती हैं, उस समय अश्विनीकुमारों का रथ मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने के लिए यज्ञ मण्डप में प्रवेश करता है ॥३ ॥

५९६६. यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः। यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना।

हे अश्विनीकुमारो !जब पीतवर्ण की सोमलताएँ गौ के थन से दूध निकालने के समान निचोड़ी जाती हैं तथा जब हम देवत्व की कामना से अपने स्तुति वचनों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं, तब आप हमारे संरक्षक हों ॥४ ॥

५९६७. प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥५ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान से सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! आप हमें ऐसी प्रेरणा प्रदान करें, जिससे हम शक्ति, ऐश्वर्य, सहनशीलता तथा श्रेष्ठ कार्य करने का कौशल प्राप्त कर सकें ॥५ ॥

५९६८. यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥६ ॥

प्रशंसा के योग्य हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे पिता तुल्य हैं । अतः जिस प्रकार पिता अपने पुत्रों के लिए प्रत्येक सुख-साधन उपलब्ध कराता है, उसी प्रकार आप हमें हर्ष प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त-१४३]

[**ऋषि**-पुरुमीढ और अजमीढ, ८ (पूर्वार्द्ध) वामदेव, ८-९ मेध्यातिथि मेधातिथी । **देवता**-अश्विनीकुमार । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

५९६९. तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आज हम आपके प्रसिद्ध वेग वाले तथा गौ प्रदान करने वाले रथ को आहूत करते हैं । काष्ठ स्तम्भयुक्त वह रथ सूर्या को भी धारण करता है । वह स्तुतियों को ढोने वाला, विशाल तथा ऐश्वर्यवान् है ॥

५९७०. युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२ ॥

हे द्युलोक (अथवा दिव्यता) का पतन न होने देने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों देवता हैं । आप दोनों उस श्रेष्ठता को अपने बल के द्वारा प्राप्त करते हैं । जब विशाल अश्वों वाले रथ आपको वहन करते हैं, तब आप दोनों के शरीर को सोमरस पुष्ट करता है ॥२ ॥

५९७१. को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३ ॥

कौन सोमरस प्रदाता आज अपनी सुरक्षा के लिए अथवा अभिषुत सोमरस को पीने के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं ? नमन करने वाले कौन लोग आप दोनों को यज्ञ के लिए प्रवृत्त करते हैं ? ॥३ ॥

५९७२. हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४ ॥

अनेकों प्रकार से अपनी सत्ता को प्रकट करने वाले तथा सत्य का पालन करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों इस यज्ञ में स्वर्णिम रथ द्वारा पधारें, मधुर सोमरस पिएँ तथा पुरुषार्थी मनुष्यों को मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

५९७३. आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५ ॥

श्रेष्ठ स्वर्णिम रथ द्वारा आप दोनों द्युलोक या भूलोक से हमारी ओर पधारें । आपके अभिलाषी अन्य याजक आपको बीच में ही अवरुद्ध न कर सकें, क्योंकि पुरातनकाल से ही हमने आपके लिए स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं ॥५

५९७४. नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळहासो अग्मन् ॥६ ॥

हे रिपुओं के संहारक अश्विनीकुमारो ! आप अनेक वीरों से सम्पन्न प्रचुर ऐश्वर्य हम दोनों के लिए प्रदान करें । हे अश्विनीकुमारो ! पुरुमीढ के स्तोताओं ने आपको स्तुति द्वारा प्राप्त किया है और अजमीढ के स्तोताओं की प्रशंसा भी उसी के साथ सम्मिलित है ॥६ ॥

५९७५. इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
ऊरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥

शक्तिरूपी अन्न को अपने समीप रखने वाले हे अश्विनीकुमारो ! समान विचारों वाले आप दोनों के लिए हम स्तुतियाँ समर्पित करते हैं । वे श्रेष्ठ स्तुतियाँ हम याजकों के लिए फल देने वाली हों । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी सुरक्षा करें । हमारी कामनायें आपकी ओर गमन करती हैं ॥७ ॥

५९७६. मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥८ ॥

वनौषधियाँ हमारे लिए मधुरता से पूर्ण हों तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष और जल हमारे लिए मधुर हों । क्षेत्र के स्वामी हमारे लिए मधु-सम्पन्न हों । हम रिपुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुगमन करें ॥८ ॥

५९७७. पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर जल की वृष्टि करने वाला आपका कार्य अत्यन्त सराहनीय है । गौओं को खोजने जैसे सहस्रों पुण्य कार्यों के समय सोमरस पान करने के लिए आप यहाँ पधारें ॥९ ॥

॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ इति अथर्ववेदसंहिता समाप्ता ॥

परिशिष्ट-१

अथर्ववेद भाग-२ के ऋषियों का संक्षिप्त परिचय

१. **अङ्गिरा (१९.२२, ३४-३५)** - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

२. **अत्रि (२०.७, १२)** - सप्त ऋषियों में अत्रि ऋषि का नाम भी प्रख्यात है। इनका ऋषित्व ऋग्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में कई स्थानों में दिखाई पड़ता है । ऋग्वेद के पंचम मण्डल के द्रष्टा के रूप में भी आपको ख्याति प्राप्त है। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है - **'संभानुना' इति पंचर्चं पंचमं सूक्तमत्रेरार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ०५.३७ सा० भा०)। अथर्ववेद में अत्रि का उल्लेख स्वतंत्र रूप से तथा अन्य ऋषियों के साथ मात्र दस बार हुआ है। अथर्व० १३.२.१२, ३६; १३.३.१५ में यह कहा गया है कि इन वंशों में अनवच्छिन्न रूप से ऋषि उत्पन्न होते रहे हैं। अत्रि रोहित (सूर्य) को द्यौ में धारण किये हैं । सूर्य रूप ज्योति को अत्रि ने प्राप्त किया था। रोहित सूक्त में रोहित को पुरुशाक अत्रि कहा है। अत्रि द्वारा सूर्य को जन्म देने, अपने नेत्र से उत्पन्न करने आदि के आख्यानों का मूल इन मंत्रों में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

३. **अथर्वा (११. २ - ५)** - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

४. **अथर्वाङ्गिरा (१९.३ - ५)** - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

५. **अथर्वाचार्य (१२. ५)** - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

६. **अप्रतिरथ (१९.१३)** - इनका ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऐत० ब्रा० (१.८.१०) और शत० ब्रा० (९.२ ३.१-५) के अनुसार ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १०३ वें सूक्त में इनका संयुक्त ऋषित्व प्रदर्शित किया गया है। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इनके ऋषित्व को इस प्रकार निरूपित किया है - **'आशुः शिशानः' इति त्रयोदशर्चं चतुर्थं सूक्तमिन्द्रपुत्रस्याप्रतिरथनाम्न आर्षम्** (ऋ० १०.१०३ सा० भा०) । उक्त सूक्त में अप्रतिरथ ने इन्द्रदेव की स्तुति की है। सामवेद एवं यजुर्वेद के भी कुछ मंत्रों के द्रष्टा होने का गौरव इन्हें प्राप्त है। यजुर्वेद में इनका स्वतंत्र ऋषित्व परिलक्षित होता है - **अप्रतिरथदृष्टा इन्द्रदेवत्या द्वादश त्रिष्टुभः** (मही० भा० १७.३३) । ऋषि शौनक प्रणीत बृहद्देवता के अनुसार - इन्होंने युद्ध में विजय की आकांक्षा से इस सूक्त से स्तुति की है -**युध्यन् संख्ये जयं प्रेप्सुर् ऐन्द्रो ऽ प्रतिरथो जगौ** (बृह० ८.१३)। 'अप्रतिरथ' का शाब्दिक अर्थ होता है " जिसके रथ का प्रतिरोध न हो ।"

७. **अयास्य (२०. १६, ९१)** - अयास्य का ऋषित्व चारों वेदों में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। इनका नाम ऋग्वेद के दो परिच्छेदों में चित्रित है तथा अनुक्रमणी में कुछ सूक्तों (९.४४.६; १०.६७-६८) का इन्हें द्रष्टा भी कहा गया है । ऐत० ब्रा० (७.१६) के अनुसार ये राजसूय यज्ञ के उद्‌गाता थे, जिसमें शुनःशेप की बलि दी जाने वाली थी। बृह० उप० (१.३.८, १९, २४) और कौषीतकि ब्रा० (३०.६) में इन्हें यज्ञीय व्यवस्था के प्रामाणिक अधिकारी के रूप में माना गया है। आचार्य सायण ने पवमान सोमदेवता के निमित्त ऋषि के रूप में इनको उल्लिखित किया गया है - ..... **सूक्तमांगिरसस्यायास्यस्यार्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकम्** - (ऋ०९.४४ सा० भा०) । अथर्ववेद में विश्वजन्य अयास्य द्वारा इन्द्र से कहकर तुरीय को प्रकट करने का वर्णन मिलता है- **विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्** (२०.९१.१) । बृह० उ० (२.६.३; ४.६.३ दोनों शाखाओं में) की वंश सूची में उन्हें आभूति त्वाष्ट्र का शिष्य बतलाया गया है।

८. **अष्टक (२० . २५, ३३)** - अष्टक का ऋषित्व अथर्ववेद के २० वें काण्ड के २५ वें और ३३ वें सूक्त में दृष्टिगोचर होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में विश्वामित्र के वरिष्ठ पुत्रों मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु आदि के साथ अष्टक ऋषि का भी उल्लेख मिलता है - **मधुच्छन्दाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः** (ऐत० ब्रा० ७ .१७) । श्रीमद् भागवत पुराण ९.१६ .३६ में आपको दृषद्वती के गर्भ से उत्पन्न विश्वामित्र के पुत्र और साथ ही एक ऋषि के रूप में स्वीकृत किया गया है। ऋग्वेद (१०.१०४) में अष्टक वैश्वामित्र को द्रष्टा के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ पर अपत्यार्थक पद 'वैश्वामित्र' का उल्लेख मिलता है। सायणाचार्य ने इनका परिचय इस प्रकार दिया है- **'असावि' इत्येकादशर्चं पंचमं सूक्तं वैश्वामित्रस्याष्टकस्यार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्** (ऋ०१०.१०४ सा० भा०) ।

९. **आयु (२०.११९)** - ऋषि 'आयु' का ऋषित्व अथर्ववेद के २० वें काण्ड के ११९ वें सूक्त में द्रष्टव्य है। ऋग्वेद ८ .५२ के अनुसार ये कण्व गोत्रीय ऋषि हैं । इस सूक्त में भी इनको ऋषित्व प्राप्त है; किन्तु यहाँ पर यह उल्लेख मिलता है कि कण्व ऋषि के वंश में जन्म लेने से इनके नाम के साथ अपत्यवाचक पद 'काण्व' संयुक्त करके इन्हें 'आयु काण्व' के नाम से सम्बोधित किया गया है। अथर्ववेद में अपत्यवाचक पद अनुल्लिखित है। वहाँ पर 'आयु' ही द्रष्टव्य है। वैदिक कोश पृष्ठ ३८ के अनुसार 'आयु' नामक एक राजा भी हुए हैं, जो 'कुत्स' और अतिथिग्व से सम्बन्धित थे। 'पिशल' के अनुसार आयु 'पक्थों' के राजा थे,

जिन्होंने इन्द्र की सहायता से 'वेश' पर विजय प्राप्त की थी। अथर्व० अनुक्रमणीकार ने आयु को इस प्रकार व्यक्त किया है - **आद्यायाः (१) आयु** : (अथर्व० बृ०स० २०.११९)। इनके सम्बन्ध में अन्यत्र कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता।

१०. इन्द्राणी (२०.१२६) - इन्द्रपत्नी इन्द्राणी का ऋषित्व अथर्ववेद के २०वें काण्ड के १२६ वें सूक्त में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के सूक्त १०.१४५ और सूक्त १०.८६ की कुछ ऋचाओं में इन्द्राणी को मन्त्रद्रष्ट्री के रूप में स्वीकार किया गया है। **'यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता'** सूत्रोक्ति के अनुसार इन्द्राणी को यहाँ ऋषिका के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद (१.२२.१५) में इन्द्राणी को इन्द्रपत्नी के रूप में कहा गया है। अथर्ववेद १.२७.४ में भी इन्हें इन्द्रपत्नी के रूप में माना गया है-...... **इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषितापुरः** (अथर्व० १.२७.४)। अथर्व० (२०.१२६.९) में वे स्वयं को वीरिणी, इन्द्रपत्नी और मरुत्सखा बतलाती हैं। अथर्व० (२०.१२६.१०) में इनके सुभगा (सौभाग्यवती) होने का उल्लेख मिलता है। बृहद्देवताकार ने इन्द्राणी के ऋषित्व को इन शब्दों में प्रमाणित किया है - **इमां खनामीति सूक्तं इन्द्राणी यत्स्वयं जगौ** (बृह० ८.५५)।

११. इरिम्बिठि (२०.३-५) - इनको ऋग्वेद ८.१६.१८, सामवेद (१०२,१४४,१९१) तथा अथर्ववेद (२०.३-५,२८,४४,४६,४७) के मंत्रद्रष्टा होने का महान् गौरव प्राप्त है। ये कण्व गोत्रीय ऋषि हैं। ये ऋग्वेद और सामवेद में अपत्यवाचक पद 'काण्व' के साथ संयुक्त होने से इरिम्बिठि काण्व के रूप में प्रसिद्ध हैं; किन्तु अथर्व० में इनका उल्लेख केवल इरिम्बिठि के रूप में ही मिलता है। आचार्य सायण ने इनके द्वारा दृष्ट सूक्त ऋ० के अष्टम मण्डल के १६ वें सूक्त का भाष्य इस प्रकार किया है ...... **सूक्तमिरिम्बिठिनाम्नः काण्वस्यार्षं गायत्रमैन्द्रम्** (ऋ० ८.१६ सा० भा०)। इनके सम्बन्ध में अन्यत्र और कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। ऋग्वेद के सूक्तों में इरिम्बिठि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है -"इरिम्बिठि वह व्यक्ति है, जो कि पृथ्वी से उठकर अन्तरिक्ष की ओर चलता है। पार्थिव भोगों के साथ राग-द्वेष से ऊपर उठकर ज्ञान प्रधान जीवन व्यतीत करता है।"

१२. कलि (२०.९७) -इनका ऋषित्व ऋग्वेद के ८.६६.१५, सामवेद २३७,२७२ और अथर्ववेद के १०.१०.१३ तथा २०.९७ में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद और सामवेद में प्रगाथ पुत्र होने के कारण प्रागाथ विशेषण से युक्त कलि प्रागाथ के रूप में इनका वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में 'कलि' शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थानों पर अश्विनीकुमारों की कृपा के पात्र एक व्यक्ति के लिए बहुवचन में होता है। अथर्ववेद में गन्धर्वों के साथ कलि के नाम का वर्णन प्राप्त होता है; किन्तु वहाँ कलि द्यूतक्रीड़ा से सम्बन्धित परिलक्षित होते हैं - **वशा समुद्रमध्याष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह** (अथर्व० १०.१०.१३)। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने अपने भाष्य में कलि के प्रगाथ-पुत्र होने की पुष्टि की है - **सप्तमं सूक्तं प्रगाथपुत्रस्य कलेरार्षम्।........तरोभिः पंचोना कलिः प्रागाथः प्रागाथमंत्यानुष्टुबिति** - (ऋ० ८.६६सा० भा०)। ऋ० ८.६६.१५ में इनके लिए बहुवचनान्त शब्द 'कलयः' का प्रयोग मिलता है -**सोम इद्धः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन।**

१३. कश्यप (१२.४) - द्र० अथर्व० भाग-१।

१४. काङ्कायन (११.११) - द्र० अथर्व० भाग-१।

१५. कुत्स (२०.८,१३) - द्र० अथर्व० भाग-१।

१६. कुरुस्तुति (२०.४२) - वैदिक वाङ्मय में इनका ऋषित्व यत्र-तत्र ही मिलता है। वेदों में इन्हें यजुर्वेद के मात्र एक मंत्र (८.३९) तथा अथर्ववेद के एक सूक्त में ही इनका ऋषित्व वर्णित है। अथर्व० में केवल २०.४२ सूक्त का ऋषित्व इनके नाम से निरूपित किया गया है। यजु० में आचार्य महीधर ने 'कुरुस्तुति' के ऋषित्व को इस तरह से स्वीकृत किया है- **इन्द्रदेवत्या गायत्री कुरुस्तुतिदृष्टा यजुरन्ता** (यजु० ८.३९ मही० भा०)। ऋग्वेद और सामवेद में भी एक-दो सूक्तों में इनका ऋषित्व देखने को मिलता है। यहाँ इन्हें कुरुसुति के नाम से उल्लिखित किया गया है। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व की विवेचना अपने ऋग्वेद भाष्य में इस प्रकार की है- **कुरुसुतिर्नामकाण्व ऋषिः।........'इमं नु द्वादश कुरुसुतिः काण्वः' इति** (ऋ० ८.७६सा० भा०)।

१७. कृष्ण (२०.१७.८९) - कृष्ण का ऋषित्व तीन वेदों में वर्णित है। ऋक् और साम में अङ्गिरस् गोत्रीय होने के कारण इन्हें 'कृष्ण आङ्गिरस' के नाम से जाना जाता है। इनके ऋषित्व की पुष्टि करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं- **'आ मे हवम्' इति नवर्चं पञ्चमं सूक्तम्। कृष्णो नामाङ्गिरस ऋषिः** (ऋ० ८.८५ सा० भा०)। अथर्व० २०.१७,८९ और ९४ सूक्त में कृष्ण का ऋषित्व स्वतंत्ररूप से दृष्टिगोचर होता है। यहाँ इनको केवल 'कृष्ण' शब्द से ही उल्लिखित किया है। कौषी० ब्रा० ३०.९ में भी इन्हें अङ्गिरस् गोत्रीय कृष्ण के रूप में प्रतिपादित किया गया है। इनके पुत्र विश्वक को अपत्यवाचक नाम 'कार्ष्णि' से सम्बोधित किया जाता है।

१८. कौरुपथि (११.१०) - द्र० अथर्व० भाग-१।

१९. गार्ग्य (१९.७,८) - द्र० अथर्व० भाग-१।

२०. गृत्समद (२०.३४) - गृत्समद का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। इन्हें सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋ० के द्वितीय मण्डल का ऋषि माना गया है। इनके ऋषित्व का विवरण देते हुए सर्वानुक्रमणीकार ने लिखा है- **अयं वां गृत्समदो मैत्रावरुणीम्** ......(सर्वा० १.२६)। कौषीतकि ब्रा० २२.४ में इन्हें अपत्यार्थक पद भार्गव (भृगु-वंशीय) से संयुक्त किया गया है। ऋ० और

बृहद्देवताकार ने भी इन्हें शुनहोत्र के वंशज और पुर के रूप में विवेचित किया है, परन्तु अथर्व० में इन्हें गृत्समद के रूप में स्वतन्त्र ऋषित्व की मान्यता प्राप्त है। यास्क प्रणीत निरुक्त में स्तुतिकर्त्ता ऋषि के रूप में इनका उल्लेख नि० ९.१.४ में किया है। अथर्ववेद में २० वें काण्ड के पाँच सूक्तों (२०,३४,५६,६७,९५) के अनेक मंत्रों के मंत्रद्रष्टा के रूप में इन्हें निरूपित किया गया है।

२१. गोतम (२०.१, १३, १५) - गोतम का ऋषित्व चारों वेदों में विवेचित है। गोतम के वंशज 'गौतमों' का भी उल्लेख ऋ० १.७८.१; १.६०.५; १.८८.४ में मिलता है। सप्तऋर्षियों में भी इनका नाम उल्लिखित है। आचार्य सायण ने ऋषि विषयक उल्लेख में इन्हें 'रहूगण-पुत्र' के रूप में उपन्यस्त किया है- **रहूगणनामा कश्चिदृषिः। तस्य पुत्रो गोतमोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः** (ऋ० १.७४ सा० भा०)। शतपथ ब्रा० में इन्हें विदेहजनक एवं याज्ञवल्क्य के समकालीन कहा गया है- **तां हैतां गोतमो राहूगणो विदांचकार। स ह जनकं वैदेहं प्रत्युत्ससाद...**(शत० ब्रा० ११.४.३.२०)। यजु० और अथर्व० में इन्हें बहुशः 'गौतम' ही उल्लिखित किया गया है, यथा-यजु० (३.५१-५२), **अक्षन् द्वे गोतमऐन्द्र्यौ पंक्ती** (सर्वा० १.१५), यजु० ४.३७ (**या ते सौमीं त्रिष्टुभं गोतमः** - सर्वा० १.१८)। अथर्व० में यह उल्लेख मिलता है - **इन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्। ऐषु विश्वपेशसंधियं धाः** (२०.३५.१६)।

२२. गोपथ (१९.२५, ४७-५०) - इनका ऋषित्व वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के अतिरिक्त अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। अथर्ववेद के (१९.२५, ४७-५०) मन्त्रों में इन्हें मन्त्रद्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है। अथर्व० बृहत्सर्वानुक्रमणीकार ने इनके ऋषित्व का विवेचन इस प्रकार किया है- **इत्येकर्चम्... गोपथः** (बृह० सर्वा० १९.२५)। अथर्व० के अतिरिक्त अन्य तीनों वेदों में कहीं भी इनका वर्णन नहीं प्राप्त होता है। इनका वर्णन अथर्ववेद के प्रमुख ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण में विशेषरूप से देखने को मिलता है।

२३. गोषूक्ति-अश्वसूक्ति (२०.२७, ६१) - इन दोनों ऋषियों का ऋषित्व ऋ० ८.१४-१५, सामवेद- १२१, १२२, २११ और ३८२ तथा अथर्ववेद २०.२७ एवं ६१ वें सूक्त में वर्णन मिलता है। इन दोनों ऋषियों का समुदित ऋषित्व प्राप्त होता है। पंचविंश ब्राह्मण १९.४९ में 'गौषूक्त' नाम के एक सामद्रष्टा का ऋषि के रूप में उल्लेख मिलता है। ताण्ड्य महाब्राह्मण (१९.४.१०) में गोषूक्त शब्द ऋषिनाम के रूप में वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोषूक्त के पुत्र अथवा वंशजों का नाम 'गोषूक्ति' है। इनके ऋषित्व को ऋ० में आचार्य सायण ने इस प्रकार प्रमाणित किया है - **तथा चानुक्रान्तम्- 'यदिन्द्र पञ्चोना गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ' इति** (ऋ० ८.१४ सा० भा०)। ता० म० ब्रा० में इनके ऋषित्व को इस प्रकार प्रमाणित किया गया है- **'गौषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च बहु प्रतिगृह्य गरगिराव मन्येतां तावेते सामनी अपश्यतां ताभ्यां गरन्निरघ्नाताम्** (ता० म० ब्रा० १९.४.१०)।

२४. तिरश्चीराङ्गिरस (२०.१३७) - वैदिक साहित्य में ऋषियों के अंतर्गत तिरश्ची आङ्गिरस के नाम का भी उल्लेख मिलता है। इनका वर्णन ऋ० (८.९५-९६), साम० (३४६, ३४९, ३५०) और अथर्व० (२०.१३९) में किया गया है। वेदों में उल्लिखित उक्त सूक्तों के मंत्रद्रष्टा होने का गौरव इन्हें प्राप्त है। अथर्व० में इनके ऋषित्व से संबंधित जो मन्त्र उपलब्ध होते हैं, वे प्रायः इन्द्र से ही सम्बंधित हैं। अङ्गिरस् गोत्रीय होने के कारण 'तिरश्ची' को तिरश्चीराङ्गिरस के नाम से जाना जाता है। ऋ० के ८.९५ वें सूक्त का भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने तिरश्चीराङ्गिरस स्पष्ट रूप से प्रमाणित ठहराया है- **तिरश्चीर्नामाङ्गिरस ऋषिः।** ऋ० ८.९६ सूक्त में तिरश्ची आङ्गिरस अथवा मरुतों के पुत्र द्युतान का ऋषित्व माना जाता है। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इनका स्पष्ट उल्लेख किया है- **द्युतानाख्यो मरुतां पुत्र ऋषिः तिरश्चीर्नामाङ्गिरसो वा** (ऋ० ८.९६ सा० भा०)।

२५. त्रिशोक (२०.२२.४३) - अथर्ववेदीय प्रमुख ऋषियों में त्रिशोक का ऋषित्व विवेचित है। ऋग्वेद और सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक विशेषण 'काण्व' संयुक्त मिलता है; किन्तु अथर्ववेद और यजुर्वेद में इनका उल्लेख 'त्रिशोक' के रूप में मिलता है। अथर्व० में इनका उल्लेख सूक्त ४.२९.६ तथा २०.४३ सूक्त में दृष्टिगोचर होता है। सामवेद १३१, १३३, १३४ में त्रिशोक काण्व के रूप में परिलक्षित होते हैं। इनका गोत्र सुस्पष्ट न होने के कारण यह प्रतीत होता है कि ये काण्व के शिष्य थे। कण्व वंशीय गोत्र की पुष्टि करते हुए आचार्य सायण ने ऋग्वेद में इस प्रकार भाष्य किया है-'**आ घ द्विचत्वारिंशत्त्रिशोक आद्याग्नेन्द्री' । अनुक्त गोत्रत्वात् काण्वस्त्रिशोक ऋषिः** (ऋ० ८.४५ सा० भा०)। शौनक प्रणीत बृहद्देवता में भी इनके ऋषित्व को वर्णित किया गया है-...... **त्रिशोकाय पुरन्दरः** (बृह० ६.८१)। ऋ० ८.४५.३० में यह उल्लेख मिलता है कि इन्द्र ने त्रिशोक के लिए अद्रि को चीरकर जल धारायें प्रवाहित की थी। ऋग्वेद १.११२.१२ से यह जानकारी मिलती है कि अश्विनीकुमारों ने असुरों के द्वारा अपहृत उनकी गौओं को वापस दिलाया था।

२६. देवजामि (२०.९३) - देवजामियों के ऋषित्व का उल्लेख प्रायः ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में सम्यक्रूप से परिलक्षित होता है। साम और ऋ० में देवजामियों के साथ इन्द्रमातरः शब्द भी संयुक्तरूप से देखने को मिलता है, जिसे देवभगिनी के नाम से सम्बोधित किया गया है। देवजामियों को साम० १२०, १७५ और ऋ० १०.१५३ सूक्त में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों की द्रष्ट्री कहा गया है। ऋ० १०.१५३ को उन ऋषिकाओं का सूक्त माना जाता है, जो देवताओं की बहिनें एवं इन्द्र की माताएँ हैं। यहाँ ऋषिकाओं का अनेकत्व, उनका देवस्यसृत्व तथा इन्द्रमातृत्व तीनों बातें विचारणीय हैं। ऋ० में सायणाचार्य जी ने ऋषि विषयक उल्लेख में उन्हें 'इन्द्र मातरः' के रूप में प्रतिपादित किया है- **इङ्खयन्तीर्देवजामय इन्द्रमातरो ......** (ऋ० १०.१५३ सा० भा०)। स्तुति

आदि के द्वारा इन्द्र को प्राप्त हुई, कर्मशील एवं पराक्रमवती देवियाँ प्रादुर्भूत इन्द्र की उपासना करती हैं- **"इङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातम् उपासते"** (ऋ० १०.१५३.१)। सम्भवतः इस बहुवचनान्त '**ईङ्खयन्ती**' तथा '**इन्द्रं जातमं उपासते**' पदों के आधार पर यहाँ के ऋषि नाम के साथ बहुत्व एवं इन्द्र मातृत्व का सम्बंध जुड़ गया है। ऋषि शौनक प्रणीत बृहद्देवता में भी इन ऋषिकाओं का उल्लेख इस प्रकार वर्णित किया है- **इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी.** (बृह० २८३)।

२७. देवातिथि (२०.१२०) - वैदिक साहित्य के ऋषियों में अग्रणी ऋषि देवातिथि का नाम द्रष्टव्य है। अथर्ववेद में इन्हें २०.१२० का ऋषित्व प्राप्त है। कण्व- वंशीय होने के कारण इन्हें 'काण्व' की संज्ञा प्रदान की गई है। ऋग्वेद- और सामवेद में ये देवातिथि काण्व के नाम से प्रख्यात हैं। पञ्चविंश ब्राह्मण ९.२.१९ में इनका नाम सामंमन्त्रों के द्रष्टा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इन्हीं मंत्रों की अर्जित शक्ति से इनने कूष्माण्डों को गौओं के रूप में परिवर्तित कर दिया था, जिसके फलस्वरूप वे अपने पुत्र सहित रेगिस्तान में भी तृप्तिदायक भोज्य पदार्थ प्राप्त करने में समर्थ हुए थे, जहाँ उनके शत्रुओं ने डाल दिया था। ये अथर्ववेद के साथ ही ऋग्वेद और सामवेद के भी प्रतिष्ठित ऋषि हैं। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को इस प्रकार विवेचित किया है-**'यदिन्द्र:' इत्येकविंशत्यृचं चतुर्थं सूक्तं काण्वगोत्रस्य देवातिथेरार्षम्** (ऋ० ८.४ सा० भा०)।

२८. द्युतान (२०.१३६) - द्युतान का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम और अथर्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋक् तथा साम में द्युतान को मरुतों का वंशज होने के कारण 'द्युतान मारुत' के रूप में उल्लिखित किया गया है; जबकि अथर्व० में अकेले द्युतान के नाम से ही वर्णित हैं। ऋ० तथा अथर्व० में द्युतान को वैकल्पिक ऋषि रूप में मान्यता प्राप्त है; जबकि इन दोनों वेदों की अनुक्रमणियों में इन्हें मंत्रों का स्वतंत्र ऋषि माना गया है। ऋ० ८.९६ के सम्बन्ध में द्युतान मारुत का वैकल्पिक ऋषित्व है। शतपथ ब्राह्मण ३.६.१.१६ में इन्हें वायु कहा गया है। तैत्ति० सं० ५.५.९.४ और काण्व संहिता ५.७ के अनुसार एक दैवी पुरुष का नाम द्युतान मारुत है। जबकि पंचविंश ब्रा० १७.१.७ में उन्हें एक साम मंत्र का रचयिता बताया गया है। यजु० में उवट ने अपने भाष्य में इस प्रकार प्रकट किया है-**द्युतानः त्वा। द्युतानो दीप्यमानः त्वां मारुतो वायुः मिनोतु** (यजु० ५.२७ उ० भा०)। ऋग्वेद में सायणाचार्य जी इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए तिरश्चीराङ्गिरस के साथ वैकल्पिक ऋषि के रूप में स्वीकार करते हैं- **द्युतानाख्यो मरुतां पुत्र ऋषिस्तिरश्चीर्नामाङ्गिरसो वा** (ऋ० ८.९६ सा० भा०)

२९.नारायण (१९.६) - द्र० अथर्व० भाग -१।

३०. नृमेध (२०.५८,६२) - वैदिक ऋषियों में नृमेध का ऋषित्व चारों वेदों में वर्णित है। ऋग्वेद के अधिकांश मंत्रों में प्रायः पुरुमेध के साथ इनका सम्मिलित ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है, कहीं केवल नृमेध द्वारा दृष्ट मंत्र प्राप्त होते हैं। ऋक् और साम में इनके नाम के साथ आङ्गिरस पद भी संयुक्त है। जबकि यजु० और अथर्व० में ये अकेले नृमेध के रूप में ही उल्लिखित हैं। सायणाचार्य जी के मतानुसार अनुक्त गोत्र होने के कारण इन्हें आङ्गिरस मान लिया गया है- **'बृहदिन्द्राय' इति सप्तर्चं नवमं सूक्तम्। नृमेधपुरुमेधावृषी। तौ चानुक्तत्वादाङ्गिरसौ** (ऋ० ८.८९ सा० भा०)। यजुर्वेद के भाष्यकार आचार्य महीधर ने इनका ऋषित्व इस प्रकार वर्णित किया है- **नृमेधदृष्टा बृहती** (यजु० ३३.४१ मही० भा०)। ऋग्वेद ८.९८,९९ केवल नृमेध द्वारा दृष्ट है।

३१. नोधा (२०.९,३५) - नोधा ऋषि को चारों वेदों में ऋषित्व प्राप्त है। गोतम गोत्रीय होने के कारण यजु, साम और ऋक् में इनका ऋषित्व गौतम पद के साथ संयुक्त रूप से दृष्टिगोचर होता है; किन्तु अथर्व में यह अपत्यार्थक पद 'गौतम' अनुल्लिखित है। इनका उल्लेख अथर्ववेद २०.९.३५,४१ आदि स्थानों पर मिलता है। बृह० ३.१२८ में भरद्वाज, गृत्समद आदि ऋषियों के बीच इनका उल्लेख मिलता है। नवीन स्तोत्रों के द्रष्टा रूप में नोधा ऋषि का उल्लेख निरुक्तकार ने ४.२.१६ में किया है। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को इस प्रकार से प्रतिपादित किया है- **गौतमस्य नोधस् आर्षमाग्नेयम्** (ऋ० १.५८ सा० भा०)। यजुर्वेद में भी नोधा गोतम द्रष्टा रूप में विवेचित हैं- **इन्द्रदेवत्या पथ्याबृहती नोधागोतमदृष्टा** (यजु० २६.११ मही० भा०)।

३२. परुच्छेप (२०.६७,७२) - परुच्छेप का ऋषित्व चारों वेदों में स्पष्टतया देखने को मिलता है; किन्तु यजु० और अथर्व० में इनके नाम के साथ अपत्यवाचक शब्द 'दैवोदासि' संयुक्त नहीं है, जिसका आशय 'दिवोदास के वंशज' से है। ऐत० ब्रा० ५.१२-१३ में इनके द्वारा दृष्ट सूक्तों का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद १.१२७-१३९ सूक्त भी इनके द्वारा दृष्ट हैं। यास्क प्रणीत निरुक्त ग्रन्थ में इन्हें मंत्रद्रष्टा के रूप में स्वीकार किया गया है-**तत्परुच्छेपस्य शीलम्। परुच्छेप ऋषि:** (नि० १०.४.४२)। आचार्य सायण ने इन्हें 'दिवोदास पुत्र' कहा है- **दिवोदासपुत्रस्य परुच्छेपस्यार्षमाग्नेयमात्यष्टम्** (ऋ० १.१२७ सा० भा०)।

३३.पर्वत (६३.१११) - इनके द्वारा दृष्ट मंत्र तीनों वेदों (ऋक्, साम और अथर्व) में प्रायः दृष्टिगोचर होते हैं। ये कण्व वंशीय ऋषि हैं। अपत्यार्थक पद के साथ इन्हें पर्वत काण्व भी कहा जाता है। इनका ऋषित्व प्रायः नारद के साथ संयुक्त रूप से मिलता है। ऋ० और साम० में पर्वत और नारद काण्व के रूप में इनका उल्लेख मिलता है। अथर्व में ऐसा कहीं देखने को नहीं मिलता। ऐतरेय ब्राह्मण (७.३४ और ८.२१) में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है। साम० (३८४,३९४) और ऋ० (८.१२) में ही मात्र अकेले 'पर्वत' का ऋषित्व देखा जाता है। ऋ० ८.१२ में इन्द्र की स्तुति इन्हीं के द्वारा की गई है। आचार्य सायण अपने ऋग्वेद

भाष्य में इनके ऋषित्व को इस प्रकार विवेचित करते हैं- **य 'इन्द्र' इति त्रयस्त्रिंशदृचं सप्तमं सूक्तं कण्वगोत्रस्य पर्वताख्यस्यार्षमौष्णिहमैन्द्रम्** (ऋ० ८.१२ सा० भा०)।

३४. पुरुमीढ और अजमीढ (२०.१४३) - पुरुमीढ और अजमीढ का सम्मिलित ऋषित्व ऋ०, साम०, यजु० और अथर्व० चारों वेदों में मिलता है। ऋ० में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक विशेषण सौहोत्र संयुक्त मिलता है। ऋ० ४.४३-४४ के ऋषि सुहोत्र के पुत्र अजमीढ- पुरुमीढ हैं, जबकि साम० और ऋ० में इनके साथ 'आङ्गिरस' अपत्यार्थक शब्द के संयुक्त रूप से देखने को मिलता है। ऋ० का ४४वाँ सूक्त पूरा का पूरा अथर्व २०.१४३.१-७ में संगृहीत है। यहाँ इन दोनों ऋषियों के साथ 'सौहोत्रौ' विशेषण संयुक्त रूप से सम्मिलित नहीं है। यजु० सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनके ऋषि विषयक प्रमाणों की पुष्टि की गई है- **वायो शुक्रः पुरुमीढाजमीढौ** (सर्वा० ३.१)। ऋ० के ४.४३ सूक्त में आचार्य सायण ने इनको इस प्रकार विवेचित किया है- **'क उ श्रवत्' इति सप्तर्चमेकादशं सूक्तम्। सुहोत्रपुत्रौ पुरुमीळ्हाजमीळ्हावृषी** (ऋ० ४.४३ सा० भा०)।

३५.पुरुहन्मा (२०.८१,९२) - पुरुहन्मा का ऋषित्व ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में दृष्टिगोचर होता है। ये अंगिरा गोत्रीय होने के कारण आङ्गिरस विशेषण के साथ उल्लिखित होते हैं, जबकि अथर्व० में ऐसा नहीं है। ऋग्वेद ८.७० में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए इस प्रकार लिखा है- **यो राजा पंचोना पुरुहन्मा बार्हत...। पुरुहन्मा ऋषिः।....इति परिभाषयाङ्गिरसः**(ऋ० ८.७० सा० भा०)। पञ्चविंश ब्राह्मण १४.९.२९ में पुरुहन्मा को वैखानस कहा गया है-**वैखानस पुरुहन्मन्।** इनके संदर्भ में अन्यत्र और कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता।

३६.पुष्टिगु (२०.५१) - पुष्टिगु को भी वैदिक ऋषि की प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनका ऋषित्व ऋग्वेद और अथर्ववेद में परिलक्षित होता है। कण्व गोत्रीय होने के कारण ऋग्वेद में पुष्टिगु के साथ 'काण्व' अपत्यार्थक शब्द सम्मिलित रूप से दृष्टिगोचर होता है। इनके द्वारा दृष्ट सूक्त ऋ० ८.५० है, जो बालखिल्य सूक्त के नाम से प्रख्यात है। इसमें इन्होंने देवराज इन्द्र की स्तुति की है। ऋग्वेद सर्वानुक्रमणीकार ने इनका नाम '**पुष्टिगुःकाण्वः**' उल्लिखित किया है। इनके विषय में अन्यत्र कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। सामान्यतया पुष्टिगु का अर्थ है- 'पुष्टियुक्त हैं गौएँ (इन्द्रियाँ) जिसकी, वह व्यक्ति'। ऋग्वेद ८.५०.१० में इन्द्रियों के पुष्ट (श्री सम्पन्न एवं तेजस्वी) होने की कामना भी करते हैं-**मयि गोत्रं हरिश्रियम्** (ऋ० ८.५०.१०)

३७.पूरण (२०.९६) - इनको अथर्ववेद के दस मंत्रों २०.९६.१-१० के ऋषि होने का गौरव प्राप्त है। ऋग्वेद में भी दसवें मण्डल के १६० वें सूक्त का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है; किन्तु यहाँ अपत्यार्थक शब्द साथ में उल्लिखित है, जबकि अथर्ववेद में यह पद अनुल्लिखित है। ऋ० में विश्वामित्र गोत्रीय होने के कारण इनके साथ वैश्वामित्र पद सम्मिलित है। ऐतरेय ब्रा० ७.१७ में विश्वामित्र के प्रमुख पुत्र देवरात, मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु और अष्टक उल्लिखित है। पौराणिक सन्दर्भ (ब्रह्मा० पु० २.३२.११८ आदि) में इन्हें विश्वामित्र का ही पुत्र माना गया है, जो ऋषि कौशिक के नाम से जाने गये हैं। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इनके ऋषित्व को इस प्रकार से पुष्टि प्रदान की है- **'तीव्रस्य' इति पञ्चर्चं नवमं सूक्तं वैश्वामित्रस्य पूरणस्यार्षं त्रैष्टुभमैन्द्रम्**(ऋ० १०.१६० सा० भा०)। यजु० और साम० में इनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

३८. प्रगाथ (२०.८५,९५) - प्रगाथ का ऋषित्व चारो वेदों में मिलता है। ऐत० आ० २.२.२ में ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ऋषियों को प्रगाथ कहा गया है; क्योंकि उन्होंने प्रगाथ (बृहती या ककुभ् तथा उसके बाद सतोबृहती छन्दों) की रचना की है। सामवेद में घौर काण्व आदि अन्य कई ऋषियों के समूह के साथ में इनका ऋषित्व परिलक्षित होता है, जबकि अथर्व० और यजु० में इन्हें अकेले ही मंत्रों के द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है। यजुर्वेद आचार्य महीधर ने इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों का भाष्य इस प्रकार किया है- **...आद्या प्रगाथदृष्टा माहेन्द्र पुरोरुक्** (यजु० ३३.५० मही० भा०)। आचार्य सायण ने इनको घोर पुत्र के रूप में निरूपित किया है- **आद्यस्य द्वृचस्य तु घोरस्य पुत्रः स्वकीयभ्रातुः कण्वस्य पुत्रतां प्राप्तत्वात् काण्वः प्रगाथाख्य ऋषिः** (ऋ० ८.१ सा० भा०)।

३९.प्रचेता (२०.९६) - द्र० अथर्व० भाग-१।

४०.प्रजापति (१९.४६) - द्र० अथर्व० भाग १।

४१. प्रस्कण्व (२०.४६,४७) - द्र० अथर्व० भाग १।

४२.प्रियमेध (२०.१८,२२) - प्रियमेध का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अङ्गिरा गोत्रीय होने के कारण इन्हें आङ्गिरस की उपाधि से अलंकृत किया गया है। ऋ० ८.६८.६९ सूक्त इन्हीं के द्वारा दृष्ट हैं। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में प्रियमेध को आंगिरस मानते हुए इस प्रकार प्रतिपादित किया है -**आ त्वैकोना प्रियमेध....... । आंगिरसः प्रियमेध ऋषिः** (ऋ० ८८६ सा० भा०)। प्रियमेध ऋषि के नाम से मिलने वाला ऋ० ८.६९.९ का एक ही मंत्र दो बार यजु० (१२.५५ तथा १५.६०) में संगृहीत है तथा इनमें से १५.६० को ही अनुक्रमणी में अकेले 'प्रियमेध ऐन्द्र' के रूप में ऋषित्व प्राप्त हुआ है। यहाँ 'आंगिरसः' विशेषण नहीं है। इनकी विवेचना यहाँ इन्द्र के पुत्र के रूप में है, अतः इन्हें ऐन्द्र की उपाधि से विभूषित किया गया है- **इन्द्रपुत्रप्रियमेधदृष्टाब्देवत्यानुष्टुप्** (यजु० १२.५५ मही० भा०)।

४३. बुध (२०.१३७) - बुध का ऋषित्व अथर्व० २०.१३७ के अतिरिक्त अन्य तीनों वेदों में भी उपलब्ध है। अथर्व० २०.१३७.२ में ऋग्वेद के इस सूक्त का अंतिम (१२वाँ) मन्त्र पठित है, किन्तु वहाँ मन्त्र के ऋषि नाम बुध के साथ 'सौम्य' विशेषण नहीं है। सौम्य बुध के अतिरिक्त 'एक आत्रेय' बुध का भी उल्लेख ऋ० ५.१ तथा साम० १७.४६-४८ की अनुक्रमणी में ऋषि नाम के रूप में प्राप्त होता है। पञ्च० ब्रा० २४.१८.६ में भी एक आचार्य 'बुध सौमायन' का उल्लेख प्राप्त है; जो सम्भवतः यही हैं, क्योंकि सौमायन का आशय भी 'सोम के वंशज' से है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इन्हें सोमपुत्र कहकर विवेचित किया है- **'उद्बुध्यध्वम्' इति द्वादशर्चं द्वितीयं सूक्तं सोमपुत्रस्य बुधस्यार्षम्** (ऋ० १०.१०१ सा० भा०)। यजु० में आचार्य महीधर ने भी सुस्पष्टतः इन्हें सोमपुत्र कहकर निरूपित किया है-**सीरदेवत्ये सोमपुत्रबुधदृष्टे द्वेगायत्री त्रिष्टुभौ** (यजु० १२.६७ मही० भा०)।

४४. बृहद्दिव (२०.१०७) - द्र० अथर्व० भाग -१।

४५. ब्रह्मा (११.१७, १३.१-९) - द्र० अथर्व० भाग -१।

४६. भरद्वाज (१९.४९, २०.२६) - द्र० अथर्व० भाग -१।

४७. भर्ग (२०.१०३, ११३) - वेदों में भर्ग शब्द तेजस् या किरण के अर्थ में कई बार प्रयुक्त हुआ है। इनका ऋषित्व ऋक्, साम और अथर्व० में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद और सामवेद में इनका उल्लेख 'प्रगाथ-पुत्र' होने के कारण भर्ग प्रागाथ के रूप में हुआ है, जबकि अथर्ववेद में ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं मिलता। प्रमुख गायत्री मंत्र ऋ० ३.६२.१० में भी सविता के वरेण्य तेजस् या भर्ग को प्रज्ञा की प्रेरणा के लिए धारण करने की अभिलाषा व्यक्त की गई है- **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्** (ऋ० ३.६२.१०)। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी भर्ग शब्द का उल्लेख मिलता है; परन्तु भर्ग ऋषि से भिन्न अर्थों में यथा- **'अयं वै लोका भर्गः'** (शत० ब्रा० १२.३.४.७)। **'पृथिव्येव भर्गः'** (गो० ब्रा० १.५.१५)। **'वीर्यं वै भर्ग एष विष्णुर्यज्ञः....'** (शत० ब्रा० ५.४.५.१)। सामवेद में इस नाम के छन्दों की संख्या पर्याप्त मात्रा में है। आचार्य सायण ने इनका ऋषित्व विवेचित करते हुए इन्हें प्रगाथ पुत्र कहा है- **......प्रथमं सूक्तं प्रगाथपुत्रस्य भर्गस्यार्षमाग्नेयम्** (ऋ० ८.६० सा० भा०)।

४८. भार्गव वैदर्भि (११.६) - द्र० अथर्व० भाग -१।

४९. भुवन साधन (२०.६३, १२४) - इनके ऋषित्व के दर्शन चारों वेदों में होते हैं। अथर्व० २०.६३.१ मंत्र के ऋषि भुवन अथवा साधन माने गये हैं। यहाँ भुवन तथा साधन के साथ 'आप्त्य' और 'भौवन' विशेषण निर्दिष्ट नहीं है, जबकि ऋ० में इसका स्पष्ट निर्देश है। ऋग्वेद १०.१५७ में आप्त्य भुवन अथवा इनके पुत्र साधन को ऋषि माना गया है। यहाँ सायण 'आप्त्य' का अर्थ० अप्त्य का पुत्र (**अप्त्यस्य-पुत्रस्य भुवनस्य**) करते हैं। ऋ० के इस सूक्त के पाँच मंत्र अथर्व० (२०.६३.१-३ तथा २०.१२४.४-६) में मिलते हैं। अथर्व० २०.६३.१-३ की अनुक्रमणी में तो भुवन तथा साधन का ऋषि विकल्प है; किन्तु २०. १२४.४-६ की अनुक्रमणी में इन मंत्रों के ऋषि केवल भुवन हैं। इन दोनों मंत्रों के ऋषि अथर्व० की अनुक्रमणी में भरद्वाज हैं, जबकि ऋ० १०.१५७ की अनुक्रमणी में इन सबके लिए भुवन तथा साधन का ऋषि विकल्प है। मंत्रद्रष्टा के रूप में इनका प्रायः उल्लेख प्राप्त होता है-**...पंचर्चं षष्ठं सूक्तमप्त्यपुत्रस्य भुवनस्यार्षं भुवनपुत्रस्य साधनसंज्ञस्य वा....** (ऋ० १०.१५७ सा० भा०)।

५०. भृगु (१२.२, १९.३२-३३) - द्र० अथर्व० भाग-१।

५१. भृग्वङ्गिरा (११.१२, १९.२७) - द्र० अथर्व० भाग -१।

५२. भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा (१९.७२) - इनका सम्मिलित ऋषित्व केवल अथर्ववेद १९.७२ में ही प्रधानरूप से उल्लिखित है। अन्य तीन वेदों में इनके सम्मिलित स्वरूप के दर्शन नहीं होते। अथर्व० ३.११ तथा १९.७२ के सम्बन्ध में भृग्वंगिरा ब्रह्मा के सम्मिलित ऋषित्व का प्रमाण अथर्ववेदीय बृहत् सर्वानुक्रमणी में मिलता है- **ब्रह्मा यक्ष्मनाशनदेवत्यम् उत भृग्वङ्गिराश्च। उभौ मंत्रोक्तदेवान् अनेनाऽस्तुताम्** (अथर्व० बृ० सर्वा० पृ० २१-२२)। इस सूक्त की आरम्भिक चार ऋचाएँ ऋ० (१०.१६१.१-४) में उसी क्रम में उल्लिखित हैं। केवल तृतीय और चतुर्थ ऋचा में कुछ शब्दों का व्यतिक्रम है। यहाँ इन मंत्रों में **'प्राजापत्यः यक्ष्मनाशनः'** है, जबकि अथर्व० में 'यक्ष्मनाशनम्' को 'इन्द्राग्नी' तथा 'आयु' के साथ देवता मान लिया गया है। अथर्व० के इस सूक्त के शेष ४ मंत्र ऋग्वेद में प्राप्त नहीं होते। अतः स्पष्ट है कि इन चार मंत्रों के संयोजन के साथ इस सूक्त के ऋषि भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा हुए।

५३. मधुच्छन्दा (२०.२६.४-६) - मधुच्छन्दा का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋ०, साम० और यजु० में अपत्यवाची पद 'वैश्वामित्र' के साथ संयुक्त रूप से इनका उल्लेख मिलता है, जबकि अथर्व० में ऐसा अनुल्लिखित है। ऐतरेय ब्रा० ७.१७.७; ७.१८.१ में इन्हें विश्वामित्र के ५१वें पुत्र के रूप में निरूपित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में इनके 'प्र उ ग' (प्रातः सवन सूक्त) का उल्लेख मिलता है- **प्रउगं माधुच्छन्दसं** (शत० ब्रा० १३.५.१.८)। कौषीतकि ब्रा० २८.२ में भी इनके ऋषि होने का प्रमाण मिलता है। यजुर्वेद में कहीं- कहीं पर इनका अपत्यार्थक पदरहित नाम भी उल्लिखित हुआ है- **पावका नो मधुच्छन्दाः सारस्वतीम्** (सर्वा० २.३९)। ऐतरेय आरण्यक में इनके नामकरण का कारण इनका मधु से विशेष सम्बन्ध होना बतलाया गया है- **मधुह स्म वा ऋषिभ्यो मधुच्छन्दाश्छन्दति तन्मधुच्छन्दसो मधुच्छन्दस्त्वम्** (ऐत० आ० १.१.३)।

५४. मेधातिथि (२०.१४३) - द्र० -अथर्व० भाग -१ ।

५५. मेध्यातिथि (२०.९.३-४) - इनका ऋषित्व ऋ०, साम० और अथर्व० में विवेचित है। यजुर्वेद में इनके द्वारा दृष्ट कोई भी मंत्र प्राप्त नहीं होता। 'काण्व' वंशीय होने के कारण ऋ० और साम० में अपत्यार्थक पद काण्व संयुक्त है, जबकि अथर्व० में ऐसा अनुल्लिखित है। अथर्व० २०.१४३.९ में मेधातिथि तथा मेध्यातिथि दोनों समुदित ऋषि माने गये हैं। अथर्व० का यह मंत्र ऋ० ८.५७.३ में विद्यमान है, जहाँ इस मंत्र के ऋषि मेध्यकाण्व माने गये हैं। अथर्व० में अन्य कोई मंत्र इन दोनों के नाम से नहीं मिलता। मेध्यातिथि को ऋ० ८.२.४० में स्पष्टतः 'काण्व' कहा गया है-**....काण्वं मेध्यातिथिम्** (ऋ० ८.२.४०)। ऋ० के खिल सूक्त (८.५१.१) में इनके नाम का उल्लेख मिलता है-**.....मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा** (ऋ० ८.५१.१)। आचार्य सायण ने इनके सन्दर्भ में इस प्रकार कहा है-**धीवन्तं स्तुतिमन्तं काण्वं कण्वपुत्रं मेध्यातिथिं....**(ऋ० ८.२.४० सा० भा०)

५६. यम (१२.३.१६.५-९) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

५७. ययाति (२०.१३७) - ययाति का ऋषित्व ऋग्वेद और अथर्ववेद में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में इन्हें ९.१०.४-६ तीन ऋचाओं का ऋषित्व प्राप्त है। ये नहुष पुत्र होने के कारण ऋ० में 'नाहुष' पद से संयुक्त हुए हैं। ययाति नाहुष को यज्ञकर्त्ता भी कहा गया है। अथर्ववेद में 'नाहुष' पद प्रायः अनुल्लिखित है। वहाँ ये 'ययाति' के नाम से ही उल्लिखित हैं । ययाति शब्द महर्षि दयानन्द के शब्दों में 'यती प्रयत्ने' से बनकर 'प्रयत्नशील पुरुष' का वाचक है। यह प्रयत्नशील इसलिए है कि कर्म ही मनुष्य को प्रयत-पवित्र बनाता है। राजा मनु के पुत्र का नाम नहुष था तथा नहुष के पुत्र का नाम ययाति था, जैसा कि भाष्यकार आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में प्रमाणित किया है- **द्वितीयस्य नहुषस्य राज्ञः पुत्रो ययातिर्नाम। तृतीयस्य मनोः पुत्रो नहुषो नाम राजर्षिः...... ययातिर्नाहुषो नहुषो मानवो ....**(ऋ० ९.१०१ सा० भा०)।

५८. रक्षोहा (२०.९६.११-१६) - रक्षोहा के ऋषित्व का वर्णन अथर्ववेद और ऋग्वेद में मिलता है। ऋ० १०.१६२.१-६ तथा अथर्व० २०.९६ के ११-१६ ऋचाओं का ऋषित्व इन्हें स्पष्ट रूप से प्राप्त है। ऋ० में इनका ऋषित्व 'ब्राह्म' विशेषण के साथ संयुक्त है, जबकि अथर्व० में ऐसा अनुल्लिखित है। आचार्य सायण ने 'ब्राह्म' का अर्थ 'ब्रह्म पुत्र' किया है। अथर्व २०.९६ के एकादश मंत्रों में इनके नाम का वर्णन इस प्रकार मिलता है- **ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः** (अथर्व० २०.९६.११) । इनके ब्रह्म पुत्र होने का संकेत भी प्राप्त होता है। रक्षोहा का शाब्दिक अर्थ 'रक्षसां हन्ता' (राक्षसों अथवा रोगों का विनाशक) किया जाता है। अग्नि को भी रक्षोहन् कहा गया है। आचार्य सायण ने रक्षोहा को ब्रह्म के पुत्ररूप में वर्णित किया है- **'ब्रह्मणाग्निः' इति षड्चमेकादशं सूक्तमानुष्टुभम्। ब्रह्मपुत्रो रक्षोहा नामर्षिः** (ऋ० १०.१६२ सा० भा०)। ऋ० १०.८७ ने इसी रक्षोहन् अग्नि को देवता माना है। उक्त सूक्त के अनुसार रक्षोहा मानव ऋषि न होकर देवता विशेष हैं, जिनके नाम से इन मंत्रों का द्रष्टा ऋषि प्रसिद्ध हुआ।

५९. रेभ (२०.५४-५५) - इनका ऋषित्व ऋग्वेद ८.९७, सामवेद-२५४, २६०, २६४, ३७०, ४६० तथा अथर्ववेद २०.५४-५५ में परिलक्षित होता है। ऋ० और साम० में कश्यप वंशीय होने के कारण रेभ काश्यप के नाम से ये विवेचित हैं, किन्तु अथर्व० २०.५४-५५ में ऋ० के ८.९७ सूक्त के ६ मंत्र संगृहीत हैं, यहाँ 'काश्यप' का उल्लेख नहीं है। रेभ सुनु के मंत्र भी अथर्व० में नहीं मिलते। रेभ को अश्विनों की विशेष कृपा प्राप्त है। इनकी अश्विनीकुमारों ने समय-२ पर विशेष सहायता की थी। इनके ऋषित्व का प्रमाण ऋग्वेद १.११२.५ में इस प्रकार है- **रेभमेतत्संज्ञमृषिम्** (ऋ० १.११२.५ सा० भा०)। ऋ० में इन्हें स्तुतिगान करने वाले कारु या गायक के रूप में भी निरूपित किया गया है।

६०. वत्स (२०.१०७, ११५) - 'वत्स' कण्व वंश के द्वारा उत्पन्न वैदिक ऋषि हैं। इनका ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋ० तथा साम० में वत्स के साथ 'काण्व' पद संयुक्त है, जबकि यजु० और अथर्व० में इनका ऋषित्व केवल 'वत्स' नाम से ही प्राप्त होता है। सामवेद ८,२०,१४६ के ऋषि वत्स काण्व हैं, जबकि सामवेद २६५ के ऋषि वत्स हैं। ऋ० १०.१८७ के ऋषि 'वत्स आग्नेय' हैं। ऋ० ८.६ तथा ८.११ के मंत्र ही यजु० ४.१६,७.४०,२६.१५ तथा अथर्व० २०.१०७,११५,१३८ में मिलते हैं; किन्तु यहाँ (यजु०, अथर्व० में) ऋषि नाम के साथ केवल 'वत्स' शब्द ही उल्लिखित है। आचार्य सायण ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को इस प्रकार लिखते हैं -**'प्राग्नये' इति पञ्चर्चं षट्त्रिंशं सूक्तमग्नेः पुत्रस्य वत्सस्यार्षं गायत्रमाग्नेयम्** (ऋ० १०.१८७ सा० भा०) यजु० में भी उक्त तथ्य को इस प्रकार निरूपित किया गया है- **य ओजसा वत्सो गायत्रीम्** (सर्वा० १.२९)।

६१. वरु (२०.३०) - वरु का ऋषित्व अथर्व० २०.३०-३२ में स्वतंत्र रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद १०.९६ के वैकल्पिक ऋषि 'वरु ऐन्द्र अथवा सर्वहरि ऐन्द्र' हैं । अथर्व २० वें काण्ड के तीन सूक्तों (३०-३२) में भी ऋ० के इस सूक्त के सभी मंत्र संगृहीत हैं तथा वहाँ पर भी सर्वहरि वैकल्पिक ऋषि के रूप में विद्यमान हैं। पर वहाँ ऐन्द्र अथवा आङ्गिरस पद विशेषण के रूप में संयुक्त नहीं है। इन्द्र पुत्रों में जय, वरु, वसुक्र, विमद, वृषाकपि और सर्वहरि का ऋषित्व ऋग्वेद में निर्दिष्ट है। सम्भव है, वरु ने इन्द्र की स्तुति करने के कारण 'ऐन्द्र' पद प्राप्त किया है। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इन्हें इन्द्रपुत्र के रूप में निरूपित किया है- **वरुर्नामाङ्गिरस ऋषिः इन्द्रस्य पुत्रः सर्वहरिर्वा नाम** (ऋ० १०.९६ सा० भा०)।

६२.वसिष्ठ (२०.१२.१८) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

६३. वसुक्र (२०.७३.४-६) - इनका ऋषित्व अथर्व० के अतिरिक्त साम० और ऋ० में भी प्राप्त होता है । ऋ० और साम० में वसुक्र के पुत्र होने के कारण ये अपत्यवाची शब्द 'वासुक्र' से सम्बद्ध किये गये हैं । वसुक्र के अन्य पुत्र 'वसुकृत वासुक्र' का ऋषित्व ऋ० १०.२०-२६ में निर्दिष्ट है । वसुक्र को 'इन्द्र -पुत्र' के रूप में उल्लिखित किया गया है । इन्हें ऋग्वेद के दो पूर्व सूक्त (१०.२७,२९) तथा सूक्त १०.२८ की कुछ ऋचाओं का ऋषित्व प्राप्त है । वसुक्र पत्नी इन्द्रस्नुषा को केवल एक ऋचा १०.२८.१ का ऋषित्व प्राप्त है । अथर्व० २०.७३.४-६ की अनुक्रमणी में वसुक्र ऋषि का उल्लेख मिलता है । अथर्व० के ये मंत्र ऋ० १०.२३.३-५ में पठित हैं,जहाँ इनके ऋषि इन्द्र अथवा प्रजापति का पुत्र विमद या वसुक्र के पुत्र वसुकृत हैं । ऋ० ९.९७.२८-३० के ऋषि भी वसुक्र हैं ; पर वे 'ऐन्द्र' न होकर वसिष्ठ-गोत्रीय हैं ।

६४. वामदेव (२०.१३.१) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

६५. विरूप (२०.१.३) - विरूप का ऋषित्व चारों वेदों में वर्णित है ।अंगिरस् गोत्रीय होने के कारण ऋ० ,यजु० और सामवेद में इनका उल्लेख अपत्यार्थक शब्द आंगिरस से युक्त मिलता है,जबकि अथर्ववेद में ऐसा नहीं है । अथर्व० २०.१.३ के स्वतंत्र मंत्रद्रष्टा होने का गौरव इन्हें प्राप्त है । इनके पुत्र का नाम सध्रि वैरूप है,जिनके द्वारा ऋग्वेद का १०.११४ सूक्त दृष्ट है । यजु० में आचार्य महीधर ने भी इनके ऋषित्व को विवेचित किया है ,पर उनने पद नाम उल्लिखित नहीं किया है- **आग्नेयी गायत्री विरूपदृष्टा** (यजु० ११.७१ मही० भा०) । ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इनको इस प्रकार वर्णित किया है- **त्रयस्त्रिंशदृचं प्रथमं सूक्तमाङ्गिरसस्य विरूपस्यार्षं गायत्रमग्निदेवताकम्** (ऋ० ८.४३ सा० भा०) ।

६६. विश्वमना (२०.६५-६६) - विश्वमना का ऋषित्व चारों वेदों में प्राप्त होता है । ऋग्वेद और सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यवाची पद 'वैयश्व' भी संयुक्त है । अथर्ववेद और यजुर्वेद में ऐसा उल्लेख नहीं है । ऋ० ८.२६ के भी ऋषि विश्वमना ही माने गये हैं- **आंगिरसो व्यश्वो वैयश्वो विश्वमना वा ऋषिः** (ऋ० ८.२६ सा० भा०) । पंचविंश ब्राह्मण के १५.५.२० में भी इनके ऋषित्व का वर्णन करते हुए,इन्हें इन्द्र का मित्र कहा गया है । ऋ० अनुक्रमणी के अनुसार ये वैयश्व के वंशज और ऋ० ८.२३-२६ के मंत्रद्रष्टा भी हैं । इनका सम्बन्ध देवराज इन्द्र के साथ भी माना गया है- **विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम** (ऋ० ८.२४.७) । यजुर्वेद भाष्य में भी इनके ऋषित्व का उल्लेख किया गया है- **अग्निदेवत्या पथ्याबृहती विश्वमनोदृष्टा** (यजु० ११.४१ मही० भा०) ।

६७. विश्वामित्र (२०.१,६ आदि) - द्र० अथर्व० भाग- १ ।

६८. वृषाकपि (२०.१२६) - अथर्ववेद २०.१२६ का ऋषित्व वृषाकपि को प्राप्त है । ऋ० १०.८६ में इन्द्र और इन्द्राणी के साथ वृषाकपि भी संबद्ध हैं । कुछ भाष्यकारों ने इन्हें इन्द्राणी का पुत्र माना है । इनकी सूर्य से संगति मानी गयी है । इनका उक्त सूक्त के मन्त्रद्रष्टा होने का उल्लेख भी मिलता है । निघण्टु- ५.६ और निरुक्त १२.२६ में भी इनका विवेचन वर्णित है । ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण में भी इनके नाम का उल्लेख द्रष्टव्य है,परन्तु वहाँ ऋषि रूप में नहीं है- '**आत्मा वै वृषाकपिः**' (ऐत० ब्रा० ६.२९) । अथर्व के ऋषि-विषयक उल्लेख में 'ऐन्द्र' विशेषण नहीं है । वृषाकपि का अर्थ विष्णु अथवा सूर्य भी किया गया है । ऋ० १०.८६ में इन्द्र,इन्द्राणी और इन्द्र-पुत्र वृषाकपि का संवाद वर्णित है । '**यस्य वाक्यं स ऋषिः**' सूत्र के अनुसार जिनका कथन है,उन्हें ही ऋषि माना गया है । सायण ने इनके ऋषित्व का उल्लेख इस प्रकार किया है - **वृषाकपिर्नामैन्द्रस्य पुत्रः** (ऋ० १०.८६ सा० भा०) ।

६९. शंयु (२०.७८,८०) - शंयु का ऋषित्व चारों वेदों में प्राप्त है । ऋ० ६.४४-४६ तथा ४८ के ऋषि बार्हस्पत्य शंयु हैं । यजु० ३.४१-४३ तथा २७.३७-३८ और साम० के अनेक मंत्रों के सम्बन्ध में भी इन बार्हस्पत्य शंयु को ही ऋषि माना गया है; परन्तु यजु० २७.४२,४४ तथा अथर्व० (२०.७८,८०,८३,९८) के मंत्रों के ऋषि के रूप में केवल शंयु का ही नाम लिया जाता है । शंयु के ऋषित्व का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मिलता है - **शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छमयांचकार** (कौषी० ब्रा० ३.९) । '**शंयुर्ह वै बार्हस्पत्योञ्जसा यज्ञस्य संस्थां विदांचकार स देवलोकमपीयाय**' (शत० ब्रा० १.९.१.२४) । शंयु को बृहस्पति का पुत्र कहा गया है,अतएव बार्हस्पत्य शब्द वंशवाचक है । इस अपत्यवाची पद का उल्लेख अथर्व० में अनुल्लिखित है । यजुर्वेद में इनके ऋषित्व का विवेचन बार्हस्पत्य पदरहित किया है- **तिस्रोऽपि वास्तुदेवत्याः शंयुदृष्टाः** (यजु० ३.४१ मही० भा०) ।

७०. शक्ति (२०.७९) - शक्ति का ऋषित्व ऋक्,साम० और अथर्व० में वर्णित है । वसिष्ठ के पुत्र होने के कारण ऋ० और साम० में अपत्यवाची शब्द वासिष्ठ भी जुड़ा है । जबकि अथर्व० में यह अनुल्लिखित है । शक्ति ऋषि के नाम से ऋ० ९.१०८.३,१४-१६ में भी मंत्र प्राप्त होते हैं । ऋ० के इस सूक्त के कुछ (५,३,१४) मंत्र क्रमशः साम० ५८३,९३८ का ऋषि भी शक्ति को माना गया है । जबकि ऋ० ९.१०८.५ में इस मंत्र के ऋषि उरु हैं । ऋषि शौनक प्रणीत बृहद्देवता ४.११२ में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है- .....**सुदासश्च महायज्ञे शक्तिना गाथिसूनवे** (बृह० ४.११२) ।

७१. शन्ताति (११.६,८) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

७२. शशकर्ण (२०.१३९-१४२) - शशकर्ण का ऋषित्व ऋग्वेद और अथर्ववेद में परिलक्षित होता है । ये कण्व गोत्रीय ऋषि

हैं । ऋ० में इनका उल्लेख 'काण्व' पद के साथ संयुक्त है, जबकि अथर्व० में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता । शशकर्ण का शाब्दिक अर्थ -'**शशः कर्णौ यस्य' (शश् प्लुत गतौ)** अर्थात् प्लुत- गतियुक्त हैं कर्ण जिसके, ऐसे हैं ये शशकर्ण । ऋ० ८.९.२० में शशकर्ण के द्वारा उत्कृष्ट ज्योति,बल,मानवोचित सुख तथा वृद्धि के लिए अश्विनीकुमारों की प्रार्थना करने का वर्णन है- **'प्रद्युम्नाय प्रशवसे प्रनृषाह्याय शर्मणे । प्रदक्षाय प्रचेतसा'** (ऋ० ८.९.२०) । वस्तुतः इन सबकी प्राप्ति के लिए शशकर्ण बनना आवश्यक है । इनके कान अधिक सक्रिय हैं, अस्तु , ये बहुश्रुत हैं । इनके सम्बन्ध में अन्यत्र और कोई विशेष विवरण नहीं मिलता । ऋग्वेद में इनके ऋषित्व का इस प्रकार उल्लेख है- **आ नूनमित्येकविंशत्यृचं चतुर्थं सूक्तं शशकर्णस्यार्षमश्विदेवत्यम्** (ऋ० ८.९ सा० भा०)।

७३. शिरिम्बिठ (२०.१३७) - इनका ऋषित्व ऋग्वेद, यजुर्वेद में द्रष्टव्य है । इनकी ख्याति भरद्वाज-पुत्र के रूप में है । ऋ० में अपत्यार्थक पद भारद्वाज इनके नाम के साथ संयुक्त है । जबकि यजुर्वेद ३५.१८ तथा अथर्व० २०.१३७.१ में अपत्यवाची पद 'भारद्वाज' अनुल्लिखित है । यास्क प्रणीत निरुक्त ६.३० में इनका अर्थ 'बादल' लिखा है । ऋग्वेद में भी आचार्य सायण ने इनका शाब्दिक अर्थ 'मेघ' के रूप में लिया है- **शिरिम्बिठस्य । बिठमन्तरिक्षम् । शीर्यते बिठेऽन्तरिक्ष इति शिरिम्बिठो मेघः** (ऋ० १०.१५५.१ सा० भा०)। आचार्य सायण ने इनका विवेचन भरद्वाजपुत्र के रूप में भी किया है- **'अरायि' इति पञ्चर्चं चतुर्थं सूक्तं भरद्वाजपुत्रस्य शिरिम्बिठस्यार्षम्** (ऋ० १०.१५५ सा० भा०)।

७४.शुनःशेप (२०.२६.७४) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

७५. श्रुतकक्ष-सुकक्ष (२०.११०) - इनका ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में उपलब्ध है । ऋ० ८.९२ के श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष ऋषि माने गये हैं- **तथानुक्रम्यते- पान्तं त्रयस्त्रिंशत् श्रुतकक्ष सुकक्षो वा ....** (ऋ० ८.९२ सा० भा०)। सूक्त ८.९३ में केवल सुकक्ष का ही ऋषित्व स्वीकार किया गया है । अथर्व० २०.११० में ऋ० ८.९२ के तीन मंत्र (१९-२१) पठित हैं तथा उसकी अनुक्रमणी में भी श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष को ऋषि माना गया है । इसी प्रकार इस सूक्त के तीन मंत्र (२८-३०) अथर्व० २०.६०.१-३ में संगृहीत हैं ; परन्तु उनकी अनुक्रमणी में सुकक्ष तथा सुतकक्ष का ऋषि विकल्प ही उसका भ्रष्ट पाठ है । ऋ० ८.९३.४ वाला मंत्र यजु० ३३.३५ तथा साम० १२४ में भी पठित है । ऋ० ८-९३ का ऋषि केवल सुकक्ष को माना गया है; परन्तु यजु० तथा साम० के उपर्युक्त स्थलों में सुकक्ष तथा श्रुतकक्ष दोनों को ही समुदित रूप में ऋषि माना गया है । यजुर्वेद ३३.३५ के ऋषि श्रुतकक्ष-सुकक्ष सम्मिलित रूप से माने गये हैं । आचार्य महीधर ने इनके ऋषित्व को अपने भाष्य में इस प्रकार प्रमाणित किया है- **श्रुतकक्ष -सुकक्ष दृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक्** (यजु० ३३.३५ मही० भा०) ।

७६ . श्रुष्टिगु (२०.१११) - इनको अथर्ववेद २०.१११ के द्वितीय मंत्र का ऋषित्व प्राप्त है । इसके अतिरिक्त ऋ० और सामवेद में भी एकाध स्थान पर इनका ऋषित्व वर्णित है । 'कण्व' वंशीय होने के कारण ऋग्वेद और सामवेद में अपत्यवाची पद 'काण्व' संयुक्त है; किंतु अथर्ववेद में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता । निरुक्त के अनुसार इनका शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है- **'श्रुष्टि' इति क्षिप्रनाम** (नि० ६.१३) - अर्थात् शीघ्रतापूर्वक कार्य करने वाली हैं इन्द्रियाँ जिनकी, वे श्रुष्टिगु हैं । वैदिक ऋषियों में इनका वर्णन यत्र-तत्र ही मिलता है । इनको वैदिक ऋषियों में अधिक ख्याति प्राप्त नहीं हो सकी । ऋग्वेद का ८.५१ वाँ सूक्त, जो वालखिल्य सूक्त के अन्तर्गत आता है, उसके सातवें मंत्र के द्रष्टा के रूप में इनका उल्लेख हुआ है । ऋ० ८.५१.१ में इनके नाम का वर्णन मिलता है-**पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा** (ऋ० ८.५१.१)।

७७. सर्वहरि (२०.३०.३२) - द्र० -वरु अथर्व० भाग -१ ।

७८. सविता (१९.३१) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

७९. सव्य (२०.२१) - सव्य का ऋषित्व ऋ० ,साम० और अथर्ववेद में दृष्टिगोचर होता है । अंगिरस् गोत्रीय होने के कारण इन्हें सव्य आंगिरस भी कहा जाता है । ऋग्वेद और सामवेद में अपत्यवाची पद आंगिरस संयुक्त रूप से सम्मिलित है; किन्तु इसका प्रयोग अथर्ववेद में परिलक्षित नहीं होता, यहाँ पर 'सव्य' के नाम से ही वर्णन मिलता है । बृहद्देवताकार ने इन्हें ऐन्द्र (इन्द्ररूप) कहकर उपन्यस्त किया है- **ऐन्द्रः सव्यः शतर्चिषु** (बृह० ३.११४) । इसके अतिरिक्त आगे और संकेत मिलता है कि इन्द्र ही सव्य का रूप धारण करके अंगिरस् के पुत्र बने । सामवेद ३७३, ३७६ और ३७७ में इनके नाम का उल्लेख मिलता है । इन्हें अथर्व० २०.२१ के एक सूक्त का द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है ।

८०. सार्पराज्ञी (२०.४८) - सार्पराज्ञी का ऋषित्व चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है । इनके ऋषित्व को प्रतिपादित करते हुए आचार्य सायण अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं-**....तृचमष्टात्रिंशं सूक्तं गायत्रम् । सार्पराज्ञी नामर्षिका** (ऋ० १०.१८९ सा० भा०)। ऋ० १०.१८९ वें सूक्त में तीन मंत्र उपलब्ध हैं , यही तीनों मंत्र यजु० ३.६-८, सामवेद ६३०-६३२, १३७६-१३७८ तथा अथर्ववेद ६.३१.१-३, २०.४८.४-६ में बार- बार उद्धृत हुए हैं ; परन्तु अथर्व० ६.३१.१-३ में उपरिब्रभव नामक ऋषि का उल्लेख है । यजु० भाष्य एवं सर्वानुक्रम सूत्र में भी इनको ऋषिका के रूप में विवेचित किया गया है- **आयं गौरित्यादीनां.....सार्पराज्ञीति नामधेयम्** (यजु० ३.६ मही० भा०)। बृहद्देवताकार ने भी इनके नाम को विवेचित किया है- **श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा**

च दक्षिणा (बृह० २८४)। ब्राह्मण - ग्रन्थों में भी इनके नाम का वर्णन प्राप्त होता है; परन्तु ऋषिका के रूप में नहीं- **'इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी'** (ऐत० ब्रा० ५.२३.१.२)।

८१. सिन्धुद्वीप (१९.२) - द्र० अथर्व० भाग -१।

८२. सुकीर्ति (२०.१२५) - सुकीर्ति का ऋषित्व ऋ० ,अथर्व० में निर्दिष्ट है। ये ऋक् के एक सूक्त १०.१३१,अथर्व० २०.१२५ तथा यजुर्वेद १०.३२ के मंत्रद्रष्टा ऋषि हैं । ऋक् और यजु० में कक्षीवत् के पुत्र होने के कारण 'काक्षीवत' पद के रूप में संयुक्त किये गये हैं । अथर्ववेद में यह अपत्यार्थक पद संगृहीत नहीं है। केवल 'सुकीर्ति' का ही उल्लेख प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख मिलता है। ऐ० ब्रा० ५.१५.४,६.२९.१ और कौषी० ब्रा० ३०.५ में इनके ऋषित्व के प्रमाण प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद १०.१३१ में सायणाचार्य जी ने इनको कक्षीवत् के पुत्र के रूप में वर्णित किया है- **'अप प्राचः' इति सप्तर्चं तृतीयं सूक्तं कक्षीवतः पुत्रस्य सुकीर्तेरार्षम्** (ऋ० १०.१३१ सा० भा०) ।

८३. सुत कक्ष-सुकक्ष (२०.६०) - द्र० श्रुत कक्ष-सुकक्ष।

८४. सुदीति पुरुमीढ (२०.१०३) - प्राचीन वैदिक ऋषियों में सुदीति पुरुमीढ का नाम भी प्रख्यात है। इनके ऋषित्व का उल्लेख ऋक् ,साम और अथर्ववेद में मिलता है। ऋक् और सामवेद में अंगिरस् गोत्रीय होने कारण प्रायः अपत्यवाची पद 'आंगिरस' से संयुक्त हैं,जबकि अथर्ववेद में ऐसा अनुल्लिखित है। इन दोनों का सम्मिलित ऋषित्व अथर्व० २०.१०३ में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। ऋ० ८.७१ के ऋषि सुदीति तथा पुरुमीढ का ऋषित्व प्रमाणित करते हुए आचार्य सायण अपने भाष्य में इनके नाम का उल्लेख इस प्रकार से करते हैं- **"त्वं नः सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वाऽन्यतरः"** (ऋ० ८.७१ सा० भा०) । ऋ० के इस सूक्त के ४ मंत्र (१,१०,११,१४) साम० (६,४९,१५४,१५१५) में संकलित हैं। इन चारों स्थलों में मन्त्रों के ऋषि सुदीति तथा पुरुमीढ को आंगिरस कहा गया है। अथर्व० २०.१०३ में इसी सूक्त का १४ वाँ मंत्र संगृहीत है। यहाँ सुदीति तथा पुरुमीढ इसके ऋषि माने गये हैं।

८५. सूर्या- सावित्री (१४.१-२) - सूर्या-सावित्री का ऋषिका के रूप में अथर्व० १४.१- २ और ऋक् १०.८५ में उल्लेख मिलता है। सूर्या- सावित्री पुत्री होने के कारण अपत्यवाची पद 'सावित्री' से अलंकृत हुई हैं। सूर्य-पुत्री उषा को भी सूर्या कहा गया है। उक्त सूक्त में सूर्या के विवाह का भी उल्लेख है। यहाँ सविता सुता के रूप में आचार्य सायण ने अपने ऋ० १०.८५ के भाष्य में इस प्रकार लिखा है- **तत्र 'सत्येन' इति सप्तचत्वारिंशद् ऋचं प्रथमं सूक्तं सवितृसुतायाः सूर्याया आर्षम्** (ऋ० १०.८५ सा० भा०)। ऐसा माना जाता है कि ऋक् के इस सूक्त में तथा अथर्व० १४.१ के प्रथम पाँच मंत्रों में सूर्या ने अपने पति (वधूयु) सोम की महिमा का तथा अन्य (ऋ० १०.८५.६-१६) ११ मंत्रों में अपने विवाह का वर्णन किया है। ऐतरेय ब्राह्मण में प्रजापति की पुत्री के रूप में ये उल्लिखित हुई हैं- **प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीम्** (ऐत० ब्रा० ४.७)। इन्हें सोम अथवा अश्विनीकुमारों की पत्नी के रूप में भी विवेचित किया गया है। बृहद्देवताकार ऋषि शौनक ने उषस् के तीन रूपों में सूर्या को वर्णित किया है। बृह० ७.११९,१२१ के अनुसार -उषस् के तीन रूप सावित्री,सूर्या और वृषाकपायी हैं,यही विवस्वान् की पत्नी भी हैं। सूर्योदय के पूर्व उषस्,मध्याह्न में सूर्या और शाम के समय में वृषाकपायी बनकर वे नीचे चली आती हैं।

८६.सोभरि (२०. ६२) - सोभरि का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। 'कण्व' वंशीय होने के कारण ऋग्वेद और सामवेद में अपत्यवाची पद 'काण्व' से इन्हें सम्बोधित किया गया है; परन्तु अथर्व० में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता । ऋग्वेद ८.१९ में आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित करते हुए लिखा है- **सप्तमं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षम्** (ऋ० ८.१९ सा० भा०)। ऋ० ८.१०३ के कई मंत्र साम० ४७,५१,५८ आदि में संगृहीत हैं,पर वहाँ ऋषि नाम में 'सौभरि काण्व' उल्लिखित है। शौनक प्रणीत बृहद्देवता में भी इनके नाम का वर्णन मिलता है- **कण्वस्य सोभरेश्चैव यजतो वंशजैः सह** (बृह० ६.५८-५९) । अथर्ववेद में इनके ऋषित्व का उल्लेख २०.६२ के अतिरिक्त २०.१४ और २०.११४ के मन्त्रद्रष्टा रूप में प्राप्त होता है। यजुर्वेद में इनको सौभरि के पुत्र के रूप में विवेचित किया गया है। ऋ० १०.१२६ के ऋषि विषयक उल्लेख में सोभर कुशिक का नाम निर्दिष्ट है, जो सोभरि के पुत्र कहे गये हैं- **'रात्री' इत्यष्टर्चं पञ्चदशं सूक्तं सोभरिपुत्रस्य कुशिकस्यार्षम्** (ऋ० १०.१२७ सा० भा०)।

८७. सौभरि (२०.१४,११४) - द्र० - सोभरि।

परिशिष्ट - २

अथर्ववेद भाग- २ के देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. **अग्नि** (१२. ३) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

२. **अध्यात्म** (११. १०) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

३. **अर्बुदि** (११. ११) - अथर्ववेदीय देवताओं में अर्बुदि का देवत्व प्रतिष्ठित है। इनके पिता अर्बुद 'काद्रवेय' सर्प ऋषि हैं। कद्रु के पुत्र होने के कारण उनके साथ अपत्यवाचक पद 'काद्रवेय' संयुक्त हुआ है। उन्हें मन्त्रकर्त्ता तथा कद्रुसुत विवेचित करते हुए ऐतरेय ब्राह्मणकार ने लिखा है- **अर्बुदः काद्रवेयः सर्प ऋषिर्मन्त्रकृत्** (ऐत० ब्रा० ६.१) । अर्बुद का ऋषित्व विवेचित करते हुए आचार्य सायण ने उन्हें सर्प जातीय भी निरूपित किया है- **'प्रैते' इति चतुर्दशर्चं चतुर्थं सूक्तं कद्रवाः पुत्रस्य सर्पस्यार्बुदस्यार्षम्** (ऋ० १०.९४सा० भा०)। पंचविंश ब्राह्मण २५.१५ में अर्बुद को एक ग्रावस्तुत ऋत्विज् के रूप में विवेचित किया गया है। अर्बुद के दो पुत्र थे, अर्बुदि और न्यर्बुदि। अर्बुदि को देव और न्यर्बुदि को ईशान कहा गया है-**अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः** (अथर्व० ११.११.४)। समस्त अन्तरिक्ष और विशाल पृथिवी इन्हीं से आवृत है- **याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही** (अथर्व० ११.११.४)। यों तो अर्बुदि ऋषि पुत्र हैं; किन्तु अथर्व० ११.११ में इनकी स्तुति होने के कारण इन्हें देवत्व भी प्रदान किया गया है। इनका देवत्व प्रमाणित करते हुए सायणाचार्य ने अथर्ववेद भाष्य में लिखा है- **अर्बुदिरिति प्रसिद्धः सर्पात्मको यो देवः** (अथर्व० ११.११.५ सा० भा०)

४. **अश्विनीकुमार** (२०. १२५. ४-५) - द्र० अथर्व० भाग -१

५- **आकूति** (१९. ४. २) - आकूति का देवत्व ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा वाजसनेयि संहिता में सम्प्राप्य है। आकूति शब्द अभिप्राय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आकूति को तात्पर्यरूप में विवेचित करते हुए, लौकिक और वैदिक सभी वाक्यों का प्रतिपादन करने वाली बताया है-**आकूतिम् तात्पर्यरूपाम्। लौकिकवैदिकसर्ववाक्यं प्रतिपाद्याम् इत्यर्थः** (अथर्व० १९.४.२ सा० भा०)। आकूति का आवाहन बृहस्पति देवता के साथ किया गया है, साथ ही उनसे प्रार्थना की गई है कि वे वाक् देवता को हमारे अनुकूल करें- **आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि। अथो... सुहवो भव** (अथर्व० १९.४.३)। एक मंत्र में आकूति को वाग्देवता निरूपित करते हुए उन्हें सुभगा और सुहवा विवेचित किया गया है- **आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु** (अथर्व० १९.४.२)।

६. **आत्मा** (१४. १) - द्र० अध्यात्म अथर्व० भाग - १ ।

७. **आदित्य** (१६. ३) - द्र० आदित्यगण अथर्व० भाग -१ ।

८. **आपः** (१८. ३. ५६) - द्र० अथर्व० भाग -१ ।

९. **इन्दु** (१८. ३. ५४) - इन्दु का देवत्व ऋग्वेद १.४.५,५१-५६ और अथर्ववेद १८.३.५४ में द्रष्टव्य है। इनका वर्णन वैदिक साहित्य में प्रायः सोम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है- **सोमो वा इन्दु** (शत० ब्रा०-२.२.३.२३)। **यजमानो वै सोमो राजेन्दुः** (जैमि० ब्रा० १.९०); **प्रजा वै पशव इन्दुः** (तैत्ति० सं० ३.४.१.२)। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके देवत्व को निम्न प्रकार से प्रमाणित किया है- **'प्र तद्वोचेयम्' इति षष्ठी इन्दुदेवत्या** (ऋ० १.१२९ सा० भा०)। ऋषि शौनक ने बृहद्देवता ग्रन्थ में इन्द्र से सम्बद्ध देव-समूह में इन्दु को परिगणित किया है- **विधातेन्दुरहिर्बुध्न्यः सोमोऽहिरथ चन्द्रमाः** (बृह० १.१२६)। आचार्य सायण ने अपने अथर्व० भाष्य में इसे रसात्मक अमृत के रूप में विवेचित किया है, जो सर्वदा स्रवित होता रहता है- **सर्वदा इन्दुः सोमः पवते अमृतं रसात्मकः स्रवति** (अथर्व० १८.३.५४ सा० भा०)।

१०. **इन्द्र** (२०.१) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

११. **इन्द्राग्नी** (१९.२०.१) - द्र० अथर्व० भाग- १ ।

१२. **इन्द्राबृहस्पती** (२०.१३.१) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

१३. **उषा** (१६.६) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

१४. **काम** (१९.५२) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

१५. **काल (१९.५३.५४)** - वैदिक देवताओं में काल (समय) को अथर्व० १९.५३-५४ का देवत्व प्राप्त है। इन सूक्तों में काल का अर्थ कहीं-कहीं 'भाग्य' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। यहाँ काल को परमेश्वर के समान सर्वशक्तिशाली माना गया है। इसे अश्व के समान गतिशील कहा गया है- **कालो अश्वो वहति**- (अथर्व० १९.५३.१)। इसे सभी भुवनों का पोषण करने वाला कहा गया है (अथर्व० १९.५२.४)। काल ने ही द्युलोक और पृथिवीलोक की रचना की है (अथर्व० १९.५३.५)। काल से ही यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। इसमें पूर्णकुम्भ (ब्रह्माण्ड) रखा है। वह सर्वत्र संव्याप्त है, वह परम व्योम है। बृहद्देवता ग्रन्थ में श्यावी (रात्रि) तथा उषा (रात्रि का भाग) को काल की एक कला के रूप में वर्णित किया गया है- **श्याव्याग्नेयी हि कालस्य तस्यैवोषाः कलेव तु** (बृह० ३८)।

१६. **गायत्री (१९.७१)** - अथर्ववेद के सूक्त १९.७१ के देवता के रूप में गायत्री को स्वीकार किया गया है। इन्हें यहाँ वेदमाता के रूप में उपन्यस्त किया गया है- **ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम्**........(अथर्व० १९.७१.१)। निरुक्तकार ने गायत्री को निम्न प्रकार वर्णित किया है- **गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः** (नि० ७.१२)। गायत्री अग्नि तथा प्राण रूप में भी मान्य है- **अग्निर्हि गायत्री** (जैमि० ब्रा० ३.१८४); गायत्री वै प्राणः (शत० ब्रा० १.३.५.१५)। सम्पूर्ण लोकों को भी गायत्री रूप माना गया है- **इमे वै लोका गायत्री** (ता० म० ब्रा० १५.१०.९)। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इस प्रकार प्रमाणित किया है- **वेदस्य ऋगादिरूपस्य माता सर्ववेदसारत्वेन मातृवत्प्रधानभूता सावित्री वेद एव वा माता** (अथर्व० १९.७१.१ सा० भा०)।

१७. **चन्द्रमा (१९.१)** - द्र०-अथर्व० भाग-१।

१८. **जातवेदा (९.६५)** - द्र०-अग्नि अथर्व० भाग-१।

१९. **त्रिषन्धि (११.१२)** - अथर्ववेदीय देवताओं में त्रिषन्धि को भी अथर्व० ११.१२ वें सूक्त का देवत्व प्रदान किया गया है। अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणिका में भी इनके देवत्व को प्रमाणित किया गया है। त्रिषन्धि की अपनी निजी सेना है। कृत्या उनकी सहायता करती है (अथर्व० ११.१२७)। इन्द्रदेव त्रिषन्धि अमित्रों को तमस् से आवृत कर सकता है। इन्द्रदेव त्रिषन्धि (वज्र) के द्वारा प्रहार करते हैं। आचार्य सायण के अनुसार पृषदाज्य (दधिमिश्रित आज्य) के द्वारा देवगण त्रिषन्धि वज्र को उत्पन्न करते हैं। त्रिषन्धि वज्ररूप आयुध के देवता हैं।

२०. **दधिक्रा (२०.१३७.३)** - द्र० दधिक्रावा अथर्व० भाग-१।

२१. **द्यावापृथिवी (१९.१४)** - द्र० अथर्व० भाग- १।

२२. **द्रविणोदा (२०.२.४; २०.६७.७)** - द्र० अग्नि अथर्व० भाग-१।

२३. **देवगण (१४.२)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

२४. **धाता (१९.२०.१)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

२५. **परमात्मा सर्वदेवा (१९.७२)** - परमात्मा सर्वदेवा को अथर्ववेद के १९ वें काण्ड के ७२ वें सूक्त का देवता माना गया है। सभी देवों के रूप में परमात्मा को ही यहाँ देवत्व प्राप्त हुआ है। सर्वत्र संव्याप्त ब्रह्म तथा परम-पुरुष के रूप में भी 'परमात्मा' अभिप्रेत होते हैं। निरुक्तकार ने ब्रह्म को इस प्रकार वर्णित किया है- **ब्रह्म परिवृढं सर्वतः** (नि० ३८)। परम-पुरुष के रूप में ये इस प्रकार उपन्यस्त हैं- **यो विद्युति स परम पुरुषः** (जैमि० उ० १८.३.२)। अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणिका में इनका देवत्व इस प्रकार प्रमाणित होता है- **इत्येकर्चं परमात्म"दैवतं...... । अनेन सर्वान् देवान् स्वरक्षणकामः प्रार्थयत्** (सर्वा० अथर्व० १९.७२)।

२६. **पितरगण (१८.१.४४-४६)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

२७. **पुरुष (१९.६)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

२८. **पूषा (१६.९.२)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

२९. **प्रजापति (१६.१)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

३०. **प्राण (११.६)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

३१. **बृहस्पति (१९.४०)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

३२. **ब्रह्म (१९.४२-४३)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

३३. **ब्रह्मगवी (१२.५)** - द्र० अथर्व० भाग-१।

३४. **ब्रह्मचारी (११.७)** - अथर्ववेद के एक सूक्त ११.७ के देवता रूप में ब्रह्मचारी मान्य हैं। इस सूक्त में ब्रह्मचारी के गुण-धर्मों की विवेचना की गयी है; जैसे आचार्य के समीप आने के पश्चात् वह समिधाधान के साथ नियमित यज्ञ करता है, मौञ्जी मेखला पहनता है और नियमित श्रम एवं तप करता है (अथर्व० ११.७.४)। इसी सूक्त के छठे मंत्र में ब्रह्मचारी को 'ज्येष्ठ ब्रह्म' की संज्ञा प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख है- **अथ हैतद्देवानां परिषूतं यद्ब्रह्मचारी** (गो० ब्रा० १.२.७)।

३५. **ब्रह्मणस्पति** (१९.८.६) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

३६. **ब्रह्मा** (१९.४३.८) - द्र० प्रजापति अथर्व० भाग-१ ।

३७. **भग** (१९.४५.९) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

३८. **भूमि** (१२.१) - द्र० पृथिवी अथर्व० भाग-१ ।

३९. **मन्त्रोक्त देवता** (११.४; १९.२२) - मन्त्रोक्त देवताओं का उल्लेख अथर्ववेद के कई सूक्तों में किया गया है; किन्तु यहाँ देवताओं का नामोल्लेख नहीं वर्णित है । मन्त्रोक्त का अर्थ है- मंत्र में कहे गये । जिन सूक्तों में ये देवता माने गये हैं, उनमें प्रायः कई देवताओं को विवेचित किया गया है । **'यस्य वाक्यं स ऋषिः । या तेनोच्यते सा देवता'** (ऋ० १०.१० सा० भा०), सूत्र के अनुसार जिन देवों का वर्णन मंत्रों में निर्दिष्ट है, उन्हें ही देवता माना गया है । सम्भवतः जहाँ अनेक देवता वर्णित हैं अथवा देवता का स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता अथवा जहाँ सैद्धांतिक तथ्य वर्णित हैं, वहाँ देवता रूप में मन्त्रोक्त देवता अभिप्रेत है ।

४०. **मरुद्गण** (१३.१.३) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४१. **मित्र** (१९.१९.१) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४२. **मृत्यु** (१२.१.२१-३३) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४३. **यज्ञ** (१९.२१) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४४. **यम** (१८.१.१-३९) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४५. **रात्रि** (१९.४७) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४६. **रुद्र** (११.२) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४७. **रोहितादित्य** (१३.१.१-२, ४-२७, ३२-६०) - रोहितआदित्य अथर्ववेद के १३वें काण्ड में देवता रूप में अभिप्रेत हैं । इस काण्ड के प्रथम सूक्त में रोहित और द्वितीय सूक्त में आदित्य का उल्लेख मिलता है......**यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु** (अथर्व० १३.१.१) ; **आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः** (अथर्व० १३.२.१)। अथर्ववेद में रोहितादित्य को सूर्य के पर्याय के रूप में वर्णित किया गया है । इसी वेद में रोहित शब्द रक्त वर्ण के अश्व के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है । रोहित प्रगति और उद्यम के वर्चस्वी देवता हैं, जिनसे अग्नि, वरुण, मित्र, सूर्य, आदित्य और इन्द्र को भी सम्बद्ध किया गया है । द्यावा-पृथिवी को भी इनसे सम्बद्ध किया गया है- **रोहितो द्यावापृथिवी जजान** (अथर्व० १३.१.६)। यहाँ रोहित-आदित्य से अभिप्राय रक्त वर्ण के सूर्य (आदित्य) से ही होगा अथवा रोहित (रक्त वर्ण के अश्व) तथा आदित्य का संयुक्त नाम होगा, अथर्ववेद में एक स्थान पर रोहित अश्व आदित्यों को लेकर चलते हैं (अथर्व० १३.३.१७)। संभवतः रोहितादित्य के देवत्व से अभिप्राय रोहित वर्ण के अश्व तथा आदित्य के संयुक्त देवत्व से होगा। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इसी प्रकार का तथ्य उल्लिखित किया है- **रोहितः नाम कश्चिद्देवः । उद्यन् यः सूर्यः तदात्मक इति ज्ञेयम्** (अथर्व० १३.१ सा० भा०)।

४८. **वरुण** (२०.९२) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

४९. **वाक्** (१९.६०) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

५०. **विश्वेदेवा** (१९.४०) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

५१. **सरस्वती** (१८.१.४२-४३) - द्र० तिस्रो देव्यः अथर्व० भाग-१ ।

५२. **सविता** (१९.५१.२) - द्र० सूर्य अथर्व० भाग-१ ।

५३. **सोम** (१४.१.१-५) - द्र० अथर्व० भाग-१ ।

५४. **सोम पवमान** (२०.१३७.४-६) - द्र० सोम अथर्व० भाग-१ ।

५५. **सोमार्कौ** (१४.१.२३) - अथर्ववेद के एक मंत्र १४.१.२३ में सोम (चन्द्रमा) और अर्क (सूर्य) का सम्मिलित देवत्व दृष्टिगोचर होता है । इस लोक (पृथिवी) के निकट सूर्य एवं चन्द्रमा का सम्बन्ध अन्यतम अथवा अन्योन्याश्रित है । इस मंत्र में वर्णित है कि यह सूर्य और चन्द्रमा बालक के समान क्रीड़ा करते हुए पूर्व-पश्चिम समुद्र में जाते हैं । इनमें से एक भुवनों को देखता है और दूसरा ऋतुओं को उत्पन्न करता हुआ नवीनरूप में प्रादुर्भूत होता है- **पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशु क्रीडन्तौ परि यातोर्णवम् । विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः** (अथर्व० १४.१.२३)।

५६. **हरि** (२०.३०.३२) - अथर्ववेद के तीन सूक्तों २०.३०.३२ में हरि को देवता के रूप में स्वीकार किया गया है । अथर्व० के अतिरिक्त अन्य तीन वेदों में हरि का देवत्व अप्राप्य है । यहाँ हरि शब्द को इन्द्र के (हरित वर्ण के) दो अश्वों से सम्बद्ध किया गया है - **हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्**.......(अथर्व० २०.३०.२)। इन्हें हरित वर्ण के केशों से युक्त बताया गया है - **पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः** (अथर्व० २०.३०.५)। ब्राह्मण ग्रन्थ में हरि को प्राण से सम्बद्ध किया गया है- **प्राणो वै हरिः । स हि हरति** (कौषी०

ब्रा० १७.१)। शतपथ ब्राह्मण में इन्हें तपनशील (सूर्य सदृश) वर्णित किया गया है- **एष वै वृषा हरिर्य एष तपति** (शत० ब्रा० १४.३.१.२६)। बृहद्देवता ग्रन्थ में इन्हें इन्द्र के अश्वों के रूप में उल्लिखित किया गया है- **इन्द्रस्य हरयो ह्यश्वा.......** (बृह० ४.१४०)। निरुक्तकार ने हरि को इन शब्दों में वर्णित किया है- **हरयः सुपर्णा हरणा आदित्यरश्मयः ते यदाऽमुतोऽर्वाञ्चः पर्यावर्तन्ते सहस्थानादुदकस्यादित्यात्** (नि० ७.२४)।

अन्यदेव समुदाय- वैदिक मन्त्रों के सन्दर्भ में मान्यता है कि ऋचाओं की अनुभूति करने वाले को ऋषि और मन्त्रोक्त को देवता कहा जाता है। इस प्रसंग में वैदिक मंत्रों में प्रसिद्ध उद्भट विद्वान् आचार्य सायण का यह सूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है- **'यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता'** (ऋ० १०.१० सा० भा०)। उक्त कहे गये सूत्रानुसार ही अथर्ववेद के ऋषि-देवताओं का उल्लेख किया गया है। वैदिक मन्त्रों में प्रचलित प्रमुख सविता, अग्नि, वायु, वरुण, इन्द्र आदि के अतिरिक्त स्थान विशेष, अचेतन, अमूर्त्त, द्रव्य-गुण विशेष, पात्र-उपकरण और पशु या प्राणी विशेष आदि के रूप में वर्णन मिलता है। इन सभी को गुण, धर्म और स्वभाव के आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभक्त कर वर्णित किया गया है।

१. **पशुवर्ग-** गौ (गाय), वशा (वशानामक गौ-यज्ञ पशु), वाजी (अश्व) आदि।

२. **उपकरण वर्ग-** वज्र (आयुध)।

३. **हव्य-पदार्थ वर्ग-** ओदन (चावल), बार्हस्पत्यौदन, ब्रह्मौदन (ऋत्विज् हेतु पकाया गया भात) आदि।

४. **वस्तु या द्रव्य वर्ग-** अस्तृतमणि, औदुम्बरमणि, त्रिवृत् (मणि विशेष), दर्भमणि, शतवारमणि आदि।

५. **ओषधि एवं वनस्पति वर्ग-** आञ्जनम् (औषधि-पाण्डु, यक्ष्म, जायान्य आदि रोगों के लिए लेप करते हैं।), कुष्ठ (कुष्ठ नाम की ओषधि), गुग्गुल, दर्भ, वनस्पति आदि।

६. **अमूर्त्त (भावात्मक) देववर्ग-** अलक्ष्मीनाशन (अलक्ष्मी का विनाशक सूक्त), उच्छिष्ट अध्यात्म, ऋत्विक् स्तुति, कर्म, छन्दसमूह, तप, दम्पती-परिपन्थनाशिनी, दुःस्वप्न, दुःष्वप्नघ्न, दुःस्वप्ननाशन (दुःस्वप्न विनाशक सूक्त), नक्षत्रगण, दम्पती-यक्ष्मनाशन (यक्ष्मा का विनाशक सूक्त), वधूवास संस्पर्श मोचन, विवाह मंत्र आशीष, स्वर्ग, स्व विवाह आदि। अथर्ववेदीय मंत्रों में उपरोक्त सभी को देवता के रूप में मानकर स्तुति-वर्णन और गुणगान सम्पन्न हुआ है। अतः यहाँ इन सभी को मंत्रों में देवता के रूप में स्वीकार किया गया है।

परिशिष्ट - ३

अथर्ववेद भाग - २ में प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त विवरण

क्र०	छन्द नाम	वर्ण संख्या	उदा० (अथर्व० सं०)
१.	**अतिजगती**	५२	१९.१७७
	अतिजागतगर्भा परातिजागता विराट् अतिजगती	५०	११.१.१८
	अतिशाक्वरगर्भा अतिजगती	५२	१३.१.१३
	ककुम्मती परशाक्वरा भुरिक् पञ्चपदा अतिजगती	५३	१३.१.१८
	त्र्यवसाना उष्णिग्बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप् षट्पदा अतिजगती	४९*	११.११.४
	त्र्यवसाना पञ्चपदा अतिजगती	५२	१९.७१.१
	त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वरा अतिजगती	४९*	१९.५७.५
	त्र्यवसाना षट्पदा अतिजगती	५२	१७.१.२-५
	त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भा अतिजगती	४९*	११.१२.२
	त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्बृहतीगर्भा अतिजगती	५२	१२.१.३४
	त्र्यवसाना षट्पदा विराट् अतिजगती	५३*	१२.१.२२
	पञ्चपदा अतिजगती	५२	१८.३.३०
	पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती	५०	१२.१.५२
	पञ्चपदा उष्णिग्बृहतीगर्भा अतिजगती	४७*	१३.२.३०
	पञ्चपदा विराट् अतिजगती	५०	१२.१.२३
	परशाक्वरा विराट् अतिजगती	५०	१३.१.३७
	परातिजागता ककुम्मती पञ्चपदा अतिजगती	५०	१३.१.१९
	भुरिक् पञ्चपदा अतिजगती	५३	१८.४.३
	शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराट् अतिजगती	४९	११.७.१२
२.	**(अतिधृति)**		
	अनुष्टुब्गर्भा सप्तपदा चतुरवसाना अतिधृति	७५	१३.३.७
	निचृत् सप्तपदा चतुरवसाना अतिधृति	७५	१३.३.१५
	भुरिक् सप्तपदा चतुरवसाना अतिधृति	७७	१३.३.९-१२
	शंकुमती अतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भा सप्तपदा त्र्यवसाना अतिधृति	७४	१२.३.५५
	सप्तपदा त्र्यवसाना अतिधृति	७६	१७.१.८;११
३.	**(अतिशक्वरी)**		
	उष्णिगनुष्टुब्गर्भा षट्पदा परातिशक्वरी	५८	१२.१.४७
	चतुष्पदा अतिशक्वरी	६०	१९.५८.३
	त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भा षट्पदा त्र्यवसाना अतिशक्वरी	५७	१२.१.१८
	पञ्चपदा अतिशक्वरी	६०	११.२.२५
	पूर्वात्रिष्टुप् द्विपदा अतिशक्वरी	५७	१५.११.२
	बृहतीगर्भा सप्तपदा त्र्यवसाना अतिशक्वरी	६०	१९.१६.२
	विराट् पञ्चपदा अतिशक्वरी	५८	१७.१.१७
	षट्पदा त्र्यवसाना अतिशक्वरी	६०	१४.२.६९
४.	**अत्यष्टि**	६८	२०.६७.१-३
	विराट् षट्पदा त्र्यवसाना अत्यष्टि	६६	१४.२.९

	विराट् सप्तपदा अत्यष्टि	६६	१७.१.२४
	षट्पदा त्र्यवसाना अत्यष्टि	६८	१३.३.८;२०
	सप्तपदा त्र्यवसाना अत्यष्टि	६८	१७.१.६-७
५.	**अनुष्टुप्**	३२	११.२.४-५
	आर्ची अनुष्टुप्	२४	१५.४.२;८
	आर्षी अनुष्टुप्	३२	१२.१०.२
	आर्षी परानुष्टुप्	४४*	१५.२.१२
	आसुरी अनुष्टुप्	१३	११.३.९;१७-१८
	आसुरी (एकावसाना) अनुष्टुप्	१३	१९.२२.१८
	उष्णिग्गर्भा निचृत् अनुष्टुप्	३१	२०.९६.२२
	उष्णिग्बृहतीगर्भा अनुष्टुप्	३२	१२.४.३२
	एकपदा आर्ची अनुष्टुप्	२४	१२.६.३
	एकपदा आसुरी अनुष्टुप्	१३	११.४.१;४-६
	एकपदा भुरिक् आर्ची अनुष्टुप्	२५	१२.६.२
	एकपदा यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप्	४८	१५.१.३
	एकावसाना एकपदा ब्राह्मी अनुष्टुप्	४८	१९.५१.१
	एकावसाना प्राजापत्या अनुष्टुप्	१६	१९.३८.३
	एकावसानार्ची अनुष्टुप्	२४	१९.२७.१२
	एकावसानासुरी अनुष्टुप्	१३	१८.३.३६
	ककुम्मती अनुष्टुप्	३०	१८.२.४५
	ककुम्मती पराबृहती अनुष्टुप्	३०	१२.२.१६
	त्रिपदा अनुष्टुप्	३२	१६.४.४
	त्रिपदा विराट् अनुष्टुप्	३०	१९.४८.२
	त्रिपदा विराड्गर्भा अनुष्टुप्	३०	१६.४.७
	द्विपदा आर्ची अनुष्टुप्	२४	१५.११.११
	द्विपदा प्राजापत्या अनुष्टुप्	१६	१५.५.३
	निचृत् अनुष्टुप्	३१	११.६.१४
	पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्	३२	१२.९.६
	पुरस्तात् ककुम्मती अनुष्टुप्	३०	१२.२.४०
	पुरोबार्हतानुष्टुप्	३२	१२.१.५३
	पुरोष्णिग् बार्हतपरा अनुष्टुप्	३२	११.९.६
	प्राजापत्या अनुष्टुप्	१६	११.३.७;१९-२२
	बार्हतगर्भा अनुष्टुप्	३२	१३.२.२९
	बृहतीगर्भा अनुष्टुप्	३३	११.६.२६
	भुरिक् अनुष्टुप्	३३	११.६.१५
	भुरिक् आर्ची अनुष्टुप्	२५	११.३.११
	भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्	१७	१५.१२.३-४
	भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्	१७	१२.५.२
	याजुषी अनुष्टुप्	८	१२.९.२
	विराट् अनुष्टुप्	३०	११.१२.४
	शंकुमती अनुष्टुप्	२९	११.६.१
	साम्नी अनुष्टुप्	१६	११.३.४;८
	साम्नी एकावसाना अनुष्टुप्	१६	१९.६९.२
	स्वराट् अनुष्टुप्	३४	११.९.२१
	स्वराट् (सम्राट्) आर्ची अनुष्टुप्	२६	१९.१८.५
६.	**अष्टि**	६४	२०.९५.१
	चतुरवसाना अष्टि	६४	१९.३९.६-८
	त्र्यवसाना षट्पदा भुरिक् अष्टि	६५	१३.३.२
	त्र्यवसाना षट्पदा विराट् अष्टि	६२	१९.५४.५

त्र्यवसाना सप्तपदा अष्टि	६४	१९.९.१२
त्र्यवसाना सप्तपदा भुरिक् अष्टि	६५	१७.१.१८
षट्पदा त्र्यवसाना अष्टि	६४	१३.३.३
षट्पदा त्र्यवसाना विराट् अष्टि	६२	१२.१.८;११
७. (आकृति)		
चतुरवसाना अष्टपदा आकृति	८८	१३.३.१;१६
चतुरवसाना अष्टपदा भुरिक् आकृति	८९	१३.३.१९
८. उष्णिक्	२८	११.१.६
आर्ची उष्णिक्	२१	११.३.२६
आर्ची एकावसाना उष्णिक्	२१	११.७.२५
आर्ची द्विपदा उष्णिक्	२१	१५.३.४
आसुरी उष्णिक्	१४	१२.११.१२
एकपदा उष्णिक्	२८	१२.६.४
ककुप् उष्णिक्	२८	११.१२.२५
ककुप् त्रिपदा उष्णिक्	२८	१५.५.६
ककुम्मती चतुष्पदा उष्णिक्	२६	११.१.३५
ककुम्मती पुर उष्णिक्	२६	१९.६०.२
चतुष्पदा उष्णिक्	२८	११.२.३०
चतुष्पदा भुरिक् उष्णिक्	२९	२०.९६.२०
चतुष्पदा शंकुमती उष्णिक्	२६	१८.४.८७
चतुष्पदा स्वराट् उष्णिक्	३०	११.२.३
परोष्णिक्	२८	१३.१.४४
परोष्णिक् विराट्	२६	१४.२.५२
पुर उष्णिक्	२८	१५.१४.३
पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्	२८	१४.१.३८
प्राजापत्या उष्णिक्	१२	१२.१०.८-९
प्राजापत्या उष्णिक् (दैवीपंक्ति)	१२	१५.१७.१,५
यवमध्या त्रिपदा एकावसाना उष्णिक्	२८	१९.५१.२
विराट् उष्णिक्	२६	१५.७.३
विराट् पुर उष्णिक्	२६	१४.२.६८
साम्नी उष्णिक्	१४	११.३.५;१३
साम्नी उष्णिक् (दैवीपंक्ति)	१४	१५.१६.१;३
साम्नी एकावसाना उष्णिक्	१४	१९.२२.१
९. कृति	८०	१२.३.५९
चतुरवसाना सप्तपदा कृति	८०	१३.३.१७;२४
त्र्यवसाना सप्तपदा कृति	८०	१७.१.१२
विराट् कृति	७८	१२.३.५६
१०. गायत्री	२४	१२.७.४
आर्ची गायत्री	१८	१३.६.२
आर्षी गायत्री	२४	११.२.६
आर्षी निचृद् गायत्री	२३	१३.१.२१
आसुरी गायत्री	१५	११.३.१;१४
एकपदा गायत्री	२४	१५.७.४
एकपदा विराड् गायत्री	१८	१५.१.४
एकपदासुरी गायत्री	१५	१३.६.४
एकावसाना आसुरी गायत्री	१५	१८.३.३७
एकावसाना विराड् गायत्री	१८	२०.२.१-२
त्रिपदा एकावसाना भुरिगार्ची गायत्री	१९	१२.२.४२
त्रिपदा गायत्री	२४	११.११.१७

त्रिपदा निचृद् गायत्री	२३	१५.७.१
त्रिपदा निचृत् विषमा गायत्री	२३	१९.४४.५
त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री	३६	१५.५.५ (१)
त्रिपदार्षी गायत्री	२४	१८.२.१९
त्रिपदा वर्धमाना गायत्री	२१	१५.१०.४
त्रिपदा समविषमा गायत्री	२४	११.३.२
त्रिपदा समविषमार्षी गायत्री	२४	१८.२.२४
त्रिपदा स्वराड् गायत्री	२६	१८.४.६६
द्विपदा निचृद् गायत्री	२३	१५.१३.९
द्विपदा ब्राह्मी गायत्री	३६	१५.२.४;१८;२४
द्विपदार्षी गायत्री	२४	१३.९.३
द्विपदा विराड् गायत्री	२०	१५.१३.१०
द्विपदासुरी गायत्री	१५	१५.१०.६;८
निचृत् विराड् गायत्री	१७	१६.१.७
पादनिचृद् गायत्री	२१	२०.१२४.३
पिपीलिकमध्या गायत्री	२४	१५.३.१
प्रतिष्ठा गायत्री	२१	१२८.११
प्राजापत्या गायत्री	८	११.४.७-८ (४)
भुरिगार्षी गायत्री	२५	१८.२.४०;४२-४४
भुरिग् गायत्री	२५	११.२.२०
भुरिग् विराड् गायत्री	२२	१६.५.७(१)
भुरिग् विषमा गायत्री	२५	१५.५.१०;१४
भुरिङ्नागी गायत्री	२५	१५.१४.१९
यवमध्या गायत्री	२४	१३८.२
याजुषी गायत्री	६	१८.४.२७
विराड् गायत्री	३३	११.१.८
विराड् विषमा गायत्री	२२	१२.७.१
साम्नी गायत्री	१२	११.३.२७
स्वराड् गायत्री	२६	१५.१४.११
स्वराड् विराड् गायत्री	२२	१६.५.८
११. जगती	४८	११.१.११
अतिजागतगर्भा जगती	४८	११.१.२७
अतिजागतगर्भा पराशाक्वरा चतुष्पदा भुरिग्जगती	४८	११.१.२०
अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा विराड् जगती	४६	११.२.२
आर्ची जगती	३६	१५.४.६
आसुरी जगती	९	१५.३.९
उपजगती	४६	१९.१७.१
चतुष्पदा जगती	४८	१९.१५.२;५
चतुष्पदा पुरःशाक्वरा भुरिग्जगती	४९	१३.२.४४
चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती	४८	११.१.३
त्र्यवसाना षट्पदा जगती	४८	१२.१.४-६
दैवी जगती	७	१५.४.१;१३
द्विपदा प्राजापत्या जगती	१६	१५.५.३;१२
द्विपदार्ची जगती	३६	१५.२.५;१३
पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा जगती	४८	१२.१.२४
पञ्चपदा उष्णिग्गर्भा विराड् जगती	४६	१९.४६.६
पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती	४५	१२.२.४७
पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती	४७	१३.२.३७
पञ्चपदा शाक्वरगर्भा ककुम्मती जगती	४८	१३.१.३१

परातिजागता विराड् जगती	४६	११.२.१
पुरोऽतिजगती विराड् जगती	४६	११.१.१०
पुरोऽतिजागता जगती	४८	१२.१.५७
पुरोऽतिजागता विराड् जगती	४६	११.७.८
पुरोद्व्यतिजागता भुरिग्जगती	४९	१३.२.२६
भुरिग् जगती	४९	१८.३.२६;२८
भुरिग् विराड् जगती	४६	११.१.२९
मध्येज्योति जगती	४४	११.६.२१
याजुषी जगती	१२	११.३.१२
शक्वरीगर्भा जगती	४८	२०.९६.९
शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती	४८	११.७.६
शाक्वरातिजागतगर्भा जगती	४८	११.१.९
षट्पदा जगती	४८	११.१२.१३
स्वराड् जगती	५०	१९.१७.५
१२. त्रिष्टुप्	४४	११.१.१७;१२
अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्	४१	११.६.२०
आर्षी त्रिष्टुप्	४४	११.२.९
आसुरी त्रिष्टुप्	१०	१६.७.१३
एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्	२२	१२.२.४६
एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्	२२	१२.१.१६;२१
चतुष्पदा त्रिष्टुप्	४४	१९.२२.२१
त्रिपदा त्रिष्टुप्	३९*	१९.५७.२
त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्	२८	१५.२.८
त्र्यवसाना चतुष्पदा त्रिष्टुप्	४४	१९.५७.३
त्र्यवसाना पञ्चपदा विराट् उपरिष्टाज्ज्योति त्रिष्टुप्	४१	११.११.१६
त्र्यवसाना षट्पदा विपरीतपादलक्ष्मा त्रिष्टुप्	४४	११.२.३१
दैवी त्रिष्टुप्	६	११.४.११;१४
द्विपदा निचृत् त्रिष्टुप्	२०	१९.८.७
द्विपदार्षी भुरिक् त्रिष्टुप्	४५	१५.२.११
द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्	२२	१६.३.६
निचृत् त्रिष्टुप्	४३	१९.३५.४
पञ्चपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	४३	१९.५५.५
पञ्चपदा मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	४३	१९.४६.१
परानुष्टुप् त्रिष्टुप्	४२	१२.१.९
पराबृहती त्रिष्टुप्	४२	१२.३.४४
पराविराट् त्रिष्टुप्	४३	१२.१.६२
पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्	४१	११.७.१५
पुरोतिजागता विराड्गर्भा त्रिष्टुप्	४४	११.७.१
पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्	४१	१२.१.४८
पुरोबार्हतातिजागतगर्भा त्रिष्टुप्	४३	११.७.२३
पुरोबार्हता त्रिष्टुप्	४२	१२.१.६१
पुरोबृहती त्रिष्टुप्	४१*	१४.२.३५
पुरोविराट् त्रिष्टुप्	४३	११.१.३६
पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्	४२	११.१२.९
पुरःकृति त्रिपदा विराट् त्रिष्टुप्	४२	११.२.१०
प्राजापत्या त्रिष्टुप्	२८	१२.११.११
बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्	४३	११.७.९
बृहतीगर्भा विराट् त्रिष्टुप्	४२	११.१.२;५
भुरिक् त्रिष्टुप्	४५	११.१.४;१५-१६

भुरिक् परातिजागता त्रिष्टुप्	४४	२०.१०७.१२
भुरिक् साम्नी त्रिपदा त्रिष्टुप्	२३	११.५.३
भुरिगार्ची त्रिष्टुप्	३३	१५.५.२
मध्येज्योति उष्णिग्गर्भा त्रिष्टुप्	४१	११.७.२६
महाबृहती त्रिष्टुप्	४४	१९.८.२
याजुषी त्रिष्टुप्	२१	११.३.३०
विराड्गर्भा त्रिष्टुप्	४३	११.७.७
विराट्स्थाना त्रिष्टुप्	४१	१९.८.३
१३. (धृति)		
अतिशाक्वरगर्भा षट्पदा त्र्यवसाना धृति	७२	१३.३.४
अष्टपदा त्र्यवसाना धृति	७२	१७.१.१०
१४. पंक्ति	४०	१५.७.५
अक्षर पंक्ति	२०	१५.१३.१४
अनुष्टुब्गर्भा पंक्ति	३९	१९.१९.२;४-८
अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् पंक्ति	४२	११.१.१
अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति ४२	१२.२.९	
आर्ची निचृत् पंक्ति	२९	१२.६.५
आर्षी पंक्ति	४०	१३.२.३४
आसुरी पंक्ति	११	११.३.३६;२०
आस्तार पंक्ति	४०	१२.२.३
ककुम्मती आस्तार पंक्ति	३७	१३.२.२५
ककुम्मती बृहतीगर्भा पथ्यापंक्ति	४०	१३.१.५५
त्रिपदा प्रतिष्ठार्ची पंक्ति	३०	१५.१७.८
त्रिपदार्ची पंक्ति	३०	१५.१०.२
त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति	४०*	१४.२.४३
त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापंक्ति	३८	१९.४२.२
त्र्यवसाना पथ्यापंक्ति	४०	१८.४.८८
त्र्यवसाना शंकुमती पथ्यापंक्ति	३७	१९.४३.१-८
दैवी पंक्ति	५	१५.१५.१
द्विपदा प्राजापत्या पंक्ति	२४	१५.१०.३
द्विपदार्ची पंक्ति	३०	१५.४.१५;१८
द्विपदार्षी पंक्ति	४०	१५.२.३
द्विपदा विराडार्षी पंक्ति	३८	१५.२.१७
द्विपदा साम्नी पंक्ति	२०	१६.१.५
निचृदार्ची पंक्ति	२९	१५.१४.२३
निचृदार्षी पंक्ति	३९	१५.२.२३
पञ्चपदा पथ्यापंक्ति	४०	११.१२.१२
पथ्यापंक्ति	४०	११.६.८
पदपंक्ति	२५	१५.२.१४;२७
परात्रिष्टुप् पंक्ति	४१	१८.३.३९
पुरः परशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्मा त्रिपदा पंक्ति	३७	१३.१.१४
पुरोविराट् आस्तार पंक्ति	४०	१८.४.३९
पुरोविराट् सतः पंक्ति	४०	१८.४.५३
प्रस्तार पंक्ति	४०	११.१२.२६
प्राजापत्या पंक्ति	२४	१५.४.५
भुरिक् पथ्यापंक्ति	४१	१८.३.६४
भुरिगार्षी पंक्ति	४१	१२.२.६
भुरिगास्तार पंक्ति	४१	१८.४.६२
याजुषी पंक्ति	१०	११.३.३१

विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति	४०	१२.१.३६
विराट् आस्तार पंक्ति	३८	११.१२.३
विराट् पथ्यापंक्ति	३८	१९.१५.३
विराट् प्रस्तार पंक्ति	३८	१४.१.१४
सतः पंक्ति	४०	१४.२.४८
साम्नी पंक्ति	२०	१२.५.५
स्वराट् आर्षी पंक्ति	४२	१२.३.१३;१७
स्वराट् आस्तार पंक्ति	४२	१८.४.६३
स्वराट् पंक्ति	४२	१९.१९.१०
स्वराट् प्राजापत्या त्रिपदा पंक्ति	२६	१५.५.४
१५. (प्रकृति)		
शाक्वरऽतिशाक्वरगर्भा सप्तपदा चतुरवसाना प्रकृति	८४	१३.३.५-६
सप्तपदा त्र्यवसाना प्रकृति	८४	१७.१.१३
१६. प्रगाथ (बृहती + सतोबृहती)	७६	२०.९.३-४
प्रगाथ (विषमाककुप् + समा सतोबृहती)	६८	२०.१४.१-४
प्रगाथ (विषमा बृहती + समा सतोबृहती)	७६	२०.४९.४-५
१७. बृहती	३६	२०.५२.१-३
आर्ची बृहती	२७	१२.९.१७
आसुरी बृहती	१२	११.३.१६;२३
उपरिष्टाद् निचृद् बृहती	३५	१४.२.५०
उपरिष्टाद् विराड् बृहती	३४	१२.२.५०
उरोबृहती	३६	११.७.३
एकपदा भुरिक् साम्नी बृहती	१९	११.४.१८ (२)
एकपदा विराड् बृहती	३४	१५.७.२
एकावसाना द्विपदार्ची बृहती	२७	१२.२.४४
एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती	१८	१९.२१.१
एकावसाना निचृत् महाबृहती	३५	१९.४५.७-१०
एकावसाना विराट् महाबृहती	३४	१९.४५.६
चतुष्पदा उपरिष्टाद् बृहती	३६	१७.१.२१
त्रिपदा प्राजापत्या बृहती	२०	११.३.२४
त्रिपदा भुरिक् महाबृहती	३७	१८.४.१६-२४
त्रिपदा महाबृहती	३६	१९.३७.३
त्रिपदा विषमपादलक्ष्मा महाबृहती	३६	११.२.२२
त्रिपदा साम्नी बृहती	१८	१५.१०.५
द्विपदा प्राजापत्या बृहती	२०	१५.११.७;९
द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती	१९	११.५.५
द्विपदा साम्नी बृहती	१८	१५.१०.१
निचृत् पुरस्ताद् बृहती	३५	१९.५३.५
निचृदार्ची बृहती	२६	१६.६.६
निचृद् बृहती	३५	१५.६.६;१२
निचृद् महाबृहती	३५	१३.१.३६
पथ्या बृहती	३६	१४.२.४७
पुरस्ताद् बृहती	३६	१२.१.५८
पुरोबृहती	३९*	१८.१.५९
पुरः ककुम्मती उपरिष्टाद् बृहती	३४	१९.४०.२
प्राजापत्या बृहती	२०	११.५.७
भुरिक् आर्ची बृहती	२८	१५.११.१०
भुरिक् साम्नी बृहती	१९	११.३.२९
भुरिग् बृहती	३७	१९.१९.१;३;९

महाबृहती	३६	११.२.८
विराट् उपरिष्टाद् बृहती	३४	१८.४.२६
विराट् उरोबृहती	३४	१२.१.२०
विराट् पथ्या बृहती	३४	११.९.२२
विराट् पुरस्ताद्बृहती	३४	११.१२.२२
विराड् बृहती	३४	१५.६.२६
विराड् महाबृहती	३४	१३.१.४३
साम्नी द्विपदा बृहती	१८	१५.१.२
साम्नी निचृद् बृहती	१७	१३.८.४
साम्नी बृहती	१८	११.३.२८
१८. (विकृति)		
चतुरवसाना अष्टपदा विकृति	९२	१३.३.२३;२५
१९. शक्वरी	५६	२०.९५.२-४
अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती षट्पदा त्र्यवसाना शक्वरी	५६	१२.१.५१
उष्णिगनुष्टुब्गर्भा सप्तपदा त्र्यवसाना शक्वरी	५६	१२.१.२५
उष्णिग्बृहतीगर्भा विराट् षट्पदा शक्वरी	५४	१९.५७.४
ककुम्मती अनुष्टुप्त्रिष्टुब्गर्भा षट्पदा त्र्यवसाना शक्वरी	५४	११.१२.१६
ककुम्मती षट्पदा त्र्यवसाना शक्वरी	५४	१२.१.४१
पञ्चपदा शक्वरी	५६	१२.१.१५
पञ्चपदा त्र्यवसाना शक्वरी	५६	१२.१.१२-१३
पराशक्वरी अनुष्टुब्गर्भा षट्पदा शक्वरी	५४	१२.१.४६
बृहतीगर्भा विराट् पञ्चपदा शक्वरी	५४	११७.२
भुरिक् पञ्चपदा शक्वरी	५७	१८.४९
भुरिक् षट्पदा शक्वरी	५७	१९.४६.२
विराट् शक्वरी	५४	१८.३.३१
विराट् जगतीगर्भा पञ्चपदा शक्वरी	५४	११.२.११
विराट् सप्तपदा त्र्यवसाना शक्वरी	५४	११.११.१
सप्तपदा चतुरवसाना शक्वरी	५६	१९.३९.५
सप्तपदा त्र्यवसाना शक्वरी	५६	११.११.२५
२०. (संकृति)		
चतुष्पदा संकृति	९६	१९.९.१४

*** मंत्रानुसार**

परिशिष्ट - ४

अथर्ववेद भाग-२ मन्त्रानुक्रमणिका

*